ऐतिहासिक स्थानावली

लेखक

विजयेन्द्र कुमार माथुर, एम० ए०

वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी,
वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

प्रथम संस्करण, वर्ष 1969

मूल्य : 18·00

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस के-18 द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

भारत सरकार की निश्चित और दृढ़ नीति है कि शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं को होना चाहिए। यह निश्चय भारतीय विश्वविद्यालयों के कुलपतियों द्वारा तथा संघ की संसद् द्वारा अनुमोदित है और यह प्रयत्न है कि शीघ्रातिशीघ्र अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाएँ माध्यम का रूप ग्रहण कर लें। इस अभिप्राय को कार्यरूप देने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली निश्चित हो जाय और तब आवश्यक साहित्य उपस्थित किया जाय। इस आयोग की स्थापना इसी अभिप्राय से 1961 में हुई थी और और तब से प्रथमतः पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण इस आयोग का मुख्य ध्येय रहा है। यह शब्दावली अब प्रायः सर्वांश में तैयार है और इसका उपयोग ग्रंथों के निर्माण में किया जा रहा है। विश्वविद्यालय स्तर के उच्च कोटि के प्रामाणिक ग्रंथों को उपस्थित करना भी इस आयोग का उद्देश्य है। इस निमित्त आयोग ने विविध साधनों के द्वारा अंग्रेजी आदि भाषाओं से ग्रंथों का अनुवाद कराया है और कुछ मौलिक ग्रंथ भी उपस्थित किये हैं। प्रस्तुत ग्रंथ इतिहास और भूगोल की दृष्टि से बहुत महत्त्व रखता है। इसके पूर्व अंग्रेज़ विद्वानों ने इस दशा में काम किया था। अब हिन्दी में भी यह सामग्री श्री विजयेन्द्र कुमार माथुर द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। श्री माथुर इस आयोग में वरिष्ठ अनुसन्धान अधिकारी हैं और इन्होंने इस विषय का बड़े परिश्रम से अध्ययन किया है। हमें विश्वास है कि इस ग्रंथ से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि होगी और इसका सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायेगा।

बाबूराम सक्सेना

अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

26-2-69

नई दिल्ली

दो शब्द

प्राचीन भारतीय साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें प्रतिबिंबित जनजीवन में भौगोलिक चेतना का पूर्ण रूप से सन्निवेश है। इसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि हमारे पूर्वपुरुष अपने विशाल देश के प्रत्येक भाग से भली प्रकार परिचित थे तथा उनको भारत के बाहर के संसार का भी विस्तृत ज्ञान था। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराणादि ग्रंथों तथा कालिदास आदि महाकवियों की रचनाओं में प्राप्त भौगोलिक सामग्री की विपुलता इस बात की साक्षी है। वास्तव में प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति एकता के जिन सुदृढ़ सूत्रों में निबद्ध थी उनमें से एक सूत्र भारतीयों की व्यापक भौगोलिक भावना भी थी जिसके द्वारा सारे भारत के विभिन्न स्थान—पर्वत, वन, नदी-नद, सरोवर, नगर और ग्राम उनके सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग ही बन गए थे। वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के लिए हिमालय से कन्याकुमारी और सिंधु से कामरूप तक भारत का कोई कोना अपरिचित या अजनबी नहीं था। प्रत्येक भूभाग के निवासी, उनका रहन-सहन, वहां के जीवजन्तु या वनस्पतियां और विशिष्ट दृश्यावली—ये सभी तथ्य इन महाकवियों और मनीषियों के लिए अपने ही और अपने घर के समान ही प्रिय एवं परिचित हैं। वाल्मीकि रामायण के किष्किंधाकांड, महाभारत के वनपर्व और कालिदास के मेघदूत और रघुवंश के चतुर्थ एवं त्रयोदश सर्गों के अध्ययन से उपर्युक्त धारणा की पुष्टि होती है। इतने प्राचीन काल में जब भारत में यातायात की सुविधाएं अपेक्षाकृत बहुत कम थीं, भारतीयों की स्वदेश विषयक भौगोलिक एकता की भावना को जगाए रखने में इन राष्ट्रीय एवं लोकप्रिय कविगणों ने जो महत्त्वपूर्ण योग दिया था उसका मूल्य आंकना भी हमारे लिए आज संभव नहीं है।

बौद्ध-साहित्य में, विशेषकर जातकों में, तथा जैन साहित्य के तीर्थग्रंथों में भी हमें इसी भौगोलिक चेतना के दर्शन होते हैं।

हमारे प्राचीन साहित्य तथा इतिहास में वर्णित स्थानों का अध्ययन उपर्युक्त सांस्कृतिक विशेषताओं का द्योतक होने के साथ ही अपने आप में भी कुछ कम महत्त्व का नहीं क्योंकि इन स्थानों से स्वाभाविक रूप से ही साहित्य अथवा इतिहास के परिवेश एवं परिस्थितियों का निकटतम संबंध है। वास्तव में साहित्यिक कल्पनाओं एवं ऐतिहासिक घटनाओं को तत्संबंधित स्थान-नामों द्वारा एक प्रकार का भौतिक आधार प्राप्त होता है जिसके बिना साहित्य या इतिहास का परिप्रेक्ष्य नहीं बनता और उसके उपयुक्त अवबोधन में भी कठिनाई होती है। इस प्रकार साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक स्थानों के अध्ययन का सांस्कृतिक और शैक्षिक दोनों ही प्रकार का महत्त्व है। इसी दृष्टि से मैंने इस कोश की रचना का कार्य अनेक वर्ष पूर्व प्रारंभ किया था। हिंदी और अंग्रेजी में इस दिशा में कई प्रयास हुए हैं किंतु बृहद् अनुमाप पर इस प्रकार के कार्य की अपेक्षा अभी तक बनी ही हुई है। प्रस्तुत कोश में लगभग चार सहस्त्र प्राचीन एवं मध्ययुगीन स्थान नामों का परिचय एवं विवेचन है जिनमें से अनेक प्रसिद्ध नामों पर विश्वकोशीय स्तर के विस्तृत लेख दिए हैं। प्रत्येक प्रविष्टि को ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विवेचन की दृष्टि से पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है। वर्णन-क्रम सामान्यत: इस प्रकार है—स्थिति, अभिज्ञान, नाम की व्युत्पत्ति, साहित्य या इतिहास से कालक्रमानुरूप उद्धरण, लोकश्रुतियों या किंवदंतियों का उल्लेख, स्थान की विशेषता तथा पुरातत्व विषयक तथ्य और वर्तमान रूप। ग्रंथ के प्रणयन तथा कोशविधि से उसके संकलन में मुझे प्राय: बारह वर्षों का दीर्घ समय लगा है और अनेक वर्षों तक लगातार कठोर परिश्रम के फलस्वरूप ही इतनी सामग्री का चयन तथा उसका निबंधन संभव हो सका है। अनेक स्थलों पर मैंने अपनी नवीन उद्भावनाओं का प्रतिपादन किया है, कई स्थानों के नये अभिज्ञान सुझाए है तथा कई के विषय में अब तक अज्ञात साहित्यिक उद्धरणों का उल्लेख किया है। अधिकांश स्थलों पर मेरा यह प्रयत्न रहा है कि प्राचीन साहित्य का साक्ष्य देते समय केवल संदर्भ का निर्देश ही न करके उसमें आए हुए पूरे पद्यांश को ही उद्धृत करूं। ऐसे उद्धरण मैंने वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, पुराणों तथा कालिदास के ग्रंथों से प्रचुरता से लिए हैं क्योंकि ये ग्रंथ हमारे सांस्कृतिक जीवन के आधार-स्तंभ है। संस्कृत, पाली, अपभ्रंश तथा हिन्दी एवं अन्य भाषाओं के साहित्य में वर्णित सांस्कृतिक स्थलों की इतिहास के रथ द्वारा यह यात्रा बहुत भव्य और हमारे राष्ट्र की एकता की परिचायक है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में परिपालित बृहत्तर भारत की संस्कृतियों से संबंधित अनेक स्थाननामों को भी इस कोश में सम्मिलित कर लिया गया है।

ग्रंथ के नामकरण में मैंने 'ऐतिहासिक' शब्द में इतिहास के अतिरिक्त प्राचीन साहित्य, परंपरा और अनुश्रुति का भी सन्निवेश किया है। मध्ययुगीन स्थान-नामों को भी इस कोश में रखा गया है क्योंकि भारतीय इतिहास की परंपरा के निरंतर प्रवाह ने उसकी अविच्छिन्न सांस्कृतिक एकता को सभी कालों में अनुप्राणित किया है और इस दृष्टि से सारे इतिहास की मूलधारा को कालों में विभाजित नहीं किया जा सकता। केवल आधुनिक समय (ब्रिटिशकाल के पश्चात्) को ही मैंने प्राचीन इतिहास के घेरे से बाहर समझा है।

ग्रंथ की रचना में मूल स्रोतों के अतिरिक्त वर्तमान समय में हिन्दी, अंग्रेज़ी या अन्य भाषाओं में लिखे गए अनेक ग्रंथों, कोशों, और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली है (देखें सहायक ग्रंथ-सूची), जिनके लेखकों के प्रति मैं धन्यवाद प्रकट करता हूं।

इस पुस्तक के लिखने की प्रेरणा अनेक वर्ष हुए 1945 में, प्रसिद्ध भाषाविज्ञ डा० सिद्धेश्वर वर्मा से मुझे मिली थी। उन्होंने इसकी प्रगति में भी सदा ही अपनी गहरी अभिरुचि रखी है और भांति-भांति के, विशेषकर स्थान-नामों की व्युत्पत्ति के संबंध में, सुझाव देकर मुझे अनुगृहीत किया है। पूज्य गुरुवर डा० बाबूराम सक्सेना (भूतपूर्व उपाध्यक्ष तथा वर्तमान अध्यक्ष वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दा-वली आयोग) ने इस पुस्तक को देखकर इसकी सराहना की तथा उसे आयोग की मानक ग्रंथ प्रकाशन-योजना के अंतर्गत लिये जाने के लिए आदेश दिया। इस कृपा के लिए मैं उनका सदा आभारी रहूंगा। मेरे सुपुत्र विनयकुमार, एम० ए० ने अनेक स्थानों के विषय में ऐतिहासिक एवं अनुसंधानात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सूचना दी है। ग्रंथ की सामग्री के विषय में कई उपयोगी सुझावों के लिए डा० कृष्णदत्त वाजपेयी, प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, सागर विश्वविद्यालय, तथा डा० रामकुमार दीक्षित, प्राध्यापक प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, लखनऊ विश्वविद्यालय, को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूं।

मेरी धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गेशनंदिनी बी० ए० और सुपुत्री कु० विनीता एम० ए० (फ़ाइनल) ने ग्रंथ की पांडुलिपि तैयार करने में जो सहयोग दिया और तत्परता दिखाई उसके बिना पुस्तक का समय पर प्रकाशनार्थ तैयार किया जाना संभव नहीं था।

श्री महेंद्रकुमार अग्रवाल, एम० ए० ने पुस्तक के प्रूफ आदि देखने में मेरी जो सहायता की है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

अपनी मातृभाषा हिन्दी के विशाल मंदिर में अपनी इस अकिंचन भेंट को भक्तिपूर्वक चढ़ाते हुए मुझे जो गर्व-मिश्रित हर्ष तथा आत्मपरितोष की अनुभूति हो रही है उसे मैं कैसे व्यक्त करूं ?

अंत में मैं अपने पूज्य माता-पिता की पुण्यस्मृति में इस ग्रंथ को सादर समर्पित करता हूं ।

—विजयेंद्र कुमार माथुर

महाशिवरात्रि, 15-2-69

ऐतिहासिक स्थानावली

अंकलेश्वर (गुजरात)

भड़ौच से पांच मील है। प्राचीन समय में नर्मदा यहीं बहती थी, अब तीन मील दूर हट गई है। कहा जाता है कि मांडव्य ऋषि और शांडिली जिनकी कथा महाभारत में है, इसी स्थान के निवासी थे। यह कथा महा० आदि० 106-107 में वर्णित है जहां मांडव्याश्रम का उल्लेख इस प्रकार है—'बभूव ब्राह्मण: कश्चिन्मांडव्य इति विश्रुत:, धृतिमान् सर्वधर्मज्ञ: सत्ये तपसि च स्थित:। स आश्रमपदद्वारिवृक्षमूले महातपा:।' 'ऊर्ध्व बाहुर्महायोगी तस्थौ मौनव्रतान्वित:।' अंकलेश्वर में मांडव्येश्वर नामक प्राचीन शिवमंदिर है।

अंकाईतकाई=**अणकिटणकी**

अंकोटक (ज़िला बड़ौदा, गुजरात)

गुप्तकाल में अंकोटक की गणना लाट देश के मुख्य नगरों मे की जाती थी। खुदाई में अनेक प्राचीन जैन धातु-प्रतिमाएं यहां से प्राप्त हुई थीं जिनमें से कुछ का परिचय जरनल ऑव ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, जिल्द 1, पृ० 72-79 में दिया गया है। एक जिनाचार्य की प्रतिमा पर यह अभिलेख उत्कीर्ण है – 'ओं देव धर्मोऽयं निवृत्ति कुले जिनभद्र वाचनाचार्यस्य'। गुजरात के पुरातत्त्व के विद्वान् श्री उमाकांत प्रेमानंद शाह का कथन है कि ये जिनभद्र क्षमाश्रमण-विशेषावश्यक भाष्य के रचयिता ही हैं। वे इस प्रतिमा का निर्माणकाल, अभिलेख की लिपि के आधार पर, 550-600 ई० मानते हैं।

अंग (उत्तर बिहार)

अंग देश का सर्वप्रथम नामोल्लेख अथर्ववेद 5,22,14 में है—'गंधारिभ्यो मूजवद्भयोङ्गेभ्यो मगधेभ्य: प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तवमानं परिदद्मसि।' इस

अप्रशंसात्मक कथन से सूचित होता है कि अथर्ववेद के रचनाकाल (अथवा उत्तर-वैदिक काल) तक अंग, मगध की भांति ही, आर्य-सभ्यता के प्रसार के बाहर था जिसकी सीमा तब तक पंजाब से लेकर उत्तर प्रदेश तक ही थी। महाभारतकाल में अंग और मगध एक ही राज्य के दो भाग थे। शांति० 29, 35 ('अंगं बृहद्रथं चैव मृतं सृंजय शुश्रुम') में मगधराज जरासंध के पिता बृहद्रथ को ही अंग का शासक बताया गया है। शांति० 5, 6–7 ('प्रीत्या ददौ स कर्णाय मालिनीं नगरमथ, अंगेषु नरशार्दूल स राजासीत् सपत्नजित्। पालयामास चंपां च कर्णः परबलार्दनः, दुर्योधनस्यानुमते तवापि विदितं तथा') से स्पष्ट है कि जरासंध ने कर्ण को अंगस्थित मालिनी या चंपापुरी देकर वहां का राजा मान लिया था। तत्पश्चात् दुर्योधन ने कर्ण को अंगराज घोषित कर दिया था। वैदिक काल की स्थिति के प्रतिकूल, महाभारत के समय, अंग आर्य-सभ्यता के प्रभाव में पूर्णरूप से आ गया था और पंजाब का ही एक भाग—मद्र—इस समय आर्य-संस्कृति से बहिष्कृत समझा जाता था (दे० कर्ण-शल्य-संवाद, कर्ण०)। महाभारत के अनुसार अंगदेश की नींव राजा अंग ने डाली थी। संभवतः ऐतरेय ब्राह्मण 8, 22 में उल्लिखित अंग-वैरोचन ही अंगराज्य का संस्थापक था। जातक-कथाओं तथा बौद्धसाहित्य के अन्य ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि गौतमबुद्ध से पूर्व, अंग की गणना उत्तरभारत के षोडश जनपदों में थी। इस काल में अंग की राजधानी चंपानगरी थी। अंगनगर या चंपा का उल्लेख बुद्धचरित 27, 11 में भी है। पूर्वबुद्धकाल में अंग तथा मगध में राज्यसत्ता के लिए सदा शत्रुता रही। जैनसूत्र—उपासकदशा में अंग तथा उसके पड़ोसी देशों की मगध के साथ होने वाली शत्रुता का आभास मिलता है। प्रज्ञापणा-सूत्र में अन्य जनपदों के साथ अंग का भी उल्लेख है तथा अंग और बंग को आर्यजनों का महत्त्वपूर्ण स्थान बताया गया है। अपने ऐश्वर्यकाल में अंग के राजाओं का मगध पर भी अधिकार था जैसा कि विधुरपंडितजातक (कॉवेल 6, 133) के उस उल्लेख से प्रकट होता है जिसमें मगध की राजधानी राजगृह को अंगदेश का ही एक नगर बताया गया है। किंतु इस स्थिति का विपर्यय होने में अधिक समय न लगा और मगध के राजकुमार बिंबिसार ने अंगराज ब्रह्मदत्त को मारकर उसका राज्य मगध में मिला लिया। बिंबिसार अपने पिता की मृत्यु तक अंग का शासक भी रहा था। जैन-ग्रंथों में बिंबिसार के पुत्र कुणिक अजातशत्रु को अंग और चंपा का राजा बताया गया है। मौर्यकाल में अंग अवश्य ही मगध के महान् साम्राज्य के अंतर्गत था। कालिदास ने रघु० 6, 27 में अंगराज का उल्लेख इंदुमती-स्वयंवर के प्रसंग में मगध-नरेश के ठीक

पश्चात् किया है जिससे प्रतीत होता है कि अंग की प्रतिष्ठा पूर्वगुप्तकाल में मगध से कुछ ही कम रही होगी। रघु० 6, 27 में ही अंगराज्य के प्रशिक्षित हाथियों का मनोहर वर्णन है—'जगाद चैनामयमंगनाथः सुरांगनाप्रार्थित यौवनश्रीः विनीतनागः किलसूत्रकारैरेन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुंक्ते'। विष्णु० अंश 4, अध्याय 18 में अंगवंशीय राजाओं का उल्लेख है। कथासरित्सागर 44, 9 से सूचित होता है कि ग्यारहवीं शती ई० में अंगदेश का विस्तार समुद्रतट (बंगाल की खाड़ी) तक था क्योंकि अंग का एक नगर **विटंकपुर** समुद्र के किनारे ही बसा था।

अंगकोरथोम

प्राचीन कंबुज (कंबोडिया) का सबसे अधिक प्रसिद्ध नगर जहां बारहवीं शती ई० के बने अनेक विख्यात स्मारक हैं जिन्हें कंबोडिया के हिंदू-नरेशों ने बनवाया था। अंगथोम की अधिकांश महान् शिल्पकृतियों के निर्माण का श्रेय राजा जयवर्मन् सप्तम (राज्याभिषेक 1181 ई०) को दिया जाता है।

अंगकोरवाट

यह प्राचीन कंबुज (कंबोडिया) में स्थित संसार-प्रसिद्ध विशाल विष्णुमंदिर है। इसका निर्माण कंबुजनरेश सूर्यवर्मन् ने बारहवीं शती ई० के प्रथम चरण में करवाया था। सूर्यवर्मन् विष्णुभक्त था और उसने अपने गुरु दिवाकर पंडित की प्रेरणा से अनेक यज्ञ किए थे। वास्तुकला के आश्चर्य, इस देवालय के चारों ओर एक गहरी खाई है जिसकी लंबाई ढाई मील और चौड़ाई 650 फुट है। खाई पर पश्चिम की ओर एक पत्थर का पुल है। मंदिर के पश्चिमी द्वार के समीप से पहली वीथि तक बना हुआ मार्ग 1560 फुट लंबा है और भूमितल से सात फुट ऊंचा। पहली वीथि पूर्व से पश्चिम 800 फुट और उत्तर से दक्षिण 675 फुट लंबी है। मंदिर के मध्यवर्ती शिखर की ऊंचाई भूमितल से 210 फुट से भी अधिक है। अंगकोरवाट की भव्यता तो उल्लेखनीय है ही, इसके शिल्प की सूक्ष्म विदग्धता, नक्शे की सममिति, यथार्थ अनुपात तथा सुंदर अलंकृत मूर्तिकारी भी उत्कृष्ट कला की दृष्टि से कम प्रशंसनीय नहीं है।

अंगदीया

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार कारुपथ की राजधानी—'अंगदीयापुरी रम्या-प्यंगदस्य निवेशिता, रमणीया सुगुप्ता च रामेणाक्लिष्टकर्मणा' उत्तर० 102, 8। यह नगरी लक्ष्मण के पुत्र अंगद के नाम पर कारुपथ नामक देश में बसाई गई थी। आनंदराम बरुआ के मत में वर्तमान शाहाबाद (उ० प्र०) अंगदीय-नगरी के स्थान पर बसा है।

अंगनगर

संभवतः चंपा। बुद्धचरित 21,11 के अनुसार बुद्ध ने अंगनगर में पूर्णभद्र यक्ष तथा कई नागों को प्रव्रजित किया था।

अंगारस्तूप दे० **पिप्पलिवाहन**

अंजनपर्वत

वराहपुराण 80 में उल्लिखित संभवतः पंजाब की सुलेमान-गिरिश्रृंखला।

अंजनवन

साकेत के निकट एक घना वन जिसमें हरिणों का निवास था। यहां गौतमबुद्ध और कौंडलिय नामक परिव्राजक में दार्शनिक वार्ता हुई थी (संयुत्त० 1,54,5,73)।

अंजनी (म० प्र०)

नर्मदा की सहायक नदी। नर्मदा और अंजनी का संगम गौरीतीर्थ नामक स्थान के निकट हुआ है जहां पिपरिया होकर मार्ग जाता है।

अंडोल (ज़िला मेदक, आं० प्र०)

यह स्थान प्राचीन मंदिरों के अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

अंतर्गिरि

हिमालय पर्वत-श्रेणी का सर्वोच्च भाग जिसमें गौरीशंकर, नंदादेवी, केदारनाथ, बदरीनाथ, त्रिशूल, धवलगिरि आदि चोटियां अवस्थित हैं जो समुद्रतल से 20 सहस्र फुट से अधिक ऊंची हैं। महा० सभा० 27,3 में अंतर्गिरि का उल्लेख इस प्रकार है—'अंतर्गिरि च कौंतेयस्तथैव च बहिर्गिरिम् तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभः'। इस प्रदेश को अर्जुन ने दिग्विजययात्रा के प्रसंग में जीता था। पाली साहित्य में अंतर्गिरि को महाहिमवंत भी कहा गया है। अंग्रेज़ी में इसी को 'दि ग्रेट सेंट्रल हिमालया' कहा जाता है। जैन सूत्र-ग्रंथ जंबुद्वीप-प्रज्ञप्ति में भी इसका महाहिमवंत नाम से उल्लेख है।

अंतर्वेदी (उ० प्र०)

गंगा-यमुना के बीच का प्रदेश अथवा दोआबा। अंतर्वेदी नाम प्राचीन संस्कृत अभिलेखों में प्राप्त है। स्कंदगुप्त के इंदौर से प्राप्त अभिलेख में अंतर्वेदि-विषय के शासक सर्वनाग का उल्लेख है।

अंताखी

सिरिया या शाम देश में स्थित ऐंटिओकस नामक स्थान का प्राचीन संस्कृत रूप जिसका उल्लेख महाभारत में है—'अंताखी चैव रोमां च यवनानां पुरं तथा,

द्‌तैरेव वशंचक्रे करं चैनानदापयत्' सभा० 31,72; अर्थात् सहदेव ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में अंताखी, रोम और यवनपुर के शासकों को केवल दूत भेज कर ही वश में कर लिया और उन पर कर लगाया (टि० इस श्लोक का पाठांतर—'अटवीं च पुरीं रम्यां यवनानां पुरंतथा' है)।

अंतूर (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

यहां एक पहाड़ी पर निज़ामशाहीकाल का एक दुर्ग अवस्थित है। इसके भीतर मसजिद पर और स्तंभों पर 1591,1598,1616 और 1625 ई० के फ़ारसी अभिलेख उत्कीर्ण हैं।

अंध

श्रीमद्‌भागवत में उल्लिखित एक नदी…'नर्मदा चर्मण्वती सिधुरधशोणश्च' 5,19,18। सिधु, यमुना की सहायक सिंध है और शोण वर्तमान सोन। इन्हीं के समीप बहने वाली किसी नदी का नाम अंध हो सकता है। संभव है, यह वर्तमान केन या शुक्तिमती ही का नाम हो। इसका संबंध अंधक से भी हो सकता है जो श्री डे के अनुसार भागलपुर के निकट गंगा में गिरने वाली चंदन नदी है।

अंधउ (कच्छ, गुजरात)

इस स्थान से प्राप्त एक अभिलेख में शकनरेश चष्टन और क्षत्रप रुद्रदामन् का उल्लेख है। द्वितीय शती ई० में इन नरेशों का राज्य महाराष्ट्र तथा गुजरात के अनेक भागों में था। रुद्रदामन् का एक प्रसिद्ध अभिलेख **गिरनार** से प्राप्त हुआ है।

अंधक

(1) महाभारतकालीन गणराज्य जिसकी स्थिति यमुनातट पर थी। यह मथुरा के परवर्ती प्रदेश में सम्मिलित था। श्रीकृष्ण का जन्म इसी प्रदेश के निवासी अंधकों के वंश में हुआ था। महाभारत अनुशासन-पर्व के अंतर्गत तीर्थ-वर्णन में अंधक नामक तीर्थ का नैमिषारण्य के साथ उल्लेख है—'मतंगवाप्यां य: स्नानादेकरात्रेण सिद्धयति, विगाहति ह्यनालंबमंधकं वै सनातनम्'। शांति० 81, 29 में अंधकों एवं वृष्णियों को कृष्ण से संबंधित बताया गया है—'यादवा: कुकुरा भोजा: सर्वे चांधकवृष्णय:, त्वय्यासक्ता: महाबाहो लोका लोकेश्वराश्च ये।' कृष्ण को इस प्रसंग में संघमुख्य भी कहा गया है—'भेदाद् विनाश: संघानां संघ मुख्योसिकेशव (शांति० 81, 25) जिससे सूचित होता है कि अंधक तथा वृष्णि गणराज्य थे।

(2) दे० **अंध**

अंधकारक

विष्णुपुराण 2,4,48 के अनुसार क्रौंचद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस

द्वीप के राजा द्युतिमान् के पुत्र के नाम पर है। क्रौंच-द्वीप के एक पर्वत का नाम भी अंधकारक कहा गया है—'क्रौंचश्चवामनश्चैव तृतीयश्चांधकारक:'—विष्णु॰ 2,4,50।

अंधपुर

सेरीवनिजजातक में, पूर्वबुद्धकालीन इस नगर की स्थिति तैलवाह नदी के तट पर बताई गई है। सेरी नगर से व्यापारी लोग अंधपुर आते-जाते रहते थे जिससे स्पष्ट है कि यह उस समय का प्रमुख व्यापारिक स्थान रहा होगा। रायचौधरी का मत है कि अंधपुर वर्तमान बेजवाड़ा है और तैलवाह, तुंगभद्रा-कृष्णा नदी ही का प्राचीन नाम है (दे॰ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, चतुर्थ संस्करण, पृ॰ 78), किंतु भंडारकर के मत में तैलवाह-नदी आंध्र की तैल या तैलगिरि नदी है और अंधपुर इसी के तट पर रहा होगा।

अंधवन

श्रावस्ती के निकट एक वन जिसका बौद्धसाहित्य में उल्लेख है (संयुत्त॰ 5,302)।

अंबट्ठकोल (लंका)

महावंश 28,20 में अंबट्ठकोलगुहा नामक बौद्ध विहार का उल्लेख है जिसका अभिज्ञान अनुराधपुर से 55 मील दूर रिदिविहार से किया गया है। यहां चांदी की खानें थीं (सिंहाली 'रिदि'=चांदी)।

अंबतीर्थ (लंका)

महावंश 25,7 में उल्लिखित महावैलिगंगा का एक घाट।

अंबर दे॰ **आमेर**

अंबरनाथ (महाराष्ट्र)

बंबई नगर से 38 मील पर अंबरनाथ स्टेशन के निकट है। यहां शिलाहाट-नरेश मांबणि द्वारा निर्मित अंबरनाथ शिव का मंदिर है जिसे कोंकण का सर्व-प्राचीन देवालय माना जाता है। इसकी वास्तुकला उच्चकोटि की है।

अंबरीषपुर दे॰ **आमेर**

अंबलट्ठिका

राजगृह-नालंदा मार्ग पर स्थित उद्यान। दे॰ अंबवन।

अंबलौद दे॰ **भुमरा**

अंबवन

राजगृह के निकट स्थित एक आम्रोद्यान। दीघनिकाय, 1,47,49 के अनुसार गौतमबुद्ध यहां कुछ समय के लिए ठहरे थे। यह उद्यान राजवैद्य जीवक का था।

अंबष्ठ

पंजाब का प्राचीन जनपद। महाभारत में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'वशातयः शाल्वकाः केकयाश्च तथा अंबष्ठा ये त्रिगर्ताश्च मुख्याः' उद्योग० 30, 23। विष्णुपुराण में भी अंबष्ठों का मद्र और आराम-जनपदवासियों के साथ वर्णन है—'माद्रारामास्तथाम्बष्ठा पारसीकादयस्तथा' 2,3,17। बार्हस्पत्य अर्थ-शास्त्र (टॉमस, पृ० 21) में अंबष्ठों के राष्ट्र का वर्णन कश्मीर, हूणदेश और सिंध के साथ है। अलक्षेंद्र के आक्रमण के समय अंबष्ठनिवासियों के पास शक्ति-शाली सेना थी। टॉलमी ने इनको अंबुटाई (Ambutai) कहा है।

अंबाजी (राजस्थान)

आबूरोड स्टेशन से 12 मील दूर राजस्थान का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां सरस्वती नदी, कोटेश्वर महादेव और अंबाजी का मन्दिर है। स्थानीय किंवदंती है कि बालकृष्ण का मुंडन संस्कार यहीं हुआ था। एक अन्य जनश्रुति के आधार पर यह भी कहा जाता है कि रुक्मिणीहरण इसी अंबाजी के मन्दिर से हुआ था। यह पिछली जनश्रुति अवश्य ही सारहीन है क्योंकि महाभारत के अनुसार रुक्मिणी **विदर्भ** की राजकुमारी थी।

अंबाजोगई (ज़िला भीड़, महाराष्ट्र)

यह नगर जीवंती नदी के तट पर बसा है। नदी के दूसरे तट पर मोमिनाबाद नामक कस्बा है। अंबा के पंचम-जैनों के पूर्वज चालुक्यों के सामंत थे। नगर में एक प्राचीन मंदिर है जिसका निर्माण देवगिरि-नरेश सिंहन के शासनकाल में हुआ था। इस पर 1240 ई० का एक अभिलेख है। नगर के आसपास हिंदू तथा जैन मंदिरों के खण्डहर हैं। जीवंती के तट पर ही अंबाजोगई का प्रसिद्ध मंदिर है जो चट्टान में से काट कर बनाया गया है। इसका मंडप 90 फुट × 45 फुट है। यह मंदिर स्तंभों की चार पंक्तियों पर आधारित है। मराठी कवि मुकुंदराम की समाधि भी यहां स्थित है। दे० **भीड़**।

अंबिकानगर दे० **अमरोल**

अंबु (ज़िला शिमोगा, मैसूर)

शरावती-नदी इस स्थान से उद्भूत हुई है। किंवदंती है कि यहां श्रीरामचन्द्र के बाण मारने से शरावती प्रकट हुई थी। अंबु की तीर्थ के रूप में मान्यता है।

अंभा

विष्णुपुराण 2,8,45 में उल्लिखित कुशद्वीप की एक नदी—'विद्युदंभा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः'।

अंशुधान

वाल्मीकि-रामायण 2,71,9 के अनुसार, भरत ने केकय-देश से अयोध्या आते समय, इस स्थान के पास, गंगा को दुस्तर पाया था और इस कारण उसे **प्राग्वट** के निकट पार किया था—'भागीरथीं दुष्प्रतरां सोंऽशुधाने महानदीम्' । अंशुधान गंगा के पश्चिमी तट पर कोई स्थान था जिसका अभिज्ञान अनिश्चित है ।

अंशुपा (उड़ीसा)

वर्तमान सुवर्णपुर ग्राम के निकट एक झील है जिसके तट पर रह कर उड़ीसा के प्रसिद्ध केसरीवंश के अंतिम नरेश सुवर्णकेसरी ने (12 वीं शती का मध्यकाल) अपने आखरी दिन बिताए थे (हिस्ट्री ऑव उड़ीसा, पृ० 67) ।

अंशुमती

ऋग्वेद 8,96, 13–14 में वर्णित एक नदी—'अव द्रप्सो अंशुमती मतिष्ठ-दियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः आवतमिन्द्रः शच्याधमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त । द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः । नभो न कृष्णम वतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजो ।' भावार्थ यह है कि अंशुमती के तट पर इंद्र ने किसी कृष्ण नामक व्यक्ति को दस सहस्र योद्धाओं के साथ लड़ाई में हराया था । डा० भंडारकर के मत में अंशुमती यहां यमुना को ही कहा गया है और कृष्ण महाभारत के कृष्ण ही हैं । संभव है, वैष्णव-धर्म के उत्कर्षकाल में इसी वैदिक कथा के विपर्यय-रूप में श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण तथा अन्यत्र वर्णित वह कथा प्रचलित हुई जिसके अनुसार कृष्ण ने गोवर्धन-पर्वत धारण करके इन्द्र को पराजित किया था ।

अकतेश्वर

नर्मदा के उत्तर तट पर अवस्थित है । कहा जाता है कि यह वही स्थान है जहां दक्षिण दिशा की ओर जाते हुए महर्षि अगस्त्य ने, विंध्याचल को बढ़ने से रोक दिया था । महाभारत वन० 104 तथा अनेक पुराणों में इस कथा का उल्लेख है । महर्षि अगस्त्य के नाम से एक प्राचीन शिवमंदिर भी यहां स्थित है (दे० **विंध्य**) ।

अकेश दे० **ओसियां**

अकोना (जिला हमीरपुर, उ० प्र०)

यह स्थान मध्ययुगीन, विशेषतः चंदेलकालीन, इमारतों से अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है ।

अक्रमा

प्लक्षद्वीप की सात मुख्य नदियों में है—'अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा

त्रिदिवाक्लमा । अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगा:', विष्णु० 2.4.11. सम्भवत: यह नदी काल्पनिक है ।

अकतग्राम (ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

1953 में इस स्थान से तीसरी शती ई० के गोद्य-वंशी राजा शीलवर्मन् द्वारा किए गए अश्वमेधयज्ञ के चिह्न प्राप्त हुए थे । शीलवर्मन् ऐतिहासिक काल के उन थोड़े से राजाओं में से हैं जिन्हें महान् अश्वमेधयज्ञ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । प्रथम शती ई० पू० में इतिहास-प्रसिद्ध शुंगनरेश पुष्यमित्र ने भी अश्वमेधयज्ञ किया था । यह वह समय था जब प्राचीन वैदिक धर्म बौद्ध-धर्म के सर्वग्रास से धीरे-धीरे मुक्त हो रहा था । संभव है शीलवर्मन् ने भी प्राचीन परंपरा का निर्वाह करते हुए ही इस स्थान पर अश्वमेधयज्ञ का अनुष्ठान किया था । अकतग्राम से शीलवर्मन् के संस्कृत अभिलेख के अतिरिक्त अश्वमेध के यूपादि के भी अवशेष प्राप्त हुए हैं ।

अगस्त्यतीर्थ

'अगस्त्यतीर्थ सौभद्रं पौलोमं च सुपावनम्, कारंधमं प्रसन्नं च हयमेधफलं च तत' । महा० 1,215,3 । अगस्त्यतीर्थ दक्षिण-समुद्र तट पर स्थित था—'तत: समुद्रे तीर्थानि दक्षिणे भरतर्षभ' – महा० 1,215,1 । इसकी गणना दक्षिण-सागर के पंचतीर्थों (अगस्त्य, सौभद्र, पौलोम, कारंधम और भारद्वाज) में की जाती थी —'दक्षिणे सागरानूपे पंचतीर्थानि सन्ति वै'— महा० 1,216,17 । महाभारत के अनुसार अर्जुन ने इस तीर्थ की यात्रा की थी । वन० 118,4 में अगस्त्यतीर्थ का नारीतीर्थ के साथ द्रविड देश में वर्णन है –'ततो विपाप्मा द्रविडेषु राजन् समुद्रमासाद्य च लोकपुण्यं, अगस्त्यतीर्थं च महापवित्रं नारीतीर्थान्यत्र वीरो ददर्श ।' अगस्त्यतीर्थ को अगस्त्येश्वर भी कहते थे । **अगस्त्याश्रम** इससे भिन्न था और इसकी स्थिति गया (बिहार) के पूर्व में थी ।

अगस्त्यवट

महाभारत आदि० 214,2 में अगस्त्यवट का उल्लेख इस प्रकार है—'अगस्त्यवटमासाद्य वशिष्ठस्य च पर्वतं, भृगुतुंगे च कौंतेय: कृतवाञ्छौचमात्मन:' । अपने द्वादशवर्षीय वनवासकाल में अर्जुन ने इस तीर्थ की यात्रा, गंगा-द्वार—हरद्वार से आगे चलकर की थी । यह स्थान हिमालयपर्वत पर था—'प्रययौ हिमवत्पार्श्वं ततो वज्रधरात्मज: ।' आदि० 214,1 ।

अगस्त्याश्रम

(1) तत: सम्प्रस्थितो राजा कौंतेयो भूरिदक्षिण: अगस्त्याश्रममासाद्य दुर्जयायामुवास ह— महा० वन० 96,1 । पांडव अपनी तीर्थयात्रा के प्रसंग में गया

(बिहार) से आगे चलकर अगस्त्याश्रम पहुंचे थे। यहीं मणिमती नगरी की स्थिति थी। शायद यह राजगृह के निकट स्थित था। **अगस्त्यतीर्थ** जो दक्षिण समुद्रतट पर स्थित था इससे भिन्न था। जान पड़ता है कि प्राचीनकाल में अगस्त्य के आश्रमों की परंपरा, बिहार से नासिक एवं दक्षिण समुद्रतट तक विस्तृत थी। पौराणिक साहित्य के अनुसार अगस्त्य-ऋषि ने भारत की आर्य-सभ्यता का सुदूर दक्षिण तथा समुद्रपार के देशों तक प्रचार किया था। दे० **दुर्जया**।

अगस्त्येश्वर दे० **अगस्त्यतीर्थ**

अग्निपुर = महिष्मती

अग्निमाली

शूर्पारक-जातक में वर्णित एक सागर—'यथा अग्गीव सुरियो व समुद्दोपति दिस्सति, सुप्पारकं तं पुच्छाम समुद्दो कतमो अयंति। भरुकच्छापयातानं वणिजानं धनेसिनं नावाय विप्पनट्ठाय अग्गिमालीति वुच्चतीति।' अर्थात् जिस तरह अग्नि या सूर्य दिखाई देता है वैसा ही यह समुद्र है; शूर्पारक, हम तुमसे पूछते हैं कि यह कौन-सा समुद्र है ? भरुकच्छ से जहाज़ पर निकले हुए धनार्थी वणिकों को विदित हो कि यह अग्निमाली नामक समुद्र है। इस प्रसंग के वर्णन से यह भी सूचित होता है कि उस समय के नाविकों के विचार में इस समुद्र से स्वर्ण की उत्पत्ति होती थी। अग्निमाली समुद्र कौन-सा था, यह कहना कठिन है। डा० मोतीचंद के अनुसार यह लालसागर या रेड सी का ही नाम है किंतु वास्तव में शूर्पारक-जातक का यह प्रसंग जिसमें क्षुरमाली, नलमाली, दधिमाल आदि अन्य समुद्रों के इसी प्रकार के वर्णन हैं, बहुत कुछ काल्पनिक तथा पूर्व-बुद्धकाल में देशदेशांतर घूमने वाले नाविकों की रोमांस-कथाओं पर आधारित प्रतीत होता है। भरुकच्छ या भडौंच से चल कर नाविक लोग चार मास तक समुद्र पर घूमने के पश्चात् इन समुद्रों तक पहुंचे थे। (दे० **क्षुरमाली, बड़वा-मुख, दधिमाल, कुशमाल, नलमाली**)।

अग्रवन दे० **आगरा**

अग्राहा (ज़िला हिसार, हरियाणा)

वर्तमान अग्राहा या अग्रोहा प्राचीन अग्रोदक या अग्रोतक है। स्थानीय किंवदंती के अनुसार महाभारतकाल में यहां राजा उग्रसेन की राजधानी थी और स्थान का नाम उग्रसेन का ही अपभ्रंश है। यवन-सम्राट अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पू०) यहां आग्रेय गणराज्य था। चीनी यात्री चेमाङ् ने भी अग्रोदक का उल्लेख किया है। अग्राहा हिसार के निकट है।

अग्रोदक दे० **अग्राहा**

अग्रोहा दे० **अग्राहा**

अचलगढ़ (राजस्थान)

आबू के निकट स्थित है। मालवा के परमार राजपूत मूलरूप से अचलगढ़ और चंद्रावती के रहने वाले थे। 810 ई० के लगभग उपेंद्र अथवा कृष्णराज परमार ने इस स्थान को छोड़ कर मालवा में पहली बार अपनी राजधानी स्थापित की थी। इससे पहले बहुत समय तक अचलगढ़ में परमारों का निवासस्थान रहा था।

अचलपुर (बरार, महाराष्ट्र)

मध्यकाल में विशेषतः 9वीं शती से 12वीं शती ई० तक अचलपुर जैन-संस्कृति के केन्द्र के रूप में विख्यात था। जैन विद्वान धनपाल ने अचलपुर में ही अपना ग्रन्थ 'धम्म परिक्खा' समाप्त किया था। आचार्य हेमचंद्रसूरि ने भी अपने व्याकरण में (2,118) अचलपुर का उल्लेख किया है—'अचलपुरे चकारलकारयोर्व्यत्ययो भवति' अर्थात् अचलपुर के निवासियों के उच्चारण में च और ल का व्यत्यय (उलटफेर) हो जाता है। आचार्य जयसिंहसूरि ने 9वीं शती ई० में अपनी धर्मोपदेशमाला में अयलपुर या अचलपुर के अरिकेसरी नामक जैन नरेश का उल्लेख किया है—'अयलपुरे दिगंबर भत्तो अरिकेसरी राजा'। अचलपुर से 7वीं शती ई० का एक ताम्रपट्ट भी प्राप्त हुआ है।

अचित=**अजंता**

अचिरवती=**अचिरावती**

अचिरावती=**अजिरावती**

बौद्ध साहित्य में विख्यात नदी है। इस नदी के तट पर बौद्धकाल की प्रसिद्ध नगरी श्रावस्ती बसी हुई थी। इसका अभिज्ञान छोटी राप्ती से किया गया है जो गंडक में मिलती है। संगमस्थान नेपाल में स्थित है (दे० विंसेंट स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 167) बौद्ध-साहित्य में नदी का नाम अचिरवती भी मिलता है। शायद अतितवती भी अचिरवती का ही अपभ्रष्ट रूप है। जैन-ग्रंथ कल्पसूत्र (पृ० 12) में इस नदी को इरावइ या इरावती कहा गया है। श्री बी० सी० लॉ के अनुसार यह सरयू की सहायक राप्ती नदी है (दे० हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफ़ी ऑव एंशेंट इंडिया, पृ०61)।

अच्छोद-सरोवर

बाणभट्ट-रचित कादंबरी तथा बिल्हण के विक्रमांकचरित 8,53 में उल्लिखित इस सरोवर का अभिज्ञान, कश्मीर में मार्तंड-मंदिर से 6 मील दूर

अच्छावट नामक झील से किया गया है (दे० नं० ला० डे)।

अच्युतस्थल

महाभारत में उल्लिखित एक स्थान जो संभवतः यमुना नदी के तट पर स्थित था। महा० वन० 129, 9 से सूचित होता है कि महाभारत काल में प्रचलित प्राचीन परंपरा में इस स्थान को अपवित्र समझा जाता था—'युगंधरे दधिप्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले' आदि। महाभारत के टीकाकारों ने अच्युतस्थल में वर्णसंकर जातियों का निवास बताया है।

अजंता (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

जलगांव स्टेशन से 37 मील और औरंगाबाद से 55 मील दूर फ़रदापुर ग्राम के निकट ये संसार-प्रसिद्ध गुफाएं स्थित हैं जो अपने भित्तिचित्रों तथा मूर्तिकारी के लिए बेजोड़ समझी जाती हैं। अजंता नाम का एक ग्राम यहां से 2 मील पर बसा है—इसी के नाम पर ये गुफाएं भी अजंता की गुफाएं कहलाती हैं। बाघोरा नदी की उपत्यका में अवस्थित ऊंची शैलमाला के बीच, एक विस्तृत पहाड़ी के पार्श्व में, 29 गुफाएं काटकर बनाई गई हैं। इनका समय पहली शती ई० पू० से 7 वीं शती ई० तक है। ये गुफाएं शिल्पी बौद्ध भिक्षुओं ने बनाई थीं। इनमें से कुछ तो चैत्य हैं अर्थात् पूजा के निमित्त इनमें चैत्य की आकृति के छोटे-छोटे स्तूप बने हुए हैं और कुछ विहार हैं। ये दोनों प्रकार की गुफ़ाएं और इनमें का सारा मूर्ति-शिल्प एक ही शैल में कटा हुआ है किंतु क्या मजाल कि कहीं पर एक छैनी भी अधिक लगी हो। गुफा सं० 1 जो 120 फुट तक पहाड़ी के अंदर कटी हुई है वास्तुकला कौशल का अद्भुत नमूना है। प्राचीनकाल में प्रायः सभी गुफ़ाओं में भित्ति चित्रकारी थी किंतु कालप्रवाह में अब मुख्यतः केवल सं० 1,2,16,17 में ही चित्रों के अवशेष रह गए हैं। किंतु इन्हीं के आधार पर यहां की कला की उत्कृष्टता की रूपरेखा भली भांति जानी जा सकती है। यद्यपि अजंता की चित्रकारी मूलतः धार्मिक है और सभी चित्रों के विषय किसी न किसी रूप में गौतमबुद्ध या बोधिसत्वों की जीवन-कथाओं से संबंधित हैं फिर भी इन कथाओं की अभिव्यंजना में चित्रकारों ने जीवन और समाज के सभी अंगों का इस बारीकी, सहृदयता और सहानुभूति से चित्रण किया है कि ये चित्र भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उत्कर्षकाल की एक अनोखी परंपरा हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। केवल यही नहीं, विस्तृत दृष्टिकोण से परखने पर इन चित्रों के पीछे कलाकारों के हृदय में चराचर जगत् के प्रति जो सौहार्द्र की भावना छिपी हुई है उसका भी दर्शन सहज रूप में ही हो जाता है। यहां अजंता के केवल कुछ ही चित्रों का निदर्शन किया जा सकता है। गुफ़ा सं० 1 में दालान की लंबी भित्ति पर

अजंता-गुफ़ा सं० 17
(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

मारविजय का प्रायः 12 फुट लंबा और 8 फुट चौड़ा चित्र है। इसमें कामदेव के सैनिकों के रूप में मानो मानव-हृदय की दुर्बलताओं के ही मूर्त चित्र उपस्थित किए गए हैं। इनमें विकट-रूप पुरुष तथा मदविह्वला कामिनियों के जीवंत चित्रों के समक्ष आत्मनिरत बुद्ध की सौम्य मुखाकृति उत्कृष्ट रूप से उज्ज्वल एवं प्रभावशाली बन पड़ी है।

गुफ़ा सं० 16 में बुद्ध के गृहत्याग का मार्मिक चित्र है। मोहिनी-निद्रा में यशोधरा, शिशु राहुल और परिचारिकाएं सोई हुई हैं। उन पर अंतिम दृष्टि डालते हुए गौतम के मुख पर दृढ़ त्याग और साथ ही सौम्यता से भरपूर जो छाप है उसने इस चित्र को अमर बना दिया है। इसी गुफा में एक अन्य स्थान पर एक म्रियमाण राजकुमारी का दृश्य है जो शायद गौतम के भ्राता परिव्रजितनंद की नवविवाहिता पत्नी सुंदरी की दशा का चित्रण है। चित्रकला के अनेक मर्मज्ञों ने इस चित्र की गणना संसार के उत्कृष्टतम चित्रों में की है।

गुफा सं० 17 में भिक्षुक बुद्ध के मानवाकार चित्र के आगे अपने एकमात्र पुत्र को तथागत के चरणों में भिक्षा के रूप में डालती हुई किसी रमणी—शायद यशोधरा ही—का चित्र है। इस चित्र में निहित भावना का मूर्तस्वरूप इतनी मार्मिकता से दर्शकों के सामने प्रस्फुटित होता है कि वह दो सहस्र वर्षों के व्यवधान को क्षणमात्र में चीर कर इस चित्र के कलाकार की महान् आत्मा से मानो साक्षात्कार कर लेता है और उसकी कला के साथ अपने प्राणों की एकरसता का अनुभव करने लगता है। इस गुफा की अन्य उल्लेखनीय कलाकृतियों मे वेस्संतरजातक और छदंतजातक की कथाओं पर बने हुए जीवंत चित्र हैं। अजंता में तत्कालीन (विशेष कर गुप्तकालीन) भारत के निवासियों, स्त्री व पुरुषों के रहन-सहन, घर-मकान, वेश-भूषा, अलंकरण, मनोविनोद, तथा दैनिक जीवन के साधारण कृत्यों की मनोरम एवं सच्ची तस्वीरें हैं। वस्त्र, आभूषण, केश-प्रसाधन, गृहालंकरण आदि के इतने प्रकार चित्रित हैं कि उन्हें देखकर उस काल के भरे-पूरे भारतीय जीवन की झांकी आंखों के सामने फिर जाती है। गुप्तकालीन अजंता-चित्रों और महाकवि कालिदास के अनेक काव्यवर्णनों मे जो तारतम्य और भावैक्य है वह दोनों के अध्ययन से तुरंत ही प्रतिभासित हो जाता है।

अजंता मे मूर्तिकला के भी उत्कृष्ट उदाहरण मिलते है। शैल-कृत्त होने के कारण गुफाओं में जो अद्भुत प्रकार की इंजीनियरी और वास्तुकला विद्यमान है वह भी किसी से छिपी नहीं है। अजंता जिस रमणीक और एकांत गिरिप्रांतर में स्थित है उसका रहस्यात्मक प्रभाव भी दर्शक पर पड़े बिना नहीं रहता।

कहा जाता है कि चित्रकारों ने जिन रंगों का अपने चित्रों में प्रयोग किया है वे उन्होंने स्थानीय द्रव्यों से ही तैयार किए थे—जैसे लाल रंग उन्होंने यहीं पहाड़ी पर मिलने वाले लाल रंग के पत्थर और नारंगी रंग इस घाटी में बहुतायत से होने वाले पारिजात के पुष्प-वृंतों से बनाया था। रंगों के भरने में तथा आकृतियों की भाव-भंगिमा प्रदर्शित करने में जिस सूक्ष्म प्राविधिक कुशलता का प्रयोग किया गया है वह सचमुच ही अनिर्वचनीय है। भौंहों की सीधी, वक्र, ऊंची-नीची रेखाएं, मुख की विविध भंगिमाएं और हाथ की अंगुलियों की अनगिनत मुद्राएं, अजंता की चित्रकारी की एक विशिष्ट और सजीव शैली की अभिव्यक्ति के अपरिहार्य साधन हैं। और सर्वोपरि, अजंता के चित्रों में भारतीय नारी का जो सौम्य, ललित एवं पुष्पदल के समान कोमल तथा साथ ही प्रेम और त्याग एवं सांस्कृतिक जीवन की भावनाओं और आदर्शों से अनुप्राणित रूप मिलता है वह हमारी प्राचीन कला-परंपरा की अक्षय निधि है। अजंता की गुफाओं का हमारे प्राचीन साहित्य में निर्देश नहीं मिलता। शायद चीनी यात्री युवानच्वांग ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान (615-630 ई०) इन गुहामंदिरों को देखा था। तब से प्राय: 1200 वर्षों तक ये गुफाएं अज्ञात रूप से पहाड़ियों और घने जंगलों में छिपी रहीं। 1819 ई० में मद्रास सेना के कुछ यूरोपीय सैनिकों ने इनकी अकस्मात् ही खोज की थी। 1824 ई० में जनरल सर जेम्स अलेग्जेंडर ने रायल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में पहली बार इनका विवरण छपवा कर इन्हें सभ्य संसार के सामने प्रकट किया था।

अजकूला

वाल्मीकि-रामायण (अयोध्याकांड) में उल्लिखित नदी जिसका अभिज्ञान स्यालकोट (पाकिस्तान) के पास बहने वाली आजी नदी से किया गया है।

अजमती = अजय

अजमेर (राजस्थान)

ऐतिहासिक परंपराओं से ज्ञात होता है कि राजा अजयदेव चौहान ने 1100 ई० में अजमेर की स्थापना की थी। संभव है कि पुष्कर अथवा अना-सागर झील के निकट होने से अजयदेव ने अपनी राजधानी का नाम अजयमेर (मेर या मीर—झील, जैसे कश्यपमीर = काश्मीर) रखा हो। उन्होंने तारागढ़ की पहाड़ी पर एक किला गढ़-बिटली नाम से बनवाया था जिसे कर्नल टाड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ में राजपूताने की कुंजी कहा है। अजमेर में, 1153 में प्रथम चौहान-नरेश बीसलदेव ने एक मंदिर बनवाया था जिसे 1192 ई० में मुहम्मद ग़ौरी ने नष्ट करके उसके स्थान पर अढ़ाई दिन का झोंपड़ा नामक मसजिद

बनवाई थी (कुछ विद्वानों का मत है कि इसका निर्माता कुतुबुद्दीन एबक था। कहावत है कि यह इमारत अढ़ाई दिन में बनकर तैयार हुई थी किंतु ऐतिहासिकों का मत है कि इस नाम के पड़ने का कारण इस स्थान पर मराठाकाल में होने वाला अढ़ाई दिन का मेला है। इस इमारत की कारीगरी विशेषकर पत्थर की नक़्क़ाशी प्रशंसनीय है) इससे पहले सोमनाथ जाते समय (1124 ई०) महमूद गज़नवी अजमेर होकर गया था। मुहम्मद ग़ौरी ने जब 1192 ई० में भारत पर आक्रमण किया तो उस समय अजमेर पृथ्वीराज के राज्य का एक बड़ा नगर था। पृथ्वीराज की पराजय के पश्चात् दिल्ली पर मुसलमानों का अधिकार होने के साथ अजमेर पर भी उनका कब्ज़ा हो गया; और फिर दिल्ली के भाग्य के साथ-साथ अजमेर के भाग्य का भी निपटारा होता रहा।

मुगलसम्राट् अकबर को अजमेर से बहुत प्रेम था क्योंकि उसे मुईनउद्दीन चिश्ती की दरगाह की यात्रा में बहुत श्रद्धा थी। एक बार वह आगरे से पैदल ही चलकर दरगाह की ज़ियारत को आया था। मुईनउद्दीन चिश्ती 12वीं शती ई० में ईरान से भारत आए थे। अकबर और जहांगीर ने इस दरगाह के पास ही मसजिदें बनवाई थीं। शाहजहां ने अजमेर को अपने अस्थायी निवास-स्थान के लिए चुना था। निकटवर्ती तारागढ़ की पहाड़ी पर भी उसने एक दुर्ग-प्रासाद का निर्माण करवाया था जिसे बिशप हेबर ने भारत का जिब्राल्टर कहा है। यह निश्चित है कि राजपूतकाल में अजमेर को अपनी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण राजस्थान का नाका समझा जाता था।

अजमेर के पास ही अनासागर झील है जिसकी सुंदर पर्वतीय दृश्यावली से आकृष्ट होकर शाहजहां ने यहां संगमर्मर के महल बनवाए थे। यह झील अजमेर-पुष्कर मार्ग पर है।

अजमेर में, चौहान राजाओं के समय में संस्कृत साहित्य की भी अच्छी प्रगति हुई थी। पृथ्वीराज के पितृव्य विग्रहराज चतुर्थ के समय के संस्कृत तथा प्राकृत में लिखित दो नाटक, ललित-विग्रहराज नाटक और हरकली नाटक छः काले संगमर्मर के पटलों पर उत्कीर्ण प्राप्त हुए हैं। ये पत्थर अजमेर की मुख्य मसजिद में लगे हुए थे। मूलरूप से ये किसी प्राचीन मंदिर में जड़े गए होंगे।

अजय (प० बंगाल)

गीतगोविंद के विश्रुत कवि जयदेव के निवास-स्थान केंदुबिल्व या वर्तमान केंदुली के निकट बहने वाली नदी।

अजयगढ़ (म० प्र०)

बुंदेलखंड की एक प्राचीन रियासत। कहा जाता है इस नगर को दशरथ

के पिता अज ने बसाया था। अजयगढ़ का प्राचीन नाम अजगढ़ ही है। नगर केन नदी के समीप एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। पहाड़ी पर अज ने एक दुर्ग बनवाया था—ऐसी किंवदंती भी यहां प्रचलित है। कुछ लोगों का कहना है कि किला राजा अजयपाल का बनवाया हुआ है पर इस नाम के राजा का उल्लेख इस प्रदेश के इतिहास में नहीं मिलता। यह दुर्ग कलिंजर के किले के समान ही सुदृढ़ समझा जाता है। पर्वत के दक्षिणी भाग में हिन्दू-बौद्ध तथा जैन मंदिरों तथा मूर्तियों के ध्वंसावशेष मिलते हैं। खजुराहो-शैली में बने हुए चार विहार तथा तीन सरोवर भी उल्लेखनीय हैं। अजयगढ चंदेल राजाओं के शासनकाल में उन्नति के शिखर पर था। पृथ्वीराज चौहान के समकालीन चंदेलनरेश परमर्दिदेव या परमाल के बनवाए कई मंदिर और सरोवर यहां हैं। पृथ्वीराज ने परमाल को पराजित करने के पश्चात् धसान नदी के पश्चिमी भाग को अपने अधिकार में रखकर अजयगढ़ को उसी के पास छोड़ दिया था। चंदेलों का अजयगढ़ पर कई सौ वर्षों तक राज्य रहा था और यह नगर उनके राज्य के मुख्य स्थानों में से था।

अजितवती=अजिरावती दे० **अचिरावती**

अजोधन

सतलज नदी से 10 मील पर बसा हुआ प्राचीन नगर है। इसका वर्तमान नाम पाकपाटन है जो अकबर का रखा हुआ कहा जाता है। अकबर के पूर्व इसका नाम पाटनफ़रीद था क्योंकि यहां प्रसिद्ध मुसलमान संत शेख फ़रीदुद्दीन शकरगंज का निवासस्थान था। इब्नबतूता ने इस नगर का उल्लेख 14वीं शती में अपनी यात्रा के विवरण में किया है—(दे० दि रेहला ऑव इब्नबतूता, पृ० 20)।

अज्जाहर (गुजरात)

काठियावाड़ के दक्षिण समुद्रतट पर वीरावल के निकट प्राचीन जैनतीर्थ है। इसका नामोल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में भी है—सिंहद्वीप धनेर मंगलपुरे चाज्जाहरे श्रीपुरे।

अटक (प० पाकिस्तान)

इसका प्राचीन नाम हाटक कहा जाता है (दे० हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफ़ी ऑव एंशेंट इंडिया—बी० सी० लॉ, पृ० 29)। अटक सिंधु नदी के तट पर स्थित है। यहां का सुदृढ़ किला जो नदीतट पर ऊंची पहाड़ी के शिखर पर स्थित है, अकबर ने बनवाया था। मध्य-युग में अटक को भारत की पश्चिमी सीमा पर स्थित माना जाता था। कहा जाता है कि राजा मानसिंह ने अकबर द्वारा अटक के

पार यूसुफ़जाइयों से लड़ने के लिए भेजे जाते समय वहां अपने जाने की सम्मति देते समय कहा था कि मुझे अन्य लोगों की तरह वहां जाने में आपत्ति नहीं है क्योंकि 'जाके मन में अटक है सो ही अटक रहा।'

अटक बनारस

उड़ीसा का एक नगर जिसे अकबर ने वाराणसी कटक या कटक बनारस के अनुकरण पर बसाया था (दे० हिस्ट्री ऑव उड़ीसा, पृ० 66)।

अटवी

प्राचीन काल में बेतवा नदी के दोनों ओर के प्रदेश का जो विंध्याचल की तराई में बसे होने के कारण वनाच्छादित था, इस नाम से अभिधान किया जाता था। महाभारतकाल में यहां पुलिंदों की बस्ती थी। महाभारत सभा० 29, 10 में पुलिंदनगर पर भीम ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में अधिकार कर लिया था। वायुपुराण 45, 126 में भी आटवियों का उल्लेख है—'कारुषाश्च सहैषीकाटव्याः शवरास्तथा।' गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त ने चौथी शती ई० में अटवी के सब राजाओं पर विजय प्राप्त करके उन्हें 'परिचारक' बना दिया था ('परिचारकीकृतसर्वाटिवीकराजस्य'—समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति) हर्षचरित में बाणभट्ट ने भी विंध्याटवी का सुदर वर्णन किया है। यहीं राज्यश्री की खोज करते समय हर्ष की भेंट बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र से हुई थी। इसे आटविक प्रदेश भी कहा गया है (दे० **कोटाटवी, वटाटवी**)।

अट्टूर (ज़िला सेलम, मद्रास)

इस स्थान पर एक प्राचीन दुर्ग है जिसके भीतर दरबार-भवन तथा कल्याण-महल नामक प्रासाद कलापूर्ण शैली में निर्मित हैं।

अटेर (म० प्र०)

पुरानी रियासत ग्वालियर का चंबल के दक्षिणी तट पर बसा हुआ प्राचीन नगर। अटेर का किला नदी की शाखाओं के बीच के एक ऊंचे स्थान पर स्थित है। किला मिट्टी, ईंट और चूने का बना है। एक अभिलेख के अनुसार इसको भदौरिया राजा बदनसिंह ने बनवाया था। इस लेख में अटेर का प्राचीन नाम **देवगिरि** लिखा है।

अड्डांकी (आं० प्र०)

14वीं शती ई० में आंध्र देश के एक भाग की पुरानी राजधानी थी जिसे रेड्डी लोगों ने बसाया था (दे० **कोंडाविड्डू**)।

अणकिटणकी (वला ताल्लुका, महाराष्ट्र)

जैनधर्म से संबद्ध सात गुफ़ाएं यहां एक पहाड़ी के भीतर कटी हुई है जिनमें

अनेक मूर्तियां बनी हैं। गुफाओं का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है किंतु फिर भी अनेक मूर्तियां शिल्प की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं। गुफ़ाओं की अवशिष्ट भित्तियां सर्वत्र मूर्तिकारी से पूर्ण हैं। यह स्थान जो अब **अंकाईतकाई** नाम से प्रसिद्ध है, मध्यकालीन जैन-संस्कृति का एक केन्द्र था। जैनकवि मेघविजय ने अपने एक विज्ञप्ति-पत्र में इस स्थान का वर्णन इस प्रकार किया—'गत्यौत्सुक्येऽप्यणकिटणकी दुर्गयोस्थेयमेत्रपार्श्वः स्वामी स इह विहृतः पूर्वमुर्वाशिसेव्यः जाग्रद्रुये विपदिशरणं स्वर्गलोकेऽभिवन्द्यम्। अत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धितेजः।' विज्ञप्ति-लेखसंग्रह, पृ० 101।

अंतरंजी खेड़ा (तहसील कासगंज, ज़िला एटा, उ० प्र०)

एटा से लगभग दस मील दूर, काली नदी के तट पर बसा हुआ अति प्राचीन नगर है। इस नगर की नींव डालने वाला राजा बेन कहा जाता है जिसके विषय में रुहेलखंड में अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता है कि राजा बेन ने मु० गौरी को उसके कन्नौज-आक्रमण के समय परास्त किया था किंतु अंत में बदला लेकर गौरी ने राजा बेन को हराया और उसके नगर को नष्ट कर दिया। एक ढूह के अन्दर से हज़रत हसन का मकबरा निकला था—जो इस लड़ाई में मारा गया था। कुछ लोगों का कहना है कि अंतरंजी खेड़ा वही प्राचीन स्थान है जिसका वर्णन चीनी यात्री युवानच्वांग ने पिलोशना या विलासना नाम से किया है किंतु यह धारणा गलत सिद्ध हो चुकी है। यह दूसरा स्थान **बिलसड़** नामक प्राचीन नगर था जो एटा से 30 मील दूर है। किन्तु फिर भी अंतरंजी खेड़े के पूर्व-मुसलमान काल का नगर होने में कोई संदेह नहीं है क्योंकि यहां के विशाल खंडहरों के उत्खनन में, जो एक विस्तृत टीले के रूप में हैं (टीला 3960 फ़ुट लम्बा, 1500 फुट चौड़ा और प्रायः 65 फुट ऊंचा है) शुंग, कुषाण और गुप्तकालीन मिट्टी की मूर्तियां, सिक्के, ठप्पे, ईंटों के टुकड़े आदि बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। खंडहर के एक सिरे पर एक शिवमंदिर के अवशेष हैं जिसमें पांच शिवलिंग हैं। इनमें एक नौ फुट ऊंचा है। टीले की रूपरेखा से जान पड़ता है कि इसके स्थान पर पहले एक विशाल नगर बसा हुआ था।

अतिवती

बौद्ध साहित्य में उल्लिखित नदी जो कसिया या प्राचीन कुशीनगर के निकट बहती थी। बुद्ध का दाहसंस्कार इसी नदी के तट पर हुआ था। यह गंडक की सहायक नदी है जो अब प्रायः सूखी रहती है। बौद्ध साहित्य में इस नदी को हरिण्या भी कहा गया है। संभव है अतितवती और अचिरवती में केवल नाम-भेद हो।

अधिराज

महाभारत सभा० 31,3 के अनुसार सहदेव ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में इस देश के राजा दंतवक्र को पराजित किया था—'अधिराजाधिपं चैव दंतवक्र महाबलम्, जिगाय करदं चैव कृत्वा राज्ये न्यवेशयत्'। अधिराज का उल्लेख मत्स्य के पश्चात् होने से सूचित होता है कि यह देश मत्स्य (जयपुर का परवर्ती प्रदेश) के निकट ही रहा होगा। किंतु श्री नं० ला० डे का मत है कि यह रीवां का परवर्ती प्रदेश था।

अधोनी (ज़िला रायचूर, मैसूर)

हिंदूकाल के दुर्ग के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। इस दुर्ग पर 1347 ई० मे अलाउद्दीन खिलजी और 1375 ई० में मुजाहिदशाह बहमनी ने अधिकार कर लिया था। तत्पश्चात् कुछ समय तक अधोनी का किला विजयनगर-राज्य के अंतर्गत रहा किंतु तालीकोट के युद्ध (1565 ई०) के पश्चात् यहां बीजापुर रियासत का अधिकार हो गया। अधोनी में 13वीं शती का पत्थर-चूने का बना एक मंदिर भी है जिसकी दीवारों पर मूर्तियां उकेरी हुई हैं। एक काले पत्थर पर देवनागरी लिपि में एक अभिलेख खुदा हुआ है।

अनंतगिरि (1) (महाराष्ट्र)

मध्यरेलवे के बाडी-बेज़वाड़ा मार्ग पर बिकाराबाद स्टेशन से 5 मील दूर यह पहाड़ी स्थित है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में यह मार्कंडेय ऋषि की तपोभूमि थी।

(2) (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०) एक पहाड़ी पर एक प्राचीन दुर्ग अवस्थित है जो अब प्रायः खण्डहर हो गया है।

अनंतनाग

कश्मीर की प्राचीन राजधानी। नगर से 3 मील पूर्व की ओर प्रसिद्ध मार्तंड-मंदिर स्थित है। यह मंदिर 725–760 ई० में बना था। इसका प्रांगण 220 फुट × 142 फुट है। इसके चतुर्दिक लगभग 80 प्रकोष्ठों के अवशेष वर्तमान हैं। पूर्वी किनारे पर मुख्य प्रवेशद्वार का मंडप है। मंदिर 60 फुट लंबा और 38 फुट चौड़ा था। इसके द्वारों पर त्रिपार्श्वित चाप (महराब) थे जो इस मंदिर की वास्तुकला की विशेषता हैं। यह वैचित्र्य संभवतः बौद्ध चैत्यों की कला के अनुकरण के कारण है किंतु मार्तंड-मंदिर में यह विशिष्ट महराब संरचना का भाग न होकर केवल अलंकरण-मात्र है। द्वारमंडप तथा मंदिर के स्तंभों की वास्तु-शैली रोम की डोरिक शैली से कुछ अंशों में मिलती-जुलती है। स्तंभों के शीर्ष तथा आधार अनेक भागों को जोड़ कर बनाए गए हैं। इन पर

अधिकतर सोलह नालियां उत्कीर्ण हैं। दरवाज़ों के ऊपर त्रिकोण संरचनाएं है और उनके बाहर निकले हुए भागों पर दुहेरी ढलवां छतों की बनावट प्रदर्शित की गई है जो कश्मीर की आधुनिक लकड़ी की छतों के अनुरूप ही जान पड़ती है। नेपाल के अनेक मंदिरों की छतें भी लगभग इसी संरचना का अतिविकसित रूप हैं। मार्तंड-मंदिर पर बहुत समय से छत नहीं है किंतु ऐसा समझा जाता है कि प्रारंभ में इस पर ढलवां लकड़ी की छत अवश्य रही होगी। मंदिर के प्रांगण के छोटे प्रकोष्ठ पत्थर के चौकों से पटे हुए थे। मार्तंड-मंदिर सूर्य की उपासना का मंदिर था। उत्तर-पश्चिम भारत में सूर्यदेव की उपासना प्राय: 11वीं शती ई० तक प्रचलित थी। मुसलमानी शासन के समय यहां के शासकों ने अनंतनाग के मंदिर को नष्ट करके नगर को इसलामाबाद नाम दिया था किंतु अभी तक प्राचीन नाम ही प्रचलित है।

अनंतवरम् (केरल)

केरल की वर्तमान राजधानी त्रिवेंद्रम का प्राचीन पौराणिक नाम जिसका उल्लेख ब्रह्मांडपुराण और महाभारत में है। इसे तिरू अनंतपुरम् भी कहते थे।

अनथानली (ज़िला परभणी, महाराष्ट्र)

यहां एक प्राचीन दुर्ग के अवशेष हैं। यह दुर्ग संभवत: देवगिरि के यादव-नरेशों द्वारा 13वीं शती में बनवाया गया था।

अनवतत दे० **अनोत्तत**

अनवा (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

शिल्लोद ताल्लुके में स्थित इस छोटे-से ग्राम मे 12वी शती ई० मे बना एक सुदर मंदिर स्थित है जिसके महामंडप की वर्तुल छत में मनोहर नक़्क़ाशी व मूर्तिकारी प्रदर्शित की गई है।

अनालंब

महाभारत, अनुशासन पर्व मे इस तीर्थ का नैमिषारण्य के साथ उल्लेख है जिससे इसकी स्थिति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। 'मतगवाप्यां य: स्नानादेकरात्रेण सिद्धयति विगाहति ह्यनाल्बमंधकं वै सनातनम्'—अनुशासन०, 25,32।

अनास्त (ज़िला कांगड़ा, पंजाब)

यह प्राचीन तीर्थ धौम्यगगा के तट पर स्थित है। इसका आधुनिक नाम जगतसुख है। पांडवों के पुरोहित धौम्य से, जो देशभ्रमण मे उनके साथ रहे थे, इस ग्राम का सबंध बताया जाता है।

अनिंदितपुर

8वीं शती ई० मे दक्षिण कबोडिया या कंबुज का एक छोटा-सा भारतीय

औपनिवेशिक राज्य जिसका उल्लेख कंबोडिया के प्राचीन इतिहास में है। अनिंदितपुर के राजा पुष्कराक्ष द्वारा शंभुपुर नामक पार्श्ववर्ती राज्य को हस्तगत करने का उल्लेख भी मिलता है।

अनिरुद्ध (ज़िला गोरखपुर, उ० प्र०)

कसिया अथवा प्राचीन कुशीनगर के निकट एक छोटा ग्राम है। खुदाई में यहां ईंटों का एक ढूह मिला है जिसका क्षेत्रफल लगभग 500 वर्गफुट है। कहा जाता है कि ये खण्डहर कुशीनगर में स्थित मल्लनरेशों के प्रासाद के हैं। (दे० **अनुपिया**)।

अनुतप्ता

विष्णुपुराण 2,4,11 के अनुसार प्लक्षद्वीप की सात मुख्य नदियों में से एक—'अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्लमा अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः'। संभवतः यहां अधिकांश नदियों के नाम काल्पनिक हैं।

अनुप = **अनूप** (म० प्र०)

नर्मदा-तट पर स्थित माहिष्मती के परवर्ती प्रदेश या निमाड़ का प्राचीन नाम। गौतमीबलश्री के नासिक अभिलेख में अनुपदेश को शातवाहन-नरेश गौतमीपुत्र (द्वितीय शती ई०) के विशाल राज्य का एक अंग बताया गया है। कालिदास ने रघु० 6,37 में, इंदुमती के स्वयंवर के प्रसंग में माहिष्मती-नरेश प्रतीप को अनूप-राज कहा है—'तामग्रतस्तामरसान्तराभामनूपराजस्यगुणैर-नूनाम्, विधायसृष्टिं ललितां विधातुर्जगाद भूयः सुदती सुनन्दा'। रघु० 6,43 में माहिष्मती का वर्णन है। गिरनार-स्थित रुद्रदामन् के प्रसिद्ध अभिलेख में इस प्रदेश को रुद्रदामन् द्वारा विजित बताया गया है—'स्ववीर्यार्जितानाममनु-रक्त प्रकृतीनां—आनर्त सुराष्ट्र श्वभ्रभरुकच्छ सिंधुसौवीर कुकुरापरान्त निषादा-दीनाम्'—अनुप या अनूप का शाब्दिक अर्थ 'जल के समीप' स्थित देश है। दे० **अनूपक**

अनुपिया

बुद्धकाल में मल्लक्षत्रियों का एक नगर जो पूर्वी उत्तर-प्रदेश में वर्तमान कसिया या कुशीनगर (ज़िला गोरखपुर) के आसपास ही कहीं स्थित होगा (दे० लॉ,—सम क्षत्रिय ट्राइब्स, पृ० 149)। संभवतः यह नगर वर्तमान अनिरुद्ध के स्थान पर ही बसा था।

अनुमकुंडपट्टन = **वारंगल**

अनुविंद

महाभारत सभा० 31,10 में अवंतिजनपद के विंद तथा अनुविंद नामक

नगरों की स्थिति नर्मदा के समीप बताई गई है—'ततस्तेनैव सहितो नर्मदामभितो ययौ, विन्दानुविन्दाववन्त्यौ सैन्येनमहताऽऽवृतौ'। अभिज्ञान अनिश्चित है।

अनुराधपुर (लंका)

सिंहल देश की प्राचीन राजधानी है। महावंश 7,43 में इसका उल्लेख है। इस नगर को राजकुमार विजय (जो भारत से सिंहल में जाकर बस गया था) के अनुराध नामक एक सामंत ने कदंब-नदी—वर्तमान मलवत्तुओय—के तट पर बसाया था। महावंश 10,76 से यह भी विदित होता है कि यह नगर अनुराधा नक्षत्र के मुहूर्त में बसाया गया था। एक अन्य बौद्ध किंवदंती के अनुसार अनुराधपुर मगध-सम्राट् अजातशत्रु के पुत्र उदायी, उदयन या उदयाश्व (496–480 ई० पू०) के समय में बसाया गया था। उदायी के पुत्र अनिरुद्ध ने दक्षिण भारत के अनेक देशों को जीत कर लंका पर भी आक्रमण किया तथा उसे विजित कर वहां अनिरुद्धपुर नामक नगर बसाया जिसका नाम कालांतर में अनुराधापुर या अनुराधपुर हो गया।

अनुराधपुर के विस्तृत खंडहरों में बौद्धकालीन अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें देवानांप्रिय तिस्सा का बनवाया थुपाराम स्तूप, दुतुजेमुनु द्वारा निर्मित रुआवेलिसिया और सावती स्तूप और तिस्सा के पुत्र वातागामनीक का बनवाया अभयगिरि स्तूप प्रमुख हैं।

अनूप (1)=**अनुप**

(2) कच्छ (गुजरात) का एक प्राचीन नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है (दे० **अनूपक**)।

अनूपक

'अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ, पटच्चरैश्च पौड्रेश्च राजन् पौरवकैस्तथा', महा० भीष्म० 50, 48। महाभारत-युद्ध में इस जनपद के निवासियों का पांडवों की ओर से लड़ने का वर्णन मिलता है। अनूपक या तो कच्छ या माहिष्मती के परवर्ती प्रदेश का नाम हो सकता है (दे० **अनुप**, **अनूप**)।

अनूपशहर (ज़िला बुलंदशहर, उ० प्र०)

अनूपराय बड़गूजर ने इस नगर को जहांगीर के राज्यकाल में बसाया था। यह कस्बा गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है।

अनेगुंडी (ज़िला रायचूर, मैसूर)

तुंगभद्रा के तट पर बसा हुआ अत्यंत प्राचीन नगर। नगर के दूसरी ओर हंपी के खण्डहर हैं जहां 16वीं शती का प्रसिद्ध ऐश्वर्यशाली नगर विजयनगर स्थित था। तालीकोट के निर्णायक युद्ध (1565 ई०) के पश्चात् हंपी और

अनेगुंडी दोनों ही नगरों को मुसलमान विजेताओं ने लूट कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। अनेगुंडी शब्द का अर्थ हाथी-घर है। यहीं विजयनगर दरबार के हाथी रखे जाते थे। अब यह जगह बिलकुल खण्डहर हो गई है। कुछ विद्वानों के मत में चीनी यात्री युवानच्वांग द्वारा वर्णित 'कोंगकीनयापुल' या कुंकुनपुर यही अनेगुंडी था। विजयनगर के नरेशों द्वारा बनवाए हुए भवनों के चिह्न यहां अब भी वर्तमान हैं। 'ओंचा अप्पमठ' के स्तंभ और गणेश मंदिर की पाषाणजालियां तथा सुन्दर उत्कीर्ण मूर्तियां प्राचीन कला-वैभव के ज्वलंत उदाहरण है। स्तंभ काले पत्थर के बने हुए हैं और उन पर गहरी नक्काशी है। स्तंभों की नक्काशी और उन पर मूर्तियों का उत्किरण बिलारी ज़िले के हुविना हदगट्ट मन्दिर की याद दिलाते हैं। ओंचाअप्प मठ की छत पर प्राचीन चित्रकारी के अंश भी मिले हैं। एक फलक पर हाथी की मुद्रा में स्थित पांच नर्तकियों के ऊपर शिव को आसीन दिखाया गया है। इसी प्रकार घोड़े तथा पालकी की आकृतियों के रूप में स्त्रियों का अंकन किया गया है। यह चित्रकारी शायद 17 वीं शती की है।

जनश्रुति के अनुसार रामायण में वर्णित वानरों की राजधानी **किष्किंधा** अनेगुंडी के स्थान पर ही बसी हुई थी।

अनोत्तत

हिमालय-पर्वत पर स्थित एक सरोवर जिससे गंगा, वंक्षु, सिंधु और सीता नदियों का उद्‌गम माना गया है। बौद्ध एवं जैन साहित्य तथा चीनी ग्रंथों मे इसका उल्लेख है। इसका मूल नाम संभवत: अनवतप्त था। श्री बी० सी० लॉ के मत में यह सरोवर वर्तमान रावणह्रद है। यह भी संभव है कि मानसरोवर ही को बौद्ध एवं जैन साहित्य में अनोतत्त-सरोवर कहा गया हो।

अनोमा

बौद्ध साहित्य में प्रसिद्ध नदी। बुद्ध की जीवन-कथाओं में वर्णित है कि सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु को छोड़ने के पश्चात् इस नदी को अपने घोड़े कंथक पर पार किया था और यहीं से अपने परिचारक छंदक को विदा कर दिया था। इस स्थान पर उन्होंने राजसी वस्त्र उतार कर अपने केशों को काट कर फेंक दिया था। किंवदंती के अनुसार ज़िला बस्ती, उ० प्र० में खलीलाबाद रेलस्टेशन से लगभग 6 मील दक्षिण की ओर जो कुदवा नाम का एक छोटा-सा नाला बहता है वही प्राचीन अनोमा है और क्योंकि सिद्धार्थ के घोड़े ने यह नदी कूद कर पार की थी इसलिए कालांतर में इसका नाम 'कुदवा' हो गया। कुदवा से एक मील दक्षिण-पूर्व की ओर एक मील लम्बे-चौड़े क्षेत्र में खण्डहर हैं

जहां तामेश्वरनाथ का वर्तमान मंदिर है। युवानच्वांग के वर्णन के अनुसार इस स्थान के निकट अशोक के तीन स्तूप थे जिनसे बुद्ध के जीवन की इस स्थान पर घटने वाली उपर्युक्त घटनाओं का बोध होता था। इन स्तूपों के अवशेष शायद तामेश्वरनाथ मंदिर के तीन मील उत्तर पश्चिम की ओर बसे हुए महायानडीह नामक ग्राम के आसपास तीन ढूहों के रूप में आज भी देखे जा सकते हैं। यह ढूह मगहर स्टेशन से दो मील दक्षिण-पश्चिम में हैं। श्री बी० सी० लॉ के मत में ज़िला गोरखपुर की ओमी नदी ही प्राचीन अनोमा है।

अन्हलवाड़ा (गुजरात) = पाटन

प्राचीन गुजरात की महिमामयी राजधानी पाटन या अन्हलवाड़ा की स्थापना चावडा वंश के वनराज या बंदाज द्वारा 746 ई० में हुई थी। उसे इस कार्य में जैनाचार्य शीलगुण से विशेष सहायता मिली थी। वनराज के पिता जयकृष्ण का राज्य, कच्छ की रन के निकटस्थ पंचसर नामक स्थान पर था। वनराज ने नए नगर को सरस्वतीनदी के तट पर स्थित प्राचीन ग्राम लखराम की जगह बसाया था। यह सूचना हमें जैन पट्टावलियों से मिलती है। धर्मसागर-कृत प्रवचनपरीक्षा में 1304 ई० तक अन्हलवाड़ा के राजाओं का वर्णन है। एक किंवदंती के अनुसार जब 770 ई० के लगभग अरब आक्रमणकारियों ने काठियावाड़ के प्रसिद्ध नगर वल्लभीपुर को नष्ट कर दिया तो वहां के राजपूतों ने अन्हलवाड़ा बसाया था। अन्हलवाड़ा में चावड़ावंश का शासनकाल 942 ई० तक रहा। इस वर्ष चालुक्य अथवा सोलंकी वंश के नरेश मूलराज ने गुजरात के इस भाग पर अधिकार कर लिया। चालुक्य-शासनकाल में गुजरात उन्नति के शिखर पर पहुंच गया। मूलराज ने सिद्धपुर में रुद्रमहालय नामक देवालय निर्मित किया था। इस वंश में सिद्धराज जयसिंह (1094–1143 ई०) सबसे प्रसिद्ध राजा था। यह गुजरात की प्राचीन लोक-कथाओं में मालवा के भोज की तरह ही प्रसिद्ध है। जैनाचार्य हेमचंद्र, सिद्धराज के ही राज्याश्रय में रहते थे। हेमचंद्र और उनके समकालीन सोमेश्वर के ग्रन्थों में 12वीं शती के पाटन के महान् ऐश्वर्य का विवरण मिलता है। सिद्धराज के समय में इस नगर में अनेक सत्रालय और मठ स्थापित किए गए थे। इनमें विद्वानों और निर्धनों को निःशुल्क भोजन तथा निवासस्थान दिया जाता था। इस काल में पाटन, गुजरात की राजनीति, धर्म तथा संस्कृति का एकमात्र महान केन्द्र था। जैन धर्म की भी यहां 12वीं शती में बहुत उन्नति हुई। सिद्धराज विद्या तथा कलाओं का प्रेमी था और विद्वानों का आश्रयदाता था।

सिद्धराज के पश्चात् मुसलमान आक्रमणकारियों ने इस नगर की सारी

श्री समाप्त कर दी । गुजरात में किंवदंती है कि महमूद गज़नवी ने इस नगर को लूटा ही था किंतु मु० तुग़लक ने इसे पूरी तरह उजाड़ कर हल चलवा दिए थे । मु० तुगलक से पहले अलाउद्दीन खिलजी ने 1304 ई० में पाटन-नरेश कर्णबघेला को परास्त किया था और इस प्रकार यहां के प्राचीन हिंदू राज्य की इतिश्री कर दी थी । 15वीं शती में गुजरात का सुल्तान अहमदशाह पाटन से अपनी राजधानी उठा कर नए बसाए हुए नगर अहमदाबाद में ले गया और इसके साथ ही पाटन के गौरव का सूर्य अस्त हो गया ।

पाटन या पाटण अब भी एक छोटा-सा कस्बा है जो महसाणा से 25 मील दूर है । स्थानीय जनश्रुति है कि महाभारत में उल्लिखित हिडिंबवन पाटन के निकट ही स्थित था और भीम ने हिडिंब राक्षस को मारकर उसकी बहिन हिडिंबा से यहीं विवाह किया था । पाटन के खण्डहर सहस्रलिंग झील के किनारे स्थित हैं । इसकी खुदाई में अनेक बहुमूल्य स्मारक मिले हैं—इनमें मुख्य हैं भीमदेव प्रथम की रानी उदयमती की वाव या वावड़ी, रानी महल और पार्श्वनाथ का मंदिर । ये सभी स्मारक वास्तुकला के सुंदर उदाहरण हैं ।

अपत्कर

पाणिनि 4,3,32 में उल्लिखित यह स्थान सिंध नदी (पाकिस्तान) के तट पर स्थित भक्खर जान पड़ता है ।

अपग

ब्रह्मांडपुराण 49 में उल्लिखित संभवतः वर्तमान अफ़गानिस्तान है । (नं० ला० डे) ।

अपरकाशि

महाभारत में वर्णित है । गंगा-गोमती के बीच का प्रदेश प्राचीन काल में काशी कहलाता था । अपरकाशि इस प्रदेश का पश्चिमी भाग था । (दे० दा० श० अग्रवाल का कादंबिनी, अक्तूबर 62 में प्रकाशित लेख) ।

अपरताल

वाल्मीकि-रामायण अयोध्याकांड 68,12 में इस स्थान का उल्लेख अयोध्या के दूतों की केकय देश (पंजाब के अंतर्गत) की यात्रा के प्रसंग में है—'न्यन्ते नापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति निषेवमाणाजग्मुर्नदीमध्येन मालिनीम्' । इस देश के संबंध में मालिनी-नदी का उल्लेख होने से यह जान पड़ता है कि इस देश में ज़िला बिजनौर और गढ़वाल (उ० प्र०) का कुछ भाग सम्मिलित रहा होगा । मालिनी गढ़वाल के पहाड़ों से निकल कर बिजनौर नगर से 6 मील दूर गंगा में रावलीघाट के निकट मिलती है । इसके आगे दूतों के हस्तिनापुर

में पहुंच कर गंगा को पार करने का उल्लेख है (68,13)। इससे भी यह अभिज्ञान ठीक ही जान पड़ता है। प्रलंब बिजनौर ज़िले का दक्षिण भाग था क्योंकि उपर्युक्त उद्धरण में उसे मालिनी के दक्षिण में बताया गया है। मालिनी इस ज़िले के उत्तरी भाग में बहती है।

अपरनंदा

'ततः प्रयातः कौन्तेयः क्रमेण भरतर्षभ, नन्दामपरनन्दां च नद्यौ पापभयापहे' महा० वन० 110,1 पांडवों की तीर्थयात्रा के प्रसंग में नंदा और अपरनंदा नामक नदियों का उल्लेख है जो संदर्भानुसार पूर्वबिहार या बंगाल की नदियां जान पड़ती हैं। अभिज्ञान अनिश्चित है।

अपरमत्स्य

'सुकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नराधिपम्, तथैवापरमत्स्यांश्च व्यजयत् स पटच्चरान्' महा० वन० 31,4। इस उद्धरण से सूचित होता है कि सहदेव ने अपनी दिग्विजययात्रा में अपरमत्स्य देश को जीता था। इससे पूर्व उन्होंने शूरसेन और मत्स्य-नरेशों पर भी विजय प्राप्त की थी (वन० 31,4)। इससे जान पड़ता है कि अपरमत्स्य देश मत्स्य (जयपुर-अलवर क्षेत्र) के निकट ही, संभवतः उससे दक्षिण-पूर्व की ओर था जैसा कि सहदेव के यात्राक्रम से सूचित होता है। उपर्युक्त उद्धरण से यह भी स्पष्ट है कि अपरमत्स्य देश में पटच्चर या पाटच्चर (यह अपरमत्स्य के पार्श्ववर्ती प्रदेश का नाम हो सकता है) नामक लोगों का निवास था। संभवतः ये लोग चोरी करने में अभ्यस्त थे जिससे 'पाटच्चर' का संस्कृत में अर्थ ही चोर हो गया है। रायचौधरी के मत में यह देश चंबल-तट के उत्तरी पहाड़ों में स्थित था (दि पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० 116) दे० **पटच्चर**।

अपरसेक

'सेकानपरसेकांश्च व्यजयत् सुमहाबलः' महा० सभा० 31,1। सहदेव ने दक्षिण दिशा की विजययात्रा में सेक और अपरसेक नामक देशों पर विजय प्राप्त की थी। प्रसंग से जान पड़ता है कि ये देश चंबल और नर्मदा के बीच में स्थित होंगे।

अपरांत

(1) महाराष्ट्र के अंतर्गत उत्तर-कोंकण (गोआ आदि का इलाका)। अपरांत का प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों पर उल्लेख है—"ततः शूर्पारकं देशं सागरस्तस्य निर्ममे, सहसा जामदग्न्यस्य सोऽपरान्तमहीतलम्' महा० शान्ति० 49,66-67। 'तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः'—विष्णु०

2,3,16। 'तस्यानीकैर्विसर्पद्‌भिरपरान्तजयोद्यतैः' रघु० 4,53। कालिदास ने रघु की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में पश्चिमी देशों के निवासियों को अपरांत नाम से अभिहित किया है और इसी प्रकार कोशकार यादव ने भी 'अपरान्तास्तु-पाश्चात्यास्ते' कहा है। रघुवंश 4,58 में भी अपरांत के राजाओं का उल्लेख है। इस प्रकार अपरांत नाम सामान्य रूप से पश्चिमी देशों का व्यंजक था किंतु विशेषरूप से (जैसे महाभारत के उपर्युक्त उद्धरण में) इस नाम से उत्तर-कोंकण का बोध होता था। महावंश 12,4 के उल्लेख के अनुसार अशोक के शासनकाल में यवन धर्मरक्षित को अपरांत में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए भेजा गया था। इस संदर्भ में भी अपरांत से पश्चिम के देशों का ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए। महाभारत शान्ति० 49,66-67 से सूचित होता है कि शूर्पारक नामक देश को जो अपरांतभूमि में स्थित था, परशुराम के लिए सागर ने छोड़ दिया था ('ततः शूर्पारकं देशं सागरस्तस्य निर्ममे, सहसा जामदग्नस्य सोपरान्त-महीतलम')। सभा० 51,28 से सूचित होता है कि अपरांत देश में जो परशुराम की भूमि थी तीक्ष्ण फरसे (परशु) बनाए जाते थे—('अपरांत समुद्‌भूतांस्तथैव परशून्छितान्') गिरनार-स्थित रुद्रदामन् के प्रसिद्ध अभिलेख में अपरांत का रुद्रदामन् द्वारा जीते जाने का उल्लेख है—'स्ववीर्यार्जितनामनुरक्त सर्वप्रकृतीनां सुराष्ट्रश्वभ्रभरुकच्छसिंधुसौवीरकुकुरापरान्तनिषादादीनां'—यहां अपरांत कोंकण का ही पर्याय जान पड़ता है। विष्णुपुराण में अपरांत का उत्तर के देशों के साथ उल्लेख है। वायुपुराण में अपरांत को अपरित कहा गया है।

(2) ब्रह्मदेश (बर्मा) के एक प्राचीन नगर का नाम जो आज भी भारतीय औपनिवेशिकों का स्मरण दिलाता है।

अपरांतिक

लैटिन भाषा के पैरिप्लस नामक यात्रावृत्त (प्रथम शती ई०) में अपरांतिक या अपरांत को ही शायद एरिआके नाम से अभिहित किया गया है। रायचौधरी के अनुसार एरिआके वराहमिहिर की बृहत्संहिता में उल्लिखित अर्यक भी हो सकता है—(पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया—चतुर्थ संस्करण, पृ० 406)।

अपरित दे० **अपरांत**

अपसढ़ (जिला गया, बिहार)

इस स्थान से मगधवंशीय राजा आदित्यसेन का एक महत्त्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुआ था। इसमें आदित्यसेन की माता श्रीमती द्वारा एक विहार और उसकी पत्नी कोणदेवी द्वारा एक तड़ाग बनवाए जाने का उल्लेख है। अभिलेख तिथिहीन है। इसमें अंतिम गुप्तनरेशों के बारे में और उनकी मौखरियों से

प्रतिद्वंद्विता का ज़िक्र है जो ऐतिहासिक दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। इसमें दी गई वंशावली इस प्रकार है—कृष्णगुप्त, हर्षगुप्त, जीवितगुप्त, कुमारगुप्त (इसने मौखरी-नरेश ईश्वरवर्मन् को पराजित किया), दामोदरगुप्त (इसने हूणों के विजेता मौखरियों को परास्त किया; यह स्वयं भी युद्ध में मारा गया था,) महासेनगुप्त (इसने कामरूप-नरेश सुस्थिववर्मन् को पराजित किया), माधवगुप्त (यह कन्नौजाधिप हर्ष के साहचर्य में रहा था) और आदित्यसेन।

अपापापुर=पावापुरी (बिहार)

बिहारशरीफ स्टेशन से 9 मील पर स्थित है। अंतिम जैन तीर्थंकर महावीर के मृत्युस्थान के रूप में यह स्थान इतिहास-प्रसिद्ध है। महावीर की मृत्यु 72 वर्ष की आयु में अपापापुर के राजा हस्तिपाल के लेखकों के कार्यालय में हुई थी। उस दिन कार्तिकमास के कृष्णपक्ष की अमावस्या थी। विविध तीर्थ-कल्प के अनुसार अंतिम जिन या तीर्थंकर महावीर की वाणी इस स्थान के निकट स्थित एक पहाड़ी की गुफा में गूंजती थी। इस जैन ग्रन्थ के अनुसार महावीर जृंभिका से महासेनवन में आए थे। यहां उन्होंने दो दिन के उपवास के पश्चात् अपना अंतिम उपदेश दिया और राजा हस्तिकाल के करागृह में पहुंच कर निर्वाण प्राप्त किया। (दे० **पावापुरी**)

अफगानिस्तान दे० **गंधार**

अफजलगढ़ (ज़िला बिजनौर, उ० प्र०)

इसे नवाब अफ़ज़लखां पठान (1748-1794 ई०) ने बसाया था।

अबोहर (ज़िला फ़िरोज़पुर, पंजाब)

भट्टी राजपूत राजा जोर का बसाया हुआ नगर। कहा जाता है कि नगर का नाम उबोहर अर्थात् उबो (राजपूत रानी का नाम) का ताल है। अलाउद्दीन खिलजी के समय यह नगर राजामल भट्टी के अधिकार में था। 1328 ई० में मुहम्मद तुगलक और किशलूखां की सेनाओं में यहां निर्णायक युद्ध हुआ था। तारीख फ़ीरोजशाही का लेखक शमस्सिराज अफ़ीफ अबोहर निवासी ही था। अबोहर का उल्लेख इब्नबतूता ने अपने यात्रा-विवरण में किया है।

अभयवापी (लंका)

महावंश 10,88 में उल्लिखित स्थान वर्तमान बसवककुलम्। इसे सिंहल-नरेश पांडुकामय ने बनवाया था।

अभिकाल

वाल्मीकि-रामायण 2,68,11 में इस स्थान का उल्लेख अयोध्या के दूतों की केकययात्रा के प्रसंग में है—'अभिकालंततः प्राप्य तेजोभिभवनाच्च्युताः'। जान

पड़ता है कि यह स्थान पंजाब में ब्यास नदी के पूर्व की ओर स्थित होगा क्योंकि इस नदी का वर्णन 2,68,19 में है जो दूतों को अभिकाल से पश्चिम की ओर चलने पर मिली थी।

अभिसारी

महाभारत सभा० 27,19 में अभिसारी नामक नगरी पर अर्जुन द्वारा विजय प्राप्त करने का उल्लेख है—'अभिसारी ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनन्दनः। उरगा-वासिनं चैव रोचमानं रणेऽजयत्'। प्रसंग से सूचित होता है कि अभिसारी ग्रीक लेखकों का आबिसारिस नामक नगर या राज्य है जो तक्षशिला के उत्तर के पर्वतों में बसा हुआ था। अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पू०), यहां के राजा तथा तक्षशिलानरेश आंभी ने बिना युद्ध किए ही यवनराज से मित्रता की संधि कर ली थी। यह छोटा-सा राज्य चिनाब नदी के पश्चिम में पूंछ, राजोरी और भिंभर की पहाड़ियों में स्थित था। इस इलाके को छिमाल भी कहा जाता है। महाभारत के उद्धरण में उरगा या उरशा वर्तमान हज़ारा (प० पाकिस्तान) है।

अमरकंटक (म०प्र०)

रीवां से 160 मील और पेंड्रा रेलस्टेशन से 15 मील दूर नर्मदा तथा शोण या सोन के उद्गम-स्थान के रूप में प्रख्यात है। यह पठार समुद्रतट से 2500 फुट से 3500 फुट तक ऊंचा है। नर्मदा का उद्गम एक पर्वतकुंड में बताया जाता है। अमरकंटक में नर्मदा के उद्गम स्थान के पर्वत को सोम भी कहा गया है। (दे० सोमोद्भवा) अमरकंटक ऋक्षपर्वत का एक भाग है जो पुराणों में वर्णित सप्तकुलपर्वतों में से एक है। अमरकंटक में अनेक मंदिर और प्राचीन मूर्तियां है जिनका संबंध पांडवों से बताया जाता है किंतु मूर्तियों में से अधिकांश पुरानी नहीं हैं। वास्तव में प्राचीन मंदिर थोड़े ही हैं—इनमें से एक त्रिपुरी के कलचुरि-नरेश कर्णदेव (1041-1073 ई०) का बनवाया हुआ है। इसे कर्णदहरिया का मंदिर कहते हैं। यह तीन विशाल शिखरयुक्त मंदिरों के समूह से मिलकर बना है। ये तीनों पहले एक महामंडप से संयुक्त थे किंतु अब यह नष्ट हो गया है। बेंगलर के अनुसार तीन कलश-युक्त भास्कर्य तथा मूर्तियों से अलंकृत शिखर सहित इस मंदिर की अलौकिक सुंदरता केवल देखने से ही अनुभूत की जा सकती है। इस मंदिर के बाद का बना हुआ एक अन्य मंदिर मच्छीद्र का भी है। इसका शिखर भुवनेश्वर के मंदिर के शिखर की आकृति का है। यह मंदिर कई विशेषताओं में कर्णदहरिया के मंदिर का अनुकरण जान पड़ता है।

नर्मदा का वास्तविक उद्गम उपर्युक्त कुंड से थोड़ी दूर पर है। बाण ने

इसे चंद्रपर्वत कहा है (दे० **चंद्र**; **सोमोद्भवा**) यहीं से आगे चलकर नर्मदा एक छोटे से नाले के रूप में बहती दिखाई पड़ती है। इस स्थान से प्राय: ढाई मील पर अरंडी संगम तथा एक मील और आगे नर्मदा की कपिलधारा स्थित है। कपिलधारा नर्मदा का प्रथम प्रपात है जहां नदी 100 फुट की ऊंचाई से नीचे गहराई में गिरती है। इसके थोड़ा और आगे दुग्धधारा है जहां नर्मदा का शुभ्रजल दूध के श्वेत फेन के समान दिखाई देता है। शोण या सोन नदी का उद्गम नर्मदा के उद्गम से एक मील दूर सोन-मूढ़ा नामक स्थान से हुआ है। यह भी नर्मदा-स्रोत के समान ही पवित्र समझा जाता है— (दे० **अमरकूट**; **आम्रकूट**) महाभारत वन० 85,9 में नर्मदा-शोण उद्भव के पास वंशगुल्म नामक तीर्थ का उल्लेख है। यह स्थान प्राचीन काल में विदर्भ देश के अंतर्गत था। **वंशगुल्म** का अभिज्ञान **वासिम** से किया गया है।

अमरकुण्ड

जैन-ग्रन्थ विविध तीर्थकल्प में आंध्रप्रदेश के इस नगर को जैनतीर्थ माना गया है। ग्रन्थ के अनुसार इस स्थान के निकट एक पहाड़ पर एक सुंदर मंदिर स्थित था जिसमें ऋषभदेव और शांतिनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठापित थी।

अमरकूट (म० प्र०)

रींवा से 97 मील दूर एक पहाड़ी है जो अमरकंटक का ही एक भाग है। यह गहनवनों से आच्छादित है। कई विद्वानों का मत है कि मेघदूत 1,16 में वर्णित आम्रकूट यही है।

अमरकोट (सिंध, प० पाकिस्तान)

दिल्ली से सिंध जाने वाले मार्ग पर ज़िला थरपारकर का मुख्य स्थान है। 1542 ई० में जब दुर्भाग्यग्रस्त हुमायूं और हमीदा बेगम दुश्मनों से बचकर यहां भागते हुए आए थे, तो भावी मुगल सम्राट् अकबर का जन्म इसी स्थान पर हुआ था (रविवार, 15 अक्टूबर, 1542 ई०)। इस घटना का सूचक एक प्रस्तर-स्तंभ आज भी अकबर के जन्मस्थान पर गड़ा हुआ है। कहा जाता है कि पुत्रजन्म का समाचार हुमायूं को उस समय मिला जब वह अमरकोट से कुछ दूरी पर ठहरा हुआ था। वह इस समय अकिंचन था और उसने अपने साथियों को इस शुभ समाचार को सुनने के पश्चात् कस्तूरी के कुछ टुकड़े बांट दिए और कहा कि कस्तूरी की सुगन्ध की भांति ही बालक का यश:सौरभ संसार में भर जाए। उसका यह आशीर्वाद आगे चलकर भविष्यवाणी सिद्ध हुआ।

अमरगढ़ (जिला परभणी, महाराष्ट्र)

मध्यकालीन, (संभवतः देवगिरि के यादवनरेशों के समय का) एक दुर्ग यहां

स्थित है।

अमरनाथ (कश्मीर)

हिमाच्छादित शैलमालाओं के बीच समुद्रतल से लगभग 12000 फुट की ऊंचाई पर पहलगांव से 27 मील दूर प्राचीन महत्त्वपूर्ण तीर्थ है। गुफा में ऊपर से जल टपकने के कारण नीचे हिमनिर्मित शिवलिंग की आकृति उच्च्यवाश्म (Stalagmite) बन जाती है जिसके लिए कहा जाता है कि यह शुक्लपक्ष में स्वयं निर्मित होकर कृष्णपक्ष में धीरे-धीरे विगलित हो जाती है। अमरनाथ की यात्रा वर्ष में केवल एक दिन श्रावणपूर्णिमा—रक्षाबंधन दिवस को होती है (दे० **अमरपर्वत**)।

अमरपर्वत

'कृत्स्नं पंचनदं चैव तथैवामरपर्वतम्, उत्तरज्योतिषं चैव तथा दिव्यकटं पुरम्-द्वारपालं च तरसा वशेचक्रे महाद्युतिः' महा० सभा 32, 11-12। नकुल ने अपनी पश्चिम दिशा की विजय-यात्रा के प्रसंग में अमरपर्वत को विजित किया था। प्रसंग से यह पंजाब का कोई पर्वत जान पड़ता है। संभव है अमरनाथ को ही इस उद्धरण में अमरपर्वत कहा गया हो।

अमरपुर (ज़िला कोल्हापुर, महाराष्ट्र)

कोल्हापुर से 33 मील दूर स्थित नृसिंहवाड़ी का प्राचीन नाम है। यहां अमरेश्वरमहादेव का प्राचीन मंदिर है। अमरपुर पंचगंगा और कृष्णा के सगम पर स्थित है।

अमरवेलि (गुजरात)

गुजरात की एक छोटी नदी जो मेहसाणा ताल्लुके में स्थित परसोडा ग्राम के निकट साबरमती में मिलती है। संगम पर विभांडक के पुत्र शृंगी ऋषि के आश्रम की स्थिति मानी जाती है। इनका उल्लेख वाल्मीकि-रामायण तथा महाभारत में है। इसे ऋषितीर्थ भी कहा जाता है। झर्झरी और सुरसरि नामक अन्य दो सरिताएं भी यहां साबरमती में मिलती हैं।

अमराबाद (ज़िला मेहबूबनगर, आं० प्र०)

इस ताल्लुके में वारंगल के राजा प्रतापरुद्र के समय में बना हुआ प्रतापरुद्र-कोट नामक दुर्ग स्थित है जो अब खंडहर हो गया है। अमराबाद के पठार की पहाड़ियों पर प्राचीन मंदिर भी हैं जिनमें महेश्वर का मदिर एक ऊंचे शिखर पर बना है। इस तक पहुंचने के लिए नौसौ सीढ़ियां हैं।

अमरावती (1)=**धान्यकटक** (आं० प्र०)

कृष्णा नदी के तट पर अवस्थित, प्राचीन आंध्र की राजधानी है। आंध्र-

वंशीय शातवाहन नरेश शातकर्णी ने संभवतः 180 ई० पू० के लगभग इस स्थान पर अपनी राजधानी स्थापित की थी। शातवाहन-नरेश ब्राह्मण होते हुए भी बौद्ध—हीनयान—मत के पोषक थे और उन्हीं के शासन काल में अमरावती का प्रख्यात बौद्ध स्तूप बना था जो 13वीं शती तक अनेक बौद्ध यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र बना रहा। इस स्तूप की वास्तुकला और मूर्तिकारी सांची और भरहुत की कला के समान ही सुंदर, सरल और परमोत्कृष्ट है और संसार की धार्मिक मूर्तिकला में उसका विशिष्ट स्थान माना जाता है। बुद्ध के जीवन की कथाओं के चित्र जो मूर्तियों के रूप में प्रदर्शित हैं, यहां के स्तूप पर सैकड़ों की संख्या में उत्कीर्ण थे। अब यह स्तूप नष्ट हो गया है किंतु इसकी मूर्तिकारी के अवशेष संग्रहालय में सुरक्षित हैं। धान्यकटक की निकटवर्ती पहाड़ियों में श्रीपर्वत या नागार्जुनीकोंड नामक स्थान था जहां बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन काफी समय तक रहे थे। आंध्रवंश के पश्चात् अमरावती में कई शतियों तक इक्ष्वाकु राजाओं का शासन रहा। इन्होंने इस नगरी को छोड़कर नागार्जुनीकोंड या विजयपुर को अपनी राजधानी बनाया। अमरावती अपने समृद्धिकाल में प्रसिद्ध व्यापारिक नगरी भी थी। समुद्र से कृष्णा नदी होकर अनेक व्यापारिक जलयान यहां पहुंचते थे। वास्तव में इसकी समृद्धि तथा कला का एक कारण इसका व्यापार भी था।

(2) **उज्जयिनी** का एक प्राचीन नाम।

(3) कावेरी की सहायक नदी। अमरावती-कावेरी संगम से 6 मील पर करूर या तिरुआनिलै नगर बसा है जो अमरावती के वाम तट पर है।

(4) (अनाम) प्राचीन भारतीय उपनिवेश चंपा का उत्तरी भाग। 5वीं शती ई० के प्रारंभ में यहां चंपा के राजा धर्ममहाराज श्रीभद्रवर्म्मन् का आधिपत्य था। इसकी मृत्यु 493 ई० में हुई थी। चंपापुर तथा इंद्रपुर यहां के दो प्रसिद्ध नगर थे।

अमरेन्द्रपुर (कंबोडिया)

प्राचीन कंबुज का एक नगर जहां 9वीं शती ई० के हिन्दू राजा जयवर्म्मन् द्वितीय की राजधानी कुछ कालपर्यंत रही थी। यह नगर वर्तमान अंगकोर-थोम के उत्तर-पश्चिम में 100 मील की दूरी पर स्थित था।

अमरेश्वर दे० **ओंकारेश्वर**

अमरोल (म० प्र०)

इस स्थान से 7वीं शती ई० से 9वीं शती ई० तक के मंदिरों के अवशेष मिले हैं।

अमरोहा (ज़िला मुरादाबाद, उ० प्र०)

प्राचीन नाम अंबिकानगर कहा जाता है। यह पहले बड़ा नगर था।

अमित तोसल

गंडव्यूह नामक ग्रन्थ में इस जनपद का उल्लेख है। यह संभवतः तोसल या तोशलि का प्रदेश था जो उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट स्थित वर्तमान धौली नामक स्थान है।

अमीन (पंजाब)

थानेसर से लगभग 5 मील देहली-अम्बाला रेलमार्ग पर कुरुक्षेत्र के प्रदेश में स्थित है। कहा जाता है कि महाभारतयुद्ध के समय द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना इसी स्थान पर की थी और अभिमन्यु ने इसीको तोड़ते समय वीर-गति प्राप्त की थी। अभिमन्यु-वध का वर्णन महा० द्रोण० 49 में इस प्रकार है— 'उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत्। गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः। विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा। एवं विनिहतोः राजन्नेको बहुभिराहवे— (द्रोण० 49,13–14)। अमीन शब्द को अभिमन्यु के नाम से संबंधित कहा जाता है। अमीन ग्राम के निकट ही कर्णवेध नामक एक खाई है। जनश्रुति है कि इसी स्थान पर कर्ण को अर्जुन ने मारा था। जयद्रथ के मारे जाने का स्थान जयधर भी अमीन गांव के निकट ही है।

अमृतसर (पंजाब)

यह सिखों का महान् तीर्थ है। किंवदंती है कि रामायणकाल में अमृतसर के स्थान पर एक घना वन था जहां एक सरोवर भी स्थित था। श्रीरामचन्द्र के पुत्र लव और कुश आखेट के लिए एक बार यहां आकर सरोवर के तीर पर कुछ समय के लिए ठहरे थे। ऐतिहासिक समय में सिखों के आदिगुरु नानक ने भी इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर यहां कुछ देर के लिए एक वृक्ष के नीचे विश्राम तथा ध्यान किया था। यह वृक्ष वर्तमान सरोवर के निकट आज भी दिखाया जाता है। तीसरे गुरु अमरदास ने नानकदेव का इस स्थान से संबंध होने के कारण यहां एक मंदिर बनवाने का विचार किया। 1564 ई० में चौथे गुरु रामदास ने वर्तमान अमृतसर नगर की नींव डाली और स्वयं भी यहां आकर रहने लगे। इस समय इस नगर को रामदासपुर या चक-रामदास कहते थे। 1577 में मुगलसम्राट् अकबर ने रामदास को 500 बीघा भूमि नगर को बसाने के लिए दी जो उन्होंने तुग के जमींदारों को 700 अकबरी रुपए देकर खरीदी। कहा जाता है कि सरोवर के पवित्र जल में स्नान करने से एक कौवे के पर श्वेत हो गए थे और एक कोढ़ी का रोग जाता रहा था।

इस दंतकथा से आकृष्ट होकर सहस्रों लोग यहां आने-जाने लगे और नगर की आबादी बढ़ने लगी। 1589 में गुरु अर्जुनदेव के एक शिष्य शेखमियां मीर ने सरोवर के बीच में स्थित वर्तमान स्वर्णमन्दिर की नींव डाली। मंदिर के चारों ओर चार दरवाजों का प्रबंध किया गया था। यह गुरु नानक के उदार धार्मिक विचारों का प्रतीक समझा गया। मंदिर में गुरुग्रन्थसाहब की जिसका संग्रह गुरु अर्जुनदेव ने किया था, स्थापना की गई थी। सरोवर को गहरा करवाने और परिवर्धित करने का कार्य बाबू बूढ़ा नामक व्यक्ति को सौंपा गया था और इन्हें ही ग्रन्थसाहब का प्रथम ग्रन्थी बनाया गया।

1757 ई० में वीर सरदार बाबा दीपसिंह जी ने मुसलमानों के अधिकार से इस मंदिर को छुड़ाया किंतु वे उनके साथ लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। उन्होंने अपने अधकटे सिर को सम्हालते हुए अनेक शत्रुओं को तलवार के घाट उतारा। उनकी दुधारी तलवार मंदिर के संग्रहालय में सुरक्षित है। स्वर्ण-मंदिर के निकट बाबा अटलराय का गुरुद्वारा है। ये छठे गुरु हरगोविंद के पुत्र थे और नौ वर्ष की आयु में ही संत समझे जाने लगे थे। उन्होंने इतनी छोटी-सी उम्र में एक मृत शिष्य को जीवन-दान देने में अपने प्राण होम दिए थे। कहा जाता है कि गुरुद्वारे की नौ मंजिलें इस बालक संत की आयु की प्रतीक हैं। पंजाबकेसरी महाराज रणजीतसिंह ने स्वर्णमन्दिर को एक बहुमूल्य पटमंडप दान में दिया था जो संग्रहालय में है। वास्तव में रणजीतसिंह की सहायता से ही मन्दिर अपने वर्तमान रूप को प्राप्त कर सका। इसके शिखर पर सुवर्ण-पत्र चढ़वाने का श्रेय भी उन्हें ही दिया जाता है। 1919 की जलियांवाला बाग की घटना के कारण अमृतसर का नाम भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में भी चिरस्थायी हो गया है।

अमृता

विष्णुपुराण 2,4,11 के अनुसार प्लक्षद्वीप की एक नदी—'अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्लमा, अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्रनिम्नगाः'।

अयक

स्यालकोट (प० पाकिस्तान) के निकट बहने वाली छोटी नदी जिसका अभिज्ञान प्राचीन साहित्य की आपगा नामक नदी से किया गया है।

दे० आपगा

अयोध्या (ज़िला फ़ैज़ाबाद, उ० प्र०)

यह पुण्यनगरी श्रीरामचंद्रजी की जन्मभूमि होने के नाते भारत के प्राचीन साहित्य व इतिहास में सदा से प्रसिद्ध रही है। इसकी गणना भारत की

प्राचीन सप्तपुरियों में प्रथम स्थान पर की गई है—'अयोध्या मथुरा माया काशी कांचिरवन्तिका, पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिका:' । पूर्वी उत्तरप्रदेश के जनसाधारण में अयोध्या की महत्ता के बारे में निम्न कहावत प्रचलित है—'गंगा बड़ी गोदावरी, तीरथ बड़ो प्रयाग, सबसे बड़ी अयोध्यानगरी जहँ राम लियो अवतार'। रामायण-काल में अयोध्या कोशल-देश की राजधानी थी। कोशल या कोसल सरयू के तीर पर बसा हुआ एक धनधान्यपूर्ण राज्य था—'कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् निविष्ट सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्,। अयोध्यानाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता। मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्। रामा० बाल० 5,5–6 के अनुसार इसका विस्तार लंबाई में बारह योजन, और चौड़ाई में तीन योजन था,—'आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी, श्रीमती त्रीणिविस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा'—बाल० 5,7। वह अनेक राजमार्गों से सुशोभित थी। उसकी प्रधान सड़कों पर जो बड़ी सुन्दर व चौड़ी थीं प्रतिदिन फूल बखेरे जाते थे और उनका जल से सिंचन होता था—'राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता, मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः' बाल० 5,8। सूत और मागध उस नगरी में बहुत थे। अयोध्या बहुत ही सुन्दर नगरी थी। उसमें ऊंची अटारियों पर ध्वजाएं शोभायमान थीं और सैकड़ों शतघ्नियां उसकी रक्षा के लिए लगी हुई थीं—'सूतमागधसंबाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्, उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्' बाल० 5,11।

अयोध्या रघुवंशी राजाओं की बहुत पुरानी राजधानी थी। बाल० 5,6 के अनुसार स्वयं मनु ने इसका निर्माण किया था। वाल्मीकि० उत्तर० 108,4 से विदित होता है कि स्वर्गारोहण से पूर्व रामचंद्रजी ने कुश को कुशावती नामक नगरी का राजा बनाया था। श्रीराम के पश्चात् अयोध्या उजाड़ हो गई थी क्योंकि उनके उत्तराधिकारी कुश ने अपनी राजधानी कुशावती मे बना ली थी। रघु० सर्ग 16 से विदित होता है कि अयोध्या की दीन-हीन दशा देखकर कुश ने अपनी राजधानी पुनः अयोध्या में बनाई थी। महाभारत में अयोध्या के दीर्घयज्ञ नामक राजा का उल्लेख है जिसे भीमसेन ने पूर्वदेश की दिग्विजय में जीता था—अयोध्यां तु धर्मज्ञं दीर्घयज्ञं महाबलम्, अजयत् पांडवश्रेष्ठो नातितीव्रेणकर्मणा—सभा० 30–2। घटजातक में अयोध्या (अयोज्झा) के कालसेन नामक राजा का उल्लेख है (जातक सं० 454)। गौतमबुद्ध के समय कोसल के दो भाग हो गए थे—उत्तरकोसल और दक्षिणकोसल जिनके बीच में सरयू नदी बहती थी। अयोध्या या साकेत उत्तरी भाग की और श्रावस्ती दक्षिणी भाग की राजधानी थी। इस समय श्रावस्ती का महत्त्व अधिक बढ़ा हुआ था। शायद

बौद्धकाल में ही अयोध्या के निकट एक नई बस्ती बन गई थी जिसका नाम साकेत था। बौद्ध साहित्य में साकेत और अयोध्या दोनों का नाम साथ-साथ भी मिलता है (दे० रायसडेवीज़ बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० 39) जिससे दोनों के भिन्न अस्तित्व की सूचना मिलती है।

शुंग वंश के प्रथम शासक पुष्यमित्र (द्वितीय शती ई० पू०) का एक शिला-लेख अयोध्या से प्राप्त हुआ था जिसमें उसे सेनापति कहा गया है तथा उसके द्वारा दो अश्वमेध यज्ञों के किए जाने का वर्णन है। अनेक अभिलेखों से ज्ञात होता है कि गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त द्वितीय के समय (चतुर्थ शती ई० का मध्यकाल) और तत्पश्चात् काफी समय तक अयोध्या गुप्त साम्राज्य की राजधानी थी। गुप्तकालीन महाकवि कालिदास ने अयोध्या का रघुवंश में कई बार उल्लेख किया है—'जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्' रघु० 13,61; 'आलोकयिष्यन्मुदितामयोध्यां प्रासादमभ्रंलिहमारुरोह'— रघु० 14,29। कालि-दास ने उत्तरकोसल की राजधानी साकेत (रघु० 5,31;13,62) और अयोध्या दोनों ही का नामोल्लेख किया है, इससे जान पड़ता है कि कालिदास के समय में दोनों ही नाम प्रचलित रहे होंगे। मध्यकाल में अयोध्या का नाम अधिक सुनने में नहीं आता। युवानच्वांग के वर्णनों से ज्ञात होता है कि उत्तर बुद्ध-काल में अयोध्या का महत्व घट चुका था। जैन ग्रन्थ विविधतीर्थकल्प में अयोध्या को ऋषभ, अजित, अभिनंदन, सुमति, अनन्त और अचलभानु—इन जैन मुनियों का जन्मस्थान माना गया है। नगरी का विस्तार लम्बाई में 12 योजन और चौड़ाई में 9 योजन कहा गया है। इस ग्रन्थ में वर्णित है कि चक्रे-श्वरी और गोमुख यक्ष अयोध्या के निवासी थे। घर्घर-दाह और सरयू का अयोध्या के पास संगम बताया है और संयुक्त नदी को स्वर्गद्वारा नाम से अभिहित किया गया है। नगरी से 12 योजन पर अप्टावट या अप्टापद पहाड़ पर आदि-गुरु का कैवल्यस्थान माना गया है। इस ग्रन्थ में यह भी वर्णित है कि अयोध्या के चारों द्वारों पर 24 जैन तीर्थकरों की मूर्तियां प्रतिष्ठापित थीं। एक मूर्ति की चालुक्य नरेश कुमारपाल ने प्रतिष्ठापना की थी। इस ग्रन्थ में अयोध्या को दशरथ, राम और भरत की राजधानी बताया गया है। जैनग्रन्थों में अयोध्या को विनीता भी कहा गया है।

मध्यकाल में मुसलमानों के उत्कर्ष के समय, अयोध्या बेचारी उपेक्षिता ही बनी रही, यहां तक कि मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के एक सेना-पति ने बिहार अभियान के समय अयोध्या में श्रीराम के जन्मस्थान पर स्थित प्राचीन मंदिर को तोड़कर एक मसजिद बनवाई जो आज भी विद्यमान है।

मस्जिद में लगे हुए अनेक स्तंभ और शिलापट्ट उसी प्राचीन मंदिर के हैं। अयोध्या के वर्तमान मंदिर कनकभवन आदि अधिक प्राचीन नहीं हैं और वहां यह कहावत प्रचलित है कि सरयू को छोड़कर रामचंद्रजी के समय की कोई निशानी नहीं है। कहते हैं कि अवध के नवाबों ने जब फ़ैज़ाबाद में राजधानी बनाई थी तो वहां के अनेक महलों में अयोध्या के पुराने मंदिरों की सामग्री उपयोग में लाई गई थी।

(2) (स्याम या थाइलैंड) सुखोदय राज्य की अवनति के पश्चात् 1350 ई० में स्याम में अयोध्याराज्य की स्थापना की गई थी। इसका श्रेय उटोंग के शासक को दिया जाता है जिसने रामाधिपति की उपाधि ग्रहण की थी। अपने राज्य की राजधानी उसने अयुठिया या अयोध्या में बनाई। इस राज्य का प्रभुत्व धीरे-धीरे लाओस और कंबोडिया तक स्थापित हो गया था किंतु बर्मा के राजाओं ने अयोध्या के विस्तार को रोक दिया। 1767 ई० में बर्मा के स्याम पर आक्रमण के समय अयोध्या-नगरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और तत्पश्चात् स्याम की राजधानी बैंकाक में बनी।

अयोमुख

चीनी यात्री युवानच्वांग ने जो 630 ई० से 645 ई० तक भारत में रहा, इस स्थान को अयोध्या से लगभग 300 मील पूर्व की ओर बताया है। उसके वृत्त के अनुसार यह स्थान अयोध्या और प्रयाग के मार्ग पर अवस्थित था। युवान की जीवनी से विदित होता है कि अयोमुख के मार्ग में ठगों ने युवान को पकड़ कर अपनी देवी पर उसकी बलि देने का प्रयत्न किया किंतु एक तूफान आ जाने से वह बच गया। जान पड़ता है कि इस समय इस प्रदेश में शाक्तों का विशेष ज़ोर था। कनिंघम के अनुसार यह स्थान प्रतापगढ़ (उ० प्र०) से 30 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर था—(दे० **तुषारन-विहार**)।

अरंग (ज़िला रायपुर, म० प्र०)

इस स्थान से गुप्तकालीन ताम्रदानपट्ट प्राप्त हुआ था। दानपट्ट में महाराज जयराज द्वारा पूर्वराष्ट्र में स्थित एक ग्राम को किसी ब्राह्मण के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है। यह दानपट सरभपुर नामक नगर से प्रचलित किया गया था। इसमें संवत् 5 का उल्लेख है जो अनुमानतः जयराज के शासन-काल का अज्ञात संवत् जान पड़ता है।

अरगंदाबीन दे० **हारहूण**।

अरगांव (ज़िला अकोला, महाराष्ट्र)

यह एक छोटा-सा ग्राम है जहां 1803 ई० में अंग्रेज़ों ने मराठों को हराया

था । इस विजय से गाविलगढ़ का किला अंग्रेजों के हाथ आ गया था ।

अरब दे० **आरब; वनायु ।**

अरवाल

इस सरोवर का उल्लेख महावंश 12-9-11 में है । इसका अभिज्ञान जिला मंडी (हिमाचल प्रदेश) में स्थित रवालसर के साथ किया गया है । महावंश के वर्णन के अनुसार मुज्झन्तिक स्थविर ने इस सरोवर के निकट रहने वाले एक क्रूर नागराज का गर्व चूर किया था । सरोवर की स्थिति कश्मीर-गंधार देश में बताई गई है ।

अराकान दे० **ताम्रपट्टन**

अराड़

डा० होए (Dr. Hoye) के अनुसार यह वर्तमान आरा (ज़िला शाहबाद, बिहार) का प्राचीन नाम है । उनके अनुसार गौतमबुद्ध का समकालीन दार्शनिक अराड़कलाम यहीं का निवासी था (दे० आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट जिल्द 3, पृ० 70) ।

अरिगेंत्र

अलक्षेंद्र के भारत-आक्रमण के समय (327 ई० पू०) सिंध नदी के पश्चिम की ओर बजोर की घाटी में बसा हुआ एक नगर । यवनराज के आक्रमण की सूचना मिलने पर नगरवासी नगर को जलाकर छोड़ गए थे । इसकी स्थिति संभवत: बजोर के वर्तमान मुख्य नगर नवगई के निकट थी (दे० स्मिथ— अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० 55) ।

अरिट्ठपर्वत (लंका)

उम्मदन्तिजातक में शिविजाति के क्षत्रियों के इस नगर का उल्लेख है । शिविराष्ट्र की स्थिति संभवत: ज़िला झंग (प० पाकिस्तान) के अंतर्गत शोरकोट के प्रदेश में थी । इस उपकल्पना के आधार पर इस नगर की स्थिति इसी स्थान के आसपास मानी जा सकती है । दीपवंश 3, 14 में यहां के राजा सिट्ठी का उल्लेख है । (दे० शिवि) ।

अरिमर्दनपुर (बर्मा)

वर्तमान पगन नगर का प्राचीन भारतीय नाम । इसकी स्थापना 849 ई० में हुई थी । यह नगर ताम्रद्वीप की राजधानी था । यहां का सबसे अधिक प्रसिद्ध राजा अनिरुद्ध महान् था जिसने पगन के छोटे-से राज्य को बढ़ाकर एक महान् साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया था । इस साम्राज्य में ब्रह्मदेश का अधिकांश भाग सम्मिलित था । अनिरुद्ध कट्टर बौद्ध था और उसने सिंहल-

नरेश से बुद्ध का एक धातुचिह्न मंगवा कर श्वेजिगोन पेमोडा में संरक्षित किया था। अनिरुद्ध की मृत्यु 1077 ई० में हुई थी।

अरिष्ट

वाल्मीकि-रामायण सुन्दर० 56, 26 के अनुसार लंका में समुद्रतट पर स्थित एक पर्वत, जिस पर चढ़कर हनुमान ने लंका से लौटते समय, समुद्र को कूद कर पार किया था—'आरुरोह गिरिश्रेष्ठमरिष्टमरिमर्दनः, तुंगपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः'। इसी के सामने भारत में समुद्र के दूसरे तट पर महेंद्र पर्वत की स्थिति थी (दे० सुन्दर० 27, 29)। हनुमान के अरिष्ट पर आरूढ़ होने के पश्चात् इस पर्वत की दशा का अद्भुत वर्णन वाल्मीकि ने किया है।

अरिष्टपुर

पाणिनि अष्टाध्यायी 6, 2, 100 में उल्लिखित है। बौद्ध साहित्य में इसे शिवि राज्य के अंतर्गत माना है।

अरुणा

(1) गोदावरी की सहायक नदी। यह नासिक-पंचवटी के निकट गोदावरी में मिलती है।

(2) पंजाब की सरस्वती की सहायक नदी। इसका और सरस्वती का संगम पृथूदक के निकट था।

(3) ताम्र के साथ सुनकोसी में मिलने वाली नदी। इसके संगम पर कोकामुख तीर्थ था।

अरुणाचल (मद्रास)

विल्लुपुरम्-गुड्र रेल-मार्ग पर तिरुवण्णमलै स्टेशन के निकट एक पर्वत है। इसके निकट ही अरुणाचलेश्वर शिव का अति विशाल मंदिर है। इसके चतुर्दिक् दस खंडों वाले चार गोपुर हैं। अरुणाचल का वर्णन स्कंदपुराण में है—'अस्ति दक्षिणदिग्भागे द्राविडेषु तपोधन, अरुणाख्यं महाक्षेत्रं तरुणेन्दु शिखामणेः,—उत्तराखंड 3, 10।

अरुणोद

गढ़वाल का वह भाग जिसमें अलकनंदा बहती है। श्रीनगर इसकी राजधानी है।

अरोर=अलोर

अर्कक्षेत्र=पद्मक्षेत्र=कोणार्क

अर्धपुर (ज़िला नांदेड़, महाराष्ट्र)

प्राचीन जैन मंदिरों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

अर्नाकुलम (केरल)

प्राचीन कोचीन नरेशों की राजधानी। इन्होंने पूर्णत्रयी अथवा वर्तमान त्रिपुणित्तुरे नामक स्थान पर राजप्रासाद बनवाए थे। यह अर्नाकुलम् नगर से 6 मील दूर है।

अर्बुद=आबू (राजस्थान)

महाभारत में, अर्बुद की गणना तीर्थस्थानों में की गई है। अर्बुद निवासियों का उल्लेख विष्णु॰ 2, 13, 16 में है—'पुंड्राः कलिंगमागधा दक्षिणाद्याश्च सर्वशः तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः'। चंदबरदाई लिखित पृथ्वीराजरासो में वर्णित है कि अग्निकुल के चार राजपूतवंश—पवार, परिहार, चौहान, और चालुक्य आबू पहाड़ पर किए गए एक यज्ञ द्वारा उत्पन्न हुए थे। क्रुक (Crook) के मत में यह यज्ञ विदेशी जातियों को क्षत्रियवर्ण में सम्मिलित करने के लिए किया गया होगा (दे॰ टॉड रचित राजस्थान)।

अर्बुदावली=अरावली पर्वतश्रेणी (राजस्थान)=दे॰ **अर्वली**

अर्यक

बृहत्संहिता में उल्लिखित इस स्थान का अभिज्ञान पेरिप्लस नामक लैटिन यात्रा-वृत्त के 'एरिआके' से किया गया है—(रायचौधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, पृ॰ 406)।

अर्वली

राजस्थान की मुख्य पर्वत-श्रेणी जिसकी छोटी-छोटी शाखाएं दिल्ली तक फैली हैं। अर्वली शब्द अर्बुदावली का अपभ्रंश कहा जाता है। अर्बुद या आबू पर्वत इस गिरि-शृंखला का महत्त्वपूर्ण भाग होने के कारण ही इसका यह नामकरण हुआ जान पड़ता है।

अर्सीकेर (मैसूर)

यहां का प्राचीन मंदिर चालुक्यवास्तुकला का सुंदर उदाहरण है।

अलंदी (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

पूना से 13 मील दूर महाराष्ट्र का प्राचीन नगर है। यहां इंद्राणी नदी के तट पर जैनेश्वर का प्राचीन मंदिर है। अलंदी का संबंध महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संतकवि तुकाराम से बताया जाता है।

अलकनंदा

कैलास और बद्रीनाथ के निकट बहने वाली गंगा की एक शाखा। कालिदास ने मेघदूत में जिस अलकापुरी का वर्णन किया है वह कैलास

पर्वत के निकट अलकनंदा के तट पर ही बसी होगी जैसा कि नाम-साम्य से प्रकट भी होता है। कालिदास ने अलका की स्थिति गंगा की गोदी में मानी है और गंगा से यहां अलकनंदा का ही निर्देश माना जा सकता है। संभवतः प्राचीन काल में पौराणिक परंपरा में अलकनंदा को ही गंगा का मूलस्रोत माना जाता था क्योंकि गंगा को स्वर्ग से गिरने के पश्चात् सर्वप्रथम शिव ने अपनी अलकों अर्थात् जटाजूट में बांध लिया था जिसके कारण नदी को शायद अलकनंदा कहा गया। अलकनंदा का वर्णन महाभारत वन० के अंतर्गत तीर्थयात्रा प्रसंग में है जहां इसे भागीरथी नाम से भी अभिहित किया गया है और इसका उद्गम बदरिकाश्रम के निकट ही बताया गया है—'नर नारायणस्थानं भागीरथ्योपशोभितम्'—वन० 145,41। यह भागीरथी अलकनंदा ही है क्योंकि नर नारायण-आश्रम अलकनंदा के तट पर ही है। वास्तव में महाभारत ने इस स्थान पर गंगा की दोनों शाखाओं—भागीरथी जो गंगोत्री से सीधी देवप्रयाग आती है और अलकनंदा जो कैलास और बदरिकाश्रम होती हुई देवप्रयाग में आकर भागीरथी से मिल जाती है—को अभिन्न ही माना है। विष्णु० 2,2,35 में भी अलकनंदा का उल्लेख है—'तथैवालकनंदापि दक्षिणेनैत्य-भारतम्'। अलकनंदा और नंदा के संगम पर नंदप्रयाग स्थित है।

अलका

कालिदास ने मेघदूत में इस नगरी को यक्षों के राजा कुबेर की राजधानी माना है—'गंतव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्'—पूर्वमेघ, 7। कवि के अनुसार अलका की स्थिति कैलासपर्वत पर थी और गंगा इसके निकट प्रवाहित होती थी—'तस्योत्संगे प्रणयनिइव स्रस्तगंगादुकूल, न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन। या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमानैर्मुक्ताजाल ग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्' पूर्वमेघ, 65। यहां तस्योत्संगे का अर्थ है उस पर्वत अर्थात् कैलास (पूर्वमेघ, 60-64) की गोदी में स्थित। कैलास के निकट ही कालिदास ने मानसरोवर का वर्णन भी किया है—'हेमाम्भोजप्रसविसलिलं मानसस्याददानः' पूर्वमेघ, 64। संभव है कालिदास के समय में या उससे पूर्व कैलास के क्रोड़ में (वर्तमान तिब्बत में) किसी पार्वतीय जाति अथवा यक्षों की नगरी वास्तव में ही बसी हो। कालिदास का अलका-वर्णन (उत्तरमेघ के प्रारंभ में) बहुत कुछ काल्पनिक होते हुए भी किन्हीं अंशों में तथ्य पर आधारित है—यह अनुमान असंगत नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त पद्य में कालिदास ने गंगानदी का उल्लेख अलका के निकट ही किया है। वर्तमान भौगोलिक स्थिति के अनुसार गंगा ही का एक स्रोत—अलकनंदा—कैलास के

पास प्रवाहित होता है और अलका की स्थिति अलकनंदा के तट पर ही रही होगी जैसा संभवतः नाम-साम्य से इंगित होता है। अलकनंदा गंगा ही की सहायक नदी है (दे० **अलकनंदा**)। दूसरे, यह भी संभव है कि कालिदास ने क्रौंचरंध्र के उस पार भी हिमालयश्रेणियों को सामान्यरूप से कैलास कहा हो (दे० पूर्वमेघ 64) न कि केवल मानसरोवर के निकटस्थ पर्वत को जैसा कि आजकल कहा जाता है। यह उपकल्पना उत्तरमेघ, 10 से भी पुष्ट होती है जिसमें वर्णित है कि अलका में स्थित यक्ष के घर की वापी में रहने वाले हंस बरसात में भी मानसरोवर नहीं जाते। हंसों के लिए अलका से मानसरोवर पर्याप्त दूर होगा नहीं तो इन पक्षियों के प्रव्रजन की बात कवि न कहता। इसलिए अलका की पहाड़ी के नीचे गंगा की स्थिति इस प्रकार स्पष्ट हो जाती है कि कालिदास के अनुसार कैलास हिमाचल को पार करने के पश्चात् अर्थात् गंगोत्री के उत्तर में मिलने वाली पर्वतश्रेणी का सामान्य नाम है, न कि आजकल की भांति केवल मानसरोवर के निकट स्थित पहाड़ों का, जैसा कि भूगोलविद् जानते हैं। गंगा का मूलस्रोत गंगोत्री के काफी उत्तर में, दुर्गम हिमालय की पहाड़ियों से प्रवाहित होता है। यह संभव है कि ये ही पर्वतश्रेणियां कालिदास के समय में कैलास के नाम से प्रसिद्ध हों। पौराणिक कथाओं में यह भी वर्णन है कि कैलास स्थित शिव की जटाजूट में ही प्रथम गंगा अवतरित हुई थी। अलका-वती नामक यक्षों की नगरी का उल्लेख बुद्धचरित 21,63 में भी है जिसका भावार्थ यह है कि 'तब अलकावती नामक नगरी मे तथागत ने भद्र नाम के एक सदाशय यक्ष को अपने धर्म में प्रव्रजित किया'।

अलकावती=**अलका**

अलप्पा

संभवतः यह नगर गंडक नदी के तट पर बिहार में स्थित था। बौद्धकाल में यहां वृज्जियों की राजधानी थी। जिला चंपारण में स्थित लौरियानन्दनगढ़ नामक ग्राम के पास ही अलप्पा की स्थिति रही होगी (दे० **अल्लकप्प**)।

अलवर (राजस्थान)

प्राचीन नाम शाल्वपुर। किवदंती के अनुसार महाभारतकालीन राजा शाल्व ने इसे बसाया था। अलवर शायद शाल्वपुर का अपभ्रंश है। महाभारत के अनुसार शाल्व ने जो मार्तिकावतक का राजा था तथा सौभ नामक अद्भुत विमान का स्वामी था, द्वारका पर आक्रमण किया था। मार्तिकावतक नगर की स्थिति अलवर के निकट ही मानी जा सकती है।

अलवाई (आलवाय) (केरल)

परियार नदी के तट पर एक छोटा-सा कस्बा और रेलस्टेशन है जो अद्वैतवाद के प्रचारक और महान् दार्शनिक शंकराचार्य (9 वीं शती ई०) का जन्मस्थान माना जाता है।

अलसंद

अलक्षेंद्र द्वारा काबुल के निकट बसाए हुए नगर अलेग्जेंड्रिया का भारतीय नाम। दे० महावंश (गेगर Geiger का अनुवाद) पृ० 194। मिलिंदपन्हो में अलसंद को द्वीप कहा गया है और इसमें स्थित कालसीग्राम नामक स्थान को मिलिन्द अथवा यवनराज मिनेन्डर (दूसरी शती ई० पू०) का जन्मस्थान बताया गया है। पर्शुस्थान की राजधानी हूपियन या वर्तमान ओपियन इसी स्थान पर थी (नं० ला० डे)।

अलाविराष्ट्र

दक्षिण-पूर्व एशिया का प्राचीन भारतीय औपनिवेशिक राज्य जिसकी स्थिति युन्नान (प्राचीन गंधार) के पूर्व और स्याम के पश्चिम में थी। इस राष्ट्र का उल्लेख इस देश के प्राचीन पाली इतिहास-ग्रन्थों में है। अलावि के दक्षिण में खेमराष्ट्र की स्थित थी।

अलिना (गुजरात)

बलभिराज ध्रुवभट्टशीलादित्य सप्तम का एक ताम्रदान-पट्ट इस स्थान से प्राप्त हुआ था जिसमें उनके द्वारा श्वेतक-अहार—वर्तमान कैरा में स्थित महिलाभिग्राम का ब्राह्मणों को पंचयज्ञ के प्रयोजनार्थ दान में दिए जाने का उल्लेख है

अलीगंज (ज़िला एटा, उ० प्र०)

1747 से याकूत खां ने बसाया था। यहां बहुत बड़ा मिट्टी का किला है।

अलीगढ़ (उ० प्र०)

प्राचीन नाम कोल है। कोल नाम की तहसील अब भी अलीगढ़ ज़िले में है। अलीगढ़ नाम नजफ़ खां का दिया हुआ है। 1717 ई० में साबितखां ने इसका नाम साबितगढ़ और 1757 में जाटों ने रामगढ़ रखा था। उत्तर मुगलकाल में यहां सिंधिया का कब्ज़ा था। उसके फ्रांसीसी सेनापति पेरन का किला आज भी खण्डहरों के रूप में नगर से तीन मील दूर है। इसे 1802 ई० में लार्ड लेक ने जीता था। यह क़िला पहले रामगढ़ कहलाता था।

अलोर (सिंध, प० पाकिस्तान)=**अरोर**=**रोरी**

सक्खर से छः मील पूर्व एक छोटा-सा क़स्बा है। यह हकरा नदी के

पश्चिमी तट पर बसा हुआ था। प्राचीन नगर के खण्डहर रोरी से पांच मील दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित हैं। यह नगर अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण करने के समय मुचुकर्ण या मूषिकों की राजधानी था (दे० केंब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 377) यूनानी लेखकों ने इन्हें मौसीकानोज लिखा है। इनके वर्णन के अनुसार मूषिकों की आयु 130 वर्ष होती थी (दे० **मूषिक**)। 712 ई० में अरब सेनापति मुहम्मद बिनकासिम ने इस नगर को राजा दाहिर से युद्ध करने के पश्चात् जीत लिया था। यहां ब्राह्मण राजा दाहिर की राजधानी थी। दाहिर इस युद्ध में मारा गया और सतीत्व की रक्षा के लिए नगर की कुलवधुएं चिताओं में जलकर भस्म हो गईं। एक प्राचीन दंतकथा के अनुसार 800 ई० के लगभग यह नगर सिंध नदी की बाढ़ में नष्ट हो गया था। कहा जाता है कि सेफुलमुल्क नामक व्यापारी ने एक सुन्दर युवती की एक क्रूर सरदार से रक्षा करने के लिए नदी का पानी नगर की ओर प्रवाहित कर दिया था जिससे नगर तबाह हो गया (स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० 369)।

अल्मोड़ा (उ० प्र०)

कुमायूं की पहाड़ियों में बसा हुआ पहाड़ी नगर। 1563 ई० तक यह अज्ञात स्थान था। इस वर्ष एक स्थानीय पहाड़ी सरदार चंदराजा बालो कल्याणचंद ने इसे अपनी राजधानी बनाया। उस समय इसे राजापुर कहते थे। ऐतिहासिक आधार पर कहा जा सकता है कि कुमायूं का सर्वप्राचीन राजवंश कत्यूरी नामक था। हेनरी इलियट ने कत्यूरी शासकों को खसजातीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किंतु स्थानीय परंपरा के अनुसार वे अयोध्या के सूर्यवंशी नरेशों के वंशज थे। 7वीं शती में कुमायूं में चंदराजाओं का शासन प्रारंभ हुआ था। 1797 ई० में अल्मोड़े को गोरखों ने कत्यूरियों से छीन लिया और नेपाल में मिला लिया। 1896 ई० में अंग्रेजों और गोरखों की लड़ाई के पश्चात् सिगौली की संधि के अनुसार अन्य अनेक पहाड़ी स्थानों के साथ ही अल्मोड़े पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

अल्लकप्प

बौद्ध-साहित्य के अनुसार यह स्थान उन आठ स्थानों में है जहां के नरेश भगवान् बुद्ध के अस्थि अवशेषों को लेने के लिए कुशीनगर आए थे। संभव है यह अलप्पा का ही रूपांतर हो। अल्लकप्प में बुलिय (वृज्जियों की एक शाखा) क्षत्रियों की राजधानी थी। यह राज्य वेटदीप या बेतिया (ज़िला चंपारन, बिहार) के सन्निकट ही रहा होगा क्योंकि धम्मपदटीका (दे० हार्वर्ड ओरियंटल सिरीज़

28 पृष्ठ 24) में अल्लकप्प के राजा और वेठदीपक नाम के 'वेठदीप' के राजाओं में परस्पर घनिष्ठ संबंध का उल्लेख है। अल्लकप्प की स्थिति लौरियानंदनगढ़ के पास स्थित विस्तृत खण्डहरों के स्थान पर मानी जाती है।

अवंतिपुर (कश्मीर)

कश्मीर का प्राचीन नगर। यहां का मन्दिर कश्मीर के प्रसिद्ध मार्तंड मंदिर की वास्तुपरंपरा में बनाया गया था।

अवंती = उज्जयिनी (म० प्र०)

प्राचीन संस्कृत तथा पाली साहित्य में अवंती या उज्जयिनी का सैकड़ों बार उल्लेख हुआ है। महाभारत सभा० 31,10 में सहदेव द्वारा अवंती को विजित करने का वर्णन है। बौद्धकाल में अवंती उत्तरभारत के षोडश महाजनपदों में से थी जिनकी सूची अंगुत्तरनिकाय में है। जैन ग्रंथ भगवतीसूत्र में इसी जनपद को मालव कहा गया है। इस जनपद में स्थूल रूप से वर्तमान मालवा, निमाड़, और मध्यप्रदेश का बीच का भाग सम्मिलित था। पुराणों के अनुसार अवंती की स्थापना यदुवंशी क्षत्रियों द्वारा की गई थी। बुद्ध के समय अवंती का राजा चंडप्रद्योत था। इसकी पुत्री वासवदत्ता से वत्सनरेश उदयन ने विवाह किया था जिसका उल्लेख भासरचित 'स्वप्नवासवदत्ता' नामक नाटक में है। वासवदत्ता को अवन्ती से संबंधित मानते हुए एक स्थान पर इस नाटक में कहा गया है—'हम् ! अतिसदृशी खल्वियमार्याय अवंतिकाया:' अंक 6। चतुर्थ शती ई० पू० में अवन्ती का जनपद मौर्य-साम्राज्य में सम्मिलित था और उज्जयिनी मगध-साम्राज्य के पश्चिम प्रांत की राजधानी थी। इससे पूर्व मगध और अवन्ती का संघर्ष पर्याप्त समय तक चलता रहा था जिसकी सूचना हमें परिशिष्टपर्वन् (पृ० 42) से मिलती है। कथासरित्सागर (टॉनी का अनुवाद जिल्द 2, पृ० 484) से यह भी ज्ञात होता है कि अवन्तीराज चंडप्रद्योत के पुत्र पालक ने कौशांबी को अपने राज्य में मिला लिया था। विष्णुपुराण 4,24,68 से विदित होता है कि संभवतः गुप्तकाल से पूर्व अवन्ती पर आभीर इत्यादि शूद्रों या विजातियों का आधिपत्य था—'सौराष्ट्रावन्ति··· विषयांश्च—आभीर शूद्राद्या भोक्ष्यन्ते'। ऐतिहासिक परंपरा से हमें यह भी विदित होता है कि प्रथम शती ई० पू० में (57 ई० पू० के लगभग) विक्रम संवत् के संस्थापक किसी अज्ञात राजा ने शकों को हराकर उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया था। गुप्तकाल में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अवंती को पुनः विजय किया और वहां से विदेशी सत्ता को उखाड़ फैंका। कुछ विद्वानों के मत में 57 ई० पू० में विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं था और चंद्रगुप्त द्वितीय ही ने अवंती-विजय

के पश्चात् मालव संवत् को जो 57 ई० पू० में प्रारम्भ हुआ था, विक्रम संवत् का नाम दे दिया।

चीनी यात्री युवानच्वांग के यात्रावृत्त से ज्ञात होता है कि अवन्ती या उज्जयिनी का राज्य उस समय (615-630 ई०) मालवराज्य से अलग था और वहां एक स्वतन्त्र राजा का शासन था। कहा जाता है शंकराचार्य के समकालीन अवन्तीनरेश सुधन्वा ने जैन धर्म का उत्कर्ष सूचित करने के लिए प्राचीन अवन्तिका का नाम उज्जयिनी (=विजयकारिणी) कर दिया था किंतु यह केवल कपोलकल्पना मात्र है क्योंकि गुप्तकालीन कालिदास को भी उज्जयिनी नाम ज्ञात था, 'वक्रः पंथा यदपि भवतः प्रस्थिस्योत्तराशां, सौधोत्संगप्रणय-विमुखोमास्म भूरुज्जयिन्याः' पूर्वमेघ० 29। इसके साथ ही कवि ने अवन्ती का भी उल्लेख किया है—'प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्' पूर्वमेघ 32। इससे संभवतः यह जान पड़ता है कि कालिदास के समय में अवन्ती उस जनपद का नाम था जिसकी मुख्य नगरी उज्जयिनी थी। 9 वीं व 10 वीं शतियों में उज्जयिनी में परमार राजाओं का शासन रहा। तत्पश्चात् उन्होंने धारानगरी में अपनी राजधानी बनाई। मध्यकाल में इस नगरी को मुख्यतः उज्जैन ही कहा जाता था और इसका मालवा के सूबे के एक मुख्य स्थान के रूप में वर्णन मिलता है। दिल्ली के सुलतान इल्तुतमिश ने उज्जैन को बुरी तरह से लूटा और यहां के महाकाल के अतिप्राचीन मन्दिर को नष्ट कर दिया। (यह मंदिर संभवतः गुप्तकाल से भी पूर्व का था। मेघदूत, पूर्वमेघ 36 में इसका वर्णन है—'अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्यकाले') अगले प्रायः पांचसौ वर्षो तक उज्जैन पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा। 1750 ई० में सिंधियानरेशों का शासन यहां स्थापित हुआ और 1810 ई० तक उज्जैन में उनकी राजधानी रही। इस वर्ष सिंधिया ने उज्जैन से हटाकर राजधानी ग्वालियर में बनाई। मराठों के राज्यकाल में उज्जैन के कुछ प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया था। इनमें महाकाल का मंदिर भी है।

जैन-ग्रंथ विविध तीर्थ कल्प में मालवा-प्रदेश का ही नाम अवंति या अवंती है। राजा शंबर के पुत्र अभिनंदनदेव का चैत्य अवन्ति के मेद नामक ग्राम में स्थित था। इस चैत्य को मुसलमान सेना ने नष्ट कर दिया था किंतु इस ग्रन्थ के अनुसार वैज नामक व्यापारी की तपस्या से खण्डित मूर्ति फिर से जुड़ गई थी।

उज्जयिनी के वर्तमान स्मारकों में मुख्य, महाकाल का मंदिर शिप्रा नदी के तट पर भूमि के नीचे बना है। इसका निर्माण प्राचीन मंदिर के स्थान पर रणोजी सिंधिया के मन्त्री रामचन्द्र बाबा ने 19वीं शती के उत्तरार्ध में करवाया

था। महाकाल की शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में गणना की जाती है। इसी कारण इस नगरी को शिवपुरी भी कहा गया है। हरसिद्धि का मन्दिर, कहा जाता है उसी प्राचीन मन्दिर का प्रतिरूप है जहां विक्रमादित्य इस देवी की पूजा किया करते थे। राजा भर्तृहरि की गुफ़ा संभवतः 11वीं शती का अवशेष है। चौबीस खंभा दरवाज़ा शायद प्राचीन महाकाल मंदिर के प्रांगण का मुख्य द्वार था। कालीदह-महल 1500 ई० में बना था। यहां की प्रसिद्ध वेधशाला जयपुरनरेश जयसिंह द्वितीय ने 1733 ई० में बनवाई थी। वेधशाला का जीर्णोद्धार 1925 ई० में किया गया था।

प्राचीन अवंती वर्तमान उज्जैन के स्थान पर ही बसी थी, यह तथ्य इस बात से सिद्ध होता है कि शिप्रा नदी जो आजकल भी उज्जैन के निकट बहती है, प्राचीन साहित्य में भी अवंती के निकट ही वर्णित है—'यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः' पूर्वमेघ 33। उज्जैन से एक मील उत्तर की ओर भैरोगढ़ में दूसरी-तीसरी शती ई० पू० की उज्जयिनी के खंडहर पाए गए हैं। यहां वेश्या-टेकरी और कुम्हार-टेकरी नाम के टीले हैं जिनका सम्बन्ध प्राचीन किंवदंतियों से है।

(2) (बर्मा) ब्रह्मदेश की प्राचीन भारतीय नगरी जिसे संभवतः उज्जयिनी से ब्रह्मदेश में आकर बस जाने वाले हिंदू औपनिवेशिकों ने बसाया था।

अवंद (बिलोचिस्तान, प० पाकिस्तान)

चीनी यात्री युवानच्वांग की जीवनी में इस स्थान का उल्लेख है। युवान सिंधप्रदेश से होकर अवंद पहुंचा था। वाटर्स के अनुसार अवंद की स्थिति क्वेटा के निकट थी। युवान के वृत्त से ज्ञात होता है कि अवंद में भेड़ों और घोड़ों की बहुतायत थी। उसने लिखा है कि यहां के विहारों में 2000 भिक्षु निवास करते थे। सियूकी से सूचित होता है कि युवान अवंद से लौटकर दुबारा नालंदा गया था।

अवटोदा

श्रीमद्भागवत 5, 19, 8 में नदियों की लंबी सूची के अंतर्गत इस नदी का उल्लेख है—'चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी'—संदर्भ से यह दक्षिण भारत की कोई नदी जान पड़ती है।

अवमुक्त, अवमुक्तक

ब्रह्मपुराण 113, 22 में इस तीर्थ को गोमती (गोदावरी) के तट पर स्थित बताया गया है। शायद महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में इसका अवमुक्तक रूप में उल्लेख है। समुद्रगुप्त ने अवमुक्तक के शासक नीलराज

को विजित किया था—'कांचेयक विष्णुगोप, अवमुक्तक नीलराज, वेंगीयक हस्तिवर्मा'—अवमुक्तक कांची या कांजीवरम् के पास कोई नगर था।

अवष्ठ = अंबष्ठ

अवष्ठ अंबष्ठ का पाठांतर है। महा० सभा० 32, 8 में इसका उल्लेख है।

अवाकीर्ण

'जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा, अवाकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकम्' महा० शल्य, 41, 12। इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि अवाकीर्ण, सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों में गिना जाता था। इसकी यात्रा बलराम ने की थी। प्रसंगक्रम से ज्ञात पड़ता है कि अवाकीर्ण पंजाब में कहीं स्थित होगा।

अविमुक्त

संभवतः वाराणसी का एक नाम—(दे० शिवपुराण 41; मत्स्यपुराण 182-184)।

अविस्थल

महाभारत उद्योग० 31-19 में उल्लिखित पांच स्थानों में से एक जिन्हें युधिष्ठिर ने दुर्योधन से पांडवों के लिए मांगा था। उन्होंने यह संदेश दुर्योधन के पास संजय द्वारा भिजवाया था—'अविस्थलंवृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्, अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकं च पंचमम्' अर्थात् हमें केवल अविस्थल, वृकस्थल, माकंदी, वारणावत तथा पांचवां कोई भी ग्राम दे दें। वृकस्थल या वृकप्रस्थ (वर्तमान बागपत, जिला मेरठ, उ० प्र०), माकन्दी और वारणावत (वर्तमान बरनावा, जिला मेरठ) हस्तिनापुर के निकट ही स्थित थे। अविस्थल भी इनके निकट ही होगा यद्यपि इसका ठीक-ठीक अभिज्ञान संदिग्ध है। कुछ विद्वानों के अनुसार अविस्थल का शुद्ध पाठ कपिस्थल या कपिष्ठल होना चाहिए। कपिस्थल वर्तमान कैथल (जिला करनाल, पंजाब) है।

अशोक मालव (दे० नागमाल)

अशोकवनिका

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार लंका में स्थित एक सुंदर उद्यान था जिसमें रावण ने सीता को बंदी बनाकर रखा था—'अशोकवनिकामध्ये मैथिलीं नीयतामिति, तत्रेयं रक्ष्यतां गूढं युष्माभिः परिवारिता' अरण्य० 56, 30। अरण्य० 55 से ज्ञात होता है कि रावण पहले सीता को अपने राजप्रासाद में लाया था और वहीं रखना चाहता था। किंतु सीता की अडिगता तथा अपने प्रति उसका तिरस्कार-भाव देखकर उसे धीरे-धीरे मना लेने के लिए प्रासाद से कुछ दूर अशोकवनिका में कैद कर दिया था। सुंदर० 18 में अशोकवनिका का सुंदर वर्णन है—'तां

नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः, वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम्। सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ईहामृगैश्च विविधैर्वृतां दृष्टिमनोहरैः। वीथीः संप्रेक्षमाणश्च मणिकांचनतोरणाम् नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम्, अशोकवनिकामेव प्राविवशत्संततद्रुमाम्, सुंदर०, 18, 6-9। अध्यात्मरामायण में भी सीता का अशोकवनिका या अशोकविपिन में रखे जाने का उल्लेख है—'स्वान्तःपुरे रहस्ये तामशोकविपिने क्षिपत्, राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्धयान्वपालयत्' अरण्य०, 7, 65। वाल्मीकि ने सुंदर० 3,71 में हनुमान् द्वारा अशोकवनिका के उजाड़े जाने का वर्णन है—'इतिनिश्चित्य मनसा वृक्षखंडान्महाबलः, उत्पाट्याशोकवनिकां निवृक्षामकरोत् क्षणात्' सुंदर० 3, 71। अशोकवनिका में हनुमान् ने साल, अशोक, चंपक, उद्दालक, नाग, आम्र तथा कपिमुख नामक वृक्षों को देखा था। उन्होंने एक शीशम के वृक्ष पर चढ़ कर प्रथम बार सीता को देखा था—'सुपुष्पिताग्रान्रुचिरांस्तरुणांकुरपल्लवान्, तामारुह्य महावेगः शिंशपापर्णसंवृताम्—सुंदर० 14, 41। इसी वृक्ष के नीचे उन्होंने सीता से भेंट की थी—(दे० अध्यात्म० सुंदर० 3, 14—'शनैरशोकवनिकां विचिन्वञ्शिंशपातरुम्, अद्राक्षं जानकीमत्र शोचयन्तीं दुःखसंप्लुताम्')

अशोक वाटिका दे० **अशोकवनिका**

अशोकाराम

महावंश 5, 80 के अनुसार पाटलीपुत्र में अशोक द्वारा निर्मित विहार। इस विहार का निरीक्षण इन्द्रगुप्त नामक थेर भिक्षु के निरीक्षण में हुआ था। यहीं तीसरी बौद्ध संगीति (सभा) अशोक के समय में हुई थी।

अश्मक, अस्सक, अश्मत

बौद्ध साहित्य में इस प्रदेश का, जो गोदावरी तट पर स्थित था, कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है। 'महागोविन्दसूत्तन्त' के अनुसार यह प्रदेश रेणु और धृतराष्ट्र के समय में विद्यमान था। इस ग्रन्थ में अस्सक के राजा ब्रह्मदत्त का उल्लेख है। सुत्तनिपात, 977 में अस्सक को गोदावरी-तट पर बताया गया है। इसकी राजधानी पोतन, पौदन्य, या पैठान (प्रतिष्ठान) में थी। पाणिनि ने अष्टाध्यायी (4, 1, 173) में भी अश्मकों का उल्लेख किया है। सोननंद-जातक में अस्सक को अवंती से संबंधित कहा गया है। अश्मक नामक राजा का उल्लेख वायुपुराण, 88, 177-178 और महाभारत में है—'अश्मको नाम राजर्षिः पौदन्यं योन्यवेशयत्'। संभवतः इसी राजा के नाम से यह जनपद अश्मक कहलाया। ग्रीक लेखकों ने अस्सकेनोई (Assukenoi) लोगों का उत्तर-पश्चिमी भारत में उल्लेख किया है। इनका दक्षिणी अश्वकों से ऐतिहासिक सम्बन्ध रहा

होगा या यह अश्वकों का रूपान्तर हो सकता है (दे० अश्वक)।

अश्व

महाभारत में अश्व नामक नदी का उल्लेख चर्मण्वती की सहायक नदी के रूप में है। नवजात शिशु कर्ण को कुंती ने जिस मंजूषा में रखकर अश्व नदी में प्रवाहित कर दिया था वह अश्व से चंबल, यमुना और फिर गंगा में बहती हुई चंपापुरी (ज़िला भागलपुर–बिहार) जा पहुंची थी—'मंजूषा त्वश्वनद्याः साययौ चर्मण्वतीं नदीम् चर्मण्वत्याश्च यमुनां ततो गंगां जगाम ह। गंगायाः सूतविषयं चम्पामनुययौ पुरीम्' वन० 308, 25-26। अश्व नदी का नाम शायद इसके तट पर किए जाने वाले अश्वमेध-यज्ञों के कारण हुआ था। अश्वमेधनगर इसी नदी के किनारे बसा हुआ था, इसका उल्लेख महाभारत सभा० 29 में है। यह नदी वर्तमान कालिंदी हो सकती है जो कन्नौज के पास गंगा में मिलती है।

(2) अश्वतीर्थ का वर्णन महाभारत, वन० के तीर्थपर्व के अंतर्गत है—'तत्रदेवान् पितॄन विप्रांस्तर्पयित्वा पुनः पुनः, कन्यातीर्थेऽश्वतीर्थे च गवां तीर्थे च भारत' वन० 95,3। यह स्थान कान्यकुब्ज या कन्नौज (उ० प्र०) के निकट गंगा-कालिंदी संगम पर स्थित था। कान्यकुब्ज को इस उल्लेख में कन्यातीर्थ कहा गया है। यहां गाधि का तपोवन था। स्कंदपुराण, नगरखण्ड 165,27 के अनुसार ऋचीक मुनि को वरुण ने एक सहस्र अश्व दिए थे जिनको लेकर उन्होंने गाधि की पुत्री सत्यवती से विवाह किया था। इसी कारण इसे अश्वतीर्थ कहा जाता था—'ततः प्रभृति विख्यातमश्वतीर्थं धरातले, गंगातीरे शुभे पुण्ये कान्यकुब्जसमीपगम्'। महाभारत, अनुशासन 4,17 में भी इसी कथा के प्रसंग में यह उल्लेख है—'अदूरे कान्यकुब्जस्य गंगायास्तीरमुत्तमम्, अश्वतीर्थं तदद्यापि मानवैः परिचक्ष्यते'। पीछे कान्यकुब्ज का ही एक नाम अश्वतीर्थ पड़ गया था। वास्तव में यह दोनों स्थान सन्निकट रहे होंगे।

अश्वक

यह गणराज्य अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पूर्व) सिंध और पंजकौरा नदियों के बीच के प्रदेश में बजौरघाटी के अंतर्गत बसा हुआ था। ग्रीक लेखकों के अनुसार यहाँ की राजधानी मसागा नाम के सुदृढ़ एवं सुरक्षित नगर में थी। कैंब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया के अनुसार अश्व या फारसी अस्प से ही इस जाति का नाम अश्वक हुआ था। अलक्षेंद्र मसागा की लड़ाई में तीर लगने से घायल हो गया था और वह वीरों की इस नगरी को केवल धोखे से ही जीत सका था।

अश्वत्थामा (उड़ीसा)

भुवनेश्वर से 2 मील पर स्थित धवलागिरि की पहाड़ी को ही अश्वत्थामा-पर्वत कहा जाता है। यहां मौर्यसम्राट् अशोक का एक अभिलेख उत्कीर्ण है। कहते हैं कि इतिहास-प्रसिद्ध कलिंग युद्ध जिसने अशोक के हृदय को बदल दिया था, इसी स्थान पर हुआ था। पर्वत पर पहले अश्वत्थामा विहार स्थित था।

अश्वत्थामागिरि = असीरगढ़

अश्वत्थामापुर = असोथर

अश्वबोधतीर्थ (भड़ौच, गुजरात)

भृगुकच्छ के निकट एक जैनतीर्थ जिसका उल्लेख विविधतीर्थ-कल्प में है। जिन सुव्रत यहां प्रतिष्ठानपुर से आए थे और इस स्थान के निकट वन में उन्होंने राजा जितशत्रु को उपदेश दिया था। जितशत्रु उस समय अश्वमेध-यज्ञ करने जा रहे थे। जैनधर्म में दीक्षित होने के उपरांत उन्होंने यहाँ एक चैत्य बनवाया जो अश्वबोधतीर्थ कहलाया। जैनग्रंथ प्रभावकचरित में अश्वबोध मंदिर का इतिहास वर्णित है। इसमें इसका अशोक के पौत्र संप्रति द्वारा जीर्णोद्धार कराए जाने का उल्लेख है। 1184 ई० के लगभग रचे गए सोमप्रभा-सूरि के ग्रंथ कुमारपाल प्रतिबोध में भी इस तीर्थ में हेमचंद्रसूरि द्वारा प्राचीन मंदिर का पुर्ननिर्माण करवाने का उल्लेख है। इस तीर्थ को शकुनिकाविहार भी कहते थे।

अश्वमेधेश्वर

'सोऽश्वमेधेश्वरं राजन् रोचमानं सहानुगम् जिगाय समरे वीरो बलेन बलिनांवर:' महा० सभा० 29,8। संभवत: यह तीर्थ अश्व नदी के तट पर स्थित था। अश्व चंबल की सहायक नदी है।

अश्विनी, अश्विनीकुमार क्षेत्र

महाभारत, अनुशासन पर्व में इस तीर्थ का वर्णन है। प्रसंग से, देविकाकुण्ड के निकट इसकी स्थिति मानी जा सकती है। देविका नदी संभवत: पंजाब की देह है। 'देविकायामुपस्पृश्य तथा सुंदरिकाह्लदे, अश्विन्यां रूपवर्चस्कं प्रेत्य वै लभते नर:' अनुशासन०, 25,21।

अष्टनगर = हश्तनगर

प्राचीन पुष्कलावती के स्थान पर बसा हुआ वर्तमान क़स्बा।

अष्टभुजा (ज़िला मिर्ज़ापुर, उ० प्र०)

मध्यकालीन मूर्तियों के अवशेष यहाँ प्राप्त हुए हैं। यह देवी का स्थान है।

अष्टापद

जैन-साहित्य के सबसे प्राचीन आगमग्रन्थ एकादशअंगादि में उल्लिखित

तीर्थ जिसको हिमालय में स्थित बताया गया है। संभवत: कैलास को ही जैन-साहित्य में अष्टापद कहा गया है। इस स्थान पर प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण हुआ था।

असनी (ज़िला फतहपुर, उ० प्र०)

फतहपुर से 10 मील पर है। किंवदंती के अनुसार असनी का नामकरण अश्विनीकुमारों के नाम पर हुआ है। इनका मंदिर भी यहां है। कहा जाता है कि मु० ग़ौरी के कन्नौज पर आक्रमण के समय जयचंद ने राजधानी छोड़ने से पूर्व अपना राजकोष यहां छिपा दिया था। यहां का पुराना किला अकबर के समकालीन हरनाथ ने बनवाया था।

असम दे० **कामरूप; प्राग्ज्योतिषपुर**

असम शब्द अहोम शब्द का रूपांतर है। यह असम में प्रारंभिककाल में राज्य करने वाली जाति का नाम था।

असाई (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

1803 ई० में अंग्रेजों ने मराठों को असाई के युद्ध में पराजित किया था। इस विजय से अंग्रेजों का दक्षिण में काफी प्रभुत्व बढ़ गया था। असाई के युद्ध में मराठों की सेना में फ्रांसीसी सैनिक भी थे और सेना फ्रांसीसी ढंग पर प्रशिक्षित थी।

असाई खेड़ा (ज़िला इटावा, उ० प्र०)

महमूद गजनी 1018 ई० में यहां आया था। उस समय इस स्थान को महानगरी कन्नौज का एक द्वार माना जाता था।

असावल (गुजरात)

अहमदाबाद का प्राचीन नाम। यह नगर साबरमती—प्राचीन साभ्रमती के तट पर बसा हुआ था। 1411 ई० में अहमदशाह प्रथम बहमनी ने अहमदाबाद की नींव डाली थी। इससे पूर्व गुजरात के हिंदू नरेशों की राजधानी वलभि, पाटन, अन्हलवाड़ा और असावल में रही थी। असावल आशापल्ली का अपभ्रंश माना जाता है।

असिक=आर्षिक

इस स्थान को, महारानी गौतमीबलश्री के नासिक अभिलेख (द्वितीय शती ई०) में उसके पुत्र शातवाहननरेश गौतमीपुत्र के राज्य के अंतर्गत बताया गया है। आर्षिक का उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य 14, 22 में भी है। यह असिक यदि महाभारत में तीर्थरूप में वर्णित आर्षिक का ही अपभ्रंश रूप है तो इसकी स्थिति पुष्कर के पार्श्ववर्ती प्रदेश में रही होगी।

असिक्नी

वर्तमान चिनाब नदी (पाकिस्तान) का वैदिक नाम। ऋग्वेद 10, 75, 5-6 में नदीसूक्त के अंतर्गत इसका उल्लेख इस प्रकार है—'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितिस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया'। यह नदी अथर्ववेद में वर्णित त्रिककुद् (त्रिकूट)-पर्वत की घाटी में बहती है। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि पूर्व-वैदिक काल में सिंधु और असिक्नी नदियों के निकट क्रिवि लोगों का निवास था जो कालांतर में वर्तमान पश्चिमी पंजाब और मध्यउत्तरप्रदेश में पहुंच कर पांचाल कहलाए। पश्चवर्ती साहित्य में असिक्नी को चन्द्रभागा कहा गया है किंतु कई स्थानों पर असिक्नी नाम भी उपलब्ध है, यथा—श्रीमद्भागवत, 5, 19, 18 में—'मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः' दे० **चंद्रभागा**।

असितांजन

घटजातक (कॉवेल सं० 454) में वर्णित एक नगर जिसकी स्थिति उत्तरापथ में मानी गई है। इसे कंस (वासुदेव कृष्ण का शत्रु) की राजधानी माना गया है। कृष्ण ने कंस को मारकर असितांजन पर अधिकार कर लिया था। इसे उत्तर-मधुरा मथुरा से भिन्न माना गया है। असितांजन नामक नगर का अस्तित्व वास्तविक जान पड़ता है।

(2) यह (बर्मा) ब्रह्मदेश का प्राचीन नगर है। इस स्थान पर अतिप्राचीन काल से मध्ययुग तक भारतीय औपनिवेशिकों का शासन रहा। भारतीय संस्कृति का प्रसार भी इस प्रदेश में दूर-दूर तक हुआ। असितांजन बर्मा में प्राचीन भारतीयों का एक प्रमुख स्मारक है।

असी

वाराणसी के निकट गंगा नदी में मिलने वाली एक प्रसिद्ध छोटी शाखानदी। कहते हैं इस नगरी का नाम असी और वरुणा नदियों के बीच में स्थित होने के कारण ही वाराणसी हुआ था। असी को असीगंगा भी कहते हैं—'संवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर, सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ शरीर'—इस प्रचलित दोहे से यह भी ज्ञात होता है कि महाकवि तुलसी ने इसी नदी के तट पर संभवतः वर्तमान अस्सी घाट के पास अपनी इहलीला समाप्त की थी।

असीरगढ़

प्राचीन नाम अश्वत्थामागिरि कहा जाता है। यहां का किला मुगलों के समय में बहुत प्रसिद्ध था। अकबर इसे बड़ी कठिनाई से जीत सका था। किले के अंदर शिवमंदिर है जिसका संबंध अश्वत्थामा से बताया जाता है। यह बुरहान-

पुर (महाराष्ट्र) के निकट स्थित है। बुरहानपुर मुगलकाल में दक्षिण भारत पहुंचने का नाका समझा जाता था। किला 850 फुट ऊंची पहाड़ी पर है। आसा अहीर के नाम पर इस किले को पहले आसा अहीरगढ़ कहा जाता था। 1370 ई० से 1600 ई० तक यहां का शासन बुरहानपुर के फ़ारुखी वंश के हाथ में था।

असोथर (ज़िला फ़तहपुर, उ० प्र०)

प्राचीन नाम अश्वत्थामापुर है। 18वीं शती में महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के समकालीन भगवंतराय-खींची यहां के महाराज थे। इन्होंने कुछ दिन तक शिवाजी के राजकवि भूषण और उनके भ्राता मतिराम को आश्रय दिया था जिसके कारण हिंदी रीतिकालीन काव्य की बहुत उन्नति हुई थी। यहां अरारूसिंह का 17वीं शती के प्रारंभ में बना किला है।

अस्तगिरि

'पूर्वस्तत्रोदय गिरिर्जला धारस्तथापरः, तथा रैवतकः श्यामस्तथैवास्त गिरिर्द्विज' विष्णु० 2, 4, 61। इस उद्धरण के प्रसंग के अनुसार अस्तगिरि शाकद्वीप के सात पर्वतों में से एक था।

अस्थि = हड्डी = हिड्डा (अफ़गानिस्तान)

वर्तमान जलालाबाद या प्राचीन नगरहार से 5 मील दक्षिण में है। बौद्ध-काल में यह प्रसिद्ध तीर्थ था। फ़ाह्यान तथा युवानच्वांग दोनों ने ही यहां के स्तूपों तथा गगनचुंबी विहारों का वर्णन किया है। यहां कई स्तूप थे जिनमें बुद्ध का दांत, तथा शरीर की अस्थियों के कई अंश निहित थे। जिस स्तूप में बुद्ध के सिर की अस्थि रखी थी उसके दर्शन करने वालों से एक स्वर्णमुद्रा ली जाती थी फिर भी यहां यात्रियों का मेला-सा लगा रहता था। नगर 3-4 मील के घेरे में एक पहाड़ी के ऊपर स्थित था। पहाड़ी पर एक सुंदर उद्यान के भीतर एक दुमंज़िला धातुभवन था जिसमें किंवदंती के अनुसार बुद्ध की उष्णीष-अस्थि, शिरकंकाल, एक नेत्र, क्षत्र-दंड और संघटी निहित थी। धातुभवन के उत्तर में एक पत्थर का स्तूप था। जनश्रुति के अनुसार यह स्तूप ऐसे अद्भुत पाषाण का बना था कि उंगली से छूने से ही हिलने लगता था। हिड्डा में फ्रांसीसी पुरातत्वज्ञों ने एक प्राचीन स्तूप को खोज निकाला है जिसे पश्तो में खायस्ता या विशाल स्तूप कहते है। यह अभी तक अच्छी दशा में है।

अस्थि-ग्राम

जैन ग्रन्थ कल्पसूत्र के अनुसार तीर्थंकर महावीर जी ने इस स्थान पर रह कर प्रथम वर्षाकाल बिताया था। यह स्थान वैशाली के निकट था।

अस्सक=**अश्मक**

अस्सपुर

चेतिय-जातक के अनुसार चेदि-प्रदेश का एक नगर जिसकी स्थापना उपचर नरेश के पुत्र ने की थी।

अहमदाबाद (गुजरात)

साबरमती या प्राचीन साभ्रमती के तट पर बसा हुआ नगर। 1411 ई० में अहमदशाह बहमनी ने इस नगर की नींव प्राचीन हिंदू नगर असावल या आशापल्ली के स्थान पर रखी थी। इससे पहले गुजरात की राजधानी अन्हलवाड़ा या पाटन और उससे भी पहले वलभि में थी। जैन स्तोत्र तीर्थमालाचैत्य वंदन में संभवतः अहमदाबाद को करणावती कहा गया है—'वेदे श्रीकरणावती शिवपुरे नागद्रहे नाणके'। 1273 ई० से 1700 ई० तक अहमदाबाद की समृद्धि गुजरात की राजधानी के रूप में बढ़ी-चढ़ी रही। 1615 ई० में सर टामस रो ने अहमदाबाद को तत्कालीन लंदन के बराबर बड़ा नगर बताया था। 1638 ई० में एक यूरोपीय पर्यटक ने अहमदाबाद के विषय में लिखा था कि संसार की कोई जाति या एशिया की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो अहमदाबाद में न दिखाई पड़े—There is scarce any nation in the world or any commodity in Asia but may not be seen in this city'. आश्चर्य नहीं कि शाहजहां ने मुमताजमहल से विवाह के पश्चात् अपने जीवन के कई सुखद वर्ष यहीं बिताए थे। अहमदाबाद की तत्कालीन समृद्धि का कारण इसका सूरत आदि बड़े बंदरगाहों के पृष्ठ-प्रदेश में स्थित होना था। इसीलिए इसे गुजरात की राजधानी बनाया गया था। गुजरात के सुलतानों के बनवाए हुए यहाँ अनेक भवन आज भी वर्तमान हैं जो हिंदू-मुसलिम वास्तुकला के संगम के सुंदर उदाहरण हैं। गुजरात में इस मिश्र-शैली की नींव डालने वाला सुलतान अहमदशाह ही था। इन भवनों में पत्थर की जाली और नक़्क़ाशी का काम सराहनीय है। यहां के स्मारकों में जामा मसजिद (1424 ई०) मुख्य है।। इसमें 260 स्तंभ हैं। अहमदशाह की बेगमों के मकबरों को रानी की हज़रा कहा जाता है। रानी सिप्री की मसजिद 50 × 20 फुट के परिमाण में बनी है। सीदी-सैयद की मसजिद पत्थर की जालियों से सज्जित खिड़कियों के लिए प्रख्यात है। नगर के दक्षिण फाटक—राजपुर से पौन मील पर कांकरिया झील है जिसे 1451 में सुलतान कुतुबुद्दीन ने बनवाया था। झील के मध्य में एक टापू है। यहां एक दुर्ग का निर्माण भी किया गया था। अहमदाबाद में समृद्धि की विपुलता होते हुए भी एक बड़ा

दोष यह था कि यहां धूल बहुत उड़ती थी जिसके कारण जहांगीर ने नगर का नाम ही गर्दाबाद रख दिया था ।

अहल्याश्रम

वाल्मीकि-रामायण, बाल० 48 में वर्णित गौतम और अहल्या का आश्रम मिथिला या जनकपुर (उत्तरी बिहार या नेपाल) के निकट ही था—'मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुंगवम्' बाल० 48,11। रामायण के वर्णन से ज्ञात होता है कि गौतम के शाप के कारण अहल्या इसी निर्जन स्थान में रह कर तपस्या के रूप में अपने पाप का प्रायश्चित कर रही थी। तपस्या पूर्ण होने पर रामचन्द्रजी ने उसका अभिनन्दन किया और उसको गौतम के शाप से निवृत्ति दिलाई। रघुवंश 11,33 में कालिदास ने भी मिथिला के निकट ही इस आश्रम का उल्लेख किया है—'तैः शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरुष्व गृह्यत येषु दीर्घतपसः परिग्रहोवासव क्षणकलत्रतां ययौ।' कालिदास ने अहल्या को शिलामयी कहा है—(रघु० 11,34) यद्यपि ऐसा कोई उल्लेख वाल्मीकि-रामायण में नहीं है। जानकीहरण में कुमारदास ने भी इस आश्रम का वर्णन किया है (6,14–15) अध्यात्म-रामायण में विस्तारपूर्वक अहल्याश्रम की प्राचीन कथा दी हुई है (बाल० सर्ग 51)। एक किंवदंती के अनुसार उत्तर-पूर्व-रेलवे के कमतौल स्टेशन के निकट अहियारी ग्राम अहल्या के स्थान का बोध कराता है। इसे सिंहेश्वरी भी कहते हैं।

अहार (उदयपुर, राजस्थान)

1954–55 में भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा की गई खुदाई में यहां से काले और लाल रंग के मिट्टी के बर्तनों के अवशेष प्राप्त हुए थे। इस प्रकार के मृद्भांड दक्षिण भारत के महापाषाण (Megalithic) मृद्भांडों के सदृश हैं और ये प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक काल के अंतर्वर्ती युग से संबंधित माने जाते हैं। यह स्थल उदयपुर के स्टेशन के निकट है।

अहिक्षेत्र = अहिच्छत्र (जिला बरेली, उ० प्र०)

आँवला नामक स्थान के निकट इस महाभारतकालीन नगर के विस्तीर्ण खण्डहर अवस्थित हैं। यह नगर महाभारतकाल में तथा उसके पश्चात् पूर्व-बौद्धकाल में भी काफी प्रसिद्ध था। यहां उत्तरी पांचाल की राजधानी थी। 'सोऽध्यावसद्दीनमना काम्पिल्यं च पुरोत्तमम्। दक्षिणांश्चापि पंचालान् यावच्चर्मण्वती नदी। द्रोणेन चैव द्रुपदं परिभूयाथ पातितः। पुत्रजन्म परीप्सन् वै पृथिवीमन्वसंचरत्, अहिच्छत्रं च विषयं द्रोणः समभिपद्यत' महा० आदि०, 137,73–74–76। इस उद्धरण से सूचित होता है कि द्रोणाचार्य ने पांचाल-

नरेश द्रुपद को हरा कर दक्षिण पांचाल का राज्य उसके पास छोड़ दिया था और अहिच्छत्र नामक राज्य अपने अधिकार में कर लिया था। अहिच्छत्र कुरुप्रदेश के पार्श्व में ही स्थित था—यह उद्योग० 29,30 से भी सिद्ध होता है—'अहिच्छत्रं कालकूटं गंगाकूलं च भारत'। सम्राट् अशोक ने यहां अहिच्छत्र नामक विशाल स्तूप बनवाया था। जैनसूत्र प्रज्ञापणा में अहिच्छत्र का कई अन्य जनपदों के साथ उल्लेख है।

चीनी यात्री युवानच्वांग जो यहां 640 ई० के लगभग आया था, नगर के नाम के बारे में लिखता है कि किले के बाहर नागह्रद नामक एक ताल है जिसके निकट नागराज ने बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पश्चात् इस सरोवर पर एक छत्र बनवाया था। अहिच्छत्र के खण्डहरों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ढूह एक स्तूप है जिसकी आकृति चक्की के समान होने से इसे स्थानीय लोग 'पिसनहारी का छत्र' कहते हैं। यह स्तूप उसी स्थान पर बना है जहां किंवदंती के अनुसार बुद्ध ने स्थानीय नाग राजाओं को बौद्धधर्म की दीक्षा दी थी। यहां से मिली हुई मूर्तियां तथा अन्य वस्तुएं लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। वेबर ने शतपथ ब्राह्मण (13,5,4,7) में उल्लिखित परिवक्रा या परिचक्रा नगरी का अभिज्ञान महाभारत की एकचक्रा (संभवतः अहिच्छत्र) के साथ किया है (दे० वैदिक इंडेक्स 1,494)। महाभारत में इसे अहिक्षेत्र तथा छत्रवती नामों से भी अभिहित किया गया है। जैन-ग्रन्थ विविधतीर्थकल्प में इसका एक अन्य नाम संख्यावती भी मिलता है (दे० **संख्यावती**)। एक अन्य प्राचीन जैन ग्रन्थ तीर्थमाला-चैत्यवंदन में अहिक्षेत्र का शिवपुर नाम भी बताया गया है—'वंदे श्री करणावती शिवपुरे नागद्रहे नाणके'। जैन-ग्रन्थों में इसका एक अन्य नाम शिवनयरी भी मिलता है (दे० एंशेंट जैन हिम्स पृ० 56)।

टॉलमी ने अहिच्छत्र का अदिसद्रा नाम से उल्लेख किया है (दे० ए क्लासिकल डिक्शनरी ऑव हिंदू माइथोलोजी एण्ड रिलीजन, ज्योग्रेफी, हिस्ट्री, एण्ड लिटरेचर—सप्तम संस्करण)।

(2) सपादलक्ष या सिवालिक पहाड़ियों (पश्चिमी उ० प्र०) में बसे हुए देश की राजधानी। डा० भंडारकर के अनुसार दक्षिण के चालुक्य मूलतः यहीं के निवासी थे।

अहियारी दे० **अहल्याश्रम**

अहिवरण दे० **बुलंदशहर**

अहिस्थल दे० **आसंदीवत्**

अहीरवाड़ा

झांसी और ग्वालियर के बीच का प्रदेश जहां गुप्तकाल में आभीरों का

निवास था।

अहोगंग

महावंश 4,18 में उल्लिखित हिमाचल-श्रेणी। संभवतः यह हरिद्वार की पर्वत-माला का नाम है।

अहोबिल (मद्रास)

मसलीपट्टम—हुबली रेलमार्ग पर नंदयाल स्टेशन से लगभग 34 मील दूर है। इस प्राचीन तीर्थ का संबंध श्रीराम तथा अर्जुन से बताया जाता है। किवदंती के अनुसार नृसिंह भगवान् का अवतार इसी स्थान पर हुआ था।

आंजनग्राम (बिहार)

रांची-लोहरदगा रेलमार्ग पर लोहरदगा स्टेशन से गुमला जाने वाली सड़क पर स्थित टोटो ग्राम से 3 मील दूर है। इसे स्थानीय जनश्रुति में श्रीराम के भक्त अंजनापुत्र हनुमान् का जन्मस्थान बताया जाता है। अंजना के नाम पर यहां एक अंजनी-गुफा भी है। वाल्मीकि-रामायण किष्किंधा० 66 में अजना की कथा वर्णित है—'अंजनेति परिख्याता पत्नी केसरिणो हरेः'। 66,20 के अनुसार अंजना ने हनुमान् को पर्वतगुहा में जन्म दिया था—'एवमुक्ता ततस्तुष्टा जननी ते महाकपे, गुहायां त्वां महाबाहो प्रजज्ञे प्लवगर्षभ'।

आंध्र

दक्षिण-भारत का तेलुगुभाषी प्रदेश। ऐतरेय-ब्राह्मण, 7,18 में आंध्र, शबर पुलिंद आदि दक्षिणात्य-जातियों का उल्लेख है जो मूलतः विंध्यपर्वत की उपत्यकाओं में रहती थीं। महाभारत सभा० 31,71 में आंध्रों का उल्लेख है—पांड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोण्ड्रकेरलैः आंध्रस्तालवनांश्चैव कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्'। वन० 51,22 में आंध्रों का चोलों और द्राविड़ों के साथ उल्लेख है—'सवंगांगान् सपौंड्रोड्रान् सचोलद्राविडान्ध्रकान्'। अशोक के शिला-अभिलेख 13 में भी आंध्रों को मगध-साम्राज्य के अन्तर्गत बताया गया है। विष्णुपुराण 4,24,64 में आंध्र देश का इस प्रकार उल्लेख है—'कोसलान्ध्रपुंड्रताम्रलिप्त समुद्रतट पुरीं च देवरक्षितो रक्षितः'। 240 ई० पू० के लगभग आंध्रों ने दक्षिण में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था जो धीरे-धीरे भारत-प्रायद्वीप भर में विस्तृत हो गया। इन्होंने विजातीय क्षत्रपों को हरा कर गोदावरी, बरार, मालवा, काठियावाड़ और गुजरात तक आंध्र सत्ता का विकास किया। आंध्र-नरेशों में गौतमीपुत्र शातकर्णी बहुत प्रसिद्ध हुआ जो 119 ई० के लगभग राज करता था। आंध्र-राज्य की प्रभुसत्ता 225 ई० के लगभग तक रही। इस समय दक्षिण भारत के समुद्रतट पर कई बड़े बंदरगाह थे जिनके द्वारा रोम-साम्राज्य

से भारत का व्यापार चलता था। आंध्र-देश का आंतरिक शासन-प्रबंध भी बहुत सुव्यवस्थित और लोकतंत्रीय सिद्धांतों पर आधारित था जिसका प्रमाण इस प्रदेश के अनेक अभिलेखों से मिलता है।

आंबिकेय

विष्णुपुराण 2,4,62 के अनुसार शाकद्वीप का एक पर्वत—'आंबिकेयस्त-थारम्यः केसरी पर्वतोत्तमः'।

आंवला (ज़िला बरेली, उ० प्र०)

आंवला तहसील का मुख्य स्थान। महाभारत के समय तथा अनुवर्ती काल में आंवला का निकटवर्ती प्रदेश उत्तर-पांचाल का एक भाग था। महाभारत कालीन राजधानी **अहिच्छत्र** के खण्डहर आंवले के निकट रामनगर में स्थित हैं। आंवले में स्थित बेगम की मसजिद मुसलमानी शासनकाल का स्मारक है।

आऊवा (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

यहां उत्तरमध्य-काल में निर्मित काले पत्थर के एक बृहत्फलक पर देवी की विशाल प्रतिमा है। मूर्ति के दस हाथ तथा चौवन मुख प्रदर्शित किए गए हैं। हाथों में अनेक प्रकार के आयुध हैं। कहा जाता है देवी की इतनी भव्य मूर्ति अन्यत्र नहीं है।

आकरअवंति

यह पूर्व तथा पश्चिम मालवा का संयुक्त नाम है। इसका उल्लेख आंध्र-नरेश गौतमीबलश्री के नासिक अभिलेख में मिलता है जिसमें इस प्रदेश को शातवाहन गौतमी पुत्र (द्वितीय शती ई०) के विशाल राज्य का एक भाग बताया गया है।

आकर्ष

'आकर्षाः कुन्तलाश्चैव मालवाश्चांध्रकास्तथा' महा० 2,32,11। प्रसंग से जान पड़ता है कि आकर्ष महाभारतकाल में दक्षिणापथ का कोई देश था।

आकाशगंगा

'आकाशगंगा प्रयताः पांडवास्तेऽभ्यवादयन्' महा०, वन० 142,11। इस नदी का बदरिकाश्रम के निकट उल्लेख है जिससे यह गंगा की अलकनंदा नाम की शाखा जान पड़ती है। पौराणिक किंवदंती में गंगा को आकाश मार्ग से जाने वाली नदी माना जाता था (दे० **त्रिपथगा**)। बदरिकाश्रम के निकट, महाभारत में, जिस वैहायसह्रद का उल्लेख है वह आकाशगंगा या अलकनंदा का ही स्रोत जान पड़ता है—'यत्र साबदरी रम्या ह्रदोवैहायसस्तथा' शांति०, 127,3।

आकाशनगर (मद्रास)

कुंभकोणम् से चार मील दूर विष्णु की उपासना का प्राचीन केंद्र है। इसे तुलसीवन भी कहते हैं।

आॅक्सस दे० वंक्षु, वक्षु, चक्षु)

आगर (ज़िला उज्जैन, म० प्र०)

उज्जैन से कुछ दूर उत्तर की ओर छोटा-सा कस्बा है। यहां से ईशानकोण में महादेव का एक मंदिर है जिसे 1883 ई० में अंग्रेज सैनिक कर्नल मार्टिन ने बनवाया था। मंदिर की मूर्ति बहुत पुरानी है। कहा जाता है कि इस स्थान पर पहले एक अतिप्राचीन मंदिर स्थित था।

आगरा (उ० प्र०)

मुगलकाल के इस प्रसिद्ध नगर की नींव दिल्ली के सुलतान सिकंदरशाह लोदी ने 1504 ई० में डाली थी। इसने अपने शासनकाल में होने वाले विद्रोहों को भली भांति दबाने के लिए वर्तमान आगरे के स्थान पर एक सैनिक छावनी बनाई थी जिसके द्वारा उसे इटावा, बयाना, कोल, ग्वालियर और धौलपुर के विद्रोहियों को दबाने में सहायता मिली। मखज़न-ए-अफ़गान के लेखक के अनुसार सुलतान सिकदर ने कुछ चतुर आयुक्तों को दिल्ली, इटावा और चांदवर के आस-पास के इलाके में किसी उपयुक्त स्थान पर सैनिक छावनी बनाने का काम सौंपा था और उन्होंने काफी छानबीन के पश्चात् इस स्थान (आगरा) को चुना था। अब तक आगरा या अग्रवन केवल एक छोटा-सा गांव था जिसे ब्रजमंडल के चौरासी वनों में अग्रणी माना जाता था। शीघ्र ही इसके स्थान पर एक भव्य नगर खड़ा हो गया। कुछ दिन बाद सिकंदर भी यहां आकर रहने लगा। तारीखदाऊदी के लेखक के अनुसार सिकंदर प्राय: आगरे ही में रहा करता था।

1505 ई० में रविवार, जुलाई 7 को आगरे में एक विकट भूकंप आया जिसने एक वर्ष पहले ही बसे हुए नगर के अनेक सुंदर भवनों को धराशायी कर दिया। मखज़न के लेखक के अनुसार भूकंप इतना भयानक था कि उसके धक्के से इमारतों का तो कहना ही क्या, पहाड़ तक गिर गए थे और प्रलय का सा दृश्य दिखाई देने लगा था। इसके पश्चात् आगरे की उन्नति अकबर के समय में प्रारंभ हुई। 1565 ई० में उसने यहां लाल पत्थर का किला बनवाना शुरू किया जो आठ वर्षों में तैयार हुआ। अब तक इसके स्थान पर ईंटों का बना हुआ एक छोटा-सा किला था जो खंडहर हो चला था। अकबर के किले को बनाने वाला तीनहज़ारी मनसबदार कासिम खां था और इसके निर्माण का का व्यय 35 लाख रुपया था। किले की नींव भूमिगत पानी तक गहरी है। इसके

पत्थरों को मसाले के साथ-साथ लोहे के छल्लों से भी जोड़ कर सुदृढ़ बनाया गया है। अकबर ने अपने शासन के प्रारंभ में ही फतहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बनाया था किंतु 1586 ई० में अकबर पुनः अपनी राजधानी आगरे ले आया था। जहांगीर के राज्यकाल में और शाहजहां के शासन के प्रारंभिक वर्षों में आगरे में ही राजधानी रही। इस ज़माने में यहां किले की अंदर की सुंदर इमारतें—मोती मसजिद और ऐतमाद्दौला का मकबरा (जिसका निर्माण नूरजहां ने करवाया था) बना। शाहजहां ने आगरे को छोड़कर दिल्ली में अपनी राजधानी बनाई। इसी समय आगरे में विश्वविश्रुत ताजमहल का निर्माण हुआ।

आगरे में मुगल वास्तुकला के पूर्व और उत्तरकालीन दोनों रूपों के उदाहरण मिलते हैं। अकबर के समय तक जो इमारतें मुगलों ने बनवाई वे विशाल, भव्य और विस्तीर्ण हैं, जैसे फतहपुर सीकरी के भवन या दिल्ली में हुमायूं का मकबरा। नूरजहां के बनवाए हुए ऐतमाद्दौला के मकबरे में पहली बार पत्थर पर बारीक नक़्क़ाशी और पच्चीकारी का काम किया गया और उस कला का जन्म हुआ जो विकसित होते हुए ताजमहल के अभूतपूर्व वास्तुशिल्प में प्रस्फुटित हुई। ताजमहल में भव्य तथा सूक्ष्म दोनों कलापक्षों का अद्‌भुत मेल है जो उसे संसार की सर्वश्रेष्ठ इमारतों में प्रमुख स्थान दिलाता है।

शाहजहां के दिल्ली चले जाने के पश्चात् आगरा फिर कभी मुगलों की राजधानी न बन सका यद्यपि यह नगर मुगलकाल का एक प्रमुख नगर तो अंत तक बना ही रहा।

आग्नेय

वाल्मीकि रामायण, 2,71,3 में इस ग्राम का उल्लेख है, 'एलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान्, शिलामाकुर्वन्तीं तीर्त्वा आग्नेय शल्यकर्षणम्'—जो संभवतः शिलावहा नदी के पूर्वी तट पर रहा होगा।

आग्रेय

यह गणराज्य अलक्षेंद्र के समय में पंजाब में स्थित था। संभव है यह अग्राहा का ही पाठांतर हो।

आजमगढ़ (उ० प्र०)

1665 ई० में फुलवारिया नायक प्राचीन ग्राम के स्थान पर आजम खां द्वारा इस नगर की स्थापना की गई थी। यहां गौरीशंकर का मंदिर 1760 ई० में स्थानीय राजा के पुरोहित ने बनवाया था।

आजमाबाद=तरायन

आजी दे० **अजकला**

आटविक

वर्तमान मध्यप्रदेश का पूर्वोत्तर तथा उत्तरप्रदेश का दक्षिण-पूर्वी भाग जो

वनों के आधिक्य के कारण अटवी कहलाता था। इसके **कोटाटवी** तथा **वटाटवी** नामक भाग थे।

आढ्यपुर

प्राचीन कंबोडिया या कंबुज का एक नगर। कंबुज में भारतीय हिंदू औपनिवेशकों ने लगभग तेरह सौ वर्ष राज्य किया था।

आत्रेयी

(1) 'करतोया तथात्रेयी लोहित्यश्च महानदी,' महा० 2,9,221। इस उल्लेख के अनुसार आत्रेयी गोदावरी की एक छोटी शाखा का नाम है। यह पंचवटी के निकट गोदावरी में मिलती है। गोदावरी की सात शाखाएं मानी गई हैं। दे० **गोदावरी**।

(2) ज़िला राजशाही–बंगाल–की एक नदी जो गंगा में मिलती है।

आदर्शावली

अर्वली पर्वत श्रेणी का नाम कहा जाता है।

आदित्य

महाभारतकाल में सरस्वती नदी के तट पर स्थित एक तीर्थ, जिसकी यात्रा बलराम जी ने अन्य तीर्थों के साथ की थी—'वनमाली ततो हृष्टः स्तूयमानो महर्षिभिः, तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः' शल्य० 49,17

आदिबदरी (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

परगना चांदपुर में कर्णप्रयाग से लगभग 11 मील दक्षिण में स्थित है। यहां सोलह प्राचीन मंदिर हैं जिन्हें किंवदंती के अनुसार शंकराचार्य ने बनवाया था किंतु ये वास्तव में चांदपुरी गढ़ी के प्राचीन राजाओं द्वारा निर्मित हैं।

आदिलाबाद (आं० प्र०)

नगर में एक पुराना मंदिर और उत्तर मुसलमान काल की एक मसजिद है। नगर का नाम बीजापुर के बहमनी सुलतान आदिलशाह के नाम पर है। यह आदिलशाह शिवाजी का समकालीन था।

आनंद

विष्णुपुराण 2, 4, 5 के अनुसार प्लक्ष द्वीप का एक भाग जो इस द्वीप के राजा मेधातिथि के पुत्र आनंद के नाम से प्रसिद्ध है।

आनंदपुर (गुजरात)

(1) गुर्जरनरेश शीलादित्य सप्तम के अलिया ताम्रदानपट्ट (767 ई०) में आनंदपुर का उल्लेख है। इस नगर में राजा का शिविर था जहां से यह शासन प्रचलित किया गया है। किंवदंती के अनुसार आनंदपुर सारस्वत (नागर)

ब्राह्मणों का मूल स्थान है। उनका कहना है कि उन्होंने ही देवनागरी लिपि का आविष्कार किया था। 7वीं शती ई० (630-645 ई०) में जब युवानच्वांग भारत आया था तो आनंदपुर का प्रांत मालवा के उत्तर पश्चिम की ओर साबरमती के पश्चिम में स्थित था। यह मालवा राज्य के ही अधीन था। इसका दूसरा नाम वरनगर भी था। ऋग्वेद प्रातिशाख्य के रचयिता उव्वट ने अपने ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय के अंत में 'इति आनन्दपुर वास्तव्यं' लिखा है। बहुत संभव है कि वह इसी नगर का निवासी रहा हो। नागर ब्राह्मण वरनगर के निवासी होने से ही नागर कहलाए।

(2) (पंजाब) आनंदपुर की विशेष ख्याति उसके सिख खालसा पंथ का जन्मस्थान होने के नाते है। सिखों के दसवें गुरु गोविंदसिंह ने औरंगज़ेब की हिंदू विद्वेषी नीति से हिंदुओं की रक्षा करने के लिए ही खालसा पंथ की स्थापना करके सिख-संप्रदाय को सुदृढ़ एवं संगठित रूप प्रदान किया था। उन्होंने ही इस ग्राम का नामकरण भी किया था।

आनर्त

उत्तरपश्चिमी गुजरात का प्राचीन नाम। 'आनर्तान् कालकूटांश्च कुलिन्दांश्च विजित्य सः' महा०, सभा० 26, 4। इस उल्लेख के अनुसार अर्जुन ने पश्चिम दिशा की विजय-यात्रा में आनर्तों को जीता था। सभापर्व के एक अन्य वर्णन से ज्ञात होता है कि आनर्त का राजा शाल्व था जिसकी राजधानी सौभनगर में थी। श्रीकृष्ण ने इस देश को शाल्व से जीत लिया था (किंतु दे० **शाल्वपुर**; **मार्तिकावत**) विष्णुपुराण में आनर्त की राजधानी कुशस्थली—द्वारका का प्राचीन नाम—बताई गई है—'आनर्तस्यापि रेवतनामा पुत्रो जज्ञे, योऽसावनर्तविषयं बुभुजे पुरीं च कुशस्थलीमध्युवास—' विष्णु० 4, 1, 64। इस उद्धरण से यह भी सूचित होता है कि आनर्त के राजा रेवत के पिता का नाम आनर्त था। इसी के नाम से इस देश का नाम आनर्त हुआ होगा। रेवत बलराम की पत्नी रेवती के पिता थे। महाभारत, उद्योग० 7, 6 से भी विदित होता है कि आनर्त-नगरी, द्वारका का नाम था—'तमेव दिवसं चापि कौन्तेयः पांडुनंदनः, आनर्त-नगरीं रम्यां जगामाशु धनंजयः'। गिरनार के प्रसिद्ध अभिलेख के अनुसार रुद्रदामन् ने 150 ई० के लगभग अपने पहलव अमात्य सुविशाख को आनर्त और सुराष्ट्र आदि जनपदों का शासक नियुक्त किया था—'कृत्स्नानामानर्त सुराष्ट्राणां पालनार्थं नियुक्तेन पह्लवे कुलैप पुत्रेणामात्येन सुविशाखेन—'। रुद्रदामन् ने आनर्त को सिंधु सौवीर आदि जनपदों के साथ विजित किया था—'स्ववीर्यार्जितानामनुरक्तसर्वप्रकृतीनांपूर्वापराकरावन्त्यनुपनीवृदानर्त

सुराष्ट्रश्वभ्रमरुकच्छसिंधुसौवीरकुकुरापरान्तनिषादादीनाम्—'।

आपगा

(1) पंजाब की एक नदी—'शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा, जर्तिकानाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम्' महा० कर्ण० 44, 10 अर्थात् वाहीक या आरट्ट देश में शाकल—वर्तमान स्यालकोट—नाम का नगर और आपगा नाम की नदी है जहां जर्तिक नाम के वाहीक रहते है, उनका चरित्र अत्यंत निंदित है। इससे स्पष्ट है कि आपगा स्यालकोट (पाकिस्तान) के पास बहने वाली नदी थी। इसका अभिज्ञान स्यालकोट की 'ऐक' नाम की छोटी-सी नदी से किया गया है। यह चिनाब की सहायक नदी है।

(2) वामन-पुराण में (39, 6-8) आपगा नदी का उल्लेख है जो कुरुक्षेत्र की सात पुण्य नदियों में से है—'सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी, आपगा च महापुण्या गंगा मंदाकिनी नदी। मधुश्रुवा अम्लुनदी कौशिकी पापनाशिनी, दृशद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी'। कहा जाता है यह नदी जो अब अधिकांश में विलुप्त हो गई है कुरुक्षेत्र के ब्रह्मसर से एक मील दूर आपगा-सरोवर के रूप में आज भी दृश्यमान है।

संभव है, महाभारत और वामनपुराण की नदियां एक ही हों, यदि ऐसा है तो नदी के गुणों में जो दोनों ग्रन्थों में वैषम्य वर्णित है वह आश्चर्यजनक है। नदियां भिन्न भी हो सकती हैं।

आपण

बुद्धचरित्र के अनुसार अंग और सुह्म के बीच में स्थित नगर जहाँ गौतम-बुद्ध ने केन्य व शेल नामक ब्राह्मणों को दीक्षित किया था।

आप्तनेत्रवन दे० **इकौना**

आबोनेरी (राजस्थान)

आठवीं शती ई० में निर्मित शिवमंदिर मध्ययुगीन राजस्थानी वास्तुकला का सुंदर उदाहरण है।

आबू दे० **अर्बुद** (राजस्थान)

जैन वास्तुकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण-स्वरूप दो प्रसिद्ध संगमरमर के बने मंदिर जो दिलवाड़ा या देवलवाड़ा मंदिर कहलाते हैं इस पर्वतीय नगर के जगत् प्रसिद्ध स्मारक हैं। विमलसाह के मंदिर को एक अभिलेख के अनुसार राजा भीमदेव प्रथम के मंत्री विमलसाह ने बनवाया था। इस मंदिर पर 18 करोड़ रुपया व्यय हुआ था। कहा जाता है कि विमलसाह ने पहले कुंभेरिया में पार्श्वनाथ के 360 मंदिर बनवाए थे किंतु उनकी इष्टदेवी अंबा जी ने किसी

बात पर रुष्ट होकर पांच मंदिरों को छोड़ अवशिष्ट सारे मदिर नष्ट कर दिए और स्वप्न में उन्हें दिलवाड़ा में आदिनाथ का मंदिर बनाने का आदेश दिया। किन्तु आबूपर्वत के परमार नरेश ने विमलसाह को मदिर के लिए भूमि देना तभी स्वीकार किया जब उन्होंने संपूर्ण भूमि को रजतखंडों से ढक दिया। इस इस प्रकार 56 लाख रुपए में यह जमीन खरीदी गई थी। इस मंदिर में आदिनाथ की मूर्ति की आंखें असली हीरक की बनी हुई हैं और उसके गले में बहुमूल्य रत्नों का हार है। इस मंदिर का प्रवेशद्वार गुंबद वाले मंडप से होकर है जिसके सामने एक वर्गाकृति भवन है। इसमें छः स्तंभ और दस हाथियों की प्रतिमाएं है। इसके पीछे मध्य में मुख्य पूजागृह है जिसमें एक प्रकोष्ठ में ध्यानमुद्रा में अवस्थित जिन की मूर्ति है। इस प्रकोष्ठ की छत शिखर रूप में बनी है यद्यपि वह अधिक ऊंची नहीं है। इसके साथ एक दूसरा प्रकोष्ठ बना है जिसके आगे एक मंडप स्थित है। इस मंडप के गुंबद के आठ स्तंभ हैं। संपूर्ण मंदिर एक प्रांगण के अंदर घिरा हुआ है जिसकी लंबाई 128 फुट और चौड़ाई 75 फुट है। इसके चतुर्दिक् छोटे स्तंभों की दुहरी पंक्तियां हैं जिनसे प्रांगण की लगभग 52 कोठरियों के आगे बरामदा-सा बन जाता है। बाहर से मदिर नितांत सामान्य दिखाई देता है और इससे भीतर के अद्भुत कला-वैभव का तनिक भी आभास नहीं होता। किंतु श्वेत संगमरमर के गुंबद का भीतरी भाग, दीवारें, छतें तथा स्तंभ अपनी महीन नक्काशी और अभूतपूर्व मूर्तिकारी के लिए संसार-प्रसिद्ध हैं। इस मूर्तिकारी में तरह-तरह के फूल-पत्ते, पशु-पक्षी तथा मानवों की आकृतियां इतनी बारीकी से चित्रित हैं मानो यहां के शिल्पियों की छेनी के सामने कठोर संगमरमर मोम बन गया हो। पत्थर की शिल्पकला का इतना महान् वैभव भारत में अन्यत्र नहीं है। दूसरा मंदिर जो तेजपाल का कहलाता है, निकट ही है और पहले की अपेक्षा प्रत्येक बात में अधिक भव्य और शानदार दिखाई देता है। इसी शैली में बने तीन अन्य जैन-मन्दिर भी यहां आसपास ही हैं। किंवदंती है कि वशिष्ठ का आश्रम देवलवाड़ा के निकट ही स्थित था। अर्बुदा-देवी का मन्दिर यहीं पहाड़ के ऊपर है।

जैन ग्रन्थ विविधतीर्थकल्प के अनुसार आबूपर्वत की तलहटी में अर्बुद नामक नाग का निवास था, इसी के कारण यह पहाड़ आबू कहलाया। इसका पुराना नाम नंदिवर्धन था। पहाड़ के पास मन्दाकिनी नदी बहती है और श्रीमाता, अचलेश्वर और वशिष्ठाश्रम तीर्थ हैं। अर्बुद-गिरि पर परमार नरेशों ने राज्य किया था जिनकी राजधानी चंद्रावती में थी। इस जैन ग्रन्थ के अनुसार विमल नामक सेनापति ने ऋषभदेव की पीतल की मूर्ति सहित यहां एक चैत्य

बनवाया था और 1088 वि० सं० में उसने विमल-वसति नामक एक मंदिर बनवाया। 1288 वि० सं० में राजा के मुख्य मंत्री ने नेमि का मंदिर—लूणिगवसति बनवाया। 1243 वि० सं० में चंडसिंह के पुत्र पीठपद और महनसिंह के पुत्र लल्ल ने तेजपाल द्वारा निर्मित मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। इसी मूर्ति के लिए चालुक्यवंशी कुमारपाल भूपति ने श्रीवीर का मन्दिर बनवाया था। अर्बुद का उल्लेख एक अन्य जैन ग्रन्थ तीर्थमाला चैत्यवन्दन में भी मिलता है—'कोडी-नारकमंत्रिदाहड़पुरेश्रीमंडपे चार्बुदे'।

आभीर

गुजरात का दक्षिण-पूर्वी भाग। यूनानियों ने इसे अबेरिया कहा है। टॉलमी ने इस देश को सिंध-नदी के मुहाने के निकट स्थित बताया है—(दे० मैक्रिडल-टॉलमी; पृ० 140)। ब्रह्मांडपुराण, 6 में भी इसी तथ्य का उल्लेख है और सिंधु को आभीर देश में बहने वाली नदी कहा गया है। महाभारत, सभा० 31 में आभीरों को सरस्वती-नदी (सोमनाथ के निकट) के तीर तथा समुद्र-तट के निवासी बताया गया है।

आमू

दक्षिण-पश्चिमी एशिया में अफ़गानिस्तान तथा दक्षिणी रूस की सीमा पर बहने वाली नदी जिसे प्राचीन भारतीय साहित्य में वंक्षु और विष्णुपुराण में चक्षु कहा गया है। ग्रीक लोग इसे ऑक्सस कहते थे।

आमेर (ज़िला जयपुर, राजस्थान)

जयपुर से छः मील दूर जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी। कहा जाता है कि 1129 ई० के लगभग कछवाहा राजपूतों को ग्वालियर से परिहारों ने निकाल दिया था। कछवाहा राजकुमार तेजकरों अपनी नवोढ़ा पत्नी सुन्दरी मरोनी के प्रेमपाश में बंध कर राजकाज भूल बैठा था जिसके फलस्वरूप उसके भतीजे परिहार ने उसे राज्यच्युत कर दिया। कछवाहों ने निष्कासित होने के पश्चात् जंगली मीनाओं की सहायता से ढुंढार की रियासत स्थापित की। आमेर ढुंढार ही की राजधानी थी। जयसिंह-द्वितीय के समय तक (1730 ई० के कुछ पूर्व) कछवाहों की राजधानी आमेर नगर में ही रही। जयसिंह द्वितीय ने ही जयपुर बसाया और अपनी राजधानी नए नगर में बनाई। आमेर में अकबर के दरबार के रत्न महाराजा मानसिंह द्वारा निर्मित दुर्ग और प्रासाद पहाड़ी के ऊपर स्थित हैं। इनके भीतर दरबार, दीवाने-आम, गणेशपोल, रंगमहल, यशमंदिर, सुहाग-मंदिर इत्यादि उल्लेखनीय हैं। कहते हैं कि आमेर के भवनों की नक्काशी मुग़ल-सम्राटों को इतनी भायी कि उसी का अनुकरण उन्होंने दिल्ली और आगरा के

भवनों में किया। आमेर के दुर्ग का शीशमहल भारत में प्रसिद्ध है; इसी के लिए जयसिंह प्रथम के राजकवि बिहारीलाल ने लिखा था—'प्रतिबिंबित जयसाह दुति दीपत दरपन धाम, सब जग जीतन को कियो कामव्यूह मनु काम'। आमेर का कालीमंदिर बहुत प्राचीन है। संभवतः कछवाहों के आमेर में बसने के पूर्व-काली यहां रहने वाली मीना जाति की इष्टदेवी थी। आमेर नाम की व्युत्पत्ति भी अंबानगर से जान पड़ती है। श्री न० ला० डे के अनुसार आमेर का असली नाम अंबरीपपुर था और इसे पौराणिक नरेश अंबरीष ने बसाया था।

आम्रकूट

'त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना, वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमाना-म्रकूटः' मेघ०, पूर्वमेघ 17। उपर्युक्त पद्य में कालिदास ने आम्रकूट नामक पर्वत का वर्णन मेघ की रामगिरि से अलका तक की यात्रा के प्रसंग में नर्मदा से पहले ही अर्थात् उससे पूर्व की ओर किया है। जान पड़ता है कि यह वर्तमान पंचमढ़ी अथवा महादेव की पहाडियों (सतपुड़ा पर्वत) का कोई भाग है। कई विद्वानों के मत में रींवा से 86 मील दूर स्थित अमरकूट ही आम्रकूट है। किंतु यह स्पष्ट ही है कि इस पहाड़ का वास्तविक नाम अमरकूट न होकर आम्रकूट ही है क्योंकि कालिदास ने अगले (पूर्वमेघ 18) छंद में इस पर्वत को आम्रवृक्षों से आच्छादित बताया है—'छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणी सवर्णे, नूनं याम्यत्यमर मिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां मध्येश्यामः स्तन इव भुवश्शेषविस्तारपांडुः'। संभव है नर्मदा के उद्गम अमर-कंटक, अमरकूट और आम्रकूट नामों में परस्पर संबंध हो और एक ही पर्वत-शिखर के ये नाम हों। निश्चय ही चित्रकूट आम्रकूट से भिन्न है क्योंकि चित्रकूट का वर्णन कालिदास ने पूर्वमेघ, 19 में पृथक् रूप से किया है।

आम्रद्वीप

लंका का एक प्राचीन भारतीय नाम जो इस देश की भौगोलिक आकृति के अनुरूप है। इस नाम का उल्लेख बोधिगया से प्राप्त किसी महानामन् द्वितीय के एक अभिलेख में किया गया है। यह अभिलेख गुप्तसंवत् 269=584 ई० का है। यह महाराज महानामन् सिंहल के पाली इतिहास का रचयिता हो सकता है। संभवतः यह अभिलेख इसी ने अपनी इस स्थान की यात्रा के संस्मारक रूप में उत्कीर्ण करवाया था।

आर (प० पाकिस्तान)

इस स्थान से एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिससे सूचित होता है कि शक-संवत् 41 या 118 ई० में इस स्थान पर कनिष्क द्वितीय का राज था (यह

अभिलेख लाहौर संग्रहालय में है)। इस कनिष्क को प्रो० लूडर्स ने कनिष्क प्रथम का पौत्र माना है। अभिलेख में कनिष्क (द्वितीय) की उपाधि कैसरस (कैसर या सीजर) लिखी है।

आरंग (जिला रायपुर, म० प्र०)

आरंग नामक वृक्ष के नाम पर ही इस स्थान का नामकरण हुआ जान पड़ता है क्योंकि इस भूभाग में इस प्रकार के स्थाननाम अनेक हैं। आरंग में एक भव्य जैन मंदिर और महामाया का एक प्राचीन महत्त्वपूर्ण मन्दिर स्थित है। इसका सभामण्डप नष्ट हो चुका है। मन्दिर की छत सपाट है। जिला रायपुर के आसपास के प्रदेश में 11वीं-12वीं शती में शाक्त और तांत्रिक संप्रदायों का बाहुल्य था। यह मन्दिर इसी समय का प्रतीत होता है। इसकी वास्तुकला से भी यही सिद्ध होता है। आरंग के मूर्ति-अवशेषों में भी शिव के तांत्रिक रूपों की अनेक कृतियां उपलब्ध हुई हैं। योगमाया के मन्दिर के सामने ही सैकड़ों वर्ष प्राचीन एक महान् वृक्ष है जिसके बारे में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। यहां कई अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं जिनमें से एक 601 ई० का है और इसमें राजर्षि तुल्यकुल नामक राजवंश का उल्लेख है (दे० मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ० 22)। यदि इस वंश की राजधानी आरंग में ही थी तो इस स्थान का इतिहास उत्तरगुप्तकाल तक जा पहुंचता है।

आरट्ट = आरट्ठ

'पंचनद्यो वहन्त्यैता यत्र पीलुवनान्युत, शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा। चन्द्रभागा वितस्ता च सिंधु षष्ठा बहिर्गिरैः, आरट्टा नाम ते देशा नष्ट-धर्मा न तान् व्रजेत' महा० कर्ण०, 44,31–32-33। अर्थात् जहां पांच नदियां शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता और छठी सिंधु बहती हैं, जहां पीलू वृक्षों के वन हैं, वे हिमालय की सीमा के बाहर के प्रदेश आरट्ट नाम से विख्यात हैं—इन धर्मरहित प्रदेशों में कभी न जाए। इसी के आगे फिर कहा गया है—'पंचनद्यो वहन्त्येता यत्र निःमृत्य पर्वतात् आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्वयहं वसेत्'—कर्ण० 44,40–41 अर्थात् जहां पर्वत से निकल कर पांच नदियां बहती है वे आरट्ट नाम से प्रसिद्ध वाहीक प्रदेश है—उनमें श्रेष्ट पुरुष दो दिन भी निवास न करे। महाभारतकाल में आरट्ट, या आरट्ट या वाहीक प्रदेश पश्चिमी पंजाब के ही नाम थे। मद्र इसी प्रदेश का एक भाग था। यहां का राजा शल्य था जिसके देशवासियों के दोष कर्ण ने उपर्युक्त उद्धरण में बताए है। इस वर्णन के अनुसार यहां के निवासी आर्य-संस्कृति से बहिष्कृत व भ्रष्ट-आचरण वाले थे। आरट्ट गणराज्य लगभग 327 ई० पू० में अलक्षेंद्र के भारत

पर आक्रमण के समय पंजाब में स्थित था। इसका उल्लेख ग्रीक लेखकों ने किया है। महाकवि माघ ने शिशुपालवध 5,10 में आरट्ट देश के घोड़ों का उल्लेख इस प्रकार किया है—'तेजोनिरोधसमतावहितेन यंत्र:, सम्यक्कशात्रयविचारवता नियुक्त:, आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चैश्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन' अर्थात् वेग को रोकने वाली लगाम को थामने में सावधान और तीनों प्रकार के चाबुकों का प्रयोग जानने वाले घुड़सवारों से भली-भांति हांका गया आरट्ट देश में उत्पन्न घोड़ा अपने विचित्र पादप्रक्षेप द्वारा कभी चंचल और कभी कठोर भाव से मंडलाकार गति-विशेष से चल रहा था।

आरण्यक

महाभारत सभा० 31 में वर्णित है। देवीपुराण अध्याय 46 में इसे आरण्य कहा गया है। यह परीप्लेस का एरियका (Ariyaka) है। यह वर्तमान औरंगाबाद (महाराष्ट्र) का परवर्ती प्रदेश था जिसकी राजधानी तगर (दौलताबाद) थी।

आरब=अरब देश

वराहमिहिर की बृहत्संहिता 14,17 में अरब का आरब नाम से उल्लेख है। बहिस्तां अभिलेख (जर्नल ऑव रॉयल सोसायटी, जिल्द 15) में अरब के प्राचीन नाम 'अरबय' का उल्लेख है। दे० **वनायु**।

आराम

(1) 'माद्रारामास्तथाम्बष्ठा: पारसीकादयस्तथा' विष्णु०, 2,3,17। इस उद्धरण में आराम-जनपद के निवासियों का उल्लेख मद्रों और अंबष्ठों के साथ है जिससे सूचित होता है कि आराम जनपद पंजाब में इन्हीं जनपदों के निकट स्थित होगा।

(2) उड़ीसा का एक वैभवशाली नगर जिसका तत्स्थानीय अभिलेखों में उल्लेख है। यह शायद सोनपुर के निकट स्थित था (दे० हिस्टॉरिकल ज्योग्रेफी ऑव एंशेंट इंडिया)

आरामनगर

आरा (ज़िला शाहाबाद, बिहार) का प्राचीन नाम कहा जाता है (दे० नं० ला० डे)।

आरासण (मारवाड़, राजस्थान)

आबू के निकट दिलवाड़ा-मंदिरों की भांति ही यहां भी उच्चकोटि की शिल्पकला के उदाहरण-रूप कई जैन-मंदिर स्थित है। इनकी पत्थर की नक्काशी सराहनीय है। इसका नाम कुंभारिय भी है। इस स्थान का तीर्थमाला चैत्यवंदन नामक

जैन स्तोत्र में इस प्रकार उल्लेख है—'कुतिपल्लविहारतारणगढे सोपारकारासणे।

आर्यकुल्या

विष्णुपुराण 2,3,13 में वर्णित एक नदी जो **महेंद्रपर्वत** (उड़ीसा) से उद्भूत मानी गई है—'त्रिसामा चार्यकुल्याद्यामहेंद्रप्रभवाः स्मृताः'। यह नदी पास ही बहने वाली दूसरी नदी **ऋषिकुल्या** से भिन्न है क्योंकि ऋषिकुल्या का उल्लेख विष्णु० 2,3,14 में पृथक् रूप से है।

आर्यपुर=एहोड़

यहां 7वीं-8वीं शती ई० में चालुक्यों की राजधानी थी। यह स्थान जिला बीजापुर महाराष्ट्र में स्थित है। प्राचीन अभिलेखों में इसे अय्याबोल कहा गया है (दे० आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट 1907-8, पृ० 189)।

आर्यावर्त

प्राचीन संस्कृत साहित्य में आर्यावर्त नाम से उत्तर भारत के उस भाग को अभिहित किया जाता था जो पूर्वसमुद्र से पश्चिम समुद्र तक और हिमालय से विंध्याचल तक विस्तृत है—'आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात् तयोरेवान्तरंगिर्योः (हिमवतविन्ध्योः) आर्यावर्त विदुर्बुधाः'—मनुस्मृति 2,22।

आर्षिक

इस स्थान को महारानी गौतमी बलश्री के नासिक अभिलेख (द्वितीय शती ई०) में उसके पुत्र शातवाहन नरेश गौतमीपुत्र के राज्य में सम्मिलित बताया गया है। अभिलेख में आर्षिक का प्राकृत नाम असिक दिया हुआ है। आर्षिक का पतंजलि के महाभाष्य, 14,22 में भी उल्लेख है। संभवतः महाभारत मे भी इसी आर्षिक का तीर्थ के रूप मे नामोल्लेख है। यह शायद पुष्कर के पार्श्ववर्ती प्रदेश में स्थित था।

आलंद (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर)

इस स्थान पर गुलबर्गा के प्रसिद्ध मुसलिम संत ख्वाजा बंदानवाज के गुरु शेख अलाउद्दीन अंसारी की दरगाह है।

आलंदी (जिला पूना, महाराष्ट्र)

पूना से 13 मील दूर है। यह स्थान महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत ज्ञानेश्वर की समाधि-स्थलि के रूप में प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि ज्ञानेश्वर ने जीवित समाधि ली थी। आलंदी इंद्रायणी के तट पर है।

आलंभिका=आलभिया=आलवी=आलवक (दे० **आलवक**)।

आलमपुर (दे० **बाल ब्रह्मेश्वर**)।

आलवक

गौतमबुद्ध के समय (पांचवीं-छठी शती ई० पू०) पूर्व-पांचाल में स्थित एक राज्य था। यह कान्यकुब्ज से पूर्व की ओर संभवतः गाजीपुर के निकटवर्ती प्रदेश का नाम था (दे० वाटर्स—युवानच्वांग, जिल्द० 2,61,340)। चीनी पर्यटक युवानच्वांग ने इसी देश को शायद **चंचु** कहा है। इसकी राजधानी सुत्तनिपात में आलवी बताई गई है (दे० सुत्तनिपात, दि बुक ऑव दि डरेड सेइंग्ज पृ० 275) जो उवास गदसाओ नामक ग्रंथ (भाग 2,पृष्ठ 103) की आलभिया या आलंभिका जान पड़ती है। होर्नल के अनुसार आलवी की गणना अभिधानप्पदीपिका में बीस उत्तर-भारतीय नगरों के अंतर्गत की गई है। जैन-ग्रंथ कल्पसूत्र में उल्लेख है कि तीर्थंकर महावीर ने आलविका में एक वर्षाकाल व्यतीत किया था। सुत्त-निपात (10,2,45) में आलवक को यक्ष-देश माना है और यहां का देवता एक यक्ष को बतलाया गया है जो आलवक पचाल-खंड नाम से प्रसिद्ध था। यक्ष बड़ा क्रोधी था किंतु तथागत के शांत स्वभाव के सामने उसे पराजित होना पड़ा था। यक्ष उत्तरी भारत की कोई अनार्यजाति थी जिसका उल्लेख महाभारत में अनेक स्थलों पर है। शिखंडी की मनोरंजक कथा (भीष्म-पर्व) में एक यक्ष को पांचाल-देश के अंतर्गत (कांपिल्य के निकट) वन में निवास करते हुए वर्णित किया गया है। चुल्लवग्ग (6,17) में आलवी में अग्गालव नामक बौद्धमंदिर का उल्लेख है। संभव है कि इस देश और इसकी राजधानी का नाम संस्कृत अटवी का प्राकृत रूप हो। जान पड़ता है कि यक्षों का निवास उस काल में पंचाल-देश की वनस्थलियों में रहा होगा।

आलविका=**आलवी** (दे० **आलवक**)

आलीपुरा (बुंदेलखंड, म० प्र०)

अंग्रेज़ी शासनकाल में एक छोटी-सी रियासत थी। पन्नानरेश हिंदूपत ने 1757 ई० में अचलसिंह को जो उनके यहां सेवा में था, आलीपुर की जागीर दी थी। अचलसिंह के पितामह महाराज छत्रसाल की सेना मे 1608 ई० में भरती हुए थे और उन्होंने महाराज को अपने कार्य से प्रसन्न कर लिया था। अचलसिंह पीछे स्वतंत्र हो गया और इस प्रकार आलीपुर रियासत की नींव पड़ी।

आशापल्ली दे० **असावल**

आशापुर (ज़िला भोपाल, म० प्र०)

इस स्थान पर प्राचीनकाल की अनेक शिल्पकृतियां खंडहरों के रूप में पड़ी हुई हैं। आसपास घना निर्जन वन है। जान पड़ता है राजा भोज के राज्यकाल (लगभग 1010 ई०) तथा परवर्ती काल के अनेक ध्वंसावशेष यहां बिखरे पड़े हैं।

आश्मक (म० प्र०)

इस ग्राम का उल्लेख महाराज सर्वनाथ के खोह अभिलेख 512 ई० में है। यह तमसा नदी के तट पर स्थित था (दे० **तमसा** 2)। इस ग्राम को विष्णु तथा सूर्य के मंदिरों के लिए महाराज सर्वनाथ ने दान मे दिया था।

आसंदीवत्

पांडवों के वंशज तथा परीक्षित के पुत्र जनमेजय की राजधानी। ऐतरेय ब्राह्मण की एक गाथा 8,21 में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'आसन्दीवति-धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्। अश्वं बबन्धसारंगं देवभ्यो जनमेजय इति'। अर्थात् देवों के लिए यज्ञार्थ जनमेजय ने आसंदीवत् मे एक स्वर्णालंकृत पीली माला धारण किए हुए श्याम रंग का अश्व बांधा। परीक्षित की राजधानी हस्तिनापुर में थी और इसी से जान पड़ता है कि आसन्दीवत् हस्तिनापुर ही का दूसरा नाम था। किंतु यह अभिज्ञान पूर्णतः निश्चित नही कहा जा सकता क्योंकि महाभारत (13,5,34) में जनमेजय को राज्यसभा को तक्षशिला में बताया गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी 4,2,12 और 4,2,86 में इसका नामोल्लेख किया है। काशिका 24,226 के अनुसार (कुरुक्षेत्रे परेणाहि स्थले) यह कुरुक्षेत्र के परिवर्ती प्रदेश का अभिधान था। इसे अहिस्थल भी कहते थे।

आसाम दे० **असम**

आसिका

पाणिनि की अष्टाध्यायी में इसका उल्लेख है। यह शायद वर्तमान हांसी (हरियाणा) है।

आसिफाबाद (आं० प्र०)

यहां 16वीं शती का शुद्ध भारतीय शैली मे बना हुआ एक मंदिर है। उत्खनन द्वारा प्रागैतिहासिक काल के अनेक काष्ठ जीवाश्म (फॉसिल) भी प्राप्त हुए है।

आसी

अलीगढ़ के इलाके का प्राचीन नाम।

आहार (बुंदेलखंड म० प्र०)

मध्ययुगीन बुंदेलखड की वास्तुकला के भग्नावशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

इंदरगढ़ (राजस्थान)

चौहान राजपूतों के बनवाए हुए दुर्गों के लिए उल्लेखनीय है।

इंदु=हिंदु

चीनी पर्यटक युवानच्वांग ने अपनी भारत यात्रा (630-645 ई०)

के विवरण में भारत का तत्कालीन प्रचलित नाम यिंतु लिखा है। यह इंद्र या हिंदू शब्द का ही चीनी उच्चारण है जिससे सिंधु (सिंधनदी जिसे विदेशियों को भारत में प्रवेश करते समय पार करना पड़ता था) शब्द का सीधा संबंध हो सकता है। इससे यह जान पड़ता है कि भारत का नामार्थक सिंधु शब्द (जिसका रूपांतर हिंदू, 'स' और 'ह' के उच्चारण का भारत के पश्चिम में स्थित देशों में एक-सा होने के कारण वहां प्रचलित था) भारत में मुसलमानों के आगमन (8वीं शती ई०) से पूर्व का है। यह तथ्य इस विषय की सामान्य धारणा के विपरीत है।

'यिंतु' शब्द का संस्कृत 'इंदु' या चन्द्रमा से कुछ संबंध है या नहीं यह बात संदिग्ध है।

इंदूर=इंद्रपुरी=निजामाबाद (आं० प्र०)

किंवदंती के अनुसार यह नगर प्राचीन समय में त्रिकूटकवंशीय इंद्रदत्त द्वारा लगभग 388 ई० में बसाया गया था। इस का राज नर्मदा और ताप्ती के निचले प्रदेशों में था। यह भी संभव जान पड़ता है कि नगर का नाम विष्णुकुंडिन इंद्रवर्मन् प्रथम (500 ई०) के नाम पर हुआ था। 1311 ई० में इंदूर पर अलाउद्दीन खिजली ने आक्रमण किया। तत्पश्चात् यह नगर क्रमश: बहमनी, कुतुबशाही, और मुगल राज्यों में सम्मिलित रहा। अंत में निजाम हैदराबाद का यहां आधिपत्य हो गया।

इंदूर जिले का नाम 1905 में निजामाबाद कर दिया गया था। इस जिले के प्राचीन मंदिरों की वास्तुकला अतीव सुंदर है। नगर में 12वीं शती ई० की जैन-मूर्तियों के अवशेष मिले हैं जिन का कुतुबशाही काल में बने दुर्ग में उपयोग किया गया था। कटेश्वर का अपेक्षाकृत नवीन मंदिर अत्यंत सुंदर है। नगर से छ: मील पर हनुमान्मंदिर है जहां जनश्रुति के अनुसार महाराज शिवाजी के गुरु श्री समर्थ रामदास कुछ समय तक रहे थे। इंदूर का प्राचीन नाम इंद्रपुरी था, इंदूर इसी का अपभ्रंश रूप है।

इंदोर (जिला बुलंदशहर, उ० प्र०)

अनूपशहर के निकट बहुत पुराना स्थान है। गुप्तनरेश महाराज स्कंदगुप्त के समय (फाल्गुन, गुप्तसंवत् 146-465 ई०) का एक ताम्रपट्टलेख यहाँ से प्राप्त हुआ था। इस अभिलेख मे उल्लेख है कि देवविष्णु नामक ब्राह्मण ने अंतर्वेदिविषय-पति सर्वनाग के शासन-काल में इंद्रपुर या इंदोर में स्थित सूर्य मंदिर के लिए दीपदान दिया था। यह दान इंद्रपुर की एक तैलिक श्रेणी (जिसका प्रबंधक जीवांत नामक व्यक्ति था) के पास सुरक्षित निधि के रूप में दिया गया था। तैलिक श्रेणी का काम सदा के लिए (जब तक सूर्य-चंद्र आकाश

में स्थित हैं) दो पल तेल प्रतिदिन मंदिर में दीप के लिए देना था। अंतर्वेदि गंगा-यमुना के दो-आबे का संस्कृत नाम था। स्पष्ट ही है कि इंद्रपुर ही वर्तमान इंदौर है और इस प्रकार ताम्रपट्ट के प्राप्तिस्थान का संबंध संतोषजनक रीति से अभिलेख में उल्लिखित स्थान के साथ हो जाता है।

इंदौर (म० प्र०)

होलकर-नरेशों की भूतपूर्व रियासत तथा उसकी राजधानी। इस नगर को अहल्याबाई ने 18वीं शती में बसाया था। इसका नाम यहाँ स्थित इन्द्रेश्वर के प्राचीन मंदिर के कारण इंद्रपुर या इंदौर हुआ था। इंदौर के होल्कर नरेशों ने विशेषत: जसवंतराव ने अंग्रेजों के भारत में अपने साम्राज्य की जड़ें जमाने के समय उनका काफी विरोध किया था किंतु इन्होंने पार्श्ववर्ती राजपूत नरेशों के राज्य में काफी लूटमार मचाई थी जिसके कारण उनकी सहानुभूति इन्हें न मिल सकी। इंदौर में होल्कर नरेशों के प्राचीन प्रासाद उल्लेखनीय हैं।

इंद्रकील

हिमालय के उत्तर में स्थित पर्वत। यहां अर्जुन ने उग्र तपस्या की थी जिसके फलस्वरूप उन्हें इंद्र का दर्शन हुआ था। 'हिमवन्तमतिक्रम्य गंधमादनमेव च, अत्यक्रामत् स दुर्गाणि दिवारात्रमतिन्द्रित:। इंद्रकील समासाद्यततोऽतिष्ठद् धनंजय:'। महा०, वन० 37,41-42। इंद्रकील के निकट ही किरातवेशधारी शिव और अर्जुन का युद्ध हुआ था (वन० 38)।

इंद्रद्युम्न

(1) हिमालय के उत्तर में स्थित हंसकूट के निकट एक सरोवर (दे० **हंसकूट** 2)।

(2) द्वारका के निकट हंसकूट पर स्थित एक सरोवर (दे० हंसकूट 1)।

इंद्रद्वीप

'इन्द्रद्वीपं कशेरुं च ताम्रद्वीपं गभस्तिमत्, गांधर्व वारुण द्वीपं सौम्याक्षमिति च प्रभु:' महा० सभा०, 38— दक्षिणात्य पाठ। इस द्वीप को जो संभवत: सुमात्रा (दे० **इंद्रपुर**) का एक भाग था, सहस्रबाहु ने जीता था।

इंद्रपर्वत

'वैदेहस्थस्तु कौन्तेय इन्द्रपर्वतमन्तिकात्, किरातानामधिपतीनजयत् सप्त पांडव:' महा० सभा०, 30,15। इन्द्रपर्वत के समीप सात किरात-नरेशों को भीम ने अपनी दिग्विजय यात्रा में विजित किया था। इन्द्रपर्वत संभवत: नेपाल का वह पहाड़ी भाग था जो गंडकी और कोसी नदियों के बीच में स्थित है। इन्द्रपर्वत के प्रदेश की विजय भीम ने विदेह (बिहार) में ठहर कर की थी जिससे इन दोनों देशों का प्रातिवेश्य सूचित होता है।

इंद्रपुर (मद्रास)

(1) मायावरम् रेलजंकशन से तीन मील दूर तिरुक्किदलूर ही प्राचीन इंद्रपुर है जो प्राचीन काल में दक्षिण भारत में विष्णु की उपासना का प्रख्यात केंद्र था। कावेरी नदी ग्राम के निकट ही बहती है।

(2) (सुमात्रा, इण्डोनेशिया) सुमात्रा द्वीप में प्राचीन भारतीय औपनिवेशिक नगर जहां हिंदू नरेशों का राज्य मध्यकाल तक रहा।

(3) प्राचीन कंबुज या कंबोडिया का एक नगर जहां 9वीं शती के हिंदू राजा जयवर्मन् द्वितीय की राजधानी कुछ समय तक रही थी। नगर कंबुज के उत्तर-पूर्वीय भाग में स्थित था।

इंद्रपुरी (दे० इंदूर)

इंद्रप्रयाग (ज़िला गढ़वाल, उ०प्र०)

ऋषिकेश से देवप्रयाग जाने वाले मार्ग पर नवालिका-गंगा-संगम पर स्थित प्राचीन तीर्थ। पौराणिक कथाओं में वर्णित है कि जब देवराज इंद्र वृत्रासुर से संग्राम में पराजित होकर भागे तो उन्होंने यहीं आकर शिव की आराधना की थी। शिव से वरदान प्राप्त होने पर ही वे वृत्रासुर को मार सके थे।

इंद्रप्रस्थ

वर्तमान नई दिल्ली के निकट पांडवों की बसाई हुई राजधानी। महाभारत आदि० में वर्णित कथा के अनुसार प्रारंभ में धृतराष्ट्र से आधा राज्य प्राप्त करने के पश्चात् पांडवों ने इंद्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाई थी। दुर्योधन की राजधानी लगभग 45 मील दूर हस्तिनापुर में ही रही। इंद्रप्रस्थ नगर कौरवों की प्राचीन राजधानी खांडवप्रस्थ के स्थान पर बसाया गया था—'तस्मात्त्वं खांडवप्रस्थं पुरं राष्ट्रं च वर्धय, ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च कृत निश्चयाः। त्वद्भक्त्या जन्तवश्चान्ये भजन्त्वेव पुरं शुभम्' महा० आदि० 206। अर्थात् धृतराष्ट्र ने पांडवों को आधा राज्य देते समय उन्हें कौरवों के प्राचीन नगर व राष्ट्र खांडवप्रस्थ को विवर्धित करके चारों वर्णों के सहयोग से नई राजधानी बनाने का आदेश दिया। तब पांडवों ने श्रीकृष्ण सहित खांडवप्रस्थ पहुंच कर इंद्र की सहायता से इंद्रप्रस्थ नामक नगर विश्वकर्मा द्वारा निर्मित करवाया—'विश्वकर्मन् महाप्राज्ञ अद्यप्रभृति तत् पुरम्, इन्द्रप्रस्थमिति ख्यातं दिव्यं रम्यं भविष्यति' आदि० 206। इस नगर के चारों ओर समुद्र की भांति जल से पूर्ण खाइयां बनी हुई थीं जो उस नगर की शोभा बढ़ाती थीं। श्वेत बादलों तथा चंद्रमा के समान उज्ज्वल परकोटा नगर के चारों ओर खिंचा हुआ था। इसकी ऊंचाई आकाश को छूती मालूम होती थी—

'सागर प्रतिरूपाभिः परिखाभिरलंकृताम् प्राकारेण च सम्पन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता, पांडुराभ्र प्रकाशेन हिमरश्मिनिभेन च शुशुभेतत् पुरश्रेष्ठंनागैर्भोगवतीयथा' आदि० 206,30-3। इस नगर को सुंदर और रमणीक बनाने के साथ ही साथ इसकी सुरक्षा का भी पूरा प्रबंध किया गया था—

'तल्पैश्चाभ्यासिकैर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम्, तीक्ष्णांकुश शतघ्नीभिर्यन्त्र जालैश्च शोभितम्;' 'सर्वशिल्पविदस्तत्र वासायाभ्यागमंस्तदा, उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समन्ततः;' 'मनोहरैश्चित्र गृहैस्तथा जगतिपर्वतैः, वापीभिर्विविधाभिश्च पूर्णाभिः परमाम्भसा, रम्याश्च विविधास्तत्र पुष्करिण्यो वनावृताः' आदि 206, 34-40-46-48। अर्थात् जिनमें अस्त्रशस्त्रों का अभ्यास किया जाता था ऐसी अनेक अटारियों से युक्त और योद्धाओं से सुरक्षित वह नगर शोभा से सयुक्त था। तीखे अंकुश और शतघ्नियों और अन्यान्य शस्त्रों से वह नगर सुशोभित था। सब प्रकार की शिल्पकलाओं को जानने वाले लोग भी वहां आकर बस गए थे। नगर के चारों ओर रमणीय उद्यान थे। मनोहर चित्रशालाओं तथा कृत्रिम पर्वतों से तथा जल से भरी-पूरी नदियों और रमणीय झीलों से वह नगर शोभित था। युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ इन्द्रप्रस्थ में ही किया था। महाभारत-युद्ध के पश्चात् इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर दोनों ही नगरों पर युधिष्ठिर का शासन स्थापित हो गया। हस्तिनापुर के गंगा की बाढ मे बह जाने के बाद 900 ई० पू० के लगभग जब पांडवों के वंशज कौशांबी चले गए तो इन्द्रप्रस्थ का महत्त्व भी प्रायः समाप्त हो गया। विधुर पंडित जातक में इन्द्रप्रस्थ को केवल 7 कोश के अंदर घिरा हुआ बताया गया है जबकि बनारस का विस्तार 12 कोश तक था। धूमकारी-जातक के अनुसार इन्द्रप्रस्थ या कुरुप्रदेश में युधिष्ठिर-गोत्र के राजाओं का राज्य था। महाभारत, उद्योग मे इन्द्रप्रस्थ को शक्रपुरी भी कहा गया है। विष्णुपुराण में भी इन्द्रप्रस्थ का उल्लेख है—'इत्थं वदन्ययौ जिष्णुरिन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम्' 5, 38,34।

आजकल नई दिल्ली में जहां पांडवों का पुराना किला स्थित है उसी स्थान के परवर्ती प्रदेश में इन्द्रप्रस्थ नगर की स्थिति मानी जाती है। पुराने किले के भीतर कई स्थानों का संबध पांडवों से बताया जाता है। दिल्ली का सर्वप्राचीन भाग यही है। दिल्ली के निकट इन्द्रपत नामक ग्राम अभी तक इन्द्रप्रस्थ की स्मृति के अवशेष रूप में स्थित है।

इन्द्राणी

पूना के निकट बहने वाली महाराष्ट्र की प्रसिद्ध नदी। अलंदी आदि कई प्राचीन तीर्थ इस नदी के तट पर बसे हैं।

इन्द्रशिला गुहा

राजगृह के निकट गिरिव्रज की एक पहाड़ी है।

इन्द्रावती (ज़िला बस्तर, म० प्र०)

जगदलपुर के निकट बहने वाली नदी जो उड़ीसा के कालहंदी पहाड़ से निकल कर भूपालपटनम् के पास गोदावरी में गिरती है। चित्रकोट नाम का 94 फुट ऊंचा जलप्रपात जगदलपुर के पास स्थित है। इसे पहले चक्रकूट क्षेत्र कहते थे।

इकौना (ज़िला गौंडा, उ० प्र०)

सहेतमहेत (प्राचीन **श्रावस्ती** के खंडहर) से चार मील उत्तर-पश्चिम की ओर एक ग्राम है। चीनी पर्यटकों के अनुसार यह उसी स्थान के समीप है जहां पांच-सौ जन्मांध व्यक्तियों ने बुद्ध की आत्मिक शक्ति से नेत्र-ज्योति प्राप्त की थी। इन व्यक्तियों की इस स्थान पर गाड़ी हुई लकड़ियों से आप्त-नेत्रवन नामक एक विशाल वन ही उत्पन्न हो गया था।

इक्षु

विष्णुपुराण के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी—'नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्वपापभयापहाः, सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या। इक्षुश्चवेणुकाचैव गभस्ती सप्तमी तथा अन्याश्चशतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने' विष्णु० 2,4,65-66. श्री नंदलाल डे के अनुसार इक्षु **वंक्षु**, या ऑक्सस नदी है।

इक्षुमती

(1) बाल्मीकि-रामायण में इस नदी का उल्लेख अयोध्या के दूतों की केकय देश की यात्रा के प्रसंग में हुआ है—'आभिकालं ततः प्राप्य तेजोऽभिभवनाच्चयुताः, पितृपैतामहीं पुण्यां तेरुरिक्षुमतीं नदीम्' 2,68,11। इस नदी को दूतों ने जैसा कि संदर्भ से सूचित होता है—सतलज और बियास के बीच के प्रदेश में पार किया था। इसका ठीक-ठीक अभिज्ञान अनिश्चित है। संभव है यह सरस्वती नदी ही हो क्योंकि उपर्युक्त उद्धरण में इसे 'पितृ पैतामही पुण्या' कहा है। चक्षुष्मती भी इक्षुमती का ही एक नाम जान पड़ता है—दे० वराहपुराण 85; मत्स्यपुराण 113।

(2) पाणिनि ने, अष्टाध्यायी 4,2,80 में सांकाश्य-नगर की स्थिति इस नदी के तट पर बताई है। महाभारत, भीष्म० में इसे इक्षुमालिनी कहा गया है। यह वर्तमान ईखन है जो **सकिसा** (ज़िला फ़र्रुख़ाबाद, उ० प्र०) के निकट बहती है।

इक्षुमालिनी दे० **इक्षुमती**, 2

इक्षुला

'वेदस्मृता वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम्, करीषिणीं चित्रवाहां च चित्रसेनां

च निम्नगाम्' महा० भीष्म० 9,17। महाभारत के इस उद्धरण में अन्य नदियों के साथ ही इक्षुला का भी उल्लेख है। यह **इक्षु** या **इक्षुमती** हो सकती है।

इक्षुसागर

पौराणिक भूगोल के अनुसार पृथ्वी के सप्त-सागरों में से एक जो प्लक्षद्वीप के चतुर्दिक् स्थित है—'एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः, लवणेषु सुरा-सर्पिदधि दुग्ध-जलैः समम्'। विष्णु० 2-2-6।

इच्छावर (जिला बांदा, उ० प्र०)

इस स्थान से प्राप्त बुद्ध की मूर्ति पर एक ब्राह्मी-लेख उत्कीर्ण है जिसमें 'गुप्त वंशोदित' श्री हरिदास की रानी महादेवी के दान का उल्लेख है। लिपि से यह अभिलेख ई० सन् के पूर्व का जान पड़ता है। इससे यह भी सूचित होता है कि गुप्तवंशीय छोटे-मोटे राजा उस समय भी वर्तमान थे। वैसे प्रसिद्ध गुप्त वंश के शासनकाल का प्रारंभ 320 ई० के लगभग हुआ था।

इटावा (उ० प्र०)

पुराना नाम इष्टिकापुर कहा जाता है। हिंदी के प्रसिद्ध कवि देव इटावा-निवासी थे। उन्होंने स्वयं ही लिखा है—'द्यौसरिया कविदेव को नगर इटावौ-वास'। देव का जन्म 1674 ई० के लगभग हुआ था। इटावा की जामा मसजिद प्राचीन बौद्ध या हिंदू मंदिर के खंडहरों पर बनाई गई मालूम होती है।

इटूर (सूरियापेट ताल्लुका, ज़िला नलगोंडा, आं० प्र०)

गजुलीबंडा के निकट इटूर ग्राम में एक पचास फुट ऊंची विशाल चट्टान पर आंध्रकाल के महत्त्वपूर्ण अवशेष स्थित हैं। मिट्टी के बर्तनों के खंड तथा टूटी-फूटी प्राचीन ईंटें इस स्थान से बड़ी संख्या में मिली हैं। खंडहरों में सीसे का आंध्रकालीन एक सिक्का भी मिला है। यहां पर एक मृद्भांड के टुकड़े पर प्रथम या द्वितीय शती ई० की ब्राह्मीलिपि में तीन अक्षरों का एक लेख है। शातवाहनों के कई सिक्के भी मिले हैं। चट्टान के दक्षिणी भाग में एक स्तूप के अवशेष हैं। इसका आकार अरे तथा नाभि सहित एक विशाल-चक्र के समान है। इसका व्यास 60 फुट के लगभग है। पश्चिमी भाग में एक बौद्ध चैत्यशाला के चिह्न हैं। इसकी लंबाई 24 फुट और चौड़ाई 12 फुट है। उत्तर-पश्चिमी किनारे पर एक अन्य स्तूप के अवशेष स्थित हैं। अन्य भवनों के भी खंडहर हैं किंतु उनका अभिज्ञान अनिश्चित है। अन्य संबंधित बौद्ध-स्थानों के समान ही यहां भी बड़ी-बड़ी ईंटों का प्रयोग किया गया है। कुछ तो 2 फुट 1 इंच × 3 फुट के परिमाण की हैं। गजुलीबंडा में मिट्टी की मूर्तियों के शिर भी मिले हैं। इनमें से एक का शिरावरण अनोखा दिखाई पड़ता है क्योंकि वह

आजकल प्रयोग में नहीं है ।

इट्टागो (जिला रायचूर, मैसूर)

वेनी-कोप्पा स्टेशन से चार मील दक्षिण इस ग्राम में एक चालुक्यकालीन सुंदर मंदिर है जिसे कल्याणीनरेश त्रिभुवनमल विक्रमादित्य षष्ठ के सेनापति महादेव ने 1112 ई० में बनवाया था। यह सूचना एक कन्नड़-लेख से मिलती है जो मंदिर के समीप एक प्रकोष्ठ पर उत्कीर्ण है। मंदिर को इसके निर्माता ने देवालय-चक्रवर्ती नाम दिया है। मंदिर में, देवालय तथा पार्श्व कोष्टक, एक संवृत प्रकोष्ठ जिसके उत्तर और दक्षिण मे मंडप है तथा एक स्तंभ-सहित प्रकोष्ठ सम्मिलित हैं। मंदिर का मुख्यद्वार पूर्व की ओर है जहाँ पहले एक विशाल खुला प्रकोष्ठ था जिसमें 68 स्तंभ थे। प्रकोष्ठ के मध्यवर्ती भाग की छत के फलकों पर बारीक, मनोरम नक़्क़ाशी है। नीचे दीवार पर भी इसी प्रकार की नक़्क़ाशी में मालाओं का अलंकरण उत्कीर्ण है। वास्तुकला, मूर्तिकारी तथा तक्षण-शिल्प की दृष्टि से यह मंदिर इस प्रदेश में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है और इसका देवालय-चक्रवर्ती अभिधान सार्थक ही जान पड़ता है।

इडर (गुजरात)

प्राचीन जैन तीर्थ। तीर्थमालाचैत्यवंदन मे इसका उल्लेख है—'धारापद्र-पुरे च वाविहपुरे कासद्रहे चेडरे'।

इरावती

(1) पंजाब की प्रसिद्ध नदी रावी। 'रावी' इरावती का ही अपभ्रंश है। इसका वैदिक नाम परुष्णी था। 'इरा' का अर्थ मदिरा या स्वादिष्ट पेय है। महाभाष्य 2, 1, 2 में इसका उल्लेख है। महाभारत भीष्म० 9,16 मे इसको वितस्ता और अन्य नदियों के साथ परिगणित किया गया है—'इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि'। सभा० 9,19 में भी इसी प्रकार उल्लेख है—'इरावतीं वितस्ता च सिंधुर्देवनदी तथा।' ग्रीक लेखकों ने इरावती को हियारावटीज (Hyaraotis) लिखा है।

(2) पूर्व-उत्तर प्रदेश की राप्ती का भी प्राचीन नाम इरावती था। यह नदी कुशीनगर के निकट बहती थी जैसा कि बुद्धचरित 25,53 के उल्लेख से सूचित होता है—'इस तरह कुशीनगर आते समय चुंद के साथ तथागत ने इरावती नदी पार की और स्वयं उस नगर के एक उपवन में ठहरे जहां कमलों से सुशोभित एक प्रशान्त सरोवर स्थित था'। अचिरावती या अजिरावती इरावती के वैकल्पिक रूप हो सकते है। बुद्धचरित के चीनी-अनुवाद मे इस नदी के लिए कुकु शब्द है जो पाली के कुकुत्था का चीनी रूप है। बुद्धचरित

25,54 में वर्णन है कि निर्वाण के पूर्व गौतम बुद्ध ने हिरण्यवती नदी में स्नान किया था जो कुशीनगर के उपवन के समीप बहती थी। यह इरावती या राप्ती की ही एक शाखा जान पड़ती है। स्मिथ के विचार में यह गंडक है जो ठीक नहीं जान पड़ता। बुद्धचरित 27,70 के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् मल्लों ने उनके शरीर के दाहसंस्कार के लिए हिरण्यवती नदी को पार करके मुकुटचैत्य (दे० **मुकुटचैत्यबंधन**) के नीचे चिता बनाई थी। संभव है महाभारत सभा० 9,22 का वारवत्या भी राप्ती ही हो।

(3) ब्रह्मदेश की इरावदी। यह नाम प्राचीन भारतीय औपनिवेशिकों का दिया हुआ है।

इरेनियल (केरल)

त्रिवेंद्रम-कन्याकुमारी मार्ग पर मूलगुमुद से सात मील दूर है। तिरुवांकुर-नरेशों के पुराने राजप्रासाद के भीतर वसंत-मंडपम् में एक पत्थर की शैया दिखाई देती है जहां से किंवदंती के अनुसार प्राचीन केरल का प्रसिद्ध राजा भास्कर वर्मा सदेह स्वर्ग सिधारा था। यह स्थान जिसे रनमिगनुलूर भी कहते है केरल के पेरुमल नरेशों के समय विख्यात था।

इलापुर

इलोरा का प्राचीन नाम। यहां प्राचीन घुश्मेश्वर शिवतीर्थ है जिसका उल्लेख आद्य शंकराचार्य ने इस श्लोक में किया है—'इलापुरे रम्य विशालकेऽस्मिन् समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम् वन्दे महोदारतरस्वभावं घुश्मेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये'।

इलावास

इलाहाबाद का एक प्राचीन नाम है (दे० **प्रयाग**)

इलावृत

पौराणिक भूगोल के अनुसार इलावृत, जंबुद्वीप का एक भाग है। इसकी स्थिति जंबुद्वीप के मध्य में मानी गई है। इसके नाभिस्थान मे मेरु पर्वत है तथा इसके उपास्यदेव शंकर हैं—'पुनश्च परिवृत्याथ मध्य देशमिलावृतम्' महा० सभा० 28। विष्णुपुराण में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'मेरोश्चचतुर्दिशं तन्तु नव साहस्रविस्तृतम्, इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः' विष्णु० 2,2,15। विष्णु-पुराण के अनुसार इलावृत के चार पर्वत हैं, **मंदर, गंधमादन, विमल** और **सुपार्श्व**। इस देश में संभवतः हिमालय के उत्तर में चीन, मंगोलिया और साइबेरिया के कुछ भाग सम्मिलित रहे होंगे। वर्णन कल्पनारंजित होने के कारण ठीक-ठीक अभिज्ञान सम्भव नहीं जान पड़ता। इलावृत के दक्षिण
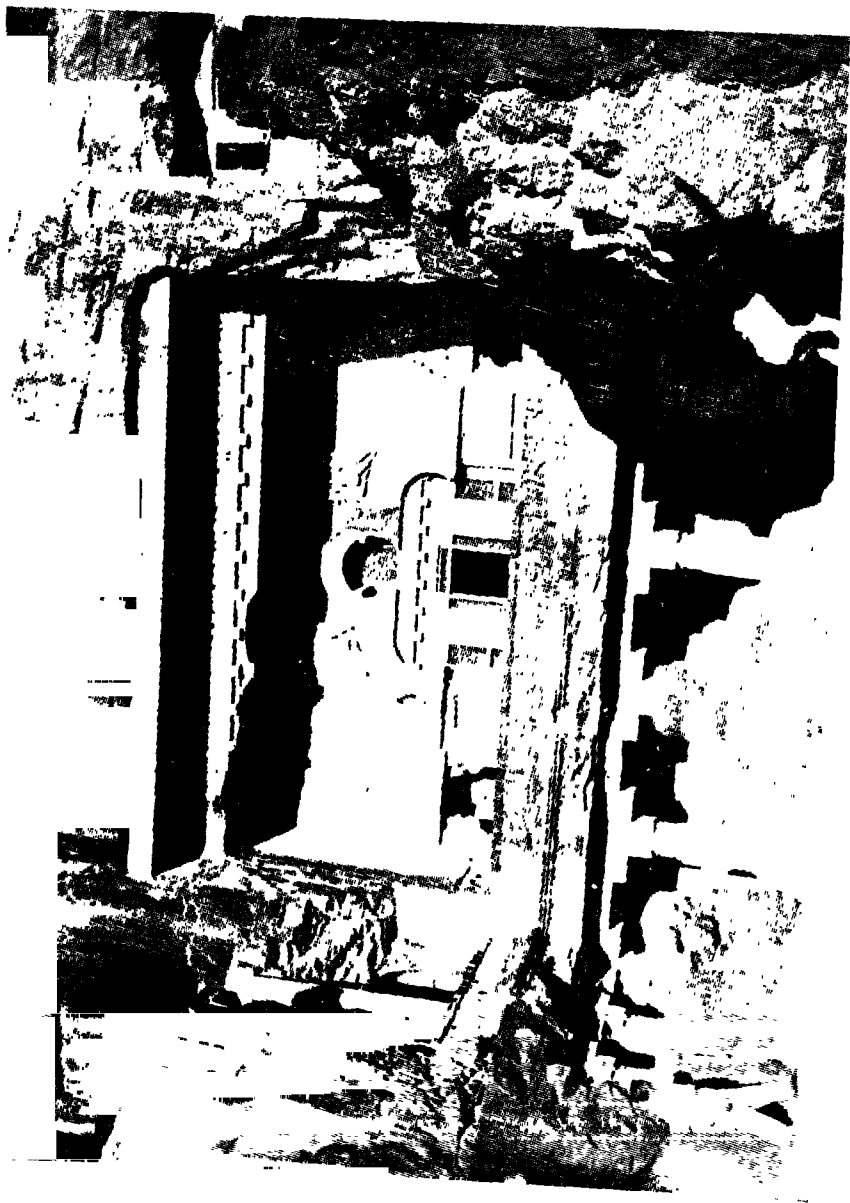
इलौरा-गुफ़ा सं० 10

(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

में हरिवर्ष की स्थिति थी ।

इलाहाबाद (उ० प्र०) दे० **प्रयाग** ।

एक प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार प्रयाग का एक नाम इलावास भी था जो मनु की पुत्री इला के नाम पर था । प्रयाग के निकट झूसी या प्रतिष्ठानपुर में चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी थी । इसका पहला राजा इला और बुध का पुत्र पुरुरवा एल हुआ । उसी ने अपनी राजधानी को इलावास की संज्ञा दी जिसका रूपांतर अकबर के समय में इलाहाबाद हो गया ।

इलौरा (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

औरंगाबाद से 14 मील दूर शैलकृत्त गुफा-मन्दिरों के लिए संसार-प्रसिद्ध स्थान है । विभिन्न कालों में बनी अनेक गुफाएं बौद्ध, हिन्दू तथा जैन सम्प्रदायों से सम्बन्धित हैं । ये गुफाएं अजन्ता के समान ही शैलकृत्त हैं और इनकी समग्र रचना तथा मूर्तिकारी पहाड़ी के भीतरी भाग को काट कर ही निर्मित की गई है । बौद्ध गुफाएं संभवत: 550 ई० से 750 ई० तक की हैं। इनमें से विश्वकर्मा गुहामन्दिर (सं० 10) सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह विशाल चैत्य के रूप में बना है । इसके ऊंचे स्तम्भों पर तक्षण-कला का सुन्दर काम है । इनमें बौनों की अनेक प्रतिमाएं हैं जिनके शरीर का ऊपरी भाग बहुत स्थूल है । भिक्षुओं के निवास के लिए बनी हुई गुफाओं में सं० 2,5,8,11 और 12 मुख्य हैं । सं० 12 जिसे तिनथाल कहते हैं लगभग 50 फुट ऊंची है । इसके भीतरी भाग में बुद्ध की सुन्दर मूर्तियां हैं । अजंता के विपरीत यहां की बौद्ध-गुफाओं में चैत्यवातायन नहीं है । बौद्ध गुफाओं की संख्या 12 है । ये पहाड़ी के दक्षिणी पार्श्व में अवस्थित हैं । इनके आगे सत्रह हिन्दू गुफा-मन्दिर हैं जिनमें से अधिकांश दक्षिण के राष्ट्रकूट नरेशों के समय (7वीं-8वीं शती ई०) बने थे । इनमें कैलाश मंदिर, प्राचीन भारतीय वास्तु एवं तक्षण-कला का भारत भर में शायद सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । यह समूचा मंदिर गिरिपार्श्व में से तराशा गया है । इसके भीमकाय स्तंभ, विस्तीर्ण प्रांगण, विशाल वीथियां तथा दालान, मूर्तिकारी से भरी छतें, और मानवों और विविध जीवजंतुओं की मूर्तियां—सारा वास्तु और तक्षण का स्थूल और सूक्ष्म काम आश्चर्यजनक जान पड़ता है । यहां के शिल्पियों ने विशालकाय पहाड़ी को और उसके विभिन्न भागों को तराश कर मूर्तियों की आकृतियां, उनके अंग-प्रत्यंगों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण, यहां तक कि हाथियों की आंखों की बारीक पलकें तक इतने अद्भुत कौशल से गढ़ी हैं कि दर्शक आत्मविभोर होकर उन महान् कलाकारों के सामने श्रद्धा से नतमस्तक हो जाता है । कैलास-मन्दिर अथवा रंग-महल के प्रांगण की लम्बाई 276 फुट

और चौड़ाई 154 फुट है। मन्दिर के चार खण्ड और कई प्रकोष्ठ हैं और इसका शिखर भी कई तलों से मिल कर बना है। जैसा अभी कहा गया है, सम्पूर्ण मन्दिर पहाड़ी के क्रोड़ में से तराश कर बना है, जिससे शिल्पकला के इस अद्भुत कृत्य की महत्ता सिद्ध होती है। सिर्फ छेनी और हथौड़े की सहायता से यहां के कर्मठ और श्रद्धावान् शिल्पियों ने देव, देवी, यक्ष, गंधर्व, स्त्रीपुरुष, पशुपक्षी, पुष्पपत्र आदि को वज्रकठोर पहाड़ी के भीमकाय अंतराल में से काट कर सुकुमारता एवं सौन्दर्य की जो अनोखी सृष्टि की है वह शिल्प के इतिहास में अभूतपूर्व है। उदाहरण के लिए, एक लम्बी पंक्ति में अनेक हाथियों की मूर्तियां है जो चट्टान में से काटकर बनाई गई है। इनकी आंखों की बारीक पलकें तक भी शैल से काट कर बनाई गई हैं। यह सूक्ष्मता और सुकुमारता की दृष्टि से असम्भव-सा जान पड़ता है।

यहां के अन्य हिन्दू मंदिरों में रावण की खाई, देवबाड़ा, दशावतार, लम्बेश्वर, रामेश्वर, नीलकंठ, धुमार-लेण या सीता चावड़ी विशेष उल्लेखनीय हैं। आठवीं शती ई० में क्षंतिदुर्ग राष्ट्रकूट ने दशावतार मन्दिर का निर्माण किया था। इसमें विष्णु के दशावतारों की कथा मूर्तियों के रूप में अंकित है। इनमें गोवर्धनधारी कृष्ण, शेषशायी नारायण, गरुडाधिष्ठित विष्णु, पृथ्वी को धारण करने वाले वराह, बलि से याचना करते हुए वामन और हिरण्यकशिपु का संहार करते हुए नृसिंह कला की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं।

९वीं शती में राष्ट्रकूटों की सत्ता के क्षीण होने पर इलौरा पर जैन-शासकों का आधिपत्य स्थापित हुआ। यहां के पांच जैन-मन्दिर इन्हीं के द्वारा बनवाए गए थे। इनमें इन्द्रसभा नामक भवन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसे छोटा कैलास मन्दिर भी कहा जाता है। इसके प्रांगण, छतों व स्तम्भों की सुन्दर कारीगरी और सजीव देवप्रतिमाएं सभी अनुपम हैं। चौबीस तीर्थंकरों की अनेक मूर्तियों से यह मन्दिर सुसज्जित है। समाधिस्थ पार्श्वनाथ की प्रतिमा के ऊपर शेषनाग के फनों की छाया है और कई दैत्य उनकी तपस्या भंग करने का विफल प्रयास कर रहे हैं। कहा जाता है कि इलौरा को इलिचपुर के राजा यदु ने 8वीं शती में बसाया था। किंतु महाभारत तथा पुराणों की गाथाओं के आधार पर प्राचीन इल्वलपुर को जहां अगस्त्य ऋषि ने इल्वलदैत्य को मारा था (महा० वन० ९९) वर्तमान इलौरा माना जाता है। कुछ बौद्धगुफ़ाएं तो अवश्य 8वीं शती से पहले की हैं। यह जान पड़ता है कि राष्ट्रकूटों का सम्बन्ध इस स्थान से 8वीं शती में प्रथम बार हुआ होगा।

ऐतिहासिक जनश्रुति में प्रचलित है कि जब अलाउद्दीन खिलजी ने

गुजरात पर 1297 ई० में आक्रमण किया तो वहाँ के राजा कर्ण की कन्या देवलदेवी ने भाग कर देवगिरि-नरेश रामचन्द्र के यहां शरण ली और तब वह इलौरा की गुफ़ाओं में जा छिपी थी। किंतु दुर्भाग्यवश अलाउद्दीन के दुष्ट गुलाम सेनापति काफ़ूर ने उसे वहां से पकड़कर दिल्ली भिजवा दिया था।

इलौरा से थोड़ी दूर पर अहल्याबाई का बनवाया ज्योतिर्लिंग का मन्दिर है। इलौरा के कई प्राचीन नाम मिलते हैं, जिनमें इल्वलपुर, एलागिरि और इलापुर मुख्य हैं। इलापुर में घुश्मेश्वर तीर्थ का उल्लेख आदि शंकराचार्य ने किया है—दे० **इलापुर**। प्राकृत साहित्य में एलउर नाम भी प्राप्त होता है। धर्मोपदेशमाला नामक जैन ग्रंथ (858 ई०) में उल्लिखित समयज्ञ मुनि की कथा से ज्ञात होता है कि उस समय एलउर काफ़ी प्रसिद्ध नगर था—'तओ नंदणाहिहाणो साहू कारणान्तरेण पट्ठविओ गुरुणा दक्खिणावहं। एगागी वच्चंतो अपओसे पत्तो एलउरं' (पृ० 161)। इलौरा की ख्याति 17वीं शती तक भी थी। जैन कवि मेघविजय ने मेघदूत की छाया पर जो ग्रन्थ रचा था उसमें इलौरा के तत्कालीन वैभव का वर्णन है। एक अन्य जैन विद्वान् विबुध विमलसूर ने इलौरा की यात्रा की थी। जैन मुनि शीलविजय ने 18वीं शती में इलौरा की यात्रा की थी—'इलोरि अति कौतक वस्यूं जोतां हीयडुं अति उलहस्यूं विश्वकरमा कीधुं मंडाण त्रिभुवन भातबणु सहिनाण' (प्राचीन तीर्थमाला संग्रह पृ० 121) इससे 18वीं शती में भी इलौर की अद्भुत कला को विश्वकर्मा द्वारा निर्मित माना जाता था—यह तथ्य प्रमाणित होता है। अजंता के विपरीत इलौरा के गुफ़ा-मन्दिर इतिहास के सभी युगों में विश्रुत तथा विख्यात रहे है।

इल्वलपुर दे० **इलौरा**

इश्तनगर=अष्टनगर (प० पाकिस्तान)

प्राचीन **पुष्कलावती** के स्थान पर बसा हुआ वर्तमान कस्बा।

इषुकार

जैन उत्तराध्ययन सूत्र (14,1) के अनुसार इषुकार कुरु जनपद में एक नगर था जहां इस नाम के राजा का शासन था। जान पड़ता है कि यहा कुरु के राजवंश की मुख्य शाखा के हस्तिनापुर से कौशांबी चले जाने के पश्चात् इसी वंश के किसी छोटे-मोटे राजा ने राज्य स्थापित कर लिया होगा (दे० पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० 113)।

इष्टिकापुर दे० **इटावा**

हिंदी के प्रसिद्ध कवि देव की लिखी शृंगार-विलासिनी नामक पुस्तक (खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर) के अनुसार वे इष्टिकापुर-वासी

थे—'देवदत्त कविरिष्टिकापुर वासी सचकार। इष्टकापुर' इटावा का संस्कृत रूपांतर जान पड़ता है। किंवदंती है कि ब्रजभाषा के एक अन्य प्रसिद्ध कवि घनानन्द भी जो दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के समकालीन थे—इटावे के ही निवासी थे।

इसलापुर (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

नवपाषाणयुगीन अवशेष, जैसे पत्थर के उपकरण और हथियार आदि यहां से पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुए हैं।

इसलामाबाद दे० **अनंतनाग**

इसलिया (ज़िला चंपारन, बिहार)

वर्तमान केसरिया। प्राचीन बौद्ध स्तूप के खण्डहर आजकल राजा 'बेन का देवरा' नाम से प्रसिद्ध हैं। फाह्यान ने इस स्थान को देखा था। बौद्ध किंवदन्ती के अनुसार यहां पूर्वजन्म में बुद्ध चक्रवर्ती राजा के रूप में जन्मे थे। इसी स्थान पर बुद्ध ने लिच्छवियों से विदा लेते समय अपना कमण्डल उन्हें दे दिया था। स्तूप इसी घटना का स्मारक था।

इसिगिलि=**ऋषिगिरि** (राजगृह, बिहार) को पाली साहित्य में इसिगिलि कहा गया है।

इसिला

मौर्य सम्राट् अशोक (273-232 ई० पू०) के लघुशिलालेख सं० 1 में इस नगर का उल्लेख है। यह लेख दक्षिणापथ के मुख्य नगर सुवर्णगिरि के शासक आर्यपुत्र और महामात्राओं के नाम प्रेषित किया था। इसमे उन्हें इसिला नगरी के शासक महामात्र के नाम कुछ विशेष आदेश पहुंचाने को कहा गया है। डा० भण्डारकर (दे० अशोक—द्वितीय संस्करण, पृ० 55) के मत मे इसिला का ज़िला दक्षिणापथ की दक्षिणी सीमा अर्थात् चोल और पांड्यराज्यों की सीमा पर स्थित रहा होगा। इस अभिज्ञान के अनुसार इसिला की स्थिति वर्तमान मैसूर राज्य के दक्षिणी भाग में थी। रायचौधरी (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इण्डिया, पृ० 257) इसिला को मैसूर में स्थित वर्तमान सिद्धापुर मानते हैं।

इसीपतन=**ऋषिपतन** (दे० **सारनाथ**)

ईखन (नदी) दे० **इक्षुमती** 2।

ईशानपुर

प्राचीन कम्बोडिया—कम्बुज—का एक नगर जिसे यहां के हिन्दू राजा

ईशानवर्मन् (राज्याभिषेक 616 ई०) ने बसाया था। इसका अभिज्ञान वर्तमान सम्बोर प्रेयी कूक से किया गया है।

ईशानध्युषित

महाभारत वन० 84,9 में इस तीर्थ को सौगंधिक-वन कहा गया है और इसे सरस्वती नदी के उद्गम से 6 शम्यानिपात (प्राय: आधा मील) पर बताया गया है—'ईशानाध्युषितां नाम तत्र तीर्थं सुदुर्लभम् षट्सुशम्यानिपातेषु वल्मीकादिति निश्चय:'। यह तीर्थ पंजाब के उत्तरी पर्वतों में स्थित रहा होगा।

ईसापुरी दे० **भाजा**

ईशापुर (जिला मथुरा)

यह ग्राम मथुरा में यमुना के पार और विश्राम-घाट के सामने है। 1910 ई० में यहां से एक ही पत्थर का बना एक सुन्दर 24 फुट ऊंचा यूपस्तंभ मिला था। स्तंभ के निचले चौकोर भाग पर कुषाण-काल (द्वितीय शती ई०) की ब्राह्मी लिपि में निम्न लेख खुदा है—'सिद्धम्-महाराजस्य राजातिराजस्य देवेपुत्रस्यषाहेर्व्वासिष्कस्य राज्य संवत्सरे (च)-तुर्विशे 24 ग्रिष्मा(-म) मासे चतुर्त्थे 4 दिवसे त्रिशे 30 अस्यांपुर्व्वायां रुद्रिलपुत्रेण द्रोणलेन ब्राह्मणेन भारद्वाज सगोत्रेण माणच्छंदोगेन इष्ट्वा सत्रेन द्वादशरात्रेण यूप: प्रतिष्ठापित: प्रीयतामग्न्य:'। अर्थात् 'कल्याण हो, महाराजाधिराज देवपुत्र षाहिवासिष्क के चौबीसवें राज्यवर्ष में, ग्रीष्म ऋतु के चौथे मास में, 30वें दिन, रुद्रिल के पुत्र भारद्वाज-गोत्रीय ब्राह्मण द्रोणल ने जो माणछन्द का अनुयायी है, द्वादश-रात्रियज्ञ को करके इस स्थान पर यह यूप प्रतिष्ठापित किया। अग्नि देवता प्रसन्न हों'।

उंड दे० **मंडु**

उंडवल्ली (जिला बेजवाडा, आं० प्र०)

उंडवल्ली के निकट एक पहाड़ी में स्थित गुफाएं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

उंड़=उड़्

उकला दे० **शूकरक्षेत्र**

उकेश=ओसियां

उक्कचेल

पाली साहित्य में उल्लिखित है। यह बेरंजा-वाराणसी मार्ग पर स्थित था। इसका अभिज्ञान सोनपुर (बिहार) से किया गया है।

उक्कठ

अंबट्ठसुत्त में उल्लिखित कोसल-जनपद का एक नगर। अभिधानप्पदीपिका

में इसका उत्तरी भारत के बीस नगरों की सूची में नाम है। साकेत तथा श्रावस्ती के अतिरिक्त यह नगर भी बौद्धकाल में कोसलदेश का ख्यातिप्राप्त नगर रहा होगा। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है।

उक्कल=**उत्कल**

उखीमठ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

केदारनाथ के निकट समुद्रतल से 4300 फुट ऊंचा एक छोटा कस्बा है। स्थानीय किंवदंती है कि ऊषा-अनिरुद्ध की प्रसिद्ध पौराणिक प्रणयकथा की घटना-स्थली यही है। एक विशाल मंदिर में अनिरुद्ध और ऊषा की प्रतिमाएं प्रतिष्ठापित हैं। इनके साथ ही मांधाता की भी मूर्ति है। कहा जाता है कि केशव-मंदिर में जो समुख शिवलिंग है वह कत्यूरी शासन के समय का है। मंदिर का वर्तमान भवन अधिक प्राचीन नहीं है। कहा जाता है कि स्थान का मूल नाम ऊषा या उषा मठ था जो बिगड़ कर उखी मठ हो गया। ऊषा बाणासुर की कन्या थी। ऊषा-अनिरुद्ध की सुंदर कथा का श्रीमद्भागवत 10,62 में सविस्तार वर्णन है जिसमें बाणासुर की राजधानी शोणितपुर में कही गई है। शोणितपुर का अभिज्ञान गोहाटी से किया गया है। उखीमठ से ऊषा की कहानी का संबंध तथ्य पर आधारित नहीं जान पड़ता। उखीमठ में पहले लकुलीश शैवों की प्रधानता थी। मंदिर की वास्तुकला पर दक्षिणी स्थापत्य का प्रभाव है जो इस ओर शंकराचार्य तथा उनके अनुवर्ती दक्षिणात्यों के साथ आया था।

उगमहल (संथाल परगना, बिहार)

राजमहल का मध्ययुगीन नाम। अकबर के मुख्य सेनापति राजा मानसिंह ने 1592 ई० में उगमहल के स्थान पर राजमहल को बसा कर उसे बंगाल-प्रांत की राजधानी बनाया था। इसका प्राचीन नाम कजंगल था। उगमहल का नाम अकबर के वित्त मंत्री टोडरमल के रिकार्डों में भी मिलता है। 1639 से 1660 ई० तक राजमहल में बंगाल के शासन की राजधानी रही थी। प्राचीन नगर के खंडहर चार मील पश्चिम की ओर हैं जिनमें कई मुगलकालीन प्रासाद और मसजिदें हैं।

उग्र केरल (दे० देवीपुराण 93 व हेमचन्द्र का अभिधान कोश)

उग्रपुर

प्राचीन कंबोडिया—कंबुज का एक नगर जिसे भारत के औपनिवेशिकों ने बसाया था। कंबुज में हिन्दू-नरेशों ने लगभग 13 सौ वर्षों तक राज्य किया था।

उच्छकल्प दे० **खोह**

खोह दानपट्टों के उल्लेख से जान पड़ता है कि महाराज जयनाथ तथा

सर्वनाथ की राजधानी उच्छकल्प नामक स्थान पर छठी शती ई० में थी क्योंकि उनके कई दानपट्ट इसी स्थान से निकाले गए थे। उच्छकल्प खोह (भूतपूर्व रियासत नागदा, म० प्र०) का अथवा उसके पास किसी स्थान का नाम रहा होगा। दानपट्ट खोह से प्राप्त हुए थे।

उच्छनगर दे० **बरन**

उचछेट (बिहार)

मधुबनी से पन्द्रह मील दूर एक छोटा-सा क़स्बा है। स्थानीय लोककथा के अनुसार महाकवि कालिदास को सरस्वती का वरदान इसी स्थान पर प्राप्त हुआ था तथा वे कवि बनने से पूर्व इसी ग्राम के निकट रहते थे। दुर्गा का एक प्राचीन मंदिर जिसे कालिदास की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है, यहां आज भी है।

उजालिक नगर=**जायस**।

उजेन (ज़िला नैनीताल)

काशीपुर के निकट है। कनिंघम ने इसका अभिज्ञान गोविषाण से किया है जिसका उल्लेख युवानच्वांग के यात्रावृत्त में है। उजेन में एक विशाल प्राचीन दुर्ग के ध्वंसावशेष **हैं**।

उज्जयंत

महाभारत वन-पर्व के अंतर्गत सुराष्ट्र के जिन तीर्थों का वर्णन धौम्य मुनि ने किया है उसमें उज्जयत पर्वत भी है—'तत्र पिंडारकं नाम तापसाचरितं शिवम्। उज्जयन्तश्च शिखरः क्षिप्रं सिद्धकरो महान्' वन० 88,21। जान पड़ता है कि उज्जयंत रैवतक पर्वत का ही नाम था। वर्तमान गिरनार (ज़िला जूनागढ़, काठियावाड़) आदि इसी पर्वत पर स्थित हैं। महाभारत के समय द्वारका के निकट होने से इस पर्वत की महत्ता बढ़ गई थी। मडलीक काव्य में कहा गया है—'शिखरत्रय भेदेन नाम भेदमगादसौ, उज्जयन्तो रैवतकः कुमुदश्चेति भूधरः'। रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में इसे ऊर्जयन् कहा गया है। दे० **गिरनार**।

उज्जयिनी दे० **अवंती**

महाभारत अनुशासन० में विश्वामित्र के एक पुत्र उज्जयन का नाम मिलता है। संभव है उज्जयिनी का नाम इसी के नाम पर हो। भास के नाटक स्वप्न-वासवदत्ता में अवंति तथा उज्जयिनी—इन दोनों ही नामों का उल्लेख है—'एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः', जिससे नाम की अतिप्राचीनता सिद्ध होती है। उज्जयिनी

के कई नाम संस्कृत साहित्य में मिलते हैं जिनमें मुख्य हैं—अवंती, विशाला, भोगवती, हिरण्यवती और पद्मावती।

उज्जानक

महाभारत वन० के अन्तर्गत पांडवों की तीर्थयात्रा के प्रसंग में इस तीर्थ का काश्मीर-मंडल में मानसरोवर के द्वार के पश्चात् वर्णन आता है। इसी के पास कुशवान् सरोवर और वितस्ता (झेलम नदी) का उल्लेख है—'एष उज्जानको नाम पावकिर्यत्र शान्तवान्' वन० 130,17। उज्जानक में एक सरोवर भी था।

उज्जिहाना

वाल्मीकि-रामायण में वर्णित है कि भरत केकय देश से अयोध्या आते समय गंगा को पार करने के पश्चात् पर्याप्त दूर चलने पर इस नगरी में पहुंचे थे—'तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ, उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः, अयोध्या० 71,12। उज्जिहाना नगरी वर्तमान रुहेलखंड (उ० प्र०) में कहीं हो सकती है। यह ज़िला बदायूं की उज्झेनी भी हो सकती है यद्यपि यह अभिज्ञान सर्वथा अनिश्चित है।

उज्जेनी (लंका)

सिंहल के बौद्ध-इतिहास महावंश 7,45 के अनुसार इस नगर की स्थापना राजकुमार विजय के एक सामंत ने की थी। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है।

उडुपा=उडुपि (मैसूर)

उडुपि (ज़िला मंगलूर, मैसूर)

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक और द्वैतमत के प्रतिपादक मनीषी मध्वाचार्य की जन्मभूमि है। यह स्थान पला नदी के तट पर अवस्थित है। कहा जाता है कि मध्यवाचार्य ने अपना प्रसिद्ध गीताभाष्य इसी स्थान पर लिखा था। यह भी किंवदंती है कि आचार्य का जन्म वास्तव में उडुपि से सात मील दक्षिण पूर्व वेल्ले नामक ग्राम (पंजक-क्षेत्र) में हुआ था। उडुपि का प्राचीन नाम उडुपा था जिसको प्राचीन काल में रजतपीठपुर, रौप्यपीठपुर एवं शिवाली भी कहते थे। उदीपी में मध्वाचार्य के समय का एक प्राचीन मंदिर भी है। पौराणिक किंवदंती है कि चंद्रमा (=उडुप) ने इस स्थान पर तप किया था।

उड्डियानपीठ

शाक्तों के अनुसार जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) के क्षेत्र का नाम। इसी को शंखक्षेत्र भी कहते थे।

उड्र

उड़ीसा का प्राचीन नाम—'पांड्याश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोड्रकेरलैः, आन्ध्रास्तालवनांश्चैव कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्' महा० सभा० 31, 71। इस उद्धरण में उड्र का पाठांतर उंड्र भी है। दे० **कलिंग, उत्कल**। कुछ विद्वानों का मत है कि द्रविड भाषाओं में उड्डि शब्द का अर्थ किसान है और शायद उड्र देश का नाम इसी शब्द से सम्बन्धित है।

उत्कल

(1) उत्तरी उडीसा का प्राचीन नाम जिसे उत् (उत्तर) कलिंग का संक्षिप्त रूप माना जाता है। कुछ विद्वानों के मत में द्रविड भाषाओं में 'ओक्कल' किसान का पर्याय है और उत्कल इसी का रूपांतर है—(दे० दि हिस्ट्री ऑव उड़ीसा; ह० कृ० महताब, पृ० 1)। उत्कल का प्रथम उल्लेख सम्भवतः सूत्रकाल (पूर्वबुद्धकाल) में मिलता है। कालिदास ने रघुवंश 4, 38 में उत्कलनिवासियों का उल्लेख रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कलिंग-विजय के पूर्व किया है—'स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः, उत्कलादर्शितपथः कलिंगाभिमुखो ययौ'। इससे स्पष्ट है कि कालिदास के समय में अथवा स्थूलरूप से, पूर्व-गुप्तकाल में उत्कल उत्तरी उड़ीसा और कलिंग दक्षिणी उडीसा को कहते थे। उड्र, उडीसा के समग्र देश का सामान्य नाम था जो महाभारत में सभा० 31, 71 में उल्लिखित है। मध्यकाल में भी उत्कल नाम प्रचलित था। दिब्बिड़ दान-पत्र (एपिग्राफिका इंडिका—जिल्द 5, 108) से सूचित होता है कि उत्कल-नरेश जयत्सेन ने मत्स्यवंशीय राजा सत्यमार्तंड के साथ अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह किया था और उसे ओड्डुवाडी का शासक नियुक्त किया था। इसकी 23 पीढ़ियों के पश्चात् 1269 ई० में उत्कल का राजा अर्जुन हुआ था जिसने यह दानपत्र प्रचलित किया था।

(2) ब्रह्मदेश (बर्मा) में रंगून से लेकर पीगू तक के औपनिवेशिक प्रदेश को उत्कल कहते थे। यहां भारत के उत्कल देश के निवासियों ने आकर अनेक बस्तियां बसाई थीं। कहा जाता है कि तपुस और भल्लूक नामक दो व्यापारी, जिन्होंने भारत जाकर गौतम बुद्ध से भेंट की थी तथा जो उनके शिष्य बनकर तथागत के आठ केशों को लेकर ब्रह्मदेश आए थे, इसी प्रदेश के निवासी थे।

उत्तरऋषिक

'लोहान् परमकाम्बोजानृषिकानुत्तरानपि, सहितांस्तान् महाराज व्यजयत् पाकशासनिः' महा० सभा० 27, 25। अर्जुन ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में उत्तर-ऋषिकों से घोर युद्ध करने के पश्चात् उन पर विजय प्राप्त की थी।

संदर्भ से अनुमेय है कि उत्तर-ऋषिकों का देश वर्तमान सिन्क्यांग (चीनी तुर्किस्तान) में रहा होगा। कुछ विद्वान् 'ऋषिक' को 'यूची' का ही संस्कृत रूप समझते हैं। चीनी इतिहास में ई० सन् से पूर्व दूसरी शती में यूची जाति का अपने स्थान या आदि यूची प्रदेश से दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रव्रजन करने का उल्लेख मिलता है। कुशान इसी जाति से सम्बद्ध थे। ऋषिकों की भाषा को आर्षी कहा जाता था। सम्भव है रूसी और ऋषिक शब्दों में भी परस्पर सम्बन्ध हो ('ऋ' का वैदिक उच्चारण 'रु' था जो मराठी आदि भाषाओं में आज भी प्रचलित है।)

उत्तरकाशी (गढ़वाल, उ० प्र०)

धरासू से 18 मील दूर गंगोत्री के मार्ग पर स्थित प्राचीन तीर्थ। विश्वनाथ के मंदिर के कारण ही इसका नाम उत्तरकाशी हुआ है।

उत्तरकुरु

वाल्मीकि-रामायण किष्किधा० 43 में इस प्रदेश का सुन्दर वर्णन है। कुछ विद्वानों के मत में उत्तरी ध्रुव के निकटवर्ती प्रदेश को ही प्राचीन साहित्य में विशेषत: रामायण और महाभारत में उत्तरकुरु कहा गया है और यही आर्यों की आदि भूमि थी। यह मत लोकमान्य तिलक ने अपने 'ओरियन' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ में प्रतिपादित किया था। वाल्मीकि ने जो वर्णन किष्किन्धा० में उत्तरकुरु प्रदेश का किया है उसके अनुसार उत्तरकुरु में शैलोदा नदी बहती थी और वहां मूल्यवान् रत्न और मणि उत्पन्न होते थे—'तमतिक्रम्य शैलेन्द्रमुत्तर: पयसां निधि:, तत्र सोमगिरिर्नाम मध्ये हेममयो महान्। सतुदेशो विसूर्योपि तस्य भासा प्रकाशते, सूर्यलक्ष्याभिविज्ञेयस्तपतेव विवस्वता'—किष्किन्धा० 43,53-54। अर्थात् (सुग्रीव वानरों की सेना को उत्तरदिशा में भेजते हुए कहता है कि) 'वहां से आगे जाने पर उत्तम समुद्र मिलेगा जिसके बीच में सुवर्णमय सोमगिरि नामक पर्वत है। वह देश सूर्यहीन है किंतु सूर्य के न रहने पर भी उस पर्वत के प्रकाश से सूर्य के प्रकाश के समान ही वहां उजाला रहता है।' सोमगिरि की प्रभा से प्रकाशित इस सूर्यहीन उत्तरदिशा में स्थित प्रदेश के वर्णन में उत्तरी नार्वे तथा अन्य उत्तरध्रुवीय देशों में दृश्यमान मेरुप्रभा या अरोरा बोरियालिस (Aurora Borealis) नामक अद्भुत दृश्य का काव्यमय उल्लेख हो सकता है जो वर्ष में छ: मास के लगभग सूर्य के क्षितिज के नीचे रहने के समय दिखाई देता है। इसी सर्ग के 56वें श्लोक में सुग्रीव ने वानरों से यह भी कहा कि उत्तरकुरु के आगे तुम लोग किसी प्रकार नहीं जा सकते और न अन्य प्राणियों की ही वहां गति है—'न कथंचन गन्तव्यं कुरूणामुत्तरेण व:, अन्येषामपि भूतानां नानुका-

मति वै गतिः ।' महाभारत सभा० 31 में भी उत्तरकुरु को अगम्य देश माना है। अर्जुन उत्तरदिशा की विजय-यात्रा में उत्तरकुरु पहुँच कर उसे भी जीतने का प्रयास करने लगे —'उत्तरंकुरुवर्ष तु स समासाद्य पांडवः, इयेष जेतुं तं देशं पाकशासननन्दनः' सभा० 31,7 । इस पर अर्जुन के पास आकर बहुत से विशालकाय द्वारपालों ने कहा कि 'पार्थ, तुम इस स्थान को नहीं जीत सकते । यहां कोई जीतने योग्य वस्तु दिखाई नहीं पड़ती । यह उत्तरकुरु देश है । यहां युद्ध नहीं होता । कुंतीकुमार, इसके भीतर प्रवेश करके भी तुम यहां कुछ नहीं देख सकते क्योंकि मानव-शरीर से यहां की कोई वस्तु नहीं देखी जा सकती'— 'न चात्र किंचिज्जेतव्यमर्जुनात्र प्रदृश्यते, उत्तराः कुरवो ह्येते नात्र युद्धं प्रवर्तते । प्रविष्टोपि हि कौन्तेय नेह द्रक्ष्यसि किंचन, न हि मानुषदेहेन शक्यमत्राभिवीक्षितुम्' सभा० 31,11–12 । यह बात भी उल्लेखनीय है कि ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तरकुरु को हिमालय के पार माना गया है और उसे राज्य हीन देश बताया गया है —'उत्तरकुरवः उत्तरमद्राइति वैराज्या यैव ते'—ऐतरेय० 8,14 । हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास, में बाण ने उत्तरकुरु की कलकलनिनादिनी विशाल नदियों का वर्णन किया है । रामायण तथा महाभारत आदि ग्रन्थों के वर्णन से वह अवश्य ज्ञात होता है कि अतीतकाल में कुछ लोग अवश्य ही उत्तरकुरु— अर्थात् उत्तरध्रुवीय प्रदेश में पहुंचे होंगे और इन वर्णनों में उन्हीं की कही कुछ सत्य और कुछ कल्पनारंजित रोचक कथाओं की छाया विद्यमान है । यदि तिलक का प्रतिपादित मत हमें ग्राह्य हो तो यह भी कहा जा सकता है कि इन वर्णनों में भारतीय आर्यो की उनके अपने आदि निवासस्थान की सुप्त जातीय स्मृतियां (racial memories) मुखरित हो उठी हैं । (**दे० उत्तरभद्र**) ।

उत्तरकुलूत दे० **कुलूत**

उत्तरकोसल

वर्तमान अवध (उ० प्र०) का प्राचीन नाम । मूलतः कोसल (=कोशल) का विस्तार सरयू नदी से विंध्याचल तक रहा होगा किंतु कालांतर में यह उत्तर और दक्षिण कोसल नामक दो भागों में विभक्त हो गया था । रामायणकाल में भी ये दो भाग रहे होंगे । कौसल्या दक्षिण कोसल की राजकुमारी थी और उत्तरकोसल के राजा दशरथ को व्याही थी । दक्षिणकोसल विंध्याचल के निकट वह भूभाग था जिसमें वर्तमान मध्यप्रदेश के रायपुर और बिलासपुर ज़िले तथा उनका परवर्ती प्रदेश सम्मिलित है । उत्तरकोसल स्थूलरूप से गंगा और सरयू का मध्यवर्ती प्रदेश था । महाभारत सभा० 30,3 में उत्तरकोसल पर भीम की विजय का वर्णन है—'ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोसलान्मल्लानामधिप चैव पार्थिवं

चाजयत् प्रभुः'। कालिदास ने उत्तर कोसल की राजधानी अयोध्या में बताई है—'सामान्यधात्रीमिव मानसं मे संभावयत्युत्तरकोसलानाम्' रघुवंश 13,62। उत्तरकोसल का रघुवंश 18,27 में भी उल्लेख है, 'कौसल्यइत्युत्तर कोसलानां पत्युः पतंगान्वयभूषणस्य, तस्यौरसः सोमसुतः सुतोऽभून्नेत्रोत्सवः सोम इव द्वितीयः।' दे० **कोसल, दक्षिण कोसल।**

उत्तरगंगा

कश्मीर में, सिंध का एक प्राचीन नाम।

उत्तरगा

रामायण अयो० 71,14 में उल्लिखित नदी—'वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तरगां नदीम्, अन्यानदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरगमैः'। संभवतः यह रामगंगा (उ० प्र०) है जो कन्नौज के पास गंगा में गिरती है।

उत्तरज्योतिष

'कृत्स्नं पंचनदं चैव तथैवामरपर्वतम्, उत्तरज्योतिषं चैव तथा दिव्यकटं पुरम्' महा० सभा० 32,11। नकुल ने अपनी पश्चिम-दिशा की दिग्विजययात्रा में इस स्थान को जीता था। प्रसंगानुसार इस की स्थिति पंजाब और कश्मीर की सीमा के निकट जान पड़ती है। जिस प्रकार प्राग्ज्योतिष (कामरूप-आसाम की राजधानी) की स्थिति पूर्व में थी, इसी प्रकार उत्तरज्योतिष की स्थिति उत्तरपश्चिम में थी। इसका पाठांतर जोतिक भी है जो उत्तर-पश्चिम हिमालय में स्थित जोता नामक स्थान है।

उत्तरपंचाल

चेतिय जातक (कॉवेल सं० 422) के अनुसार चेदि-प्रदेश का एक नगर जिसकी स्थापना चेदिनरेश उपचर के पुत्र ने की थी।

उत्तर मथुरा = उत्तर मधुरा

बौद्धकालीन भारत में मथुरा या मधुरा नाम की दो नगरियां थीं। एक उत्तर की प्रसिद्ध मथुरा, दूसरी वर्तमान मदुरा (मद्रास) जो पांड्य देश की राजधानी थी। हरिषेण ने बृहत्कथा-कोश-कथानक, 21 में उत्तर मथुरा को भरत-क्षेत्र या उत्तरी भारत में माना है। घटजातक (सं० 454) में उत्तर-मधुरा के राजा महासागर और उसके पुत्र सागर का उल्लेख है। सागर श्रीकृष्ण का समकालीन था।

उत्तरमद्र

ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तरमद्र के निवासियों का हिमवान् के पार के प्रदेश में वर्णन है और उन्हें उत्तर-कुरु के पार्श्व में बसा हुआ बताया गया है।

जिमर और मेकडॉनेल्ड के अनुसार उत्तर-मद्र का देश वर्तमान कश्मीर में सम्मिलित था। दक्षिण-मद्र रावी और चिनाब के बीच का प्रदेश था। ऐतरेय ब्राह्मण का उल्लेख इस प्रकार है—'एतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव तेऽभिषिच्यिन्ते' ऐतरेय 8,14। इस उद्धरण से यह भी सूचित होता है कि उत्तर-मद्र देश में वैराज्यप्रथा थी जिसका अर्थ बिना राज्य की शासन-पद्धति अथवा गणराज्य का कोई प्रकार हो सकता है। (दे० **उत्तरकुरु**) नं० ला० डे के अनुसार फ़ारस का मीडिया प्रान्त ही उत्तर-मद्र है।

उत्तराखण्ड

उत्तरपश्चिमी उत्तरप्रदेश का पार्वतीय प्रदेश जिसमें बदरीनाथ और केदारनाथ का क्षेत्र सम्मिलित है। मुख्य रूप से गढ़वाल का उत्तरी भाग इस प्रदेश के अंतर्गत है।

उत्तरापथ

विंध्याचल के उत्तर में स्थित प्रदेश का सामान्य नाम। घटजातक में उत्तरापथ तथा यहां की असितांजना नामक नगरी का उल्लेख है। यह नगरी वर्तमान मथुरा के निकट थी। हर्षचरित में बाण ने उत्तरापथ को विंध्य के उत्तर में स्थित देश का पर्याय माना है। (दे० **दक्षिणापथ**)।

उत्पलावन=उत्पलारण्य (ज़िला कानपुर)

बिठूर का प्राचीन नाम—महाभारत वन० 87, 15 में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'पंचालेषु च कौरव्य कथयन्त्युत्पलावनम् विश्वामित्रोऽयजद् यत्र पुत्रेण सह कौशिकः'।

उत्पलावती=सुत्पलावती

महाभारत भीष्म० 9, में इसका उल्लेख है। हरिवंश 168 में इसको उत्पल भी कहा गया है। इसका नाम वामन-पुराण 13 में भी है। यह कावेरी की सहायक नदी है और मलय-पर्वत से निकलती है।

उत्पलेश्वर

मध्यप्रदेश में महानदी का पेयरी नदी से संगम होने से पूर्व का भाग (नं० ला० डे)।

उत्सवसंकेत

वर्तमान हिमाचल प्रदेश और पंजाब की पहाड़ियों में बसे हुए सप्तगणराज्यों का सामुहिक नाम जिनका उल्लेख महाभारत मे है—इन्हें अर्जुन ने जीता था—'पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः, गणानुत्सव संकेतानजयत् सप्त

पांडवः' सभा० 27, 16 । कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन साहित्य में वर्णित किन्नरदेश शायद इसी प्रदेश में स्थित था। इन गणराज्यों के नामकरण का कारण संभवतः यह था कि इनके निवासियों में सामान्य विवाहोत्सव की रीति प्रचलित नहीं थी, वरन् भावी वरवधू संकेत या पूर्व-निश्चित एकांत स्थान पर मिलकर गंधर्व रीति से विवाह करते थे (आदिवासी गौंडों की विशिष्ट प्रथा जिसे घोटुल कहते हैं इससे मिलती-जुलती है। मत्स्यपुराण 154, 406 में भी इसका निर्देश है)। वर्तमान लाहुल के इलाके में जो किन्नर-देश में शामिल था इस प्रकार के रीतिरिवाज आज भी प्रचलित है, विशेषतः यहां की कनौड़ी नामक जाति में। कनौड़ी शायद किन्नर का ही अपभ्रंश है। कालिदास ने भी उत्सव-संकेतों का वर्णन रघु की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में देश के इसी भाग में किया है और इन्हें किन्नरों से सम्बद्ध बताया है—'शरैरुत्सवसंकेतान्स कृत्वा विरतोत्सवान्, जयोदाहरणं बाह्वोर्गापयामास किन्नरान्'—रघु० 4, 78 अर्थात् रघु ने उत्सवसंकेतों को बाणों से पराजित करके उनकी सारी प्रसन्नता हर ली और वहां के किन्नरों को अपनी भुजाओं के बल के गीत गाने पर विवश कर दिया। रघु० 4, 77 में कालिदास ने उत्सवसंकेतों को पर्वतीयगण कहा है—'तत्र जन्यं रघोर्घोर पर्वतीयगणैरभूत'।

उथूकाडु (ज़िला तंजौर, मद्रास)

तंजौर नगर के निकट एक ग्राम जो प्राचीनकाल में दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नृत्यशैली भरत-नाट्यम् के लिए प्रसिद्ध था। यह ग्राम इस नृत्य का केन्द्र समझा जाता था। अन्य केन्द्र मेलात्तूर और शूलमंगलम् थे।

उदकमंडल दे० **ऊटकमंड**

उदपान

महाभारतकाल में सरस्वती नदी के तट पर बसा एक तीर्थ। यहां सरस्वती अदृश्य थी किंतु आर्द्रता तथा वनस्पति के कारण इस नदी का पूर्वकाल में वहां होना सूचित होता था, दे० महा० शल्य० 35,90।

उदयगिरि (म० प्र०)

बेसनगर या प्राचीन विदिशा (भूतपूर्व ग्वालियर रियासत) के निकट उदयगिरि विदिशा नगरी ही का उपनगर था। पहाड़ियों से अन्दर बीस गुफाएं है जो हिंदू और जैन-मूर्तिकारी के लिए प्रख्यात हैं। मूर्तियां विभिन्न पौराणिक कथाओं से सम्बद्ध हैं और अधिकांश गुप्तकालीन (चौथी-पांचवी शती ई०) है। गुफा स० 4 में शिवलिंग की प्रमिमा है। इसके प्रवेशद्वार पर एक मनुष्य वीणावादन में व्यस्त दिखाया गया है जिसके कारण इस गुफा को बीन की गुफा

कहते हैं। गुफा सं० 5 में वराहावतार की सुन्दर झांकी है। इसमें वराह भगवान् को नर और वराह के रूप में अंकित किया गया है। उनका बायां पांव नागराजा के सिर पर दिखलाया गया है जो संभवतः गुप्तकाल में गुप्त-सम्राटों द्वारा किए गए नागशक्ति के परिह्रास का प्रतीक है। एक अन्य गुफा में गुप्तसंवत् 106= 425-426 ई० मे उत्कीर्ण कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल का एक अभिलेख है। इसमें शंकर नामक किसी व्यक्ति द्वारा गुफा के प्रवेश-द्वार पर जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति के प्रतिष्ठापित किए जाने का उल्लेख है—यह लेख इस प्रकार है—'नमःसिद्धेभ्यः श्री संयुतानां गुणतोयधीनां गुप्तान्वयानां नृपसत्तमाना राज्ये कुलस्याधिविवर्धमाने षड्भिर्य्युतैः वर्षशतेथ मासे सुकार्तिके बहुल दिनेथ पंचमे गुहामुखे स्फटविकतोत्कटामिमां जितोद्विषो जिनवर पार्श्व-सञ्ज्ञिका जिनाकृतिं शमदमवानचीकरत् आचार्य भद्रान्वय भूषणस्य शिष्योह्यसावार्य कुलोद्गतस्य आचार्य गोशर्म्ममुनेस्तुसुतस्तु पद्मावतावश्वपतेर्भटस्य परैरजयस्य रिपुघ्न मानिनस्य संघिल स्येत्यभि विश्रुतोभुवि स्वसंज्ञया शकरनाम शब्दितो विधानयुक्तं यतिमार्गमास्थितः स उत्तराणां सदंशे कुरुणां उदग्दिशादेशवरे प्रसूतः क्षयाय कर्मारिगणस्य धीमान् यदत्र पुण्य तद्पाससर्ज्ज'।

(2) (भुवनेश्वर, उड़ीसा)

भुवनेश्वर के समीप नीलगिरि, उदयगिरि तथा खडगिरि नामक गुहा समूह में 66 गुफाएं हैं जो पहाड़ियों पर अवस्थित हैं। इनमें से अधिकांश का समय तीसरी शती ई० पू० है और उनका सम्बन्ध जैन-सम्प्रदाय से है। इन गुफाओं में से एक में कलिंगराज खारवेल का प्रसिद्ध अभिलेख है जिसका विस्तृत अध्ययन श्री का० प्र० जायसवाल बहुत समय तक करते रहे थे। अभिलेख में पहाड़ी को कुमारगिरि कहा गया है। यह स्थान उड़ीसा की प्राचीन राजधानी शिशुपालगढ़ से 6 मील दूर है। इसी स्थान के पास अशोक के समय में **तोसलि** नाम की नगरी (वर्तमान धौली) बसी हुई थी। वास्तव में उड़ीसा के इसी भाग में इस प्रदेश की मुख्य राजधानियां बसाई गई थीं।

(3) विष्णुपुराण के अनुसार उदयगिरि शाकद्वीप के सप्तपर्वतों में से है—'पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलधारस्तथापरः, तथा रैवतकश्यामस्तथैवास्त गिरिर्द्विज। आम्बिकेयस्तथारम्यः केसरी पर्वतोत्तमः शाकःस्तत्र महावृक्षः सिद्धगंधर्वसेवितः' विष्णु० 2, 4, 62, 63।

(4) राजगृह के सप्तपर्वतों में से एक का वर्तमान नाम।

उदयपुर (म० प्र०)

बीना-भीलसा रेलमार्ग पर बरेठ से चार मील पूर्व की ओर बसा हुआ

यह छोटा-सा ग्राम मध्ययुग में काफ़ी महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहां से उस समय के अनेक अवशेष उत्खनन द्वारा प्रकाश में आए हैं जिनमें मुख्य ये हैं—उदयेश्वर का मंदिर जो मालव-नरेश उदयेश्वर के नाम पर है, बीजमंडल, बड़ाखंभी, पिसनहारी का मंदिर, शाही मसजिद और महल तथा शेरखां की मसजिद। शायद मालव-नरेश उदयेश्वर के नाम पर ही इस नगर का नामकरण हुआ था।

(2) (राजस्थान) मेवाड़ के सूर्यवंशी नरेश महाराणा उदयसिंह (महाराणा प्रताप के पिता) द्वारा 16वीं शती में बसाया गया था। मेवाड़ की प्राचीन राजधानी चित्तौड़गढ़ में थी। मेवाड़ के नरेशों ने मुगलों का आधिपत्य कभी स्वीकार न किया था। महाराणा राजसिंह जो औरंगज़ेब से निरंतर युद्ध करते रहे थे महाराणा प्रताप के पश्चात् मेवाड़ के राणाओं में सर्वप्रमुख माने जाते हैं। उदयपुर के पहले ही चित्तौड़ का नाम भारतीय शौर्य के इतिहास में अमर हो चुका था। उदयपुर में पिछौला झील में बने राजप्रासाद तथा सहेलियों का बाग नामक स्थान उल्लेखनीय हैं। दे० **चित्तौड़**।

उदवाड़ा (महाराष्ट्र)

बम्बई से 111 मील, उदवाड़ा रेलस्टेशन से चार मील दूर छोटी-सी बस्ती है। कहा जाता है कि अरबों द्वारा ईरान पर आक्रमण के समय (7-8 वीं शती ई०) जो अनेक पारसी ईरान छोड़कर भारत आ गए थे उन्होंने सर्वप्रथम इसी स्थान पर अपनी बस्ती बसाई थी और अपने साथ लाई हुई अग्नि की उन्होंने यहीं स्थापना की थी। पारसियों का प्राचीन अग्नि-मंदिर भी यहां है।

उदुबर

मूल-सर्वास्तिवादी-विनय में पठानकोट के इलाके का नाम।

उद्दंडपुर दे० **ओदंतपुरी**

उद्भांडपुर

वर्तमान ओहिंद (पाकिस्तान)। यह स्थान सिंध नदी पर स्थित अटक से 16 मील उत्तर की ओर है। अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय 327 ई० पू० में तक्षशिला-नरेश अंभी ने यवनराज के पास संधिवार्ता करने के लिए जो दूत भेजा था वह इसी स्थान पर उससे मिला था। इस नगर का जो सिंध नदी के तट पर ही स्थित था, अलक्षेंद्र के समय के इतिहास-लेखकों ने उल्लेख किया है। पाणिनि का जन्मस्थान **शलातुर**—वर्तमान लाहुर—यहां से छः-सात मील उत्तर-पश्चिम की ओर है। राजतरंगिणी 2, पृ० 337 (डा० स्टाइन द्वारा संपादित) में उल्लिखित उदखंड, उद्भांड का ही रूपांतरण जान पड़ता है।

उद्भिद्

विष्णुपुराण 2, 4, 46 के अनुसार कुशद्वीप का एक भाग या 'वर्ष' जो इस द्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के पुत्र के नाम पर उद्भिद् कहलाता है।

उद्यंत पर्वत

महाभारत वन० 84 में उल्लिखित, गया (बिहार) के निकट ब्रह्मयोनिपर्वत (नं० ला० डे)।

उद्यान

प्राचीन गंधार-देश का एक भाग जो आजकल स्वात या चितराल (प० पाकिस्तान के उत्तर-पूर्व में स्थित) के नाम से प्रसिद्ध है। बौद्धकाल में यहा अनेक बिहार स्थित थे। चीनी पर्यटक सुंगयुन (520 ई०) के वर्णन के अनुसार बौद्ध साहित्य तथा कला में प्रसिद्ध बेस्संतर जातक की कथा की घटनास्थली यह नगर था (दे० सुंगयुग का यात्रा विवरण; ना० प्र० सभा, काशी, उपक्रम पृ० 23)। उद्यान का वर्णन युवानच्वांग ने भी किया है। उद्यान-देश में बसने वाले लोगों को अश्वक (ग्रीक अस्सकनीज़) कहते थे। मार्कंडेय-पुराण तथा बृहत्संहिता में उन्हें उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित बताया गया है। मंगलपुर में उद्यान की राजधानी थी। कुछ विद्वानों का मत है कि अफगानिस्तान का वह भाग जो आजकल चमन कहलाता है प्राचीन 'उद्यान' है। दोनों नाम समानार्थक हैं। चमन का इलाका सदा से फलों के बागों के लिए प्रसिद्ध रहा है।

उधुवानाला (संथाल परगना, बिहार)

राजमहल से 5 मील दूर इस स्थान पर 1763 ई० में अंग्रेज़ों और बंगाल के नवाब मीरकासिम की सेनाओं में युद्ध हुआ था। अंग्रेजी फौज का नायक मेजर एड्मस था। मीरकासिम की इस युद्ध में पराजय हुई थी।

उन (ज़िला इंदौर, म० प्र०)

नीमाड़ के मैदान में सतपुड़ा की पहाड़ियों के उत्तरी छोर पर बसा हुआ कस्बा है। मालवा के परमार-नरेशों के समय के लगभग बारह मंदिरों के खण्डहर यहां स्थित हैं। ये मंदिर मध्ययुगीन हिंदू तथा जैन वास्तुकला के अच्छे उदाहरण हैं। इनमें चौबारा डेरा नाम का मंदिर प्रमुख है। ग्राम के उत्तर की ओर कालेश्वर का मंदिर है और ग्राम के भीतर नीलकंठेश्वर शिव का।

उन्मार्गशील (स्याम या थाइलैंड)

प्राचीन गंधार या यूनान के पूर्व और स्याम के पश्चिम में स्थित भारतीय औपनिवेशिक राज्य। इसके उत्तर में सुवर्णग्राम की स्थिति थी।

उपकेश = ओसियां ।

उपगिरि

प्राचीन साहित्य में हिमालय-पर्वत श्रेणी के निचले शृंगों का सामूहिक नाम । इसमें समुद्रतल से 6 से 8 सहस्र फुट ऊंची श्रेणियां सम्मिलित हैं । नैनीताल, शिमला, मसूरी आदि इसी के अंतर्गत हैं । सर्वोच्च शिखरों को अंतर्गिरि का अभिधान दिया गया था । उपगिरि को पाली साहित्य में चुल्ल (=लघु) हिमवंत कहा गया है । इसे अंग्रेज़ी में लेसर हिमालयाज़ (Lesser Himalayas) कहते हैं जो चुल्लहिमवन्त का अनुवाद है । महाभारत में उपगिरि का उल्लेख इस प्रकार है—'अन्तर्गिरिं च कौन्तेयस्तथैव च बहिर्गिरिम्, तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभ' सभा० 27, 3 ; अर्थात् अर्जुन ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में, अंतर्गिरि, बहिर्गिरि और उपगिरि नामक प्रदेशों को विजित किया । बहिर्गिरि तराई प्रदेश की पहाड़ियों का नाम था ।

उपजला

'जलांचोपजलां चैव, यमुनामभितो नदीम्, उशीनरो वै यत्रेष्ट्वा वासवादत्यरिच्यत' महा० वन० 130, 21. इस उद्धरण में जला तथा उपजला नदियों को यमुना के दोनों ओर स्थित बताया गया है । इन नदियों के प्रदेश में राजा उशीनर के राज्य का उल्लेख है । उशीनर कनखल या हरद्वार के परिवर्ती प्रदेश का नाम था । इन नदियों की स्थिति इस प्रकार सहारनपुर या देहरादून जिले में यमुना के निकट कहीं रही होगी । (दे० **जला**)

उपतिष्य (लंका)

महावंश 7,44 में उल्लिखित इस ग्राम की स्थिति गंभीर नदी के तट पर थी । इसे राजकुमार विजय के सामन्त बौद्ध उपतिष्य ने बसाया था । यह ग्राम शायद अनुराधपुर से सात-आठ मील उत्तर की ओर स्थित वर्तमान योदिएल है ।

उपधौली (उ० प्र०)

पूर्वी उत्तर प्रदेश में कुसुम्ही रेलस्टेशन से ग्यारह मील पर एक ग्राम है जहां बौद्धकालीन खंडहर पाए गए हैं । उपधौली तथा इसके निकट राजधानी नामक ग्राम में फैले हुए ये खंडहर शायद उस स्तूप के हैं जिसका निर्माण युवानच्वांग के अनुसार सम्राट् अशोक ने करवाया था । स्तूप में बुद्ध की शरीर-भस्म सन्निहित थी । ग्राम के निकट 30 फुट ऊंचा ईंटों का एक छोटा स्तूप आज भी है ।

उपप्लव्य

महाभारत-काल में मत्स्य देश में स्थित नगर जो विराट या बैराट (ज़िला

जयपुर, राजस्थान) के निकट ही था, 'उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कंधावारं प्रविश्य च, पांडवानथतान् सर्वान् शल्यस्तत्रददर्श ह'। महा० उद्योग० 8,25. तथा 'ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पंचपांडवा:, उपप्लव्यं विराटस्य समपद्यन्त सर्वश:' महा० विराट 72,14। पांडव इस नगर में अपने वनवासकाल के बारह वर्ष और अज्ञातवास के तेरह वर्ष समाप्त होने पर आकर रहने लगे थे। यहीं उन्होंने युद्ध की तैयारियां की थीं। महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकंठ ने विराट 72,14 की टीका करते हुए उपप्लव्य के लिए लिखा है—'विराटनगरसमीपस्थनगरान्तरम्' अर्थात् यह नगर मत्स्य की राजधानी विराटनगर के पास ही दूसरा नगर था। इसका ठीक-ठीक अभिज्ञान अनिश्चित है। किन्तु यह वर्तमान जयपुर के निकट ही कहीं होगा। विराटनगर की स्थिति वर्तमान वैराट के पास थी। पार्जिटर के अनुसार मत्स्य की राजधानी उपप्लव्य में ही थी।

उपवंग (प० बंगाल)

बृहत्संहिता 14, में उल्लिखित, भागीरथी के पूर्व में स्थित भूभाग जिसमें जैसोर सम्मिलित है।

उपरकोट (ज़िला जूनागढ़, काठियावाड़, गुजरात)

उपरकोट में संभवत: गुप्तकालीन कई गुफाएं है जो दोमंजिली हैं। गुफाओं के स्तंभों पर उभरी हुई धारियां अंकित हैं जो गुप्तकालीन गुहास्तंभों की विशिष्ट अलंकरण शैली थी। गुर्जरनरेश सिद्धराज के शासनकाल में यहां खंगार राजपूतों का एक दुर्ग था और दुर्ग के निकट अड़ीचड़ी बाव नाम की एक बावड़ी थी जो आज भी विद्यमान है। इस बावड़ी के संबंध में यहाँ एक गुजराती कहावत भी प्रचलित है—'अड़ीचड़ी बाव अने नौगुण कुआ जेणो न जोयो तो जीवितो मुयो', अर्थात् अड़ीचड़ी बाव और नौगुण कुआ जिसने नहीं देखा वह जीवित ही मृत है।

उमगा (ज़िला गया, बिहार)

ग्रांडट्रंक रोड के 307 वें मील से एक मील दक्षिण की ओर एक पर्वत, जहां प्राचीनकाल का कलापूर्ण सूर्य-मंदिर स्थित है। यह साठ फुट ऊंचा है। इस मुख्य मंदिर के निकट 52 मंदिर और हैं जो पहाड़ियों पर बने हुए हैं।

उमावन

ब्रह्मांडपुराण के अनुसार इस स्थान पर उमा ने शिव को पाने के लिए तपस्या की थी। स्थानीय जनश्रुति में यह स्थान कुमायूं (उ० प्र०) का कोटलगढ़ है।

उरंजिर=विपाशा नदी।

उरई (उ० प्र०) आल्हा काव्य के प्रमुख वीर माहिल की नगरी मानी जाती है।

उरग=उरगपुर

उरगपुर

सुदूर दक्षिण में स्थित पांड्य देश की प्राचीन राजधानी। कालिदास ने उरग का रघु० 6,59 में उल्लेख किया है—'अथोरगाख्यपुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य, इतश्चकोराक्षि विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम्'। मल्लिनाथ ने इसकी टीका करते हुए लिखा है, 'उरगाख्यस्य पुरस्यपांड्यदेशे कान्यकुब्जतीरवर्ति नागपुरस्य'। इससे ज्ञात होता है कि यह नगर कान्यकुब्ज नदी के तट पर बसा हुआ था। एपिग्राफ़िका इंडिका 10,103 में उरगपुर को अशोककालीन चोल देश की राजधानी बताया है जिसे उरयियूर भी कहते थे। यह त्रिशिरापल्ली=त्रिचिनापल्ली का ही प्राचीन नाम था। मल्लिनाथ का नागपुर वर्तमान नेगापटम् (ज़िला राजमहेन्द्री—मद्रास) है।

उरगम (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

प्राचीन गढ़वाली नरेशों के बनवाए प्राचीन मंदिर ं ध्वंसावशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

उरगा

'अभिसारीं ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनंदनः, उरगावासिनं चैव रोचमानं रणेऽजयत्' महा० सभा० 27,19। इस देश की स्थिति ज़िला हज़ारा, प० पाकिस्तान में मानी गई है। इस देश के राजा रोचमान् को अर्जुन ने पराजित किया था। प्रसंग से स्पष्ट है कि उरगा, **अभिसारी** (कश्मीर में) के निकट था। उरगा का पाठांतर उरशा है।

उरयियुर (दे० **उरगपुर**)

प्राचीन त्रिशिरापल्ली=त्रिचिनापल्ली।

उरशा=उरसा

शायद उरगा का पाठांतर है। इस देश का अभिज्ञान ज़िला हज़ारा (प० पाकिस्तान) से किया गया है। इस नाम के नगर की स्थिति (उरगा या उरशा का उल्लेख महा० सभा० 27,19 में है—दे० **उरगा**) पेशावर से लगभग चालीस मील पूर्व की ओर होगी। यवनराज अलक्षेंद्र ने 327 ई० पू०में पंजाब पर आक्रमण करते समय अभिसार-नरेश को अधीन करने के पश्चात् अपना आधिपत्य उरशा पर भी स्थापित कर लिया था। ग्रीक लेखक एरियन ने यहां के राजा का नाम अरसाकिस लिखा है। भूगोलविद् टॉलमी के अनुसार तक्षशिला इसी देश में थी। चीनीयात्रा युवानच्वांग के अनुसार उसके समय (सातवीं शती ई० का मध्यकाल) में नगर के उत्तर की ओर एक स्तूप बना हुआ था जहां भगवान्

तथागत अपने पूर्वजन्म में सुदान (वैश्वन्तर) के रूप में जन्मे थे। स्तूप के पास एक विहार भी था जहां बौद्ध आचार्य ईश्वर ने अपने ग्रन्थों की रचना की थी। नगर के दक्षिणी द्वार पर एक अशोक-स्तंभ था जो उस स्थान का परिचायक था जहां वैश्वन्तर के पुत्र और पुत्री को एक निष्ठुर ब्राह्मण ने बेचा था (वैस्सन्तर जातक)। वैश्वन्तर ने जिस दंतालोक पर्वत पर अपने बच्चों को दान में दे दिया था वहां भी अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप था। बौद्ध कथा है कि जिस स्थान पर निष्ठुर ब्राह्मण इन बच्चों को पीटता था वहां की वनस्पति भी रक्तरंजित हो गई थी और बहुत दिनों तक वैसी ही रही थी। इसी स्थान पर ऋष्यश्रृंग का आश्रम था जिन्हें एक गणिका ने मोह लिया था।

उरी=एरंडी नदी।

उरुबिल्व=उरुवेला।

उरुवेल्लकल्प=उरुवेलकल्प।

बुद्धकाल में मल्लक्षत्रियों का नगर जो पूर्वी उत्तरप्रदेश या पश्चिमी बिहार में स्थित रहा होगा (लॉ—'सम क्षत्रिय ट्राइब्ज़', पृ० 149)।

उरुवेलपतन (लंका)

महावंश 28,36 अनुराधपुर से चालीस मील कलओय नदी के निकट स्थित है। इसका नाम गया के निकट अवस्थित उरुवेला के नाम पर रखा गया था।

उरुवेला

(1) (बुद्धगया, बिहार) प्राचीन बौद्धग्रन्थों में इस स्थान का उल्लेख बुद्ध की जीवन-कथा के संबंध में है। यह वही स्थान है जहां गौतम संबुद्धि प्राप्त करने के पूर्व ध्यानस्थ होकर बैठे थे। इसी स्थान पर ग्राम-वधू सुजाता या अश्वघोष के अनुसार नंदबाला (दे० बुद्धचरित 12, 109) से भोजन प्राप्त कर उन्होंने अपना कई दिन का उपवास भंग किया था और शारीरिक कष्ट द्वारा सिद्धि प्राप्त करने के मार्ग की सारहीनता उनकी समझ में आई थी। स्थान का उल्लेख महावंश में भी है (1,12; 1, 16, आदि) जिस पीपल के पेड़ के नीचे गौतम को संबुद्धि प्राप्त हुई थी उसको अग्निपुराण, 115, 37 में महाबोध वृक्ष कहा गया है। इस ग्राम का शुद्ध नाम शायद उरुबिल्व था। नैरंजना नदी उरुवेला के निकट बहती थी (दे० बुद्धचरित 12,108)।

(2) (लंका) महावंश 7,45. इस नगर की स्थापना राजकुमार विजय के एक सामंत ने की थी। संभवतः यह नगर मदरगम-अरुनदी के मुहाने के पास स्थित मरिच्चुकट्टि है।

उलूक

'मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम्, उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत्' महा० सभा० 27, 11। अर्जुन ने दिग्विजययात्रा में उलूक देश पर भी विजय प्राप्त की थी। यह पंचगणराज्यों में से था—'तत्रस्थः पुरुषैरेव धर्मराजस्य शासनात्, किरीटी जितवान् राजन् देशान् पंचगणांस्ततः' सभा० 27,12। ये राज्य पंजाब की पहाड़ियों में बसे हुए थे और वर्तमान कुलू के आसपास स्थित थे। संभवतः उल्लूक कुलूक या कुलू का ही पाठांतर है।

उल्लोल

कश्मीर की प्रसिद्ध झील वुलर का प्राचीन संस्कृत नाम (दे० हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफी ऑव एंशेंट इंडिया, पृ० 39)।

उशीनर

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार (8, 14) यह जनपद मध्यदेश में स्थित था—'अस्यांध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि'। यहीं कुरुपांचाल और वश जनपदों की स्थिति बताई गई है। कौशीतकी उपनिषद् में भी उशीनर-वासियों का नाम मत्स्य, कुरुपांचाल और वशदेशीयों के साथ है। कथासरित्सागर (दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पांडुरंग द्वारा संपादित, तृतीय संस्करण=पृ० 5) में उशीनरगिरि का उल्लेख कनखल-हरद्वार के प्रदेश के अंतर्गत किया गया है। यह स्थान दिव्यावदान (पृ० 22) में वर्णित उसिरगिरि और विनयपिटक (भाग 2, पृष्ठ 39) का उसिरध्वज जान पड़ता है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी 2, 4, 20 और 4, 2, 118 में उशीनर का उल्लेख किया है। कौशीतकी-उपनिषद् से ज्ञात होता है कि पूर्वबुद्धकाल में गार्ग्य बालाकि जो काशी नरेश अजातशत्रु का समकालीन था उशीनर देश में रहता था। महाभारत में उशीनर-नरेश की राजधानी भोजनगर में बताई है—'गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यगतमानसः, जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनर नृपम्'—उद्योग० 118, 2. शांति० 29, 39 में उशीनर के शिबि नामक राजा का उल्लेख है—'शिबिमौशीनरं चैव मृतं सृंजय शुश्रुम'। ऋग्वेद 10, 59, 10 में उशीनराणी नामक रानी का उल्लेख है—'समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः, भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमारपो मोषुते किंचनाममत्' या जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणों से सूचित होता है उशीनरदेश वर्तमान हरद्वार के निकटवर्ती प्रदेश का नाम था। इसमें ज़िला देहरादून का यमुनातटवर्ती प्रदेश भी सम्मिलित था क्योंकि महाभारत वन 130,21 में यमुना के पार्श्ववर्ती प्रदेश में उशीनर नरेश द्वारा यज्ञ किए जाने का उल्लेख है—'जलां चोपजलां चैव, यमुनामभितो नदीम्,

उशीनरो वै यत्रेष्ट्वा वासवादत्यरिच्यत।'

उशीरगिरि = उसिरगिरि

उशीरध्वज = उसिरध्वज

उशीरबीज

'उशीरबीज मैनाकं गिरिश्वेतं च भारत, समतीतोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पार्थिव' महा० वन० 139, 1. पांडवों की तीर्थयात्रा के प्रसंग में उशीरबीज नामक पर्वत का उल्लेख है। वन० 139,2 में('एषा गंगा सप्तविधा राजते भारतर्षभ') गंगा का वर्णन है— इससे जान पड़ता है कि उशीरबीज तथा इसके साथ उल्लिखित अन्य पहाड़, गंगा के उद्गम से लेकर हरद्वार तक की हिमालय-पर्वत श्रेणियों के नाम हैं। वाल्मीकि-रामायण उत्तर० 18,2 में भी इसका उल्लेख है, 'ततो मरुत्तं नृपतिं यजन्तं सहदैवतैः उशीरबीजमासाद्य ददर्श सतु रावणः'। यहां मरुत्त नामक नरेश के तप का वर्णन है जो उन्होंने उशीरबीज में देवताओं के साथ किया था; दे० **उसिरगिरि, उसिरध्वज।**

उष्कूर = हुष्कपुर

कनिष्क के उत्तराधिकारी हुविष्क का कश्मीरघाटी में बसाया हुआ नगर —दे० **हुष्कपुर।**

उष्ट्रकर्णिक

'पांड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोण्ड्रकेरलैः, आंध्रा स्तालव नांश्चैव कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्' महा० सभा० 31,71। सहदेव ने अपनी दिग्विजययात्रा के प्रसंग में इस देश को विजित किया था। संदर्भ से जान पड़ता है कि यह स्थान कलिंग या दक्षिण उड़ीसा अथवा आंध्र के निकट स्थित होगा।

उष्ण

विष्णुपुराण 2, 4, 48 के अनुसार क्रौंचद्वीप का एक भाग या वर्ष जो द्वीप के राजा द्युतिमान् के इसी नाम के पुत्र के कारण उष्ण कहलाता है।

उसभ दे० ऋषभ (2·)

उसमा

जयनगर (जिला तिरहुत, बिहार) के निकट एक प्राचीन ग्राम जहां पचीस गज लम्बा एक धनुष है जिसे स्थानीय दंतकथाओं के आधार पर उसी धनुष का प्रतिरूप माना जाता है जिसे सीता स्वयंवर में भगवान् राम ने तोड़ा था।

उसमानाबाद

गुप्तकालीन गुहाओं के लिए उल्लेखनीय है। दे० **धरसेव।**

उसिरगिरि

इस पर्वत का उल्लेख दिव्यावदान पृ० 22 में है। यह वर्तमान सिवालिक पर्वत-माला है। उशीनर और उशीरगिरि या उसिरगिरि नामों में काफ़ी समानता है और इनकी स्थिति में भी साम्य है। दे० **उशीरगिरि**।

उसिरध्वज

विनयपिटक भाग 2, पृ० 39 में इस पर्वत का उल्लेख है। यह वर्तमान सिवालिक-पर्वतमाला का ही नाम जान पड़ता है। उसिरगिरि और उसिरध्वज (=उशीरध्वज) समानार्थक नाम जान पड़ते हैं।

उह्या=उषा

मिलिंदपन्हो (पृ० 70) में उल्लिखित हिमालय की एक नदी।

उहू (अफ़गानिस्तान)

काबुल या कुभा नदी। प्राचीन काल में इसके तट के निवासियों को उहुक कहा जाता था (वा० श० अग्रवाल)

ऊंचनगर दे० **बुलंदशहर**।

ऊजठ (ज़िला सीतापुर, उ० प्र०)

9वीं शती ई० के एक मंदिर के अवशेष यहां से उत्खनन द्वारा प्राप्त हुए हैं। उत्तरप्रदेश शासन ने यहां विस्तृत रूप से खुदाई की थी।

ऊटकमण्ड (मद्रास)

एक रमणीक पर्वतीय नगर है। इस नगर का प्राचीन रूप उदकमंडल कहा जाता है। इसे ऊटी भी कहते हैं।

ऊनकेश्वर (ज़िला यवतमाल, महाराष्ट्र)

आदिलाबाद के निकट अतिप्राचीन स्थान है। इसे ओनकदेव भी कहते हैं। जनश्रुति है कि इस स्थान पर रामायण-काल में शरभंग ऋषि का आश्रम था। भगवान् राम वनवासकाल में इस स्थान पर कुछ समय के लिए आए थे। वाल्मीकि रामायण अरण्य० 5, 3 में शरभंगाश्रम का यह उल्लेख है—'अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभंगं तपोधनम्, आश्रमं शरभंगस्य राघवोऽभिजगाम ह'। कालिदास ने शरभंगाश्रम का सुन्दर वर्णन रामसीता की लंका से अयोध्या तक की विमान-यात्रा के प्रसंग में इस प्रकार किया है— 'अदः शरण्यः शरभंग नाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः, चिराय संतर्प्य समिद्भिरग्निं यो मंत्रपूतां तनुमप्यहौषीत्:' रघु० 13, 45। दे० **शरभंगाश्रम**। ऊनकेश्वर में गरम पानी का एक कुंड है जिसे, कहा जाता है कि, श्रीराम ने बाण से पृथ्वी भेद कर शरभंग के लिए प्रकट किया था।

ऊर्जयंत दे० उज्जयंत

ऊर्णावती

ऋग्वेद 10, 75, 8 में वर्णित नदी जो या तो सिंधु की सहायक कोई नदी है अथवा सिंधु ही है। सिंधु के प्रदेश में ऊर्णा या ऊन वाली भेड़ों की बहुतायत सदा से रही है।

ऋक्ष

विष्णुपुराण 2, 3, के अनुसार सात कुलपर्वतों में ऋक्ष की भी गणना है—'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः' ऋक्षपर्वत विंध्याचल की पूर्वी श्रेणियों का नाम है जिनमें नर्मदा, ताप्ती और शोण आदि के स्रोत स्थित हैं। **अमरकंटक** इसी का भाग है। 'पुरश्च पश्चाच्च तथा महानदी तमृक्षवन्तं गिरिमेत्य नर्मदा', महा०, शांति 52, 32। स्कंदपुराण में भी नर्मदा का उद्भव ऋक्षपर्वत से माना गया है (दे० रेवा-खंड)। कालिदास ने ऋक्ष या ऋक्षवान् का नर्मदा के प्रसंग में उल्लेख किया है—'निःशेष विक्षालित धातुनापि वप्रक्रिया मृक्षवतस्तटेषु, नीलोर्ध्व रेखा शबलेन शंसन् दंतद्वयेनाश्मविकुंठितेन' रघु० 5, 44. विष्णुपुराण 2, 3, 11 में तापी, पयोष्णी और निर्विंध्या को ऋक्ष-पर्वत से निस्सृत माना है—'तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या प्रमुखा ऋक्षसंभवाः'। श्रीमद्भागवत-पुराण 5, 19, 16, में भी ऋक्ष का उल्लेख है—'विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतक.'। ऋक्ष का महाभारतकालीन जनश्रुति में ऋक्षों या रीछों से भी सम्बन्ध जोड़ा गया था जो यहां के जंगलों में पाए जाने वाले रीछों के कारण ही संभव हुआ होगा—'ऋक्षैः संवर्धितो विप्र ऋक्षवत्यथ पर्वते'— महा० ४६, ७६। संभव है श्रीराम का जिन ऋक्षों ने रावण के विरुद्ध युद्ध में साथ दिया था वे ऋक्ष-पर्वत के ही निवासी थे।

ऋक्षवान् = ऋक्ष

ऋक्षबिल

'विचिन्वन्तस्ततस्तत्र ददृशुर्विवृतं बिलम्, दुर्गमृक्षबलिं नाम दानवेनाभिरक्षितम्, क्षुत्पिपासापरीतासु श्रान्तास्तु सलिलार्थिनः' वाल्मीकि० किष्किंधा 50, 6-7-8. सीतान्वेषण करते समय वानरों ने भूख-प्यास से खिन्न होकर एक गुहा या बिल में से जलपक्षियों का निकलते देखकर वहां पानी का अनुमान किया था। इसी गुहा को वाल्मीकि ने ऋक्षबिल कहकर वर्णन किया है। यहीं वानरों की स्वयंप्रभा नामक तपस्विनी से भेंट हुई थी। ऋक्षबिल अथवा स्वयंप्रभागुहा का अभिज्ञान दक्षिण रेल के कलयनल्लूर स्टेशन से आधा मील पर

स्थित पर्वत की 30 फुट गहरी गुफा से किया गया है। तुलसीरामयण में भी इस गुहा का सुन्दर वर्णन है—'चढ़िगिरि शिखर चहूंदिशि देखा, भूमिविवर इक कौतुक पेखा। चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं, बहुतक खग प्रविशहिं तेहि माहीं।' किष्किंधाकांड। दे० **स्वयंप्रभा गुहा**।

ऋजुपालिका = ऋजुकल (बिहार)

इस नदी के तट पर बसे हुए जिम्भिक नामक ग्राम में वैशाख शुक्लादशमी के दिन जैन तीर्थंकर महावीर को अंतर्ज्ञान अथवा कैवल्य की प्राप्ति हुई थी। दे० **जिम्भक**।

ऋतुमाला

कूर्मपुराण में **कृतमाला** का नाम है। यह कावेरी की सहायक नदी है।

ऋषभ

(1) श्रीमद्भागवत 5, 19, 16 में उल्लिखित एक पर्वत जिसका नामोल्लेख मैनाक, चित्रकूट और कूटक पर्वतों के साथ है—'मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटः ऋषभः कूटकः विंध्यःशुक्तिमानृक्षगिरिः'। यह विंध्याचल के ही किसी पहाड़ का नाम जान पड़ता है। ऋक्ष से यह भिन्न है क्योंकि उपर्युक्त उद्धरण में दोनों के नाम अलग-अलग हैं। संभव है यह दक्षिण-कोसल अथवा पूर्वविंध्य की श्रेणियों का कोई पर्वत हो क्योंकि ऋषभ नामक तीर्थ संभवतः इसी प्रदेश में था। ऋक्ष और ऋषभ भिन्न होते हुए भी एक ही भूभाग में स्थित थे—यह भी अनुमानसिद्ध जान पड़ता है।

(2) दक्षिण कोसल का एक तीर्थ—'ऋषभतीर्थमासद्य कोसलायां नराधिप' महा० वन 85, 10। इससे पूर्व के श्लोक में नर्मदा और शोण के उद्भव पर वंशगुल्म तीर्थ का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि ऋषभ महाभारत के अनुसार अमरकंटक की पहाड़ियों में ही स्थित होगा। यह तथ्य रायगढ़ (म० प्र०) से तीस मील दूर स्थित उसभ नामक स्थान से प्राप्त एक शिला लेख से भी प्रमाणित होता है जिसमें उसभ का प्राचीन नाम ऋषभ दिया हुआ है। संभव है ऋषभपर्वत उसभ की निकटवर्ती पहाड़ियों में ही स्थित होगा।

(3) वाल्मीकि रामायण युद्धकांड 74, 30 में उल्लिखित कैलास के निकट एक पर्वत—'ततःकांचनमत्युग्रमृषभं पर्वतोत्तमम'। विष्णु-पुराण 2, 2, 29 के अनुसार इसकी स्थिति मेरु के उत्तर की ओर है- 'शखकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः'।

ऋषिक

चीनी तुर्किस्तान—सीक्यांग—में ऋषिकों या यूचियों का देश जिस पर

अर्जुन ने अपनी दिग्विजय यात्रा में विजय प्राप्त की थी—'ऋषिकेष्वपि संग्रामो बभूवातिभयंकरः' महा० सभा० 27, 26. दे० **उत्तर ऋषिक**।

ऋषिकुण्ड (बिहार)

भागलपुर से 28 मील पश्चिम की ओर स्थित है। कहा जाता है कि ऋष्यश्रृंग का आश्रम इसी स्थान पर था। यहां प्रति तीसरे वर्ष इनके नाम से मेला लगता है। श्रृंग ऋषि की कथा का उल्लेख, रामायण, महाभारत, पुराणों तथा बौद्ध जातकों में है—दे० **श्रृंगऋषि, ऋषितीर्थ, श्रृंगेरी**।

ऋषिकुल्या

(1) 'ऋषिकुल्यां समासाद्य वासिष्ठं चैव भारत'; 'ऋषिकुल्यां समासाद्य नरः स्नात्वा विकल्मषः' महा० वन, 84,48–49। महाभारत के इस प्रसंग में हिमालय के तीर्थों का वर्णन है। ऋषिकुल्या नदी को यहां भृगुतुंग के निकट प्रवाहित होने वाली सरिता बताया गया है (वन० 84,50)। भृगुतुंग केदारनाथ के निकट तुंगनाथ है। अनुमान है कि ऋषिकुल्या गढ़वाल के पहाड़ों में बहने वाली ऋषिगंगा है। भीष्म० 9,36 में भी ऋषिकुल्या का उल्लेख है—'कुमारी मृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम्'।

(2) दक्षिणी उड़ीसा—कलिंग की एक नदी जो विंध्याचल के पूर्वी भाग की पहाड़ियों से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। श्रीमद्भागवत में इसका उल्लेख है—'महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामाकौशिकी···' 5,19, 18। विष्णुपुराण 2,3.14 में ऋषिकुल्या को शुक्तिमान् पर्वत से निकलने वाली नदी कहा गया है—'ऋषिकुल्या कुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसंभवाः'।

ऋषिगंगा (गढ़वाल, उ० प्र०)

गढ़वाल की पहाडियों में बहने वाली एक नदी जो संभवतः महाभारत वन० 84,48–49 में उल्लिखित ऋषिकुल्या है।

ऋषिगिरि

'वैहारो विपुलः शैलो वराहो वृषभस्तथा, तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यक पंचमाः, एते पंच महाश्रृंगा पर्वताः शीतलद्रुमाः, रक्षन्तीवाभिसंहत्य संहतांगा गिरिव्रजम्' महा० सभा० 21,2–3। महाभारत के अनुसार ऋषिगिरि गिरिव्रज या राजगृह-वर्तमान राजगीर (बिहार) की पांच पहाड़ियों में से एक है (दे० **गिरिव्रज**)। वाल्मीकि रामायण में भी गिरिव्रज के पंचशैलों का वर्णन है—'एते शैलवराः पंच प्रकाशन्ते: समन्ततः' बाल० 32,80। यहां इनके नाम नहीं दिए गए हैं। पालीसाहित्य में ऋषिगिरि को इसगिलि कहा गया है।

ऋषितीर्थ (गुजरात)

महसाणा तालुके में स्थित परसोड़ा ग्राम का प्राचीन नाम है। यह सुरसरि, झर्झरी, अमरवेलि और साबरमती नदियों का संगम है। कहते हैं कि विभांड के पुत्र शृंगी ऋषि, रोमपाद की पुत्री शांता से विवाह करने के पश्चात् यहीं आश्रम बनाकर रहते थे। किंतु शृंगी का आश्रम ऋषिकुंड नामक स्थान पर भी माना जाता है जो बिहार में है—दे० **शृंगऋषि, शृंगेरी**।

ऋषितोया (काठियावाड़, बंबई)

पश्चिम रेल के देलवाड़ा स्टेशन-प्राचीन देवलपुर के निकट ऋषितोया नदी बहती है। यह स्थान तीर्थ रूप में ख्यातिप्राप्त है। ऋषितोया को स्थानीय रूप से मच्छुंदी भी कहते हैं।

ऋषिपट्टन=इसीपत्तन (दे० **सारनाथ**)।

ऋषिभूम्यंगण (लंका)

महावंश, 20,46 में उल्लिखित अनुराधपुर के पास एक स्थान जहाँ सम्राट् अशोक के पुत्र महेंद्र का देह-संस्कार किया गया था। पाली में इसे 'इसि-भूमंगन' कहा गया है।

ऋष्यमूक

वाल्मीकि-रामायण में वर्णित वानरों की राजधानी किष्किंधा के निकट यह पर्वत स्थित था। यहीं सुग्रीव और राम की मैत्री हुई थी। सुग्रीव किष्किंधा से निष्कासित होने पर अपने भाई बालि के डर से इसी पर्वत पर छिप कर रहता था। उसने सीता-हरण के पश्चात् राम और लक्ष्मण को इसी पर्वत पर पहली बार देखा था—'तावृष्यमूकस्य समीपचारी चरन् ददर्शाद्भुत दर्शनीयौ, शाखामृगाणमधिपस्तरश्ची वितत्रसे नैव विचेष्टचेष्टाम्' किष्किंधा०, 1,128। अर्थात् ऋष्यमूकपर्वत के समीप भ्रमण करने वाले अतीव सुन्दर राम-लक्ष्मण को वानवराज सुग्रीव ने देखा। वह डर गया और उनके प्रति क्या करना चाहिए, इस बात का निश्चय न कर सका। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में भी ऋष्यमूक का उल्लेख है—'सह्योदेवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वैकटो महेन्द्रो वारिधारो विंध्यः'। तुलसीरामायण, किष्किंधाकांड में ऋष्यमूक पर्वत पर रामलक्ष्मण के पहुंचने का इस प्रकार उल्लेख है—'आगे चले बहुरि रघुराया, ऋष्यमूक पर्वत नियराया'। दक्षिण भारत में प्राचीन विजयनगर के खंडहरों अथवा हंपी में विरूपाक्ष-मंदिर से कुछ ही दूर पर स्थित एक पर्वत को ऋष्य-मूक कहा जाता है। जनश्रुति के अनुसार यही रामायण का ऋष्यमूक है। मंदिर को घेरे हुए तुंगभद्रा नदी बहती है। ऋष्यमूक तथा तुंगभद्रा के घेरे को चक्रतीर्थ

कहा जाता है। चक्रतीर्थ के उत्तर में ऋष्यमूक और दक्षिण में श्रीराम का मंदिर है। मंदिर के निकट सूर्य, सुग्रीव आदि की मूर्तियां हैं। प्राचीन किष्किंधा-नगरी की स्थित यहां से दो मील दूर, तुंगभद्रा के वामतट पर, अनागुंदी नामक ग्राम में मानी जाती है।

एंकचक्खु

एकचक्खु एक चक्षु या एकचक्रा का तद्भव रूप है। सिंहल के बौद्ध इतिहास ग्रंथ (3,14) में दी हुई वंशावली के अनुसार यहां का अंतिम राजा पुरिंदद था।

एकचक्रा

महाभारत में एकचक्रा को पंचालदेश में स्थित बताया गया है। द्रौपदी-स्वयंवर के लिए जाते समय पांडव एकचक्रा-नगरी में पहुंचे थे—'एवं स तान् समाश्वास्य व्यासः सत्यवती सुतः, एकचक्रामभिगतः कुंतीमाश्वासयत् प्रभुः' आदि॰ 155,11। वकासुर का वध भीम ने इसी नगरी में रहते हुए किया था—दे॰ आदि॰ 156। संभव है एकचक्रा, अहिच्छत्र का ही दूसरा नाम हो। परिवक्रा या परिचक्रा जिसे शतपथ ब्राह्मण (13;5,4,7) में पंचाल की एक नगरी कहा गया है, एकचक्रा ही जान पड़ती है— दे॰ वैदिक इंडेक्स 1,494।

एकनाल

राजगृह की पहाड़ियों के दक्षिण में बसा हुआ ब्राह्मणों का ग्राम (संयुत्त-निकाय, 1, पृ॰ 172)। यहां बौद्ध-विहार बनवाया गया था।

एकपर्वतक

'गंडकी च महाशोणं सदानीरां तथैव च, एकपर्वतके नद्यः क्रमेणैत्याव्रजन्तते' महा॰ सभा॰ 20,27। अर्थात् कृष्ण, अर्जुन और भीम इंद्रप्रस्थ से गिरिव्रज (मगध, बिहार) जाते समय गंडकी, महाशोण, सदानीरा एवं एकपर्वतक की सब नदियों को पार करते हुए आगे बढ़े। इससे, एकपर्वतक उस प्रदेश का नाम जान पड़ता है जिसमें उपर्युक्त नदियाँ बहती थीं, अर्थात् बिहार-उत्तरप्रदेश का सीमावर्ती भाग (गंडकी=गंडक, महाशोण=सोन, सदानीरा=राप्ती)।

एकलिंग (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

उदयपुर से बारह मील पर स्थित है। मेवाड़ के राणाओं के आराध्यदेव एकलिंग महादेव का मेवाड़ के इतिहास में बहुत महत्व है। मेवाड़ के संस्थापक बप्पारावल ने एकलिंग की मूर्ति की प्रतिष्ठापना की थी। कहा जाता है कि डूंगरपुरराज्य की ओर से मूल बाणलिंग के इंद्रसागर में प्रवाहित किए जाने पर वर्तमान चतुर्मुखी लिंग की स्थापना की गई थी। एकलिंग भगवान् को

साक्षी मानकर मेवाड़ के राणाओं ने अनेक बार ऐतिहासिक महत्व के प्रण किए थे। जब विपत्तियों के थपेड़ों से महाराणा प्रताप का धैर्य टूटने जा रहा था तब उन्होंने अकबर के दरबार में रहकर भी राजपूती गौरव की रक्षा करने वाले बीकानेर के राजा पृथ्वीराज को, उनके उद्बोधन और वीरोचित प्रेरणा से भरे हुए पत्र के उत्तर में जो शब्द लिखे थे वे आज भी अमर हैं—'तुरुक कहासी मुखपतौ, इणतण सूं इकलिंग, ऊगै जांही ऊगसी प्राची बीच पतंग' (प्रताप के शरीर रहते एकलिंग की सौगंध है, बादशाह अकबर मेरे मुख से तुर्क ही कहलाएगा। आप निश्चित रहें, सूर्य पूर्व में ही उगेगा')।

एकशालिगर दे० **वारंगल**

एकशिलानगर का अपभ्रंश है। यह वारंगल का प्राचीन संस्कृत नाम है जिसका उल्लेख रघुनाथ भास्कर के कोश में है।

एकशिला=एकशिला नगर=एकशिलापाटन दे० **वारंगल**

वारंगल के संस्कृत नाम हैं जिनका उल्लेख रघुनाथ भास्कर के कोश में है।

एकसाल

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार भरत ने केकय-देश से अयोध्या आते समय अयोध्या के पश्चिम की ओर इस स्थान पर स्थाणुमती नदी को पार किया था, 'एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमती नदीं, कलिंगनगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा' —अयोध्या० 71,16। बौद्धसाहित्य (संयुत्त० 1, पृ० 111) में इसे कोसल-देश का एक ब्राह्मणों का ग्राम बताया गया है, जहां बुद्ध ने मार को विजित किया था।

एकाम्रकानन=भुवनेश्वर

मूलतः उत्कल का एक वन था जो प्राचीन काल में शिव की उपासना का केंद्र था।

एकोपल=एकोपलपुरम्=एकोपलपुरी दे० **वारंगल**

वारंगल के प्राचीन संस्कृत नाम हैं।

एटा (उ० प्र०)

इसे पृथ्वीराज चौहान के सरदार राजा संग्रामसिंह ने बसाया था। इसने एटा में एक सुदृढ़ मिट्टी का दुर्ग बनवाया था जिसके खंडहर आज भी मौजूद हैं।

एरण्डपल्ली

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में एरंडपल्ली के राजा दमन के समुद्रगुप्त द्वारा पराजित होने का उल्लेख है—'कौसलक महेन्द्र, महाकान्तार,

व्याघ्रराज, कौसलक मंटराज, पैष्ठपुरक महेन्द्र, गिरिकोट्टूरक स्वामिदत्त, एरंड-पल्लक दमन-प्रभृति सर्वदक्षिणपथराजाग्रहणमोक्षानुग्रहजनितप्रतापोन्मिश्र महा-भाग्यस्य...'। इस नगर का अभिज्ञान ज़िला विजिगापट्टम् (आं० प्र०) में स्थित इसी नाम के स्थान के साथ किया गया है। पहले कुछ विद्वानों ने पूर्व खानदेश में स्थित एरंडोल को ही एरंडपल्ली मान लिया था। यह मत अब ग्राह्य नहीं है।

एरण्डी

नर्मदा की सहायक नदी जो बड़ौदा के क्षेत्र में बहती है। दे० पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड, 9।

एरकिण=**एरण**।

एरछ (बुंदेलखण्ड, म० प्र०)

मुग़लकाल में इस स्थान पर एक दुर्ग था यहां वीरछत्रसाल के पिता चंपत-राय ने औरंगज़ेब के ज़माने में मुग़ल सेनाओं से युद्ध करते हुए अपने ठहरने के लिए स्थान बनाया था। (दे० बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल पुरोहित—पृ० 160)

एरण (ज़िला सागर, म० प्र०)

मंडी-बामोरा स्टेशन से छः मील दूर है। इसका प्राचीन नाम एरकिण था। मौर्यकाल के पश्चात् एरकिण में एक गणराज्य स्थापित हो गया था जैसा कि इस स्थान पर मिले कई सिक्कों से प्रमाणित होता है। इन सिक्कों पर बोधिवृक्ष व धर्मचक्र आदि के चिह्न हैं किंतु राजा का नाम अंकित नहीं है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त का एक प्रस्तर लेख (गुप्त संवत् 82=402 ई०) इस स्थान से प्राप्त हुआ है। इसमें इसे एरकिण कहा गया है। इसमें समुद्रगुप्त की वीरता, उसकी रानी के पातिव्रत्य, संपत्तिभंडार, पुत्र-पौत्रों सहित यात्राओं तथा शत्रुओं पर उसकी वीरोचित धाक का विशद वर्णन है। यह भी उल्लेख है कि समुद्रगुप्त ने यह लेख अपनी यशोवृद्धि के लिए अंकित किया था। इस अभि-लेख के अतिरिक्त गुप्तवंशीय महाराजाधिराज बुधगुप्त के शासनकाल का भी एक प्रस्तरलेख (195 गुप्त संवत्=485 ई०) एरण से प्राप्त हुआ है। अभिलेख के अनुसार महाराज सुरश्मिचंद्र का शासन इस समय कालिंदी और नर्मदा के मध्यवर्ती प्रदेश में था। लेख एक स्तंभ पर खुदा है जिसे विष्णु का ध्वजास्तंभ कहा गया है। इसका निर्माण महाराज मातृविष्णु तथा उसके छोटे भाई धन्य-विष्णु ने करवाया था। एरण से एक और स्तंभलेख प्राप्त हुआ है। इसकी तिथि गुप्तसंवत् 191=510 ई० है। यह महाराज भानुगुप्त के अमात्य गोप-राज के विषय में है जो इस स्थान पर भानुगुप्त के साथ किसी शायद किसी युद्ध

में आया था और वीरगति को प्राप्त हुआ था। उसकी पत्नी यहीं सती हो गई थी। एरण से हूण महाराजाधिराज तोरमाण के समय का एक अन्य अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। यह वराह की मूर्ति के ऊपर उत्कीर्ण है। इसमें महाराज मातृविष्णु के छोटे भाई धन्यविष्णु द्वारा वराह भगवान का मंदिर बनवाए जाने का उल्लेख है। एरकिण गुप्तकाल में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण नगर रहा होगा। इसको एक लेख में स्वभोगनगर भी कहा गया है। यह नाम शायद समुद्रगुप्त ने एरण को दिया था। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार इस स्थान पर महाभारत-काल में विराटनगर की स्थिति थी। आज भी अनेक प्राचीन खंडहर यहां बिखरे पड़े हैं। पिछले वर्षों में सागरविश्वविद्यालय ने यहां उत्खनन द्वारा अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन किया है।

एरिग्राके

लेटिन भाषा के भौगोलिक ग्रंथ 'पेरिप्लस' में उल्लिखित स्थान जो कुछ विद्वानों के मत में 'अपरांतिक' का लेटिन रूपांतर है। राय-चौधरी (पोलिटि-कल हिस्ट्री ऑफ एंशेंट इंडिया—पृ० 406) के अनुसार यह वराहमिहिर की बृहत्संहिता में उल्लिखित अर्यक भी हो सकता है।

एरिकामेड (मद्रास)

पुरातत्त्वसंबंधी अनेक प्राचीन अवशेष इस स्थान से उत्खनन द्वारा प्रकाश में आए हैं। मृत्भांडों के खंडों से सूचित होता है कि प्रथम-द्वितीय शती ई० में इस स्थान का रोम से काफ़ी बढ़ाचढ़ा व्यापार था। रोम में बनी कई वस्तुएं यहां के अवशेषों में मिली हैं।

एलंगदाल (ज़िला करीम नगर, आं० प्र०)

जफ़रुद्दौला ने 1754 ई० में यहां एक किले का निर्माण किया था। इसके भीतर मसजिद की एक मीनार हिलाने से डोलने-सी लगती है।

एलजिपुर दे० **एलिचपुर**।

जैन ग्रंथों में एलिचपुर को एलजिपुर कहा है—'एलजिपुर कारंजा नयर धनवन्त लोक वसति' प्राचीन तीर्थमालासंग्रह 1, 114।

एलागिरि

इलौरा का एक संस्कृत नाम।

एलिचपुर (बरार, महाराष्ट्र)

अमरावती के उत्तर में स्थित मध्यकाल का प्रसिद्ध नगर। दिल्ली के सुल-तान अलाउद्दीन खिलजी ने 1294 ई० में देवगिरि पर आक्रमण करते समय 8000 घुड़सवारों के साथ एलिचपुर को घेर लिया था। एलिचपुर उस समय

देवगिरि के राजा रामचंद्र के राज्य में था और महाराष्ट्र की सीमा पर स्थित था। देवगिरि के विश्वासघातियों की सहायता से जीतने के पश्चात् देवगिरि नरेश से जो अलाउद्दीन ने संधि की उसमें एलचपुर को उसने अपनी वहां रखे जाने वाली सेना के व्यय के लिए मांग लिया था। दे० **एलजिपुर**।

एलिफ़ेंटा (महाराष्ट्र)

ओपोलो बंदर, बंबई से समुद्र में सात मील उत्तरपूर्व की ओर एक छोटा-सा द्वीप है। इसका व्यास लगभग साढे चार मील है। यहां दो पहाड़ियां हैं जिनके बीच में एक संकीर्ण घाटी है। द्वीप का प्राचीन नाम धारापुरी है। एहोड़ अभिलेख में पुलकेशिन् द्वितीय द्वारा विजित जिस पुरी का उल्लेख है वह हीरानंद शास्त्री के मत में यही स्थान है (दे० ए गाइड टु एलिफेंटा–पृ० 8)। पुर्तगाल के यात्री वॉन लिसकोटन के 'डिस्कोर्स ग्राव वायेजेज़' नामक ग्रंथ से सूचित होता है कि 16वीं शती में (1579 ई० के लगभग) यह द्वीप पोरी अथवा पुरी नाम से प्रसिद्ध था। द्वीप की पहाड़ियों में 5वीं-6वीं शती ई० में बनी हुई और पहाड़ियों के पार्श्व में तराशी हुई पांच गुफाएँ हैं। इनमें हिंदू-धर्म से संबंधित अनेक मूर्तियां, विशेषकर, शिव की मूर्तियां गुप्तकालीन कला के अन्यतम उदाहरण हैं। एलिफ़ेंटा में भगवान् शंकर के कई लीलारूपों की मूर्तिकारी, एलौरा और अजंता की मूर्तिकला के समकक्ष ही है। महायोगी, नटेश्वर, भैरव, पार्वती-परिणय, अर्धनारीश्वर, पार्वतीमान, कैलासधारी रावण, महेशमूर्ति शिव तथा त्रिमूर्ति यहां के प्रमुख मूर्तिचित्र हैं। त्रिमूर्ति जिसका चिह्न भारत के डाक टिकट पर है—वास्तव में शिव के ही तीन विविधरूपों की मूर्ति है न कि त्रिदेवों की। नटराज शिव के मुख पर परिवर्तनशील संसार की उपस्थिति में जिस संतुलित, शांत तथा संयत भावना की छाप है वह गुप्तकालीन मूर्तिकला की प्रख्यात विशिष्टता है। यहां की मुख्य गुफ़ा तथा पार्श्ववर्ती कक्षों में अजंता के अनुरूप भित्ति-चित्रकारी भी थी किंतु अब वह नष्ट हो गई है। पुर्तगालियों ने इसका उल्लेख भी किया है। एलिफेंटा पर 16वीं शती में बंबई तट पर बसने वाले पुर्तगालियों का अधिकार था। इन कलाशून्य व्यापारियों ने इस द्वीप की सुंदर गुफाओं का गोशालाओं, चारा रखने के गोदामों, यहां तक कि चांदमारी के लिए प्रयोग करके इनका कलावैभव नष्टप्राय कर दिया। 16वीं शती ई० तक राजघाट नामक स्थान पर हाथी की एक विशाल मूर्ति अवस्थित थी। इसी कारण पुर्तगालियों ने द्वीप को एलिफ़ेंटा का नाम दिया था (दे० **काराद्वीप**)।

एलौरा दे० **इलौरा**

एल्लंथ कुंटा (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

इस स्थान पर श्री रामचंद्रजी के कई प्राचीन मंदिर हैं जो किंवदंती के अनुसार उनके दंडकारण्य के निवासकाल के स्मारक हैं।

एषुकारिभक्त

पाणिनि अष्टाध्यायी 4,2,54। यह शायद वर्तमान हिसार (पंजाब) है।

एहोड़ (ज़िला बीजापुर, मैसूर)

बादामी (वातापी) के निकट बहुत प्राचीन स्थान है। 634 ई० के चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय के समय में अंकित एक अभिलेख एहोड़ से प्राप्त हुआ है। यह प्रशस्ति के रूप में है और संस्कृत-काव्य परंपरा में लिखित है। इसका रचयिता रविकीर्ति है। इसमें कवि ने कालिदास और भारवि के नामों का भी उल्लेख किया है—'येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनेवेश्म स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदासभारवि कीर्तिः'। इस अभिलेख में तिथि इस प्रकार दी हुई है—'पंचाशत्सुकलौ काले षट्सु पंचशती सु च, समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्',। इससे 556 शकसंवत् =634 ई० प्राप्त होता है। इस प्रकार महाकवि कालिदास और भारवि का समय, 634 ई० के पूर्व सिद्ध हो जाता है। इस अभिलेख में पुलकेशिन् द्वारा अभिभूत लाट, मालव, और गुर्जर देश के राजाओं का उल्लेख है। एहोड़ में गुप्तकालीन कई मंदिरों के भग्नावशेष हैं। दुर्गा के मन्दिर में पांचवीं शती ई० की नटराज शिव की मूर्ति है। 450 ई० के चार मंदिरों के अवशेष भारत के सर्वप्राचीन मंदिरों के अवशेषों में से हैं। इनपर शिखर नहीं हैं। इनमें से लाड़खान नामक मंदिर वर्गाकार है। इसकी छत स्तंभों पर टिकी हुई है। ये स्तंभ तीन वर्गों में, जो एक-दूसरे के भीतर बने हैं, विन्यस्त हैं। केंद्रीय चार स्तंभों के ऊपर आधृत सपाट छत अपने चतुर्दिक् ढालू छत के ऊपर शिखर की भांति उठी हुई दिखाई देती है और यह निचली छत स्वयं एक दूसरी ढालू छत के ऊपर निकली हुई है जो सबसे बाहर के वर्ग पर छायी हुई है। मंदिर के एक किनारे पर एक मंडप है और इससे दूसरे किनारे पर मूर्ति-स्थान है। श्री हेनरी कजिन्स आर्क्यालॉजिकल रिपोर्ट 1907–8 में लिखते हैं, 'यह मंदिर अपनी विशालता, रचना की सरलता, नक्शे और वास्तुकला के विवरण, इन सब बातों में गुफा मंदिरों से बहुत मिलता-जुलता है'। इस मंदिर की दीवारें साधारण दीवारों के समान नहीं हैं। वे स्तंभों और उनकी योजक जालीदार खिड़कियों सहित पतली भित्तियों से बनी हैं। सपाट छत और उस पर उत्सेध (elevation) का अभाव गुफाओं की कला से ही संबंधित है। किंतु इससे भी अधिक समानता

तो भारी वर्गाकार स्तंभों और उनके शीर्षों के कारण दिखाई देती है। उपर्युक्त दुर्गा के मन्दिर का नक्शा बौद्ध-चैत्य मंदिरों की ही भांति है, केवल धातुगर्भ के बजाय इसमें मूर्तिस्थान बना हुआ है। बौद्ध चैत्यों की भांति ही इसमें भी स्तंभों की दो पंक्तियोंद्वारा मंदिर के भीतर का स्थान मध्यवर्ती शाला तथा दो पार्श्व-वर्ती वीथियों द्वारा विभक्त किया गया है। मंदिर पत्थर का बना हुआ है इस लिए मेहराबों के लिए छतों में स्थान नहीं है किंतु शिखर का आभास चैत्य-संरचना की भांति ही बीच की छत ऊँची तथा पार्श्व की छतें नीची तथा कुछ ढलवां होने से होता है। स्तंभों के ऊपर छत के भराव पर अनेक मूर्तियां तथा पर्णावलि आदि अंकित हैं जो गुफ़ा मंदिरों के स्तंभों के ऊपरी भाग पर की गई रचना से बहुत मिलती-जुलती हैं (उदाहरणार्थ अजंता गुफा सं० 26)।

ऐरावतवर्ष

'उत्तरेण तु श्रृंगस्य समुद्रान्ते जनाधिप, वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छंगमतः परम्, न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः' महा० भीष्म 8,10–11, दे० **श्रृंगवान्।**

ऐलधान

वाल्मीकिरामायण में इस स्थान का उल्लेख भरत को केकय देश से अयोध्या की यात्रा के प्रसंग में है—'एलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान् शिलामा-कुर्वन्तीं तीर्त्वाऽग्नेयं शल्यकर्षणम्' अयोध्या०, 71,3। इससे ठीक पूर्व 71,2 में उल्लिखित शतद्रु या सतलज ही उपर्युक्त उद्धरण में वर्णित नदी जान पड़ती है। ऐलधान इसी के तट पर स्थित कोई ग्राम होगा।

ओंकार मांधाता (ज़िला खंड़वा, म० प्र०)

खंडवा के निकट नर्मदा नदी में एक पहाड़ी द्वीप है। यह स्थान प्राचीन काल से ही तीर्थ के रूप में प्रख्यात है। इसे ओंकारेश्वर और मांधाता भी कहते हैं। जनश्रुति है कि राजा मांधाता ने इस द्वीप में शिव की आराधना की थी। द्वीप नर्मदा और उसकी एक उपधारा–कावेरी–से घिरा है। इसका आकार ओंकार (प्रणव) के समान है जो संभवतः इसके नामकरण का कारण है। इसके आस-पास अनेक छोटे-मोटे तीर्थस्थल हैं। मांधाता को अमरेश्वर भी कहते हैं। स्कंदपुराण रेवाखंड 28,133 में इसका वर्णन है। अमरेश्वर की शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में गणना है। यह स्थान पश्चिम रेलवे के अजमेर-खंडवा मार्ग पर ओंकारेश्वर स्टेशन से सात मील दूर है।

ओंगोल (ज़िला गंतूर, मद्रास)

इस स्थान के आसपास प्रागैतिहासिक काल के विशेषकर पाषाणयुगीन पत्थर के उपकरण तथा हथियार प्राप्त हुए हैं जिनकी खोज अनेक वर्ष पूर्व ब्रूसफुट नामक विद्वान् ने की थी।

ओघवती

कुरुक्षेत्र की एक नदी जिसका उल्लेख महाभारत में है। दुर्योधन को भीम ने ओघवती के तट पर गदायुद्ध में आहत किया था। पृथूदक इसी नदी के तट पर स्थित था। महाभारत अनुशासन० 2 में वर्णित पौराणिक कथा के अनुसार अग्निपुत्र सुदर्शन की सती पत्नी ही ओघवती के रूप में परिणत हो गई थी—'एषा हि तपसा स्वेन संयुक्ता ब्रह्मवादिनी, पावनार्थं लोकस्य सरिच्छ्रेष्टा भविष्यति, अर्धेनौघवती नाम त्वामर्धेनानुयास्यति' अनुशासन 2,83–84।

ओजद्वीप

महावंश 15,64,65। लंका का प्राचीन पौराणिक नाम।

ओड्र=उड्र

'चीनाञ्छकांस्तथा चौड्रान् बर्बरान् बनवासिनः' महा० सभा० 52,53।

ओड़गांव (उड़ीसा)

खुर्दा रोड स्टेशन से पचास मील पर स्थित है। यहां नयागढ़ नरेश कृष्ण-चंद्र देव ने श्री रघुनाथ जी का भव्य मंदिर बनवाया था। कहा जाता है कि वनवासकाल में राम-लक्ष्मण यहां आए थे और एक चंदन के वृक्ष के नीचे उन्होंने रात्रि व्यतीत की थी। यहां शबर लोगों को निवास है।

ओड़छा (बुंदेलखंड, म० प्र०)

किंवदंती के अनुसार मध्यकाल में यहां पड़िहार राजपूतों का राज्य था और उन्होंने अपनी राजधानी यहीं बनाई थी। चंदेलों के परास्त होने पर ओड़छा भी श्रीहत हो गया किंतु बुंदेलों का प्रभुत्व स्थापित होने पर राजा रुद्रप्रताप ने पुनः एक बार ओड़छा को राजधानी बनाकर उसकी श्रीवृद्धि की। वे ही वर्तमान ओड़छा के बसाने वाले माने जाते है। उन्होंने सोमवार 3 अप्रैल 1531 ई० में इस नगर को पुनः बसाया था। यहां के किले को बनने में आठ वर्ष लग गए थे। इनके पुत्र और उत्तराधिकारी भारतीचंद्र के समय ही में ओड़छा के महल बनकर तैयार हुए थे (1539 ई०)। इसी वर्ष राजधानी भी गढ़कुंडार से पूरी तरह से ओड़छा में ले आई गई थी। अकबर के समय यहां के राजा मधुकर शाह थे जिनके साथ मुगलसम्राट् ने कई युद्ध किए थे। जहांगीर ने वीरसिंहदेव बुंदेला को जो ओड़छा राज्य की बड़ौनी जागीर के स्वामी थे पूरे ओड़छा राज्य की गद्दी दी थी। वीरसिंहदेव ने ही अकबर के शासनकाल

में जहांगीर के कहने से अकबर के विद्वान् दरबारी अबुलफ़ज़ल की हत्या करवा दी थी। शाहजहां ने बुन्देलों से कई असफल लड़ाइयां लड़ीं किंतु अंत में जुझारसिंह को ओड़छा का राजा स्वीकार कर लिया गया। बुन्देलखण्ड की लोक-कथाओं का नायक हरदौल वीरसिंहदेव का छोटा पुत्र एवं जुझारसिंह का छोटा भाई था। औरंगज़ेब के राज्यकाल में छत्रसाल की शक्ति बुंदेलखंड में बढ़ी हुई थी। ओड़छा की रियासत वर्तमानकाल तक बुंदेलखंड में अपना विशेष महत्त्व रखती आई है। यहां के राजाओं ने हिंदी के कवियों को सदा प्रश्रय दिया है। महाकवि केशवदास वीरसिंहदेव के राजकवि थे।

ओड़छे में जिन पुरानी इमारतों के खंडहर हैं, उनमें मुख्य हैं—जहांगीर-महल जिसे वीरसिंहदेव ने जहांगीर के लिए बनवाया था यद्यपि जहांगीर इस महल में वीरसिंहदेव के जीवनकाल में कभी न ठहर सका, केशवदास का भवन, प्रवीण राय का भवन (प्रवीण राय, वीरसिंह देव के दरबार की प्रसिद्ध गायिका थी जिसकी केशवदास ने अपने ग्रंथों में बहुत प्रशंसा की है)।

ओतंतपुरी = ओदंतपुरी

ओदंतपुरी (ज़िला पटना, बिहार)

वर्तमान बिहार नामक नगर का प्राचीन नाम। इसे उद्दंडपुर भी कहते थे। इसकी प्रसिद्धि का कारण था यहां का बौद्धविहार और तत्संबद्ध महाविद्यालय। ओदंतपुरी के विहार और विद्यालय की स्थापना बंगाल के प्रथम पाल-नरेश गोपाल (730-740 ई०) ने की थी। अनुवर्ती पालराजाओं ने इस विहार तथा महाविद्यालय को अनेक दान दिए थे। इसके समृद्धिकाल में यहां एक सहस्र विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। यहां दूर-दूर से विद्यार्थीगण शिक्षा पाने के लिए आते थे। यहां का सर्वप्रमुख विद्यार्थी दीपंकर था जो बाद में विक्रमशिला महा-विद्यालय का प्रधान आचार्य बना और जिसने तिब्बत जाकर वहां लामा-संस्था की स्थापना की। 13वीं शती के प्रारंभ में मुसलमानों के बिहार पर आक्रमण के समय यहां का विहार और विद्यालय नष्ट हो गए। बिहार-बंगाल में ओदंतपुरी के लगभग समकालीन अन्य महाविद्यालय नालंदा, विक्रमपुर, विक्रम-शिला, जगद्दल और ताम्रलिप्ति में थे।

ओनकदेव दे० **ऊनकेश्वर**

ओपानी

209 गुप्तसंवत् = 528 ई० के एक अभिलेख में जो खोह (म० प्र०) से प्राप्त हुआ है, इस ग्राम का उल्लेख है (दे० **खोह**)।

ओफीर (केरल)

प्राचीन यहूदी साहित्य में सम्राट् सुलेमान (प्राय: 1000 ई० पू०) के भेजे हुए व्यापारिक जलयानों का दक्षिण भारत के इस बंदरगाह में आने-जाने का वर्णन मिलता है। इसका अभिज्ञान त्रिवेंद्रम के दक्षिण में स्थित पुवार नामक ग्राम से किया गया है।

ओराझार (जिला गोंडा, उ० प्र०)

श्रावस्ती में गौतमबुद्ध के समय में एक धनी व्यापारी की स्त्री विशाखा ने अपार धनराशि खर्च करके पूर्वरमा नामक विहार बनवाया था। जेतवन के खंडहर से एक मील दक्षिण की ओर एक ढूह है जिसे आजकल ओराझार कहते हैं जो संभवत: पूर्वरमा विहार के ही स्थान पर है।

ओषधिप्रस्थ

कुमारसंभव में वर्णित हिमालय का नगर जहां पार्वती के पिता की राजधानी थी। शिव के कहने से सप्तर्षि पार्वती की मंगनी के समय औषधि-प्रस्थ आए थे—'तत्प्रयातौषधिप्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरम्, महाकोशीप्रपातेऽस्मिन् संगम: पुनरेव न:, ते चाकाश मसिश्याममुत्पत्य परमर्षय:, आसेदुरोषधिप्रस्थंमन-सासमरंहस:। अलकामतिवाह्यैव वसतिं वसुसम्पदाम्, स्वर्गाभिष्यन्दवमनं कृत्वे-वोपनिवेशितम्। गंगास्त्रोत: परिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौषधि, बृहन् मणिशिलासालं गुप्तावपिमनोहरम्। जितसिंह भयानागा यत्राश्वा बिलयोनय:, यक्षा: किंपुरुषा: पौरा योषितो वनदेवता:। यत्र स्फटिक हर्म्येषु नक्तमापान भूमिषु, ज्योतिषां प्रतिबिंबानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम्। यत्रौषधि प्रकाशेन नक्तं दर्शित संचरा:, अनभिज्ञास्तमिस्राणां दुर्दिनेष्वभिसारिका:। संतानकतरुच्छाया सुप्तविद्याधराध्व-गम्, यस्य चोपवनं बाह्यं गंधवद् गंधमादनम्'—कुमारसंभव 6,33-36-37-38-39-42-43-46। कालिदास के वर्णन से जान पड़ता है कि यह नगर हिमालय के क्रोड़ में स्थित तथा गंगा की धारा से परिवेष्टित था तथा गंधमादन पर्वत इस नगर के बाहर उपवन के रूप में स्थित था। इस नगर में ओषधियों के प्रकाश से रात में भी उजाला रहता था। संभव है यह नगर वर्तमान बदरीनाथ के निकट स्थित हो। कालिदास के वर्णन में कविकल्पना का वैचित्र्य होने से नगर का वर्णन बड़ा अद्‌भुत जान पड़ता है। यह नगर अलका से भिन्न था जैसा कि ऊपर उद्धृत 6,37 से स्पष्ट है। बदरीनाथ के निकटस्थ पहाड़ों में आज भी ओषधियां प्रचुरता से पाई जाती हैं। गंगा की निकटता जिसका उल्लेख कवि ने किया है, इस नगर की स्थिति की सूचक है।

ओसवां (ज़िला उस्मानाबाद, महाराष्ट्र)

एक प्राचीन किला जिसे शायद बीजापुर के सुलतानों ने बनाया था, यहां का उल्लेखनीय स्मारक है। यह वर्गाकार बना हुआ है। इसके चारों ओर दो परकोटे और एक खाई है। किले में एक विशाल तोप रक्खी है जिस पर निजामशाह का नाम अंकित है। यहां के प्राचीन भवन अधिकांश में खंडहर हो गए हैं। एक अनोखे भूमिगत भवन के विस्तीर्ण खंडहर भी मिले हैं जिसकी लंबाई 76 फुट और चौड़ाई 50 फुट है। इसकी छत एक विशाल हौज की तली है। औरंगजेब की दक्षिण की सूबेदारी के समय बनी हुई एक मसजिद भी यहां है। इस आशय का एक लेख इस पर उत्कीर्ण है। जामामसजिद बीजापुर की वास्तुशैली में निर्मित है।

ओसियां (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

जोधपुर नगर से 32 मील उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित है। ओसियां में 9वीं शती से 12वीं शती ई० तक के स्थापत्य की सुन्दर कृतियां मिलती हैं। प्राचीन देवालयों में शिव, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, अर्धनारीश्वर, हरिहर, नवग्रह, कृष्ण, तथा महिषमर्दिनी देवी आदि के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। ओसियां की कला पर गुप्तकालीन शिल्प का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। ग्राम के अंदर जैन तीर्थंकर महावीर का एक सुन्दर मन्दिर है जिसे वत्सराज (770–800) ने बनवाया था। यह परकोटे के भीतर स्थित है। इसके तोरण अतीव भव्य हैं तथा स्तंभों पर तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं। यहीं एक स्थान पर 'सं० 1075 आषाढ़ सुदि 10 आदित्यवार स्वातिनक्षत्रे' यह लेख उत्कीर्ण है और सामने विक्रमसंवत् 1013 की एक प्रशस्ति भी एक शिला पर खुदी है जिससे ज्ञात होता है कि यह मंदिर प्रतिहार नरेश वत्सराज के समय में बना था तथा 1013 वि० सं० = 956 ई० में इसके मंडप का निर्माण हुआ था। निकटवर्ती पहाड़ी पर एक और मंदिर विशाल परकोटे से घिरा हुआ दिखलाई पड़ता है। यह सचियादेवी या शिलालेखों की सच्चिकादेवी से संबधित है जो महिषमर्दिनी देवी का ही एक रूप है। यह भी जैन मदिर है। मूर्ति पर एक लेख 1234 वि० सं० का भी है जिससे इसका जैन धर्म से संबंध स्पष्ट हो जाता है। इस काल में इस देवी की पूजा राजस्थान के जैन-सम्प्रदाय में अन्यत्र भी प्रचलित थी। इस विषय का ओसियां नगर से संबंधित एक वादविवाद, जैन ग्रथ उपकेश गच्छ पट्टावलि में वर्णित है (उपकेश—ओसियां का संस्कृत रूप है)। इसी मंदिर के निकट कई छोटे-बड़े देवालय हैं। इसके दाईं ओर सूर्यमंदिर के बाहर अर्ध-नारीश्वर शिव की मूर्ति, सभा-मंडप की छत में वंशीवादक तथा गोवर्धन कृष्ण

की मूर्तियां उकेरी हुई हैं। गोवर्धन-लीला की यह मूर्ति राजस्थानी कला की अनुपम कृति मानी जा सकती है। ओसियां से जोधपुर जाने वाली सड़क पर दोनों ओर अनेक प्राचीन मंदिर हैं। इनमें त्रिविक्रमरूपी विष्णु, नृसिंह तथा हरिहर की प्रतिमाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कृष्ण-लीला से संबंधित भी अनेक मूर्तियां हैं। स्थानीय प्राचीन अभिलेखों से सूचित होता है कि ओसियां के कई नाम मध्ययुग तक प्रचलित थे, जो ये हैं—उकेश, उपकेश, अकेश आदि। किंवदंती है कि इसको प्राचीन काल में मेलपुरपत्तन तथा नवनेरी भी कहते थे। ओसवाल जैनों का मूल स्थान ओसियां ही है।

ओहिंद दे० **उदभांडपुरी**

औंधा (ज़िला परभनी, महाराष्ट्र)

पूर्ना-हिंगोली रेल मार्ग के चोंडी स्टेशन से आठ मील पर स्थित है। नागनाथ के मंदिर के कारण यह स्थान प्रख्यात है। कहा जाता कि मंदिर को किसी पांडवनरेश ने अपार धन लगाकर बनवाया था। मंदिर भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से है। इसका नक्शा चालुक्य मंदिरों की भांति ही है अर्थात् आधार ताराकृति है और बीच में एक बड़ा वर्गाकार मंडप है जिसके आगे उत्तर, दक्षिण, और पश्चिम की ओर द्वारमंडप बने हुए हैं। देवगृह या पूजा स्थान पूर्व की ओर है। द्वारमंडप की छत के आधार अतीव सुन्दर नक्काशीदार अष्ट-कोण स्तंभ हैं। देवगृह के द्वारों पर तथा उनके मंडपों पर भी बारीक नक्काशी है। भवन के बाहरी की ओर भी चालुक्यशैली में अत्यन्त कलापूर्ण तक्षण शिल्प दिखाई देता है। इसमें उत्कीर्ण मूर्तियों की अनुप्रस्थ तथा उदग्रपट्टियां हैं जिनके बीच-बीच में सादी नक्काशी रहित पट्टियां है। हेलेबिड के मंदिर की मूर्ति-कला से इस मंदिर की मूर्तिकारी की समानता स्पष्ट दिखाई देती है।

औमी दे० **अनोमा**

औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

इस नगर की स्थापना मलिक अंबर ने 1610 ई० में की थी। नगर के लिए जल की व्यवस्था इसी बुद्धिमान् मंत्री ने की थी। इसके अवशेष आज भी द्रष्टव्य हैं। तत्कालीन पवनचक्की और सत्रह जलप्रणालियों में से अभी तक कई काम में आती हैं। पास ही औरंगज़ेब के गुरु बाबाशाह मुसाफिर की दरगाह, एक मस-जिद और सराय स्थित हैं। मलिक अंबर के समय का नौखंडा महल और काली मसजिद अन्य ऐतिहासिक स्मारक हैं। लालमसजिद जिसका निर्माण उत्तर मुगल काल में हुआ था, लाल पत्थर की बनी है। औरंगज़ेब की बेगम रबिया दुर्रानी का मकबरा या बीबी का मकबरा ताजमहल की असफल अनुकृति है। यह 1650

और 1657 ई० के बीच बना था। गंबद के कुछ भाग शुद्ध श्वेत संगमर्मर के बने हैं। बीबी के मकबरे से एक मील उत्तर-पश्चिम की ओर द्वितीय शती ई० से सातवीं शती ई० के बीच बनी हुई कई गुफाएं हैं। इनका वास्तुशिल्प तथा मूर्तिकला अजंता की भांति ही है किंतु चित्रकारी अब नष्ट हो गई है। गुफा सं० 3 में एक नक्काशीदार भित्तिखंड पर सुतसोम-जातक की कथा मूर्तिकारी के रूप में अंकित है जो अजंता की गुफा सं० 17 के चित्र से अधिक स्पष्ट है। इसी प्रकार गुफा सं० 3 में गौतमबुद्ध के सम्मुख स्थित भक्तों का अंकन बहुत ही भावपूर्ण और स्वाभाविक ढंग से किया गया है। मूर्तियां मानवाकार हैं और जीवित प्रतीत होती हैं। उनके वस्त्र थोड़े है किंतु कलात्मक ढंग से पहनाए गए हैं। स्त्रियों का केशकलाप तथा अंग-विन्यास मोहक तथा कलात्मक है। इसी प्रकार भिक्षुओं की जटाओं के जूड़े भी स्वाभाविक ढंग से अंकित किए गए हैं। पद्मपाणि की मूर्ति अपने कलापूर्ण सौंदर्य में अजंता या इलौरा या भारत में अन्यत्र पाई जाने वाली मूर्तियों में श्रेष्ठ कही जा सकती है। इसी गुफा में नृत्य का वह दृश्य जिसमें बीच में बौद्ध देवी तारा तथा उसके चतुर्दिक् तीन अन्य स्त्रियां अंकित हैं इलौरा की गुफा सं० 16 के नटराज की तुलना में अधिक फीका नहीं जान पड़ता।

कंक

विष्णुपुराण के अनुसार शाल्मली द्वीप का एक पर्वत—'कंक स्तु पंचमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा' विष्णु० 2,4,47।

कंकावती

काठियावाड़ (गुजरात) के उत्तर-पश्चिमी भाग—हालार में बहने वाली एक नदी।

कंकोट=कनकवती

कंचनपल्ली=कंचन पारा (ज़िला नदिया, बंगाल)

कल्याणी से कई मील दूर चैतन्य महाप्रभु के भक्त तथा उनके समकालीन सेन शिवानंद (जिन्हें चैतन्य ने कविकर्णपूर की उपाधि दी थी) का निवास स्थान है। कहते हैं चैतन्य इस स्थान पर शिवानंद से मिलने आए थे। शिवानंद तीन प्रसिद्ध ग्रंथों के लेखक थे—चैतन्यचरितामृतकाव्य, चैतन्य-चंद्रोदय नाटक और गौरांगोद्देश्य दीपिका। इन्हीं के प्रभाव से 15वीं शती में कंचनपल्ली में वैष्णव साहित्य का प्रसिद्ध केंद्र बन गया था। जनश्रुति के अनुसार कंचनपल्ली का मूलनाम नरहट्टग्राम था। कंचनपल्ली बंगाल के ख्यातनामा विद्वान् नीमचंद्र शिरोमणि और तुलसी-रामायण के बंगाली अनुवादक हरिमोहन गुप्त का भी जन्मस्थान है।

कंचनपारा=कंचनपल्ली ।

कंचनपुर

प्राचीन जैनलेखकों ने कलिंग (दक्षिण उड़ीसा) के कंचनपुर नामक नगर का उल्लेख किया है (दे० इंडियन एंटिक्वेरी 1891, पृ० 375)। जैन सूत्रप्रज्ञापणा में कंचनपुर का नाम कई उपनगरों के नाम के साथ दिया गया है (दे० **कलिंग**)।

कंडनसेरी (ज़िला त्रिचूर, केरल)

छत्राकार प्रस्तरों (umbrella stones) के प्राचीन अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। इन पाषाणों का अभिज्ञान अभी तक अनिश्चित है।

कंतनगर (ज़िला दीनाजपुर, बंगाल)

नौविमानों वाले एक भव्य मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। यह मंदिर मध्ययुगीन है।

कंदवा (ज़िला वाराणसी, उ० प्र०)

काशी से लगभग छः मील उत्तर-पश्चिम स्थित इस ग्राम में कर्दमेश्वर का मध्यकालीन सुंदर मंदिर है। इसकी शिल्पकला अत्युत्कृष्ट है। मंदिर के बाहरी भाग पर अनेक देव-मूर्तियां हैं।

कंदहार (ज़िला नांदेड़, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर कंदहार नरेश सोमदेव का बनाया हुआ अतिप्राचीन दुर्ग है। मालखेड़ के राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय ने इस दुर्ग का विस्तार करवाया था और कंदहारपुर के स्वामी की उपाधि ग्रहण की थी। दुर्ग में मुहम्मद तुगलक, इब्राहीम आदिलशाह और औरंगज़ेब के समय के अभिलेख हैं। इसके भीतर कई तुर्की तोपें भी रखी हैं जिन पर उनके निर्माताओं के नाम खुदे हैं। जामा-मसजिद पर इब्राहीम आदिलशाह और निज़ामशाह के अभिलेख हैं। कंदहार में प्राचीन जैन-बौद्ध या जैन मंदिर भी हैं।

कंधार (अफगानिस्तान)

कंधार प्राचीन संस्कृत गंधार का ही रूपांतरण है।

कंपिलरट्ठ=कांपिल्य राष्ट्र दे० कांपिल्य

कंपिला दे० कांपिल्य

कंपिल्लनगर दे० कांपिल्य

कंबुज (1) दे० **कांबोज**।

(2) हिंदचीन का प्राचीन हिंदू उपनिवेश जिसे कंबोडिया कहा जाता है। इसकी स्थापना 7वीं शती के पश्चात् हुई थी और तत्पश्चात् 700 वर्षों तक कंबुज के वैभव तथा ऐश्वर्य का युग रहा। कंबोडिया की एक प्राचीन लोककथा

में आर्यदेश या भारत के राजा स्वायंभुव द्वारा कंबुज राज्य की स्थापना का वर्णन है। यहां का सर्वप्रथम ऐतिहासिक राजा श्रुतवर्मन् था जिसके इस देश को फूनान के शासन से मुक्त करके एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। यहाँ की तत्कालीन राजधानी श्रेष्ठपुर में थी जिसका नामकरण कंबुज के द्वितीय राजा श्रेष्ठवर्मन् के नाम पर हुआ था। इसकी स्थिति वर्तमान लाओस में वाटफू पहाड़ी (बसाक के निकट) के परिवर्ती प्रदेश में थी। इस पहाड़ी पर, जिसका प्राचीन नाम लिंगपर्वत था, भद्रेश्वर-शिव का मंदिर स्थित था। ये कंबुज नरेशों के इष्टदेव थे।

कंबुपुरी

कंबुज या कंबोडिया (दक्षिण-पूर्व एशिया) की एक नगरी जो 889 ई० में अभिषिक्त हिन्दू राजा यशोवर्मन् की राजधानी थी। यशोवर्मन् ने इस नगरी का नाम बदलकर यशोधरपुर कर दिया था। नगरी के निकट यशोधरगिरि – वर्तमान फनोमबाखेन—के शिखर पर राजप्रासाद बनवाया गया था। यह नगरी अंगकोर सभ्यता के पूरे उत्कर्षकाल में कंबुजदेश की राजधानी बनी रही।

कंबोज

प्राचीन संस्कृत साहित्य में कंबोज देश या यहाँ के निवासी कांबोजों के विषय में अनेक उल्लेख हैं जिनसे जान पड़ता है कि कंबोज देश का विस्तार स्थूलरूप से कश्मीर से हिंदूकुश तक था। वंशब्राह्मण में कंबोज औपमन्यव नामक आचार्य का उल्लेख है। वाल्मीकि-रामायण बाल० 6,22 में कंबोज, वाल्हीक और वनायु देशों के श्रेष्ठ घोड़ों का अयोध्या में होना वर्णित है—'कांबोज विषये जातैर्बाल्हीकैश्च हयोत्तमैः वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णाहरिहयोत्तमैः'। महाभारत सभा० के अनुसार अर्जुन ने अपनी उत्तर दिशा की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में दर्दरों या दर्दिस्तान के निवासियों के साथ ही कांबोजों को भी परास्त किया था—'गृहीत्वा तु बलं सारं फाल्गुनः पांडुनन्दनः, दरदान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः' सभा० 27,23। शांति० 207,43; अंगुत्तरनिकाय 1,213; 4,252, 256-261 और अशोक के पांचवें शिलालेख में कंबोज का गंधार के साथ उल्लेख है। महाभारत शांति० 207,43 और राजतरंगिणी 4,163-165 में कंबोज की स्थिति उत्तरापथ में बताई गई है। महाभारत द्रोण० 4,5 में कहा गया है कि कर्ण ने राजपुर पहुंचकर कांबोजों को जीता, जिससे राजपुर कंबोज का एक नगर सिद्ध होता है—'कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजानिर्जितास्त्वया'। कनिंघम के अनुसार राजपुर कश्मीर में स्थित राजौरी है (एंशेंट ज्योग्रेफी ऑफ इंडिया, पृ० 148) कालिदास ने रघुवंश में रघु के द्वारा कांबोजों की पराजय का उल्लेख किया है

—'काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः, गजालान् परिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः' रघु० 4,69। इस उद्धरण में कालिदास ने कंबोजदेश में अखरोट वृक्षों का जो वर्णन किया है वह बहुत समीचीन है। इससे भी इस देश की स्थिति कश्मीर में सिद्ध होती है। युवानच्वांग ने भी राजपुर का उल्लेख किया है (दे० युवानच्वांग, भाग 1, पृ० 284)। वैदिककाल में कंबोज आर्य-संस्कृति का केंद्र था जैसा कि वंश-ब्राह्मण के उल्लेख से सूचित होता है, किंतु कालांतर में जब आर्यसभ्यता पूर्व की ओर बढ़ती गई तो कंबोज आर्य-संस्कृति से बाहर समझा जाने लगा। यास्क और भूरिदत्तजातक (कॉवेल 6,110) में कंबोजों के प्रति अवमान्यता के विचार प्रकट किए गए हैं। युवानच्वांग ने भी कांबोजों को असंस्कृत तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों वाला बताया है। कंबोज के **राजपुर**, **नंदिनगर** (दे० लूडर्स, इंसक्रिप्शंस, 176, 472) और राइसडेवीज़ के अनुसार **द्वारका** नामक नगरों का उल्लेख साहित्य में मिलता है। महाभारत में कंबोज के कई राजाओं का वर्णन है जिनमें सुदर्शन और चंद्रवर्मन् मुख्य हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में कंबोज के 'वार्ताशस्त्रोपजीवी' (खेती और शस्त्रों से जीविका चलाने वाले) संघ का उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि मौर्यकाल से पूर्व यहां गणराज्य स्थापित था। मौर्यकाल में चंद्रगुप्त के साम्राज्य में यह गणराज्य विलीन हो गया होगा।

ककुत्था दे० **इरावती** (2)

ककुद्मती=**कोयन** (महाराष्ट्र)

इस नदी का उद्गम महाबलेश्वर की पहाड़ियों में है। पुराणों के अनुसार ककुद्मती ब्रह्मा के अंश से संभूत है। ककुद्मती-कृष्णा संगम पर करहाड़ या प्राचीन करहाटक बसा हुआ है।

ककुद्मान

विष्णुपुराण के अनुसार शाल्मलद्वीप का एक पर्वत—'कंकस्तु पंचमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा, ककुद्मान पर्वतवरः सरिन्नामानि मे शृणु' विष्णु० 2,4,27।

ककुभग्राम=**कहोम** (कहाव) (ज़िला देवरिया, उ० प्र०)

इस ग्राम में गुप्तवंशीय महाराजाधिराज स्कंदगुप्त के समय (गुप्तसंवत् 141=460 ई०) का एक स्तंभ-लेख प्राप्त हुआ था। यह जैन अभिलेख है जिसे भद्र नामक व्यक्ति ने जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों की प्रतिष्ठापना के लिए कुकुभग्राम—वर्तमान कहौम—में अंकित करवाया था। ये आदिकर्तृ अथवा तीर्थंकरों की प्रतिमाएं अभिलेख वाले स्तंभ पर उकेरी हुई हैं। स्तंभ के निकट एक ताल है जहां सात फुट ऊंची बुद्ध की मूर्ति स्थित थी। (टि०—ककुभ का पाठ अभिलेख में ककुम भी हो सकता है।)

कच्छ

महाभारत में उल्लिखित है। यह कच्छ की खाड़ी का तटवर्ती प्रदेश है जिसका दूसरा नाम अनूप भी था। शिशुपालवध काव्य 3,80 में कच्छ-भूमि का उल्लेख है—'आसेदिरे लावणसैन्धवीनां चमूचरै कच्छ भुवां प्रदेशः'। आगे 3, 81 में यहां श्रीकृष्ण के सैनिकों का लवंगपुष्पों की माला से विभूषित होने, नारियल का पानी पीने और कच्ची सुपारियाँ खाने का ललित वर्णन है—'लवंगमालाकलितावतंसास्ते नारिकेलान्तरपः पिबन्तः, आस्वादितार्द्रक्रमुकाः समुद्रादभ्यागतस्य प्रतिपत्तिमीयुः'।

कच्छकघाट (लंका)

महावंश 10, 58। यह वर्तमान महांगवोट है।

कच्छेश्वर दे० **कोटेश्वर**

कछवा (ज़िला हमीरपुर, उ० प्र०)

यह ग्राम चंदेलकालीन वास्तु-अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

कजंगल

राजमहल (बंगाल) का प्राचीन नाम। युवानच्वांग के यात्रावृत्त के अनुसार हर्षकाल में (६३० ई० के लगभग) यहां एक स्वतंत्र राज्य था किंतु यह महाराज हर्ष के प्रभाव के अंतर्गत था क्योंकि चीनी यात्री के वर्णन में इस बात का भी उल्लेख है कि अपनी पूर्वी देशों की विजय के लिए की गई यात्रा में हर्ष ने कजंगल में राजसभा की थी। कजंगल के कजुगिरि, कांकजोल आदि नाम भी उपलब्ध हैं। मध्ययुग में इसे **उगमहल** भी कहा जाता था।

कजुगिरि दे० **कजंगल**

कटक

उड़ीसा की मध्ययुगीन राजधानी जिसे पद्मावती भी कहते थे। यह नगर महानदी और उसकी शाखा काठजूड़ी के संगम पर बसा हुआ है। इसे 941 ई० में केशरीवंशीय नरेश नृपति केशरी ने बसाया था। कालक्रम में मुसलमानों और मराठों के शासन के अंतर्गत रहकर 1803 ई० में कटक अंग्रेज़ों के अधिकार में आगया। कटक के पास विरूपा नदी भी है जिस पर प्राचीन बांध निर्मित है। कटक का दुर्ग बहुत पुराना है किंतु अब यह मिट्टी का ढूह मात्र रह गया है। नगर से एक मील पर काठजूड़ी के तट पर अनग भीमदेव के बनाए हुए बारह बाटी नामक दुर्ग के खंडहर हैं। यह राजा गंगवंशीय था। इसने अपने शासनकाल में, 1180 ई० में इस क़िले को बनवाया था। जगन्नाथपुरी के वर्तमान मंदिर का निर्माता भी यही कहा जाता है। १८३५ ई० तक कटक के

आदिमवासियों में नरबलि की प्रथा प्रचलित थी। 1871 ई० तक जुआंगजाति के आदिम निवासी यहां रहते थे।

कटकबनारस=बाराणसी कटक

कटचपुर (ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

कटचपुर झील के दक्षिणी तट पर 13वीं शती के दो मंदिर है जो ककातीय-नरेशों के शासनकाल में निर्मित हुए थे। इनका निर्माण कणाश्म या ग्रेनाइट पत्थर से हुआ है। कलाशैली की दृष्टि से ये मंदिर घनपुर, हनुमकोंडा और रामप्पा के मंदिरों के अनुरूप हैं।

कटनीनाला=निर्मल नदी (ज़िला पीलीभीत, उत्तर प्रदेश) दे० **विसालपुर**

कटाक्ष=कटास, कटासराज

कटारमल (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

अल्मोड़े से 10 मील दूर है। यहां सूर्य का प्राचीन मंदिर है जो पहाड़ की चोटी पर है। सूर्य की मूर्ति पत्थर की है और बारहवीं शती ई० की कला-कृति मानी जाती है। सूर्य को कमलासीन अंकित किया गया है। उसके सिर पर मुकुट तथा पीछे प्रभामंडल है। मंदिर के विशालमंडप में अनेक मूर्तियां हैं। मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, साथ ही उत्तरभारत का शायद यह अकेला ही सूर्यमंदिर है जहां सूर्य की पूजा आज भी प्रचलित है।

कटास, कटासराज (पंजाब, पाकिस्तान)

खेवड़ा से तेरह मील दूर है। किंवदंती है कि यहां पांडवों ने अपने अज्ञात-वास में कुछ दिन निवास किया था। यहां एक अथाह कुंड है जो तीर्थ रूप में मान्य था। कहा जाता है गुरुगोरखनाथ ने भी कुछ दिन रहकर यहां आराधना की थी। इसका संस्कृत नाम कटाक्ष कहा जाता है। यहां के कुंड को पृथ्वी का नेत्र अथवा कटाक्ष माना जाता है।

कटाह=कडार=केड्डा (मलाया)

मलयप्रायद्वीप में स्थित। सुवर्णद्वीप के शैलेंद्र राजाओं की राजनैतिक शक्ति का केंद्र ग्यारहवीं शती ई० में इसी स्थान पर था। यहीं से वे श्रीविजय (सुमात्रा) की कई छोटी रियासतों तथा मलयद्वीप पर राज करते थे। 11वीं शती के प्रारंभिक वर्षों (लगभग 1025 ई०) में दक्षिण-भारत के प्रतापी राजा राजेंद्रचोल ने शैलेंद्र नरेश पर आक्रमण करके उसके प्रायः समस्त राज्य को हस्तगत कर लिया। इस समय कटाह या कडार पर भी चोलों का आधिपत्य हो गया था। राजेंद्र चोल की मृत्यु के पश्चात् शैलेंद्र राजाओं ने अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया किंतु वीर राजेंद्र चोल (1063-1070

ई०) ने दुबारा कडार को जीत लिया किंतु शैलेंद्रराज के आधिपत्य स्वीकार करने पर इस नगर को उसे ही वापस कर दिया। कटाह प्राचीन हिंदू नाम था; कडार और केड्डा इसके विकृत रूप हैं।

कटेहर

रुहेलखंड (उ० प्र०) का मध्ययुगीन नाम जो इस इलाके में 11वीं शती में राज्य करने वाले कटेहरिया राजपूतों के कारण पड़ा था।

कठगणराज्य

प्राचीन पंजाब का प्रसिद्ध गणराज्य। कठ लोग वैदिक आर्यों के वंशज थे। कहा जाता है कि कठोपनिषद् के रचयिता तत्वदर्शी विद्वान् इसी जाति के रत्न थे। अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पू०) कठगणराज्य रावी और ब्यास नदियों के बीच के प्रदेश या माझा में बसा हुआ था। कठ-लोगों के शारीरिक सौंदर्य और अलौकिक शौर्य की ग्रीक इतिहास लेखकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अलक्षेंद्र के सैनिकों के साथ ये बहुत ही वीरतापूर्वक लड़े थे और सहस्रों शत्रुयोद्धाओं को इन्होंने धराशायी कर दिया था जिसके परिणामस्वरूप ग्रीक सैनिकों ने घबरा कर अलक्षेंद्र के बहुत कहने-सुनने पर भी ब्यास नदी के पार पूर्व की ओर बढ़ने से साफ इनकार कर दिया था। ग्रीक लेखकों के अनुसार कठों के यहां यह जातिप्रथा प्रचलित थी कि वे केवल स्वस्थ एवं बलिष्ठ संतान को ही जीवित रहने देते थे। ओने सीक्रीटोस लिखता है कि वे सुंदरतम एव बलिष्ठतम व्यक्ति को ही अपना शासक चुनते थे। पाणिनि ने भी कठों का कंठ या कंथ नाम से उल्लेख किया है (2,4, 20) (टि०—कंथ शब्द कालांतर में संस्कृत में 'मूर्ख' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा)। महाभारत में जिस क्राथ नरेश को कौरवों की ओर से युद्ध में लड़ता हुआ बताया गया है वह शायद कठजाति का ही राजा था—'रथीद्विपस्थेन हतोऽ-पतच्छरैः क्राताधिपः पर्वतजेन दुर्जयः' (दे० राय चौधरी—'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एशेंट इंडिया'—पृ० 202)।

कडार=कटाह

वर्तमान केड्डा (मलाया) दे० कटाह।

कड़वाहा (जिला ग्वालियर, म० प्र०)

प्राचीन नाम कदंबगुहा। मध्यकाल (10वीं शती के पश्चात् तथा 16वीं से पूर्व) में बने हुए लगभग बारह मंदिरों के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है। ये ग्राम के चारों ओर एक मील के घेरे में स्थित हैं। इनमें से एक शिवालय आज भी अच्छी अवस्था में है और मध्ययुगीन कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। कड़वाहा

में एक प्राचीन विहार के खंडहर प्राप्त हुए हैं और यहां के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह विहार या मठ मत्तमयूर नामक शैव साधुओं के लिए बनवाया गया था। इस संप्रदाय को मध्यकाल में काफी लोकप्रियता प्राप्त थी जैसा कि मध्यप्रदेश में प्राप्त इनके बहुसंख्यक मठों और अभिलेखों से सूचित होता है।

कड़ा (जिला इलाहाबाद, उ० प्र०)

प्रयाग से चालीस मील पर स्थित है। कहा जाता कि इस स्थान पर जह्नु ऋषि का आश्रम था जैसा कि वहां से आधी मील पर स्थित जाह्नवीकुंड से सूचित होता है। मुसलमानों के शासन काल में कडा एक 'सूबे' का मुख्य स्थान था। दिल्ली के सुलतान जलालुद्दीन खिलजी के समय में उसका भतीजा एवं दामाद अलाउद्दीन कड़े का हाकिम था। कड़ा के ही निकट गंगा को नाव से पार करते वक्त बूढ़े जलालुद्दीन को राज्यलोलुप अलाउद्दीन ने धोखे से मार दिया और उसका सिर वहीं पास किसी स्थान पर दफ़ना दिया जिससे वह स्थान गुमसिरा कहलाया। दिल्ली के मुलतान मुहम्मद तुगलक ने कड़ा के पास एक नया नगर स्वर्गद्वार नामक बसाया था। दोआबे में भयंकर अकाल पड़ने पर वह वहां जाकर रहने लगा। यहीं वह अनेक भूखे लोगों को बसाने के लिए ले गया और उन्हें अयोध्या से अन्न मंगवाकर बांटा। मुग़लों के शासनकाल में भी कड़े में सूबेदार रहता था। सलीम (जहांगीर) ने जब अकबर के विरुद्ध बगावत की थी तब वह कड़ा ही में रहता था। कड़े का प्राचीन किला उल्लेखनीय है। यह स्थान संत मलूकदास की जन्मभूमि के रूप में भी प्रसिद्ध है। (टि०—'अजगर करैं न चाकरी पंछी करैं न काम, दास मलूका कह गए सबके दाताराम'—यह दोहा इन्हीं मलूकदास का है।)

कड़िया (ज़िला दरभंगा, बिहार)

मिथिला के 9वीं 10वीं शती के प्रसिद्ध दार्शनिक उदयनाचार्य का जन्म-स्थान। इन्होंने बौद्धदर्शन की आलोचना करके प्राचीन वैदिक शास्त्र के तथ्यों का प्रतिपादन किया था।

कणसव (ज़िला कोटा, राजस्थान)

इस स्थान से 738 ई० का एक महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुआ था जिसका संबंध मौर्यवंशीय राजा धवल से है (इंडियन एंटिक्वेरी, 13,163; बंबई गजे-टियर, भाग 2, पृ० 284)। डाक्टर दे० रा० भंडारकर के मत में यह राजा धवलप्पदेव ही है जिसका उल्लेख दबोक (मेवाड़) के अभिलेख (लगभग 725 ई०) में हुआ है। कणसव अभिलेख से सिद्ध होता है कि मगध के प्रसिद्ध मौर्यवंश के

कुछ छोटे-मोटे राजा, मौर्यवंश के पतन के पश्चात् भी पश्चिमी भारत में कई स्थानों पर राज्य करते रहे थे।

कण्णनूर (केरल)

इस स्थान का उल्लेखनीय स्मारक सेंट एंजिलो का दुर्ग अंग्रेजी राज्य के प्रारंभिक काल का अवशेष है। यहां उसी समय की बनी बारकें तथा बारूद भरने के कोष्ठ अभी तक विद्यमान हैं।

कण्वाश्रम

(1) दे० **मंडावर।**

(2) महाभारत के अनुसार धर्मारण्य (गुजरात) में स्थित था। दे० **धर्मारण्य।**

कत्यूर

कुमायूं (उ० प्र०) का एक भाग जिसे कतूरिया भी कहते हैं। इसमें जिला अल्मोड़ा और निकटवर्ती प्रदेश शामिल हैं। कत्यूर मूलतः एक वंश का नाम था जिसका अल्मोड़े के प्रदेश पर बहुत दिनों तक राज्य रहा था (दे० **अल्मोड़ा**)। कत्यूर संभवतः कर्तृपुर का बिगड़ा हुआ रूप है। पाणिनि ने कत्रि नामक स्थान का अष्टाध्यायी 4,2,95 में उल्लेख किया है जो शायद कत्यूर या कर्तृपुर ही है। दे० **कर्तृपुर।**

कत्रि दे० कत्यूर

कदंब

महावंश 7,43। यहां लंका की वर्तमान मलवत्तुओय नामक नदी है। इसी नदी के तट पर भारत से लंका जाने वाले राजकुमार विजय के सामंत अनुराध ने अनुराधपुर नामक प्रसिद्ध नगर बसाया था जिसके खंडहर आज भी लंका के पर्यटकों का मुख्य आकर्षण हैं।

कदंबगुहा दे० कड़वाहा।

कदंबपुर=करंबनूर (मद्रास)

त्रिशिरापल्ली या त्रिचनापल्ली से लगभग छः और श्रीरंगम् से तीन मील दूर यह प्राचीन वैष्णव तीर्थ है।

कदौरह (दे० बावनी)।

कनकगिरि (मैसूर)

मासकी के दक्षिण में स्थित है। हुल्ट्ज के मत में यह अशोक के लघु-शिला लेख सं० 1 में उल्लिखित सुवर्णगिरि है। मौर्यशासनकाल में दक्षिणी प्रांत का शासन केंद्र सुवर्णगिरि ही में था।

कनकवती (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०) = **कंकोट**

कोसम–प्राचीन कौशांबी–से सोलह मील पश्चिम में है। यहां यमुना और पैशुनी नदी का संगम है।

कनखल (ज़िला सहारनपुर, उ० प्र०)

हरद्वार के निकट अति प्राचीन स्थान है। पुराणों के अनुसार दक्षप्रजापति ने अपनी राजधानी कनखल में ही वह यज्ञ किया था जिसमें अपने पति शिव का अपमान सहन न करने के कारण, दक्षकन्या सती जल कर भस्म हो गई थी। कनखल में दक्ष का मंदिर तथा यज्ञ स्थान आज भी बने हैं। महाभारत में कनखल का तीर्थरूप में वर्णन है—'कुरुक्षेत्रसमागंगा यत्र तत्रावगाहिता, विशेषो वैकनखले प्रयागे परमं महत्' वन० 85,88। 'एते कनखला राजनृषीणांदयिता नगाः, एषा प्रकाशते गंगा युधिष्ठिर महानदी' वन० 135,5। मेघदूत में कालिदास ने कनखल का उल्लेख मेघ की अलका-यात्रा के प्रसंग में किया— 'तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपान-पंक्तिम्' पूर्वमेघ, 52। हरिवंशपुराण में कनखल को पुण्यस्थान माना है, 'गंगाद्वारं कनखलं सोमो वै तत्र संस्थितः', तथा 'हरिद्वारे कुशावर्ते नीलके भिल्लपर्वते, स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते'। मोनियर विलियम्स के संस्कृत-अंग्रेजी कोश के अनुसार कनखल का अर्थ छोटा खला या गर्त है। कनखल के पहाड़ों के बीच के एक छोटे-से स्थान में बसा होने के कारण यह व्युत्पत्ति सार्थक भी मानी जा सकती है। स्कंदपुराण में कनखल शब्द का अर्थ इस प्रकार दर्शाया गया है—'खलः को नाम मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात्, अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः' अर्थात् खल या दुष्ट मनुष्य की भी यहां स्नान से मुक्ति हो जाती है इसीलिए इसे कनखल कहते हैं।

कनगोर दे० **कान्यकुब्ज**।

कनडेलावोलु (आं० प्र०)

कुरनूल का प्राचीन नाम। कनडेलावोलु का अर्थ है, गाड़ी के पहिये में तेल डालने का स्थान। किंवदंती है कि कुरनूल से आठ मील दूर एक विशाल मंदिर बनाया जा रहा था; पत्थर ढोने वाली गाड़ियों के पहियों में तुंगभद्रा के इस पार ठहर कर गाड़ी वाले तेल डालते थे जिससे इस स्थान का नाम कनडेलावोलु पड़ गया। कालांतर में यहां बस्ती बन गई जिसका कनडेलावोलु का अपभ्रंश-रूप कुरनूल नाम पड़ गया।

कनवा = **खनवा**

भरतपुर (राजस्थान) से 13 मील दक्षिण तथा फतहपुर-सीकरी से लगभग

एक मील दूर वह प्रसिद्ध युद्ध-स्थली है जहां 1527 ई० में मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह से बाबर का युद्ध हुआ था तथा जिसमें राजपूतों की पराजय हुई थी। राजपूतों की हार का एक कारण पवांर राजपूतों की सेना का ठीक युद्ध के समय महाराणा को छोड़कर बाबर से जा मिलना था। इस युद्ध के पश्चात् बाबर के कदम भारत में पूरी तरह से जम गए जिससे भावी महान् मुगल-साम्राज्य की नींव पड़ी। कनवा के युद्ध के पूर्व बाबर ने अपने घबराए हुए सैनिकों को प्रोत्साहन देने के लिए एक जोशीला भाषण दिया था जो इतिहास में प्रसिद्ध है। कनवा की रणस्थली फतहपुर सीकरी के भवनों से दूर पर दिखाई देती है।

कनार=कर्णावती दे० जगमनपुर।

कनिष्कपुर (कश्मीर)

सम्राट् कनिष्क (120 ई०) का बसाया नगर जो स्टाइन और स्मिथ के अनुसार झेलम और बारामूला से श्रीनगर जाने वाली सड़क पर श्रीनगर से दस मील दक्षिण की ओर स्थित कानिसपुर है। कनिंघम के मत में यह नगर श्रीनगर के निकट था। रायचौधरी का कहना है कि यह नगर आरा-अभिलेख में उल्लिखित कनिष्क द्वारा बसाया गया था। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार पाटलिपुत्र से आए हुए प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान और कवि अश्वघोष को कनिष्क ने इसी नगर में ठहराया था।

कनैली (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

प्रयाग के दक्षिण में गंगा पार कर एक छोटा-सा ग्राम है जहां स्थानीय किंवदंती के अनुसार श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी वनवासयात्रा के मार्ग में कुछ समय विश्राम किया था। यह ग्राम सराय-आकिल के निकट है।

कनोगिजा दे० **कान्यकुब्ज।**

कनोज=कान्यकुब्ज।

कनोजा (ज़िला रायपुर, म० प्र०)

बिलहरी के निकट। इस स्थान की गढ़मंडला नरेश संग्रामसिंह (रानी दुर्गावती के श्वसुर, मृत्यु 1541 ई०) के बावनगढ़ों में गणना थी जिनके कारण यह प्रदेश गढ़मंडला कहलाता था।

कन्नागर दे० **कलिंगनगर।**

कन्नौज दे० **कान्कुब्ज।**

कन्यातीर्थ

(1) **कान्यकुब्ज**—'कन्यातीर्थेऽश्वतीर्थे च गवांतीर्थे च भारत, कालकोट्यां

वृषपृस्थे गिरावुष्य च पांडवा:' महा० वन० 95, 3।

(2) **कन्याकुमारी**—'ततस्तीरे समुद्रस्य कन्यातीर्थमुपस्पृशेत् तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र सर्वपापै: प्रमुच्यते' महा० वन० 85,23। कन्यातीर्थ सुदूर दक्षिण में समुद्र तट पर स्थित कन्याकुमारी का ही नाम है। पद्मपुराण 38,23 में भी कन्यातीर्थ का उल्लेख है। यहां का प्राचीन कुमारीदेवी का मंदिर उल्लेखनीय है। पौराणिक कथा के अनुसार कुमारी-देवी ने शिव की आराधना इस स्थान पर की थी। वाणासुर दैत्य को भी कुमारी ने इसी स्थान पर मारा था। कन्याकुमारी दक्षिण भारत के प्रायद्वीप की नोक पर स्थित है, यहां एक ओर से बंगाल की खाड़ी का और दूसरी ओर से अरब सागर का जल हिंद-महासागर से मिलता है।

कन्यापुर=कान्यकुब्ज

कन्याह्लद

महाभारत अनुशासन० के अन्तर्गत तीर्थों के प्रसंग में कन्याह्लद का उल्लेख है। यह कन्यातीर्थ (1) का ही नाम है।

कन्हेरी (उत्तरकोंकण, महाराष्ट्र)

पश्चिमरेलवे के बोरीवली स्टेशन से एक मील पर कृष्णगिरि पहाड़ी में तीन प्राचीन गुहामंदिर हैं जिनका संबंध शिवोपासना से जान पड़ता है। एक गुफा में अनेक मूर्तियाँ आज भी देखी जा सकती हैं। बोरीवली स्टेशन से पांच मील पर कन्हेरी है जो कृष्णगिरि पहाड़ी का एक भाग है। कन्हेरी शब्द कृष्णगिरि का अपभ्रंश है। यहां 9वीं शती ई० की बनी हुई लगभग एक सौ नौ गुफाएं हैं पर उल्लेखनीय केवल एक ही है जो कार्ली के चैत्य के अनुरूप बनाई गई है। इस चैत्यशाला में बौद्ध महायान संप्रदाय की सुन्दर मूर्तिकारी है। गुफा की भित्तियों पर अजंता के समान ही चित्रकारी भी थी जो अब प्राय: नष्ट हो चुकी है।

कपित्थ

चीनी यात्री युवानच्वांग ने अपनी भारत-यात्रा के वृत्तांत में संकिसा या **सांकाश्य** (जिला फर्रुखाबाद, उ० प्र०) का एक नाम कपित्थ भी बताया है। हर्षकालीन मधुवन-ताम्रपट्टलेख में भी कपित्थिका (=कपित्था, कपित्थ) का उल्लेख है। यह दानपट्ट इसी नगरी से प्रचलित किया गया था। इससे हर्षकालीन (606–636 ई०) शासन-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

कपित्था=कपित्थिका=कपित्थ

कपिनी (मैसूर)

कावेरी की सहायक नदी। प्राचीन समय में दक्षिण भारत के पुन्नाड़ राज्य

(5वीं या 6ठी शती ई०) की राजधानी कीर्तिपुर—वर्तमान कित्तूर—इसी नदी के तट पर स्थित थी।

कपिल

(1) विष्णुपुराण में उल्लिखित एक पर्वत जिसकी स्थिति मेरु के पश्चिम में कही गई है—'शिखिवासाः सवैडूर्यः कपिलो गंधमादनः जारुधिः प्रमुखास्तद्वत्पश्चिमे केसराचलः' विष्णु० 2,2,28।

(2) विष्णुपुराण 2,4,36 के अनुसार कुशद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा ज्योतिषमान् के पुत्र के नाम पर कपिल कहलाता है।

कपिलवस्तु (नेपाल-भारत सीमा के निकट)

ज़िला बस्ती (उ० प्र०) के उत्तरी भाग में पिपरावां नामक स्थान से नौ मील उत्तर-पश्चिम तथा रुमिनीदेई या प्राचीन लुंबिनी से पन्द्रह मील पश्चिम की ओर मेमिराकोट के पास प्राचीन कपिलवस्तु की स्थिति बताई जाती है। इसी क्षेत्र में स्थित तिलौरा या तिरोराकोट को भी कुछ लोग कपिलवस्तु मानते हैं किंतु इन स्थानों पर अभी तक उत्खनन न होने के कारण इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। किंतु लुंबिनी का अभिज्ञान ज़िला बस्ती में नेपाल-भारत सीमा पर स्थित ककराहा ग्राम से 13 मील उत्तर में वर्तमान रुमिनीदेई के साथ निश्चित होने के कारण कपिलवस्तु की स्थिति भी इसी के आसपास कुछ मील के भीतर रही होगी यह भी निश्चित समझना चाहिए।

गौतमबुद्ध के पिता शाक्यवंशी शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु में थी। सौंदरानंद-काव्य में महाकवि अश्वघोष ने कपिलवस्तु के बसाए जाने का विस्तृत वर्णन किया है जिसके अनुसार यह नगर कपिल मुनि के आश्रम के स्थान पर बसाया गया था। यह आश्रम हिमाचल के अंचल में स्थित था—'तस्य विस्तीर्णतपसः पार्श्वे हिमवतः शुभे, क्षेत्रं चायतनं चैव तपसामाश्रमोऽभवत्' सौन्दरानंद 1,5। तपस्वियों के निवासस्थान और तपस्या के क्षेत्र उस आश्रम में कुछ इक्ष्वाकु राजकुमार बसने की इच्छा से गए। 'तेजस्विसदनं तपः क्षेत्रं तमाश्रमम्, केचिदिक्ष्वाकुवो जग्मुः राजपुत्रा विवत्सवः' सौंदरानंद 1,18। उन्होंने जिस स्थान पर निवास किया वह शाक या सागौन वृक्षों से ढका था इसलिए वे इक्ष्वाकु राजकुमार शाक्य कहलाए। एक दिन उनकी समृद्धि करने की इच्छा से जल का घड़ा लेकर मुनि आकाश में उड़ गए और राजपुत्रों से कहा—अक्षय जल के इस कलश से जो जलधारा पृथ्वी पर गिरे उसका अतिक्रमण न करके क्रम से मेरा अनुसरण करो। मुनि कपिल ने उस आश्रम की भूमि के चारों ओर जल की धारा गिराई और चौपड़ की तख्ती की तरह नक्शा बनाया और

उसे सीमाचिह्नों से सुशोभित किया। तब वास्तु-विशारदों ने उस स्थान पर कपिल के आदेशानुसार एक नगर बनाया। उसकी परिखा नदी के समान चौड़ी थी और राजपथ भव्य और सीधा था। प्राचीर पहाड़ों की तरह विशाल थी— जैसे वह दूसरा गिरिव्रज ही हो। श्वेत अट्टालिकाओं से उसका मुख सुन्दर लगता था। उसके भीतर बाजार अच्छी तरह से विभाजित थे। वह नगर प्रसाद माला से गिरा हुआ ऐसा जान पड़ता था मानो हिमालय की कुक्षि हो। धनी, शांत, विद्वान् और अनुद्धत लोगों से भरा हुआ वह नगर किन्नरों से मंदराचल की भांति शोभायमान था। वहां पुरवासियों को प्रसन्न करने की इच्छा से राजकुमारों ने प्रसन्नचित्त होकर उद्यान नामक यश के सुन्दर स्थान बनवाए। सब दिशाओं में सुंदर झीलें निर्मित कीं जो स्वच्छ जल से पूर्ण थीं। मार्गों और उपवनों में चारों ओर मनोरम, सुंदर, ठहरने के स्थान बनवाए गए जिनके साथ कूप भी थे (दे० सौंदरानंद, 1,24–28–29–32–33–41–42–43–48–49 50–51)। क्योंकि कपिल मुनि के आश्रम के स्थान पर वह नगर बसाया गया था अतः यह कपिलवस्तु कहलाया —'कपिलस्य च तस्यर्षेस्तस्मिन्नाश्रमवास्तुनि, यस्मात्तत्पुरं चक्रुस्तस्मात् कपिलवास्तु तत्' सौंदरानंद 1,57। सिद्धार्थ ने कपिल-वस्तु में ही अपना बचपन बिताया था और सच्चे ज्ञान और सुख की प्राप्ति की लालसा से वे अपने परिवार और राजधानी को छोड़ कर चले गये थे। बुद्धत्व को प्राप्त करने पर वे अंतिम बार कपिलवस्तु आए थे और तब उन्होंने अपने पिता शुद्धोदन और पत्नी यशोधरा को अपने धर्म में दीक्षित किया था।

कपिलवस्तु अशोक (मृत्यु 232 ई० पू०) के समय में तीर्थ के समान समझा जाता था। अपने गुरु उपगुप्त के साथ सम्राट् ने कपिलवस्तु की यात्रा की और यहां स्तूप आदि स्मारक बनवाए। किंतु शीघ्र ही इस नगर की अवनति का युग प्रारंभ हो गया और इसका प्राचीन गौरव घटता चला गया। इस अवनति का कारण अनिश्चित है। संभवतः कालप्रवाह में नेपाल की तराई के क्षेत्र में होने के कारण कपिलवस्तु के स्थान को घने वनों ने आच्छादित कर लिया था और इस कारण यहां पहुंचना दुष्कर हो गया होगा। चीनी यात्री फाह्यान (405–411 ई०) के समय तक कपिलवस्तु नगरी उजाड़ हो चुकी थी। केवल थोड़े-से बौद्ध भिक्षु यहां निवास करते थे जो अपनी जीविका कभी-कभी आ जाने वाले यात्रियों के दान में दिए गए धन से चलाते थे। यह भी उल्लेखनीय है कि फाह्यान के समय तक बौद्ध धर्म से घनिष्ठ रूप से संबंधित अन्य प्रमुख स्थान जैसे बोधिगया और कुशीनगर भी उजाड़ हो चले थे। वास्तव में बौद्धधर्म का अवनतिकाल इस समय प्रारंभ हो गया था। हर्ष के शासनकाल में प्रसिद्ध चीनी

पर्यटक युवानच्वांग ने कपिलवस्तु की यात्रा की थी (630 ई० के लगभग)। उसके वर्णन के अनुसार कपिलवस्तु में पहले एक सहस्र संघाराम थे किंतु अब केवल एक ही बचा था जिसमें तीस भिक्षु रह रहे थे। स्मिथ के अनुसार युवानच्वांग द्वारा उल्लिखित कपिलवस्तु पिपरावा से दस मील उत्तर-पश्चिम की ओर नेपाल की तराई में स्थित तिलौराकोट नामक स्थान रहा होगा (दे० अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० 167)।

कपिला

(1) (काठियावाड़, गुजरात) सौराष्ट्र के पश्चिमी भाग सोरठ की एक नदी जो गिरनार पर्वत श्रेणी से निकल कर, हिरण्या के साथ प्राची-सरस्वती से मिल कर पश्चिम समुद्र में गिरती है। वह प्रभासपाटन के पूर्व की ओर बहती है।

(2) नर्मदा की प्रारंभिक धारा। यह अकरकंटक से निस्मृत होती है।

(3) गोदावरी की सहायक नदी जो पंचवटी (नासिक के निकट) से डेढ़ मील दूर गोदावरी में मिल जाती है। संगम पर महर्षि गौतम की तपःस्थली बताई जाती है। यहीं महर्षि कपिल का आश्रम भी था। किंवदंती है कि शूर्पणखा से राम-लक्ष्मण और सीता की भेंट इसी स्थान पर हुई थी।

(4) (मैसूर) कावेरी की सहायक नदी। कपिलाकावेरी संगम पर तिरुमकुल नरसीपुर नामक तीर्थ है। यहाँ गुंजानृसिंह का मंदिर है।

कपिलायतन=कौलायत (ज़िला बीकानेर, राजस्थान)

रेलस्टेशन कौलायत के निकट कपिल मुनि का मंदिर है। कहा जाता है कि यहां प्राचीनकाल में कपिल का आश्रम था। कपिलायतन का उल्लेख तीर्थ के रूप में पुराणों में भी है। इस स्थान पर महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर और नामदेव भी आए थे।

कपिली (असम)

खसिया पहाड़ियों पर बहने वाली नदी। ए० विल्सन के अनुसार इस नदी के पश्चिम में स्थित देश को कपिली देश कहते थे जिसका उल्लेख एक चीनी लेखक ने इस देश के राजा द्वारा चीन को भेजे गए दूत के संबंध में किया है (दे० जर्नल ऑव रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, पृ० 540)।

कपिलेश्वर

मधुबनी (बिहार) से पांच मील उत्तर-पश्चिम हुसैनपुर ग्राम में यह स्थान है जिसे कपिल का आश्रम कहा जाता है। यहां एक प्राचीन शिवमंदिर है जिसे कपिल जी का स्थापित किया हुआ बताया जाता है।

कपिश = कपिशा

काफिरस्तान। यह हिंदूकुश पर्वत से काबुल नदी (अफगानिस्तान) तक के प्रदेश का प्राचीन नाम है। युवानच्वांग के समय में (630–645 ई०) कपिश का विस्तृत राज्य था और इसके अधीन दस से अधिक रियासतें थीं जिनमें गंधार भी सम्मिलित था। कपिशा इस प्रदेश की राजधानी थी जहां कनिष्क ग्रीष्मकाल में रहा करता था। कपिशा का अभिधान बेग्राम (अफगानिस्तान) नामक नगर से किया गया है।

कपिशा

(1) कालिदास ने रघुवंश 4,38 में इस नदी का उल्लेख किया है —'स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः, उत्कलादर्शितपथः कलिंगाभिमुखोययौ'। यह वर्णन रघु की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में वंगविजय के ठीक पश्चात् और और कलिंग विजय के पूर्व है जिससे जान पड़ता है कि यह नदी वर्तमान कोश्या है जिसके दक्षिण तट पर ताम्रलिप्ति (= तामलुक, ज़िला मिदनापुर, प० बंगाल) बसा हुआ था। यह भी प्रायः निश्चित जान पड़ता है कि महाभारत विराट० 30,32 में उल्लिखित कौशिकी कोश्या या कालिदास की कपिशा है—'ततः पुंड्राधिपंवीरं वासुदेवं महाबलम्। कौशिकीकच्छनिलयं राजानं च महौजसम्'।

(2) दे० **कपिश**

कपिष्ठल = कपिस्थल

वर्तमान कैथल (ज़िला करनाल, हरियाणा)। किंवदंती में इस स्थान का संबंध महावीर हनुमान् से जोड़ा गया है। पाणिनि 8,2,91 में इसका उल्लेख है। महाभारत में वनपर्व के अंतर्गत उल्लिखित तीर्थों में इसकी गणना की गई है। महाभारत उद्योग० 31,19 के एक पाठ के अनुसार कपिस्थल उन पांचों ग्रामों में था जिन्हें पांडवों ने कौरवों से युद्ध रोकने का प्रस्ताव करते हुए मांगा था—'कपिस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्, अवसानं भवत्यत्र किंचिदेकं च पंचमम्'। अन्य पाठ में कपिस्थल के स्थान पर अविस्थल है जिसका अभिज्ञान अनिश्चित है। अलबेरूनी ने कपिस्थल को कवितल लिखा है (दे० अलबेरूनी 1,206)। एरियन ने इसे कंबिस्थलोई कहा है।

कपीवती दे० **लोहित्य**

कबर (रुहेलखंड, उ० प्र०)

एक ग्राम जो प्राचीन नगर शेरगढ़ का एक भाग है। यह देवरानियां स्टेशन (उत्तरपूर्व रेलवे) से सात मील है। यहां पहले हिंदुओं का राज्य था। जलालुद्दीन खिलजी ने 1290 ई० में इसे पहली बार हिंदुओं से छीन लिया था। 1540 ई०

में शेरशाह सूरी ने यहां शेरगढ़ का किला बनवाया। कबर के दक्षिण में एक सुंदर ताल है जिसे ख्वास ताल कहते हैं। इसे शेरशाह के सेनापति ख्वास खां मसनद अली ने बनवाया था। यहां से उत्तर-पश्चिम की ओर रानीताल है जिसे किंवदंती के अनुसार राजा बेन की रानी केतकी ने बनवाया था। राजा वेन या वेणु के विषय में रुहेलखंड में अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। दे० शेरगढ़ (2)।

कबरइया (ज़िला हमीरपुर, उ० प्र०)

चंदेलकालीन अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

कबेरिस दे० काकंदी।

कब्बिनी = कपिनी नदी।

कमता (पूर्वबंगाल, पाकि०)

वर्तमान कमता कोमिल्ला से बारह मील पर स्थित है। यहां पालवंशीय नरेशों के शासन काल (10वीं-11वीं शती) के अनेक बौद्ध अवशेष—मूर्तियां आदि प्राप्त हुए हैं। उस समय कमता या करुमंत में समतट प्रदेश की राजधानी थी।

कमतौल

बीदर (मैसूर) से छ: मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है। यहाँ 1 मील लंबा मिट्टी का बांध है जिससे बनी झील से वारंगल के ककातीय राजाओं के समय में सिंचाई होती थी। बांध पर एक मराठी लेख खुदा है जिसमें इब्राहीम बरीद-शाही द्वारा 1579 ई० में इस बांध की मरम्मत किए जाने का उल्लेख है। इस लेख में जनसाधारण को सावधान किया गया है कि वे पानी को बांध के ऊपर न चढ़ने दें।

कमर

लेटिन भाषा के भूगोल ग्रंथ पेरिप्लस में दक्षिण भारत के काकंदी नगर को ही संभवत: कमर कहा गया है। यह ई० सन् की प्रारंभिक शतियों में प्रसिद्ध बंदरगाह था। (दे० काकंदी।)

कमलनाथ (जिला झालावाड़, राजस्थान)

कहा जाता है कि मेवाड़पति महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी की लड़ाई के पश्चात् अपने अरण्यवास का कुछ समय इस स्थान पर व्यतीत किया था। पर्वत पर कमलनाथ महादेव का मंदिर है।

कमलमीर = कमलमेर (जिला उदयपुर, राजस्थान)

उदयपुर के निकट 3568 फुट ऊंची पहाड़ी पर बसा हुआ है। यहां मेवाड़पति महाराणा प्रताप ने हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् अपनी राजधानी बनाई थी। चित्तौड़ के विध्वंस (1567 ई०) के पश्चात् इनके पिता उदयसिंह ने

उदयपुर को अपनी राजधानी बनाया था किंतु प्रताप ने कमलमेर में रहना ही ठीक समझा क्योंकि यह स्थान पहाड़ों से घिरा होने के कारण अधिक सुरक्षित था। कमलमेर की स्थिति को उन्होंने और भी अधिक सुरक्षित करने के लिए पहाड़ी पर कई दुर्ग बनवाए। अकबर के प्रधान सेनापति आमेर-नरेश मानसिंह और प्रताप की प्रसिद्ध भेंट यहीं हुई थी जिसके बाद मानसिंह रुष्ट होकर चला गया था और मुगल सेना ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी। कमलमेर का प्राचीन नाम कुंभलगढ़ था।

कमलालय (मद्रास)

तिरुवारूर का प्राचीन पौराणिक नाम। यहां दक्षिण भारत के प्रसिद्ध संत एवं संगीताचार्य त्यागराज का मंदिर है जिसका गोपुर दक्षिण भारत में सबसे अधिक चौड़ा माना जाता है। यहीं त्यागराज का जन्म हुआ था। निम्न पौराणिक श्लोक में कमलालय के महत्त्व का वर्णन है—'दर्शनादभ्रसदसि जन्मना कमलालये, काश्यांहि मरणान्मुक्तिः स्मरणादरुणाचले'।

कमलांक=**कोमला**।

कमला

गंगा की सहायक नदी। इसे घुगरी भी कहते हैं। यह नेपाल के महाभारत पहाड़ से निकलकर करगोला (ज़िला पूर्णिया, बिहार) के पास गंगा में मिलती है।

कमीनछपरा (ज़िला मुज़फ्फरपुर, बिहार)

बसाढ़ या प्राचीन वैशाली के निकट एक ग्राम है जहां से शिव की बहुत प्राचीन, संभवतः गुप्तकालीन, चतुर्मुखी मूर्ति प्राप्त हुई है।

कमौधा (हरियाणा)

महाभारत, वनपर्व में वर्णित काम्यकवन की स्थिति इस ग्राम के निकट बताई जाती है। कमौधा, कुरुक्षेत्र के ज्योतिसर से तीन मील दूर पहेवा (=पृथूदक) जाने वाले मार्ग पर स्थित है। वामन पुराण में काम्यक वन को कुरुक्षेत्र के सप्त-वनों में माना गया है—'काम्यक च वनं पुण्यं तथा दितिवनं महत्, व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीवनमेव च' (अध्याय 39)। कमौधा शब्द को काम्यक का ही अपभ्रंश कहा जाता है (दे० काम्यकवन)।

कमौली (ज़िला वाराणसी, उ० प्र०)

इस स्थान से मध्यकालीन गहरवार शासकों के अनेक ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं जिससे काशी पर उनका उस काल में आधिपत्य सिद्ध होता है।

करंज (ज़िला अमरावती, महाराष्ट्र)

विदर्भ क्षेत्र का प्राचीन नाम। विदर्भ की किंवदंती में करंज ऋषि का तपः

क्षेत्र माना जाता है ।

करंबनूर=कदंबपुर (मद्रास)

त्रिचिनापल्ली से प्राय: छ: मील और श्रीरंगम् से तीन मील दूर प्राचीन विष्णु तीर्थ है ।

करकल=कर्करपुर (दक्षिण कर्नाटक, मैसूर)

गोमतेश्वर तथा अनंत पद्मनाभ स्वामी के प्राचीन मंदिर यहां के प्राचीन स्मारक हैं । चतुर्मुख विष्णु का मंदिर भी कला की दृष्टि से सुंदर है ।

करकोंडा (ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय शती के बौद्ध तथा आंध्रकालीन अवशेष यहां से प्राप्त हुए हैं । करकोंडा की पहाड़ी में दो धातुगर्भों तथा दो शिलावेश्मों (गुफा मंदिरों) के अवशेष हैं । चट्टानें बलुआ पत्थर की हैं । ये अवशेष महायान बौद्ध-धर्म से संबंधित हैं । भित्तियों पर भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं ।

करणावती

संभवत: वर्तमान अहमदाबाद (दे० एंशेंट जैन हिम्स, पृ० 56) । प्राचीन जैन तीर्थ के रूप में इसका नामोल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार है—'वंदे श्री करणावती शिवपुरे नागद्रहे नाणके' ।

करतारपुर (ज़िला जालंधर, पंजाब)

इस कसबे का नाम प्राचीन कर्तृपुर का अपभ्रंश जान पड़ता है ।

करतोया

ज़िला बोगरा, बंगाल की एक नदी—वर्तमान करत्वा जो गंगा और ब्रह्मपुत्र की मिली-जुली धारा पद्मा में मिलती है । इसका उल्लेख महाभारत में है—'करतोया समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नर:, अश्वमेधमवाप्नोति प्रजापतिकृतोविधि:' वन० 85,3 । करतोया का नाम अमरकोश 1,10,33 में भी है —'करतोया सदानीरा बाहुदा सैतवाहिनी' जिससे संभवत: सदानीरा एवं करतोया एक ही प्रतीत होती हैं । कालांतर में करतोया को अपवित्र माना जाने लगा था और इसे कर्मनाशा के समान ही दूषित समझा जाता था यथा, 'कर्मनाशा नदी स्पर्शात् करतोया विलंघनात्, गंडकी बाहुतरणाद्धर्म: स्खलति कीर्तनात्' आनंद-रामायण यात्राकांड 9,3 । जान पड़ता है कि बिहार और बंगाल में बौद्धमतावलंबियों का आधिक्य होने के कारण इन प्रदेशों तथा इनकी नदियों को, पौराणिक काल में अपवित्र माना जाने लगा था (दे० **कुरंग**) ।

करत्वा=करतोया ।

करनपुर (ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

कलंगा शासकों के स्मारकों के अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है ।

करनाल (हरियाणा)

किंवदंती के अनुसार नगर का नाम महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा कर्ण के नाम पर पड़ा है । कहते हैं कि इस स्थान पर कर्ण का शिविर था इसलिए इसे कर्णालय का नाम दिया गया था । इस स्थान पर 1739 ई० में नादिरशाह ने दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले की सेनाओं को हरा कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया था । कुरुक्षेत्र तथा पानीपत की इतिहास प्रसिद्ध रण-स्थली करनाल के निकट ही स्थित है ।

करमदंड (ज़िला गोंडा, उ० प्र०)

इस स्थान से गुप्तसंवत् 117=437 ई० अर्थात् कुमारगुप्त के शासन-काल का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जो एक सुडौल ठोस पाषाण लिंग-प्रतिमा पर उत्कीर्ण है ।

करवान (ज़िला बड़ौदा, गुजरात)

हाल ही में इस स्थान से उत्खनन द्वारा पूर्वसोलंकीकालीन (10वीं शती ई०) मंदिर के अवशेष प्रकाश में लाए गए हैं । इसका श्रेय श्री निर्मलकुमार बोस तथा श्री अमृत पांड्या को है ।

करवीर

(1) एक वन जो द्वारका के निकट सुकक्ष नामक पर्वत के एक ओर स्थित था 'सुकक्षं परिवार्यैनं चित्रपुष्पं महावनम्, शतपत्रवनं चैव करवीर कुसुंभि च' महा० सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ ।

(2) कोल्हापुर (महाराष्ट्र) का प्राचीन पौराणिक नाम । इसे काराष्ट्र के अंतर्गत माना गया है । करवीर क्षेत्र को पुराणों तथा महाभारत में पुण्यस्थली कहा है—'क्षेत्रं वै करवीराख्यं क्षेत्रं लक्ष्मीविनिर्मितम्' स्कंदपुराण, सह्यादि० उत्तरार्ध 2,25 । 'करवीरपुरे स्नात्वा विशालायां कृतोदक: देवहृदमुपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते' महा० अनुशासन० 25,44 ।

करहाटक

बंगलौर-पूना रेल मार्ग पर पूना से 124 मील दूर करहाड़ ही प्राचीन करहाटक है । यहां कृष्णा और ककुद्मती नदियों का संगम होता है । करहाड़ से 10 मील पर कोल नृसिंह ग्राम में महर्षि पराशर द्वारा स्थापित नृसिंह-मूर्ति है । महाभारत सभा० 31,70 में करहाटक पर सहदेव की विजय का उल्लेख है —'नगरीं सजयन्तीं च पाखंडं करहाटकं दूतैरेवशे चक्रे करं चैनानदापयत्' ।

करहाड़=**करहाटक** ।

कराचल, कराजल

संभवत: कूर्माचल जिस पर मुहम्मद तुगलक ने 1335 ई० के लगभग आक्रमण किया था । यह नाम तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है ।

कराची (पाकि०)

संभवत: प्राचीन क्रोकल जिसका मेगस्थनीज़ ने सिंध प्रदेश में उल्लेख किया है।

करिंद (लंका)

महावंश 32,15 में उल्लिखित नदी जो वर्तमान किरिंदुओय है ।

करीषिणी

महाभारत भीष्म० 9,17 में उल्लिखित एक नदी जिसका अभिज्ञान अनिश्चित है—'करीषिणीं चित्रवाहां च चित्रसेनां च निम्नगाम्' ।

करुमंत (पूर्व बंगाल, पाकि०)

करुमंत प्राचीन समतट की राजधानी था । समतट में पूर्वी बंगाल अर्थात् तिपरा, नोआखली, बारिसाल, फरीदपुर और ढाका ज़िले सम्मिलित थे—दे० भट्टसाली—ए फारगाटन किंगडम आव ईस्टर्न बंगाल, पृ० 85–91 । 10वीं शती में इस प्रदेश में अराकान के चंद्रवंशीय नरेशों का राज्य था ।

करूर

(1)=वंजि । केरल की प्राचीनतम राजधानी जो परियार नदी पर स्थित थी । इसका अभिज्ञान वर्तमान तिकरूर ग्राम से किया गया है जो कोचीन से 28 मील पूर्वोत्तर में है । अमरावती-कावेरी संगम यहां से 6 मील है । केरल या चेरवंशीय नरेशों के पश्चात् चोलों ने भी यहां राज्य किया । ये अपने को सूर्यवंशीय मानते थे और इसी कारण करूर को भास्करपुरम् या भास्करक्षेत्र भी कहा जाता था । करूर में पशुपतीश्वर शिव का कलापूर्ण मंदिर है ।

(2) (जिला मुलतान, पाकि०) मुलतान और लोनी के बीच में स्थित है । इस स्थान पर भारतीय नरेश विक्रमादित्य ने शकों को हराया था । स्मिथ ने इस राजा को चंद्रगुप्त द्वितीय माना है । अन्य इतिहासज्ञों की राय में यह यशोवर्मन् था ।

करूष=**कारूष**

(1) महाभारत उद्योग० 22, 25 में करूष और चेदि देशों का एकत्र उल्लेख है जिससे इंगित होता है कि ये पार्श्ववर्ती देश रहे होंगे—'उपाश्रितश्चेदि करूषकाश्चे सर्वोद्योगैर्भूमिपालाः समेताः' । इसके आगे उद्योग० 22, 27 में भी चेदिनरेश शिशुपाल और करूषराज का एकसाथ ही नाम आया है—

'यशोमानौ वर्धयन् पांडवानांपुराभिनच्छिशुपालं समीक्ष्ययस्य सर्ववर्धयन्ति स्ममानं करूषराज प्रमुखा नरेन्द्राः'। चेदि वर्तमान जबलपुर (म० प्र०) के परिवर्ती देश का नाम था। करूष इसके दक्षिण में स्थित रहा होगा। बघेलखंड का एक भाग करूष के अंतर्गत था। यह तथ्य वायुपुराण के निम्न उद्धरण से भी पुष्ट होता है—कारूषाश्च सहैषीकाटव्याः शबरास्तथा, पुलिंदाविंध्यपुषिका वैदर्भादंडकैः सह'—वायु० 45, 126। यहां करूषों का उल्लेख शबरों, पुलिंदों वैदर्भों, दंडकवनवासियों, आटवियों और विंध्यपुषिकों के साथ में किया गया है। ये सब जातियां विंध्याचल के अंचल में निवास करती थीं। महाभारत, सभा० 52, 8 में भी कारूषों का उल्लेख है। विष्णुपुराण में कारूषों को मालवदेश के आसपास देश में निवसित माना गया है—'कारूषा मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः, सौवीराः सैंधवा हूणाः साल्वाः कोसलवासिनः' 2, 3, 17। पौराणिक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के समय कारूष का राजा दंतवक्र था। इसने मगधराज्य जरासंध को मथुरानगरी पर चढ़ाई करने में सहायता दी थी।

(2) ज़िला शाहाबाद (बिहार) का एक भाग; वाल्मीकि-रामायण 1, 24; दे० **कारूष**।

कर्कखंड

'अंगान् वंगान् कलिंगांश्च शुंडिकान् मिथिलानथ, मागधान् कर्कखंडांश्च निवेश्य विषयेऽऽत्मनः' महा० वन 254, 8। इस श्लोक में कर्ण की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में पूर्व भारत के उन प्रदेशों का वर्णन है जिन्हें कर्ण ने विजित किया था। कर्कखंड, जैसा कि प्रसंग से सूचित होता है, बिहार या बंगाल के किसी प्रदेश का नाम होगा।

कर्करपुर=करकल

प्राचीन जैन तीर्थ। जैनस्तोत्र तीर्थमालाचैत्यवंदन में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'मोढेरे दधिपद्रकर्करपुरे ग्रामादिचैत्यालये'।

कर्कोटक

'कारस्करान् माहिष्कान् कुरंडान् केरलांस्तथा कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत्' महा० कर्ण 44, 43 अर्थात् कारस्कर, माहिषक, कुरंड, केरल, कर्कोटक और वीरक दूषितधर्म वाले हैं, इसलिए इनसे दूर रहना चाहिए। कर्कोटक नामक नागजाति का उल्लेख महाभारत की नलदमयंती की कथा में है। यह जाति संभवतः विंध्याचल के घने जंगलों में रहती थी। उन्हीं के निवास स्थान के प्रदेश का नाम कर्कोटक माना जा सकता है।

कर्णगढ़ (ज़िला भागलपुर, बिहार)

भागलपुर (अंग देश की राजधानी, प्राचीन चंपा) के निकट एक पहाड़ी है। इसका नाम महाभारत के कर्ण से संबंधित है। कर्ण अंगदेश का राजा था। यह स्थान पूर्व-बौद्धकालीन है। महाभारत में भीम की पूर्वदिशा की दिग्विजय के प्रसंग में मगध के नगर गिरिव्रज के पश्चात् मोदागिरि या मुंगेर के पूर्व जिस स्थान पर भीम और कर्ण के युद्ध का वर्णन है वह निश्चयपूर्वक यही जान पड़ता है—'स कर्णं युधि निर्जित्य वशेकृत्वा च भारत, ततो विजिग्ये बलवान् राज्ञः पर्वतवासिनः' सभा० 31, 20।

कर्णकुब्ज

स्कंदपुराण प्रभासखंड में वर्णित तीर्थ जो वर्तमान जूनागढ़ है।

कर्णगोच्छ

सिंहल के प्राचीन इतिहास दीपवंश 3, 14 में दी गई वंशावली में यहां के अंतिम राजा नरदेव का उल्लेख है। इस स्थान का अभिज्ञान अनिश्चित है किंतु प्रसंग से सूचित होता है कि यह स्थान भारत में स्थित था न कि लंका में।

कर्णचूर

मुंगेर (बिहार) के निकट एक पहाड़ी जो महाभारत के कर्ण (जो अग का राजा था) के नाम से विख्यात है।

कर्णदा

बृहद्धर्मपुराण में वर्णित कीकट देश (मगध) की एक नदी जिसे पवित्र माना गया है—'तत्र देशे गया नाम पुण्यदेशोस्ति विश्रुतः, नदी च कर्णदा नाम पितृणां स्वर्ग-दायिनी'। जान पड़ता है यह गया के निकट बहने वाली फल्गु नदी है जहां पितरों का श्राद्ध किया जाता है। नदी का नाम महाभारत के कर्ण से संबंधित जान पड़ता है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि कीकट देश को प्राचीन पुराणों की परंपरा में अपवित्र देश बताया गया है जिसका कारण इस देश में बौद्ध-मत का आधिपत्य रहा होगा, किंतु कालांतर में गया में पुनः हिंदूधर्म की सत्ता स्थापित होने पर इसे तथा यहां बहने वाली नदी को पवित्र समझा जाने लगा। दे० **कीकट**।

कर्णपुर=**कर्णगढ़**।

कर्णप्रयाग (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

महाभारत में वर्णित भद्रकर्णेश्वर तीर्थ (वन 84, 39) शायद यही है।

कर्णवास (ज़िला बुलंदशहर, उ० प्र०)

गंगा तट पर स्थित इस तीर्थ का प्राचीन नाम भृगुक्षेत्र भी है। महाभारत के प्रसिद्ध कर्ण का इस स्थान से संबंध बताया जाता है। कहा जाता है कि कर्णवास के निकट बुधोही नामक स्थान पर बुद्ध ने कुछ दिन तपस्या की थी। एक अन्य किंवदंती के अनुसार कर्णवास को उज्जयिनी के विक्रमादित्य के समकालीन किसी राजा कर्ण ने बसाया था।

कर्णवेध दे० **अमीन**

कर्णवेल=कर्णावती (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर के निकट स्थित है। 11वीं शती में कलचुरिवंश के शासकों की यहां राजधानी थी। कर्णावती को मूलतः कलचुरिनरेश कर्णदेव (1041–1073 ई०) ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक करने के पश्चात् स्वयं अपने निवास के लिए बसाया था, बाद में कलचुरियों ने कर्णवेल में अपनी राजधानी ही बना ली। कलचुरिनरेशों के आराध्य देव शिव थे और इसी कारण इस नगर में उन्होंने शिव के विशाल मंदिर बनवाए थे। आज भी कर्णवेल के प्राचीन ध्वस्त क़िले के चिह्न दो वर्गमील के क्षेत्र में दिखाई देते हैं।

कर्णसुवर्ण (बंगाल)

प्राचीन काल में बंगाल का यह भाग वंग (गंगा की मुख्य धारा पद्मा के दक्षिण का भाग) के पश्चिम में माना जाता था। इसमें वर्तमान बर्दवान, मुर्शिदाबाद और बीरभूम के ज़िले सम्मिलित थे। चीनी यात्री युवानच्वांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि हर्ष के राजत्वकाल में यह प्रदेश पर्याप्त धनी एवं उन्नतिशील था। यहां की तत्कालीन राजधानी का अभिधान ठीक-ठीक निश्चित नहीं है। यह लगभग चार मील के घेरे में बसी हुई थी। महाराज हर्षवर्धन के ज्येष्ठभ्राता राज्यवर्धन की हत्या करने वाला नरेश शशांक इसी प्रदेश का राजा था (619–637 ई०)। तत्पश्चात् कामरूपनरेश भास्करवर्मन् का आधिपत्य यहां स्थापित हो गया जैसा कि विधानपुर ताम्रपट्ट लेखों से सूचित होता है। मध्यकाल में सेनवंशीय नरेशों ने कर्णसुवर्ण नगर में ही बंगाल की राजधानी बनाई थी। नगर का तद्भव नाम कानसोना था। आधुनिक मुर्शिदाबाद प्राचीन कर्णसुवर्ण के स्थान पर ही बसा है।

कर्णाट

प्राचीन बुंदेलखंड का एक भाग जहां हैहयवंशीय क्षत्रियों का राज्य था।

कर्णालय दे० **करनाल**

कर्णावती

(1)=**कर्णवेल** कलचुरिनरेश राजाकर्ण देव (1041–1073) ने इस नगरी की नींव डाली थी—ब्रह्मस्तंभोयेन कर्णावतीति प्रत्यप्ठःपिक्ष्मातलग्रह्मलोकः, (एपिग्राफ़िका इंडिका, जिल्द 2, पृ० 4, श्लोकार्ध 14) यह स्थान अब पूर्णतः खंडहर हो गया है और घने कंटीले जंगलों से ढका है। केवल दो-एक खभे प्राचीन मंदिरों की कारीगरी के प्रतीक रूप में वर्तमान हैं। वैसे यहां के प्राचीन दुर्ग के खंडहर दो मील तक फैले हुए हैं।

(2)=**कनार** दे० **जगमनपुर**

(3)=**केन नदी।**

कर्णिका

बृहत् शिवपुराण में (1, 75) में उल्लिखित है। संभवतः यह उरी और नर्मदा के संगम पर स्थित कर्नाली है (नं० ला० डे)।

कर्तृपुर

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में इस स्थान का गुप्त साम्राज्य के (उत्तरपश्चिमी) प्रत्यंत या सीमा प्रदेश के रूप में उल्लेख है—'समतटडावक-कामरूपनेपाल—कर्तृपुरादि प्रत्यंतनृपतिभिः मालवाअर्जुननायन यौधेयमद्रक आंभीरप्रार्जुनसनकानिककाकखरपरिक...।' कर्तृपुर का अभिज्ञान हिमाचल प्रदेश की कांगड़ा घाटी से किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि कर्तृपुर में करतारपुर (जिला जालंधर, पंजाब) तथा उत्तर प्रदेश का गढ़वाल और कुमायूं का इलाका—कत्यूर—भी सम्मिलित रहा होगा। यदि यह अभिज्ञान ठीक है तो करतारपुर और कत्यूर को कर्तृपुर का ही बिगड़ा हुआ रूप समझना चाहिए।

कर्दमिल-क्षेत्र

महाभारत, वनपर्व के अंतर्गत पांडवों की तीर्थ यात्रा के प्रसंग में मधुविला या समंगा नदी के तटवर्ती क्षेत्र का नाम 'एषा मधुविला राजन् समंगा संप्रकाशते, एतत् कर्दमिलं नाम भरतस्याभिषेचनम्' वन० 135। इसकी स्थिति हरद्वार से उत्तर में रही होगी। इसके नामकरण का कारण मूलतः इस पर्वतीय प्रदेश में जल और वनस्पति की विपुलता हो सकती है (कर्दम=कीचड़)। कर्दमिल कर्दम-ऋषि के नाम पर भी हो सकता है। उपर्युक्त उद्धरण से सूचित होता है कि इस स्थान पर राजा भरत का अभिषेक हुआ था।

कर्दमेश्वर दे० **कंदवा**

कर्णाटक, कर्नाटक (मैसूर)

कर्णाटक मैसूर का कन्नड़-भाषा-भाषी प्रदेश है। इसका प्राचीन नाम कुंतल भी था।

कर्मनाशा

वाराणसी (उ० प्र०) और आरा (बिहार) ज़िलों की सीमा पर बहने वाली नदी जिसे अपवित्र माना जाता था—'कर्मनाशा नदी स्पर्शात् करतोया विलंघनात्, गंडकी बाहुतरणाद् धर्मस्खलति कीर्तनात्' आनंदरामायण- यात्राकांड 9,3। इसका कारण यह जान पड़ता है कि बौद्धधर्म के उत्कर्षकाल में बिहार-बंगाल में विशेष रूप से बौद्धों की संख्या का आधिक्य हो गया था और प्राचीन धर्मावलंबियों के लिए ये प्रदेश अपूजित माने जाने लगे थे। कर्मनाशा को पार करने के पश्चात् बौद्धों का प्रदेश प्रारंभ हो जाता था इसलिए कर्मनाशा को पार करना या स्पर्श भी करना अपवित्र माना जाने लगा। इसी प्रकार अंग, वंग, कलिंग और मगध बौद्धों के तथा सौराष्ट्र जैनों के कारण अगम्य समझे जाते थे—'अंगबंगकलिंगेषुसौराष्ट्रमागधेषु च, तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति'—तीर्थप्रकाश।

कर्मरंग

मलयप्रायद्वीप या मलाया का एक प्राचीन हिंदू औपनिवेशिक राज्य। ई० सन् से बहुत पहले ही मलय तथा भारत में व्यापारिक संबंध स्थापित हो चुके थे। कर्मरंग से प्रथम बार भारत में आने के कारण फलविशेष—कमरख—को कर्मरंग कहा जाता है। कर्मरंग राज्य का दूसरा नाम कामलंका भी था।

कर्मांत=बड़कंत (ज़िला कोमिल्ला, पूर्व बंगाल, पाकि०)

गुप्तकाल में संभवतः समतट प्रदेश की राजधानी कर्मांत (वर्तमान बड़कंत) नामक नगर में थी। समतट का उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में है।

करीं (ज़िला झेलम, पंजाब, पाकि०)

झेलम से प्रायः दस मील उत्तरपूर्व। यह वही रणस्थल है जहां अलक्षेंद्र (सिकंदर) और पुरु या पोरस की सेनाओं के बीच 326 ई० पू० में इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध हुआ था। ग्रीक लेखकों ने युद्ध को झेलम का युद्ध कहा है और घटना-स्थली का नाम निकाइया लिखा है। यह मैदान लगभग पांच मील चौड़ा था। पुरु के पास तीस सहस्र पैदल सेना के अतिरिक्त दो सौ हाथी भी थे जिनको उसने हरावल में खड़ा किया था। सेना के पार्श्वों की रक्षा के लिए तीन सौ रथ थे। प्रत्येक रथ में चार घोड़े और छः रथारोही थे। इनके पीछे चार सहस्र अश्वारोही सैनिक थे। पैदल सेना चौड़ी तलवारों, ढालों, भालों और धनुषबाणों से सुसज्जित थी। अलक्षेंद्र ने पुरु की सेना के सम्मुखीन भाग को अजेय समझ कर उसके वामपार्श्व पर आक्रमण किया। इसमें उसने अपनी अश्वारोही सेना का प्रयोग किया था। सायंकाल तक युद्ध समाप्त हो गया।

अपनी सेना के पैर उखड़ जाने पर भी पुरु अंत तक अविजित तथा अडिग बना रहा और उसके वीरता और दर्पपूर्ण व्यवहार ने कुटिल अलक्षेंद्र को भी मोह लिया और उसने भारतीय वीर को उसका देश लौटा कर अपना मित्र बना लिया।

कर्वट

'समुद्रसेनं निर्जित्य चंद्रसेनं च पार्थिवम् ताम्रलिप्तिं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा' महा० सभा० 30,24। भीम ने कर्वटनरेश को अपनी दिग्विजय-यात्रा मे पराजित किया था। प्रसंगानुसार कर्वट की स्थिति दक्षिण बंगाल या ताम्रलिप्ति के निकट जान पड़ती है।

कलंगा (ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

प्राचीनकाल में इस स्थान पर एक सुदृढ़ दुर्ग स्थित था। 1814 ई० में जब देहरादून पर गोरखों का राज था उन्होंने अंग्रेजों से युद्ध छिड़ने पर उनका डट कर सामना किया था। अंग्रेजी सेना का नायक जनरल मार्टिन डेल था जिसने जनरल जिलेस्पी के मारे जाने पर फौज की कमान सम्हाली थी। उसने कलंगा के किले को तोपों की मार से भूमिसात् कर दिया था। अब इस स्थान पर दुर्ग के खंडहरों के सिवा कुछ नहीं बचा है।

कलकत्ता (प० बंगाल)

अंग्रेजों की हुगली की व्यापारिक कोठी के अध्यक्ष जॉब चारनाक ने अगस्त 1690 ई० में कलकत्ते की नींव एक व्यापारिक स्थान के रूप में डाली थी। इससे पहले इसके स्थान पर कालीघाट नामक एक ग्राम स्थित था जो काली के मंदिर के कारण ही कालीघाट कहलाता था। यह प्राचीन मंदिर आज भी वर्तमान है। कलकत्ता, कालीघाट का ही रूपांतर कहा जाता है। दे० **कालीघाट**।

कलबप्पू (मैसूर)

चंद्रगिरि पहाड़ी का वर्तमान नाम है। यहां 900 ई० के दो जैन अभिलेख पाए गए हैं (दे० **चंद्रगिरि**)।

कलबुर्गी

गुलबर्गा (आ० प्र०) का प्राचीन नाम; दे० **गुलबर्गा**।

कलशपुर=कलसपुर

कथासरित्सागर में कलशपुर नामक एक राज्य का उल्लेख है जो श्री मजुमदार के अनुसार उत्तर मलय प्रायद्वीप या दक्षिण ब्रह्मदेश में सित्तंग नदी के मुहाने पर तथा प्रोम के दक्षिण पूर्व में स्थित था (दे० हिंदू कालोनीज इन दि फार ईस्ट—पृ० 197)। प्राचीन काल में कलसपुर या कलशपुर भारतीय उपनिवेश था। इसके बसाए जाने का काल अनिश्चित है किंतु मलयप्रायद्वीप

तथा भारत के परस्पर व्यापारिक संबंध ई० सन् से कई सौ वर्ष पूर्व ही स्थापित हो गए थे। मलाया भारतीय उपनिवेशों के बसाए जाने का क्रम चौथी, पांचवीं शती ई० तक चलता रहा।

कलसीग्राम

मिलिंदपन्हो के अनुसार ग्रीक राजा मिनेंडर (पाली में 'मिलिंद' जो दूसरी शती ई० पू० में भारत में आकर बौद्ध हो गया था) का जन्मस्थान (दे० मिलिंदपन्हो, ट्रेंकनर द्वारा संपादित, पृ० 83)। यह मिस्र के प्रसिद्ध नगर (द्वीप) अलेग्ज़ेंड्रिया (पाली—'अलसंद') में स्थित बताया गया है; दे० **अलसंदा**।

कलहनगर (लंका)

महावंश 10,41–43। मिन्नेरी झील (=मणिहीर) के दक्षिण अंबन-गंगा के वामतट पर स्थित वर्तमान कलहगल से इस नगर का अभिज्ञान किया गया है। कलहनगर, सिंहल राजकुमार पांडुकामय के द्वारा सुवर्णपाली नामक कन्या के हरण करने पर उसके पिता और कुमार की सेनाओं में जिस स्थान पर कलह या युद्ध हुआ था, वहीं बसा था।

कलिंग

(1) स्थूल रूप से दक्षिण उड़ीसा का नाम था। उत्तरी उड़ीसा को प्राचीन समय में उत्कल या उल्कलिंग (उत्तर कलिंग) कहते थे। कुछ विद्वानों—सिलवन लेवी, जीन प्रेज़ीलुस्की आदि के मत में कलिंग, तोसल, कोसल आदि नाम आस्ट्रिक भाषा के हैं। आस्ट्रिक लोग भारत में द्रविड़ों से भी पूर्व बसे हुए थे। महाभारत, वन० 114,4 ('एते कलिंगाः कौन्तेय यत्र वैतरणी नदी') से सूचित होता है कि उड़ीसा की वैतरणी नदी से कलिंग प्रारंभ होता था। इसकी दक्षिणी सीमा पर गोदावरी बहती थी जो इसे आंध्र-देश से अलग करती थी। कलिंग का उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र, महागोविंद सूत्र, पाणिनि 4,1,170 तथा बौधायन 1,1,30–31 में है। महाभारत शांति० 4,2 से सूचित होता है कि महाभारत के समय वहां का राजा चित्रांगद था—'कलिंग विषये राजन् राज्ञश्चित्रांगदस्य च'। जातकों में कलिंग की राजधानी दंतपुर नामक नगर में बताई गई है किंतु महाभारत में यह पद राजपुर को प्राप्त है—'श्रीमद्राजपुर नाम नगरं तत्र भारत'—शांति० 4,3। महावस्तु (सेनार्ट–पृ० 432) में कलिंग के एक अन्य नगर सिंहल का उल्लेख है। रोम के प्राचीन इतिहास लेखक प्लिनी (प्रथम शती ई०) ने कलिंग की राजधानी परथालिस नामक स्थान को बताया है। जैन लेखकों ने कलिंग के कंचनपुर नामक एक नगर का उल्लेख किया है (इंडिअन एंटिक्वेरी, 1891, पृ० 375)। कलिंग नगर का उल्लेख

खारवेल के प्रसिद्ध अभिलेख में है जो प्रथम शती ई० में कलिंग का राजा था। इसका अभिज्ञान वंशधारा नदी के तट पर बसे हुए मुखलिंगम् नामक नगर (शिशुपालगढ़ के निकट) से किया गया है। विष्णुपुराण में भी कलिंग का कई बार उल्लेख है—'कलिंगदेशादभ्येत्य प्रीतेन सुमहात्मना' 3,7,36 ; 'कलिंग माहिष महेन्द्र भौमान् गुहा भोक्ष्यन्ति'—4,24,65 से सूचित होता है कि कलिंग में संभवत: गुप्तशासनकाल से पूर्व गुहा-लोगों का राज्य था। कालिदास ने रघुवंश 4,38 में उत्कल के दक्षिण में कलिंग का वर्णन किया है—'उत्कला-दर्शित पथ: कलिंगाभिमुखोययौ' (दे० उत्कल) रघु की विजय यात्रा में कलिंग के वीरों ने रघु का डट कर सामना किया था। इनके पास विशाल गज-सेना थी। कलिंग नरेश हेमांगद का उल्लेख रघु० 6,53 में ('अथांगदाश्लिष्टभुजं-भुजिष्या हेमांगदं नाम कलिंगनाथम्') तथा उसकी गजसेना का सुंदर वर्णन 6,54 में है। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में भी कलिंग के हाथियों को श्रेष्ठ माना गया है—'कलिंगांगगजा: श्रेष्ठा: प्राच्याश्चेदिकरूपजा:, दशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमामता:। सौराष्ट्रिका: पांचनदास्तेषां प्रत्यवरा: स्मृता: सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्जतेश्चवर्धने'। अशोकमौर्य ने 261 ई० पू० में कलिंग को जीता था। इस अभियान में एक लाख मनुष्य मारे गए थे। इस भयानक हत्या-कांड को देख कर ही अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर के शेष जीवन धर्म-प्रचार में बिताने का संकल्प किया था।

(2) वाल्मीकि-रामायण, अयोध्या० 71,16 में वर्णित एक नगर—'एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमतीनदीं, कलिंग-नगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा'। इसका उल्लेख भरत के केकयदेश से अयोध्या की यात्रा के प्रसंग में है। इसके पश्चात् एक रात बिता कर वे अयोध्या पहुंच गये थे। जान पड़ता है कि कलिंग नगर की स्थिति गोमती और सरयू नदी के बीच (पूर्वी उ० प्र०) में रही होगी। इसके पास शालवनों का उल्लेख है।

(3) ई० सन् की प्रारंभिक शक्तियों में मध्य जावाद्वीप में बसाया गया एक हिंदू उपनिवेश जहां भारत के कलिंग देश के निवासियों की बस्ती थी। चीनी लोग इसे होलिंग नाम से जानते थे।

कलिंगनगर (उड़ीसा)

प्राचीन कलिंग का मुख्य नगर। इसका उल्लेख खारवेल के अभिलेख (प्रथम शती ई०) में है। इस नगर के प्रवेशद्वारों तथा परकोटे की मरम्मत खारवेल ने अपने शासन काल के प्रथम वर्ष में करवाई थी। कलिंगनगर का अभिज्ञान मुखलिंगम् से गया किया है जो वंशधारा नदी के तट पर बसा है।

भुवनेश्वर के निकट स्थित शिशुपालगढ़ को भी प्राचीन कलिंगनगर कहा जाता है (दे० कलिंग ; शिशुपालगढ़) । प्राचीन रोम के भौगोलिक टॉलमी ने शायद कलिंग नगर को ही कन्नागर लिखा है (दे० हिस्ट्री ऑव उड़ीसा, महताब, पृ० 24) । कलिंगनगर को चोड़ गंगदेव (1077-1147 ई०) ने अपनी राजधानी बनाया था और यह नगर 1135 ई० तक इसी रूप में रहा ।

कलिंद

यमुना का उद्गम स्थान । यामुन या यमुनोत्री, हिमालय पर्वत् श्रेणी में स्थित इसी पर्वत को माना जाता है । महाभारत वन० 84,85 में इसी को यमुना-प्रभव कहा है—'यमुना प्रभवंगत्वा समुपस्पृश्ययामुनम्'—दे० **यामुन** ।

कलिंदकन्या

यमुनानदी । 'यस्यावरोधस्तनचंदनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले, कलिंद-कन्या मथुरां गतापि गंगोर्मि संसक्त जलेवभाति' रघु० 6,48; दे० कलिंद ।

कलिंजर दे० **कालिंजर**

कल्पेश्वर (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

प्राचीन गढ़वाल नरेशों के बनवाए हुए मंदिरों के लिए उल्लेखनीय है ।

कल्माषदम्य

बुद्धचरित 21,27 में उल्लिखित अनभिज्ञात स्थान ।

कल्याण (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्रकेसरी शिवाजी के समय इस नाम का सूबा कोंकण के उत्तर में स्थित था । पहले यह अहमदनगर के निजामशाही मुल्तानों के अधिकार में था । 1636 ई० में शिवाजी ने इसे बीजापुर के सुलतान अली आदिलशाह से छीन लिया था ।

कल्याणपुर (दक्षिण कनारा, मैसूर)

श्रृंगेरी से 40 मील पश्चिम में स्थित है । कहा जाता है मध्वाचार्य का जन्मस्थान यही है । याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार विज्ञानेश्वर यहीं के निवासी थे । इनकी टीका मिताक्षरा भारत भर में प्रसिद्ध है (किंतु दे० **कल्याणी**) ।

कल्याणी

(1) (ज़िला बीदर, मैसूर) चालुक्यों की प्रसिद्ध राजधानी । तुलजापुर से हैदराबाद जाने वाली सड़क पर अवस्थित है । प्रारंभ में यहां उत्तर चालुक्य-काल में राज्य के पश्चिमी भाग की राजधानी थी । मैसूर राज्य के भारंगी नामक स्थान से प्राप्त पुलकेशिन् चालुक्य के एक अभिलेख में कल्याणी का उल्लेख है ।

पूर्व और उत्तर-चालुक्यकाल के बीच में राष्ट्रकूट नरेशों ने मलखेड़ नामक स्थान पर अपने राज्य की राजधानी बनाई थी किंतु चालुक्य राज्य के पुनरुद्धारक तैलप (973-997 ई०) ने कल्याणी को पुन: राजधानी बनने का गौरव प्रदान किया। 11वीं शती में चालुक्यराज सोमेश्वर प्रथम के राजत्वकाल में कल्याणी की गणना परम समृद्धिशाली नगरों में की जाती थी। धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ मिताक्षरा का रचयिता विज्ञानेश्वर कल्याणी-नरेश विक्रमादित्य चालुक्य की राजसभा का रत्न था (किंतु दे० **कल्याण**)। 12वीं शती के मध्य में चालुक्यों का राज्य कलचुरीनरेशों द्वारा समाप्त कर दिया गया। इसके बाद से कल्याणी से राजधानी भी हटा ली गई। कल्याणी के किले में मुहम्मद तुग़लक के दो अभिलेख हैं जिनमें कल्याणी को दिल्ली की सल्तनत का अंग बताया गया है। तत्पश्चात् कल्याणी बहमनीराज्य में सम्मिलित कर ली गई। बहमनी नरेशों ने कल्याणी के प्राचीन हिंदू दुर्ग का युद्ध में गोलाबारी से रक्षा की दृष्टि से समुचित रूप में सुधार किया। बहमनी राज्य के विघटन के पश्चात् कल्याणी बरीदी सल्तनत के अंदर कुछ समय तक रही किंतु थोड़े ही समय के उपरांत यहां बीजापुर के आदिलशाही सुल्तानों का अधिकार हो गया। औरंगज़ेब का बीजापुर पर कब्ज़ा होने पर कल्याणी को मुग़ल सैनिकों ने खूब लूटा। तत्पश्चात् कल्याणी को मुगल साम्राज्य के बीदर नाम के सूबे में शामिल कर लिया गया।

(2) (लंका) महावंश 1,63; कोलंबो के समीप समुद्र में गिरने वाली एक नदी तथा इसका तटवर्ती प्रदेश। सिंहाली किंवदंती के अनुसार गौतम बुद्ध ने इस स्थान पर राजायतनचैत्य स्थापित किया था।

कल्लूर (जिला रायचूर, मैसूर)

13वीं शती के कई मंदिरों के अवशेष इस ग्राम में स्थित हैं। ग्राम से पश्चिम की ओर मुकुंदेश्वर का मंदिर है जो संभवत: यहां का प्राचीनतम स्मारक है। इसके स्तंभों पर उत्कृष्ट नक्काशी है। इनके आधारों पर पुष्पों तथा पशुओं के मूर्तिचित्र अंकित हैं। शैली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मंदिर का ऊपरी भाग शिखर को छोड़कर बहमनीकालीन है। मुकुंदेश्वर मंदिर के पास ही उत्तर की ओर एक छोटा-सा मंदिर है जिसमें करम्मा या काली की मूर्ति प्रतिष्ठित है। ग्राम के अन्य मंदिर हैं—पेलोम्मल गुड़ी और वेंकटेश्वर गुड़ी। ग्राम के बाहर प्राचीन हनुमान-मंदिर है जिसमें गणेश तथा सप्तमातृकाओं की मूर्तियां भी हैं। कल्लूर से तीन प्राचीन अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं—पहला करम्मा मंदिर के सामने, दूसरा एक हाथी की प्रतिमा पर और तीसरा एक कुएं के पास। इनसे ग्राम के अवशेषों का समय जानने में सहायता मिलती है।

कवर्धा (छत्तीसगढ़, म० प्र०)

कहा जाता है कि कवर्धा शब्द कबीरधाम का रूपांतर है। यह स्थान छत्तीसगढ़ में कबीर से संबंधित अनेक स्थानों में से है। कबीर पंथियों की संख्या यहां पर्याप्त है। कबीर साहब का असंगृहीत साहित्य भी यहां से प्राप्त हो सकता है।

कवलेश्वर (ज़िला कोटा, राजस्थान)

प्राचीन कृतमालेश्वर। इंद्रगढ़ से आठ मील पूर्व में है। यह त्रिवेणी नदी के तट पर स्थित है। बूंदी नरेश महाराज अजीतसिंह का बनवाया हुआ शिव-मंदिर तथा एक कुंड यहां स्थित हैं।

कशेरु

'इंद्रद्वीपं कशेरुं च ताम्रद्वीपं गभस्तिमत्, गांधर्ववारुणं द्वीपं सौम्याक्षमिति च प्रभुः' महा० सभा० 38, दक्षिणात्य पाठ। अर्थात् शक्तिशाली सहस्रबाहु ने इंद्रद्वीप, कशेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, गंधर्व, वरुण और सौम्याक्षद्वीप को जीत लिया था। प्रसंग से यह द्वीप इंडोनीसिया का कोई द्वीप जान पड़ता है क्योंकि ताम्रद्वीप=लंका, वारुण=बोर्नियो, इंद्रद्वीप=सुमात्रा का एक भाग।

कश्मीर=काश्मीर

प्राचीन नाम कश्यपमेरु या कश्यपमीर (कश्यप का झील)। किंवदंती है कि महर्षि कश्यप श्रीनगर से तीन मील दूर हरि-पर्वत पर रहते थे। जहाँ आजकल कश्मीर की घाटी है वहां अति प्राचीन प्रागैतिहासिक काल में एक बहुत बड़ी झील थी जिसके पानी को निकाल कर महर्षि कश्यप ने इस स्थान को मनुष्यों के बसने योग्य बनाया था। भूविद्या-विशारदों के विचारों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि काश्मीर तथा हिमालय के एक विस्तृत भूभाग में अब से सहस्रों वर्ष पूर्व समुद्र स्थित था। काश्मीर का इतिहास अतिप्राचीन है। वैदिक काल में यहां आर्यों की बस्तियां थीं। महाभारत वन० 130, 10 में काश्मीरमंडल का उल्लेख है—'काश्मीरमंडलं चैतत् सर्वपुण्यमरिंदम, महर्षिभिश्चाध्युषितं पश्येदं भ्रातृभिः सह।' कश्मीर के लिए कश्मीरमंडल शब्द के प्रयोग से सूचित होता है कि महाभारत काल में भी वर्तमान कश्मीर के विशाल समूचे प्रदेश को ही कश्मीर समझा जाता था। उस काल में महर्षियों के रहने के अनेक स्थान थे, यह भी इस उद्धरण से ज्ञात होता है। महाभारत, सभा० 34, 12 ('द्राविडाः-सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा') से सूचित होता है कि कश्मीर का राजा भी युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आया था। उसने भेंट में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त अंगूर के गुच्छे भी युधिष्ठिर को दिए थे,

'काश्मीरराजोमार्द्वीकं शुद्धं च रसवन्मधु बलिं च कृत्स्नमादाय पांडवाया-भ्युपाहरत'—सभा० 51, दक्षिणात्य पाठ। कल्हण की राजतरंगिणी में जो कश्मीर का बृहत् इतिहास है, इस देश के इतिहास को अति प्राचीनकाल से प्रारंभ किया गया है। कश्मीर में अशोक के समय में बौद्धधर्म ने पहली बार प्रवेश किया। श्रीनगर की स्थापना इस मौर्य सम्राट् ने ही की थी। दूसरी शती ई० में कुशाननरेशों ने कश्मीर को अपने विशाल, मध्य एशिया तक फैले हुए साम्राज्य का अंग बनाया। कश्मीर से हाल में प्राप्त भारत-बैक्ट्रिआई और भारत-पार्थिआयी नरेशों के सिक्कों से प्रमाणित होता है कि गुप्तकाल के पूर्व, कश्मीर का संबंध उत्तरपश्चिम में स्थापित ग्रीक राज्यों से था। विष्णु-पुराण के एक उल्लेख से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—'सिंधु तटदाविको-र्वीचन्द्रभागा काश्मीरविषयांश्चव्रात्यम्लेच्छशूद्रादयो भोक्ष्यन्ति' 4, 24, 69। इससे कश्मीर आदि देशों में संभवतः गुप्तपूर्वकाल में अनार्य जातियों के राज्य का होना सूचित होता है। गुप्तकाल में ही बौद्ध-धर्म की अवनति अन्य प्रदेशों की भांति कश्मीर में भी प्रारंभ हो गई थी और शैवधर्म का उत्कर्ष धीरे-धीरे बढ़ रहा था। शैवमत के तथा पुनरुज्जीवित हिंदूधर्म के प्रचार में अभिनवगुप्त तथा शंकराचार्य जैसे दार्शनिकों का बड़ा हाथ था। श्रीनगर के पास शंकराचार्य की पहाड़ी, दक्षिण के महान् आचार्य की सुदूर उत्तर के इस देश की दार्शनिक दिग्विजय-यात्रा का स्मारक है। हिंदूधर्म के उत्कर्ष के साथ ही साथ कश्मीर की राजनैतिक शक्ति का भी तेज़ी से विकास हुआ। राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर-नरेश मुक्तापीड ललितादित्य ने 8वीं शती में संपूर्ण उत्तर भारत में कान्यकुब्ज तथा पार्श्ववर्ती प्रदेश तक, अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। 13वीं शती में कश्मीर मुसलमानों के प्रभाव में आया। ईरान के हज़रत सैयद अली हमदान नामक संत ने अपने धर्म का यहां ज़ोरों से प्रचार किया और धीरे-धीरे राज्यसत्ता भी मुसलमानों के हाथ में पहुंच गई। कश्मीर के मुसलमानों का राज्य 1338 ई० से 1587 ई० तक रहा और ज़ैनुलअब्दीन के शासनकाल में कश्मीर भारत-ईरानी संस्कृति का प्रख्यात केंद्र बन गया। इस शासक को उसके उदार विचारों और संस्कृति प्रेम के कारण कश्मीर का अकबर कहा जाता है। 1587 से 1739 ई० तक कश्मीर मुगल साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहा। जहांगीर और शाहजहां के समय के अनेक स्मारक आज भी कश्मीर के सर्वोत्कृष्ट स्मारक माने जाते हैं। इनमें निशात बाग, शालामार उद्यान आदि प्रमुख हैं। 1739 से 1819 ई० तक काबुल के राजाओं ने कश्मीर पर राज्य किया। 1819 ई० में पंजाब केसरी रणजीतसिंह ने कश्मीर को काबुल के अमीर

दोस्त मुहम्मद से छीन लिया किंतु शीघ्र ही पंजाब कश्मीर के सहित अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया। 1846 ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी ने कश्मीर को डोगरा सरदार गुलाबसिंह के हाथों बेच दिया। इस वंश का 1947 तक वहां शासन रहा।

कश्यपनगर (जिला अहमदाबाद, गुजरात)

वर्तमान कासंद्रा। यह अहमदाबाद से चौदह मील दूर है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में यहां साबरमती नदी के तट पर कश्यप ऋषि का आश्रम था। इस स्थान के निकट भद्रेश्वर और कोटेश्वर नामक शिवमंदिर बहुत प्राचीन जान पड़ते हैं। ये दोनों साबरमती के तट पर हैं।

कश्यपमेरु

कश्मीर का प्राचीन नाम अर्थात् कश्यप का पर्वत। कश्मीर शब्द को कश्यपमेरु का ही रूपांतर कहा जाता है। दूसरा मत यह भी है कि कश्मीर, (कश्यप की झील) का अपभ्रंश है (दे० कश्मीर)।

कसरावाड़ (म० प्र०)

महेश्वर के निकट स्थित है। यहां ई० पू० शतियों के अनेक स्मारकों के भग्नावशेष हैं।

कसिया दे० **कुशीनगर**

कसिआरी=**काशीपुरी** (उड़ीसा)

कहांव दे० **ककुभग्राम**

कहोम दे० **ककुभग्राम**

कांकजोल=**कजंगल**

कांगड़ा (हि० प्र०)

कांगड़ा घाटी का प्राचीन नाम त्रिगर्त था। गुप्त काल में यह प्रदेश कर्तृपुर में सम्मिलित था। महाभारत के समय में कांगड़ाप्रदेश का राजा सुशर्मचंद्र था। यह कौरवों का मित्र था। कांगड़ा का ज्वालामुखी का मंदिर तीर्थरूप में दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। कांगड़ा कोट या नगरकोट जहां यह मंदिर है, समुद्रतल से 2500 फुट ऊंचा है। यहां बान-गंगा और पातालगंगा का संगम होता है। नगरकोट के दुर्ग के भीतर कई प्राचीन मंदिर हैं। इनमें लक्ष्मी नारायण, अंबिका और आदिनाथ तीर्थंकर के मंदिर प्रसिद्ध हैं। दुर्ग के भीतर की अपार संपत्ति की ख़बर सुन कर ही महमूद ग़ज़नी ने 1009 ई० में नगरकोट पर आक्रमण किया और नगर को बुरी तरह लूटा। तत्कालीन इतिहास लेखक अलउतबी ने तारीख़े-यामिनी में लिखा है कि 'नगरकोट की धन-राशि इतनी अधिक थी कि उसको ढोने के लिए अनेक ऊंटों के क़ाफ़ले भी अपर्याप्त थे और न उसे जलयानों से ले

जाना संभव था। लेखक उसका वर्णन करने में असमर्थ थे और गणितज्ञ उसके मूल्य का अनुमान भी न लगा सकते थे।' 18वीं शती में फ़ीरोज तुग़लक ने नगर-कोट पर आक्रमण किया तथा यहां के ज्वालामुखी मंदिर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया किंतु लगभग नौ मास तक दुर्ग के घिरे रहने के पश्चात् ही वहां के राजा रूपचंद्र ने सुलतान से संधि की वार्ता प्रारंभ की। 14वीं शती के प्रारंभ में कांगड़ा नरेश हरिश्चंद्र गुलेर के जंगलों में आखेट करता हुआ एक कुएं में गिर गया। उसके राजधानी में न लौटने पर उसके छोटे भाई को कांगड़ा की गद्दी पर बिठा दिया गया किंतु हरिश्चंद्र को पास से गुज़रते हुए एक व्यापारी ने कुएं से निकाल लिया और वह कांगड़ा लौट आया। हरिश्चंद्र का अपने भाई के साथ झगड़ा स्वाभाविक रूप से हो सकता था किंतु उसने उदारता और बुद्धिमानी से काम लिया और एक नए राज्य की नींव डाली और कांगड़ा पर छोटे भाई को ही राज्य करने दिया। मुग़ल सम्राट् अकबर के समय में कांगड़ा नरेश ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। 1619 ई० में जहांगीर ने एक वर्ष के घेरे के उपरांत दुर्ग को हस्तगत कर लिया। वह नूरजहां के साथ दो वर्ष पश्चात् कांगड़ा आया जिसका स्मारक दुर्ग का जहांगीर दरवाज़ा है। इसमें तीन मेहराबों को मिला कर एक मुख्य मेहराब बनाया गया है। कांगड़ा में काफ़ी समय तक मुग़ल फौजदार रहते रहे। मुग़ल-राज्य के अंतिम समय में कांगड़ा नरेश संसार-चंद्र हुए जिन्होंने चित्रकला को बहुत प्रश्रय दिया जिसके कारण कांगड़ा नाम से एक नई चित्रकला शैली का जन्म हुआ। इस शैली में मुग़ल तथा कांगड़ा की स्थानीय शैलियों का संगम है। इसी प्रकार मुग़ल राज्य के संपर्क के फलस्वरूप कांगड़ा के राजकीय रहन-सहन पर भी काफ़ी प्रभाव पड़ा था। नगरकोट के किले में जहांगीर ने एक मसजिद बनवाई थी जिसकी अब केवल दीवारें शेष है। रणजीतसिंह द्वार के निकट ही एक सुंदर स्नानगृह (मुग़ल शैली का हम्माम) है जो शीत या ग्रीष्मकाल दोनों ऋतुओं में काम आता था।

कांचना (ज़िला अजमेर, राजस्थान)

पुष्कर के निकट बहने वाली नदी। कहते हैं कि पुष्कर की मुख्य नदी सरस्वती का ही एक रूप कांचना है।

कांची = कांचीपुरम् = कांजीवरम्

कांची की गणना सप्त मोक्षदायिका पुरियों में है—दे० **सप्तपुरी**। यह दक्षिण-भारत का सर्वप्रसिद्ध तीर्थ है। यहां एक सहस्र मंदिर तथा दस सहस्र शिवलिंग प्रतिमाएं स्थित मानी जाती है। कांची के विष्णुकांची और शिव कांची नामक दो भाग हैं। यहां के मंदिर मुख्यतः विजयनगर के शासकों

तथा पल्लवनरेशों के समय के हैं। 16वीं शती में विजयनगर-नरेशों के बनवाए हुए कई विशाल मंदिर यहां की शोभा बढ़ाते हैं। कृष्णदेवराय द्वारा निर्मित एकाम्रेश्वर-शिव के मंदिर का गोपुर 184 फुट ऊंचा है और इसमें आठ खंबे हैं। शिवप्रतिमा मिट्टी की है। पास ही एक विशाल आम्रवृक्ष है जो कहा जाता है कि एक हज़ार वर्ष पुराना है। कहते हैं इसमें चार प्रकार के फल लगते हैं। इसके नीचे शिव-पार्वती की सुंदर मूर्तियां हैं जिन पर दोनों का परस्पर प्रणयभाव अंकित है। मंदिर के 600 फुट लंबे बरामदे में भित्ति के पास 108 शिवलिंग हैं। सुब्रह्मण्य, गणेश, पार्वती, विष्णु तथा अन्य देवों की मूर्तियों के भी अनेक स्थान हैं। एक शिवालय में एक विशाल शिवलिंग है जिसके अंदर 1008 लघु लिंगों का अंकन किया गया है। यहीं एक सहस्त्र खंभों वाला ऊंची वेदी पर बना एक भव्य मंडप है जो अब जीर्णशीर्ण हो चला है। इस मंदिर का अधिकांश भाग विजय-नरेशों के समय का है। पौराणिक गाथा है कि महेश्वर शिव जिस समय संसार के सर्जन, पालन तथा विनाश में संलग्न थे उस समय पार्वती ने श्रृंगारिक भावावेश में उनकी आंखें मूंद लीं जिससे सारी सृष्टि में अंधकार छा गया। रुष्ट होकर शिव ने पार्वती को कैलास से चला जाने को कहा और कांची में इस मंदिर के स्थान पर रहने की आज्ञा दी। विष्णुकांची या छोटी कांची में वरदराज स्वामी का विष्णु मंदिर है। इसका सौ स्तंभों का मंडप विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसके स्तंभ अश्वारोहियों के रूप में शिल्पित हैं और कणाश्म या ग्रेनाइट से निर्मित हैं। इनमें विष्णु-विषयक अनेक पौराणिक कथाओं का निदर्शन है। इनका सा कल्पनापूर्ण शिल्प सारे भारत में दुर्लभ है। मंदिर की छत के चारों कोनों पर दस फुट लंबी उसी पत्थर में से काटी हुई श्रृंखलाएं, विजयनगरकालीन शिल्पियों की आश्चर्यजनक कला की परिचायक हैं। मंदिर में इसके मूल्यवान् रत्न सुरक्षित हैं जिन्हें लार्ड क्लाइव तथा प्लेस (Place) और गैरो (Garrow) नामक अंग्रेज़ों ने दान में दिया था। एक ब्राह्मण ने भी इस मंदिर के लिए प्रतिदिन दस रुपए के हिसाब से 24 हज़ार रुपया जमा करने का व्रत लिया था। उसने इस मंदिर को रत्नों का विशाल भंडार उपहार-रूप में दिया। कामाक्षी का मंदिर अपेक्षाकृत छोटा है और गर्भगृह अंधेरा है। इनके अतिरिक्त पल्लवकालीन दो मंदिर भी यहां स्थित हैं। कैलाशनाथ का मंदिर लगभग 1200 वर्ष प्राचीन है। यह पल्लव-नरेश नंदिवर्मन् द्वितीय द्वारा निर्मित है। यह और वैकुंठ पेरुमल का मंदिर दोनों कांची के अन्य मंदिरों से सजावट में भिन्न हैं। इनकी समानता महाबलीपुरम् के मंदिरों से की जाती है। कैलाशनाथ के मंदिर के गर्भगृह में एक

विशाल सांक्षेत्रिक (prismatic) लिंग है। मंदिर के प्रकोष्ठों में सुंदर भित्ति-चित्र हैं और दीवारों पर शिवसंबंधी पौराणिक गाथाएं मूर्तिकारी के रूप में अंकित हैं। वैकुंठ पेरुमल मंदिर भी इसी नक्शे पर बना है। इसके बरामदों में पल्लवनरेशों का इतिहास अंकित है। विमान शिखर तीन तलों का है और इसकी भित्तियों पर अंकित मूर्तियों का जमघट-सा दिखाई देता है। कांची में सात प्रसिद्ध ताल भी हैं। इस नगरी की सड़कें जिन्हें प्रारंभ में पल्लवशासकों ने बनवाया था, लंबी, सीधी और चौड़ी हैं और भारत के किसी भी प्राचीन नगर की सड़कों से श्रेष्ठ हैं। कांची चौदह सौ वर्षों तक अनेक राजाओं की राजधानी रही। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में कांची के राजा विष्णुगोप (पल्लव) का उल्लेख है। 7वीं शती ई० में चीनी यात्री युवानच्वांग कांची आया था। उस समय नगर की परिधि छः मील थी। 11वीं शती में चोलनरेशों का यहां अधिकार था। 1310 ई० में अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण भारत पर आक्रमण के समय यहां के भी मंदिरों का विध्वंस किया गया किंतु शीघ्र ही विजयनगर के नरेशों ने इसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। विजयनगर के पतन के पश्चात् कांची की प्राचीन गरिमा को ग्रहण-सा लग गया। 1677 ई० में मराठों और तत्पश्चात् औरंगज़ेब का यहां कब्ज़ा रहा। 1752 ई० में क्लाइव ने इसे छीन लिया और मद्रास प्रांत में शामिल कर लिया।

कांची का संबंध कई प्रसिद्ध विद्वानों से बताया जाता है जिनमें संस्कृत के यशस्वी कवि भारवि और दंडी मुख्य हैं। तामिल कवि अप्पार और सुंदरस्वामी भी कांची के निवासी थे। नालंदा के कुलपति धर्मपाल जो अपने समय के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् थे कांची में पर्याप्त समय तक रहे थे। मालती-माधव नाटक के प्रसिद्ध टीकाकार त्रिपुरारिसूर भी कांची-निवासी थे। उन्होंने अपनी टीका में एकाम्रेश्वर की प्रशंसा में लिखा है, 'एकाम्रमूलनिलय करि-भूधरनायकौ, कांची पुरीश्वरौवन्दे कामितार्थ प्रसिद्धये'। कांची 7वीं शती ई० में जैनधर्म का विशाल केंद्र था। चीनी यात्री युवानच्वांग ने लिखा है कि उसने कांची में अनेक दिगंबर जैन मंदिर देखे थे। कांची नरेश महेंद्रवर्मन् प्रथम (600–630 ई०) प्रारंभ में जैन ही था यद्यपि बाद में वह शैव हो गया था।

कांचीपुरम्=**कांची**।

कांजीवरम्=**कांची**।

कांडी (ज़िला मेदक, आं० प्र०)

प्राचीन मंदिरों के अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

कांतनगर (ज़िला दीनाजपुर, बंगाल)

1704–22 ई० में निर्मित कांत का मंदिर उल्लेखनीय है। यह मंदिर गौड़ की मध्ययुगीन (14वीं-15वीं शती) वास्तु शैली में बना हुआ है।

कांतारक

महाभारत, सभा० 31, 13 में सहदेव की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में इस प्रदेश का उल्लेख है—'कान्तारकांश्चसमरे तथा प्राक्कोसलान् नृपान् नाटकेयांश्च समरे तथा हैरंबकान् युधि'। कांतारक अवश्य ही गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में वर्णित महाकांतार है जहां के अधिपति व्याघ्रराज को समुद्रगुप्त ने परास्त किया था। महाकांतार मध्यप्रदेश के पूर्वोत्तर भाग में स्थित जंगली भूखंड का प्राचीन नाम था (कांतार=घना जंगल)। इसमें भूतपूर्व बस्तो रियासत सम्मिलित थी।

कांतित (ज़िला मिर्ज़ापुर, उ० प्र०)

विंध्याचल स्टेशन से प्रायः डेढ़ मील गंगा के दक्षिण की ओर स्थित है। कई विद्वानों ने पुराणों में वर्णित नागवंशीय राजाओं की राजधानी त्रिपुरी का अभिज्ञान कांतित से किया है जो संदिग्ध जान पड़ता है। कांतित में एक प्राचीन दुर्ग के अवशेष मिले हैं। कांतित के समीप शिवपुर नामक कस्बे से भी प्राचीन मूर्तियां मिली है जिससे इस क्षेत्र की प्राचीनता सिद्ध होती है।

कांतिपुर

नेपाल के प्राचीन राजाओं की राजधानी। यहा के राजा जयप्रकाश मल्ल को 1769 ई० में पृथ्वीनारायण शाह गोरखा ने हराकर नेपाल को राजनैतिक एकता के सूत्र में बांधा था। ये ही वर्तमान राजवंश के पूर्वज थे। पृथ्वीनारायण ने ही पहले पहल काठमंडू में नेपाल की राजधानी बनाई थी।

कांतिपुरी (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

वर्तमान कोतवार जो डभोरा स्टेशन से बारह मील दूर है। यह अहसन नदी के तट पर स्थित है और ग्वालियर से बीस मील है। कांतिपुरी जो प्राचीन पद्मावती के निकट ही स्थित थी गुप्तकाल में नागराजाओं के अधिकार में थी। विष्णुपुराण 4,24,64 में पद्मावती में नागराजाओं का उल्लेख है। कांतिपुरी के कुंतिपुरी, कुंतिपद और कुंतलपुरी आदि नाम भी मिलते हैं। पांडवों की माता कुंती संभवतः इसी नगरी के राजा कुंतिभोज की पुत्री थी। दे० **कुंतिभोज**।

कांपिल्य=कंपिला (जिला फरुखाबाद, उ० प्र०)

कांपिल्य की गणना भारत के प्राचीनतम नगरों में है। सर्वप्रथम इसका

नाम यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता 7,4,19,1 में 'काम्पील' रूप में प्राप्य है। संभव है कि पुराणों में उल्लिखित पंचालनरेश भृम्यश्व के पुत्र कपिल या कांपिल्य के नाम पर ही इस नगरी का नामकरण हुआ हो। महाभारतकाल से पहले पंचालजनपद गंगा के दोनों ओर विस्तृत था। उत्तरपंचाल की राजधानी अहिच्छत्र (ज़िला बरेली, उ० प्र०) और दक्षिण पंचाल की कांपिल्य थी। दक्षिण पंचाल के सर्वप्रथम राजा अजमीढ़ का पुराणों में उल्लेख है। इसी वंश में राजा नीप और ब्रह्मदत्त हुए थे। महाभारत के समय द्रोणाचार्य ने पंचालनरेश द्रुपद को हराकर उससे उत्तरपंचाल का प्रदेश छीन लिया था। इस प्रसंग के वर्णन में महाभारत आदि० 137,73–74 में कांपिल्य को दक्षिण पंचाल की राजधानी बताया गया है—'माकंदीमथ गंगायास्तीरे जनपदायुताम्, सोऽध्यावसद् दीनमनाः कांपिल्यं च पुरोत्तमम्। दक्षिणांश्चापि पंचालान् तावच्चर्मण्वती नदी, द्रोणेन चैव द्रुपदः परिभूयाथ पालितः'। इस समय दक्षिण पंचाल का विस्तार गंगा के दक्षिण तट से चंबल तक था। ब्रह्मदत्त-जातक में भी दक्षिण पंचाल का नाम कंपिलरट्ठ अर्थात् कांपिल्यराष्ट्र है। बौद्धसाहित्य में कांपिल्य का वर्णन बुद्ध के जीवनचरित्र के संबंध में है। किंवदंती के अनुसार इसी स्थान पर उन्होंने कुछ आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाए थे जैसे स्वर्ग में जाकर अपनी माता को उपदेश देना। जैनसूत्रप्रज्ञापणा में कंपिला या कांपिल्य का उल्लेख अन्य कई नगरों के साथ किया गया है। विविधतीर्थकल्प (जैनसूत्रग्रंथ) के लेखक ने कांपिल्य को गंगातट पर स्थित बताया है और उसे तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ के जीवन की पांच घटनाओं से सम्बद्ध माना है। इसी कारण इस नगरी को पंचकल्याणक नाम से भी अभिहित किया गया है। कांपिल्य को जैन साहित्य में कौंडिन्य और गर्दवालि के शिष्य आर्षमित्र से भी संबंधित माना गया है।

चीनी यात्री युवानच्वांग ने इस नगरी को अपने पर्यटन के दौरान देखा था। वर्तमान कंपिला में एक अतिप्राचीन टीला आज भी द्रुपद का कोट कहलाता है। बूढ़ीगंगा के तट पर द्रौपदी-कुंड है जिससे महाभारत की कथा के अनुसार द्रौपदी और धृष्टद्युम्न का जन्म हुआ था। कुंड से बड़े परिमाण की, संभवतः मौर्यकालीन, ईटें निकली हैं। कंपिला के मंदिरों से अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई है। कंपिला बौद्धधर्म के समान ही जैनधर्म का भी बड़ा केंद्र था जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणों से तथा यहां से प्राप्त अवशेषों से प्रमाणित होता है। कांपिल्य को कंपिल्लनगर और कंपिला भी कहा जाता था। साहित्य में इसका अपभ्रंश रूप कांपील भी मिलता है। कांपिल्यनगरी प्राचीनकाल में काशी, उज्जयिनी आदि की भांति ही बहुत प्रसिद्ध थी और प्राचीन साहित्य में इसे

अनेक कथा-कहानियों की घटनास्थली माना गया है, जैसे महाभारत, शांति० 139,5 में राजा ब्रह्दत्त और पूजनी चिड़िया की कथा को कांपिल्य में ही घटित माना गया है, 'कांपिल्ये ब्रह्मदत्तस्य त्वन्तःपुरवासिनी, पूजनी नाम शकुनि दीर्घ-कालं सहोषिता'। लोकश्रुति के अनुसार ज्योतिषाचार्य वराह-मिहिर का जन्म कांपिल्य में ही हुआ था ।

कांपिल्यराष्ट्र=दे० **कांपिल्य**

कापोल=दे० **कांपिल्य**

कांबोज=दे० **कंबोज**

कांसारी (महाराष्ट्र)

दे० पंचगंगा। पंचगंगा कृष्णा की सहायक नदी है ।

काकंदी

(1)=पुहार (मद्रास) । भरहुत अभिलेख (सं० 101, इंडियन ऐंटिक्वेरी 21, 235) में उल्लिखित दक्षिण भारत का एक बंदरगाह जो ई० सन् की प्रारंभिक शतियों तक दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। इस काल में दक्षिण भारत का रोम-साम्राज्य के साथ व्यापार इस बंदरगाह द्वारा होता था । विद्वानों का मत है कि पेरिप्लेस, अध्याय 60 में इसी को कमर और टॉलमी के भूगोल (7,1,13) में कबेरिस कहा गया है । काकंदी कावेरी की उत्तरी शाखा के मुहाने पर बसा हुआ था। जैन ग्रंथ अंतकृतदशांग में काकंदी नगर के धनी गृहस्थ क्षेमक और धृतिहर का उल्लेख है । तमिल अनुश्रुति के अनुसार काकंदी का बंदरगाह समुद्र में डूब कर विलुप्त हो गया था (दे० एंशेंट इंडिया, अयंगर, पृ० 352) । संभवतः यह घटना तीसरी शती ई० के प्रारंभिक वर्षों से पहले ही हुई होगी । काकंदी को पुहार नामक वर्तमान क़सबे से अभिज्ञात किया जाता है (दे० **कावेरीपत्तन**) ।

(2) (ज़िला गोरखपुर, उ० प्र०) वर्तमान खूखंदो ग्राम । इसका प्राचीन नाम किष्किंधापुर भी है । यह प्राचीन जैन तीर्थ है जिसका संबंध पुप्पदंतस्वामी से बताया जाता है ।

काक

गुप्तसम्राट् महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के साम्राज्य की पश्चिमी व पश्चिम-दक्षिणी सीमा पर स्थित कुछ अधीन प्रजातियों की सूची में 'काक' भी है—'मालवार्जुनायनयौधेय मद्रकआभीरप्रार्जुन सनकानिक काक खरपरिक'। इनका प्रदेश संभवतः काकूपुर (ज़िला कानपुर, उ० प्र०) के निकट रहा होगा । विंसेंट स्मिथ के अनुसार यह काकनाद अथवा साँची का परिवर्ती प्रदेश है । काक का पाठांतर खाक है ।

काकनादबोट

सांची (म० प्र०) का प्राचीन नाम जो यहां से प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है (दे० गुप्त-संवत् 93=412-413 ई० का प्रस्तर-लेख—फ्लीट गुप्त इंसक्रिप्शंस)।

काकरवाड़

प्राचीन काकुंभकर (आं० प्र०)। यह कृष्णानदी के तट पर स्थित है। यह महाप्रभु वल्लभाचार्य के माता-पिता का निवासस्थान था। वल्लभाचार्य का जन्म चंपारन (बिहार) के समीप चतुर्भुजपुर में हुआ था।

काकरौली (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

उदयपुर से 40 मील उत्तर में स्थित है। यहां का उल्लेखनीय स्थान राजसमंद (राजसमुद्र) नामक एक सुंदर झील है जिसे मेवाड़ नरेश राजसिंह ने 1662 ई० में बनवाया था। इसकी लंबाई 4 मील, चौड़ाई 1¾ मील और गहराई लगभग 55 फुट है। कहा जाता है यह झील जो अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए बनवाई गई थी, 24 वर्षों में बन कर तैयार हुई थी और उसके बनवाने में 10,50,76,09 रुपए व्यय हुए थे। झील पर तीन मील लंबा एक बांध है जो राजनगर के संगमर्मर का बना है। इस पर तीन बारहदरियां और अनेक चौकियां व तोरण निर्मित हैं जिनका शिल्प और मूर्तिकारी विशेष रूप से सराहनीय है। तोरणों के बीच पच्चीस काले पत्थर के पटलों पर 1017 श्लोकों का एक संस्कृत महाकाव्य उत्कीर्ण है जो 1675 ई० में अंकित किया गया था। यह शिलालेख अपने ढंग का अनुपम है। इससे अधिक विस्तृत प्रस्तरलेख भारत में संभवतः अन्यत्र नहीं है।

काकुंभपुर (आं० प्र०)

वर्तमान काकरवाड़। यह भक्तिकाल के प्रसिद्ध संत महाप्रभुवल्लभाचार्य का पैतृक निवास स्थान है जो कृष्णा नदी के तट पर स्थित है। पास ही व्योमस्तंभ नामक पर्वत है। वल्लभाचार्य का जन्म चतुर्भुजपुर (चोड़नगर, बिहार) में हुआ था। उस समय इनके माता-पिता काशी की तीर्थयात्रा के दौरान यहां आए हुए थे।

काकूपुर दे० **काक**

कागपुर (म० प्र०)

पूर्वमध्यकालीन इमारतों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

काचरफल्लिक दे० **खोह**

काजरग्राम (लंका)

दे० महावंश 19,54,61 । दक्षिण लंका में मैनक गंगा के तट पर वर्तमान कतरगाम । संघमित्रा द्वारा लंका में बोधिवृक्ष की एक शाखा (महाबोधि) लाई जाने पर इस ग्राम के क्षत्रिय तथा ब्राह्मण अन्य लोगों के साथ उसे देखने के लिए आए थे । बोधिवृक्ष की उस शाखा के एक अंकुर को इस ग्राम में लगाया गया था ।

काठमंडू (नेपाल) = **काष्ठमंडप**

नेपाल की राजधानी । यहां के अधिकांश पुराने मंदिर तथा भवन काष्ठद्वारा निर्मित होने के कारण ही यह नगर काठमंडू कहलाया । इसका प्राचीन नाम मंजुपाटन था । काठमंडू के पशुपतिनाथ के मंदिर की दूर-दूर तक ख्याति है । दे० **नेपाल** ।

काडगू दे० **कुर्ग**

काजीपेट (ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

19वीं शती के पूर्वभाग में एक काजी का बनवाया हुआ एक गुंबददार मकबरा यहां स्थित है । पास ही सुंदर चट्टानें हैं जिनमें से एक पर शृंगाकार पर्वतों के ढोके दिखलाई देते हैं । इन चट्टानों के शिखर पर तीन अतिप्राचीन मंदिर हैं जिन पर प्रारंभिक हिंदू काल की सुंदर नक्काशी के नमूने मिलते हैं । काजीपेट से एक मील दक्षिण मुड्डीकोंडा नामक स्थान है जहां एक विशाल चट्टान पर कई प्राचीन मंदिर हैं । द्रविड़ शैली में बने हुए शिव और विष्णु के मंदिरों में स्तूपाकार शिखर हैं । पास ही ग्राम में भी एक सुंदर शिवमंदिर है ।

काठियावाड़ (गुजरात)

प्राचीन किंवदंती है कि इस प्रदेश का नाम कठजाति के यहां निवास करने के कारण ही काठियावाड़ हुआ था । यह जाति जिससे अलक्षेंद्र (सिकंदर) की पश्चिमी पंजाब पर आक्रमण के समय (326 ई० पू०) मुठभेड़ हुई थी तथा जिसकी वीरता का गुणगान तत्कालीन ग्रीक लेखकों ने किया था मूलतः पंजाब में रहती थी । अलक्षेंद्र के आक्रमण के पश्चात् ये लोग काठियावाड़ प्रदेश में आकर बस गए और तत्पश्चात् घूमते फिरते राजपूताना और मालवा तक जा पहुंचे । कठ लोग सूर्य के उपासक थे । प्राचीन साहित्य में काठियावाड़ के सुराष्ट्र और आनर्त आदि नाम मिलते हैं (**कठगणराज्य, सुराष्ट्र, आनर्त**) ।

कादंबरी

विविध-तीर्थ-कल्प (जैन ग्रंथ) में चंपा के निकट एक वन का नाम । इसके निकट कुंड नामक एक विशाल सरोवर और काली नाम की एक पहाड़ी

का भी उल्लेख है। इस स्थान पर चार मास तक प्रथम तीर्थंकर पार्श्वनाथ भ्रमण करते रहे थे। महीधर नामक एक हाथी ने इस वन में पार्श्वनाथ की कमल पुष्पों से पूजा की थी। इसी स्थान पर महाराज करकंडु ने पार्श्वनाथ का एक मंदिर बनवाया था। इस तीर्थ को काकालिकुंड तीर्थ भी कहते थे।

कानसोना दे० **कर्णसुवर्ण**

कानिसपुर दे० **कनिष्कपुर**

कान्यकुब्ज

(1)=कन्नौज (जिला फर्रुखाबाद, उ० प्र०)। कान्यकुब्ज की गणना भारत के प्राचीनतम ख्यातिप्राप्त नगरों में की जाती है। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार इस नगर का नामकरण कुशनाभ की कुब्जा कन्याओं के नाम पर हुआ था। पुराणों में कथा है कि पुरुरवा के कनिष्ठ पुत्र अमावसु ने कान्यकुब्ज राज्य की स्थापना की थी। कुशनाभ इन्हीं का वंशज था। कान्यकुब्ज का पहला नाम महोदय बताया गया है। महोदय का उल्लेख विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी है, 'पंचालाख्योस्ति विषयो मध्यदेशेमहोदयपुरं तत्र', 1,20,2–3। महाभारत में कान्यकुब्ज का विश्वामित्र के पिता राजा गाधि की राजधानी के रूप में उल्लेख है (दे० **गाधिपुर**)। उस समय कान्यकुब्ज की स्थिति दक्षिण-पंचाल में रही होगी किंतु उसका अधिक महत्त्व नहीं था क्योंकि दक्षिण-पंचाल की राजधानी कांपिल्य में थी। दूसरी शती ई० पू० में कान्यकुब्ज का उल्लेख पतंजलि ने महाभाष्य में किया है। प्राचीन ग्रीक लेखकों को भी इस नगर के विषय में जानकारी थी। चंद्रगुप्त और अशोक-मौर्य के शासन काल में यह नगर मौर्य-साम्राज्य का अंग जरूर ही रहा होगा। इसके पश्चात् शुंग और कुषाण और गुप्त नरेशों का क्रमशः कान्यकुब्ज पर अधिकार रहा। 140 ई० के लगभग लिखे हुए टॉलमी के भूगोल में कन्नौज को कनगौर या कनोगिजा लिखा गया है। 405 ई० में चीनी यात्री फ़ाह्यान कन्नौज आया था और उसने यहां केवल दो हीनयान विहार और एक स्तूप देखा था जिससे सूचित होता है कि 5वीं शती ई० तक यह नगर अधिक महत्वपूर्ण नहीं था। कान्यकुब्ज के विशेष ऐश्वर्य का युग 7वीं शती से प्रारंभ हुआ जब महाराजा हर्ष ने इसे अपनी राजधानी बनाया। इससे पहले यहां मौखरी-वंश की राजधानी थी। इस समय कान्यकुब्ज को कुशस्थल भी कहते थे। हर्षचरित के अनुसार हर्ष के भाई राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् गुप्त नामक व्यक्ति ने कुशस्थल को छीन लिया था जिसके परिणामस्वरूप हर्ष की बहिन राज्यश्री को विंध्याचल की ओर चला जाना पड़ा था। कुशस्थल में राज्यश्री के पति गृहवर्मा मौखरी की राजधानी थी।

चीनी यात्री युवानच्वांग के अनुसार कान्यकुब्ज प्रदेश की परिधि 400 ली या 670 मील थी। वास्तव में हर्षवर्धन (606–647 ई०) के समय में कान्यकुब्ज की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी और उस समय शायद यह भारत का सबसे बड़ा एवं समृद्धिशाली नगर था। युवानच्वांग लिखता है कि नगर के पश्चिमोत्तर में अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप था जहां पूर्वकथा के अनुसार गौतम-बुद्ध ने सात दिन ठहरकर प्रवचन किया था। इस विशाल स्तूप के पास ही अन्य छोटे स्तूप भी थे और एक विहार में बुद्ध का दांत भी सुरक्षित था जिसके दर्शन को सैकड़ों यात्री आते थे। युवानच्वांग ने नगर के दक्षिणपूर्व में अशोक द्वारा निर्मित एक अन्य स्तूप का वर्णन भी किया है जो दो सौ फुट ऊंचा था। किंवदंती है कि गौतम बुद्ध इस स्थान पर छ: मास तक ठहरे थे। युवानच्वांग ने कान्यकुब्ज के सौ बौद्धविहारों और दो सौ देव-मंदिरों का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि 'नगर लगभग पाँच मील लंबा और डेढ़ मील चौड़ा है और चतुर्दिक् से सुरक्षित है। नगर के सौंदर्य और उसकी संपन्नता का अनुमान उसके विशाल प्रासादों, रमणीय उद्यानों, स्वच्छ जल से पूर्ण तड़ागों और सुदूर देशों से प्राप्त वस्तुओं से सजे हुए संग्रहालयों से किया जा सकता है'। उसके निवासियों की भद्र वेशभूषा, उनके सुंदर रेशमी वस्त्र, उनका विद्या-प्रेम तथा शास्त्रानुराग और कुलीन तथा धनवान् कुटुंबों की अपार संख्या ये सभी बातें कन्नौज को तत्कालीन नगरों की रानी सिद्ध करने के लिए पर्याप्त थे। युवानच्वांग ने नगर के देवालयों में महेश्वर शिव और सूर्य के मंदिरों का भी जिक्र किया है। ये दोनों कीमती नीले पत्थर के बने थे और उनमें अनेक सुंदर मूर्तियां उत्खचित थीं। युवानच्वांग के अनुसार कन्नौज के देवालय, बौद्धविहारों के समान ही भव्य और विशाल थे। प्रत्येक देवालय में एक सहस्र व्यक्ति पूजा के लिए नियुक्त थे और मंदिर दिन-रात नगाड़ों तथा संगीत के घोष से गूंजते रहते थे। युवानच्वांग ने कान्यकुब्ज के भद्रविहार नामक बौद्ध महाविद्यालय का भी उल्लेख किया है, जहां वह 635 ई० में तीन मास तक रहा था। यहीं रहकर उसने आर्य वीरसेन से बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया था।

अपने उत्कर्षकाल में कान्यकुब्ज-जनपद की सीमाएं कितनी विस्तृत थीं, इसका अनुमान स्कंदपुराण से और प्रबंधचिंतामणि के उस उल्लेख से होता है जिसमें इस प्रदेश के अंतर्गत छत्तीस लाख गांव बताए गए हैं। शायद इसी काल में कान्यकुब्ज के कुलीन ब्राह्मणों की कई जातियां बंगाल में जाकर बसी थीं। आज के संभ्रांत बंगाली-ब्राह्मण इन्हीं जातियों के वंशज बताए जाते हैं।

हर्ष के पश्चात् कन्नौज का राज्य तत्कालीन अव्यवस्था के कारण छिन्न-

भिन्न हो गया। आठवीं शती में यशोवर्मन् कन्नौज का प्रतापी राजा हुआ। गौडवहो नामक काव्य के अनुसार उसने मगध के गौड़ राजा को पराजित किया। कल्हण के अनुसार कश्मीर के प्रसिद्ध नरेश ललितादित्य मुक्तापीड़ ने यशोवर्मन के राज्य का मूलोच्छेद कर दिया ('समूलमुत्पाटयत्') और कान्यकुब्ज को जीतकर उसे ललितपुर (=लाटपौर) के सूर्यमंदिर को अर्पित कर दिया। कल्हण लिखता है कि ललितादित्य का कान्यकुब्ज-प्रदेश पर उसी प्रकार अधिकार था जैसे अपने राजप्रासाद के प्रांगण पर। राजतरंगिणी में, इस समय के कान्यकुब्ज के जनपद का विस्तार यमुनातट में कालिका नदी (=काली नदी) तक कहा गया है। यशोवर्मन् के पश्चात् उसके कई वंशजों के नाम हमें जैन ग्रन्थों तथा अन्य सूत्रों से ज्ञात होते हैं—इनमें वज्रायुध, इंद्रायुध और चक्रायुध नामक राजाओं ने यहां राज्य किया था। वज्रायुध का नाम केवल राजशेखर की कर्पूरमंजरी में है। जैन हरिवंश के अनुसार 783–784 ई० में इंद्रायुध कान्यकुब्ज में राज्य कर रहा था। कल्हण ने कश्मीर नरेश जयापीड विनयादित्य (राज्यकाल, 779–810 ई०) द्वारा कन्नौज पर आक्रमण का उल्लेख किया है। इसके पश्चात् ही राष्ट्रकूटवंशीय ध्रुव ने भी कन्नौज के इस राजा को पराजित किया। इन निरंतर आक्रमणों से कन्नौज का राज्य नष्टभ्रष्ट हो गया। राष्ट्रकूटों की शक्ति क्षीण होने पर राजपूताना-मालवा प्रदेश के प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय ने चक्रायुध को हराकर कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इस वंश में मिहिर भोज, महेंद्रपाल और महीपाल प्रसिद्ध राजा हुए। इनके समय में कन्नौज के फिर एक बार दिन फिरे। प्रतिहारकाल में कन्नौज हिंदूधर्म का प्रमुख केंद्र था। 8वीं शती से 10वीं शती तक हिंदू देवताओं के अनेक कलापूर्ण मंदिर बने जिनके सैकड़ों अवशेष आज भी कन्नौज के आसपास विद्यमान हैं। इन मंदिरों में विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, दुर्गा और महिषमर्दिनी की मूर्तियां हैं। कुछ समय पूर्व शिवपार्वती परिणय की एक सुंदर विशाल मूर्ति यहां से प्राप्त हुई थी जो 8वीं शती की है। बौद्ध-धर्म का इस समय पूर्णतः ह्रास हो गया था। प्रतिहारवंश की अवनति के साथ ही साथ कन्नौज का गौरव भी लुप्त होने लगा। 10वीं शती के अन्त में राज्यपाल कन्नौज का शासक था। यह भी उस महासंघ का सदस्य था जिसने सम्मिलित रूप से महमूद गजनवी से पेशावर और लमगान के युद्धों में लोहा लिया था। 1018 ई० में महमूद ने कन्नौज पर ही हमला कर दिया। मुसलमान नगर का वैभव देख कर चकित रह गए। अलउतबी के अनुसार राज्यपाल को किसी पड़ोसी राज्य से सहायता न प्राप्त हो सकी। उसके पास सेना थोड़ी ही थी और इसी कारण वह नगर

छोड़ कर गंगा पार बारी की ओर चला गया। मुसलमान सैनिकों ने नगर को लूटा, मंदिरों को ध्वस्त किया और अनेक निर्दोष लोगों का संहार किया। अलबरुनी लिखता है कि इस आक्रमण के पश्चात् यह विशाल नगर बिलकुल उजड़ गया। 1019 ई० में महमूद ने दुबारा कन्नौज पर आक्रमण किया और त्रिलोचनपाल से लड़ाई ठानी। त्रिलोचनपाल 1027 ई० तक जीवित था। इस वर्ष का उसका एक दानपत्र प्रयाग के निकट झूसी में पाया गया है। इसके पश्चात् प्रतिहारों का कन्नौज पर शासन समाप्त हो गया। 1085 ई० में फिर एक बार कन्नौज पर चंद्रदेव गहड़वाल ने सुव्यवस्थित शासन प्रबन्ध स्थापित किया। उसके समय के अभिलेखों में उसे कुशिक (कन्नौज), काशी, उत्तर-कोसल और इंद्रस्थान या इंद्रप्रस्थ का शासक कहा गया है। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा गोविंद चंद्र हुआ। उसने मुसलमानों के आक्रमणों को विफल किया जैसा कि उसके प्रशस्तिकारों ने लिखा है --'हम्मीरं (=अमीर) न्यस्तवैरं मुहुरसमरणक्रीडया यो विधत्ते'। गोविंदचंद्र बड़ा दानी तथा विद्याप्रेमी था। उसकी रानी कुमारदेवी बौद्ध थी और उसने सारनाथ में धर्मचक्रजिनविहार बनवाया था। गोविंदचंद्र का पुत्र विजयचंद्र था। उसने भी मुसलमानों के आक्रमण से मध्यदेश की रक्षा की जैसा कि उसकी प्रशस्ति से सूचित होता है – 'भुवनदलनहेलाहर्म्य हम्मीर (=अमीर) नारीनयनजलदधारा धौत भूलोकतापः'। विजयचंद्र का पुत्र जयचंद्र (जयचंद) 1170 ई० के लगभग कन्नौज की गद्दी पर बैठा। पृथ्वीराज-रासौ के अनुसार उसकी पुत्री संयोगिता का पृथ्वीराज ने हरण किया था। जयचंद का मुहम्मद गौरी के साथ 1163 ई० में, इटावा के निकट घोर युद्ध हुआ जिसके पश्चात् कन्नौज से गहड़वाल सत्ता समाप्त हो गई। जयचंद्र ने इस युद्ध के पहले कई बार मुहम्मद गौरी को बुरी तरह से हराया था, जैसा कि पुरुषपरीक्षा के, 'वारवारं यवनेश्वरः पराजयी पलायते' और रंभामंजरीनाटक के 'निखिल यवन क्षयकरः' इत्यादि उल्लेखों से सूचित होता है। यह स्वाभाविक ही है कि मुसलमान इतिहास-लेखकों ने गौरी की पराजयों का वर्णन नहीं किया है किंतु उन्होंने जयचंद्र की उत्तरभारत के तत्कालीन श्रेष्ठ शासकों में गणना की है (दे० कामिलउत्तवारीख)। गहड़वालों की अवनति के पश्चात् कन्नौज पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया किंतु इस प्रदेश में शासकों को निरन्तर विद्रोहों का सामना करना पड़ा। 1540 ई० में कन्नौज शेरशाह के हाथ में आया। उस समय यहां का हाकिम बैरक नियाजी था जिसके कठोर शासन के विषय में प्रसिद्ध था कि उसने लोगों के पास हल के अतिरिक्त लोहे की कोई दूसरी वस्तु न छोड़ी थी। अकबर के

समय कन्नौज नगर आगरे के सूबे के अंतर्गत था और इसे एक सरकार बना दिया गया था जिसमें 30 महाल थे। जहांगीर के समय में कन्नौज को रहीम खानखाना को जागीर के रूप में दिया गया था। 18वीं शती में कन्नौज में बंगश नवाबों का अधिकार रहा किंतु अवध के नवाब और रुहेलों से उनकी सदा लड़ाई होती रही जिसके कारण कन्नौज में बराबर अव्यवस्था बनी रही। 1775 ई० में यह प्रदेश ईस्टइंडिया कंपनी के अधिकार में चला गया। 1857 ई० के स्वतन्त्रता युद्ध में बंगश-नवाब तफज्जुल हुसैन ने यहां स्वतंत्रता की घोषणा की किंतु शीघ्र ही अंग्रेजों का यहां पुनः अधिकार हो गया। इस समय कन्नौज अपने आंचल में सैकड़ों वर्षों का इतिहास समेटे हुए और कई बार उत्तरी भारत के विशाल राज्यों की राजधानी बनने की गौरवपूर्ण स्मृतियों को अपने अंतस् में संजोए एक छोटा-सा कस्बा मात्र है। कन्नौज के निम्न नाम प्राचीन साहित्य में उपलब्ध हैं—कन्यापुर (बराहपुराण), महोदय, कुशिक, कोश, गाधिपुर, कुसुमपुर (युवानच्वांग), कण्णकुज्ज (पाली) आदि।

(2) कान्यकुब्ज नदी का उल्लेख मल्लिनाथ ने रघुवंश 6,59 में उल्लिखित 'उरगाख्यपुर' की टीका करते हुए कहा है—'उरगाख्यपुरस्य पांड्य देशे कान्यकुब्जतीरवर्ति नागपुरस्य'। मल्लिनाथ के नागपुर का अभिज्ञान नेगापटम (आं० प्र०) से किया गया है।

कापरड़ा (मारवाड़, राजस्थान)

17वीं शती के एक सुंदर एवं भव्य जैन मंदिर के लिए उल्लेखनीय है।

काफ़िरिस्तान=प्राचीन **कपिश**।

काबुल दे० **कुभा**।

काम दे० **काम्यकवन**।

कामकोष्णपुरी

पुराणों में प्रसिद्ध कामकोष्णपुरी वर्तमान कुंभकोणम् (मद्रास) है। यह नगरी कावेरी के तट पर बसी हुई है और कुंभेश्वर, शार्गपाणि और रामास्वामी के मंदिर, जिनमें श्रीराम की विविध लीलाएं भित्तिचित्रों में आलेखित है, के लिए प्रख्यात है। दे० **कुंभकोणम्**।

कामगिरि

श्रीमद्भागवत 5,19,16 में पर्वतों की सूची में कामगिरि का उल्लेख है—'ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिः...' संभवतः कामगिरि, चित्रकूट (ज़िला बांदा उ० प्र०) में स्थित कामदगिरि (कामता) है।

कामठा (ज़िला भंडारा, म० प्र०)

गोंदिया-बालाघाट मार्ग पर स्थित चंगेरी टीले के निकट है। 300 वर्ष प्राचीन शिवमंदिर जो तांत्रिक शैली से प्रभावित है यहां का उल्लेखनीय स्मारक है। अनेक प्राचीन मूर्तियां भी यहां से प्राप्त हुई हैं।

कामदगिरि

चित्रकूट (ज़िला बांदा, उ० प्र०) का मुख्य पर्वत।

कामन (ज़िला भरतपुर, राजस्थान)

इस स्थान से खंडित पाषाण पर उत्कीर्ण, विष्णु के विविध अवतारों की कई गुप्तकालीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। यह पाषाण किसी मंदिर का भग्नांश जान पड़ता है। कामन में प्राचीन शिवमूर्तियां भी मिली हैं जिनमें एक चतुर्मुखी लिंगप्रतिमा भी है। इसके चार मुख विष्णु, ब्रह्मा, शिव और सूर्य के परिचायक हैं। एक पाषाण-फलक पर शिवपार्वती के परिणय का सुन्दर चित्र मूर्तिकारी में अंकित है। ये सब कलावशेष अब अजमेर संग्रहालय में हैं।

कामनूर (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

महाराणा प्रताप तथा अकबर की सेनाओं के बीच हल्दीघाटी की विकराल लड़ाई 1576 ई० में इसी ग्राम के मैदान में हुई थी (दे० **हल्दीघाटी**)।

कामपुरी

आंध्र का प्राचीन नगर कल्याण जिसकी चोलनरेश कामराज ने संस्थापना की थी।

कामरूप

प्राचीन असम का नाम विष्णु० 2, 3, 15 में कामरूप निवासियों को पूर्वदेशीय बताया है—'पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूप निवासिनः'। कालिकापुराण में लौहित्या ब्रह्मपुत्र को कामरूप में प्रवाहित होने वाली नदी बताया गया है—'स कामरूपमखिलं पीठमाप्लाव्य वारिणा, गोपयन् सर्वतीर्थाणि दक्षिणं याति सागरम्'। कालिदास ने रघुवंश 4, 83-84 में रघु द्वारा कामरूपनरेश की पराजय का वर्णन किया है—'तमीशः कामरूपाणामत्याखंडलविक्रमम्, भेजे भिन्न कटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः। कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् रत्न-पुष्पोपहारेणछायामानर्च पादयोः'।

कामलंका = कर्मरंग

कामवन (ज़िला भरतपुर, राजस्थान)

यह स्थान जिसे जनश्रुति में प्राचीन काम्यकवन बताया जाता है, अब एक छोटा सा क़स्बा है। यहां से प्राप्त प्राचीन अवशेषों के आधार पर कामवन

अवश्य ही बहुत पुराना स्थान जान पड़ता है। कहा जाता है कि 12वीं शती में रचित वराहपुराण में इस वन का तीर्थरूप में वर्णन है—'चतुर्थकाम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम्, तत्रगत्वा नरोदेवि ममलोके महीयते' (मथुराखंड, 2)। यहां इस वन की मथुरा के परिवर्ती वनों में गणना की गई है। कामवन को वैष्णव संप्रदाय में आदि वृन्दावन भी कहा जाता है। वृन्दादेवी का मंदिर यहां आज भी है। कामवन से छः मील दूर घाटा नामक स्थान से एक शिलालेख प्राप्त हुआ था जिससे सूचित होता है कि 905 ई० में गुर्जर-प्रतिहार वंश के शासक राजा भोजदेव ने कामेश्वर-महादेव के मंदिर के लिए भूमि दान की थी। इससे इस स्थान का नाम कामेश्वर-शिव के नाम पर ही पड़ा मालूम होता है। चौरासी-खंभा नामक स्थान से भी, जो कामवन के निकट ही है, 9वीं शती ई० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें गुर्जर प्रतिहार वंश के राजाओं का उल्लेख है। इस वंश की रानी बच्छालिका ने यहां विशाल विष्णुमंदिर बनवाया था जिसे बाद में आक्रमणकारी मुसलमानों ने मसजिद के रूप में परिवर्तित कर दिया था। इस मंदिर को अब चौरासी-खंभा कहा जाता है। इसके खंभों में रूपवास और फतहपुर-सीकरी का पत्थर लगा हुआ है। प्राचीन समय में इन स्तंभों की संख्या बहुत अधिक थी और इन पर गणेश, काली, विष्णु आदि की मनोहर मूर्तियां अंकित थीं जिन्हें मुसलमानों ने नष्ट कर दिया। स्थानीय जन-श्रुति के अनुसार इस मंदिर को जिसमें अनगिनत स्तंभ थे, विश्वकर्मा ने एक ही रात में बनाया था। 1882 ई० में सर एलेग्ज़ेडर नाम के एक पर्यटक ने इस मंदिर के 200 स्तंभों को देखा था। 13 वीं शती में दिल्ली के सुलतान इल्तुतमिश ने इस मंदिर पर आक्रमण करके नष्ट कर दिया था जैसा कि प्रवेशद्वार पर अंकित फारसी अभिलेख से सूचित होता है—'दिनुस्सुलतान उल आलम उल आदिल उल आज़मुल मुल्क अबुल मुजफ़्फ़र इल्तीतमिश उस्सुलतान' ने इसके पश्चात् 1353 ई० में धर्मांध फ़ीरोज़ तुगलक ने कामवन पर आक्रमण किया और नगर के विनाश और क़त्लेआम के साथ मंदिर का भी विध्वंस कर दिया। उसने प्रवेशद्वार के एक स्तंभ पर अपना नाम खुदवा कर पश्चिम की ओर विष्णु-प्रतिमा के स्थान पर सात फुट ऊंचा और चार फुट चौड़ा एक मेहराबदार दरवाज़ा बनवा कर उसकी मेहराब पर कुरान की आयतें खुदवाईं। पास ही नमाज़ का चबूतरा बनवाया जो आज भी है। इस समय चौरासी-खंभों के बीच के चौक की लंबाई 52 फुट 8 इंच और चौड़ाई 49 फुट 9 इंच है। मंदिर के चारों ओर विस्तीर्ण खंडहर पड़े हुए हैं। यहां की कुछ मूर्तियां मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

कामाक्षा=कामाख्या

गौहाटी (असम) के निकट पर्वत पर कामाक्षा देवी का मंदिर है। मूर्ति अष्टधातु से निर्मित है। यह स्थान सिद्ध-पीठों में है। वर्तमान मंदिर कूचविहार के राजा विश्वसिंह ने बनवाया था। प्राचीन मंदिर 1564 में बंगाल के कुख्यात विध्वंसक कालापहाड़ ने तोड़ डाला था। पहले इस मंदिर का नाम आनंदाख्य था। अब वह यहां से कुछ दूर पर स्थित है।

कामातिपुर

अकबर के दरबार के प्रसिद्ध विद्वान अबुल्फ़ज़ल ने आईने-अकबरी में कामातिपुर को तत्कालीन असम के सूबे की राजधानी लिखा है। जान पड़ता है कि कामातिपुर असम के प्राचीन संस्कृत नाम कामरूप का ही अपभ्रंश है।

कामारपुकुर (ज़िला हुगली, बंगाल)

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जन्म स्थान। इसी ग्राम में 18 फर्वरी 1836 ई० में गदाधर का जन्म हुआ था जो पीछे रामकृष्ण परमहंस के नाम से विख्यात हुए।

काम्यकवन

महाभारत में वर्णित एक वन जहां पांडवों ने अपने वनवासकाल का कुछ समय बिताया था। यह सरस्वती नदी के तट पर स्थित था—'स व्यासवाक्य-मुदितो वनाद्द्वैतवनात् ततः ययौसरस्वतीकूले काम्यकंनाम काननम्'। काम्यकवन का अभिज्ञान **कामवन** (ज़िला भरतपुर, राजस्थान) से किया गया है। एक अन्य जनश्रुति के आधार पर काम्यकवन कुरुक्षेत्र के निकट स्थित सप्तवनों में था और इसका अभिज्ञान कुरुक्षेत्र के ज्योतिसर से तीन मील दूर पहेवा के मार्ग पर स्थित **कमोधा** स्थान से किया गया है। महाभारत वन० 1 के अनुसार द्यूत में पराजित होकर पांडव जिस समय हस्तिनापुर से चले थे तो उनके पीछे नगरनिवासी भी कुछ दूर तक गए थे। उनको लौटा कर पहली रात उन्होंने प्रमाणकोटि नामक स्थान पर व्यतीत की थी। दूसरे दिन वह विप्रों के साथ काम्यकवन की ओर चले गए, 'ततः सरस्वतीकूले समेषु मरुधन्वसु, काम्यकंनाम ददृशुर्वनंमुनिजन प्रियम्' वन० 5 30। यहां इस वन को मरुभूमि के निकट बताया गया है। यह मरुभूमि राजस्थान का मरुस्थल जान पड़ता है जहां पहुंच कर सरस्वती लुप्त हो जाती थी (दे० **विनशन**)। इसी वन में भीम ने किमार नामक राक्षस का वध किया था (वन 11)। इसी वन में मैत्रेय की पांडवों से भेंट हुई थी जिसका वर्णन उन्होंने धृतराष्ट्र को सुनाया था—'तीर्थयात्रा-मनुक्रामन् प्राप्तोस्मि कुरुजांगलान् यदृच्छया धर्मराज दृष्टवान् काम्यके वने'—

वन० 10, 11। काम्यकवन से पांडव **द्वैतवन** गए थे (वन० 28)।

काम्यकसर

महाभारत, सभा० 52, 20 में उल्लिखित सरोवर जो शायद उड़ीसा की चिलका-झील है—'शैलभान् नित्य मत्तांश्चाप्यभितः काम्यकं सरः'। इसमें इस प्रदेश के हाथियों का वर्णन है।

कायमगंज (जिला फर्रुखाबाद, उ० प्र०)

मुगल-सम्राट् फ़र्रुख़सियर ने कन्नौज का प्रदेश मुहम्मदशाह बंगश को जागीर में दिया था। 1720 ई० में उसके पुत्र कायमखां को उसका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। इसी ने अपने नाम पर इस नगर को बसाया था।

कायल (ज़िला तिन्नेवली, केरल)

ताम्रपर्णीनदी के तट पर स्थित है। यह प्राचीन समय में दक्षिण-भारत का सिद्ध बंदरगाह था जिसका यूरोपीय देशों से अच्छा व्यापार था। 13वीं शती के अंतिम चरण में मार्कोपोलो (इटली का पर्यटक) यहां आया था और वह इस स्थान के निवासियों की समृद्धि देखकर चकित रह गया था। कालांतर में धीरे धीरे नदी के प्रवाह के साथ आने वाली मिट्टी से यह बंदरगाह अंट गया और बेकार हो गया अतः पुर्तगालियों ने अपनी व्यापारिक कोठियां कायल को छोड़कर तूतीकोरन में बनाई। कायल को आजकल पुराना कायल कहते हैं। यहां अब केवल थोड़े-से मछियारों की झोंपड़ियां हैं।

कायु

महाभारत सभा० 2 में इस देश के निवासियों को कायव्य कहा गया है। इसका अभिज्ञान खैबर दर्रे के प्रदेश के साथ किया गया है (दे० उपायन पर्व, ए स्टडी, डा० मोतीचंद्र)।

कारंजा (ज़िला अकोला, महाराष्ट्र)

श्वेतांबर जैन तीर्थमालाओं में इस नगर का उल्लेख है—'एलजपुरिकारंजा नयरधनवन्त लोक वसितिहों सभरजिनमंदिर ज्योति जागतां देव दिगम्बर करी राजता'—प्राचीन तीर्थ माला संग्रह, भाग 1, पृ० 114। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कारंजा, करंज का ही रूपांतर है।

कारंधम

'तानि सर्वाणि तीर्थानि ततः प्रभृति चैवह, नारी तीर्थानि नाम्नेह ख्यातिं यास्यन्ति सर्वशः' महा० आदि० 216, 11। उपर्युक्त श्लोक में जिन तीर्थों का निर्देश है वे ये हैं—अगस्त्य, सौभद्र, पौलोम, कारंधम और भारद्वाज (महा० आदि० 216, 3-4)। ये पांचों तीर्थ दक्षिण समुद्र के तट पर स्थित थे—'दक्षिणे

सागरानूपे पंचतीर्थानि सन्ति वै, पुण्यानि रमणीयानि तानि गच्छत माचिरम्' (आदि० 216-17)। अर्जुन ने इन तीर्थों की यात्रा की थी।

कारकल (मैसूर)

मूडबद्री से दस मील दूर यह जैनों का तीर्थ है। चौरासा पर्वत पर ऋषभ तथा अन्य तीर्थंकरों का मंदिर है जिसमें दस हाथ ऊंची प्रतिमाएं हैं। दक्षिण की ओर पहाड़ पर बाहुबली की मूर्ति है जो बयालीस फुट ऊंची है। इस मूर्ति का निर्माण 1432 ई० में कारकल के महाराज वीर पांड्य ने करवाया था। यह मूर्ति पहाड़ी पर कहीं और से लाकर प्रतिष्ठापित की गई थी। कन्नड़काव्य 'कारकल गोम्मटेश्वर चरित्र' में वर्णन है कि इस मूर्ति को लाने के लिए 20 पहियों की गाड़ी बनवाई गई थी और इसे पहाड़ी पर पहुंचाने में एक मास लगा था। दे० **कारस्कर**।

कारपवन

'संप्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम्, हलायुधस्तत्रचापि दत्त्वा दानं महाबलः'—महा० शल्य० 54, 12। यह स्थान सरस्वतीनदी के तटवर्ती तीर्थों में था। इसकी यात्रा बलराम ने सरस्वती के अन्य तीर्थों के साथ की थी। प्रसंग से जान पड़ता है कि यह स्थान कुरुक्षेत्र से उत्तर की ओर प्लक्षप्रस्रवण या सरस्वती के उद्गम के निकल पर्वतांचल में रहा होगा।

कारस्कर

कारस्करों का वर्णन महाभारत कर्ण० 44, 43 में इस प्रकार है—'कारस्करान्माहिष्कान् कुरंडान् केरलांस्तथा, कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च-विवर्जयेत्'। यहां कारस्कर निवासियों का नामोल्लेख विंध्य तथा दक्षिणभारत की—महाभारत कालीन-कई अनार्य जातियों के साथ किया गया है। श्री न० ला० डे के मत में दक्षिण कनारा का कारकल ही कारस्कर है (दे० **कारकल**)। महाभारत के समय कारस्करों को अनार्य आचरण वाली जातियों के अतर्गत गिना जाता रहा होगा। बौधायन स्मृति 1, 1, 2 और मत्स्यपुराण 113 में भी कारस्करों का उल्लेख है।

काराद्वीप

आर्यशूर की जातकमाला के अगस्त्यजातक में काराद्वीप का उल्लेख है। इस द्वीप की स्थिति दक्षिण समुद्र में बताई गई है—'दक्षिणसमुद्रमध्यावगाढ़मिन्द्र-नीलवर्णैरनिलबलाकलितैरूर्मिमालाविलासैराच्छुरितपर्यन्तं सितसिकतास्तीर्णभूमि-भागं पुष्पफलपल्लवालंकृत विटपैर्नानातरुभिरुपशोभितं विमलसलिलाशय प्रतीरं काराद्वीप मध्यासनादाश्रम पदश्रियासंयोजयामास'। काराद्वीप का अभिज्ञान

संदेहास्पद है। संभव है यह धारापुरी या वर्तमान एलिफेंटा द्वीप हो। धारापुरी नाम प्राचीन है और यह अनुमेय है कि कालांतर में मूलशब्द 'कारा' का रूपांतर 'धारा' हो गया हो। पर एलिफ़ेंटा दक्षिण समुद्र में न होकर पश्चिम समुद्र में स्थित है किंतु प्राचीनकाल में उत्तर भारतीयों की दृष्टि में दक्षिण और पश्चिम समुद्र में अधिक भेद संभाव्य नहीं जान पड़ता (दे० **एलिफ़ेंटा।**)

कारापथ

'अंगदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ, शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ' रघु० 15,90 अर्थात् रामचंद्र जी के आदेश से लक्ष्मण ने अपने (अंगद और चंद्रकेतु नाम के) पुत्रों को कारापथ का अधीश्वर बना दिया। वाल्मीकि; उत्तर० 102, 5 के अनुसार लक्ष्मण के पुत्र अंगद को श्रीराम ने कारुपथ नामक देश का राजा बनाया था। इस प्रकार कारुपथ और कारापथ एक ही जान पड़ते हैं। वाल्मीकि० उत्तर 102,8 में कारुपथ की राजधानी अंगदीया कही गई है जो पश्चिम की ओर रही होगी क्योंकि अंगद को पश्चिम की ओर भेजा गया था, 'अंगदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम्' उत्तर० 102,11। श्री नं० ला० डे के अनुसार सिंध-नदी के पश्चिमी तट पर (ज़िला बन्नु, पाकि०) स्थित काराबाग़ ही कारापथ है। मुग़लकालीन पर्यटक टेवर्नियर ने इसे काराबत कहा है।

काराबाग़ दे० **कारापथ**

काराष्ट्र (महाराष्ट्र)

कोल्हापुर जनपद का प्राचीन पौराणिक नाम। यह सह्याद्रि के अंचल में बसा है 'योजनं दश हे पुत्र काराष्ट्रो देश दुर्धरः' स्कंदपुराण, सह्याद्रिखंड 2,24। इसके अंतर्गत करवीर क्षेत्र की स्थिति मानी गई है-'तन्मध्ये पंच क्रोशंच काश्याद्यादधिकं भुवि क्षेत्रं वै करवीराख्यं क्षेत्रं लक्ष्मी विनिर्मितम्' (सह्याद्रि०, उत्तरार्ध 2,24-25।) काराष्ट्र का विस्तार दस योजन और करवीर का पांच योजन कहा गया है।

कारीतलाई (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

कटनी के निकटवर्ती इस स्थान से महाराज जयनाथ का एक गुप्तकालीन ताम्रदानपट्ट प्राप्त हुआ था जिसमें उनके द्वारा छंदोपल्लिक नामक ग्राम का कुछ ब्राह्मणों को दान में दिए जाने का उल्लेख है। यह दानपट्ट उच्छकल्प से प्रचलित किया गया था। 1879 ई० में जनरल कनिंघम ने इस स्थान के प्राचीन अवशेषों का उल्लेख किया था। उन्होंने यहां श्वेत पत्थर की नृसिंह भगवान् की एक विशालकाय मूर्ति देखी थी जिसका अब पता नहीं है। यहां से प्राप्त मूर्तियों में दशावतार, सूर्य, महावीर, गणेश तथा कुछ जैन संप्रदाय की मूर्तियां

हैं जो अधिकांश में कलचुरिकालीन हैं ।

कारुद्वीप

दीपवंश (पृ० 16) में वर्णित प्रदेश जो संभवतः उत्तरकुरु का नाम है ।

कारुपथ

वाल्मीकि० उत्तर० 102,5 के अनुसार लक्ष्मण के पुत्र अंगद को रामचंद्र जी ने कारुपथ नामक देश का राजा बनाया था 'अयंकारुपथो देशो रमणीयो निरामयः' । इस देश की राजधानी वाल्मीकि० उत्तर० 102,8 में अंगदीया बताई गई है—'अंगदीया पुरी रम्याप्यंगदस्य निवेशिता, रमणीया सुगुप्ता च रामेणाक्लिष्टकर्मणा' । यह देश कोसल के पश्चिम में था क्योंकि रामचंद्र जी ने अंगद को पश्चिम की ओर भेजा था—'अंगदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुमुदङ्मुखम्' उत्तर० 102,11 (दे० **अंगदीया**)। कालिदास ने कारुपथ को कारापथ लिखा है। आनंदराम बरुआ के मत में अंगदीया वर्तमान शाहाबाद है। श्री न० ला० डे० के अनुसार कारुपथ या कारापथ वर्तमान कालाबाग (ज़िला बन्नू, पाकि०) है। दे० **कारापथ ।**

कारुष

(1)=**करूष ।**

(2) बक्सर (बिहार) का परिवर्ती क्षेत्र—वर्तमान जिला शाहाबाद—जहां विश्वामित्र का सिद्धाश्रम या चरित्रवन स्थित था। 'मलदाश्च करूषांश्च ताटका दुष्टचारिणी, सेय पंथानमावृत्यवसत्यर्धयोजने' वाल्मीकि० बाल 24, 29। महाभारत के अनुसार कारुष के मिथ्या-वासुदेव पौंड्रक को श्रीकृष्ण ने मारा था। यह कारूष, **करूष** (1) भी हो सकता है। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार करूष वैवस्वत मनु का एक पुत्र था जिसने सर्वप्रथम बिहार के इस क्षेत्र पर राज्य किया था।

कार्पासिक

'शतं दासी सहस्राणां कार्पासिक निवासिनाम्' महा० सभा० 51,8। कार्पासिकदेश की दासियाँ जिन की संख्या एक लाख बताई गई है, युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में सेवा के लिए भेजी गई थीं। इस उल्लेख से ठीक पूर्व-दक्षिणात्य पाठ में वसा, त्रिगर्त और मालवा आदि पंजाब के जनपदों का उल्लेख है। प्रसंगानुसार कार्पासिक भी संभवतः पजाब (पहाड़ी प्रदेश) का कोई भूभाग जान पड़ता है। कुछ विद्वानों के अनुसार कार्पासिक मध्य-एशिया का कारापथ है किंतु यह अभिज्ञान नितांत संदिग्ध है क्योंकि महाभारत में इस स्थान पर पश्चिमी व उत्तरी भारत के ही तत्कालीन जनपदों का उल्लेख है।

कार्ली (महाराष्ट्र)

पूना के समीप लानवी स्टेशन से छः मील दूर। यहां पहाड़ में कटी हुई गुफ़ा के भीतर शती ई० पू० में बनी हुई भारत प्रसिद्ध बौद्ध चैत्यशाला स्थित है जो बौद्ध चैत्यों में सर्वाधिक विशाल तथा भव्य है। इस शैलकृत्त गुफ़ा के स्तंभ धरातल पर पूर्णरूपेण लंब हैं और इस विशेषता में ये अन्य गुफ़ा-स्तंभों से श्रेष्ठ समझे जाते हैं। फ़र्ग्युसन के मत में चैत्य-निर्माण-कला की दृष्टि से कार्ली का चैत्य सभी चैत्यों से अधिक सुंदर है। भीतरी शाला की लंबाई 124 फुट 3 इंच, चौड़ाई 45 फुट 6 इंच और ऊंचाई 45 फुट है। लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई का यही परिमाण पांच सौ वर्षों के पश्चात् बनने वाले ईसाई गिरजाघरों में भी दिखाई पड़ता है (दे० याकूबहसन— 'टेम्पल्स चर्चेज़, एंड मॉस्क्स, पृ० 48) चैत्यशाला की भीतरी बनावट का विन्यास इस प्रकार है— एक मध्यवर्ती शाला जिसके दोनों ओर पार्श्ववीथियां हैं; इनके अंत में एक अर्धगुंबद-सा बनता है जिसके चारों ओर वीथि घूम जाती है। मध्यवर्ती शाला से वीथियां पंद्रह स्तंभों द्वारा अलग की हुई हैं। प्रत्येक स्तभ का आधार काफी ऊंचा है और स्तंभ का दड आठकोना है और शीर्ष मूर्तिकारी से समलंकृत है। शीर्ष के पीछे के भाग में दो अवनत हाथी हैं जिनमें से प्रत्येक पर एक पुरुष और स्त्री की मूर्ति है पीछे अश्व और व्याघ्र की मूर्तियां अंकित हैं। इनमें से प्रत्येक पर केवल एक ही व्यक्ति आसीन है। अर्धगुंबद के ठीक नीचे स्तूप अथवा धातुगर्भ स्थित है। यह एक वर्तुल भेरी के आकार की संरचना के ऊपर बना है जिसमें दो तल हैं। इनके ऊपरी किनारों पर जंगले के आकार की आलंकारिक रचना अंकित है। इस भेरी के ऊपर एक शीर्ष को आच्छादित करता हुआ एक काष्ठ-छत्र है। चैत्य के बाहरी भाग में मध्यवर्ती शाला तथा वीथियों के लिए तीन दरवाज़े हैं। इन दरवाजों के ऊपर अश्वनालाकार एक विशाल खिड़की है जिससे प्रकाश अंदर प्रविष्ट होता है। गुफ़ा के बाहर एक सुंदर प्रस्तर स्तंभ है। इस गुफ़ा में कई अभिलेख अंकित हैं जिनसे ज्ञात होता है कि दूसरी शती ई० पू० के लगभग वशवदत्त ने इस गुहामंदिर को बनवाया था तथा अजामित्र ने गुफ़ा के बाहर के स्तंभ की स्थापना की थी। यह गुफ़ा महाराष्ट्र में आंध्र नरेशों के शासन-काल में बनी थी। गुफ़ा पहाड़ के बीच में सड़क से लगभग दो फ़र्लांग ऊंचे स्थान पर बनी है। चैत्य के पार्श्व में कई छोटे-छोटे विहार भी हैं। चैत्य के बाहर उन राजाओं तथा रानियों की मूर्तियां भी निर्मित हैं जिनके समय में यह बना था। चैत्य की छत में पहले काठ की एक बड़ी शहतीर लगी थी जो अब नष्ट हो गई है। कार्ली का एक प्राचीन नाम विहार-गांव भी है।

कालंज

विष्णुपुराण 2, 2, 29 के अनुसार भारत के उत्तर में, स्थित एक पर्वत है --'कालंजाद्याश्चतथा उत्तरेकेसराचला: ।

कालंजर=कालिंजर ।

कालकवन

राजमहल (बिहार) की पहाड़ियां—दे० पातंजलमहाभाष्य 2, 4, 10; बौधायन 1, 1, 2 ।

कालकाराम

साकेत में स्थित बौद्धविहार जिसका निर्माण गौतम बुद्ध के समालीन कालक नामक व्यापारी ने करवाया था ।

कालकूट

'कुरुभ्य: प्रस्थितास्ते तु मध्येन कुरुजांगलम् रम्यं पद्मसरो गत्वा कालकूट-मतीत्य च । गंडकीं च महाशोणां सदानीरां तथैव च, एकपर्वतके नद्य: क्रमेणैत्या व्रजन्त ते ।' महा० सभा० 20, 26–27 । यह उल्लेख श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम की इंद्रप्रस्थ से (जरासंध के वध के प्रयोजन से की गई) मगध तक की यात्रा के प्रसंग में है । कालकूट का उल्लेख कुरुप्रदेश के पश्चात् और बिहार की गंडकी नदी के पूर्व है जिससे इसकी स्थिति उत्तरप्रदेश के दक्षिण-पूर्वी भाग में जान पड़ती है । शायद यह कालिंजर की पहाड़ी ही का नाम है । वैसे अनु-शासनपर्व में भी कालंजरगिरि का उल्लेख है । कालकूट का उद्योग० 29, 30 में भी जिक्र है, 'अहिच्छत्रं कालकूटं गंगाकूलं च भारत' । इस स्थान पर दुर्योधन की सहायता के लिए आई हुई सेनाओं से परिवृत स्थानों में गणना की गई है जिस के अनुसार कालकूट की स्थिति कुरुप्रदेश से अधिक दूर न होनी चाहिए । कुछ विद्वानों के मत में कालकूट वर्तमान हिमाचल-प्रदेश में स्थित था और इसकी गणना पंजाब या हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी इलाके के सात गणराज्यों (सप्त-द्वीप) या संसप्तकगण में थी जिन्हें अर्जुन ने महाभारत के युद्ध में हराया था। किंतु महाभारत के उपर्युक्त (सभा० 20, 26-27) उल्लेख से यह अभिज्ञान संदिग्ध जान पड़ता है । आदिपर्व 118-48 में कालकूट को चैत्ररथ के निकट और गंधमादन के दक्षिण में बताया गया है—'स चैत्ररथमासाद्य कालकूट-मतीत्यच हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गंधमादनम्' । गंधमादन, बद्रीनाथ के उत्तर की ओर है । कालकूट का पाठांतर तालकूट भी है ।

सभा० 264 में कालकूटों का आनर्त और कुलिंदों के साथ भी उल्लेख है—'आनर्तान्कालकूटांश्च कुलिंदांश्च विजित्य स:' ।

कालकोटि (पाठांतर **बालकोटि**)

इस तीर्थ का उल्लेख महाभारत वन० 95, 3 में है—'कन्यातीर्थेऽश्वतीर्थे च गवां तीर्थे च भारत, कालकोट्यां वृषप्रस्थे गिरावुष्य च पांडवाः'। यहां कालकोटि का वर्णन कान्यकुब्ज, अश्वतीर्थ तथा गोतीर्थ के निकट किया गया है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि संभवतः **कालंजर** को ही यहां कालकोटि कहा गया है।

कालकोश

विष्णुपुराण 4, 24, 66 के अनुसार कालकोश जनपद में संभवतः गुप्त-काल के पूर्व मणिधान्यकों का राज्य था, 'नैषध नैमिषक कालकोशकाञ्ज जान-पदान् मणिधान्यकवंशा भोक्षयन्ति'। निषध (पूर्व मध्यप्रदेश) तथा निमिषारण्य (मध्य उत्तरप्रदेश) के साथ उल्लेख होने से कालकोश की स्थिति उत्तरप्रदेश के दक्षिणी या मध्यप्रदेश के पूर्वोत्तर भाग में अनुमेय है।

कालचंपा

जातककथाओं में चंपानगरी का नाम कालचंपा भी है। दे० चंपा।

कालडि (केरल)

दक्षिण के प्रसिद्ध दार्शनिक आदि शंकराचार्य की जन्मभूमि। शंकर का जन्म आठवीं या नवीं शती ई० में हुआ था।

कालपी (ज़िला जालौन, उ० प्र०)

यमुना तट पर बसी अतिप्राचीन नगरी है। जनश्रुति में कल्प या कालप नामक ऋषि के नाम का संबंध कालपी से जोड़ा जाता है। महर्षि व्यास का भी यहां एक आश्रम था, ऐसी भी स्थानीय किंवदंती है। इसके प्रमाणस्वरूप नगरी के सन्निकट यमुना के तट पर व्यासटीला या व्यासक्षेत्र नामक स्थान का निर्देश किया जाता है। अकबर का समकालीन इतिहासलेखक फ़रिश्ता लिखता है कि कालपी का संस्थापक कन्नौजाधिप वासुदेव था किंतु इसका अभिज्ञान अनिश्चित है। कालपी का मुख्य इतिहास चंदेलकालीन है। इससे पहले का वृतांत प्रायः अज्ञात ही है। 10वीं शती के मध्य में कालपी में चंदेलों ने अपना राज्य स्थापित किया था। उसी समय यहां एक किला बनवाया गया था। चंदेलनरेश मदनवर्मा और परमर्दिदेव (परमाल, पृथ्वीराज चौहान का समकालीन) के समय में कालपी बहुत समृद्धिशाली नगरी थी और चंदेलों के आठ प्रमुख नगरों में इसकी गिनती थी। राज्य का एक मुख्य राजपथ कालपी होकर जाता था। उस समय से मुगलकाल के अंत तक कालपी एक व्यस्त व्यापारिक स्थान के रूप में प्रसिद्ध रही। यहां का व्यापार मुख्यतः यमुना द्वारा होता था। कालपी की प्राचीन इमारतों में उपर्युक्त दुर्ग के अतिरिक्त बीरबल

का रंगमहल, प्रभावतीमंडी, मुगलों की टकसाल, चौरासी मंदिर और गोपाल मंदिर हैं। दुर्ग के खंडहर यमुनातट पर स्थित हैं। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857 ई०) के समय के प्रसिद्ध नेता तांतिया टोपे व वीरांगना लक्ष्मीबाई इस किले में कुछ समय तक रहे थे, झांसी पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई घोड़े पर बिना रुके यात्रा करके यहां पहुंची थीं।

अकबर के दरबार के रत्न प्रसिद्ध राजा बीरबल जिनका वास्तविक नाम महेशदास था कालपी के ही रहने वाले थे।

कालमत्तिय

घटजातक (सं० 454) में वर्णित एक वन। जहां वासुदेव कृष्ण ने कंस के कई राक्षसों का वध किया था। यह वन मथुरा के प्रदेश में स्थित रहा होगा।

कालमही

'महीकालमहीं चापि शैलकानन सेविताम्, ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान्'—वाल्मीकि० किष्किंधा० 40, 22। सुग्रीव ने वानरों की सेना को सीता की खोज में पूर्व-दिशा की ओर भेजते हुए वहां के स्थानों के वर्णन के प्रसंग में मही और कालमही का उल्लेख किया है। मही बिहार की गंडक नदी का एक नाम है। कालमही इसी की कोई उपशाखा या निकटवर्ती कोई नदी हो सकती है। इसके साथ विदेह का उल्लेख होने से भी इस अनुमान की पुष्टि होती है।

कालशिला

राजगृह में गृध्रकूट के निकट एक श्याम शिला जहां जैनश्रमणों ने कठोर तपस्या की थी (मज्झिमनिकाय 1, 92)। जैन ग्रंथ उवासगदसाओ में इसे गुण-सिलचैत्य कहा गया है।

कालशैल

'एतद्रक्ष्यसि देवनामाक्रीडं चरणांकितम्, अतिक्रान्तोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पर्वतम्'—महा० वन० 139, 4। इस पर्वत का उल्लेख हिमालय पर्वत-श्रेणी तथा गंगा के स्रोतों के निकटवर्ती प्रदेश में है। इसके पास ही उशीरबीज, मैनाक और श्वेतपर्वत का उल्लेख है जो सब हरद्वार के उत्तर में स्थित हिमालय की श्रेणियों के नाम जान पड़ते हैं—'उशीरबीज मैनाकं गिरिंश्वेतं च भारत, समतीतोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पार्थिव' वन०, 13, 1।

कालसिग्राम

बौद्ध ग्रंथ मिलिंदपन्हो के अनुसार यवनराज मिलिंद—यूनानी मिनेंडर-

का जन्मस्थान है (ट्रेकनर—मिलिंदपन्हो—पृ० 83)। कालसिग्राम अलसंदा द्वीप (अलेग्ज़ेंड्रिया, मिस्र) में स्थित बताया गया है। मिनेंडर दूसरी शती ई० पू० में भारत में आक्रमणकारी के रूप में आया था किंतु बाद में बौद्ध हो गया था।

कालसी (तहसील चकरौता, ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

अशोक की चौदह धर्मलिपियां यहां एक चट्टान पर अंकित हैं। यह प्राचीन स्थान यमुना तट पर है और अशोक के समय में अवश्य ही महत्वपूर्ण रहा होगा। जान पड़ता है कि यह स्थान अशोक के साम्राज्य की उत्तरी सीमा पर था जो उसे हिमालय के पहाड़ी प्रदेश से अलग करती थी। ये चौदह धर्म लिपियां अशोक के सीमाप्रांतों में ही अभिलिखित पाई गई हैं।

कालहस्ती (आं० प्र०)

कालहस्तीश्वर शिव के भव्य मंदिर के लिए प्रसिद्ध है। मंदिर पत्थर का बना है और इसके चारों द्वारों पर चार विशाल गोपुर हैं। इसके पूर्वोत्तर में पार्वती का मंदिर है। भित्तियों पर तेलुगु भाषा में कई अभिलेख अंकित हैं। स्थानीय अनुश्रुति है कि आंध्र के संत कणप्पा ने मंदिर के लिए अपने नेत्र दान कर दिए थे। कालहस्ती के निकट सुवर्णमुखी नदी प्रवाहित होती है।

कालाबाग़ दे० **कारापथ**।

कालावगूर (ज़िला मेदक, आं० प्र०)

प्राचीन मंदिरों के अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

कालिंजर—कालंजर (तहसील नरैली, ज़िला बांदा, उ० प्र०)

अंतरा नामक स्थान से यह ग्राम चौबीस मील दूर है। इसके निकट ही कालिंजर का इतिहासप्रसिद्ध दुर्ग है। पहाड़ी पर बना हुआ यह प्रसिद्ध दुर्ग भारत के प्राचीनतम स्मारकों में से एक है। महाभारतकाल में पांडवों ने अपने वनवास का कुछ समय यहां बिताया था। इसके नामकरण के विषय में शिव-पुराण की कथा है कि इसी पर्वत पर काल को जीर्ण किया गया था इसी कारण यह कालंजर कहलाया। पुराणों के मत में सतयुग में इस दुर्ग का नाम कीर्ति, त्रेता में महत्‌गिरि और द्वापर में पिंगलागढ़ था। पर्वत पर कई स्थानों पर श्री-राम के वनवासकाल में यहां ठहरने के कुछ चिह्नों का निर्देश किया जाता है किंतु ये उतने प्राचीन नहीं जान पड़ते। अकबर का समकालीन इतिहास लेखक फ़रिश्ता लिखता है कि इस किले की बुनियाद केदार ब्रह्म नामक ब्राह्मण ने डाली थी जो हिंद का राजा था और कालिंजर में रहता था। इसने उन्नीस वर्ष राज्य किया। राजा केदार कुछ समय तक ईरान के शाह कैकाओस और ख़ुसरो के अधीन रहा। अंत में उसे कालिंजर का क़िला राजा शंकर को दे देना

पड़ा। शंकर अपने पुत्र पुर्त को राज्य सौंप कर तूरान चला गया। फ़रिश्ता के इस वर्णन में कितनी सचाई है यह कहना कठिन है किंतु इससे दुर्ग की प्राचीनता अवश्य सिद्ध होती है। दूसरी या तीसरी शती ई० पू० में कालिंजर पर मौर्यों का शासन रहा। कालांतर में कनिष्क (दूसरी शती ई०) और तत्पश्चात् गुप्त नरेशों और हर्ष का क्रम से यहां राज्य रहा। हर्ष के पश्चात् मध्ययुग में राजपूतों की अनेक रियासतों ने अपना आधिपत्य कालिंजर पर स्थापित किया। एक किंवदंती के अनुसार यहां के दुर्ग का निर्माण चंदेलनरेश चंद्रवर्मन् ने किया था। राजा कीर्तिवर्मन् के समय में इस दुर्ग की ख्याति दूर-दूर तक पहुंच गई थी। महमूद गज़नवी ने 1022 ई० में यहां आक्रमण किया और उसे तत्कालीन नरेश गंगदेव चंदेल से करारी हार खानी पड़ी। 1203 ई० में राजा परमाल को कुतुबुद्दीन एबक की सेनाओं के आगे झुकना पड़ा जिसके फलस्वरूप कालिंजर के सब मंदिरों को मुसलमानों ने तोड़ कर वहां की भूमि को सहस्रों हिंदुओं के रक्त से रंग दिया। यह वृत्तांत तत्कालीन इतिहास ताजुलमासिर के लेखक ने लिखा है। सुल्तान इल्तुतमिश के दिल्ली में राज्य करने के समय कालिंजर पर खंगार राजपूतों का अधिकार था। सोहनपाल बुंदेला ने 1266 ई० में खंगारों को समाप्त कर उनसे यह क़िला छीन लिया। शेरशाह सूरी ने 1545 ई० में कालिंजर पर आक्रमण किया तब यह क़िला बुंदेलों के हाथ में ही था। यहां बारूदख़ाने में आग लग जाने से शेरशाह बुरी तरह जल गया और थोड़े ही दिन बाद परलोक सिधार गया। कालिंजर की पहाड़ी पर शेरशाह की क़ब्र बनी है (शेरशाह का मकबरा सहसराम बिहार में है)। शेरशाह ने दुर्ग को लेने के पश्चात् अपने दामाद अलीखाँ को यहां का सूबेदार बनाया था। 1550 ई० में रींवा नरेश महाराज रामचंद्र ने अलीखां से यह दुर्ग ख़रीद लिया। तत्पश्चात् अकबर और फिर भटराजपूतों ने यहां राज्य किया। 1666 ई० में औरंगज़ेब ने भटराजाओं से इसे छीन लिया। उसने दुर्ग के सात दरवाजों में से एक का नाम आलम-दरवाज़ा रखा। 1673 ई० में इसका जीर्णोद्धार करवाया गया। इस पर फ़ारसी में 'साद अज़ीम' तिथिलेख खुदा है जिससे 1084 हिजरी सन् निकलता है। एक पत्थर पर औरंगज़ेब ने निम्न शेरें भी अंकित करवाई थीं : 'शाह औरंगजेब दी परवर शुद मरम्मत चूं क़िला कालिंजर; चूं मुहम्मद मुराद आज हुकमश शाख्त दर हामूहकनों खुशत आज ख़िरद माल जुस्त मशमी गुफत सद अज़ीम चूं सद असकन्दर'। 1677 ई० में बुंदेला-नरेश छत्रसाल ने औरंगज़ेब के सूबेदार करमइलाही से यह दुर्ग छीन लिया और उसके स्थान में मांधाता चौबे को क़िलेदार बनाया और पांच सौ सैनिक यहां नियुक्त किए। मांधाता

के वंशजों का अधिकार यहां 1812 ई० तक रहा। इस वर्ष अंगरेज़ों ने कालिंजर को जीत लिया और चौबों को कुछ जागीर देकर संतुष्ट कर दिया। इस लड़ाई में अंग्रेजों के काफ़ी सैनिक मारे गए थे जिनकी कब्रें दुर्ग के पास मनीपुर में बनी हैं। कालिंजर में आलमगीरी दरवाज़े के अतिरिक्त छः अन्य प्रवेशद्वार हैं। गणेशद्वार, जिसे मुसलमान काफ़िर-घाटी दरवाज़ा कहते थे क्योंकि यहां की चढ़ाई बहुत कठिन है; चंडी-द्वार जहां शिवोपासना संबंधी 1199, 1570,1580 और 1600 ई० के अभिलेख अंकित हैं और समीप ही एक सुंदर भवन (राजमहल) है; 1580 विक्रमसंवत् के अभिलेख वाला द्वार; हनुमान द्वार जो हनुमान कुंड के पास है, जहां 1560 और 1580 वि० सं० के कई अभिलेख हैं; लालद्वार, और अंतिम शिवपार्वती की मूर्तियों वाला द्वार जिस के समीप पहाड़ी में सीताकुंड नामक झरना है जहां दिन में भी अंधेरा रहता है। पास ही सीता-सेज है। इन स्थानों का संबंध वनवासकाल में रामचंद्र जी के यहां कुछ समय तक निवास करने से बताया जाता है। हनुमानद्वार और लालद्वार के बीच सिद्धगुफा नामक स्थान है जहां से भैरवकुंड को मार्ग जाता है। कालिंजर दुर्ग के अन्य उल्लेखनीय स्थल ये हैं—पातालगंगा, पांडुकुंड, कोटितीर्थ, नीलकंठ-मंदिर, और भगवान् सेज। पातालगंगा के समीप हुमायूं के नाम का एक अभिलेख 936 हि० = 1558 ई० का है। कोटितीर्थ में कई प्राचीन भवन तथा तड़ागादि हैं। नीलकंठ मंदिर पवित्र तीर्थ है। यहां 1194,1200,1400,1579 विक्रम-संवत् के कई लेख और अनेक खंडित मूर्तियां विद्यमान हैं। भगवान् सेज में पत्थर की शैया है। वृद्धक-क्षेत्र का संबंध चंदेलराजा कीर्तिब्रह्म से बताया जाता है। पांडुकुंड पातालगंगा के समीप एक झरने से बना हुआ कुंड है जिसका संबंध पांडवों से बताया जाता है। महाभारत वन० 85,46-53 और पद्मपुराण आदि० 39,52-53 के अनुसार कालंजर पर्वत तुंगारण्य या तुंगकारण्य में स्थित था। इस पर्वत पर स्थित देवह्रदतीर्थ का वर्णन वनपर्व 85,56-57 में इस प्रकार है—'अत्र कालंजरंनाम पर्वतं लोक विश्रुतम् तत्र देवह्रदे स्नात्वा गोसहस्त्र फलं लभेत्, यो स्नातः साधयेत् तत्र गिरौ कालंजरे नृप, स्वर्गलोके महीयेत नरो नास्त्यत्र संशयः'।

कालिंदी

(1) यमुना-नदी को कलिंद पर्वत से निस्सृत होने के कारण कालिंदी कहते हैं। कलिंदकन्या या कलिंदनंदिनी ('धुनोतु नो मनोमलं कलिंदनंदिनी सा'—गीत-गोविंद) भी इसी कारण यमुना ही के नाम हैं। 'गंगायमुनयोः संधिमादाय मनु-जर्षभ, कालिंदीमनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम्' वाल्मीकि० 55,4।

(2) गंगा की एक छोटी सहायक नदी—कालीनदी जो गंगा में कान्यकुब्ज के पास मिलती है। शायद महाभारत में वर्णित अश्वनदी यही है। इसके तथा गंगा के संगम पर अश्वतीर्थ स्थित था। वाल्मीकि रामायण 40,21 में संभवतः इसी नदी का उल्लेख है क्योंकि यमुना का अलग से नामोल्लेख भी इसी स्थान पर है—'कालिंदीं यमुनां रम्यां यामुनं च महागिरिं, सरस्वतीं च सिंधुं च शोणं मणिनिभोदकम्'। किंतु कालिंदी को इस स्थान पर यमुना का पर्याय भी माना जा सकता है।

(3) पूर्वबंगाल (पाकि०) तथा पश्चिम बंगाल की सीमा पर बहने वाली नदी।

कालिका

महाभारत में उल्लिखित संभवतः पंजाब की कोई नदी। इसको कौशिकी और अरुणा में मिलने वाली नदी बताया गया है—'कालिका संगमे स्नात्वा कौशिक्यरुणयोर्गतः'—महा० वन० 84,156।

कालीकट (मद्रास)

पूर्वी समुद्रतट पर प्राचीन बंदरगाह। 1498 ई० में पुर्तगालियों के जहाज का कप्तान वास्कोडिगामा पहले पहल इसी नगर में पहुंचा था। किंवदंती है कि कालीकट नाम कोल्लीकौंडे शब्द का रूपान्तर है, जिसका अर्थ है कुक्कुट-दुर्ग। यहां के राजा ने अपने एक सरदार को उतनी दूर तक भूमि जागीर में दी थी जिसमें कुक्कुट का शब्द सुनाई दे सके। इसी भूमि पर जो किला बना उसे कोल्लीकौंडे नाम दिया गया।

कालीगंगा

ज़िला गढ़वाल (उ० प्र०) की एक नदी जिसे मंदाकिनी भी कहते हैं। इसका जल श्यामवर्ण होने के कारण ही इसे कालीगंगा कहते हैं। यह केदारनाथ के पहाड़ों से निकल कर रुद्रप्रयाग में अलकनंदा से मिल जाती है। दे० **मंदाकिनी**।

कालीघाट (बंगाल)

कलकत्ता नाम का आदिरूप कालीघाटा था। यह नाम इस स्थान पर एक प्राचीन काली-मंदिर के होने के कारण पड़ा था। जहां कलकत्ते का समुद्रतट आज स्थित है, वहां प्राचीन काल में ऊंचे-ऊंचे कगार थे जो समुद्र के थपेड़ों से कटकर नष्ट हो गए और एक दलदल के रूप में रह गए। इस कारण गंगा का प्राचीन मार्ग भी बदल गया और इस स्थान पर एक त्रिकोणद्वीप बन गया। कालांतर में इस द्वीप पर काली का एक मंदिर बन गया जो प्रारंभ में आदि-वासियों का पूजास्थान था क्योंकि काली उनकी आराध्य देवी थी। इन्हीं के

द्वारा यह देवी पाशवी देवी के रूप में बहुत दिनों तक सम्मानित रही और बांसों के झुरमुटों से घिरे हुए इस मंदिर में धीवर, मल्लाह और आदिवासी लोग बहुत दिनों तक पूजार्थ आते-जाते रहे। कहा जाता है कि बंगाल के सेन-वंशीय नरेश बल्लालसेन ने कालीक्षेत्र का दान तांत्रिक ब्राह्मण लक्ष्मीकांत को दिया था। तब से लेकर अब तक लक्ष्मीकांत के परिवार के हलदार ब्राह्मण ही काली मंदिर के पुजारी होते चले आए हैं। काली की मूर्ति इन्हीं की बताई जाती है। देवी के रौद्ररूप काली की पूजा इन्हीं तांत्रिकों ने पहली बार द्विजों में प्रचलित की, नहीं तो उनकी आराध्या तो उमा, शिवा, दुर्गा या धात्री थी। तांत्रिकों ने स्वयं काली की मूर्ति का भाव आदिवासियों से ग्रहण किया होगा—यह भी उपर्युक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में संभव जान पड़ता है। कहा जाता है कि 1530 ई० तक सरस्वती और यमुना नामक दो नदियाँ कालीघाट के पास ही समुद्र में गिरती थीं और इस संगम को त्रिवेणी का रूप माना जाता था। कालांतर में ये दोनों नदियां सूख गई किंतु कालीघाट या कालीबाड़ी का तीर्थ-रूप में महत्त्व बढ़ता ही गया। 17वीं शती के अंत और 18वीं के प्रारंभकाल में यह मंदिर इतना प्रसिद्ध था कि वार्ड नामक अंग्रेजी लेखक के अनुसार वर्तमान कलकत्ते की नींव डालने वाले जॉबचार्नाक की भारतीय पत्नी के साथ अनेक अंग्रेज महिलाएं भी काली मंदिर में मनौती मनाने आती थी। वार्ड के उल्लेखानुसार ईस्ट इंडिया कंपनी के अफसरों ने एक बार पांच सहस्र रुपया इस मंदिर में चढ़ाया था। पौराणिक कथा है कि पूर्वजन्म में शिव की पत्नी दक्षपुत्री सती के मृत शरीर के दक्षिण चरण की अंगुलियां यहां कट कर गिरी थीं और वे ही मूर्ति रूप में यहां प्रतिष्ठित हुईं। कालीमंदिर को इसलिए काली-पीठ भी माना जाता है।

काली नदी

(1) केरल की एक नदी जो संभवतः प्राचीन मुरला है। इसके तट पर सदाशिवगढ़ बसा है।

(2) दे० **कालिंदी** (2)।

काली सिंध

चंबल की सहायक नदी जो इसकी दूसरी सहायक नदी सिंधु से भिन्न है। दे० सिंधु।

कालेगांव (महाराष्ट्र)

नवासा से बीस मील उत्तर-पूर्व की ओर एक गांव है जो गोदावरी के तट पर स्थित है। हाल ही में यादवनरेश महादेव के ताम्रपट्ट यहां से कुछ दूर पर

प्राप्त हुए थे। ये विशेष रूप से तैयार किए गए पत्थर के सन्दूक में बंद थे। प्राप्तिस्थान के निकट पत्थर और मिट्टी के बने दो स्तंभ हैं। प्राचीन मूर्तियां भी आसपास बिखरी हुई पाई गई हैं। कालेगांव में एक प्राचीन मंदिर है जो यादवकालीन जान पड़ता है। यहां प्रस्तरयुगीन कुछ उपकरण भी मिले हैं।

कालेश्वर (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

यहां गोदावरी के तट पर स्थित कालेश्वर शिव का प्राचीन मंदिर है। यह उन शिव मंदिरों में है जो त्रिलिंग या तेलंगाना की उत्तरी सीमा निर्धारित करते थे।

कावेरी

दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी। इसका उद्गम कुर्ग में ताल कावेरी या ब्रह्मगिरि नामक स्थान है। कावेरी का शाब्दिक अर्थ हरिद्रा के रंगवाली नदी है (दे० मोनियर विलियम्स : संस्कृत-अंग्रेजी कोश)। रामायण किष्किंधाकांड 41,21,25 में इसका उल्लेख है। महाभारत सभा० 9,20 में कावेरी का इस प्रकार वर्णन है—'गोदावरी कृष्णवेणा कावेरी च सरिद्वरा किंपुना च विशल्या च तथा वैतरणी नदी'। भीष्म० 9,20 में नदियों की विशाल सूची में कावेरी का नाम आया है—'शरावतीं पयोष्णीं चवेणां भीमरथीमपि, कावेरीं चुलुकां चापिवाणीं शतबलामपि'। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में भी कावेरी का नाम नदियों के प्रसंग में है—'चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी···'। कालिदास ने रघु की दिग्विजय यात्रा में कावेरी का शृंगारिक वर्णन इस प्रकार किया है—'स सैन्य परिभोगेन गजदान सुगंधिना, कावेरी सरितां पत्युः शंकनीयामिवाकरोत्' रघु० 4,45। दक्षिण भारत के इतिहास में कावेरी का पल्लवनरेशों की प्रिय नदी के रूप में उल्लेख है। कावेरी पांडिचेरी के दक्षिण में बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

(2) नर्मदा की उपधारा का नाम। मांधाता नामक तीर्थ नर्मदा और कावेरी से घिरे हुए एक द्वीप पर बसा है। कावेरी वास्तव में नर्मदा की एक धारा है जो मांधाता के अंत में पहुंच कर पुनः मुख्य धारा में मिल जाती है।

कावेरीपत्तन (मद्रास)

कावेरी नदी के मुहाने पर बसा हुआ प्राचीन काल का प्रसिद्ध बंदरगाह। कांची के पल्लव नरेशों के शासनकाल में ताम्रलिप्ति के समान ही कावेरीपत्तन भी एक बड़ा व्यापारिक केंद्र था। द्वीपद्वीपांतरों विशेषतः रोम साम्राज्य से भारत आने वाले पोत इस बंदरगाह पर ठहरते थे। गुप्तकाल में यहां के बौद्ध-विहारों में 'महाविहार निकाय' के भिक्षु रहते थे। यह बंदरगाह अब कावेरी के

मुहाने के अंट जाने से विलुप्त हो गया है। दे० **काकंदी**, **पुहार**।

काशी (=वाराणसी, उ० प्र०)

प्राचीन विश्वास के अनुसार काशी अमर नगरी है। विद्वानों का विचार है कि शिवोपासना का यह सर्वप्राचीन केंद्र आर्य सभ्यता के भी पूर्व विद्यमान था क्योंकि शिव (तथा मातृदेवी) की पूजा पूर्ववैदिक काल में भी प्रचलित मानी जाती है किंतु यह प्रश्न पर्याप्त विवादपूर्ण है। पुराणों के अनुसार इस नगरी का नाम संभवतः मनुवंश के सप्तम नरेश 'काश' के नाम पर ही काशी हुआ था। काशीजानपदीयों का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद की पैप्पलाद-संहिता में कोसल तथा विदेह-वासियों के साथ मिलता है। वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा-कांड 40 22 में काशी, कोसल जनपदों का एकत्र उल्लेख—'महींकालमहीं चापि शैलकाननशोभिताम्, ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान् काशिकोसलान्'। इन देशों में सुग्रीव ने वानर-सेना को सीता के अन्वेषणार्थ भेजा था। वायुपुराण 2,21, 74 तथा विष्णु 4,8,2–10 ('काश्यस्य काशेयः काशिराजः'; 'काशिराज गोत्रेऽत्रतीर्य त्वमष्टधा सम्यगायुर्वेदं करिष्यसि···' आदि) में काशी नरेशों की तालिका है। ये भरत के पूर्वज राजाओं के नाम हैं। किंतु इनमें केवल दिवोदास और प्रतार्दन के नाम ही वैदिक साहित्य में प्राप्त हैं। पुरुवंशी नरेशों के पश्चात् काशी में ब्रह्मदत्तवंशीय राजाओं का राज्य हुआ और बौद्ध साहित्य—विशेषकर जातक कथाओं में इस वंश के सभी राजाओं का सामान्य नाम ब्रह्मदत्त मिलता है। ये शायद मूलरूप से मिथिला के विदेहों से संबंधित थे। महाभारत से विदित होता है कि मगधराज जरासंध के समय काशी का राज्य मगध में सम्मिलित था किंतु जरासंध के पश्चात् स्वतन्त्र हो गया था। भीष्म ने काशिराज की कन्याओं, अंबा और अंबालिका का हरण करके विचित्रवीर्य का उनसे विवाह किया था। अनुशासन-पर्व से सूचित होता है कि काशी के राजा दिवोदास ने जो सुदेव का पुत्र था वाराणसी नगरी बसाई थी। इस राज्य का घेरा गंगा के उत्तरी तट से लेकर गोमती के दक्षिण तट तक विस्तृत था। इस वर्णन से जान पड़ता है कि काशी वाराणसी से प्राचीन थी। विष्णुपुराण 5,34,41 में काशी का श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र द्वारा भस्म किए जाने का वर्णन है। मिथ्या वसुदेव पौड्रक को सहायता देने के कारण काशीनरेश से श्रीकृष्ण रुष्ट हो गए थे इसलिए उन्होंने उसे परास्त कर काशी को नष्ट कर देना चाहा था—'शस्त्रास्त्रमोक्षचतुरं दग्ध्वातद्‌बलमौजसा कृत्या गर्भविशेषांतां तदा वाराणसीं पुरीम्'। बुद्ध के समय के पूर्व काशी का राज्य भारत-भर में प्रसिद्ध था और इसकी गणना अंगुत्तरनिकाय के अनुसार तत्कालीन षोडशमहा-

जनपदों में थी। जातक-कथाएं काशीनरेश ब्रह्मदत्त के नाम से भरी पड़ी हैं। काशी के राजकुमारों का तक्षशिला जाकर विद्या पढ़ने का भी उल्लेख जातकों में है। इस समय काशी तथा पार्श्ववर्ती विदेह और कोसल जनपदों में बहुत शत्रुता थी। विदेह की सत्ता को समाप्त करने में काशी का भी बड़ा हाथ था। कई जातककथाओं में काशीनरेशों की महत्वाकांक्षाओं तथा काशीजनपद की महानता का स्पष्ट उल्लेख है। गुहिलजातक में उल्लेख है कि काशी सारे भारतवर्ष में सर्वप्रमुख नगरी थी। इसका विस्तार बारह कोस था जबकि इन्द्रप्रस्थ तथा मिथिला का घेरा केवल सात कोस ही का था। तंडुलनालिजातक में उल्लेख है कि नगर की दीवारों का घेरा बारह कोस और मुख्यनगर तथा उपनगरों का घेरा लगभग तीन सौ कोस था। अन्य जातकों में उल्लेख है कि बनारस के आसपास साठ कोस का जंगल था। काशी के कई नरेशों को जातकों में 'सब्ब राजानम अगराजा' (सर्वराजानाम् अग्रराजा) कहा गया है। महावग्ग में भी उल्लेख है कि प्राचीन काल में काशी राज्य बहुत समृद्धिशाली था। भोजजानीय-जातक में वर्णन हैं कि काशी के वैभव के कारण आसपास के सभी राजाओं का दांत काशी पर रहता था और एक बार तो सात पड़ोसी राजाओं ने काशी को घेर लिया था। बुद्ध के समय, मगध का राजा बिंबिसार बहुत शक्तिशाली हो गया था क्योंकि उसने पड़ोस के विदेह आदि राज्यों को जीत कर मगध में मिला लिया था। उसने कोसल देश के राजा प्रसेनजित् की कन्या वासवी (वासवदत्ता) से विवाह किया और काशी का राज्य जो इस समय कोसल के अंतर्गत था दहेज के रूप में ले लिया। कथाओं में कहा गया है कि काशी को वासवदत्ता की श्रृंगार-प्रसाधन की सामग्री के व्यय के लिए दिया गया था। बौद्ध साहित्य में काशी के, वाराणसी के अतिरिक्त केतुमती, सुरुंधन, सुदस्सन (सुदर्शन), ब्रह्मवद्धन (ब्रह्मवर्धन), पुप्फवती (पुष्पवती), रम्मानगरी (रामानगरी, वर्तमान रामनगर) तथा मौलिनी आदि नाम मिलते हैं। बुद्ध के पश्चात् काशी और निकटवर्ती सारनाथ का गौरव काफी दिनों तक बढ़ा-चढ़ा रहा। मौर्यसम्राट अशोक ने सारनाथ को महत्वपूर्ण समझते हुए यहां अपना जगत्प्रसिद्ध सिंहस्तंभ प्रतिष्ठापित किया (तीसरी शती ई० पू०)। तत्पश्चात् भारत के इतिहास के प्रमुख राजवंशों में से कुषाण, भारशिवनाग, गुप्त, मौखरी, प्रतीहार, चेदि तथा गहड़वारों ने क्रम से यहां राज्य किया। इन सभी के राज्यकाल के सिक्के तथा अन्य पुरातत्वविषयक अवशेष यहां से प्राप्त हुए हैं। सातवीं शती में हर्ष के समय चीनी यात्री युवानच्वांग ने काशी तथा सारनाथ की यात्रा की थी। मुसलमानों के आधिपत्य का उत्तरभारत में विस्तार

होने के साथ ही साथ काशी के बुरे दिन आ गए। 1033 ई० में नियाल्तगीन नामक मुसलमान सेनाध्यक्ष ने सर्वप्रथम बनारस पर आक्रमण करके उसे लूटा। 1194 ई० में बनारस को गुलामवंश के सुलतानों ने अपने राज्य में शामिल कर लिया। 1575 ई० में अकबर के वित्तमंत्री टोडरमल ने विश्वनाथ का एक विशाल मंदिर प्राचीन विश्वनाथ के देवालय के स्थान पर बनवाया। 1659 ई० में धर्मांध औरंगज़ेब ने इस मंदिर को तुड़वाकर इसकी सामग्री से उसी स्थान पर वर्तमान मसजिद बनवायी। तत्पश्चात् मराठों के उत्कर्षकाल में अहल्याबाई-होल्कर ने अनेक घाट और मंदिर गंगा तट पर बनवाए। पंजाब-केसरी रणजीतसिंह ने भी विश्वनाथ के दुबारा बने हुए वर्तमान मंदिर पर सोने का पत्र चढ़वाया। काशी के अनेक घाटों में दशाश्वमेध, मणिकर्णिका, हरिश्चंद्र तथा तुलसी घाट अधिक प्रसिद्ध हैं। इन सब के साथ पौराणिक तथा ऐतिहासिक गाथाएं जुड़ी हुई हैं। अकबर-जहांगीर के समय महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जिस घाट के निकट रहते थे वह तुलसी घाट के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि रामचरितमानस के उत्तरार्ध, किष्किंधा कांड से उत्तरकांड तक, की रचना तुलसीदास ने इसी पुण्य-स्थान पर की थी। काशी का प्रसिद्ध नाम वाराणसी काशी नाम से अपेक्षाकृत नवीन है किंतु इसका भी उल्लेख महाभारत में है—'समेतं पार्थिवं क्षत्रं वाराणस्यां नदीसुतः, कन्यार्थमाह्वयद् वीरो रथेनैकेन संयुगे' शान्ति० 27,9। 'ततो वाराणसीं गत्वार्चयित्वा वृषध्वजम्, कपिलाह्रदे नरः स्नात्वा राजसूयमवाप्नुयात्'—वन० 84,78। पांडवों ने तीर्थ यात्रा के प्रसंग में काशी की यात्रा नहीं की थी किंतु भीम का अपनी दिग्विजय यात्रा में काशिराज सुबाहु पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है—'स काशिराजं समरे सुबाहुमनिवर्तिनं वशे चक्रे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः' वन० 30,6-7।

काशीपुरी (ज़िला मयूरभंज, उड़ीसा)

सुवर्णरेखा नदी के तट पर स्थित यह नगरी बंगाल के सेन राजाओं क प्रारंभिक राजधानी थी (मध्य 11वीं शती ई०)। इसका अभिज्ञान मयूरभंज जिले में स्थित कसियारी नामक स्थान से किया गया है (नगेंद्रनाथ वसु—आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट)। राजधानी का संस्थापक सामंतदेव या उसका पुत्र हेमंतसेन था।

काश्मीर दे० **कश्मीर**

महाभारत आदि कई प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में अधिकतर काश्मीर नाम का प्रयोग है।

काष्ठमंडप दे० **काठमंडू**

कासंद्रा दे० **कश्यपनगर**

कासद्रह (राजस्थान)

आबूरोड स्टेशन से आठ मील उत्तर। यह प्राचीन जैनतीर्थ है जिसका उल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन नामक जैन स्तोत्र में है—'थारापद्रपुरे च वाविहपुरे कासद्रहे चेडरे'।

किंपुरुषवर्ष

पौराणिक भूगोल के अनुसार किंपुरुष, जंबुद्वीप का एक विभाग है—'भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्' विष्णु० 2, 2, 12। इसका नाम जंबुद्वीप के आग्नधि नामक राजा के पुत्र किंपुरुष के नाम पर पड़ा था। 'नाभिः किंपुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः'। किंपुरुष आदि आठ 'वर्षों' के निवासियों को जरा-मृत्यु के भय से रहित माना गया है—'विपर्ययो न तेष्वस्तिजरामृत्यु भयं न च' विष्णु 2, 1, 25। धर्माधर्म, उत्तम, मध्यम, अधम तथा युग व्यवस्था वहाँ नहीं है—'धर्माधर्मो न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः', न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वदा' विष्णु 2, 1, 26। उपर्युक्त 2, 2, 12 के उल्लेख से यह भी इंगित होता है कि किंपुरुषदेश भारत के पार्श्व में ही स्थित माना जाता था। संभवतः यह तिब्बत या नेपाल का प्रदेश होगा जहां किंपुरुष या किन्नरों का निवास था। आज भी हिमाचलप्रदेश में स्थित तिब्बत की सीमा के निकट के इलाके में रहने वाली कुछ जातियां किन्नर कहलाती हैं। ये अनार्य-जातियां आर्यों के रीतिरिवाजों तथा संस्कृति से अनभिज्ञ अवश्य ही रही होंगी। महाभारत सभा० 28, 1 में अर्जुन की किंपुरुषदेश पर विजय का वर्णन है—'स श्वेतपर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान् देशं किं पुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम्'। इसके पश्चात् किंपुरुष देश में स्थित हेमकूट का उल्लेख है—'हेमकूटमथासाद्य न्यविशत् फाल्गुनस्तथा'। विष्णु० 2, 1, 19 में भी हेमकूट का संबंध किंपुरुषों से बताया गया है—'हेमकूटं तथा वर्षं ददौ किंपुरुषाय सः'। महाभारत, सभा० 28, 3 किंपुरुष के हाटक नामक नगर को गुह्यकों या यक्षों द्वारा रक्षित बताया गया है—'तं जित्वा हाटके नाम देशं गुह्य रक्षितम्'। कालिदास ने भी यक्षों की स्थिति मानसरोवर के निकट अलका में मानी है जो निश्चय ही तिब्बत की सीमा के अंतर्गत थी।

किएशिफाली दे० **कोटीश्वर**

कित्तूर (ज़िला बाराबंकी, उ० प्र०)

(1) पूर्वोत्तर रेल के बुढ़वल स्टेशन से प्रायः सात मील पर कित्तूर ग्राम है

जिसका प्राचीन नाम कुंतीनगर बताया जाता है। स्थानीय किंवदंती है कि प्रथम वनवास के समय कुंती के साथ पांडव यहां आकर कुछ दिन रहे थे। यह भी कथा है कि श्रीकृष्ण के परमधाम चले जाने के पश्चात् अर्जुन ने द्वारका से लाकर एक पारिजात वृक्ष यहां लगाया था। पारिजात का एक बड़ा प्राचीन एवं अनोखा वृक्ष यहां अभी तक है।

(2) (मैसूर) प्राचीन पुन्नाड़ की राजधानी कीर्तिपुर का वर्तमान नाम। यह कपिनी (कावेरी की सहायक नदी) के तट पर मैसूर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है।

कित्थीपुर=कीर्तिपुर

किन्नर-देश

तिब्बत और हिमालय प्रदेश के पश्चिमी भागों में इस देश की स्थिति रही होगी। आजकल भी हिमाचलप्रदेश के पहाड़ी इलाकों तथा लाहूल प्रदेश में बसी कुछ जातियां कनौड़िया या किन्नर कहलाती हैं। दे० **किंपुरुषवर्ष, उत्सवसंकेत**। कुबेर, जिसकी राजधानी अलका में थी किन्नरों का अधिपति कहलाता था। अमरकोश (1, 69) में कुबेर को 'किन्नरेश' कहा गया है जिससे सूचित होता है कि किन्नरों का निवास कैलाशपर्वत के परवर्ती प्रदेश में था।

किपिन

चीन के प्राचीन इतिहास-लेखकों ने भारत के इस प्रदेश का कई बार उल्लेख किया है। चीनी इतिहास सीन हानशू (Thien Han Schu) के अनुसार साइवांग या शक नामक जाति यूचियों (यूची=ऋषीक) द्वारा अपने निवासस्थान से निकाल दिए जाने पर दक्षिण में आकर किपिन देश में राज्य करने लगी (दे० जर्नल आफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी 1903, पृ० 22)। सिल्वनलेवी के मत में किपिन कश्मीर ही का चीनी नाम है किंतु स्टेनकोनो के अनुसार कपिश या पूर्वी गंधार को चीनी लेखकों ने किपिन कहा है (दे० एपिग्राफ़िका इंडिका 16, पृ० 291)। चीनी यात्री सुंगसुन ने भी किपिन का उल्लेख किया है। किपिन कुभा (=काबुल) का रूपांतर भी हो सकता है।

किरकी (बंबई)

पूना से तीन मील। 1817 ई० में महाराष्ट्र-नायक पेशवा को अंग्रेज़ों ने इस स्थान पर पराजित करके मराठों की राजशक्ति को सदा के लिए समाप्त कर दिया था।

किरतपुर (ज़िला बिजनौर, उ० प्र०)

यह कस्बा बहलोल लोदी के जमाने (15वीं शती का अंत) का है। नजीबाबाद के नवाब नजीबखां रुहेले की गढ़ी किरतपुर में अब भी है।

किराड़ी (ज़िला बिलासपुर, म० प्र०)

एक काष्ठ-स्तंभ पर उत्कीर्ण गुप्तकालीन अभिलेख के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। इस अभिलेख से तत्कालीन शासन प्रणाली के बारे में अनेक तथ्य ज्ञात होते हैं, जैसे इसमें 'कुलपुत्रक गृहनिर्माणक' नामक के गृहनिर्माण के अधिकारी का उल्लेख है जिससे मध्य प्रदेश में गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था में गृहनिर्माण का एक स्वतंत्र विभाग होना प्रमाणित होता है।

किरात देश

'स किरातैश्च चीनैश्च वृत: प्राग्ज्योतिषोऽभवत् अन्यैश्च बहुभिर्योधै: सागरानूप वासिभि:' महा० सभा० 26-9; 'वंग पुंड्र किरातेषु राजा बलसमन्वित:, पौंड्रको वासुदेवेति योऽसौ लोकेऽभिविश्रुत:' महा० सभा० 14,20; 'पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवना: स्थिता' विष्णु० 2,3,8। उपर्युक्त उद्धरणों से किरात देश की स्थिति पूर्व बंगाल या आसाम के जंगली और पहाड़ी भागों में सिद्ध होती है। सभा० 14,20 में किरात देश को वासुदेव पौंड्रक के अधीन बताया गया है। किरात का संभवत: सर्वप्रथम निर्देश अथर्ववेद में है जिससे यह सूचना मिलती है कि इस जाति का निवास हिमालय के (पूर्वी क्षेत्र) की उपत्यकाओं में था।

किष्किधा (होस्पेटतालुका, मैसूर)

होसपेट स्टेशन से ढाई मील की दूरी पर और बिलारी से 60 मील उत्तर की ओर रामायण में प्रसिद्ध, वानरों की राजधानी, किष्किधा स्थित है। होस्पेट स्टेशन से दो मील पर अंजनी (हनुमान् की माता) के नाम से एक पर्वत है और इसके कुछ ही दूर पर ऋष्यमूक स्थित है जिसे घेर कर तुंगभद्रा बहती है। नदी के दूसरी ओर हंपी—16वीं शती ई० के ऐश्वर्यशाली नगर विजयनगर के विस्तृत खंडहर हैं। रामायण के अनुसार किष्किधा में बाली और तदुपरांत सुग्रीव ने राज्य किया था। श्रीरामचंद्र जी ने बाली को मारकर सुग्रीव का अभिषेक लक्ष्मण द्वारा इसी नगरी में करवाया था। तदुपरांत माल्यवान् तथा प्रस्त्रवणगिरि पर जो किष्किधा मे विरूपाक्ष के मंदिर से चार मील दूर है, उन्होंने प्रथम वर्षाऋतु बिताई थी—'तथा स वालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च, वसन् माल्यवत: पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत्' वाल्मीकि० किष्किधा 27,1. 'एतद् गिरेर्माल्यवत: पुरस्तादाविर्भवत्यम्बर लेखिश्रृंगम्, नवं पयो यत्र घनैर्मया

च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम्' रघु० 13,26. माल्यवान्-पर्वत के ही एक भाग का नाम प्रवर्षण (या प्रस्रवण) गिरि है। इसी स्थान पर श्रीराम ने वर्षा के चार मास व्यतीत किए थे—'अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्, आजगाम सहभ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम्' वाल्मीकि० किष्किंधा 27,1। पास ही स्फटिक शिला है जहां अनेक मंदिर हैं। ऋष्यमूक-पर्वत तथा तुंगभद्रा के घेरे को चक्रतीर्थ कहते हैं। चक्रतीर्थ के उत्तर में ऋष्यमूक और दक्षिण में श्री रामचंद्र जी का मंदिर है। मंदिर के पास ही सूर्य, सुग्रीव आदि की मूर्तियाँ हैं। विरूपाक्ष मंदिर से प्रायः दो मील पर तुंगभद्रा नदी के वामतट पर एक ग्राम अनेगुंडी है जिसका अभिज्ञान किष्किंधानगरी से किया गया है। इस परम ऐश्वर्यशालिनी नगरी का वर्णन वाल्मीकि रामायण में पर्याप्त विस्तार से है। इसका एक अंश इस प्रकार है—'स तां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमान् पुष्पितकाननां, रम्यां रत्न-समाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम्। हर्म्यप्रासादसंबाधां नानारत्नोपशोभिताम्, सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितै रुपशोभिताम्। देवगंधर्वपुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः, दिव्यमाल्याम्बरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः। चन्दनागरुपद्मानां गंधैः सुरभिगंधितां, मैरेयाणां मधूनां च सम्मोदितमहापथां। विंध्यमेरु गिरिप्रख्यैः प्रासादैर्नैकभूमिभिः, ददर्श गिरिनद्यश्च विमलास्तत्र राघवः' किष्किंधा० 33,4-8. अर्थात् लक्ष्मण ने उस विशाल गुहा को देखा जो रत्नों से भरी थी और अलौकिक दीख पड़ती थी, और जिसके बनों में खूब फूल खिले हुए थे, हर्म्य प्रासादों से सघन, विविध रत्नों से शोभित और सदाबहार वृक्षों से वह नगरी सम्पन्न थी। दिव्यमाला और वस्त्र धारण करने वाले सुंदर देवताओं, गधर्व पुत्रों और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानरों से वह नगरी बड़ी भली दीख पड़ती थी। चंदन, अगरु और कमल की गंध से वह गुहा सुवासित थी। मैरेय और मधु से वहां की चौड़ी सड़कें सुगंधित थीं। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि किष्किंधा पर्वत की एक विशाल गुहा या दरी के भीतर बसी हुई थी जिससे यह पूर्णरूपेण सुरक्षित थी। किष्किंधा० 14,6 के अनुसार ('प्राप्तास्मध्वजयंत्राढ्यां किष्किंधांवालिनः पुरीम्') इस नगरी में सुरक्षार्थ यंत्र आदि भी लगे थे।

किष्किंधा से प्रायः एक मील पश्चिम में पंपासर नामक ताल है जिसके तट पर राम-लक्ष्मण कुछ समय तक ठहरे थे। पास ही स्थित सुरोवन नामक स्थान को शबरी का आश्रम माना जाता है। महाभारत सभा० 31,17 में भी किष्किंधा का उल्लेख है—'तं जित्वास महाबाहुः प्रययौ दक्षिणापथम्, गुहामासादयामास किष्किधां लोकविश्रुतम्'। यहां भी किष्किंधा को पर्वत-गुहा

में स्थित कहा गया है और वहां वानरराज मैन्द और द्विविद का निवास बताया गया है। ऋष्यमूक का श्रीमद्भागवत में भी उल्लेख है— 'सह्यो देवगिरि-ऋंष्यमूक: श्री शैलो वेंकटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्य:' श्रीमद्भागवत 5, 19, 16 (दे० **अनेगुंडी, कुंकुनपुर, ऋष्यमूक, माल्यवान्, पंपासर**)।

किष्किंधापुर (ज़िला गोरखपुर, उ० प्र०)

वर्तमान खखूंदो। प्राचीन जैन तीर्थ जिसका संबंध पुष्पदंतस्वामी से बताया जाता है।

किसोरा (ज़िला कानपुर, म० प्र०)

13वीं शती में, वर्तमान कानपुर के निकट एक छोटा सा हिंदू राज्य था। दिल्ली के सुल्तान कुतुबुद्दीन एबक के समय में यहां के शासक सज्जनसिंह थे। इनकी पुत्री सुंदरी ताजकुंवरि, एबक के सैनिकों से जो उसे पकड़ कर सुल्तान के पास ले जाना चाहते थे, वीरतापूर्वक लड़ती हुई स्वयं अपने हाथों ही मर-कर अमर हो गई। उसकी वीरगाथा के गीत आज तक किसोरा के आसपास गूंजते हैं।

क्विलन (केरल)

प्राचीन नाम कोलम। यह प्राचीन नगर और बंदरगाह है। यह पुराने ज़माने में दक्षिण भारत के इस क्षेत्र और समुद्रपार के पश्चिमी देशों के बीच होने वाले व्यापार का प्रमुख केंद्र था।

कीकट

गया (बिहार) का परिवर्ती प्रदेश। पुराणों के अनुसार बुद्धावतार कीकट देश में ही हुआ था। कीकट का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में है—'किंते कृण्वंति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति घर्मं आनोभरप्रमगंदस्य वेदो नैचाशाखं मधवन्रन्धयान:' 3, 53, 14। इस उद्धरण में कीकट के शासक प्रमगंद का उल्लेख है। यास्क के अनुसार (निरुक्त 6, 32) कीकट अनार्य देश था। पुराण-काल में कीकट मगध ही का एक नाम था तथा इसे सामान्यत: अपवित्र समझा जाता था; केवल गया और राजगृह तीर्थरूप में पूजित थे—'कीकटेपु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम्' वायुपुराण 108, 73। वृहद्धर्मपुराण में भी कीकट को अनिष्ट देश माना गया है किंतु कर्णदा और गया को अपवाद कहा गया है— 'तत्र देशे गया नाम पुण्यदेशोस्ति विश्रुत:, नदी च कर्णदा नाम पितृणां स्वर्गदायिनी' 26, 47। श्रीमद्भागवत में कतिपय अपवित्र अथवा अनार्य लोगों के देशों में कीकट या मगध की गणना की गई है। महाभारतकाल में भी ऐसी ही मान्यता थी। पांडवों की तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में वर्णन है कि वे जब मगध की

सीमा के अंदर प्रवेश करने जा रहे थे तो उनके सहयात्री ब्राह्मण वहां से लौट आए। संभव है कि इस मान्यता का आधार वैदिक सभ्यता का मगध या पूर्वोत्तर-भारत में देर से पहुंचना हो। अथर्ववेद 5, 22, 14 से भी अंग और मगध का वैदिक सभ्यता के प्रसार के बाहर होना सिद्ध होता है। पुराणकाल में शायद बौद्ध धर्म का केंद्र होने के कारण ही मगध को अपुण्य देश समझा जाता था।

कोटगिरि

विनय 2, 170–175 में वर्णित स्थान जिसका अभिज्ञान केराकत (ज़िला जौनपुर, उ० प्र०) से किया गया है।

कौर

वर्तमान कांगड़ा (पूर्व पंजाब) के आसपास का प्रदेश। कलचुरिनरेश कर्णदेव (1041–1073 ई०) ने इस देश को जीता था जैसा कि अल्हणदेवी के अभिलेख से ज्ञात होता है—'कीरः कीरवदासपंजरगृहे हूणः प्रहर्षं जहौ' (एपिग्राफ़िका इंडिया, जिल्द 2, पृ० 11) अर्थात् कर्ण के प्रताप के सामने कीर, पंजरगत शुक के समान हो गए तथा हूणों (या हूण नरेश) का सारा सुख समाप्त हो गया।

कीर्तिनाशा

पद्मा (गंगा) का एक नाम। राजनगर जिला फ़रीदपुर—बंगाल में स्थित राजा राजवल्लभ के प्राचीन भवनों और स्मारकों को बहा ले जाने के कारण इसका यह नाम पड़ गया है।

कीर्तिपुर (मैसूर)

कपिनी के तट पर बसा हुआ नगर (वर्तमान कितूर) जहां प्राचीन (पांचवी-दसवीं शती ई०) पुन्नाडू देश की राजधानी थी। इसका प्राकृतनाम कित्थीपुर है; दे० **पुन्नाडू**।

कुंकनपुर

चीनी यात्री युवानच्वांग के यात्रावृत्त में वर्णित दक्षिण भारत का नगर। चीनी उच्चारण में इसे 'कोंगकीनयापुले' लिखा गया है। कुछ विद्वानों के मत में कुंकुनपुर वर्तमान अनेगुंडी (मैसूर) है जहां रामायण-काल में सुग्रीव की नगरी किष्किंधा बसी हुई थी। यदि यह अभिज्ञान ठीक है तो किष्किंधापुर का ही रूपांतर कुंकुनपुर को माना जा सकता है। अनेगुंदी के निकट हंपी नामक स्थान पर मध्यकाल का प्रसिद्ध शहर विजयनगर बसा हुआ था।

कुंग

मद्रास राज्य में स्थित नीलगिरि के उत्तर का भाग जिसमें आजकल

सालेम और कोयमबटूर ज़िले शामिल हैं। इस राज्य को मध्यप्रदेश के कलचुरि-वंश के राजा कर्णदेव (1041–1073 ई०) ने जीता था—जैसा कि अल्हणदेवी के अभिलेख से सूचित होता है—'पांड्य: चंडिमतां मुमोच मुरलस्तत्याज गर्वग्रहं, कुंग: सद्गतिमाजगाम चकपे वंग: कलिंगै: सह'— (एपिग्राफ़िका इंडिया जिल्द 2, पृ० 11)।

कुंडधानी

कन्नौजाधिप महाराज हर्ष (606-647 ई०) के मधुबन-अभिलेख से ज्ञात होता है कि उनके शासनकाल में कुंडधानी नामक विषय श्रावस्ती जनपद के अंतर्गत था। इसी विषय में सोमकुंदका ग्राम स्थित था जिसका संबंध इस अभिलेख से है।

कुंडलपुर (म० प्र०)

(1) दमोह से 22 मील कुंडलाकार पर्वत शिखर पर तथा नीचे 59 जैन मंदिर स्थित हैं। पर्वत के ऊपर एक मंदिर में महावीर की विशाल शैलकृत्त मूर्ति है। कहा जाता है कि इस मंदिर का जीर्णोद्धार महाराज छत्रसाल ने 17वीं शती में करवाया था।

(2) दे० **कुंडिन**।

कुंडलवन

कनिष्क के समय में (लगभग 120 ई०) तीसरी धर्म-संगीति (बौद्ध सम्मेलन) इस स्थान पर हुई थी। यह बौद्ध-विहार कश्मीर में संभवत: श्रीनगर के निकट ही था। इस सम्मेलन का प्रधान वसुमित्र और उपप्रधान पाटलिपुत्र-निवासी 'बुद्ध चरित' का ख्यातनामा लेखक अश्वघोष था। इसके 500 सदस्य थे। इस सम्मेलन के पश्चात् महाविभाषा नामक ग्रंथ संगृहीत किया गया था। अब यह ग्रंथ केवल चीनी भाषा में ही प्राप्त है। तिब्बती लेखक तारानाथ लिखता है कि कुंडलवन की स्थिति कुछ लोग कश्मीर में तथा अन्यलोग जालंधर के निकट कुवन में मानते हैं। वर्तमान अन्वेषणों के आधार पर प्रथम मत ही ग्राह्य जान पड़ता है। कुछ विद्वानों के मत में तृतीय धर्म-संगीति पुरुषपुर या पेशावर में हुई थी।

कुंडागल (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

यहां के प्राचीन मंदिर में जो अब प्राय: खंडहर हो गया है काले पत्थर के एक कलापूर्ण स्तंभ पर सुंदर मूर्तिकारी अंकित है। मंदिर मूलरूप में विशालकाय-प्रस्तरखंडों को जोड़ कर बनाया गया था।

कुंडिन=**कुंडिनपुर**=**कौंडिन्यपुर** (चांदूर तालुका, ज़िला अमरावती,

महाराष्ट्र)

यह उत्तर-वैदिक तथा महाभारत के समय का नगर है। बृहदारण्यकोपनिषद् में विदर्भी कौंडिन्य नामक एक ऋषि का उल्लेख है। कौंडिन्य, कुंडिन-निवासी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में विदर्भ देश के राजा भीम का उल्लेख है जिसकी राजधानी कुंडिनपुर में ही थी—'स भीमवचनाद् राजा कुंडिन प्राविशत् पुरम्, नादयन् रथघोषेण सर्वाः स विदिशोदिशः' महा० वन० 73,2 (नलोपाख्यान)। रुक्मिणी विदर्भराज की कन्या थी और कुंडिनपुर से ही कृष्ण उसे उसकी प्रणययाचना के परिणामस्वरूप अपने साथ द्वारका ले गए थे—'आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः, आनर्तादिक-रात्रेण विदर्भानगमद्धयैः' श्रीमद्भागवत् 10,53,6. अर्थात् रथ में चढ़ कर श्रीकृष्ण तेज़ घोड़ों के द्वारा आनर्त (द्वारका) से विदर्भ देश एक ही रात में जा पहुँचे। 'राजा स कुंडिनपतिः पुत्र-स्नेह वशंगतः शिशुपालाय स्वांकन्यां दास्यन् कर्माण्यकारयत्' श्रीमद्भागवत् 10,53,7 अर्थात् कुंडिनपति भीम ने अपने पुत्र रुक्मि के प्रेम के वश में होने के कारण उसके कहने के अनुसार रुक्मिणी के शिशुपाल के साथ विवाह की तैयारियां कर ली थीं। आगे (10,53,21) भी कुंडिन का उल्लेख है। कालिदास ने रघुवंश, सर्ग 6 में इंदुमती के स्वयंवर का विदर्भ देश की राजधानी कुंडिन ही में होना बताया है। इंदुमती को कालिदास ने विदर्भराज भोज की बहन और विदर्भ-राज को कुंडिनेश कहा है—'तिस्त्रस्त्रिलोकप्रथितेन सार्धमजेन मार्गे वसतीरुषित्वा तस्मादपावर्तत कुंडिनेशः पर्वात्यये सोमइवोष्ण रश्मेः' रघुवंश 7,33. अर्थात् कुंडिनेश भोज, इंदुमती के विवाह के पश्चात् अपने देश को लौटते हुए त्रिलोक-प्रसिद्ध राजकुमार अज के साथ मार्ग में तीन रात्रि बिता कर अपनी राजधानी—कुंडिनपुर—लौट आए जैसे अमावस्या के पश्चात् चंद्रमा सूर्य के पास से लौट आता है। कुंडिनपुर वर्धा नदी के तट पर स्थित है (दे० अमरावती का गज़ेटियर, जिल्द ए०, पृ० ४०६)। इसका वर्तमान नाम कुंडलपुर है। यह स्थान आर्वी (महाराष्ट्र) से छः मील दूर है। कुंडलपुर के पास ही भगवती अंबिका का प्राचीन मंदिर एक टीले पर अवस्थित है। किंवदंती है कि यह मंदिर उसी प्राचीन मंदिर के स्थान पर है जहां से देवी रुक्मिणी श्रीकृष्ण के साथ छिप कर चली गई थीं। इस स्थान को जो वर्धा—प्राचीन वरदा—के तट पर स्थित है आज भी तीर्थरूप में मान्यताप्राप्त है। नगर के बाहर प्राचीन दुर्ग के ध्वंसावशेष हैं जिनमें अनेक मंदिरों के खंडहर भी अवस्थित हैं। दशावतार की एक प्रतिमा पर विक्रम-संवत् 1496 (1439 ई०) का एक लेख है जिससे ज्ञात होता है कि इस मूर्ति का निर्माण किसी व्यापारी ने विधापुर में करवाया था। कौंडिन्यपुर में

और भी अनेक मूर्तियां, विशेषकर कृष्णलीला से संबंधित, प्राप्त हुई हैं। इनकी आकृतियां तथा वेशभूषा की शैली अधिकांश में महाराष्ट्रीय है। रुक्मिणी के पिता भीष्मक के समय ही में भोजकट नामक एक नया नगर कुंडिनपुर के निकट ही बस गया था। दे० **भोजकट**।

कुंडीविष

द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः, पिशाचादारदाश्चैवपुंड्राः कुंडीविषैः सह' महा० भीष्म०, 50,51. कुंडीविष का उल्लेख यहां पुंड्रों तथा कुछ अनार्य जातियों के साथ है जिससे इन लोगों के प्रदेश की स्थिति पूर्वी बंगाल या असम के किसी भूभाग में समझनी चाहिए। कुंडीविष के निवासी पांडवों की ओर से महाभारत के युद्ध में लड़े थे।

कुंडेश्वर (जिला टीकमगढ़, म० प्र०)

टीकमगढ़ से चार मील दूर है। यहां जमडार नदी बहती है जिसमें एक अगाध कुंड है। नदी तट पर कुंडेश्वर शिव का प्राचीन मंदिर है। कहा जाता है कि इस स्थान का नामकरण 15वीं शती के भक्तिसंप्रदाय के प्रसिद्ध संत वल्लभाचार्य ने किया था।

कुंत=कुंतल

कनारा या करहाड़ देश का नाम जिसका प्राचीन साहित्य में पर्याप्त वर्णन मिलता है। 7वीं शती के पूर्वार्ध में हर्ष को पराजित करने वाले चालुक्य नरेश पुलकेशिन् के राज्य में कुंत या कुंतलदेश सम्मिलित था। एक परिभाषा के अनुसार कुंतल देश उत्तर में नर्मदा से लेकर दक्षिण में तुंगभद्रा तक विस्तृत था। पश्चिम में इसकी सीमा अरब सागर तक और उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व में गोदावरी तक थी। महाभारत में कुंतल का उल्लेख है। 'शृंगार प्रकाशिका' के लेखक भोज के वर्णन के अनुसार विक्रमादित्य ने महाकवि कालिदास को कुंतल-नरेश के यहां दूत बना कर भेजा था। 'औचित्य-विचार-चर्चा' में क्षेमेंद्र ने भी कालिदास के कुंतेश्वर-दौत्य का उल्लेख किया है। कई अभिलेखों से सूचित होता है कि गुप्त-सम्राटों ने कुंतल-देश से निकट संबंध स्थापित किया था। तालगुंड अभिलेखों में वैजयती (कुंतल की राजधानी) के कदंबराज द्वारा अपनी कन्याओं का गुप्त राजाओं तथा अन्य नरेशों के साथ विवाह कराने का उल्लेख है। प्रसिद्ध कवि राजशेखर ने कन्नौजाधिप महीपाल (नवीं शती ई०) द्वारा विजित देशों में कुंतल की गणना की है। विंसेंट स्मिथ (अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० 156) के अनुसार कुतल देश वेदवती और भीमा नदियों के बीच में स्थित था।

कुंतलपुरी दे० **कांतिपुरी**

कुंतला (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

इस स्थान से नवपाषाणयुगीन पत्थर के हथियार और उपकरण प्राप्त हुए हैं।

कुंतिनगर दे० **कित्तूर**

कुंतिपद

(1) 'नरराष्ट्रं च निर्जित्य कुंतिभोजमुपाद्रवत्' महा सभा० 31,6। सहदेव ने अपनी दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में कुंतिभोज या कुंतिपद नामक जनपद को विजित किया था। इसका अभिज्ञान ग्वालियर (म० प्र०) के निकट कोतवार के प्रदेश से किया गया है। सभा० 31,7 में चर्मण्वती या चंबल का उल्लेख होने से यह अभिज्ञान ठीक जान पड़ता है। कुंतिपद का रूपांतरित नाम कांतिपुरी भी प्रचलित है। पाँडवों की माता कुंती इसी प्रदेश के राजा की पुत्री थी। इसका नाम कुंतिभोज था। नवजात शिशु कर्ण को उसकी कुमारी माता कुंती ने अश्व नदी में बहा दिया था (वन० 308, 25-26; दे० अश्व)। अश्वनदी का चंबल की सहायक नदी के रूप में वर्णन है और इस प्रकार कुंतिपद की स्थिति ग्वालियर प्रदेश के निकट ही प्रमाणित होती है।

कुंतिभोज (दे० कुंतिपद)

महाभारत सभा० 31,6 में उल्लिखित कुंतिभोज को कुंतिपद नामक जनपद या इस जनपद के राजा (कुंती के पिता) दोनों ही का नाम माना जा सकता है। कुंतिपद, चंबल या चर्मण्वती के दक्षिण की ओर बसा था। इसे आजकल कोतवार या कुतवार कहा जाता है।

कुंतीविहार=नासिक

कुंथलगिरि (महाराष्ट्र)

वार्सी से 22 मील दूर प्राचीन जैन-तीर्थ है। जैनग्रंथ निर्वाण-कांड में निम्न गाथा है—'वंसस्थ लवणणियरे पच्छिम भायंभि कुंथुगिरिसिहरे। कुलदेश भूषण मुणीणिव्बाणगयाणमो तेसिं।' पहाड़ी पर मूलनायक का विशाल मंदिर है जिसमें आदिनाथ की प्राचीन प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

कुंदग्राम=कुंडग्राम

जैन तीर्थंकर महावीर का जन्मस्थान। ये गौतम बुद्ध के समकालीन थे। कुंदग्राम बैसाली (=बसाढ़, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार) का एक उपनगर था। महावीर ज्ञात्रिक गोत्र में उत्पन्न हुए थे। इनकी माता का नाम त्रिशला और पिता का सिद्धार्थ था। महावीर का जन्म 599 ई० पू० में हुआ था (दे० **विशाला**,

वैशाली)। वैशाली के कई अन्य उपनगरों का नाम पाली साहित्य में मिलता है जैसे कोल्लाग, नादिक, वाणियगाम, हत्थीगाम—आदि।

कुंदुज

कुंदुज निवासियों को महाभारत, सभा० 52 में कुंदमान कहा गया है। यह देश संभवत: जैसा कि प्रसंग से इंगित होता है, अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा पर रहा होगा (दे० डा० मोतीचंद्र : उपायन पर्व—ए स्टडी)।

कुंभकोणम् (मद्रास)

मायावरम् से बीस मील दूर स्थित प्राचीन विष्णु-तीर्थ है। शुद्ध नाम कुंभ-घोण है जिसके विषय में एक पौराणिक अनुश्रुति है—'कुंभस्य घोणतो यस्मिन सुधापूरं विनिस्सृतम्, तस्मात्तत्प्रदं लोके कुंभघोणं वदंति ह'। यह स्थान कावेरी-नदी के निकट है और द्रविड़ शैली में निर्मित 17वीं शती के मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। यहां का पुण्यस्थल महामाध्य सरोवर है।

कुंभलगढ़ (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

प्राचीन नगर के खंडहर कुंभलगढ़ स्टेशन के समीप एक 3568 फुट ऊंची पहाड़ी पर स्थित हैं। इसे मेवाड़पति राणा कुंभा (1433–1468 ई०) ने बसाया था और उनके नाम से ही यह नगर प्रसिद्ध हुआ। बालक उदयसिंह को जिसके प्राणों की रक्षा पन्ना धाई ने अपने पुत्र का बलिदान देकर की थी—चित्तौड़ से यहाँ लाया गया था। यहीं से चंडावत सरदारों की सहायता से उदयसिंह ने हत्यारे बनवीर को हराया था और उन्हें चित्तौड़ की गद्दी पुन: प्राप्त हुई थी। जिस समय चित्तौड़ पर अकबर ने आक्रमण किया (1567 ई०) तो उदयसिंह को भाग कर पुन: कुंभलमेर में शरण लेनी पड़ी। 1571 ई० तक उन्होंने अपनी राजधानी यहीं रक्खी (दे० ओझा—राजपूताने का इतिहास, पृ० 733)। हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् राणाप्रताप ने भी अपनी राजधानी कुछ समय तक यहीं रक्खी थी किंतु राजा मानसिंह के कुंभलगढ़ पर आक्र-मण करने के पश्चात् प्रताप को यहां से भी चला जाना पड़ा था। कुंभलगढ़ को कमलमीर भी कहा जाता है (दे० **कमलमीर**)।

कुंभवती

सरभंग-जातक में दंडकी या दंडकवन की राजधानी कुंभवती बताई गई है (दे० **दंडक**)।

कुंभा=**कुभा** (काबुल नदी)

कुंभी

पंचगंगा (महाराष्ट्र) की एक धारा का नाम। दे० पंचगंगा।

कुकर्रा (ज़िला मंडला, म० प्र०)

आठवीं या नवीं शती ई० में निर्मित एक जैन मंदिर यहां का उल्लेखनीय स्मारक है।

कुकुभ

उड़ीसा का एक पहाड़ (देवी भागवत 8,11)

कुकुर=कुक्कुर=कौकुर

प्राचीन साहित्य तथा अभिलेखों में कुकुर-निवासियों और कुकुरदेश का अनेक बार उल्लेख आया है—'शौण्डिकाः कुकुराश्चैव शकाश्चैव विशाम्पते, अंगा-वंगाश्च पुंड्राश्च शाणवत्यागयास्तथा'—महा० सभा० 52,16 तथा 'जठराः कुक्कुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत' महा० भीष्म० 9,42; 'यादवाः कुकुरा भोजाः सर्वे चांधकवृष्णयः' शान्ति० 81,29। रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख (द्वितीय शती ई०) में इस प्रदेश की गणना रुद्रदामन् द्वारा जीते गए प्रदेशों में की गई है—'स्ववीर्यार्जितानामनुरक्तप्रकृतीनां सुराष्ट्रश्वभ्रभरुकच्छ···सिंधुसौवीरकुकु-रापरांत निषादादीनाम्···' इस प्रदेश को गौतमीबलश्री के नासिक अभिलेख (द्वितीय शती ई०) में उसके पुत्र शातवाहन गौतमीपुत्र के राज्य में सम्मिलित बताया गया है। वाराहमिहिर की बृहत्संहिता 14,4 में भी कुकरदेश का उल्लेख है। प्राप्तसाक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि संभवतः कुकुर लोग शकों से संबंधित थे तथा उनकी गणना अनार्यजातियों में की जाती थी। (बारहवीं शती में सिंध और पश्चिमी पंजाब में खोकर या घक्कर नामक एक जाति का निवास था। इन्होंने मु० गौरी का जब वह भारत से गजनी लौट रहा था, वध कर दिया था। संभव है खोखर और कुकुर एक ही हों।) प्राचीन काल में कुकर देश की स्थिति पारियात्र या विंध्याचल के पश्चिमी भाग तथा राजस्थान या गुजरात के पूर्वी भाग में रही होगी। रुद्रदामन् के समय कुकुर शायद सिंध और अपरांत देश के बीच में बसे हुए थे।

कुकुस्था

यह महापरिनिब्बान सुत्त में उल्लिखित ककौथा या ककुट्टा है। पावा से कुशीनगर जाते समय बुद्ध ने इस नदी को पार किया था। कनिंघम के अनु-सार कसिया से आठ मील दूर बढ़ी नदी ही कुकुस्था है। यह छोटी गंडक में मिलती है।

कुक्कुटपादगिरि दे० **गुरुपादगिरि**

कुक्कुटाराम

महावंश 5,122। पाटलिपुत्र में स्थित एक विहार जो संभवतः वर्तमान

रानीपुर (पटना) के पूर्व की ओर स्थित टीले के स्थान पर था। बौद्ध साहित्य के अनुसार मौर्य सम्राट् अशोक ने इसी विहार में द्वितीय बौद्ध धर्म संगीति का सम्मेलन किया था।

कुटिका

वाल्मीकि रामायण अयोध्या० 71,15 में वर्णित एक नदी जिसे भरत ने केकय देश से अयोध्या आते समय सर्वतीर्थ के पूर्व की ओर चलकर हाथी पर सवार होकर पार किया था। इससे जान पड़ता है कि नदी काफी गहरी थी—'हस्तिपृष्ठमासाद्य कुटिकामभ्यवर्तत, ततार च नरव्याघ्रो लोहित्ये च कपीवतीम्'।

कुटिकोष्टिका

वाल्मीकि० अयोध्या 71,10 में उल्लिखित नदी जो गंगा के पूर्व में थी—'स गंगां प्राग्वटे तीर्त्वा समयात्कुटिकोष्टिकाम्'।

कुटिला=कुटिका

कुटी

(1) बुद्ध चरित 22,13 के अनुसार पाटलिपुत्र के पास एक ग्राम जो गंगा के दूसरी ओर था। अंतिम बार पाटलिपुत्र से लौटते समय बुद्ध इस ग्राम में आए थे और यहाँ उन्होंने प्रवचन किया था।

(2) प्राचीन कंबुज देश (कंबोडिया—दक्षिण-पूर्व एशिया) का एक नगर जहां नवीं शती के हिन्दू राजा जयवर्मन् द्वितीय की राजधानी कुछ समय तक रही थी। इसकी स्थिति अंगकोरथोम के पूर्व में बांटेकिडी के निकट थी।

कुड्थाल दे० कुशस्थल

कुडली (मैसूर)

बिरूर-तालगुप्प रेलमार्ग पर शिमोगा से दस मील ईशानकोण में यह ग्राम स्थित है। यहां तुंग और भद्रा नदियों का संगम है। नदी की संयुक्त धारा तुंगभद्रा कहलाती है। संगम पर कई प्राचीन मंदिर हैं। यहां शंकराचार्य का स्थान भी है।

कुडाल (महाराष्ट्र)

सावंतवाड़ी से 13 मील उत्तर की ओर काली नदी के तट पर स्थित है। इस स्थान पर 1663 ई० में महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी तथा बीजापुर के सुलतान आदिलशाह की सेना में, जिसका नायक खवासखां था, घोर युद्ध हुआ था। खवासखां हार कर लौट गया। शिवाजी के समकालीन कविवर भूषण ने 'उमड़ि कुडाल में खवासखान आए भनि भूषण त्यों धाए शिवराज पूरे मन के'

(शिवराज भूषण, छन्द 330)—इस छंद में इस घटना का वर्णन किया है। इस लड़ाई के पश्चात् बीजापुर के सहायक तथा कुडाल के जागीरदार लक्ष्मण सावंत देसाई को भी शिवाजी ने परास्त कर भगा दिया और कुडाल पर उनका पूर्ण अधिकार हो गया।

कुडुमियामलाई (मद्रास)

यह स्थान अनेक प्राचीन मंदिरों के लिए उल्लेखनीय है। कई मंदिरों में सागौन के किवाड़ हैं। अम्मन नामक मंदिर के जीर्णोद्धार का प्रयत्न 1955-56 में भारतीय पुरातत्वविभाग द्वारा किया गया था।

कुणाल

जातकों (5,419) में उल्लिखित मध्यप्रदेश में स्थित एक सरोवर।

कुणिंद

'आनर्तान् कालकूटांश्च कुणिन्दांश्च विजित्य सः सुमंडलं च विजितं कृतवान् सह सैनिकम्'—महा० सभा० 26,4। कुणिंदों के गणराज्य के कुछ सिक्के, देहरादून से जगाधरी तक के क्षेत्र में यमुना के उत्तर-पश्चिम की ओर पाए गए हैं। संभवतः महाभारत में वर्णित कुणिंद-जनपद की स्थिति इसी प्रदेश में थी। कुणिंद का पाठांतर कुविंद और कुलिंद भी है। दे० **कुलिंद**।

कुताग्र दे० **वैशाली**

कुदवा दे० **अनोमा**

कुनंडर कोइल (मद्रास)

प्राचीन शैलकृत शिव मंदिर के लिए प्रख्यात है। मूर्ति नटराज के रूप में शिव की है।

कुनावरम् (ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

भद्राचलम् के निकट यह स्थान 14वीं शती में बहमनी राज्य के विघटन के पश्चात् पूर्वी आंध्र राज्य की राजधानी रहा था। 1335–36 ई० के शीघ्र ही पश्चात् प्रोलयनायक ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर इस स्थान को अपनी राजधानी बनाया था। यह नगर गोदावरी के तट पर बसा हुआ था। प्रोलयनायक की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी के न होने के कारण वारंगल-नरेश कपयनायक ने उसकी रियासत को तिलंगाना में मिला लिया।

कुबट्टूर (मैसूर)

चालुक्य-शैली में निर्मित चालुक्यकालीन मंदिर के कारण यह स्थान उल्लेखनीय है।

कुब्जा (म० प्र०)

नर्मदा की सहायक नदी। इसका संगम नर्मदा के दक्षिण तट पर रामघाट या प्राचीन बिल्वाम्रक नामक स्थान (माछा) के पास है। किंवदंती है कि बिल्वाम्रक में राजा रंतिदेव ने एक महायज्ञ किया था।

कुब्जाम्रक

कूर्मपुराण, उपरि० 34, 34 के अनुसार कनखल।

कुभा

अफगानिस्तान का वैदिक नाम—'त्वं सिंधो कुभयागोमतीं क्रमुं मेहत्न्या सरथंयाभिरीयसे'—ऋग्वेद, 10,75–76 (नदी-सूक्त)। कुभा में उत्तर की ओर सुवास्तु (=स्वात) तथा दक्षिण की ओर क्रमु (=कुरम) और गोमती (=गोमल) मिलती है। काबुल नगर काबुल या कुभा के तट पर ही बसा है। काबुल का नाम संभवत: कुभाकूल (यथा गोमल=गोमती कूल) से बिगड़ कर बना है। चीनी यात्री सुंगयुन (520 ई० के लगभग) ने भारत-यात्रा के वृत्तांत में काबुल के देश का नाम किपिन लिखा है। यह नाम संभवत: कुभा का ही रूपांतर है। कुभा का पाठांतर कुंभा भी मिलता है। यह नदी काबुल नगर से 37 मील दूर सीरे चश्मा के सोते से निकलती है जो कोहीबाबा पर्वत के नीचे है।

कुभाकूल=काबुल दे० कुभा०

कुमरार

पटरा (बिहार) के निकट एक ग्राम जो स्टेशन से आठ मील पश्चिम में है। अब यह पटने का ही एक भाग बन गया है। डा० स्पूनर के मत में चंद्रगुप्त मौर्य (320 ई० पू०) का प्रसिद्ध राजप्रासाद जिसके भव्य सौंदर्य का वर्णन मेगेस्थनीज ने किया है—वर्तमान कुमरार के स्थान पर ही था। इस स्थान से उत्खनन द्वारा इस राजप्रासाद के कुछ अवशेष प्रकाश में लाए गए हैं। दे० **पाटलिपुत्र**। कुमरार प्राचीन कुसुमपुर का अपभ्रंश जान पड़ता है।

कुमायूं (उ० प्र०)

प्राचीन पौराणिक नाम कूर्माचल। कुमायूं में सातवीं शती में चन्द्रवंशीय नरेशों का शासन प्रारंभ हुआ था। इनके समय में कुमायूं ने पर्याप्त उन्नति की थी। तत्पश्चात् कत्यूरी शासकों के समय में अल्मोड़ा, नैनीताल आदि कुमायूं में सम्मिलित थे। हेनरी इलियट ने कत्यूरी शासकों को खसजातीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है पर कत्यूरी लोग स्वयं को अयोध्या के सूर्यवंशी राजाओं का वंशज मानते थे। कहा जाता है कि मुहम्मद तुगलक ने जिस कराचल नामक पहाड़ी राज्य पर विफल आक्रमण किया था वह कूर्माचल ही था। पश्चवर्ती काल

में उत्तर प्रदेश के रुहेलों ने भी कुमायूं पर आक्रमण करके भीमताल, कटारमल, लखनपुर आदि के मंदिरों को तोड़ा-फोड़ा था। 1768 ई० में यहां गोरखों का शासन स्थापित हुआ और नेपाल युद्ध के पश्चात् 1816 ई० में हिमालय के अन्य पर्वतीय प्रदेशों के साथ कुमायूं भी अंग्रेजी राज्य का अंग बन गया।

कुमार

विष्णुपुराण 2, 4, 60 के अनुसार शाकद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा भव्य के पुत्र के नाम पर कुमार कहलाता था।

कुमारग्राम

वैशाली (बिहार) के निकट एक ग्राम जहां जैन तीर्थंकर महावीर ने तपस्या की थी। जैन कथाओं के अनुसार महावीर को इस स्थान पर एक कृषक ने धोखे से अपने बैलों का चोर समझ कर पीटा था किंतु वे फिर भी शांत तथा अक्षुब्ध रहे और कृषक उनसे प्रभावित होकर उनका अनुयायी बन गया।

कुमारवन दे० **कूर्माचल**

कुमारदेव

जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति (जैन सूत्र ग्रंथ) (4,35) में वर्णित चुल्लहिमवंत पर्वत का एक शिखर।

कुमारविषय

'ततः कुमारविषये श्रेणिमन्तमथाजयत्' महा० सभा० 30, 1। यहां के राजा श्रेणिमान् को भीम ने अपनी दिग्विजययात्रा के प्रसंग में परास्त किया था। कुछ विद्वानों ने इसका अभिज्ञान गाजीपुर से किया है जहां प्राचीन काल में कार्तिकेय (कुमार) की पूजा प्रचलित थी। यह तथ्य इस क्षेत्र से प्राप्त सिक्कों से प्रमाणित होता है जिन पर कार्तिकेय या स्कंद की मूर्ति अंकित है।

कुमारहट्टा दे० **हलीशहर**

कुमारिका क्षेत्र (राजस्थान)

कोटा से चवालीस मील पर इंद्रगढ़ के निकट एक झील को कुमारिका क्षेत्र नाम से अभिहित किया जाता है।

कुमारी

(1)=**कन्याकुमारी**

(2) महाभारत भीष्म० 9, 36 में उल्लिखित नदी—'कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम्'। निश्चय ही इसी नदी का उल्लेख विष्णु 2, 3, 13 में है जहां इसे शुक्तिमान् पर्वत से उद्भूत माना है तथा इसका नाम महाभारत के उल्लेख के समान ही ऋषिकुल्या के साथ है—'ऋषिकुल्या कुमार्याद्याः

शुक्तिमत्पादसंभवाः'। ऋषिकुल्या उड़ीसा की नदी है जो पूर्व विंध्य की पर्वत श्रेणियों से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। कुमारी भी ऋषिकुल्या के निकट बहने वाली कोई नदी जान पड़ती है। संभव है यह उड़ीसा के उदयाचल या कुमारीगिरि से निकलने वाली कोई नदी है। श्री नं० ला० डे के अनुसार यह वर्तमान कुमारी है जो ज़िला मनभूम में बहती है।

(3) क्वारी नामक नदी जो मालवा के पठार में चंबल के निकट बहती हुई यमुना में गिरती है। यह विंध्याचल से निकलती है।

(4) विष्णु पुराण के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी—'सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या' विष्णु० 2, 4, 65।

कुमारीगिरि (उड़ीसा)

उदयगिरि का एक भाग जिसका उल्लेख खारवेल के प्रसिद्ध अभिलेख में है। खारवेल ने अपने शासन के तेरहवें वर्ष में इस स्थान पर जो अर्हतों के निवासस्थान के निकट था, कुछ स्तंभों का निर्माण करवाया था। कुमारीगिरि भुवनेश्वर से सात मील पश्चिम में है और जैनों का प्राचीन तीर्थ है। कहते हैं कि तीर्थंकर महावीर कुछ दिन यहां रहे थे। इसे कुमारीपर्वत भी कहते हैं। कुमारी नदी संभवतः इसी पर्वत से उद्भूत होती है।

कुमुंद

विष्णु० 2, २, 26 के अनुसार मेरुपर्वत के पश्चिम में स्थित एक पर्वत—'शीतांभश्च कुमुन्दश्च कुररी माल्वांस्तथा वैंककप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः'।

कुमुद

(1) विष्णु० 2, 4, 26 के अनुसार शाल्मलद्वीप के सात पर्वतों में से एक—'कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहकः'।

(2) गिरनार पर्वत-माला का एक श्रृंग जिसका उल्लेख मंडलीक काव्य (1,2) में उज्जयंत तथा रैवतक के साथ इस प्रकार है—'शिखरत्रयभेदेन नाम भेदमगादसौ, उज्जयन्तो रैवतकः कुमुदश्चेति भूधरः।

कुमुद्वती

विष्णु० 2, 4, 55 के अनुसार क्रौंच-द्वीप की एक नदी—'गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रि र्मनोजवा'।

कुरंग

महाभारत, अनुशासन पर्व में कुरंग क्षेत्र को करतोया नदी का तटवर्ती प्रदेश बताया गया है। करतोया बंगाल के ज़िला बोगरा में बहने वाली नदी है।

कुरंड

'कारस्करान्माहिष्कान् कुरंडान् केरलांस्तथा, कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ।' महा० कर्ण० 44, 33 । प्रसंग से जान पड़ता है कि कुरंड-लोगों के देश की स्थिति दक्षिण भारत में केरल के निकट थी । ये अनार्य-जातीय रहे होंगे क्योंकि इन्हें विवर्जनीय बताया गया है । संभव है कि कुरंड और मुरंड एक ही हों । मुरंड लोग शकजातीय थे और इनका निवास महाराष्ट्र के प्रदेश में था । समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में शकमुरंडों का उल्लेख है ।

कुरई (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

सिंगरौर के निकट गंगातट पर एक ग्राम है । किंवदंती है कि शृंगवेरपुर में गंगा पार करने के पश्चात् श्रीरामचंद्र जी इसी स्थान पर उतरे थे । यहां एक छोटा-सा मंदिर भी है जो स्थानीय लोकश्रुति के अनुसार उसी स्थान पर है जहां गंगा को पार करने के पश्चात् राम-लक्ष्मण-सीता ने कुछ देर विश्राम किया था । यहां से आगे चलकर वे प्रयाग पहुंचे थे (दे० शृंगवेरपुर) ।

कुरगमा (ज़िला झांसी, उ० प्र०)

जैनों का प्राचीन अतिशय-क्षेत्र माना जाता है ।

कुरनूल (आं० प्र०)

यह नगर 11वीं शती में बसाया गया था । प्राचीन नाम कनडेलावोलू है । सोलहवीं शती के पूर्वार्ध में विजयनगर-राज्य के अंतर्गत रहने के पश्चात् उसका पतन होने पर रामराय के प्रपौत्र गोपालराय का यहां कुछ दिन तक अधिकार रहा था । किंतु बीजापुर के सुलतान ने उसे हराने के लिए अब्दल वहाब नामक सेनापति को भेजा जिसने कुरनूल पर अधिकार करके अपनी धार्मिक कट्टरता का परिचय दिया और यहां के अनेक मंदिर तुड़वा कर मस-जिदें बनवाईं । उसकी क़बर हंदल के मकबरे में है जो कुरनूल के पास ही है । बीजापुर के सुलतान के शासनकाल में शिवाजी ने इस इलाके से चौथ वसूल की । औरंगज़ेब के जमाने में बीजापुर राज्य की समाप्ति पर कुरनूल पर मुग़लों का अधिकार हो गया और मुग़लराज्य के शिथिल होने पर जब हैदरा-बाद की नई रियासत दक्षिण में बनी तो निज़ाम हैदराबाद ने कुरनूल को अपने राज्य में सम्मिलत कर लिया (मध्य 18वीं शती) । कुरनूल, तुंगभद्रा और हांद्री नदियों के तट पर स्थित है । नगर के चारों ओर प्राचीन परकोटा है ।

कुररी

विष्णु-पुराण के अनुसार मेरुपर्वत के पश्चिम में स्थित एक पर्वत—'शीताम्भश्च कुमुन्दश्च कुररी माल्यवांस्तथा' 2, 2, 26 ।

कुरिया (रुहेलखंड, उ० प्र०)

लखनऊ-काठगोदाम रेलमार्ग पर इस स्टेशन के दो मील पूर्व माली नामक ग्राम के पास एक प्राचीन बड़े नगर के खंडहर पाए जाते हैं। किंवदंती के अनुसार यह राजा वेणु का बसाया हुआ था। यहां के खंडहरों में अतिप्राचीन पूर्व-मौर्य या मौर्यकालीन आहत सिक्के, अहिच्छत्र के मित्र राजाओं और कुषाण-काल तथा प्रारंभिक मुसलिमकाल के सिक्के मिलते हैं। खंडहर 2 मील × 1 मील है। (टि० पाणिनि के सूत्र 'रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्' में आहत शब्द प्राचीन punch marked सिक्कों के लिए है।)

कुरियाकुंड (ज़िला बांदा, उ० प्र०)

यह स्थान प्रागैतिहासिक शिलाचित्रकारी के अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

कुरु

प्राचीन भारत का प्रसिद्ध जनपद जिसकी स्थिति वर्तमान दिल्ली-मेरठ प्रदेश में थी। महाभारत-काल में हस्तिनापुर में कुरु-जनपद की राजधानी थी। महाभारत से ज्ञात होता है कि कुरु की प्राचीन राजधानी खांडवप्रस्थ थी। कुरु-श्रवण नामक व्यक्ति का नाम ऋग्वेद में है—'कुरु श्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम्। मंहिष्ठंवाघता मृषिः'। अथर्ववेद संहिता 20,127,8 में कौरव्य या कुरु देश के राजा का उल्लेख है – 'कुलायन कृण्वन कौरव्यः पतिरवदति जायया।' महाभारत के अनेक वर्णनों से विदित होता है कि कुरुजांगल, कुरु और कुरुक्षेत्र इस विशाल जनपद के तीन मुख्य भाग थे। कुरुजांगल इस प्रदेश के वन्यभाग का नाम था जिसका विस्तार सरस्वती तट पर स्थित काम्यकवन तक था। खांडववन भी जिसे पांडवों ने जला कर उसके स्थान पर इंद्रप्रस्थ नगर बसाया था इसी जंगली भाग में सम्मिलित था और यह वर्तमान नई दिल्ली के पुराने किले और कुतुब के आसपास रहा होगा। मुख्य कुरु जनपद हस्तिनापुर (ज़िला मेरठ, उ० प्र०) के निकट था। कुरुक्षेत्र की सीमा तैत्तरीय आरण्यक में इस प्रकार है—इसके दक्षिण में खांडव, उत्तर में तूर्घ्न और पश्चिम में परिणाह स्थित था। संभव है ये सब विभिन्न वनों के नाम थे। कुरु जनपद में वर्तमान थानेसर, दिल्ली और उत्तरी गंगा द्वाबा (मेरठ-बिजनौर ज़िलों के भाग) शामिल थे। पपंचसूदनी नामक ग्रंथ में वर्णित अनुश्रुति के अनुसार इला-वंशीय कौरव, मूल रूप से हिमालय के उत्तर में स्थित प्रदेश (या उत्तरकुरु) के रहने वाले थे। कालांतर में उनके भारत में आकर बस जाने के कारण उनका नया निवासस्थान भी कुरु देश ही कहलाने लगा। इसे उनके मूल निवास से

भिन्न नाम न देकर कुरु ही कहा गया। केवल उत्तर और दक्षिण शब्द कुरु के पहले जोड़ कर उनकी भिन्नता का निर्देश किया गया (दे० लॉ—ऐंशेंट मिड-इंडियन क्षत्रिय ट्राइब्स, पृ० 16)। महाभारत में भारतीय कुरु-जनपदीयों को दक्षिण कुरु कहा गया है और उत्तर-कुरुओं के साथ ही उनका उल्लेख भी है। —'उत्तरैः कुरुभिः सार्धं दक्षिणाः कुरवस्तथा। विस्पर्धमाना व्यचरंस्तथा देवर्षिचारणैः' आदि० 108,10। अंगुत्तर-निकाय में 'सोलस महाजनपदों' की सूची में कुरु का भी नाम है जिससे इस जनपद की महत्ता का काल बुद्ध तथा उसके पूर्ववर्ती समय तक प्रमाणित होता है। महासुत-सोम-जातक के अनुसार कुरु जनपद का विस्तार तीन सौ कोस था। जातकों में कुरु की राजधानी इंद्रप्रस्थ में बताई गई है। हत्थिनापुर या हस्तिनापुर का उल्लेख भी जातकों में है। ऐसा जान पड़ता है कि इस काल के पश्चात् और मगध के बढ़ती हुई शक्ति के फलस्वरूप जिसका पूर्ण विकास मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साथ हुआ, कुरु, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर राजा निचक्षु के समय में गंगा में बह गई थी और जिसे छोड़ कर इस राजा ने वत्स जनपद में जाकर अपनी राजधानी कौशांबी में बनाई थी, धीरे-धीरे विस्मृति के गर्त में विलीन हो गया। इस तथ्य का आभास हमें जैन उत्तराध्यायन सूत्र से होता है जिससे बुद्धकाल में कुरुप्रदेश में कई छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व ज्ञात होता है।

कुरुक्षेत्र (ज़िला करनाल, पंजाब)

महाभारत के युद्ध की प्रसिद्ध रणस्थली। महाभारत में वर्णित अनेक स्थल यहां आज भी वर्तमान हैं। यहां का प्राचीनतम स्थान ब्रह्मसर सरोवर है। शतपथ-ब्राह्मण के एक कथानक के अनुसार राजा पुरु को अपनी खोई हुई प्रेयसी अप्सरा उर्वशी इसी सरोवर के कमलों पर क्रीड़ा करती हुई मिली थी। वायुपुराण में वर्णित है कि कुरुक्षेत्र के सरोवर के तट पर सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने एक यज्ञ किया था जिससे इसका नाम ब्रह्मसर हुआ। इसके बीच में 'चंद्रकूप' नामक कूप स्थित है। ब्रह्मसर में एक प्राचीन मंदिर है जहाँ पहुंचने के लिए अकबर ने एक पुल बनवाया था जो अब जीर्णशीर्ण हो गया है। ब्रह्मसर के स्नानार्थी यात्रियों पर औरंगज़ेब ने कर लगा दिया था और उसके कर्मचारी यहां पास ही स्थित गढ़ी में रहते थे। ब्रह्मसर को द्वैपायनह्रद और रामह्रद भी कहते हैं। कुरुक्षेत्र का दूसरा प्रसिद्ध सरोवर ज्योतिसर है। कहा जाता है कि यह वही पुण्यस्थान है जहां भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीता सुनाई थी। एक छोटा तड़ाग सैन्यहत या सन्निहित कहलाता है। सन्निहिती सरोवर का उल्लेख महाभारत वन० 83,195 में है। वह सरोवर भी है जहां

दुर्योधन अंत समय में छिप गया था और भीम ने गदायुद्ध में उसे मारा था। यह तालाब अब मिट्टी और वनस्पतियों से ढक गया है। कुरुक्षेत्र से थोड़ी दूर पर बाणगंगा है जहां भीष्मपितामह के आहत होने पर उनके लिए अर्जुन ने भूमि से वाण द्वारा जलधारा प्रकट की थी। वामनपुराण 39,6–7–8 में कुरुक्षेत्र की सात नदियां बताई गई हैं—'सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी, आपगा च महापुण्या गंगा मंदाकिनी नदी। मधुस्रवा-अम्लुनदी कौशिकी पापनाशिनी, दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी'।

कुरुम (दे० क्रुमु)

सिंध की सहायक नदी जो पश्चिम की ओर से आकर इसमें मिलती है।

कुरुवत्ती (ज़िला बिलारी, मैसूर)

यहां का प्राचीन मंदिर चालुक्य वास्तुकला का सुंदर उदाहरण है।

कुर्किहार (ज़िला गया, बिहार)

बोध-गया के निकट इस स्थान से कांसे की अनेक सुंदर बौद्ध और हिंदू मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो पाल और सेन काल की हैं। कुछ पर संवत् भी अंकित हैं। ये मूर्तियां ताम्र, सीसा, टीन और लोहे की मिश्रित धातु से बनाई गई हैं। इनके निर्माण में धातुविज्ञान का उच्चकोटि का ज्ञान प्रदर्शित है। इनमें बलराम और लोकनाथ की मूर्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये मूर्तियां पटना संग्रहालय में सुरक्षित कर दी गई हैं। कुछ विद्वानों के मत में कुर्किहार की कांस्य-मूर्तियों की सहायता से वृहत्तर-भारत में बौद्ध-धर्म के प्रचार का अध्ययन किया जा सकता है।

कुर्ग (केरल)

सुदूर दक्षिण में पश्चिमी तट पर अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम काडगू कहा जाता है, जो कन्नड शब्द कुडू (ढलवां पहाड़ी) का अपभ्रंश है। क्रोड देश भी कुर्ग का ही एक अन्य प्राचीन नाम है।

कुलपर्वत

विष्णु पुराण 2,3,3 के अनुसार भारत के सात मुख्य पर्वत—'महेन्द्रो, मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः, विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।' अर्थात् महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विंध्य, पारियात्र ये सात कुलपर्वत हैं। कालिदास ने भी सात कुलभूभृत माने हैं—'भूतानां महतां षष्ठमष्टमं कुलभूभृताम्' रघु० 17,78।

कुलपहाड़ (जिला हमीरपुर, उ० प्र०)

इस नाम की तहसील का मुख्य स्थान है। यहां चंदेले नरेशों के समय

की इमारतों के अनेक अवशेष हैं। यह स्थान बुंदेलखंड का एक भाग है।

कुलपाक (ज़िला नलगोंडा, आं० प्र०)

भोनगिरि से 20 मील दूर सिद्दी पेट सड़क पर स्थित है। यहां के प्राचीन मंदिर के निकट उत्खनन द्वारा अनेक सुंदर मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनमें नौ तीर्थंकरों की मूर्तियां भी हैं। संगमर्मर की बनी महाविष्णु की मूर्ति, मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। कुलपाक जैनों का तीर्थस्थल है। यहां जैन कलचुरि-नरेश शंकरगण ने बारह ग्रामों का दान दिया था। इसका समय सातवीं शती ई० में माना गया है।

कुलिंग

वाल्मीकि रामायण अयोध्या० 68,16 में इस नगरी का उल्लेख अयोध्या के दूतों की केकय-यात्रा के प्रसंग में है—'निकूलवृक्षमासाद्य दिव्यं सत्योपयाचनम्, अभिगम्याभिवाद्यं तं कुलिंगां प्राविशन्पुरीम्'। इस वर्णन मे कुलिंगा का उल्लेख शरदंडा नदी के पश्चात् है। ऐसा जान पड़ता है कि सतलज तथा बियास नदियों के बीच के प्रदेश में इस नगरी की स्थिति होगी। अयोध्या 68,19 में विपाशा या बियास का उल्लेख है। संभव है नगरी का संबंध कुलिंदों या कुणिंदो से रहा हो जिनका उल्लेख महाभारत सभा० 26,4 में है। रामायण में वर्णित नदी कुलिंगा, कुलिंग प्रदेश की ही कोई नदी जान पड़ती है।

कुलिंगा

'वेगिनीं च कुलिंगाख्यां ह्लादिनीं पर्वतावृताम्, यमुनां प्राप्य संतीर्णः बलमाश्वासयत्तदा' वाल्मीकि० अयोध्या 71,6। प्रसंगानुसार इस नदी की स्थिति यमुना से पश्चिम की ओर जान पड़ती है। संभवतः इसका संबंध लगभग उसी प्रदेश में बसे हुए **कुलिंग** नामक स्थान से रहा हो।

कुलिंद

महाभारत कर्ण० 85,4 में कुलिंददेशीय योद्धाओं का उल्लेख है। ये पांडवों की ओर से महाभारत के युद्ध में सम्मिलित हुए थे—'नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयुर्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिन्दाः' अर्थात् तत्पश्चात् कुलिंद के योद्धा नए मेघ के समान काले और गिरिशिखर के समान विशाल और भयंकर वेग वाले हाथियों को लेकर (कौरवों पर) चढ़ आए। इससे आगे के श्लोक में, 'सुकल्पितहैमवता मदोत्कटाः' ये शब्द कुलिंद देश के हाथियों के लिए प्रयोग में आए हैं जिससे इंगित होता है कि ये हाथी हिमालय प्रदेश के थे और इस प्रकार कुलिंद की स्थिति भी हिमालय के सन्निकट प्रमाणित होती है। यह संभव है कि वाल्मीकि रामायण अयोध्या० 68,16 में वर्णित कुलिंग-नगरी का

कुलिंद से संबंध हो। कुलिंग की स्थिति शायद बियास और सतलज नदियों के बीच के प्रदेश मे थी। कुलिंद की स्थिति भी शायद वर्तमान हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी भागों में रही होगी। महाभारत सभा० 26,4 में भी कुलिंदों या कुणिदों (दे० कुणिंद) का उल्लेख है। कुणिदों के सिक्के देहरादून से जगाधरी तक यमुना के उत्तर-पश्चिम की ओर पाए गए हैं। कुलिंगा नदी (दे० **कुलिंगा**) भी शायद इसी प्रदेश में बहती थी।

कुलिय (जिला नदिया, प० बंगाल)

नवद्वीप या नदिया-ग्राम का चैतन्य महाप्रभु के समय—15वीं शती—में प्रचलित नाम। दे० **नवद्वीप**।

कुलियारपत (प० बंगाल)

कल्याणी से चार मील। गौरांग महाप्रभु चैतन्य तथा नित्यानंद के मंदिर यहां अवस्थित हैं। किंवदंती है कि इसी स्थान पर चैतन्य ने पंडित देवानंद को उनके द्वारा वैष्णव संप्रदाय के प्रतिकूल किए गए कार्यों के लिए क्षमा कर दिया था। चैतन्य से संबंध होने के कारण यह स्थान वैष्णवों के तीर्थ के रूप में माना जाता है।

कुलू=कुलूत

कांगड़ा घाटी का पहाड़ी स्थान जिसकी प्रसिद्धि महाभारतकाल से चली आती है (दे० कुलूत)।

कुलूत

'तैरवै सहितः सर्वैरनुरज्य च तान् नृपान्, कुलूतवासिनं राजन् बृहन्तमुपजग्मिवान्'; 'कुलूतानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत्'— महा० सभा० 27,5; सभा० 27,11। कुलूत को यहां उत्तरकुलूत भी कहा गया है। महाभारत के समय यहां का राजा बृहन्त था जिसे अर्जुन ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में जीता था। कुलूत वर्तमान कुलू है जो कांगड़ा (पंजाब) घाटी का प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान है। (टि०—महाभारत में उपर्युक्त उद्धरणों में कुलूत का पाठान्तर उलूक भी है)। संस्कृत कवि राजशेखर ने कन्नौजाधिप महीपाल (९वीं शती) के विजित प्रदेशों में कुलूत का उल्लेख किया है।

कुल्लूर (मैसूर)

सौपर्णिका नदी के तट पर आद्यशंकराचार्य द्वारा स्थापित सिद्ध पीठ है।

कुवन

तिब्बत के इतिहास लेखक तारानाथ ने कुवन या कुंडल-वन की स्थिति जलंधर के पास बताई है। कुंडलवन में कनिष्क के समय में तीसरी (कुछ

विद्वानों के मत में चौथी) धर्म-संगीति हुई थी। दे० **कुंडलवन**।

कुविंद दे० **कुणिद**

कुशद्वीप

पुराणों की भौगोलिक कल्पना के अनुसार पृथ्वी के सप्तमहाद्वीपों में से एक (दे० विष्णु० 2,2–5—'कुश: क्रौंचस्तथा शाक: पुष्करश्चैव सप्तम:) यह घृतसागर से परिवृत है। कुशद्वीप का उपास्यदेव अग्नि माना गया है। कुशद्वीप के विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान, पुष्पवान्, कुशेशय हरि और मंदराचल नामक सात पर्वत हैं।

कुशपुर दे० **कुसूर**

कुशप्लव

'कुशप्लवं समासाद्यतपस्तेपे सुदारुणम्'—वाल्मीकि रामायण, बाल० 86,8। यह विशाला (=वैशाली) के पास एक तपोवन था।

कुशभवनपुर=सुलतानपुर (उ० प्र०)

रामचन्द्र जी के पुत्र कुश की राजधानी यहां रही थी। युवानच्वांग ने इस स्थान को देखा था। श्री० नं० ला० डे के अनुसार वायुपुराण, उत्तर 26 की कुशस्थली यही थी। प्राचीन नगर गोमती के तट पर था। सुलतान अलाउद्दीन ने भार राजा को हरा कर यहां मसजिद बनवाई और नगर को वर्तमान नाम दिया।

कुशमाल

शूर्पारकजातक में वर्णित एक समुद्र जहां भृगुकच्छ के व्यापारी एक बार जा पहुंचे थे। इसका वर्णन इस प्रकार है—'यथा कुसो व सस्सो व समुद्दोपति दिस्सति' अर्थात् यह समुद्र कुश या अनाज के तृणों की भांति हरा दिखाई देता है। इस समुद्र में नीलमणि उत्पन्न होती थी। (दे० **क्षुरमाली, अग्निमाली, बड़वामुख, दधिमाल, नलमाली**)।

कुशल

विष्णु-पुराण 2,4,60 के अनुसार शाकद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा भव्य के पुत्र के नाम पर कुशल कहलाता है।

कुशस्थल

(1) कान्यकुब्ज का एक नाम जिसका उल्लेख युवानच्वांग ने मौखरियों की राजधानी के रूप में किया है। हर्षचरित, उच्छ्वास 6 में, राज्यवर्धन के गौड़ाधिप द्वारा वध किए जाने पर गृहवर्मा मौखरी—राज्यश्री के दिवंगत पति की राजधानी कुशस्थल (कान्यकुब्ज) को गुप्त नामक राजा द्वारा ले लिए जाने का वर्णन है—'देव देवभूयं गते देवे राज्यवर्धनेगुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले,

देवी राज्यश्री परिभ्रंश्य बंधनाद्विंध्याटवीं सपरिवारा प्रविष्टेति···'।

(2) (गोआ) प्राचीन ग्राम है जहां शिवोपासना का केंद्र था। पहले यहां मंगेश शिव का प्राचीन मंदिर था। पुर्तगालियों द्वारा गोआ में उपद्रव मचाने पर यहां की मूर्ति प्रिमोल ग्राम में भेज दी गई और वहीं मंदिर बनाया गया।

कुशस्थली

(1) द्वारका का प्राचीन नाम। पौराणिक कथाओं के अनुसार महाराजा रैवतक के समुद्र में कुश बिछाकर यज्ञ करने के कारण ही इस नगरी का नाम कुश-स्थली हुआ था। पीछे त्रिविक्रम भगवान् ने कुशनामक दानव का वध भी यहीं किया था। त्रिविक्रम का मंदिर द्वारका में रणछोड़जी के मंदिर के निकट है। ऐसा जान पड़ता है कि महाराज रैवतक (बलराम की पत्नी रेवती के पिता) ने प्रथम बार, समुद्र में से कुछ भूमि बाहर निकल कर यह नगरी बसाई होगी। हरिवंश पुराण 1,11,4 के अनुसार कुशस्थली उस प्रदेश का नाम था जहां यादवों ने द्वारका बसाई थी। विष्णुपुराण के अनुसार, 'आनर्तस्यापि रेवतनामा पुत्रोजज्ञे योऽसावानर्तविषयं बुभुजे पुरीं च कुशस्थलीमध्युवास' विष्णु० 4,1,64. अर्थात् आनर्त के रेवत नामक पुत्र हुआ जिसने कुशस्थली नामक पुरी में रह कर आनर्त विषय पर राज्य किया। विष्णु० 4,1,91 से सूचित होता है कि प्राचीन कुशावती के स्थान पर ही श्रीकृष्ण ने द्वारका बसाई थी—'कुशस्थली या तव भूप रम्या पुरी पुराभूदमरावतीव, सा द्वारका संप्रति तत्र चास्ते स केशवांशो बलदेवनामा'। कुशावती का अन्य नाम कुशावर्त भी है। एक प्राचीन किंवदंती में द्वारका का संबंध 'पुण्यजनों' से बताया गया है। ये 'पुण्यजन' वैदिक 'पणिक' या 'पणि' हो सकते हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि पणिक या पणि प्राचीन ग्रीस के फ़िनी-शियनों का ही भारतीय नाम था। ये लोग अपने को कुश की संतान मानते थे (दे० वेडल—मेकर्स ऑव सिविलीज़ेशन, पृ० 80)। इस प्रकार कुशस्थली या कुशावर्त नाम बहुत प्राचीन सिद्ध होता है। पुराणों के वंशवृत्त में शार्यातों के मूल पुरुष शर्याति की राजधानी भी कुशस्थली बताई गई है। महाभारत, सभा० 14,50 के अनुसार कुशस्थली रैवतक पर्वत से घिरी हुई थी—'कुशस्थली पुरी रम्या रैवतेनोपशोभितम्'। जरासंध के आक्रमण से बचने के लिए श्रीकृष्ण मथुरा से कुशस्थली आ गए थे और यहीं उन्होंने नई नगरी द्वारका बसाई थी। पुरी की रक्षा के लिए उन्होंने अभेद्य दुर्ग की रचना की थी जहां रह कर स्त्रियां भी युद्ध कर सकती थीं—'तथैव दुर्गसंस्कारं देवैरपि दुरासदम्, स्त्रियोऽपियस्यां युध्येयुः किमु वृष्णिमहारथाः'। महा० सभा० 14,51;

(2) दे० **कुशभवनपुर**

(3)=**कुशावती**

कुशाग्रपुर

राजगृह (बिहार) का प्राचीन नाम, जिसका उल्लेख चीनीयात्री युवानच्वांग (7वीं शती ई०) ने किया है। उसके लेख के अनुसार मगध की प्राचीन राजधानी कुशाग्रपुर में ही थी। वहां भारी अग्निकांड हो जाने के कारण मगध नरेश बिंबिसार ने इसी स्थान पर नवीन नगर राजगृह बसाया था (फ़ाह्यान के अनुसार राजगृह का संस्थापक बिंबिसार का पुत्र अजातशत्रु था)। युवानच्वांग यह भी लिखता है कि इस स्थान पर श्रेष्ठ कुश या घास होने के कारण ही इसे कुशाग्रपुर कहते थे। राजगृह के पास आज भी सुगंधित उशीर या ख़स बहुतायत से उत्पन्न होती है। शायद कुश या घास से युवानच्वांग का तात्पर्य ख़स से ही था।

कुशावती

(1) वाल्मीकि०, उत्तर० 108,4 से विदित होता है कि स्वर्गारोहण के पूर्व रामचंद्र जी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र कुश को कुशावती नगरी का राजा बनाया था—'कुशस्य नगरी रम्या विंध्यपर्वत रोधसि, कुशावतीति नाम्ना साकृता रामेण धीमता'। उत्तरकांड 107,17 से यह भी सूचित होता है कि, 'कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्' अर्थात् रामचंद्र जी ने दक्षिण कोसल में कुश और उत्तर कोसल में लव का राज्याभिषेक किया था। कुशावती विंध्यपर्वत के अंचल में बसी हुई थी, और दक्षिण-कोसल या वर्तमान रायपुर (विलासपुर क्षेत्र, म० प्र०)में स्थित होगी। जैसा कि उपर्युक्त उत्तर० 108, 4 से सूचित होता है स्वयं रामचंद्र जी ने यह नगरी कुश के लिए बनाई थी। कालिदास ने भी रघु० 15, 97 में कुश का, कुशावती का राजा बनाए जाने का उल्लेख किया है—'स निवेश कुशावत्यां रिपुनागांकुशं कुशम्'। रघुवंश सर्ग १६ से ज्ञात होता है कि कुश ने कुशावती में कुछ समय पर्यंत राज करने के पश्चात् अयोध्या की इष्टदेवी के स्वप्न में आदेश देने के फलस्वरूप उजाड़ अयोध्या को पुनः बसा कर वहां अपनी राजधानी बनाई थी। कुशावती से ससैन्य अयोध्या आते समय कुश को विंध्याचल पार करना पड़ा था—'व्यलङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिंदैरुपपादितानि' रघु० 16,32 . विंध्य के पश्चात् कुश की सेना ने गंगा को भी हाथियों के सेतु द्वारा पार किया था, 'तीर्थे तदीये गजसेतुबंधात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गंगाम्, अयत्नबालव्यजनीबभूवुर्हंसानभोलंघनलोलपक्षाः····' रघु० 16, 33। अर्थात् जिस समय कुश, पश्चिम वाहिनी गंगा को गजसेतु द्वारा पार कर रहे थे, आकाश में उड़ते हुए चंचल पक्षों वाले हंसों की श्रेणियां उन (कुश) के

ऊपर डोलती हुई चंवर के समान जान पड़ती थीं। यह स्थान जहां कुश ने गंगा को पार किया था चुनार (ज़िला मिर्ज़ापुर , उ० प्र०) के निकट हो सकता है क्योंकि इस स्थान पर वास्तव में गंगा एकाएक उत्तर-पश्चिम की ओर मुड़ कर बहती है और काशी में पहुंच कर फिर से सीधी बहने लगती है।

(2) महावंश 2,6 में कुशीनगर (कसिया) का प्राचीन नाम। अनुश्रुति के अनुसार इसे कुश ने बसाया था। कुशावती का उल्लेख कुस-जातक में भी है।

कुशावर्त

(1)=**कुशस्थली**

(2) महाभारत में वर्णित हरद्वार और कनखल के निकट एक तीर्थ—'गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवंव्रजेत्' अनुशासन० 25,13। यह हरद्वार में गंगा का वर्तमान कुशाघाट हो सकता है।

कुशिक

कान्यकुब्ज का प्राचीन नाम (दे० कान्यकुब्ज)।

कुशीनगर=कसिया (ज़िला गोरखपुर, उ० प्र०)

बुद्ध के महापरिनिर्वाण का स्थान है। किंवदंती के अनुसार यह नगर श्रीरामचन्द्र जी के ज्येष्ठ पुत्र कुश द्वारा बसाया गया था। महावंश 2,6 में कुशीनगर का नाम इसी कारण कुशावती भी कहा गया है। बौद्धकाल में यही नाम कुशीनगर, या पाली में, कुसीनारा हो गया। एक अन्य बौद्ध किंवदंती के अनुसार तक्षशिला के इक्ष्वाकुवंशी राजा तालेश्वर का पुत्र तक्षशिला से अपनी राजधानी हटाकर कुशीनगर ले आया था। उसकी वंश परम्परा में बारहवें राजा सुदिन्न के समय तक यहां राजधानी रही। इनके बीच में कुश और महादर्शन नामक दो प्रतापी राजा हुए जिनका उल्लेख गौतम बुद्ध ने (महादर्शन-सुत्त के अनुसार) किया था। महादर्शनसुत्त में कुसीनारा के वैभव का वर्णन है—'राजा महासुदर्शन के समय में, कुशावती पूर्व से पश्चिम तक बारह योजन और उत्तर से दक्षिण तक सात योजन थी। कुशावती राजधानी समृद्ध और सब प्रकार से सुख-शांति से भरपूर थी। जैसे देवताओं की अलकनंदा नामक राजधानी समृद्ध है वैसे ही कुशावती थी। यहाँ दिन रात हाथी, घोड़े, रथ, भेरी, मृदंग, गीत, झांझ, ताल, शंख, और खाओ-पिओ—के दस शब्द गूंजते रहते थे। नगरी सात परकोटों से घिरी थी। इनमें चार रंगों के बड़े-बड़े द्वार थे। चारों ओर ताल वृक्षों की सात पंक्तियां नगरी को घेरे हुई थीं। इस पूर्व-बुद्धकालीन वैभव की झलक हमें कसिया में खोदे गये कुओं के अंदर से प्रायः बीस फुट की गहराई पर प्राप्त होने वाली भित्तियों के अवशेषों से मिलती

है। महापरिनिर्वाणसुत्त से ज्ञात होता है कि कुशीनगर में बहुत समय तक समस्त जंबुद्वीप की राजधानी भी रही थी। बुद्ध के समय (छठी शती ई० पू०) में कुशीनगर में मल्लजनपद की राजधानी थी। नगर के चतुर्दिक् सिंहद्वार थे जिन पर सदा पहरा रहता था। बस्ती के उत्तर की ओर मल्लों का एक उद्यान था जिसे शालवन उद्यान कहते थे। नगर के उत्तरी द्वार से शालवन तक एक राजमार्ग जाता था जिसके दोनों ओर शालवृक्षों की पंक्तियां थीं। शालवन से नगर में प्रवेश करने के लिए पूर्व की ओर जाकर दक्षिण की ओर मुड़ना पड़ता था। शालवन से नगर के दक्षिण द्वार तक बिना नगर में प्रवेश किए ही एक सीधे मार्ग से पहुंचा जा सकता था। पूर्व की ओर हिरण्यवती नदी (=राप्ती) बहती थी जिसके तट पर मल्लों की अभिषेकशाला थी। इसे मुकुटबंधनचैत्य कहते थे। नगर के दक्षिण की ओर भी एक नदी थी जहां कुशीनगर का श्मशान था। बुद्ध ने कुशीनगर आते समय इरावती (अचिरावती, अजिरावती या राप्ती नदी) पार की थी (बुद्धचरित 25,53)। नगर में अनेक सुंदर सड़कें थीं। चारों दिशाओं के मुख्य द्वारों से आने वाले राजपथ नगर के मध्य में मिलते थे। इस चौराहे पर मल्ल गणराज्य का प्रसिद्ध संथागार था जिसकी विशालता इसी से जानी जा सकती है कि इसमें गणराज्य के सभी सदस्य एकसाथ बैठ सकते थे। संथागार के सभी सदस्य राजा कहलाते थे और बारी-बारी से शासन करते थे। शेष, व्यापार आदि कार्यों में व्यस्त रहते थे। कुशीनगर में मल्लों की एक सुसज्जित सेना रहती थी। इस सेना पर मल्लों को गर्व था। इसी के बल पर वे बुद्ध के अस्थि-अवशेषों को लेने के लिए अन्य लोगों से लड़ने के लिए तैयार हो गए थे। भगवान् बुद्ध अपने जीवनकाल मे कई बार कुशीनगर आए थे। वे शालवन विहार में ही प्रायः ठहरते थे। उनके समय में ही यहां के निवासी बौद्ध हो गए थे। इनमें से अनेक भिक्षु भी बन गए थे। दब्बमल्ल स्थविर, आयुष्मान् सिंह, यशदत्त स्थविर, इन में प्रसिद्ध थे। कोसलराज प्रसेन-जित् का सेनापति बंधुलमल्ल, दीर्घनारायण, राजमल्ल, वज्रपाणिमल्ल और वीरांगना मल्लिका यहीं के निवासी थे। भगवान् बुद्ध की मृत्यु 483 ई० में कुसीनारा में ही हुई थी—दे० बुद्ध चरित 25,52—'तब शिष्य मंडली के साथ चुंद के यहां भोजन करने के पश्चात् उसे उपदेश देकर वे कुशीनगर आए।' उन्होंने शालवन के उपवन में युग्मशाल वृक्षों के नीचे चिर समाधि ली थी (बुद्ध चरित 25,55)। निर्माण के पूर्व कुशीनगर पहुंचने पर तथागत कुशीनगर में कमलों से सुशोभित एक तड़ाग के पास उपवन में ठहरे थे—बुद्ध चरित, 25,53। अंतिम समय में बुद्ध ने कुसीनारा को बौद्धों का महातीर्थ बताया था।

उन्होंने यह भी कहा था कि पिछले जन्मों में छ: बार वे चक्रवर्ती राजा होकर कुशीनगर में रहे थे। बुद्ध के शरीर का दाहकर्म मुकुटबंधन चैत्य (वर्तमान रामाधार) में किया गया था और उनकी अस्थियां नगर के संथागार में रक्खी गई थीं। (मुकुटबंधन चैत्य में मल्लराजाओं का राज्याभिषेक होता था। बुद्ध चरित 27,70 के अनुसार बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् 'नागद्वार के बाहर आकर मल्लों ने तथागत के शरीर को लिए हुए हिरण्यवती नदी पार की और मुकुट चैत्य के नीचे चिता बनाई')। बाद में उत्तरभारत के आठ राजाओं ने इन्हें आपस में बांट लिया था। मल्लों ने मुकुटबंधनचैत्य के स्थान पर एक महान् स्तूप बनवाया था। बुद्ध के पश्चात् कुशीनगर को मगधनरेश अजातशत्रु ने जीतकर मगध में सम्मिलित कर लिया और वहां का गणराज्य सदा के लिए समाप्त हो गया। किंतु बहुत दिनों तक यहां अनेक स्तूप और विहार आदि बने रहे और दूर-दूर से बौद्ध यात्रियों को आर्कषित करते रहे। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार मौर्यसम्राट् अशोक (मृत्यु 232 ई० पू०) ने कुशीनगर की यात्रा की थी और एक लक्ष मुद्रा व्यय करके यहां के चैत्य का पुर्ननिमाण करवाया था। युवानच्वांग के अनुसार अशोक ने यहां तीन स्तूप और दो स्तंभ बनवाए थे। तत्पश्चात् कनिष्क (120 ई०) ने कुशीनगर में कई विहारों का निर्माण करवाया। गुप्त काल में यहां अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण हुआ तथा पुराने भवनों का जीर्णोद्धार भी किया गया। गुप्त-राजाओं की धार्मिक उदारता के कारण बौद्ध-संघ को कोई कष्ट न हुआ। कुमारगुप्त (5वीं शती ई० का प्रारंभ काल) के समय में हरिबल नामक एक श्रेष्ठी ने परिनिर्वाण मंदिर में बुद्ध की बीस फुट ऊंची प्रतिमा की प्रतिष्ठापना की। छठी व सातवीं ई० से कुशीनगर उजाड़ होना प्रारंभ हो गया। हर्ष के शासनकाल में (606–647 ई०) कुशीनगर नष्टप्राय हो गया था यद्यपि यहां भिक्षुओं की संख्या पर्याप्त थी। युवानच्वांग के यात्रा-वृत्त से सूचित होता है कि कुशीनारा, सारनाथ से उत्तर-पूर्व 116 मील दूर था। युवान् के परवर्ती दूसरे चीनी यात्री इत्सिंग के वर्णन से ज्ञात होता है कि उसके समय में कुशीनगर में सर्वास्तिवादी भिक्षुओं का आधिपत्य था। हैहयवंशीय राजाओं के समय उनका स्थान महायान के अनुयायी भिक्षुओं ने ले लिया जो तांत्रिक थे। 16वीं शती में मुसलमानों के आक्रमण के साथ ही कुशीनगर का इतिहास अंधकार के गर्त में लुप्त-सा हो जाता है। संभवत: 13वीं शती में मुसलमानों ने यहाँ के सभी विहारों तथा अन्यान्य भवनों को तोड़-फोड डाला था। 1876 ई० की खुदाई में यहां प्राचीन काल में होने वाले एक भयानक अग्निकांड के चिह्न मिले हैं जिससे स्पष्ट है

कि मुसलमानों के आक्रमण के समय यहां के सब विहारों आदि को भस्म कर दिया गया था। तिब्बत का इतिहास लेखक तारानाथ लिखता है कि इस आक्रमण के समय मारे जाने से बचे हुए भिक्षु भाग कर नेपाल, तिब्बत तथा अन्य देशों में चले गए थे। परिवर्ती काल में कुशीनगर के अस्तित्व तक का पता नहीं मिलता। 1861 ई० में जब जनरल कनिंघम ने खोज द्वारा इस नगर का पता लगाया तो यहां जंगल ही जंगल थे। उस समय इस स्थान का नाम माथा कुंवर का कोट था। कनिंघम ने इसी स्थान को परिनिर्वाण-भूमिसिद्ध किया। उन्होंने अनरुधवा ग्राम को प्राचीन कुसीनारा और रामाधार को मुकुट-बंधनचैत्य बताया। 1876 ई० में इस स्थान को स्वच्छ किया गया। पुराने टीलों की खुदाई में महापरिनिर्वाण स्तूप के अवशेष भी प्राप्त हुए। तत्पश्चात् कई गुप्तकालीन विहार तथा मंदिर भी प्रकाश में लाए गए। कलचुरिनरेशों के समय – 12वीं शती—का एक विहार भी यहां से प्राप्त हुआ था। कुशीनगर का सबसे अधिक प्रसिद्ध स्मारक बुद्ध की विशाल प्रतिमा है जो शयनावस्था में प्रदर्शित है। (बुद्ध का निर्वाण दाहनी करवट पर लेटे हुए हुआ था)। इसके ऊपर धातु की चादर जड़ी है। यहीं बुद्ध की साढ़े दस फुट ऊंची दूसरी मूर्ति है जिसे माथाकुंवर कहते हैं। इसकी चौकी पर एक ब्राह्मी-लेख अंकित है। महा-परिनिर्वाण स्तूप में से एक ताम्रपट्ट निकला था जिस पर ब्राह्मी लेख अंकित है—'(परिनि) र्वाण चैत्ये ताम्रपट्ट इति'। इस लेख से तथा हरिबल द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्ति पर के अभिलेख ('देयधर्मोयं महाविहारे स्वामिनो हरिबलस्य प्रतिमा चेयं घटिता दीनेन माथुरेण') से कसिया का कुशीनगर से अभिज्ञान प्रमाणित होता है। पहले विंसेंट स्मिथ का मत था कि कुशीनगर नेपाल में अचिरवती (राप्ती) और हिरण्यवती (गंडक ?) के तट पर बसा हुआ था। मजूमदार-शास्त्री कसिया को बेठदीप मानते हैं जिसका वर्णन बौद्ध साहित्य में है (दे० एंशेंट ज्याग्रेफ़ी आव इंडिया, पृ० 714), किंतु अब कसिया का कुशी-नगर से अभिज्ञान पूर्णरूपेण सिद्ध हो चुका है।

कुशेशय

विष्णुपुराण में उल्लिखित कुशद्वीप का एक पर्वत—'विद्रुमो हेमशैलस्य द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा, कुशेशय हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः' 2–4–41।

कुसीनारा दे० **कुशीनगर**

कुसीम नगर=**कुसीम मंडल**

दक्षिण ब्रह्मदेश (बर्मा) में प्राचीन भारतीय बस्ती जो वर्तमान बेसीन के स्थान पर थी।

कुसुंभि

महाभारत के अनुसार द्वारका के निकट सुकक्ष पर्वत के चतुर्दिक् स्थित वनों में से एक—'सुकक्षं परिवार्यैनं चित्रपुष्पं महावनम् शतपत्रवनं चैव करवीरं कुसुंभि च' । सभा० 38, दक्षिणात्यपाठ ।

कुसमवध्ज

गार्गी संहिता के अंतर्गत युगपुराण में कुसुमध्वज पर यवनों (ग्रीकों) के आक्रमण का उल्लेख है—'ततः साकेतमाक्राम्य पांचालान् मथुरांस्तथा, यवना दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम् । ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते, आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः' (दे० कर्न-बृहत्संहिता, पृ० 37) । कुसुमध्वज या पुष्पपुर का अभिज्ञान पाटलिपुत्र से किया गया है । उपर्युक्त उद्धरण में संभवतः भारत पर दूसरी शती ई० पू० में होने वाले मिनेण्डर के आक्रमण का उल्लेख है ।

कुसुमपुर

(1)=**पुष्पपुर**=**पाटलिपुत्र** (दे० **पुष्पपुर, पाटलिपुत्र, कुमरार**) ।

(2)=कान्यकुब्ज । युवानच्वांग ने कान्यकुब्ज का नाम कुसुमपुर भी लिखा है ।

(3) (बर्मा) ब्रह्मदेश का प्राचीन भारतीय नगर जिसका नाम संभवतः मगध के प्रसिद्ध नगर कुसुमपुर या पाटलिपुत्र के नाम पर ही रक्खा गया था । ब्रह्मदेश में भारतीयों ने अति प्राचीनकाल ही में अनेक औपनिवेशिक बस्तियां बसाई थीं ।

कुसुमोद

विष्णु पुराण 2,4,60 के अनुसार शाकद्वीप का भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा के पुत्र के नाम पर कुसुमोद कहलाता है ।

कुसुर (पंजाब, प० पाकिस्तान)

लाहौर के निकट एक प्राचीन बस्ती । किंवदंती है कि श्री रामचंद्र जी के कनिष्ठ पुत्र लव ने लवपुर अथवा लाहौर तथा ज्येष्ठ पुत्र कुश ने कुशपुर अथवा कुसूर की संस्थापना थी । किंतु वाल्मीकि० उत्तर० 108,4 में वर्णित है कि लव को उत्तरकोसल और कुश को दक्षिणकोसल या कुशावती का राज्य श्रीरामचंद्र जी द्वारा दिया गया था ।

कुस्थलपुर

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में कुस्थलपुर के शासक धनंजय के समुद्रगुप्त द्वारा जीते जाने का उल्लेख है—'कांचेयक विष्णुगोप, अवमुक्तक

नीलराज, वैंगीयक हस्तिवर्मा, पालक्क उग्रसेन, दैवराष्ट्रक कुवेरकौस्थलपुरक धनंजय प्रभृति सर्व दक्षिणापथ राजा गृहणमोक्षानुग्रहजनित प्रतापोन्मिश्रमहा भाग्यस्य...' इस स्थान का अभिज्ञान निश्चित रूप से नहीं हो सका है। प्रसंग से इसकी स्थिति ज़िला विज़गापटम (आं० प्र०) के अंतर्गत होनी चाहिए।

कुहमीर (ज़िला भरतपुर, राजस्थान)

डीग और भरतपुर के बीच में स्थित है। यहां भरतपुर के जाट नरेशों का एक सुदृढ़ दुर्ग था जिसके द्वारा अपने राज्य की रक्षा करने में उन्हें बहुत सहायता मिलती थी। 1754 ई० में पांच मास तक मराठों की सेनाओं ने कुहमीर का घेरा डाला था। इसके पश्चात् 1778 ई० में मुगल सरदार नजफ़खां ने भी कुहमीर को घेर लिया था। उस समय भरतपुर की गद्दी पर राजा रणजीतसिंह आसीन थे। काफी दिनों के घेरे के पश्चात् सूरजमल की विधवा रानी किशोरी के चातुर्य से कुहमीर का किला रानी को रहने के लिए दे दिया गया और भरतपुर का इलाका रणजीतसिंह को वापस दे दिया गया।

कूचतार

पाणिनि 4,3,94 में उल्लिलिखित, वर्तमान कूचा (चीनी तुर्किस्तान या सिक्यांग)।

कूटक

श्रीमद्भागवत 5,19,16 में भारत के पर्वतों की सूची में कुटक का **ऋषभ** और **कोल्लक** नामक पर्वतों के साथ उल्लेख है—'भारतेप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैला: सन्ति बह्वो मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटऋषभ: कूटककौल्लक: सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूक: श्रीशैलो वेंकटो महेन्द्रोवारिधारो विन्ध्य:'। संदर्भ से यह ऋषभ के निकट विंध्य की पूर्व श्रेणियों में स्थित दक्षिण-भारत का कोई पर्वत जान पड़ता है।

कूपक दे० सतियपुत्रदेश

कूर्माचल

कुमायूं (उ० प्र०) क्षेत्र का प्राचीन पौराणिक नाम (अन्य नाम **कुमारवन**)। वर्तमान अल्मोड़ा तथा नैनीताल के जिले कुमायूं में स्थित हैं। संभवत: दिल्ली के सुलतान मु० तुगलक ने 1335 ई० के लगभग कूर्माचल के प्रदेश पर आक्रमण किया था जिससे उसकी सेना का अधिकांश मारा गया था। तारीखे-फ़िरोज़शाही के लेखक ज़ियाउद्दीन बर्नी ने इसका नाम 'क़राचल' लिखा है और इब्नबतूता ने कराजल पहाड़ और उसे दिल्ली से दस मंज़िल दूर बताया है। बर्नी के अनुसार कराचल हिंद और चीन के बीच में स्थित था। दे० **कुमायूं**।

कृतमाला

'ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी, कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी'—श्रीमद्भागवत 11,5, 39-40। विष्णु 2,3,12 में कृतमाला नदी को मलय पर्वत से उद्भूत माना गया है—'कृतमाला ताम्रपर्णी प्रमुखा मलयोद्भवा:'। कुछ विद्वानों के मत में कृतमाला वर्तमान वेगा या वेगवती है जो दक्षिण के प्रसिद्ध नगर मदुरा के निकट बहती है। प्राचीन समय में कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियों से सिंचित प्रदेश का नाम मालकूट था।

कृतमालेश्वर=कवलेश्वर (ज़िला कोटा, राजस्थान)

इंदुगढ़ रेलस्टेशन से आठ मील पूर्व में है। यह स्थान त्रिवेणी नदी के तट पर है। बूंदी नरेश महाराज अजीतसिंह के बनवाये शिव मंदिर और कुंड यहां स्थित हैं।

कृतवती=साबरमती (नदी)

कृमि

'वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम्' महा० भीष्म० 9,17। इस स्थल पर उल्लिखित नदियों की सूची में कृमि का उल्लेख है किंतु इसका अभिज्ञान अनिश्चित जान पड़ता है। प्रसंग से यह **इक्षुला** के निकट बहने वाली कोई नदी जान पड़ती है।

कृष्णगंडकी

नेपाल की एक नदी। इसका उद्भव मुक्तिनाथ-पर्वत (ऊंचाई समुद्रतल से 12000 फुट) में है। यह नदी धवलगिरि और अन्नपूर्णा नामक हिमालय-शृंगमालाओं के बीच से होकर बहती है और मुक्तिनाथ के निकट चक्रा-देविका नदियों में मिल जाती है।

कृष्णपुर दे० **क्लीसोबोरा**

कृष्णगिरि (उत्तरकोंकण, महाराष्ट्र)

बोरीवली स्टेशन से एक मील पर कृष्णगिरि पहाड़ी है। इसमें शिवोपासना से संबंधित तीन प्राचीन गुहामंदिर हैं। कन्हेरी की प्रसिद्ध गुफाएं यहां से छ: मील दूर हैं। कन्हेरी, कृष्णगिरि का ही अपभ्रंश है।

(2) हिन्दूकुश से लगा हुआ काराकोरम पहाड़। कृष्णगिरि का वायुपुराण 36 में वर्णन है।

कृष्णवेणा

महाभारत, सभा० 9,20 में उल्लिखित कृष्णवेणा ('गोदावरी कृष्णवेणा कावेरी च सरिद्वरा, किंपुना च विशल्या च तथा वैतरणी नदी') दक्षिण भारत

की कृष्णा ही जान पड़ती है। श्री चि० वि० वैद्य का मत है कि यह नदी कृष्णा से भिन्न है। किंतु इस विशिष्ट स्थल पर इसका गोदावरी और कावेरी के बीच उल्लेख होने के कारण तथा कृष्णा का पृथक् नामोल्लेख न होने से पहला मत ही ग्राह्य जान पड़ता है। (किंतु दे० कृष्णवेणी)।

कृष्णवेणी (ज़िला गुलबर्गा, आं० प्र०)

यह नदी गुलबर्गा के ज़िले में बहती है। इसके तट पर कई प्राचीन पुण्य-क्षेत्र हैं जिनमें छाया भगवती क्षेत्र प्रसिद्ध है। यह नारायणपुर ग्राम के सन्निकट है। महाभारत, सभा० 9,20 में उल्लिखित कृष्णवेणा, वर्तमान कृष्णा है। वास्तव में कृष्णा और वेणा की संयुक्त धारा का ही नाम कृष्णवेणी है।

कृष्णा

महाबलेश्वर (महाराष्ट्र) की पहाड़ियों से उद्भूत दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी। भीमा और तुंगभद्रा इसकी सहायक नदियां हैं। श्रीमद्भागवत 5,19, 18 में इसका उल्लेख है—'···कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावती तुंगभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी···' कृष्णा बंगाल की खाड़ी में मसुलीपटम् के निकट गिरती है। कृष्णा और वेणी के संगम पर माहुली नामक प्राचीन तीर्थ है। पुराणों में कृष्णा को विष्णु के अंश से संभूत माना गया है। महाभारत, सभा० 9,20 में कृष्णा को कृष्णवेणा कहा गया है और गोदावरी और कावेरी के बीच में इसका उल्लेख है जिससे इसकी वास्तविक स्थिति का बोध होता है—'गोदावरी कृष्णवेणा कावेरी च सरिद्वारा'।

केंदुबिल्व=केंदुली (प० बंगाल)

ओंडल-सैंथिया रेलमार्ग पर सिहुली स्टेशन से 18 मील दूर अजय नदी के उत्तर की ओर केंदुली या प्राचीन केंदुबिल्व ग्राम स्थित है, जिसे परंपरा से संस्कृत काव्य गीतगोविंद के रचयिता महाकवि जयदेव का जन्मस्थान माना जाता है।

केंदुली दे० **केंदुबिल्व**

केकय

रामायण तथा परवर्ती काल में पंजाब का एक जनपद। यह गंधार और विपाश या बियास नदी के बीच का प्रदेश था। वाल्मीकि० से विदित होता है कि केकय जनपद की राजधानी राजगृह या गिरिव्रज में थी। राजा दशरथ की रानी कैकेयी, केकयराज की पुत्री थीं और राम के राज्याभिषेक के पहले भरत-शत्रुघ्न राजगृह या गिरिव्रज में ही थे—'उभयौभरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परंतपौ, पुरे राजगृहे रम्येमातामहनिवेशने' अयो० 67,7 तथा 'गिरिव्रजपुरवरं

शोघ्रमासेदुरंजसा' अयो० 68,21। अयोध्या के दूतों की केकयदेश की यात्रा के वर्णन में उनके द्वारा विपाशा नदी को पार करके पश्चिम की ओर जाने का उल्लेख है—'विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्...' अयो० 68, 19। कनिंघम ने गिरिव्रज का अभिज्ञान झेलम नदी (पाकि०) के तट पर बसे गिरिजाक नामक स्थान (वर्तमान जलालाबाद, प्राचीन नगरहार) से किया है। अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय पुरु या पौरस केकय देश का राजा था। उस समय इसकी पूर्वी सीमा रामायणकाल केकय के जनपद की अपेक्षा संकुचित थी और इसका विस्तार झेलम और गुजरात के जिलों तक ही था। जैन लेखकों के अनुसार केकय देश का आधा भाग आर्य था (इंडियन ऐंटिक्वेरी 1891, पृ० 375)। परवर्ती काल में केकय के लोग शायद बिहार में जाकर बसे होंगे और वहां के प्रसिद्ध बौद्धकालीन नगर गिरिव्रज या राजगृह का नामकरण उन्होंने अपने देश की राजधानी के नाम पर ही किया होगा। केकय-राजवंश की एक शाखा मैसूर में जाकर बस गई थी (एंशेंट हिस्ट्री आव दकन, पृ० 88,101)। पुराणों में केकयों को अनु का वंशज बताया है। ऋग्वेद 1,108, 8;7, 18,14; 8,10,5 में अनु के वंश का निवास परुष्णी नदी (रावी) के निकट या मध्य-पंजाब में बताया गया है। जैन ग्रंथों में केकय के 'सेयविया' नामक नगर का भी उल्लेख है (इंडियन ऐटिक्वेरी 1891, पृ० 375)। रामायण से ज्ञात होता है कि कैकेयी के पिता का नाम अश्वपति और भाई का युधाजित् था।

केड्डा=कटाह

केतुमती

काशी का एक नाम जिसका बौद्ध-साहित्य में उल्लेख है।

केतुमाल

पौराणिक भूगोल के अनुसार जंबुद्वीप का एक विभाग। विष्णुपुराण 2,2, 37 के अनुसार चक्षु नदी (वंक्षु या आक्सस या आमू दरया) केतुमाल में प्रवाहित है—'चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति सागरम्'। आमू या चक्षु नदी रूस के दक्षिणी भाग केस्पियन सागर के पूर्व की ओर के प्रदेश में बहती है और इस प्रकार केतुमाल की स्थिति केस्पियन और अफगानिस्तान के बीच के भूभाग में मानी जा सकती है। विष्णु 2,2,35 में चक्षु को पश्चिम की ओर, और सीता या तरिम नदी को पूर्व की ओर माना है जो भौगोलिक तथ्य है।

केदारखंड

टिहरी गढ़वाल (उ० प्र०) का प्राचीन पौराणिक नाम। केदारनाथ यहीं स्थित है।

केदारनाथ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

उत्तराखंड का प्रसिद्ध तीर्थ। शिव का भारत-प्रसिद्ध मंदिर 11850 फुट की (समुद्र तल से) ऊंचाई पर स्थित है। इस घाटी के अन्य मंदिरों की भांति केदारनाथ के मंदिर पर भी दक्षिण की वास्तुशैली का स्पष्ट प्रभाव है। कुछ लोगों के मत में मंदिर के अग्रभाग के छाजन पर यूनानी कला का प्रभाव दिखाई पड़ता है किंतु यह मत असंगत है क्योंकि इस की शैली इस प्रदेश में प्रचलित, विशेषकर नेपाली वास्तु शैली से ही प्रभावित है। मंदिर के दो खंड हैं—पहले खंड में, जिसके ऊपर शिखर स्थित है, शिव की मूर्ति है। बाहर सभामंडप है जहां कई शिलालेख अंकित हैं। मंदिर कत्यूरी शासन के समय में बना जान पड़ता है जैसा कि शिखर की उपरली काष्ठवेष्टनी से सूचित होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि कत्यूरीकाल से पहले यहां कोई मंदिर अवश्य था क्योंकि कई शिला-लेख और मूर्तियां बहुत प्राचीन हैं। मंदिर के चारों कोनों पर चार प्रस्तर-स्तंभ हैं। भित्तियां बहुत स्थूल हैं। गर्भगृह के द्वार पर चौखट के चारों ओर अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सभामंडप में भी चार विशाल प्रस्तर-स्तंभ हैं। दीवारों के गोखों में भी मूर्तियां हैं जिन्हें पांडवों की प्रतिमाए कहा जाता है। मंदिर के बाहर नदी की विशाल मूर्ति है। केदारनाथ की शिवमूर्ति की गणना शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में है। मंदिर के पास आदि शंकराचार्य की समाधि है। कहते हैं कि मंदिर का निर्माण उन्होंने ही करवाया था और यहीं उनका शरीरांत हुआ था। समाधि के कोने में उसके निर्माताओं का नाम-पट्ट लगा है।

केन

केन या कियाना यमुना की सहायक नदी है। यह विंध्याचल से निकलती है। इसका प्राचीन नाम **कर्णावती, श्येनी** और **शुक्तिमति** है। केन सागर ज़िले के निकट विंध्याचल से निकलती है और छत्रपुर और पन्ना की सीमा बनाती हुई ज़िला बाँदा (उ० प्र०) के चीलतारा नामक स्थान पर यमुना में गिरती हैं। इसकी लंबाई 230 मील है।

केरल

मलयपर्वत की क्रोड में बसा हुआ प्रदेश जिसमें भूतपूर्व त्रावणकोर और कोचिन रियासतें सम्मिलित हैं। केरल का उल्लेख महाभारत, सभा० 31,71

में इस प्रकार है—'पांड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोड्र केरलैः, आंध्रास्ताल-वनांश्चैव कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्'। सभा० 51 में केरल और चोल नरेशों द्वारा युधिष्ठिर को दी गई चंदन, अगुरु, मोती, वैदूर्य तथा चित्रविचित्र रत्नों की भेंट का उल्लेख है—'चंदनागरु चानन्तं मुक्तावैदूर्यचित्रकाः, चोलश्च केरलश्चोभौ ददतुः पांडवाय वै'। केरल तथा दक्षिण के अन्य प्रदेशों को सहदेव ने अपनी दिग्विजययात्रा के दौरान जीता था। रघुवंश 4,54 में कालिदास ने केरल का उल्लेख किया है—'भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्, अलकेषु चमूरेणश्चूर्ण-प्रतिनिधी कृतः' अर्थात् दिग्विजय के लिए निकली हुई रघु की सेनाओं के केरल पहुँचने पर केरल-युवतियों—जिन्होंने भय से सारे विभूषण त्याग दिए थे—की अलकों में सेना की उड़ाई हुई धूलि ने प्रसाधन के चूर्ण का काम किया। अशोक के शिलालेख 2 में पांड्य, सातियपुत्र और केरल राज्यों का उल्लेख है। ताम्रपर्णी नदी तक इनका विस्तार माना गया है। परवर्ती काल में केरल को चेर भी कहा जाता था, जो केरल का रूपांतर मात्र है। केरल की मुख्य नदियां मुरला, ताम्रपर्णी, नेत्रवती और सरस्वती आदि हैं। श्री रायचौधरी के अनुसार उड़ीसा में महानदी के तट पर स्थित वर्तमान सोनपुर के पास के प्रदेश को भी केरल कहते थे क्योंकि यहां स्थित ययाति-नगरी से केरल युवतियों का संबंध धोई कवि ने अपने पवनदूत नामक काव्य में बताया है किंतु यह तथ्य संदेहास्पद है।

केरारकोट (जौनपुर, उ० प्र०)

यह स्थान जौनपुर में है जो बहुत प्राचीन माना जाता है। फिरोज़शाह तुग़लक का किला केरारकोट के स्थान पर ही बना है। किंवदंती है कि केरारकोट का प्राचीन दुर्ग केरारवीर नामक राक्षस ने बनाया था। इसे रामचंद्र जी ने मारा था। राक्षस का स्मृतिस्थान गोमती नदी पर बताया जाता है। केरारकोट के स्थान पर अताला मसजिद इब्राहीमशाह शर्की सुलतान ने 1408 ई० में बनवाई थी। पहले यहाँ अतलादेवी का मंदिर था।

केर्रागुडी (ज़िला कुरनूल, आं० प्र०)

गूटी के निकट एक चट्टान पर अशोक की चौदह मुख्य धर्मलिपियां तथा एक लघुधर्मलिपि अंकित हैं।

केलझर (म० प्र०)

प्राचीन नाम चक्रपुर या चक्रनगर है। यहां एक प्राचीन दुर्ग है जो अब खंडहर हो गया है। दुर्ग के भीतर नागपुर के भोंसलानरेश के इष्टदेव गणपति का मंदिर है। बापिका के निकट कई जैन मूर्तियां भी दिखलाई देती हैं जो कला

की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं हैं। एक दरवाज़े के अवशेष पर भी विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियां अंकित हैं। एक स्तंभ पर तीर्थंकर महावीर का समवाशरण बहुत ही सुंदर ढंग से उत्कीर्ण है।

केलस=कैलास (बर्मा)

ब्रह्मदेश में प्राचीन भारतीय नगर जिसका नाम हिंदू औपनिवेशिकों ने प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रसिद्ध कैलास पर्वत के नाम पर रक्खा था।

केशपुत्र=केसपुत्र

बुद्धकाल में कालामवंशीयों की राजधानी। अराड़ नामक बुद्ध का समकालीन दार्शनिक इन्हीं से संबंधित था—दे० बुद्ध चरित—12, 2—'स कालामसगोत्रेणतेनालोक्यैव दूरत:, उच्चै. स्वागतमित्युक्त: समीपमुपजग्मिवान्')। अराड़ के पास गौतम 'जरामरण रोग' का उपचार जानने के लिए गए थे (बुद्ध चरित 12, 14)। केशपुत्र नगर संभवत: बुद्ध चरित 12,1 '(अराडस्याश्रमं भेजे वपुषा पूरयन्निव') में वर्णित आश्रम के निकट ही होगा। संभवत: यह स्थान गोमती नदी के तट पर कोसलजनपद (उ० प्र०) में स्थित था। शतपथ ब्राह्मण (वैदिक इंडेक्स 1, पृ० 186) तथा पाणिनि 6, 4, 165 में उल्लिखित केशीलोग शायद इसी स्थान के निवासी थे। अंगुत्तरनिकाय 1, 188 के अनुसार केसपुत्त की स्थिति कोसल जनपद में थी। वाल्मीकि० उत्तर० 52, 1–2 में उल्लिखित केशिनी नदी संभवत: इसी जनपद की नदी थी।

केशवती

नेपाल की विष्णुमती नदी—स्वयंभू पुराण 4 में उल्लिखित।

केशवप्रयाग (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

बद्रीनाथ से वसुधारा जाने वाले मार्ग पर सरस्वती तथा अलकनदा के संगम पर प्राचीन पुण्य स्थान है। यहां से तिब्बत-भारत सीमा पास ही है।

केशिनी

अयोध्या के निकट एक नदी—'तत्र तां रजनीमुष्यकेशिन्यां रघुनंदन:, प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मण: प्रययौ तदा। ततोऽर्धं दिवसे प्राप्ते प्रविवेश महारथ:, अयोध्यां रत्नसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनावृताम्' वाल्मीकि० उत्तर० 52, 1–2।

केसपुत्त=केशपुत्र

केसरिया (ज़िला मोतीहारी, बिहार)

मोतीहारी से 22 मील है। इस ग्राम से 1 मील दक्षिण, 62 फुट ऊंचा डूह है, जिस पर ईंटों का 52 फुट ऊंचा स्तूप है जिसे ग्रामनिवासी राजा बेन का देवरा कहते हैं। युवानच्वांग के वर्णन के अनुसार वैशाली (वर्तमान बसाढ़,

ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार) से 200 ली या 30 मील पर एक प्राचीन नगर था जिसके ये ध्वंसावशेष जान पड़ते हैं। यह स्तूप बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार उस स्थान पर है जहां बुद्ध ने एक बड़े जनसमूह के सम्मुख घोषणा की थी कि पूर्वजन्म में भिक्षुक बनने के लिए ही उन्होंने राज्यत्याग किया था। एक अवसर पर बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनंद से कहा था कि इस स्तूप को लोगों ने चक्रवर्ती राज्य के लिए ऐसे स्थान पर बनाया था जहां चार मुख्य मार्ग मिलते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि केसरिया के स्तूप से चौथाई मील दूर दो मुख्य प्राचीन सड़कें मिलती हैं—एक अशोक की राजकीय सड़क जो पाटलिपुत्र के दूसरी ओर गंगा के उत्तरी तट से नेपाल की घाटी तक और दूसरी छपरा से मोतीहारी होते हुए नेपाल जाती है—(दे० **इसलिया**)।

केसरी

विष्णुपुराण के अनुसार शाकद्वीप का एक पर्वत-'आंबिकेयस्तथारम्यः केसरी पर्वतोत्तमः'।

केसलापुर दे० मानिकगढ़

कैथल=कपिष्ठल

कैरा (गुजरात)

प्राचीन खेटक आहार जो वलभिनरेशों के समय (छठी-सातवीं ई०) में गुजरात का प्रसिद्ध आहार (जिला) था। वलभिराज ध्रुवभट्ट शीलादित्य सप्तम के आलिना ताम्रपट्ट लेख में खेटक आहार के महिलाभिग्राम के दान में दिए जाने का उल्लेख है।

कैलवाड़ा (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

मेवाड़ का एक प्राचीन स्थान। अकबर के समकालीन मेवाड़पति उदयसिंह का सरदार वीर पत्ता कैलवाड़ा का शासक था। 1567 ई० में अकबर के चित्तौड़ पर आक्रमण करने के समय जयमल और पत्ता ने चित्तौड़ की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था।

कैलास (तिब्बत)

(1) मानसरोवर के निकट, प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रसिद्ध पर्वत जिस पर महादेव-शिव और पार्वती का निवास माना जाता है। कैलास पर्वत के विषय में अति प्राचीन काल से ही हमारे साहित्य में उल्लेख मिलते हैं। वाल्मीकि० किष्किंधा० 43 में सुग्रीव ने शतबल वानर की सेना को उत्तरदिशा की ओर भेजते हुए उस दिशा के स्थानों में कैलास का भी उल्लेख किया है—'तत्तु शीघ्रमतिक्रम्य कान्तारं रोमहर्षणम्-कैलासं पांडुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ'

किष्किंधा० 43, 20; अर्थात् उस भयानक वन को पार करने के पश्चात् श्वेत (हिममंडित) कैलास पर्वत को देखकर तुम प्रसन्न हो जाओगे। इससे आगे के श्लोकों में कैलास में कुबेर के स्वर्ण-निर्मित घर ('तत्र पांडुर मेघाभं जांबूनद-परिष्कृनम् कुबेरभवनं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा' 43, 21), विशाल झील—मानसरोवर ('विशाला नलिनी यत्र प्रभूतकमलोत्पला हंसकारंडवाकीर्णाप्सरो गण सेविता' 43, 22) तथा यक्षराज वैश्रवण या कुबेर और यक्षों ('तत्र वैश्रवणो राजा सर्वलोकनमस्कृत:, धनदो रम्यते श्रीमान् गुह्यकै: सह यक्षराट्' 43, 23) का वर्णन है। महाभारत वन० के अंतर्गत कैलास का उल्लेख पांडवों की गंधमादन की यात्रा के प्रसंग में है जहां कैलास को लाँघने के पश्चात् उसके परवर्ती प्रदेश में केवल देवर्षियों की गति ही संभव है—'अस्यातिक्रम्य शिखरं कैलासस्य युधिष्ठिर, गति: परमसिद्धानां देवर्षीणां प्रकाशते'—वन० 159, 24। वन० 139, 11 में विशाला या बद्रीनाथ को कैलास के निकट बताया गया है—"कैलास: पर्वतो राजन् षड्योजनसमुच्छ्रित: यत्र देवा समायान्ति विशाला यत्र भारत।" भीष्म० 6, 41 में कैलास का दूसरा नाम हेमकूट भी कहा गया है तथा वहां गुह्यकों (यक्षों) का निवास माना गया है—'हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वत: यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकै: सह मोदते'। मेघदूत (पूर्वार्ध, 60) में क्रौंच रंध्र के आगे कैलास का वर्णन है—'गत्वा चोर्द्धवं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थ सन्धे: कैलासस्य त्रिदशवनिता दर्पणस्यातिथि: स्या:तुंगोच्छ्रायै: कुमुदविशदैर्योवितत्य स्थिति: खं, राशीभूत: प्रतिदिशमिवत्र्यम्बकस्याट्टहास:'। यह द्रष्टव्य है कि वाल्मीकि० किष्किंधा० 43, 20 और मेघदूत के उपर्युक्त वर्णन, दोनों ही में कैलास के धवल-हिममंडित सौंदर्य को सराहा गया है। आज भी कैलास के यात्री इस पर्वत की, जिसके शिखर सदा हिम से ढके रहते हैं—श्वेत आभा को देखकर मुग्ध हो जाते हैं तथा कालिदास की सुन्दर उपमाओं (देववधुओं के दर्पण के समान स्वच्छ, कुमुदपुष्पों के समान विशद और शिव के अट्टहास का मानो राशीभूत रूप) की सार्थकता उनकी समझ में आती है। मेघदूत की अलकापुरी कैलास पर ही बसी थी। कालिदास ने पूर्वमेघ, 65 में गंगा को कैलास की गोद में अवस्थित बताया है (दे० **अलका**)। यहां गंगा से अलकनंदा का निर्देश समझना चाहिए क्योंकि अलकनंदा कैलास के निकट बहती हुई बद्रीनाथ आती है और नीचे गंगा के गंगोत्री वाले स्रोत में मिल जाती है। संभवत: यह गंगा का मूल स्रोत ही हो। बुद्ध चरित 28, 57 में बौद्ध स्तूपों की भव्यता की तुलना कैलास के हिमाच्छादित शिखरों से की गई है।

(2) इलौरा में स्थित कैलास मंदिर। इस मंदिर में कैलास पर्वत की

अनुकृति निर्मित की गई है ।

(3)=कौलास (ज़िला नंदेड़, महाराष्ट्र)

(4)=केलस (बर्मा)

कैवल्या (मद्रास)

कालहस्ती से प्राय: 15 मील दूर वेंकटतीर्थ के निकट यह नदी प्रवाहित होती है । इसके तट पर प्राचीन शिव मंदिर है ।

कोंकण (महाराष्ट्र)

प्राचीन साहित्य में इसे अपरांत का उत्तरी भाग माना गया है । महाभारत शान्ति० 49, 66–67 में अपरान्त भूमि का सागर द्वारा परशुराम के लिए उत्सर्जित किए जाने का उल्लेख है (दे० **अपरांत**) । कोंकण का उल्लेख दशकुमारचरित के आठवें उच्छ्वास में है ।

कोंगू=कुंग

इस देश का (वर्तमान मैसूर का इलाका) प्रथम शती ई० से आगे का इतिहास कोंगू-देश-राजाक्कल नामक तामिल ग्रंथ में है । इसका टेलर (Taylor) ने अनुवाद किया है ।

कोंगोद

चीनी यात्री युवानच्वांग ने इस देश का उल्लेख महाराजा हर्ष की विजय-यात्राओं के प्रसंग में करते हुए लिखा है कि कोंगोद पर आक्रमण के पश्चात् हर्ष बंगाल की ओर चला गया । हर्ष का शासनकाल 606–647 ई० है । कोंगोद का अभिज्ञान गंजम (उड़ीसा) से किया गया है (दे० डा० रा० कु० मुकर्जी—हर्ष, पृ० 85) । श्री ह० कृ० महताब (हिस्ट्री ऑफ़ उड़ीसा, पृ० 29) के अनुसार महानदी से ऋषिकुल्या नदी तक का विस्तृत भूभाग कोंगोद कहलाता था । चौथी शती ई० में यहां शैलोद्भव-वंश के राज्य की स्थापना हुई थी ।

कोंडाणा

महाराष्ट्र के प्रख्यात दुर्ग सिंहगढ़ का प्राचीन नाम । दे० **सिंहगढ़** ।

कोंडापुर (ज़िला मेदक, आं० प्र०)

हैदराबाद से 43 मील है । यहां कई प्राचीन खंडहरों के टीले हैं । उत्खनन द्वारा बौद्ध स्तूप, चैत्यशालाएं और भूमिगत कोष्ठ तथा भट्ठियां प्रकाश में आई हैं । ये अवशेष आंध्रकालीन है । रोम सम्राट् आगस्टस (37 ई० पू०–16 ई०) की एक स्वर्णमुद्रा, एक दर्जन के लगभग चांदी के, 50 तांबे के, 100 टीन के और सैंकड़ों सीसे के सिक्के भी खंडहरों से प्राप्त हुए हैं । तरह-

तरह के मिट्टी के बर्तन भी जिन पर सुंदर चित्रकारी की हुई है, खुदाई में मिले हैं। चित्रों में धर्मचक्र, त्रिरत्न तथा कमल के चिह्न उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त मूल्यवान् पत्थर, सीप, हाथीदांत, शीशे, लोहे, तांबे के आभूषण, माला की गुरियां तथा हथियार आदि भी मिले हैं। कुबेर तथा बोधिसत्व की मिट्टी की सुंदर प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं। पुरातत्त्वविदों का विचार है कि यहां से प्राप्त माला की गुरियां लगभग तीन सहस्र वर्ष प्राचीन हैं। कोंडापुर को उसकी पुरातत्त्व-विषयक मूल्यवान् तथा प्रचुर सामग्री के कारण दक्षिण की तक्षशिला कहते हैं।

कोंडाविडु (ज़िला गंतूर, आं० प्र०)

1335–36 में बहमनी राज्य के विघटन के पश्चात् आंध्रदेश की कई रियासतें स्थापित हो गई थीं। इनमें से एक रेड्डु लोगों ने बसाई थी जिसकी राजधानी पहले अड्डांकी और फिर कोंडाविडू में बनाई गई थी। इस रियासत की नींव प्रोलयबेम रेड्डी ने डाली थी।

कोइलकुंडा (ज़िला महबूबनगर, आं० प्र०)

इस स्थान का प्राचीन किला गोलकुंडा के सुलतान इब्राहीम कुतुबशाह ने बनवाया था। इसके भीतर सुंदर भवन थे जो अब खंडहर बन गए हैं। कोइल-कुंडा शब्द गोलकुंडा का ही रूपांतर है।

कोकनद

'ततस्त्रिगर्ता: कौन्तेयंदार्वा: कोकनदास्तथा, क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वश:' महा० सभा० 27, 18। अर्जुन ने कोकनद जनपद को त्रिगर्त और दार्वप्रदेशों के साथ ही जीता था। कोकनद की स्थिति इस प्रकार जालंधर द्वाब (पंजाब) के निकट होनी चाहिए।

कोकरा

मुगलकाल में छोटा नागपुर (बिहार) का नाम। इसका नामोल्लेख अबुल-फ़जल तथा तुजुके-जहांगीरी में है।

कोकामुख

'कोकामुखमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी यतव्रत:, जातिस्मरत्वमाप्नोति दृष्टमेतत् पुरातनै:' महा० वन० 84, 158। अर्थात् संयम-सम्पन्न ब्रह्मचारी कोकामुख तीर्थ में जाने से पूर्वजन्मों का वृत्तांत जान लेता है—यह बात प्राचीन लोगों की अनुभूत है। वनपर्व के अंतर्गत तीर्थों के वर्णन में इसका उल्लेख है। प्रसंग से इसकी स्थिति पंजाब में जान पड़ती है क्योंकि आगे 84, 160 में सरस्वती नदी के तीर्थों का वर्णन है। कोकामुख का उल्लेख उर्वशीतीर्थ और कुंभकर्णाश्रम

(84, 157) के आगे है किंतु इन स्थानों का अभिज्ञान अनिश्चित है। श्री नं० ला० डे के अनुसार कोकामुख ज़िला पूर्णिया में स्थित वराह क्षेत्र है। श्री वा० श० अग्रवाल के मत में यह गंगा की उत्तरपूर्वी सहायक नदी सुन-कोसी और ताम्रारुणा नदियों के संगम पर स्थित था (दे० कादंबिनी, सितम्बर 1962)।

कोटपेट्ट (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

चालुक्यकालीन वास्तुकला के उदाहरण के रूप में एक सुंदर मंदिर के अवशेष यहां स्थित हैं।

कोटबान=कोटमान (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

दिल्ली-आगरा सड़क पर स्थित है। 18वीं शती में जाटों का एक मुख्य दुर्ग यहां था। इस दुर्ग की बाहरी दीवार मिट्टी की थी और मुख्य क़िला ईटों का बना था। अब यह खंडहर हो गया है और भीतरी संरचना का केवल एक द्वार ही अवशिष्ट है। भरतपुर के प्रसिद्ध जाट राजा सूरजमल ने कोटमान के एक जाट सरदार सीताराम की पुत्री के साथ अपने पुत्र नवलसिंह का विवाह किया था। सीताराम ने सूरजमल की कई युद्धों में सहायता की।

कोटलगढ़ दे० **उमावन**।

कोटला

दिल्ली के पास फीरोजशाह कोटला—जहां तुगलक-सुलतानों ने 14वीं शती में अपनी नई राजधानी बसाई थी। यहां फ़ीरोजशाह तुग़लक का मकबरा व अशोक का स्तंभ है। (दे० **दिल्ली**)।

कोटा (ज़िला शिवपुरी, म० प्र०)

7वीं शती से 9वीं शती ई० तक के पुरातत्त्व-संबंधी अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

(राजस्थान) कोटाबूंदी की रियासत का जन्म मध्यकाल में हुआ था। यहां के क्षत्रिय हाड़ा कहलाते थे। बूंदी नरेश छत्रसाल हाड़ा दारा की ओर से औरंगज़ेब के साथ 1658 ई० के उत्तराधिकार युद्ध में लड़ा था। इसी युद्ध में वह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया था।

कोटाटवी

आटविक प्रदेश (म० प्र० का पूर्वोत्तर तथा उ० प्र० का दक्षिण-पूर्व भाग जो वनों की प्रचुरता के कारण आटविक या अटवी कहलाता था) का एक भाग जिसका उल्लेख संध्याकरनंदिरचित रामचरित (पृ० 36) की टीका में है।

कोटिकापुर

जैन ग्रंथ राजवलीकथा के अनुसार कोटिकापुर में अंतिम केवली श्री जंबुस्वामी का स्तूप स्थित था (दे० मुनि कांतिसागर—खंडहरों का वैभव, पृ० 44)। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है।

कोटिगाम=कोटिग्राम

बौद्धग्रंथ महापरिनिर्वाण सुत्तांत में वर्णित स्थान, जो संभवत: कुंदग्राम का पर्याय है। कुंदग्राम जैन-तीर्थंकर महावीर का जन्मस्थान था—दे० **कुंदग्राम**।

कोटितीर्थ

कोटितीर्थ नाम से महाभारत तथा पुराणों में अनेक स्थानों का अभिधान किया गया—'स्वर्गद्वारेणयत्तुल्यं गंगाद्वारं न संशय:, तत्राभिषेकं कुर्व्वीत कोटितीर्थे समाहित:' वन० 84, 27। इस स्थल पर गंगाद्वार या हरद्वार को ही कोटितीर्थ कहा गया है। इसके अतिरिक्त कालिंजर, नर्मदा के उद्भव-स्थान अमरकंटक और प्रयाग के निकट शिवकोटि आदि स्थानों पर भी कोटि-तीर्थ माने गए हैं। महाभारत वन० 84, 77 में ('कोटितीर्थे नर: स्नात्वा अर्चयित्वा गुहं नृप, गोसहस्रफलं विद्यात् तेजस्वी च भवेन्नर:') वाराणसी और गोमती के बीच के प्रदेश में भी एक कोटितीर्थ का वर्णन है जहां गुह या कार्तिकेय (स्कंद) की पूजा होती थी। वन० 82, 49 में धर्मारण्य (गुजरात) के निकट भी कोटितीर्थ का उल्लेख है—'कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफलंलभेत्'। वास्तव में कोटितीर्थ का अर्थ है करोड़ों तीर्थ जिस स्थान पर हों और इस प्रकार यह नाम प्राय: सामान्य विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

कोटिनार=कोडिनार

कोटिपल्ली=कोटिवल्ली

कोटिवर्ष

दामोदरपुर (जिला दीनाजपुर, बंगाल) से प्राप्त होने वाले ताम्रपट्ट-लेखों के अनुसार पांचवी-छठी शती ई० में कोटिवर्ष, पुंड्रवर्धन नामक भुक्ति का एक विषय या ज़िला था। कोटिवर्ष से ही ये दानपट्ट प्रचलित किए गए थे—'कोटिवर्षअधिष्ठानाधिकरणस्य···'। अभिलेखों से सूचित होता है कि कोटिवर्ष-विषय की स्थिति आधुनिक राजशाही, दीनाजपुर, मालदा, और बोगरा के ज़िलों में रही होगी। कोटिवर्ष-विषय का मुख्य स्थान शायद फ़रीदपुर के पास होगा जहां से एक दानपट्ट प्राप्त हुआ है।

कोटिवल्ली (आं० प्र०)

गोदावरी सागर संगम पर प्राचीन स्थान है जिसका पुराणों में भी उल्लेख

है। इसका वर्तमान नाम कोटिपल्ली है।

कोटिशिला

जैन ग्रंथ विविधतीर्थकल्प में मगध के एक तीर्थ का नाम। इस स्थान का अनेक जैन साधुओं से संबंध बताया गया है जिनमें चक्रायुद्ध मुख्य हैं।

कोटीश्वर=कोटेश्वर (कच्छ, गुजरात)

समुद्रतट पर छोटा-सा बंदरगाह है। कच्छ की प्राचीन राजधानी इसी स्थान पर थी। संभव है कि चीनी यात्री युवानच्वांग ने जिस नगर किए-शिफाली का कच्छ की राजधानी के रूप में अपने यात्रावृत्त में वर्णन किया है वह कोटीश्वर ही हो। प्रो० लोशन के मत में किए-शिफाली का संस्कृत रूप कच्छेश्वर होना चाहिए। कोटेश्वर में इसी नाम का एक शिवमंदिर है। यहां से दो मील पर कच्छ-प्रदेश का अतिप्राचीन तीर्थ नारायणसर है जहां महाप्रभु वल्लभाचार्य सोलहवीं शती में आए थे।

कोट्टनर

प्राचीन रोम के इतिहासलेखक प्लिनी ने भारत के सुदूर-दक्षिण के इस प्रदेश का उल्लेख करते हुए इसे कालीमिर्च का समुद्रतट कहा है क्योंकि रोमसाम्राज्य से जो व्यापार भारत के साथ ई० सन् के प्रारंभिक काल में होता था उसमें कालीमिर्च प्रमुख पण्यवस्तु थी। यह कोट्टनर के प्रदेश में प्रचुरता से उत्पन्न होती थी। विंसेंट स्मिथ के मत में कोट्टनर केरल राज्य में स्थित वर्तमान कोट्टायम और क्विलन का इलाका रहा होगा (अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० 476)।

कोट्टूरगिरि (वर्तमान कोठूर, ज़िला गंजम, उड़ीसा)

इस स्थान को समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में गिरिकोट्टूर कहा गया है (दे० **गिरिकोट्टूर**)।

कोडिनार=कोडिनारक (सौराष्ट्र, बम्बई)

कहा जाता है कि प्राचीन द्वारका वर्तमान कोडिनार नामक स्थान पर थी। आजकल कोडिनार काठियावाड़ के समुद्रतट पर स्थित एक छोटा-सा बंदरगाह है। इसका जैन ग्रंथ विविधतीर्थकल्प में उल्लेख है। इस नगर के सोभ नामक विद्वान् एवं तपस्वी ब्राह्मण की कथा इस प्रसंग में वर्णित है। कोडिनारक या कोडिनार गिरनारपर्वत के निकट स्थित है (दे० मुनि चरितविजय रचित विहार दर्शन—पृ० 229)। कोडिनारक का उल्लेख जैनस्तोत्र तीर्थमाला-चैत्यवंदन में इस प्रकार है—'कोडीनारक मंत्रिदाहडपुरे श्री मंडपेचार्बुदे'।

कोणार्क (उड़ीसा)

उड़ीसा की प्राचीन राजधानी। किंवदंती के अनुसार चक्रक्षेत्र (जगन्नाथपुरी) के उत्तरपूर्वी कोण में यहां अर्क या सूर्य का मंदिर स्थित होने के कारण इस स्थान को कोणार्क कहा जाता था। पुराणों में कोणार्क को मैत्रेयवन और पद्मक्षेत्र भी कहा गया है। एक कथा में वर्णन है कि इस क्षेत्र में सूर्योपासना के फलस्वरूप श्रीकृष्ण के पुत्र सांब का कुष्ठ रोग दूर हो गया था और यहीं चंद्रभागा में बहते हुए कमलपत्र पर उसे सूर्य की प्रतिमा मिली थी। आईने-अकबरी में अबुलफ़जल लिखता है कि यह मंदिर अकबर के समय से लगभग सात सौ तीस वर्ष पुराना था किंतु मंडलापंजी नामक उड़ीसा के प्राचीन इतिहास-ग्रंथों के आधार पर यह कहना अधिक समीचीन होगा कि इस मंदिर को गंगावंशीय लांगुल नरसिंह देव ने बंगाल के नवाब तुग़ानखां पर अपनी विजय के स्मारक के रूप में बनवाया था। इसका शासन काल 1238-1264 ई० माना जाता है। एक ऐतिहासिक अनुश्रुति में मंदिर के निर्माण की तिथि शकसंवत् 1204 (= 1126 ई०) मानी गई है। जान पड़ता है कि मूलरूप में इससे भी पहले इस स्थान पर प्राचीन सूर्य मंदिर था। सातवीं शती ई० में चीनी यात्री युवानच्वांग कोणार्क आया था। उसने इस नगर का नाम चेलितालो लिखते हुए उसका घेरा 20 ली बताया है। उस समय यह नगर एक राजमार्ग पर स्थित था और समुद्रयात्रा पर जाने वाले पथिकों या व्यापारियों का विश्राम स्थान भी था। मंदिर का शिखर बहुत ऊंचा था और उसमें अनेक मूर्तियां प्रतिष्ठित थीं। जगन्नाथपुरी के मंदिर में सुरक्षित उड़ीसा के प्राचीन इतिहास-ग्रंथों से पता चलता है कि सूर्य और चंद्र की मूर्तियों को भयवंशीय नरेश नृसिंहदेव के समय (1628-1652) में पुरी ले जाया गया। 1824 ई० में स्टार्लिंग नामक अंग्रेज़ ने इस मंदिर को देखा था। उस समय यह नष्टप्राय अवस्था में था। वह लिखता है कि 'मंदिर के ध्वस्त होने का कारण स्थानीय लोग यह बताते हैं कि प्राचीन-काल में इस मंदिर के उच्चशिखर पर एक विशाल चुंबक लगा हुआ था जिसके कारण निकटवर्ती समुद्र में चलने वाले जलयान खिंच कर रेतीले किनारे पर लग जाया करते थे। मुग़लकाल में एक जहाज़ के मल्लाहों ने इस आपत्ति से बचने के लिए मंदिर के शिखर का चुंबक उतार दिया और शिखर को भी तोड़फोड़ डाला। मंदिर के पुजारियों ने इस घटना को अपशकुन मानते हुए मूर्तियों को भी मंदिर से हटा कर पुरी भेज दिया।' स्टार्लिंग ने अपने समय की बचीखुची मूर्तियों की सुंदर कला को सराहा है। वह लिखता है कि कोणार्क की मूर्तिकारी की तुलना गॉथिक मूर्तिकला की अलंकरण-रचनाओं के सर्वोत्कृष्ट

उदाहरणों से सरलता से की जा सकती है। कोणार्क के सूर्यमंदिर को कृष्ण-मंदिर या ब्लेक पेगोडा भी कहते हैं। इसकी आकृति सूर्य के रथ के अनुरूप है। इसके विशाल एवं भव्य-चक्रों पर जो मनोरम मूर्तिकारी अंकित है वह सर्वथा अभूतपूर्व एवं अनोखी है। मंदिर का शिखर 'आमलक' प्रकार का है जिसके ऊपर अमृतकलश आधृत है। मंदिर में उड़ीसा की प्राचीन मंदिर-निर्माण-शैली के अनुरूप ही स्तंभों का अभाव है। कोणार्क का मंदिर भारत के सुंदरतम प्राचीन स्मारकों में से है। इसका विशेष वर्णन नीचे दिया जाता है।

प्राचीन जनश्रुतियों के अनुसार बारह सौ उड़िया कलाकारों ने इस मंदिर का निर्माण किया था। उन्होंने रातदिन परिश्रम करके इसे बनाया था किंतु इसके निर्माण का कार्य इतना विराट् था कि मंदिर फिर भी पूरा न बन सका। मंदिर को बनाने के समय चंद्रभागा और चित्रोत्पला नदियों का प्रवाह रोकना पड़ा था। कहा जाता है कि इस मंदिर पर कुल बारह सौ करोड़ रुपया व्यय हुआ था। शायद संसार के इतिहास में किसी एक भवन के निर्माण में इतना धन व्यय नहीं हुआ। मंदिर की संरचना सूर्यदेव के विराट् रथ या विमान के रूप में की गई है। बारह राशियों के प्रतीक इस मंदिर के आधारभूत बारह महाचक्र हैं और सूर्य (सप्तसप्ति) के सात अश्वों के परिचायक रूप में यहां भी सात विशाल घोड़ों की मूर्तियां थीं। वास्तव में सूर्य के सात घोड़े उसकी किरणों के सात रंगों के प्रतीक हैं। एक किंवदंती है कि कोणार्क का प्राचीन नाम कोन-कोन था। सूर्य (अर्क) के मंदिर बन जाने से यह नाम कोनार्क या कोणार्क हो गया। सूर्य-मंदिर के दो भाग हैं—रेखा अथवा शिखर और भद्र अथवा जगमोहन, जिसके ऊपर शिखर निर्मित है। तांत्रिक मत के अनुसार (तांत्रिकों का प्रभाव उड़ीसा में काफ़ी समय तक रहा है) मंदिर के दोनों भाग पुरुष और स्त्रीत्व के वास्तु-प्रतीक हैं जो अभिन्न रूप में जुड़े हैं। रेखा भाग 180 फुट और भद्र 140 फुट ऊंचा है। मंदिर के चतुर्दिक् परकोटा खिंचा हुआ है और पूर्व, दक्षिण और उत्तर की ओर इसके प्रवेशद्वार हैं। मुख्य द्वार पूर्व की ओर है जहां हाथी की पीठ पर आसीन सिंहों की मूर्तियां निर्मित हैं। दक्षिणी प्रवेशद्वार पर दो अश्वमूर्तियां और उत्तरी द्वार पर मनुष्यों को सूंड पर उठाए हुए दो हाथी प्रदर्शित हैं। पहले सभी द्वारों पर मूर्तियां उत्कीर्ण थीं किंतु अब केवल पूर्वी द्वार ही की नक्क़ाशी शेष है। द्वार के ऊपर नवग्रहों का अंकन था (यह मूर्तिखंड कोणार्क के संग्रहालय में है)। इसके ऊपर, सूर्यदेव की पद्मासनस्थ मूर्ति गोखे में स्थित थी। मंदिर के सामने एक मंडप था जिसे 18वीं शती में मराठों ने पुरी भेज दिया था। जगमोहन के आगे एक नाट्य मंदिर है जिसकी तक्षणकला

सराहनीय है। मंदिर के आधार के निम्नतम भाग में वन्य पशुओं तथा हाथियों के आखेट के जीवंत मूर्तिचित्र हैं। इसके ऊपर अनेक मूर्तियां विभिन्न प्रणयमुद्राओं में अंकित हैं जिससे मंदिर पर तांत्रिक प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मंदिर मध्ययुगीन होते हुए भी गुप्तकालीन वास्तुपरंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है। अबुलफ़ज़ल ने इसके लिए ठीक ही लिखा है कि कला के आलोचक इस मंदिर को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। वास्तव में यह अद्भुत कलाकृति अपने महान् निर्माता के स्वप्न की साकार अभिव्यक्ति ही जान पड़ती है।

कोतवार दे० **कांतिपुरी** तथा **कुंतिभोज**

कोनकोन दे० **कोणार्क**

कोपन (मैसूर)

यह प्राचीन पौराणिक तीर्थ राइस के अनुसार वर्तमान कोपल या कोप्पल है जो तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित है—(दे० कुर्ग इंसक्रिपशंस—1914, पृ० 15)। राइस ने कोप्पम को जिसका एक अभिलेख (फ्लीट—एपिग्राफ़िका इंडिका 12, 299) में उल्लेख है कोपन तीर्थ ही माना है। विंसेंट स्मिथ के अनुसार यह अभिज्ञान ठीक नहीं है और कोप्पम कोल्हापुर (महाराष्ट्र) से तीस मील पर स्थित वर्तमान खिदरापुर है (दे० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया—पृ० 448)।

कोपबल (मैसूर)

इस स्थान के निकट गावीमठ में अशोक की एक लघुधर्म-लिपि चट्टान पर उत्कीर्ण, कुछ ही वर्ष पूर्व, प्राप्त हुई थी।

कोपरगांव (महाराष्ट्र)

धौंड-मनमाड रेलपथ पर, गोदावरी के निकट प्राचीन स्थान है जिसे किंवदंती में दैत्य-गुरु शुक्राचार्य का आश्रम कहा जाता है। यह भी लोगों का विश्वास है कि कच-देवयानी के प्रसिद्ध पौराणिक उपाख्यान की घटनास्थली यही है। यहां देवयानी का स्थान तथा कचेश्वर शिव मंदिर है। (टि०-देवयानी का पितृगृह अर्थात् शुक्राचार्य का आश्रम एक दूसरी जनश्रुति में देवयानी नामक स्थान (राजस्थान) में भी माना जाता है।)

कोपल दे० **कोपन**

कोप्पम दे० **कोपन, खिदरापुर**

कोप्पल (ज़िला रायचूर, मैसूर)

दे० कोपन। यहां पहाड़ी पर स्थित दुर्ग अतिप्राचीन है। इसकी निचली क़िलाबंदियों की मरम्मत टीपू सुलतान के फ्रांसीसी इंजीनियरों ने की थी।

1857 ई० में भीमराव ने इसी गढ़ को अपना आश्रय बनाया था। क़िले के दो भाग हैं, ऊपरी क़िला 400 फुट ऊंची पहाड़ी के शिखर पर अवस्थित है। सर जॉन मालकम ने लिखा है कि उन्होंने इस दुर्ग से अधिक सुदृढ़ रचना भारत में अन्यत्र नहीं देखी थी।

कोमबेंग (बोर्नियो द्वीप, इंडोनीसिया)

कोमबेंग में एक प्राचीन गुहा में अनेक हिंदू तथा बौद्ध मूर्तियां मिली हैं जो शत्रुओं के आक्रमण के समय शायद महाकाम नदी की घाटी में स्थित किसी मंदिर में से लाकर यहां छिपा दी गई थीं। बोर्नियो में ई० सन् की प्रारंभिक शतियों में हिंदू उपनिवेशों तथा सभ्यता का विकास हुआ था।

कोमला

वायुपुराण—2, 37, 369 में वर्णित नगर—संभवत: वर्तमान कोमिल्ला (पू० पाकि०) छठी शती ई० में यहां टिपारा प्रदेश की राजधानी थी। यह युवानच्वांग का कियामोलोंगकिया है। इसका एक अन्य नाम कमलांक भी है।

कोयन

प्राचीन **ककुद्मती** (नदी)।

कोयल

सोन नदी की एक शाखा। इसमें छोटा नागपुर की पलाशिनी या परोस नदी मिलती है।

कोरकई (ज़िला तिन्नावेली, केरल)

ताम्रपर्णी नदी के तट पर प्राचीन काल का प्रसिद्ध नगर जो ई० सन् के पूर्व और पश्चात् कुछ शतियों तक बड़ा समृद्धिशाली बंदरगाह था। इसके द्वारा दक्षिण भारत का रोम साम्राज्य से भारी व्यापार होता था। यूनानियों ने भी इस स्थान का उल्लेख कोरकोई (Korkoi) नाम से किया है। पांड्य शासनकाल में मोतियों और शंखों के व्यापार का केन्द्र भी इस नगर में था। इनसे पांड्यनरेशों को विशेष आय होती थी। दक्षिण भारत की अनुश्रुतियो के अनुसार पांड्य, चेर और चोल राज्यों के संस्थापक तीन भाई यहीं के निवासी थे। पांड्यकाल में राजधानी मदुरा में थी फिर भी राज्य का उत्तराधिकारी राजकुमार कोरकई में ही रहता था क्योंकि इस नगर का व्यापारिक महत्त्व बहुत था। पांड्यनरेशों का राज्य-चिह्न परशु और हाथी था। आजकल कोरकई ताम्रपर्णी-नदी पर एक छोटा-सा ग्राम मात्र है। यह बंदरगाह मुहाने के रेत से भर जाने के कारण बेकार हो गया और धीरे-धीरे सुदूर दक्षिण का व्यापार नए बंदरगाह कायल में केंद्रित हो गया।

कोरवंगला (मैसूर)

चालुक्यकालीन वास्तुशैली में निर्मित प्राचीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

कोरुनकुला (दे० **वारंगल**)

कोर्पारिक

163 गुप्त संवत्=482 ई० के गुप्तकालीन दानपट्ट-लेख में जो खोह नामक स्थान—नगदा (म० प्र०) से प्राप्त हुआ था, कोर्पारिक नामक ग्राम का कुछ ब्राह्मणों को दान में दिए जाने का उल्लेख है। ग्राम खोह के निकट ही रहा होगा (दे० **खोह**)।

कोल

वर्तमान अलीगढ़ (उ० प्र०) के स्थान पर बसा हुआ प्राचीन नगर। संभवत: यहां वराह(कोल) भगवान् की उपासना का केन्द्र था जैसा कि यहां के वाराही के प्राचीन मंदिर से भी प्रमाणित होता है। यह भी किंवदंती है कि इस स्थान पर बलराम ने कोल नामक राक्षस को मारा था।

कोलगिरि

'कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपत्तनं तथा, द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा'—महा० सभा० 31, 68। सहदेव ने अपनी दिग्विजय यात्रा में इस स्थान पर विजय प्राप्त की थी। श्रीमद्भागवत 5, 19, 16 में कोल्लक नामक एक पर्वत का उल्लेख है। कोलगिरि संभवत: भारत के पश्चिम समुद्र-तट के निकट स्थित कोल्लक है। इस नाम का नगर भी शायद यहां स्थित था और कोलाचल और कोलगिरि शायद एक ही स्थान के पर्यायवाची नाम थे।

कोलम

क्विलन (केरल) का प्राचीन नाम। प्राचीन समय में यह इस प्रदेश का प्रसिद्ध बंदरगाह था। दे० **क्विलन**।

कोलर (मैसूर)

बंगलौर से 60 मील। मैसूर के प्रसिद्ध गंगवंशीय राजाओं की राजधानी लगभग 700 वर्षों तक यहां रही और 1004 ई० में उनका राज्य समाप्त होने पर कोलर से भी राज्यश्री विदा हुई। कोलर अपनी सोने की खानों के लिए प्रसिद्ध है। शायद यही प्रदेश प्राचीनकाल में सुवर्णगिरि कहलाता था।

कोलाचल (केरल)

प्रथम-द्वितीय शती ई० में प्रसिद्ध व्यापारिक स्थान तथा पश्चिम समुद्र तट

पर स्थित बंदरगाह था। इस स्थान का नाम कोलाचल या कोलगिरि पर्वत के नाम पर हुआ होगा। 18वीं शती में हालैंड निवासियों ने यहां व्यापारिक कोठियां बनाई थीं। 1741 ई० में उन्हें तिरुवांकुर नरेश मार्तंड वर्मा ने पराजित कर निकाल दिया था। इस घटना के संस्मारक के रूप में एक प्रस्तर-स्तंभ यहां अवस्थित है। कालिदास के काव्यों के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ शायद इसी कोलाचल के निवासी थे। दे० **कोलम, क्विलन।**

कोलापुर (बरार, महाराष्ट्र)

एलिचपुर से 21 मील दक्षिण में है। फ्लीट के मत में यह ग्राम प्राचीन कोल्लहपुरक है जिसका उल्लेख वाकाटकनरेश प्रवरसेन द्वितीय के मिउनी से प्राप्त ताम्र-दानपट्ट में है।

कोलाबा

महानगरी बंबई का एक भाग। इतिहास में वर्णित है कि बंबई के सात द्वीपों में 16वीं शती तक आदिम जातियों का निवास था जिनमें कोली नामक लोग भी थे। संभवतः कोलाबा का नाम इन्हीं कोलियों के नाम पर पड़ा था।

कोलाहलगिरि

'सापि द्वितीये संप्राप्ते वीक्ष्य दिव्येन चक्षुषा, ज्ञात्वा शृगालं तंद्रष्टुं ययौ कोलाहलं गिरिम्' विष्णु 3, 18, 72। कोलाहलगिरि का उपर्युक्त उल्लेख एक आख्यान के प्रसंग में है। वायुपुराण 1, 45 में भी इसका उल्लेख है। यह कोलाचल या कोलगिरि का रूपांतरित नाम हो सकता है। श्री नं० ला० डे के अनुसार इसका अभिज्ञान ब्रह्मयोनि पहाड़ी, गया (बिहार) से किया गया है।

कोलिय गणराज्य

पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा नेपाल की सीमा पर स्थित बुद्धकालीन गणराज्य। गौतम बुद्ध की माता मायादेवी इसी राज्य के गणप्रमुख सुप्रबुद्ध की कन्या थी। स्थानीय किंवदंती के अनुसार ज़िला बस्ती (उ० प्र०) में टिनिच रेलस्टेशन से दो मील पूर्व और कुआनो नदी के दक्षिणी किनारे पर रेल के पुल से आधा मील दूर बड़ा चत्रा—वराह क्षेत्र—नामक एक ग्राम है जो पुराणों में वर्णित व्याघ्रपुर के प्राचीन नगर के स्थान पर बसा हुआ है। इसे ही बौद्ध-साहित्य का कोलियनगर कहा जाता है जहां सुप्रबुद्ध की राजधानी थी। बौद्ध साहित्य में मायादेवी का पितृगृह देवदह नामक स्थान पर बताया गया है। कोल शब्द का अर्थ वराह भी है और इसी कारण से शायद इस स्थान का परंपरागत नाम वराहक्षेत्र या अपभ्रंश रूप में बड़ा चत्रा चला आ रहा है। कुछ लोगों का

यह भी मत है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश की एक जाति कोली प्राचीन कोलियों से संबद्ध है।

कोलुआ (ज़िला मुज़फ्फ़रपुर, बिहार)

बसाढ़ या प्राचीन वैशाली से दो मील उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित एक ग्राम जिसका अभिज्ञान महावंश 4, 12 में उल्लिखित महावन नामक स्थान से किया गया है। यह बौद्धकाल में वैशाली का एक उपनगर या उद्यान था। यहां अशोक का एक स्तंभ अवस्थित है।

कोल्लक

श्रीमद्भागवत 5,19,16 में उल्लिखित एक पर्वत—'मंगलप्रस्थो मैनाक-स्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिः'—कोल्लक सह्याद्रि की ही किसी पर्वत-श्रेणी का नाम जान पड़ता है। सभवतः यह कोलगिरि का ही रूपांतरित नाम है जिसका उल्लेख महाभारत 2,31,68 में है (दे० **कोलगिरि**)।

कोल्लहपुर = कोलापुर

कोल्लाग

वैशाली का उपनगर, जहां जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी के ज्ञातिजनों का निवास स्थान था। उनके पिता सिद्धार्थ ज्ञात्रिक गोत्र से संबंधित थे तथा उनके आस्थान कुंदग्राम तथा कोल्लाग में थे। ये दोनों वैशाली के उपनगर थे। कुंदग्राम महावीर का जन्मस्थान था। जैन सूत्र-ग्रंथ कल्पसूत्र (खंड 114-116) में कोल्लाग को महावीर जी का जन्मस्थान बताया गया है। यहां स्थित द्विपलाश नामक चैत्य का भी उल्लेख कल्पसूत्र में है।

कोल्लूर (मद्रास)

कृष्णा नदी के दक्षिण में स्थित है। इस स्थान पर प्राचीन समय में हीरे की खानें थीं। एक किंवदंती के अनुसार संसार-प्रसिद्ध कोहनूर यहीं की खान से 1656-57 ई० में प्राप्त हुआ था और मीरजुमला ने इसे मुग़ल सम्राट् शाहजहां को भेंट में दिया था। अन्य किंवदन्तियां ऐसी भी है जिनके अनुसार कोहनूर का इतिहास कहीं अधिक प्राचीन है। कहा जाता है कि पहली बार इस हीरे ने महाराज युधिष्ठिर के मुकुट की शोभा बढ़ाई थी और कालक्रम से यह रत्न भारत के बड़े महाराजाओं तथा सम्राटों के पास रहा। अब यह हीरा, जो प्रारंभ मे $787\frac{1}{2}$ कैरेट का था, कट-छट कर बहुत हलका रह गया है और इंग्लैड की महारानी एलिज़ाबेथ के ताज में जड़ा हुआ है। यह भी संभव है कि जो हीरा मीरजुमला ने शाहजहां को भेंट किया था वह मुगलेआज़म नामक हीरा था यद्यपि कुछ लोग कोहनूर और मुगलेआज़म को एक ही मानते हैं। कोल्लूर की खान से दूसरा

जगत्प्रसिद्ध हीरा 'होप' नामक भी प्राप्त हुआ था किंतु कोहनूर के विपरीत इसे बहुत ही भाग्यहीन समझा जाता है। 1642 ई० में यह हीरा फ्रांसीसी यात्री टवर्नियर के हाथ में पहुँचा। तब इसका भार 67 कैरेट था। टेवर्नियर ने भारत से लौटने पर इसे फ्रांस के सम्राट् चौदहवें लुई को भेंट में दिया। इसके पश्चात् यह फ्रांस की रानी मेरी एनतिनोते के पास पहुँचा जिसका फ्रांस की राज्यक्रांति (1789 ई०) के काल में वध कर दिया। इसके पश्चात् यह होप-परिवार के पास आया। तीन पीढ़ियों के बाद यह अन्य हाथों में जा चुका था। लार्ड फ्रांसिस होप जिनके पास यह था अपनी सारी संपत्ति खो बैठे और उनकी पत्नी की भी अचानक मृत्यु हो गई। उन्होंने इसे एक तुर्की व्यापारी के हाथ बेच दिया जो बेचारा डूबकर मर गया। उसने पहले ही इसे तुर्की के सुलतान अब्दुल हमीद को बेच दिया था। वे राज्य-च्युत हुए और कारागार में मरे। तत्पश्चात् यह अभागा हीरा एक अमरीकी परिवार में श्रीमती मेकलीन के यहां पहुँचा। उनका पुत्र एक मोटर दुर्घटना में मारा गया। श्रीमती मेकलीन ने इसे फिर भी न छोड़ा और एक ईसाई पुजारी से इसे अभिमंत्रित करवाया। किंतु उनके पास भी यह न रह सका और थोड़े समय से आजकल एक अन्य अमरीकी परिवार के पास है। इस प्रकार भारत की कोल्लूर खान से उत्पन्न यह नीली कांति वाला दीप्तिमान किंतु अभिशप्त रत्न संसार में दूर-दूर जाकर अनेक हाथों में रहा है किंतु दुर्भाग्यवश जहां भी यह गया वहां दुर्घटनाएँ इसकी सहेलियां रही हैं।

कोल्हापुर दे० **करवीर**

कोशल दे० **कोसल**

कोसम (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

यमुना-तट पर स्थित एक ग्राम जिसका अभिज्ञान बौद्धकाल की प्रसिद्ध नगरी कौशांबी से किया गया है।

दे० **कौशांबी**।

कोसल

उत्तरी भारत का प्रसिद्ध जनपद जिसकी राजधानी विश्वविश्रुत नगरी अयोध्या थी। यह जनपद सरयू (गंगा की सहायक नदी) के तटवर्ती प्रदेश में बसा हुआ था। सरयू के किनारे बसी हुई बस्ती का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में है—'उतत्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्रपारतः अर्णाचित्ररथा वधीः'—4,30,18. हो सकता है यही बस्ती आगे चलकर अयोध्या के रूप में विकसित हो गयी। इस उद्धरण में चित्ररथ को इस बस्ती का प्रमुख बताया गया है। शायद

इसी व्यक्ति का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी है (अयो० 32,17)—'सूतश्चित्ररथश्चार्यः सचिवः सुचिरोषितः तोषयैनं महार्हैश्च रत्नैर्वस्त्रैर्धनैस्तथा'। रामायण-काल में कोसल राज्य की दक्षिणी सीमा पर वेदश्रुति नदी बहती थी। श्रीरामचंद्रजी ने अयोध्या से वन के लिए जाते समय गोमती नदी को पार करने के पहले ही कोसल की सीमा को पार कर लिया था—'एतावाचो मनुष्याणां ग्रामसंवासवस्तिनाम्, श्रृण्वन्नतिययौवीरः कोसलान्कोसलेश्वरः' अयोध्या० 49,8। वेदश्रुति तथा गोमती पार करने का उल्लेख क्रमशः अयोध्या० 49,9 और 49,10 में है और तत्पश्चात् स्यंदिका या सई नदी को पार करने के पश्चात्—'स महीं मनुना राजा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा, स्फीतां राष्ट्रवतां रामो वैदेहीमन्वदर्शयत्'—अयोध्या० 49,12; अर्थात् श्री राम ने पीछे छूटे हुए, अनेक जनपदों वाले तथा मनु द्वारा इक्ष्वाकु को दिए गए समृद्धिशाली (कोसल) राज्य की भूमि सीता को दिखाई। जान पड़ता है कि रामायणकाल में ही यह देश उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल नामक दो जनपदों में विभक्त था। राजा दशरथ की रानी कौसल्या संभवतः दक्षिण कोसल (रायपुर-बिलासपुर के ज़िले, म० प्र०) की राजकन्या थीं। कालिदास ने रघुवंश 13,62 में अयोध्या को उत्तर कोसल की राजधानी कहा है—'सामान्य धात्रीमिव मानसं मे संभावयत्युत्तर-कोसलानाम्'। दे० **उत्तरकोसल**। रामायणकाल में अयोध्या बहुत ही समृद्धिशाली नगरी थी। महाभारत सभा० 30,1 में भीमसेन की दिग्विजय-यात्रा में कोसल-नरेश बृहद्बल की पराजय का उल्लेख है—'ततः कुमारविषये श्रेणिमन्तम-थाजयत् कोसलाधिपतिं चैव बृहद्बलमरिंदमः'। अंगुत्तरनिकाय के अनुसार बुद्धकाल से पहले कोसल की गणना उत्तरभारत के सोलह जनपदों में थी। इस समय विदेह और कोसल की सीमा पर सदानीरा (=गंडकी) नदी बहती थी। बुद्ध के समय कोसल का राजा प्रसेनजित् था जिसने अपनी पुत्री कोसला का विवाह मगधनरेश बिंबिसार के साथ किया था। काशी का राज्य जो इस समय कोसल के अंतर्गत था, राजकुमारी को दहेज में उसकी प्रसाधन सामग्री के व्यय के लिए दिया गया था। इस समय कोसल की राजधानी श्रावस्ती में थी। अयोध्या का निकटवर्ती उपनगर साकेत बौद्धकाल का प्रसिद्ध नगर था। जातकों में कोसल के एक अन्य नगर सेतव्या का भी उल्लेख है। छठी और पांचवीं शती ई० पू० में कोसल मगध के समान ही शक्तिशाली राज्य था किंतु धीरे-धीरे मगध का महत्त्व बढ़ता गया और मौर्य-साम्राज्य की स्थापना के साथ कोसल मगध-साम्राज्य ही का एक भाग बन गया। इसके पश्चात् इतिहास में कोसल की जनपद के रूप में अधिक महत्ता नहीं दिखाई देती यद्यपि इसका नाम

गुप्तकाल तक साहित्य में प्रचलित था। विष्णु पुराण 4,24,64 के—'कोसलांध्र-पुंड्रताम्रलिप्तसमुद्रतटपुरीं च देवरक्षितो रक्षिता'—इस उद्धरण में संभवतः गुप्तकाल के पूर्ववर्ती काल में कोसल का अन्य जनपदों के साथ ही देवरक्षित नामक राजा द्वारा शासित होने का वर्णन है। यह दक्षिण कोसल भी हो सकता है। गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में 'कोसलक महेंद्र' या कोसल (दक्षिण कोसल) के महेंद्र का उल्लेख है जिस पर समुद्रगुप्त ने विजय प्राप्त की थी। कुछ विदेशी विद्वानों (सिलवेन लेवी, जीन प्रेज़ीलुस्की) के मत में कोसल आस्ट्रिक भाषा का शब्द है। आस्ट्रिक लोग भारत में द्रविड़ों से भी पूर्व आकर बसे थे। दे० **अयोध्या, साकेत, श्रावस्ती, सरयू**।

कोसी

कौशिकी (नदी) का अपभ्रंश हो सकता है। इस नाम की भारत में कई नदियां हैं। दे० **कौशिकी**

कोहका (जिला जबलपुर, म० प्र०)

वर्तमान स्लीमनाबाद, जिसे 1832 में कर्नल स्लीमैन ने बसाया था, प्राचीन कोहका ग्राम के स्थान पर बसा हुआ है। इस ग्राम में प्राचीन शिवमंदिर है। यह स्थान जबलपुर-कटनी मार्ग पर 39वें मील पर स्थित है।

कोहदामन=बेग्राम (अफ़गानिस्तान)

यह नगर प्राचीन कपिशा की राजधानी था। श्वेत-हूणों के आक्रमण के पूर्व (दूसरी-तीसरी शती ई०) यह नगर बहुत समृद्धिशाली था और बौद्ध धर्म का यहां काफ़ी प्रचार था किंतु हूणों के आक्रमण के कारण नगर विध्वस्त हो गया। लगभग 520 ई० में हूणनरेश मिहिरकुल का शासन यहां स्थापित हो गया था।

कोहबर (ज़िला मिर्ज़ापुर, उ० प्र०)

यह स्थान सोन नदी की घाटी के अन्तर्गत है। यहां प्रागैतिहासिक गुहा-चित्रकारी के कई उदाहरण मिले हैं जिनमें नृत्य करते हुए पुरुष तथा वन्य पशुओं का आलेखन पाया जाता है।

कोहाला

खोर (म० प्र०) के निकट इस स्थान से पूर्वमध्यकालीन इमारतों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

कौंडिन्यपुर दे० **कुंडिन, कुंडिनपुर**

कौकुर=कुकुर या कुक्कुर

कौड़ियाली

सरयू का एक नाम। यह नदी मानसरोवर से उद्भूत होती है; तिब्बत के पहाड़ों में इसे कौड़ियाली कहते हैं, मैदान में पहुंच कर इसका नाम

सरयू और अंत में घाघरा हो जाता है।

कौराल

गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में वर्णित एक प्रदेश, 'कौसलक महेंद्र महाकांतार व्याघ्रराज, कौराल(ड)क मंटराज पैष्ठपुरक महेंद्र गिरि···'। रायचौधरी के मत में इस नाम से केरल (जिसकी राजधानी महानदी पर स्थित ययातिनगर में थी) का बोध होता है। डा० बारनेट के अनुसार यह दक्षिण का कोराड़ नामक ग्राम है (कलकत्ता रिव्यू, फ़र्वरी 1924) और डा० कीलहार्न के मत में कोलेयर झील का तटवर्ती क्षेत्र (दे० कीलहार्न, एपिग्राफ़िका इंडिका, जिल्द 6, पृ० 3)।

कौलायत=कपिलायतन

कौलास (देगदर तालुका, जिला नांदेड़, महाराष्ट्र)

मध्यकालीन तथा परवर्तीकाल के अनेक प्राचीन स्मारक यहां स्थित हैं जिनमें 13वीं या 14वीं शती का शिवमंदिर, 16वीं या 17वीं शती की खूनी मसजिद, 17वीं शती का संत बहलोल का मक़बरा तथा शाह जियाउलहक़ की दरगाह उल्लेखनीय हैं। यहां एक प्राचीन दुर्ग भी है जिसे 1323 ई० में मुसलमानों ने वारंगल-नरेश से छीन लिया था। इस स्थान का प्राचीन नाम कैलास है। वारंगल-नरेशों के समय यह स्थान शिवोपासना का केंद्र था।

कौशांबी

(1) बुद्धकाल की परमप्रसिद्ध नगरी जो वत्स देश की राजधानी थी। इसका अभिज्ञान, तहसील मंझनपुर ज़िला इलाहाबाद में प्रयाग से 24 मील पर स्थित कोसम नाम के ग्राम से किया गया है। यह नगरी यमुना नदी पर बसी हुई थी। पुराणों के अनुसार (दे० विष्णु० 4, 21, 7–8) हस्तिनापुर-नरेश निचक्षु ने, जो परीक्षित का वंशज (युधिष्ठिर से सातवीं पीढ़ी में) था, हस्तिनापुर के गंगा द्वारा बहा दिए जाने पर अपनी राजधानी वत्स देश की कौशांबी नगरी में बनाई थी—'अधिसीमकृष्णपुत्रो निचक्षुर्भविता नृप: यो गंगयाऽपहृते हस्तिनापुरे कौशंव्यां निवत्स्यति'। इसी वंश की 26वीं पीढ़ी में बुद्ध के समय में कोशांबी का राजा उदयन था। इस नगरी का उल्लेख महाभारत में नहीं है फिर भी इसका अस्तित्व ईसा से कई शतियों पूर्व था। गौतम बुद्ध के समय में कौशांबी अपने ऐश्वर्य के मध्याह्नकाल में थी। जातक कथाओं तथा बौद्ध साहित्य में कौशांबी का वर्णन अनेक बार आया है। कालिदास, भास और क्षेमेन्द्र को कौशांबी-नरेश उदयन से संबंधित अनेक लोककथाओं की पूरी तरह से जानकारी थी।

उदयन के समय में गौतमबुद्ध कौशांबी में अक्सर आते-जाते रहते थे। उनके संबंध के कारण कौशांबी के अनेक स्थान सैंकड़ों वर्षों तक प्रसिद्ध रहे। बुद्धचरित 21, 33 के अनुसार कौशांबी में, बुद्ध ने धनवान् घोषिल, कुब्जोत्तरा तथा अन्य महिलाओं तथा पुरुषों को दीक्षित किया था। यहां के विख्यात श्रेष्ठी घोषित (संभवतः बुद्धचरित्र का घोषिल) ने घोषिताराम नाम का एक सुंदर उद्यान बुद्ध के निवास के लिए बनवाया था। घोषित का भवन नगर के दक्षिण-पूर्वी कोने में था। घोषिताराम के निकट ही अशोक का बनवाया हुआ 150 हाथ ऊंचा स्तूप था। इसी विहारवन के दक्षिण-पूर्व में एक भवन था जिसके एक भाग में आचार्य वसुबंधु रहते थे। इन्होंने 'विज्ञप्ति मात्रता सिद्धि' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इसी वन के पूर्व में वह मकान था जहाँ आर्य असंग ने अपने ग्रंथ योगाचारभूमि की रचना की थी। कौशांबी से एक कोस उत्तर-पश्चिम में एक छोटी पहाड़ी थी जिसकी प्लक्ष नामक गुहा में बुद्ध कई बार आए थे। यहीं श्वभ्र नामक प्राकृतिक कुंड था। जैन ग्रंथों में भी कौशांबी का उल्लेख है। आवश्यक-सूत्र की एक कथा में जैन-भिक्षुणी चंदना का उल्लेख है जो भिक्षुणी बनने से पूर्व कौशांबी के एक व्यापारी धनावह के हाथों बेच दी गई थी। इसी सूत्र में कौशांबी-नरेश शतानीक का भी उल्लेख है। इसकी रानी मृगावती विदेह की राजकुमारी थी। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र का गौरव अधिक बढ़ जाने से कौशांबी समृद्धिहीन हो गई। फिर भी अशोक ने यहां प्रस्तरस्तंभ पर अपनी धर्मलिपियां—सं० 1 से 6 तक उत्कीर्ण करवायीं। इसी स्तंभ पर एक अन्य धर्मलिपि भी अंकित है जिसमें बौद्ध संघ के प्रति अनास्था दिखाने वाले भिक्षुओं के लिए दंड नियत किया गया है। इसी स्तंभ पर अशोक की रानी और तीवर की माता कारुवाकी का भी एक लेख है। गुप्तकाल में अन्य बौद्ध केंद्रों की भांति ही कौशांबी का महत्त्व भी बहुत कम हो गया। गुप्तसंवत् 139=459 ई० का एक लेख प्रस्तर-मूर्ति पर अंकित है जो स्कंदगुप्त के समय का है और महाराज भीमवर्मन् से संबंधित है। चीनी यात्री युवानच्वांग की भारत-यात्रा के समय (630-645 ई०) कौशांबी खंडहरों की नगरी बन चुकी थी। कन्नौजाधिप हर्ष के प्रसिद्ध नाटक रत्नावली की मुख्य घटनास्थली कौशांबी ही है। जैन-ग्रंथ विविधतीर्थकल्प में भी शतानीक के पुत्र उदयन का उल्लेख है और उसे वत्सनरेश कहा गया है। कालिंदी के तट पर स्थित कौशांबी के अनेक वनों का भी उल्लेख है। चंदनबाला ने महावीर के सम्मानार्थ छः मास का उपवास कौशांबी में किया था। भगवान् पद्मप्रभु ने यहीं जैनधर्म में दीक्षा ली थी। नगरी में अनेक विशाल शीतल छाया वाले कौशंब

वृक्ष थे—'यत्थ सिनिद्धछाया कोसंबतरुत्तोमहापभागा दीसंति'। हाल ही में प्रयाग विश्वविद्यालय की पुरातत्त्व परिषद् ने कोसम की खुदाई द्वारा अनेक प्राचीन स्थलों को प्रकाश में लाकर उनका अभिज्ञान किया है। इस संबंध में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य घोषिताराम की खोज है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है घोषिताराम, कौशांबी में बुद्ध का सर्वप्रिय निवासस्थान था। इसका अभिज्ञान कुछ अभिलेखों की सहायता से किया गया है। इन अभिलेखों से कौशांबी का कोसम से अभिज्ञान भी, जिसके विषय में पहले विद्वानों में काफ़ी मतभेद था, निश्चित रूप से प्रमाणित हो गया है। ज़िला इलाहाबाद के कड़ा नामक स्थान से एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिसमें इस स्थान को कौशांबी-मंडल के अंतर्गत बताया गया है।

(2) (बर्मा)

ब्रह्मदेश में इरावदी और सालवीन नदियों के बीच का प्रदेश। इसका प्राचीन भारतीय नाम कौशांबी यहां के हिंदू औपनिवेशिकों ने रक्खा था। शायद ये लोग कौशांबी-निवासी थे।

कौशिकी

(1) बंगाल की कौश्या, जो मिदनापुर तालुके में बहती हुई समुद्र में गिरती है। 'ततः पुंड्राधिपंवीरं वासुदेवं महाबलम्, कौशिकीकच्छनिलयं राजानं च महौजसम्'—महा॰ विराट॰ 30, 22। इसी नदी के किनारे ताम्रलिप्ति नगरी बसी हुई थी। कालिदास ने रघुवंश 4, 38 में शायद कौशिकी को ही 'कपिशा' कहा है। इसी कौशिकी का श्रीमद्भागवत 5, 19, 18 में भी उल्लेख है—'ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना···'।

(2) कुरुक्षेत्र की एक नदी। वामनपुराण 39, 6–8 के अनुसार कुरुक्षेत्र में अनेक नदियां प्रवाहित होती हैं—'सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी, आपगा च महापुण्या गंगा मंदाकिनी नदी, मधुस्रवा अम्लु नदी कौशिकी पापनाशिनी दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी'। कौशिकी और दृषद्वती के संगम का महाभारत 83, 95–96 में उल्लेख है—'कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्याश्च भारत, स्नाति वै नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते'।

(3) गोदावरी की सात शाखा-नदियों में से एक। ये हैं—गौतमी, वशिष्ठा, कौशिकी, आत्रेयी, वृद्धगौतमी, तुल्या और भारद्वाजी। सप्तगोदावरी का महाभारत वन॰ 85, 43 में उल्लेख है—'सप्तगोदावरीं स्नात्वा नियतो-नियताशनः'।

(4) महाभारत भीष्म० 9, 18 में उल्लिखित नदी जिसका अभिज्ञान संदिग्ध है—'कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहतारिणीम्'।

(5) गंगा की सहायक नदी कोसी, जो नेपाल के पहाड़ों से निकाल कर नेपाल और बिहार में बहती हुई राजमहल (बिहार) के निकट गंगा में मिल जाती है।

(6) रामगंगा (उ० प्र०) की सहायक नदी। यह अल्मोड़ा के उत्तर के पहाड़ों से निकलती है और रामपुर के पास बहती हुई रामगंगा में मिल जाती है।

कौश्या दे० **कौशिकी** (1)

क्रंगनोर (केरल)

परियार-नदी के तट पर बसा हुआ प्राचीन बंदरगाह जिसे रोम के लेखकों ने मुज़ीरिस कहा है। ई० सन् के प्रारंभिक काल में यह समुद्र-पत्तन दक्षिण भारत और रोम-साम्राज्य के बीच होने वाले व्यापार का केन्द्र था। इसका एक नाम मरिचीपत्तन या मुरचीपत्तन भी था जिसका अर्थ है 'काली मिर्च का बंदरगाह'। 'मुज़ीरिस' शब्द इसी का रोमीय रूपांतर जान पड़ता है। मुरचीपत्तन का उल्लेख महाभारत 2, 31, 68 में है। इस बंदरगाह से काली मिर्च का प्रचुर मात्रा में निर्यात होता था। दे० **तिरुवांबीकुलम्**।

क्रथकैशिक

प्राचीन विदर्भ (महाराष्ट्र) का एक भाग। महाभारत 2, 14, 21–22 में क्रथकैशिकों पर विदर्भराज भीष्मक की विजय का उल्लेख है। संभवतः भीष्मक ने पहली बार क्रथकैशिक-देश को अपने राज्य में मिलाया था—'विद्यावलाद् यो व्यजयत् सपांड्यक्रथकैशिकान् स भक्तो मागधं राजा भीष्मकः परवीरहा'—इस उल्लेख में भीष्मक को जरासंध का मित्र बताया गया है। ये रुक्मिणी के पिता थे। कालिदास ने रघुवंश 5, 39 में इंदुमती के विवाह के प्रसंग में विदर्भराज भोज को क्रथकैशिक नरेश कहा है—'अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थंस्वसुरिन्दुमत्याः आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेनदूतो रघवेविसृष्टः'।

क्वारी दे० **कुमारी**

क्रुमु=**कुरम**

यह सिंध की सहायक नदी है। दोनों का संगम जलालाबाद के पास है। इसका उल्लेख ऋग्वेद 10, 75 के प्रसिद्ध नदी सूक्त में है—'त्वं सिंधो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे'। नदी सूत्र में गंधार और पंचनद की सभी प्रसिद्ध नदियों तथा गंगा और यमुना का भी उल्लेख है।

क्रोकल=कराची

क्रोड देश=कुर्ग

क्रौंच

(1) क्रौंच द्वीप। पौराणिक भूगोल की उपकल्पना के अनुसार पृथ्वी के सप्त महाद्वीपों में से एक। इस द्वीप में क्रौंच नामक पर्वत स्थित है। यहां के निवासियों को जलदेवता या वरुण का पूजक बताया गया है। इसके चतुर्दिक् क्षीर-समुद्र है—'जंबूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मल श्चापरो द्विज, कुश: क्रौंच स्तथाशाक: पुष्करश्चैव सप्तम:' विष्णु० 2,2, 5। क्रौंचपर्वत की स्थिति के अनुसार क्रौंच द्वीप को तिब्बत का एक भाग समझना चाहिए। देखिए क्रौंच (2)।

(2) विष्णुपुराण 2, 4, 50-51 में उल्लिखित क्रौंच द्वीप के सप्तपर्वतों में से एक—'क्रौंचश्चवामनश्चैवतृतीयश्चांधकारक: चतुर्थो रत्नशैलस्य स्वाहिनीहयसन्निभ:'। यह पर्वत हिमालय का एक भाग है। पौराणिक कथा से ज्ञात होता है कि परशुराम ने धनुर्विद्या समाप्त करने के पश्चात् हिमालय में बाण मारकर आरपार एक मार्ग बना दिया था। इस मार्ग से ही मानसरोवर से दक्षिण की ओर आने वाले हंस गुज़रते थे। इस मार्ग को क्रौंच-रंध्र कहते थे। वाल्मीकि-रामायण, किष्किंधा० 43,20 में सुग्रीव ने सीता के अन्वेषणार्थ वानर-सेना को उत्तर की ओर भेजते हुए तत्स्थानीय अनेक प्रदेशों का वर्णन करते हुए कैलाश से कुछ दूर उत्तर की ओर स्थित क्रौंचगिरि का उल्लेख किया है—'क्रौंचं तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम्, अप्रमत्तै: प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हि तत्स्मृतम्' अर्थात् क्रौंच पर्वत पर जाकर उसके दुर्गम बिल पर पहुंच कर उसमें बडी सावधानी से प्रवेश करना, क्योंकि यह मार्ग बड़ा दुस्तर है—'पुन: क्रौंचस्य तु गुहाश्चान्या: सानूनि शिखराणि च, दर्दराश्च नितंबाश्च विचेतव्यास्ततस्तत:' किष्किंधा० 43, 27 अर्थात् क्रौंच पर्वत की दूसरी गुहाओं को तथा शिखरों और उपत्यकाओं को भी अच्छी तरह खोजना। क्रौंचगिरि के आगे मैनाक का उल्लेख है—'क्रौंचं गिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वत:' किष्किंधा० 43, 29। मेघदूत (उत्तर मेघ 59) में भी क्रौंच-रंध्र का सुंदर वर्णन है —'प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्यतांस्तान् विशेषान् हंसद्वारं भृगुपति यशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम्'। अर्थात् हिमालय के तट में क्रौंच-रंध्र नामक घाटी है जिसमें होकर हंस आते-जाते हैं; वही परशुराम के यश का मार्ग है। इसके अगले छन्द 30 में कैलास का वर्णन है। इस प्रकार वाल्मीकि और कालिदास दोनों ने ही क्रौंचपर्वत तथा क्रौंच-रंध्र का उल्लेख कैलास के निकट किया है। अन्यत्र भी 'कैलासे धनदावासे क्रौंच: क्रौंचोऽभिधीयते' कहा गया है। कालि-

दास ने क्रौंच-रंध्र से संबंधित कथा का रघु० 11, 74 में भी निर्देश किया है—'विभ्रतोस्त्रमचलेऽप्यकुंठितम्' अर्थात् मेरे (परशुराम के) अस्त्र या बाण को पर्वत (क्रौंच) भी न रोक सका था। वास्तव में क्रौंच-रंध्र दुस्तर हिमालय पर्वत के मध्य और मानसरोवर-कैलास के पास कोई गिरिद्वार है जिसका वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में काव्यात्मक ढंग से किया गया है। हंस और क्रौंच या कुंज आदि हिमालय के पक्षी जाड़ों में हिमालय की निचली घाटियों को पार करके ही आगे दक्षिण की ओर आते हैं। श्री वा० श० अग्रवाल के अनुसार यह अल्मोड़ा के आगे लीपूलेक का दर्रा है (दे० कादंबिनी, अक्टूबर '62)।

(3) पंचवटी के निकट एक पहाड़, 'गुंजत्कुंजकुटीरकौशिकघटाघुक्कारवत् कीचकस्तम्बाडंबरमूकमौकुलिकुल: क्रौंचाभिधोऽयं गिरि:' उत्तररामचरित 2,19। इसके निकट ही क्रौंचारण्य स्थित था।

क्रौंचरंध्र दे० **क्रौंच** (2)

क्रौंचारण्य

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम-लक्ष्मण सीता की खोज में पंचवटी से चलकर यहां पहुंचे थे—'तत: परं जनस्थानात्त्रिक्रोशंगम्य राघवौ, क्रौंचारण्यं विविशतु: गहनं तौ महौजसौ'—अरण्य० 69, 5। अर्थात् उसके बाद जनस्थान से तीन कोस चलकर तेजस्वी राम और लक्ष्मण ने घने क्रौंच वन में प्रवेश किया—'तत: पूर्वेण तौ गत्वा त्रिक्रोशं भ्रातरौ तदा, क्रौंचारण्यमतिक्रम्य मतंगाश्रममंतरे' अरण्य० 69, 8। अर्थात् क्रौंचारण्य को पार करके तीन कोस चलने पर वे मतंगाश्रम पहुंचे। इससे सूचित होता है कि क्रौंचारण्य जनस्थान और मतंगाश्रम के बीच में स्थित था। क्रौंचारण्य के निकट क्रौंच नामक पहाड़ी की स्थिति थी (दे० क्रौंच 3)। वर्तमान बेल्लारी (मैसूर) से छ: मील पूर्व की ओर लोहाचल पर्वत को क्रौंच कहा जाता है। संभव है रामायणकाल में इसके निकटवर्ती वन को क्रौंचारण्य नाम से अभिहित किया जाता हो।

क्लीसोबोरा

चंद्रगुप्त मौर्य के समय में भारत में आए हुए यूनानी राजदूत मेगेस्थनीज़ ने अपने इंडिका नामक ग्रंथ में इस स्थान का शूरसेन लोगों के एक बड़े नगर के रूप में उल्लेख किया है। एरियन नामक एक अन्य यूनानी लेखक ने मेगेस्थनीज़ के लेख का उद्धरण देते हुए लिखा है कि शौरसेनाई लोग हेराक्लीज़ (=श्रीकृष्ण) को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। इनके दो बड़े नगर हैं—मेथोरा (मथुरा) और क्लीसोबोरा। उनके राज्य में जोबरस या जोमनस (यमुना) नदी बहती है जिसमें नावें चलती हैं। प्राचीन रोम के इतिहास लेखक

प्लिनी ने मेगस्थनीज़ के लेख का निर्देश करते हुए लिखा है कि जोमनस या यमुना, मेथोरा और क्लीसोबोरा के बीच से बहती है। प्लिनी के लेख से इंगित होता है कि यूनानियों ने शायद गोकुल को ही क्लीसोबोरा कहा है क्योंकि यमुना के आमने-सामने गोकुल और मथुरा—ये दो महत्वपूर्ण नगर सदा से प्रसिद्ध रहे हैं। किंतु गोकुल का यूनानी उच्चारण क्लीसोबोरा किस प्रकार हुआ, यह तथ्य संदेहास्पद है। मेक्रिंडल (एंशेंट इंडिया एज़ डेस्क्राइब्ड बाई मेगेस्थनीज़, पृ० 140) के अनुसार क्लीसोबोरा का संस्कृत रूपांतर 'कृष्णपुर' होना चाहिए। यह शायद उस समय गोकुल को जनसामान्य का दिया हुआ नाम हो।

क्विलन (केरल)

त्रिवेंद्रम से 44 मील पर स्थित है। बहुत प्राचीन समय में ही इस नगर का व्यापार पश्चिमी देशों के साथ प्रारंभ हो गया था जिनमें फ़िनीशिया, ईरान, अरब, यूनान, रोम और चीन मुख्य हैं। तांग राज्यकाल में चीनियों ने क्विलन में अनेक व्यापारिक बस्तियां स्थापित की थीं। इसका प्राचीन नाम कोलम था। शायद कोलम के प्राचीन नाम कोलगिरि, कोलाचल, कोल्लक आदि हैं जिनका उल्लेख महाभारत में है।

क्षत्रिय (=क्षतृ) **गणराज्य**

300 ई० पू० के लगभग पंजाब (वाहीक) का एक गणराज्य, जिसका उल्लेख अलक्षेंद्र के इतिहास लेखकों ने किया है। इसका नाम क्षत्रिय नामक जाति के यहां बसने के कारण हुआ था। मेक्रिंडल के अनुसार इस जाति का नाम क्षत्र था। इसे मनुस्मृति में हीन जाति माना गया है (इन्वेज़न ऑव अलेग्ज़ेंडर, पृ० 156)। रायचौधरी के मत में इस जाति का मूलस्थान चिनाब-रावी के संगम के पास रहा होगा (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐंशेंट इंडिया—पृ० 207)। यूनानी लेखकों ने इस जाति के नाम का उच्चारण ज़थरोई (Xathroi) लिखा है। पाणिनि ने भी क्षत्रिय गणराज्य का उल्लेख किया है। महाभारत भीष्म० 51, 14 और 106, 8 में उल्लिखित वशाति शायद इसी गण से संबद्ध थे।

क्षांति

विष्णुपुराण 2, 4, 55 के अनुसार क्रौंच द्वीप की एक नदी, 'गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा, क्षांतिश्च पुंडरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः'।

क्षीरगंगा

केदारनाथ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) के निकट बहने वाली एक नदी।

क्षीरपुर=खेड़ (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

लूनी नदी के तट पर बालातोरा स्टेशन से पांच मील दूर प्राचीन काल का प्रसिद्ध तीर्थ। यहां के विस्तृत खंडहरों तथा अनेक नष्टभ्रष्ट मूर्तियों तथा अन्य अवशेषों से प्रमाणित होता है कि इस स्थान पर पहले एक बड़ा नगर बसा हुआ था। परवर्ती काल के कई मंदिर यहां आज भी हैं।

क्षीरसमुद्र

पुराणों की भौगोलिक कल्पना के अनुसार पृथ्वी के सप्तसागरों में से एक है। यह क्रौंचमहाद्वीप के चतुर्दिक् स्थित है। विष्णु० 2, 2, 6 में इसे दुग्ध-सागर कहा है। क्षीरसागर को पुराणों में भगवान् विष्णु का शयनागार कहा गया है।

क्षीरोदा=खिरोई नदी (बिहार)

मिथिला में गोतमाश्रम के समीप बहने वाली नदी जिसका जल दुग्ध की भांति श्वेत और स्वादु कहा जाता है।

क्षुद्रक गणराज्य

अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय तथा उससे पूर्व अर्थात् 320 ई० पू० के लगभग, क्षुद्रक गणराज्य की स्थिति रावी और बियास नदियों के मध्य-वर्ती प्रदेश में (ज़िला मांटगोमरी, प० पाकि० के अंतर्गत) थी। यूनानी लेखक एरियन ने क्षुद्रकों (Oxydrakai) की शासन-व्यवस्था में उनके नगरमुख्यों तथा प्रांतीय शासकों का उल्लेख किया है। क्षुद्रकगण पंजाब के सभी गणों से अधिक सामर्थ्यवान् था तथा इसके सैनिक वीरता में किसी से कम न थे। पाणिनि ने भी क्षुद्रकों का उल्लेख किया है।

क्षुरमाली

शूर्पारक जातक में इस समुद्र का वर्णन जो अधिकांश में कल्पना रंजित है, इस प्रकार है—'भरुकच्छापयातानं वणिजानंधनेसिनं, नावाय विप्पनट्ठाय खुरमालीति वुच्चतीति' ('भरुकच्छात् प्रयातानां वणिजां धनैषिणाम्, नावा विप्रणष्टया क्षुरमालीति उच्यते') अर्थात् भरुकच्छ (भड़ौच) से जहाज पर निकले हुए धनार्थी वणिकों को विदित हो कि इस (समुद्र) का नाम क्षुरमाली है। इससे पूर्व इसी संदर्भ में वणिक्पोत का भृगुकच्छ से चलकर चार मास तक समुद्र में यात्रा करने के पश्चात् क्षुरमाली समुद्र में पहुंचने का वर्णन है। इस संदर्भ में मनुष्य के समान नासिका वाली तथा छुरे के समान नासिका वाली मछलियों का पानी में डूबने-उतराने का वर्णन है। इस समुद्र में हीरे की उत्पत्ति भी कही गई है। डॉ० मोतीचंद के मत में फ़ारस की खाड़ी के

समुद्र को पाली जातकों में क्षुरमाल (या क्षुरमाली) कहा गया है । किंतु जातक का यह वर्णन काल्पनिक तथा अतिरंजित जान पड़ता है तथा प्राचीनकाल में देश-देशांतर घूमने वाले नाविकों की रोमांचकथाओं पर आधृत प्रतीत होता है । जातक-कथाओं के काल में (पांचवी शती ई०) भृगुकच्छ अथवा भड़ौच के व्यापारीगण प्राय: यवद्वीप—जावा—तथा उसके निकटवर्ती द्वीपों में आते-जाते रहते थे । शूर्पारक-जातक में इसी मार्ग में पड़ने वाले समुद्रों का काल्पनिक एवं अतिरंजित वर्णन है । क्षुरमाली के अतिरिक्त इस संदर्भ में अग्निमाली, कुशमाल, नलमाल आदि समुद्रों का भी रोमांचकारी वृत्तांत है ।

क्षेमक

विष्णुपुराण 2, 4, 5 के अनुसार प्लक्षद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा मेधातिथि के पुत्र के नाम पर क्षेमक कहलाता था ।

खंडगिरि (उड़ीसा)

भुवनेश्वर से सात मील तथा शिशुपालगढ़ के खडहरों से छ: मील पश्चिम की ओर उदयगिरि के निकट एक पहाड़ी है जिसकी गुहाओं में प्राचीन अभिलेख हैं । ये जैन संप्रदाय से संबधित हैं । जैन तीर्थंकर महावीर यहां कुछ काल-पर्यंत रहे थे, ऐसी किंवदंती है । यह देश प्राचीनकाल में कलिंग के अंतर्गत था । कलिंगराज खारवेल का प्रसिद्ध अभिलेख हाथीगुंफा में है जो यहां से कुछ ही दूर है ।

खंडहर

महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के समय में खंडहर चंबल तथा नर्मदा के मध्यवर्ती प्रदेश में सुलतानपुर के निकट स्थित एक कस्बे का नाम था । हिंदी के प्रसिद्ध कवि भूषण ने इसका उल्लेख किया है—'उत्तरपहार विधनोल खंडहर झारखंडहू प्रचार चारु केली है विरद की' ।

खंडु

पाणिनि 4, 2, 77 । सिलवेन लेवी के अनुसार यह वर्तमान खुंड (ज़िला अटक) है ।

खंभात=स्तंभतीर्थ (ज़िला कैरा, गुजरात)

जैन अनुश्रुति के अनुसार, इस स्थान का नामकरण स्तंभन-पार्श्वनाथ के नाम पर हुआ है । यहां इनकी रत्न-निर्मित मूर्ति भी प्राप्त हुई है । इस स्थान से हाल ही में पूर्व-सोलंकीकालीन (10वीं शती ई०) के मंदिर के अवशेष उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाए गए हैं, जिसका श्रेय कलकत्ता विश्वविद्यालय के श्री निर्मल कुमार बोस तथा वल्लभ विद्यानगर के श्री अमृत पांड्या को है । स्तंभतीर्थ

का महाभारत में उल्लेख है—दे० **स्तंब (—भ)—तीर्थ** और **त्रंबावती**।

खखूंद (ज़िला गोरखपुर)

नूनखार स्टेशन से तीन मील पर यह ग्राम जैन तीर्थंकर पुष्पदंत का जन्म-स्थान माना जाता है।

खजुराहो (ज़िला छतरपुर, म०प्र०)

प्राचीनकाल में खजुराहो जुझौति या बुंदेलखंड का मुख्य नगर था। चंदेल राजपूतों ने मध्यकाल में इस नगर को सुन्दर मंदिरों से अलंकृत किया था। चंदेलों के राज्य की नींव आठवीं शती ई० में महोबा के चंदेल-नरेश चंद्रवर्मा ने डाली थी। तब से लगभग पांच शतियों तक चंदेलों की राज्यसत्ता जुझौति में स्थापित रही। इनका मुख्य दुर्ग कालिंजर तथा मुख्य अधिष्ठान महोबा में था। खजुराहो में जो मन्दिर इन्होंने बनवाए उनमें से तीस आज भी स्थित हैं। इनमें आठ जैन मन्दिर भी हैं। जैन मन्दिरों की वास्तुकला अन्य मन्दिरों के शिल्प से मिलती-जुलती है। सबसे बड़ा मन्दिर पार्श्वनाथ का है जिसका निर्मिति-काल 950-1050 ई० है। यह 62 फुट लंबा और 31 फुट चौड़ा है। इसकी बाहरी भित्तियों पर तीन पंक्तियों में जैन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। कनिंघम के मत में गंठाई नामक मंदिर बौद्धधर्म से सम्बन्धित है किंतु यह तथ्य ठीक नहीं जान पड़ता। अधिकांश मन्दिरों का निर्माणकाल स्थूल रूप से 10 वीं-11वीं शती ई० है। खजुराहो के मन्दिरों में सर्वश्रेष्ठ कंडरिया महादेव का मन्दिर है। यह 109 फुट लंबा, 60 फुट चौड़ा और 116 फुट ऊंचा है। इसके सभी भाग—अर्धमण्डप, मण्डप, महामण्डप, अंतराल तथा गर्भगृह आदि, वास्तुकला के बेजोड़ नमूने हैं। मन्दिर के प्रत्येक भाग में परमोत्कृष्ट मूर्तिकारी अंकित है और प्रत्येक स्थान पर मूर्तियों का जमघट-सा जान पड़ता है, यहां तक कि कनिंघम की गणना के अनुसार इस मन्दिर में केवल दो और तीन फुट ऊंची मूर्तियों की संख्या ही 872 है। छोटी मूर्तियां तो असंख्य हैं। मुख्य मन्दिर तथा मण्डपों के शिखरों पर आमलक स्थित हैं। ये शिखर उत्तरोत्तर ऊंचे होते गए हैं और इस-लिए बड़े प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक दिखाई देते हैं। मन्दिरों की मूर्तिकला की सराहना सभी पर्यवेक्षकों ने की है। मन्दिर का 'अपूर्व सौन्दर्य, सुडौल आकार-प्रकार, काफी विस्तार और चित्रकार की कूची को लज्जित करनेवाला बारीक नक्काशी का काम' देख कर चकित होना पड़ता है—(गोरेलाल तिवारी —बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 67)। खजुराहो के मन्दिर में तीन बड़े शिलालेख हैं जो चंदेल-नरेश गंड और यशोवर्मन् के समय के हैं। 7वीं शती में चीनी यात्री युवानच्वांग ने खजुराहो की यात्रा की थी। उसने उस
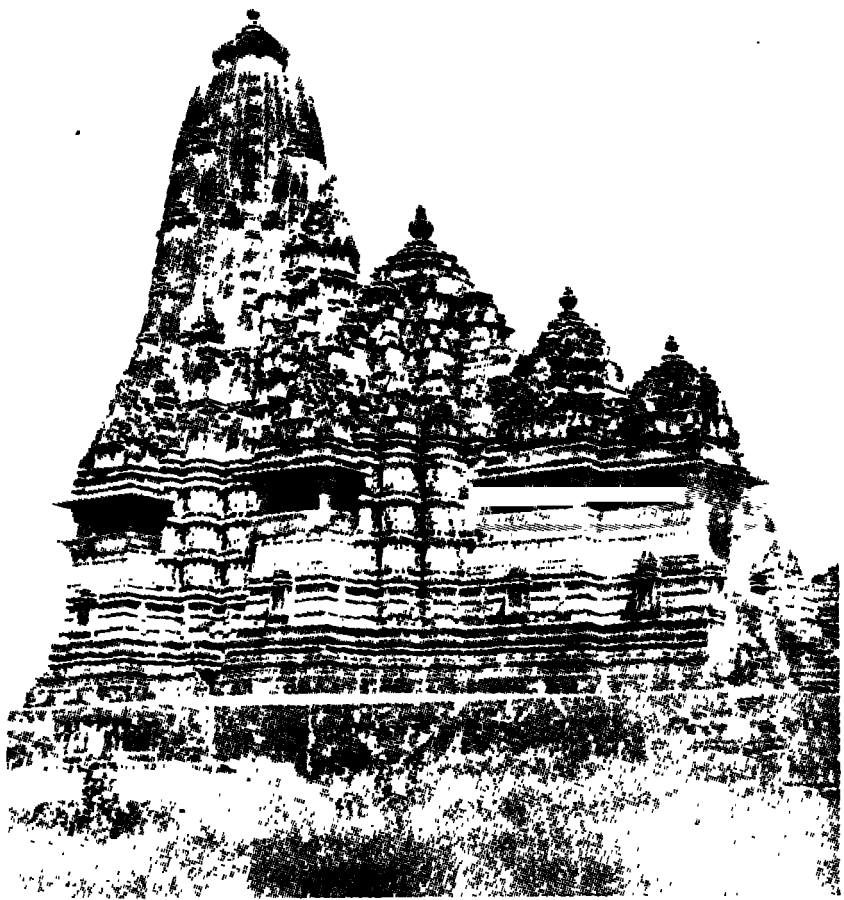
खजुराहो-कंडरिया महादेव का मंदिर
(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

समय भी अनेक मन्दिरों को यहां देखा था। चौसठ योगिनियों का मन्दिर शायद 7वीं शती का ही है। पिछली शती तक खजुराहो में अबसे अधिक संख्या में मंदिर स्थित थे किन्तु इस बीच में वे नष्ट हो गए हैं। वास्तु और मूर्तिकला की दृष्टि से खजुराहो के मन्दिरों को भारत की सर्वोत्कृष्ट कलाकृतियों में स्थान दिया जाता है। यहां की शृंगारिक मुद्राओं में अंकित मिथुन-मूर्तियों की कला पर संभवतः तांत्रिक प्रभाव है, किंतु कला का जो निरावृत और अछूता सौंदर्य इनके अंकन में निहित है उसकी उपमा नहीं मिलती। इन मंदिरों के अलंकरण और मनोहर आकार-प्रकार की तुलना में केवल भुवनेश्वर के मन्दिर की कला टिक सकती है।

खजुवा (ज़िला फ़तहपुर, उ०प्र०)

बिंदकी के पास एक ग्राम जहां औरंगज़ेब और उसके भाई शाहशुजा में मुगल-गद्दी के उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ था (1658 ई०)। शाहशुजा पराजित होकर बंगाल-असम की ओर भाग गया। यहां का 'बागे-बादशाही' उसी काल का स्मारक है। शिवाजी के राजकवि भूषण ने खजुवा के युद्ध का उल्लेख किया है—'दारा की न दौर यह रारि नहीं खजुवे की, बांधिबो नहीं है किधौं मीर सहबाल को'—शिवा बावनी 34।

खज्जर (हिमाचल प्रदेश)

यह स्थान समुद्रतल से 6400 फुट ऊंचा बसा है और चंबा-डलहौजी मार्ग पर, चंबा से 9 मील है। यहां देवदार वृक्षों से घिरी हुई एक सुन्दर छोटी-सी रमणीय झील है जिसके बीच में एक द्वीप है। स्थान का नाम अतिप्राचीन खाजी-नाग के मन्दिर के नाम पर पड़ा है। यहाँ नागपंचमी को मेला लगता है। यह स्थान प्राचीन नाग-जाति से सम्बन्धित है। कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यों के भारत में आगमन से पूर्व कश्मीर और पंजाब के पर्वतीय इलाकों में नागजाति के लोगों का निवास था। खज्जर का प्राकृतिक सौंदर्य अद्भुत है। लॉर्ड कर्ज़न ने 1900 ई० में खज्जर की नैसर्गिक छटा पर मुग्ध होकर इसे भारत का सुन्दरतम स्थान बताया था।

खड्डबलि (ज़िला गोदावरी, आं० प्र०)

इस स्थान का उल्लेख दक्षिण भारत के शातकर्णी-शातवाहन नरेशों के अभिलेखों (द्वितीय शती ई०) में अमात्य के मुख्य स्थान या अधिष्ठान के रूप में है।

खनि॰ारा

धर्मशाला (पंजाब) से 3 मील पर स्थित है। किंवदंती है कि अर्जुन और किरात रूपी शिव में इसी स्थान पर युद्ध हुआ था। इस युद्ध का स्मारक कंजर महादेव का मन्दिर बताया जाता है। इस युद्ध का उपाख्यान महाकवि भारवि के किरातार्जुनीयम् नामक महाकाव्य का मुख्य विषय है। (किंतु दे० **विशाखयूप**)

खपराखोड़िया (जूनागढ़, गुजरात)

इस स्थान पर कई प्राचीन गुहा-मन्दिर हैं जो पूर्वकाल में मठों के रूप में काम में आते थे। इनके भीतर सपक्ष शरभों का अंकन अपूर्व है। ऊपरकोट नामक स्थान में एक दो खंडी गुहा है जिसके नीचे का द्वार ग्यारह फुट ऊंचा है। उपरले खंड में एक ताल है जिसके चतुर्दिक् एक संकीर्ण मार्ग है। डा० बर्जेस के अनुसार इन गुहा-मन्दिरों के स्तम्भ बड़ी कलात्मक और अनोखी शैली में निर्मित हैं।

खम्म = खम्ममेट (ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

11वीं शती में हिन्दू राजाओं का बनवाया हुआ एक किला यहां का मुख्य आकर्षण है। इसकी फ्रांसीसी शिल्पशास्त्रियों ने मरम्मत करवाई थी। इसमें कई तोपें भी हैं। इस स्थान के निकट प्रागैतिहासिक अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

खरौद (ज़िला बिलासपुर, म० प्र०)

बिलासपुर से 42 मील दूर है। किंवदंती में इसे खर-दूषण का निवास-स्थान बताया जाता है।

खलतिक पर्वत = बराबरपहाड़ी (जिला गया, बिहार)

खलतिक पर्वत (पाली नाम) का अशोक के बराबर-गुहा-अभिलेख में उल्लेख है। यहां की गुफाओं को इस मौर्य सम्राट् ने अपने शासनकाल के 12वें और 19वें वर्ष में आजीवक सम्प्रदाय के साधुओं के लिए दान में दिया था जिससे उसकी उदार धार्मिक नीति का ज्ञान होता है।

खलारी (छत्तीसगढ़, म० प्र०)

14वीं शती में रतनपुर के कलचुरि-नरेशों की एक शाखा खलारी में राज्य करती थी। इसी वंश के नायक सिंहा ने 14वीं शती में अपनी राजधानी रायपुर में बनाई थी। सिंहा के पौत्र ब्रह्मदेव का एक शिलालेख खलारी से प्राप्त हुआ था जिसकी तिथि 1401 ई० है। यह अभिलेख नागपुर के संग्रहालय में है।

खलीलाबाद (ज़िला बस्ती, उ० प्र०)

खलीलाबाद स्टेशन से 6 मील दूर कुदवा नाला बहता है जिसे गौतम बुद्ध के जीवन चरित से सम्बन्धित अनोमा नदी कहा जाता है। तामेश्वरनाथ का

मन्दिर यहां से थोड़ी दूर पर है। इससे तीन मील पर सम्भवतः अशोक के तीन स्तूपों के खंडहर स्थित हैं।

खसमंडल

कुमायूं (उ० प्र०) का एक भाग। खस-जाति के लोग मध्यहिमालय प्रदेश के प्राचीन निवासी हैं। नेपाल में भी इनकी संख्या काफी है। 10वीं शती से 13वीं शती ई० तक भारत के कई राजपूत-वंशों ने इस प्रदेश में आकर शरण ली थी और छोटी-छोटी रियासतें स्थापित कर ली थीं। पुराणों में खसजाति की अनार्य या असंस्कृत जातियों में गणना की गई है। बरनौफ (Burnouf) के अनुसार, दिव्यावदान (पृ० 372) में खसराज्य का उल्लेख है। तिब्बत के इतिहास लेखक तारानाथ ने भी खसप्रदेश का उल्लेख किया है (इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, 1930, पृ० 334)।

खाण्डवप्रस्थ

यह हस्तिनापुर के पास एक प्राचीन नगर था जहां महाभारतकाल से पूर्व पुरुरवा, आयु, नहुष तथा ययाति की राजधानी थी। कुरु की यह प्राचीन राजधानी बुधपुत्र के लोभ के कारण मुनियों द्वारा नष्ट कर दी गई। युधिष्ठिर को, जब प्रारम्भ में, द्यूत-क्रीड़ा से पूर्व, आधा राज्य मिला था तो धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से खांडवप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाने तथा फिर से उस प्राचीन नगर को बसाने के लिए कहा था—'आयुः पुरुरवा राजन् नहुषश्च ययातिना, तत्रैव निवसन्ति स्म खाण्डवाह्वेनृपोत्तम। राजधानी तु सर्वेषां पौरवाणां महाभुज, विनाशितं मुनिगणैर्लोभाद् बुधसुतस्य च। तस्मात्त्वं खांडवप्रस्थं पुरं राष्ट्रं च वर्धय'—महा० आदि० 206 दक्षिणात्य पाठ। तत्पश्चात् पाण्डवों ने खांडवप्रस्थ पहुँच कर उस प्राचीन नगर के स्थान पर एक घोर वन देखा—'प्रतस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः अर्धराज्यस्य संप्राप्य खांडवप्रस्थमाविशन्' आदि० 206, 26-27। खांडवप्रस्थ के स्थान पर ही इन्द्रप्रस्थ नामक नया नगर बसाया गया जो भावी दिल्ली का केंद्र बना—'विश्वकर्मन् महाप्राज्ञ अद्यप्रभृतितत्पुरम्, इन्द्रप्रस्थमितिख्यातं दिव्यं रम्यं भविष्यति'। खांडवप्रस्थ के निकट ही खांडववन स्थित था जिसे श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अग्निदेव की प्रेरणा से भस्म कर दिया। खांडवप्रस्थ का उल्लेख अन्यत्र भी है। पंचविंशब्राह्मण 25,3,6 में राजा अभिप्रतारिन् के पुरोहित दृति द्वारा खांडवप्रस्थ में किए गए यज्ञ का उल्लेख है। अभिप्रतारिन् जनमेजय का वंशज था। जैसा पूर्व उद्धरणों से स्पष्ट है, खांडवप्रस्थ की स्थिति वर्तमान नई दिल्ली के निकट रही होगी। प्राचीन इन्द्रप्रस्थ पांडवों के पुराने किले के निकट

बसा हुआ था। (दे० **इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर**)।

खांडववन दे० **खांडवप्रस्थ**

खांडवप्रस्थ के स्थान पर पांडवों की इंद्रप्रस्थ नामक नई राजधानी बनने के पश्चात् अग्नि ने कृष्ण और अर्जुन की सहायता से खांडववन को भस्म कर दिया था। निश्चय ही इस वन में कुछ अनार्य जातियों—जैसे नाग और दानव लोगों का निवास था जो पांडवों की नई राजधानी के लिए भय उपस्थित कर सकते थे। तक्षकनाग इसी वन में रहता था और यहीं मयदानव नामक महान् यांत्रिक का निवास था जो बाद में पांडवों का मित्र बन गया और जिसने इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर का अद्भुत सभाभवन बनाया। खांडववन-दाह का प्रसंग महाभारत आदि० 221-226 में सविस्तर वर्णित है। कहा जाता है कि मयदानव का घर वर्तमान मेरठ (मयराष्ट्र) के निकट था और खांडववन का विस्तार मेरठ से दिल्ली तक, 45 मील के लगभग था। महाभारत में जलते हुए खांडववन का बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन है—'सर्वतः परिवार्याथ सप्तार्चिर्ज्वलनस्तथा ददाह खांडवं दावं युगांतमिव दर्शयन्, प्रतिगृह्य समाविश्य तद्वनं भरतर्षभ मेघस्तनित निर्घोषः सर्वभूतान्यकम्पयत्। दह्यतस्तस्य च बभौ रूपंदावस्य भारत, मेरोरिव नगेंद्रस्य कीर्णस्यांशुमतोऽशुभिः' आदि० 224, 35-36-37। खांडव के जलते समय इंद्र ने उसकी रक्षा के लिए घोर वृष्टि की किंतु अर्जुन और कृष्ण ने अपने शस्त्रास्त्रों की सहायता से उसे विफल कर दिया।

खाक

उत्तर बौद्धकालीन गणतंत्र राज्य, जो वर्तमान गवालियर-इंदौर क्षेत्र में था —दे० काक।

खादातपार

गुप्तसाम्राज्य का एक विषय या प्रदेश जिसका उल्लेख गुप्त-अभिलेखों में है (रायचौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐंशेंट इंडिया, पृ० 472)।

खानदेश

नर्मदा के दक्षिण में स्थित मुगलकालीन सूबा। खानदेश प्राचीनकाल में महिष्मंडल में सम्मिलित था।

खारी (हिंगोली तालुक, ज़िला परभणी, महाराष्ट्र)

पहाड़ी की चोटी पर रमज़ानशाह का मंदिर है जिसकी यात्रा हिंदू मुसलमान दोनों ही करते हैं। इसके चारों ओर 30 फुट ऊंचा और 1200 फुट लंबा पर-कोटा है।

खिजराबाद (ज़िला सहारनपुर)

तोपरा जहां पहले वह अशोक-स्तंभ था जिसे फिरोज़शाह तुगलक दिल्ली ले गया था, इस स्थान के निकट ही है।

खिदरापुर (महाराष्ट्र)

कोल्हापुर से तीस मील पूर्व-दक्षिण की ओर बसाया हुआ एक ग्राम है जो विंसेंट स्मिथ के अनुसार प्राचीन कोप्पम है। यहां कोपेश्वर महादेव का मंदिर नदी तट पर अवस्थित है। कोप्पम के निकट 1052 ई० में चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम या आहवमल्ल ने राजाधिराज चोल को युद्ध में पराजित किया था। राजाधिराज इस लड़ाई में मारा गया था।

खिमलासा (जिला सागर, म० प्र०)

गढ़मंडला की रानी दुर्गावती के श्वसुर संग्रामसिंह के 52 गढ़ों में से एक यहां स्थित था। इन्हीं गढ़ों के कारण दुर्गावती का राज्य गढ़मंडला कहलाता था। संग्रामसिंह की मृत्यु 1541 ई० में हुई थी।

खिरोई—**क्षीरोदा**

खिलचीपुर (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

यह स्थान गुप्तकालीन मंदिरों के अवशेषों के लिए उल्लेखनीय है। एक मंदिर के भग्नावशेष से मथुरा की कुषाण-कलाशैली में निर्मित एक स्तंभ प्राप्त हुआ था जिस पर मौर्यकालीन विकसित कमल का चिह्न अंकित है (आर्कियोलॉजीकल रिपोर्ट, 1925-26)।

खुंड दे० **खंडु**

खुर्जा (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

खुर्जा में मुसलिम संत मखदूम का मकबरा प्रायः चार सौ वर्ष प्राचीन है। यह यहां की ऐतिहासिक इमारत है।

खुर्दा (उड़ीसा)

कटक के 25 मील दूर है। यहां एक प्राचीन दुर्ग के अवशेष हैं और जगन्नाथपुरी के प्राचीन राजाओं के भवन भी अभी तक स्थित हैं। खुर्दा में हाटकेश्वर का मंदिर है।

खुल्दाबाद (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

दौलताबाद से चार मील पश्चिम में है। यह नगर अनेक बादशाहों, दरबारियों एवं संतों का समाधिस्थल है। यहां की समाधियों में चिरनिद्रा में सोने वालों में ये मुख्य हैं: मुगल सम्राट् औरंगजेब, गोलकुंडा का अंतिम सुलतान अबुल्हसन तानाशाह, अहमदशाह और बुरहान शाह (निजामशाही सुलतान),

मलिक-अंबर, मुगल शाहज़ादा आज़मशाह, खांजहां, मुनीम खां, जानी बेगम (औरंगज़ेब की प्रपौत्री), आसफजाह (प्रथम निज़ाम), नासिर जंगशहीद, संत ज़ैनुलहक, बुरहानुद्दीन और राजू कत्ताल। इस तालुके में औरंगज़ेब के बनवाए हुए फरदपुर तथा अजंता-सराय (अजंता के निकट) और निज़ामप्रथम की बनवाई जामए-मसजिद और सालारजंग प्रथम की बारादरी स्थित है।

खुसरैर (मकरान, पाकि०)

संभवत: ईरान के सम्राट् कैखुसरो के नाम पर बसाया हुआ नगर। फिरदौसी ने शाहनामा में कैखुसरो के आधिपत्य का उल्लेख किया है (दे० **मकरान**)

खूखंदो दे० **काकंदी** (2)

खोजदिया भोप (म० प्र०)

पूर्व-मध्यकालीन इमारतों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। बौद्ध मंदिर के अवशेषों से 7वीं-9वीं शती में बौद्धधर्म के ह्रास की स्पष्ट सूचना मिलती है।

खेटक आहार

कैरा (गुजरात) का प्राचीन नाम।

खेड़=क्षीरपुर

खेड़ ब्रह्मा (ज़िला सबरकंठ, गुजरात)

इस स्थान से उत्खनन द्वारा हाल ही में दसवीं शती ई० के एक मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। उत्खनन कलकत्ता विश्वविद्यालय के श्री निर्मल कुमार बोस और वल्लभ विद्यानगर के श्री अमृत पांड्या ने किया था।

खेम=खेमवती नगर

खेम का दीपवंश में उल्लेख है (जर्नल ऑफ ऐशियाटिक सोसायटी बंगाल 1838, पृ० 793)।

खेमराष्ट्र

प्राचीन गंधार (=युन्नान) के पूर्व और स्याम देश के पश्चिम में स्थित हिंदू उपनिवेश जिसका उल्लेख स्थानीय पाली के प्राचीन इतिहास-ग्रंथों में है। इसके उत्तर में अलाविराष्ट्र नामक दूसरा हिंदू राज्य था।

खेमवती नगर=खेम

स्वयंभूपुराण 4 में उल्लिखित क्रकुचंद्र बुद्ध का जन्मस्थान। यह नेपाल में तिलौरा से चार मील दक्षिण की ओर गुटीव नाम का स्थान है।

खेरहार (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

पूर्वमध्यकालीन (7वीं-9वीं शती ई०) की इमारतों के भग्नावशेषों के लिए

उल्लेखनीय है।

खैबर (प० पाकिस्तान)

भारतीय इतिहास में अंग्रेजों से पूर्व आने वाले अनेक विजातीयों ने खैबर के प्रसिद्ध दर्रे से होकर ही भारत में प्रवेश किया था। यह दर्रा पेशावर के उत्तर-पश्चिम में स्थित है और अफगानिस्तान और प० पाकिस्तान के बीच का द्वार है। होल्डिश (दि इंडियन बॉर्डरलैंड—पृ० 38) के अनुसार मुसलमानों के पहले भारत में पश्चिमोत्तर से आने वाली सड़क खैबर से होकर नहीं आती थी। अलक्षेंद्र की सेनाएं भी काबुल नदी की घाटी में होकर भारत में प्रविष्ट हुई थी न कि खैबर के मार्ग से। इतिहास से सूचित होता है कि महमूद गजनी ने खैबर-दर्रे से होकर केवल एक बार भारत में प्रवेश किया था। बाबर और हुमायं कई बार खैबर से होकर आए और गए। 18वी शती में नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली और उसका पौत्र शाह ज़मान इसी मार्ग से भारत में आए थे। (दे० कायु)

खोतन

मध्य एशिया की एक नदी तथा उसका तटवर्ती प्रदेश। खोतन नदी को महाभारत में शैलोदा कहा गया है। (दे० **शैलोदा**)। महाभारत सभा० 52,2 में शैलोदा तथा सभा० 52,3 में इस नदी के तट पर स्थित खस, पुलिंद, तंगण आदि जातियों का उल्लेख है।

खोतान दे० भद्राश्व

खोर (जिला मंदसौर म० प्र०)

कई मंदिरों के खंडहर इस स्थान से प्राप्त हुए हैं जिनमें सबसे विशाल-मंदिर 11वीं शती का है। इसे स्थानीय लोग नौतोरन कहते हैं। इसके दस तोरण हैं जो लंबाई में दो पंक्तियों में सजे है। दोनों पंक्तियां परस्पर व्यत्यस्त हैं। छः तोरण लंबाई में उत्तर से दक्षिण और शेष चार चौड़ाई में उत्तर से दक्षिण की ओर बने हैं। इनके आधाररूप स्तंभों के शीर्ष मकराकार हैं। तोरणों के सिरे मकरों के खुले हुए मुखों से निकलते हुए जान पड़ते हैं। मकरों के शिर स्तंभों में बने हुए सिंहों पर टिके हैं। तोरणों पर दो पत्राकार किनारियां और बीच में मालावाहिनियों के अलंकरण सहित पट्टी अंकित है। ये तोरण गिनती में दस हैं न कि नौ, यद्यपि जनसाधारण में मंदिर को नौतोरन कहा जाता है।

खोलदियाद (सौराष्ट्र, गुजरात)

सुरेंद्रनगर से आठ मील पर स्थित है। यहां पर हाल ही में एक कुएं से

वराह भगवान् (विष्णु) तथा भूदेवी की सुंदर मूर्ति प्राप्त हुई है। यह मूर्ति लगभग बारह सौ वर्ष प्राचीन है। इसे पूरे शिलाखंड में से तराश कर बनाया गया है। मूर्ति 17 इंच ऊंची तथा 19 इंच लंबी है। इस पर छोटी-छोटी अन्य मूर्तियों का अंकन भी किया गया है। इस मूर्ति से इस प्रदेश में 7वीं-8वीं शती ई० में वराह भगवान् की उपासना का प्रचलन सूचित होता है। 6ठी-7वीं शतियों में मध्यप्रदेश तथा दक्षिणी उत्तरप्रदेश में भी वराहदेव की पूजा प्रचलित थी।

खोलवी (राजस्थान)

700-900 ई० में बनी हुई बौद्ध गुफाओं के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। यह बौद्ध धर्म की अवनति का समय था जैसा कि गुफाओं की वास्तुकला से सूचित होता है।

खोह (म० प्र०)

नागदा के निकट इस स्थान से गुप्तकाल के कई महाराजाओं के अभिलेख (मुख्यतः ताम्रदानपट्टों पर अंकित) प्राप्त हुए हैं। प्रथम अभिलेख में महाराज हस्तिवर्मन् द्वारा वसुंतरशांडिक नामक ग्राम का गोपस्वामिन् तथा अन्य ब्राह्मणों को दान में दिए जाने का उल्लेख है। इसकी तिथि 156 गुप्त संवत् = 475 ई० है। दूसरे दानपट्ट (163 गुप्त संवत् = 482 ई०) में महाराज हस्तिन् द्वारा कोर्पारिक नामक ग्राम के दान का उल्लेख है। तीसरे दानपट्ट (209 गु० सं० = 528 ई०) में संक्षोभ द्वारा ओपानी ग्राम को पिष्टपुरी देवी (लक्ष्मी) के मंदिर के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है। इसी लेख में महाराज हस्तिन् को डाभाल प्रदेश का शासक बताया गया है। फ़्लीट के मत मे यह प्रदेश बुंदेलखंड का इलाका है जिसे डाहल भी कहते थे। खोह से ही महाराज जयनाथ तथा उनके पुत्र महाराज सर्वनाथ के भी कई दानपट्ट प्राप्त हुए हैं। प्रथम पट्ट (177 गु० सं० = 496 ई०) उच्छकल्प से प्रचलित किया गया था। इसमें धवशांडिक ग्राम का भागवत (विष्णु) के मंदिर के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है। मंदिर की स्थापना ब्राह्मणों ने इस ग्राम में की थी। दूसरा दानपट्ट 193 गु० सं० = 512 ई० में लिखा गया था। इसमें महाराज सर्वनाथ द्वारा तमसा तटवर्ती आश्रमक नामक ग्राम का विष्णु तथा सूर्य के मंदिरों के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है (तमसा नदी मइहर की पहाडियों से निकलती है)। तीसरा दानपट्ट (तिथि रहित) भी उच्छकल्प से प्रचलित किया गया था। इसमें महाराज सर्वनाथ द्वारा धवशांडिक ग्राम के अर्धभाग को पिष्टपुरिका देवी के मंदिर के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है। चौथा व पांचवां दानपट्ट भी महाराज सर्वनाथ

से ही संबंधित हैं। चौथे का विवरण नष्ट हो गया है। पांचवें में सर्वनाथ द्वारा मांगिक पेठ में स्थित व्याघ्रपल्लिक तथा काचरपल्लिक नामक ग्रामों का पिष्ठपुरिका देवी के मंदिर के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है। इसकी तिथि गु० सं 214=533 ई० है। इसमें जिस मानपुर का उल्लेख है वह स्थान फ़्लीट के मत में, सोन नदी के पास स्थित ग्राम मानपुर है। खोह के दान-पट्टों से गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था के अतिरिक्त उस समय की धार्मिक पद्धतियों तथा देवी-देवताओं के विषय में भी काफी जानकारी प्राप्त होती है।

गंगईकोंडचोलपुरम् (उदयारपलयम् ताल्लुका, ज़िला त्रिचिरापल्ली, मद्रास)

चोलवंश के प्रतापी राजा राजेंद्रचोल (1101-1144 ई०) की राजधानी। 1955-56 के उत्खनन में पुरातत्वविभाग को इस स्थान पर एक प्राचीन दुर्ग की भित्ति के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसकी लंबाई 6000 फुट उत्तर-दक्षिण और 4500 फुट पूर्व-पश्चिम की ओर है। दुर्ग के अंदर 1700 फुट लंबा और 1300 फुट चौड़ा राजप्रासाद था। दुर्ग के बाहर उत्तरपूर्व के कोने में वृहदीश्वर का प्रसिद्ध मंदिर था। दुर्ग और मंदिर के बीच में कारुवट्ट नामक नदी बहती थी। वर्तमान मंदिर का शिखर भूमि से 174 फुट ऊंचा है। यह तंजोर के प्रसिद्ध मंदिर की शैली के अनुरूप बना है। मंदिर के पास सिंहतीर्थ नामक कूप है जिसे राजेन्द्र चोल ने बनवाया था। यह नगर चोल राजाओं के शासनकाल में बहुत उन्नत तथा समृद्ध था। नगर का नाम संभवतः राजेन्द्र चोल ने गंगा के तटवर्ती प्रदेश की विजय के स्मारक के रूप में गंगईकोंडचोलपुरम् रखा था।

गंगवती

महाभारत में उल्लिखित (एक पाठ के अनुसार) गोकर्ण तीर्थ (वन० 88,15) के पास बहने वाली नदी। गंगवती और समुद्र के संगम पर यह तीर्थ स्थित था। अन्य पाठों में गंगवती के स्थान पर ताम्रपर्णी नदी का उल्लेख है।

गंगवाड़ी

मैसूर का प्राचीन नाम। यह नाम गंगवंशी नरेशों का मैसूर प्रदेश में राज्य होने के कारण पड़ा था। मैसूर में इनका शासनकाल 5वीं शती ई० से 10वीं शती तक रहा था। गंगनरेशों का राज्य उड़ीसा तक विस्तृत था। इनके समय के अनेक अभिलेख इस क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं।

गंगा

उत्तरी भारत की सर्वप्रसिद्ध नदी जो गंगोत्री पहाड़ से निकल कर उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में बहती हुई गंगासागर नामक स्थान पर समुद्र में मिल जाती है। कालिदास ने पूर्वमेघ (मेघदूत) 65 में गंगा का कैलासपर्वत (मान-

सरोवर के पास, तिब्बत) की गोद में अवस्थित बतलाया है जिससे पौराणिक परंपरा में गंगा का, भारत की कई अन्य नदियों (सिंधु, पंजाब की पांचों नदियां, सरयू, तथा ब्रह्मपुत्र आदि) के समान मानसरोवर से उद्भूत होना सूचित होता है। गंगा का एक मूल स्रोत वास्तव में मानसरोवर ही है। कालिदास ने अलका की स्थिति गंगा के निकट ही मानी है। तथ्य यह है कि हिमालय में गंगा की कई शाखाएं हैं। सीधी धारा तो गंगोत्री से देवप्रयाग होती हुई हरद्वार आती है और अन्य कई धाराएं जैसे भागीरथी, अलकनंदा, मंदाकिनी, नंदाकिनी आदि विभिन्न पर्वत-शृंगों से निकल कर पहाड़ों में ही मुख्य धारा से मिल जाती हैं। गंगा की जो धारा कैलाश और बदरिकाश्रम मार्ग से बहती आई है उसे अलकनंदा कहते हैं। कालिदास की अलका इसी अलकनंदा-गंगा के किनारे स्थित रही होगी जैसा कि नाम-साम्य से भी सूचित होता है।

गंगा का सर्वप्राचीन साहित्यिक उल्लेख ऋग्वेद के नदी-सूक्त 10,75 मे है। 'इमे मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।' गंगा का नाम किसी अन्य वेद में नहीं मिलता। वैदिक काल में गंगा की महिमा इतनी नहीं थी जितनी सरस्वती या पंजाब की अन्य नदियों की, क्योंकि वैदिक सभ्यता का मुख्य केन्द्र उस समय तक पंजाब ही में था।

रामायण के समय गंगा का महत्व पूरी तरह से स्थापित हो गया था। वाल्मीकि ने राम के वन जाते समय उनके गंगा को पार करने के प्रसंग में गंगा का सुंदर वर्णन किया है जिसका एक अंश निम्नलिखित है—

'तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम्, ददर्श राघवो गंगां रम्यामृषिनिषेविताम्। देवदानवगंधर्वैः किन्नरैरुपशोभितां नागगंधर्वपत्नीभिः सेवितां सततं शिवाम्। जलाघाताट्टहासोग्रां फेननिर्मलहासिनीं क्वचिद्वेणीकृतजलां क्वचिदावर्तशोभिताम्'— अयोध्या 50, 12–14–16। 'शिशुमारैश्चनक्रैश्च भुजंगैश्च समन्वितां शंकरस्य जटाजूटाद्भ्रष्टांसागरतेजसा। समुद्रमहिषीं गंगां सारसक्रौंच नादिताम् आसाद महाबाहुः शृंगवेरपुरं प्रति'—अयोध्या० 50, 25–26। इस वर्णन से स्पष्ट है कि गंगा को रामायण के समय में ही शिव के जटाजूट से निस्सृत, देवताओं और ऋषियों से सेवित, तीनों लोकों में प्रवाहित होने वाली (त्रिपथगा) पवित्र नदी माना जाने लगा था। अयोध्या० 52, 86–87–88–89–90 में कुशलपूर्वक वन से लौट आने के लिए सीता ने गंगा की जो प्रार्थना की है उससे भी स्पष्ट है कि गंगा को उसी काल में पवित्र तथा फलप्रदायिनी नदी समझा जाने लगा था। उपर्युक्त 52, 80

में गंगा के तट पर तीर्थों का भी उल्लेख है—'यानित्वत्तीरवासीनि दैवतानि च सन्ति हि, तानि सर्वाणि यक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च'। बाल० अध्याय 35 में गंगा की उत्पत्ति की कथा भी वर्णित है। महाभारतकाल में गंगा सभी नदियों में प्रमुख समझी जाती थी। भीष्म० 9, 14 तथा अनुवर्ती श्लोकों में भारत की लगभग सभी प्रसिद्ध नदियों की नामावली है—इनमें गंगा का नाम सर्वप्रथम है—'नदीं पिबन्ति विपुलां गंगां सिंधुं सरस्वतीम्, गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम्'—'एषा शिवजला पुण्या याति सौम्य महानदी, बदरी-प्रभवाराजन् देवर्षिगणसेविता'। महा० वन० 142–4 में गंगा को बदरीनाथ के पास से उद्भूत माना गया है। पुराणों में तो गंगा की महिमा भरी पड़ी है और असंख्य बार इस पवित्र नदी का उल्लेख है—विष्णुपुराण 2, 2, 32 में गंगा को विष्णुपादोद्भवा कहा है—'विष्णु-पाद विनिष्क्रान्तां प्लावयित्वेन्दु-मंडलम्, समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्या गंगा पतति वै-दिवः'। श्रीमद्भागवत 5, 19, 18 में गंगा को मंदाकिनी कहा गया है—'कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती—'। स्कंदपुराण का तो एक अंग ही गंगा तथा उसके तटवर्ती तीर्थों के वर्णन से भरा हुआ है। बौद्ध तथा जैनग्रंथों में भी गंगा के अनेक उल्लेख हैं—बुद्ध चरित 10, 1 में गौतम बुद्ध के गंगा को पार करके राजगृह जाने का उल्लेख है—'उत्तीर्य गंगां प्रचलत्तरंगां श्रीमद्गृहं राजगृहं जगाम'। जैन ग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में गंगा को, चुल्लहिमवत् के एक विशाल सरोवर के पूर्व की ओर से और सिंधु को पश्चिम की ओर से निस्सृत माना गया है। यह सरोवर अवश्य ही मानसरोवर है। परवर्तीकाल में (शाहजहां के समय) पंडितराज जगन्नाथ ने गंगालहरी लिखकर गंगा की महिमा गाई है। गंगा-यमुना के संगम का उल्लेख रामायण अयोध्या० 54, 8 तथा रघुवंश 13, 54–55–56–57 में है—(दे० **प्रयाग**) गंगा के भागीरथी, जाह्नवी, त्रिपथगा, मंदाकिनी, सुरनदी, सुरसरि आदि अनेक नाम साहित्य में आए हैं। वाल्मीकि-रामायण तथा परवर्ती काव्यों तथा पुराणों में चक्षु या वंक्षु और सीता (तरिम) को गंगा की ही शाखाएं माना गया है।

गंगाद्वार

गंगा के पहाड़ों से नीचे आकर मैदान में प्रवाहित होने का स्थान या हरद्वार। इसका उल्लेख महाभारत में अनेक बार आया है। आदि० 213, 6 में अर्जुन का अपने द्वादशवर्षीय वनवासकाल में यहां कुछ समय तक ठहरने का वर्णन है—'सगंगाद्वारमाश्रित्य निवेशमकरोत् प्रभुः'। गंगाद्वार से ही अर्जुन ने पाताल में प्रवेश कर उस देश की राज्यकन्या उलूपी से विवाह किया था। 'एतस्याः

सलिलं मूर्ध्नि वृषांकः पर्यधारयत् गंगाद्वारे महाभाग येन लोकस्थितिर्भवेत्'—महा० वन० 142,9 अर्थात् शिव ने गंगाद्वार में इसी नदी का पावन जल लोकरक्षणार्थ अपने शिर पर धारण किया था। महाभारत वन० 97, 11 में गंगाद्वार में अगस्त्य की तपस्या का उल्लेख है—'गंगाद्वारमथागम्य भगवानृषि-सत्तमः, उग्रमातिष्ठत तपः सह पत्न्यानुकूलया'।

गंगाधर (पश्चिमी मालवा, म० प्र०)

इस स्थान से 480 मालवसंवत्=423–24 ई० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिसमें इस प्रदेश के तत्कालीन राजा विश्ववर्मन् के मंत्री मयूराक्षक द्वारा एक विष्णुमंदिर, एक मातृका या देवी का मंदिर तथा एक विशाल कूप के बनवाए जाने का उल्लेख है। यहां उल्लिखित नामरहित संवत् मालव-संवत् ही जान पड़ता है क्योंकि विश्ववर्मन् के पुत्र बंधुवर्मन् के प्रख्यात मंदसौर अभिलेख में 493 मालव-संवत् का उल्लेख है। इस अभिलेख से सूचित होता है कि तांत्रिक उपासना भारत के इस भाग में 5वीं शती ई० में ही प्रचलित हो गई थी।

गंगापुर (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर)

दक्षिण में दत्तात्रेय सप्रदाय का मुख्य स्थान है। गुरुचरितनामक ग्रंथ मे जो 15वीं या 16वीं शती में लिखा गया था, दत्तात्रेय संप्रदाय के गुरुओं का विवरण है। इस संप्रदाय के दर्शन में हिंदू-मुसलिम संस्कृति का संगम दिखाई देता है। दत्तात्रेय को सूफ़ी संतों के समान ही रहस्यवादी तथा तत्वदर्शी माना जाता था। उनकी मूर्ति के स्थान में पदचिह्नों की पूजा की जाती है। यहां 15वीं शती में बना हुआ एक विष्णुमंदिर भी है।

गंगावली (मैसूर)

कुंदापुर-गोकर्ण मार्ग पर गंगोली या गंगावली नामक स्थान है जो पांच नदियों के संगम के पास स्थित है। कहा जाता है कि यह संगम प्राचीन पंचा-प्सरस् है किंतु अब इसकी तीर्थ-रूप में मान्यता है (दे० **पंचाप्सरस्**)।

गंगासागर (प० बंगाल)

गंगा और सागर के संगम पर स्थित प्राचीन तीर्थ। कपिल मुनि का, जिनके शाप से सगर के साठ सहस्र पुत्र भस्म हो गए थे, आश्रम इसी स्थान पर था—'ततः पूर्वोत्तरेदेशे समुद्रस्य महीपते, विदार्य पातालमथ संक्रुद्धाः सगरात्मजाः, अपश्यन्त हयं तत्र विचरन्तं महीतले, कपिलं च महात्मानं तेजोराशिमनुत्तमम्' महा० वन० 107, 28–29। इसका पुनः उल्लेख इस प्रकार है—'समासाद्य समुद्रं च गंगया सहितो नृपः, पूरयामास वेगेन समुद्रं वरुणालयम्'—वन० 109, 17–18

अर्थात् भगीरथ ने गंगा के साथ समुद्र तक पहुंचकर वरुणालय समुद्र को गंगा के पानी से भर दिया । इस तरह सगर के पुत्रों के भस्मावशेष गंगा के जल से पवित्र हुए ।

गंगोत्तरी

बदरीनाथ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) के उत्तर में गंगा का उद्गम स्थान । महाभारत वन० 142, 4 में गंगा को बदरीनाथ से उत्पन्न माना है—'एषा शिवजलापुण्या याति सौम्य महानदी, बदरीप्रभवा राजन् देवर्षिगणसेविता' । किंतु कालिदास ने गंगा को कैलासपर्वत के क्रोड़ में स्थित माना है—पूर्वमेघ मेघदूत—65 । दे० **गंगा, अलका, कैलास ।**

गंगोली

गंगावला का रूपांतरित नाम ।

गंगोलीहाट (ज़िला अल्मोड़ा)

कत्यूरी-शासन काल के कई मंदिरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है ।

गंगोह (ज़िला सहारनपुर, उ० प्र०)

यहां 1537 ई० में हुमायूं ने शेख कुद्दूस का मकबरा बनवाया था और 1586 ई० में अकबर ने जुम्मा-मसजिद बनवायी थी ।

गजम दे० **कोंगोद**

गंडक दे० **गडकी**

गंडकी

बिहार की गंडक नदी जो दक्षिण तिब्बत के पहाड़ों से निकलती है और सोनपुर और हाजीपुर के बीच में गंगा में मिलती है । महाभारत सभा० 29, 4-5 में इसे गंडक कहा गया है—'ततः स गडकाञ्छूरोविदेहान् भरतर्षभः, विजित्याल्पेन कालेनदशार्णानजयत प्रभुः' । यहां प्रसंगानुसार गंडक देश को विदेह या वर्तमान मिथिला (तिरहुत) के निकट बताया गया प्रतीत होता है । गंगा-गंडक के संगम के समीप हाजीपुर बसा है । सदानीरा जिसका उल्लेख प्राचीन साहित्य में अनेक बार आया है संभवतः गंडकी ही है (वैदिक इंडेक्स 2, पृ० 299) किंतु महाभारत सभा० 20, 27 में सदानीरा और गंडकी दोनों का एकत्र नामोल्लेख है जिससे सदानीरा भिन्न नदी होनी चाहिए—'गंडकींच महाशोणां सदानीरां तथैव थ, एकपर्वतके नद्यः क्रमेणैत्या ब्रजंत ते' । वन० 84, 113 में गंडकी का तीर्थरूप में वर्णन किया गया है—'गंडकीं तु समासाद्य सर्वतीर्थ जलोद्भवाम् वाजपेयमवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति' । पार्जिटर के अनुसार सदानीरा राप्ती है । सदानीरा कोसल और विदेह की सीमा पर

बहती थी। गंडकी का एक नाम मही भी कहा गया है। यूनानी भूगोलवेत्ताओं ने इसे कोंडोचाटिज (kondochates) कहा है। विंसेंट स्मिथ ने महापरिनिव्वान सुत्तंत में उल्लिखित हिरण्यवती का अभिज्ञान गंडक से किया है। यह नदी मल्लों की राजधानी (कुशीनगर) के उद्यान शालवन के पास बहती थी। बुद्धचरित 25,54 के अनुसार कुशीनगर में निर्वाण से पूर्व तथागत ने हिरण्यवती नदी में स्नान किया था। इससे पूर्व कुशीनगर आते समय बुद्ध ने इरावती या अचिरवती नदी को पार किया था। इरावती राप्ती का ही नाम है। विंसेंट स्मिथ ने कुशीनगर की स्थिति नेपाल में राप्ती और गंडक (हिरण्यवती) के संगम पर मानी थी (अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० 167) किंतु कुशीनगर का अभिज्ञान अब कसिया से निश्चित हो जाने पर हिरण्यवती को गोरखपुर जिले की राप्ती या उसकी कोई उपशाखा मानना पड़ेगा न कि गंडकी। दे० **सदानीरा**।

गंधमादन

(1) हिमालय की एक पर्वतमाला का नाम - 'गंधमादनमासाद्य तत्स्थानमजयत् प्रभु:, तं गंधमादनं राजन्नतिक्रम्य ततोऽर्जुन:, केतुमालं विवेशाथवर्ष रत्नसमन्वितम्'—महा० 2,28 दक्षिणात्य पाठ। बदरीनाथ के पास हिमालय की एक चोटी अभी तक इस नाम से विख्यात है। इसका उल्लेख महाभारत वन० 134-2 तथा अनुवर्ती श्लोकों में सविस्तर है—'परिगृह्य द्विजश्रेष्ठाञ्ज्येष्ठा: सर्वधनुष्मताम्, पांचाली-सहिता राजन् प्रययुः गंधमादनम्' आदि। विष्णुपुराण में गंधमादन को सुमेरुपर्वत के दक्षिण में माना है—'पूर्वेण मंदरो नाम दक्षिणे गंधमादन:'—2,2,16। विष्णु 2,2,28 में गंधमादन को मेरु के पश्चिम का 'केसराचल' माना है – 'जारुधिप्रमुखास्तद्वत् पश्चिमे केसराचला:' किंतु विष्णुपुराण में बदरीनाथ या बदरिकाश्रम को गंधमादन पर स्थित बताया गया है— 'यद्बदर्याश्रमं पुण्यं गंधमादनपर्वते।' इससे जान पड़ता है कि एक गंधमादनपर्वत तो हिमालय के उत्तर में था और दूसरा बदरीनाथ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) के निकट। पहला अवश्य ही हिमालय को पार करने के पश्चात् मिलता था जैसा कि निम्नश्लोक से स्पष्ट है जहाँ इसका उल्लेख पांडु के वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् उनकी हिमालय तथा परवर्ती प्रदेशों की यात्रा के वर्णन के प्रसंग में है—'स चैत्ररथमासाद्य कालकूटमतीत्य च, हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गंधमादनम्' अर्थात् पांडु चैत्ररथ-वन, कालकूट और हिमाचल को पार करने के पश्चात् गंधमादन जा पहुंचे। विष्णुपुराण 2, में गंधमादन को इलावृत का पर्वत माना है। इस पर्वत को गंधर्वों और अप्सराओं की प्रिय भूमि, किन्नरों की क्रीड़ास्थली और ऋषियों तथा सिद्धों का आवासस्थल बताया

गया है—'ऋषिसिद्धामरयुतं गंधर्वाप्सरसां प्रियम् विविशुस्ते महात्मानः किन्नाराचरितंगिरिम्' वन० 143, 6।

(2) (मद्रास) श्रीरामेश्वरम् के संपूर्ण क्षेत्र का नाम गंधमादन है। महर्षि अगस्त्य का आश्रम इसी स्थान पर बताया जाता है। विशिष्ट रूप से, गंधमादन रामझरोखा नामक स्थान को कहते हैं। यह रामेश्वर-मंदिर से डेढ़ मील दूर है। मार्ग में सुग्रीव, अंगद तथा जाम्बवान् के नाम से प्रसिद्ध सरोवर मिलते हैं। कहते हैं कि गंधमादन में, हनुमान ने लंका जाने के लिए समुद्र की दूरी का अनुमान किया था तथा सुग्रीवादि के साथ, लंका पहुंचने के बारे में मंत्रणा की थी। कहा जाता है कि रामेश्वरम् प्राचीन गंधमादन पर ही स्थित है।

(3) धौलपुर (राजस्थान) के निकट एक पहाड़ी है। इस की एक गुहा का संबंध पुराणों में वर्णित राजा मुचुकुंद से बताया जाता है। दे० **धौलपुर**।

गंधराड़ी (उड़ीसा)

इस स्थान पर दो अतिप्राचीन मंदिर हैं जिनके शिखर देवगढ़ के गुप्तकालीन मंदिर के शिखरों की भांति ही नीचे और सक्रमगोलाई युक्त हैं। शिखर का यह प्रकार शिखर के विकास की प्रारंभिक अवस्था का द्योतक है।

गंधर्वतीर्थ

'गंधर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद् रोहिणी सुतः, विश्वावसुमुखास्तत्र गंधर्वास्तिपसान्विताः' महा० शल्य० 37,10। महाभारतकाल में गंधर्व तीर्थ सरस्वती नदी के तट पर स्थित था। इसकी यात्रा बलराम ने सरस्वती के अन्य तीर्थों के साथ की थी।

गंधर्वदेश

(1) वाल्मीकि रामायण, उत्तरकांड में गंधर्वदेश को गांधार-विषय के अंतर्गत बताया और इसे सिंधुदेश का पर्याय माना गया है। गंधर्वदेश पर भरत ने अपने मामा केकयराज युधाजित् के कहने से चढ़ाई करके गंधर्वों को हराया और इसके पूर्वी तथा पश्चिमी भाग में तक्षशिला और पुष्कलावत या पुष्कलावती नामक नगरियों को बसाकर वहाँ का राजा क्रमशः अपने पुत्र तक्ष और पुष्कल को बनाया। 'तक्षंतक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते, गंधर्वदेशे रुचिरे गांधारविषये य च सः' उत्तर० 101,11। रघुवंश 15,87-88 में भी गंधर्वों के देश को सिंधुदेश कहा है—'युधाजितश्च संदेशात्सदेशं सिंधुनामकम्, ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः। भरतस्तत्र गंधर्वान्युधि निर्जित्य केवलम् आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम्'। वाल्मीकि रामायण 101,16 में वर्णित है कि पांच वर्षों तक

वहां ठहरकर भरत ने गंधर्वदेश की इन नगरियों को अच्छी तरह बसाया और फिर वे अयोध्या लौट आए। इन दोनों नगरियों की समृद्धि और शोभा का वर्णन उत्तर० 101, 12-15 में किया गया है—'धनरत्नौघ संकीर्णे काननैरुपशोभिते, अन्योन्य संघर्ष कृते स्पर्धया गुणविस्तरैः, उभे सुरुचिरप्रख्ये व्यवहारैरकिल्बिषैः, उद्यानयान संपूर्णेसुविभक्तान्तरापणे, उभेपुरवरेरम्ये विस्तरैरुपशोभिते, गृहमुख्यैः सुरुचिरै विमानैर्बहु शोभिते'। तक्षशिला वर्तमान तकसिला (ज़िला रावलपिंडी, प० पाकि०) और पुष्कलावती वर्तमान चरसड्डा (ज़िला पेशावर, प० पाकि०) है। रामायण-काल में गंधर्वों के यहां रहने के कारण ही यह गंधर्वदेश कहलाता था। गंधर्वों के उत्पात के कारण पड़ोसी देश केकय के राजा ने श्री रामचंद्र जी की सहायता से उनके देश को जीत लिया था। जान पड़ता है पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम में बसे हुए लड़ाकू कबीले, रामायण के गंधर्वों के ही वंशज हैं।

(2) महाभारत-काल में मानसरोवर या कैलास पर्वत का प्रदेश (तिब्बत) भी जिसे हाटक कहा गया है, गंधर्व देश के नाम से प्रसिद्ध था। सभा० 28,5 में अर्जुन की दिग्विजय के संबंध में गंधर्वों का उनके द्वारा पराजित होना वर्णित है—'सरोमानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः, गंधर्वरक्षितं देशमजयत् पांडवस्तत.'। प्राचीन संस्कृत साहित्य में गंधर्वों का विमानों द्वारा यात्रा करते हुए वर्णन है। गंधर्वों की जल-क्रीड़ा के वर्णन भी अनेक स्थलों पर हैं। चित्ररथ गंधर्व को अर्जुन ने हराकर उसके द्वारा कैद किए हुए दुर्योधन को छुड़ाया था। गंधर्व देश के नीचे, किंपुरुष या किन्नर देश—संभवतः वर्तमान हिमाचल प्रदेश और तिब्बत की सीमा के निकटवर्ती इलाके की स्थिति थी।

गंधर्वद्वीप

महाभारत सभा० अध्याय 38, दक्षिणात्य पाठ के अनुसार एक द्वीप का नाम जिसका अभिज्ञान संदिग्ध है—'इन्द्रद्वीपं कशेरुं च ताम्रद्वीपं गभस्तिमत्, गांधर्व वारुणं द्वीपं सौम्याक्षमिति च प्रभुः'। इन द्वीपों को शक्तिशाली सहस्रबाहु ने जीता था। संभव है गंधर्वद्वीप गंधर्व देश (1) या (2) से संबंधित हो।

गंधर्व-नगर

गंधर्वनगर का संस्कृत-साहित्य में अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण सुंदर० 2, 49 में लंका के सुंदर स्वर्ण-प्रासादों की तुलना गंधर्व-नगर से की गई है—'प्रासादमालावितता स्तंभकांचनसंनिभैः, शातकुंभ-निभैर्जालैर्गंधर्वनगरोपमाम्'। महाभारत आदि० 126, 25 में शतशृंग पर्वत पर पांडु की मृत्यु के पश्चात् कुंती तथा पांडवों को हस्तिनापुर तक पहुंचाकर एकाएक अंतर्धान हो जाने वाले ऋषियों की उपमा गंधर्वनगर से इस प्रकार दी

गई है —'गंधर्वनगराकारं तथैवांतर्हितंपुन:' अर्थात् वे ऋषि फिर गंधर्वनगर के समान वहीं एकाएक तिरोहित हो गए। इसी महाकाव्य में वर्णित है कि उत्तरी हिमालय के प्रदेश में अर्जुन ने गंधर्वनगर को देखा था जो कभी तो भूमि के नीचे गिरता था, कभी पुन: वायु में स्थित हो जाता था, कभी वक्रगति से चलता हुआ प्रतीत होता था, तो कभी पानी में डूब-सा जाता था— 'अन्तर्भूमौ निपतति पुनरूर्ध्वं प्रतिष्ठते, पुनस्तिर्यक् प्रयात्याशु पुनरप्सु निमज्जति' (वन० 173, 27)। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी के 4, 13 सूत्र में 'गंधर्वनगरं यथा' यह वाक्यांश लिखा है जिसकी व्याख्या में महा-भाष्यकार पतंजलि कहते हैं—'यथा गंधर्वनगराणि दूरतो दृश्यन्ते उपसृत्य च नोपलभ्यन्ते' अर्थात् जिस प्रकार गंधर्वनगर दूर से दिखलाई देते हैं किंतु पास जाने पर नहीं मिलते ·।' इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि संसार की गहन अटवी में मोक्षमार्ग से भटके हुए मनुष्य को क्षणिक सुखों के मिलने की भ्रांति इसी प्रकार होती है, जैसे गंधर्व नगर को देखकर पथिक समझता है कि वह नगर के पास तक पहुंच गया है किंतु तत्काल ही उसका यह भ्रम दूर हो जाता है – 'नरलोक गंधर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्या दृष्टिरनुपश्यति'—(श्रीमद्भागवत 5, 14, 5) वराहमिहिर ने अपने प्रसिद्ध ज्योतिषग्रंथ बृहत्संहिता में तो गंधर्व-नगर के दर्शन के फलादेश पर गंधर्व-नगर लक्षणाध्याय नामक (36वां) अध्याय ही लिखा है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—आकाश में उत्तर की ओर दीखने वाला नगर पुरोहित, राजा, सेनापति, युवराज आदि के लिए अशुभ होता है। इसी प्रकार यदि यह दृश्य श्वेत, पीत, या कृष्ण-वर्ण का हो तो ब्राह्मणों आदि के लिए अशुभ-सूचक होता है। यदि आकाश में पताका, ध्वजा, तोरण आदि से संयुक्त बहुरंगी नगर दिखाई दे तो पृथ्वी भयानक युद्ध में हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के रक्त से प्लावित हो जाएगी। इसी प्रकार 30वें अध्याय में भी शकुन-विचार के विषयों में गंधर्व-नगर को भी सम्मिलित किया गया है—'मृग यथा शकुनिपवन परिवेष परिधि परिध्राम वृक्षसुरचापै: गंधर्वनगर रविकर दंड रज: स्नेह वर्णश्च' (बृहत्संहिता 30, 2)। वास्तव में गंधर्व नगर वास्तविक नगर नहीं है। यह तो एक प्रकार की मरीचिका (mirage) है जो गर्म या ठंडे मरुस्थलों में, चौड़ी झीलों के किनारों पर, बर्फ़ीले मैदानों में या समुद्र तट पर कभी-कभी दिखाई देती है। इसकी विशेषता यह है कि मकान, वृक्ष या कभी-कभी संपूर्ण नगर ही, वायु की विभिन्न घनताओं की परिस्थिति उत्पन्न होने पर अपने स्थान से कहीं दूर हटकर वायु में अधर तैरता हुआ नजर आता है; जितना उसके पास जाएं वह

पीछे हटता हुआ कुछ दूर जाकर लुप्त हो जाता है। अंग्रेज़ी में इस मरीचिका को Fata Morgana कहते है। यह कितने अचरज की बात है कि यद्यपि भारत में इस मरीचिका के दर्शन दुर्लभ ही हैं, फिर भी संस्कृत साहित्य में इसका वर्णन अनेक स्थानों पर है। यह तथ्य इस बात का सूचक है कि प्राचीन भारत के पर्यटकों ने इस दृश्य को उत्तरी हिमालय के हिममंडित प्रदेशों में कहीं देखा होगा, नहीं तो हमारे साहित्य में इसका वर्णन क्योंकर होता।

गधवती

मेघदूत (पूर्व मेघ 35) के अनुसार यह नदी उज्जयिनी के चडेश्वर नामक स्थान के निकट बहती थी, 'धूतोद्यानं कुवलयरजो गंधिभिः गंधवत्याः'। जान पड़ता है कि कालिदास के समय में प्रसिद्ध नदी शिप्रा की ही एक शाखा का नाम गंधवती था। संभव है शिव की पूजा में अर्पित पुष्पादि सुगंधित द्रव्यों के कारण शिप्रा का पानी सुवासित जान पड़ता हो और इसीलिए इसका नाम गंधवती हुआ हो।

गंधार

(1) सिंधुनदी के पूर्व और उत्तरपश्चिम की ओर स्थित प्रदेश। वर्तमान अफ़गानिस्तान का पूर्वी भाग भी इसमें सम्मिलित था। ऋग्वेद में गंधार के निवासियों को गंधारी कहा गया है तथा उनकी भेड़ों के ऊन को सराहा गया है और अथर्व-वेद में गंधारियों का मूजवतों के साथ उल्लेख है—'उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणिमन्यथाः, सर्वाहमस्मि रोमशा गंधारीणामिवाविका' ऋग्वेद 1, 126, 18; 'गंधारिभ्यो मूजवद्भ्योङ्गेभ्यो मगधेभ्यः प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परिदद्मसि' अथर्ववेद 5, 22, 14। अथर्ववेद में गंधारियों की गणना अवमानित जातियों में की गई है किंतु परवर्ती काल में गंधारवासियों के प्रति मध्यदेशीयों का दृष्टिकोण बदल गया और गंधार में बड़े विद्वान् पंडितों ने अपना निवास-स्थान बनाया। तक्षशिला गंधार की लोकविश्रुत राजधानी थी। छांदोग्योपनिषद् में उद्दालक-अरुणि ने गंधार का, सद्गुरु वाले शिष्य के अपने अंतिम लक्ष्य पर पहुंचने के उदाहरण के रूप में उल्लेख किया है। जान पड़ता है कि छांदोग्य के रचयिता का गंधार से विशेष रूप से परिचय था। शतपथ-ब्राह्मण 12, 4, 1 तथा अनुगामी वाक्यों में उद्दालक अरुणि का उदीच्यों या उत्तरी देश (गंधार) के निवासियों के साथ संबंध बताया गया है। पाणिनि ने जो स्वयं गंधार के निवासी थे, तक्षशिला का 4, 3, 93 में उल्लेख किया है। ऐतिहासिक अनुश्रुति में कौटिल्य-चाणक्य को तक्षशिला महाविद्यालय का ही रत्न बताया गया है। वाल्मीकि-

रामायण उत्तर० 101, 11 में गंधर्वदेश की स्थिति गांधार विषय के अंतर्गत बताई गई है। केकय देश इस के पूर्व में स्थित था। केकय-नरेश युधाजित् के कहने से अयोध्यापति रामचंद्र जी के भाई भरत ने गंधर्व देश को जीतकर यहां तक्षशिला और पुष्कलावती नगरियों को बसाया था—(दे० गंधर्वदेश)। महाभारत-काल में गंधार देश का मध्यदेश से निकट संबंध था। धृतराष्ट्र की पत्नी गंधारी, गंधार ही की राजकन्या थी। शकुनि इसका भाई था। जातकों में कश्मीर और तक्षशिला—दोनों की स्थिति गंधार में मानी गई है। जातकों में तक्षशिला का अनेक बार उल्लेख है। जातककाल में यह नगरी महाविद्यालय के रूप में भारत भर में प्रसिद्ध थी। पुराणों में (मत्स्य, 48, 6 वायु, 99, 9) गंधार नरेशों को द्रुह्यु का वंशज माना। वायुपुराण में गंधार के श्रेष्ठ घोड़ों का उल्लेख है। अंगुत्तर निकाय के अनुसार बुद्ध तथा पूर्व-बुद्धकाल में गंधार उत्तरी भारत के सोलह जनपदों में परिगणित था। अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय गंधार में कई छोटी-छोटी रियासतें थीं, जैसे अभिसार, तक्षशिला आदि। मौर्यसाम्राज्य में संपूर्ण गंधार देश सम्मिलित था। कुशान साम्राज्य का भी वह एक अंग था। कुशान काल ही में यहां की नई राजधानी पुरुषपुर या पेशावर में बनाई गई। इस काल में तक्षशिला का पूर्व गौरव समाप्त हो गया था। गुप्तकाल में गंधार शायद गुप्तों के साम्राज्य के बाहर था क्योंकि उस समय यहां यवन, शक आदि बाह्यदेशीयों का आधिपत्य था। 7वीं शती ई० में गंधार के अनेक भागों में बौद्धधर्म काफ़ी उन्नत था। 8वीं–9वीं शतियों में मुसलमानों के उत्कर्ष के समय धीरे-धीरे यह देश उन्हीं के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव में आ गया। 870 ई० में अरब सेनापति याकूब एलेस ने अफ़ग़ानिस्तान को अपने अधिकार में कर लिया लेकिन इसके बाद काफ़ी समय तक यहां हिंदू तथा बौद्ध अनेक क्षेत्रों में रहते रहे। अलप्तगीन और सुबुक्तगीन के हमलों का भी उन्होंने सामना किया। 990 ई० में लमग़ान (प्राचीन लंपाक) का क़िला उनके हाथों से निकल गया और इसके बाद काफ़िरिस्तान को छोड़कर सारा अफ़ग़ानिस्तान मुसलमानों के धर्म में दीक्षित हो गया।

(2) (थाइलैंड) थाइलैंड या स्याम के उत्तरी भाग में स्थित युन्नान का प्राचीन भारतीय नाम। चीनी इतिहास-ग्रंथों से सूचित होता है कि द्वितीय शती ई० पू० ही में इस प्रदेश में भारतीयों ने उपनिवेश बसा लिए थे और ये लोग बंगाल-असम तथा ब्रह्मदेश के व्यापारिक स्थलमार्ग से यहां पहुंचे थे। 13वीं शती तक युन्नान का भारतीय नाम गंधार ही प्रचलित था, जैसा कि तत्कालीन

मुसलमान लेखक रशीदुद्दीन के वर्णन से सूचित होता है। इस प्रदेश का चीनी नाम नानचाओ था। 1253 ई० में चीन के सम्राट् कुबलाखां ने गंधार को जीतकर यहां के हिंदू राज्य की समाप्ति कर दी।

गंधावल (म० प्र०)

पूर्वमध्यकालीन इमारतों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

गंभीर

(1)=गंभीरा नदी

(2) (लंका) महावंश 7, 44। उपतिष्य ग्राम इसी नदी के तट पर स्थित था। यह नदी अनुराधपुर से सात-आठ मील उत्तर की ओर बहती है।

गंभीरा

चर्मण्वती या चंबल की सहायक नदी, जो अर्वली पहाड़ के जनपव नामक स्थान से निकलकर राजस्थान और मध्यप्रदेश के ग्वालियर के इलाके में बहती है। चंबल का उद्भव भी इसी स्थान पर है। गंभीरा नदी का वर्णन कालिदास ने मेघदूत में मेघ के रामगिरि से अलका जाने के मार्ग में, उज्जयिनी के पश्चात् तथा चर्मण्वती के पूर्व किया है—'गंभीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्' पूर्वमेघ 42। यहां कालिदास ने गंभीरा के जल को प्रसन्न अथवा निर्मल एवं हर्ष प्रदान करने वाला बताया है। अगले छन्द 33 में 'हृत्वा नीलं सलिल वसनम्' द्वारा गंभीरा के जल को नीला कहा गया है ('तस्याः किंचित् करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं, हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधो नितम्बम्')। गभीरा को आजकल गंभीर भी कहते हैं। चित्तौड़ नगरी इसी के तट पर बसी है। धरमत नामक कस्बा भी इसी नदी के तट पर है। यहां 1658 ई० में दारा की सेना को जिसमें जोधपुर नरेश जसवंत सिंह भी सम्मिलित था औरंगज़ेब ने बुरी तरह हराकर दिल्ली के राज्य-सिंहासन का मार्ग प्रशस्त बना लिया था। गंभीरा का नाम महाभारत भीष्म० 9 की नदियों की सूची में नहीं है।

गजनी (दे० **रमठ**)

गजपद

प्राचीन जैनतीर्थ जिसका उल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में है—'वंदेऽष्टापद-गंडरेगजपदे सम्मेतशैलाभिधे' (दे० एंशेंट जैन हिम्ज़—पृ० 57)।

गजपुर=हस्तिनापुर

गजपुर को जैन सूत्र 'प्रज्ञापणा' ने कुरुक्षेत्र के अंतर्गत माना है।

गजसाह्वय (हस्तिनापुर का पर्याय)। दे० **हस्तिनापुर**।

गजाग्रपद

गजाग्रपद की गणना जैन साहित्य के अतिप्राचीन आगम ग्रंथ एकादश-अंगादि में उल्लिखित जैन तीर्थों में है। इसकी स्थिति दशार्ण कूट में बताई गई है जो संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध दशार्ण देश (बुंदेलखंड का भाग) हो सकता है। दे० **दशार्ण**।

गजाधरपुर

दरभंगा (बिहार) से चार मील दक्षिण की ओर स्थित है। यहां मैथिल-कोकिल विद्यापति के संरक्षक-राजा शिवसिंह की राजधानी थी। इसको शिवसिंहपुर भी कहा जाता है। शिवसिंह मिथिला की गद्दी पर 1402 ई० के लगभग बैठे थे।

गजुली बंडा दे० **इटूर**

गड़वाल (ज़िला रायचूर, मैसूर)

इस प्राचीन ऐतिहासिक नगर में हिंदूकालीन (वारंगल नरेशों के समय में बने हुए) दुर्ग, विशाल मंदिर और गरुड़स्तंभ स्थित हैं। वारंगल के ककातीय-नरेश प्रतापरुद्र ने गड़वाल के शासक बुक्का पोलावी रेड्डी को छः परगनों का सरनागौड़ या शासक बनाया था। इस स्थान के विषय में यही सर्वप्राचीन उल्लेख मिलता है।

गढ़कुंडार (ज़िला झांसी, उ० प्र०)

गढ़कुंडार में चंदेल, खंगार और बुंदेला नरेशों के समय का दुर्ग तथा नगर के ध्वंसावशेष, अनेक प्राचीन ऐतिहासिक कथाओं तथा लोकगाथाओं को अपने अंतस् में छिपाए हुए बीहड़ पहाड़ों और बनों के बीच बिखरे पड़े हैं। प्राचीन काल में कुंडार के प्रदेश में गौंडों का राज्य था जिनके मंडलेश्वर पाटलिपुत्र के मौर्यसम्राट् थे। कालांतर में मध्ययुग के प्रारंभ में पड़िहारों ने इस स्थान पर आधिपत्य स्थापित किया और तत्पश्चात् 8वीं शती के अंत में चंदेलों ने। चंदेल राजा परमाल (दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान का समकालीन) के समय में यहां के दुर्ग में शिवा नामक क्षत्रिय किलेदार रहता था जो परमाल के अधीन था। 1182 ई० में पृथ्वीराज चौहान और परमाल के बीच होने वाले युद्ध में शिवा मारा गया और पृथ्वीराज के एक सैनिक खूबसिंह या खेतसिंह खंगार का कब्ज़ा कुंडार पर हो गया। इसने खंगार राज्य की स्थापना की, जो झांसी के परिवर्ती इलाके में पर्याप्त समय तक बना रहा। खंगारों से बुंदेला-वंशीय क्षत्रियों को ईर्ष्या थी और वे खंगारों को अपने से छोटा समझते थे। दिल्ली के गुलाम-वंश के प्रसिद्ध सुलतान बलबन के

राज्यकाल में बुंदेलों ने गढ़कुंडार पर, जहां खंगारों की राजधानी थी, अधिकार कर लिया (1257 ई०) और युद्ध में खंगार शक्ति का पूर्ण रूप से विनाश कर दिया। खंगार इस समय शक्ति के मद में चूर रहकर अत्यधिक मदिरा-पान करने लगे थे। इस युद्ध में खंगारों के सभी सरदार और सामंत मारे गये। बुंदेलों का नायक इस समय सोहनपाल था जिसकी सुंदरी कन्या रूपकुमारी और खंगार-नरेश हुरमत सिंह के कुमार की दु:खांत प्रणय-कथा बुंदेलखंड के चारणों के गीतों का प्रिय विषय है। बुंदेलों की राजधानी कुंडार में 1507 ई० तक रही। इस वर्ष या संभवत: 1531 में बुंदेला नरेश रुद्रप्रताप ने ओड़छा बसाकर वहीं नई राजधानी बनाई। खंगारों और बुंदेलों में जो युद्ध हुआ था उसका घटनास्थल कुंडार का दुर्ग ही था। दुर्ग के खंडहर झांसी नगर से तीस मील दूर हैं।

गढ़गजना (ज़िला पीलीभीत, उ० प्र०)

विशालपुर से दस मील उत्तर-पूर्व गढ़गजना और देवल के प्राचीन खंड-हर हैं। दे० **देवल**।

गढ़पहरा (ज़िला सागर, म० प्र०)

गढ़मंडले की रानी वीरांगना दुर्गावती के श्वसुर संग्रामसिंह के बावन गढ़ों में इसकी भी गणना थी। संग्रामसिंह की मृत्यु 1541 ई० में हुई थी। औरंग-ज़ेब के समय में ओड़छानरेश छत्रसाल ने गढ़पहरा पर अधिकार कर लिया जिसके फलस्वरूप यहां के निवासी सागर में जाकर बस गए। औरंगज़ेब के सेना-ध्यक्ष राजा जयसिंह ने गढ़पहरा को बुंदेलों से छीन लिया किंतु तत्पश्चात् पृथ्वीपति को यहां का राजा मान लिया गया।

गढ़मुक्तेश्वर (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

गंगा के तट पर स्थित प्रसिद्ध तीर्थ जो कार्तिकस्नान के मेले के लिए दूर दूर तक प्रसिद्ध है। स्कंदपुराण में इस तीर्थ का विस्तृत वर्णन है। इसका प्राचीन नाम शिववल्लभपुर कहा गया है। पौराणिक कथा है कि इस स्थान पर महादेव के गण दुर्वासा के शाप से मुक्त हुए थे और इसी कारण इसे मुक्ते-श्वर कहा जाता है। पुराणों की एक अन्य कथा के अनुसार राजयक्ष्मा से पीड़ित चंद्र ने यहीं तप करके रोगमुक्ति प्राप्त की थी। यह भी आख्यायिका है कि महाराज नृग गिरगिट की योनि से यहां मुक्त हुए थे जिसका स्मारक नृगकूप या नक्का कुवां आज भी गढ़मुक्तेश्वर में है। यह तो निश्चित ही है कि प्राचीन काल से ही गढ़मुक्तेश्वर में साधुसंतों का निवास रहा है। ऐतिहासिक काल में भी यह तीर्थ महत्वपूर्ण रहा है। कहा जाता है कि बर्बर-

शासकों को भारत की सीमा के परे खदेड़ कर सम्राट् विक्रमादित्य (चंद्रगुप्त द्वितीय) ने यहीं गंगा तट पर शांति प्राप्त की थी। महाराज भोज परमार भी गढ़मुक्तेश्वर आए थे। 11वीं शती में महमूद गजनी ने इस तीर्थ पर आक्रमण किया। मुगल साम्राज्य के अंतिम काल में मराठों के उत्कर्ष के समय गढ़मुक्तेश्वर में हिंदूधर्म का पुनरुद्धार हुआ। मराठों (सिंधिया) ने यहां एक दुर्ग का निर्माण भी किया जिसे सिंधिया-दुर्ग कहते थे। इसके खंडहर अब भी हैं। संभवतः इसी दुर्ग के कारण इस स्थान को गढ़मुक्तेश्वर कहा जाने लगा। यहां के पंडों की पुरानी बहियों से सूचित होता है कि 17वीं शती में अलवर का नवाब जीवनखां अपने पुत्र सहित यहां आया करता था और गंगा-स्नान करके ब्राह्मणों को दान देता था। अब से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व स्थानीय गंगा मंदिर को झज्झर के नवाब के एक हिन्दू मंत्री ने बनवाया था। इसका उल्लेख झज्झर के नवाब की वसीयत में किया गया है।

गढ़वा (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

प्राचीन नाम भट्टग्राम। यहां से कई गुप्तकालीन महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुए हैं। पहला अभिलेख चंद्रगुप्त द्वितीय के समय का है। इसका आरंभिक भाग खंडित है और इसलिए राजा का नाम अप्राप्य है किंतु इसके अंतिम भाग में (गुप्त) संवत् 88 (=407 ई०) दिया हुआ है। दसवीं पंक्ति में राजा के लिए परम भागवत शब्द प्रयुक्त है और इसके पश्चात् ही महाराजाधिराज पद आरंभ होता है। अतः यह अभिलेख गुप्तवंश के महाराजाधिराज चंद्रगुप्त द्वितीय के समय का जान पड़ता है। अभिलेख में एक सत्र की स्थापना के लिए दस स्वर्ण दीनारों के दान का उल्लेख है। 12वीं पंक्ति में, जो खंडित तथा अस्पष्ट है, पाटलिपुत्र का, संभवतः गुप्त-नरेशों की राजधानी के रूप में, उल्लेख है। इसी प्रस्तर खंड पर चंद्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के काल का भी एक अभिलेख अंकित है। इसकी तिथि नष्ट हो गई है। इस में भी सत्र के लिए दिए गए दानों का उल्लेख है। पहला दान दस दीनारों के रूप में वर्णित है, दूसरे की संख्या अस्पष्ट है। गढ़वा से कुमारगुप्त प्रथम के समय (गुप्तसंवत् 98=418 ई०) का एक अन्य प्रस्तर अभिलेख प्राप्त हुआ है। इसमें भी सत्र की स्थापना के लिए बारह दीनारों के दान का उल्लेख है। एक अन्य अभिलेख भी, जो स्कंदगुप्त के शासनकाल का जान पड़ता है (गुप्त-संवत् 148=468 ई०), गढ़वा से मिला है। इसमें अनंतस्वामी (विष्णु) की एक प्रस्तरमूर्ति की प्रतिष्ठापना तथा माला आदि सुगंधित द्रव्यों के लिए दिए दान का उल्लेख है।

गढ़वाल (उ० प्र०)

पश्चिमी उत्तरप्रदेश का पहाड़ी इलाका जिसमें देहरादून, बदरीनाथ, श्रीनगर, पौड़ी आदि स्थान हैं। इसकी लंबाई उत्तर में नीती दर्रे से दक्षिण में कोटद्वार तक 170 मील और चौड़ाई रुद्रप्रयाग से समोया तक 70 मील के लगभग है। क्षेत्रफल प्राय: 11900 वर्ग मील है। पुराणों तथा अन्य प्राचीन साहित्य में इस प्रदेश का नाम उत्तराखंड मिलता है। गढ़वाल नया नाम है जो परवर्ती काल में शायद यहां के बावन गढ़ों के कारण हुआ। कहा जाता है कि आर्य सभ्यता के इस प्रदेश में प्रसार होने से पूर्व यहां खस, किरात, तंगण, किन्नर आदि जातियों का निवास था। ऊंचे पर्वतों से घिरे रहने के कारण यह प्रदेश सदा सुरक्षित रहा है और प्राचीन काल में यहां के शांत मनोरम वातावरण में अनेक ऋषियों ने अपने आश्रम बनाए थे। महाभारत से सूचित होता है कि गढ़वाल पर पांडवों का राज्य था और महाभारत-युद्ध के पश्चात् वे अपने अंतिम समय में बदरीनाथ के मार्ग से ही हिमालय पर गए थे। यहां के अनेक स्थानों की यात्रा अर्जुन तथा अन्य पांडवों ने की थी। बदरीनाथ में व्यास का आश्रम भी था। पांडवों से संबंध के स्मारक के रूप में आज भी गढ़वाल के देवताओं में पांडव नामक नृत्य प्रचलित है। बौद्ध-धर्म के उत्कर्षकाल में गढ़वाल में अनेक विहार तथा मंदिर स्थापित हुए। उत्तरकाशी तथा बाधन के क्षेत्र में बौद्धधर्म का सबसे अधिक प्रचार था और कुछ विद्वानों का मत है कि बदरीनाथ का वर्तमान मंदिर पहले बौद्ध मंदिर या विहार था जिसे हिंदूधर्म के पुनरुत्थान के समय आदि शंकराचार्य ने बदरीनारायण के मंदिर के रूप में परिवर्तित कर दिया। बाधन का वास्तविक नाम बोधायन कहा जाता है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जगद्गुरु आदि-शंकर ने बदरीनाथ में आकर हिंदूधर्म के पुनर्जागरण का शंखनाद किया था। उनके स्मृतिस्थल यहां आज भी हैं। कालांतर में गढ़वाल की राजनैतिक दशा बिगड़ गई और खसों ने यहां छोटे-छोटे रजवाड़े कायम कर लिए। ये लोग परस्पर लड़ते-भिड़ते रहते थे। तिब्बत से भी इनके झगड़े चलते रहे। खसों के पश्चात् गढ़वाल में नागजाति का प्रभुत्व हुआ। तत्पश्चात् मालवा के पंवार राजाओं ने उत्तरी गढ़वाल में अपना राज्य स्थापित कर लिया। पँवारों में सबसे प्रसिद्ध राजा अजयपाल था। इसके राज्य में हरद्वार और कनखल भी शामिल थे। मुसलमानों के भारत पर आक्रमण के समय जब देश में सर्वत्र अशांति तथा अराजकता छाई हुई थी, राजपूताना, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र तथा अन्य स्थानों से भागकर बहुत से राजपूत

सरदारों तथा अनेक ब्राह्मण परिवारों ने गढ़वाल में शरण ली। इसी कारण गढ़वाल के जनजीवन पर राजस्थान, गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र तथा अन्य प्रदेशों की विशिष्ट संस्कृतियों का प्रभाव देखने में आता है। 1800 ई० के लगभग गढ़वाल पर नेपाल के गोरखों ने अधिकार कर लिया और बारह वर्ष तक यहां राज्य किया। उनके कठोर तथा अत्याचारपूर्ण शासन की याद में अब तक गढ़वाली लोग उसे गोर्खाणी नाम से पुकारते हैं। त्रस्त होकर गढ़-वालियों ने अंग्रेजों की सहायता से गोरखों को गढ़वाल से निकाल दिया। नेपाल युद्ध (1814 ई०) के पश्चात् अंग्रेजों ने गढ़वाल के दो टुकड़े कर दिए, टिहरी, जहां गढ़वालियों की रियायत बसाई गई और गढ़वाल, जिसे अंग्रेजों ने ब्रिटिश भारत में मिला लिया।

गढ़ा (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर से चार मील पश्चिम की ओर गौंड राजाओं का बसाया हुआ नगर। गौंड नरेश संग्रामसिंह (१६वीं शती) मदनमहल नामक स्थान पर रहते थे जो गढ़ा से एक मील पर है। इनके सिक्कों से सूचित होता है कि उस काल में यहां टकसाल भी थी। मदनमहल के निकट शारदादेवी का मंदिर है। एक प्राचीन तांत्रिक मंदिर भी है जिसका निर्माण किंवदंती के अनुसार केवल पुष्यनक्षत्र में ही किया जा सकता था। आज भी गढ़ा में तांत्रिक मत का पर्याप्त प्रभाव है।

गढ़ाकोटा (ज़िला सागर, म० प्र०)

इस स्थान की गणना गढ़मंडला के राजा संग्रामशाह (मृत्यु 1541 ई०) के बावन गढ़ों में की जाती थी। औरंगज़ेब के शासन काल में, मुग़लों की सेनाओं और ओड़छानरेश छत्रसाल में पहला बड़ा युद्ध गढ़ाकोटा में ही हुआ था। मुग़लों का सेनापति रणदूलह खां था। युद्ध में मुग़लों की भारी हार हुई। रणदूलह के दस सरदार और सात सौ सैनिक काम आए। दस तोपें भी छत्रसाल के हाथ लगीं। इस युद्ध का सुंदर वर्णन लाल कवि ने छत्रप्रकाश नामक हिंदी काव्य में किया है।

गणनाथ (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

अल्मोड़े से लगभग चौदह मील दूर है। यहां एक प्राचीन शिव मंदिर है जिसकी मूर्ति बहुत सुघड़ तथा दिव्य मानी जाती है।

गणेश गुफ़ा (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

यह स्थान बदरीनाथ से वसुंधरा जाने वाले मार्ग पर व्यास गुफ़ा के सन्निकट स्थित है। किंवदंती है कि व्यास गुफ़ा में रहते हुए व्यास ने महाभारत तथा पुराणों

की रचना की थी। महाभारत की प्रसिद्ध कथा, जिसके अनुसार इस महाकाव्य को लिखने के लिए व्यास ने गणेश को चुना था, गणेश गुफ़ा से संबंधित है। व्यास का बदरीनाथ से संबंध भी जनश्रुति में प्रसिद्ध है।

(2) (उड़ीसा) भुवनेश्वर से पांच मील पर स्थित यह जैन गुफ़ा तीसरी शती ई० पू० में निर्मित की गई थी। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन से संबद्ध कई घटनाएँ गणेश गुफ़ा में अंकित हैं। गणेश गुफ़ा, हाथी गुफ़ा और रानी गुफा नामक गुहासमूह का ही एक भाग है।

गणेशरा (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

क्षहरात वंश के क्षत्रप घाटक का एक अभिलेख इस स्थान से वोगल (Vogel) को 1912 ई० में प्राप्त हुआ था (दे० जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी, 1912, पृ०121) जिससे प्रथम शती ई० के लगभग मथुरा तथा निकटवर्ती प्रदेश पर शक (सिथियन) क्षत्रपों का आधिपत्य सूचित होता है।

गदावसान

'दृष्ट्वा पौरैस्तथा सम्यग् गदा चैव निवेशिता, गदावसानं तत्ख्यातं मथुरायाः समीपतः' महा० सभा० 19, 25। महाभारत के इस उल्लेख से सूचित होता है कि गदावसान मथुरा के समीप वह स्थान था जहां—किंवदंती के अनुसार—गिरिव्रज (मगध) से जरासंध द्वारा फेंकी हुई गदा 99 योजन दूर आकर गिरी थी। संभव है यह गदा उस समय का कोई दूरगामी अस्त्र रहा हो।

गनौर (भूपाल, म० प्र०)

गढ़मंडलानरेश संग्रामशाह के बावन गढ़ों में से एक यहां स्थित था। संग्रामशाह इतिहास-प्रसिद्ध वीरांगना दुर्गावती के श्वसुर थे। इनकी मृत्यु 1541 ई० में हुई थी।

गब्बुर (देवदुर्ग तालुका, जिला रायचूर, मैसूर)

प्राचीन काल के कई मंदिर यहां हैं जिनमें मुख्य निम्न हैं—भंगरवासप्पा, विश्वेश्वर, ईश्वर (गन्नीगुड़ी मठ), वेंकटेश्वर, चंडी हनुमान्, और शंकर।

गभस्तिमान् द्वीप

महाभारत सभा० 38 दक्षिणात्य पाठ में वर्णित सप्त महाद्वीपों में से है—इनको सहस्रबाहु ने जीता था—'इन्द्रद्वीपंकशेरुंच ताम्रद्वीपं गभस्तिमत्, गांधर्ववारुणं द्वीपं सौम्याक्षमिति च प्रभुः'। यह इंडोनीसिया का कोई द्वीप जान पड़ता है।

गभस्ती

विष्णु पुराण 2,4,66 में वर्णित शाकद्वीप की एक नदी—'इक्षुश्चैव वेणुका

चैव गभस्ती सप्तमी तथा, अन्याश्च शतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने'।

गयशिर

गया के निकट एक पहाड़ी—'नगो गयशिरो यत्र पुण्या चैव महानदी, वानीर मालिनी रम्या नदी पुलिनशोभिता'। महा० वन० 95,9। पांडवों ने अपने वनवासकाल में गया की यात्रा की थी। यह गया की विष्णुपद नामक पहाड़ी हो सकती है।

गया

यह गौतम बुद्ध के संबोधि-स्थल तथा हिंदुओं के प्राचीन तीर्थ के रूप में सदा से प्रसिद्ध रहा है। महाभारत वन० 84, 82 में गया का तीर्थ रूप में वर्णन है—'ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः, अश्वमेधमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्'। वन० 95, 9 में पांडवों की तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में भी गया का उल्लेख है—'ततो महीधरं जग्मुर्धर्मज्ञेनाभिसंस्कृतम्, राजर्षिणा पुण्यकृता गयेनानुपपद्यते'। इससे यह भी सूचित होता है कि राजर्षि गय के नाम पर ही गया का नामकरण हुआ था। गयशिर की पहाड़ी का उल्लेख इससे अगले श्लोक में है जो विष्णुपद पर्वत है। पुराणों की एक कथा के अनुसार गया, गयासुर नामक राक्षस का निवासस्थान था। विष्णु ने इसे यहां से निकाल दिया था (दे० बिहार थ्रू दि एजेज़, पृ० 114)। संभव है इस क्षेत्र में अनार्य लोगों का निवास रहा हो (दे० वही पृ० 114)। बुद्ध के समय यह स्थान नगर के रूप में विख्यात नहीं था। तब उरुवेला नामक ग्राम यहाँ स्थित था जिसके निकट बुद्ध ने पीपल वृक्ष के नीचे समाधिस्थ होकर संबुद्धि प्राप्त की थी। उरुवेला में ही वहां के ग्रामणी की पत्नी सुजाता (या नंदबाला) की दी हुई पायस खाकर बुद्ध ने अपना कई दिनों का उपवास भंग किया था और वे इस परिणाम पर पहुंचे थे कि काया को उपवास आदि से क्लेश देकर मनुष्य सर्वोच्च सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। अश्वघोष (प्रथम या द्वितीय शती ई०) ने बुद्ध-चरित में गया का उल्लेख किया है जिससे सूचित होता है कि कवि के समय में गया को राजर्षि गय की नगरी माना जाता था—'ततो हित्वाश्रमं तस्य, श्रेयोऽर्थी कृतनिश्चयः भेजे गयस्य राजर्षेर्नगरीसंज्ञमाश्रमम्' सर्ग० 12,89। बुद्ध के पश्चात् गया का नाम संबोधि भी पड़ गया था जैसा कि अशोक के एक अभिलेख से सूचित होता है। मौर्यसम्राट् ने इस स्थान की पावन-यात्रा अपने शासनकाल के दसवें वर्ष में की थी। चीनी यात्री फ़ाह्यान चौथी शती ई० तथा युवानच्वांग सातवीं शती ई० में गया आए थे। इन यात्रियों ने इस स्थान पर अशोक के बनवाए हुए विशाल-मंदिर का उल्लेख किया है। जनरल

कनिंघम तथा परवर्ती पुरातत्त्वविदों ने गया में विस्तृत उत्खनन किया था। इस खुदाई में अशोक के मंदिर के चिह्न नहीं मिल सके। कहा जाता है कि यह मंदिर सातवीं शती तक स्थित था। वर्तमान मंदिर बाद का है यद्यपि उसका आस्थान अवश्य ही प्राचीन है। यह मंदिर नौ तलों में स्तूपाकार बना हुआ है। इसकी ऊंचाई 160 फुट और चौड़ाई 60 फुट है। फ़र्ग्यूसन का विचार है कि नौतला मंदिर बनवाने की प्रथा जो चीन या अन्य बौद्धधर्म से प्रभावित देशों में प्रचलित थी वह मूलरूप से इसी मंदिर की परंपरा की अनुकृति थी (दे० हिस्ट्री ऑव इंडियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर, जिल्द, 79)। बिहार पर जब मुसलमानों का आक्रमण हुआ तब अवश्य ही गया के मंदिर का भी विध्वंस किया गया होगा। इससे पूर्व ही हिंदूधर्म के पुनरुत्थान के समय बौद्ध मंदिर का महत्त्व समाप्तप्राय हो चला था और हिंदू मंदिर ने उसका स्थान ले लिया था। महावंश में वर्णित है कि संभवतः छठी शती ई० में सिंहलनरेश महानामन् ने गया के बुद्धमंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। विष्णुपुराण में गया को गुप्त नरेशों के राज्य के अंतर्गत बताया गया है—'अनुगंगां प्रयागं गयायाश्च मागधाः गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति' 4, 24, 63। कहा जाता है कि मूलबोधिद्रुम अथवा पीपलवृक्ष को गौड़नरेश शशांक ने, जो महाराज हर्ष का समकालीन था (7वीं शती ई०), अधिकांश में विनष्ट कर दिया था किंतु यह भी संभव है कि वर्तमान वृक्ष मूलवृक्ष का ही वंशज हो। इसी वृक्ष की एक शाखा अशोक की पुत्री संघमित्रा ने सिंहलदेश में ले जाकर (अनुराधापुर में) लगाई थी। यह वृक्ष वहां अभी तक स्थित बताया जाता है। इसी सिंहलदेशीय वृक्ष की एक शाखा वर्तमान सारनाथ के जीर्णोद्धार के समय—कुछ वर्षों पूर्व वहां विरोपित की गई थी। यह भी मनोरंजक तथ्य है कि महाभारत वन० 84, 83 में गया में अक्षयवट का उल्लेख है और उसे पितरों के लिए किए गए सभी पुण्यकर्मों को अक्षय करने वाला वृक्ष बताया गया है—'तत्राक्षयवटो नाम त्रिषुलोकेषु विश्रुतः तत्र दत्तं पितृभ्यस्तु भवत्यक्षयमुच्यते' तथा 'महानदी तत्रैव तथा गयशिरोनृप, यत्रासौ कीर्त्यते विप्रैरक्षय्यकरणो वटः' वन० 87, 11। अवश्य ही यह अक्षय वट (वट=बरगद या पीपल) बौद्धों का संबोधि वृक्ष ही है जिसे हिंदूधर्म के पुनर्जागरण काल में हिंदुओं ने अपनाकर अपनी पौराणिक परंपरा में सम्मिलित कर लिया था। गया आजकल भी हिंदुओं का पवित्र स्थल है तथा यहां हुए पिंडदान का महत्व माना जाता है। फल्गु गया की प्रसिद्ध पुण्यनदी है जिसका निर्देश महाभारत वन० 95, 9 में गयशिर की पहाड़ी के निकट बहने वाली 'महानदी' के रूप में है (दे० गयशिर)। बौद्धसाहित्य में

फल्गु की सहायक नदी वर्तमान नीलांजना को नैरंजना कहा गया है—'स्नातो नैरांजनातीरादुत्ततार शनैः कृशः' (बुद्धचरित 12, 108) अर्थात् गौतम (बोधिद्रुम के नीचे समाधिस्थ होने के पहले) नैरंजना-नदी में स्नान करके धीरे-धीरे तट से चढ़कर ऊपर आए। यह गया से दक्षिण तीन मील दूर महाना अथवा फल्गु में मिलती है। वर्तमान महाना अवश्य ही महाभारत की 'महानदी' है जिसका ऊपर उद्धृत श्लोक वन० 87, 11 में उल्लेख है।

गरुआसमुद्रम् (ज़िला निज़ामाबाद, आं० प्र०)

निजामाबाद नगर से दस मील दक्षिण में छोटा-सा ग्राम है जहां 17वीं शती के तीन आर्मीनिया निवासियों के मक़बरे स्थित हैं।

गरुड़ (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

कौसानी से नौ मील। कत्यूरी नरेशों के समय में बना हुआ प्रायः बारह सौ वर्ष प्राचीन मंदिर यहां स्थित है जिसकी नक़्क़ाशी शिल्प की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

गर्गस्रोत

महाभारतकाल में सरस्वती नदी के तट पर स्थित एक तीर्थ जो गंधर्वतीर्थ के उत्तर में था। इसकी यात्रा बलराम ने की थी—'तस्माद् गंधर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिंदमः, गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुंडली'—शल्य० 37, 13–14। यह स्थान संभवतः दक्षिण-पंजाब में था।

गर्जपतिपुर, गर्जपुर=**गाजीपुर** (उ० प्र०)

गलता (ज़िला जयपुर, राज०)

जयपुर के निकट, सूरजपोल के बाहर, पहाड़ी की घाटी में रमणीक स्थान है जहां किंवदंती के अनुसार प्राचीन समय में गालवऋषि का आश्रम था जिनके नाम पर यह स्थान गलता कहलाता है। पहाड़ी के ऊपर गालवी गंगा का झरना है।

गलतेश्वर (ज़िला कैरा, गुजरात)

10वीं शती ई० के एक मंदिर के अवशेष हाल ही में इस स्थान से मिले थे जो पूर्व-सोलंकीकालीन हैं। चालुक्यकालीन अन्य मंदिर भी यहां स्थित हैं।

गवालियर, ग्वालियर (म० प्र०)

प्राचीन नाम गोपाद्रि या गोपगिरि है। जनश्रुति है कि राजपूत नरेश सूरजसेन ने ग्वालिप नाम के साधु के कहने से यह नगर बसाया था। महाभारत सभा० 30,3 में गोपालकक्ष नामक स्थान पर भीम की विजय का उल्लेख है—संभवतः यह गोपाद्रि ही है।

ग्वालियर का दुर्ग बहुत प्राचीन है और इसका प्रारंभिक इतिहास तिमिराच्छन्न है। हूण महाराजाधिराज तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल के शासनकाल के 15वें वर्ष (525 ई०) का एक शिलालेख ग्वालियर दुर्ग से प्राप्त हुआ था जिसमें मातृचेत नामक व्यक्ति द्वारा गोपाद्रि या गोप नाम की पहाड़ी (जिस पर दुर्ग स्थित है) पर एक सूर्य-मंदिर बनवाए जाने का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि इस पहाड़ी का प्राचीन नाम गोपाद्रि (रूपांतर गोपाचल, गोपगिरि) है तथा इस पर किसी न किसी प्रकार की बस्ती गुप्तकाल में भी थी। इतिहास से सूचित होता है कि ग्वालियर में 875 ई० में कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों का राज्य था। मुसलमानों के आक्रमण के समय भी यहां कछवाहा, प्रतिहार आदि राजपूत वंश राज्य करते थे। 1232 ई० में दिल्ली के गुलामवंश के सुलतान इल्तुतमिश ने ग्वालियर के किले को हस्तगत किया और राजपूत रानियों ने जौहर की प्रथा के अनुसार अग्नि में कूदकर प्राण त्याग दिए। 1399 से 1516 ई० तक यह किला तोमर-नरेशों के अधीन रहा जिनमें प्रमुख मानसिंह था। इसकी रानी गूजरी या मृगनैनी के विषय में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। किले का गूजरी महल मृगनयनी का ही अमिट स्मारक है। 1528 ई० में बाबर ने यह किला जीता। मुगलों ने इसका उपयोग एक सुदृढ़ कारागार के रूप में किया। इसमें राजनैतिक बंदी रक्खे जाते थे। औरंगज़ेब ने अपने भाई और गद्दी के हक़दार मुराद और तत्पश्चात् दारा के पुत्र सुलेमानशिकोह को कैद करके इसी किले में बंद रक्खा। मुगलों के अपकर्ष के समय जब महाराष्ट्र के प्रमुख सरदार सिंधिया का दिल्ली-आगरा के पार्श्ववर्ती प्रदेश में आधिपत्य स्थापित हुआ तो उसी समय ग्वालियर भी उसके हाथ में आ गया। इस प्रकार वर्तमान काल तक सिंधिया के राज्य की राजधानी ग्वालियर में रही। दुर्ग के स्मारकों में ग्वालियर का लंबा इतिहास प्रतिबिंबित होता है। यहां का सर्वप्राचीन स्मारक मातृचेत का बनवाया हुआ सूर्य मंदिर ही था जिसका कोई चिह्न अब नहीं है किंतु जिसकी स्थिति सूरज तालाब के निकट रही होगी। दूसरा स्मारक चतुर्भुज विष्णु का मंदिर है जो पहाड़ी के पार्श्व में काटा गया है। इसमें एक चौकोर देवालय के ऊपर एक शिखर है और पूर्व-मध्यकालीन शैली में बना हुआ सभामंडप। इस मंदिर को 875 ई० में अल्ल नामक व्यक्ति ने गुर्जर प्रतिहार नरेश रामदेव के समय में बनवाया था। इसके पश्चात् 1093 ई० में बना हुआ सास-बहू (सहस्रबाहु ?) का मंदिर ग्वालिवर-दुर्ग का एक विशेष ऐतिहासिक स्मारक है। इसे कछवाहा नरेश महीपाल ने निर्मित किया था। यह भी विष्ण का मंदिर है। कहा

जाता है कि पहले इसका शिखर सौ फुट ऊंचा था। अब इसका गर्भगृह तथा शिखर दोनों ही संरचनाएं विनष्ट हो गई हैं किंतु इसकी कला का वैभव, सभामंडप की छत की अद्भुत नक़्क़ाशी और मंदिर के बाहरी और भीतरी भागों पर निर्मित विशद मूर्तिकारी से प्रकट होता है। इसी प्रकार मंदिर के द्वारों के सिरदलों की सूक्ष्म तथा प्रभावोत्पादक मूर्तिकारी भी परम प्रशंसनीय है। द्वार की पत्थर की चौखटों पर गंगा-यमुना की मूर्तियां और पुष्पालकरण खचित हैं जो गुप्तकालीन परंपरा में है। सभामंडप की छत पर भी कीर्तिमुखों के सहित पुष्पालंकरणों का अंकन बड़ी विदग्धता और सुंदरता के साथ किया गया है। सास-बहू मंदिर से कुछ दूर पर दुर्ग का सर्वोच्च स्मारक 'तेली का मंदिर' स्थित है। इसकी ऊंचाई सौ फुट से भी अधिक है। इसके शिखर की विशेषता इसकी द्रविड़ शैली है। इसका निर्माण काल 8वीं शती से लेकर 10वीं शती ई० तक माना जाता है। इस मंदिर के ऊपर की नक़्क़ाशी सास-बहू के मंदिर की नक़्क़ाशी की अपेक्षा सादी किंतु अधिक प्रभावशाली है। कालक्रम में इस मंदिर के पश्चात् दुर्ग की पहाड़ी में चारों ओर उत्कीर्ण जैन तीर्थंकरों की विशाल नग्न-मूर्तियां आती हैं जिनमें एक तो ५७ फुट ऊंची है। ये सब 15वीं शती में बनी थीं। 15वीं शती के तोमर राजाओं के जमाने के अन्य विख्यात स्मारक भी इस दुर्ग में हैं जिनमें मान-मंदिर और गूजरी-महल मुख्य हैं। मानमंदिर की ख्याति का कारण इसकी शुद्ध भारतीय या हिंदू वास्तु-शैली है। यह 300 फुट ऊँची पहाड़ी की चोटी पर बना हुआ है। इस विस्तृत भवन पर छः वर्तुल छतरियां बनी हैं। 1528 ई० में जब बाबर ने ग्वालियर का किला देखा था तब इन छतरियों पर सुनहरी काम था जिससे ये दूर से सूर्य के प्रकाश में चमकती थीं। इस भवन के पूर्वाभिमुख भाग से बीहड़ पहाड़ी प्रदेश की मनोरम झांकी मिलती है। इसके अंदर मानसिंह का प्रासाद है जिसकी वास्तुशैली सर्वथा भारतीय है। इस शैली का प्रभाव अकबर के फतहपुर सीकरी के भवनों में देखा जा सकता है। गूजरी-महल दुमंजिला भवन है जिसका बाहरी भाग सादा और भव्य है। इस पर गुंबद बने हैं और अंदर एक प्रांगण के चारों ओर प्रकोष्ठों की पंक्ति है। दुर्ग के अन्य भवनों में करन-मंदिर, विक्रम-मंदिर (तोमरों द्वारा निर्मित) तथा मुगलों के प्रासाद—जहांगीरी महल, शाहजहांनी-महल आदि हैं। दुर्ग के बाहर औरंगज़ेब के समय की एक मसजिद और अकबर के गुरु मु० ग़ौस का मक़बरा स्थित है। पास ही अकबर के नवरत्नों में से एक तथा भारत के प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन की समाधि है। यहां से एक मील की दूरी पर रानी लक्ष्मीबाई की प्रसिद्ध समाधि है जो भारत के प्रथम स्वतंत्रता

संग्राम में अंग्रेजों से वीरतापूर्वक लड़ती हुई मारी गईं थीं।

गहरवारपुरा=गौर (ज़िला मिर्ज़ापुर, उ० प्र०)

किंवदंती के अनुसार गहरवारपुरा को बुंदेला राजपूतों के पूर्वपुरुष हेमकरन या पंचम बुंदेला ने बसाया था। पंचम की मृत्यु 1071 ई० के लगभग हुई थी। बुंदेले गहरवार (ग्रहनिवार) क्षत्रिय थे।

गांगाणी (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

यह जैन तीर्थ है। यहां जैनों के प्राचीन मंदिर हैं।

गांधर्व द्वीप=गंधर्व द्वीप

गागरोण (राजस्थान)

चौहान-नरेशों के बनवाए हुए दुर्ग के लिए राजस्थान में यह स्थान प्रसिद्ध है।

गाज़ीपुर (उ० प्र०)

स्थानीय जनश्रुति के अनुसार इस नगर को राजा गाधिपुर ने बसाया था और इसका मूल नाम गाधिपुर था जो मुसलमानों के शासनकाल में—1352 ई० के लगभग मसूद ग़ाज़ी के नाम पर गाज़ीपुर बन गया। बंगाल के गवर्नर जरनल लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थी (1805 ई०) और उसका संगमर्मर का मक़बरा यहां का प्रसिद्ध स्मारक है। स्थानीय किंवदंती में गाज़ीपुर का प्राचीन नाम गर्जपतिपुर या गर्जपुर कहा जाता है।

गाधिपुर

कान्यकुब्ज या कन्नौज का एक प्राचीन नाम। सहेतमहेत या प्राचीन श्रावस्ती के एक अभिलेख से सूचित होता है कि गाधिपुराधिप गोपाल के पुत्र मदन के सचिव विद्याधर ने 1118 ई० में श्रावस्ती में एक बौद्ध-विहार का निर्माण करवाया था। इससे सूचित होता है कि गाधिपुर नाम वास्तव में मध्यकाल तक प्रचलित था—दे० **कान्यकुब्ज**।

गालव-आश्रम (दे० गलता)

गावीमठ=कोपबल

गिज्झकूट=गृध्रकूट

गिरजाक=गिरिव्रज।

रामायणकाल में केकय देश की राजधानी जिसका अभिज्ञान (जनरल कनिंघम द्वारा) झेलम नदी के तट पर स्थित जलालपुर नामक ग्राम से किया गया है (दे० **गिरिव्रज**)। जलालपुर का प्राचीन नाम गिरजाक कहा जाता है जो गिरिव्रज का अपभ्रंश हो सकता है। प्राचीन काल में इसे नगरहार भी कहते थे।

गिरधरपुर (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

इस ग्राम से 1929 में एक छोटा प्रस्तर-स्तंभ प्राप्त हुआ था जिस पर कुशान नरेश महाराज हुविष्क के शासन के 28 वें वर्ष का एक संस्कृत अभिलेख उत्कीर्ण है जो इस प्रकार है :—'सिद्धं संवत्सरे 208 गुर्प्पिय दिवसे अयं पुण्यशाला प्राचिनीकनसरुकमान पुत्रेण खरासलेर पतिना वकनपतिना अक्षयनीवि दिन्नानतो वृद्धितोमासानुमासं शुद्धस्य चतुर्दिशि पुण्यशालायं ब्राह्मणशतं परिविषितव्यं दिवसे दिवसे च पुण्यशालाय द्वारमूले धारिय साद्यं सक्तुना आढका 3 लवणप्रस्थो 1, शकुप्रस्थो 1, हरित कलापकघटका3, मल्लका 5 एतं अनाधानं कृतेन दातव्यं बुभुक्षितानं पिबसितानं यत्रात्रं पुण्यं तं देवपुत्रस्य षाहिस्य हुविष्कस्य येषां च देवपुत्रो प्रियः तेषामपि पुण्यं भवतु सर्वापि च पृथिवीये पुण्ये भवतु अक्षयनीविदिन्नाशकश्रेणीये पुराण शत 500,50 समितकरश्रेणी (ये च) पुराणशत 500,50' अर्थात् 'सिद्धि हो। 28वें वर्ष में पौष मास के प्रथम दिन पूर्वदिशा की इस पुण्यशाला के लिए कनसरुकमान के पुत्र खरासलेर तथा वकन के अधीश्वर के द्वारा अक्षयनीवि प्रदत्त की गई। इस अक्षयनीवि से प्रतिमास जितना ब्याज प्राप्त होगा उससे प्रत्येक मास की शुक्ल चतुर्दशी को पुण्यशाला में सौ ब्राह्मणों को भोजन करवाया जाएगा तथा उसी ब्याज से प्रत्येक दिन पुण्यशाला के द्वार पर 3 आढक सत्तू, 1 प्रस्थ नमक, 1 प्रस्थ शकु, 3 घटक और 5 मल्लक हरी शाकभाजी—ये वस्तुएँ भूखे प्यासे तथा अनाथ लोगों में बांटी जाएंगी। इसका जो पुण्य होगा वह देवपुत्र षाहिहुविष्क तथा उसके प्रशंसकों और सारे संसार के लोगों को होगा। अक्षयनीवि में से 550 पुराण शक श्रेणी में तथा 550 पुराण आटा पीसने वालों की श्रेणी में जमा किए गए'। इस लेख से कुषाण-कालीन उत्तरी भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक अवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इससे सूचित होता है कि उस समय श्रमिकों तथा व्यावसायिकों के संघ बैंकों का भी काम करते थे। इस अभिलेख में तत्कालीन लोगों की नैतिक या धार्मिक प्रवृत्ति की भी झलक मिलती है।

गिरनार (ज़िला जूनागढ़, काठियावाड़, गुजरात)

प्राचीन नाम गिरिनगर। महाभारत में उल्लिखित रैवतक पर्वत की क्रोड़ में बसा हुआ प्राचीन तीर्थस्थल। पहाड़ी की ऊंची चोटी पर कई जैन मंदिर हैं। यहां की चढ़ाई बड़ी कठिन है। गिरिशिखर तक पहुंचने के लिए सात हज़ार सीढ़ियां हैं। इन मंदिरों में सर्व-प्राचीन, गुजरात-नरेश कुमारपाल के समय का बना हुआ है। दूसरा वस्तुपाल और तेजपाल नामक भाइयों ने बनवाया था। इसे तीर्थंकर मल्लिनाथ का मंदिर कहते हैं। यह विक्रम संवत् 1288=1237

ई० में बना था। तीसरा मंदिर नेमिनाथ का है जो 1277 ई० के लगभग तैयार हुआ था। यह सबसे अधिक विशाल और भव्य है। प्राचीन काल में इन मंदिरों की शोभा बहुत अधिक थी क्योंकि इनमें सभामंडप, स्तंभ, शिखर, गर्भगृह आदि स्वच्छ संगमर्मर से निर्मित होने के कारण बहुत चमकदार और सुंदर दीखते थे। अब अनेकों बार मरम्मत होने से इनका स्वाभाविक सौंदर्य कुछ फीका पड़ गया है। पर्वत पर दत्तात्रेय का मंदिर और गोमुखी गंगा है जो हिंदुओं का तीर्थ है। जैनों का तीर्थ गजेंद्र पदकुंड भी पर्वत शिखर पर अवस्थित है। गिरनार में कई इतिहास प्रसिद्ध अभिलेख मिले हैं। पहाड़ी की तलहटी में एक बृहत् चट्टान पर अशोक की मुख्य धर्मलिपियां 1-14 उत्कीर्ण हैं जो ब्राह्मीलिपि और पाली भाषा में हैं। इसी चट्टान पर क्षत्रप रुद्रदामन् का, लगभग 120 ई० में उत्कीर्ण, प्रसिद्ध संस्कृत अभिलेख है। इसमें पाटलिपुत्र के चंद्रगुप्तमौर्य तथा परवर्ती राजाओं द्वारा निर्मित तथा जीर्णोद्धारित सुदर्शन झील और विष्णु मंदिर का सुंदर वर्णन है। यह लेख संस्कृत काव्यशैली के विकास के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। यह अभिलेख इस प्रकार है—'सिद्धम्। इदं तडाकं सुदर्शनं गिरिनगरादपिदू—मृत्तिकोपलविस्तारायामोच्छ्रयनि:संधिबद्धदृढसर्व-पालीकत्वात् पर्वतपादप्रतिस्पर्धि सुश्लिष्टबंधं—मवजातेनाकृत्रिमेण सेतुबंधेनोप-पन्नं सुप्रतिविहत प्रणालीपरीवाहमीढ़विधानं च त्रिस्कंधं नादिभिरनुग्रहै मेहत्युपचये वर्तते। तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्न: स्वामिचष्टनपौत्रस्य राज्ञ: क्षत्रपस्य जयदाम्न: पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे द्विसप्ततितमे 702 मार्गशीर्ष बहुल प्रतिपदायां सृष्टवृष्टिना पर्जन्येनैका-र्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयत: सुवर्णसिकतापलाशिनीप्रभृतीनां नदीनामति मात्रोद्वृत्तैर्वेगै: सेतुम-यमाणा-नुरूप प्रतिकारमपि—गिरिशिखर तरुत-टाट्टाल कोपतल्प द्वारशरणोच्छ्रय विध्वंसिना युगनिधनसदृशपरमघोरवेगेन वायुना प्रमथित सलिल विक्षिप्त जर्जरी कृताव क्षिप्ताश्म वृक्षगुल्म लताप्रतान मानदी तलादित्युद्घाटित मासोत्। चत्वारि हस्तशतानि विंशदुत्तराण्यायतेनैता-वन्त्ये व विस्तीर्णेन पंच सप्तहस्तानवगाढन भेदेन नि:सृत सर्व तोयं मरुधन्वकल्प मतिभृशं दुदर्शनं—स्यार्थे मौर्यस्य राज्ञ: चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्पगुप्तेन कारितमशोकस्य मौर्यस्य कृते यवनराजेन तुषास्फेनाधिष्टाय प्रणाली भिरलंकृतं तत्कारितया च राजानुरूप कृतविधानया तस्मिन् भेदे दृष्टया प्रणाड्या विस्तृत सेतुणा गर्भात् प्रभृत्यविहित समुदित राजलक्ष्मी धारणागुणत: सर्ववर्णैरभिगम्य रक्षणार्थं पतित्वे वृतेना प्राणोच्छ्वासात् पुरुषवध निवृति कृतसत्यप्रतिज्ञेनान्यत्र संग्रामेष्वभिमुखागत सदृश शत्रु प्रहरण वितरण त्वाविगुण रिपु—धृतकारुण्येन

स्वयमभिगत जनपद प्रणिपतितायुष शरणदेन दस्युव्याल मृगरोगादिभिरनु पसृष्ट पूर्व नगरनिगम जनपदानां स्ववीर्यार्जितानामनुरक्त सर्वप्रकृतीनां पूर्वा-पराकरा वन्त्यनूपनी वृदानर्त सुराष्ट्र श्वभ्रभरुकच्छ सिंधु सौवीर कुकुरापरान्त निषादादीनां समग्रणां तत्प्रभावाद्य र्थं काम विषयाणां विषयाणां पतिना सर्वक्ष-त्राविष्कृतवीर शब्द जातोत्सेक विधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादनेन दक्षिणापथ-पतेः सातकर्णे द्विरपि निर्व्याज मवजित्यावजित्य संबंधाविदूरतयानुत्सादना त्प्राप्तयशसा माप्त विजयेन भ्रष्ट राजप्रतिष्ठापकेन यथार्थहस्तोच्छ्रयार्जितो-र्जितधर्मानुरागेण शब्दार्थ गांधर्वन्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारण धारण विज्ञान प्रयोगावाप्त विपुलकीर्तिना तुरग गज रथ चर्यासि चर्म नियुद्धाद्या परबल लाघवसौष्ठव क्रियेणाहर हर्दानमाना नवमानशीलेन स्थूललक्षेण यथावत् प्राप्तै-र्बलिशुल्क भागैः कनक रजतवज्र वैडूर्य रत्नोपचय विष्यन्दमान कोशेन स्फुटलघु मधुर चित्रकान्त शब्द समयोहारालंकृत गद्यपद्य—न प्रमाणमानोन्मान स्वर गतिवर्ण सारस त्यादिभिः परमलक्षण व्यंजनै रुपेतकान्तमूर्तिना स्वयमधिगत— महाक्षत्रप नाम्ना नरेन्द्र कन्या स्वयंवरानेक माल्यप्राप्त दाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्ष सहस्त्राय गोब्राह्म—र्थं धर्मकीर्ति वृद्धयर्थं चापीडयित्वा करविष्टि प्रणयक्रियाभिः पौरजनपदं जनं स्वस्मात्कोशान्महता धनौघेनानति महता च कालेन त्रिगुण दृढतर विस्तारायामं सेतुं विधाय सर्व तटे सुदर्शन वरं कारितम् । अस्मि-न्नर्थे महाक्षत्रपस्य मति सचिवकर्म सचिवैरमात्य गुण समुद्युक्तैरप्यति महत्वाद् भेदस्यानुत्साह विमुख मतिभिः प्रत्याख्यातारंभं पुनः सेतुवंधनै राश्याद्धाहा भूतासु प्रजास्विहाधिष्ठाने पौरजानपदजनानुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानामानर्त सुराष्ट्राणां पालनार्थं नियुक्तेन पह्लवेन कुलैपपुत्रेणामात्येन सुविशाखेन यथावदर्थधर्म व्यवहार दर्शनैरनुरागम भिवर्धयता शक्तेन दान्तेना चपला विस्मितेनार्येणाहर्येण स्वधितिष्ठता धर्म कीर्ति यशांसि भर्तुरभिवर्धयतानुष्ठितामिति'। इसी अभि-लेख की चट्टान पर 458 ई० का गुप्तसम्राट् स्कंदगुप्त के समय का भी एक अभि-लेख अंकित है। इसमें स्कंदगुप्त द्वारा नियुक्त सुराष्ट्र के तत्कालीन राष्ट्रिक पर्णदत्त का उल्लेख है। पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने जो गिरिनगर का शासक था सुदर्शन तड़ाग के सेतु या बांध का जीर्णोद्धार करवाया क्योंकि यह स्कंदगुप्त के राज्याभिषेक के वर्ष में जल के वेग से नष्ट हो गया था। इन अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि हमारे इतिहास के सुदूर अतीत में भी राज्य द्वारा नदियों पर बांध बनवाकर किसानों के लिए कृषि एवं सिंचाई के साधन जुटाने की दीर्घकालीन प्रथा थी। जैनग्रंथ विविधतीर्थकल्प में वर्णित है कि गिरनार सब पर्वतों में श्रेष्ठ है क्योंकि यह तीर्थंकर नेमि से संबंधित है।

गिरिकंड पर्वत (लंका)

महावंश 10,27-28। यह पर्वत अनुराधापुर से 15 मील दक्षिण में कहगल नामक पहाड़ी के पास स्थित था। कहगल प्राचीन **काम्न पर्वत** है।

गिरिकर्णिका

गुजरात की साबरमती नदी, दे० पद्मपुराण—उत्तर० 52। साबरमती का यह नाम सौंदर्य-बोध की दृष्टि से बहुत ही सुंदर है। पर्वत की कर्णिका या कान में पहनने की बाली के समान—यह नदी का विशेषण हमारे प्राचीन साहित्यकारों एवं भौगोलिकों की सौंदर्यमयी दृष्टि का अच्छा परिचायक है।

गिरिकोट्टूर=कौट्टूरगिरि

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति के अनुसार गिरिकोट्टूर के राजा स्वामिदत्त को समुद्रगुप्त ने अपने दक्षिण भारत के अभियान के प्रसंग में परास्त किया था—'कौसलक महेंद्र गिरिकौट्टूरक स्वामीदत्त—प्रभृति सर्वदक्षिणा पथ राजा गृहणमोक्षानुग्रहजनित प्रतापोन्मिश्र महाभाग्यस्य—'। इसका अभिज्ञान वर्तमान कोठूर, ज़िला गंजम उड़ीसा से किया गया है।

गिरिधन (महाराष्ट्र)

बेसीन से 4½ मील दूर गिरिधन नामक पहाड़ी है जो प्राचीन गुहा मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। यह सोपारा या प्राचीन शूर्पारक के निकट स्थित है।

गिरिनगर (ज़िला जूनागढ़)

वर्तमान गिरनार का ही प्राचीन नाम है। इसका उल्लेख रुद्रदामन् के प्रसिद्ध अभिलेख में है—'इदं तड़ाकं सुदर्शनं गिरिनगरादपि'—(दे० **गिरनार**)।

गिरिव्रज

(1) रामायणकाल में केकय देश की राजधानी (गिरिव्रज का शाब्दिक अर्थ पहाड़ियों का समूह है)। इसे राजगृह भी कहते थे—'उभयौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परंतपौ, पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने' वाल्मीकि० अयो० 67,7। 'गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरंजसा'—अयो० 68, 22। गिरिव्रज का अभिज्ञान जनरल-कनिंघम ने झेलम नदी के तट पर बसे हुए गिरजाक अथवा जलालपुर कस्बे (प० पाकि०) से किया है। जलालपुर का प्राचीन नाम नगरहार भी था।

(2) मगध की प्राचीन राजधानी जिसे राजगृह भी कहते थे। केकय के गिरिव्रज से इस गिरिव्रज को भिन्न करने के लिए इसे मगध का गिरिव्रज कहते थे (दे० सेक्रेड बुक्स ऑव दी ईस्ट-13, पृ० 150)। वाल्मीकि बाल० 1,38-39 मे गिरिव्रज की पांच पहाड़ियों का उल्लेख है—'चक्रेपुरवरंराजा

वसुर्नाम गिरिव्रजम् । एषा वसुमती नामवसोस्तस्य महात्मनः, एते शैलवराः पंच प्रकाशन्ते समन्ततः' ।—इस उल्लेख के अनुसार इस नगर को वसु नामक राजा ने बसाया था। महाभारत काल में गिरिव्रज में मगधनरेश जरासंध की राजधानी थी—'तने रुद्धा हि राजानः सर्वे जित्वा गिरिव्रजे'—महा० सभा० 14,63 अर्थात् जरासंध ने सब राजाओं को जीतकर गिरिव्रज में क़ैद कर लिया है। 'भ्रामयित्वा शतगुणमेकोनं येन भारत, गदाक्षिप्ता बलवता मागधेन गिरिव्रजात्'—महा० सभा० 19,23 अर्थात् श्रीकृष्ण के ऊपर आक्रमण करने के लिए बलवान् मगधराज जरासंध ने अपनी गदा निन्यानबे बार घुमाकर गिरिव्रज से (99 योजन दूर मथुरा की ओर) फैंकी (दे० **गदावसान**)। संभवतः मगध का गिरिव्रज, केकय के इसी नाम के नगर के निवासियों द्वारा रामायणकाल के पश्चात् बसाया गया होगा। सौंदरनंद 1,42 में कपिलवस्तु की तुलना अश्वघोष ने गिरिव्रज से की है—'सरिद्विस्तीर्णपरिखं स्पष्टांचितमहापथम्, शैलकल्पमहावप्रं गिरिव्रजमिवा परम्'। इसके अन्य नाम राजगृह, मगधपुर, बार्हद्रथपुर, बिंबिसारपुरी, वसुमती आदि प्राचीन साहित्य में प्राप्त हैं—(दे० **राजगृह**)।

गिरी

यमुना की सहायक नदी जिसका पुराणों में वर्णन है। यह हिमालय के चूर पर्वत से निकल कर राजघाट में यमुना में मिलती है (जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, जिल्द 11,1842 पृ० 364)।

गिर्णा

सह्याद्रि से निस्सृत एक नदी जो खानदेश में चोपड़ा के पास ताप्ती में मिलती है।

गिहलौट (उदयपुर, राज०)

मध्यकाल में, चित्तौड़ के निकट अर्वली-पर्वत की घाटी में बसा हुआ एक अतिप्राचीन स्थान जो बाद में उदयपुर कहलाया। मेवाड़ की प्राचीन जन-श्रुतियों के अनुसार मेवाड-नरेशों के पूर्वज बप्पारावल ने चित्तौड़ को विजय करने के पूर्व इसी स्थान के निकट कुछ समय तक अज्ञातवास किया था। गहलौट राजपूतों का आदि निवासस्थान भी यहीं था। इस स्थान का नाम-करण गुहिल जाति के यहां मूलरूप से निवास करने के कारण हुआ था। बप्पा का संबंध बचपन में इन्हीं लोगों से रहा था (गुहिल=गुह)। 1567 ई० में जब अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया तो महाराणा उदयसिंह राज-धानी छोड़ कर गिहलौट में जाकर रहे थे। उन्होंने प्रारंभ में यहां एक

पहाड़ी पर सुंदर प्रासाद का निर्माण करवाया था। धीरे-धीरे कई और महल भी यहां बनवाए गए और यहां के निवासियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी और इस जंगली ग्राम ने शीघ्र ही एक सुंदर नगर का रूप धारण कर लिया। इसी का नाम कुछ समय के पश्चात् उदयसिंह के नाम पर उदयपुर हुआ और मेवाड़ राज्य की राजधानी चित्तौड़ से हटा कर नए नगर में बनाई गई।

गुंड (गुजरात)

क्षत्रप रुद्रसिंह (क्षत्रप रुद्रदामन् का वंशज) के शासनकाल (181 ई०) का एक अभिलेख इस स्थान से प्राप्त हुआ है। इसमें आभीर सेनापति रुद्र-मूर्ति द्वारा एक तड़ाग के निर्मित किए जाने का उल्लेख है।

गुंडगिरि

सिंध, (प० पाकि०) में स्थित प्राचीन जैन तीर्थ (दे० एंशेंट जैन हिम्स, पृ० 56)।

गुजरांवाला (प० पाकि०)

पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह के जन्मस्थान के रूप में इस नगर की ख्याति है। इनका जन्म 1780 ई० में हुआ था।

गुजर्रा (जिला दतिया, म० प्र०)

1924 में इस स्थान से अशोक का एक शिलाभिलेख प्राप्त हुआ था जो बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। अशोक के तब तक प्राप्त अभिलेखों या धर्मलिपियों में केवल मासकी के अभिलेख में ही अशोक का नाम देवानां प्रिय की उपाधि के साथ मिला था। शेष में सर्वत्र केवल देवानांप्रियदर्शी की उपाधि का ही उल्लेख है, नाम का नहीं। गुजर्रा में प्राप्त नए अभिलेख में, जो बैराट, सहसराम, रूपनाथ, यरागुडी, राजुलमंडगिरि और ब्रह्मगिरि तथा मासकी के अभिलेख की ही एक प्रति है, अशोक का नाम उपाधि सहित दिया हुआ है—'देवानां पियसपियदसिनो अशोक राजस'। इस प्रति के प्राप्त होने से इस अभिलेख के कई संशयग्रस्त पाठ स्पष्ट हो गए हैं। इसका मुख्य विषय है—अशोक के 256 दिन की धर्मयात्रा तथा बौद्धधर्म के प्रचार के लिए उसका अनथक प्रयास। जिस चट्टान पर यह लेख अंकित है वह गुजर्रा के निकट एक वन में अवस्थित है।

गुटीव दे० **खेम**

गुड़गांव (हरियाणा)

कहा जाता है कि कौरव-पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य के नाम पर यह स्थान गुरुग्राम या गुड़गांव कहलाता है। ऐसी जनश्रुति है कि यहां उनका आश्रम था। द्रोणाचार्य का मंदिर भी गुड़गांव में है।

गुड़ देश

11वीं शती के अरब लेखक अलबरुनी के भारत-यात्रा-वृत्त में इस देश का उल्लेख है। यह संभवत: थानेसर (स्थानेश्वर) का ही एक नाम था।

गुड़ीहटनूर (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

यहां 17वीं शती का एक मंदिर अवस्थित है जो हेमाड़पंथी शैली में बना हुआ है। एक प्रागैतिहासिक श्मशान के चिन्ह भी यहां मिले हैं।

गुणमती (बिहार)

ज़िला गया (बिहार) की जहानाबाद तहसील में स्थित प्राचीन बौद्ध विहार। इसका युवानच्वांग ने उल्लेख किया है। यहां एक मंदिर में अवलोकितेश्वर की मूर्ति स्थित है। इसे अब भैरव की मूर्ति कहा जाता है (ग्रियर्सननोट्स ऑन दि डिस्ट्रिक्ट ऑव गया)।

गुणीर (ज़िला फतहपुर, उ० प्र०)

गंगा के किनारे एक टीले पर बसा हुआ छोटा सा ग्राम है किंतु आसपास के विस्तृत खंडहरों से विदित होता है कि यह स्थान प्राचीन काल में बहुत संपन्न रहा होगा। हाल ही में, तुलसीदास के समकालीन संतकवि लक्षदास की पुरानी जीर्ण-शीर्ण कुटी का यहां पता लगा है। लोक-वार्ता के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास लक्षदास से मिलने गुणीर आए थे। लक्षदास कृष्णायन नामक काव्य के रचयिता थे। यह ग्रंथ अभी हाल में प्रकाश में आया है।

गुप्तहाल (लंका)

महावंश 24, 17। महागाम से 34 मील उत्तर की ओर वर्तमान बुत्तल।

गुरदासपुर (पंजाब, उ० प्र०)

यहां के किले में रहते हुए सिखों के वीर नेता बंदावैरागी ने मुगल-सम्राट् फ़रुख़सियर की सेनाओं का डटकर सामना किया था। फ़रुखसियर ने बंदा को दबाने के लिए कश्मीर से तूरमानी सूबेदार अब्दुलसमद को भेजा था जिसने गुरदासपुर के किले को नौ मास तक घेर रक्खा था। बंदा और उसके वीर साथी किले के भीतर से मुग़लों का मुकाबला करते रहे किंतु रसद चुक जाने पर विवश हो गए और अंत में उन्हें आत्मसमर्पण करना पड़ा। बंदा को पकड़ कर दिल्ली ले जाया गया जहां इस वीर का पैशाचिक क्रूरता के साथ वध कर दिया गया।

गुरावली घाट (ज़िला इलाहाबाद, उ०प्र०)

प्रयाग से दक्षिण की ओर यमुना का एक घाट। स्थानीय लोक श्रुति के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी ने वनवास-यात्रा के लिए प्रयाग से चित्रकूट जाते समय

यमुना को इसी स्थान पर पार किया था।

गुरीला गिरि (म० प्र०)

चंदेरी से नौ मील पूर्वोत्तर। यहां अनेक प्राचीन जैन मंदिरों के खंडहर विस्तृत क्षेत्र को घेरे हुए हैं।

गुरुग्राम = गुड़गांव

गुरुपादगिरि (ज़िला गया, बिहार)

बौद्ध गया से 100 मील दूर है। यहां काश्यप बुद्ध महाकाश्यप ने निर्वाण प्राप्त किया था। इसे आजकल गुरपा पहाड़ी कहते हैं। इसका दूसरा नाम कुक्कुटपादगिरि था।

गुरेज (दे० दरद)

गुर्ग (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

यहां प्रागैतिहासिक काल के श्मशान के चिह्न (पत्थरों के घेरे के रूप में) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार के प्रागैतिहासिक पत्थरों के घेरे (Stonehenge) अन्य देशों—ब्रिटेन आदि में भी मिले हैं।

गुर्गी (ज़िला रींवा, म० प्र०)

रींवा से प्रायः बारह मील पूर्व की ओर स्थित है। एक ऊंचे टीले पर कलचुरि नरेशों के समय के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। यहां से प्राप्त एक प्राचीन कलापूर्ण तोरण, रींवा के राजमहल में ले जाया गया था। इसके स्तंभों तथा शीर्ष पाषाणों (सिरदलों) पर अनेक सुन्दर मूर्तियां खुदी हुई हैं। इनमें से एक पर शिव की बारात का मनोहर दृश्य मूर्तिकारी के रूप में अंकित है। युवराजदेव प्रथम के काल में बने हुए एक विशाल मदिर के खंडहरों से 12 फुट × 5 फुट परिमाप के प्रस्तर खंड पर शयनमुद्रा में अंकित शिवपार्वती की एक सुन्दर मूर्ति प्राप्त हुई है।

गुलबर्गा (मैसूर)

प्राचीन नाम कलबुर्गी है। यह नगर दक्षिण के बहमनी नरेशों के समय में प्रसिद्ध हुआ। यहां एक प्राचीन सुदृढ दुर्ग स्थित है जिसके अन्दर एक विशाल मसजिद है जो 1347 ई० में बनी थी। यह 216 फुट लम्बी और 176 फुट चौड़ी है। इसके अन्दर कोई आंगन नहीं है वरन् पूरी मसजिद एक ही छत के नीचे है। कहा जाता है कि यह भारत की सबसे बड़ी मसजिद है। इसकी बनावट में स्पेन नगर के कोरडावा की मसजिद की अनुकृति दिखलाई पड़ती है। अन्दर से यह प्राचीन गिरजाघरों से मिलती-जुलती है। इसका एक सुदीर्घ गुंबद है जिसके चारों तरफ छोटे-छोटे गुंबद हैं। मुसलिम संत ख्वाजा बंदा-

नवाज़ की दरगाह (निर्माण 1640 ई०) भी गुलबर्गा का प्रसिद्ध स्मारक है। इसका गुम्बद प्राय: अस्सी फुट ऊंचा है। दरगाह के अन्दर नक्क़ारखाना, सराय, मदरसा और औरंगज़ेब की मसजिद है। बहमनी सुलतानों के मक़बरे भी यहां स्थित हैं। गुलबर्गा के ऐतिहासिक मन्दिरों में वासवेश्वर का मंदिर 19वीं शती की वास्तुकला का सुन्दर उदाहरण है। श्री वासवेश्वर (शरन बसप्पा) का जन्म आज से प्राय: सवा सौ वर्ष पूर्व गुलबर्गा ज़िले में स्थित अरलगुन्दागी नामक ग्राम में हुआ था। यह बचपन ही से सन्त-स्वभाव के व्यक्ति थे। 35 वर्ष की आयु में इन्होंने संन्यास ले लिया किन्तु बाद में वे गुलबर्गा में रहकर जीवन-भर जनता-जनार्दन की सेवा में लगे रहे और उन्होंने मानवमात्र की सेवा को ही अपने धार्मिक विचारों का केन्द्र बना लिया। मार्च मास में इनके समाधि-मन्दिर पर दूर-दूर से लोग आकर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। गुलबर्गा के अन्य ऐतिहासिक स्मारक ये हैं—हसनगंगू का मक़बरा (हसनगंगू ने ही बहमनी वंश की नींव डाली थी), महमूदशाह का मक़बरा, अफजलखां की मसजिद, लंगर की मसजिद, चांदबीबी का मक़बरा, सिद्दी अंबर का मक़बरा, चोर गुंबद, कलन्दरखां की मसजिद व इन्हीं का मक़बरा। चांदबीबी का मक़बरा बीजापुर की शैली में बना हुआ है और स्वयं उसी का बनवाया हुआ है किन्तु चांदबीबी की कब्र उसमें नहीं है। चोर गुंबद की भूमिगत भूलभुलैया में पिछले जमाने में चोर-डाकुओं ने अड्डा बना लिया था। इसी भवन में कन्फेशन्स ऑव-ए-ठग का प्रसिद्ध लेखक मीडोज़ टेलर भी ठहरा था। लंगर की मसजिद की छत हाथी की पीठ की भांति दिखाई देती है और बौद्ध चैत्यों की अनुकृति जान पड़ती है।

गुलमर्ग (कश्मीर)

कश्मीर का प्रसिद्ध पर्वतीय स्थान। रानी का मन्दिर चीनी-बौद्ध शैली में निर्मित है। मन्दिर अपेक्षाकृत नवीन होते हुए भी कश्मीर की पुरानी वास्तुकला का उदाहरण है। गुलमर्ग मुग़ल बादशाहों, विशेषकर जहांगीर का, प्रिय क्रीड़ा-स्थल था।

गुलशनाबाद

(1) सादापुर वेद्क (आन्ध्र प्रदेश) का नाम गोलकुण्डा के सुलतानों के समय में गुलशनाबाद कर दिया गया था।

(2)=नासिक (महाराष्ट्र)। कहा जाता है कि जब मुसलमानों ने नासिक पर आक्रमण किया तो इस प्राचीन तीर्थ का नाम बदलकर उन्होंने गुलशनाबाद कर दिया किन्तु नया नाम अधिक समय तक नहीं चला और प्राचीन

नाम नासिक बराबर प्रचलित रहा ।

गुलेर (कांगड़ा, हि० प्र०)

कांगड़ा स्कूल की चित्रकला में गुलेर का विशेष महत्व है। वास्तव में इस शैली का जन्म 18वीं शती में गुलेर तथा निकटवर्ती स्थानों में हुआ था। बसौली के प्रसिद्ध चित्रकला-प्रेमी नरेश कृपालसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके दरबार के अनेक कलावंत अन्य स्थानों में चले गये थे। गुलेर में कृपालसिंह के समान ही राजा गोवर्धनसिंह ने अनेक चित्रकारों को प्रश्रय तथा प्रोत्साहन दिया। बसौली शैली की परुषता गुलेर में पहुंचकर कोमल हो गई और कांगड़ा शैली के विशिष्ट गुण—मृदुसौन्दर्य का धीरे-धीरे गुलेर के वातावरण में विकास होने लगा किन्तु अब भी रंगों की चमक-दमक पर कलाकार अधिक ध्यान देते थे। किन्तु इस शैली का पूर्ण विकास गुलेर के मुगल चित्रकारों ने किया जो इस नगर में दिल्ली से नादिरशाह के आक्रमण (1739) के पश्चात् आकर बस गए थे। गुलेर की एक राजकुमारी का विवाह गढ़वाल में होने के कारण कांगड़ा शैली की चित्रकला गढ़वाल भी जा पहुंची।

गुहारण्य (मैसूर)

हरिहर (बंगलौर-पूना मार्ग पर) ही प्राचीन पौराणिक गुहारण्य है। इसी स्थान पर भगवान् विष्णु ने गुह नामक राक्षस का वध किया था।

गूजड़ू गढ़ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

गढ़वाल की एक प्राचीन गढ़ी जहां पुराने महलों के खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं।

गूजरवाड़ा

उन्नीसवीं शती ई० में उ०प्र० के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और बिजनौर ज़िलों के कुछ भागों को गूजरवाड़ा कहते थे क्योंकि इनमें गूजरों की अनेक बस्तियां थीं। ये लोग खेतिहर होते हुए भी लूटमार करते थे।

गृध्रकूट

राजगृह (बिहार) के निकट एक पर्वत जिसकी गुफा में गौतमबुद्ध वर्षाकाल व्यतीत किया करते थे। पहाड़ी पर अनेक रहने के स्थान आज भी बने हैं। गृध्रकूट, राजगृह की पांच पहाड़ियों में से है जिनका नामोल्लेख पाली ग्रन्थों में है। इसे पाली में गिज्झकूट कहा गया है। एक पाली ग्रन्थ में बुद्ध ने राजगृह के जिन स्थानों को सुन्दर तथा सुखदायक बताया है उनमें गृध्रकूट भी है। महाभारत में राजगृह की जिन पांच पहाड़ियों के नाम हैं उनमें गृध्रकूट का नाम नहीं है। दे० **राजगृह**।

गेटोर (राजस्थान)

प्राचीन राजाओं की समाधि-छतरियां यहां के उल्लेखनीय स्मारक हैं। ये राजस्थान की प्राचीन वास्तुकला के सुन्दर उदाहरण हैं।

गेडरोज़िया

मकरान (प० पाकिस्तान) का यूनानी नाम। रोम के इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक गिबन ने भी गेडरोज़िया का मकरान से अभिज्ञान किया है। संभवत: यह नाम मकरान के प्राचीन बंदरगाह ग्वादूर (संस्कृत—बदर) का रूपांतर है। ग्वादूर अलक्षेंद्र के आक्रमण के समय तथा उसके पूर्व से ही इस प्रदेश का बंदरगाह था। अलक्षेन्द्र पंजाब से यूनान वापस जाते समय मकरान के मार्ग से ही गया था। यूनानी लेखकों के वृत्तान्त से सूचित होता है कि गेडरोज़िया-निवासी मत्स्यभक्षक (ichthyphaogoi) थे तथा इस समुद्रतट पर ह्वेल मछलियां बहुतायत से मिलती थीं। इनकी हड्डियों के यहां के निवासी घर बनाते थे और इसके विशाल खुले जबड़ों से दरवाज़ों का काम लेते थे।

गोआ

पश्चिमी समुद्र-तट पर स्थित भूतपूर्व पुर्तगाली बस्ती जो 1961 से भारत का अभिन्न अंग बन गई है। गोआ अतिप्राचीन नगर है। इसका उल्लेख पुराणों तथा अन्य प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में प्राप्त है जहां इसके कई नाम मिलते है—जैसे, गोव, गोवापुरी, गोराष्ट्र, गोमकवन और गोमंतक। गोआ के इतिहास से विदित होता है कि यहां दक्षिण के प्रसिद्ध कदंब नामक राजवंश का अधिकार द्वितीय शती ई० से 1312 ई० तक था। तत्पश्चात् उत्तरी भारत से आने वाले मुसलमान आक्रमणकारियों ने इस पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। उनका राज्य यहां 1370 ई० तक रहा, जब गोआ विजयनगर साम्राज्य के अंतर्गत कर लिया गया। 1402 ई० में बहमनी राज्य के विघटित हो जाने पर यूसुफ आदिलशाह ने गोआ को बीजापुर रियासत में मिला लिया। इस समय गोआ की गणना पश्चिमी समुद्र-तट के प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्रों में होती थी। विशेषकर हुरमुज़ (ईरान) से भारत आने वाले ईरानी घोड़े गोआ के बंदरगाह पर ही उतरते थे। हज-यात्रियों के अरब जाने के लिए भी यही बंदरगाह था। इस समय व्यापारिक महत्त्व की दृष्टि से केवल कालीकट को ही गोआ के समकक्ष समझा जाता था। अरब भौगोलिकों ने गोआ को सिंदबर या संदाबूर नाम से लिखा है। पुर्तगाली इसे गोवा वेल्हा कहते थे। 1498 ई० में पुर्तगाली नाविक वास्कोडीगामा के कालीकट पर उतरने के पश्चात् पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिम तटवर्ती अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। 1510 ई० में पुर्तगाली

गवर्नर अलबुकर्क ने इस नगर पर आक्रमण करके उसे हस्तगत कर लिया। यूसुफ़ आदिलशाह के बारंबार पुर्तगालियों से मोर्चा लेते रहने पर भी अंत में गोआ पुर्तगालियों के कब्ज़े में आ गया। इसी काल में इन लोगों का भारत के पश्चिमी-तट के अनेक स्थानों पर अधिकार हो गया किंतु उन्हें डच, अंग्रेजों तथा मराठों का सामना करना था। पुर्तगाली बस्तियों पर 1603 ई० में डचों ने हमला किया। 1683 ई० में शिवाजी के पुत्र शंभाजी ने सालसट इत्यादि स्थानों पर आक्रमण करके पुर्तगालियों को बहुत हानि पहुंचाई। 1739 ई० में मराठा सरदार चिमनाजी आपा ने पुर्तगाली राज्य पर ज़ोर का आक्रमण किया और उसका अधिकांश जीत लिया। इसका एक भाग तत्पश्चात् अंग्रेज़ों के हाथ में चला गया। गोआ पुर्तगाल की अवशिष्ट बस्तियों में से था और यह स्थिति 1961 तक रही जब भारत ने अपने इस अभिन्न अंग को साढ़े चार सौ वर्ष के विजातीय शासन के पश्चात् पुन: अपना लिया।

गोकर्ण (मैसूर)

गंगवती-समुद्र संगम पर, हुबली से सौ मील दूर, उत्तर कनारा क्षेत्र में स्थित एक प्राचीन शैव तीर्थ है। महाभारत आदि० 216,34-35 में इसका उल्लेख अर्जुन की वनवास-यात्रा के प्रसंग में इस प्रकार है—'आद्यं पशुपते: स्थानं दर्शनादेव मुक्तिदम्, यत्र पापोऽपि मनुज: प्राप्नोत्यभयं पदम्'। पांडवों की तीर्थयात्रा के प्रसंग में पुन: गोकर्ण का वर्णन वन० 85,24-29 में है—'अथ गोकर्णमासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्, समुद्र मध्ये राजेन्द्र सर्वलोक नमस्कृतम्'—। वन० 88,14-15 में गोकर्ण का पुन: उल्लेख है और इसे ताम्रपर्णी नदी के पास माना है—'ताम्रपर्णीं तु कौन्तेय कीर्तयिष्यामि तां श्रुणु यत्र देवैस्तपस्तप्तं महदिच्छद्भिराश्रमे गोकर्ण इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु भारत'। यहां अगस्त्य के शिष्य तृणसोमाग्नि का आश्रम था (वन० 88,17)। कालिदास ने रघुवंश 8,33 में भी गोकर्ण को दक्षिण समुद्र तट पर स्थित लिखा है—'अथरोधसि दक्षिणोदधे: श्रितगोकर्ण निकेतमीश्वरम्, उपवीणयितुं ययौ रवेरुदयावृत्तिपथेन नारद:'। इस उल्लेख में गोकर्ण को शिव का निकेत अथवा गृह बताया गया है।

गोकर्णेश्वर (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा से दो मील उत्तर में यमुना किनारे एक प्राचीन स्थान है जहां कुषाणकाल में एक देवकुल था। यहां से कई कुषाण-सम्राटों की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनका अभिज्ञान अभी तक संदिग्ध है।

गोकामुख

श्रीमद्भागवत 5,19,16 में पर्वतों की सूची में गोकामुख का भी उल्लेख

है—'रैवतक: ककुभोनीलोगोकामुख इन्द्रकील: कामगिरिरिति—'। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है किंतु प्रसंगानुसार यह दक्षिण भारत का कोई पर्वत शिखर जान पड़ता है।

गोकुल (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा के सामने यमुना के दूसरे तट पर बसा हुआ है। वसुदेव ने कृष्ण को, मथुरा में उनके जन्म के तुरंत पश्चात्, कंस से उनकी रक्षा करने के लिए, गोकुल में नंद-यशोदा के घर पहुंचा दिया था। गोकुल में कृष्ण का प्रारंभिक बालपन बीता। तत्पश्चात् कंस के उत्पातों से बचने के लिए नंद उनको लेकर वृंदावन में जाकर बस गए। गोकुल का प्राचीन संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर वर्णन है। हरिवंशपुराण में श्रीकृष्ण की कथा में इसका उल्लेख है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कध में गोकुल का अनेकों बार नंद के ग्राम के रूप में उल्लेख है—'करौ वैवार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः, नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले। इति नंदादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः, अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम' 10,6,31-32। विष्णुपुराण में भी कृष्ण के बचपन के निवास-स्थान के रूप में गोकुल का वर्णन है—'विवेश गोकुलं गोपीनेत्रपानैक भाजनम्'—5,16,28। 'अक्रूरोगोकुलं प्राप्तः किंचित् सूर्ये विराजति' 5,17,18। गोकुल के मथुरा के सन्निकट बसा होने के कारण इसका इतिहास बहुत कुछ मथुरा के इतिहास से शृंखलाबद्ध रहा है (दे० मथुरा), किंतु फिर भी इतिहास की लंबी अवधि में गोकुल का पृथक् रूप से नामोल्लेख या निर्देश भी कभी-कभी मिलता है। कहा जाता है कि क्लीसोबोरा नामक जिस स्थान का वर्णन मेगेस्थनीज़ ने किया है वह कृष्णपुर या केशवपुर का ही ग्रीक रूपांतर है और यह शायद गोकुल का ही अभिधान हो। गुप्तकाल मे मथुरा की भांति गोकुल में भी बौद्धधर्म का काफी प्रभाव था। चीनी यात्री फाह्यान (लगभग 400 ई०) ने लिखा है कि यूना (—यमुना) नदी के दोनों ओर बीस संघाराम हैं जिनमें तीन सौ भिक्षु निवास करते हैं। युवानच्वांग ने सातवीं शती में मथुरा का वर्णन किया है और उसने यहां के निवासियों को विद्याप्रेमी और कोमल स्वभाव का बतया है। गोकुल का अलग से उल्लेख उसने नहीं किया है किंतु उसके मथुरा के वर्णन से जान पड़ता है कि गोकुल में भी इस समय बौद्धधर्म का जोर रहा होगा। फिर भी गुप्तकाल में हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हो गया था और धीरे-धीरे मथुरा, गोकुल आदि नवीन हिन्दूधर्म के प्रभावशाली केन्द्र बनते जा रहे थे। 1017 ई० में, जब महमूद गजनवी ने मथुरा पर आक्रमण किया, गोकुल भी मथुरा

की ही भांति वैष्णवतीर्थ था किन्तु शायद यहां बड़े विशाल मंदिर न होने के कारण वह आक्रमणकारी की दृष्टि से बाहर रहा और उसके बर्बर कृत्यों का शिकार होने से बच गया। सिकन्दरलोदी के समय में होने वाले मथुरा के घोर विध्वंस के समय भी गोकुल शायद अपनी अप्रसिद्धि के कारण ही बचा रहा। औरंगज़ेब के जमाने में भी जब मथुरा के शासक अब्दुल नबी ने यहां के प्रसिद्ध मंदिर को तोड़ा तो गोकुल उसकी वक्र दृष्टि से बचा रहा। 1757 ई० में अहमदशाह अब्दाली ने मथुरा पर आक्रमण किया और महावन में अपना शिविर बनाया। उसका विचार गोकुल को भी विध्वस्त करने का था किन्तु वहां के चार सहस्र नागा, आक्रांता अब्दाली की सेना से सामना करने को निकल पड़े। उन्होंने बड़ी वीरता से अब्दाली के दो हजार सैनिकों को यमपुर भेज दिया यद्यपि स्वयं भी उनके अनेक व्यक्ति आहत हुए। उनकी वीरता के कारण ही गोकुल, अब्दाली की भयंकर आग से बच गया यद्यपि इस बर्बर अफ़गान आक्रांता ने मथुरा और वृन्दावन को लूटकर भस्मसात् कर दिया और हजारों निर्दोष व्यक्तियों को तलवार के घाट उतार दिया। 1786 ई० से 1803 ई० तक गोकुल और मथुरा पर मराठों का अधिकार रहा और तत्पश्चात् अंग्रेजों का। यह काल, अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण था और इन स्थानों का प्राचीन गौरव पुनः एक बार भारतीय जनता के हृदयों में जागृत हुआ। वर्तमान गोकुल में यद्यपि अनेक स्थान कृष्ण के बालपन से संबंधित है किंतु यहां कोई भव्य या अधिक प्राचीन मंदिर नहीं है। वास्तव मे मथुरा और वृन्दावन के मंदिरों के विशाल वैभव और सौंदर्य के सामने आज का गोकुल ग्रामीण और फीका जंचता है। शायद यही स्थिति इसकी प्राचीन इतिहास के पूरे दौर में रही है। कृष्ण के समय में भी तो गोकुल छोटी-सी ग्रामीण बस्ती ही थी।

गोगंदा=गोगुंदा (ज़िला उदयपुर, राज०)

राणाप्रताप तथा अकबर की सेनाओं में हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई इसी स्थान के निकट हुई थी। यहीं राणाप्रताप के पिता उदयसिंह की मृत्यु हुई थी। यह स्थान चित्तौड़ के निकट है।

गोगी (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर)

गुलबर्गा के निकट कई प्राचीन स्मारकों के लिए प्रख्यात है। यहां चार आदिलशाही सुलतानों के मक़बरे हैं—यूसुफ़, इसमाईल, इब्राहीम और मल्लू। ये मक़बरे एक छतदार दालान में हैं। यहीं अलीआदिल की बहिन फ़ातिमा सुलताना का मक़बरा भी है। ये कब्रें और मक़बरे चंदाशाह की दरगाह के

भीतर स्थित हैं। दरगाह के दक्षिण की ओर फ़ातिमा सुलताना की बनवाई हुई काली मसजिद भी है जो काले पत्थर की बनी है। दूसरी दुमंजिली 'अरबा' मसजिद पर मु० तुगलक का फारसी अभिलेख अंकित है।

गोतीर्थ

इस स्थान का उल्लेख महाभारत के वनपर्व के अंतर्गत पांडवों की तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में है—'कन्यातीर्थेऽश्वतीर्थे च गवां तीर्थे च भारत, कालकोट्यां वृषप्रस्थे गिरावुष्य च पांडवाः' वन० 95,3। अश्वतीर्थ (कन्नौज के निकट) के पश्चात् इसका उल्लेख है। अतः यह तीर्थ संभवतः इसी स्थान के निकट होगा।

गोदा=गोदावरी

गोदावरी

दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी, जो त्र्यंबक पर्वत (पश्चिमीघाट) से निकल कर 900 मील पूर्व-दक्षिण की ओर बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। गोदावरी की सात शाखाएं मानी गई हैं—गौतमी, वसिष्ठा, कौशिकी, आत्रेयी, वृद्धगौतमी, तुल्या और भारद्वाजी। महाभारत वन० 85, 43 में सप्तगोदावरी का उल्लेख है—'सप्तगोदावरीं स्नात्वा नियतो नियताशनः'। ब्रह्मपुराण के 133वें अध्याय में तथा अन्यत्र भी गोदावरी (गौतमी) का उल्लेख है। श्रीमद्भागवत 5, 19, 18 में गोदावरी का अन्य नदियों के साथ उल्लेख है—'कृष्णवेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या'। विष्णुपुराण 2, 3, 12 मे गोदावरी को सह्य पर्वत से निस्सृत माना है—'गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा। सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः'। महाभारत भीष्म० 9, 14 में गोदावरी का भारत की कई मुख्य नदियों के साथ उल्लेख है—'गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम्'। गोदावरी नदी को पांडवों ने तीर्थयात्रा के प्रसंग में देखा था —'द्विजाति मुख्येपुधनं विसृज्य गोदावरीं सागरगामगच्छत्'—महा० वन० 118, 3। कालिदास ने रघुवंश 13, 33; 13, 35 में गोदावरी का सुंदर शब्द चित्र खींचा है—'अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं कांचनकिंकणीम्, प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यः गोदावरीसारस पंक्तयस्त्वाम्'; 'अत्रानुगोदं मृगया निवृत्तस्तरंग वातेन विनीत खेदः रहस्त्वदुत्संग निषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः'। कालिदास ने इस उल्लेख में गोदावरी को गोदा कहा है। 'शब्द-भेद प्रकाश' नामक कोश में भी गोदावरी का रूपांतर 'गोदा' दिया हुआ है। भवभूति ने उत्तररामचरित में अनेक बार गोदावरी का उल्लेख किया है—'गोदावर्याः पयसि विततानोकहश्यामलश्रीः' 2, 25। 'एतानि तानि बहुकंदरनिर्झराणि गोदावरीपरिसरस्यगिरेस्तटानि' 3, 8।

गोनर्द

पाली ग्रंथ सुत्तनिपात के अनुसार इस नगर की स्थिति विदिशा तथा उज्जयिनी के मार्ग के बीच में थी। गोनर्द को शुंगकाल के उद्भट विद्वान् पतंजलि का जन्म स्थान माना जाता है। पतंजलि की माता का नाम गोणिका था। ये योगदर्शन तथा पाणिनि के व्याकरण के महाभाष्य के विख्यात रचयिता थे। कई विद्वानों के मत में चरक-संहिता के निर्माता भी पतंजलि ही थे। जान पड़ता है कि गोनर्द की स्थिति भूपाल के निकट थी।

गोप (सौराष्ट्र, गुजरात)

सोरठ में बहने वाली नेत्रवती की एक शाखा पर बसा हुआ प्राचीन नगर है जहां गुप्तकालीन सूर्यमंदिर के खंडहर हैं। कहा जाता है कि इस प्रदेश में सूर्य की पूजा ईरानी संस्कृति से प्रभावित शकक्षत्रपों के समय (द्वितीय, तृतीय शती ई०) में प्रचलित थी।

गोपकवन=**गोआ।**

गोपराष्ट्र

महाभारत में वर्णित एक जनपद जिसकी स्थिति श्री चि० वि० वैद्य के अनुसार महाराष्ट्र में थी।

गोपाचल (दे० **ग्वालियर**)

गोपाद्रि या ग्वालियर दुर्ग की पहाड़ी का नाम।

गोपाद्रि (दे० **ग्वालियर**)

ग्वालियर दुर्ग की पहाड़ी का प्राचीन नाम है।

गोपामऊ (जिला हरदोई, उ० प्र०)

इसे 10वीं शती के अंत में राजा गोप ने बसाया था। गोपीनाथ का वर्तमान मंदिर नौनिधराय ने 1699 ई० में बनवाया था।

गोपालकक्ष

'ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोसलान् मल्लानामधिपं चैव पार्थिवं चाजयत् प्रभुः' महा० 30, 3। कुछ विद्वानों के मत में गोपालकक्ष ग्वालियर का ही नाम है।

गोपाल गंज (जिला दीनाजपुर, बंगाल)

यहां रासमोहन के मंदिर के, जो 1754 ई० में बना था, खंडहर स्थित हैं। यह मंदिर गौड़ की 14वीं-15वीं शती की वास्तुशैली में बना है। इसके बारह पार्श्व हैं किंतु अत्यधिक अलंकरण के कारण इसका नक्शा कुछ संकुचित सा दिखाई देता है।

गोपालपुर (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

(1) त्रिपुरी या वर्तमान तेवर के समीप इस स्थान पर कलचुरिकालीन विस्तृत खंडहर हैं। इनमें अनेक बौद्ध प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जिनमें अवलोकितेश्वर, बोधिसत्व और तारा की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। अवलोकितेश्वर की मूर्ति मागध शैली में निर्मित है और इस पर 11वीं शती की मागधी लिपि में बौद्धों का मूलमंत्र 'ये धर्म हेतु प्रभवाः हेतु स्तेषां तथागतो' अंकित है। ऐसा जान पड़ता है कि इस स्थान पर मध्यकाल में वज्रयानी बौद्धों का केन्द्र था।

(2) (जिला गंजम, उड़ीसा) बंगाल की खाड़ी पर एक प्राचीन समुद्रपत्तन है जहां से पूर्व मध्यकाल तक मलय प्रायद्वीप तथा जावा को नियमित रूप से जलयान जाया करते थे।

गोपिका

नागार्जुनी पर्वत की गुफाओं में सबसे बड़ी गुफ़ा का नाम है।

गोपेश्वर (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

केदारनाथ के निकट एक प्राचीन पुण्यस्थान है। यह बद्रीनाथ से केदारनाथ जाने वाले मार्ग पर चमोली के निकट है। यहां से विष्णु का प्रभाव-क्षेत्र समाप्त होकर शिव का क्षेत्र प्रारंभ होता है। गोपेश्वर का शिव मंदिर केदारनाथ के मंदिर को छोड़कर इस प्रदेश का सर्वमान्य तथा सर्व-प्राचीन देवालय माना जाता है। इसकी मूर्तियां भी बहुत प्राचीन है। गोपेश्वर-शिव की मूर्ति कत्यूरीकालीन है। यहां की मूर्तियों में ऊंचे जूते पहने हुए सूर्य की मूर्ति और चतुर्मुखी शिवलिंग भी है जो कत्यूरी नरेशों तथा लकुलीश शैवों के स्मारक है। राजा अनंगपाल का कीर्ति-स्तंभ, जो त्रिशूल रूप में अष्टधातु का बना है मंदिर के प्रांगण में स्थित है। इस पर 13वीं शती के दो अस्पष्ट नेपाली अभिलेख हैं। स्कंदपुराण के अनुसार शिव ने कामदेव को गोपेश्वर के स्थान पर ही भस्म किया था। कुमार संभव 3, 72 में मदन दहन का सुंदर वर्णन है—'क्रोध प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुताचरन्ति, तावत् स वह्नि भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनंचकार'।

गोमन्तक=गोआ

गोमती

(1) ऋग्वेद में वर्णित नदी—'त्वं सिंधो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे' 10, 75, 6। इस नदी का अभिज्ञान वर्तमान गोमल नदी से किया गया है जो सिंधु नदी में पश्चिम की ओर से आकर मिलती है (मेकडानेल्ड—ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर–1929, पृ० 140)। कुभा (काबुल, तथा

क्रुमु (=कुरुम) गोमती के समान ही सिंध की पश्चिमी शाखाएं हैं।

(2) उत्तरप्रदेश की प्रसिद्ध नदी जो बीसलपुर (जिला पीलीभीत) की झील से निकल कर पूर्वी उत्तर प्रदेश में गंगा में मिल जाती है। यह अवध की प्रसिद्ध नदी है। रामायणकाल में गोमती कोसलदेश की सीमा के बाहर बहती थी क्योंकि वाल्मीकि अयो० 49, 8 में वर्णित है कि वनवास के लिए जाते समय श्रीराम ने गोमती को पार करने से पहले ही कोसल की सीमा को पार कर लिया था। 'गत्वा तु सुचिरंकालं ततः शीतवहां नदीम्, गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम्'—इस वर्णन में गोमती को शीतल जल वाली नदी बताया गया है तथा इसके तट पर गौवों के समूहों का उल्लेख है। वाल्मीकि ने गोमती को सागरगामिनी कहा है क्योंकि गंगा में मिलकर नदी अंततः सागर में ही गिरती है। राम ने वन की यात्रा के समय प्रथम रात्रि तमसा तीर पर बिताकर अगले दिन गोमती और स्यंदिका (=सई) को पार किया था—'गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैं र्हयेः, मयूरहंसाभिरुतांततार स्यंदिकां नदीम्' अयो० 49, 11। रामचरितमानस में गो० तुलसीदास ने भी बन जाते समय भारत को गोमती पार करते बताया है—'तमसा प्रथम दिवस करिवासू, दूसर गोमतितीर निवासू'—अयोध्याकांड। महाभारत में भी गोमती का उल्लेख है—'लंघती गोमती चैव संध्या त्रिसोतसी तथा, एताश्चान्याश्च राजेन्द्र सुतीर्था लोक विश्रुताः' सभा० 9, 23। 'ततस्तीर्थेषु पुण्येषु गोमत्याः पांडवानृप, कृताभिषेकाः प्रददुर्गाश्च वित्तं च भारत'—वन 94, 2। इस उल्लेख में नैमिषारण्य (=नीमसार, जिला सीतापुर, उ० प्र०) को गोमती नदी के तट पर बताया है, जो वस्तुतः ठीक है। नैमिषारण्य का वन० 94, 1 में उल्लेख है। भीष्म 9, 18 में अन्यान्य नदियों में गोमती का उल्लेख है—'गोमती धूतपापां च वंदनां च महानदीम्'। श्रीमद्भागवत 5, 19, 18 में गोमती का वर्णन है—'दृषद्वती गोमती सरयू'—। विष्णुपुराण में गोमती तट को पवित्र कहा गया है तथा उसे तपः स्थली माना है—'सुरम्ये गोमती तीरे स तेपे परमं तपः' 1, 15, 11।

(3) (काठियावाड़, गुजरात) द्वारका के निकट एक नदी। रणछोड़जी का प्रसिद्ध मंदिर इसी के तट पर है। गोमती-समुद्र संगम पर नारायण का मंदिर है जो नदी के दूसरे तट पर स्थित है। कहते हैं कि यह नदी वास्तव में समुद्र के जल के तट के अंदर प्रविष्ट होने से बनी है। यहीं भगवान् कृष्ण की राजधानी द्वारका बसी हुई थी। यह अब गोमती-द्वारका कहलाती है। दूसरी द्वारका को, जो द्वीप पर स्थित है, बेट द्वारका कहते हैं।

गोमल

(1) दे० गोमती नदी

(2) गोमल नगर का नाम जो शायद गोमती-कूल से बिगड़ कर बना है।

गोमान्

रैवतक पर्वत का एक नाम जिसके क्रोड में द्वारका बसी हुई थी। मगध-राज जरासंध के आक्रमण से बचने के लिए श्रीकृष्ण मथुरा से द्वारका चले आए थे। उन्होंने रैवतक पर्वत पर अपनी नई नगरी को बसाया था (दे० महा० सभा० 14)। रैवतक का ही एक नाम गोमान् भी था। 'एवं वयं जरासंघाद-भितः कृतकिल्विषाः सामर्थ्यवन्तः संबंधाद्गोमंतं समुपाश्रिता'—महा० सभा० 14, 53।

गोमेद

विष्णुपुराण 2, 4, 7 के अनुसार प्लक्षद्वीप के सात मर्यादा पर्वतों में से एक है—'गोमेदश्चैव चन्द्रश्चनारदो दुंदुभिस्तथा, सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः'।

गोरखपुर (उ० प्र०)

मध्ययुगीन सिद्ध संत गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। यहां स्थित गोरखनाथ की समाधि तथा मंदिर उल्लेखनीय हैं। कुशीनगर (कुसिया), जो बुद्ध का निर्वाणस्थल है, गोरखपुर से 34 मील उत्तरपूर्व में है।

गोरथ

'गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम्'—महा० 20, 30। महाभारत के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि गोरथ, मगध की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह की पहाड़ी का नाम था। श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम जरासंध के वधार्थ गिरिव्रज जाते समय पहले इसी पर्वत पर पहुंचे थे। कलिंग-नरेश खारवेल के अभिलेख से सूचित होता है कि उसने अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में गोरथगिरि पर आक्रमण करके राजगृह नरेश को बहुत व्यथित किया था (प्रथम शती ई० पू०)।

गोराष्ट्र=गोआ

गोलकुंडा (आं० प्र०)

हैदराबाद से सात मील पश्चिम की ओर बहमनीवंश के सुलतानों की राजधानी गोलकुंडा के विस्तृत खंडहर स्थित हैं। गोलकुंडा का प्राचीन दुर्ग वारंगल के हिंदू राजाओं ने बनवाया था। यह देवगिरि के यादव तथा वारंगल के ककातीय नरेशों के अधिकार में रहा था। इन राज्यवंशों के शासन के चिह्न तथा कई खंडित अभिलेख दुर्ग की दीवारों तथा द्वारों पर अंकित मिलते हैं।

1364 ई० में वारंगल नरेश ने इस किले को बहमनी सुल्तान महमूद शाह के हवाले कर दिया था। इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि बहमनी वंश की अवनति के पश्चात् 1511 ई० में गोलकुंडे के प्रथम सुलतान ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था किंतु किले के अंदर स्थित जामा मसजिद के एक फारसी अभिलेख से ज्ञात होता है कि 1518 ई० में भी गोलकुंडे का संस्थापक सुलतान कुलीकुतुब, महमूद शाह बहमनी का सामन्त, था। गोलकुंडे का किला 400 फुट ऊंची कणाश्म (ग्रेनाइट) की पहाड़ी पर स्थित है। इसके तीन परकोटे हैं और इसका परिमाप सात मील के लगभग है। इस पर 87 बुर्ज बने हैं। दुर्ग के अंदर कुतुबशाही बेगमों के भवन उल्लेखनीय हैं। इनमें तारामती, पेमामती, हयात बख्शी बेगम और भागमती (जो हैदराबाद या भागनगर के संस्थापक कुली कुतुब शाह की प्रेयसी थी) के महलों से अनेक मधुर आख्यायिकों का संबंध बताया जाता है। किले के अंदर नौमहल्ला नामक अन्य इमारतें भी हैं जिन्हें हैदराबाद के निज़ामों ने बनवाया था। इनकी मनोहारी वाटिकाएं तथा सुंदर जलाशय इनके सौंदर्य को द्विगुणित कर देते हैं। किले से तीन फर्लांग पर इब्राहीम बाग में सात कुतुबशाही सुलतानों के मक़बरे हैं जिनके नाम ये हैं—कुली कुतुब, सुभान कुतुब, जमशेदकुली, इब्राहीम, मु० कुलीकुतुब, मु० कुतुब और अब्दुल्ला कुतुबशाह। पेमावती व हयात बख्शी बेगमों के मक़बरे भी इसी उद्यान के अंदर हैं। इन मक़बरों के आधार वर्गाकार हैं तथा इन पर गुंबदों की छतें हैं। चारों ओर वीथीकाएं बनी हैं जिनके महराब नुकीले हैं। ये वीथिकाएं कई स्थानों पर दुमंजिली भी हैं। मक़बरों पर हिंदू वास्तुकला के विशिष्ट चिह्न कमल पुष्प तथा पत्र और कलियां, शृंखलाएं, प्रक्षिप्त छज्जे, स्वस्तिकाकार स्तंभशीर्ष आदि बने हुए हैं। गोलकुंडा-दुर्ग के मुख्य प्रवेश द्वार में यदि जोर से करतल ध्वनि की जाए तो उसकी गूंज दुर्ग के सर्वोच्च भवन या सभाकक्ष में पहुंचती है। एक प्रकार से यह ध्वनि आह्वान घंटी के समान थी। दुर्ग से डेढ़ मील पर तारामती की छतरी है। यह एक पहाड़ी पर स्थित है। देखने में यह वर्गाकार है और इसकी दो मंजिलें हैं। किंवदंती है कि तारामती, जो कुतुबशाही सुल्तानों की प्रेयसी तथा प्रसिद्ध नर्तकी थी, किले तथा छतरी के बीच बंधी हुई एक रस्सी पर चांदनी में नृत्य किया करती थी। सड़क के दूसरी ओर पेमावती की छतरी है। यह भी कुतुबशाही नरेशों की प्रेमपात्री थी। हिमायतसागर सरोवर के पास ही प्रथम निजाम के पितामह चिनकिलिचखां का मक़बरा है। 28 जनवरी 1687 ई० को औरंगज़ेब ने गोलकुंडे के किले पर आक्रमण किया और तभी मुगल सेना के एक नायक के रूप में किलिच खां ने भी इस

आक्रमण में भाग लिया था। युद्ध में इसका एक हाथ तोप के गोले से उड़ गया था जो मक़बरे से आधा मील दूर किस्मतपुर में गड़ा हुआ है। इसी घाव से इसका कुछ दिन बाद देहांत हो गया। कहा जाता है कि मरते वक्त भी किलिचखां ज़रा भी विचलित न हुआ था और औरंगजेब के प्रधान मंत्री जमदातुल मुल्क असद ने, जो उससे मिलने आया था, उसे चुपचाप कॉफ़ी पीते देखा था। शिवाजी ने बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों को बहुत संत्रस्त किया था तथा उनके अनेक क़िलों को जीत लिया था। उनका आतंक बीजापुर और गोलकुंडा पर बहुत समय पर्यंत छाया रहा जिसका वर्णन हिंदी के प्रसिद्ध कवि भूषण ने किया है —'बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिल्ली के कोट बाजे बाजे रोज दरवाज़े उघरत हैं'। गोलकुंडा में पहले हीरा निकलता था। (दे० हैदराबाद)

गोलमृत्तिका नगर (बर्मा)

यह नगर, जिसका अभिज्ञान थाटन से 20 मील दूर अयत्थेमा नामक स्थान से किया गया है, (1476 ई० के कल्याणी अभिलेख के अनुसार) अशोक के समय में ब्रह्मदेश की राजधानी था। यहां गोल या गौड़ लोगों के अनेक मिट्टी के घर होने के कारण इस नगर का यह विचित्र नाम हुआ था। ये लोग गौड़ या बंगाल के मूल निवासी रहे होंगे।

गोलाकोट (बुंदेलखंड)

मध्ययुगीन बुंदेलखंड की वास्तुकला के अनेक भग्नावशेष गोलाकोट में स्थित हैं।

गोलागोकरननाथ (ज़िला सीतापुर, उ० प्र०)

यह स्थान प्राचीन काल में बौद्ध धर्म का एक केंद्र था। तत्कालीन खंडहर यहां आज भी पड़े हुए हैं। अब यहां केवल छोटे छोटे मंदिर व मठ हैं।

गोलारायपुर (ज़िला शाहजहांनपुर, उ० प्र०)

यह शायद फ़ाह्यान द्वारा उल्लिखित हारा-हो-लो है। यहां प्राचीन क़िला है जो मिट्टी का बना है।

गोवर्धन

(1) ज़िला नासिक (महाराष्ट्र) का प्रदेश। इसका उल्लेख शातवाहन नरेश गौतमीपुत्र शातकर्णी तथा पुलोमयी (प्रथम—द्वितीय शती ई०) के अभिलेखों में है। इनमें 'गोवर्धन अहार' पर विष्णुपालित, श्यामक तथा शिवस्कंददत्त का शासन बताया गया है। महावस्तु (सेनार्ट द्वारा संपादित—पृ० 363) में दंडकारण्य की राजधानी गोवर्धन कही गई है।

(2) मथुरा (उ० प्र०) से 14 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रसिद्ध पर्वत है जिसे पौराणिक कथाओं के अनुसार श्रीकृष्ण ने उगंली पर उठा कर व्रज की इंद्र के कोप से रक्षा की थी। गोवर्धन में अरावली पहाड़ की कुछ निचली श्रेणियां फैली हुई हैं। हरिवंश, विष्णुपर्व अध्याय 37 में उल्लेख है कि इक्ष्वाकुवंश के राजा हर्यश्व ने जिनका राज्य महाभारत-काल से भी बहुत पहले मथुरा में था, अपनी राजधानी के समीप पहाड़ी पर एक नगर बसाया था जो संभवतः गोवर्धन ही था। श्रीमद्भागवत में गोवर्धनलीला दशम स्कंध के 25वें अध्याय में सविस्तार वर्णित है— ('इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् दधार लीलया कृष्ण-श्छत्राकमिव बालकः' आदि)। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में भी गोवर्धन पर्वत का उल्लेख है—'द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः, ककुभोनीलो गोकामुख इंद्र कीलः'। विष्णु० 5,13,1 तथा 5,10,38 ('तस्माद् गोवर्धनश्शैलो भवद्भिर्विविधार्हणै, अर्च्यतां पूज्यतां मेध्यान् पशून हत्वा विधानतः') में कृष्ण की गोवर्धन पूजा का वर्णन है। महाकवि कालिदास ने गोवर्धन को शूरसेनप्रदेश में बताया है—'अध्यास्य चाम्भः पृषतोक्षितानि शैलेयगंधीनि—शिलातलानि, कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं कान्तासु गोवर्धनकंदरासु' रघु० 6,51:—शूरसेन के राजा सुषेण का परिचय इंदुमती को उसके स्वयंवर के समय देती हुई उसकी सखी सुनंदा कहती है—'शूरसेननरेश से विवाह करने के पश्चात् तू गोवर्धन पर्वत की सुंदर कंदराओं में शैलेयगंध से सुवासित और वर्षा के जल से धुली हुई शिलाओं पर आसीन होकर प्रावृट् काल में मयूरों का नृत्य देखना'। गोवर्धन को घटजातक में गोवद्धमान कहा गया है। गोवर्धन में श्री हरिदेव (कृष्ण) का एक प्राचीन मंदिर है जिसे अक़बर के मित्र एवं संबंधी आमेर-नरेश भगवानदास का बनवाया हुआ कहा जाता है। मानसीगंगा (पौराणिक किंवदंतियों के अनुसार) श्रीकृष्ण के मानस से प्रसूत हुई थी। इसके घाट अर्वाचीन हैं। (टि० ऐसा जान पड़ता है कि गोवर्धन की श्रृंखला वास्तव में पर्वत नहीं है वरन् एक लंबा चौड़ा बांध है जिसे संभवतः श्रीकृष्ण ने वर्षा की बाढ़ से ब्रज की रक्षा करने के लिए बनाया था। यह अधिक ऊंचा नहीं है और इसे पर्वत किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता। इसके पत्थरों को देखने से भी यही प्रतीत होता है कि यह कृत्रिम रूप से बनाई गई कोई संरचना है। आज भी गोवर्धन के पत्थरों को उठाना या हटाना पाप समझा जाता है। इस बात से भी इसका कृत्रिम रूप से जनसाधारण के हितार्थ बनाया जाना प्रमाणित होता है। इस विषय में अनुसंधान अपेक्षित है।)

गोवद्धमान

इस नगर का, जो गोवर्धन का रूपांतर जान पड़ता है, घटजातक (सं० 454) में उल्लेख है। इसे वासुदेव कृष्ण की माता देवगब्भा (=देवकी) तथा उपसागर (=वसुदेव) का निवासस्थान बताया गया है। वासुदेव कृष्ण का जन्म, इस जातक के अनुसार, इसी स्थान पर हुआ था।

गोवास

'गोवास दासमीयानां वसातीनां च भारत, प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम्'—महा० कर्ण० 73,17। गोवास संभवतः शिवि देश का ही दूसरा नाम था। यह देश गोधन के लिए प्रसिद्ध था। इस देश की सेनाएं महाभारत के युद्ध में दुर्योधन की ओर से शामिल हुई थीं जैसा कि उपर्युक्त श्लोक के प्रसंग में वर्णित है। सभा० 51,5 में भी गोवास निवासियों का उल्लेख है —'गोवासना ब्राह्मणाश्च दासमीयाश्च सर्वशः'। ये युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुए थे।

गोविषाण

चीनी यात्री युवानच्वांग ने 7वीं शती में इस देश का वर्णन करते हुए यहां तीस मंदिरों की स्थिति बताई है। उसने लिखा है कि यहां की जन-संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। इस देश का अभिज्ञान रामपुर-पीलीभीत के ज़िलों (उ० प्र०) से किया गया है—(दे० रा० कु० मुकर्जी—हर्ष पृ० 167) संभवतः उजैन नाम का वर्तमान गांव प्राचीन गोविषाण का प्रतिनिधान करता है। इसमें एक प्राचीन क़िले के खंडहर आज तक मौजूद हैं।

गोश्रृंग

'निषाद भूमिं गोश्रृंग पर्वतप्रवरं तथा तरसैवाजयद् धीमान्, श्रेणिमन्तं च पार्थिवम्' महा० सभा० 31,5। गोश्टंग को सहदेव ने दक्षिण दिशा की विजय के प्रसंग में जीता था। गोश्टंग पर्वत, प्रसंग से, अर्वली पहाड़ की श्रेणी का कोई भाग जान पड़ता है। यह निषाद भूमि के निकट था। संभव है यह आबू या अर्बुद के किसी शिखर का नाम हो।

गोहद (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

ग्वालियर के उत्तर पूर्व की ओर है। 18वीं शती में यह जाट-रियासत थी। इसके पूर्व की ओर ग्वालियर रियासत, पश्चिम में काली सिंध, उत्तर में यमुना और दक्षिण में सिरमूर की पहाड़ियां हैं। गोहद नरेशों तथा मराठों में बराबर लड़ाई-झगड़ा बना रहता था। 1765 ई० में गोहद नरेश छत्रसाल ने होलकर का डट कर सामना किया था। गोहद में उत्तरमध्यकालीन इमारतों

के ध्वंसावशेष स्थित हैं।

गोहाटी (असम)

इस नगर का प्राचीन नाम शोणितपुर कहा जाता है। महाभारत के समय यहां प्राग्ज्योतिष की राजधानी थी। इसका अन्य नाम प्राग्ज्योतिषपुर भी था।

गोहिराटिकिरी (ज़िला बालासौर, उड़ीसा)

1567 ई० में इस स्थान पर उड़ीसा नरेश मुकुंददेव और उसके विश्वासघाती भाई रामचंद्रभंज में युद्ध हुआ था जिसके पश्चात् उड़ीसा का स्वतंत्र हिंदू राज्य सदा के लिए समाप्त हो गया। 1568 ई० में उड़ीसा पर बंगाल के अफ़ग़ानों का राज्य स्थापित हुआ था।

गोहिलवाड़

सौराष्ट्र (काठियावाड़, महाराष्ट्र) का दक्षिणी-पूर्वी भाग गोहिलवाड़ कहलाता है।

गौड़

(1) (बंगाल) प्राचीन लक्ष्मणावती या लखनौती का मध्ययुगीन नाम। सेन वंश के शासनकाल (13वीं शती) में बंगाल की राजधानी क्रमशः काशीपुरी, वरेंद्र और लक्ष्मणावती में रही थी। मुसलमानों का बंगाल पर आधिपत्य होने के बाद इस सूबे की राजधानी कभी गौड़ और कभी पांडुआ में रही। पांडुआ गौड़ से 20 मील दूर है। आज इस मध्ययुगीन भव्य नगर के केवल खंडहर ही शेष हैं। इनमें अनेक हिंदू मंदिरों तथा मूर्तियों के अवशेष हैं जिनका मसजिदों के निर्माण में प्रयोग किया गया था। 1575 ई० में अकबर के सूबेदार ने गौड़ के सौंदर्य से आकृष्ट होकर पांडुआ से हटाकर अपनी राजधानी गौड़ में बनाई जिसके फलस्वरूप गौड़ में एकबारगी बहुत भीड़भाड़ हो गई। थोड़े ही दिनों बाद महामारी का भी प्रकोप हुआ जिससे गौड़ की जनसंख्या को भारी क्षति पहुंची। बहुत से निवासी गौड़ छोड़कर भाग गए। पांडुआ में भी महामारी का प्रकोप फैला और बंगाल के ये दोनों प्रमुख नगर जहां भव्य इमारतें खड़ी हुई थीं तथा चारों ओर व्यस्त नर-नारियों का कोलाहल रहता था, इस महामारी के पश्चात् श्मशानवत् दिखलाई पड़ने लगे और उनकी सड़कों पर अब घास उग आई और दिन दहाड़े हिंसक पशु घूमने लगे। पांडुआ से गौड़ जाने वाली सड़क पर अब घने जंगल बन गए थे। तत्पश्चात् प्रायः 300 वर्षों तक बंगाल की

शानदार नगरी गौड़ खंडहरों के रूप में घने जंगलों के बीच छिपी रही। अब कुछ ही वर्ष पहले वहां के प्राचीन वैभव को खुदाई द्वारा प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है। लखनौती में 9वीं-10वीं शती ई० में पाल राजाओं का आधिपत्य था तथा 12वीं शती तक सेन नरेशों का। इस काल में यहां अनेक हिंदू मंदिर बने जिन्हें गौड़ के परवर्ती मुसलमान बादशाहों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। गौड़ की मुसलमान-कालीन इमारतों के बहुत से अवशेष अब भी यहां हैं। इनकी मुख्य विशेषता इनकी ठोस बनावट तथा विशालता है। सोना मसजिद प्राचीन मंदिरों की सामग्री से बनी है। यह यहां के जीर्ण क़िले के अंदर स्थित है। इसकी निर्माण-तिथि 1526 ई० है। इसके अतिरिक्त 1530 ई० में बनी नुसरतशाह की मसजिद भी कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

(2) बंगाल का एक प्राचीन सामान्य नाम। गौड़ या गौड़पुर का उल्लेख पाणिनि ने 6,2,200 में किया है। कहा जाता है कि पुंड्र या पौंड्र (पौंड्र=पौंडा या गन्ना) देश से गुड़ का प्रचुर मात्रा में निर्यात इस प्रदेश द्वारा होने के कारण ही इसे गौड़ कहा जाता था। गौड़पुर को गौड़भृत्यपुर भी कहा गया है। बाण के हर्ष-चरित में गौड़ (बंगाल) के नरेश शशांक का उल्लेख है। संस्कृत काव्य की एक वृत्ति का नाम भी गौड़ी है जो गौड़ देश से ही संबंधित है। इसके अतिरिक्त कई जातियों को भी गौड़ नाम से अभिहित किया जाता था (दे० **पंचगौड़**)।

गौड़पुर=गौड़भृत्यपुर (दे० **गौड़**)

गौतमाश्रम (ज़िला देहरादून)

(1) देहरादून के निकटस्थ बावड़ी या ढकरानी को स्थानीय जनश्रुति में न्यायदर्शनकार महर्षि गौतम की तपोभूमि कहा जाता है। यहां स्फटिक श्वेत जल की बावड़ी है जिसके तट पर इस आश्रम की स्थिति बताई जाती है।

(2) दे० **अहल्याश्रम**

गौतमी

दक्षिणी भारत की प्रसिद्ध नदी गोदावरी का एक प्राचीन पौराणिक नाम है (दे० शिवपुराण 1,54)। ब्रह्मपुराण के 133वें अध्याय में तथा अन्यत्र भी इस नदी का उल्लेख है। कहा जाता है कि इस नदी को गौतम ने तप द्वारा पृथ्वी पर अवतरित किया था। पुराणों में गौतमी को गोदावरी की एक शाखा भी माना गया है (दे० गोदावरी)। अध्यात्मरामायण अरण्य० 48 में पंचवटी को गौतमी के तट पर अवस्थित बताया गया है जो वास्तव में गोदावरी

ही है—'अस्ति पंचवटी नाम्ना आश्रमो गौतमीतटे' ।

गौर=गहरवारपुरा

गौरझामर (ज़िला सागर, म० प्र०)

गढ़मंडला-नरेश संग्रामसिंह (मृत्यु 1541 ई०) के बावन गढ़ों में से एक । यही प्रसिद्ध वीरांगना दुर्गावती के श्वसुर थे ।

गौरी

(1) विष्णु पुराण 2,4,55 के अनुसार क्रौंचद्वीप की एक नदी—'गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा, क्षान्तिश्च पुंडरीका च सप्तैता वर्ष निम्नगाः' ।

(2) अफ़गानिस्तान की वर्तमान पंजकौरा नदी । यह (1) भी हो सकती है ।

गौरीतीर्थ

मध्य रेलवे के पिपरिया स्टेशन से गौरीतीर्थ के लिए मार्ग जाता है । इस प्राचीन तीर्थ की स्थिति अंजना और नर्मदा के संगम पर है ।

गौरीशंकर (दे० **गौरीशिखर**)

गौरीशिखर

महाभारत वनपर्व के अंतर्गत तीर्थयात्रा प्रसंग में हिमालय के गौरी नामक शिखर का उल्लेख है—'ततो गच्छेत धर्मज्ञः तीर्थसेवनतत्परः शिखरं वै महादेव्या गौर्या स्त्रैलोक्यविश्रुतम्' वन० 84,151 । इसका उल्लेख हिमालय पर स्थित 'पितामह सर' (शायद मानसरोवर ; यहां से ब्रह्मपुत्र निकलती है । पितामह=ब्रह्मा) के पश्चात् है । गौरीशिखर को इस उल्लेख में महादेव-पार्वती के नाम से प्रसिद्ध बताया गया है । इस शिखर पर (वन० 84,151 में) स्तनकुंड नामक सरोवर का भी उल्लेख है—'समासाद्य नरश्रेष्ठ स्तनकुंडेषु संविशेत्' । गौरीशिखर प्रसिद्ध गौरीशंकर की चोटी जान पड़ती है ।

ग्यारसपुर (ज़िला भीलसा, म० प्र०)

मध्ययुगीन वास्तु-अवशेषों से यह स्थान भरा पूरा है । ग्राम के चतुर्दिक् विस्तृत खंडहर फैले पड़े हैं । हिंदू, बौद्ध तथा जैन—तीनों ही संप्रदायों से संबंध रखने वाले प्राचीन अवशेष यहां मिलते हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं—अठखंभा मंदिर, वज्रमठ, मालदेवी, बौद्धस्तूप आदि । हिंडोला नामक ग्राम के निकट 8वीं तथा 10वीं शती ई० के मंदिरों के चिह्न हैं । मानसरोवर तड़ाग भी प्राचीनकाल का अवशेष है ।

ग्वादूर (मकरान, प० पाकि०)

अरबसागर (फ़ारस की खाड़ी) के तट पर छोटा-सा बंदरगाह है जिसका प्राचीन नाम बदर कहा जाता है। इसका उल्लेख टॉलमी, आर्थोगोरस और एरियन (90 ई०-170 ई०) आदि प्राचीन विदेशी लेखकों ने किया है। यूनानी लेखकों ने ग्वादूर के समीप समुद्र में अनेक प्रकार की विचित्र मछलियों का वर्णन किया है। 1581 ई० में पुर्तगालियों ने इस नगर को जलाकर नष्ट कर दिया था। 17वीं शती में कलात के ख़ान ने इस बंदरगाह पर अधिकार कर लिया। उसने इसे ओमान के शासक सैयद सुलतानबिन अहमद को सौंप दिया और इस प्रकार 1871 ई० तक इस पर मस्कट के सुलतान का कब्ज़ा रहा। इस वर्ष से ब्रिटेन का एक राजदूत यहां रहने लगा। (दे० मकरान)

ग्वारीघाट (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर के निकटस्थ इस ग्राम के प्राचीन खंडहरों में पुरातत्व की प्रचुर एवं महत्वपूर्ण सामग्री बिखरी पड़ी है जिसको अभी तक प्रकाश में नहीं लाया गया है।

ग्वालियर दे० **गवालियर**

घंघाणी (मारवाड़, राजस्थान)

बीकानेर-जोधपुर रेलमार्ग पर आसरनाड़ा स्टेशन के निकट प्राचीन जैन तीर्थ। जैन कवि समयसुंदर के अनुसार यहां की प्राचीन मूर्तियों पर मौर्य-सम्राट् अशोक के पौत्र संप्रति (दशरथ के पुत्र) के अभिलेख थे जिनसे ज्ञात होता है कि उसने इस स्थान पर पद्मप्रभु जिनालय नामक विशाल मंदिर बनवाया था।

घंटसाल (आं० प्र०)

कृष्णानदी के तट पर स्थित है। प्रथम-द्वितीय शती ई० में बना हुआ बौद्धस्तूप यहां का उल्लेखनीय स्मारक है। यह स्तूप आंध्रदेश की अमरावती नामक नगरी के प्रख्यात स्तूप का प्राय: समकालीन है। कुछ विद्वानों के मत में जावा के सुप्रसिद्ध बोरोबुदूर मंदिर की विशिष्ट कला के अंकुर घटसाल के स्तूप में प्राप्त होते हैं।

घटोत्कच (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर छठी-सातवीं शती की बौद्ध गुफाएं हैं जो देश की इसी भाग की अजंता व इलौरा गुफाओं की भांति ही पहाड़ी के पार्श्व में काटकर बनाई गई हैं।

घनपुर (मुलुग तालुक, ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

इस स्थान पर 22 मंदिरों के समूह हैं जो कला और शैली की दृष्टि से पालमपेट के रामप्पा के मंदिर के प्रतिरूप जान पड़ते हैं। ये मंदिर मुख्य देवालय के चतुर्दिक अवस्थित हैं। केंद्रीय मंदिर के पूर्व, उत्तर और दक्षिण की ओर द्वारमंडप बने हुए हैं और पश्चिम की ओर एक छोटा शिवालय है। मंदिर का महामंडप नष्ट हो गया है किंतु मानवों तथा पशुओं की आकृतियों में बने हुए आठ द्वाराधार अभी वर्तमान हैं। ये रामप्पा-मंदिर के द्वाराधारों के अनुरूप ही हैं। घनपुर का मंदिर रामप्पा-मंदिर का समकालीन है।

घर्घरा=घाघरा (दे० सरयू)

घारापुरी

एलिफेंटा द्वीप (बंबई के निकट) का प्राचीन नाम (दे० एलिफेंटा तथा काराद्वीप)।

घुनसौर (ज़िला सिवनी, म० प्र०)

गढ़मंडला-नरेश संग्रामसिंह (मृत्यु 1541 ई०) के बावन दुर्गों में से एक। गढ़मंडला की रानी वीरांगना दुर्गावती संग्रामसिंह या संग्रामशाह की पुत्रवधू थीं।

घुमली (ज़िला जामनगर, काठियावाड़, गुजरात)

सौराष्ट्र के जाठव राजवंश की राजधानी। इसके खंडहर जामनगर के निकट अवस्थित हैं। किंवदंती है कि जाठव नरेश महाभारत के सिंधुराज जयद्रथ के वंशज थे। 7वीं शती ई० के मध्यकाल में ये लोग सिंध से कच्छ होते हुए आए और सौराष्ट्र में बस गए। शलकुमार नामक राजा ने इस नए राजवंश की नींव डाली थी। घुमली का प्राचीन नाम भूभृतपल्ली या भूतांबिलिका था जो कालांतर में बिगड़कर भुमली और फिर घुमली बन गया। घुमली में मध्ययुगीन इमारतों तथा मंदिरों के भग्नावशेष स्थित हैं। इनमें नौलखा मंदिर प्रसिद्ध है। किंवदंती के अनुसार चौदहवीं शती ई० में घुमली का पतन हुआ जिसका कारण सोना नामक लोहकार कन्या का शाप था। इसके पश्चात् इस राजवंश की राजधानी पोरबंदर में बनी जहां 1947 तक इस प्राचीन राजकुल का राज्य रहा। यह नगर वेत्रवती नदी (वर्तमान वर्तोई) के तट पर बसा था। इसके प्राचीन नाम का उल्लेख यहां से प्राप्त ताम्रपट्ट लेखों में है।

घृतमती

काठियावाड़ या सौराष्ट्र (गुजरात) के उत्तरपश्चिम भाग की एक छोटी

नदी जिसे अब 'घी' कहा जाता है।

घृतसागर

पौराणिक भूगोल के अनुसार पृथ्वी के सप्त सागरों में से एक है। इसकी स्थिति कुशद्वीप के चतुर्दिक् मानी गई है। विष्णुपुराण 2, 2, 6 में सर्पि (घृत) समुद्र का उल्लेख अन्य काल्पनिक समुद्रों के नाम के साथ है—'एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः, लवणेक्षु सुरासर्पि दधि दुग्ध जलैः समम्'।

घोघा (काठियावाड़, गुजरात)

काठियावाड़ के समुद्रतट पर एक छोटा-सा बंदरगाह है। घोघा भावनगर के निकट है और प्राचीनकाल में जैनों के तीर्थ रूप में इसकी मान्यता थी। यह नगरी सौराष्ट्र और गुजरात की पुरानी लोक कथाओं में सुंदर नारियों के लिए प्रख्यात थी। गुजरात के अनेक युवक घोघा की कुमारियों से विवाह करके अपने को भाग्यशाली समझते थे।

घोषपारा (प० बंगाल)

कल्याणी से छः मील। यह स्थान कर्तभाज नामक धार्मिक संप्रदाय का केंद्र था। इस संप्रदाय के संस्थापक औलचंद थे। उनके अनुयायियों के मतानुसार वे चैतन्य देव के ही अवतार थे। उनके अनुयायी घोषपारा के निकट आज भी पाए जाते हैं।

घोषिताराम

कौशांबी का विहार, जिसे घोषिताराम के एक व्यापारी ने बनवाया था।

घोसामंडल (राजस्थान)

प्राचीन दुर्भेद्य गढ़ के लिए विख्यात है। इस दुर्ग के निर्माता चौहान नरेश थे।

घोसुंडी (म० प्र०)

इस स्थान से प्राप्त शुंगकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि द्वितीय शती ई० पू० के लगभग ही देश के इस भाग में भागवतधर्म (वासुदेव-कृष्ण की पूजा) का प्रचलन प्रारंभ हो गया था और बौद्ध धर्म अवनति के मार्ग पर बढ़ रहा था। एक अभिलेख में संकर्षण या बलराम की उपासना का भी उल्लेख है।

चंकीगढ़ (बिहार)

नरकटियागंज से 2 मील उत्तर-पश्चिम में चंदी गांव के निकट एक प्राचीन ढूह है। यहाँ जानकीकोट दुर्ग के खंडहर 90 फुट ऊंचाई पर अवस्थित हैं। इस दुर्ग को वृज्जिगोत्रीय बुलियों ने बनवाया था। ये क्षत्रिय बुद्ध के समकालीन

थे। चंकीगढ़ को जानकीगढ़ भी कहते हैं। इसका संबंध चाणक्य से बताया जाता है।

चंचु

चीनी यात्री युवानच्वांग ने चंचु देश को सारनाथ और वैशाली के बीच में स्थित बताया है। शायद आलवक, जिसका अभिज्ञान कनिंघम ने गाज़ीपुर के निकटवर्ती क्षेत्र से किया है, यहीं था।

चंडहारो (पंजाब)

सिंधुघाटी सभ्यता के अवशेष इस स्थान से भी प्राप्त हुए हैं।

चंडीस्थान (दे० मुंगेर)

चंडेश्वर

मेघदूत के अनुसार उज्जयिनी के अंतर्गत शिव का एक धाम, जहां गंधवती नदी बहती थी— 'पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चंडेश्वरस्य, धूतोद्यानंकुवलयरजो गंधिभिर्गंधवत्याः' पूर्वमेघ० 35। यह वही स्थान जान पड़ता है जहां महाकाल शिव का मंदिर था (पूर्वमेघ० 36)। मह मंदिर आज भी उज्जैन में है।

चंदन (नदी)

अंग व मगध की सीमा (ज़िला संथाल परगना, बिहार) पर बहने वाली नदी। यह गंगा की सहायक नदी है। वाल्मीकि० किष्किंधा 40, 20 में इसी का उल्लेख जान पड़ता है।

चंदनग्राम (लंका)

महावंश 19, 61 के अनुसार इस ग्राम में अशोक की पुत्री संघमित्रा द्वारा लंका में लाए हुए बोधिवृक्ष (पीपल) की एक शाखा का अंकुर रोपित किया गया था। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है।

चंदना

(1)=साबरमती नदी।

(2)=चंदन नदी

चंदनावती

बड़ौदा का प्राचीन नाम।

चंदावर (ज़िला इटावा, उ० प्र०)

(1) यमुना के तट पर मध्ययुगीन क़स्बा है। पृथ्वीराज चौहान को हराने के पश्चात् मु० ग़ौरी ने 1194 ई० में भारत पर पुनः आक्रमण करके इस बार पृथ्वीराज के प्रतिद्वंदी जयचंद राठौर को इस स्थान पर पराजित किया था। जयचंद कन्नौज का राजा था और कहा जाता है कि इसने पृथ्वीराज के ऊपर

चढ़ाई करने के लिए ग़ौरी को निमंत्रण दिया था। चंदावर के युद्ध में जयचंद मारा गया था।

(2) (ज़िला झांसी, उ० प्र०) जगलौन स्टेशन से 5 मील पर जैन मुनि शांतिनाथ स्वामी का निवासस्थान। इसे चांदपुर भी कहते हैं।

चंदूर

(1) (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०) यादव नरेशों के समय के मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

(2)=चंद्र (1)

चंदेरी (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

प्राचीन नाम चंद्रगिरि। चंदेरी महाभारत काल में श्रीकृष्ण के प्रतिद्वंद्वी शिशुपाल की राजधानी थी। शिशुपाल चेदि देश का राजा था। महाभारत में चेदि की राजधानी का नाम नहीं है। चंदेरी में प्राचीनकाल के अनेक ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं। यहां से आठ मील उत्तर की ओर बूढ़ीचंदेर (या चंदेरी) नाम का एक उजाड़ ग्राम है जो 10वीं—12वीं शती ई० का जान पड़ता है। चंदेरी से प्राप्त 11वीं—12वीं शती ई० के प्रतिहार राजा कीर्तिपाल के अभिलेख से सूचित होता है कि यहां उसके समय में कीर्तिदुर्ग नामक क़िले का निर्माण हुआ था। इस अभिलेख में चंदेरी का नाम चंद्रपुर है। 1528 ई० में चंदेरी के राजा मेदिनीराय को हराकर प्रथम मुगल सम्राट् बाबर ने इस नगर पर अधिकार कर लिया। 18वीं शती के अंतिम चरण में, मुग़ल-साम्राज्य की अवनति और मराठों के उत्कर्ष के समय, सिंधिया का ग्वालियर के इलाके में आधिपत्य स्थापित होने पर चंदेरी भी ग्वालियर रियासत में सम्मिलित हो गई। एक जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि चंदेरी की स्थापना संभवतः आठवीं शती ई० में चंदेल राजपूतों ने की थी जो चंद्रवंशीय क्षत्रिय माने जाते थे। इन्होंने इसका नाम चंद्रपुरी रक्खा था। यह भी संभव है कि महाभारत-कालीन चेदि देश की राजधानी होने से इस नगरी को चेदिपुरी या चेदिगिरि कहा जाता था, जिसका अपभ्रंश कालांतर में चंदेरी हो गया। चंदेरी के ऐतिहासिक स्मारकों में यहां का क़िला, फतेहाबाद का कोशक-महल (15वीं शती ई०), पंचमनगर और सिंगपुर के महल (18वीं शती) उल्लेखनीय हैं।

चंदेलगढ़=चुनार

चंद्र

(1) वर्तमान चंदूर; राधनपुर (गुजरात) के निकट प्राचीन जैन तीर्थ।

इसका उल्लेख तीर्थ-माला-चैत्य-वंदन में इस प्रकार है—'श्री तेजपल्लविहार निबतटके चंद्रे च दब्र्भावते'।

(2) हर्षचरित के प्रथमोच्छ्‌वास में महाकवि बाणभट्ट ने शोण नदी का उद्‌गम चंद्र नामक पर्वत से माना है। भौगोलिक तथ्य यह है कि नर्मदा और शोण (या सोन) दोनों ही नदियां विंध्याचल के अमरकंटक पर्वत से निकली हैं। इसी को चंद्र या सोमपर्वत कहते थे क्योंकि नर्मदा का एक नाम सोमोद्‌भवा भी है।

(3) विष्णुपुराण के अनुसार प्लक्ष-द्वीप का एक मर्यादा पर्वत, 'गोमेदश्चैव चंद्रश्च नारदो दुंदभिस्तथा, सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चेव सप्तमः' 2, 4, 7।

चंद्रकान्ता

वाल्मीकि-रामायण उत्तर० 102,9 के अनुसार श्री रामचंद्रजी ने लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु को मल्लदेश में स्थित चंद्रकांता नामक नगरी का राज दिया था—'चंद्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता, चंद्रकान्तेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरीयथा'। यहां पहुंचने के लिए चंद्रकेतु को अयोध्या के उत्तर की ओर जाना पड़ा था—'अभिषिच्य कुमारौ द्वौ प्रस्थाप्य सुसमाहितौ, अंगदं पश्चिमां भूमिं चंद्रकेतमुदङ्‌मुखम्' उत्तर० 102,11। जातक कथाओं तथा बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि वर्तमान गोरखपुर (उ० प्र०) का परिवर्ती प्रदेश ही प्राचीन समय में मल्लदेश कहलाता था। यदि रामायण में वर्णित चंद्रकांता नगरी इसी मल्लदेश में थी तो इसकी स्थिति गोरखपुर या कुशीनगर (कसिया) के आस-पास के क्षेत्र में होनी संभव है। अयोध्या से उत्तर दिशा में इस नगरी का होना भी इस अभिज्ञान के प्रतिकूल नहीं है।

चंद्रकेतुगढ़ (प० बंगाल)

कलकत्ता से 24 मील। आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा की गई हाल की खुदाई में इस स्थान से मौर्य-शुंगकाल से लेकर उत्तरगुप्तकाल तक की सभ्यताओं के चिन्ह प्राप्त हुए हैं। सबसे प्राचीन युगों के कच्चे मकानों के अवशेष सबसे निचले स्तरों में मिले हैं। ये लकड़ी बांस आदि के बने हुए हैं। इन मकानों का अग्निकांड द्वारा नष्ट होने का अनुमान किया जाता है। परवर्तीकाल में बने हुए ईंटों के पक्के मकानों के चिह्‌न उपरले स्तरों में मिले हैं। मौर्यकालीन बस्तियों में पानी के लिए खपरों की बनी नालियों का प्रबंध था। प्राचीन नगर के चारों ओर कच्ची मिट्टी की मोटी दीवार के अवशेष भी प्रकाश में आए हैं।

चंद्रगिरि

(1) चंदेरी

(2) (मैसूर) कावेरी के उत्तरी तट पर कलबप्पू नामक पहाड़ी को 900 ई० के दो अभिलेखों में चंद्रगिरि कहा गया है। इनके अनुसार चंद्रगुप्त, मुनिपति तथा भद्रबाहु के चरणचिह्न इस पहाड़ी पर अंकित थे। ये अभिलेख जैन धर्म से संबंधित हैं और यदि इनसे प्राप्त सूचना को सत्य माना जाए तो चंद्रगुप्त मौर्य का अंतिम दिनों में दक्षिण भारत में आना और जैन धर्म में दीक्षित होना सिद्ध होता है। स्मिथ ने इस परंपरा को सत्य माना है (अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया पृ० 76)। मैसूर में स्थित श्रवणबेलगोला नामक प्रसिद्ध जैन तीर्थ इसी चंद्रगिरि और इंद्रगिरि नामक पहाड़ियों के बीच स्थित है।

(3) (मद्रास) तालीकोट के प्रसिद्ध युद्ध (1564 ई०) के पश्चात् विजय-नगर के राज्यवंश के लोगों ने चंद्रगिरि के क़िले में शरण ली थी। क़िले के परकोटे के अंदर अनेक सुंदर मंदिर हैं।

(4) प्राचीन केरल की उत्तरी सीमा पर बहने वाली नदी। (अर्ली हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, पृ० 466)

चंद्रगुप्तपटनम् (ज़िला महबूबनगर, आं० प्र०)

कृष्णा नदी के वाम तट पर अमराबाद से 32 मील दक्षिण की ओर स्थित है। वारंगल-नरेश प्रतापरुद्र के शासनकाल में यह नगर समृद्ध एवं सम्पन्न था। प्राचीन मंदिरों के अवशेष आज भी यहां देखे जा सकते हैं। संभव है इस नगर का नामकरण सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के नाम पर हुआ हो। जैन किंवदंतियों के अनुसार चन्द्रगुप्त वृद्धावस्था में जैन धर्म में दीक्षित होकर दक्षिण भारत में जाकर रहने लगे थे। मैसूर की चंद्रगिरि पहाड़ी (श्रवणबेल-गोला के निकट) चंद्रगुप्त के नाम ही से प्रसिद्ध कही जाती है। शायद चंद्र-गुप्तपटनम् का भी कुछ संबंध मौर्य सम्राट् के दक्षिण भारत में आवास-काल से हो।

चंद्रगुफ़ा (काठियावाड़, गुजरात)

इस गुफ़ा से क्षत्रपनरेशों के शासनकाल का एक मूल्यवान् अभिलेख प्राप्त हुआ था, जिससे सूचित होता है कि दिगंबर-जैन साहित्य के व्यवस्थापक श्रीधर सेनाचार्य इस गुफ़ा में रहा करते थे। जैन विद्वान् पुष्पदंत और भूत-बलि ने भी यहां रहकर अध्ययन किया था। इस गुफ़ा की आकृति अर्ध-चंद्राकार है।

चंद्रनगर

छठी शती ई० में यमुना नदी पर स्थित एक छोटा व्यापारिक नगर था जिसकी स्थिति कौशांबी और कान्यकुब्ज के मार्ग में थी। यहां का व्यापार

मुख्य रूप से यमुना नदी द्वारा होता था और नगर में धनी श्रेष्ठियों का निवास था।

चंद्रपुर

(1) (दे० **चंदेरी**)

(2)=**चंद्रपुरी**

(3) मध्यप्रदेश में स्थित वर्तमान चांदा जहाँ कनिंघम के अनुसार सातवीं शती में दक्षिण कोसल की राजधानी थी। (एंशेंट ज्याग्रेफ़ी ऑव इंडिया पृ० 595)

चंद्रपुरी (ज़िला बनारस, उ० प्र०)

(1) सारनाथ से नौ मील पर स्थित जैनों का प्राचीन अतिशयतीर्थ है। इसे जैनाचार्य चंद्रप्रभ का जन्मस्थान माना जाता है। ये आठवें तीर्थंकर थे। चंद्रपुरी गंगातट पर बसी है जहां कई प्राचीन जैन मंदिर स्थित हैं। इसे चंद्रावती या चंद्रवटी भी कहते हैं।

(2)=चंदेरी

(3)=श्रावस्ती (जैनसाहित्य)

चंद्रभागा

(1) पंजाब की प्रसिद्ध नदी चिनाब। इसको वैदिक साहित्य में असिक्नी कहा गया है। महाभारतकाल में इसका नाम चंद्रभागा भी प्रचलित हो गया था—'शतद्रूं चंद्रभागां च यमुनां च महानदीम्, दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम्'—भीष्म० 9, 15। श्रीमद्भागवत 5, 19, 18 में चन्द्रभागा और असिक्नी दोनों का नाम एक ही स्थान में है—'शतद्रूश्चंद्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता-असिक्नी-विश्वेति महानद्यः'। यहां चन्द्रभागा के ही दूसरे नाम असिक्नी का उल्लेख है। ग्रीक लेखकों ने इस नदी को अकेसिनिज़ (Akesines) लिखा है जो असिक्नी का ही स्पष्ट रूपांतर है। चंद्रभागा नदी मानसरोवर (तिब्बत) के निकट चंद्रभाग नामक पर्वत से निस्सृत होती है और सिंधु नदी में गिर जाती है। श्रीमद्भागवत में शायद इसी नदी की ऊपरी धारा को चंद्रभागा कहकर, पुनः शेष नदी का प्राचीन वैदिक नाम असिक्नी कहा गया है। यह भी संभव है कि प्रस्तुत उल्लेख में चंद्रभागा से दक्षिण भारत की भीमा का अभिप्राय हो किंतु यहां दिए गए अन्य नामों के कारण यह संभावना कम जान पड़ती है। विष्णुपुराण 2, 3, 10 में भी चंद्रभागा का उल्लेख है—'शतद्रू चंद्रभागाद्याः हिमवत् पादनिर्गताः'; यहां इस नदी को हिमालय से उद्भूत माना है। विष्णुपुराण 4, 24, 69 ('सिंधु दार्विकोर्वी चंद्रभागाकाश्मीरविषयांश्चव्रात्यम्लेच्छशूद्रादयो

भोक्ष्यन्ति') से ज्ञात होता है कि चंद्रभागा नदी का तटवर्ती प्रदेश पूर्वगुप्तकाल में म्लेच्छों तथा यवन-शकादि द्वारा शासित था।

(2)=भीमा। चंद्रभागा के तट पर महाराष्ट्र का प्रसिद्ध तीर्थ पंढरीपुर बसा है। यह नदी भीमशंकर नामक पर्वत (पश्चिमी घाट में स्थित) से निकलकर लगभग 200 मील बहने के पश्चात् कृष्णा नदी में (ज़िला रायचूर में) मिल जाती है। भीमा इसका दूसरा प्रसिद्ध नाम है।

(3) (उड़ीसा) कोणार्क के समीप बहने वाली एक नदी। कोणार्क का पौराणिक नाम पद्मक्षेत्र है। (दे० मैत्रेयवन)

(4) सौराष्ट्र (काठियावाड़, गुजरात) के उत्तर-पश्चिमी भाग—हालार—में बहने वाली नदी।

(5) चन्द्रभागा नदी (1) का तटवर्ती प्रदेश जिसका उल्लेख विष्णुपुराण 4, 24, 69 में है।

चंद्रवट (गुजरात)

मनमाड स्टेशन के निकट चांदवड़ प्राचीन तीर्थ है जिसका संबंध परशुराम तथा उनकी माता रेणुका से बताया जाता है। इसका प्राचीन नाम चंद्रादित्य-पुरी भी कहा गया है। (दे० चांदवड़)। रेणुका के नाम पर अन्य प्रसिद्ध तीर्थ रुनकता (ज़िला आगरा, उ० प्र०) है।

चंद्रवटी=चंद्रपुरी

चंद्रवती = चंद्रावती (राजस्थान)

आबू पर्वत के निकट है। यह नगरी प्राचीनकाल में पंवार राजपूतों की राजधानी थी। आबू के उग्रसेन पंवार ने पंवार राज्य की नींव डाली थी। राजा भोज (1010–1050 ई०) इस वंश का प्रसिद्ध राजा था जिसके समय में पंवारों की राजधानी धारानगरी में थी। 12वीं शती में सोलंकियों ने पंवार राज्य का अन्त कर दिया था। चंद्रवती के खंडहर आबू के निकट हैं। चंद्रवती को चंद्रावती भी कहते हैं।

(2)=चंद्रपुरी (1)

(3) (काठियावाड़, गुजरात) सौराष्ट्र का प्राचीन नगर। इस स्थान से प्राप्त पुरातत्व-विषयक सामग्री राजकोट के संग्रहालय में सुरक्षित है।

चंद्रवल्ली (मैसूर)

चीतलदुर्ग से एक मील पश्चिम। ई० सन् के प्रारंभिक काल में यह स्थान व्यापारिक दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण रहा होगा क्योंकि यहां तत्कालीन रोम-साम्राज्य में प्रचलित अनेक सिक्के मिले हैं जिनमें ऑगस्टस सीज़र तथा

टाइबेरियस नामक रोम सम्राटों के सिक्के भी हैं।

चंद्रवसा

श्री मद्भागवत 5,19,18 में इस नदी का अन्य नदियों के साथ उल्लेख है—'चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी'— प्रसंग से यह नदी दक्षिण भारत की जान पड़ती है। संभव है यह चंद्रभागा या भीमा हो।

चंद्रा

विष्णुपुराण 2, 4, 28 में उल्लिखित शाल्मलद्वीप की एक नदी— 'योनिस्तोयावितृष्णा च चंद्रमुक्ताविमोचनी, निवृतिः सप्तमी तासांस्मृतास्ताः पापशान्तिदाः'।

चंन्द्रादित्यपुरी=चांदवड़

चंद्रावती=चन्द्रवती

चंद्रिकापुरी=श्रावस्ती (जैन साहित्य)

चंद्रेही (ज़िला रींवा, म० प्र०)

प्राचीन शैव विहार या मठ के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। मंदिर छोटे वर्गाकार पत्थरों से बनाया गया था। ऊपरी सतह के प्रस्तर-खंड कोनों पर से तड़क गए हैं क्योंकि निर्माताओं ने पत्थरों को जोड़ते समय चिनाई के स्वाभाविक विस्तरण के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा (दे० प्रोग्रेस रिपोर्ट आर्क्योलॉजिकल सर्वे, वेस्टर्न सर्किल, 31 मार्च 1921, पृ० 83–84–85)।

चंपकारण्य=चंपारण्य

चंपमालिनी=चंपा

चंपा (ज़िला भागलपुर, बिहार)

अंग देश की राजधानी। विष्णुपुराण 4, 18, 20 से इंगित होता है कि पृथुलाक्ष के पुत्र चंप ने इस नगरी को बसाया था—'ततश्चंपो यश्चम्पां निवेशयामास'। जनरल कनिंघम के अनुसार भागलपुर के समीपस्थ ग्राम चंपानगर और चंपापुर प्राचीन चंपा के स्थान पर ही बसे हैं। महाभारत शान्ति० 5, 6-7 के अनुसार जरासंध ने कर्ण को चंपा या मालिनी का राजा मान लिया था, 'प्रीत्या ददौ स कर्णाय मालिनीं नगरमथ, अंगेषु नरशार्दल स राजाऽऽसीत् सपत्नजित्। पालयामास चंपां च कर्णः परबलार्दनः'। वायुपुराण 99,105-106; हरिवंशपुराण 31,49 और मत्स्यपुराण 48,97 के अनुसार भी चंपा का दूसरा नाम मालिनी था। चंपा को चंपपुरी भी कहा गया है—'चंपस्य तु पुरी चंपा या मालिन्यभवत् पुरा'। इससे यह भी सूचित होता है कि चंपा का पहला नाम मालिनी था और चंप नामक राजा ने उसे चंपा नाम दिया था। दिग्घनिकाय 1,111; 2,235

के वर्णन के अनुसार चंपा अंगदेश में स्थित थी। महाभारत वन० 308,26 से सूचित होता है कि चंपा गंगा के तट पर बसी थी—'चर्मण्वत्याश्च यमुनां ततो गंगा जगाम ह, गंगाया सूत विषयं चंपामनुययौ पुरीम्'। प्राचीन कथाओं से सूचित होता है कि इस नगरी के चतुर्दिक् चंपक वृक्षों की मालाकार पंक्तियां थीं। इस कारण इसे चंपमालिनी या केवलमालिनी कहते थे। जातककथाओं में इस नगरी का नाम कालचंपा भी मिलता है। महाजनक जातक के अनुसार चंपा मिथिला से साठ कोस दूर थी। इस जातक में चंपा के नगर-द्वार तथा प्राचीर का वर्णन है जिसकी जैन ग्रंथों से भी पुष्टि होती है। औपपातिक सूत्र में नगर के परकोटे, अनेक द्वारों, उद्यानों, प्रासादों आदि के बारे में निश्चित निर्देश मिलते हैं। जातक-कथाओं में चंपा की श्री, समृद्धि तथा यहां के संपन्न व्यापारियों का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। चंपा में कौशेय या रेशम का सुंदर कपड़ा बुना जाता था जिसका दूर दूर तक, भारत से बाहर दक्षिणपूर्व एशिया के अनेक देशों तक, व्यापार होता था। (रेशमी कपड़े की बुनाई की यह परंपरा वर्तमान भागलपुर में अभी तक चल रही है) चंपा के व्यापारियों ने हिंद-चीन पहुँचकर वर्तमान अनाम के प्रदेश में चंपा नामक भारतीय उपनिवेश स्थापित किया था। साहित्य में चंपा का कुणिक अजातशत्रु की राजधानी के रूप में वर्णन है। औपपातिक-सूत्र में इस नगरी का सुंदर वर्णन है और नगरी में पुष्यभद्र की विश्रामशाला, वहां के उद्यान में अशोक वृक्षों की विद्यमानता और कुणिक और उसकी महारानी धारिणी का चंपा से संबंध आदि बातों का उल्लेख है। इसी ग्रंथ में तीर्थंकर महावीर का चंपा में समवशरण करने और कुणिक की चंपा की यात्रा का भी वर्णन है। चंपा के कुछ शासनाधिकारियों जैसे गणनायक, दंडनायक, और तालबर के नाम भी इस सूत्र में दिए गए हैं। जैन उत्तराध्ययन सूत्र में चंपा के धनी व्यापारी पालित की कथा है जो महावीर का शिष्य था। जैन ग्रंथ विविधतीर्थकल्प में इस नगरी की जैनतीर्थों में गणना की गई है। इस ग्रंथ के अनुसार बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य का जन्म चंपा में हुआ था। इस नगरी के शासक करकंडु ने कुंड नामक सरोवर में पार्श्वनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठापना की थी। वीरस्वामी ने वर्षाकाल में यहां तीन रातें बिताई थीं। कुणिक (अजातशत्रु) ने अपने पिता बिंबसार की मृत्यु के पश्चात् राजगृह छोड़कर यहां अपनी राजधानी बनाई थी। युवानच्वांग (वाटर्स 2,181) ने चंपा का वर्णन अपने यात्रावृत्त में किया है। दशकुमार चरित्र 2,2 में भी चंपा का उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि यह नगरी 7वीं शती ई० या उसके बाद तक भी प्रसिद्ध थी।

चंपापुर के पास कर्णगढ़ की पहाड़ी (भागलपुर के निकट) है जिससे महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा अंगराज कर्ण से चंपा का संबंध प्रकट होता है। यहां का समीपतम रेल स्टेशन नाथनगर, भागलपुर से 2 मील है। चंपा इसी नाम की नदी और गंगा के संगम पर स्थित थी।

(2)=चंपापुर (हिंद-चीन)। प्राचीन भारतीय उपनिवेश चंपा में वर्तमान अनाम का अधिकांश भाग सम्मिलित था। अनाम के उत्तरी ज़िले 'थान-हो-आ', 'नगे आन' और 'हातिन्ह' केवल इसके बाहर थे। इस प्रकार चंपापुरी का विस्तार 14^0 से 10^0 उत्तरी देशांतर के बीच में था। दूसरी शती ई० में यहां पहली बार भारतीयों ने औपनिवेशिक बस्ती बनाई थी। ये लोग संभवत: भारत की चंपानगरी के निवासी थे। 15वीं शती तक यहां के निवासी पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रभाव में थे। इस शती में अनामियों ने चंपा को जीतकर वहां अपना राज्य स्थापित कर लिया और भारतीय उपनिवेश की प्राचीन परंपरा को समाप्त कर दिया। चंपा का सर्वप्रथम भारतीय राजा श्रीमान् था जिसका चीन के इतिहास में भी उल्लेख मिलता है। चंपापुरी के वर्तमान अवशेषों में यहां के प्राचीन भारतीय धर्म तथा संस्कृति की सुंदर झलक मिलती है।

(3) चंपा (1) के निकट बहने वाली नदी। चंपा नगरी इसी नदी और गंगा के संगम पर स्थित थी।

चंपानगर

(1)=**चंपापुर**=**चंपा** (1)

(2)=**चांपानेर**

चंपारण्य

(1) (बिहार) प्राचीन काल में बड़ी गंडक के तट के समीप चंपारण्य या चंपकारण्य नामक विस्तीर्ण वन था। महाभारत वनपर्व में तीर्थ यात्रानुपर्व के अंतर्गत कौशिकी नदी (वर्तमान कोसी, बिहार) के पश्चात् चंपारण्य का उल्लेख है—'ततो गच्छेत राजेन्द्र चंपकारण्यमुत्तमम्, तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत्'—वन० 84, 133। चंपारण्य के क्षेत्र में गंडकी के तट पर बगहा नगर बसा है—इसे लोग नारायणी तथा शालिग्रामी भी कहते हैं। बगहा से 25 मील पर दरबाबारी में गंडक, पंचनद तथा सोनहा नदियों का संगम है। निकट ही बावनगढ़ी के खंडहर हैं जहां पांडवों ने अपने वनवास का कुछ समय व्यतीत किया था। पौराणिक किंवदंतियों के अनुसार यह वही स्थान है जहां श्रीमद्भागवत में वर्णित गज-ग्राह युद्ध हुआ था किंतु श्रीमद्भागवत के अनुसार

इस आख्यायिका की घटनास्थली त्रिकूट पर्वत के निकट थी। दे० **त्रिकूट** (1)। गंडक की घाटी में गज और ग्राह के पैरों के चिह्न भी, श्रद्धालु लोगों की कल्पना के अनुसार, पाए जाते हैं। संगम के निकट वह स्थान है जहां से सीता ने राम की सेना तथा लवकुश में होने वाला युद्ध देखा था। यहीं संग्रामपुर का ग्राम है जहां वाल्मीकि का आश्रम बताया जाता है। चंपारन का ज़िला प्राचीन चंपारण्य के क्षेत्र में ही बसा हुआ है। (दे० **बगहा**)

(2) (ज़िला रायपुर, म० प्र०) 16वीं शती के प्रसिद्ध महात्मा तथा भक्ति-मार्ग के प्रमुख प्रचारक वल्लभाचार्य का जन्मस्थान। इनके पिता का नाम लक्ष्मणभट्ट तथा माता का इलम्मा था। ये आंध्र के कांकरवाड़ ग्राम के रहने वाले तैलंग ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि लक्ष्मणभट्ट सस्त्रीक काशी की यात्रा पर गए हुए थे और मार्ग में ही चंपारण्य के स्थान पर वल्लभ का जन्म हुआ था (1478 ई०)। वल्लभाचार्य की सोलहवीं शती के महापुरुषों में गणना की जाती है। ये भक्तिवाद के प्रतिपादक थे। महाकवि सूरदास इन्हीं के शिष्य थे। कुछ लोगों के मत में वल्लभाचार्य का जन्मस्थान चंपारन (बिहार) के निकट चतुर्भुजपुर है।

चंपारन (दे० **चंपारण्य**)

चंपावती

(1) कुमायूं की प्राचीन राजधानी।

(2) बंबई से 25 मील दक्षिण में स्थित वर्तमान चौल। यह परशुराम क्षेत्र के अंतर्गत है। संभवतः स्कंदपुराण (ब्रह्मोत्तर खंड—16) की चंपावती यही है।

चंपावतीनगर

बीड़ का प्राचीन नाम। कहा जाता है कि विक्रमादित्य की बहन चंपावती ने इस स्थान का नाम, जिसे पहले बलनी कहते थे, विक्रमादित्य का अधिकार हो जाने पर बदलकर चंपावतीनगर कर दिया था।
(दे० **बीड़**)

चंबल दे० **चर्मण्वती**

चंबा (हि० प्र०)

इस पहाड़ी नगर को 920 ई० में राजा साहिल वर्मा ने बसाया था जो सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। नगर दो भागों में बंटा हुआ है। निचले भाग के निकट रावी नदी बहती है। शाह-मदार पहाड़ी के बीच में महाराजा रणजीतसिंह की रानी शारदा का बनवाया स्मारक है जो रानी नैनादेवी की स्मृति में निर्मित

हुआ था। नैनादेवी ने नगरवासियों के लिए जल की पर्याप्त मात्रा प्राप्त करने के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए थे। कहानी यह है कि राजा साहिलवर्मा ने सरोथा नामक सरिता का जल चंबा तक पहुंचाने के लिए एक रजबहा बनवाया था। किसी अज्ञात कारण से नदी का पानी इस नहर में न चढ़ता था। राजा को स्वप्न में आदेश हुआ कि पानी लाने के लिए उसे अपने ज्येष्ठ पुत्र या रानी का बलिदान करना पड़ेगा। रानी को जब यह ज्ञात हुआ तो वह अपने प्राण देने के लिए तैयार हो गई। कहा जाता है कि जैसे ही नैनादेवी ने जल-समाधि ली वैसे ही नहर में पानी फूट पड़ा। इस महान् आत्मा की स्मृति में चैत्र-वैसाख में चंबा में एक बड़ा मेला लगता है जिसमें केवल स्त्रियां ही आती हैं। चंबा की मुख्य इमारत अखंड चंडीमहल है जिसके उत्तर-पश्चिम की ओर छः मंदिर स्थित हैं। इनमें तीन शिव और तीन विष्णु के मंदिर हैं। ये मंदिर शिल्प के सुंदर उदाहरण हैं। ये लगभग एक सहस्र वर्ष प्राचीन हैं। चंबा ज़िले में सर्वप्रसिद्ध मंदिर लक्ष्मीनारायण का है जो साहिलवर्मा का ही बनवाया हुआ है। कहते हैं कि इस मंदिर को बनवाने के लिए राजा साहिलवर्मा ने अपने नौ राजकुमारों को संगमर्मर लाने के लिए विंध्याचल भेजा था। इस काम में अपना ज्येष्ठ पुत्र युगकार वर्मा सबसे अधिक सफल रहा था। चंबा आज भी पुरानी हिंदू संस्कृति का केंद्र है और अपने प्राचीन परंपरागत लोक-संगीत तथा नृत्य के लिए भारत भर में प्रख्यात है। यहां के अनेक प्राचीन अभिलेख स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

चकवाल (दे० चक्रवाल)

चक्रकूट

यह प्रदेश प्राचीनकाल में वर्तमान मध्यप्रदेश के पूर्वी और उड़ीसा के पश्चिमी भाग के अंतर्गत था। गोदावरी इसकी पश्चिमी सीमा पर बहती थी। इंद्रावती नदी इसी प्रदेश की मुख्य नदी है जो वर्तमान जगदलपुर (ज़िला बस्तर) के पास बहती है। आज भी जगदलपुर के निकट इन्द्रावती के प्रपात को चित्रकोट कहते हैं जो चक्रकूट या चक्रकोट का रूपांतर हो सकता है।

चक्रक्षेत्र

जगन्नाथपुरी के क्षेत्र का प्राचीन पौराणिक नाम।

चक्रतीर्थ

(1) नासिक (महाराष्ट्र) के पास गोदावरी का तीर्थ। गोदावरी के स्रोत, ब्रह्मगिरि के पश्चात् इस स्थान पर नदी का जल पहली बार प्रकट होता है। यह ब्रह्मगिरि से छः मील दूर है।

(2) (ज़िला गढ़वाल उ० प्र०) बदरीनाथ से कुछ दूर उत्तर की ओर स्थित है। इसके विषय में पौराणिक किंवदंती है कि यहां रहकर अर्जुन ने तप किया था और वरदान स्वरूप दैवी अस्त्र प्राप्त करके उन्होंने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी—'चक्रतीर्थस्य माहात्मादर्जुनः परमास्त्रवित् भूत्वा स नाशयामास शत्रून् दुर्योधनादिकान्' स्कंदपुराण, केदार खंड, 58, 57।

(3) किष्किंधा के निकट ऋष्यमूकपर्वत और तुंगभद्रा नदी के घेरे को चक्रतीर्थ कहा जाता है।

चक्रनगर

(1) (म० प्र०) केलझर का प्राचीन नाम। यहां के पुराने दुर्ग के ध्वंसावशेषों में एक दरवाज़ा अभी तक दिखाई देता है जिसके पत्थरों पर विभिन्न देवी-देवताओं की सुंदर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

(2) (ज़िला इटावा, उ० प्र०) इस स्थान पर एक प्राचीन दुर्ग के खंडहर तथा विस्तृत ढूह स्थित हैं किंतु नियमित रूप में उत्खनन न होने के कारण प्राचीनकाल की मूल्यवान् सामग्री प्रकाश में न आ सकी है। कहा जाता है कि यह वही स्थान है जहां भीम ने पांडवों के बनवास के दिनों में यहां रहते हुए, एक राक्षस का वध करके एक ब्राह्मण परिवार की, जिसके यहां पांडव अतिथि थे, रक्षा की थी।

चक्रपुर (दे० **केलझर**)

चक्रनदी

श्रीमद्भागवत में (10, 79, 11) वर्णित नदी, जो संभवतः गंडकी या उसकी सहायक चक्रा है। (दे० **चक्रा**)

चक्रा

नेपाल की एक नदी जो देविका नदी के साथ ही, गंडकी में, मुक्तिनाथ नामक स्थान पर मिलती है। मुक्तिनाथ का त्रिवेणी-संगम काठमंडू से 140 मील दूर है। संभवतः यह श्रीमद्भागवत पुराण की चक्र नदी है।

चक्षु

विष्णुपुराण 2, 2, 36 में चक्षु को केतुमाल-वर्ष की नदी बताया गया है—'चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्तथा पश्चिमकेतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति सागरम्'। कोलब्रुक (दे० सिद्धान्त शिरोमणि की टीका) तथा विलसन (दे० संस्कृतकोश) के अनुसार चक्षु, ऑक्सस (Oxus) नदी का एक प्राचीन संस्कृत नाम है। किंतु प्रो० पाठक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि चक्षु का शुद्ध रूप वक्षु (या वंक्षु) है और वक्षु का चक्षु संस्कृत साहित्य के परवर्ती काल

में प्रतिलिपिकार की भूल से बन गया है। वक्षु या वंक्षु संस्कृत के प्राचीन साहित्य में सर्वत्र ऑक्सस नदी के लिए व्यहृत हुआ है (दे० **वंक्षु**)। वाल्मीकि रामायण बाल० 43, 13 में जिस सुचक्षु नदी का वर्णन गंगा की पश्चिमी धारा के रूप में है वह यही चक्षु या वक्षु जान पड़ती है—'सुचक्षुश्चेव सीता च सिंधुश्चैव महानदी, तिस्रश्चैतादिशं जग्मुः प्रतीची तु दिशं शुभाः'। सीता तरिम नदी है जो वक्षु में पश्चिम की ओर से आकर मिलती है। चक्षु को सीता के साथ गंगा की एक धारा माना गया है।

चक्षुष्मती=**इक्षुमती**

चज़रला (ज़िला गंतूर, आं० प्र०)

चज़रला या चेज़रला में प्राचीनकाल में एक बौद्धचैत्य स्थित था जो दक्षिण भारत में बौद्धधर्म की अवनति के पश्चात्, पल्लवों के शासनकाल में, शिवमंदिर के रूप में परिणत हो गया था। इस स्तूप की, जो संरचनात्मक है न कि शैलकृत्त, खोज श्री री ने की थी। जान पड़ता है इसकी रूपरेखा व आकृति भी, जो पहले बौद्ध चैत्यों की भांति ही थी, बाद में शिव मंदिरों के अनुकूल ही बना ली गई।

चटकूट (ज़िला मेदक, आं० प्र०)

प्राचीन मंदिरों के मूल्यवान् अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

चटगाँव=**चाटगांव** (पूर्व बंगाल, पाकि०)

एक स्थानीय किंवदंती के अनुसार इस नगर का प्राचीन नाम टिस्टागौंग था जो बिगड़कर चिट्टागौंग या चटगांव हो गया। कहा जाता है बर्मा के बौद्ध राजा ने जब इस स्थान को जीता तो उसने टिस्टागौंग शब्द कहे थे जिनका अर्थ है कि लड़ाई करना बुरा है। चटगांव में पुराना बंदरगाह तो है ही, कई प्राचीन मंदिर व मसजिदें भी हैं।

चणक

जैन ग्रंथ आवश्यकसूत्र के अनुसार चन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य, चणक ग्राम का निवासी था। यह ग्राम गोल्ल (?) में स्थित था।

चतुर्भुजपुर (ज़िला चंपारन, बिहार)

चम्पारन के समीप चोड़ानगर। इसे किंवदंती में महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्मस्थान माना जाता है। इनका जन्म 1478 ई० में हुआ था [किंतु दे० **चम्पारण्य** (2)]

चमकौर (हि० प्र०)

शिवालिक पहाड़ियों की तराई में बसा हुआ एक छोटा क़स्बा। पुरातत्व

विभाग के अधीक्षक डॉ० वाई० डी० शर्मा के अनुसार उत्खनन से इस स्थान पर अति प्राचीन नगर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह नगर आजकल सिक्खों का पवित्र स्थान है जहां गुरु गोविंदसिंह ने मुग़लों के विरुद्ध अंतिम युद्ध किया था। इसी के फलस्वरूप उनके दो ज्येष्ठ पुत्र मारे गए थे और दो कनिष्ठ पुत्र सरहिंद के सूबेदार की आज्ञा से दीवार में चुनवा दिए गए थे। डॉ० शर्मा के मत में इस नगर की नींव रामायणकाल में पड़ी थी। नगर के आसपास विस्तृत बालू के मैदान हैं जिससे यह जान पड़ता है कि किसी समय सतलज नदी यहां होकर बहती थी। ई० सन् के दो सहस्र वर्ष पूर्व के हरप्पा-सभ्यता से प्रभावित अनेक अवशेष यहां मिले हैं। चमकौर की घनी बस्ती के कारण यहां विस्तृत खुदाई संभव न हो सकी है किंतु उत्तर-मध्यकालीन अवशेष काफ़ी प्रचुरता से मिले हैं जिनके उदाहरण चमकीले मृत्भांड एवं लाल ढक्कन और चपटी तली तथा चौड़े मुँह और तेज़ धार के किनारे वाले प्याले हैं।

चमत्कारपुर (दे० **बड़नगर, हाटकेश्वर**)

चमन (दे० **उद्यान**)

चमनाक (पूर्व बरार, महाराष्ट्र)

इस स्थान से वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय का एक ताम्रदान-पट्ट प्राप्त हुआ है जो इसके शासनकाल के 18वें वर्ष में जारी किया गया था। इसमें प्रवरसेन द्वारा चर्मांक नामक ग्राम (वर्तमान चमनाक) का एक सहस्र ब्राह्मणों को दान में दिए जाने का उल्लेख है। इस अभिलेख में वाकाटक महाराजाओं की निम्न वंशावली दी हुई है जिससे इस वंश के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है—महाराजा प्रवरसेन, म० गौतमीपुत्र, म० रुद्रसेन (स्वामी महाभैरव का भक्त था और भारशिव महाराज भवनाग का दौहित्र था। भारशिव महाराजाओं ने भागीरथी गंगा को अपनी वीरता द्वारा प्राप्त किया था), म० पृथ्वीसेन (महेश्वर का भक्त था), म० रुद्रसेन (चक्रपाणि विष्णु का भक्त था, देवगुप्त की कन्या प्रभावती गुप्त इसकी रानी थी), म० प्रवर सेन (भगवान् शंभु का भक्त था)। वाकाटक नरेश गुप्त सम्राटों के समकालीन थे।

चमरलेण (ज़िला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

धरसेव या उसमानाबाद के निकट चमरलेण में 500–600 ई० के वैष्णव और जैन गुहा मंदिर स्थित हैं। निकट ही डाबरलेण और लचन्दरलेण नामक शैलकृत्त गुफ़ाएं हैं जो इसी काल की हैं।

चमरोत्पात

जैन साहित्य के सर्वप्राचीन आगम ग्रंथ एकादश अंगादि में उल्लिखित तीर्थ,

जिसका पता अब नहीं है। अन्य अज्ञात तीर्थ, जिनका उल्लेख इस ग्रंथ में है—गजाग्रपद, रथावर्त आदि हैं।

चमसोद्भेद

महाभारत वन० 82, 112 में चमसोद्भेद का उल्लेख सरस्वती नदी के विनशन तीर्थ के पश्चात् है—'चमसेऽथ शिवोद्भेदे नागोद्भेदे च दृश्यते, स्नात्वा तु चमसोद्भेदे अग्निष्टोमफलं लभेत्'। इस प्रसंग के वर्णन से सूचित होता है कि सरस्वती नदी विनशन में नष्ट या लुप्त होने के पश्चात् चमसोद्भेद में फिर प्रकट होती थी। यहीं अगस्त्य और लोपामुद्रा का विवाह हुआ था। शल्य० 35, 87 में भी चमसोद्भेद का सरस्वती के तटवर्ती तीर्थों में वर्णन है—'ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद् बली, चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयन्त्युत'।

चरखारी (ज़िला हमीरपुर, उ० प्र०)

अंग्रेज़ी राज्य के समय में बुंदेलखंड की एक रियासत थी। महाराजा छत्रसाल के पुत्र राजा जगतराज ने अपने तीसरे पुत्र कुमार कीरतसिंह को अपनी जैतपुर की रियासत का उत्तराधिकारी बनाया था पर इसकी मृत्यु अपने पिता के जीवनकाल में ही हो गई। जगतराज के मरने पर 1759 ई० में कीरतसिंह के पुत्र गुमानसिंह ने गद्दी लेनी चाही किंतु उसके चाचा पहाड़सिंह ने विरोध किया। फलस्वरूप गुमानसिंह और उसका भाई खुमानसिंह भागकर चरखारी पहुंचे और वहां के क़िले में रहने लगे। इसके पीछे 1764 ई० में पहाड़सिंह ने खुमानसिंह को चरखारी का प्रदेश दे दिया और इस प्रकार इस रियासत की नींव पड़ी।

चरणाद्रि (दे० चुनार)

चरना (ज़िला हमीरपुर, उ० प्र०)

यहां बुंदेलखंड के चन्देल-नरेशों के ज़माने की इमारतों के अवशेष स्थित हैं। चन्देलों का शासन इस इलाके में 8वीं-9वीं शती ई० में था।

चरित्र (उड़ीसा)

महानदी के मुहाने पर अवस्थित प्राचीन नगर।

चरित्रवन

चरित्रवन में महर्षि विश्वामित्र का तपोवन था। इसकी स्थिति बकसर (बिहार) के निकट थी। कहा जाता है कि यह आश्रम कारूष देश में स्थित था।

चरूप=चारूप

चर्मण्वती=चंबल

महाभारत के अनुसार राजा रंतिदेव के यज्ञों में जो आर्द्र चर्मराशि

इकट्ठी हो गई थी उससे यह नदी उद्भूत हुई थी—'महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् ससृजेयतः ततश्चर्मण्वतीत्येवं विख्याता स महानदी' शान्ति० 29,123। कालिदास ने भी मेघदूत-पूर्वमेघ 47 में चर्मण्वती को रंतिदेव की कीर्ति का मूर्तस्वरूप कहा है—'आराध्यैनं शरवनभवं देवमुल्लघिताध्वा, सिद्धद्वन्द्वैर्जलकण-भयाद्वीणिभिर्दत्त मार्गः व्यालम्बेथास्सुरभितनयालंभजां मानयिष्यन्, स्रोतो मूर्त्याभुवि परिणतां रंतिदेवस्य कीर्तिः'। इन उल्लेखों से यह जान पड़ता है कि रंतिदेव ने चर्मण्वती के तट पर अनेक यज्ञ किए थे। महाभारत 2, 31,7 में भी चर्मण्वती का उल्लेख है—'ततश्चर्मण्वती कूले जंभकस्यात्मजं नृपं ददर्श वासुदेवेन शेषितं पूर्ववैरिणा'—अर्थात् इसके पश्चात् सहदेव ने (दक्षिण दिशा की विजय यात्रा के प्रसंग में) चर्मण्वती के तट पर जंभक के पुत्र को देखा जिसे उसके पूर्व शत्रु वासुदेव ने जीवित छोड़ दिया था। सहदेव इसे युद्ध में हराकर दक्षिण की ओर अग्रसर हुए थे। चर्मण्वती नदी को वनपर्व के तीर्थ यात्रा अनुपर्व में पुण्य नदी माना गया है—'चर्मण्वतीं समासाद्य नियतो नियता-शनः रंतिदेवाभ्यनुज्ञातमग्निष्टोमफलं लभेत्'। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में चर्मण्वती का नर्मदा के साथ उल्लेख है—'सुरसानर्मदा चर्मण्वती सिंधुरंधः'—इस नदी का उद्भव जनपव की पहाड़ियों से हुआ है—यहीं से गंभीरा नदी भी निकलती है। यह यमुना की सहायक नदी है। महाभारत वन० 308,25-26 में अश्वनदी का चर्मण्वती में, चर्मण्वती का यमुना में और यमुना का गंगा में मिलने का उल्लेख है—'मंजूषात्वश्वनद्याः सा ययौ चर्मण्वतीं नदीम्, चर्मण्वत्याश्च यमुनां ततो गंगां जगामह। गंगायाः सूतविषये चंपामनुययौपुरीम्'।

चर्मकि=**चमनाक**

चांदनगांव (ज़िला हिंडौन राजस्थान)

पश्चिम रेल की मथुरा-नागदा शाखा पर चांदनगांव या वर्तमान महावीरजी जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। यह गंभीरा नदी के तट पर अवस्थित है। इस तीर्थ का महत्त्व मुख्य रूप से एक लाल पत्थर की प्रतिमा के कारण है जो 1600 ई० के लगभग एक प्राचीन टीले के अंदर से प्राप्त हुई थी। राजस्थान के ख्यातों से ज्ञात होता है कि यह स्थान प्राचीन समय में चांदनगांव कहलाता था। यहां उस समय बड़े-बड़े व्यापारियों की बस्ती थी। एक स्थानीय किंवदंती के अनुसार यहां के एक बड़े व्यापारी के पास घृत का इतना विशाल संग्रह था कि इस स्थान से नाली में डालकर घृत दिल्ली तक पहुंचाया जा सकता था। चांदनगांव के नीचे की ओर गंभीरा पर एक बांध बना हुआ था। इस स्थान का बंटवारा तीन भाइयों में हुआ था और नए दो गांवों के

नाम क्रमशः तत्कालीन शासकों के नाम पर अकबरपुर और नौरंगाबाद हुए। वर्तमान महावीरजी नौरंगाबाद का ही परिवर्तित नाम है। मुगलकाल में निकटवर्ती कैमला ग्राम के निवासियों की यहां के निवासियों से शत्रुता होने के कारण यह बस्ती उजड़ गई। कैमलावासियों ने चांदनगांव का बांध तोड़कर नगर को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था जिसके स्मारक रूप अनेक खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं। महावीरजी के मंदिर की मूर्ति 1500 ई० से पूर्व की जान पड़ती है। यह संभव है कि शत्रुओं के आक्रमण के समय किसी ने इस मूर्ति को भूमि में गाड़ दिया हो और कालांतर में मंदिर के बनने के समय यह बाहर निकाली गई हो। यह निश्चित है कि मंदिर का निर्माण बसवा (जयपुर) के सेठ अमरचंद विलाला ने 1688 ई० के कुछ पूर्व करवाया था। जयपुर के प्राचीन राजस्व के कागजों में इस सन् में मंदिर के विद्यमान होने का उल्लेख है। जयपुर सरकार की ओर से 1688 ई० में मंदिर में पूजा के लिए कुछ निश्चित धन दिया गया था। कहा जाता है कि 1830 ई० में जयपुर के दीवान जोधराज को तत्कालीन महाराजा ने किसी बात से रुष्ट होकर गोली से उड़ा देने का आदेश दिया था किंतु चांदनगांव के महावीर स्वामी की मनौती के कारण वे तीन गोलियां दागीं जाने के बाद भी बच गए। इसी चमत्कार से प्रभावित होकर महाराजा तथा दीवान दोनों ने ही यहां के मंदिर को विस्तृत करवाया था। इस मंदिर में मुगल वास्तुकला की पूरी-पूरी छाप दिखाई देती है जिसके उदाहरण इसके गुंबद, गोलछत्रियां और आले हैं। मंदिर के तैयार होने पर सरकार द्वारा एक मेला यहां लगवाया गया था जो आज भी प्रतिवर्ष वैसाख में लगता है।

चांदपुर

(1) (जिला झांसी, उ० प्र०) मध्ययुगीन बुंदेलखंड की वास्तुकला की सुंदर कृतियों के खंडहर यहां के उल्लेखनीय स्मारक हैं। (दे० **चंदावर**)

(२) (ज़िला गढ़वाल उ० प्र०) गढ़वाल की अनेक गढ़ियों में से (जिनके कारण यह प्रदेश गढ़वाल कहलाता है) सर्वप्रसिद्ध गढ़ी, जहां पुराने महलों के खंडहर देखे जा सकते हैं। कहा जाता है कि चांदपुर के राजाओं ने ही आदि बदरी (बदरीनाथ) के मंदिर बनवाए थे।

चांदवड़ = चंद्रादित्यपुरी (महाराष्ट्र)

अहल्याबाई होलकर का जन्म स्थान। किंवदंती है कि चांदवड़ या चंद्रवट-नगर की नींव यादववंशीय राजा दीर्घ पन्नार ने डाली थी। 801 ई० से 1073 ई० तक यहां यादवों का राज्य रहा। नगर 4000 फुट ऊंची पहाड़ी के नीचे बसा है। पहाड़ी पर जाने के मार्ग में रेणुका देवी का मंदिर है जो संभवतः प्राचीनकाल में

जैन गुहा मंदिर रहा होगा क्योंकि दीवार में तीन और तीर्थंकरों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जैनसाहित्य में चांदवड़ का प्राचीन नाम चंद्रादित्यपुरी मिलता है।

चाँपानेर=चंपानेर (गुजरात)

बड़ौदा से 21 मील और गोधरा से 25 मील दूर, गुजरात की मध्ययुगीन राजधानी चांपानेर (मूल नाम चंपानगर या चंपानेर) के स्थान पर वर्तमान समय में पावागढ़ नामक नगर बसा हुआ है। यहां से चांपानेर रोड स्टेशन 12 मील है। इस नगर को जैन धर्मग्रंथों में तीर्थ माना गया है। श्री तीर्थ माला चैत्य वंदन में चांपानेर का नामोल्लेख है—'चंपानेरक धर्मचक्र मथुराऽयोध्या प्रतिष्ठानके—'। प्राचीन चांपानेर नगरी 12 वर्ग मील के घेरे में बसी हुई थी। पावागढ़ की पहाड़ी पर उस समय एक दुर्ग था जिसे पवनगढ़ या पावागढ़ कहते थे। यह दुर्ग अब नष्टभ्रष्ट हो गया है पर प्राचीन महाकाली का मंदिर आज भी विद्यमान है। चाँपानेर की पहाड़ी समुद्रतल से 2800 फुट ऊंची है। इसका संबंध ऋषि विक्रमादित्य से बताया जाता है। चांपानेर का संस्थापक, गुजरात-नरेश वनराज का चंपा नामक मंत्री था। चांदबरौत नामक गुजराती लेखक के अनुसार 11वीं शती में गुजरात के शासक भीमदेव के समय में चांपानेर का राजा मामगौर तुअर था। 1300 ई० में चौहानों ने चांपानेर पर अधिकार कर लिया। 1484 ई० में महमूद बेगड़ा ने इस नगरी पर आक्रमण किया और वीर राजपूतों ने विवश होकर अपने प्राण शत्रु से लड़ते लड़ते गंवा दिए। रावल पतई जयसिंह और उसका मंत्री डूंगरसी पकड़े गए और इस्लाम स्वीकार न करने पर मुसलमानों ने उनका वध कर दिया (17 नवंबर, 1484 ई०)। इस प्रकार चांपानेर के 184 वर्ष प्राचीन राजपूत राज्य की समाप्ति हुई। 1535 ई० में हुमायूं ने चांपानेर दुर्ग पर अधिकार कर लिया पर यह आधिपत्य धीरे धीरे शिथिल होने लगा और 1573 ई० में अकबर को नगर का घेरा डालना पड़ा और उसने फिर से इसे हस्तगत कर लिया। इस प्रकार संघर्षमय अस्तित्व के साथ चांपानेर मुगलों के कब्ज़े में प्रायः 150 वर्षों तक रहा। 1729 ई० में सिंधिया का यहां अधिकार हो गया और 1853 ई० में अंग्रेज़ों ने सिंधिया से इसे लेकर बंबई-प्रांत में मिला दिया। वर्तमान चांपानेर मुसलमानों द्वारा बसाई गई बस्ती है। राजपूतों के समय का चांपानेर यहां से कुछ दूर है। गुजरात के सुलतानों ने चांपानेर में अनेक सुंदर प्रासाद बनवाए थे। ये अब खंडहर हो गए हैं। हलोल नामक नगर जो बहुत दिनों तक संपन्न और समृद्ध दशा में रहा, चांपानेर का ही उपनगर था। इसका महत्त्व गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् (16वीं शती) समाप्त हो गया। पहाड़ी पर

जो काली-मंदिर है वह बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि विश्वामित्र ने उसकी स्थापना की थी। इन्हीं ऋषि के नाम से इस पहाड़ी से निकलने वाली नदी विश्वामित्री कहलाती है। महादाजी सिंधिया ने पहाड़ी की चोटी पर पहुंचने के लिए शैलकृत्त सीढ़ियां बनवाई थीं। चांपानेर तक पहुंचने के लिए सात दरवाज़ों में से होकर जाना पड़ता है।

चाकन (महाराष्ट्र)

चाकन का दुर्ग, महाराष्ट्र केसरी शिवाजी की पितृपरंपरागत जागीर में था। उनके पितामह मालोजी को शिवनेरि तथा चाकन के क़िले अहमदनगर के सुलतान ने जागीर में प्रदान किए थे।

चाकसू (राजस्थान)

एक मध्ययुगीन जैन मंदिर इस स्थान का मुख्य आकर्षण है। शिल्पसौष्ठव की दृष्टि से यह मंदिर राजस्थान की एक सुंदर कलाकृति है।

चाटगांव=**चटगांव**

चाफल

महाराष्ट्र का प्राचीन तीर्थ। इस स्थान पर छत्रपति शिवाजी ने समर्थ रामदास से प्रथम भेंट की थी और यहीं वे उनके शिष्य बने थे। चाफल में समर्थ ने अपना एक मठ भी स्थापित किया था।

चामरलेण (दे० **चमरलेण**)

चारसड्डा (ज़िला पेशावर, प० पाकि०)

यह कस्बा प्राचीन पुष्कलावती (पाली पुक्कलाओति) के स्थान पर बसा हुआ है। इसकी स्थिति पेशावर से 17 मील उत्तर पूर्व में है। (दे० **पुष्कलावती**)

चारित्र

चीनी यात्री युवानच्वांग (7वीं शती ई०) द्वारा उल्लिखित उड़ीसा का एक बंदरगाह जिसका अभिज्ञान सामान्यतः पुरी से किया जाता है। (दे० महताब, हिस्ट्री ऑव उड़ीसा, पृ० 35)

चारी (कच्छ, गुजरात)

इस स्थान पर प्राचीन काल के बंदरगाह के चिह्न पाए गए हैं, जो भारत पर अरबों के आक्रमण के समय (712 ई०) और उससे पूर्व समृद्ध अवस्था में था। (दे० ट्रेवल्स इंटू बुखारा 1835 जिल्द 1, अध्याय 17)

चारूप (गुजरात)

पाटन के निकट प्राचीन जैन तीर्थ, जिसका उल्लेख जैन स्तोत्र ग्रंथ तीर्थ-

माला चैत्यवंदन में है—'हस्तोडी पुरपाडला दशपुरे चारूप पंचासरे'। इसे अब चरूप कहते हैं।

चिंगलपट (मद्रास)

समुद्रतट पर स्थित दुर्गनगर है। यहां के क़िले के एक पार्श्व में दोहरी क़िलाबंदी है और तीन ओर झील तथा दलदलें हैं। यहां से पाँच मील पर पहाड़ी के ऊपर दक्षिण का प्रसिद्ध पक्षी-तीर्थ है। पहाड़ी पर शिव मंदिर है और जटायुकुंड है। जटायुकुंड का संबंध रामायण के गृध्रराज जटायु से बताया जाता है। पहाड़ी के नीचे शंख तीर्थ है।

चिचेलम

मूसी नदी के तट पर छोटा-सा ग्राम है जिसके चारों ओर भागनगर या हैदराबाद का निर्माण हुआ था। मूल रूप में हैदराबाद को बसाने वाले गोलकुंडा नरेश कुतुबशाह की प्रेयसी सुंदरी भागवती का यह निवास स्थान था। इसी के नाम पर भागनगर बसाया गया था जो बाद में हैदराबाद नाम से प्रसिद्ध हुआ। कहा जाता है कि हैदराबाद का केंद्रीय स्थान चारमीनार चिचेलम ग्राम में ही बनाया गया था।

चितवर

राजस्थान का एक अनभिज्ञात नगर। इसका उल्लेख तिब्बत के इतिहास लेखक तारानाथ ने मारवाड़ के किसी राजा हर्ष के संबंध में किया है। हर्ष ने चितवर में एक बौद्धविहार बनवाया था जिसमें एक सहस्र बौद्ध भिक्षुओं का निवास था। संभवत: इंडियन एंटिक्वेरी 1910 पृ० 187 में उल्लिखित हर्षपुर भी इसी हर्ष के नाम पर बसा हुआ नगर था। इस हर्ष का समय 7वीं शती ई० माना जाता है।

चिताभूमि=वैद्यनाथधाम

यह स्थान सती के बावन पीठों में है। लोक प्रवाद है कि रावण ने यहां शिवोपासना की थी।

चित्तौड़ (ज़िला उदयपुर, राज०)

मेवाड़ का प्रसिद्ध नगर जो भारत के इतिहास में सिसौदिया राजपूतों की वीरगाथाओं के लिए अमर है। प्राचीन नगर चित्तौड़गढ़ स्टेशन से 2½ मील दूर है। मार्ग में गंभीर नदी पड़ती है। भूमितल से 508 फुट ऊँची पहाड़ी पर इतिहास-प्रसिद्ध चित्तौड़गढ़ स्थित है। दुर्ग के भीतर ही चित्तौड़नगर बसा है जिसकी लम्बाई 3½ मील और चौड़ाई 1 मील है। परकोटे के क़िले की परिधि 12 मील है। कहा जाता है कि चित्तौड़ से 8 मील उत्तर की ओर नगरी

नामक प्राचीन बस्ती ही महाभारतकालीन माध्यमिका है। चित्तौड़ का निर्माण इसी के खंडहरों से प्राप्त सामग्री से किया गया था। किंवदंती है कि प्राचीन गढ़ को महाभारत के भीम ने बनवाया था। भीम के नाम पर भीमगोड़ी, भीम-सत आदि कई स्थान आज भी क़िले के भीतर हैं। पीछे मौर्य वंश के राजा मानसिंह ने उदयपुर के महाराजाओं के पूर्वज बपा रावल को जो उनका भानजा था, यह क़िला सौंप दिया। यहीं बप्पारावल ने मेवाड़ के नरेशों की राजधानी बनाई, जो 16वीं शती में उदयपुर के बसने तक इसी रूप में रही। 1303 ई० में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस अवसर पर महारानी पद्मिनी तथा अन्य वीरांगनाएं अपने कुल के सम्मान तथा भारतीय नारीत्व की लाज रखने के लिए अग्नि में कूदकर भस्म हो गईं और राजपूत वीरों ने युद्ध में प्राण उत्सर्ग कर दिए। जिस स्थान पर पद्मिनी सती हुई थी वह समाधीश्वर नाम से विख्यात है। स्थानीय जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर दो आक्रमण किए थे किंतु आधुनिक खोजों से एक ही आक्रमण सिद्ध होता है। पद्मिनी के रानीमहल नामक प्रासाद के खंडहर भी क़िले के अंदर अवस्थित हैं। इस भवन को 1535 ई० में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने नष्ट कर दिया था। चित्तौड़ का दूसरा 'साका' या जौहर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के मेवाड़ पर आक्रमण के समय हुआ था। इस अवसर पर महारानी कर्णावती ने हुमायूं को राखी भेजकर उसे अपना राखीबंद भाई बनाया था। तीसरा 'साका' अकबर के समय में हुआ जिसमें वीर जयमल और पत्ता ने मेवाड़ की रक्षा के लिए हँसते-हँसते प्राणदान किया था। अकबर के समय में ही महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नामक नगर को बसाकर मेवाड़ की नई राजधानी वहां बनाई। चित्तौड़ के क़िले के अंदर आठ विशाल सरोवर हैं। प्रसिद्ध भक्त कवियित्री मीराबाई (जन्म 1498 ई०) का भी यहां मंदिर है जिसे बहादुरशाह ने तोड़ डाला था। महाराणा कुंभा का कीर्तिस्तंभ, जो उन्होंने गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह को परास्त करने की स्मृति में बनवाया था, चित्तौड़ का सर्वप्रसिद्ध स्मारक है। 122 फुट ऊंचे इस स्तंभ के निर्माण में 10 लाख रुपया लगा था। यह नौ मंजिला है और इसके शिखर तक पहुँचने के लिए 157 सीढ़ियां बनी हैं। 12वीं-13वीं शती में जीजा नामक एक धनाढ्य जैन ने आदिनाथ की स्मृति में सात मंजिला कीर्तिस्तंभ बनवाया था जो 80 फुट ऊँचा है। इसमें 49 सीढ़ियां हैं। नीचे से ऊपर तक इस स्तंभ में सुंदर शिल्पकारी दिखाई देती है। चित्तौड़-द्वार के पास राणा सांगा (बाबर का समकालीन) का निर्मित करवाया हुआ सूरज

मंदिर स्थित है। यहां के सात दरवाजों के नाम हैं—पद्मपोल, भैरवपोल, हनुमानपोल, गणेशपोल, जोठलापोल, लक्ष्मणपोल और रामपोल। भैरवपोल के पास जयमल और कल्लू राठौर के स्मारक हैं। पत्ता का स्मारक भी पास ही है। रामपोल के ही निकट पत्लालेश्वर है जहां राणा सांगा की कई तोपें रक्खी हैं। निकटस्थ शांतिनाथ के जैन मंदिर को बहादुरशाह ने विध्वंस कर दिया था। वीरांगना पन्ना धायी का महल रानीमहल के निकट ही है। पन्नामहल ही में पन्ना के अपूर्व बलिदान की प्रसिद्ध कथा घटित हुई थी। राणा कुंभा का बनवाया हुआ जटाशंकर नामक मंदिर भी पास ही स्थित है। भैरवपोल, रामपोल और हनुमानपोल द्वारों की रचना महाराणा कुंभा ने ही की थी। चित्तौड़ के अन्य उल्लेखनीय स्थान हैं–शृंगार चवरी, कालिका मंदिर, तुलजा भवानी, अन्नपूर्णा, नीलकंठ, शतविंश देवरा, मुकुटेश्वर, सूर्यकुंड, चित्रांगद-तड़ाग तथा पद्मिनी, जयमल, पत्ता और हिंगलु के महल। प्राचीन संस्कृत साहित्य में चित्तौड़ का चित्रकोट नाम मिलता है। चित्तौड़ इसी का अपभ्रंश हो सकता है।

चित्रकूट (ज़िला बांदा, उ० प्र०)

वाल्मीकि रामायण तथा अन्य रामायणों में वर्णित प्रसिद्ध स्थान जहां श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनवास के समय कुछ दिनों तक रहे थे। अयो० 84, 4-6 से प्रतीत होता है कि अनेक रंग की धातुओं से भूषित होने के कारण ही इस पहाड़ को चित्रकूट कहते थे—'पश्येयमचलं भद्रे नाना द्विजगणायुतम् शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्‌भिर्विभूषितम्। केचिद् रजतसंकाशाः केचित् क्षतज संनिभाः, पीतमांजिष्ठ वर्णाश्च केचिन् मणिवरप्रभाः। पुष्पार्क केतकाभाश्च केचिज्ज्योतिरस प्रभाः, विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः'। निम्न वर्णन से यह स्पष्ट है कि चित्रकूट रामायण-काल में प्रयागस्थ भारद्वाजाश्रम से केवल दसकोस पर स्थित था—'दशक्रोशइतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि, महर्षि सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः' अयो० 54, 28। आजकल प्रयाग से चित्रकूट इससे लगभग चौगुनी दूरी पर स्थित है। इस समस्या का समाधान यह मानने से हो सकता है कि वाल्मीकि के समय का प्रयाग अथवा गंगा-यमुना का संगम-स्थान आज के संगम से बहुत दक्षिण में था। उस समय प्रयाग में केवल मुनियों के आश्रम थे और इस स्थान ने तब तक जनाकीर्ण नगर का रूप धारण न किया था। चित्रकूट की पहाड़ी के अतिरिक्त इस क्षेत्र के अंतर्गत कई ग्राम हैं जिनमें सीतापुरी प्रमुख है। पहाड़ी पर बाँके सिद्ध, देवांगना, हनुमानधारा, सीता रसोई और अनसूया आदि पुण्य स्थान हैं। दक्षिण पश्चिम में गुप्त गोदावरी नामक सरिता एक गहरी गुहा से निस्सृत होती है। सीतापुरी पयोष्णी

चौखटे हैं। दीवार के भीतर चारों ओर दो मंज़िले मकान और दालान हैं और मध्य में नटेश शिव के मुख्य मंदिर का घेरा और अन्य मंदिर व सरोवर हैं। मंदिर के शिखर के कलश सोने के है। दो स्तंभ वृन्दावन के रंगजी के मंदिर के स्तंभों के समान स्वर्णिम हैं। ज्योतिर्लिंग मणिनिर्मित है।

चिनाब=**चनाब**

पंजाब की प्रसिद्ध नदी। [दे० **चंद्रभागा** (1)]

चिन्नकवुंडनूर (मद्रास)

यह स्थान वरदराज स्वामी के मंदिर तथा प्राचीन दुर्ग के लिए प्रख्यात है।

चिलका (उड़ीसा) दे० **काम्यकसर**

चीतंग (हरियाणा)

स्थानेश्वर (=थानेसर) या कुरुक्षेत्र के दक्षिण-पूर्व की ओर बहने वाली एक नदी। संभव है यह प्राचीन दृषद्वती हो क्योंकि कुरुक्षेत्र की सीमा का वर्णन इस प्रकार है—'सरस्वती दक्षिणेन दृषद्वत्युत्तरेण च, ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे' अर्थात् सरस्वती के दक्षिण और दृषद्वती के उत्तर में जो लोग कुरुक्षेत्र में रहते हैं, वे स्वर्ग में ही बसते हैं।

चीतलदुर्ग (मैसूर)

यह नगर छोटी छोटी पहाड़ियों की तलहटी में बसा हुआ है। इन पहाड़ियों पर अनेक दुर्ग तथा अन्य प्राचीन इमारतें हैं जो अधिकांश में हैदर अली और टीपू द्वारा 18वीं शती में बनवाई गई थीं।

चीन

चीन तथा भारत के व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंध अति प्राचीन हैं। प्राचीनकाल में चीन का रेशमी कपड़ा भारत में प्रसिद्ध था। महाभारत सभा० 51,26 में कीटज तथा पट्टज कपड़े का चीन के संबंध में उल्लेख है। इस प्रकार का वस्त्र पश्चिमोत्तर प्रदेशों के अनेक निवासी (शक, तुषार, कंक, रोमश आदि) युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट स्वरूप लाए थे—'प्रमाणरागस्पर्शाढ्यं वाल्हीचीनसमुद्भवम् और्णं च रांकवंचैव कीटजं पट्टजं तथा'। तत्कालीन भारतीयों को इस बात का ज्ञान था कि रेशम कीट से उत्पन्न होता है। सभा० 51,23 में चीनियों का शकों के साथ उल्लेख है। ये युधिष्ठिर की राज्यसभा में भेंट लेकर उपस्थित हुए थे—'चीनाछकांस्तथा चौड्रान् बर्बरान् वनवासिनः, वार्ष्णेयान् हारहूणांश्च कृष्णान् हैमवतांस्तथा'। भीष्मपर्व में विजातीयों की नामसूची में चीन के निवासियों का भी उल्लेख है—'उत्तराश्चापरम्लेच्छाः क्रूरा

भरतमत्तम यवनश्चीनकाम्बोजा दारुणाम्लेच्छजातय:। सकृद्ग्रहा: कुलत्थाश्च-हूणा: पारसिकै: सह, तथैव रमणाश्चीनास्तथैवदशमालिका:' भीष्म० 9,65-66। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में भी चीन देश का उल्लेख है जिससे मौर्यकालीन भारत और चीन के व्यापारिक संबंधों का पता लगता है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतल 1,32 में चीनांशुक (चीन का रेशमी वस्त्र) का वर्णन बड़े काव्यात्मक प्रसंग में किया है—'गच्छति पुर: शरीरं धावति पश्चादसंस्थितश्चेत: चीनांशुकमिवकेतो: प्रतिवातं नीयमानस्य'। हर्षचरितके प्रथमोच्छ्वास में बाणभट्ट ने शोण के पवित्र और तरंगित बालुकामयतट को चीन के बने रेशमी कपड़े के समान कोमल बताया है।

चीन में बौद्धधर्म का प्रचार चीन के हान-वंश के सम्राट् मिङ्ती के समय में (65 ई०) हुआ था। उसने स्वप्न में सुवर्ण पुरुष बुद्ध को देखा और तदुपरांत अपने दूतों को भारत से बौद्ध सूत्रग्रन्थों और भिक्षुओं को लाने के लिए भेजा। परिणामस्वरूप, भारत से धर्मरक्ष और काश्यपमातंग अनेक धर्मग्रन्थों तथा मूर्तियों को साथ लेकर चीन पहुंचे और वहां उन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की। धर्मग्रन्थ श्वेत अश्व पर रख कर चीन ले जाए गए थे, इसलिए चीन के प्रथम बौद्धविहार को श्वेताश्वविहार की संज्ञा दी गई। भारत-चीन के सांस्कृतिक संबंधों की जो परंपरा इस समय स्थापित की गई उसका पूर्ण विकास आगे चल कर फ़ाह्यान (चौथी शती ई०) और युवानच्वांग (सातवीं शती ई०) के समय में हुआ जब चीन के बौद्धों की सबसे बड़ी आकांक्षा यह रहती थी कि किसी प्रकार भारत जाकर वहां के बौद्ध तीर्थों का दर्शन करें और भारत के प्राचीन ज्ञान और दर्शन का अध्ययन कर अपना जीवन समुन्नत बनाएं। उस काल में चीन के बौद्ध, भारत को अपनी पुण्यभूमि और संसार का महानतम् सांस्कृतिक केंद्र मानते थे।

चीनभुक्ति

प्रसिद्ध चीनी यात्री युवानच्वांग अपनी भारत-यात्रा के समय 633 ई० में इस स्थान पर आया था और यहां चौदह मास के लगभग ठहरा था। यहां से वह जालंधर गया था। नगर के नाम से ज्ञात होता है कि यहां चीनी लोगों की कोई बस्ती उस समय रही होगी। ऐतिहासिक अनुश्रुति से विदित होता है कि कुशान-नरेश कनिष्क के समय (द्वितीय शती ई० का प्रारंभ) इस स्थान पर कुछ समय के लिए चीन से बंधक के रूप में आए हुए दूत रहे थे और इसी कारण इस स्थान का नाम चीनभुक्ति पड़ गया था। कहा जाता है कि इन दूतों के साथ पहली बार चीन से नाशपाती और आड़ू भारत में आए थे।

चीनभुक्ति की ठीक ठीक स्थिति का पता नहीं है किंतु प्राप्त साक्ष्य के आधार पर इस स्थान का पश्चिमी पंजाब या कश्मीर की पहाड़ियों में होना संभव प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह स्थान शायद कुसूर (प० पाकि०) से 27 मील उत्तर में स्थित 'पत्ती' है। इसे पहले चीनपत्ती (चीनभुक्ति का अपभ्रंश?) भी कहते थे।

चुक्ष

तक्षशिला के एक अभिलेख में उल्लिखित स्थान, जिसका अभिज्ञान अटक (प० पाकि०) के उत्तर में स्थित 'चच' से किया गया है।

चुनार (ज़िला मिर्ज़ापुर, उ० प्र०)

बनारस से 39 मील और प्रयाग से 75 मील दूर विंध्याचल की पहाड़ियों में स्थित है। चुनार का प्राचीन नाम चरणाद्रि है। कहते हैं यह नाम वहां की पहाड़ी की मानवचरण के समान आकृति होने के कारण ही पड़ा है (चरण+अद्रि=पहाड़ी)। संभवतः धोनसारव जातक में वर्णित भग्गों की राजधानी संुसुमारगिरि भी इसी पहाड़ी पर बसी हुई थी। चुनार गंगा के किनारे बसा है। जनश्रुति है कि चुनार में गंगा उल्टी बहती है। यहां गंगा में एक घुमाव है; नदी उत्तर-पश्चिम की ओर घूमकर और फिर पूर्व को मुड़कर काशी की ओर बहती है। घुमाव का कारण चुनार की पहाड़ी की स्थिति है। इसी विशेष स्थिति के कारण चुनार को प्राचीनकाल में नदी मार्ग का नाका समझा जाता था। रघुवंश 16, 33 के अनुसार कुशावती से अयोध्या लौटते समय कुश की सेना ने जिस स्थान पर गंगा को पार किया था वहां गंगा प्रतीपगा या पश्चिम-वाहिनी थी—'तीर्थे तदीये गजसेतुबंधात्प्रतीपगामुत्तरतोऽस्यगंगाम्, अयत्नबालव्यजनीबभूवुर्हंसानभोलंघनलोलपक्षाः'। संभवतः यह स्थान चुनार के निकट ही था। कुशावती से अयोध्या जाने वाले मार्ग में चुनार की स्थिति स्वाभाविक ही जान पड़ती है (दे० कुशावती)। कालिदास ने जो इस विशिष्ट स्थान के वर्णन में गंगा की प्रतीप गति बताई है, उससे यह संभव दीखता है कि कवि के ध्यान में चुनार की स्थिति ही रही होगी क्योंकि किसी अन्य स्थान पर गंगा का उल्टी ओर बहना प्रसिद्ध नहीं है। संभव है कि हिंदी के मुहावरे—'उलटी गंगा बहाना' का संबंध भी चुनार में गंगा के उल्टे प्रवाह से हो। चुनार का विख्यात दुर्ग राजा भर्तृहरि के समय का कहा जाता है। इनकी मृत्यु 651 ई० में हुई थी (श्री नं० ला० डे के अनुसार पालराजाओं ने इस दुर्ग का निर्माण करवाया था)। किंवदंती है कि सन्यास लेने के उपरान्त जब भर्तृहरि विक्रमादित्य के मनाने पर भी घर न लौटे तो उनकी रक्षार्थ विक्रमादित्य ने

यह क़िला बनवा दिया था। उस समय यहां घना जंगल था। क़िले का संबंध आल्हा-ऊदल की कथा से भी बताया जाता है। वह स्थान जहां आल्हा की पत्नी सुनवा का महल था अब सुनवा बुर्ज के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पास ही माड़ो नामक स्थान है जहां आल्हा का विवाह हुआ था। चुनार का दुर्ग प्रयाग के दुर्ग की अपेक्षा अधिक दृढ़ तथा विशाल है। क़िले के नीचे सैंकड़ों वर्षों से गंगा की तीक्ष्ण धारा बहती रही है किंतु दुर्ग की भित्तियों को कोई हानि नहीं पहुंच सकी है। इसके दो ओर गंगा बहती है तथा एक ओर गहरी खाई है। दुर्ग, चुनार के प्रसिद्ध बलुआ पत्थर का बना है और भूमितल से काफ़ी ऊंची पहाडी पर स्थित है। मुख्य द्वार लाल पत्थर का है और उस पर सुंदर नक़्क़ाशी है। क़िले का परकोटा प्राय: दो गज़ चौड़ा है। उपर्युक्त माड़ो तथा सुनवा बुर्ज दुर्ग के भीतर अवस्थित हैं। यहीं राजा भर्तृहरि का मंदिर है जहां उन्होंने अपना सन्यासकाल बिताया था। क़िले के निकट ही सवा सौ या डेढ़ सौ फुट गहरी बावड़ी है। क़िले में कई गहरे तहखाने भी हैं जिनमें सुरंगें बनी हैं। 1333 ई० के एक संस्कृत अभिलेख से सूचित होता है कि उस समय यह दुर्ग स्वामीराजा चंदेल के अधिकार में था। चंदेलों के समय में चुनार का नाम चंदेलगढ़ भी था। इसके पश्चात् यहां मुसलमानों का आधिपत्य हो गया। चुनारगढ़ का उल्लेख शेरशाह व हुमायूं की लड़ाइयों के संबंध में भी आता है। इस काल में चुनार को, बिहार तथा बंगाल को जीतने तथा अधिकार में रखने के लिए, पहला बड़ा नाका समझा जाता था। शेरशाह ने हुमायूं को चुनार के पास हराया था जिससे हुमायूं को भारी विपत्ति का सामना करना पड़ा था। 1575 ई० में अकबर ने चुनार को जीता और तत्पश्चात् मुगल-साम्राज्य के अंतिम दिनों तक यह मुग़लों के अधिकार में रहा। 18वीं शती के द्वितीय चरण में अवध के नवाबों ने चुनार को अवध-राज्य में सम्मिलित कर लिया किंतु तत्पश्चात् 1772 ई० में ईस्टइंडिया कम्पनी का यहां प्रभुत्व स्थापित हुआ। बनारस के राजा चेतसिंह को जब वारेनहेस्टिंग्ज़ का कोपभाजन बनने के कारण काशी को छोड़ना पड़ा तो काशी की प्रजा की क्रोधाग्नि भड़क उठी और हेस्टिंग्ज़ को काशी (जहां वह चेतसिंह को गिरफ्तार करने आया था) छोड़ कर भागना पड़ा। उसने इस अवसर पर चुनार के क़िले में शरण ली थी।

चुनार में कई प्रसिद्ध प्राचीन स्मारक हैं। कामाक्षा मंदिर ऊंची पहाड़ी पर है। मंदिर के नीचे दुर्गाकुंड और एक अन्य प्राचीन मंदिर है। दुर्गाकुंड और दुर्गाखोह के आसपास अनेक पुराने मंदिरों के भग्नावशेष पड़े हुए हैं और गुप्तकाल से लेकर 18वीं शती के अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। यहां की

प्रसिद्ध मसजिद मुअज्ज़िन नामक है जिसमें मुग़लसम्राट् फरुख़सियर के समय में मक्का से लाए हुए हसन-हुसैन के पहने हुए वस्त्र सुरक्षित हैं।

चुर्ली (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

सातवीं शती ई० से नवीं शती ई० तक की इमारतों के ध्वंसावशेष, जिनमें से अधिकांश मंदिर या देवालय हैं, इस स्थान पर मिले हैं।

चूर्णी

कौटिल्य-अर्थशास्त्र (शामशास्त्री पृ० 75) में उल्लिखित नदी, जिसके तट पर वंजि नामक नगर (कोचीन के सन्निकट) बसा हुआ था। यहां केरल की प्राचीन राजधानी थी। नदी के मुहाने पर क्रंगनूर या रोमन लेखकों का 'मुज़ीरिस' बसा हुआ था जिसका प्राचीन नाम मरिचीपत्तन था। चूर्णी नदी का अभिज्ञान केरल की परियार नदी से किया गया है। (रायचौधरी—पृ० 273)।

चूलनागपर्वत (लंका)

हुवाचकण्णिका में स्थित बौद्धविहार। (दे० महावंश 34, 90)

चेज़रला=चज़रला

चेट्टीकुलंगराई (केरल)

मावेलिक्कार के निकट एक प्राचीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। इस मंदिर और उसके वार्षिक महोत्सव के विधिविधान में चीनी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है जिसका कारण प्राचीनकाल में इस स्थान का चीन से व्यापारिक संबंध जान पड़ता है।

चेति=चेदि

चेदि को पाली साहित्य में चेति कहा गया है।

चेदि

प्राचीनकाल में बुंदेलखंड तथा पार्श्ववर्ती प्रदेश का नाम। ऋग्वेद में चेदि-नरेश कशुचैद्य का उल्लेख है—'तामे अश्विना सनिनां विद्यातं नवानाम्। यथा चिज्जेद्य: कशु: शतमुष्ट्रानांददत्सहस्रा दशगोनाम्। यो मे हिरण्य सन्दृशो दशराज्ञो अमंहत। अहस्पदाइच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जना:। माकिरेना पथागाद्येनेमे यन्ति चेदय:। अन्योनेत्सूरिरोहिते भूरिदावत्तरोजन:'—ऋग्वेद 8,5, 37-39। रैपसन के अनुसार कशु या कसु महाभारत आदि० 63,2 में वर्णित चेदिराज वसु है—'स चेदिविषयं रम्यं वसु: पौरवनन्दन: इन्द्रोपदेशाज्जग्राह रमणीयं महीपति:'—अर्थात् इन्द्र के कहने से उपरिचर राजा वसु ने रमणीय चेदि देश का राज्य स्वीकार किया। महाभारत विराट० 1,12 में चेदि देश की

अन्य कई देशों के साथ, कुरु के परिवर्ती देशों में गणना की गई है—'सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरुन्, पांचालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः'। कर्णपर्व 45,14-16 में चेदिदेश के निवासियों की प्रशंसा की गई है—'कौरवाः सहपांचालाः शाल्वाः मत्स्याः सनैमिषाः चैद्यश्च महाभागा धर्मं जानन्ति-शाश्वतम्'। महाभारत के समय (सभा० 29,11-12) कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी शिशुपाल चेदि का शासक था। इसकी राजधानी शुक्तिमती बताई गई है। चेतिय जातक (कावेल सं 422) में चेदि की राजधानी सोत्थीवतीनगर कही गई है जो श्री नं० ला० डे के मत में शुक्तिमती ही है (दे० ज्याग्रेफ़िकल डिक्शनरी पृ० 7)। इस जातक में चेदिनरेश उपचर के पांच पुत्रों द्वारा हत्थिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तर पांचाल और दद्दरपुर नामक नगरों के बसाए जाने का उल्लेख है। महाभारत आश्वमेधिक० 83,2 में शुक्तिमती को शुक्तिसाह्वय भी कहा गया है। अंगुत्तरनिकाय में सहजाति नामक नगर की स्थिति चेदि प्रदेश में मानी गई है—'आयस्मा महाचुंडो चेतिसुविहरति सहजातियम्' 3,355। सहजाति इलाहाबाद से दस मील पर स्थित भीटा है। चेतियजातक मे चेदि-नरेश की नामावली है जिनमें से अंतिम उपचर या अपचर, महाभारत आदि० 63 में वर्णित वसु जान पड़ता है। वेदब्भ जातक (सं० 48) में चेति या चेदि से काशी जाने वाली सड़क पर दस्युओं का उल्लेख है। विष्णुपुराण 4,14,50 मे चेदिराज शिशुपाल का उल्लेख है—'पुनश्चेदिराजस्य दमघोपस्यात्मज-श्शिशुपालनामाभवत्'। मिलिंदपन्हो (राइसडेवीज–पृ० 287) में चेति या चेदि का चेतनरेशों से संबंध सूचित होता है। शायद कलिंगराज खारवेल इसी वंश का राजा था। मध्ययुग में चेदि प्रदेश की दक्षिणी सीमा अधिक विस्तृत होकर मेकलसुता या नर्मदा तक जा पहुँची थी जैसा कि कर्पूरमंजरी (स्टेनकोनो पृ० 182) से सूचित होता है—'नदीनां मेकलसुतान्नृपाणां रणविग्रहः, कवीनांच सुरानंदश्चेदिमंडलमंडनम्' —अर्थात् नदियों में नर्मदा, राजाओं में रणविग्रह और कवियों में सुरानन्द चेदिमंडल के भूषण हैं।

चेन्नापटम्

प्राचीन समय में मद्रास नगर के स्थान पर बसा हुआ ग्राम। 1639 ई० में अंग्रेज व्यापारी फ्रांसिस डे ने चेन्नापटम् के हिंदू राजा से इस स्थान का दानपत्र प्राप्त किया और 1640 में फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज नामक क़िले की स्थापना की। यह ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारत में पहला क़िला था। 1653 ई० में फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज में एक प्रेसीडेंसी स्थापित की गई। आगामी वर्षों में इसी केंद्र के चारों ओर मद्रास नगर का विकास हुआ।

चेर=**केरल**

चेरान (बिहार)

उत्तरपूर्व रेल के गोल्डनगंज स्टेशन से प्रायः एक मील पर घाघरा-गंगा के संगम पर बसा हुआ बौद्धकालीन स्थान है। इसकी नींव चेरस नामक राजा ने डाली थी। युवानच्वांग के अनुसार इस स्थान पर सत्यप्रकृति नामक ब्राह्मण ने एक घड़े पर कुंभ-स्तूप बनवाया था। इसके स्थान पर एक ऊंचा ढूह आज भी देखा जा सकता है। ढूह के ऊपर हुसैनशाह के नाम से प्रसिद्ध एक मसजिद है। कालिदास ने सरयू-जाह्नवी (घाघरा-गंगा) के संगमस्थल को तीर्थ बताया है। यहां दशरथ के पिता अज ने वृद्धावस्था में प्राणत्याग किए थे। (दे० **सरयू**)

चैत्यक

महाभारत के अनुसार एक पहाड़ी, जो गिरिव्रज (=राजगृह, बिहार) के निकट है। जरासंध के वध के लिए गिरिव्रज आए हुए श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन ने पहले इसी पर आक्रमण करके इसके शिखर को गिरा दिया था—'वैहारो विपुलः शैलो वराहो वृषभस्तथा, तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यक-पंचमाः। भङ्क्त्वा भेरीत्रयंतेऽपिचैत्य-प्राकारमाद्रवन्, द्वारतोभिमुखाः सर्वे ययुर्नानाऽऽयुधास्तदा। मागधानां सुरुचिरंचैत्यकं तं समाद्रवन् शिरसीव समाघ्नन्तो जरासंधं जिघांसवः स्थिरं सुविपुलं शृंगं सुमहत् तत् पुरातनम्, अर्चितं गंधमाल्यैश्च सततं सुप्रतिष्ठितम्, विपुलैर्बाहुभि र्वीरास्तेऽभिहत्याभ्यपातयन्, ततस्ते मागधं हृष्टाः पुरं प्रविविशुस्तदा'—सभा० 21,2-18-19-20-21। सभा० 21 दाक्षिणात्य पाठ में भी इसका उल्लेख है (दे० **राजगृह**)। इसका वर्तमान नाम छत्ता है जो चैत्य का ही अपभ्रष्ट रूप है।

चैत्यपर्वत (लंका)

महावंश 16,17 में उल्लिखित है। इसका अभिज्ञान मिहिन्ताल-पर्वत से किया गया है।

चैत्ररथवन

(1) वाल्मीकि रामायण अयो० 71,4 में वर्णित एक वन—'सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम्, अभ्यगात् स महाशैलान् वनं चैत्ररथं प्रति' अर्थात् केकय से अयोध्या आते समय सत्यसंध भरत पवित्र होकर शिलावह नदी को देखते हुए ऊंचे पर्वतों को पार करके चैत्ररथ वन की ओर चले। प्रसंग से जान पड़ता है कि यह वन सरस्वती नदी के पश्चिम में, सम्भवतः पंजाब के पहाड़ी प्रदेश में स्थित होगा। इसके आगे सरस्वती का वर्णन है।

(2) द्वारका (काठियावाड़) के उत्तर में स्थित वेणुमान् पर्वत के चतुर्दिक् चार महावनों या उद्यानों में से एक—'भाति चैत्ररथं चैव नन्दनं च महावनं, रमणं भावनं चैव वेणुमन्तं समन्ततः'। महा० सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ।

(3) पुराणों के अनुसार धनाधिप कुबेर का उद्यान, जो अलका के निकट मेरुपर्वत के मंदार नामक शिखर पर स्थित था—'अलकायां चैत्ररथादिवनेष्व-मलपद्मखंडेषु—' विष्णु० 4,4,1। वाल्मीकि रामायण युद्ध० 125,28 में नंदिग्राम के वृक्षों को चैत्ररथ वन के वृक्षों के समान ही कुसुमित बताया गया है—'आससादद्रुमान् फुल्लान् नंदिग्रामसमीपगान् सुराधिपस्योपवने तथा चैत्ररथे द्रुमान्'। कालिदास ने रघुवंश 5,60 में शाप से विमुक्त हुए गंधर्व का चैत्ररथ के प्रदेश की ओर जाना कहा है—'एवं तयोरध्वनि दैवयोगादासेदुषोः सख्यमचिन्त्य हेतु एकोययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्'। रघु० 6,50 में इंदुमती स्वयंवर के प्रसंग में शूरसेनाधिप सुषेग के राज्य में स्थित वृंदावन (मथुरा के निकट) को चैत्ररथ के समान बताया गया है—'संभाव्य भर्तारममुं युवानं मृदु-प्रवालोत्तर पुष्पशय्ये वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुंदरियौवन श्रीः'। अमर-कोश 1,70 में चैत्ररथ को कुबेर का उद्यान कहा गया है—'अस्योद्यानं चैत्ररथम् पुत्रस्तु नलकूबरः, कैलासः स्थानमलका पूर्विमानंतु पुष्करम्'।

चोड़ानगर=चतुर्भुजपुर

चोल

(1) सुदूर दक्षिण का प्रदेश—कोरोमंडल या चोलमंडल। महा० सभा० 31,71 में चोल या चोड़ प्रदेश का उल्लेख है। इसे सहदेव ने दक्षिण की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में जीता था—'पांड्यांश्च द्रविड़ांश्चैव सहितांश्चोड केरलैः'। चोड का पाठांतर चोड्र भी है। वन० 51,22 में चोलों का द्रविणों और आंध्रों के साथ उल्लेख है—'सवंगांगान् स पौंड्रोड्रान् सचोलद्रा-विडान्ध्रकान्'। सभा० 51 में केरल और चोल नरेशों द्वारा युधिष्ठिर को दी गई भेंट का उल्लेख है—'चंदनागरुचानन्तं मुक्तावैदूर्य चित्रकाः, चोलश्च केरलश्चोभौ ददतुः पांडवायवै'। अशोक के शिलाभिलेख 13 में चोल का प्रत्यंत (पड़ोसी) देश के रूप में वर्णन है। प्राचीन समय में यहां की मुख्य नदी कावेरी थी। चोल प्रदेश की राजधानी उरगपुर या वर्तमान त्रिशिरापल्ली, (त्रिचिना-पल्ली, मद्रास) में थी। इसे उरयियूर भी कहते थे। किंतु कालिदास ने (रघु० 6,59) 'उरगाख्यपुर' को पांड्य देश की राजधानी बताया है। अवश्य ही यह भेद इतिहास के विभिन्न कालों में इन दोनों पड़ोसी देशों की सीमाएं बदलती रहने के कारण हुआ होगा। चोल नरेशों ने प्राचीन काल और मध्यकाल में

शासन की जनसत्तात्मक पद्धति स्थापित की थी जिसमें ग्रामपंचायतों और ग्राम-समितियों का बहुत महत्त्व था। यह सूचना हमें चोल-नरेशों के अनेक अभिलेखों से मिलती है।

(2) वर्तमान चोलिस्तान, जिसकी स्थिति वंक्षु (ऑक्सस) नदी के दक्षिण और वाल्हीक के पूर्व में थी। महाभारत सभा० 27,21 में इस प्रदेश पर अर्जुन की विजय का उल्लेख है—'ततः सुह्मांश्च चोलांश्च किरीटी पांडवर्षभः सहितः सर्वसैन्येन प्रामथत् कुरुनन्दनः'।

चोलवाड़ी (आं० प्र०)

चोल प्रदेश का एक भाग। प्राचीन समय में,इस भूभाग के उत्तर में मूसी (हैदराबाद के निकट बहने वाली नदी) और दक्षिण में कृष्णा, इसकी स्वाभाविक सीमाएँ बनाती थीं। यह भाग पानगल (वर्तमान महबूबनगर) और नालगोंडा ज़िलों से मिलकर बनता था। चोलों का उत्कर्षकाल 480 ई० से आरंभ होता है। वारंगल-राज्य की अवनति होने पर 14वीं शती में बहमनी सुलतानों का यहाँ आधिपत्य हुआ। बहमनी राज्य की अवनति के पश्चात् महबूबनगर ज़िले का एक भाग कुतुबशाही और दूसरा बीजापुर के सुलतानों ने अपने राज्य में मिला लिया। 1686 ई० के पश्चात् यहाँ औरंगज़ेब का प्रभुत्व स्थापित हुआ और तत्पश्चात् यह प्रदेश 18वीं शती में निज़ाम-हैदराबाद के राज्य में मिला लिया गया।

चोलिस्तान [दे० **चोल** (२)]

चौंधे (ज़िला बीड़, महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र की प्रसिद्ध रानी अहल्याबाई होल्कर का जन्मस्थान। इनके पिता मनकोजी सिंधिया इस ग्राम के पटेल थे ।

चौकड़ी (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

इस स्थान पर 1516 ई० के लगभग प्रसिद्ध भक्त कवियित्री मीराबाई का जन्म हुआ था। इनके पिता मेड़ता के राजा रतनसिंह थे। मीरा का विवाह उदयपुर के राणासांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुमार भोजराज के साथ हुआ था।

चौकीगढ़ (ज़िला भूपाल, म० प्र०)

गढ़मंडलानरेश संग्रामसिंह (मृत्यु० 1541 ई०) के 52 गढ़ों में से एक। रानी दुर्गावती इनकी पुत्रवधू थी।

चौपाला

मुरादाबाद (उ० प्र०) का पुराना नाम। पुरानी बस्ती चार भागों में बंटी हुई थी जिसके कारण इसे चौपाला कहते थे। मुगल सूबेदार रुस्तम खां ने

शाहजहां के पुत्र मुरादबख्श के नाम पर चौपाला का नाम बदलकर मुरादाबाद कर दिया था।

चौमुंडी

मैसूर के निकट प्रसिद्ध पहाड़ी, जहाँ चौमुंडेश्वरी देवी का मंदिर है। कहा जाता है कि देवी ने महिषासुर का वध इसी स्थान पर किया था जिससे इसका नाम महिषासुर हुआ जो बाद में मैसूर बन गया।

चौराई (ज़िला छिन्दवाड़ा, म० प्र०)

गढ़मंडला नरेश संग्रामसिंह के बावन गढ़ों में इसकी गणना थी। संग्रामसिंह गढ़मंडला की वीर रानी दुर्गावती के श्वसुर थे। इनकी मृत्यु 1541 ई० में हुई।

चौरागढ़ (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

गढ़मंडले की प्रसिद्ध रानी दुर्गावती के शासनकाल में यह राज्य का प्रधान नगर था। राज्य का कोष यहीं रहता था। चौरागढ़ का क़िला दुर्गावती के श्वसुर संग्रामसिंह का बनवाया हुआ था। संग्रामपुर की लड़ाई के पश्चात् जिसमें दुर्गावती ने वीरगति प्राप्त की, अकबर के सेनापति आसफ़खां ने चौरागढ़ को घेर लिया। इस युद्ध में दुर्गावती का पुत्र वीरनारायण मारा गया और गढ़ की रानियां सती हो गयीं। आसफ़खां को चौरागढ़ की लूट में अनन्त धनराशि प्राप्त हुई।

चौरासीखंभा (दे० **कामवन**)

चौसा (बिहार)

बकसर के निकट कर्मनाशा नदी के किनारे छोटा सा क़स्बा है। 1538 ई० में इस स्थान पर मुग़ल सम्राट् हुमायूं को शेरशाह सूरी ने बुरी तरह से हराया था और उसे अपनी जान बचाकर पश्चिम की ओर भागना पड़ा था। हुमायूं और शेरशाह के बीच भारत के राज्य के लिए होने वाले संघर्ष में चौसा के युद्ध को बहुत महत्त्व प्राप्त है। किंवदंती है कि चौसा का प्राचीन नाम च्यवनाश्रम था।

च्यवनाश्रम

(1) महाभारत वन० 121-122 में वर्णित च्यवन ऋषि और सुकन्या की कथा में च्यवन के आश्रम की स्थिति नर्मदा नदी पर बताई गई है। इसका उल्लेख वैदूर्यपर्वत (वन० 121,19) के पश्चात् है। वैदूर्यपर्वत संभवतः नर्मदा के तटवर्ती संगमर्मर के पहाड़ों को कहा गया है जिनके निकट वर्तमान भेड़ाघाट नामक स्थान (ज़िला जबलपुर, म० प्र० से 13 मील) है। जनश्रुति के अनुसार

भेड़ाघाट में भृगु का स्थान था और यहाँ इनका मंदिर भी है। महाभारत के अनुसार च्यवन भृगु के ही पुत्र थे—'भृगोर्महर्षेः पुत्रोऽभूच्च्यवनो नाम भारत, समीपे सरसस्तस्य तपस्तेपे महाद्युतिः' वन० 121,1. इस प्रकार महाभारत के इस प्रसंग में वर्णित च्यवन के आश्रम की भेड़ाघाट में स्थिति प्रायः निश्चित समझी जा सकती है। च्यवनाश्रम का उल्लेख वन० 89,12 में भी है, 'आश्रमः कक्षसेनस्य पुण्यस्तत्र युधिष्ठिर, च्यवनस्याश्रम श्चैव विख्यातस्तत्र पांडव'।

(2) दे० देवकुंड

(3) चौसा (बिहार)

छंद्रोपल्लिक

गुप्तकाल में कारीतलाई (ज़िला जबलपुर, म० प्र०) के निकट एक ग्राम। छठी शती ई० में महाराज जयनाथ द्वारा उच्छकल्प से जारी किए गए एक ताम्रदानपट्ट में इस ग्राम को कुछ ब्राह्मणों के लिए दिए जाने का उल्लेख है।

छड़गांव (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

इस स्थान से एक विशाल नाग प्रतिमा प्राप्त हुई थी जो अब मथुरा-संग्रालहय में है। यह लगभग आठ फुट ऊंची है। इस पर अंकित एक अभिलेख से सूचित होता है कि महाराजाधिराज हुविष्क के समय में कनिष्क संवत् के चालीसवें वर्ष (118 ई०) में सेनहस्ती तथा उसके मित्र ने इस मूर्ति की प्रतिष्ठापना की थी। इस मूर्ति में नाग की कुंडलियां बड़े वास्तविक रूप में प्रदर्शित हैं। अभिलेख से विदित होता है कि ई० सन् के प्रारंभिक काल में नागपूजा देश के इस भाग में विशेष रूप से प्रचलित थी।

छतरपुर (बुंदेलखंड, म० प्र०)

बुंदेलखंड की भूतपूर्व रियासत तथा उसका मुख्य नगर। यह नगर बुंदेला-नरेश छत्रसाल का बसाया हुआ है। कहा जाता है कि बाबा लालदास नामक एक संत के कहने से छत्रसाल ने यह नगर बसाया था। 18वीं शती के अंत में कुँवर सोनेशाह पंवार ने छतरपुर की रियासत स्थापित की थी।

छत्तीसगढ़

रायपुर-बिलासपुर (म० प्र०) ज़िलों तथा परिवर्ती क्षेत्र में सम्मिलित इलाका। यह प्राचीन दक्षिण कोसल या महाकोसल है। यहाँ की बोली उत्तरप्रदेश की अवधी (प्राचीन उत्तरकोसल के क्षेत्र की भाषा) से मिलती-जुलती है। उत्तर और दक्षिण कोसल में नामों की समानता के अतिरिक्त सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी सदा से रहा है। यह संभव है कि उत्तरकोसल के जनसमूह प्राचीन और मध्य-काल में दक्षिणकोसल में जाकर बस गए हों।

छत्थागिरि

राजगृह (बिहार) के सात पर्वतों में से एक, जो संभवतः महाभारत में वर्णित चैत्यक है।

छत्रवती = अहिच्छत्र

महाभारत में अहिच्छत्र के विविध नामों में से एक—'पार्षतो द्रुपदोनामच्छत्रवत्यां नरेश्वरः' महा० आदि० 165,21। (दे० **पंचाल, अहिच्छत्र**)

छाता (ज़िला मथुरा)

यहाँ संभवतः शेरशाह के समय में बनी एक सराय है जो दुर्ग जैसी मालूम होती है।

छायापुर (राजस्थान)

चौहान राजाओं के बनवाए हुए प्राचीन दुर्ग के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

छिमाल

प्राचीन अभिसारी-राज्य का प्रदेश, जिसमें चिनाब नदी के पश्चिम में स्थित पूंछ, राजौरी और भिंभर का क्षेत्र सम्मिलित है।

छोटा नागपुर (बिहार)

इस प्रदेश का नाम, किंवदंती के अनुसार, छोटानाग नामक नागवंशी राजकुमार-सेनापति के नाम पर पड़ा है। छोटानाग ने, जो तत्कालीन नाग-राजा का छोटा भाई था, मुग़लों की सेना को हराकर अपने राज्य की रक्षा की थी। 'सरहूल' की लोककथा छोटानाग से ही संबंधित है। इस नाम की आदिवासी लड़की ने अपने प्राण देकर छोटानाग की जान बचाई थी। सरजॉन फ़ाउल्टन का मत है कि छोटा या छुटिया रांची के निकट एक गांव का नाम है जहां आज भी नागवंशी सरदारों के दुर्ग के खंडहर हैं। इनके इलाके का नाम नागपुर था और छुटिया या छोटा इसका मुख्य स्थान था। इसीलिए इस क्षेत्र को छोटा नागपुर कहा जाने लगा। (दे० सरजॉन फ़ाउल्टन—बिहार दि हार्ट ऑव इंडिया पृ० 127) छोटा नागपुर के पठार में हज़ारीबाग़, रांची, पालामऊ, मानभूम और सिंहभूम के ज़िले सम्मिलित हैं।

छोटी गंडक (दे० **हिरण्यवती**)

जंकम पेट (ज़िला निज़ामाबाद, आं० प्र०)

प्राचीन कलापूर्ण शैली में निर्मित एक मंदिर यहां का मुख्य स्मारक है। इसमें केन्द्रीय मंडप, अग्रवेश्म, देवालय और स्तंभों सहित एक अन्य मंडप है जिसे धर्मशाला कहते हैं।

जंजीरा (महाराष्ट्र)

यह द्वीप कोंकण के तट पर शिवाजी की राजधानी रायगढ़ से पश्चिम की ओर बीस मील पर स्थित है। शिवाजी के समय यहां अधिकतर अबीसीनिया के हब्शी लोग रहते थे जिन्हें सीदी कहते थे। जंजीरा का सूबेदार फ़तहखां था जो बीजापुर रियासत की ओर से नियुक्त था। शिवाजी ने इस द्वीप पर 1659 ई० तथा उसके पश्चात् कई बार आक्रमण किए थे किंतु विशेष सफलता नहीं मिली थी। 1670 ई० में उन्होंने इस पर फिर चढ़ाई की। फ़तहखां ने तंग होकर शिवाजी से संधि कर ली। यह देखकर हब्शियों ने उसे मार डाला और मुग़लों से शिवाजी के विरुद्ध सहायता मांगी। मुगल-सेनाओं के आने के कारण शिवाजी उधर से हटकर सूरत की ओर चले गए और उन्होंने दुबारा सूरत को लूटा। जंज़ीरा फारसी शब्द जज़ीरा (द्वीप) का रूपांतर है।

जंबुला

बुंदेलखंड की जामनेर नदी। बेतवा और जामनेर के संगम के क्षेत्र का प्राचीन नाम तुंगारण्य था।

जंबू-अरण्य (जिला कोटा, राजस्थान)

चंबल नदी के तट पर कोटा से लगभग 5 मील दूर वर्तमान केशवराय पाटण ही प्राचीन जंबू-अरण्य है। किंवदंती है कि अज्ञातवास के समय विराट नगर जाते समय पांडव कुछ दिनों तक यहाँ ठहरे थे। वर्तमान केशवराय का मंदिर कोटा-नरेश शत्रुशल्य ने बनवाया था। यह भी लोकश्रुति है कि आदि-मंदिर राजा रंतिदेव का बनवाया हुआ था। महाभारत तथा विष्णुपुराण में वर्णित जंबूमार्ग (या जंबुमार्ग) यही हो सकता है (दे० **जंबूमार्ग**)

जंबूकोल (लंका)

महावंश 11,23 में उल्लिखित है। लंकानरेश देवानांप्रिय तिष्य ने भारत के सम्राट् अशोक के पास अपने भागिनेय महारिष्ठ, पुरोहित, मंत्री और गणक इन चार जनों को दूत बनाकर बहुमूल्य रत्न, तीन जाति की मणियां, आठ जाति के मोती तथा अन्य वस्तुओं के साथ भेजा था। ये लोग जंबूकोल से नाव पर चढ़कर सात दिन में ताम्रलिप्ति पहुंचे और वहां से एक सप्ताह में पाटलिपुत्र। जंबूकोल, लंका के उत्तरी समुद्रतट पर संबलतुरि नामक बंदरगाह है। महावंश 19,60 के अनुसार बोधिद्रुम की एक शाखा का अंकुर जिसे संघमित्रा लंका ले गई थी, जंबूकोल में आरोपित किया गया था।

जंबुद्वीप

पौराणिक भूगोल के अनुसार भूलोक के सप्त महाद्वीपों में से एक। यह पृथ्वी के केन्द्र में स्थित है। इसके इलावृत, भद्राश्व, किंपुरुष, भारत, हरि, केतुमाल, रम्यक, कुरु और हिरण्यमय—ये नवखंड हैं। इनमें भारतवर्ष ही मृत्युलोक है, शेष देवलोक हैं। इसके चतुर्दिक् लवण सागर है। जंबूद्वीप का नामकरण यहां स्थित जंबू-वृक्ष (जामुन) के कारण हुआ है। जंबूद्वीप से क्रमानुसार बड़े द्वीपों के नाम ये हैं—प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। पौराणिक भूगोल के आधार पर यह कहना उपयुक्त होगा कि जंबूद्वीप में वर्तमान एशिया का अधिकांश भाग सम्मिलित था—दे० विष्णुपुराण अंश 2, अध्याय 2—'जंबूद्वीप: समस्तानामेतेषां मध्य संस्थित:, भारतं प्रथमं वर्षं तत: किंपुरुषं स्मृतम्, हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज। रम्यकं चोत्तरं वर्ष तस्यैवानुहिरण्मयम् उत्तरा: कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा। नव साहस्त्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम इलावृत्तं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रित:। भद्राश्वं पूर्वतो मेरो: केतुमालं च पश्चिमे। एकादश शतायामा: पादपागिरिकेतव: जंबूद्वीपस्य साजंबूर्नाम हेतुर्महामुने'।

जैन ग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में जंबूद्वीप के सात वर्ष कहे गए हैं। हिमालय को महाहिमवंत और चुल्लहिमवंत दो भागों में विभाजित माना गया है और भारतवर्ष में चक्रवर्ती सम्राट् का राज्य बताया गया है। पुराणों में जंबूद्वीप के छ: वर्ष-पर्वत बताए गए हैं—हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत और शृंगवान्।

जंबूप्रस्थ

'तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थं समागतम्' वाल्मीकि रामा० अयो० 71,11। इस स्थान को भरत ने केकय से अयोध्या आते समय गंगा के पूर्व की ओर पार किया था। तोरण नामक ग्राम भी इसी के निकट था।

जंबूमार्ग

महाभारत वनपर्व के अंतर्गत पश्चिम दिशा के जिन तीर्थों का वर्णन पांडवों के पुरोहित धौम्य ने किया है उनमें जंबूमार्ग भी है—'जंबूमार्गो महाराज ऋषीणां भावितात्मनाम्। आश्रम: शाम्यतां श्रेष्ठ मृगद्विज निषेवित:'—वन० 89,13-14। श्री वा० श० अग्रवाल के मत में, जंबूमार्ग आबूपर्वत पर स्थित था किंतु इसका जंबूअरण्य से अभिज्ञान अधिक समीचीन जान पड़ता है। विष्णु० में भी जंबूमार्ग का उल्लेख है—'ततश्च तत्कालकृतां भावनां प्राप्य तादृशींजंबूमार्गे महारण्ये जातो जातिस्मरो मृग:' अर्थात् राजा भरत, मृत्यु-समय की दृढ़भावना के कारण जंबूमार्ग के घोरवन में अपने पूर्वजन्म की

स्मृति से युक्त एक मृग हुए। यह तथ्य द्रष्टव्य है कि विष्णुपुराण और महाभारत दोनों में ही जंबूमार्ग में मृगों का निवास बताया गया है। विष्णुपुराण में जंबूमार्ग को स्पष्ट रूप से महारण्य कहा है। इससे भी इस स्थान का जंबू अरण्य से अभिज्ञान उपयुक्त जान पड़ता है।

जगतग्राम (दे० देहरादून)

जगतसुख = मनास्त

जगतियाल (जिला करीमनगर, आं० प्र०)

1747 ई० में जगतियाल के दुर्ग का निर्माण फ्रांसीसी शिल्पियों ने जफ़रुद्दौला के लिए किया था। इसी समय की एक मसजिद भी यहां है। जगतियाल भूतपूर्व हैदराबाद रियासत में सम्मिलित था।

जगद्दल (ज़िला राजशाही पू० पाकि०)

जगद्दल के बौद्ध महाविद्यालय की स्थापना पालवंश के बौद्धनरेश रामपाल द्वारा 11वीं शती के उत्तरार्ध में की गई थी। यह विद्यालय तंत्रयान का गढ़ था और तांत्रिक बौद्धों का केंद्र। भिक्षु दानशील, विभूतिचन्द्र, शुभाकर गुप्त आदि यहां के प्रसिद्ध तांत्रिक विद्वान् थे।

जगन्नाथपुरी (उड़ीसा)

पूर्वी भारत का प्रसिद्ध तीर्थ। कहा जाता है कि पुरी में पहले एक प्राचीन बौद्ध मंदिर था। हिंदूधर्म के पुनरुत्कर्षकाल में इस मंदिर को श्रीकृष्ण के मंदिर के रूप में बनाया गया। मंदिर की मुख्य मूर्तियां शायद तीसरी शती ई० की हैं। ययातिकेसरी ने 9वीं शती ई० में पुराने मदिर का जीर्णोद्धार करवाया ओर तत्पश्चात् चौड़ गंगदेव ने 12वीं शती ई० में इसका पुनः नवीकरण किया। इस मंदिर का आदि निर्माता कौन था, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। 12वीं शती में मंदिर का अंतिम जीर्णोद्धार गंगवंशीय राजा अनंग भीमदेव ने करवाया था। इसी रूप में यह मंदिर आज स्थित है। इस मंदिर पर मध्यकाल में मुसलमानों ने कई बार आक्रमण किए थे। कालापहाड़ नामक मुसलमान सरदार ने जो पहले हिंदू था—इस मंदिर को बुरी तरह नष्टभ्रष्ट किया था। मंदिर का पुर्नर्निर्माण कई बार हुआ जान पड़ता है। 15वीं शती में चैतन्य महाप्रभु ने इस मंदिर की यात्रा की थी। तीन सौ वर्ष पूर्व मराठों ने (भौंसला नरेश ने) भोग मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। यह मंदिर दाक्षिणात्य शैली में निर्मित है। जान पड़ता है कि पुरी की महाभारत या पूर्वपौराणिक काल तक तीर्थरूप में मान्यता नहीं थी। चीनी यात्री युवानच्वांग ने संभवतः पुरी को ही चारित्रवन नाम से अभिहित

किया है। शाक्तों के अनुसार जगन्नाथपुरी के क्षेत्र का नाम उड्डियानपीठ है। इसे शंखक्षेत्र भी कहा जाता था। दक्षिण के प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानुज ने पुरी की यात्रा 1122 ई० और 1137 ई० में की थी। उनकी यात्रा के पश्चात् यह मंदिर उड़ीसा में हिंदूधर्म का प्रबल एवं प्रमुख केंद्र बन गया था।

जगमनपुर (बुंदेलखंड)

सेंगर राजपूतों की राजधानी। इनकी उत्पत्ति दशरथ की कन्या शांता व शृंगीऋषि से मानी जाती है। 1134 ई० में जगमनपुर के राजा वत्सराज सेंगर थे। इसी वर्ष का इनका एक दानपत्र बनारस से प्राप्त हुआ है। इस वंश के राजा कर्ण ने यमुनातट पर कर्णावती नामक ग्राम बसाया था जो बाद में कनार कहलाया। पहले इस वंश के राजा कनार में ही रहते थे। कनार में प्राचीन क़िले के ध्वंसावशेष अभी तक हैं। इसके दर्शन करने के लिए जगमनपुर के राजा दशहरे के दिन आते थे। (दे० मध्ययुगीन भारत भाग 3, पृ० 443)

जगय्यापेट (आं० प्र०)

इस स्थान से प्रथम तथा द्वितीय शती ई० के पुरातत्त्व संबंधी मूल्यवान् अवशेष प्राप्त हुए हैं।

जग्धेरी

राजगृह (बिहार) के निकट एक नगर, जिसका उल्लेख संभवत: इलीसजातक (कॉवेल, सं० 78) में है।

जटातीर्थ

रामेश्वरम् (मद्रास) के निकट जटातीर्थ नामक कुंड है। कहा जाता है कि लंका के युद्ध के पश्चात् रामचन्द्रजी ने अपने केशों का प्रक्षालन इसी स्थान पर किया था। यहां जटाशंकर शिव का भी मंदिर है। यहां से 1 मील दक्षिण की ओर जंगल में काली का अतिप्राचीन मंदिर है।

जटापुर

मुरचीपत्तन (केरल) के निकट स्थित है। इसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण किष्किंधाकांड 42,13 में इस प्रकार है—'वेलातलनिविष्टेपु पर्वतेषु वनेषु च मुरचीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम्'। संभव है इसका संबंध जटा-तीर्थ से हो।

जटायु क्षेत्र (ज़िला नासिक, महाराष्ट्र)

नासिक रोड से 26 मील और घोटी स्टेशन से 10 मील दूर वह स्थान है जहां किंवदंती के अनुसार श्रीराम ने रावण द्वारा आहत गृध्रराज जटायु

का अंतिम संस्कार किया था। वाल्मीकि रामा० अरण्य० 68,35 के अनुसार यह स्थान गोदावरी नदी के तट पर स्थित था—'ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ'।

जटिंगा रामेश्वर (ज़िला चीतलदुर्ग, मैसूर)

अशोक की अमुख्य धर्मलिपि (1) यहां एक चट्टान पर उत्कीर्ण पाई गई है।

जटोदा

ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी (कालिकापुराण, 77)

जठर

'मेरोरनन्तरांगेषु जठरादिष्ववस्थिताः शंखकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः कालंजाद्याश्च तथा उत्तरकेसराचलाः' विष्णु० 2,2,29—अर्थात् मेरु के अति समीप और जठर आदि देशों में स्थित शंखकूट, ऋषभ, हंस, नाग और कलंज आदि पर्वत उत्तर दिशा के केसराचल हैं। यदि मेरु या सुमेरु को उत्तरी ध्रुव का प्रदेश माना जाए तो जठर को वर्तमान साइबेरिया में स्थित मानना चाहिए। किंतु विष्णुपुराण का यह वर्णन बहुत अंशों में काल्पनिक जान पड़ता है। जठर नामक पर्वत का भी उल्लेख विष्णु० 2,2,40 में है—'जठरो देवकूटश्च मर्यादा पर्वतावुभौ तौ दक्षिणोत्तरायामावानील निषधायतौ'।

जडचेरला (ज़िला महबूबनगर, आं० प्र०)

इस तालुके में कई प्रागैतिहासिक स्थल, प्राचीन हिंदू तथा बौद्ध अवशेष और मध्यकाल की एक मीनार स्थित हैं।

जनकपुर=जनकपुरी (नेपाल)

यह जयनगर (बिहार) से 17 मील दूर नेपाल रेलवे का स्टेशन है। यह रामायण के समय की जनकपुरी है जिसे सीता का जन्मस्थान तथा मिथिलाधिप जनक की राजधानी माना जाता है। यहां के प्रसिद्ध स्थान जानकी-मंदिर को टीकमगढ़ की महारानी ने बनवाया था। जनक की राजसभा के महापंडित याज्ञवल्क्य का भी इस स्थान से संबंध बताया जाता है। जनकपुर को मिथिला भी कहते थे—'ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम्, साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलां समपूजयन्' वाल्मीकि० बाल० 48,9-10।

(2) =जलना (जिला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)। किंवदंती है कि इस स्थान पर वनवासकाल में श्रीरामचंद्रजी कुछ दिन ठहरे थे। यहां नवपाषाण-युग की अनेक इमारतों के अवशेष स्थित हैं। अकबर द्वारा शाहजादा दानियाल

को लिखे गए कुछ पत्रों से सूचित होता है कि इस नगर को मुग़ल सम्राट् ने अबुलफ़ज़ल को जागीर के रूप में दिया था।

जनस्थान

दंडकारण्य का एक भाग, जिसका विस्तार नासिक के परिवर्ती प्रदेश में था। पुराणों के अनुसार नासिक का ही एक नाम जनस्थान है—'कृते तु पद्मनगरंत्रेतायां तु त्रिकंटकम्, द्वापरे च जनस्थानं कलौ नासिकमुच्यते'। वाल्मीकि रामायण के अनुसार खरदूषणादि राक्षसों का निवास जनस्थान में था, 'नानाप्रहरणाः क्षिप्रमितोगच्छत सत्त्वराः, जनस्थानं हतस्थानं भूतपूर्व-खरालयम्। तत्रास्यतां जनस्थानेशून्ये निहतराक्षसे, पौरुषं बलमाश्रित्य त्रासमुत्सृज्य दूरतः'। रामचंद्रजी ने, जैसा कि इस उद्धरण से सूचित होता है, इस प्रदेश के सभी राक्षसों का अंत कर दिया था। कालिदास ने कई स्थलों पर जनस्थान का उल्लेख किया है— 'प्राप्य चाशुजनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम्' —रघु० 12,42; 'पुराजनस्थानविमर्दशंकी संधाय लंकाधिपतिः प्रतस्थे'—रघु० 6,62; 'अमीजनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्ध नवोटजानि' रघु० 13,22। अंतिम उद्धरण से विदित होता है कि मुनियों ने जनस्थान से राक्षसों का भय दूर होने पर अपने परित्यक्त आश्रमों में पुनः नवीन कुटियां बना ली थीं। भवभूति ने भी जनस्थान और पंचवटी का नासिक के निकट उल्लेख किया है—'पश्चामि च जनस्थानं भूतपूर्वखरालयम्, प्रत्यक्षानिव वृत्तान्तान्पूर्वाननुभवामिच' उत्तररामचरित 2,17। इस श्लोक में वाल्मीकि रामायण के उपर्युक्त उद्धरण की भांति जनस्थान में खर राक्षस का घर कहा गया है। यह संभव है कि उपर्युक्त उद्धरणों में वर्णित जनस्थान की ठीक-ठीक स्थिति गोदावरी के पर्वत से अवरोहण करने के स्थान (नासिक के निकट) पर पालवेराम के सन्निकट रही होगी (दे० इंडियन एंटिक्वेरी जिल्द 2, पृ० 283)। किंतु महाभारत अनुशासन० 25,29 में जनस्थान को चित्रकूट और मंदाकिनी के निकट बताया है—'चित्रकूटजनस्थाने तथा मंदाकिनी जले, विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्म्या निषेव्यते'।

जबलपुर (म० प्र०)

इस नगर का प्राचीन नाम जाबालिपुर या जाबालिपत्तन कहा जाता है। जाबालि पुराणों में वर्णित एक ऋषि का नाम है। रानी दुर्गावती के संबंध के कारण जबलपुर इतिहास में प्रसिद्ध है। तत्कालीन बस्ती के खंडहर वर्तमान नगर से पांच मील दूर पुरवा नामक ग्राम के निकट हैं। (दे० पुरवा)

जमली (मालवा, म० प्र०)

यहां पूर्वमध्ययुगीन (परमारकालीन) भव्य मंदिरों के अवशेष स्थित हैं।

जम्मू

महाभारत मे वर्णित दार्व को वर्तमान डुग्गर या जम्मू का प्रदेश कहा जाता है—'कैराता दरदादार्वाः शूरा यमकास्तथा, औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा बाह्लिकैः सह'—सभा० 52,13।

जयंती

पंजाब की भूतपूर्व रियासत जींद का प्राचीन नाम।

जयंती क्षेत्र (महाराष्ट्र)

हुबली से प्रायः 70 मील पर वनोशिला ग्राम को प्राचीन जयन्ती क्षेत्र कहा जाता है। यह वरदा (=वर्धा) नदी के तट पर स्थित है। पौराणिक आख्यान के अनुसार मधुकैटभ-दैत्यों ने यहां तप किया था। दोनों के नाम से प्रसिद्ध मंदिर भी ग्राम के निकट है। मधुकैटभ को विष्णु ने मारा था।

जयधर (पंजाब)

कुरुक्षेत्र प्रदेश में अमीन (=अभिमन्यु) ग्राम के निकट वह स्थान है जहां किंवदंती के अनुसार अर्जुन ने सिंधुराज जयद्रथ को मारा था। जयधर शब्द जयद्रथ का रूपांतरण है। महाभारत द्रोण० 146,122 में जयद्रथ के वध का उल्लेख इस प्रकार है—'स तु गांडीव-निर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः, छित्वा शिरः सिंधुपते-रुत्पपात विहायसम्'।

जयपुर (राजस्थान)

कछवाहा राजा जयसिंह द्वितीय का बसाया हुआ राजस्थान का इतिहास-प्रसिद्ध नगर। कछवाहा राजपूत अपने वंश का आदि पुरुष श्रीरामचंद्रजी के पुत्र कुश को मानते हैं। उनका कहना है कि प्रारंभ में उनके वंश के लोग रोहतासगढ़ (बिहार) में जाकर बसे थे। तीसरी शती ई० में वे लोग ग्वालियर चले आए। एक ऐतिहासिक अनुश्रुति के आधार पर यह भी कहा जाता है कि 1068 ई० के लगभग, अयोध्या-नरेश लक्ष्मण ने ग्वालियर में अपना प्रभुत्व स्थापित किया और तत्पश्चात् इनके वंशज दौसा नामक स्थान पर आए और उन्होंने मीणाओं से आमेर का इलाका छीनकर इस स्थान पर अपनी राजधानी बनाई। ऐतिहासिकों का यह भी मत है कि आमेर का गिरिदुर्ग 967 ई० में ढोलाराज ने बनवाया था और यहीं 1150 ई० के लगभग कछवाहों ने अपनी राजधानी बनाई। 1300 ई० में जब राज्य के प्रसिद्ध दुर्ग रणथंभौर पर अलाउद्दीन खिलजी ने आक्रमण किया तो आमेरनरेश राज्य के भीतरी भाग में

चले गए किंतु शीघ्र ही उन्होंने क़िले को पुनः हस्तगत कर लिया और अला-उद्दीन से संधि कर ली। 1548-74 ई० में भारमल आमेर का राजा था। उसने हुमायूं और फिर अकबर से मैत्री की और अकबर के साथ अपनी पुत्री जोधाबाई का विवाह भी कर दिया। उसके पुत्र भगवानदास ने भी अकबर के पुत्र सलीम के साथ अपनी पुत्री का विवाह करके पुराने मैत्री-संबंध बनाए रखे। भगवानदास को अकबर ने पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया था। उसने 16 वर्ष तक आमेर में राज्य किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र मानसिंह 1590 ई० से 1614 ई० तक आमेर का राजा रहा। मानसिंह अकबर का विश्वस्त सेनापति था। कहते हैं उसी के कहने से अकबर ने चित्तौड़ नरेश राणा प्रताप पर आक्रमण किया था (1577 ई०) (दे० हल्दीघाटी)। मानसिंह के पश्चात् जयसिंह प्रथम ने आमेर की गद्दी सम्हाली। उसने भी शाहजहां और औरंगज़ेब से मित्रता की नीति जारी रखी। जयसिंह प्रथम शिवाजी को औरंगज़ेब के दरबार में लाने में समर्थ हुआ था। कहा जाता है जयसिंह को औरगज़ेब ने 1667 ई० में ज़हर देकर मरवा डाला था। 1699 ई० से 1743 ई० तक आमेर पर जयसिंह द्वितीय का राज्य रहा। इसने 'सवाई' की उपाधि ग्रहण की। यह बड़ा ज्योतिषविद् और वास्तुकलाविशारद था। इसी ने 1728 ई० में वर्तमान जयपुर नगर बसाया। आमेर का प्राचीन दुर्ग एक पहाड़ी की चोटी पर स्थित है जो 350 फुट ऊँची है। इस कारण इस नगर के विस्तार के लिए पर्याप्त स्थान नहीं था। सवाई जयसिंह ने नए नगर जयपुर को आमेर से तीन मील की दूरी पर मैदान में बसाया। इसका क्षेत्रफल तीन वर्गमील रखा गया। नगर को परकोटे और सात प्रवेश द्वारों से सुरक्षित बनाया गया। चौपड़ के नक़्शे के अनुसार ही सड़कें बनवायी गईं। पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली मुख्य सड़क 111 फुट चौड़ी रखी गई। यह सड़क, एक दूसरी उतनी ही चौड़ी सड़क को ईश्वर लाट के निकट समकोण पर काटती थी। अन्य सड़कें 55 फुट चौड़ी रखी गई। ये मुख्य सड़क को कई स्थानों पर समकोणों पर काटती थीं। कई गलियां जो चौड़ाई में इनकी आधी या 27 फुट थीं, नगर के भीतरी भागों से आकर मुख्य सड़क में मिलती थीं। सड़कों के किनारों के सारे मकान लाल बलुवा पत्थर के बनवाए गए थे जिसमे सारा नगर गुलाबी रंग का दिखाई देता था। राजमहल नगर के केंद्र में बनाया गया था। यह सात मंज़िला है। इसमें एक दीवानेख़ास है। इसके समीप ही तत्कालीन सचिवालय—बावन कचहरी— स्थित है। 18वीं शती में राजा माधोसिंह का बनवाया हुआ छः मंजिला हवामहल भी नगर की मुख्य सड़क पर ही दिखाई देता है। राजा जयसिंह द्वितीय ने जयपुर, दिल्ली,

मथुरा, बनारस और उज्जैन में वेधशालाएं भी बनाई थीं। जयपुर की वेधशाला इन सबसे बड़ी है। कहा जाता है कि जयसिंह को नगर का नक्शा बनाने में दो बंगाली पंडितों से विशेष सहायता प्राप्त हुई थी। (दे० **आमेर**)

जयप्राकार (वियतनाम)

मीकोंग नदी के दक्षिणी तट पर प्राचीन हिंदू-कालीन नगर, जिसकी स्थापना स्थानीय पालीग्रंथों के अनुसार, 9वीं शती ई० के उत्तरार्ध में स्याम के एक राजकुमार ने की थी। यह नगर चींगराय नामक ज़िले में स्थित था।

जयवापी (लंका)

महावंश 10,83। अनुराधपुर के समीप एक तड़ाग। लंका नरेश पांडुकामय के राज्याभिषेक के लिए इस वापी के जल का प्रयोग किया गया था। इसी कारण इसे जयवापी कहते थे।

जयसिंहपुर (जिला बांदा, उ० प्र०)

चित्रकूट की मुख्य बस्ती का पुराना नाम है। यह पयोष्णी के तट पर स्थित है। आजकल इसे सीतापुर कहते हैं।

जयस्वामीपुर

कल्हण की राजतरंगिणी (स्टाइन का अनुवाद 1,168-71) से ज्ञात होता है कि इस नगर को हुष्क या हुविष्क नामक राजा ने बसाया था। यह कनिष्क का उत्तराधिकारी था। इसने ही हुष्कपुर बसाया था, जो वर्तमान जुकूर है। जयस्वामीपुर का, जो कश्मीर में स्थित था, अभिज्ञान संभव नहीं है।

जरगेमऊ (ज़िला कानपुर, उ० प्र०)

इस स्थान से 1956 में प्राचीन मृद्भांडों के अवशेष प्राप्त हुए थे। स्थान की प्राचीनता सिद्ध हो जाने पर यहां विस्तृत रूप से उत्खनन प्रारंभ किया गया था।

जरसोप्पा (मैसूर)

मुडावदरी की भांति ही इस स्थान पर मध्ययुगीन मंदिरों के अवशेष पाए गए हैं। ये मंदिर पूर्वगुप्तकालीन मंदिरों की भांति वर्गाकार तथा शिखररहित हैं। छतों को पाटने के लिए पत्थरों को ढलाव के साथ रखा गया है, जो देश के इस भाग में होने वाली वर्षा को देखते हुए आवश्यक जान पड़ता है। कनारा जिले के मध्ययुगीन अर्थात् 16वीं शती तक के मंदिरों में पटे हुए प्रदक्षिणापथ गुप्त मंदिरों के ही अनुरूप हैं। गर्भगृह के सामने एक मंडप की उपस्थिति इन मंदिरों का सामान्य लक्षण है।

जलंधर (पंजाब)

पंजाब का प्रसिद्ध प्राचीन नगर। कहा जाता है इसका नाम पौराणिक कथाओं—पद्मपुराण आदि में प्रसिद्ध जलंधर नामक दैत्य के नाम पर हुआ था जो इसी प्रदेश का निवासी था और जिसे विष्णु ने मारा था। जलंधर का नाम चीनी यात्री युवानच्वांग के यात्रावृत्त में मिलता है। वह 7वीं शती ई० के पूर्वार्ध में इस स्थान पर आया था। इस समय उत्तरी भारत में महाराज हर्ष का शासन था। जलंधर में युवानच्वांग ने नगरधन नामक एक प्रसिद्ध विहार देखा था। यहां चार मास ठहरकर उसने चंद्रवर्मा नामक विद्वान् से बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया था। जलंधर-दोआब का प्राचीन नाम त्रिगर्त है। (दे० हेमकोष) इसका योगिनी तंत्र (1,11;2,2;2,9) में उल्लेख है।

जलद

विष्णुपुराण 2,4,60 के अनुसार शाक द्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा भव्य के पुत्र जलद के नाम से प्रसिद्ध था।

जलदुर्ग (लिंगसुगुर तालुका, ज़िला रायचूर, मैसूर)

इस स्थान पर कृष्णा की दो उपनदियों के मध्य में एक विस्तृत चट्टान पर 9वीं शती में बना हुआ दुर्ग है। इसमें प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस क़िले को 12वीं शती के अंत में देवगिरि के किसी यादववंशीय नरेश ने बनवाया था।

जलना=**जनकपुर** (2)

जला

'जलां चोपजलां चैव यमुनामभितो नदीम्, उशीनरो वै यत्रेष्ट्वा वासवादत्यरिच्यत' महा० वन० 130,21—अर्थात् यमुना नदी के दोनों पार्श्वों में जला और उपजला नामक नदियों को देखो जहाँ उशीनर ने यज्ञ करके इंद्र से भी बढ़कर स्थान प्राप्त किया था। इस उद्धरण में जला और उपजला को यमुना के दोनों ओर स्थित कहा गया है और इस प्रदेश में उशीनर के राज्य का उल्लेख है। उशीनर, कनखल (हरद्वार) के निकटवर्ती प्रदेश का नाम था। इस प्रकार जला और उपजला की स्थिति ज़िला देहरादून या सहारनपुर में यमुना के निकट रही होगी (दे० **उपजला**)

जलाधार

विष्णुपुराण के अनुसार शाकद्वीप का एक पर्वत—'पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलाधारस्तथापरः, तथा रैवतकः श्यामस्तथैवास्तगिरिर्द्विज'—विष्णु० 2,4,62।

जलालपुर

रामायणकाल में केकय देश की राजधानी गिरिव्रज में थी। इसका अभिज्ञान कर्निघम ने गिरजाक अथवा वर्तमान जलालपुर नामक क़स्बे (प० पाकि०) से किया है जो झेलम नदी के तट पर बसा हुआ है। (दे० **केकय, गिरजाक, गिरिव्रज**)। युवानच्वांग द्वारा उल्लिखित नगरहार भी जलालपुर के स्थान पर ही बसा था।

जलालाबाद

(1) (ज़िला मुज़फ्फ़रनगर, उ० प्र०) नजीबखां रोहेला का बनवाया हुआ ग़ौसगढ इस स्थान के निकट है।

(2) दे० **नगर**

जलाली (ज़िला अलीगढ़, उ० प्र०)

इस स्थान (प्राचीन नीलौती) पर पठानों के बसाये हुए एक नगर के खंडहर हैं।

जलेसर (ज़िला एटा, उ० प्र०)

मेवाड़ के राजा कटीर ने 1403 ई० में यहां क़िला बनवाया था।

जलोद्भव देश

पूर्वोत्तर उत्तरप्रदेश के तराई क्षेत्र (नेपाल की तराई) का प्राचीन नाम। महाभारत वन० 30, 8-9 के अनुसार इस प्रदेश को भीम ने अपनी दिग्विजययात्रा के प्रसंग में जीता था।

जवारि=जौहर (कोंकण, महाराष्ट्र)

शिवाजी के समय महाराष्ट्र का एक छोटा सा राज्य था। सलहेरि के युद्ध के पश्चात् 1672 ई० में इसे शिवाजी ने जीत लिया। यह विजय उनके सेनापति मोरोपंत पिंगले ने की थी। कविवर भूषण ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—'भूषण भनत रामनगर जवारि तेरे, बैर परबाह बहे रुधिर नदीन के' शिवराज-भूषण 173। रामनगर जवारि के पास दूसरा राज्य था।

जसधन (गुजरात)

205 ई० का एक स्तंभलेख इस स्थान से प्राप्त हुआ है जो क्षत्रप रुद्रदामन् के वंशज रुद्रसेन के शासनकाल में अंकित किया गया था।

जसनौल=बाराबंकी (उ० प्र०)

जस नाम के भर राजपूत राजा ने इसे 10वीं शती ई० में बसाया था।

जसो (बुंदेलखंड, म० प्र०)

कर्निघम ने इस भूभाग का नाम दरेदा लिखा है जो संभवतः दुरेहा (जसो

के निकट) का ही रूपांतर है। प्राचीन काल में जसो जैन संस्कृति का महत्व-पूर्ण केंद्र था क्योंकि आज भी सैकड़ों जैनमूर्तियां यहां से प्राप्त होती हैं। इनका समय 12वीं शती से 16वीं शती तक है। जसो की रियासत छत्रसाल के वंशजों ने बनाई थी। महाराज छत्रसाल के पुत्र जगतराज को उत्तराधिकार में जैतपुर का राज्य मिला था। जगतराज के बृहत् राज्य का एक भाग खुमानसिंह को मिला—इसमें जसो भी सम्मिलित था। बाद में खुमानसिंह ने जसो की जागीर अपने पुत्र हरिसिंह को दे दी जो कालांतर में एक स्वतंत्र रियासत बन गई। ऐतिहासिक स्थान नचना और खोह, जहां गुप्तकालीन अनेक अवशेष तथा अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जसो के निकट ही हैं।

जहांगीरपुर

ओड़छानरेश वीरसिंह देव ने, जिनकी मुगल सम्राट् जहांगीर से बहुत मैत्री थी, ओड़छा को फिर से बसाकर उसका नाम जहांगीरपुर रखा था, किन्तु यह नाम अधिक दिनों तक न चला। इन्होंने एक नए महल का नाम भी जहांगीरमहल रखा था। वीरसिंह देव ने अकबर के शासनकाल में सलीम (बाद में जहांगीर) के कहने से अकबर के प्रिय मंत्री और मित्र अबुलफ़जल की हत्या करवा दी थी। (दे० **ओड़छा**)

जहांपनाह

वर्तमान दिल्ली के निकट तुगलककालीन ध्वस्त नगर। मु० तुग़लक ने 1350 ई० के लगभग इस शहर की बुनियाद डाली थी। इसे दिल्ली के सात नगरों में से चौथा कहा जाता है। जहांपनाह की सीमा पिथौरागढ़ और सीरी (अलाउद्दीन खिलजी की दिल्ली)—दोनों के परकोटों को मिलाकर बनाई गई थी। इसके अंदर एक सुंदर प्रासाद बनवाया गया था, जिसे बदीए-मंज़िल (आनन्द-भवन) कहा जाता था। इसका दूसरा नाम विजय-मंडल था। इस नाम से यह आज भी प्रसिद्ध है। इस नगर के परकोटे के भीतर चिराग़ दिल्ली, बेगमपुरी मसजिद आदि भवन स्थित थे। नगर के तीस प्रवेश द्वार थे।

जहाजपुर (राजस्थान)

यह स्थान उदयपुर से 96 मील उत्तरपूर्व में स्थित है। किंवदंती के अनुसार जहाजपुर के दुर्ग का निर्माण मूलतः मौर्यसम्राट् अशोक के पौत्र सम्प्रति ने किया था। यह दुर्ग, बूंदी और मेवाड़ के बीच की पहाड़ियों के एक गिरिद्वार की रक्षा करता था। 15वीं शती में राणा कुंभा ने इसका पुनर्निर्माण करवाया था। संप्रति जैन धर्म का अनुयायी था। जहाजपुर मे अनेक प्राचीन जैन मंदिरों के खडहर भी मिले हैं। (दे० राजपूताना गज़ेटियर 1880, पृ० 52)

जहानाबाद (ज़िला बिजनौर, उ० प्र०)

गंगा-तट पर बिजनौर नगर से प्राय: आठ मील की दूरी पर स्थित है। यहां शाहजहां के सूबेदार शुजातखां का मक़बरा है जो अब उपेक्षित अवस्था में है।

जहाहूति

स्कंदपुराण, कुमारखंड, 39 में उल्लिखित देश जो जैजाकभुक्ति या बुंदेलखंड है।

जांबू

जूंबद्वीप में प्रवाहित होने वाली नदी जो विष्णुपुराण के अनुसार जंबूवृक्ष के फलों के रस से बनी है—'रसेन तेषां प्रख्याता तत्र जांबूनदीति वै'—विष्णु० 2,2,20। संभवत: इस नदी की स्थिति हिमालयोत्तर प्रदेश या मध्य-एशिया में थी क्योंकि पौराणिक भूगोल में जूंब वृक्ष को जूंबद्वीप के मध्य में माना है। (दे० जूंबद्वीप)

जांभ (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

छत्रपति शिवाजी के गुरु तथा महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत समर्थ रामदास का जन्मस्थान। इनका जन्म चैत्रशुक्ल नवमी शाके 1530 में हुआ था।

जागनेर (ज़िला आगरा उ० प्र०)

यहां जगमल राव द्वारा निर्मित (1571 ई०) क़िले के खंडहर हैं।

जागेश्वर (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

अल्मोड़ा से प्राय: 19 मील दूर प्राचीन स्थान है। यहां इस प्रदेश के कई प्राचीन मंदिर हैं, जिनमें महामृत्युंजय, कैलासपति, डिंडेश्वर, पुष्टिदेवी, भैरवनाथ आदि शिव के अनेक रूपों तथा विविध भावों की मूर्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जागेश्वर तथा दीपेश्वर महादेव के मंदिर यहां के प्राचीन स्मारक हैं। कुछ लोगों के मत में नागेश के ज्योतिर्लिंग का स्थान यही है। (दे० नागेश)

जाजऊ (उ० प्र)

आगरे के निकट इस स्थान पर औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी पुत्रों—मुअज्ज़म और आज़म में 1707 ई० में घोर युद्ध हुआ था जिसमें मुअज्ज़म विजयी हुआ और बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। जाजऊ की लड़ाई में आज़म मारा गया था।

जाजनगर=**यज्ञपुर**

जाजपुर=**यज्ञपुर**

जाजमऊ (दे० ययातिपुर)

जादियाल (ज़िला अमृतसर, पंजाब)

अमृतसर से पूर्व की ओर छोटा क़स्बा है जो संभवत: प्राचीनकाल में सांगल

कहलाता था (केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया 1,371)। अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण करने के समय (327 ई० पू०) यहां कठ-जाति के वीर क्षत्रियों की राजधानी थी। सांगल का अभिज्ञान कुछ विद्वानों ने शाकल या सियालकोट से भी किया है।

जानकीगढ़ (दे० चंकीगड़)

जाफना (लंका) **ताम्रपर्णी** (द्वीप)

जाबरा (ज़िला बुलंदशहर, उ० प्र०)

यह ग्राम खुर्जा से 20 मील दक्षिण की ओर यमुना तट पर स्थित है। कहा जाता है कि यहां जाबित्र ऋषि का आश्रम था जिनका स्मारक मंदिर के रूप में ग्राम के भीतर आज भी देखा जा सकता है।

जाबालिपत्तन = जबलपुर

जाबालिपुर = जबलपुर

जाम्भीकुंटा (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

इस स्थान पर बजगूर और मलंगूर नामक दो क़िले हैं जो क्रमशः सातसौ और एक हजार वर्ष प्राचीन हैं। यहीं गुरशल और कटकूर के मंदिर हैं। गुरशल का मंदिर 1229 ई० में वारंगलनरेश प्रतापरुद्र के शासनकाल में बना था। यह मंदिर अब टूटी-फूटी अवस्था मे है किंतु इसके पत्थरो पर की गई नक़्क़ाशी आज भी अच्छी दशा में है। मंदिर के बाहर एक स्तभ पर उड़िया भाषा में एक अभिलेख अंकित है।

जायस (ज़िला रायबरेली, उ० प्र०)

उत्तर-रेल के जायस स्टेशन के पास प्राचीन क़स्बा है जो हिंदी के कवि मलिक मुहम्मद जायसी के संबंध के कारण प्रसिद्ध है। यहीं इन्होने अपना सुप्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत लिखा था। जायस में रहने के कारण ही ये जायसी कहलाए। पद्मावत के 23वें दोहे की प्रथम चौपाई में कवि ने स्वयं ही कहा है—'जायस नगर धरम-असथानू, तहां आय कवि कीन्ह बखानू'— जिससे ज्ञात होता है कि जायस उस समय संभवतः मुसलमानों के लिए पवित्र स्थान माना जाता था और जायसी यहां किसी और स्थान से आकर बसे थे तथा पद्मावत की रचना भी उन्होंने यहीं की थी। पद्मावत में उसका रचनाकाल 927 हिजरी अर्थात् 1527 ई० दिया हुआ है। उजालिकपुर जायस का दूसरा और संभवतः अधिक प्राचीन नाम है। (दे० नं० ला० डे)

जारुधि

संभवतः सरयूतटवर्ती प्रदेश का नाम। महाभारत सभा 38, दाक्षिणात्य

पाठ में भीष्म ने, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर, विष्णु के अवतारों की कथा के वर्णन के प्रसंग में कहा है कि श्रीरामचंद्रजी ने दस अश्वमेधों का अनुष्ठान करके जारुधि प्रदेश को निर्विघ्न बना दिया था—'दशाश्वमेधनाजह्रे जारुधिस्थान् निरर्गलान्'। रामचंद्रजी के पूर्वज इक्ष्वाकुनरेशों ने अश्वमेध यज्ञ सरयू के तट पर ही किए थे जैसा कि रघु० 13,61 से भी ज्ञात होता है—'जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्योध्यामनुराजधानीम्, तुरंगमेधावभृथावतीर्णै रिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि', और रामचंद्र जी ने भी पूर्व परम्परा के अनुकूल अश्वमेध यज्ञ अपनी राजधानी अयोध्या के निकट सरयूतट पर ही संपादित किया था।

(2) विष्णुपुराण के अनुसार मेरु के उत्तर में एक पर्वत, जो पश्चिम की ओर समुद्र तक विस्तीर्ण था—'त्रिश्रृंगो जारुधिश्चैव उत्तरौवर्षपर्वतौ, पूर्व पश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ'—2,2,43। इस वर्णन की वास्तविकता को यदि स्वीकार करें तो यह पर्वत वर्तमान यूराल (रूस) की श्रेणी का कोई भाग हो सकता है जो कश्यप (केस्पियन) सागर तक फैली हुई है। विष्णु० 2,2,28 में जारुधि को मेरु का पश्चिमी केसराचल भी माना गया है—'शिखिवामाः सवैडूर्यः कपिलो गंधमादनः, जारुधिप्रमुखास्तद्वत्पश्चिमे केसराचलाः'। (दे० त्रिश्रृंग)

जालौन (उ० प्र०)

यह क़स्बा बुंदेलखंड क्षेत्र में स्थित है। यह चंदेलकालीन सरोवरों और मराठों के समय की इमारतों के भग्नावशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

जालौर (राजस्थान)

12वीं शती से 14वीं शती ई० तक राजस्थान में जैनधर्म का उत्कर्ष-काल रहा है। जालौर के इसी काल में बने हुए दुर्ग में महाराज कुमारपाल द्वारा निर्मित कई जैन मंदिर आज भी देखे जा सकते हैं। यहां 1303 ई० के थोड़े समय पश्चात् ही अलाउद्दीन खिलजी की बनवाई मसजिद राजस्थान की सर्वप्राचीन मसजिद मानी जाती है। इस मसजिद की शिल्पशैली पर भारतीय वास्तुकला का प्रभाव प्रायः नगण्य ही है।

जावर (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

बहुत प्राचीन काल में जावर मेवाड़ का छोटा-सा वन्य क्षेत्र था जहां महाराजा लाखा के समय में (14वीं शती ई०) भीलों का आधिपत्य था। महाराणा ने जावरा को भीलों से छीन लिया। इस प्रदेश में लोहा, चांदी, सीसा, तथा अन्द धातुओं की खानें थीं जिनको प्राप्त कर लाखा जी को बहुत

लाभ हुआ। मेवाड़ के व्यापार की इससे बहुत उन्नति हुई और राजकोष भी बहुत धनी हो गया। महाराणा लाखा ने अपनी संपत्ति को मेवाड़ के प्राचीन स्मारकों और मंदिरों आदि का, जिन्हें अलाउद्दीन खिलजी ने 1303 ई० के आक्रमण के समय नष्टभ्रष्ट कर दिया था, जीर्णोद्धार करने में लगाया तथा अनेक नये भवन तथा दुर्ग बनवाए।

जावली (महाराष्ट्र)

17वीं शती में जावली की एक छोटी सी रियासत थी जो बीजापुर के सुलतान के अधिकार-क्षेत्र में थी। जावली या जावला का प्रांत कोयना नदी की घाटी में महाबलेश्वर के ठीक नीचे स्थित था। यह तीर्थस्थान भी था। शिवाजी के समय में यहां का राजा चंद्रराव मोरे था। इसने बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह के षड्यंत्र में सम्मिलित होकर शिवाजी को पकड़ना चाहा था किंतु उसके पहले ही महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी ने, 1656 ई० में चन्द्रराव मोरे को मारकर जावली पर अपना अधिकार कर लिया। यहां से शिवाजी को बहुत सा धन मिला जिससे उन्होंने प्रतापगढ़ किले का निर्माण किया। महाकवि भूषण ने शिवाबावनी, 28 में—'चन्द्रावल चूर करि जावली जपत कीन्ही'—लिखकर उपर्युक्त ऐतिहासिक घटना पर प्रकाश डाला है।

जावा = यवद्वीप

जिजला (शिल्लोद तालुका, ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

इस ग्राम में वैशगढ़ नामक एक प्राचीन गढ़ अवस्थित है जिसकी दुर्ग-रचना महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

जिंजी (ज़िला आरकट, मद्रास)

मद्रास-धनुष्कोटि रेलमार्ग पर तिंडिवनम् स्टेशन से 20 मील पश्चिम में बसा हुआ यह स्थान एक सुदृढ़ दुर्ग के कारण उल्लेखनीय है। दुर्ग की तीन पहाड़ियां हैं—राजगिरि, श्रीकृष्ण गिरि और चांद्रायण। राजगिरि पर रंगनाथ का सुंदर मंदिर है जिसमें कृष्ण की कलापूर्ण मूर्तियां हैं। वेंकटरमण स्वामी के मंदिर में रामायण के सुंदर चित्र हैं। जनश्रुति के अनुसार इस दुर्ग तथा मंदिरों के निर्माण-कर्ता काशिराज सूरशर्मा थे। ये काशी से यहां यात्रार्थ आए थे। दूसरी लोककथा यह भी है कि जिंजी नगर की स्थापना तुपक्कल कृष्णाप्पा ने की थी जो कांचीपुरी के निवासी थे।

जितूर (ज़िला परभणी, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर मुसलमान संत शम्सुद्दीन तथा शाह मस्तान की प्राचीन दरगाहें हैं।

जिगनी (बुंदेलखंड, म० प्र०)

अंग्रेजी शासनकाल तक यह एक छोटी सी रियासत थी । इसके संस्थापक बुंदेल-नरेश महाराज छत्रसाल के पुत्र पदुमसिंह थे। इन्हें अपने पिता की ओर से कोई जागीर न मिली थी किंतु इनके सौभाग्य से इन्हें इनके मामा ने अपने यहां जिगनी की जागीर पर बुला लिया जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु के पश्चात् पदुमसिंह ही इस जागीर के स्वामी बने । 1703 ई० में इन्होंने बदौरा को जीतकर जिगनी में मिला लिया। इसके पश्चात् अनेक राजनैतिक उलट-फेरों के कारण इस रियासत में काफी कांट-छांट हुई।

जिझिक (बिहार)

प्राचीन जैन ग्रंथों के अनुसार तीर्थंकर वर्धमान महावीर को अन्तर्ज्ञान अथवा कैवल्य की प्राप्ति इसी स्थान पर हुई थी। आचारांगसूत्र के वर्णन के अनुसार 'तेरहवें वर्ष में ग्रीष्मऋतु के दूसरे मास के चौथे पक्ष में, वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जबकि छाया पूर्व को ओर फिर गई थी और पहला जागरण समाप्त हो गया था अर्थात् सुव्रत के दिन, विजय मुहूर्त में, ऋजुपालिका नदी के तट पर जिभिक ग्राम के बाहर, एक पुराने मंदिर के निकट, एक सामान्य गृहस्थ के खेत में शालवृक्ष के नीचे, जिस समय चन्द्रमा उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में था, दोनों एड़ियों को मिला कर बैठे हुए, धूप में ढाई दिन तक निर्जल व्रत करके, गंभीर ध्यान में मग्न रहकर, उसने सर्वोच्च ज्ञान अर्थात् कैवल्य को प्राप्त किया, जो अपरिचित, प्रधान, अंकुरित, पूरा और संपूर्ण है'। इस प्रकार जिभिक की महत्ता जैनों के लिए वही है जो बोधगया की बौद्धों के लिए। यह ग्राम वैशाली (जिला मुजफ्फरपुर, बिहार) के निकट स्थित था।

जिननाथपुर

यह स्थान श्रवणबेलगोल (मैसूर) से एक मील उत्तर की ओर स्थित है । तीर्थंकर शांतिनाथ की साढ़े पांच फुट ऊंची मूर्ति यहां की सुंदर कलाकृति है। यह शांतिनाथ नामक बस्ती में स्थित है।

जींद (पंजाब)

पटियाला के निकट भूतपूर्व सिख रियासत। कहा जाता है कि इस नगर का प्राचीन नाम जयंती था जो जयंतीदेवी के मंदिर के कारण हुआ था। प्राचीन भूतेश्वर महादेव का मंदिर सूर्यकुंड नामक सरोवर के मध्य में स्थित है और समीप ही जयंतीदेवी का मंदिर है। भूतेश्वर-मंदिर का जीर्णोद्धार महाराजा-रघुवीरसिंह ने करवाया था।

जीडीकल (ज़िला नलगोंडा, आं० प्र०)

जनगांव से 18 मील दूर इस ग्राम का मुख्य स्मारक एक विस्तीर्ण चट्टान पर बना हुआ नरसिंह स्वामी का मंदिर है। किंवदंती है कि इसी स्थान पर सीता ने श्रीराम को मायामृग मारीच के पीछे भेजा था। जीडीकल का शुद्धरूप जिंकाकल या मृगशैल हो सकता है और यह किंवदंती भी शायद इसी नाम के आधार पर बनी है क्योंकि जिस स्थान से राम मारीच के पीछे गए थे वह पंचवटी (नासिक, महाराष्ट्र) के निकट होना चाहिए।

जीमूत

विष्णुपुराण 2,4,29 के अनुसार शाल्मलद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा वपुष्मान् के पुत्र जीमूत के नाम से प्रसिद्ध था।

जीरवल = जीरापल्ली

जीरादेई (ज़िला छपरा, बिहार)

जीरादेई के नाम पर प्रसिद्ध ग्राम। किंवदंती के अनुसार यह ईरान-विजेता राजा रतिबलराय की पुत्री थी। इसका विवाह मकरान-नरेश राजा सहसराय के पुत्र सुबलराय से हुआ था (हिस्ट्री ऑव परशिया - स्मिथ)। सुबलराय के मरने पर जीरादेई सती हो गई। जीरादेई के पास सुबलराय ने सुरबल या सुगौल नामक एक गढ़ बनवाया था जो अब भी विद्यमान है। सुबलराय आठवीं शती ई० में थे।

जीरापल्ली (गुजरात)

दीस के निकट यह प्राचीन जैनतीर्थ है। इसे अब जीरवल कहते हैं। यहां पार्श्वनाथ का मंदिर है। इस स्थान का नामोल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन स्तोत्र में इस प्रकार है—'जीरापल्लि फलर्द्धिपारक नगे शैरीसशंखेश्वरे'।

जीर्णनगर (दे० जुन्नार)

जीणवप्र

यह वर्तमान जूनागढ़ (काठियावाड़, गुजरात) है। इस स्थान का जैन तीर्थ के रूप में उल्लेख तीर्थमाला चैत्य वंदन नामक जैन स्तोत्र में इस प्रकार है —'द्वारावत्यपरे गढमढ़गिरो श्रीजीर्ण वप्रे तथा'। गिरनार, जो प्रसिद्ध जैनतीर्थ है, जूनागढ़ के निकट ही स्थित है।

जुकुर = जुष्कपुर

जुझारखंड

बुंदेलखंड का प्राचीन नाम। (दे० गोरेलाल तिवारी—बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास—पृ० 1)

जुझौति

बुंदेलखंड का प्राचीन नाम जिसका शुद्ध रूप यजुर्होती कहा जाता है। यह नाम 7वीं शती में भी प्रचलित था क्योंकि चीनी यात्री युवानच्वांग, जो भारत में 630 ई० से 645 ई० तक था, उज्जैन से महेश्वरपुर जाते हुए जुझौति पहुंचा था और उसने इस प्रदेश का इसी नाम से उल्लेख किया है। उसके लेख के अनुसार जुझौति का राजा ब्राह्मण था और वह बौद्धों का आदर करता था। 14वीं शती में बुंदेलों का इस प्रदेश में राज्य स्थापित होने के कारण इसका नाम बुंदेलखंड हो गया। इससे पूर्व इसे जुझौति ही कहते थे।

जुन्नार (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

प्राचीन नाम जीर्णनगर। इस स्थान से एक गुफा में क्षहरात नरेश नहपान के मंत्री अयम का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिससे नहपान का महाराष्ट्र के इस भाग पर आधिपत्य सिद्ध होता है। अभिलेख में नहपान को महाक्षत्रप कहा गया है। इसमें संवत् 46 का उल्लेख है जो शकसंवत् ही जान पड़ता है। इस प्रकार यह लेख 124 ई० का है। जुन्नार के शिवनेर दुर्ग में महाराष्ट्रकेसरी शिवाजी का जन्म हुआ था।

जुष्कपुर (कश्मीर)

श्रीनगर के उत्तर की ओर जुकुर नामक एक बड़ा ग्राम है जिसका अभिज्ञान प्राचीन जुष्कपुर से किया गया है। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार (स्टाइन, 1,168,71) जुष्कपुर को कनिष्क के उत्तराधिकारी जुष्क (या हुविष्क) ने बसाया था। जुष्क ने ही जुष्कपुर का विहार भी बनवाया था। कुछ विद्वानों के मत में कनिष्क का उत्तराधिकारी वशिष्क था जिसका उल्लेख आरा अभिलेख में 'वाझेष्क' के रूप में हुआ है। कनिष्क की तिथि 78 ई० (रायचौधरी) या 120 ई० (स्मिथ) है।

जूना (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

इस ग्राम में सच्चिका देवी का मध्ययुगीन मंदिर है जिसमें 1237 वि० सं० (1180 ई०) का एक अभिलेख अंकित है। इससे विदित होता है कि मूर्ति की रचना एक गणमुख्य ने करवायी थी तथा श्री कुदसूरि ने उसकी प्रतिष्ठापना की थी। इससे तत्कालीन जैनधर्म में सच्चिकादेवी (महिषमर्दिनी) की उपासना का समावेश होना सिद्ध होता है।

जूनागढ़ (काठियावाड़, गुजरात)

जूनागढ़ का प्राचीन नाम यवननगर कहा जाता है। जूनागढ़ का क़िला अतिप्राचीन और हिंदूकालीन है। इसे उपरकोट का दुर्ग भी कहते हैं। यह

सौराष्ट्र की सर्वोच्च पर्वतश्रेणी की तलहटी में स्थित है। जूनागढ़ (जूना=प्राचीन) का नाम शायद इसी क़िले की प्राचीनता के कारण हुआ है। गिरिनार पहाड़ के नीचे हिंदुओं का प्राचीन मंदिर है और पर्वत की चोटी पर जैनों के कई प्रसिद्ध मंदिर हैं। गिरिनार महाभारत का रैवतक है। जूनागढ़ को जैनस्तोत्र तीर्थमालाचैत्यवंदन में जीर्णवप्र कहा गया है।

जेठियान=यष्टिवन

जेतवन

बुद्धकाल में श्रावस्ती का प्रसिद्ध विहारोद्यान जहां गौतम बुद्धत्व-प्राप्ति के पश्चात् प्राय: ठहरते थे। अश्वघोष ने बुद्धचरित, सर्ग 18, में इस वन के, अनाथपिंडद सुदत्त द्वारा राजकुमार जेत से खरीदे जाने की कथा का वर्णन किया है। इस आख्यायिका का पाली बौद्धसाहित्य में भी वर्णन है जिसके अनुसार सुदत्त ने इस मनोरम उद्यान को इसकी पूरी भूमि में स्वर्ण मुद्राएं बिछाकर खरीदा था और फिर बुद्ध को संघ के लिए दान में दे दिया था। राजकुमार जेत ने इस धन राशि से सात तलों का एक विशाल प्रासाद बनवाया जो, चीनी यात्री फ़ाह्यान के अनुसार, बाद में जलकर भस्म हो गया था। जेतवन के अवशेष, ढूहों के रूप में, वर्तमान सहेत-महेत (ज़िला गोंडा, उ० प्र०) के खंडहरों में पड़े हुए हैं। (दे० **श्रावस्ती**)

जेत्तुतर

बौद्ध ग्रंथ अभिधानप्पदीपिका में दी हुई बीस नगरों की सूची में उल्लिखित एक स्थान जो श्री नं० ला० डे के मत में मध्यमिका या चित्तौड़ के निकट रहा होगा। किंतु रायचौधरी ने इसे शिबि राष्ट्र का नगर माना है। इसका उल्लेख वेस्संतरजातक में भी है। दे० **शिबि**। अलबेरूनी ने इसे जात्तरौर कहा है और मेवाड़ की राजधानी बताया है (अलबेरूनी, पृ० 202)

जेनाड (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

17वीं शती में बने विष्णुमंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

जैतपुर (बुंदेलखंड, ज़िला हमीरपुर, उ० प्र०)

इस स्थान के निकट, बुंदेलनरेश महाराज छत्रसाल और महाराष्ट्र-प्रमुख बाजीराव पेशवा की संयुक्त सेना के साथ इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मद बंगश की विशाल फौज का घोर युद्ध हुआ था जिसमें मुसलमान सेना की भारी हार हुई थी। जैतपुर का क़िला पहले बंगश ने सर कर लिया। मराठों और बुंदेलों ने क़िले का घेरा डाल दिया और जब रसद समाप्त हो गई तो बंगश की फ़ौज को आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। इस क़िले को वापस लेने में छत्रसाल

को छः मास लगे थे। इस युद्ध में बुंदेलों को मराठों की सहायता से बहुत उत्साह मिला। छत्रसाल के पुत्रों ने भी युद्ध में बहुत वीरता दिखाई। कहा जाता है कि जब बंगश ने भारी फौज के साथ बुंदेलाराज्य पर आक्रमण करने की तैयारियां शुरू कीं तो घबरा कर छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा के पास निम्न दोहा लिखकर भेजा और सहायता मांगी—'जो गति गज की ग्राह सों, सो गति भई है आज, बाजी जात बुंदेल की राखो बाजी लाज'। बाजीराव पेशवा ने, जिसकी शक्ति इस समय बहुत बढ़ी-चढ़ी थी तत्काल ही छत्रसाल की सहायता की जिसके कारण छत्रसाल को शत्रु पर भारी विजय प्राप्त हुई। विजय के उपहारस्वरूप छत्रसाल ने झांसी का इलाका पेशवा को दे दिया जहां कालान्तर में मराठा रियासत स्थापित हो गई। झांसी का राज्य रानी लक्ष्मी बाई के समय तक (1858) चलता रहा।

जैसलमेर (राजस्थान)

राजपूताने की प्राचीन रियासत तथा उसका मुख्य नगर। किंवदंती के अनुसार जैसलराव ने जैसलमेर की नींव 1155 ई० (1212 वि० सं०) में डाली थी। कहा जाता है कि जैसलराव के पूर्व-पुरुषों ने ही गजनी बसाई थी और उन्होंने ही राजा शालिवाहन के समय में स्यालकोट बसाया था। किसी समय जैसलमेर बडा नगर था जो अब इसके अनेक रिक्त भवनों को देखने से सूचित होता है। प्राचीन काल में यहां पीला मुलायम संगमर्मर तथा अन्य कई प्रकार के पत्थर तथा मिट्टियां पाई जाती थीं जिनका अच्छा व्यापार था। यह सारा नगर ही पीले सुंदर पत्थर का बना हुआ है जो नगर की विशेषता है। यहां के मंदिर व प्राचीन भवन और प्रासाद भी इसी पीले पत्थर के बने हैं और उन पर जाली का बारीक काम किया हुआ है। जैसलमेर के प्राचीन ऐतिहासिक स्मारकों में सर्वप्रमुख यहां का क़िला है। यह 1155 ई० में निर्मित हुआ था। यह स्थापत्य का सुंदर नमूना है। इसमें बारह सौ घर हैं। 15वीं शती में निर्मित जैन मंदिरों के तोरणों, स्तंभों, प्रवेशद्वारों आदि पर जो बारीक नक़्क़ाशी व शिल्प प्रदर्शित है उसे देख कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। कहा जाता है कि जावा, बाली आदि प्राचीन हिंदू व बौद्ध उपनिवेशों के स्मारकों में जो भारतीय वास्तु व मूर्ति-कला प्रदर्शित है उससे जैसलमेर के जैन-मंदिरों की कला का अनोखा साम्य है। क़िले में लक्ष्मीनाथ जी का मंदिर अपने भव्य सौंदर्य के लिए प्रख्यात है। नगर से चार मील दूर अमरसागर के मंदिर में मकराना के संगमर्मर की बनी हुई मनोहर जालियां निर्मित है। जैसलमेर की पुरानी राजधानी लोद्रवापुर थी। यहां पुराने खंडहरों

के बीच केवल एक प्राचीन जैनमंदिर ही काल-कवलित होने से बचा है। यह प्राय: एक सहस्र वर्ष प्राचीन है। जैसलमेर के शासक महारावल कहलाते थे।

जोगनीपुर

दिल्ली का एक मध्ययुगीन नाम (दे० **बटियागढ़**)।

जोगलथेंबी (ज़िला नासिक, महाराष्ट्र)

इस स्थान से शकनरेश नहपान तथा शातवाहन राजा गौतमी पुत्र (द्वितीय शती ई०) के सिक्कों की एक महत्त्वपूर्ण राशि प्राप्त हुई थी। गौतमी-पुत्र के सिक्के वास्तव में नहपान की ही रजतमुद्राएं हैं जिन पर गौतमीपुत्र ने अपना नाम अंकित करवा दिया था। इससे महाराष्ट्र में शकवंशीय नहपान के पश्चात्, शातवाहन (ब्राह्मण) राजाओं का शासन सिद्ध होता है।

जोगीमारा (म० प्र०)

भूतपूर्व सरगुजा रियासत में, लक्ष्मणपुर से 12वें मील पर रामगिरि-रामगढ़ पहाड़ी में जोगीमारा नामक शैलकृत्त गुफा है जिसमें लगभग 300 ई० पू० के रंगीन भित्तिचित्र प्राप्त हुए हैं। चित्रों का निर्माणकाल डा० ब्लाख़ ने यहां से प्राप्त एक अभिलेख के आधार पर निश्चित किया है। जोगी-मारा के भित्तिचित्र जो भारत के सर्वप्राचीन भित्तिचित्र हैं, गेरू और कालिख से बने हुए जान पड़ते हैं। चित्र धुंधले और भोंडे से है किंतु इसका कारण यह है कि किसी ने मूलचित्रों को सुधारने का प्रयत्न करने में उन्हें बिगाड़ दिया है जिससे असली चित्रों की स्पष्ट, सुंदर और पुष्ट रेखाएँ ऊपर की भद्दी लकीरों के नीचे दब सी गई हैं। चित्रों में भवनों, पशुओं और मनुष्यों की आकृतियों का आलेखन किया गया है। चित्रों के किनारों पर मकर आदि जलजंतुओं का चित्रण है। जोगीमारा की चित्रणशैली अर्धविकसित अवस्था में है किंतु उसमें अजंता की भावी उत्कृष्ट कला का क्षीण सा आभास दृष्टिगोचर होता है। जोगीमारा चित्रों में से कुछ जैनधर्म से संबंधित हैं। जोगीमारा गुफा के पार्श्व में ही सीताबोंगा नामक गुफ़ा है जो प्राचीन काल में प्रेक्षागार या नाट्यशाला के रूप में प्रयुक्त होती थी। कुछ विद्वानों का मत है कि जोगीमारा-गुफा प्रेक्षागार की नटियों का प्रसाधन कक्ष थी। किंतु यहां के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह गुफा वरुण के मंदिर के रूप में मान्य समझी जाती थी।

जोगेश्वरी (महाराष्ट्र)

गोरेगांव स्टेशन से 21 मील दक्षिण में अबोली ग्राम के निकट, जोगेश्वरी (=जोगेश्वर या योगेश्वरी) का विशाल गुहामंदिर है जो इलौरा के कैलास-

मंदिर के अतिरिक्त भारत का सबसे विशाल गुहामंदिर माना जाता है। इसका निर्माण काल 7वीं-8वीं शती ई० (उत्तर गुप्तकाल) है। गुफ़ा का अधिकांश भूगर्भ में बना है। इसका पत्थर भुरभुरा है और इसी कारण अनेक मूर्तियां और गुहास्तंभ आदि समय के प्रवाह मे नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं। गुहा में शिव आदि हिंदू देवों की सुंदर मूर्तियां थीं जो अब जीर्णशीर्ण अवस्था में है। इनका कलात्मक संबंध एलिफ़ेंटा की मूर्तियों से स्थापित किया जा सकता है। जोगेश्वरी की गुफ़ा में जलनिर्यात का सुंदर प्रबंध किया गया था।

जोता = जोतिक

जोतिक

महाभारत सभा० 32,11 में नकुल की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में उत्तर-ज्योतिष (या पाठान्तर—ज्योतिक) के नकुल द्वारा जीते जाने का वर्णन है। श्री वा० श० अग्रवाल के मतानुसार यह उत्तरपश्चिम हिमालय में स्थित जोता नामक स्थान हो सकता है—दे० **उत्तरज्योतिष**।

जोधपुर (राजस्थान)

भूतपूर्व जोधपुर रियासत का मुख्य नगर। रियासत को मारवाड़ भी कहते थे। यहां के राजपूत राजा कन्नौज के राठौड़-नरेश जयचंद के वंशज हैं। मूलत: ये राष्ट्रकूटों की एक शाखा से संबंधित थे जो कन्नौज में, 946-959 ई० के बीच में, जाकर बस गई थी। 1194 ई० में जयचंद के मु० ग़ौरी द्वारा पराजित होने पर उसका एक भतीजा सालाजी मारवाड़ चला आया और यहां आकर उसने हटबेदी में राजधानी बनाई (1212 ई०)। 1381 ई० में राजधानी मंडोर लाई गई और तत्पश्चात् 1459 ई० में जोधपुर। इसका कारण यह था कि मेवाड़ के नाबालिग़ शासक के अभिभावक चौंडा ने मंडोर-नरेश टनमल को युद्ध में हरा दिया जिससे रनमल के पुत्र जोधा को मंडौर छोड़कर भागना पड़ा। यद्यपि उसने मंडौर पर 1459 ई० में पुनः अधिकार कर लिया किंतु सुरक्षा के विचार से एक वर्ष पहले वह जोधपुर के गिरिदुर्ग में जाकर बस गया था और वहीं अगले वर्ष उसने जोधपुर नगर की नींव डाली। इसका शासनकाल 1458 से 1488 ई० तक था। जोधपुर के राठौर राजा मालदेव ने 1543 ई० में शेरशाह सूरी से युद्ध किया और 1562 ई० में अकबर से। इसके पश्चात् जोधपुर-नरेश मुग़लों के सहायक और मित्र बन गए। औरंगज़ेब के समय में राजा जसवंतसिंह यहां के राजा थे। वे पहले दारा के साथ रहे और उसकी पराजय के पश्चात् औरंगज़ेब के सहायक बने किंतु मुग़ल सम्राट् का उन पर कभी पूर्ण विश्वास न रहा। उनका 1671 ई० में पेशावर के निकट जमरूद में,

जहां वे युद्ध पर गए थे देहांत हो गया। इसके पश्चात् औरंगज़ेब ने जोधपुर पर आक्रमण करके रियासत पर अधिकार कर लिया और जसवंतसिंह के अवयस्क पुत्रों को क़ैद कर लिया। ऐसे आड़े समय में उनकी रानी को राज्य के सरदारों, वीर दुर्गादास और गोपीनाथ से बहुत सहायता मिली। ये, अवयस्क अजितसिंह को बड़े कौशल से मुग़लों की क़ैद से छुड़ाकर मेवाड़ लाए। यहां से इन्होंने 1701 ई० में मंडौर को पुनः हस्तगत कर लिया और 1707 ई० तक शेष रियासत को भी ये अपने अधिकार में ले आए। अजित सिंह ने अपनी पुत्री इंद्रकुमारी का मुगल-नरेश फ़र्रुख़सियर से विवाह किया था। राजस्थान के इतिहास में इस प्रकार के दूषित विवाह का यह अंतिम उदाहरण कहा जाता है।

जोधपुर नगर लगभग छ: मील के घेरे में बसा हुआ है। बीच-बीच में पहाड़ियां भी हैं। पश्चिम की ओर एक पहाड़ी पर जोधाजी का बनवाया हुआ क़िला है उसी के नीचे से बस्ती आरंभ हो जाती है। क़िले की नींव ज्येष्ठ शुक्ला 11, वि० सं० 1516 (1459 ई०) को रखी गई थी। क़िला 600 फुट ऊंची पहाड़ी पर स्थित है और इसका विस्तार लगभग 500 गज़ × 250 गज़ हैं। इसके जयपोल और फ़तहपोल नामक दो प्रवेशद्वार हैं। परकोटे की ऊंचाई 20 फुट से 120 फुट तक और मोटाई 12 फुट से 70 फुट तक है। दुर्ग के भीतर सिलहख़ाना (शस्त्रागार) मोतीमहल और जवाहर ख़ाना आदि भवन अवस्थित हैं। सिलहख़ाने में सैंकड़ों प्रकार के शस्त्रास्त्र हैं। उन पर सोने-चांदी की अच्छी कारीगरी है। ये इतने भारी हैं कि साधारण मनुष्य इन्हें उठा भी नहीं सकता। मोतीमहल के प्रकोष्ठों की भित्तियों तथा छतों पर सोने की अनुपम कारीगरी प्रदर्शित है। क़िले के उत्तर की ओर ऊंची पहाड़ी पर थड़ा नामक एक भवन है जो संगमर्मर का बना है। जोधपुर नरेश जसवंतसिंह और अन्य कई राजाओं के समाधिस्थल यहीं बने हैं। थड़ा ऊंचे और चौड़े चबूतरे पर स्थित है। इसके पार्श्व में एक प्राचीन सरोवर भी है। किले के पश्चिमी छोर पर राठौड़ों की कुलदेवी चौमुंडा का मंदिर है।

जोलन (जिला टोंक, राजस्थान)

1953 में इस स्थान पर प्राचीन काल के अनेक भग्नावशेषों की खोज की गई थी। इनका अनुसंधान पूर्ण रूप से अभी नहीं किया गया है। टोंक के अन्य स्थान जहां से प्राचीन अवशेष मिले हैं ये हैं—रेढ़, शिवपुरी, बगरी, पिराना आदि।

जोशीमठ=ज्योतिर्मठ (ज़िला गढ़वाल)

बदरीनाथ के 19 मील नीचे प्राचीन तीर्थ जहां शंकराचार्य का मठ है।

इसे ज्योतिर्लिंग का स्थान माना जाता है। जोशीमठ में मध्यकाल में गढ़वाल के कत्यूरी-नरेशों की राजधानी थी। क़स्बे में वासुदेव का अति प्राचीन मंदिर है जिसकी मूर्ति सुघड़ और सुंदर है। दूसरा मंदिर नरसिंह का है। मूर्ति छोटी है किंतु चमत्कारपूर्ण समझी जाती है। पास ही शकराचार्य के निवासस्थान की गुफ़ा है और वह कीमू (शहतूत) वृक्ष भी जहां किंवदंती के अनुसार बैठकर उन्होंने अपने महान् ग्रंथों की रचना की थी।

जोहिला

शोण (=सोन) की सहायक नदी जो महाभारत वन० 85,8 में वर्णित ज्योतिरथ्या या सभा० 9,21 में उल्लिखित ज्येष्ठिला है।

जौगड़ा (बरहमपुर तालुका, ज़िला गंजम, उड़ीसा)

मौर्यसम्राट् अशोक की 14 मुख्य धर्मलिपियों में से 1 से 10 तक और दो कलिंगलेख जौगड़ा की एक चट्टान पर अंकित हैं। यह स्थान अशोक के साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर रहा होगा क्योंकि मुख्य धर्मलिपियां अशोक ने अधिकतर अपने साम्राज्य की सीमा पर स्थित महत्त्वपूर्ण नगरों या क़स्बों में ही अंकित करवायी थीं। दे० कालसी, गिरनार, धौली, मानसेहरा, शहबाज़गढ़ी, सोपारा।

जौनपुर (उ० प्र०)

यह नगर गोमती के किनारे बसा है। प्राचीन किंवदंती के अनुसार जमदग्नि-ऋषि के नाम पर इस नगर का नामकरण हुआ था। जमदग्नि का एक मंदिर यहां आज भी स्थित है। यह भी कहा जाता है कि इस नगर की नींव 14वीं शती में जूनाखां ने जो बाद में मु० तुग़लक के नाम से दिल्ली का सुलतान हुआ, डाली थी। इसका प्राचीन नाम यवनपुर भी बताया जाता है। 1397 ई० में जौनपुर के सूबेदार ख्वाजाजहां ने दिल्ली के सुलतान मु० तुग़लक की अधीनता को ठुकराकर अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी और शर्की (= पूर्वी) नामक एक नए राजवंश की स्थापना की। इस वंश का यहां प्राय: 80 वर्षों तक राज्य रहा। इस दौरान में शर्की सुलतानों ने जौनपुर में कई सुन्दर-भवन, एक किला, मक़बरा तथा मसजिदें बनवाई। सर्वप्रसिद्ध मसजिद अताला 1408 ई० में बनी थी। कहा जाता है कि इस मसजिद के स्थान पर पहले अतला (या अताला) देवी का मंदिर था जिसकी सामग्री से यह मसजिद बनाई गई। अतला देवी का मंदिर प्राचीनकाल मे केरारकोट नामक दुर्ग के अन्दर स्थित था। जामा मसजिद को इब्राहीमशाह ने 1438 ई० मे बनवाना प्रारंभ किया था और इसे 1442 ई० में इसकी बेगम राज़ीबीबी ने पूरा करवाया था।

जामा मसजिद एक ऊंचे चबूतरे पर बनी है जिस तक पहुँचने के लिए 27 सीढ़ियां हैं। दक्षिणी फाटक से प्रवेश करने पर 8वीं शती का एक संस्कृत लेख दिखलाई पड़ता है जो उलटा लगा हुआ है। इससे इस स्थान पर प्राचीन हिंदू मंदिर का विद्यमान होना सिद्ध होता है। दूसरा लेख तुगरा अक्षरों में अंकित है। मसजिद के पूर्वी फाटक को सिकंदर लोदी ने नष्ट कर दिया था। 1417 ई० में प्राचीन विजयचंद्रमंदिर के स्थान पर खालिस मुख्खलीस मसजिद (या चार उंगली मसजिद) को सुलतान इब्राहीम के अमीर ख़ालिसखां ने बनवाया था। इसके दरवाज़ों पर कोई सजावट नहीं है। मुख्य दरवाज़े के पीछे एक वर्गाकार स्थान चपटी छत से ढका हुआ है। यह छत 114 खंभों पर टिकी हुई है और ये खंभे दस पंक्तियों में विन्यस्त हैं। मुख्य द्वार के बाईं ओर एक छोटा काला पत्थर है जो जनश्रुति के अनुसार किसी भी मनुष्य के नापने से सदा चार अंगुल ही रहता है। नगर के दक्षिणी-पूर्वी कोण पर चंचकपुर या झंझर मसजिद थी जिसका केवल एक स्तंभ ही अवशिष्ट है। नगर के उत्तर-पश्चिम की ओर बेगमगंज ग्राम में मुहम्मदशाह की पत्नी राजी बीबी की मसजिद लालदरवाज़ा नाम से प्रसिद्ध है। इसकी बनावट जौनपुर की अन्य मसजिदों के समान ही है किंतु इसकी भित्तियां अपेक्षाकृत पतली हैं और केन्द्रीय गुंबद के दोनों ओर दो तले वाले छोटे कोष्ठ स्त्रियों के लिए बने हुए हैं। (राजी बीबी का देहान्त इटावा में 1477 ई० में हुआ था) इस मसजिद के पास इन्होंने एक ख़ानकाह, एक मदरसा और एक महल भी बनवाया था और सब इमारतों को परकोटे से घेर कर लाल रंग के पत्थर का फाटक लगवाया था। जौनपुर की सभी मसजिदों का नक़्शा प्रायः एक सा है। इनके बीच के खुले आँगन के चतुर्दिक् जो कोठरियां बनी हैं वे शुद्ध हिंदू शैली में निर्मित हैं। यही बात भीतर की वीथियों के लिए भी कही जा सकती है। हिंदू प्रभाव छोटे चौकोर स्तंभों और उन पर आधृत अनुप्रस्थ सिरदलों और सपाट पत्थरों से पटी छतों में पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है, किंतु मसजिदों के मुख्य दरवाज़े पूरी तरह से महराबदार हैं, जो विशिष्ट मुसलिम शैली है। ऐसा जान पड़ता है कि इन मसजिदों को बनाने में प्राचीन हिंदूमंदिरों की सामग्री काम में लाई गई थी और शिल्पी तथा निर्माता भी मुख्यतः हिंदू ही थे। इसीलिए हिंदू तथा मुसलिम शैलियों का मेल पूर्णरूपेण एकाकार न हो सका है। जौनपुर में गोमतीनदी के पुल का निर्माण कार्य मुग़ल सम्राट् अकबर ने 1564 ई० में प्रारंभ करवाया था। यह 1569 ई० में बनकर तैयार हुआ था। यह अकबर के सूबेदार मुनीम खां के निरीक्षण में बना था। जौनपुर के शर्की सुल्तानों के समय के तथा अन्य स्मारकों को लोदी वंश के मूर्ख तथा

धर्मांध सुलतान सिकंदर ने 1495 ई० में बहुत हानि पहुँचाई। इन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर उसने अपने दरबारियों के रहने के लिए निवासस्थान बनवाए थे। जौनपुर से ईश्वरवर्मन् मौखरी (सातवीं शती ई०) का एक तिथिहीन अभिलेख प्राप्त हुआ था जो खंडित अवस्था में है। इसमें धारानगरी तथा आंध्रदेश का उल्लेख (शायद ईश्वरवर्मा की विजयों के संबंध में) है किंतु इसका ठीक-ठीक अर्थ अनिश्चित है। इस अभिलेख से मौखरियों के राज्य का विस्तार जौनपुर के प्रदेश तक सूचित होता है। मौखरी-नरेश कन्नौजाधिप महाराज हर्ष के समकालीन थे।

जोहर=जवारि

ज्ञातक गणराज्य

पूर्वबौद्ध-कालीन गणराज्य जिसकी स्थिति वैशाली (ज़िला मुजफ़्फ़रपुर, बिहार) के क्षेत्र में थी। जैनों के तीर्थंकर महावीर जो गौतम बुद्ध के सम-कालीन थे, इसी राज्य के राजकुमार थे।

ज्येष्ठिल

ज्येष्ठिला नदी के तट पर तीर्थस्थान—'अथज्येष्ठिलामासाद्य तीर्थं परम दुर्लभम्'। इसका चंपकारण्य के पश्चात् उल्लेख है। दे० **ज्येष्ठिला, चंपकारण्य।**

ज्येष्ठिला

'तृतीया ज्येष्ठिला चैव शोणश्चापि महानदः, चर्मण्वती तथा चैव पर्णाशा च महानदी'—महा० सभा० 9,21. यहां शोण या सोन के साथ इस नदी का वर्णन है जिससे वन० 85,8 में उल्लिखित ज्योतिरथ्या, और ज्येष्ठिला एक ही जान पड़ती हैं। ज्येष्ठिला सोन की सहायक नदी—वर्तमान जोहिला है जैसा नाम-साम्य से भी प्रकट है। वन० 84,134 में उल्लिखित तीर्थ ज्येष्ठिल इसी नदी के तट पर सम्भवतः ज्येष्ठिला-शोण संगम पर अवस्थित रहा होगा।

ज्योतिरथ्या

शोण (=सोन, जो म० प्र० और बिहार में बहती है) की एक उपनदी। इन दोनों के संगम पर प्राचीन काल में एक तीर्थ था जिसका निर्देश महाभारत, वन० 85,8 में है—'शोणस्यज्योतिरथ्यायाः संगमे नियतः शुचिः तर्पयित्वापितॄन देवानग्निष्टोमफलंलभेत्'। बहुत संभव है कि ज्योतिरथ्या सभा० 9,21 में उल्लिखित ज्येष्ठिला है जिसका शोण के साथ ही उल्लेख है। यदि यह अभिज्ञान ठीक है तो ज्योतिरथ्या और ज्येष्ठिला वर्तमान जोहिला के ही प्राचीन नाम होने चाहिए।

ज्योतिर्मठ=जोशीमठ

ज्वाला (नदी)

इस नदी का उद्गम अमरकंटक से 4 मील उत्तर की ओर है जहां ज्वालेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर स्थित है। इस नदी का स्कंदपुराण, रेवाखंड में उल्लेख है।

झर्दा (म० प्र०)

इस स्थान पर पूर्वमध्ययुगीन इमारतों के ध्वंसावशेष स्थित है।

झांसी (उ० प्र०)

झांसी मध्यकालीन नगर है। यहां का दुर्ग ओड़छा-नरेश वीरसिंहदेव बुंदेला का बनवाया हुआ है। इसको 1744 ई० में मराठा सरदार नारूशंकर ने परिवर्धित किया था और इसकी प्राचीर शिवराव भाऊ ने बनवाई थी (1796-1814 ई०)। ओड़छा के राजा छत्रसाल ने जैतपुर के युद्ध के पश्चात्, झांसी का इलाका बाजीराव पेशवा को दे दिया था। इस प्रकार झांसी व परिवर्ती प्रदेश मराठों के हाथ में आया और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के पति गंगाधर राव के पूर्वजों ने यहां स्वतत्र रियासत स्थापित की। 1857 ई० से पहले डलहौज़ी ने झांसी की रानी के दत्तकपुत्र दामोदर रावको स्वीकृति प्रदान करने से इन्कार कर दिया जिसके कारण रानी झांसी से अंग्रेजों का विरोध ठन गया और लक्ष्मीबाई की वीरता एवं शौर्य और स्वतंत्रता के लिए बलिदान होने की कहानी भारतीय इतिहास के पन्नों में अमिट अक्षरों में लिखी गई। झांसी का क़िला नगर के निकट ही स्थित है। इसमें लक्ष्मीबाई का निवास-स्थान था। इसके भीतर रानी का निजी महादेव-मंदिर तथा उसका रमणीक उद्यान स्थित है। वह स्थान भी क़िले के परकोटे पर है जहां से अंग्रेज़ी सेना के किला घेर लेने पर हताश होकर रानी अपने प्रिय घोड़े पर सवार होकर नीचे कूद गई थी और फिर बिना रुके रातों-रात कालपी जा पहुंची थी। क़िले पर जगह-जगह वे झरोखे भी दिखाई देते हैं जहां से रानी की सेना ने, जिसमें उसकी स्त्रीसेना भी थी, बाहर स्थित अंग्रेजी सेनाओं पर गोलाबारी की थी। लक्ष्मीबाई का एक अन्य प्रासाद नगर में था जो अब कोतवाली का भवन कहलाता है। इसमें वह झांसी के छोड़ने के पूर्व रहती थी। उसके पति गंगाधर राव की समाधि नगर में है। इसके अतिरिक्त राजचंद्रराव की समाधि, मेंहदी बाग़, लक्ष्मी मंदिर आदि ऐतिहासिक महत्व के स्थल हैं। लक्ष्मीमंदिर के निकट अनेक मध्यकालीन मूर्तियां हैं जिनमें विष्णु, इन्द्र और देवी की प्रतिमाएं कलापूर्ण हैं।

झारखंड

उडीसा का एक भाग जिसका उल्लेख मध्ययुगीन साहित्य में मिलता है —'मेवार ढ़ुंडार मारवाड औ बुंदेलखड झारखंड बांधौ धनी चाकरी इलाज की;—शिवराजभूषण–111. यह नाम अब भी प्रचलित है। संभवतः घने जंगलों का इलाका होने से ही यह झारखंड (झाड़=वृक्ष+खंड=प्रदेश) कहलाता है।

झूसी (जिला इलाहाबाद)

प्रयाग में गंगा के दूसरे तट पर अतिप्राचीन स्थान है। इसका पूर्व नाम प्रतिष्ठान या प्रतिष्ठानपुर था। प्रतिष्ठान का तीर्थ के रूप में उल्लेख महाभारत में है—'एवमेत्र महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता'—वन० 85,114. यहां चंद्रवंशी राजाओं की राजधानी थी। पौराणिक कथा के अनुसार चंद्रवंश में पुरुरवा एल प्रथम राजा हुए जो मनु की पुत्री इला के पुत्र थे। (एक किंवदंती है कि इलाहाबाद का प्राचीन नाम इलावास था जिसे अकबर ने इलाहाबाद कर दिया था) इनके वंशज ययाति के पांच पुत्रों में से पुरु ने प्रतिष्ठानपुर और उसके समीपवर्ती प्रदेश पर सर्वप्रथम अपना शासन स्थापित किया था। झूसी मे प्रागैतिहासिक काल की कई गुफ़ाएं भी हैं। प्राचीनकाल के खंडहर दो ढूहों के रूप में झूसी रेलवे स्टेशन से एक मील दक्षिण पश्चिम की ओर अवस्थित हैं। एक ढूह के ऊपर समुद्रकूप नामक एक प्रसिद्ध प्राचीन कूप है।

झेलम

पंजाब की प्रसिद्ध नदी झेलम का वैदिक नाम वितस्ता था। इस नाम के कालांतर में कई रूपांतर हुए जैसे पंजाबी में बिहत या बीहट, कश्मीरी में व्यथ, ग्रीक भाषा में हायडेसपीज़ (Hydaspes) आदि। संभवतः, सर्वप्रथम मुसलमान इतिहास लेखकों ने इस नदी को झेलम कहा क्योंकि यह पश्चिमी पाकिस्तान के प्रसिद्ध नगर झेलम के निकट बहती थी और नगर के पास ही नदी को पार करने के लिए शाही घाट या शाह गुजर बना हुआ था। इस प्रकार इस नगर के नाम पर नदी का वर्तमान नाम प्रसिद्ध हो गया। झेलम का जो प्रवाह मार्ग प्राचीन काल में था प्रायः अब भी वही है केवल चिनाब-झेलम संगम का निकटवर्ती मार्ग काफी बदल गया है (दे० रेवर्टी दि मिहरान ऑव सिंध एंड इट्ज़ ट्रिब्यूट्रीज़—पृ० 329-32; जर्नल एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, भाग 1, 1892, पृ० 318.)

टंकारा (मोरवी, काठियावाड़, गुजरात)

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्मस्थान के रूप में

यह छोटा सा ग्राम प्रसिद्ध है। इनका जन्म 1824 ई० में हुआ था। टंकारा डेमी नदी के तट पर बसा हुआ है।

टंडवा (ज़िला गौंडा, उ० प्र०)

यह स्थान सहेतमहेत (श्रावस्ती) से 8 मील पश्चिम की ओर स्थित है जहां किंवदंती के अनुसार अंतिम बुद्ध कश्यप ने जन्म लिया था। यहां एक प्राचीन स्तूप के चिह्न भी दिखाई देते हैं। फ़ाह्यान ने इसी स्थान पर एक बड़े स्तंभ का वर्णन किया है संभवतः जिसके खंडहर भी यहां मिले हैं। डूह के उत्तर में एक मील लंबा ताल है जिसे सीता दोहर कहते हैं। दे० **सीतादोहर**।

टिकरी (ज़िला सुलतानपुर, उ० प्र०)

इस स्थान से बौद्धकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनका अनुसंधान पूर्णरूप से अभी नहीं हुआ है।

टिपारा (बंगाल)

प्राचीन नाम त्रिपुरा। प्राचीन काल में इसकी स्थिति कामरूप में मानी जाती थी—(दे० तारातंत्र)

टीप (ज़िला बिजनौर, उ० प्र०)

यह खेड़ा मंडावर के निकट स्थित है। यहां कुषाणवंशीय शैव नरेश वासुदेव का एक सिक्का मिला था जिससे इस बस्ती की प्राचीनता सिद्ध होती है। **मंडावर** (=मतिपुर) स्वयं भी बहुत प्राचीन कस्बा है।

टोटाणा दे० **तौषायण**

टोडायूर (मद्रास)

एक प्राचीन शिवमंदिर यहां का मुख्य स्मारक है। इसमें कणाश्म या ग्रेनाइट का सुंदर फ़र्श है और स्तंभ विशेष रूप से कलापूर्ण शैली में बने हैं। मंदिर का जीर्णोद्धार 1955-56 में पुरातत्व विभाग द्वारा किया गया था।

टोडारामसिंह (राजस्थान)

हाड़ा रानी का कुंड यहां का प्राचीन स्मारक है। यह राजस्थान की मध्ययुगीन शिल्प कला का सुंदर उदाहरण है।

टौंस

तमसा नदी अयोध्या (उ०प्र०) से प्रायः 12 मील दक्षिण की ओर बहती हुई लगभग 36 मील की यात्रा के पश्चात् अकबरपुर के पास बिस्वी नदी में मिल जाती है। इस स्थान के पश्चात् संयुक्त नदी की धारा का नाम टौंस हो जाता है। टौंस तमसा का ही बिगड़ा हुआ रूप है। तसमा का रामायण में उल्लेख है। दे० **तमसा**।

ट्रावनकोर = तिरुवांकुर

ठट्ठा (सिंध, पाकिस्तान)

यह नगर 1340 ई० में बसाया गया था। उत्तरमध्यकाल तथा मुगलों के शासनकाल में ठट्ठा, सिंध प्रांत का एक प्रमुख नगर था। मुहम्मद तुग़लक की मृत्यु 1351 ई० में इसी स्थान के निकट हुई थी।

डभाल = डाभाल

जबलपुर (म० प्र०) का परिवर्ती क्षेत्र। पांचवीं शती ई० के अंतिम तथा छठी शती ई० के प्रारंभिक वर्षों में यहां परिव्राजक महाराजाओं का शासन था। इनके अनेक अभिलेख इस प्रदेश से प्राप्त हुए हैं जिनमें डभाल या डाभाल का नामोल्लेख है। परवर्तीकाल में इसे डाहाल भी कहते थे। त्रिपुरी इसी के अन्तर्गत थी। खोह दानपट्ट से ज्ञात होता है कि परिव्राजक महाराज हस्तिन् को डभाल तथा अन्य अट्ठारह राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे। राजपूतों के उत्कर्षकाल में डभाल में हैहय अथवा त्रिपुरी के कलचुरियों का राज्य था। दे० **डाहल**

डलमऊ (ज़िलाराय बरेली, उ० प्र०)

रायबरेली से 44 मील दूर यह छोटी सी अतिप्राचीन बस्ती है। कहा जाता है कि यहां प्राचीनकाल में दालभ्य ऋषि का आश्रम था और इस स्थान का नामकरण इन्हीं के नाम पर हुआ था। यहां एक क़िले के खंडहर हैं जो वास्तव में दो बौद्ध स्तूपों के ध्वंसावशेष हैं।

डहल = डाहल

डहलमंडल दे० डाहल

डाकोर (ज़िल खेड़ा, गुजरात)

यह छोटा सा ग्राम गुजरात का एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ है। कहा जाता है कि 1235 ई० में कृष्णभक्त बुढ़ान नामक ब्राह्मण ने रणछोड़ जी की मूर्ति को यहां प्रतिष्ठापित किया था।

डाभाल दे० डभाल

डामन = दमन

डावक

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में डावक का उल्लेख साम्राज्य के प्रत्यन्त देशों के प्रसंग में किया गया है—'समतट डावक कामरूप नेपाल कृतपुरादि प्रत्यन्त नृपतिभिः'—डावक का अभिज्ञान पूर्व बंगाल (पाकि०) के ढाका तथा उत्तरी-ब्रह्मदेश के टगांग के निकटस्थ प्रदेश के साथ किया गया है।

डावक, समुद्रगुप्त के साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर स्थित था।

डाहल = डाहाल

बुंदेलखंड में ज़िला जबलपुर का निकटवर्ती भाग, जिसका गुप्तकालीन नाम डभाल या डाभाल था। परवर्ती काल में जब यहां त्रिपुरी के कलचुरियों का राज्य था, इसे डहल या डाहल कहते थे। मलकापुर अभिलेख के अनुसार गंगा और नर्मदा के बीच का प्रदेश डहलमंडल कहलाता था—'भागीरथी नर्मदयोर्मध्यं डहलमंडलम्।'

डिबाई (जिला बुलंदशहर, उ० प्र०)

यह नगर 1029 ई० में डुंडगढ़ नामक एक प्राचीन बस्ती के खंडहरों पर बसाया गया था। एक किले के अवशेष यहां मिले हैं जो निश्चितरूप से डुंडगढ़ की पुरानी गढ़ी के परिचायक हैं।

डीग (ज़िला भरतपुर, राजस्थान)

मथुरा-भरतपुर मार्ग पर, आगरे से 44 मील पश्चिमोत्तर में, और भरतपुर से 22 मील उत्तर की ओर स्थित है। यह नगर लगभग सौ वर्षों से उपेक्षित अवस्था में है किंतु आज भी यहां भरतपुर के जाट-नरेशों के पुराने महल तथा अन्य भवन अपने भव्य सौंदर्य के लिए विख्यात हैं। नगर के चतुर्दिक् मिट्टी की चहारदिवारी है और उसके चारों ओर गहरी खाई है। मुख्य द्वार शाहबुर्ज कहलाता था। यह स्वयं ही एक गढ़ी के रूप में निर्मित था। इसकी लंबाई-चौड़ाई 50 गज़ है। प्रारंभ में यहां सैनिकों के रहने के लिए स्थान था। मुख्य दुर्ग यहां से एक मील है जिसके चारों ओर एक सुदृढ़ प्राकार है। बाहर किले के चतुर्दिक् मार्गों की सुरक्षा के लिए छोटी-छोटी गढ़ियां बनाई गई थीं जिनमें गोपालगढ़ जो मिट्टी का बना हुआ किला है सबसे अधिक प्रसिद्ध था। शाहबुर्ज से यह कुछ ही दूर पर है। इन किलों की मोर्चाबंदी के अंदर डीग का सुंदर सुसज्जित नगर था जो अपने वैभवकाल में (18वीं शती में) मुग़लों की तत्कालीन अस्तोन्मुख राजधानियों दिल्ली तथा आगरे के मुकाबले में कहीं अधिक शानदार दिखाई देता था। भरतपुर के राजा बदनसिंह ने दुर्ग के अंदर पुराना महल नामक सुंदर भवन बनवाया था। बदनसिंह के उत्तराधिकारी राजा सूरजमल के शासन काल में 7 फ़र्वरी 1960 ई० को बर्बर आक्रांता अहमदशाह अब्दाली ने डीग पर आक्रमण किया किंतु सौभाग्य से वह यहां अधिक समय तक न टिका और मेवात की ओर चला गया। जवाहरसिंह ने जब अपने पिता सूरजमल के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसने डीग में ही स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित किया था। डीग का प्राचीन नाम दीर्घवती कहा जाता है।

डुग्गर

जम्मू (कश्मीर) का इलाका। संभवतः महाभारत सभा० 52,13 में इस प्रदेश को दार्व नाम से अभिहित किया गया है—'कैराताः दरदा दार्वाः शूरा-वैयमकास्तथा, औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा बाह्लिकैः सह'। संभवतः डुग्गर (डोगरा राजपूतों का मूल निवासस्थान) दार्व का ही अपभ्रंश है।

डेगलूर (ज़िला नन्देड़, महाराष्ट्र)

गंडा-महाराज के प्राचीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

डेमी

(सौराष्ट्र, गुजरात) प्राचीन दधिमती।

डेमेट्रिओपोलिस दे० **दत्तामित्री**

डोंगरगढ़ (म० प्र०)

यह गोंदिया-कलकत्ता रेलमार्ग पर स्टेशन है। किंवदंती है कि यहां पहाड़ी पर किसी समय एक दुर्ग था जिसमें माधवानल-कामकन्दला नामक प्रसिद्ध उपाख्यान की नायिका कामकंदला का निवासस्थान था। इसी दुर्ग में कामकंदला की भेंट माधवानल से हुई थी। यह प्रेम-कहानी छत्तीसगढ़ में सर्वत्र प्रचलित है। डोंगरगढ़ की पहाड़ी पर प्राचीन मूर्तियों के अवशेष मिलते हैं। इसकी मूर्तिकला पर गोंड-संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। ये मूर्तियां अधिकांश में 15वीं-16वीं शती ई० में बनी थीं। स्टेशन के समीप की पहाड़ी पर विमलाईदेवी का सिद्धपीठ है। पहाड़ी के पीछे तपसी काल नामक एक दुर्ग है जिसके अंदर एक विष्णु मंदिर अवस्थित है। कुछ लोगों के मत में विमलाई देवी मैनाजाति के आदिनिवासियों की कुलदेवी है। धमतरी (ज़िला रायपुर) में भी इस देवी का थान है। छत्तीसगढ़ में विमलाई गढ़ नामक एक दुर्ग भी है जो इसी देवी के नाम पर प्रसिद्ध है। वास्तव में, छत्तीसगढ़ के कुछ इलाकों के आदिवासियों की इस देवी का स्थानीय संस्कृति में प्रमुख स्थान है।

डोंगरताल (ज़िला नागपुर, महाराष्ट्र)

गढ़मंडला के राजा संग्रामसिंह के बावन गढ़ों में डोंगरताल की भी गणना थी। इन्हीं गढ़ों के कारण इनका शासित प्रदेश गढ़मंडला कहलाता था। संग्रामसिंह अकबर की समकालीन वीरांगना दुर्गावती के श्वसुर थे।

डोमिनगढ़ (ज़िला बस्ती, उ० प्र०)

प्राचीन बौद्ध स्मारकों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। ज़िला बस्ती तथा नेपाल की सीमा पर बुद्ध के समय में लुंबिनी तथा कपिल-

वस्तु नामक प्रसिद्ध स्थान थे।

ड्यू

पश्चिमी समुद्रतट पर भूतपूर्व पुर्तगाली बस्ती। इसका प्राचीन नाम देव या देवबंदर था। इसे दीव भी कहते थे। इसका क्षेत्रफल 20 वर्ग मील है। पुर्तगाल को यह क्षेत्र 16वीं शती ई० में गुजरात के सुलतान से प्राप्त हुआ था। प्रारंभ में पुर्तगालियों ने अपनी भारतीय बस्तियों की राजधानी यहीं बनाई थी। उस समय यहां का व्यापार उन्नतिशील था तथा जनसंख्या भी पर्याप्त थी। कालांतर में राजधानी गोआ में बन जाने से ड्यू उजड़ गया और यहां का व्यापारिक महत्त्व भी जाता रहा। 1961 में यह स्थान भारत गणराज्य का अभिन्न अंग बन गया और पुर्तगालियो को अपनी सभी भारतीय बस्तियों से सदा के लिए बिदा लेनी पड़ी।

ढंकगिरि (गुजरात)

शत्रुंजयपर्वत का एक नाम। यह गुजरात के प्रसिद्ध प्राचीन नगर वल्लभीपुर के निकट स्थित है और जैनों का पवित्र स्थल है। सातवाहन के गुरु और पादलिप्त सूर के शिष्य सिद्ध नागार्जुन ढंकगिरि में रहकर रसविद्या या अलकीमिया की साधना किया करते थे। इस तथ्य का उल्लेख जैन-ग्रथ विविध तीर्थ कल्प (पृ० 104) में है—'ढंक पव्वए रायसी हराय उत्तस्स भोपाल नामियं धूअं रूप लावण्ण संपन्नं दटठूणं जायाणुरायस्स तं सेवमाणम्स वासु गिणोपूत्तोनागाज्जुणो नाम जाओ'।

ढकरानी (दे० बावड़ी)

ढाका (पूर्व पाकि०)

ढाकेश्वरी देवी के मंदिर के कारण इस नगर का नाम ढाका हुआ था—यह किंवदंती प्रसिद्ध है। गुप्त-सम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में डावक नामक स्थान का उल्लेख है जिसको साम्राज्य का प्रत्यंत देश कहा गया है। इसका अभिज्ञान ढाका के परिवर्ती प्रदेश के साथ किया गया है। संभव है ढाका डावाक का ही अपभ्रंश हो। ढाका मध्यकाल से उत्तर मुगलकाल तक सूती कपडे (मलमल) तथा चांदी और सोने के तार की वस्तुओं के लिए संसार-प्रसिद्ध था। मुसलमान बादशाहों के समय में बगाल की राजधानी भी ढाके में रही थी। पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच व्यापारियों ने 16वीं और 17वीं शतियों में अपनी व्यापारिक कोठियां भी यहां बनाई थीं।

ढकोली (जिला नैनीताल, उ०प्र०)

प्राचीन इमारतों के विशेष कर कत्यूरीनरेशों के शासनकाल के मंदिरों

तथा भवनों के खंडहरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि प्राचीन गोविषाण देश की राजधानी यहीं थी (किंतु दे० **गोविषाण**)

ढिल्लिका

दिल्ली का पुराना मध्ययुगीन नाम। 1327 ई० के एक अभिलेख में ढिल्लिका को हरियाना प्रदेश के अंतर्गत बताया गया है—'देशोस्ति हरियाणाख्या: पृथिव्यां स्वर्गसन्निभ:, ढिल्लिकाख्या पुरी यत्र तोमरैरस्ति निर्मिता' अर्थात् पृथिवी पर हरियाणा नामक स्वर्ग के समान देश है, यहां तोमर क्षत्रियों द्वारा निर्मित ढिल्लिका नाम की सुंदर नगरी है। (हरियाणा दक्षिणी पंजाब, रोहतक, हिसार आदि का इलाका है जो शायद अहीराना का बिगड़ा रूप है।) बाद में ढिल्लिका नाम का संबंध एक कपोलकल्पित कथा से जोड़ दिया गया जिसके अनुसार अनंगपाल के शासन काल में लोहे की लाट (=महरौली की चंद्र की लाट) के ढीली रह जाने के कारण ही इस नगरी को ढिल्लिका या ढिल्ली कहा गया। वास्तव में दिल्ली नाम की व्युत्पत्ति सर्वथा सदेहास्पद है किंतु जैसा कि उपर्युक्त अभिलेख से प्रमाणित होता है ढिल्लिका (या संभवत: ढिल्ली) नाम वास्तव में प्राचीन, कम से कम मध्ययुगीन तो है ही। दिल्ली के वास्तविक या मौलिक नाम का अनुसंधान करने में यह तथ्य बहुत सहायक सिद्ध होगा।

ढिल्ली दे० ढिल्लिका

ढुंढार

आमेर (जयपुर, राजस्थान) की रियासत का मध्ययुगीन तथा परवर्ती नाम जिसका उल्लेख तत्कालीन साहित्य तथा लोक कथाओं मे है—उदाहरणार्थ दे० शिवराज भूषण, छंद 111—'मेवार ढुंढार मारवाड़ औ बुंदेलखड, झारखड बांधौधनी चाकरी इलाज की'। कहा जाता है कि 1129 ई० के लगभग जब ग्वालियर से कछवाहों को परिहारों ने निष्कासित कर दिया तो उन्होंने आमेर के इलाके में मीनाओं की सहायता से ढुंढार रियासत की नीव डाली। ढुंढार के स्थान पर बाद में आमेर की प्रसिद्ध रियासत बनी। दे० **आमेर, जयपुर**।

तंगण

'मारुता धेनुकाश्चैव तंगणा: परतंगणा: बाह्लिकास्तित्तिराश्चैव चौला: पांड्याश्च भारत' महा० भीष्म 50,51. इस श्लोक में तंगणजाति के उल्लेख से ज्ञात होता है कि तंगणदेश भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा के परे स्थित होगा। सभा० 52-53 में भी तंगण और परतगण लोगों का उल्लेख है—'पारदाश्च पुलिंदाश्य तंगणा: परतंगणा':। यहां इन्हें मेरु और मंदिर पर्वतों के बीच में बहने वाली शैलोदा नदी के प्रदेश में बताया गया है। शैलोदा वर्तमान खोतन

नदी है। तंगणदेश के पार्श्व में परतंगण देश की स्थित रही होगी। श्री वा० श० अग्रवाल के मत में कुलु-कांगड़ा के पूरब का भोट क्षेत्र ही तंगण का इलाका था। (दे० कादंबिनी, अक्टूबर, 62)

तंजपुर=तंजौर

तंजौर (मद्रास)

पुराणों के अनुसार तंजौर का प्राचीन नाम तंजपुर है। तंज नामक राक्षस को विष्णु ने पेरुमल का रूप धारण करके मारा था। तंजपुर से ही तंजावर या तंजौर नाम बना है। तंजौर पाराशर-क्षेत्र के नाम से भी प्रसिद्ध है। प्राचीन परंपरा है कि दक्षिण भारत के लोग काशी की यात्रा के पश्चात् तंजौर अवश्य जाते हैं। तंजौर-नगर कावेरी नदी के दक्षिण की ओर बसा है। तंजौर में दो दुर्ग हैं। बड़ा दुर्ग नगर के उत्तर की ओर और छोटा जिसमें यहां का विख्यात मंदिर है, पश्चिम में है। पश्चिमोत्तर कोण में दोनों दुर्गों के सिरे मिल गए हैं। बड़े दुर्ग के भीतर नगर का प्रधान भाग और प्राचीन राजमहल है। छोटे किले में बड़े मंदिर के उत्तर में शिवगंगा नामक सरोवर है जिसके पास एक गिरजा बना हुआ है। इसके प्रवेश द्वार पर 1777 ई० अंकित है। राजमहल बड़े क़िले में है जिसका पहला भाग लगभग 1540 ई० का है। महल के आगे उत्तर की ओर बड़ा चौगान या प्रांगण है जिसके चतुर्दिक मकानों की पंक्तियां हैं। चौगान के पूर्व और उत्तर में प्रवेश द्वार हैं। मकानों में अनेक काशी के मकानों की शैली में बने हैं। राजप्रासाद से आधा मील दूर छोटे क़िले में, दक्षिण की ओर बृहदेश्वर का शिव-मंदिर है। मंदिर के तीन ओर क़िले की दीवार और खाई तथा उत्तर की ओर मैदान है। मंदिर के बाहर दीवार के भीतर लगभग 13 बीघा भूमि घिरी हुई है। मुख्य मंदिर 1025 ई० में बना था किंतु इसका विशाल गोपुर 16वीं० शती का है। स्तूपाकार शिखर में 13 तल हैं। इसका निचला भाग दोमंज़िला है और 80 फुट ऊंचा है। इसके ऊपर के विशाल शिखर में 11 तल या खन हैं। इसके सहित मंदिर की समस्त ऊंचाई 190 फुट हो जाती है। मंदिर की संरचना अति विशाल पत्थरों से निर्मित है। शिखर पर स्वर्ण-कलश चढ़ा हुआ है। कहा जाता है कि वह भीमकाय पत्थर जिस पर कलश आधृत है भार में 2200 मन है। यह तथ्य भी अनुमेय है कि मंदिर के भारी पत्थरों को पर्याप्त दूर से यहां तक लाने और ऊपर चढ़ाने में कितनी कठिनाई हुई होगी क्योंकि मंदिर के पास कहीं कोई प्रस्तर-खनि या पहाड़ी नहीं है। मंदिर का द्वार-मंडप नीचा ही है और शिखर गोपुरों तथा आस-पास के अन्य स्थानों से इतना अधिक ऊंचा है कि उसे देखने

वाले के मन में मंदिर के प्रति उच्च भावना तथा सम्मान का अनायास ही प्रादुर्भाव होता है। मंदिर में एक ही पत्थर से निर्मित नंदी की 16 फुट लंबी और 7 फुट चौड़ी विशाल मूर्ति है। बड़े मंदिर के पार्श्व में सुब्रह्मण्यम् या कार्तिकेय का मंदिर है जो 1150 ई० के लगभग बना था। इसके गोपुर की ऊंचाई 218 फुट है। दूसरा मंदिर रामनाथस्वामी का है जो जनश्रुति के अनुसार श्री रामचंद्र जी द्वारा स्थापित किया गया था। मंदिर का विशाल बरामदा 4000 फ़ुट लंबा है। तंजौर को मंदिरों की नगरी समझना चाहिए क्योंकि यहां 75 से अधिक छोटे बड़े देवालय है। पूर्व मध्यकाल में चोलसाम्राज्य की राजधानी के रूप में यह नगरी बहुत समय तक प्रख्यात रही। चोलों के पश्चात् तंजौर में नायक और मराठों ने राज्य किया था।

तंबपिट्ठ

(लंका) महावंश 28,16 में उल्लिखित लंका का एक प्राचीन नगर जिसका नाम इस स्थान से उत्पन्न होने वाले ताम्र के कारण ताम्रपीठ पड़ गया था। तंबपिट्ठ, ताम्रपीठ का अपभ्रंश है।

तंबवती

मध्यमिका (चित्तौड़) के स्थान पर बसी हुई प्राचीन नगरी। (दे० **मध्यमिका**)

तक्ष=तक्षशिला

तक्षशिला (जिला रावलपिंडी, प० पाकि०)

गंधारदेश की राजधानी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार गंधर्वदेश (जो गंधार विषय के अंतर्गत था) पर भरत ने अपने मामा युधाजित् के कहने से चढ़ाई करके गंधर्वों को हराया था और इस देश के पूर्वी और पश्चिम भागों में तक्षशिला और पुष्कलावत (पुष्कलावती) नामक नगरों को क्रमशः अपने पुत्र तक्ष और पुष्कल के नाम पर बसाया था—'तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलात्रते, गंधर्व देशे रुचिरे गांधार विषये ये च सः' वाल्मीकि० उत्तर० 101-11। कालिदास ने रघुवंश 15,89 में भी इसी तथ्य का उल्लेख किया है —'स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्यौ तदाख्ययौ, अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात् पुनः।' तक्षशिला का वर्णन महाभारत में, परीक्षित के पुत्र जनमेजय द्वारा विजित नगरी के रूप में है। यहीं जनमेजय ने प्रसिद्ध सर्पयज्ञ किया था। छठी शती ई० पू० के पूर्व पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में भी तक्षशिला का उल्लेख किया है। बौद्धसाहित्य, विशेष कर जातकों में तक्षशिला का अनेक बार उल्लेख है। तेलपत्त और सुसीमजातक में तक्षशिला को काशी से 2000 कोस

दूर बताया गया है। जातकों में (दे० उद्यालक तथा सेतकेतु जातक) तक्षशिला के महाविद्यालय की भी अनेक बार चर्चा हुई है। यहां अध्ययन करने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते थे। भारत के ज्ञात इतिहास का यह सर्वप्राचीन विश्वविद्यालय था। यहां, बुद्धकाल में कोसल-नरेश प्रसेनजित्, कुशीनगर का बंधुलमल्ल, वैशाली का महाली, मगधनरेश बिंबिसार का प्रसिद्ध राजवैद्य जीवक, एक अन्य चिकित्सक कौमारभृत्य तथा परवर्ती काल में चाणक्य तथा वसुबंधु इसी जगत्-प्रसिद्ध महाविद्यालय के छात्र रहे थे। इस विश्वविद्यालय में राजा और रंक सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार होता था। जातककथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि तक्षशिला में धनुर्वेद तथा वैद्यक तथा अन्य विद्याओं की ऊंची शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था में यहां शिक्षा के लिए प्रवेश करते थे। एक शिक्षक के नियंत्रण में बीस या पच्चीस विद्यार्थी रहते थे। शिक्षकों का निरीक्षक दिशाप्रमुख आचार्य (दिसापामोक्खाचारियो) कहलाता था। काशी के एक राजकुमार का भी तक्षशिला में जाकर अध्ययन करने का उल्लेख एक जातक कथा में है। कुंभकारजातक में नग्नजित् नामक राजा की राजधानी तक्षशिला में बताई गई है। अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण करने के समय यहां का राजा आंभी (Omphis) था जिसने अलक्षेंद्र को पुरु के विरुद्ध सहायता दी थी। महावंशटीका में अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध रचयिता चाणक्य को तक्षशिला का निवासी बताया गया है। चाणक्य ने प्राचीन अर्थशास्त्रों की परंपरा में आंभीय के अर्थशास्त्र की चर्चा की है, टॉमस के अनुसार आंभीय का संबंध तक्षशिला ही से रहा होगा (दे० टॉमस—बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र-भूमिका पृ० 15) चाणक्य स्वयं भी तक्षशिला विद्यालय में आचार्य रहे थे। उन्होंने अपने परिष्कृत एवं विकसित मस्तिष्क द्वारा भारत की तत्कालीन राजनैतिक दुरवस्था को पहचाना तथा उसके प्रतीकार के लिए महान् प्रयत्न किया जिसके फलस्वरूप विशाल मौर्य-साम्राज्य की स्थापना हुई। बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि तक्षशिला विश्वविद्यालय धनुर्विद्या तथा वैद्यक की शिक्षा के लिए तत्कालीन सभ्य संसार में प्रसिद्ध था। जैसा ऊपर कहा गया है, गौतम बुद्ध के समकालीन मगध-सम्राट् बिंबसार का राजवैद्य जीवक इसी महाविद्यालय का रत्न था।

तक्षशिला का प्रदेश अतिप्राचीन काल से ही विदेशियों द्वारा आक्रान्त होता रहा है। ईरान के सम्राट् दारा के 520 ई० पू० के अभिलेख में पंजाब के पश्चिमी भाग पर उसकी विजय का वर्णन है। यदि यह तथ्य हो तो तक्षशिला भी इस काल में ईरान के अधीन रही होगी। पाणिनि ने 4,3,93 में तक्षशिला का उल्लेख किया है। अलक्षेंद्र के इतिहासलेखकों के अनुसार 327 ई० पू०

में इस देश के निवासी सुखी तथा समृद्ध थे। लगभग 320 ई० पू० में उत्तरी-भारत के अन्य सभी क्षुद्र राज्यों के साथ ही तक्षशिला भी चन्द्रगुप्तमौर्य द्वारा स्थापित साम्राज्य में विलीन हो गयी। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार बिंदुसार के शासनकाल में तक्षशिला के निवासियों ने विद्रोह किया किंतु इस प्रदेश के प्रशासक अशोक ने उस विद्रोह को शांतिपूर्वक दबा दिया। अशोक के राज्य-काल मे तक्षशिला उत्तरापथ की राजधानी थी। कुणाल की करुणाजनक कहानी की घटनास्थली तक्षशिला ही थी, जिसका स्मारक कुणालस्तूप आज भी यहाँ विद्यमान है। अशोक के पश्चात् उत्तर-पश्चिमी भारत में बहुत समय तक राजनैतिक अस्थिरता रही। बैक्ट्रिया या बल्ख के यूनानियों (232–100ई० पू०) तथा शक या सिथियनों (प्रथम शती ई०) तथा तत्पश्चात् पार्थियनों और कुषाणों ने तीसरी शती ई० तक तक्षशिला तथा पार्श्ववर्ती प्रदेशों पर राज्य किया। चौथी शती ई० में तक्षशिला गुप्तसम्राटों के प्रभावक्षेत्र में रही किंतु पांचवीं शती ई० में होने वाले बर्बर हूणों के आक्रमणों ने तक्षशिला की सारी प्राचीन समृद्धि और सभ्यता को नष्ट कर दिया। सातवीं शती ई० के तृतीय दशक में चीनी यात्री युवानच्वांग ने तक्षशिला को उजाड़ पाया था। उसके लेख के अनुसार उस समय तक्षशिला कश्मीर का एक करद राज्य था। इसके पश्चात् तक्षशिला का अगले 1200 वर्षों का इतिहास विस्मृति के अंधकार में विलीन हो जाता है। 1863 ई० में जनरल कनिंघम ने तक्षशिला को यहां के खंडहरों की जांच करके खोज निकाला। तत्पश्चात् 1912 से 1929 तक, सर जॉन मार्शल ने इस स्थान पर विस्तृत खुदाई की और प्रचुर तथा मूल्यवान् सामग्री का उद्घाटन करके इस नगरी के प्राचीन वैभव तथा ऐश्वर्य की क्षीण झलक इतिहासप्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत की। उत्खनन से तक्षशिला में तीन प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं, जिनके वर्तमान नाम भीर का टीला, सिरकप तथा सिरसुख हैं। सबसे पुराना नगर भीर के टीले के आस्थान पर था। कहा जाता है कि यह पूर्व बुद्ध-कालीन नगर था जहां तक्षशिला का प्रख्यात विश्वविद्यालय स्थित था। सिरकप के चारों ओर परकोटे की दीवार थी। यहाँ के खंडहरों से अनेक बहुमूल्य रत्न तथा आभूषण प्राप्त हुए हैं जिनसे इस नगरी के इस भाग की जो कुशान राज्यकाल से पूर्व का है, समृद्धि का पता चलता है। सिरसुख जो संभवत: कुशान राजाओं के समय की तक्षशिला है, एक चौकोर नक्शे पर बना हुआ था। इन तीन नगरों के खंडहरों के अतिरिक्त, तक्षशिला के भग्नावशेषों में अनेक बौद्धबिहारों की नष्ट-भ्रष्ट इमारतें और कई स्तूप हैं जिनमें कुणाल, धर्मराजिक और भल्लार मुख्य हैं। इनसे बौद्धकाल में,

इस नगरी का बौद्धधर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र होना प्रमाणित होता है। तक्षशिला प्राचीन काल में जैनों की भी तीर्थस्थली थी। पुरातन प्रबंधसंग्रह नामक ग्रंथ में (पृ० 107) तक्षशिला के अंतर्गत 105 जैन-तीर्थ बताए गए हैं। इसी नगरी को संभवतः तीर्थमाला चैत्यवंदन में धर्मचक्र कहा गया है (दे० एंशेंट जैन हिम्स, पृ० 55)

तगारा (जिला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

यूनानी इतिहासकार एरियन के अनुसार तगारा एरियाका नामक जिले का मुख्य स्थान था और तगारा और प्लिथान (=पैठान) दक्षिण भारत की मुख्य व्यापारिक मंडियां थीं। दक्षिण के सब भागों का व्यापारिक सामान तगारा में लाया जाता था और फिर वहाँ से बेरीगाजा (=भृगुकच्छ या भड़ौच) के बंदरगाह को गाड़ियों द्वारा भेजा जाता था। भौगोलिक टॉलमी ने तगारस और प्लिथान दोनों को गोदावरी के उत्तर में बताया है। प्लिथान तो अवश्य ही पैठान या प्राचीन प्रतिष्ठान है। तगारा का अभिज्ञान ठीक-ठीक नहीं हो सका है। एरियन और टॉलमी ने यह भी लिखा है कि तगारा पैठान से 10 दिन की यात्रा के पश्चात् पूर्व में मिलता था और पेरिप्लस के अनुसार तगारा की मंडी में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त समुद्रतट से अति सुन्दर तथा बारीक कपड़ा मलमल आदि भी आता था। इससे यह जान पड़ता है कि यह स्थान गोदावरी पर स्थित नन्देड़ के समीप होगा और इसका व्यापारिक संबंध कलिंग देश से रहा होगा जहां का बारीक कपड़ा बौद्ध-काल में प्रसिद्ध था। (दे० तेर)

तत्तदेश

(बर्मा) प्राचीन भारतीय उपनिवेश जिसमें अरिमर्दनपुर या वर्तमान पागन नगर स्थित था। यह नगर 849 ई० में स्थापित हुआ था। ताम्रद्वीप या पागन नामक रियासत भी तत्त (तत्त्व?) देश में सम्मिलित थी।

तपोगिरी

रामटेक (ज़िला नागपुर, महाराष्ट्र) का प्राचीन नाम है। वनवास-काल में श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मण के साथ यहां कुछ दिन ठहरे थे—ऐसी किंवदंती प्रचलित है। यहां प्राचीन काल में अनेक तपस्वियों के आश्रम थे जो इसके नामकरण का कारण है।

तपोदा

राजगृह (=राजगीर, बिहार) के निकट बहने वाली नदी जिसे अब सरस्वती कहते हैं। इस क्षेत्र में गर्म पानी के सोते हैं जिनके कारण ही इस नदी का नाम

तपोदा पड़ा है। गौतम बुद्ध के समय तपोदाराम नामक उद्यान इसी नदी के तट पर स्थित था। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार मगध-सम्राट् बिंबिसार प्रायः इस नदी में स्नान करने के लिए जाया करते थे।

तबरहिंद

भटिंडा (पंजाब) को कुछ अरब इतिहास लेखकों ने जिनमें अलउतबी भी है—तबर-हिंद नाम से उल्लिखित किया है। पहले सुबुक्तगीन और फिर महमूद गज़नवी ने भटिंडा पर आक्रमण किया था। उस समय यहां का राजा जयपाल था जिसने उत्तर भारत के कई प्रमुख राज्यों की सहायता से आक्रमण-कारियों का डट कर सामना किया था।

तमसा

(1) अयोध्या (उ० प्र०) के निकट बहने वाली छोटी नदी जिसका उल्लेख रामायण में है। वन को जाते समय श्रीराम, लक्ष्मण और सीता ने प्रथम रात्रि तमसा तीर पर ही बिताई थी—'ततस्तुतमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः, सीतामुद्वीक्ष्य सौमित्रमिदंवचनमब्रवीत्। इयमद्य निशापूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनं वनवासस्य भद्रंते न चोत्कंठितुमर्हसि'— वाल्मीकि० अयो० 46,1-2। वाल्मीकि० अयो० 45,32-33; 46,16; 46,28 आदि में भी तमसा का उल्लेख है। अयोध्या० 46,28 में वाल्मीकि ने तमसा को '(शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसा-मतरन्नदीम्') शीघ्र प्रवाहिनी तथा भँवरों वाली गहरी नदी कहा है। कालिदास ने रघुवंश 9,72-75 में, तपस्वी श्रवण की मृत्यु तमसा के तट पर वर्णित की है। उन्होने तमसा के तीर पर तपस्वियों के आश्रमों का भी उल्लेख किया है किंतु वाल्मीकि; अयो० 63,36 में इस दुर्घटना का सरयू के तट पर उल्लेख किया गया है - 'अपश्यनिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम्, अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम्'। वास्तव में सरयू और तमसा दोनों ही नदियां अयोध्या के निकट कुछ दूर तक पास पास ही बहती हैं। रघुवंश 14,76 के वर्णन से विदित होता है कि वाल्मीकि का आश्रम, जहां राम द्वारा निर्वासित सीता रही थीं, तमसा के तट पर स्थित था—'अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोपहंत्रीं तमसा-मवगाह्य,तत्सैकतोत्संगबलिक्रियाभि संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः'। अयोध्या से इस आश्रम को जाते समय लक्ष्मण ने सीतासहित गंगा को पार किया था; (रघु० 14,52)। रघु० 9,20 में तमसा का उल्लेख सरयू के साथ है—'क्रतुपु तेन विसर्जितमौलिना भुज समाहृत दिग्वसुनाकृताः कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो वितमसातमसा सरयूतटाः। रघु० 9,72 में भी तमसा को अयोध्या के निकट कहा गया है—'तमसां प्राप नदीं तुरंगमेण'। भवभूति ने उत्तररामचरित में

तमसा का सुन्दर वर्णन किया है और वाल्मीकि का आश्रम, कालिदास की भांति ही, तमसा नदी के तट पर बताया है—'अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यं दिनसवनायनदीं तमसामनुप्रपन्नः'। इस तथ्य की पुष्टि वाल्मीकि० आदि०, 2,3-4 से भी होती है—'स मुहूर्तगते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा जगाम तमसा-तीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः। सतु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा, शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्टवा तीर्थमकर्दमम्'। तमसा नदी के तट पर ही वाल्मीकि ने निषाद द्वारा मारे जाते हुए क्रौंच को देखकर करुणार्द्र स्वरों में अनजाने में ही संस्कृत लौकिक साहित्य के प्रथम श्लोक की रचना की थी जिससे रामायण की कथा का सूत्रपात हुआ। तुलसीदास ने तमसा का वर्णन राम की वनयात्रा तथा भरत की चित्रकूट-यात्रा के प्रसंग में किया है—'तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ' तथा 'तमसा प्रथम दिवस करिवासू, दूसर गोमति तीर निवासू'—। आजकल तमसा नदी अयोध्या (ज़िला फ़ैज़ाबाद, उ० प्र०) से प्रायः बारह मील दक्षिण में बहती हुई लगभग 36 मील की यात्रा के पश्चात् अकबरपुर के पास बिस्वी नदी में मिल जाती है। इस स्थान के पश्चात् संयुक्त नदी का नाम टौंस हो जाता है जो तमसा का ही अपभ्रंश है। तमसा नदी पर अयोध्या से कुछ दूर पर वह स्थान बताया जाता है जहां श्रवण की मृत्यु हुई थी। अयोध्या से प्रायः 12 मील दूर तरडीह नामक ग्राम है जहां स्थानीय किंवदंती के अनुसार श्रीराम ने वनवास यात्रा के समय तमसा को पार किया था। वह घाट आज भी रामचौरा नाम से प्रख्यात है। टौंस ज़िला आजमगढ़ में बहती हुई बलिया के पश्चिम में गंगा में मिल जाती है।

2—(म० प्र०) मह्यर के पहाड़ों से निकल कर बुंदेलखंड के इलाक़े में बहने वाली एक नदी जिसका उल्लेख महाराज सर्वनाथ के खोह अभिलेख (512 ई०) में है। इस नदी के तट पर आश्रमक नामक ग्राम का भी उल्लेख इस अभिलेख में है।

तमसावन

जलंधर (पंजाब) से लगभग 24 मील पश्चिम की ओर स्थित था। गुप्त-काल में यहां एक बौद्धविहार था जो उस समय काफ़ी प्राचीन हो चुका था। किंवदंती के अनुसार कात्यायनीपुत्र ने तथागत के निर्माण के पश्चात् यहीं अपने शास्त्र की रचना की थी। सर्वास्तिवादी भिक्षुओं का यह विशेष केंद्र था। अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप भी यहां स्थित था। 7वीं शती में युवानच्वांग यहां आया था। उसने यहां के विहार में 3000 सर्वास्तिवादी भिक्षुओं का निवास बताया है।

तरंग दे० तारणगढ़

तरखान

इसका प्राचीन नाम त्र्यक्ष है जिसका वर्णन महा० सभा० 51,17 में है। यह बदख्शां (द्व्यक्ष) के निकट था।

तरडीह (जिला फ़ैजाबाद, उ० प्र०)

अयोध्या से 12 मील दूर टौंस या प्राचीन तमसा नदी पर यह ग्राम है जहां रामचौरा घाट पर राम-लक्ष्मण-सीता ने बन जाते समय इस नदी को पार किया था। दे० तमसा।

तरनतारन (पंजाब)

अमृतसर से 12 मील दूर पर स्थित है। इस स्थान पर वियास और सतलज का संगम है। कहा जाता है कि जहांगीर के शासनकाल में सिखों के गुरु अर्जुन ने इस स्थान का तीर्थरूप में प्रतिष्ठापन किया था।

तरायन=तरावड़ी (जिला करनाल, हरियाणा)

यह स्थान थानेसर से 14 मील दक्षिण में स्थित है। 1009-10 में कुछ दिनों तक यहां महमूदगजनी का अधिकार रहा। तत्पश्चात् यहां मु० गोरी और चौहान नरेश पृथ्वीराज के बीच 1191 ई० में पहला युद्ध हुआ। 1192 ई० में ग़ोरी ने दुबारा भारत पर आक्रमण किया और फिर इसी स्थान पर घोर युद्ध हुआ जिसमें ग़ौरी की कूटनीति और छद्म के कारण पृथ्वीराज मारे गए। इस विजय के पश्चात् मुसलमानों का कदम उत्तरी भारत में जम गया। 1216 ई० (15 फरवरी) को फिर एक बार तरायन के मैदान में इल्तुतमिश तथा उसके प्रतिद्वंदी सरदार इल्दोज़ में एक निर्णायक युद्ध हुआ जिसमें इल्तुतमिश की विजय हुई और उसका दिल्ली की गद्दी पर अधिकार मजबूत हो गया। तरावड़ी या तरायन को आज़माबाद भी कहते हैं।

तरिम

मध्य एशिया की नदी जिसका प्राचीन संस्कृत नाम सीता कहा जाता है। (दे० सीता)

तलकाड़ दे० शिरोवन

तलबंडी=तलवंडी (जिला क़ुसूर, पंजाब, पाकि०)

यह स्थान सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक के जन्मस्थान के रूप में प्रसिद्ध है। इनका जन्म 1469 में हुआ था।

तलाजा=तालध्वज (सौराष्ट्र, गुजरात)

भावनगर के निकट प्राचीन बौद्ध स्थान है जिसका प्राचीन नाम तालध्वज

है। तालध्वजा या तलाजी नदी पास ही बहती है। वैसे यह स्थान शत्रुंजयी नदी के तट पर स्थित है। यह जैनों का भी तीर्थ था। यहां से प्राप्त अनेक प्राचीन मूर्तियां वाटमन-संग्रहालय राजकोट में संगृहीत हैं। तलाजा में तीस प्राचीन शैलकृत्त गुफ़ाएं हैं जो संभवतः जैन भिक्षुओं के लिए बनाई गई थीं।

तलाजी=तालध्वजा

सौराष्ट्र के गोहिलवाड़ प्रांत की एक छोटी नदी जो शत्रुंजया की सहायक नदी है। नदी के उत्तर की ओर प्राचीन वलभिनगरी के ध्वंसावशेष हैं। इसका प्राचीन नाम तालध्वजा था और इसके तथा शत्रुंजयी के संगम के निकट प्राचीन बौद्ध स्थान तालध्वज या तलाजा बसा हुआ था।

तलावड़ी=तरावड़ी

ताड़पत्री (मद्रास)

द्रविड़ शैली में निर्मित 16वीं शती के एक सुंदर मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

तातार दे० **तित्तिरदेश**

तापी=ताप्ती (नदी)

विष्णुपुराण 2,3,11 में तापी को ऋक्षपर्वत से उद्भूत माना है—'तापी पयोष्णीनिर्विध्याप्रमुखा ऋक्षसंभवाः' श्रीमद्भागवत में तापी और उसकी शाखा पयोष्णी का एक साथ उल्लेख है—'कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विध्या पयोष्णी तापी रेवा—'। वास्तव में पयोष्णी ताप्ती में दक्षिण-पूर्व से आकर मिलती है। (दे० ऋक्ष)। ताप्ती सूरत के पास खंभात की खाड़ी (अरब सागर) में गिरती है। महाभारत में ताप्ती या तापी का संभवतः पयोष्णी के रूप में उल्लेख है। इस नदी के तापी, ताप्ती और पयोष्णी (गर्मजल वाली नदी) आदि नाम इसके गर्म जल के पहाड़ी स्रोतों के कारण सार्थक जान पड़ते हैं।

ताप्ती=तापी

तामड़=ताम्र

तामलित्थिय

ताम्रलिप्ति या ताम्रलिप्तिक का पाली रूपांतर जिसका उल्लेख दीपवंश 3,14 में है।

तामेश्वरनाथ (ज़िला बस्ती, उ० प्र०)

खलीलाबाद स्टेशन से छः मील दक्षिण की ओर कुदवा नाला है जो संभवतः बौद्ध साहित्य में प्रसिद्ध अनोमा नदी है। कुदवा से एक मील दक्षिणपूर्व की

ओर एक मील लंबा प्राचीन खंडहर है जहां तामेश्वरनाथ का वर्तमान मंदिर है। कहा जाता है यही वह स्थान है जहां अनोमा को पार करने के पश्चात् सिद्धार्थ ने अपने राजसी वस्त्र उतार दिए थे तथा राजसी केशों को काट कर फेंक दिया था। यहां से उन्होंने अपने सारथी छदक को बिदा कर दिया था—दे० बुद्धचरित 6,57-65 'निष्कास्य तं चोत्पलपत्रनीलं चिच्छेद चित्रं मुकुटं सकेशम्, विकीर्यमाणांशुकमंतरीक्षे चिक्षेप चैनं सरसीव हंसम्, 'छन्दं तथा साश्रु-मुखं विसृज्य' इत्यादि। युवानच्वांग के अनुसार इस स्थान पर इन्हीं तीनों घटनाओं के स्मारक के रूप में अशोक ने तीन स्तूप बनवाए थे जिनके खंडहर तामेश्वरनाथ के मंदिर के निकट हैं।

ताम्रद्वीप

महाभारत, सभा० 31, 68 के अनुसार इस द्वीप को सहदेव ने अपनी दिग्विजय यात्रा में विजित किया था— 'कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपत्तनं तथा, द्वीपं ताम्राह्वयंचैव पर्वतं रामकं तथा'। सभा० 38 के दाक्षिणात्य पाठ में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'इंद्रद्वीपं कशेरुं च ताम्रद्वीपं गभस्तिमत् गांधर्वं वारुणं द्वीपं सौम्याक्षामिति च प्रभुः'। ताम्रद्वीप सिंहल या लंका का प्राचीन नाम जान पड़ता है। यह भी संभव है कि यहां लका और भारत के बीच के टापुओं में से किसी का निर्देश हो।

2—(बर्मा) प्राचीन पागन राज्य का भारतीय नाम। पागन नामक नगर का प्राचीन नाम अरिमर्दनपुर था जहाँ इस राज्य की राजधानी थी। इस नगर की स्थापना 849 ई० में हुई थी। यह राज्य जिस प्रदेश में था उसका प्राचीन नाम तत्तदेश था। इस प्रदेश में ताँबे की खाने स्थित थीं।

ताम्रपट्टन

(बर्मा) इस नगर में ब्रह्मदेश के प्रथम हिंदू राज्यवंश, धर्मराजानुवंश, की जिसने इस प्रदेश पर 300 या 400 वर्ष तक राज्य किया था, राजधानी थी। संभव है पूरे अराकान प्रदेश को ही ताम्रपट्टन कहते हों।

ताम्रपर्णी

सिंहलद्वीप या लंका का प्राचीन नाम जिसकी दूर-दूर तक ख्याति थी। 17वीं शती में अंग्रेज़ी भाषा के कवि मिल्टन ने पैरेडाइज़ लॉस्ट नामक महा-काव्य में इसे टाप्रोबेन लिखा है.—'From India's golden chersonese and utmost Indian isle of Taprobane. dusk faces with white silken turbans wreathed—कुछ विद्वानों के मत में लंका-भारत के बीच के समुद्र में स्थित जाफ़ना द्वीप ही ताम्रपर्णी है। ताम्रपर्णी के शिरीषवस्तु

नामक यक्षनगर का उल्लेख बलाहाश्व जातक में है—'अतीते तंबपण्णि द्वीपे सिरीसवत्थुं नाम यक्खनगरं अहोसि'।

महावंश 6, 47 के अनुसार भारत के लाटदेश का निवासी कुमार विजय जलयान से सिंहलदेश पहुँचकर वहां ताम्रपर्णी नामक स्थान के पास उतरा था। यह वही दिन था जब कुशीनगर में बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था। महावंश, 7,39 में राजकुमार विजय द्वारा ताम्रपर्णी नगर के बसाए जाने का उल्लेख है। इस के अनुसार जब विजय और उसके साथी नौका से भूमि पर उतरे तो थकावट के कारण भूमि पर हाथ टेक कर बैठ गए। ताम्र वर्ण की मिट्टी के स्पर्श से उनके हाथ तांबे के पत्र से हो गए इसीलिए उस प्रदेश और द्वीप का नाम ताम्रपर्णी (तंब-पण्णी) हुआ।

2— दक्षिण भारत की नदी जो केरल राज्य में बहती है। जातक-कथाओं में इसका उल्लेख है। अशोक के मुख्य शिलालेख 2 और 13 में तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अध्याय 11 में भी ताम्रपर्णी का नामोल्लेख है। महाभारत वन० 88, 14-15 में ताम्रपर्णी तथा उसके तट पर स्थित गोकर्ण का वर्णन है। 'ताम्रपर्णीं तु कौंतेय कीर्तयिष्यामि तां श्रुणु यत्र देवैस्तपस्तप्तं महदिच्छद्भिराश्रमे गोकर्ण इति विख्यात स्त्रिषुलोकेषु भारत' श्रीमद्भागवत 5,19,18 में ताम्रपर्णी नदी का अन्य नदियों के साथ उल्लेख है—'चंद्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी . . .'। विष्णुपुराण 2,3,13 में ताम्रपर्णी को मलयपर्वत से उद्भूत माना है —'कृतमाला ताम्रपर्णी प्रमुखा मलयोद्भवाः'। एपिग्राफ़िका इंडिका 11 (1914) पृ० 295 के अनुसार ताम्रपर्णी नदी का स्थानीय नाम पोरुंडम और मुडीगोंडशोलाप्पेरारु था। अतिप्राचीन काल में ताम्रपर्णी के तट पर अवस्थित कोरकई और कायल नामक बंदरगाह उस समय के सभ्य संसार में अपने समृद्ध व्यापार के कारण प्रख्यात थे। पांड्य नरेशों के समय मोतियों और शंखों के व्यापार के लिए कोरकई प्रसिद्ध था। वर्तमान तिरुनेल्वली या तिन्नेवली और त्रिवेंद्रम से बारह मील पूर्व तिरुवट्टार नामक नगर ताम्रपर्णी के तट पर स्थित है। ताम्रपर्णी वर्तमान पलमकोटा के निकट बहती हुई मन्नार की खाड़ी में गिरती है। मन्नार की खाड़ी सदा से मोतियों के लिए प्रसिद्ध रही है और इसीलिए कालिदास ने ताम्रपर्णी के संबंध में मोतियों का भी वर्णन किया है—'ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिवसंचितम्' रघु० 4,50; अर्थात् पांड्यवासियों ने विनयपूर्वक रघु को अपने संचित यश के साथ ही ताम्रपर्णी-समुद्र संगम के सुंदर मोती भेंट किए। मल्लिनाथ ने इसकी टीका में यथार्थ ही लिखा है—'ताम्रपर्णीसंगमे मौक्तिकोत्पत्तिरिति प्रसिद्धम्'।

संस्कृतके परवर्तीकाल के प्रसिद्ध कवि तथा नाटककार राजशेखर ने भी ताम्रपर्णी नदी का उल्लेख किया है।

ताम्रपीठ दे० **तंबपिट्ट**

ताम्रपुर

प्राचीन कंबोडिया या कंबुज का एक भारतीय औपनिवेशिक नगर। कंबुज में हिंदू राजाओं का प्रायः तेरह सौ वर्ष राज्य रहा था।

ताम्रलिप्त=ताम्रलिप्तक=ताम्रलिप्ति=दामलिप्त (ज़िला मेदिनीपुर, प० बंगाल)

रूपनारायण नदी के पश्चिमी तट पर वर्तमान तामलुक ही प्राचीन ताम्रलिप्ति है। श्री काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि संस्कृत ताम्रलिप्त शब्द का मूल रूप 'द्रमीडदत्ति' या 'तिरमदत्ति' था जो द्रविड शब्द का रूपांतर है। इसी से कालांतर में, प्राकृत में प्रचलित तामलित्ति बना जिसे संस्कृत में 'ताम्रलिप्त' कर लिया गया। (दे० इंडियन एंटिक्वेरी, 1914; पृ० 64) दशकुमारचरित में दामलिप्त अथवा ताम्रलिप्त को सुह्म देश में स्थित माना है। किंतु महा० सभा० 2,24-25 में ताम्रलिप्ति व सुह्म का अलग-अलग उल्लेख है— 'समुद्रसेनं निर्जित्य चंद्रसेनं च पार्थिवम्, ताम्रलिप्तं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा। सुह्मानामधिपं चैव ये च सागरवासिनः सर्वान् म्लेच्छगणांश्चैव विजिग्ये भरतर्षभ'। पांचवी शती ई० में फ़ाह्यान ने ताम्रलिप्ति का गुप्त-साम्राज्य के एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह के रूप में उल्लेख किया है। यहां से जलयान जावा, सिंहलद्वीप इत्यादि देशों को जातेथे। दशकुमारचरित में दंडी ने ताम्रलिप्ति के कालीमंदिर का वर्णन किया है जो उस समय प्रसिद्ध था। विष्णुपुराण 4,24, 64 ('कोशलांध्रपुंड्र ताम्रलिप्त समुद्रतटपुरीं च देवरक्षितो रक्षिता') के अनुसार ताम्रलिप्ति पर गुप्तकाल से पूर्व देवरक्षित नामक राजा राज्य करता था। ताम्रलिप्ति में पांचवीं शती ई० से पूर्व ही एक प्रसिद्ध महाविद्यालय स्थापित हो चुका था। फ़ाह्यान, युवानच्वांग, इत्सिंग आदि चीनी यात्रियों ने यहां ठहर कर भारतीय ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन किया था। फ़ाह्यान के समय यहां चौबीस विहार थे जिनमें दो सहस्र भिक्षु निवास करते थे। 7वीं शती ई० में युवानच्वांग ने यहां केवल दस विहार और एक सहस्र भिक्षुओं का ही उल्लेख किया है। तत्पश्चात् इत्सिंग ने अपनी भारतयात्रा में इस महाविद्यालय का सविस्तर वृत्तान्त दिया है। वह नौ वर्ष तक यहां अध्ययन करता रहा था। उसने ताम्रलिप्ति-विद्यालय के बौद्ध भिक्षु राहुलमित्र की बड़ी प्रशंसा की है। ताम्रलिप्ति नगरी के समुद्रतट पर एक व्यापारिक बंदरगाह होने के कारण,

यहां दूर-दूर देशों के विद्यार्थी सरलता से आ सकते थे।

ताम्रा = तामड़

यह नदी सिक्किम के पश्चिमी पहाड़ों से निकलती है। इसकी घाटी पहाड़ों में गहरी कटी हुई है। इसका महाभारत के भीष्मपर्व में उल्लेख है। यह सुनकोसी नदी में मिलती है। इन दोनों के संगमस्थल पर कोकामुख तीर्थ स्थित था।

ताम्रारुण

'ताम्रारुणं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः, अश्वमेधभवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति' महा० वन० 84,154। प्रसंग से यह हिमालय का कोई तीर्थ जान पड़ता है।

तारंगा (राजस्थान)

तारंगा हिलस्टेशन से 4 मील दूर दिगंबर जैनों का तीर्थ जहां 73 प्राचीन मंदिर हैं। संभवनाथ के मंदिर के निकट श्वेतांबरों का मंदिर भी है जो बहुत कलापूर्ण है।

तारकक्षेत्र (महाराष्ट्र)

हुबली से 80 मील के लगभग हानगल का क़स्बा ही प्राचीन तारकक्षेत्र है। तारक क्षेत्र में धर्म नदी प्रवाहित होती है।

तारकेश्वर (प० बंगाल)

हावड़ा से 12 मील दूर यह स्थान एक प्राचीन महादेव-मंदिर के लिए प्रसिद्ध है।

तारणगढ़

महीकंठ (गुजरात) में तरंग नामक पहाड़ी का प्राचीन नाम। इसका जैन तीर्थ के रूप में उल्लेख जैन स्त्रोत तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार है:— कुंतीपल्लविहार तारणगढे सोपारकारासणे'।

तारागढ़

अजमेर की पहाड़ी, जहां राजा अज ने गढ़बिटली नामक क़िला बनवाया था। कर्नल टॉड के अनुसार यह क़िला राजपूताने की कुंजी थी। दे० **अजमेर**

तारापीठ (प० बंगाल)

द्वारका नदी के तट पर स्थित प्राचीन सिद्ध पीठ जो तांत्रिकों का केंद्र था।

तारूमा

पश्चिम जावा द्वीप का एक नगर जहां प्रायः 22 वर्ष तक जावा के हिंदू राजा पूर्णवर्मन् की राजधानी थी। पूर्णवर्मन् के चार संस्कृत अभिलेख जावा में मिले हैं जिनका समय 5वीं या 6वीं शती ई० है।

तालकड़ (मैसूर)

यह प्राचीन नगर शिवसमुद्रम् से 15 मील दूर कावेरी के तट पर बसा हुआ था किंतु अब नदी की लाई हुई बालु में अंट गया है। इसके अनेक ध्वंसावशेष आज भी बालु के नीचे दबे पड़े हैं। 1717 ई० में बने हुए कीर्तिनारायण के मंदिर को बालु में से खोद निकाला गया है।

तालकावेरी (कुर्ग, मैसूर)

दक्षिण की प्रसिद्ध नदी कावेरी का उद्‌गम स्थान। कुर्ग के मुख्य नगर मरकरा से यह स्थान 25 मील है। हरे-भरे जंगलों और सुहावनी पहाड़ियों की गोदी में बसा हुआ यह रमणीक स्थान दक्षिण भारतीयों का एक प्राचीन तीर्थ भी है।

तालकुंड=**तालगुंड**

तालकूट दे० **कालकूट**

तालगुंड (मैसूर)

तालगुंड या तालकुंड का प्रणवेश्वर शिवमंदिर मैसूर राज्य का प्राचीनतम मंदिर माना जाता है। इसमें केवल एक गोपुर है। यह हेलबिड़ के होयसलेश्वर के मंदिर की शैली में बना हुआ है। यहां एक स्तंभ पर एक महत्त्वपूर्ण लेख उत्कीर्ण है जिससे पश्चिम भारत के कदंब नामक राजवंश के प्रारंभिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

तालध्वज=**तलाजा**

ताल:वजा=**तलाजो**

तालबेहट (ज़िला झांसी, उ० प्र)

मध्ययुगीन दुर्ग के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

तालबंडी=**तलबंडी**

तालवन

(1) ब्रज का एक वन जहां श्रीकृष्ण ग्वालों के साथ क्रीड़ार्थ जाते थे—'भ्रममाणौ वने तस्मिन् रम्ये तालवनं गतौ' विष्णु० 5, 8, 1.

(2) द्वारका के दाक्षिण भाग में स्थित लतावेष्ट नामक पर्वत के चतुर्दिक् बने हुए उद्यानों में, से एक—'लतावेष्टं समंतात् तु मेरुप्रभवनं महत्, भाति तालवनं चैव पुष्पकं पुंडरीकवत्' महा० सभा० 38, दाक्षिणात्य पाठ।

(3) 'पांड्याश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोण्ड्र केरलैः आंध्रास्तालवनांश्चैव कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्' महा० सभा० 31, 71। यहां तालवन निवासियों का उल्लेख आंध्र और कलिंग वासियों के बीच में है जिससे जान पड़ता है कि

यह स्थान पूर्वी समुद्र तट पर स्थित रहा होगा।

तालाकट

'ततः स रत्नान्यादाय पुनः प्रायाद् युधाम्पतिः ततः शूर्पारकं चैव तालाकट-मथापिच, वशेचक्रे महातेजा दंडकांश्च महाबलः'—महा० सभा० 31, 65-66, सहदेव ने इस स्थान को अपनी दिग्विजय यात्रा में विजित किया था। इसकी स्थिति शूर्पारक या वर्तमान सोपारा के निकट रही होगी।

तालीकोट (मैसूर)

1556 ई० में इस स्थान पर दक्षिण भारत की बहमनी रियासतों तथा विजयनगर के हिंदू राज्य में परस्पर भयानक युद्ध हुआ था जिसके परिणाम-स्वरूप विजयनगर साम्राज्य का अंत हो गया। तालीकोट के युद्ध के पश्चात् मुसलमानों ने तत्कालीन भारत या इतिहास लेखकों के अनुसार एशिया के सर्वश्रेष्ठ नगर विजयनगर में बर्बरतापूर्ण लूट-मार मचाकर उसे खंडहर बना दिया था। सिवेल (Sewell) ने 'ए फ़ारगॉटन एम्पायर' नामक ग्रंथ में इस दुर्घटना का रोमांचकारी वर्णन बड़े प्रभावोत्पादक शब्दों में किया है।

तिकवांपुर=त्रिविक्रमपुर (ज़िला कानपुर, उ० प्र०)

हिंदी के प्रसिद्ध कवि भूषण इसी ग्राम के निवासी थे। यह ग्राम यमुनातट पर बसा हुआ था जैसा कि भूषण ने स्वयं ही लिखा है—'द्विज कनौज कुल कस्यपी रतनाकर सुतधीर, बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनितनूजा तीर'—शिवराजभूषण, 26। भूषण के कथनानुसार 'वीर वीरबर से जहां उपजे कविवर भूप, देव बिहारीश्वर जहां विश्वेश्वर तद्रूप' अर्थात् त्रिविक्रमपुर में बीरबल के समान महाबली राजा और कवि हुए तथा वहां काशी के विश्वनाथ महादेव के समान बिहारीश्वर महादेव का मंदिर था। यह बीरबल अकबर के दरबार के प्रसिद्ध कवि और मंत्री बीरबल ही जान पड़ते हैं।

तिक्तबिल्व=बिल्वतिक्त (जावा)

मजपहित नामक नगर का प्राचीन भारतीय नाम। 1294 ई० में इस नगर को जावा की राजधानी बनाया गया था और मुसलमानों के जावा पर अधिकार होने तक (15 वीं शती ई० का अंतिम भाग) यहां हिंदू राजा राज करते रहे। तिक्तबिल्व मजपहित का ही संस्कृत अनुवाद है—मज=बिल्व, पहित=तिक्त।

तिगवां (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर से प्रायः 40 मील दूर छोटा सा ग्राम है जो गुप्तकाल में जैन-सम्प्रदाय का केंद्र था। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि कन्नौज से आए

हुए एक जैन यात्री उभदेव ने पार्श्वनाथ का एक मंदिर इस स्थान पर बनवाया था, जिसके अवशेष अभी तक यहां विद्यमान हैं। यह मंदिर अब हिंदू मंदिर के समान दिखाई देता है। यहां के खंडहरों में कई जैन मूर्तियां भी प्राप्त हुई है। मंदिर का वर्णन करते हुए स्वर्गीय डॉ० हीरालाल ने लिखा है कि यह प्रायः डेढ़ हजार वर्ष प्राचीन है। यह चपटी छतवाला पत्थर का मंदिर है। इसके गर्भगृह में नृसिंह की मूर्ति रखी हुई है। दरवाजे की चौखट के ऊपर गंगा-यमुना की मूर्तियां खुदी हैं। पहले ये ऊपर बनाई जाती थीं किन्तु पीछे से देहरी के निकट बनाई जाने लगीं। मंदिर के मंडप की दीवार में दशभुजी चंडी की मूर्ति खुदी है। उसके नीचे शेषशायी भगवान् विष्णु की प्रतिमा उत्कीर्ण है जिनकी नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मा जी विराजमान हैं। (दे० जबलपुर ज्योति, पृ० 140) श्री राखालदास बनर्जी के अनुसार इस मंदिर में एक वर्गाकार केन्द्रीय गर्भगृह है जिसके सामने एक छोटा सा मंडप है। मंडप के स्तंभों के शीर्ष भारत-पर्सिपोलिस शैली में बने हैं जिससे यह मंदिर गुप्त-काल से पूर्व का जान पड़ता है—(दे० एज ऑव दि इम्पीरियल गुप्ताज़—पृ० 153)।

तिजारा (ज़िला अलवर, राजस्थान)

यहां सुलतान अलाउद्दीन आलमशाह का मकबरा स्थित है जो सहसराम के शेरशाह सूरी के मक़बरे से मिलता-जुलता है।

तित्तिरदेश

'मारुता धेनुका श्चैव तंगणाः परतंगणाः, बाह्लीकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पांड्याश्च भारत'—महा० भीष्म० 50, 31। तित्तिर-निवासियों का तंगण, परतंगण व बाह्लीक लोगों के साथ वर्णन होने से उनका निवासस्थान इनके निकट ही सूचित होता है। महा० सभा० 52, 2-3 में तंगण-परतंगणों आदि को शैलोदा या खोतन नदी के प्रदेश में निवसित बताया गया है। इसी प्रदेश को तित्तिरों का इलाका समझना चाहिए। बहुत संभव है कि तित्तिर 'तातार' का संस्कृत रूपांतरण हो। तातरों का देश वर्तमान दक्षिणी रूस के इलाक़े में था। तित्तिर लोग महाभारत युद्ध में पांडवों के साथ थे।

तिब्बत दे० **त्रिविष्टप**

तिरंभी=तिराही (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

यह स्थान कड़वाहा से पांच मील उत्तर-पूर्व में है और रानोद से आठ मील दक्षिण-पूर्व मे। रानोद के अभिलेख में तिरंभी का उल्लेख है। यहां का सबसे अधिक प्रशंसनीय स्मारक 11वीं शती का मोहजमाता का मंदिर है

जिसका तोरण आज भी मध्यकालीन मूर्तिकला का सुंदर उदाहरण है। इस कला का विशिष्ट गुण इसकी अलंकार-बहुल शैली है। तिरंभी का वर्तमान नाम तिराही है।

तिरहुत=तीरभुक्ति (उत्तर बिहार)

तीरभुक्ति या विदेह का अनेक गुप्तकालीन अभिलेखों में उल्लेख है। मिथिलानगरी इसी प्रदेश में स्थित थी। तिरहुत, तीरभुक्ति का ही अपभ्रंश है।

तिरावड़ी=तिलावड़ी (दे० **तरायन**)

तिराही=तिरंभी

तिरुअनंतपुर=त्रिवेंद्रम्

तिरुक्कलिकुंदरम्=पक्षितीर्थ

मद्रास से 30 मील दूर है। 500 फुट ऊंची पहाड़ी पर बने मंदिर में प्राचीन काल से दो पक्षी (क्षेमकरी) नित्य भोजनार्थ निश्चित समय पर आते हैं। इनके विषय में अनेक कपोल-कल्पित कथाएं प्रचलित हैं। यह स्थान कम से कम 18वीं शती में भी इसी प्रकार से प्रख्यात था क्योंकि तत्कालीन उल्लेखों से यह बात प्रमाणित होती है।

तिरुकुन्नूर (मद्रास)

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक आचार्य रामानुज के जन्मस्थान के रूप में विख्यात है। इन्होंने विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन तथा प्रचार किया था। 15वीं शती के धर्माचार्यों तथा दार्शनिकों में रामानुज का स्थान बहुत ऊंचा माना जाता है।

तिरुच्चेनगोड (ज़िला सेलम, मद्रास)

यहां नागाचल पर्वत पर अर्ध-नारीश्वर शिव का प्रसिद्ध मंदिर है। इसके मंडप पर उच्चकोटि की मूर्तिकारी प्रदर्शित है।

तिरुत्तनी (मद्रास)

मद्रास से 50 मील दूर रेनीगुंटा और आरकोनम् स्टेशनों के बीच यह छोटी सी बस्ती है। यहां स्कंद या सुब्रह्मण्यम् स्वामी का विख्यात प्राचीन मंदिर पहाड़ी की चोटी पर अवस्थित है।

तिरुनेलवेली (मद्रास)

वालीश्वर या कृष्णपुर के मंदिर के कारण यह स्थान प्रसिद्ध है। मंदिर में कामदेव की पत्नी रति की मानवाकार मूर्ति के रूप में श्रृंगारिक भावों का सुकुमार चित्रण है। मंदिर के प्रांगण की भित्ति के नीचे एक छोटी सरिता बहती है।

तिरुपत्तिकुनरम् (मद्रास)

यह स्थान कांजीवरम् या कांची से नौ मील पर स्थित है और कई प्राचीन मंदिरों के लिए प्रख्यात है। जैन मंदिर की भित्तियों पर सुंदर पुष्पालंकरणों का अनोखा चित्रण है। महाविष्णु का बैकुंठ पेरुमल मंदिर और कैलाशनाथ का शिव मंदिर अपने भव्य स्थापत्य के लिए उल्लेखनीय हैं। सहस्र स्तंभों का विशाल मंडप भी वास्तुकला का अद्वितीय उदाहरण है।

तिरुपदी (मद्रास)

तिरुपला पहाड़ी के ऊपर तथा उसके पादमूल में तिरुपदी की बस्ती स्थित है। ऊपर बालाजी का प्रसिद्ध मंदिर है। तिरुपदी के अनेक मंदिरों में गोविंदराज का मंदिर प्रमुख है। रामानुज-संप्रदाय के ग्रंथ प्रपन्नामृत के 51वें अध्याय में उल्लेख है कि रामानुजस्वामी ने बेंकटाचल के पास गोविंदराज की मूर्ति को स्थापित किया था। तिरुमला-पहाड़ी की सातवीं चोटी ही वेंकटाचल कहलाती है। गोविंदराज शेषशायी विष्णु की मूर्ति का नाम है। इसी मंदिर के पास श्री भट्टनाथ दिव्यसूर की कन्या गोदादेवी का मंदिर है जिसकी स्थापना भी श्रीरामानुज ने की थी। रामानुज का समय 15वीं शती ई० है। तिरुपदी स्टेशन से एक मील दक्षिण की ओर सुवर्णमुखी नदी बहती है।

तिरुपरांकुर (ज़िला मदुराई, मद्रास)

प्राचीन शैलकृत्त गुहाओं के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। गुहाओं में कई अभिलेख उत्कीर्ण पाए गए हैं।

तिरुमकुडलू (मैसूर)

तालकड़ से 15 मील दूर कावेरी तट पर स्थित है। यहां शिव का प्राचीन मंदिर है जिसकी यात्रा के लिए दूर-दूर से यात्री आते हैं।

तिरुमला (मद्रास)

तिरुपदी के निकट एक पहाड़ी। इसके एक शिखर का प्राचीन नाम वेंकटाचल है जिसका उल्लेख रामानुज संप्रदाय के ग्रंथ प्रपन्नामृत, अध्याय 51 में है। वेंकटाचल के निकट रामानुज ने (15वी शती ई०) गोविंदराज (विष्णु) की मूर्ति को स्थापित किया था।

तिरुमलाई (मद्रास)

एक प्राचीन जैन मंदिर यहां का उल्लेखनीय स्मारक है। इस मंदिर का जीर्णोद्धार 1955-56 में पुरातत्व विभाग द्वारा किया गया था।

तिरुवंजिकलम् (केरल)

चेर या केरल की प्राचीन राजधानी जो सबसे पहली राजधानी वंजि के पश्चात् बसाई गई थी। यह नगर परियार नदी पर स्थित था (स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया—पृ० 477)

तिरुवन्नमलई (मद्रास)

समुद्रतल से 2668 फुट ऊंची पहाड़ी पर यहां एक प्राचीन मंदिर है जहाँ कार्तिक में शिव की पवित्र ज्वाला प्रज्वलित की जाती है।

तिरुवल्लूर (मद्रास)

आरकोनम स्टेशन से 17 मील दूर है। वरदराज का विशाल मंदिर तीन घेरों के अंतर्गत स्थित है। पहले घेरे की लंबाई 180 फुट और चौड़ाई 155 फुट, दूसरे की लंबाई 470 फुट और चौड़ाई 470 फुट, और तीसरे की लबाई 940 फुट और चौड़ाई 700 फुट है। पहले घेरे के चारों ओर दालान और मध्य में वरदराज की मूर्ति भुजंग पर शयन करती हुई दिखाई देती है। पास ही शिवमंदिर है। यह भी कई डेवढ़ियों के भीतर है। दोनों मंदिरों के आगे जगमोहन है और घेरे के आगे गोपुर। दूसरे घेरे में जो पीछे बना था बहुत से छोटे स्थान और दालान और पहले गोपुर से अधिक ऊंचे दो गोपुर हैं। तीसरे घेरे के भीतर जो दूसरे के बाद में बना था 668 स्तंभों का एक मंडप और कई मंदिर तथा पांच गोपुर है जिनमें प्रथम और अंतिम बहुत विशाल हैं। जनश्रुति के अनुसार अज्ञातवास के समय पांडवों ने यहां शिव की आराधना के फलस्वरूप भयंकर जल-त्रास से त्राण पाया था। वदागलाई संप्रदाय का केंद्र यहां के अहोविलन मठ में है।

तिरुवांकुर (केरल)

ट्रावनकोर का प्राचीन नाम। इसका अर्थ है लक्ष्मी का घर। तिरुवांकुर का प्रदेश प्राचीन काल में केरल में सम्मिलित था। एक पौराणिक कथा के अनुसार महर्षि परशुराम ने इस भूभाग को अपने परशु द्वारा समुद्र से छीन लिया था। उन्होंने अपना फरसा समुद्र में फेंका और जितनी दूर वह जाकर गिरा उतनी दूर तक समुद्र पीछे हट गया। इस समुद्रनिर्गत भूमि पर उन्होंने बाहर से मनुष्यों को लाकर बसाया था। इस कथा में एक भौगोलिक तथ्य निहित है क्योंकि भूगोलविदों का विचार है कि केरल के प्रदेश पर पहले समुद्र लहराता था जिसके अवशेष लेगूनों (lagoons) के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

तिरुवारूर=**कमलालय**

तिरुविदम्=**त्रिवेंद्रम**

तिरुविदलूर=**इंद्रपुर** (1)

तिरुवेंकाडू (मद्रास)

यह स्थान चिदंबर से 15 मील आगे वैदीश्वरन् कोइल स्टेशन के निकट है। इसका प्राचीन नाम श्वेतारण्य है। यहां अघोरमूर्ति शिव का मंदिर है जिसके तामिल अभिलेख से विदित होता है कि चोलनरेश राजराज ने कुछ मूल्यवान वस्तुएं इस मंदिर को भेंट की थीं जिनमें पद्मराज मणि की एक शृंखला भी थी।

तिरुवेंची (-वांची-) कुलम (कोचीन, केरल)

वर्तमान क्रंगनोर। कोचीन के निकट प्राचीन केरल की प्रथम ऐतिहासिक राजधानी के रूप में यह अति प्राचीन स्थान उल्लेखनीय है। देवीभगवती का मंदिर और एक गिरजा घर (शायद प्रथम शती ई० में निर्मित) अब यहां के अवशिष्ट स्मारक हैं। तिरुवेंचीकुलम् में पेरुमल सम्राटों की राजधानी थी। इन्हीं में से एक, कुलशेखर पेरुमल ने प्रसिद्ध वैष्णव महाकाव्यप्रबंधम् की रचना की थी। ईसापूर्व कई शतियों तक यह स्थान दक्षिण भारत का बड़ा व्यापारिक केंद्र था। यहां मिश्र, बाबुल, यूनान, रोम और चीन के व्यापारियों तथा यात्रियों के समूह बराबर आते जाते रहते थे। यहीं 68 या 69 ई० मे रोमनों द्वारा निष्कासित यहूदियों ने शरण ली थी। इसी स्थान को शायद रोमन लेखकों ने मुज़िरिस (मुरचीपत्तन या मरिचीपत्तन) लिखा है। यहा से मरिच या काली मिर्च का रोम साम्राज्य के देशों के साथ भारी व्यापार था (दे० **क्रगनोर**)। मुरचीपत्तन (पाठान्तर सुरभीपत्तन) का उल्लेख महाभारत सभा० 31,68 में है। (दे० **सुरभीपत्तन**)

तिल त

दिल्ली के निकट एक ग्राम जो स्थानीय किंवदंती के अनुसार उन पांच ग्रामों में था जिनकी मांग पांडवों ने दुर्योधन से की थी और जिनके न मिलने पर महाभारत का युद्ध प्रारंभ हुआ था। इस किंवदंती के अनुसार पांच ग्राम ये हैं: बागपत, तिलपत, सोनपत, इंद्रपत और पानीपत। किंतु इस किंवदंती की पुष्टि महाभारत से नहीं होती (दे० **अविस्थल**)।

तिलारनदी=**दे० तैल**

तिलाड़ी=**दे० (तरायन)**

तिलिवल्ली (महाराष्ट्र)

चालुक्यवास्तुशैली में वने हुए (चालुक्य-कालीन) मंदिर के लिए यह स्थान

उल्लेखनीय है ।

तिलोत्तमा (नेपाल)

बुटवल के निकट बहने वाली नदी जिसका संबंध पौराणिक अनुश्रुतियों मे तिलोत्तमा नामक अप्सरा से बताया जाता है । कहा जाता है कि तिलोत्तमा में सृष्टि की श्रेष्ठ स्त्रियों के सौंदर्य के सभी गुण वर्तमान थे ।

तिलौराकोट (नेपाल)

इस ग्राम को कुछ लोग प्राचीन काल के प्रसिद्ध नगर कपिलवस्तु के स्थान पर बसा हुआ मानते हैं (दे० **कपिलवस्तु**) ।

तिस्ठा=तृष्णा

तीरभुक्ति (बिहार)

उत्तरी बिहार का तिरहुत-प्रदेश । प्राचीन काल में यह प्रदेश मिथिला या विदेह जनपद में सम्मिलित था । शक्ति संगम-तंत्र में तीरभुक्ति या विदेह का विस्तार गंडक से चंपारण्य तक माना गया है । तीरभुक्ति का अनेक गुप्तकालीन अभिलेखों में उल्लेख है । बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) से प्राप्त मुद्राओं से सूचित होता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय के समय तीरभुक्ति का अलग प्रांत था, जिसका शासक गोविंदगुप्त था । यह चंद्रगुप्त द्वितीय तथा महारानी ध्रुवदेवी का पुत्र था । इसकी राजधानी वैशाली में थी । मुद्राओं में तीरभुक्त्युपरिकाधिकरण अर्थात् तीरभुक्ति के शासक के कार्यालय का भी उल्लेख है । उस समय तीरभुक्ति प्रांत में ही वैशाली की स्थिति थी । गुप्तकाल में भुक्ति एक प्रशासनिक एकक का नाम था ।

तीर्थमलय (मद्रास)

यह पर्वत मद्रास-मंगलौर रेल मार्ग पर मोरप्पूर स्टेशन से 17 मील पर है । यह स्थान प्राचीन शिव-मंदिर के लिए उल्लेखनीय है ।

तुंगकारण्य=तुगारण्य (बुंदेलखंड)

वेत्रवती (बेतवा) और जंबुल (जामनेर) के संगम का परवर्ती प्रदेश जिसका क्षेत्रफल लगभग 35 वर्ग मील है, प्राचीनकाल का तुंगारण्य है । झांसी से यह स्थल लगभग दस-बारह मील दूर है । महाभारत के अनुसार इस वन का विस्तार शायद कालिंजर तक था—'तुंगकारण्यमासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः, वेदानध्यापयत् तत्र ऋषिः सारस्वतः पुरा । तदरण्यं प्रविष्टस्य तुंगकं राजसत्तम पापं प्रणश्यत्यखिलं स्त्रियां वा पुरुषस्य वा' वन० 85, 46-53 । इसके पश्चात् ही (वन 85,56) कालंजर (कालिंजर) का उल्लेख है । पद्मपुराण आदि० 39, 52-53 में भी कालंजर की स्थिति तुंगकारण्य में बताई गई है । हिंदी के

प्रसिद्ध कवि केशवदास ने ओड़छा तथा बेतवा की स्थिति तुंगारण्य में कही है —'नदी बेतवै तीर जंह तीरथ तुंगारन्य, नगर ओड़छो बहुबसै धरनीतल में धन्य। केशव तुंगारन्य में नदी बेतवे तीर, नगर ओड़छे बहु बसैं पंडित मंडित भीर'।

तुंगनाथ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

केदारनाथ के निकट एक ऊंची पहाड़ी जहां चोपती चट्टी के पास 12080 फुट की ऊंचाई पर एक शिवमंदिर स्थित है। यह भारत का सर्वोच्च मंदिर है जिसके कारण तुंगनाथ का नाम सार्थक ही जान पड़ता है। इसकी गणना पंच-केदारों में की जाती है और यहां बाहुरूपी शिव की उपासना की जाती है। तुंगनाथ को प्राचीन काल में उत्तराखंड का पुण्यस्थल समझा जाता था। महाभारत वनपर्व के अंतर्गत तीर्थों में उल्लिखित भृगुतुंग नामक स्थान संभवतः तुंगनाथ ही है। इसके पास ऋषिकुल्या नदी बहती हुई बताई गई है—'ऋषि-कुल्यां समासाद्य नरः स्नात्वा विकल्मषः, देवान् पितृंश्चार्चयित्वा ऋषिलोकं प्रपद्यते। यदि तत्र वसेन्मासं शाकाहारो नराधिप, भृगुतुंगं समासाद्य वाजिमेध-फलं लभेत्'—वन० 84, 49-50। 'भृगुर्यत्र तपस्तेपे महर्षिगण सेविते, राजन् स आश्रमः ख्यातो भृगुतुंगो महागिरिः' महा० वन० 90,2,3 यहां इस स्थान को भृगु की तपस्थली बताया गया है। ऋषिकुल्या गढ़वाल की ऋषिगंगा नामक नदी है।

तुंगभद्र (मैसूर)

तुंगभद्रा नदी के तट पर बसा हुआ प्राचीन स्थान है। यहां से नौ मील दूर राघवेंद्र स्वामी का मंदिर है। जनश्रुति है कि श्री रामचंद्र जी वनवासकाल में यहां कुछ समय तक रहे थे।

तुंगभद्रा

दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी। मैसूर राज्य में स्थित तुंग और भद्र नामक दो पर्वतों से निस्सृत दो श्रोतों से मिलकर तुंगभद्रा नदी की धारा बनती है। उद्भव का स्थान गंगामूल कहलाता है (इंडियन एंटिक्वेरी, पृ० 212) तुंग और भद्र शृंगेरी, शृंगगिरि या वराहपर्वत के अंतर्गत हैं और ये ही तुंगभद्रा के नाम का कारण हैं। श्रीमद्भागवत (5,19,18) में तुंगभद्रा का उल्लेख है '—चंद्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्णा—' महाभारत में संभवतः इसे तुंगवेणा कहा है। पद्मपुराण (178,3) में हरिहरपुर को तुंगभद्रा के तट पर स्थित बताया गया है।

तुंगवेणा=तुंगवेणी

महाभारत भीष्म० 9,27 में वर्णित एक नदी जो संभवत: तुंगभद्रा है—'उपेंद्रां बहुलां चैव, कुवीरामम्बुवाहिनीम् विनदीपिंजलां वेणा तुंगवेणां महानदीम्'

तुंगार (महाराष्ट्र)

बेसीन से 3 मील दूर सोपारा नामक ग्राम के निकट एक पहाड़ है जिसके शिखर पर चार सुंदर मंदिर हैं। सोपारा प्राचीन शूर्पारक है।

तुंगारण्य=तुंगकारण्य

तुंबरियंगण (लंका)

महावंश 10,53 में वर्णित एक सरोवर जो धूमरक्ख पर्वत पर स्थित है। यह पर्वत महावेलिगंगा के वाम तट पर है। महावंश के अनुसार तुंबरियगण मे निवास करने वाली एक यक्षिणी को लंका के राजा पांडुकाभय ने अपने वश में किया था।

तुंबवन (परगना अशोकनगर, ज़िला गुना, म० प्र०)

अशोक नगर स्टेशन से पांच मील पर स्थित तुमैन गुप्तकाल के अभिलेखों में वर्णित तुंबवन है। गुप्तकाल में यह स्थान एरण प्रदेश में सम्मिलित था। यहां से गुप्त संवत् 116=435 ई० का कुमारगुप्त के काल का, एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिसका संबंध गोविंदगुप्त नामक व्यक्ति से है। इसमें घटोत्कच-गुप्त का भी उल्लेख है। स्थानीय किंवदंती के अनुसार यहां राजा मकरध्वज की राजधानी थी। गुप्तकालीन इमारतों के कई अवशेष यहां आज भी स्थित है।

तुखार=तुषार

तुग़लकाबाद

वर्तमान दिल्ली से लगभग 11 मील दक्षिण में और कुतुबमीनार से प्राय: 3 मील दूर, 14वीं शती में बसाई गई तुगलकों की राजधानी के खंडहर है जिसे तुगलकाबाद कहा जाता है। इसकी नींव डालने वाला गयासुद्दीन तुगलक था (1320 ई०)। नगर के चारों ओर ढालू प्राचीर थी और 7 मील की दूरी तक सुदृढ़ दुर्ग-व्यवस्था का विस्तार था। नगर के अंदर सैकड़ों मकान, महल, मंदिर और मसजिदें बनी हुई थीं। इस नगर को हजारों शिल्पियों तथा श्रमिकों ने दो वर्ष के कड़े परिश्रम के पश्चात् बनाया था किंतु मु० तुगलक के दिल्ली से राजधानी को देवगिरि ले जाने और दिल्ली वापस लाने के कारण तुगलकाबाद उजाड़ सा हो गया। फ़िरोजशाह तुगलक के समय (1351-1388 ई०) में तुगलकाबाद तथा उसके उपनगर का विस्तार फ़िरोज़शाह कोटला तक हो गया

था जो दिल्ली दरवाज़े के निकट है कोटला भी खंडहर हो गया है किंतु इस स्थान का खूनी दरवाजा आज भी 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के उस भयानक तथा करुणकांड की याद दिलाता है जिसमें अंतिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह के तीन राजकुमारों मिर्जा मुग़ल अबूबकर और खिज्र खां की निर्मम हत्या अंग्रेज़ों ने की थी । दे० **दिल्ली**

तुरतुरिया (ज़िला रायपुर, म० प्र०)

सिरपुर से 15 मील घोर वनप्रदेश के अंतर्गत स्थित है। यहां अनेक बौद्धकालीन खंडहर हैं जिनका अनुसंधान अभी तक नहीं हुआ है । भगवान् बुद्ध की एक प्राचीन भव्य मूर्ति जो यहां स्थित है जनसाधारण द्वारा वाल्मीकि ऋषि के रूप में पूजित है। पूर्वकाल में यहां बौद्धभिक्षुणियों का भी निवास था । इस स्थान पर एक झरने का पानी 'तुरतुर' की ध्वनि से बहता है जिससे इस स्थान का नाम ही तुरतुरिया पड़ गया है । (दे० श्री गोकल प्रसाद—रायपुर रश्मि पृ० 67) इस स्थान का प्राचीन नाम अज्ञात है ।

तुलजापुर (जिला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

नालद्रुग से 20 मील उत्तर पश्चिम में बसा हुआ प्राचीन स्थान है । यहां तुलजा-भवानी का बहुत पुराना मंदिर है । कहा जाता है कि श्रीरामचंद्र को स्वप्न में भवानी ने लंका का मार्ग बताया था । दसहरा के बाद की पूर्णमासी को यहां की यात्रा होती है । यह मंदिर यमुनाचल नामक पहाड़ी पर स्थित है। मूलरूप में यह मंदिर आठ सौ वर्ष पुराना कहा जाता है । कोल्हापुर और सतारा नरेशों तथा अहिल्याबाई होलकर ने मंदिर के बाहरी भागों को बनवाया था। महाराष्ट्र-वीर शिवाजी को तुलजापुर की भवानी का इष्ट था। उनके चढाए हुए अनेक आभूषण मंदिर में अभी तक सुरक्षित हैं । मंदिर के अंदर गोमुख से पानी निस्सृत होता हुआ कल्लोल तीर्थ में जाता है। भवानी-मंदिर के पीछे भारतीय मठ है जहां किंवदंती के अनुसार तुलजा देवों से चौपड़ खेलने जाती थीं ।

तुलसी (महाराष्ट्र)

पंचगंगा (कृष्ण की सहायक नदी) की उपनदी । कांसारी, कुंभी, तुलसी, भोगवती और सरस्वती की संयुक्त धारा का नाम ही पंचगंगा है । तुलसी पश्चिमी घाट की पर्वत श्रेणी से निकलने वाली छोटी सरिता है। पंचगंगा और कृष्णा के संगम पर प्राचीन स्थान अमरपुर बसा हुआ है ।

तुलुंग=तुलुव

दक्षिण कनारा का प्रदेश जिसका विस्तार गोआ के दक्षिण में पश्चिमीतट

क़िला तुग़लकाबाद

(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

के साथ-साथ है। यहां की भाषा तुलु है।

तुल्या

गोदावरी की सात शाखानदियों में है जिन्हें महाभारत, वन० 85,43 में सप्तगोदावरी कहा गया है। (दे० **गोदावरी**)

तुषार

तुखार या चीनी तुर्किस्तान (सिक्यांग) का प्राचीन भारतीय नाम। दूसरी शती ई० पू० में यूचियों या ऋषिकों (दे० ऋषिक, उत्तर ऋषिक) ने अपने मूल स्थान चीनी तुर्किस्तान से (जहां उनका वर्णन महाभारत मे है) बल्ख या वाह्लीक की ओर प्रव्रजन किया था क्योंकि उनको आक्रमणकारी हूणों ने वहां से आगे खदेड़ दिया था। कालांतर में यूचिकों की एक शाखा, कुषाणों ने भारत में आकर यहां राज्य स्थापित किया। कनिष्क इस शाखा का प्रसिद्ध राजा था। महाभारत, सभा० 27,25-26-27 के अनुसार ऋषिकों को अपनी दिग्विजय यात्रा में अर्जुन ने विजित किया था।

तुषारन विहार (ज़िला प्रतापगढ़, उ० प्र०)

गंगा की पुरानी धारा के तट पर बसा है। कनिंघम ने इसे तुषारारण्य माना है। यहां एक प्राचीन बौद्ध विहार था। शायद युवानच्वांग द्वारा उल्लिखित **अयोमुख** यही है।

तुषारण्य दे० **तुषारनविहार**

तुसम (जिला हिसार, पंजाब)

चौथी या पांचवी शती ई० का (गुप्तकालीन) एक शिलालेख यहां से प्राप्त हुआ था जिसमें आचार्य सोमत्रात द्वारा भागवत (विष्णु) के मंदिर के लिए दो तड़ागों तथा एक भवन के निर्माण किए जाने का उल्लेख है। जब प्रथम बार कनिंघम ने इस अभिलेख को प्रकाशित किया था तो यह समझा जाता था कि इसमें प्रथम गुप्त-नरेश महाराज घटोत्कचगुप्त का उल्लेख है किंतु गुप्त-अभिलेखों के विशेषज्ञ फ़्लीट के मत में यह शब्द 'दानवांगना' है।

तूघ्न (दे० **कुरु**)

तृतीया

महाभारत सभा० 9,21 में उल्लिखित नदी-'तृतीया-ज्येष्ठिलाचैव शौणश्चापि महानदः, चर्मण्वती तथा चैव पर्णाशाच महानदी'। तृतीया का, ज्येष्ठिला (सोन की सहायक जोहिला) और शोण (सोन) के साथ उल्लेख से, यह विहार के सोन के निकट बहने वाली कोई नदी जान पड़ती है। अभिज्ञान अनिश्चित है।

तृष्णा

ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी तिष्ठा जो उत्तरी बंगाल में बहती है।

तेजपुर (असम)

इस स्थान से गुप्तकालीन मूर्तियों के अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें स्त्री-प्रतिमाओं की रचना को विशिष्टता यह है कि इनका वक्षस्थल समकालीन वाराणसी, बेसनगर आदि से प्राप्त प्रतिमाओं के प्रतिकूल अपेक्षाकृत क्षीण प्रदर्शित किया गया है जो पूर्वबंगाल तथा असम की नारियों की स्वाभाविक रूपरेखा का वास्तविक चित्रण जान पड़ता है—(दे० एज ऑव दि इम्पीरियल गुप्ताज' पृ० 181)।

तेजल्लविहार

गिरनार पर्वत के नीचे तेजपाल द्वारा निर्मित मंदिर जिसका जैन तीर्थ के रूप में उल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में है—'श्री तेजल्लविहार निवतटके चंद्रे च दब्भावते।'

तेजोभिभवन

वाल्मीकि रामायण में इस स्थान का उल्लेख अयोध्या के दूतों की केकय देश की यात्रा के प्रसंग में है—'अभिकालं ततः प्राप्य तेजोभिभवनाच्च्युताः पितृ-पैतामहीं पुण्यां तेरुरिक्षुमतीं नदीम्' अयो० 68,17। जान पड़ता है कि तेजोभिभवन, पंजाब में विपाशा या बियास नदी के कुछ पूर्व में स्थित होगा क्योंकि यह नदी दूतों को तेजोभिभवन से पश्चिम की ओर जाने पर मिली थी—(अयो० 68,19)।

तेनकाशी (मद्रास)

तेनकाशी का अर्थ दक्षिण की काशी है। विश्वनाथस्वामी का अति प्राचीन मंदिर यहां स्थित है। यहां से तीन मील पर एक सुंदर झरना है जहां जनश्रुति के अनुसार अगस्त्यमुनि का आश्रम था। पास ही प्राचीन शिवमंदिर है जो अगस्त्य के समय का कहा जाता है। किंवदंती है कि इस मंदिर की शिवमूर्ति की स्थापना इन्हीं महर्षि ने की थी। अगस्त्य का दक्षिण भारत से संबंध प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध है। तमिल संतों ने यहां के अधिष्टाता शिव की महिमा के गीत रचे हैं जिन्हें थेवरम् कहा जाता है।

तेर (ज़िला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

उसमानाबाद से 12 मील उत्तरपूर्व की ओर तथा तेर नामक रेलस्टेशन से प्रायः 3 मील दूर एक ग्राम है जहां प्राचीन मंदिर के अवशेष मिले हैं। यह मंदिर रूपरेखा में पश्चिम भारत के शैलकृत्त बौद्ध चैत्यों तथा मम्मलपुर के रथों

के अनुरूप है। मंदिर ईंटों का बना है। इसके देवगृह के ऊपर नालाकार महराब-वाली छतें हैं। सामने वर्गाकार तथा सपाट छत का मंडप है। मंदिर की ईंटें बहुत बड़ी हैं और उसकी प्राचीनता की सूचक हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि टॉलमी ने पैठान के साथ ही दक्षिण भारत के जिस प्रसिद्ध व्यापारिक नगर तगारा का उल्लेख किया है वह इसी स्थान पर बसा होगा। तगारा की मलमल प्रसिद्ध थी। तेर विठोबा भगवान् के भक्त, संत गोरा खंभर कुम्हार के संबध के कारण भी प्रसिद्ध है। ये महाराष्ट्र के प्रख्यात संत नामदेव के समकालीन थे। कहा जाता है कि एक बार भक्ति में इतने तल्लीन हो गए कि उन्हें सामने ही अपने शिशु के, बर्तन बनाने की मिट्टी के गढ़े में डूब जाने की खबर तक न हुई।

तेरलुदुर

दक्षिण रेलवे के कुत्तालुम स्टेशन से तीन मील दूर स्थित है। दक्षिण भारत में यह विष्णु-उपासना का केंद्र है। तमिल रामायण के प्रसिद्ध रचयिता कविवर कंब का यह जन्म स्थान भी है। इसे रथपातस्थली भी कहते हैं।

तेलंगाना

शायद त्रिकलिंग का रूपांतर है। मैसूर व आंध्र के तेलुगुभाषी प्रदेश को तेलंगाना कहा जाता है। (दे० **त्रिकलिंग**)

तेलंगिरि [दे० **तैल** (1)]

तेवर (दे० **त्रिपुरी**)

तैल (1) = तैलवाह

सेरीवनिज जातक में उल्लिखित तैलवाह नदी का अभिज्ञान तैलंगिरि नामक नदी से किया गया है—दे० डा० भंडारकर-इंडियन एंटिक्वेरी 1918, पृ० 71। इस जातक के अनुसार अंधपुर नामक नगर तैलवाह के तट पर बसा था। डा० भंडारकर के मत में अंधपुर आंध्रप्रदेश का मुख्य नगर था। रायचौधरी के मत में तैलवाह नदी वर्तमान तुंगभद्रा-कृष्णा की संयुक्त धारा का प्राचीन नाम है और अधपुर की स्थिति बेजवाड़ा के स्थान पर रही होगी—दे०-रायचौधरी-हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, पृ० 78।

2—(बिहार) सोनपुर के निकट बहने वाली एक नदी। सुवर्णमेरु शिवमंदिर इसी नदी के तट पर अवस्थित है।

3—लुंबिनी के निकट एक छोटी नदी जिसका उल्लेख युवानच्वांग ने किया है। यह अब तिलार कहलाती है।

तैलवाह=तैल (1)

तोन्नूर (मैसूर)

मोतीतालाब के निकट स्थित छोटा सा ग्राम है जिसका प्राचीन नाम यादव गिरि (=मेलूकोटे) है। देवगिरि के यादव-नरेशों के नाम से ही यह स्थान प्रसिद्ध था। यहां प्राचीन समय में सेनाशिविर था। 1099 ई० में दक्षिण के प्रसिद्ध दार्शनिक तथा धर्माचार्य रामानुज, चोलराज कारिकल के अत्याचार से बच कर यादवगिरि के राजा विष्णुवर्धन की शरण में आकर रहे थे।

तोपरा (ज़िला अंबाला, हरियाणा)

इस ग्राम में प्राचीनकाल में अशोक का एक प्रस्तरस्तंभ स्थित था, जिसे फ़िरोजशाह तुगलक (1351-1388) दिल्ली ले आया था। यह स्तंभ आज भी वहां फ़िरोजशाह कोटला में स्थित है। इस स्तंभ पर अशोक की 1-7 धर्म लिपियां अंकित हैं। इस स्तंभ को दिल्ली-तोपरा स्तंभ कहा जाता है।

तोया

विष्णुपुराण 2,4,28 में उल्लिखित शाल्मली द्वीप की एक नदी 'योनिस्तोया वितृष्णा च चंद्रामुक्ता विमोचिनी, निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पाप-शान्तिदाः'।

तोरण

वाल्मीकि रामायण, अयो० 71,11 में वर्णित एक ग्राम जो भरत को, केकय देश से अयोध्या जाते समय गंगा के पूर्व में मिला था—'तोरणं दक्षिणार्धेन जंबूप्रस्थं समागतम्'

2–(महाराष्ट्र) तोरण का प्रसिद्ध दुर्ग महाराष्ट्रकेसरी शिवाजी ने बीजापुर के सुलतान से छीन लिया था (1646 ई०)। यह उनके पिता शाहजी की जागीर के दक्षिणी सीमांत पर स्थित था। यहां शिवाजी को पूर्व समय का गढ़ा हुआ बहुत सा धन प्राप्त हुआ था जिसकी सहायता से उन्होंने अस्त्रशस्त्र तथा गोला बारूद खरीदा और तोरण के क़िले से छः मील दूर मोरबंद के पर्वत-शृंग पर राजगढ़ नामक दुर्ग बनवाया।

तोसल=तोसलि=धौला (उड़ीसा)

भुवनेश्वर के निकट शिशुपालगढ़ के खंडहरों से 3 मील दूर धौली नामक प्राचीन स्थान है जहां अशोक की कलिंगधर्मलिपि चट्टान पर अंकित है। इस अभिलेख में इस स्थान का नाम तोसलि है और इसे नवविजित कलिंग देश की राजधानी बताया गया है। यहां का शासन एक कुमारामात्य के हाथ में था। अशोक ने इस अभिलेख द्वारा तोसलि और समाया के नगर-व्यावहारिकों को

कड़ी चेतावनी दी है क्योंकि उन्होंने इन नगरों के कुछ व्यक्तियों को अकारण ही कारागार में डाल दिया था। सिलवनलेवी के अनुसार गंडव्यूह नामक ग्रंथ में 'अमित तोसल' नामक जनपद का उल्लेख है जिसे दक्षिणापथ में स्थित बताया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि इस जनपद में तोसल नामक एक नगर है। कुछ मध्यकालीन अभिलेखों में दक्षिण तोसल व उत्तर तोसल का उल्लेख है (एपिग्राफिका इंडिया 9,586;15,3)। जिससे जान पड़ता है कि तोसल एक जनपद का भी नाम था। प्राचीन साहित्य में तोसलिके दक्षिणकोसल के साथ संबंध का भी उल्लेख मिलता है। टॉलमी के भूगोल में भी तोसली (Toslei) का नाम है। कुछ विद्वानों (सिलवनलेवी आदि) के मत में कोसल, तोसल, कलिंग आदि नाम ऑस्ट्रिक भाषा के हैं। ऑस्टिक लोग भारत में द्रविड़ों से भी पूर्व आकर बसे थे। धौली या तोसलि दया नदी के तट पर स्थित है।

तौषायण

पाणिनि 4,2,80 में उल्लिखित है। श्री वा० श० अग्रवाल के मत में यह स्थान ज़िला हिसार का टोटाणा है।

त्रंबावती (काठियावाड़, गुजरात)

यह प्राचीन नगरी खंभात से चार मील दूर बसी थी। इसे स्तंब या स्तंभ-तीर्थ भी कहा जाता था। खंभात इसी का विकृत रूप है।

त्रिंगलबाड़ी (महाराष्ट्र)

इगतपुरी स्टेशन से छ: मील दूर यह ग्राम एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। पहाड़ी के नीचे के भाग में एक शैलकृत्त जैन गुहा है जिसका भीतरी कक्ष 35 फुट चौड़ा है। द्वार पर तथा अंदर कई जिन-मूर्तियां है। 1208 ई० का एक अभिलेख भी यहां से प्राप्त हुआ है जिससे गुहा मध्यकालीन प्रमाणित होती है।

त्रिऋषि सरोवर

स्कंदपुराण में आधुनिक नैनीताल (उ० प्र) की झील का नाम। इसे अत्रि, पुलह और पुलस्त्य के नाम पर त्रिऋषि-सरोवर कहा गया है। पौराणिक किंवदंती के अनुसार इन ऋषियों ने इस झील के तट पर प्राचीन काल में तप किया था।

त्रिकंटक

पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार जनस्थान (नासिक का परवर्ती प्रदेश) का एक नाम—'कृते तु पद्मनगरं, त्रेतायां तु त्रिकटकम्, द्वापरे जनस्थानं कलौ नाशिकमुच्यते'।

त्रिककुद्

अथर्ववेद में वर्णित हिमालय-शृंग जो चिनाबनदी की घाटी (पंजाब) का त्रिकूट (यह नाम परवर्ती साहित्य में मिलता है) या वर्तमान त्रिकोट है।

त्रिकलिंग

कलचुरिनरेश कर्णदेव के अभिलेखों में त्रिकलिंग नाम से तेलंगाना (आंध्र और मैसूर का तेलुगू प्रदेश) देश का अभिधान किया गया है। कुछ ऐतिहासिकों के अनुसार आंध्र, अमरावती और कलिंग का संयुक्त नाम त्रिकलिंग था। इसे कर्णदेव ने जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। अन्य विद्वानों के अनुसार यह उड़ीसा के उत्कल, कोंगद और कलिंग का संयुक्त नाम था। कुछ लेखकों का मत यह भी है कि त्रिकलिंग उत्तरी कलिंग का नाम था—(दे० महताब-हिस्ट्री ऑव उड़ीसा—पृ० 3)

त्रिकूट

(1)=**त्रिककुद्**। त्रिककुद् अथर्ववेद में वर्णित है। त्रिकूट नाम परवर्ती साहित्य का है। यह चिनाब नदी की घाटी (पंजाब) का वर्तमान त्रिकोट नामक पर्वत है। विष्णुपुराण 2,2,27 में त्रिकूट को मेरु का केसराचल कहा गया है—'त्रिकूट: शिशिरश्चैव पतंगोरुचकस्तथा, निषादाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वता:'। अथर्ववेद और विष्णुपुराण के त्रिकूट एक ही हैं या भिन्न, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

(2) कोंकण (महाराष्ट्र) में स्थित पर्वत तथा परिवर्ती प्रदेश। कालिदास ने रघुवंश 4,59 में रघु की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में अपरांत की विजय के पश्चात् रघु द्वारा त्रिकूट पर चढ़ाई का वर्णन किया है—'मत्तेभरदनोत्कीर्ण व्यक्त विक्रम लक्षणम्, त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तभं चकार स:'। यहां कालिदास ने त्रिकूट पर्वत को ही रघु का विजय-स्तंभ माना है। त्रिकूट पर्वत का उल्लेख श्रीमद्भागवत 5,19,16 में भी है—'भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छेला: सन्ति बहवो मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटऋषभ: कूटक:—'। वाकाटक-नरेश हरिषेण के अभिलेख में त्रिकूट पर उसकी विजय का उल्लेख है (525 ई०)। यह अभिलेख अजंता की गुफा 13 में उत्कीर्ण है। त्रिकूट का प्रदेश जिसका नाम त्रिकूट पर्वत के कारण ही हुआ होगा स्थूल रूप से ज़िला थाना (महाराष्ट्र) के अंतर्गत माना जा सकता है।

(3) (बिहार) वैद्यनाथ के निकट एक पर्वत जो प्राचीन तीर्थ समझा जाता है। यहां मयूराक्षी नदी का स्रोत है।

(4) वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण की लंका त्रिकूट पर्वत पर बसी

हुई थी—'त्रिकूटस्य तटे लंकां स्थित: स्वस्थो ददर्श ह'-सुंदर० 2,1 तथा, 'कैलास-शिखराकारे त्रिकूटशिखरेस्थितां लंकामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा—' युद्ध० 123,3। अध्यात्मरामायण 1,40 में भी लंका को त्रिकूट के शिखर पर स्थित कहा है—'नाना पक्षिमृगाकीर्णां नाना पुष्पलतावृताम् ततोददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्धनि।' तुलसीदास ने भी इसी पर्वत का निर्देश करते हुए लिखा है 'सहित सहाय रावणहिं मारी, आनौ यहां त्रिकूट उखारी।' किष्किधाकाण्ड।

(5) श्रीमद्भागवत 9,2,1 में उल्लिखित अनभिज्ञात पर्वत—'आसीद् गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुत:, क्षीरोदेनावृत: श्रीमान् योजनायुतमुच्छ्रित:'। इसके अनुवर्ती श्लोकों में इसका विस्तृत वर्णन है तथा इसे गज-ग्राह की प्रसिद्ध आख्यायिका की घटनास्थली माना है। (दे० चंपारण्य)। इस पर्वत के चतुर्दिक समुद्र का वर्णन है।

(6) जम्मू (कश्मीर) में स्थित एक पर्वत जिस पर पुराण-प्रसिद्ध वैष्णवदेवी का मंदिर है

त्रिगर्त

जलंधर दोआबे (पंजाब) का प्राचीन नाम है। त्रिगर्त का शाब्दिक अर्थ है —तीन गह्वरों वाला प्रदेश। यह स्थूल रूप से रावी, बियास और सतलज की उद्गम-घाटियों में स्थित प्रदेश का नाम था। इसमें कांगड़ा और कुलु का प्रदेश भी सम्मिलित था जिसके कारण भुवनकोष में इस प्रदेश को 'पर्वताश्रयी' भी कहा गया है। महाभारत तथा रघुवंश में उल्लिखित उत्सवसंकेत नामक गण-राज्यों की स्थिति इसी प्रदेश में थी। महाभारत, विराट० 30,31,32,33 में मत्स्य देश पर त्रिगर्तराज सुशर्मा की चढ़ाई का विस्तृत वर्णन है। इन्होंने मत्स्य-नरेश की गौवों का अपहरण किया था—'एवं तैस्त्वभिनिर्याय मत्स्यराज्यस्य गोधने, त्रिगर्तै गृंह्यमाणे तु गोपाला: प्रत्यषेधयन्'। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि महाभारत-काल में मत्स्य और त्रिगर्त पड़ोसी देश थे। संभव है उस समय त्रिगर्त का विस्तार उत्तरी राजस्थान (=मत्स्य) तक रहा हो।

त्रिचनापल्ली = त्रिशिरापल्ली

किंवदंती के अनुसार त्रिशिर नामक राक्षस का ग्राम (पल्ली) होने के कारण यह नगरी त्रिशिरापल्ली कहलाई। कहा जाता है कि त्रिशिर का वध शिव ने इसी स्थान पर किया था। यह नगरी मद्रास से 250 मील दूर कावेरी तट पर अवस्थित है। त्रिचनापल्ली का दुर्ग पल्लवकालीन है। यह एक मील लंबा और ½ मील चौड़ा समकोणाकार बना है और 272 फुट ऊंची पहाड़ी पर है। शिखर पर जाते समय पल्लवनरेशों के समय में निर्मित सौ स्तंभों का एक मंडप और कई

गुहामंदिर दिखाई पड़ते हैं। पहले दुर्ग के चारों ओर एक खाई थी और परकोटा खिंचा हुआ था। खाई अब भर दी गई है। भीतर एक विशाल चट्टान पर भूतेश्वर शिव और गणेश के मंदिर स्थित हैं। चट्टान के दक्षिण में नवाब का महल है जिसे 17वीं शती में चोकानायक ने बनवाया था। चट्टान और मुख्य प्रवेशद्वार के बीच में तेषकुलम् या नौकासरोवर है। गणपति मंदिर दुर्ग से 2 फर्लांग दूर है। अभिलेखों में त्रिचनापल्ली का एक नाम निचुलपर भी मिलता है।

त्रिचूर (केरल)

कोचीन का एक बड़ा नगर है। त्रिचूर वेदक्कनाथ के प्रसिद्ध प्राचीन शिव-मंदिर के चतुर्दिक बसा हुआ है।

त्रिजुगीनारायण (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

उत्तराखंड में केदारनाथ से बदरीनाथ जाने वाले मार्ग पर पुराण-प्रसिद्ध तीर्थ है। यह समुद्रतल से 9½ सहस्र फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यहां ब्रह्मकुंड, विष्णुकुंड, रुद्रकुंड और सरस्वतीकुंड नामक चार सरोवर हैं। इनके पास ही नारायण का मंदिर है। एक स्थान पर निरंतर अग्नि प्रज्वलित रहती है। किंवदंती है कि यहीं शिव-पार्वती का विवाहसंस्कार सम्पन्न हुआ था। कुमार-संभव 7,83 में शिव-पार्वती के विवाह में अग्नि को साक्षी रूप में माना है—'वधूं द्विजः प्राह तवैष वत्से वह्निर्विवाहं प्रतिकर्मसाक्षी, शिवेन भर्त्रा सह धर्मचर्या कार्या त्वयामुक्तविचारयेति'। संभवतः इसी पुण्य अग्नि के संस्मारक के रूप में इस स्थान पर सदा अग्नि-प्रज्वलित रखी जाती है।

त्रिदिवा

(1) 'वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलांकृमिम्' महा० भीष्म० 9,17। भीष्मपर्व में नदियों की लंबी सूची में त्रिदिवा का भी नामोल्लेख है। यह वेदवती के निकट बहने वाली कोई नदी हो सकती है। वेदवती दक्षिण की नदी है जो भीमा के निकट बहती है।

(2) विष्णुपुराण के अनुसार प्लक्षद्वीप की नदी 'अनुतप्ता शिखीचैव वेगाशा त्रिदिवा क्लमा, अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः'।

त्रिपुरा=टिपारा

त्रिपुरी (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर से 7 मील पश्चिम की ओर तेवर नामक एक छोटा सा ग्राम प्राचीन काल की वैभव शालिनी नगरी त्रिपुरी का वर्तमान स्मारक है। त्रिपुरी का इतिहास महाभारत के समय तक जाता है। महाभारत में त्रिपुरी के राजा

अमितौजस् पर सहदेव की विजय का वर्णन है—'माद्रीसुतस्ततः प्रायाद् विजयी दक्षिणां दिशम् त्रैपुरं स वशे कृत्वा राजानममितौजसम्' सभा० 31, 60. पद्म-पुराण और लिंगपुराण (अध्याय 7) में भी त्रिपुरी का उल्लेख है। तीसरी शती ई० की मुद्राओं में त्रिपुरी का नाम मिलता है। परिव्राजकमहाराज संक्षोभ के 518 ई० के ताम्रपट्टलेख में भी त्रिपुरी का नाम है। 9वीं शती ई० में मध्यप्रदेश के कलचुरिनरेश कोकल्लदेव ने त्रिपुरी में अपनी राजधानी बनाई। कलचुरि-नरेशों के शासन काल में—12वीं शती के मध्य तक त्रिपुरी की सर्वांगीण उन्नति हुई। स्थापत्य के अतिरिक्त संस्कृतसाहित्य भी त्रिपुरी के अनुकूल वातावरण में खूब फला-फूला। कर्पूरमंजरी के प्रसिद्ध लेखक महाकवि राजशेखर कुछ समय तक त्रिपुरी में रहे थे। कलचुरि-नरेश शैव होते हुए भी अन्य संप्रदायों के प्रति पूर्णतः सहिष्णु थे और इसलिए इनके राजत्व-काल में हिंदू संस्कृति का सुंदर विकास हुआ। युवराजदेव द्वितीय (975-1000) के समय में त्रिपुरी अमरावती के समान सुंदर थी—'तत्रान्वये नयवतां प्रवरो नरेन्द्रः पौरंदरीमिवपुरीं त्रिपुरीं पुनानः' (जबलपुर ताम्रलेख)। कलचुरि-नरेश कर्णदेव (1041-73) ने भी त्रिपुरी के यश को दूर-दूर तक फैलाया। त्रिपुरी के खंडहरों से अनेक मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। इनमें त्रिपुरेश्वर महादेव की प्रतिमा उल्लेखनीय है। कुछ लोगों का मत है कि त्रिपुरेश्वर शिव का मंदिर कलचुरिकाल में त्रिपुरी में स्थित था किंतु यह आश्चर्य की बात है कि इस मंदिर का उल्लेख किसी कलचुरि-अभिलेख में नहीं है यद्यपि ये नरेश शैव ही थे। बालसागर नामक सरोवर के तट पर कई शैव मंदिरों के अवशेष आज भी हैं। यहीं गजलक्ष्मी की मूर्ति भी मिली थी। त्रिपुरी की कलचुरिकालीन मूर्तियों में आभूषणों का बाहुल्य दिखलाई देता है। त्रिपुरी से प्राप्त बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में सुरक्षित है। इसमें प्रवचनमुद्रा में स्थित बुद्ध की मूर्ति विशेष कलापूर्ण है। त्रिपुरी के समीप ही जंगलों के भीतर कर्णबेल या कर्णावती नगरी के खंडहर हैं।

त्रिमली (महाराष्ट्र)

कर्णाटक-विजय के लिए जाते समय शिवाजी ने शेरखां लोदी को हराया था जो त्रिमली महाल में बीजापुर के सुलतान की ओर से वहां के शासक के रूप में नियुक्त था। उसने त्रिमली के निकट शिवाजी की सेना के अग्रभाग पर आक्रमण किया पर वह बुरी तरह से हारा और पकड़ा गया। इस घटना का उल्लेख कविवर भूषण ने शिवराज भूषण काव्य में इस प्रकार किया है—'**दौरि कर्णाटक में तोरि गढ़ कोट लीन्हें मोदी सों पकरि लोदी शेरखां अचानको**'।

त्रियामा=यमुना नदी (डाउसन-क्लासिकेल डिक्शनरी)

त्रिवनमल्लाई (मद्रास)

प्राचीन शिवतीर्थ जहां पांचों ज्योतिर्लिंगों का स्थान माना जाता है। कार्तिक तथा चैत में मंदिरों के निकट बड़े मेले लगते है।

त्रिवांकुर (दे० **तिरुवांकुर**)

त्रिविक्रमपुर (दे० **तिकवांपुर**)

त्रिविष्टप

कुछ विद्वानों के मत में तिब्बत का प्राचीन भारतीय नाम त्रिविष्टप है और तिब्बत त्रिविष्टप का अपभ्रंश है। पौराणिक साहित्य में त्रिविष्टप नामक एक स्वर्ग का वर्णन है। संभव है इस कल्पना का प्राचीन तिब्बत देश से कुछ संबंध हो। तिब्बत प्राचीन काल से ही योगियों और सिद्धों का घर माना जाता रहा है तथा अपने पर्वतीय सौंदर्य के लिए भी प्रसिद्ध है। संसार में सबसे अधिक ऊंचाई (समुद्रतल से 12 सहस्र फुट से भी अधिक) पर बसा हुआ प्रदेश भी तिब्बत ही है। इस देश की उच्चता, दुरुहता एवं उसके शेष संसार से पृथक् रहने के कारण तथा सिद्धों की पुण्यभूमि होने के नाते प्राचीन भारतीयों ने उसकी स्वर्ग के रूप में कल्पना कर ली हो तो कोई आश्चर्य नहीं। वैसे भी शिव का निवास कैलास पर ही माना जाता था जो तिब्बत में ही स्थित है। कालिदास ने कैलास और मानसरोवर के निकट बसी हुई अलकापुरी का मेघदूत में वर्णन किया है। यह वर्णन भी स्वर्ग या किसी काल्पनिक सौंदर्य से मंडित देश के वर्णन के समान ही जान पड़ता है।

त्रिवेंद्रम (केरल)

तिरुवांकुर (=ट्रावनकोर) की भूतपूर्व राजधानी। 18वीं शता में राजा मार्तंड वर्मा ने केरल देश की सीमाएं विस्तृत करने के पश्चात् इस नगर में अपनी राजधानी स्थापित की थी। इस नगर के अधिष्ठातृ-देव पद्मनाथ को उन्होंने अपना राज्य समर्पण कर दिया था तथा स्वयं देवता के प्रतिनिधि के रूप में राज्य करते थे। यहां पद्मनाथ विष्णु का विशाल मंदिर स्थित है। उन्हें अनन्तस्वामी भी कहते हैं। जान पड़ता है कि तिरुविदम् या त्रिवेंद्रम तिरुअनंतपुर नाम का ही रूपांतर है।

त्रिवेलूर=त्रिवल्लूर

त्रिशिरापल्ली=त्रिचनापल्ली

त्रिशृंग

विष्णुपुराण के अनुसार त्रिशृंग मेरु के उत्तर में स्थित एक पर्वत है जो

पूर्व की ओर समुद्र के अंदर तक चला गया है—'त्रिश्रृंगोजारुधिश्चैव उत्तरौवर्ष-पर्वतौ पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ—विष्णु० 2,2,43। त्रिश्रृंग संभवतः हिमालय की उत्तरी पूर्वी श्रेणियों में से किसी का नाम हो सकता है। (दे० **जारुधि**)

त्रिसामा

श्रीमद्भागवत 5,19,18 में उल्लिखित एक नदी—'त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती विश्वेति महानद्यः'। यूनानी लेखक स्ट्राबो के उल्लेख के अनुसार, बेक्ट्रिया के यवनराज मिनेंडर (मिलिंदपन्हो नामक ग्रंथ का मिलिंद जो भारत में आने के पश्चात् बौद्ध हो गया था) ने भारत पर आक्रमण करते समय झेलम और 'इसामस' नामक नदियों को पार किया था। रायचौधरी ने इसामस के त्रिसामा होने की संभावना मानी है (दे० पोलीटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया पृ० 319) किंतु यह अनुमान ठीक नहीं जान पड़ता। श्रीमद्भागवत के उल्लेख के अनुसार त्रिसामा कौशिकी के निकट होनी चाहिए। कौशिकी बंगाल-उड़ीसा की सीमा के निकट बहने वाली कोश्या है। विष्णुपुराण 2,3,13 से भी त्रिसामा उड़ीसा (कलिंग) की कोई नदी जान पड़ती है ('त्रिसामा चार्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः') क्योंकि इसका उद्गम आर्यकुल्या के साथ ही महेंद्रपर्वत में माना गया है। आर्यकुल्या उड़ीसा की ऋषिकुल्या जान पड़ती है।

त्र्यक्ष

'द्व्यक्षांस्त्र्यक्षाल्लँटाक्षान् नानादिग्भ्यः समागतान्, औष्णीकानन्तवासांश्च रोमकान् पुरुषादकान्। एकपादांश्चतत्राहमपश्यं द्वारिवारितान्—महा० सभा० 51, 17-18। यहां दुर्योधन ने युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में विदेशों से उपहार लेकर आने वाले विभिन्न देशवासियों का वर्णन किया है। इनमें द्व्यक्ष तथा त्र्यक्ष देशों से आए हुए लोग भी थे। प्रसंग से ये भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के परिवर्ती प्रदेशों के निवासी जान पड़ते हैं। कुछ विद्वानों के मत में त्र्यक्ष, तरखान (दक्षिणी रूस में स्थित) का नाम है और द्व्यक्ष बदख़्शां का। उपर्युक्त उद्धरण में इन लोगों को औष्णीष या पगड़ी धारण करने वाला बताया गया है जो इन ठंडे देशों के निवासियों के लिए स्वाभाविक बात मानी जा सकती है। (दे० **द्व्यक्ष, ललाटाक्ष**)

त्र्यंबक

पश्चिमी घाट की गिरिमाला का एक पर्वत। इसके एक भाग ब्रह्मगिरि

से गोदावरी निकलती है। ब्रह्मगिरि में एक प्राचीन दुर्ग भी है। त्र्यंबकेश्वर नाम की बस्ती नासिक से 18 मील दूर है।

त्र्यंबकेश्वर (जिला नासिक, महाराष्ट्र)

नासिक से 18 मील दूर प्राचीन शिवतीर्थ। यह शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से है और अंजनेरी पहाड़ी पर अवस्थित है। गोदावरी का उद्गम निकट ही है। (दे० **त्र्यंबक, ब्रह्मगिरि**)

थराड़ (गुजरात)

पालनपुर-कंडला रेलमार्ग पर देवराज स्टेशन और राधनपुर के निकट प्राचीन जैन तीर्थ है। यहां प्राचीन काल में विशाल जिनालय था जो मध्यकाल में मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिया गया। आजकल भी खंडहरों से प्राचीन मूर्तिया मिलती हैं। इस नगर का प्राचीन नाम शायद स्थिरपुर था। जैन ग्रंथ तीर्थमालाचैत्यवंदन में इसे 'थारापद्रपुर' कहा गया है।

थानेसर दे० **स्थानेश्वर**

थारापद्रपुर

प्राचीन जैन तीर्थ जो वर्तमान **थराड़** है। इसका तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार उल्लेख है—'थारापद्रपुरे च वाविहपुरे कासद्रहे चेडरे'। यह राधनपुर (गुजरात) के पास स्थित है। (दे० **थराड़**)

थूबोन (बुंदेलखंड, म० प्र०)

बुंदेलखंड की मध्यकालीन वास्तुकला के अनेक सुंदर अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

थ्रिक्ककरई (केरल)

यह कोचीन से 6 मील पर तालवृक्षों से आच्छादित छोटा सा ग्राम है किंतु जनश्रुति के अनुसार एक समय प्राचीन केरल की यहां राजधानी थी। कहा जाता है कि पुराणों में प्रसिद्ध पाताल देश के राजा महाबली यहीं राज्य करते थे और वामन भगवान् ने इनसे तीन पग धरती मांगने के बहाने समस्त पृथ्वी का राज्य ले लिया था। थ्रिक्ककरई में वामन का एक अति प्राचीन मंदिर है। केरल के जातीय त्यौहार ओनम के दिन यहां पर वामनदेव की पूजा की जाती है। ग्राम से थोड़ी दूर पर एक पथरीली गुफ़ा है। लोक कथा के अनुसार यहां महाबली का शस्त्रागार था। यह भी कहा जाता है कि यहीं पांडवों को जलाने के लिए कौरवों ने लाक्षागृह बनवाया था। इस दूसरी अनुश्रुति में कोई तथ्य नहीं जान पड़ता क्योंकि लाक्षागृह जिस स्थान पर बनवाया गया था उसका नाम महाभारत के अनुसार वारणावत था जो ज़िला मेरठ (उ० प्र०) में स्थित

वरनावा है। महाभारत से ज्ञात होता है कि वारणावत हस्तिनापुर (ज़िला मेरठ) से अधिक दूर न था।

दंडक=दंडकवन=दंडकारण्य

रामायण-काल में यह वन विंध्याचल से कृष्णा नदी के कांठे तक विस्तृत था। इसकी पश्चिमी सीमा पर विदर्भ और पूर्वी सीमा पर कलिंग की स्थिति थी। वाल्मीकि रामायण अरण्य० 1,1 में श्रीराम का दंडकारण्य में प्रवेश करने का उल्लेख है—'प्रविश्य तु महारण्यं दंडकारण्यमात्मवान् रामो ददर्श दुर्धर्ष-स्तापसाश्रममंडलम्'। लक्ष्मण और सीता के साथ रामचंद्र जी चित्रकूट और अत्रि का आश्रम छोड़ने के पश्चात् यहां पहुंचे थे। रामायण में, दंडकारण्य में अनेक तपस्वियों के आश्रमों का वर्णन है। महाभारत में सहदेव की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में दंडक पर उनकी विजय का उल्लेख है—'ततः शूर्पारकं चैव तालाक-टमथापिच, वशेचक्रे महातेजा दंडकांश्च महाबलः' महा० सभा० 31,66। सरभंग-जातक के अनुसार दंडकी या दंडक जनपद की राजधानी कुंभवती थी। वाल्मीकि रामायण, उत्तर० 92,18 के अनुसार दंडक की राजधानी मधुमंत में थी। महावस्तु (सेनार्ट का संस्करण पृ० 363) में यह राजधानी गोवर्धन या नासिक में बताई है। वाल्मीकि अयो० 9,12 में दंडकारण्य के वैजयंत नामक नगर का उल्लेख है। पौराणिक कथाओं तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दंडक के राजा दांडक्य की कथा है जिनका एक ब्राह्मण कन्या पर कुदृष्टि डालने से सर्वनाश हो गया था। अन्य कथाओं में कहा गया है कि भार्गव-कन्या दंडका के नाम पर ही इस वन का नाम दंडक हुआ था। कालिदास ने रघुवंश 12,9 में दंडकारण्य का उल्लेख किया है—'स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद्गुरुमलोपयन्, विवेश दंडका-रण्यं प्रत्येकं च सतांमनः'। कालिदास ने इसके आगे 12,15 में श्रीराम के दंडका-रण्य-प्रवेश के पश्चात् उनकी भरत से चित्रकूट पर होने वाली भेंट का वर्णन किया है जिससे कालिदास के अनुसार चित्रकूट की स्थिति भी दंडकारण्य के ही अंतर्गत माननी होगी। रघुवंश 14,25 में वर्णन है कि अयोध्या-निवर्तन के पश्चात् राम और सीता को दंडकारण्य के कष्टों की स्मृतियां भी बहुत मधुर जान पड़ती थीं—'तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु, प्राप्तानि दुःखान्यपि दंडकेषु संचित्यमानानि सुखान्यभूवन्'। रघुवंश 13 में जनस्थान को राक्षसों के मारे जाने पर 'अपोढ़विघ्न' कहा गया है। जनस्थान को दंडकारण्य का ही एक भाग माना जा सकता है। उत्तररामचरित में भवभूति ने दंडकारण्य का सुंदर वर्णन किया है। भवभूति के अनुसार दंडकारण्य जनस्थान के पश्चिम में था (उत्तररामचरित, अंक 1)

दंडकी

सरभंगजातक में दंडक या दंडकारण्य का नाम है। इसकी राजधानी कुंभवती कही गई है।

दंडभुक्ति

वर्धमानभुक्ति (=वर्तमान बर्दवान, प० बंगाल) का एक प्रदेश जो उद्यानों के लिए प्रसिद्ध था (दे० एंशेंट ज्याग्रोफी ऑव इंडिया)

दंतपुर=दंतपुरनगर

दंतपुर बंगाल की खाड़ी पर प्राचीन बंदरगाह था। मलय प्रायद्वीप के लिगोर नामक प्राचीन भारतीय उपनिवेश को बसाने वाले राजकुमार के विषय में परंपरागत कथा है कि वह मौर्यसम्राट् अशोक का वंशज था और मगध से भाग कर दंतपुर के बंदरगाह से एक जलयान द्वारा यात्रा करके मलय देश पहुंचा था। श्री नं० ला० डे के अनुसार वर्तमान जगन्नाथपुरी ही प्राचीन दंतपुर है।

दंतालोक

बेस्सन्तर-जातक की कथा में उल्लिखित एक पर्वत, जहां वैश्वन्तर ने अपने बच्चों को एक निर्दयी ब्राह्मण को दान में दे दिया था। युवानच्वांग के अनुसार इस कथा की घटनास्थली उरशा (ज़िला हजारा, प० पाकि०) में थी। दंतालोक इस प्रकार पश्चिमी कश्मीर का कोई पर्वत हो सकता है।

दंतेवर (ज़िला बस्तर, म० प्र०)

दंतेश्वरीमाज नामक एक प्राचीन, रहस्यपूर्ण मंदिर आदिवासियों के इस सुनसान प्रदेश में स्थित है।

दंबल (महाराष्ट्र)

यह स्थान चालुक्यवास्तुशैली में निर्मित एक प्राचीन मंदिर के लिए उल्लेखनीय है।

दक्षिणकाशी

लोकश्रुति में नासिक का एक नाम है।

दक्षिणकोसल

विंध्याचल-पर्वत की उपत्यकाओं का वह भाग जिसमें वर्तमान रायपुर और बिलासपुर (म० प्र०) के ज़िले तथा उनका परिवर्ती क्षेत्र सम्मिलित है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में कोसलकमहेंद्र का उल्लेख है। यह महेंद्र दक्षिण कोसल के किसी भाग का शासक था। महाभारत में इस भूभाग को प्राक्कोसल भी कहा गया है। आजकल इसे महाकोसल कहते हैं। यह तथ्य है कि दक्षिण कोसल और उत्तर कोसल परस्पर भाषा और संस्कृति की दृष्टि से संबंधित रहे

है। दक्षिण कोसल की बोली आज भी अवधी (उ० प्र० के अवध-क्षेत्र की बोली) से बहुत मिलती जुलती है। संभवतः रामचंद्र जी के पश्चात् अयोध्या के शोभाहीन हो जाने पर जब कुश ने दक्षिण कोसल में कुशावती नगरी बसाई तब अयोध्या के अनेक निवासी दक्षिण कोसल में जाकर बस गए थे।

दक्षिणगिरि

महावंश 13,5 में इस स्थान का उल्लेख इस प्रकार है—'इस बीच में उपाध्याय और संघ की वंदना कर तथा राजा (अशोक) से पूछ, स्थविर महेंद्रसेन, चार स्थविरों तथा संघमित्रा के पुत्र महासिद्ध षड़भिक्षु सुमन सामणेर को साथ ले, संबंधियों से मिलने के लिए दक्षिणगिरि गए' (आनंद कौसल्यायन, महावंश पृ०68)। इसी के आगे विदिशागिरि का उल्लेख है। दक्षिणगिरि सांची या भीलसा (म० प्र०) के परिवर्ती पहाड़ी प्रदेश की कोई पहाड़ी हो सकती है। संभवतः यह सांची ही है। यह भी संभव है कि कालिदास ने जिस पहाड़ी को मेघदूत में 'नीची' या 'नीच गिरि' कहा है उसी का दूसरा नाम दक्षिणगिरि हो सकता है। 'दक्षिण' और 'नीच' समानार्थक शब्द भी हैं। (दे० **नीचगिरि**)

दक्षिणमधुरा

बौद्धकाल में दक्षिण भारत में स्थित वर्तमान मदुराई या मदुरा (मद्रास) को दक्षिण मधुरा (=मथुरा) कहते थे। यह पांड्यदेश की राजधानी थी। हरिषेण के बृहत्कथाकोश, कथानक 7,1 में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'अथ पांड्य महादेशे दक्षिणमधुराऽभवत् धनधान्य समाकीर्णा'। उत्तर भारत की प्रसिद्ध नगरी मधुरा को उत्तर मधुरा की संज्ञा दी जाती थी (अट्ठकथा पृ० 118)। मदुरा वास्तव में मथुरा या मधुरा का रूपांतर है।

दक्षिणमल्ल

महाभारत सभा० में भीम की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में विजित राष्ट्रों में इसका उल्लेख है—'ततो दक्षिणमल्लांश्च भोगवंतं च पर्वतम्। तरसैवाजयद् भीमो नातितीव्रेण कर्मणा' सभा० 30,12. इसका उल्लेख वत्सभूमि के पश्चात् तथा विदेह के पूर्व हुआ है। बौद्धकाल में मल्लदेश वर्तमान गोरखपुर ज़िले (उ० प्र०) के परिवर्ती क्षेत्र में बसा हुआ था। जान पड़ता है कि महाभारत में, जैसा कि प्रसंग से सूचित होता है इसी प्रदेश को दक्षिण मल्ल कहा गया है। संभव है उस समय यही प्रदेश उत्तरी और दक्षिणी भागों में विभाजित रहा हो।

दक्षिण सिंधु

मध्यप्रदेश में बहने वाली नदी सिंधु या सिंध जो यमुना की सहायक नदी है। यह काली सिंध भी हो सकती है जो चंबल की उपनदी है। अवश्य ही पंचनदप्रदेश की प्रसिद्ध नदी सिंधु से पृथक् करने के लिए ही मध्यप्रदेश की नदी को साहित्य में कहीं-कहीं दक्षिणसिंधु कहा गया है।

दक्षिणापथ

विंध्याचल के दक्षिण में स्थित भूभाग का प्राचीन नाम। सहदेव की दक्षिण-भारत की दिग्विजय के प्रसंग में महाभारत सभा० 31,17 में दक्षिणापथ का उल्लेख है—'तं जित्वा स महाबाहुः प्रययौ दक्षिणापथम् गुहामासादयामास किष्किंधां लोकविश्रुताम्'। क्षत्रप रुद्रदामन् के गिरनार-अभिलेख (लगभग 120 ई०) में सातकर्णि-नरेश को दक्षिणापथ का पति कहा गया है—'यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथपतेः सातकर्णेर्द्विरपिनिर्व्याजमवजित्यावजित्य—' इत्यादि। (दे० **गिरनार**) गुप्तसम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में कोसल से लेकर कुस्थलपुर तक के प्रदेश के विजित नरेशों को 'दक्षिणापथ-राजा' कहा गया है—'कोसलक महेंद्रकौस्थल पुरकधनंजयप्रभृति सर्वदक्षिणापथराजा ग्रहणमोक्षानुगृहजनितप्रतापोन्मिश्रमहाभाग्यस्य—' विंध्याचल के उत्तर में स्थित प्रदेश का सामान्य नाम **उत्तरापथ** था।

दतिया (बुंदेलखंड, म०)

झांसी से 16 मील दूर है। प्राचीन काल में दतिया दंतवक्त्र की राजधानी मानी जाती थी। दंतवक्त्र का मंदिर दतिया का मुख्य मंदिर है। इसे लोग मड़िया महादेव का मंदिर कहते हैं। यह मंदिर एक पहाड़ी पर है। दतिया का प्राचीन दुर्ग जो एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित है ओड़छा नरेश वीरसिंह देव बुंदेला (17वीं शती) का बनवाया हुआ कहा जाता है। किंवदंती है कि इसे बनवाने में आठ वर्ष, दस मास और छब्बीस दिन लगे थे और बत्तीस लाख नब्बे हजार नौ सौ अस्सी रुपए व्यय हुए थे। दतिया में बुंदेल राजपूतों की एक शाखा का राज्य आधुनिक समय तक रहा है।

दद्दरपुर

चेतियजातक के अनुसार चेदिनरेश उपचर के एक पुत्र ने दद्दरपुर नामक नगर चेदि देश में बसाया था। इसके चार अन्य पुत्रों ने भी चार विभिन्न नगरों की स्थापना की थी। रायचौधरी का मत है कि यह राजा महाभारत आदि० 63,30-33 में उल्लिखित चेदि नरेश उपरिचर वसु है जिसके पांच पुत्रों

ने पांच राज्यवंश चलाए थे (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया पृ० 110) (दे० **चेदि**)

दधिपद्र

तीर्थमाला चैत्यवंदन में उल्लिखित प्राचीन जैन तीर्थ,—'मोढेरे दधिपद्र कर्करपुरे ग्रामादि चैत्यालये'। यह वर्तमान दाहोद (गुजरात) है।

दधिमंडसागर = दधिसमुद्र

पौराणिक भूगोल की उपकल्पना में पृथ्वी के सप्त महासागरों में से एक। यह शाकद्वीप के चतुर्दिक स्थित है—'ऐते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः लवणेक्षुसुरासर्पिदधिदुग्ध जलैःसमम्' विष्णु० 2,2,6

दधिमती

सौराष्ट्र (काठियावाड़, गुजरात) के उत्तरपश्चिमी भाग-हालार-में बहने वाली नदी डेमी का प्राचीन नाम।

दधिमाली

शूर्पारक जातक में वर्णित एक समुद्र जो भृगुकच्छ के वणिकों को समुद्र यात्रा में अग्नि माली समुद्र के पश्चात् मिला था—'यथा दधिं व खीरं व समुद्दोपति दिस्सति' अर्थात् यह समुद्र दधि और दूध के समान दीखता है। इस समुद्र में चांदी का उत्पन्न होना कहा गया है, 'तस्मिंपन समुद्दे रजतं उत्पन्नम्'

दनकौर (ज़िला बुलंदशहर, उ० प्र०)

एक प्राचीन मंदिर तथा सरोवर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। किंवदंती है कि इसे द्रोणाचार्य ने बसाया था जिनके नाम से यहां एक प्राचीन मंदिर भी है।

दभोई (ज़िला बड़ौदा, गुजरात)

प्राचीन नाम दर्भावती या दर्भवती। यह भड़ौच से 25 मील है। दबोई पुरानी व्यापारिक मंडी है। 10वीं शती के एक मंदिर के अवशेष यहां से कुछ वर्ष पूर्व मिले थे। उत्खनन श्री निर्मलकुमार बोस तथा श्री अमृतपांड्या द्वारा किया गया था। दभोई या दर्भावती का जैन तीर्थ के रूप में उल्लेख जैन स्तोत्र ग्रंथ तीर्थमाला चैत्यवंदन में है—'श्री तेजल्लविहार निबतटके चंद्रे च दर्भावते।'

दमन = डामन

पश्चिमी समुद्र-तट पर भूतपूर्व पुर्तगाली बस्ती जो 1961 में भारत में सम्मिलित कर ली गई। यह बंबई से सौ मील उत्तर में है। 1531 ई० में दमन पर पुर्तगाली बेड़े ने आक्रमण करके नगर को नष्ट कर दिया था। दमन का पुनर्निर्माण होने पर इस पर पुर्तगाल का अधिकार 1559 ई० में हो गया।

दमन के दो भाग हैं—एक भाग समुद्रतट पर है और दूसरा, नगरहवेली थोड़ी दूर पर जंगल में स्थित है। पहले यह भाग दमन के बंदरगाह से भारतीय भूमि द्वारा पृथक् था। दमन का क्षेत्रफल 22 वर्ग मील है।

दया

उड़ीसा की नदी जिसके तट पर धौली (प्राचीन तोसलि) बसी हुई है, (दे० **धौली**)। इसी नदी के तट पर अशोक मौर्य के समय में होने वाले प्रसिद्ध कलिंग-युद्ध की स्थली थी। कलिंग-युद्ध के पश्चात् अशोक के हृदय में मानव मात्र के प्रति करुणा का संचार हुआ और उसने धर्म के प्रचार के लिए अपना शेष जीवन समर्पित कर दिया।

दरतपुरी दे० दरद

दरद=दर्दिस्तान

महाभारत में दरदनिवासियों के कांबोजों के साथ उल्लेख से ज्ञात होता है कि इनके देश परस्पर सन्निकट होंगे—'गृहीत्वा तु बलं सारं फाल्गुनः पांडुनंदनः दरदान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः'-सभा० 27,23। दरददेश पर अर्जुन ने दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में विजय प्राप्त की थी। दरद का उल्लेख विष्णुपुराण में भी है और टॉलमी तथा स्ट्रेबो ने भी दरदों का वर्णन किया है। दरद का अभिज्ञान दर्दिस्तान के प्रदेश से किया गया है जिसमें गिलगिट और यासीन का इलाक़ा शामिल है। यह प्रदेश उत्तरी कश्मीर और दक्षिणी रूस के सीमांत पर स्थित है। विल्सन के अनुसार दरद लोगों का इलाका आज भी वही है जो विष्णुपुराण, स्ट्रेबो तथा टॉलमी के समय था— अर्थात् सिंध नदी द्वारा संचित वह प्रदेश जो हिमालय की उपत्यकाओं में स्थित है। दरतपुरी दरद की राजधानी थी (मार्कंडेय पुराण, 57)। इसका अभिज्ञान डा० स्टाइन ने गुरेज़ से किया है। संस्कृत साहित्य में दरद और दरत दोनों ही रूप मिलते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत का शब्द 'दरिद्र' दरद से ही व्युत्पन्न है और मौलिक रूप में यह शब्द दरद-वासियों की हीनदशा का द्योतक था।

दरेदा (दे० जसो)

दर्दुर

सुदूर दक्षिण की एक पर्वत-श्रेणी जो संभवतः वर्तमान मैसूर राज्य की दक्षिणी पूर्वी सीमा बनाती है। प्राचीन साहित्य में प्रायः मलय और दर्दुर दोनों पर्वतों का एक साथ ही उल्लेख मिलता है—'स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीन चंदनौ स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ' रघु० 4,51. मार्कंडेय पुराण,

57 में भी मलय और दर्दुर पर्वतों का नाम साथ-साथ ही है। महाभारत सभा० 51, दाक्षिणात्य पाठ में दर्दुर में उत्पन्न चंदन का वर्णन है—'दार्दुरं चन्दनं मुख्यं भारान् षण्णवतिं ध्रुवम्, पांडवाय ददु: पांड्य: शंखांस्तावत एव च'। ऐसा ही उल्लेख वाल्मीकि रामा०, अयो० 91,24 में है—'मलयं दर्दुरं चैव तत: स्वेदनुदो ऽनिल: उपस्पृश्य ववौ युक्त्यासुप्रियात्मा सुखं शिव:'। मलय पूर्वीघाट की वह श्रेणी है जिसमें नीलगिरि की पहाड़ियां सम्मिलित हैं।

दर्भवती=दर्भावती

दभोई का प्राचीन नाम। (दे० **दभोई**)

दर्भशयनम् (मद्रास)

रामनाद अथवा रामनाथपुरम् से 6 मील दूर है। समुद्र यहां से 3 मील है। कहा जाता है कि समुद्र को पार करने के लिए श्री रामचंद्र ने समुद्र से 3 दिन तक प्रार्थना की थी और इसी स्थान पर कुशासन पर शयन कर उन्होंने व्रत का अनुष्ठान किया था जिसके कारण इस स्थान को दर्भशयन कहते हैं। वाल्मीकि-रामायण में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है—'तत: सागरवेलायां दर्भानास्तीर्यराघव:, अंजलिं प्राङ्मुख: कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधे:,' युद्ध० 21,1 अर्थात् तब समुद्र के तीर पर कुश या दर्भ बिछाकर रामचंद्र पूर्व की ओर समुद्र को हाथ जोड़कर सो गए। 'स त्रिरात्रोपितस्तत्रनयज्ञो धर्मवत्सल: उपासत तदाराम: सागरं सरितांपतिम्, युद्ध० 27,11 अर्थात् नीतिज्ञ, धर्मपरायण राम ने विधिपूर्वक तीन रात वहां रहकर सरितापति समुद्र की उपासना की।

दशपुर=मंदसौर

गुप्तकालीन भारत का प्रसिद्ध नगर जिसका अभिज्ञान मंदसौर (ज़िला मंदसौर, पश्चिमी मालवा, म० प्र०) से किया गया है। लैटिन के प्राचीन भ्रमणवृत्त पेरिप्लस में मंदसौर को मिन्नगल कहा गया है। (दे० स्मिथ–अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 221) कालिदास ने मेघदूत (पूर्वमेघ 49) में इसकी स्थिति मेघ के यात्राक्रम में उज्जयिनी के पश्चात् और चंबल नदी के पार उत्तर में बताई है जो वर्तमान मंदसौर की स्थिति के अनुकूल ही है—'तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां, पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणां, कुंदक्षेपानुगमधुकरश्रीजुषामात्मबिम्बं पात्रीकुर्व्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्'। गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त के शासनकाल (472 ई०) का एक प्रसिद्ध अभिलेख मंदसौर से प्राप्त हुआ था जिसमें लाट देश के रेशम के व्यापारियों का दशपुर में आकर बस जाने का वर्णन है। इन्होंने दशपुर में एक सूर्य के मंदिर का निर्माण करवाया था। बाद में इसका जीर्णोद्धार हुआ, और यह अभिलेख उसी समय सुंदर

साहित्यिक संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण करवाया गया। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था पर इस अभिलेख से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वत्सभट्टि द्वारा प्रणीत इस सुंदर अभिलेख का कुछ भाग इस प्रकार है—'ते देश-पार्थिव गुणापहृताः प्रकाशमध्वादिजान्यविरलान्यसुखान्यपास्य जातादरादशपुरं प्रथमं मनोभिरन्वागताः ससुतबंधुजनाः समेत्य', 'मत्तेभगंडतटविच्युतदानबिंदु सिक्तोपलाचलसहस्रविभूषणायाः पुष्पावनम्रतरुमंडवतंसकायाभूमेः परं तिलक-भूतमिदंक्रमेण । तटोत्थवृक्षच्युतनैकपुष्पविचित्रतीरान्तजलानि भान्ति । प्रफुल्लपद्माभरणानि यत्र सरांसि कारंडवसंकुलानि । विलोलवीची चलितार-विन्दपतद्रजः पिंजरितैश्च हंसैः, स्वकेसरोदारभरावभुग्नैः क्वचित्सरांस्यम्बुरुहैश्च भान्ति । स्वपुष्पभारावनतैर्नगेन्द्रैर्मदप्रगल्भालिकुलस्वनैश्च, अजस्रगाभिश्च पुरांगनाभिर्वनानि यस्मिन् समलंकृतानि।चलत्पाताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थ शुक्ला-न्यधिकोन्नतानि, तडिल्लता चित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र।' अर्थात् वे रेशम बुनने वाले शिल्पी (फूलों के भार से झुके सुंदर वृक्षों, देवालयों और सभाविहारों के कारण सुंदर और तरुवराच्छादित पर्वतों से छाए हुए लाट देश से आकर) दशपुर में, वहां के राजा के गुणों से आकृष्ट होकर रास्ते के कष्टों की परवाह न करते हुए, बंधुबांधव सहित बस गए। यह नगर (दशपुर) उस भूमि का तिलक है जो मत्तगजों के दान-बिंदुओं से सिक्त शैलों वाले सहस्रों पहाड़ों से अलंकृत है और फूलों के भार से अवनत वृक्षों से सजी हुई है; जो तट पर के वृक्षों से गिरे हुए अनेक पुष्पों से रंगबिरंगे जलवाले और प्रफुल्ल कमलों से भरे और कारंडव-पक्षियों से संकुल सरोवरों से विभूषित है; जो बिलोल लहरियों से दोलायमान कमलों से गिरते हुए पराग से पीले रंगे हुए हंसों और अपने केसर के भार से विनम्र पद्मों से सुशोभित है; जहां फूलों के भार से विनत वृक्षों से संपन्न और मदप्रगल्भ भ्रमरों से गुंजित, और निरंतर गतिशील पौरांगनाओं से समलंकृत उद्यान हैं और जहां अत्यधिक श्वेत और तुंग भवनों के ऊपर हिलती हुई पताकाएं और भीतर स्त्रियां इस प्रकार शोभायमान हैं मानों श्वेत बादलों के खंडों में तडिल्लता जगमगाती हो, इत्यादि।

दशपुर से, 533 ई० का एक अन्य अभिलेख जिसका संबंध मालवाधि-पति यशोवर्मन् से है, सौंधी ग्राम के पास एक कूपशिला पर अंकित पाया गया था। यह अभिलेख भी सुंदर काव्यमयी भाषा में रचा गया है। इसमें राज्यमंत्री अभयदत्त की स्मृति में एक कूप बनाए जाने का उल्लेख है। अभयदत्त को पारियात्र और समुद्र से घिरे हुए राज्य का मंत्री बताया गया है। दशपुर में यशोधर्मन् के काल के विजय-स्तंभों के अवशेष भी हैं जो उसने हूणों पर प्राप्त

विजय की स्मृति में निर्मित करवाए थे। एक स्तंभ के अभिलेख में पराजित हूणराज मिहिरकुल द्वारा की गई यशोधर्मन् की सेवा तथा अर्चना का वर्णन है —'चूडापुष्पोपहारैर्मिहिरकुल नृपेणार्चितंपादयुग्मम् ।' इनमें से प्रत्येक स्तंभ का व्यास 3 फुट 3 इंच, ऊंचाई 40 फुट से अधिक और वज़न लगभग 5400 मन था। मंदसौर के आसपास 100 मील तक वह पत्थर उपलब्ध नहीं है जिसके ये स्तंभ बने हैं।

मंदसौर से गुप्तकाल के अनेक मंदिरों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जो क़िले के अंदर कचहरी के सामने वाली भूमि में आज भी सुरक्षित हैं। कहा जाता है कि 14वीं सती के प्रारंभ में अलाउद्दीन खिलजी ने इस महिमामय नगर को लूट कर विध्वस्त कर दिया और यहां एक किला बनवाया जो खंडहर के रूप में आज भी विद्यमान है। दशपुर की गणना प्राचीन जैनतीर्थों में की गई है। जैन-स्तोत्रगंथ तीर्थमालाचैत्य वंदन में इसका नामोउल्लेख है—'हस्तोडीपुर पाडला-दशपुरे चारूप पंचासरे'। वाराहमिहिर ने बृहत्संहिता, 14 में दशपुर का उल्लेख किया है। मंदसौर को आसपास के गांवों के लोग दसौर कहते हैं जो दशपुर का अपभ्रंश है। मंदसौर दसौर का ही रूपांतरण है।

दशमौलिका=दशौली

दशार्ण

(1) बुंदेलखण्ड (म० प्र०) का धसान नदी से सिंचित प्रदेश। यह नदी भूपाल क्षेत्र की पर्वतमाला से निकल कर सागर जिले में बहती हुई झांसी के निकट बेतवा में मिल जाती है। दशार्ण का अर्थ दस (या अनेक) नदियों वाला क्षेत्र है। धसान, दशार्ण का ही अपभ्रंश है। महाभारत में दशार्ण का, भीमसेन द्वारा विजित किए जाने का उल्लेख है—"ततः स गंडकाञ्छूरो विदेहान् भरतर्षभः, विजित्याल्पेन कालेन दशार्णानजयत प्रभुः। तत्र दशार्णको राजा सुधर्मालोमहर्षणम्, कृतवान् भीमसेनेन महद् युद्धं निरायुधम्" सभा० 29, 4-5। यहां उस समय सुधर्मा का शासन था। महाभारत में सुधर्मा के पूर्वगामी दशार्ण-नरेश हिरण्यवर्मा का उल्लेख है। इसकी कन्या का विवाह द्रुपदपुत्र शिखंडी के साथ हुआ था। (हिरण्यवर्मेति नृपोऽसौ दाशार्णिकः स्मृतः, स च प्रादान्महीपालः कन्यां तस्मै शिखंडिने—महा०, उद्योग 199,10) महाभारत के पश्चात् दशार्ण का उल्लेख बौद्धजातकों तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। उस समय विदिशा यहां की राजधानी थी। कालिदास ने मेघदूत (पूर्वमेघ 25) में दशार्ण का सुंदर वर्णन करते हुए इस देश के बरसात में फूलने-फलने वाले जामुन के कुंजों तथा इस ऋतु में कुछ दिन यहां ठहर जाने वाले यायावर हंसों का वर्णन

किया है—'त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्यामजंबूवनान्तास्संपत्स्यन्ते कतिपयदिन स्थायिहंसा दशार्णाः ।

2. धसान नदी का प्राचीन नाम ।

दशाश्वमेधिक

महाभारत वन० (तीर्थयात्रा प्रसंग) में गंगा तट पर स्थित दशाश्वमेधिक नामक तीर्थ का उल्लेख है—'दशाश्वमेधिकं चैव गंगायां कुरुनन्दन'—वन० 85,87 । संभवतः यह काशी का प्रसिद्ध दशाश्वमेध है । कुछ इतिहासज्ञों का मत है कि दशाश्वमेध भारशिवनरेशों का स्मृति-चिन्ह है क्योंकि इन्होंने काशी में दश अश्वमेध यज्ञ किए थे ।

दशोली = दशमौलिका (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

उत्तराखंड का प्राचीन शिवतीर्थ । कहा जाता है कि दशानन रावण ने यहां शिवोपासना से दस सिर (मौलि = शिर) वरदान में प्राप्त किए थे ।

दात्तामित्री

पतंजलि के महाभाष्य और क्रमदीश्वर के व्याकरण में सुवीर देश में स्थित दात्तामित्री नामक नगर का उल्लेख है जो शायद ग्रीक राजा डेमेट्रियस (द्वितीय शती ई० पू०) के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था । चारक्स (Charax) के इसीडोर-ग्रंथ में (प्रथम शती ई० के प्रारंभ में निर्मित) डेमेट्रिओपोलिस नामक नगर की स्थिति अराकोसिया या वर्तमान कंधार (अफ़गानिस्तान) में बताई गई है । बहुत संभव है कि दात्तामित्री, डेमाट्रिआपोलिस का ही भारतीय रूपांतर हो । यह संभावना महाभारत में दत्तमित्र नामक राजा के नामोल्लेख से और भी पुष्ट हो जाती है । दत्तमित्री बेक्ट्रिया के ग्रीक राजा डेमेट्रिअस का ही संस्कृत उच्चारण जान पड़ता है । ग्रीक इतिहास-लेखक स्ट्रेबो के वर्णन के अनुसार अंतिओकस (Antiochus) के जामातृ डेमेट्रिअस और मिनेंडर (भारतीय नाम मिलिंद) ने भारत तक यूनानी राज्य का विस्तार किया था । दात्तामित्री नगर का ठीक-ठीक अभिज्ञान अनिश्चित है । यह नगर द्वितीय शती ई० पू० में बसाया गया होगा ।

दामणि

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में इस गणराज्य का उल्लेख किया है । इसका अभिज्ञान अनिश्चित है । संभव है यह तामिल प्रदेश का कोई गणराज्य हो । तामिल शब्द का प्राचीन उच्चारण दामिल, द्रामिड़ या द्राविड़ है । दामणि द्रामिड़ का रूपांतर हो सकता है ।

दामलिप्त

ताम्रलिप्त का रूपान्तर।

दामोदर

भागीरथी गंगा की सहायक नदी जो हजारीबाग (बिहार) की पहाड़ियों से निकल कर बिहार-बंगाल के क्षेत्र में बहती हुई हुगली में गिर जाती है। हुगली भागीरथी की एक शाखा है।

दामोदरपुर (बंगाल)

कुमारगुप्त प्रथम, बुद्धगुप्त तथा भानुगुप्त नामक गुप्तनरेशों के छः दानपट्ट इस स्थान से प्राप्त हुए थे जिनमें उत्तरकालीन गुप्तनरेशों के इतिहास तथा तत्कालीन शासन-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

दारानगर (ज़िला बिजनौर, उ०प्र०)

बिजनौर नगर से 7 मील दक्षिण की ओर गंगातट पर स्थित प्राचीन बस्ती है। प्राचीन अनुश्रुति है कि इस स्थान पर श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के पश्चात् द्वारका से आई हुई यादव स्त्रियां ठहरी थीं। एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार महाभारत-युद्ध के पश्चात् मृत क्षत्रियनरेशों की रानियों को इस स्थान पर विदुर जी ने शरण दी थी इसीलिए इस स्थान का नाम दारानगर (दारा=स्त्री) पड़ गया। महामना विदुर का निवासस्थान दारानगर के सन्निकट 'विदुरकुटी' नामक स्थान कहा जाता है। प्राचीन हस्तिनापुर के खंडहर विदुरकुटी से कुछ दूर, गंगा के पार ज़िला मेरठ में स्थित हैं। महाभारत उद्योगपर्व की कथा के अनुसार श्रीकृष्ण ने दुर्योधन द्वारा संधिप्रस्ताव के ठुकराए जाने पर उसका राजसी आतिथ्य अस्वीकार कर विदुर के घर आकर भोजन किया था। विदुरकुटी में आज भी बथुवे का साग उगा हुआ है जो किंवदंती के अनुसार विदुर के यहां कृष्ण ने खाया था। विदुर जी की पादुकाएं अब भी इस स्थान पर सुरक्षित हैं। दुर्योधन का राजसी भोजन छोड़कर कृष्ण का विदुर के घर भोजन करने का वर्णन महाभारत में इस प्रकार है—'एवमुक्त्वा महाबाहुर्दुर्योधनमर्षणम् निश्चक्राम ततः शुभ्राद्धार्तराष्ट्र निवेशनात्। निर्याय च महाबाहुर्वासुदेवो महामनाः, निवेशाय ययौवेश्म विदुरस्य महात्मनः, ततोऽनुयायिभिः सार्वं मरुद्भिरेव वासवः। विदुरान्नानि बुभुजे शुचीन् गुणवन्ति च' महा० उद्योग० 91,33-34-41। महाभारत में कृष्ण का विदुर के घर रूखा-सूखा शाक खाने का कोई उल्लेख नहीं है। वहां विदुर के भोजन को 'शुचि' और 'गुणवान्' बताया गया है।

दारुकवन

द्वारका (गुजरात) के निकट नागेश्वर नामक स्थान का परिवर्ती प्रदेश। यहां द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक का स्थान माना जाता है। (दे० शिवपुराण 1,56)

दार्व

अर्जुन ने इस देश को अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में जीता था—'ततस्त्रिगर्ता: कौंतेयं दार्वा: कोकनदास्तथा, क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वश:' —महा० सभा० 27, 18। दार्वनिवासियों ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्हें उपहार भेंट किए थे—'कैराता दरदा: दार्वा: शूरावैयमकास्तथा औदुंबरादुर्विभागा: पारदा बाह्लिकै: सह' महा० सभा० 52, 13। दार्व का अभिज्ञान जम्मू (काश्मीर) के डुग्गर के इलाके से किया गया है (दे० डुग्गर) डुग्गर, डोगरा राजपूतों का मूल स्थान है। डुग्गर दार्व का अपभ्रंश हो सकता है।

दार्वाभिसार

झेलम तथा चिनाब नदियों के बीच का पहाड़ी देश (पश्चिमी कश्मीर) जिसमें पूंछ और नौशेरा के ज़िले सम्मिलित हैं। ग्रीक-लेखकों ने अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के संबंध में इस देश के राजा अभिसार का उल्लेख किया है।

दार्विकोर्वी

'सिंधुतटदार्विकोर्वी चंद्रभागाकाश्मीरविषयांश्च व्रात्यम्लेच्छ् शूद्रादयोभोक्ष्यन्ति' विष्णु० 4,24,69। इस उद्धरण से सूचित होता है कि दार्विकोर्वी नामक प्रदेश में संभवत: गुप्तकाल के कुछ पूर्व शूद्र या म्लेच्छ–विदेशी शकादि—जातियों का राज था। प्रसंगानुसार यह सिंध या पंजाब के अंतर्गत कोई क्षेत्र जान पड़ता है। यह बहुत संभव है कि दार्व को ही इस स्थान पर दार्विकोर्वी नाम से अभिहित किया गया है। दार्व जम्मू का डुग्गर नामक इलाका है। विष्णुपुराण के उपर्युक्त उल्लेख में दार्विकोर्वी का नाम कश्मीर और चिनाब (चंद्रभागा) के साथ होने से भी इस संभावना की पुष्टि होती है।

दाल्भ्य-आश्रम दे० डलमऊ

दाशार्हनगरी

महाभारत में द्वारका का एक नाम—'आपृच्छेत्वां गमिष्यामि दाशार्हनगरीं

प्रति' महा० सभा० 2,32। दाशार्ह कृष्ण अथवा यादवों के कुल का अभिधान था जिनकी नगरी के रूप में द्वारका विख्यात थी।

दाशेरक

महाभारत में वर्णित एक जन-पद अथवा गणराज्य जिसके योद्धा महाभारतयुद्ध में पांडवों के साथ थे—'कुंतिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्म्यां तौ जनेश्वरौ, दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशेरकगणैः सह' महा० भीष्म० 50, 47। इस प्रसंग से दाशेरक गणराज्य की स्थिति मध्यप्रदेश में जान पड़ती है। संभवतः दशार्ण (प० मालवा) के निकट ही यह देश रहा होगा।

दासमीय

'गोवास दासमीयानां वसातीनां च भारत, प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम्' महा० कर्ण 73,17। इस उद्धरण में दासमीय-देशीयों को दुर्योधन की ओर से, महाभारत के युद्ध में, लड़ते हुए बताया गया है। गोवास संभवतः शिवि (ज़िला झंग, प० पाकि०) और वसाति वर्तमान सीबी (हि० प्र०) है। दासमीय जनपद की स्थिति इन्हीं दोनों स्थानों के बीच कहीं रही होगी।

दाहड़पुर (राजस्थान)

आबू के निकट वर्तमान दहिद्रो। तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस जैन तीर्थ का नामोल्लेख इस प्रकार है—'कोडीनारकमंत्रि दाहड़पुरे श्री मंडपेचार्बुदे'।

दाहपरबतिया (ज़िला दरंग, असम)

तेजपुर के निकट एक ग्राम। इस ग्राम से एक गुप्तकालीन मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहां के अन्य अवशेषों में गुप्तकालीन शिल्पशैली में निर्मित पत्थर के द्वारपट्टक प्रमुख हैं जिन पर चैत्यवातायन तथा गंगायमुना की प्रतिमाओं का अंकन है जो गुप्तकालीन कला का विशिष्ट अंग है। गंगा-यमुना की मूर्तियों का उत्किरण अत्यंत कलात्मक ढंग से किया गया है तथा विशेष रूप से स्वाभाविक है। मंदिर के पार्श्व में खंडितावस्था में मिट्टी के सुंदर पटके भी मिले थे जिन पर मानवाकृतियां बहुत ही आकर्षक और सजीव मुद्रा में अंकित हैं।

दाहोद (दे० दधिपद्र)

ढिचपल्ली (ज़िला निज़ामाबाद, आं० प्र०)

निज़ामाबाद से 10 मील पूर्व यह स्थान विष्णु के प्राचीन मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। मंदिर एक सरोवर के तट के निकट एक टीले पर बना हुआ है। इसके चतुर्दिक् परकोटा खिंचा है। मंदिर पर सुंदर नक़्क़ाशी का काम है। इसके स्तंभ गोल हैं और द्राविड वास्तुशैली में निर्मित हैं।

दिल्ली

दिल्ली की संसार के प्राचीनतम नगरों में गणना की जाती है। महाभारत के अनुसार दिल्ली को पहली बार पांडवों ने, इंद्रप्रस्थ नाम से बसाया था (दे० इंद्रप्रस्थ), किंतु आधुनिक विद्वानों का मत है कि दिल्ली के आसपास—उदाहरणार्थ रोपड़ (पंजाब) के निकट, सिंधुघाटी सभ्यता के चिन्ह प्राप्त हुए हैं और पुराने क़िले के निम्नतम खंडहरों में आदिम दिल्ली के अवशेष मिलें तो कोई आश्चर्य नहीं। वास्तव में, देश में अपनी मध्यवर्ती स्थिति के कारण तथा उत्तरपश्चिम से भारत के चतुर्दिक् भागों को जाने वाले मार्गों के केंद्र पर बसी होने से दिल्ली भारतीय इतिहास में अनेक साम्राज्यों की राजधानी रही है। महाभारत के युग में कुरुप्रदेश की राजधानी हस्तिनापुर में थी। इसी काल में पांडवों ने अपनी राजधानी इंद्रप्रस्थ में बनाई। जातकों के अनुसार इंद्रप्रस्थ सात-कोस के घेरे में बसा हुआ था। पांडवों के वंशजों की राजधानी इंद्रप्रस्थ में कब तक रही यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता किंतु पुराणों के साक्ष्य के अनुसार परीक्षित तथा जनमेजय के उत्तराधिकारियों ने हस्तिनापुर में भी बहुत समय तक अपनी राजधानी रखी थी और इन्हीं के वंशज निचक्षु ने हस्तिनापुर के गंगा में बह जाने पर अपनी नई राजधानी प्रयाग के निकट कौशाम्बी में बनाई (दे० पार्जिटर, डायनेस्टीज़ ऑव दि कलि एज–पृ०5)। मौर्यकाल में दिल्ली या इंद्रप्रस्थ का कोई विशेष महत्त्व न था क्योंकि राजनैतिक शक्ति का केंद्र इस समय मगध में था। बौद्धधर्म का जन्म तथा विकास भी उत्तरी भारत के इसी भाग तथा पार्श्ववर्ती प्रदेश में हुआ और इसी कारण बौद्ध-धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ने के साथ ही भारत की राजनीतिक सत्ता भी इसी भाग (पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार) में केंद्रित रही। फलतः मौर्यकाल के पश्चात् लगभग 13 सौ वर्ष तक दिल्ली और उसके आसपास का प्रदेश अपेक्षाकृत महत्त्वहीन बना रहा। हर्ष के साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् उत्तरीभारत में अनेक छोटी मोटी राजपूत रियासतें बन गईं और इन्हीं में 12वीं शती में पृथ्वीराज चौहान की भी एक रियासत थी जिसकी राजधानी दिल्ली बनी। दिल्ली के जिस भाग में कुतुब मीनार है वह अथवा महरौली का निकटवर्ती प्रदेश ही पृथ्वीराज के समय की दिल्ली है। वर्तमान जोगमाया का मंदिर मूल रूप से इन्हीं चौहान-नरेश का बनवाया हुआ कहा जाता है। एक प्राचीन जनश्रुति के अनुसार चौहानों ने दिल्ली को तोमरों से लिया था जैसा कि 1327 ई० के एक अभिलेख से सूचित होता है—'देशोस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः, ढिल्लिकाख्या पुरी यत्र

तोमरैरस्ति निर्मिता। चाहमाना नृपास्तत्र राज्यं निहितकंटकम्, तोमरांतरं चक्रुः प्रजापालनतत्पराः'। यह भी कहा जाता है कि चौथी शती ई० में अनंगपाल तोमर ने दिल्ली की स्थापना की थी। इन्होंने इंद्रप्रस्थ के क़िले के खंडहरों पर ही अपना क़िला बनवाया। इसके पश्चात् इसी वंश के सूरजपाल ने सूरजकुंड बनवाया जिसके खंडहर तुग़लकाबाद के निकट आज भी वर्तमान हैं। तोमरवंशीय अनंगपाल द्वितीय ने 12वीं शती के प्रारंभ में लालकोट का क़िला कुतुब के पास बनवाया। तत्पश्चात् दिल्ली बीसलदेव चौहान तथा उनके वंशज पृथ्वीराज के हाथों में पहुंची। जनश्रुति के अनुसार कुतुबमीनार और कुव्वतुलइसलाम मसजिद पृथ्वीराज के इस स्थान पर बने हुए सत्ताईस मंदिरों के मसालों से बनवाई गई थीं। कुछ विद्वानों का मत है कि महरौली—जहां कुतुबमीनार स्थित है—पहले एक वृहद् वेधशाला के लिए विख्यात थी। सत्ताईस मंदिर सत्ताईस नक्षत्रों के प्रतीक थे और कुतुब-मीनार चांद-तारों आदि की गति-विधि देखने के लिए वेधशाला की मीनार थी। इन सभी इमारतों को कुतुबद्दीन तथा परवर्ती सुलतानों ने इसलामी इमारतों के रूप में बदल दिया। पृथ्वीराज के तरायन के युद्ध में (1192 ई०) मारे जाने पर दिल्ली पर मु० ग़ौरी का अधिकार हो गया। इस घटना के पश्चात् लगभग साढ़े छः सौ वर्षों तक दिल्ली पर मुसलमान बादशाहों का अधिकार रहा और यह नगरी अनेक साम्राज्यों की राजधानी के रूप में बसती और उजड़ती रही। मु० गौरी के पश्चात् 1236 ई० में गुलाम-वंश की राजधानी दिल्ली में बनी। इसी काल में कुतुबमीनार का निर्माण हुआ। गुलामवंश के पश्चात् अलाउद्दीन ने सीरी में अपनी राजधानी बनाई। तुग़लककालीन दिल्ली वर्तमान तुग़लकाबाद में थी किंतु फीरोजशाह तुग़लक (1351-1388 ई०) के जमाने में इसका विस्तार दिल्ली दरवाजे के बाहर फिरोजशाह कोटला तक हो गया। तुग़लकाबाद में मु० तुग़लक का मक़बरा है। तुग़लकों के पश्चात् लोदियों का कुछ समय तक दिल्ली पर क़ब्ज़ा रहा। 1526 ई० में पानीपत के युद्ध के पश्चात् बाबर ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। बाबर और हुमायूं की राजधानी दिल्ली ही में रही। शेरशाह सूरी ने भी पांच वर्ष दिल्ली में राज्य किया। अकबर तथा जहांगीर के समय में दिल्ली का गौरव फतहपुर सीकरी तथा आगरे ने कुछ समय तक के लिए छीन लिया किंतु शाहजहां ने पुनः दिल्ली में अपनी राजधानी बनाई। वही शाहजहांबाद या चहारदिवारी के अंदर के शहर का निर्माता था। औरंगज़ेब ने भी दिल्ली में ही अपने विशाल साम्राज्य की राजधानी क़ायम रखी। 1857 ई० तक मुगलों का राज्य किसी न किसी

रूप में दिल्ली में चलता रहा। 1857 ई० की राज्य क्रांति के पश्चात् अंग्रेजों ने दिल्ली से राजधानी उठाकर कलकत्ते को यह गौरव प्रदान किया किंतु 1910 में पुनः एक बार दिल्ली को भारत की राजधानी बनने की प्रतिष्ठा प्रदान की गई। 1947 में दिल्ली स्वतंत्र भारत की राजधानी के रूप में अपनी पूर्वप्रतिष्ठा पर आसीन हुई। इस प्रकार आज भी भारत की राजधानी के रूप में दिल्ली की प्राचीन प्रतिष्ठा कायम है। दिल्ली के प्राचीनतम स्मारकों में महरौली में स्थित चंद्र नाम के किसी यशस्वी नरेश का विष्णुध्वज लौहस्तंभ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस पर निम्न अभिलेख उत्कीर्ण है—'यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान्, वंगेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिभुजे, तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिंधोर्जितावाह्लिका यस्याद्यप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलै र्दक्षिणः'। चंद्र का अभिज्ञान चंद्रगुप्त द्वितीय से किया जाता है किंतु यह तथ्य विवादास्पद है। कहा जाता है कि पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल ने यह लौह स्तंभ मथुरा से लाकर यहां स्थापित किया था। यह स्तंभ सैकड़ों वर्षों से खुले हुए स्थान में बिना जंग खाए हुए खड़ा हुआ है। यह एक ही लोहे के खंड का बना है। इतना बड़ा लौह-दंड ढालने की निर्माणियां भारत में चौथी शती ई० में थीं यह जान कर प्राचीन भारत के धातु-कर्म-विशारदों के प्रति हमारा मस्तक आदर से झुक जाता है। कहा जाता है कि इस परिमाण का लौह-दंड इंग्लैंड तक में 19वीं शती के प्रारंभ से पूर्व नहीं ढाला जा सकता था। इस लौह स्तंभ से प्रायः छः सौ वर्ष प्राचीन अशोक के दो प्रस्तर-स्तंभ भी दिल्ली में वर्तमान हैं। एक तो सब्ज़ी मंडी के निकट पहाड़ी पर है तथा दूसरा दिल्ली दरवाज़े के बाहर फ़ीरोजशाह कोटला में है। दोनों को फ़ीरोजशाह तुगलक ने दिल्ली की शोभा बढ़ाने के लिए क्रमशः मेरठ तथा तोपरा (ज़िला अंबाला) से मंगवाकर स्थापित किया था। इस तथ्य का उल्लेख इब्नबतूता ने भी किया है। पहले स्तंभ पर अशोक के सात 'स्तंभ अभिलेख' उत्कीर्ण थे किंतु 1715 में इसको काफी क्षति पहुंचने के कारण इस पर का लेख मिट सा गया है। दूसरा स्तंभ 46 फुट 8 इंच ऊंचा है। इस पर भी सात स्तंभ लेख अंकित हैं और स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। दिल्ली का पुराना क़िला पांडवों के समय का बताया जाता है और जनश्रुति के अनुसार प्राचीन इंद्रप्रस्थ की स्थिति का परिचायक है। अवश्य ही इसका जीर्णोद्धार तथा संवर्धन परिवर्ती युगों में हुआ होगा। शेरशाह का राजप्रासाद पुराने क़िले के भीतर था और यहीं उसकी बनवाई हुई कुहना (=पुरानी) मसजिद है जो निश्चय रूप से किसी प्राचीन इमारत को परिवर्तित करके बनवाई गई थी। कहा जाता है कि यहां पंच-पांडवों

के समय का सभा-भवन था जैसा कि इस इमारत के दालान में बने हुए पांच कोष्ठकों से प्रमाणित होता है। इस प्रकार के पांच-कोष्ठक किसी और मसजिद में नहीं देखे जाते। पुराने क़िले के शेरमंडल नामक स्थान के अंतर्गत बने हुए पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिर कर ही हुमायूं की मृत्यु हुई थी (1556 ई०)।

कुतुब मीनार 238 फुट ऊंची है और भारत में पत्थर की बनी हुई सब मीनारों में सर्वोच्च है। इसे कुतुबद्दीन एबक ने 1199 ई० में बनवाया था। तत्पश्चात् इल्तुतमिश और फीरोजशाह तुगलक (1370 ई०) ने इसका संवर्धन तथा जीर्णोद्धार करवाया। इसमें पांच मंज़िलें हैं। प्रत्येक पर बाहर की ओर निकले हुए अलिंद बने हैं। मीनार के ऊपर अरबी में अभिलेख उत्कीर्ण हैं। मीनार की निचली सतह का व्यास 47 फुट 3 इंच और शीर्ष का केवल 9 फुट है। पहली तीन मंजिलें लाल पत्थर की और अंतिम दो जो शायद फ़ीरोज तुग़लक की बनवायी हुई हैं—संगमरमर की हैं। ये पहली मंज़िलों से अधिक चिकनी व ऊंची हैं। मीनार में चोटी तक पहुंचने के लिए 379 सीढ़ियां हैं। प्राचीन जनश्रुतियों के अनुसार यह मीनार मूल रूप में पृथ्वीराज चौहान द्वारा अपनी प्रिय रानी संयोगिता के लिए बनवाया हुआ दीप स्तंभ था जिसे बाद में मुसलमान बादशाहों ने मीनार के रूप में बदल दिया। कुतुबमीनार के पास ही अलाउद्दीन खिलजी द्वारा प्रारंभ की हुई अलाई मीनार की कुर्सी के अवशेष हैं। यह मीनार अलाउद्दीन की मृत्यु के कारण आगे न बन सकी थी।

दिल्ली की वास्तुकला का वास्तविक गौरव मुग़लकालीन है। हुमायूं के मकबरे को 1565 ई० में उसकी बेगम हमीदा बानू ने बनवाया था। इसमें हमीदा की कब्र भी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कालों में बनी दाराशिकोह फरुखसियर तथा आलमगीर द्वितीय आदि की भी कबरें यहीं स्थित हैं। कहा जाता है कि मुगल परिवार के तथा उससे संबंधित 90 से अधिक व्यक्तियों की क़ब्रें यहां है। 1857 की राज्यक्रांति में अंतिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह को मुग़लों ने यहीं कैद किया था। यह मक़बरा मुग़ल वास्तुकला का प्रथम प्रारूपिक उदाहरण है।

लालक़िला जो फर्ग्युसन के अनुसार शायद संसार का सर्वश्रेष्ठ राजप्रासाद है, 1639 और 1648 ई० के बीच शाहजहां द्वारा बनवाया गया था। दीवाने ख़ास में जगप्रसिद्ध मयूर सिंहासन या तख़्तेताऊस था जिसे शाहजहां ने, तत्कालीन यूरोपीय लेखकों के अनुसार 20 लाख पौंड की लागत से बनवाया था। लाल-किले के ठीक सामने कुछ दूर पर, चांदनी चौक के पास भारत की सबसे बड़ी मसजिद, जामे-मसजिद है। इसे शाहजहां ने 1650-58 में बनवाया था। इसके

तीन पट्टियोंदार कंदाकृति गुंबद और दो 130 फुट ऊंची व पतली मीनारें हैं। ये विशेषताएं मुग़लशैली की परिचायक हैं। बीच में विशाल प्रांगण है जिसके तीन ओर खुले हुए प्रकोष्ठ हैं और तीन ओर विशाल दरवाज़े जो भूमितल से काफ़ी ऊंचाई पर हैं। इन तक पहुंचने के लिए सीढ़ियों की पंक्तियां बनी हैं।

कहा जाता है कि विभिन्न कालों में यमुना नदी की धारा के साथ ही साथ दिल्ली नगरी की स्थिति भी बदलती रही है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्राचीनतम दिल्ली महरौली के आसपास तथा पुराने क़िले के परिवर्ती प्रदेश में थी। गुलामकालीन राजधानी भी लगभग इसी प्रदेश में रही। अलाउद्दीन की दिल्ली वर्तमान सीरी (तुग़लकाबाद और कुतुब के बीच) के पास और तुग़लकों की दिल्ली तुग़लकाबाद (दिल्ली-मथुरा मार्ग के निकट) में थी। शाहजहां ने जो दिल्ली बसाई वही आजकल की पुरानी दिल्ली है जिसके चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ है। चांदनी चौक और इसके बीच बहने वाली नहर शाहजहां ने ही बनवाई थी। अंग्रेज़ों ने पुरानी दिल्ली से कुछ दूर हटकर अपनी राजधानी नई दिल्ली बनाई। इसके निर्माता प्रसिद्ध शिल्पी सर एडवर्ड लुट्येंस और सर हर्बर्ट बेकर थे। इस भव्य नगरी का आनुष्ठानिक उद्घाटन 1931 में हुआ था।

दिवावृत

विष्णुपुराण 2,4,51 के अनुसार क्रौंच द्वीप का एक पर्वत 'क्रौचश्चवामनश्चैव तृतीयश्चांधकारकः चतुर्थो रत्नशैलश्च स्वाहिनी हयसन्निभः, दिवावृत्पंचमश्चात्र तथान्यः पुंडरीकवान् दुंदभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम्'।

दिव्यकट

महाभारत, सभा० में नकुल की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में इस नगर के नकुल द्वारा जीते जाने का उल्लेख है—'कृत्स्नं पंचनदं चैव तथैवामरपर्वतम्, उत्तरं ज्योतिषं चैव तथा दिव्यकटं पुरम्' सभा० 32,11। प्रसंग से जान पड़ता है कि दिव्यकट की स्थिति कश्मीर या पंजाब के पहाड़ी प्रदेश में कहीं रही होगी।

दीदारगंज (ज़िला पटना, बिहार)

1917 में पटना के निकट इस स्थान से एक यक्षिणी की सुंदर मूर्ति प्राप्त हुई थी जो पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। मूर्ति चमर-वाहिनी सेविका की जान पड़ती है। विद्वानों के मत में यह मूर्ति मौर्य-कालीन है। मूर्ति की रचना बहुत ही सुंदर तथा इसकी मुद्रा अतीव स्वाभाविक है। शरीर के ऊपरी भाग के भारी होने के कारण अनम्यता का भाव तो बहुत ही लावण्यपूर्ण बन पड़ा है। मूर्ति का एक हाथ खंडित है। दूसरे में यह चमर धारण किए हुए है। शरीर का

उपरला भाग विवस्त्र है। गले में मुक्तामाल शोभायमान है जो पुष्ट वक्ष के ऊपर लहराती हुई लटक रही है। क्षीण कटि तथा स्थूल नितंबों की गुरुता का अंकन भी विदग्धता-पूर्ण है। मूर्ति, कटि से नीचे साड़ी पहने हुए है जिसके मोड़ साफ़ झलकते हैं।

दीनाजपुर (बंगाल)

गुप्तकालीन अभिलेखों में इस स्थान का नाम **कोटिवर्ष** है।

दीपवती

गोआ के द्वीप के उत्तर में दीवर नामक द्वीप। स्कंदपुराण सह्याद्रिखंड में यहाँ सप्तऋषियों द्वारा शिवमंदिर की स्थापना का उल्लेख है।

दीर्घपुर=डीग

दीव=देव दे० ड्यू

दुंदभि

(1) विष्णुपुराण में वर्णित क्रौंच द्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा द्युतिमान् के पुत्र के नाम से प्रसिद्ध है। (दे० विष्णु० 2,4,48)

(2) विष्णुपुराण में उल्लिखित क्रौंचद्वीप का एक पर्वत, 'दिवावृत् पंचम श्चात्र तथान्यः पुंडरीकवान्, दुंदुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम्'—विष्णु० 2,4,51

(3) विष्णुपुराण के अनुसार प्लक्षद्वीप के सात मर्यादा पर्वतों में से एक "गोमेदश्चैव चंद्रश्च नारदो दुंदुभिस्तथा सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः' विष्णु० 2,4,7

दुर्गा

साबरमती की सहायक नदी—(पद्मपुराण उत्तर० 60; ब्रह्मांडपुराण पृ० 49)

दुर्गावती

किंवदंती के अनुसार महाभारत काल में बीड़ नगर (ज़िला बीड़, महाराष्ट्र) का नाम। दे० **बीड़**

दुर्जया

'ततः स संप्रस्थितो राजा कौन्तेयो भूरिदक्षिणः अगस्त्याश्रममासाद्य दुर्जयायामुवास ह' महा० वन० 96,1 अर्थात् गया से चलकर प्रचुर दक्षिणा दान करने वाले युधिष्ठिर ने अगस्त्याश्रम में पहुंच कर दुर्जयापुरी में निवास किया। जान पड़ता है यह नगरी राजगृह के निकट थी। इसे ही संभवतः वन० 96,4 में मणिमतिनगरी कहा है। यह नगरी नागों की उपासना के लिए प्रसिद्ध थी।

दुर्वासा आश्रम

स्थानीय जनश्रुति में, खल्ली पहाड़ (ज़िला भागलपुर, बिहार) पर स्थित कहा जाता है।

दूधई (ज़िला झांसी, उ० प्र०)

मध्ययुगीन बुंदेलखंड की वास्तुकला की सुंदर कृतियां—विशेषकर चंदेल तथा परिवर्ती राज्यवंशों के समय में बने मंदिरों के अनेक अवशेष यहां प्राप्त हुए हैं।

दूनागिरि (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

रानीखेत के निकट दूनागिरि की पहाड़ी प्राचीन समय से जड़ी बूटियों तथा औषधियों के लिए प्रख्यात है। जनश्रुति में कहा जाता है कि लंका में लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर हनुमान जी इसी पहाड़ (द्रोणगिरि) पर से संजीवनी ले गये थे।

दृषद्वती

(1) उत्तर वैदिककाल की प्रख्यात नदी जो यमुना और सरस्वती के बीच के प्रदेश में बहती थी। इस प्रदेश को ब्रह्मावर्त कहते थे। इस नदी को अब घग्घर कहते हैं। दृषद्वती का उल्लेख ऋग्वेद में केवल एक बार सरस्वती नदी के साथ है। महाभारत भीष्म 9,15 में, नदियों की सूची में दृषद्वती भी परिगणित है —'शतद्रूं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम्, दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूल-वालुकाम्'। वनपर्व में दृषद्वती का सरस्वती के साथ ही उल्लेख है—'सरस्वती नदी सद्भिः सततं पार्थ पूजिता, बालखिल्यैर्महाराज यत्रेष्टमृषिभिः पुरा, दृषद्वती महापुण्या यत्र ख्याता युधिष्ठिर,' वन: 90,10-11। दृषद्वती-कौशिकी संगम का वर्णन वन० 83,95-96 में है। (दे० **कौशिकी** 2)

(2) श्रीमद्भागवत् 5,19,18 में भी इसी नदी का उल्लेख है—'यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू...'। दृषद्वती का शाब्दिक अर्थ दृषद्वाली या प्रस्तरों से पूर्ण नदी है। उत्तर-वैदिक काल में दृषद्वती और सरस्वती ब्रह्मावर्त की पूर्वी सीमा बनाती थीं—(मेकडॉनेल्ड— ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, 1929, पृ० 141) वामनपुराण 39, 6-8 में दृषद्वती को कुरुक्षेत्र की एक नदी माना गया है 'दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी'।

देओरिया (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

5वीं शती ई० का एक गुप्तकालीन मूर्ति-अभिलेख यहां से प्राप्त हुआ है जो लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें शाक्य भिक्षु बोधिवर्मन् द्वारा एक बौद्ध प्रतिमा की प्रतिष्ठापना का उल्लेख है। लेख मूर्ति के अधस्तल पर अंकित है।

देलवाड़ा (काठियावाड़, गुजरात)

(1) पश्चिम रेल का छोटा सा स्टेशन है। कस्बे का प्राचीन नाम देवलपुर है। यहां कई प्राचीन मंदिर है और ऋषितोया नदी पास ही बहती है। नदी का स्थानीय नाम मच्छुंदी है।

(2) आबू की पहाड़ी पर स्थित प्रसिद्ध मंदिर (दे० **आबू**)

देव

(1)=ड्यू।

(2) (तहसील औरंगाबाद, जिला गया, बिहार) इस स्थान पर एक प्राचीन सूर्य-मंदिर के अवशेष हैं जिसे किंवदंती के अनुसार मूलरूपतः राजा पुरुरवा ऐल ने बनवाया था।

मुसलमानों के आक्रमण के समय इस मंदिर का विध्वंस हुआ था। इसकी मूर्तियां अधिक प्राचीन नहीं जान पड़तीं।

देवकीपट्टन

यह वर्तमान प्रभासपट्टन है। इसका जैनतीर्थ के रूप में वर्णन तीर्थमाला-चैत्यवंदन नामक स्तोत्र ग्रंथ में इस प्रकार है—'वंदे स्वर्णगिरौ तथा सुरगिरौ श्रीदेवकीपट्टने'।

देवकुण्ड (जिला गया, बिहार)

(1) पटना-गया रेल मार्ग पर जहानाबाद स्टेशन से 36 मील दूर है। इसे प्राचीन काल में च्यवनाश्रम कहा जाता था। यहां च्यवन-ऋषि का मंदिर भी है। स्थानीय जनश्रुति में राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या और च्यवन की मनोरंजक पौराणिक आख्यायिका— इसी स्थान से संबंधित है। कहा जाता है कि देवकुंड सरोवर में स्नान करने के पश्चात् वृद्ध च्यवन सुंदर युवक बन गये थे। महाभारत में च्यवनाश्रम का उल्लेख नर्मदातट पर भी है। (दे० **च्यवनाश्रम**)

(2) (बुंदेलखंड, म० प्र०) पूर्व-मध्यकाल में देवकुंड में कछवाहा राजपूतों की एक शाखा का राज्य था। इनकी बनवायी इमारतों के अवशेष यहां खंडहरों के रूप में स्थित हैं।

देवकूट

विष्णुपुराण के अनुसार यह एक मर्यादा पर्वत है—'जठरोदेवकूटश्च मर्यादा-पर्वतावुभौ तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ'। विष्णु 2,2,40। यह उत्तर में निषध तक फैला हुआ था।

दुर्वासा आश्रम

स्थानीय जनश्रुति में, खल्ली पहाड़ (ज़िला भागलपुर, बिहार) पर स्थित कहा जाता है।

दूधई (ज़िला झांसी, उ० प्र०)

मध्ययुगीन बुंदेलखंड की वास्तुकला की सुंदर कृतियां—विशेषकर चंदेल तथा परिवर्ती राज्यवंशों के समय में बने मंदिरों के अनेक अवशेष यहां प्राप्त हुए हैं।

दूनागिरि (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

रानीखेत के निकट दूनागिरि की पहाड़ी प्राचीन समय से जड़ी बूटियों तथा औषधियों के लिए प्रख्यात है। जनश्रुति में कहा जाता है कि लंका में लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर हनुमान जी इसी पहाड़ (द्रोणगिरि) पर से संजीवनी ले गये थे।

दृषद्वती

(1) उत्तर वैदिककाल की प्रख्यात नदी जो यमुना और सरस्वती के बीच के प्रदेश में बहती थी। इस प्रदेश को ब्रह्मावर्त कहते थे। इस नदी को अब घग्घर कहते हैं। दृषद्वती का उल्लेख ऋग्वेद में केवल एक बार सरस्वती नदी के साथ है। महाभारत भीष्म 9,15 में, नदियों की सूची में दृषद्वती भी परिगणित है —'शतद्रूं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम्, दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम्'। वनपर्व में दृषद्वती का सरस्वती के साथ ही उल्लेख है—'सरस्वती नदी सद्भिः सततं पार्थ पूजिता, बालखिल्यैर्महाराज यत्रेष्टमृषिभिः पुरा, दृषद्वती महापुण्या यत्र ख्याता युधिष्ठिर,' वन: 90,10-11। दृषद्वती-कौशिकी संगम का वर्णन वन० 83,95-96 में है। (दे० **कौशिकी** 2)

(2) श्रीमद्भागवत् 5,19,18 में भी इसी नदी का उल्लेख है—'यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू...'। दृषद्वती का शाब्दिक अर्थ दृषद्वाली या प्रस्तरों से पूर्ण नदी है। उत्तर-वैदिक काल में दृषद्वती और सरस्वती ब्रह्मावर्त की पूर्वी सीमा बनाती थीं—(मेकडॉनेल्ड— ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, 1929, पृ० 141) वामनपुराण 39, 6-8 में दृषद्वती को कुरुक्षेत्र की एक नदी माना गया है 'दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी'।

देओरिया (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

5वीं शती ई० का एक गुप्तकालीन मूर्ति-अभिलेख यहां से प्राप्त हुआ है जो लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें शाक्य भिक्षु बोधिवर्मन् द्वारा एक बौद्ध प्रतिमा की प्रतिष्ठापना का उल्लेख है। लेख मूर्ति के अधस्तल पर अंकित है।

देलवाड़ा (काठियावाड़, गुजरात)

(1) पश्चिम रेल का छोटा सा स्टेशन है। कस्बे का प्राचीन नाम देवलपुर है। यहां कई प्राचीन मंदिर है और ऋषितोया नदी पास ही बहती है। नदी का स्थानीय नाम मच्छुंदी है।

(2) आबू की पहाड़ी पर स्थित प्रसिद्ध मंदिर (दे० **आबू**)

देव

(1)=द्यू।

(2) (तहसील औरंगाबाद, जिला गया, बिहार) इस स्थान पर एक प्राचीन सूर्य-मंदिर के अवशेष हैं जिसे किंवदंती के अनुसार मूलरूपत: राजा पुरुरवा ऐल ने बनवाया था।

मुसलमानों के आक्रमण के समय इस मंदिर का विध्वंस हुआ था। इसकी मूर्तियां अधिक प्राचीन नहीं जान पड़तीं।

देवकीपट्टन

यह वर्तमान प्रभासपट्टन है। इसका जैनतीर्थ के रूप में वर्णन तीर्थमाला-चैत्यवंदन नामक स्तोत्र ग्रंथ में इस प्रकार है—'वंदे स्वर्णगिरौ तथा सुरगिरौ श्रीदेवकीपट्टने'।

देवकुण्ड (जिला गया, बिहार)

(1) पटना-गया रेल मार्ग पर जहानाबाद स्टेशन से 36 मील दूर है। इसे प्राचीन काल में च्यवनाश्रम कहा जाता था। यहां च्यवन-ऋषि का मंदिर भी है। स्थानीय जनश्रुति में राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या और च्यवन की मनोरंजक पौराणिक आख्यायिका—इसी स्थान से संबंधित है। कहा जाता है कि देवकुंड सरोवर में स्नान करने के पश्चात् वृद्ध च्यवन सुंदर युवक बन गये थे। महाभारत में च्यवनाश्रम का उल्लेख नर्मदातट पर भी है। (दे० **च्यवनाश्रम**)

(2) (बुंदेलखंड, म० प्र०) पूर्व-मध्यकाल में देवकुंड में कछवाहा राजपूतों की एक शाखा का राज्य था। इनकी बनवायी इमारतों के अवशेष यहां खंडहरों के रूप में स्थित हैं।

देवकूट

विष्णुपुराण के अनुसार यह एक मर्यादा पर्वत है—'जठरोदेवकूटश्च मर्यादा-पर्वतावुभौ तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ'। विष्णु 2,2,40। यह उत्तर में निषध तक फैला हुआ था।

देवगढ़ (जिला झांसी, उ० प्र०)

(1) ललितपुर से 22 तथा मध्य-रेलवे के जाखलौन स्टेशन से 9 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित है। यहां के प्राचीन स्मारकों में निम्न उल्लेखनीय हैं :—

सैपुरा ग्राम से तीन मील पश्चिम की ओर पहाड़ी पर एक चतुष्कोण कोट, नीचे मैदान में एक भव्य विष्णु-मंदिर, यहां से एक फर्लांग पर वराह मंदिर, पास ही एक विशाल दुर्ग के खंडहर, इसके पश्चात् दो और दुर्गों के भग्नावशेष, एक दुर्ग के विशाल घेरे में 31 जैन मंदिर और अनेक भवनों के खंडहर। देवगढ़ में सब मिला कर 300 के लगभग अभिलेख मिले हैं जो 8वीं शती से लेकर 18वीं शती तक के हैं। इनमें ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी द्वारा अंकित अठारह लिपियों का अभिलेख तो अद्वितीय ही है। चंदेल-नरेशों के अभिलेख भी महत्वपूर्ण हैं। देवगढ़ बेतवा के तट पर है। तट के निकट पहाड़ी पर 24 मंदिरों के अवशेष हैं जो 7वीं शती ई० से 12वीं शती ई० तक बने थे। देवगढ़ का शायद सर्वोत्कृष्ट स्मारक दशावतार का विष्णु मंदिर है जो अपनी रमणीय कला के लिए भारत भर के उच्चकोटि के मंदिरों में गिना जाता है। इसका समय छठी शती ई० माना जाता है जब गुप्त वास्तुकला अपने पूर्ण विकास पर थी। मंदिर इस समय भग्नप्राय अवस्था में है किंतु यह निश्चित है कि प्रारंभ में इसमें अन्य गुप्तकालीन देवालयों की भांति ही गर्भगृह के चतुर्दिक पटा हुआ प्रदक्षिणापथ रहा होगा। इस मंदिर के एक के बजाए चार प्रवेश द्वार थे और उन सबके सामने छोटे-छोटे मंडप तथा सीढ़ियां थीं। चारों कोनों में चार छोटे मंदिर थे। इनके शिखर आमलकों से अलंकृत थे क्योंकि खंडहरों से अनेक आमलक प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक सीढ़ियों की पंक्ति के पास एक गोखा था। मुख्य मंदिर के चतुर्दिक कई छोटे मंदिर थे, जिनकी कुर्सियां मुख्य मंदिर की कुर्सी से नीची हैं। ये मुख्य मंदिर के बाद में बने थे। इनमें से एक पर पुष्पावलियों तथा अधोशीर्ष स्तूप का अलंकरण अंकित है। यह अलंकरण देवगढ़ की पहाड़ी की चोटी पर स्थित मध्ययुगीन जैनमंदिरों में भी प्रचुरता से प्रयुक्त है। दशावतार मंदिर में गुप्त वास्तुकला के प्रारूपिक उदाहरण मिलते हैं, जैसे, विशालस्तंभ जिनके दंड पर अर्ध अथवा तीन चौथाई भाग में अलंकृत गोल पट्टक बने हैं और शीर्ष अथवा आधार भाग में पर्णित पुष्प पात्रों की रचना की गई है। ऐसे एक स्तंभ पर छठी शती के अंतिम भाग की गुप्तलिपि में एक अभिलेख पाया गया है जिससे उपर्युक्त अलंकरण का गुप्तकालीन होना सिद्ध होता है। इस मंदिर की

वास्तुकला की दूसरी विशेषता चैत्य वातायनों के घेरों में कई प्रकार के उत्कीर्ण चित्र हैं। इन चित्रों में प्रवेशद्वार या मूर्ति रखने के अवकाश भी प्रदर्शित हैं। इनके अतिरिक्त सारनाथ की मूर्तिकला का विशिष्ट अभिप्राय (Motif) स्वस्तिकाकार शीर्ष सहित स्तंभयुग्म भी इस मंदिर के चैत्यवातायनों के घेरों में उत्कीर्ण है। दशावतार मंदिर का शिखर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण संरचना है। पूर्व गुप्तकालीन मंदिरों में शिखरों का अभाव है। देवगढ़ के मंदिर का शिखर भी अधिक ऊंचा नहीं है वरन् इसमें क्रमिक घुमाव बनाए गए हैं। इस समय शिखर के निचले भाग की गोलाई ही शेष है किंतु इससे पूर्ण शिखर का आभास मिल जाता है। शिखर के आधार के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ की सपाट छत थी जिसके किनारे पर बड़ी व छोटी चैत्य खिड़कियां थीं जैसा कि महाबलीपुरम् के रथों के किनारों पर हैं। द्वार-मंडप दो विशाल स्तंभों पर आधृत था। प्रवेश-द्वार पर पत्थर की चौखट है जिस पर अनेक देवताओं तथा गंगा-यमुना की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मंदिर की बहिर्भित्तियों के अनेक शिलापट्टों पर गजेन्द्रमोक्ष, शेषशायी विष्णु आदि के कलात्मक मूर्तिचित्र अंकित हैं। मंदिर की कुर्सी के चारों ओर भी गुप्तकालीन मूर्तिकारी का वैभव अवलोकनीय है। रामायण और कृष्णलीला से संबंधित दृश्यों का चित्रण बहुत ही कलापूर्ण शैली में प्रदर्शित है। देवगढ़ के अन्य मंदिरों में गोमटेश्वर, भरत, चक्रेश्वरी, पद्मावती, ज्वालामालिनी, श्री, ह्री, तथा पंच परमेष्ठी आदि जैन तथा तांत्रिक मूर्तियों का सुंदर प्रदर्शन है। दूसरे दुर्ग से पहाड़ी में नदी तक काटकर बनाई हुई सीढ़ियों द्वारा नाहरघाटी व राजघाटी तक पहुंचा जा सकता है। मार्ग में पांच पांडवों की मूर्तियां, जिन प्रतिमाएं, शैलकृत्त सिद्ध गुहा तथा गुप्तकालीन अभिलेख मिलते हैं।

(2) (जिला उदयपुर, राजस्थान) कुंभलगढ़ से चार मील दूर है। यहां चूड़ावत सरदारों की राजधानी थी। इनके पूर्वज मेवाड़ के उत्तराधिकारी कुमार चूंडा ने अपने पिता के मारवाड़ की राजकुमारी के साथ विवाह कर लेने पर अपना राज्याधिकार भीष्म के समान ही त्याग दिया था। उसने अपने सौतेले भाई मुकुल की उसके मातामह जोधपुर-नरेश रनमल के मेवाड़ पर आक्रमण करने के समय सहायता भी की थी। चूंडा ने अपनी प्रथम राजधानी देवगढ़ में बनाई थी। बाद में उनका अधिकार मंडोर पर भी हो गया था।

(3) (जिला छिंदवाड़ा, म०प्र०) मुगलकाल में यहां राजगौडों का राज्य था। १६७० ई० में गौंड नरेश कूरमकल्ल कोकशाह पर औरंगजेब ने आक्रमण किया। मुगलसेना को छत्रसाल और उनके भाई अंगदराय ने सहायता दी

और देवगढ़ ले लिया गया। इस युद्ध में छत्रसाल ने बड़ी वीरता दिखाई थी और वे घायल भी हो गए थे। युद्ध के पश्चात् छत्रसाल को मुगल सम्राट् औरंगजेब से यथोचित सत्कार न मिला और इस घटना से उनके मन की राष्ट्रीय भावनाएं जागृत हो गईं और तब से वे औरंगजेब के कट्टर शत्रु हो गए।

देवगिरि (जिला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

(1) जैन पंडित हेमाद्रि के कथनानुसार देवगिरि की स्थापना यादव नरेश भिलम्मा (प्रथम) ने की थी। यादव-नरेश पहले चालुक्य राज्य के अधीन थे। भिलम्मा ने 1187 ई० में स्वतंत्र राज्य स्थापित करके देवगिरि में अपनी राजधानी बनाई। उसके पौत्र सिंहन ने प्रायः संपूर्ण पश्चिमी चालुक्य राज्य अपने अधिकार में कर लिया। देवगिरि के किले पर अलाउद्दीन खिलजी ने पहली बार 1294 ई० में चढ़ाई की थी। पहले तो यादवनरेश ने करद होना स्वीकार कर लिया किन्तु पीछे से उन्होंने दिल्ली के सुल्तान को खिराज देना बन्द कर दिया जिसके फलस्वरूप 1307, 1310 और 1318 में मलिक काफ़ूर ने फिर देवगिरि पर आक्रमण किया। यहां का अंतिम राजा हरपालसिंह युद्ध में पराजित हुआ और क्रूर सुल्तान की आज्ञा से उसकी खाल खिंचवा ली गई। 1338 ई० में मु० तुगलक ने देवगिरि को अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया क्योंकि मु० तुगलक के विशाल साम्राज्य की देखरेख दिल्ली की अपेक्षा देवगिरि से अधिक अच्छी तरह की जा सकती थी। सुलतान ने दिल्ली की प्रजा को देवगिरि जाने के लिए बलात् विवश किया। 17 वर्ष पश्चात् देवगिरि के लोगों को असीम कष्ट भोगते देखकर इस उतावले सुलतान ने फिर उन्हें दिल्ली वापस आ जाने का आदेश दिया। सैकड़ों मील की यात्रा के पश्चात् दिल्ली के निवासी किसी प्रकार फिर अपने घर पहुंचे। मु० तुगलक ने देवगिरि का नाम दौलताबाद रखा था और वारंगल के राजाओं के विरुद्ध युद्ध करने के लिए इस स्थान को अपना आधार बनाया था। किन्तु उत्तरी भारत में गड़बड़ प्रारम्भ हो जाने के कारण वह अधिक समय तक राजधानी देवगिरि में न रख सका। मु० तुगलक के राज्य काल में प्रसिद्ध अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता दौलताबाद आया था। उसने इस नगर की समृद्धि का वर्णन करते हुए उसे दिल्ली के समकक्ष ही बताया है। राजधानी के दिल्ली वापस आ जाने के कुछ ही समय पश्चात् गुल्बर्गा के सूबेदार जफरखाँ ने दौलताबाद पर अधिकार कर लिया और यह नगर इस प्रकार बहमनी सुलतानों के हाथ में आ गया। यह स्थिति 1526 तक रही जब इस पर निजामशाही सुलतानों का अधिकार हो गया। तत्पश्चात् मुगल सम्राट् अकबर का अहमदनगर पर क़ब्ज़ा हो जाने पर

दौलताबाद भी मुगलसाम्राज्य में सम्मिलित हो गया। किन्तु पुनः इसे शीघ्र ही अहमदनगर के सुलतानों ने वापस ले लिया। 1633 ई० में शाहजहां के सेनापति ने दौलताबाद पर क़ब्जा कर लिया और तब से औरंगजेब के राज्यकाल के अंत तक यह ऐतिहासिक नगर मुगलों के हाथ ही में रहा। औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् मुहम्मदशाह के शासनकाल में हैदराबाद के प्रथम निजाम आसफजाह ने दौलताबाद को अपनी नई रियासत में शामिल कर लिया।

देवगिरि का यादवकालीन दुर्ग एक त्रिकोण पहाड़ी पर स्थित है। क़िले की ऊंचाई, आधार से 150 फुट है। पहाड़ी समुद्रतल से 2250 फुट ऊंची है। क़िले की बाहरी दीवार का घेरा $2\frac{3}{4}$ मील है और इस दीवार और क़िले के आधार के बीच क़िलाबंदियों की तीन पंक्तियां हैं। प्राचीन देवगिरि-नगरी इसी परकोटे के भीतर बसी हुई थी। किन्तु उसके स्थान पर अब केवल एक गांव नजर आता है। क़िले के कुल आठ फाटक हैं। दीवारों पर कहीं कहीं आज भी पुरानी तोपों के अवशेष पड़े हुए हैं। इस दुर्ग में एक अंधेरा भूमिगत मार्ग भी है जिसे अंधेरी कहते हैं। इस मार्ग में कहीं कहीं गहरे गढ्डे भी हैं जो शत्रु को धोखे से नीचे गहरी खाई में गिराने के लिए बनाये गये थे। मार्ग के प्रवेश-द्वार पर लोहे की बड़ी अंगीठियाँ बनी हैं जिनमें आक्रमणकारियों को बाहर ही रोकने के लिए आग सुलगा कर धुआं किया जाता था। क़िले की पहाड़ी में कुछ अपूर्ण गुफाएं भी है जो एलोरा की गुफाओं की समकालीन हैं। देवगिरि के प्रमुख स्मारक हैं चांद मीनार, चीनीमहल व जामा मसजिद। चांद मीनार 210 फुट ऊंची और आधार के पास 70 फुट चौड़ी है। यह मीनार दक्षिण भारत में मुसलिम वास्तुकला की सुंदरतम कृतिओं में से है। इसको अलाउद्दीन बहमनी ने क़िले की विजय के उपलक्ष्य मे बनवाया था। मीनार का आधार 15 फुट ऊंचा है जिसमें 24 कोष्ठ हैं। संपूर्ण मीनार पर पहले सुंदर ईरानी पत्थर जड़े हुए थे। इसके दक्षिण की ओर एक छोटी मसजिद है जो, जैसा कि एक फारसी अभिलेख से सूचित होता है, 849 हिजरी (=1445 ई०) में बनी थी। चीनी महल किले के अष्टम फाटक से 40 फुट दाई ओर है। यह भवन पहले बहुत सुंदर था। इसी में औरंगजेब ने गोलकुंडा के अंतिम शासक अबुहसन तानाशाह को क़ैद किया था। यादवकालीन इमारतों के अवशेष अब नहीं के बराबर हैं। केवल कालिकादेवल जिसके मध्य भाग को मलिक काफ़ूर ने मसजिद में परिवर्तित कर दिया था, मौजूद है। इसके पास ही जामा मसजिद है, जिसमें प्राचीन भारतीय शैली के स्तंभ और सपाट दरवाजे हैं। इसे 1313 ई०

में मुबारक खिलजी ने बनवाया था। किंवदंती है कि बहमनीवंश के संस्थापक हसन गंगू का राज्याभिषेक इसी मसजिद में 1347 ई० में हुआ था। अकबर के समकालीन इतिहास-लेखक फरिश्ता ने इसका सुंदर वर्णन किया है। देवगिरि के अन्य उल्लेखनीय स्थान हैं —काआरीटंका, हाथीहौज, जनार्दन स्वामी की समाधि तथा शाहजहां और निजामशाही सुलतानों के बनवाए कुछ महलों के भग्नावशेष। जैन स्तोत्र तीर्थ माला चैत्यवंदन में देवगिरि को सुरगिरि कहा गया है।

(२) (म० प्र०) एक स्थानीय अभिलेख के अनुसार चंबलनदी के तट पर बसे हुए अटेर नामक क़स्बे के क़िले की पहाड़ी का नाम देवगिरि है। यह अभिलेख भदौरिया राजा बदनसिंह का है।

(3) कालिदास के मेघदूत (पूर्वमेघ 44) में वर्णित एक पहाड़ी—'नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वगिरिं ते, शीतोवायुः परिणमयिता काननोदुंबराणाम्' अर्थात् हे मेघ (गंभीरा नदी के आगे जाने के पश्चात्) वन-गूलरों को पकाने वाली शीतल वायु, देवगिरि नामक पहाड़ी के निकट जाने के इच्छुक तेरा साथ देगी। मेघ के यात्राक्रम के अनुसार देवगिरि की स्थिति, गंभीरा (वर्तमान गंभीर) नदी और चर्मण्वती (पूर्वमेघ 47-48) के बीच कहीं होनी चाहिए। चर्मण्वती या चंबल को पार करने के पश्चात् मेघ दशपुर पहुँचता है जो पश्चिमी मालवा का मंदसौर है। इस प्रकार देवगिरि की स्थिति, उज्जैन से मंदसौर के मार्ग पर और चम्बल के दक्षिणी तट पर होनी चाहिए। इस पहाड़ी का अभिज्ञान अनिश्चित है। पूर्वमेघ, 45 में इसी पहाड़ी पर कालिदास ने स्कंद का निवास बताया है—'तत्र स्कंदं नियतवसितम्'। बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी जर्नल के दिसंबर 1915 के अंक में प्रकाशित (पृ० 203) एक लेख के अनुसार गंभीरा के तीर पर अंजीर के वृक्षों के वन में होकर एक मार्ग है जो लगभग एक 200 फुट ऊचे पहाड़ पर जाकर समाप्त होता है। इस पहाड़ पर स्कंद का एक छोटा सा मंदिर है। मंदिर की देवमूर्ति की खांडेराव (=स्कंदराज) के नाम से पूजा होती है। यह आश्चर्यजनक बात है कि कालिदास ने इस देवमूर्ति का नाम स्कंद कहा है। संभव है इसी पहाड़ी को कालिदास ने देवगिरि नाम से अभिहित किया हो।

(4) श्रीमद्भागवत, 5,19,16 में उल्लिखित एक पर्वत का नाम—'भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैला: सन्ति बहवोमलयोमंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभ; कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वैंकटो महेन्द्रो वारिधारो विंध्यः'। संदर्भ से यह दक्षिण भारत का कोई पर्वत जान पड़ता

है। संभव है देवगिरि (!) की ही पहाड़ी का इस उद्धरण में उल्लेख हो। यह पहाड़ी समुद्रतल से 2250 फुट ऊंची है। उपर्युक्त उद्धरण में जिसमें पर्वतों के नाम शायद क्रमानुसार हैं, देवगिरि, ऋष्यमूक पर्वत के साथ उल्लिखित है जिससे इसे दक्षिण भारत का ही पर्वत मानना ठीक होगा।

देवटेक (ज़िला चांदा, म० प्र०)

इस स्थान से हाल ही में एक अशोककालीन ब्राह्मी अभिलेख प्राप्त हुआ है। अशोक मौर्य का समय 300-232 ई० पू० है।

देवदह

महावंश, 2,9 में उल्लिखित शाक्य राजा देवदह की राजधानी। यह नगर गौतम बुद्ध की माता मायादेवी का पितृस्थान था। यह ज़िला बस्ती (उ०प्र०) के उत्तर में नेपाल की सीमा के अंतर्गत और लुंबिनी या वर्तमान रुम्मिनीदेई के पास ही स्थित होगा। कपिलवस्तु से देवदह जाते समय मार्ग में ही लुंबिनीवन में माया ने पुत्र को जन्म दिया था। माया के पितृकुल के शाक्यों की कुल-रीति के अनुसार इनकी कन्याओं के पहले पुत्र का जन्म पितृगृह में ही होता था और इसीलिए मायादेवी बालक के जन्म के पूर्व देवदह जा रही थीं। माया के पिता कोलियगणराज्य के मुख्य थे। गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री सी० डी० चटर्जी ने देवदह का अभिज्ञान ज़िला गोरखपुर की फरेंदा तहसील के अंतर्गत बनरसकला नामक स्थान से किया है (दे० हिन्दुस्तान टाइम्स, 17-4-64)

देवदुर्ग (ज़िला रायचूर, मैसूर)

यह स्थान बीदर के सरदारों या पोलीगरों का गढ़ था। ये इतने शक्तिशाली थे कि प्रथम निज़ाम आसफजाह ने इनसे संधि करना ठीक समझा था। क़िले के तीन ओर दीवारें हैं और पश्चिम की ओर पहाड़ियां। क़िला मध्ययुगीन है।

देवधानी=देवयानी

साँभर या शाकंभर (राजस्थान) का एक प्राचीन नाम। (दे० देवयानी)

देवपर्वत (बुंदेलखंड, म०प्र०)

अजयगढ़ से 4 मील उत्तर की ओर यह पर्वत स्थित है। महाभारत में दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से इसका संबंध बताया जाता है। देवपर्वत की चोटी पर महाकवि सूरदास के समकालीन भक्तप्रवर वल्लभाचार्य की बैठक स्थित है।

देवपाटन (नेपाल)

इस नगर की स्थापना **मौर्यसम्राट्** अशोक **की** पुत्री चारुमती ने अपने पिता के साथ नेपाल की यात्रा के अवसर पर (250 ई० पू० के लगभग) की थी। उसने अपने पति देवपाल क्षत्रिय की स्मृति में ही इस नगर का नाम देवपाटन रखा था। इसे पाटन भी कहा जाता था। (दे० **ललितपाटन, मंजुपाटन**)

देवपुर दे० **राजिम**

देवप्रयाग (गढ़वाल, उ० प्र०)

भागीरथी और अलकनंदा के संगम पर स्थित तीर्थ जो बदरीनाथ के मार्ग में है।

देवप्रस्थ

महाभारत के वर्णन के अनुसार अर्जुन ने अपनी दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में देवप्रस्थ को जीता था। यहां सेनाबिंदु की राजधानी थी—'सदेवप्रस्थमासाद्य सेनाबिंदोः पुरंप्रति, बलेन चतुरंगेण निवेशमकरोत् प्रभुः' महा० सभा० 27,13। प्रसंगानुसार इसकी स्थिति हिमाचल प्रदेश में कुलू के अंतर्गत मानी जा सकती है। सभा० 27,14 में पौरवनरेश विश्वगण पर अर्जुन के आक्रमण का उल्लेख है जो अलक्षेन्द्र के समय के पुरु या पोरस का पूर्वज हो सकता है। इसका राज्य पश्चिमी पंजाब (पाकि०) में स्थित था।

देवबंद (जिला सहारनपुर, उ०प्र०)

किंवदंती के अनुसार यह महाभारतकालीन द्वैतवन है और देवबंद द्वैतवन का ही अपभ्रंश है। एक अन्य जनश्रुति के आधार पर यह भी कहा जाता है कि देवबंद या देवबन में प्राचीन काल में देवीबन नामक वन की स्थिति थी। देवीदुर्गा का एक स्थान अभी तक यहां वर्तमान है। वल्लभ संप्रदाय के प्रसिद्ध भक्त हितहरिवंश से संबद्ध राधावल्लभ का मंदिर भी उल्लेखनीय है। (दे० **द्वैतवन**)

देवबंदर=**ड्यू**

देवबरनार्क (जिला, आरा बिहार)

इस ग्राम से मगध के गुप्तनरेश जीवितगुप्त द्वितीय के समय का एक महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह शासनपत्र गोमतीकोट्टक नामक दुर्ग से प्रचलित किया गया था। यह तिथिहीन है। इसमें वरुणिक ग्राम(देव बरनार्क का मूल प्राचीन नाम) का वरुणवासिन् अथवा सूर्य मंदिर के लिए दान में दिये जाने का उल्लेख है। अभिलेख में गुप्तनरेशों की वंशावलि दी गई है जिससे कई परवर्ती गुप्त-राजाओं तथा उनसे संबद्ध मौखरीनरेशों के नाम

मिलते हैं जिनमें ये प्रमुख हैं (1) देवगुप्त—जिसके संबंध से वाकाटक राजाओं के कालनिर्णय में सरलता होती है, (2) बालादित्य—जिसका वृत्तांत हमें युवान-च्वांग के यात्रावर्णन से भी ज्ञात होता है और जिसने हूण राज्य मिहिरकुल से युद्ध किया था और (3) मौखरी नरेश सर्ववर्मन् तथा (4) अवंतिवर्मन् । अवंतिवर्मन् का उल्लेख बाण के हर्षचरित में हर्ष की भगिनी राज्यश्री के पति गृहवर्मन् के पिता के रूप में है ।

देवयानी (ज़िला सांभर, राजस्थान)

सांभर से 2 मील दूर प्राचीन ग्राम है । स्थानीय जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि यह ग्राम महाभारत तथा श्रीमद्भागवत में वर्णित देवयानी और शर्मिष्ठा के आख्यान की स्थली है । यहीं दैत्यगुरु शुक्राचार्य का आश्रम था । ग्राम में वह सरोवर भी बताया जाता है जहां शर्मिष्ठा ने स्नान करने के पश्चात् भूल से देवयानी के कपड़े पहन लिए थे । इस उपाख्यान का महाभारत आदि० 75-82 में वर्णन है । (दे० कोपरगाँव, देवपर्वत)

देवरकोंडा (ज़िला नलगौडा, आं० प्र०)

यह स्थान बहमनी काल में वेलमा राजा लिंग के अधिकार में था । इसने बहमनी सुलतानों से वीरतापूर्वक लड़ाइयां लड़ी थीं और उनकी अनेक सेनाओं को नष्ट किया था । यहां का क़िला सात पहाड़ियों से घिरा हुआ है ।

देवराष्ट्र (ज़िला विज़िगापटम्, आं० प्र०)

इस स्थान के राजा कुबेर का समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में उल्लेख है—इसे गुप्तसम्राट् (समुद्रगुप्त) ने पराजित किया था—'पालक्क उग्रसेनदेवराष्ट्रक कुबेर, कोस्थलपुरकधनंजयप्रभृतिसर्वदक्षिणापथराजागृहणमोक्षानुनिगृहजनित-प्रतापोन्मिश्र महाभाग्यस्य···' । पहले विद्वानों का विचार था कि देव-राष्ट्र महाराष्ट्र का ही पर्याय है और इस प्रकार समुद्रगुप्त की दिग्विजययात्रा में दक्षिणी भारत का लगभग पूरा भाग ही सम्मिलित माना गया था किंतु अब फ्रांसीसी विद्वान् जू वो डुब्रिल के मत के आधार पर यह उपकल्पना ग़लत कही जाती है । इनका मत है कि समुद्रगुप्त वास्तव में दक्षिण के केवल पूर्वी समुद्र-तट तथा मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग तक ही पहुंचा था और मलाबार तथा कोयम-बटूर के ज़िले तथा खानदेश और महाराष्ट्र के प्रांत उसकी दिग्विजय-यात्रा के मार्ग के बाहर थे । इस मत के मानने वाले देवराष्ट्र का अभिज्ञान विजिगापटम् ज़िले (आं० प्र०) के येल्लमंचिल्ली तालुक़े में स्थित इसी नाम (देवराष्ट्र) के ग्राम से करते हैं ।

देवरी (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

उदयपुर के निकट स्थित है। इस स्थान पर मेवाड़पति महाराणा राजसिंह ने मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब की सेना का आक्रमण विफल कर दिया था। मुग़ल-सम्राट् ने महाराणा को मारवाड़ के राजकुमार अजितसिंह को शरण देने तथा जज़िया के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए दोषी ठहराया था। मारवाड़ के वीर दुर्गादास की कूटनीति के फलस्वरूप देवरी की घाटी में मुग़ल सेना फंस गई तथा उसका बड़ा भाग नष्ट हो गया।

2—(ज़िला सागर, म० प्र०) देवरी की गढ़ी काफ़ी प्राचीन थी। इसकी गिनती गढ़मंडला की वीरांगना रानी दुर्गावती के श्वसुर संग्रामसिंह (मृत्यु 1541-ई०) के 52 गढ़ों में थी।

देवल (ज़िला पीलीभीत, उ० प्र०)

बीसलपुर से दस मील पर देवल और गढ़गजना के खंडहर हैं। कहा जाता है कि देवल में देवल नाम के ऋषि का आश्रम था। देवल ऋषि का उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीता 10,13 में है—'आहुस्तामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे'। पांडवों के पुरोहित धौम्य देवल के भाई थे। यहां के खंडहरों में भगवान् वराह की मूर्ति प्राप्त हुई थी जो देवल के मंदिर में है। जान पड़ता है कि यह स्थान प्राचीन समय में वराह-पूजा का केंद्र था। देवल-ऋषि के मंदिर में 992 ई० का कुटिला लिपि में एक अभिलेख है, जिससे सूचित होता है कि एक स्थानीय राजा और उसकी पत्नी लक्ष्मी ने बहुत से कुंज, उद्यान और मंदिर बनवाए और ब्राह्मणों को कई ग्राम दान में दिए जो निर्मल नदी के जल से सिंचित थे। देवल के पास बहने वाला कटनी नाम का नाला ही इस अभिलेख की निर्मला नदी जान पड़ता है।

देवलगढ़ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

श्रीनगर से 4 मील दूर यह स्थान गढ़वाल की प्राचीन राजधानी रह चुका है। यहां राजराजेश्वरी का और नाथ-संप्रदाय के कालभैरव का मंदिर स्थित है।

देवलनगर (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

इस छोटी सी रियासत की नींव डालने वाला राजा सूरजमल था जो चित्तौड़ नरेश राणा रायमल का भाई था। सूरजमल की रायमल के पुत्रों—सांगा और पृथ्वीराज से अनबन थी और वह चित्तौड़ का शत्रु हो गया था। इसने पृथ्वीराज से पराजित होकर चित्तौड़ से दूर देवलनगर राज्य की स्थापना की। किंतु सूरजमल के वंशज बाघ जी ने चित्तौड़ की, गुजरात के सुलतान बहादुरशाह के विरुद्ध अपनी सेना भेजकर, रक्षा की।

देवलपुर= दे० देलवाड़ा (1)

देवलार्क=**देवलास** (ज़िला आजमगढ़, उ० प्र०)

देवलास का प्राचीन नाम देवलार्क अर्थात् सूर्यमंदिर है। यह कस्बा तमसा (=टौंस) नदी के उत्तरी तट पर मुहम्मदाबाद स्टेशन से 4 मील पर बसा है। यहां के प्राचीन सूर्य मंदिर के अवशेष आज भी हैं। सूर्य की प्राचीन मूर्ति स्वर्ण की थी किंतु अब संगमर्मर की है।

देववन दे० **देवबंद**

देवसखा

हिमालय में कैलास के निकट स्थित पर्वत जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है। इसे अनेक पक्षियों का घर बताया गया है और इसके आगे एक विशाल मैदान का वर्णन है—'ततो देवसखानाम पर्वतः पतगालयः, नाना-पक्षिसमाकीर्णः विविधद्रुमभूषितः। तमतिक्रम्य चाकाशं सर्वतः शतयोजनं, अपर्वतनदीवृक्षं सर्वसत्वविवर्जितम्। तत्तु शीघ्रमतिक्रम्य कांतारं रोमहर्षणं कैलासं पांडुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ'। इस उद्धरण से प्रतीत होता है कि यह पर्वत कैलास के मार्ग में स्थित था। यहां से कैलास तक के रास्ते को बीहड़ एवं पर्वत, नदी, वृक्ष और सब प्राणियों से रहित बताया गया है। इसका ठीक ठीक अभिज्ञान अनिश्चित है।

देवहृद (दे० सिहावा)

यह महाभारत, अनुशासन० 25,44 में उल्लिखित है—'देहह्रद उपस्पृश्य ब्रह्मभूतो विराजते'।

देविका

(1) (नेपाल) गंडकी की सहायक नदी। देविका, गंडकी और चक्रा नदियों के त्रिवेणी-संगम पर नेपाल का प्राचीन तीर्थ मुक्तिनाथ बसा है। यह स्थान काठमंडू से 140 मील दूर है।

(2) स्कंदपुराण के अनुसार(प्रभास-खंड 278) यह नदी मूलस्थान (मुलतान, प० पाकि०) के प्रसिद्ध सूर्य मंदिर के निकट बहती थी (दे० मुलतान)। अग्नि-पुराण, 200 में इस नदी को सौवीर देश के अंतर्गत बताया गया है—'सौवीर-राजस्य पुरा मैत्रेयो भूत पुरोहितः तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविका तटे' अर्थात् सौवार-नरेश के मैत्रेयनामक पुरोहित ने देविका-तट पर विष्णु का देवालय बनवाया था। महाभारत, वनपर्व के अंतर्गत तीर्थयात्रा-प्रसंग में इस नदी का उल्लेख है। भीष्मपर्व 9,16 में इसका अन्य नदियों के साथ उल्लेख है—'नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम्, इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देवि-

कामपि' । महाभारत, अनुशासन० 25,21 में इस नदी में स्नान करने से मरने के बाद, सुंदर शरीर की प्राप्ति बताई गई है—'देविकायामुपस्पृश्य तथा सुंदरिकाह्रदे अश्विन्यां रूपवर्चस्कं प्रेत्य वै लभते नरः' । पाणिनि ने देविका-तट के धानों का उल्लेख किया है (अष्टाध्यायी 7,3,1) । विष्णु० 2,15,6 में देविका के तट पर वीरनगर नामक स्थान का उल्लेख है । कुछ विद्वानों के मत में देविका पंजाब की वर्तमान देह नदी है जो रावी में मिलती है ।

देविकाकुंड

महाभारत, अनुशासन० में वर्णित तीर्थ जो संभवतः देविका नदी के तट पर अवस्थित था । [दे० देविका (2)]

देवी

महानदी की सहायक नदी जो ज़िला पुरी (उड़ीसा) में बहती है ।

देवीपत्तन दे० **मूलसेतु**

देवीपाटन (जिला गोंडा, उ० प्र०)

पटेश्वरी देवी के मंदिर के लिए यह स्थान दूर-दूर तक प्रसिद्ध है । देवीपाटन तुलसीपुर रेल-स्टेशन के निकट है । वर्तमान मंदिर अधिक प्राचीन नही है किंतु कहा जाता है कि प्राचीन मंदिर जो आधुनिक मंदिर के स्थान पर ही था विक्रमादित्य के समय में बना था । इसे औरंगजेब ने 17 वीं शती में तुड़वा दिया था । स्थानीय किंवदंती के अनुसार कुंती के ज्येष्ठपुत्र कर्ण ने परशुराम से ब्रह्मास्त्र यहीं प्राप्त किया था । (दे० महा० कर्ण० 34, 157-158 'भार्गवोऽपिददौ दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने, कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनांतरात्मना')

देवीवन दे० **देवबंद**

देह=**देविका (२)**

देहरादून (उ० प्र०)

देहरा शब्द का अर्थ निवास स्थान या डेरा है और दून का अर्थ द्रोण या पर्वत की घाटी । कहते हैं कि सिखों के गुरु रामराय किरतपुर (पंजाब) से आकर यहां बस गये थे । मुगल सम्राट् औरंगजेब ने उन्हे कुछ ग्राम टिहरी नरेश से दान में दिलवा दिए थे । यहां उन्होंने मुगल-मकबरों में मिलता जुलता मंदिर भी बनवाया (1699 ई०) जो आजतक प्रसिद्ध है । शायद गुरु का डेरा यहां इस घाटी में होने के कारण ही स्थान का नाम देहरादून पड़ गया । इसके अतिरिक्त एक अति प्राचीन किंवदंती के अनुसार देहरादून का नाम पहले द्रोणनगर था और यह कहा जाता है कि पांडव-कौरवों के गुरु द्रोणाचार्य ने इस स्थान पर अपनी तपोभूमि बनाई थी और उन्हीं के नाम पर इस नगर का

नामकरण हुआ था। एक अन्य किंवदंती के अनुसार जिस द्रोणपर्वत की औषधियां हनुमान् जी लक्ष्मण के शक्ति लगने पर लंका ले गये थे वह यहीं स्थित था। किंतु वाल्मीकि रामायण में इस पर्वत को महोदय कहा गया है। यह भी कहा जाता है कि महाभारत-काल में विराटराज की सेना कालसी में रहा करती थी जो देहरादून के पास ही है और उनकी गांवों की रक्षा छद्मवेशधारी अर्जुन ने की थी (इस पिछली किंवदंती में कुछ भी तथ्य नहीं जान पड़ता क्योंकि विराट का राज्य मत्स्य देश में था जो वर्तमान अलवर-जयपुर का इलाका है)। देहरादून का एक अति प्राचीन मुहल्ला खुरबाड़ा है जिसका संबंध लोक कथा में विराट की गौवों के खुरों के गिरने से जोड़ा जाता है किंतु जैसा अभी कहा गया है देहरादून से विराट के संबंध की किंवदंती केवल कपोलकल्पना मात्र है। देहरादून जिले में कालसी के निकट जगतग्राम नामक स्थान पर तृतीय शती ई० के कुछ अवशेष मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि राजा शीलवर्मन ने इस स्थान पर अश्वमेधयज्ञ किया था। इससे यह महत्वपूर्ण तथ्य सिद्ध होता है कि देश के इस भाग में तृतीय शती ई० में हिंदूधर्म के पुनर्जागरण के लक्षण निश्चित रूप से दिखायी पड़ने लगे थे।

मुगल-साम्राज्य के छिन्नभिन्न हो जाने पर 1772 ई० में देहरादून पर गूजरों ने आक्रमण किया। तत्पश्चात् अफगान-सरदार गुलाम कादिर ने गुरु रामराय के मंदिर में अनेक हिंदुओं का बध किया और फिर सहारनपुर के सूबेदार नजीबुद्दौला ने दून-घाटी पर हमला करके उस पर अधिकार कर लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् गूजर, राजपूत और गोरखे इन सभी ने बारी-बारी से इस प्रदेश में लूटमार मचाई। 1783 ई० में सिख सरदार बघेल सिंह ने सहारनपुर को लूटने के पश्चात् देहरादून को नष्ट-भ्रष्ट किया। जिन लोगों ने रामराय के मंदिर में शरण ली, केवल वे ही बच सके अन्य सब को तलवार के घाट उतार दिया गया। आस-पास के गांवों में भी बघेलसिंह के सैनिकों ने लूट मार मचाई। 1786 ई० में गुलाम कादिर ने दुबारा देहरादून को लूटा और इस बार उसका सहायक मनियार सिंह भी था। गुलाम कादिर ने रामराय के गुरुद्वारे को लूट कर जला दिया और बिछी हुई गुरु की शैया पर शयन कर उसने सिखों और हिंदुओं के हृदयों को भारी ठेस पहुंचाई। स्थानीय हिंदुओं का विश्वास था कि इन्हीं अत्याचारों के कारण यह दुष्ट आक्रांता पागल होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। 1801 ई० में गोरखों ने दून-घाटी को हस्तगत कर लिया। यहां उस समय टिहरी-गढ़वाल नरेश प्रद्युम्नशाह का अधिकार था। इस लड़ाई में गोरखा-नरेश बहादुरशाह का, वीर सेनानी अमर सिंह ने बड़ी

वीरता से सामना किया। गोरखों का राज्य इस घाटी में तेरह-चौदह वर्ष तक रहा। इस काल में उन्होंने बड़ी नृशंसता से शासन किया। उनका अत्याचार यहां तक बढ़ गया था कि वे लगान वसूल करने के लिये किसानों को प्रतिवर्ष हरद्वार के मेले में बेच दिया करते थे। कहा जाता है कि इनका मूल्य दस से एक सौ पचास रुपये तक उठता था। अत्याचार-ग्रस्त किसान सैकड़ों की संख्या में दून-घाटी से भाग कर बाहर चले गये। रामराय गुरुद्वारे के महंत हरसेवक ने बाद में इन किसानों को वापस बुला लिया था। 1814 ई० में गोरखा-युद्ध के पश्चात् दूनघाटी तथा उत्तरी भारत के अन्य पहाड़ी प्रदेश अंग्रेजों के हाथ में आ गये।

देहली = दिल्ली

उर्दू भाषा में दिल्ली को प्रायः देहली लिखा जाता रहा है।

देहू (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

पूना से 15 मील दूर देहूरोड स्टेशन के निकट महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत तुकाराम का जन्म स्थान है। इनके पिता बोलोजी तथा माता कनकाबाई थीं। तुकाराम का जन्म 1608 ई० में हुआ था। कहा जाता है कि उन्होंने देहू के निकट भागगिरि पहाड़ी पर तपस्या करके मोक्ष प्राप्त की थी। तुकाराम द्वारा स्थापित बिठोबा का मंदिर देहू का प्रसिद्ध स्मारक है।

देहोत्सर्ग दे० प्रभास

देहक (सौराष्ट्र, गुजरात)

10 शती के प्रसिद्ध अरब पर्यटक तथा विद्वान् लेखक अलबेरुनी के एक उल्लेख के अनुसार रसविद्या के प्रसिद्ध भारतीय आचार्य नागार्जुन, सोमनाथ के निकट देहक नामक स्थान में रहते थे। अलबेरुनी का नागार्जुन-विषयक कथन भ्रामक जान पड़ता है किंतु देहक से तात्पर्य अवश्य ही देहोत्सर्ग या प्रभासपाटन (कृष्ण के देहोत्सर्ग का स्थान) से है।

दोहरताल

प्राचीन श्रावस्ती के खंडहरों (सहेतमहेत, जिला गोंडा, उ० प्र०) से एक मील दूर टंडवा नामक ग्राम में बौद्धकालीन कश्यप बुद्ध के स्तूप के भग्नावशेष हैं। इन्हीं के उत्तर में दोहरताल या सीतादोहर नामक एक मील लंबा ताल है जिसके साथ कई प्राचीन किंवदंतियों का संबंध है।

दौलताबाद दे० देवगिरि

द्युतिपलाश

वैशाली में स्थित ज्ञाति-क्षत्रियों का उद्यान एवं चैत्य। यह कौल्लाग सन्निवेश के निकट था।

द्युतिमान्

विष्णुपुराण 2,441 में उल्लिखित कुशद्वीप का एक पर्वत—'विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा, कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मंदराचलः।'

द्रविड़

तामिलप्रदेश (मद्रास) का प्राचीन नाम—'पांड्याश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोड्र केरलैः आंध्रास्तालवनांश्चैव कलिंगानुष्ट्रकर्णिकान्'—महा० सभा० 31,71। इस उल्लेख के अनुसार सहदेव ने द्रविड़ तथा अन्य दाक्षिणात्य राज्यों पर दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में विजय प्राप्त की थी। वन, 51,22 में द्राविड़ों का चोलों और आंध्रों के साथ उल्लेख है—'सवंगांगान् सपौंड्रोड्रान् सचोल द्राविडांध्रकान्'। कहा जाता है कि द्रविड़ और तमिल शब्द मूलतः एक ही हैं, केवल उच्चारण के भेद के कारण अलग-अलग हो गए हैं। मनु के अनुसार द्राविड़ मूलतः क्षत्रिय थे।

द्रांगियाना

बिलोचिस्तान (पाकिस्तान) का प्राचीन यूनानी नाम है। इसका उल्लेख अलक्षेंद्र के जमाने के यूनानी लेखकों ने किया है। यह कहना संभव नहीं है कि द्रांगियाना किस भारतीय नाम का यूनानी रूपांतर है।

द्राक्षाराम (जिला गोदावरी, आं० प्र०)

इस स्थान से अनेक प्राचीन ऐतिहासिक अभिलेख प्राप्त हुए है जिनसे जान पड़ता है कि यह स्थान प्राचीन समय में महत्वपूर्ण रहा होगा। दुर्गम वन-प्रदेश में स्थित होने के कारण इसका प्राचीन महत्व प्रकाश में नही लाया जा सका है।

द्रुमकुल्य

भारत-लंका के बीच के समुद्र के उत्तर की ओर एक देश जहां रामायण-काल में आभीरों का निवास था। समुद्र की प्रार्थना पर श्रीराम ने अपने चढ़ाए हुए बाण को (जिससे वह समुद्र को दंडित करना चाहते थे) द्रुमकुल्य की ओर फेंक दिया था। जिस स्थान पर बाण गिरा था वहां समुद्र सूख गया और मरुस्थल बन गया किंतु यह स्थान राम के वरदान से पुनः हरा-भरा हो गया—'उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित् पुण्यतरो मम, द्रुमकुल्य इतिख्याता लोके ख्यातो यथा भवान्। उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः, आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम। तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मिभिः, अमोघः क्रियतां राम अयं तत्र शरोत्तमः। तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम्, निपातितः शरो यत्र वज्राशिनसमप्रभः। विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरुकान्तारमेवच, शोषयित्वातु तं कुक्षिं रामो दशरथात्मजः। वरं तस्मै

ददौविद्वान् मखेऽमरविक्रमः, पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः, बहुस्नेहो बहुक्षीरः सुगंधिर्विविधौषधिः—वाल्मीकि० युद्ध० 22, 29-30-31-33-37-38। अध्यात्म-रामायण युद्ध 3, 81 में भी द्रुमकुल्य का उल्लेख है—'रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुतः'

द्रोण = द्रोणगिरि

विष्णुपुराण 2, 4, 26 में उल्लिखित शाल्मल द्वीप का एक पर्वत, 'कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहकः द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः'। यहां द्रोण-पर्वत पर महौषधियों का उल्लेख किया गया है। पौराणिक किंवदंती में कहा जाता है कि लक्ष्मण के लंका के युद्ध में शक्ति लगने पर हनुमान द्रोणाचल-पर्वत से ही औषधियाँ लाए थे। वाल्मीकि०, युद्ध०, 74 में हनुमान् को जिस पर्वत से औषधियां लानी थी जाम्बवान् ने उसे हिमालय के कैलास और ऋषभ पर्वतों के बीच में बताया है—'गत्वापरमध्वानमुपर्युपरिसागरम्, हिमवंतं नगश्रेष्ठं हनुमान् गंतुमर्हसि, ततः कांचनमत्युग्रमृषभं पर्वतोत्तमम् कैलासशिखरं चात्र द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन'—युद्ध० 74, 29-30। अध्यात्म-रामायण, युद्ध० 5, 72 में इसका नाम द्रोणगिरि है—'तत्र द्रोणगिरिर्नामदिव्यौषधि समुद्भवः तमानय द्रुतं गत्वा संजीवय महामते', अर्थात् रामचन्द्र जी ने वानर-सेना के मूर्छित हो जाने पर कहा—हे हनुमान, क्षीरसागर के निकट द्रोणगिरि नामक दिव्यौषधि-समूह है तुम वहां शीघ्र जाकर उसे ले आओ और वानर सेना को जीवित करो। इससे पहले श्लोक 71 में इसे क्षीरसागर के निकट बताया गया है। जनश्रुतियों के आधार पर द्रोणपर्वत का अभिज्ञान तहसील रानीखेत ज़िला अलमोड़ा में स्थित दूना-गिरि से किया जाता है। (देहरादून के पर्वतों को भी द्रोणाचल कहा जाता है।) दूनागिरि पर आजकल भी अनेक औषधियां उत्पन्न होती हैं। किंतु वाल्मीकि रामायण के उद्धरण से ज्ञात होता है कि यह पहाड़ कैलास और ऋषभ पर्वतों के बीच में स्थित था। (वाल्मीकि ने इस पर्वत का नाम महोदय बताया है) बदरीनाथ और तुंगनाथ से जो द्रोणाचल दिखाई देता है संभवतः वाल्मीकि रामायण में उसी का निर्देश है।

द्रोणगिरि

(1) = **द्रोण**

(2) (बुंदेलखंड, म० प्र०) छतरपुर से सागर जाने वाले मार्ग पर सेंधया ग्राम के निकट एक पर्वत जिसके शृंग पर 24 जैन मंदिर हैं। ये मध्यकालीन बुंदेलखंड की वास्तुशैली में निर्मित हैं। संभवतः इसी पर्वत का उल्लेख श्रीमद्भागवत 5,19,16 में है—'पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः'। (यह द्रोण या द्रोणगिरि भी हो सकता है)

द्रोणनगर

देहरादून का एक नाम जो द्रोणाचार्य के नाम पर है। (दे० **देहरादून**) द्रोणनगर का एक पर्याय द्रोणपुर भी है।

द्रोणपुर = द्रोणनगर

द्रोणस्तूप दे० भगवानगंज

द्रोणाश्रम

स्थानीय किंवदंती के अनुसार, देहरादून में द्रोणाचार्य का आश्रम था और इसी कारण इस नगर का नाम द्रोणनगर हुआ था।

द्वादशग्राम

हिमालय के निकट एक प्रदेश जहां प्राचीन काल में विसी और महाविसी नामक चमड़ा बनता था।

द्वारका

1 (सौराष्ट्र, गुजरात) पश्चिमी समुद्रतट के निकट द्वीप पर बसी हुई श्रीकृष्ण की प्रसिद्ध राजधानी (दे० **कोडिनार**)। इस नगरी के स्थान पर श्रीकृष्ण के पूर्व कुशस्थली नामक नगरी थी जहां के राजा रैवतक थे (दे० कुशस्थली)। श्रीकृष्ण ने जरासंध के आक्रमणों से बचने के लिए मथुरा को छोड़कर द्वारका में अपनी सुरक्षित राजधानी बनाई थी। यह नगरी विश्वकर्मा ने निर्मित की थी और इसे सुरक्षा के विचार से समुद्र के बीच में एक द्वीप पर स्थापित किया था। श्रीकृष्ण ने मथुरा से सब यादवों को लाकर द्वारका में बसाया था। महाभारत सभा० 38 में द्वारका का विस्तृत वर्णन है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—द्वारका के मुख्य द्वार का नाम वर्धमान था ('वर्धमानपुरद्वारमाससाद पुरोत्तमम्')। नगरी के सब ओर सुन्दर उद्यानों में रमणीय वृक्ष शोभायमान थे, जिनमें नाना प्रकार के फलफूल लगे थे। यहां के विशाल भवन सूर्य और चंद्रमा के समान प्रकाशवान् तथा मेरु के समान उच्च थे। नगरी के चतुर्दिक चौड़ी खाइयां थीं जो गंगा और सिंधु के समान जान पड़ती थीं और जिनके जल में कमल के पुष्प खिले थे तथा हंस आदि पक्षी क्रीड़ा करते थे ('पद्मषंडाकुलाभिश्च हंससेवितवारिभिः, गंगासिंधुप्रकाशाभिः परिखाभिरलंकृता')। सूर्य के समान प्रकाशित होने वाला एक परकोटा नगरी को सुशोभित करता था जिससे वह श्वेत मेघों से घिरे हुए आकाश के समान दिखाई देती थी ('प्राकारेणार्कवर्णेन पांडरेण विराजिता, वियन् मूर्धनिविष्टेन द्यौरिवाभ्रपरिच्छदा')। रमणीय द्वारकापुरी की पूर्वदिशा में महाकाय रैवतक नामक पर्वत (वर्तमान गिरनार) उसके आभूषण के समान अपने शिखरों सहित सुशोभित होता था—('भाति रैवतकः शैलो

रम्यसानुर्महाजिरः, पूर्वस्यां दिशिरम्यायां द्वारकायां विभूषणम्')। नगरी के दक्षिण में लतावेष्ट, पश्चिम में सुकक्ष और उत्तर में वेणुमंत पर्वत स्थित थे और इन पर्वतों के चतुर्दिक् अनेक उद्यान थे। महानगरी द्वारका के पचास प्रवेश द्वार थे—('महापुरीं द्वारवतीं पंचाशद्भिर्मुखै र्युताम्')। शायद इन्हीं बहुसंख्यक द्वारों के कारण पुरी का नाम द्वारका या द्वारवती था। पुरी चारों ओर गंभीर सागर से घिरी हुई थी। सुन्दर प्रासादों से भरी हुई द्वारका श्वेत अटारियों से सुशोभित थी। तीक्ष्ण यन्त्र, शतघ्नियां, अनेक यन्त्रजाल और लौहचक्र द्वारका की रक्षा करते थे—('तीक्ष्णयन्त्रशतघ्नीभिर्यन्त्रजालैः समन्वितां आयसैश्च महाचक्रैर्ददर्श द्वारकां पुरीम्') द्वारका की लम्बाई बारह योजन तथा चौड़ाई आठ योजन थी तथा उसका उपनिवेश (उपनगर) परिमाण में इसका द्विगुण था ('अष्ट योजन विस्तीर्णामचलां द्वादशायताम्, द्विगुणोपनिवेशांच ददर्श द्वारकांपुरीम्')। द्वारका के आठ राजमार्ग और सोलह चौराहे थे जिन्हें शुक्राचार्य की नीति के अनुसार बनाया गया था ('अष्टमार्गां महाकक्ष्यां महाषोडशचत्वराम् एवं मार्गपरिक्षिप्तां साक्षादुशनसाकृताम्') द्वारका के भवन मणि, स्वर्ण, वैदूर्य तथा संगमर्मर आदि से निर्मित थे। श्रीकृष्ण का राजप्रासाद चार योजन लंबा-चौड़ा था, वह प्रासादों तथा क्रीड़ापर्वतों से संपन्न था। उसे साक्षात् विश्वकर्मा ने बनाया था ('साक्षाद् भगवतो वेश्म विहितं विश्वकर्मणा, ददृशुर्देवदेवस्य-चतुर्योजनमायतम्, तावदेव च विस्तीर्णमप्रेमयं महाधनैः, प्रासादवर-संपन्नं युक्तं जगति पर्वतैः') श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के पश्चात् समग्र द्वारका, श्रीकृष्ण का भवन छोड़कर समुद्रसात् हो गयी थी जैसा कि विष्णुपुराण के इस उल्लेख से सिद्ध होता है—'प्लावयामास तां शून्यां द्वारकां च महोदधिः वासुदेवगृहं त्वेकं न प्लावयति सागरः,' विष्णु० 5,38,9। कहा जाता है कृष्ण के भवन के स्थान पर ही वज्रनाभ ने रणछोड़ जी का मूल मंदिर बनवाया था। वर्तमान मंदिर अधिक पुराना नहीं है पर है वज्रनाभ के मूल मदिर के स्थान पर है। यह परकोटे के अंदर घिरा हुआ है और सात-मंजिला है। इसके उच्चशिखर पर संभवतः संसार की सबसे विशाल ध्वजा लहराती है। यह ध्वजा पूरे एक थान कपड़े से बनती है। द्वारकापुरी महाभारत के समय तक तीर्थों में परिगणित नहीं थी। जैन सूत्र अंतकृतदशांग में द्वारवती के 12 योजन लंबे, 9 योजन चौड़े विस्तार का उल्लेख है तथा इसे कुबेर द्वारा निर्मित बताया गया है और इसके वैभव और सौंदर्य के कारण इसकी तुलना अलका से की गई है। रैवतक पर्वत को नगर के उत्तरपूर्व में स्थित बताया गया है। पर्वत के शिखर पर नंदन-बन का उल्लेख है। श्रीमद्भागवत में भी द्वारका

का महाभारत से मिलता जुलता वर्णन है । इसमें भी द्वारका को 12 योजन के परिमाण का कहा गया है तथा इसे यंत्रों द्वारा सुरक्षित तथा उद्यानों, विस्तीर्ण मार्गों एवं ऊंची अट्टालिकाओं से विभूषित बताया गया है, 'इति संमंत्र्य भगवान दुर्गं द्वादशयोजनम्, अंत: समुद्रेनगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् । दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्प नैपुणम्, रथ्याचत्वरवीथीभियथावास्तु विनिर्मितम् । सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम्, हेमश्रृंगै दिविस्पृग्भि: स्फाटिकाट्टालगोपुरै:' श्रीमद्भागवत 10,50, 50-52 । माघ के शिशुपाल वध के तृतीय सर्ग में भी द्वारका का रमणीक वर्णन है । वर्तमान बेटद्वारका श्रीकृष्ण की विहार-स्थली कही जाती है ।

(2) कंबोज की एक नगरी का नाम जिसका उल्लेख राइस डेवीज़ के अनुसार प्राचीन साहित्य में है ।

(3) बंगाल की नदी जिस के तट पर तारापीठ नामक सिद्ध-पीठ स्थित था ।

द्वारपाल

'द्वारपालं च तरसा वशे चक्रे महाद्युति:, रामठान् हारहूणांश्च प्रतीच्याश्चैव ये नृपा:.'—महा० सभा० 32,12 । नकुल ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में उत्तर-पश्चिम दिशा के अनेक स्थानों को जीतते हुए द्वारपाल पर भी प्रभुत्व स्थापित किया था । प्रसंग से द्वारपाल, अफ़गानिस्तान और भारत के बीच द्वार के रूप में स्थित खैबर दर्रे का प्राचीन भारतीय नाम जान पड़ता है । यह वास्तव में भारत का द्वाररक्षक था । इस उल्लेख से यह बात स्पष्ट है कि प्राचीन काल में भारतीयों को अपनी उत्तर-पश्चिम सीमा के इस दर्रे का महत्व पूरी तरह से ज्ञात था । उपर्युक्त श्लोक में रमठ और हारहूण अफ़गानिस्तान के ही प्रदेश हैं जिससे द्वारपाल से खैबर दर्रे का अभिज्ञान निश्चित ही जान पड़ता है । इन सब स्थानों को नकुल ने 'शासन' भेजकर ही वश में कर लिया था और वहां सेना भेजने की उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ती थी—'तान् सर्वान् स वशे चक्रे शासनादेव पांडव:' । महाभारत वन० 83,15 में भी द्वारपाल का उल्लेख है—'ततो गच्छेत् धर्मज्ञ द्वारपालं तरन्तुकम्' ।

द्वारमण्डल (लंका)

महावंश 10,1 में उल्लिखित एक ग्राम जो अनुराधपुर की चैत्यगिरि (मिहिन्ताल) के समीप स्थित था ।

द्वारवती

(1) दे० द्वारका । घटजातक (सं० 454) में कृष्ण द्वारा द्वारवती की विजय का उल्लेख है ।

(2) थाइलैंड या स्याम का एक प्राचीन भारतीय उपनिवेश। यहां के राजा का उल्लेख चीनी यात्री युवानच्वांग (7वीं शती ई०) ने किया है। यह उपनिवेश मिनाम की घाटी में स्थित था। द्वारवती राज्य की राजधानी शायद लवपुरी थी जहां आठवीं शती ई० के कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं। स्याम की पाली इतिहास-कथाओं चामदेवीवंश और जिनकाल मालिनी (15वीं 16वीं शती ई०) में भी द्वारवती का उल्लेख है। इस राज्य का समृद्धिकाल ई० सन् की प्रारंभिक शतियों से प्रारंभ होकर 10वीं शती तक था।

द्वारसमुद्र

11वीं शती ई० के मध्य में होयसल नामक राजवंश ने शक्ति-संपन्न होकर द्वार-समुद्र का स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था। 1310 ई० में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने दक्षिण भारत पर आक्रमण किया। उसने द्वारसमुद्र में खूब लूटमार मचाई और वहां के प्राचीन मंदिर को नष्टभ्रष्ट कर दिया। 1327 ई० में मु० तुग़लक ने होयसल-नरेशों की बची खुची शक्ति को भी समाप्त कर दिया। विजयनगर राज्य के उत्थान के पश्चात्, द्वारसमुद्र इस महान हिंदू साम्राज्य का अंग बन गया और इसकी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई। दे० **हालेबिड**

द्वारहाट (तहसील रानीखेत, ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

रानीखेत से 13 मील उत्तर की ओर प्राचीन स्थान है। 8वीं से 13वीं शती तक के अनेक मंदिरों के अवशेष यहां मिले हैं। इनमें गूजरदेव का मंदिर कला की दृष्टि से उत्कृष्ट कहा जा सकता है। इसकी चारों ओर की भित्तियों को कलापूर्ण शिलापट्टों से समलंकृत किया गया है। यहां का शीतला-मंदिर भी उल्लेखनीय है।

द्वारावती=द्वारवती (द्वारका)

जैन तीर्थमालाचैत्यवंदन में द्वारावती का जैन तीर्थ के रूप में उल्लेख है—'द्वारावत्य परेष गढ़मढ़गिरौ श्रीजीर्णवप्रे तथा'। यह स्थान जिन नेमिनाथ से संबंधित बताया गया है। जैन पौराणिक कथाओं के अनुसार नेमिनाथ श्री कृष्ण के समकालीन और उनके संबंधी भी थे।

द्वैतवन

महाभारत में वर्णित वन जहां पांडवों ने वनवासकाल का एक अंश व्यतीत किया था। यह वन सरस्वती नदी के तट पर स्थित था 'ते यात्वा पांडवास्तत्र ब्राह्मणैर्बहुभिः सह, पुण्यं द्वैतवनं रम्यं विविशुर्भरतर्षभा। तमालतालाम्रमधूक-नीप कदंबसर्जार्जुनकर्णिकारैः, तपात्यये पुष्पधरैरुपेतं महावनं राष्ट्रपति ददर्श।

मनोरमां भोगवतीमुपेत्य पूतात्मनांचीरजटाधराणाम्, तस्मिन् वने धर्मभृतां निवासे ददर्श सिद्धर्षिगणाननेकान्' महा० वन० 24,16-17-20। भोगवती नदी सरस्वती ही का एक नाम है। भारवि के किरातार्जुनीयम् 1,1 में भी द्वैतवन का उल्लेख है—'स वर्णलिंगी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः'—। महाभारत सभा० 24,13 में द्वैतवन नाम के सरोवर का भी वर्णन है—'पुण्यं द्वैतवनं सरः'। कुछ विद्वानों के अनुसार ज़िला सहारनपुर (उ० प्र०) में स्थित देवबंद ही महाभारतकालीन द्वैवतन है। संभव है प्राचीन काल में सरस्वती नदी का मार्ग देवबंद के पास से ही रहा हो। शतपथ ब्राह्मण 13,54,9 में द्वैतवन नामक राजा को मत्स्य-नरेश कहा गया है। इस ब्राह्मण-ग्रंथ की गाथा के अनुसार इसने 12 अश्वों से अश्वमेध-यज्ञ किया था जिससे द्वैतवन नामक सरोवर का यह नाम हुआ था। इस यज्ञ को सरस्वतीतट पर संपन्न हुआ बताया गया है। इस उल्लेख के आधार पर द्वैतवन सरोवर की स्थिति मत्स्य (=अलवर-जयपुर-भरतपुर) के क्षेत्र में माननी पड़ेगी। द्वैतवन नामक वन भी सरोवर के निकट ही स्थित होगा। मीमांसा के रचयिता जैमिनी का जन्मस्थान द्वैतवन ही बताया जाता है।

द्वैपायनहृद्र

कुरुक्षेत्र प्रदेश का एक सरोवर (दे० पाराशर-हृद्र)

द्वैलव (ज़िला कानपुर)

बिठूर से 6 मील दूर द्वैलव या वैला रुद्रपुर नामक ग्राम है जहां वाल्मीकि ऋषि का आश्रम माना जाता है। यहां वाल्मीकि-कूप भी स्थित है। स्थानीय जनश्रुति में लवकुश के जन्म और रामायण की रचना का स्थल इसी ग्राम को माना जाता है। ग्राम का नाम लव के नाम पर है।

द्वयक्ष

महाभारत के उपायन-अनुपर्व में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में नाना प्रकार के उपहार लाने वाले विदेशियों में द्वयक्ष तथा त्र्यक्ष नाम के लोग भी हैं—'द्वयक्षांस्त्र्यक्षांल्ललाटाक्षान् नानादिग्भ्यः समागतान्, औष्णीकान त्तवासांश्च रोमकान् पुरुपादकान्'। प्रसंगानुसार ये भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के परवर्ती प्रदेशों में रहने वाले लोग जान पड़ते हैं। कुछ विद्वानों के मत में द्वयक्ष बदख्शां का और त्र्यक्ष तरख़ान का प्राचीन भारतीय नाम है। ये प्रदेश आज-कल अफ़गानिस्तान तथा दक्षिणी रूस में है। इन्हें उपर्युक्त उल्लेख में संभवतः

औष्णीष या पगड़ी धारण करने वाला कहा गया है। ललाटाक्ष संभवतः लद्दाख का नाम है। (दे० =**त्र्यक्ष, ललाटाक्ष**)

धनुष्कोटि (मद्रास)

रामेश्वरम् से लगभग 12 मील दक्षिण की ओर स्थित है। यहां भारतीय प्रायद्वीप की नोक समुद्र के अंदर तक चली गई प्रतीत होती है। दोनों ओर से दो समुद्र महोदधि और रत्नाकर यहां मिलते हैं। इस स्थान का संबंध श्रीरामचंद्र जी से बताया जाता है। कथा है कि विभीषण की प्रार्थना पर श्रीराम ने धनुष की नोक या कोटि से अपना बनाया सेतु डुबा दिया था (जिससे भारत का कोई आक्रमणकारी लंका न पहुंच सके)। स्कंदसेतु माहात्म्य–33,65 में इस स्थान को पुण्यतीर्थ माना है—'दक्षिणाम्बुनिधौ पुण्ये रामसेतौ विमुक्तिदे, धनुष्कोटिरिति ख्यातं तीर्थमस्ति विमुक्तिदम्'।

धनेर

जैनस्तोत्र तीर्थमाला चैत्यवंदन में उल्लिखित तीर्थ; 'सिंह द्वीप धनेरमंगलपुरे चाज्जाहरे श्रीपुरे···' इसका अभिज्ञान वर्तमान धानेरा (ज़िला पालनपुर, राजस्थान) से किया गया है–दे० एंशेंट जैन हिम्स सिंधिया औरियंटल सिरीज़ पृष्ठ 54।

धन्यवती (बर्मा)

प्राचीन अराकान के एक भारतीय राज्य की राजधानी जिसका अभिज्ञान वर्तमान राखेंगम्यू से किया गया है। इस राज्य की स्थापना ब्रह्मदेव के अन्य भारतीय उपनिवेशों से बहुत पहले ही—ई० सन् से कई सौ वर्ष पूर्व—हुई थी। 146 ई० में धन्यवती के हिंदू राजा चन्द्रसूर्य के शासनकाल में बुद्ध की एक प्रसिद्ध मूर्ति महामुनि नामक गढ़ी गई थी जिसे समस्त ऐतिहासिक काल में अराकान का इष्टदेव माना जाता रहा। 789 ई० में महातैनचन्द्र ने धन्यवती को छोड़कर वैसाली में राजधानी बनाई। ऐसा जान पड़ता है कि उसके पिता सूर्यकेतु के राज्यकाल में किसी राजनैतिक क्रांति या युद्ध के कारण धन्यवती की स्थिति बिगड़ गई थी।

धमतरी (ज़िला रायपुर, म० प्र०)

18वीं शती में निर्मित रामचन्द्र जी का मंदिर यहां का सुंदर स्मारक है। इसके स्तंभ विशेष रूप से वास्तुकला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

धमनार (ज़िला मंदसौर, म० प्र०)

इस ग्राम के निकट 14 शैलकृत्त गुहा-मंदिर हैं। इनमें से दो गुफाएं जिन्हें भीमबाजार और बड़ी कचहरी कहते हैं—मुख्य हैं। निर्माण-कला के विचार से

इनका समय 8 वीं या 9 वीं शती ई० में जान पड़ता है। भीमबाजार एक विशाल गुफा है और सब गुफाओं में बड़ी है। इसमें एक आयताकार आंगन के बीच में एक चैत्य स्थित है। आंगन के तीन ओर छोटे-छोटे कोष्ठ हैं। प्रत्येक पंक्ति के बीच की कोठरी में भी चैत्य बना हुआ है। पश्चिम की ओर की पंक्तियों के बीच की कोठरी में ध्यानीबुद्ध की दो शैलकृत्त मूर्तियां हैं। पास ही स्थित छोटा बाजार में भी इसी प्रकार की किंतु इनसे छोटी गुफाएं है जिसमें बुद्ध की मूर्तियां भी हैं किंतु ये नष्ट-भ्रष्ट दशा में हैं। बड़ी कचहरी वास्तव में एक विशाल वर्गाकार चैत्यशाला है जिसके आगे स्तंभों पर आधृत एक बरामदा है जो सामने की ओर एक पत्थर के जंगले से घिरा है। धमनार के हिंदू स्मारकों में मुख्य धर्मनाथ का मंदिर है जिसके नाम पर ही इस स्थान का नामकरण हुआ है। यह मंदिर भी शैलकृत्त है। यह इस प्रदेश के मध्ययुगीन मंदिरों की भांति ही बना है अर्थात् मुख्य पूजागृह के साथ सस्तंभ सभामंडप और आगे एक छोटा बरामदा है। धर्मनाथ-मंदिर का शिखर भी उत्तरभारतीय मंदिरों की भांति ही हैं। इस बड़े मंदिर के साथ सात छोटे मंदिर भी थे जो पहाड़ी में से काटकर बनाए गये थे। मुख्य मंदिर के भीतर अथवा बाहरी भाग में तक्षण या नक्काशी नहीं है और इस विशेषता में यह अन्य मध्ययुगीन मंदिरों से भिन्न है। चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति इस मंदिर में प्रतिष्ठापित है किंतु ऐसा जान पड़ता है कि यहां शिव की पूजा भी होती रही है। धर्मनाथ वास्तव में यहां स्थित शिवलिंग का ही नाम है।

धरणीधर=वराहपुरी

धरमत (ज़िला उज्जैन, म० प्र०)

उज्जैन के निकट, गंभीर (प्राचीन गंभीरा) नदी के तट पर छोटा-सा ग्राम है। 1658 ई० में औरंगजेब ने दारा को उत्तराधिकार के लिए होने वाले युद्धों में इस स्थान पर हराया था। जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह दारा की ओर से युद्ध में लड़े थे।

धरसेव (ज़िला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

उसमानाबाद नगर के पास इस स्थान पर डाबरलेण, चमरलेण, और लचंदरलेण नाम की प्राचीन जैन और वैष्णव गुफाएँ स्थित हैं जिनका समय 500 ई० से 600 ई० तक माना गया है। 14 वीं शती की शमसुद्दीन की दरगाह भी यहां है।

धरूर (ज़िला वीड़, महाराष्ट्र)

अहमदनगर के सुलतानों का बनाया हुआ एक किला और हिंदू शैली में

बनी एक मसजिद यहां की मुख्य इमारतें हैं। मसजिद को मु० तुगलक के सेनापति ने संभवतः किसी प्राचीन मंदिर की सामग्री से निर्मित करवाया था।

धर्म

(1)=**धर्मद्वीप** महावंश 1,84 में वर्णित सिंहलद्वीप (लंका) का एक नाम। सिंहल की स्थानीय बौद्ध किंवदंती के अनुसार गौतम बुद्ध ने तीन बार लंका में जाकर धर्म-प्रचार किया था और इसी कारण इस देश को बौद्ध धर्मद्वीप भी कहते थे।

(2) महाराष्ट्र एक नदी जो प्राचीन पौराणिक तारक-क्षेत्र में प्रवाहित होती है। तारकक्षेत्र हुबली से अस्सी मील दूर हानगल का कस्बा है।

धर्मचक्र

जैन स्तोत्र-ग्रंथ तीर्थमालाचैत्यवंदन में इसका नामोल्लेख है 'चंपानेरक धर्मचक्रमथुरायोध्याप्रतिष्ठानके'। यह स्थान संभवतः तक्षशिला है जिसका प्राचीन जैन ग्रन्थों में तीर्थ के रूप में उल्लेख किया गया है।

धर्मपुरी

(1) (म० प्र०) इस स्थान से पूर्व मध्यकालीन इमारतों के अवशेष मिले हैं।

(2) (ज़िला करीमाबाद, आं० प्र०)गोदावरी के दाहिने तट पर प्राचीन तीर्थ है जहां वार्षिक यात्रा होती है। मुख्य स्मारक एक प्राचीन काल का मंदिर है।

धर्मवर्धन

वाल्मीकि रामायण के अनुसार भरत केकय देश से अयोध्या आते समय प्राग-वट् के स्थान पर गंगा और फिर कुटि-कोष्टिका पार करने के पश्चात् धर्मवर्धन नामक स्थान पर पहुंचे थे, 'स गंगां प्राग्वटे तीर्त्वा समयात्कुटिकोष्टिकाम्, सबल-स्तां स तीर्त्वाथ समगाद्धर्मवर्धनम्' अयो० 71,10। इस नगर की स्थिति पश्चिमी उ० प्र० में गंगा के पूर्व के इलाके में कहीं होगी। अभिज्ञान अनिश्चित है।

धर्मारण्य

(1) महाभारत वन० 82, 46 में तीर्थरूप में उल्लिखित है—'धर्मारण्यं हि तत् पुण्यमाद्यं च भरतर्षभ, यत्र प्रविष्टमात्रो वै सर्वपापैः प्रमुच्यते'। धर्मारण्य गुजरात के प्राचीन नगर सिद्धपुर के परिवर्ती क्षेत्र (श्रीस्थल) का नाम है। प्राचीन समय में यह प्रदेश सरस्वती नदी द्वारा सिंचित था। महा० वन 82,45 में धर्मारण्य में कण्वाश्रम की स्थिति बताई गयी है—'कण्वाश्रमं ततो गच्छेच्छ्रीजुष्टं लोक पूजितम्'। इस उल्लेख में धर्मारण्य को श्रीजुष्टम् प्रदेश कहा गया है जिससे इसके नाम 'श्री स्थल' की पुष्टि होती है (दे० **सिद्धपुर**; **श्रीस्थल**)

(2) बौद्ध गया (बिहार) से 4 मील पर स्थित है। बौद्ध ग्रन्थों में इस क्षेत्र का, जो गौतम बुद्ध से संबंधित था, नाम धर्मारण्य कहा गया है।

धवलगिरि

(1)=**धौलागिरि**(दे० श्वेतपर्वत)

(2)—(उड़ीसा) भुवनेश्वर से दो मील पर धवलगिरि या धवलागिरि (=धौली) नामक पहाड़ी स्थित है। इसमें अशोक का प्रसिद्ध 'कलिंगअभिलेख' उत्कीर्ण है जिसमें कलिंग-युद्ध तथा तज्जनित अशोक के हृदय-परिवर्तन का मार्मिक वृत्तांत है। संभवतः कलिंग-युद्ध की स्थली धौली की पहाड़ी के निकट ही थी। पहाड़ी को अश्वत्थामा-पर्वत भी कहते हैं।

धवलेश्वर (ज़िला राजमहेन्द्री, आं० प्र०)

राजमहेन्द्री से चार मील दूर गोदावरी के तट पर स्थित है। कहा जाता है कि वनवास-काल में श्री रामचन्द्रजी इस स्थान पर कुछ दिन रहे थे। इसका एक अन्य नाम रामपादुलु भी है।

धावशांडिक (म० प्र०)

खोह नामक स्थान से प्राप्त एक गुप्तकालीन अभिलेख (496 ई०) में महाराज जयनाथ द्वारा भागवत-मंदिर के प्रयोजनार्थ प्रदत्त इस ग्राम का उल्लेख है। इस विष्णु-मंदिर की स्थापना कुछ ब्राह्मणों ने इस स्थान पर की थी।

धसान

बुंदेलखंड की नदी। धसान शब्द दशार्ण का अपभ्रंश है। यह नदी भूपाल की निकटवर्ती पर्वतमाला से निकल कर सागर जिले में बहती हुई ज़िला झांसी (उ० प्र०) में पहुंच कर बेतवा में मिल जाती है। (दे० **दशार्ण**।)

धाका (ज़िला शाहजहांपुर, उ० प्र०)

इस स्थान से कुछ वर्ष पूर्व ताम्रयुग के प्रागैतिहासिक अवशेष—उपकरणादि प्राप्त हुए थे।

धातकी खंड

विष्णुपुराण के अनुसार पुष्कर-द्वीप का एक भाग—महावीरं तथैवान्यद्धातकीखंडसंज्ञितम्—2,4,74।

धान्यकटक दे० **अमरावती**

धामोनी

(ज़िला सागर, म० प्र०)प्राचीन बुंदेलखंड की एक प्रख्यात गढ़ी। यहां बुंदेलों का राज्य काफ़ी समय तक रहा था। धामोनी के सरदार बुंदेलखंड के महाराजाओं के सामंत थे। गढ़मंडला-नरेश संग्रामसिंह (मृत्यु 1541) के प्रसिद्ध

52 गढ़ों में धामौनी की भी गणना थी। संग्रामसिंह गौंडवाना की रानी दुर्गावती के श्वसुर थे।

धार=धारा=धारानगरी (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

संस्कृत के मध्ययुगीन साहित्य में प्रसिद्ध नगरी जो राजा भोज परमार के संबंध के कारण अमर है। राजा भोज रचित भोजप्रबंध में तथा अन्य अनेक प्राचीन कथाओं में धारानगरी का वर्णन है। 11 वीं-12 वीं शतियों में परमारों ने मालवा-प्रांत की राजधानी धारा में बनाई थी। इस वंश के राजा भोज ने उज्जयिनी से राजधानी हटा कर धारा को यह प्रतिष्ठा दी। 1305 ई० में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ऐनउलमुल्क ने धारा पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् मालवा के शासक दिलावर खां ने 1401 ई० में दिल्ली की सल्तनत से स्वतंत्र होकर धारा को अपनी राजधानी बनाया। 1405 ई० में मालवा का शासक होशंगशाह धारा से अपनी राजधानी मंडू ले गया और धारा की पूर्व कीर्ति नष्ट हो गई। धारा के प्राचीन स्मारकों में निम्न प्रमुख हैं—

भोजशाला—राजा भोज ने जो विद्वानों का प्रख्यात संरक्षक था, इस नाम की एक विशाल पाठशाला बनवायी थी। इसको तोड़कर मुसलमानों ने कमाल-मौला नामक मसजिद बनवाई। इसके फ़र्श में भोज की पाठशाला के अनेक स्लेटी पत्थर जड़े हैं जिन पर संस्कृत तथा महाराष्ट्री प्राकृत के अनेक अभिलेख अंकित थे। पाठशाला के खंडहरों के अनेक ऐसे पत्थर मिले हैं, जिन पर पारिजात-मंजरी और कर्मस्तोत्र नामक संपूर्ण काव्य उत्कीर्ण थे।

लाट मसजिद—यह मसजिद भी धारा के परमारकालीन मंदिरों को तोड़कर उनकी सामग्री से बनी थी। इसका निर्माता दिलावर खां (मृत्यु 1405 ई०) था।

क़िला—महमूद तुग़लक ने इस क़िले को 1344 ई० में बनवाया था। 1731 ई० में इस पर पवाँर राजपूतों का अधिकार हो गया था।

धारापुरी=धार=धारा

धारासिव (म० प्र०)

प्राचीन शैलकृत्त जैन गुहामंदिरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

धुंवाधार (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

भेड़ाघाट (प्राचीन भृगुक्षेत्र) के निकट नर्मदा का प्रसिद्ध जलप्रपात जिसके निकट प्राचीन काल में भृगु ऋषि का आश्रम था। प्रपात के निकट द्वितीय शती ई० के पुरातत्त्व-संबंधी अवशेष प्राप्त हुए थे जिससे इस स्थान की प्राचीनता सूचित होती है। महाभारत वन-99,6 में जिस वैदूर्य-शिखर का

वर्णन है वह धुंवाधार के समीप नर्मदा की संगमर्मर की पहाड़ियों का सामूहिक नाम हो सकता है :—'वैदूर्यशिखरो नाम पुण्यो गिरवरः शिव.' (दे० वैदूर्यशिखर)

घुमली (काठियावाड़, गुजरात)

भूतपूर्व नवानगर रियासत की प्राचीन राजधानी। नवानगर से दक्षिण की ओर माणवड़ से 4 मील दूर इस नगर के भग्नावशेष हैं। इसका एक भाग पर्वत-शिखर पर बसा हुआ था जहां एक भग्न दुर्ग आज भी दिखाई देता है। खंडहरों में नवलखा नामक मंदिर स्थित है। पर्वत-शिखर तक जाने वाले मार्ग में भी कई जीर्ण-शीर्ण मंदिर दिखाई देते हैं।

धूतपाप (ज़िला सुलतानपुर, उ० प्र०)

वर्तमान धोपाप। यह प्राचीन हिंदूतीर्थ है। यह धूतपापा (गोमती की उपनदी) के तट पर है। यहां कुशभावन या सुलतानपुर के भार-नरेशों का राज्य था। इस स्थान का संबंध श्रीरामचंद्र के रावण-वध का प्रायश्चित करने से जोड़ा जाता है। यहां का क़िला शेरगढ़ नदी के तट पर बना है।

धूतपापा

पुराणों में वर्णित नदी जो पूर्वी गोमती में मिलती है। धूतपाप नामक तीर्थ इसी नदी तट पर है। (दे० हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफी आव एशेंट इंडिया, पृ० 32)

धूपगढ़ (म० प्र०)

पंचमढ़ी की पहाड़ियों में स्थित प्राचीन तीर्थ जहाँ वेत्रवती या बेतवा नदी का उद्‌गम है।

धूपतापा

विष्णुपुराण के अनुसार कुशद्वीप की सात नदियों में से है—'धूपतापा' शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा, विद्युदंभा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः'—विष्णु० 2,4,43।

धूमरक्ख (लंका)

महावंश 10,46 में वर्णित एक पर्वत जो महावेलिगंगा के वामतट पर स्थित था।

धूमेश्वर (उ० प्र०)

सिवालिक (हरद्वार-देहरादून की पर्वत श्रेणी) पर्वतमाला में स्थित है। इसकी शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में गणना है।

धृति

विष्णु पुराण 2,4,36 के अनुसार कुशद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के पुत्र धृति के नाम पर प्रसिद्ध है।

धेनुक

महाभारत में भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के परवर्ती प्रदेश में रहने वाली विदेशी जातियों के नामों में धेनुकों की भी गणना है—'मारुता: धेनुकाश्चैव तंगणा: परतंगणा:' महा० भीष्म० 50,51। सभा० 52,3 में तंगणों और परतंगणों को शैलोदा नदी (वर्तमान खोतन) के तटवर्ती प्रदेश में स्थित माना है। इसी सूत्र के आधार पर धेनुकों के देश की स्थिति भी मध्यएशिया की इसी नदी के पार्श्व में माननी चाहिए। धेनुक लोग महाभारत युद्ध में पांडवों की ओर से लड़े थे। धेनुक नामक असुर का उल्लेख श्रीमद्भागवत 10,15 में है—'फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च, सन्ति कितवरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना'। इस असुर को श्रीकृष्ण ने बालपन में मारा था। शायद इसका संबंध धेनुक देश से रहा हो। धेनुक नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी विजातीय शब्द का संस्कृत रूपांतरण है।

धेनुका

विष्णुपुराण के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी—'नद्यश्चात्र महापुण्या सर्वपापभयापहा:, सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या:' विष्णु 2,4,65, यह धेनुक देश में बहने वाली कोई नदी हो सकती है।

धोनोर (जिला आदिलाबाद, आं० प्र०)

इस स्थान से नवपाषाणयुगीन पत्थर के हथियार और उपकरण प्राप्त हुए हैं।

धोपाप (दे० **धूतपाप**)

धौम्यगंगा (कांगड़ा, पंजाब)

पांडवों के पुरोहित धौम्य के नाम पर यह नदी प्रसिद्ध है। अनास्त नामक प्राचीन ग्राम जिसे अब जगतसुख कहते हैं इस नदी के तट पर स्थित है।

धौलपुर (राजस्थान)

भूतपूर्व जाट रियासत। धौलपुर से निकट राजा मुचुकुंद के नाम से प्रसिद्ध गुफा है जो गंधमादन पहाड़ी के अंदर बताई जाती है। पौराणिक कथा के अनुसार मथुरा पर कालयवन के आक्रमण के समय श्रीकृष्ण मथुरा से मुचुकुंद की गुहा में चले आए थे। उनका पीछा करते हुए कालयवन भी इसी गुफा में प्रविष्ट हुआ और वहां सोते हुए मुचुकुंद को श्रीकृष्ण ने उत्तराखंड भेज दिया।

यह कथा श्रीमद्भागवत 10,51 में वर्णित है। कथाप्रसंग में मुचुकुंद की गुहा का उल्लेख इस प्रकार है—'एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः, अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया'। धौलपुर से 842 ई० का एक अभिलेख मिला है, जिसमें चंडस्वामिन् अथवा सूर्य के मंदिर की प्रतिष्ठापना का उल्लेख है। इस अभिलेख की विशेषता इस तथ्य में है कि इसमें हमें सर्वप्रथम विक्रमसंवत् की तिथि का उल्लेख मिलता है जो 898 है। धौलपुर में भरतपुर के जाट राज्य-वंश की एक शाखा का राज्य था। भरतपुर के सर्वश्रेष्ठ शासक सूरजमल जाट की मृत्यु के समय (1764 ई०) धौलपुर भरतपुर राज्य ही में सम्मिलित था। पीछे यहां एक अलग रियासत स्थापित हो गई।

धौलागिरि=धवलगिरि (1)

धौली

(1) [दे० धवलगिरि (2)]। पहाड़ी की एक चट्टान पर अशोक की चौदह मुख्य धर्मलिपियों में से 1-10,14 और दो कलिंग-लेख अंकित हैं। कलिंग लेख में कलिंग-युद्ध तथा तत्पश्चात् अशोक के हृदयपरिवर्तन का मार्मिक वर्णन है। कलिंग-युद्ध की स्थली धौली की चट्टान के पास ही स्थित रही होगी। अभिलेख में इस स्थान का नाम तोसलि है। यह स्थान भुवनेश्वर के निकट और प्राचीन शिशुपालगढ़ के खंडहरों से दो मील दूर दया नदी के तट पर स्थित है। (दे० **तोसल या तोसलि**) दया नदी का यह नाम संभवतः अशोक के हृदय में कलिंग युद्ध के पश्चात् दया का संचार होने के कारण ही पड़ा था। धौली की पहाड़ी को अश्वत्थामा-पर्वत भी कहते हैं।

(2) (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) गढ़वाल की एक नदी जो नीतिघाटी में बहती हुई विष्णुप्रयाग में आकर अलकनंदा (गंगा) में मिलती है।

ध्यानपुर (तहसील बटाला, जिला गुरदासपुर, पंजाब)

इस छोटे से ग्राम की प्रसिद्धि का कारण यहां स्थित वैरागी संत बाबालालजी की समाधि है। ये मुग़ल शाहजादा दारा (शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र) के गुरु थे। दारा उदार हृदय था और हिंदू तथा मुसलमानों की धर्म परम्पराओं में समानता स्थापित करने का इच्छुक था। बाबालाल की समाधि के बीच वाले प्रकोष्ठ में बैठकर दारा अपना समय इसी समस्या के चिंतन में व्यतीत करता था। इस प्रकोष्ठ की छतों और दीवारों पर दारा ने सुंदर चित्र बनवाए थे जो अब धुंधले पड़ गए हैं।

ध्रुव

विष्णुपुराण 2,4,5 के अनुसार प्लक्ष-द्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस

द्वीप के राजा मेधातिथि के पुत्र ध्रुव के नाम पर प्रसिद्ध है।

ध्रुवपुर (कंबोडिया, दक्षिण-पूर्व एशिया)

प्राचीन कंबुज-देश का एक नगर। कंबुज में हिंदू राजाओं का प्रायः तेरहसौ वर्ष तक राज्य रहा था।

नंदगिरि=नंदेड़

नंदगांव (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

बरसाने से चार मील दूर कृष्ण के पिता नंदजी का ग्राम है। बरसाना राधा की जन्मभूमि मानी जाती है। नंदगांव बरसाने के निकट ही एक पहाड़ी पर स्थित है। पहाड़ी पर नंदजी का भव्य मंदिर है जो वर्तमान रूप में बहुत पुराना नहीं है। श्रीमद्भागवत के अनुसार (10,11) नंदजी, गोकुल से कंस के अत्याचारों से बचने के लिए वृन्दावन आ गए थे। कहा जाता है कि प्राचीन वृन्दावन, नंदगांव से अधिक दूर नहीं था।

नंदनकानन=नंदनवन

(1) प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित सुरेन्द्र(इंद्र)का उद्यान। 'नगरोपवने शचीसखो मरुतां पालयितेव नंदने'; 'लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु'—रघु० 8,32; रघु० 8,95।

(2) महाभारत के अनुसार द्वारका के निकट एक उद्यान, जो वेणुमान् पर्वत के पार्श्व में स्थित था – 'भाति चैत्ररथं चैव नंदनं च महावन्म रमणंभावनं चैव वेणुमन्तः समंततः'। महा० सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ।

(3) महावंश 15, 178 में वर्णित **अनुराधपुर** का एक उद्यान।

नंदप्रयाग (जिला गढ़वाल, उ० प्र०)

उत्तराखंड का प्राचीन तीर्थ। जनश्रुति है कि प्राचीन काल में कण्व-ऋषि का आश्रम तथा शकुंतला का जन्म स्थान यहीं था। (किंतु दे० **कण्वाश्रम; मंडावर**)। यहां अलकनंदा और मंदाकिनी नदियों का संगम है जिससे इसका नाम नंदप्रयाग हुआ है (टि०. गढ़वाल में संगम-स्थानों का नाम प्रायः प्रयाग पर है, जैसे देवप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग आदि)

नंदसम (राजस्थान)

प्राचीन जैन तीर्थ जिसका उल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार है। 'वंदे नंदसमे समीधवलके मज्जांद मुंडस्थले'। एक अन्य उल्लेख से सूचित होता है कि यह तीर्थ मेवाड़ में स्थित था और यहां सगडाल नामक मंत्री का बनवाया हुआ जैन देवालय था—'मेवाड़ देस गामे··········नंदिसमनामे सगडालमंतिकारिय जिन भवने'—(दे० ऐशेंट जैन हिम्स, पृ० 60)।

नंदा

(1) 'ततः प्रयातः कौन्तेयः क्रमेण भरतर्षभ, नंदामपर नंदांच नद्यौ पाप भयापहे' महा० वन० 110, 1। यहाँ पांडवों की तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में नंदा और अपरनंदा नदियों का उल्लेख है जो संदर्भानुसार पूर्वीबिहार की नदियाँ जान पड़ती हैं। नंदा और अपरनंदा की स्थिति कौशकी या कौसी=(कौश्या) नदी के पूर्व में थी।

(2) (जिला अजमेर, राजस्थान) पुष्कर के निकट बहने वाली एक नदी। पुष्कर से 12 मील दूर प्राचीन सरस्वती और नंदा का संगम है।

(3)=**नंदाकिनी**

(4)=नंदादेवी। हिमालय का एक उच्च पर्वतशृंग जो बदरीनाथ से पूर्व की ओर स्थित है। नंदादेवी से नंदाकिनी नदी निकलती है जो नंदप्रयाग में अलकनंदा (गंगा) में मिल जाती है।

नंदाकिनी

यह नदी नंदादेवी की पहाड़ी से निकल कर नंदप्रयाग (गढ़वाल, उ० प्र०) में आकर अलकनंदा से मिलती है। यह नदी मंदाकिनी की सहचरी है जो केदारनाथ के पहाड़ों से मिलकर अलकनंदा से रुद्रप्रयाग में मिल जाती है।

नंदिगिरि (मैसूर)

बंगलौर से 37 मील दूर है। इसका सम्बन्ध सातवीं शती के गंगवंशीय राजाओं से बताया जाता है। तत्पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक इस प्रदेश पर अधिकार प्राप्त करने के लिए अनेक युद्ध होते रहे। 18वीं शती में मराठों और हैदरअली में कई युद्ध यहीं हुए। अंत में 1791 में अंग्रेजों का नदिगिरि पर अधिकार हो गया। नंदिगिरि में दो शिवमंदिर हैं। भोगनदीश्वर का मंदिर जो पहाड़ी के नीचे है, ऊपर के मंदिर से वास्तु की दृष्टि से अधिक सुंदर है।

नंदिग्राम (जिला फैजाबाद, उ० प्र०)

अयोध्या के निकट छोटा सा ग्राम था जहां चित्रकूट से लौटने पर भरत ने अपना तपोवन बनाया था—'रथस्थः तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः नंदिग्रामं ययौ तूर्णं शिरस्यादायपादुके' वाल्मीकि० अयो० 115,12। नंदिग्राम में रहते हुए भरत श्री राम की पादुकाओं की पूजा करते हुए चौदह वर्ष तक अयोध्या का शासन भार उद्वहन करते रहे। इस अवधि में वह वनवासी राम की भांति ही वैराग्यरत रहे और कभी अयोध्या-नगरी न गए। रघुवंश 12, 18 में कालिदास ने नंदिग्राम का इस प्रकार उल्लेख किया

है—'स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवाविशत् पुरीम्, नंदिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक्'— अर्थात् श्री राम की आज्ञा को मान कर भरत ने उनसे विदा ली किंतु अयोध्यापुरी में प्रवेश न करते हुए उन्होंने नंदिग्राम में अपना निवास बनाया और वहीं से राज्य को धरोहर के समान समझते हुए उसका संचालन किया। अध्यात्म-रामायण के अनुसार उदारबुद्धि भरत सब पुरवासियों को अयोध्या में बसा कर स्वयं नंदिग्राम चले गए ('पौरजानपदान्सर्वानयोध्या-मुदारधीः स्थापयित्वा यथान्यायं नंदिग्रामं ययौस्वयम्'—अयो० 9,70-71) तुलसीदास ने रामचरितमानस, अयोध्याकांड में नंदिग्राम का इस प्रकार उल्लेख किया है—'नंदिग्राम करि पर्णकुटीरा कीन्ह निवास धर्मधुरधीरा'। वनवास-काल की समाप्ति पर अयोध्या लौटते समय राम ने हनुमान् द्वारा अपने लौटने का संदेश भरत के पास नंदिग्राम में भिजवाया था—'आससाद द्रुमान्फुल्लान् नंदिग्राम समीपगान्, सुराधिपस्योपवने तथा चैत्ररथे द्रुमान्। स्त्रीभिः सपुत्रैः पौत्रैश्च रममाणैः स्वलंकृतैं, क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम्', वाल्मीकि० युद्ध० 125,28-29। इससे यह भी ज्ञात होता है कि नंदिग्राम अयोध्या से एक कोस की दूरी पर स्थित था। इस वर्णन से यह भी सूचित होता है कि भरत के निवास के कारण नंदिग्राम की शोभा बहुत बढ़ गई थी।

नंदिनगर

कंबोज जनपद का एक नगर जिसका उल्लेख प्राचीन अभिलेखों में मिलता है (लूडर्स इंसक्रिपशंस 176,472)। नंदिनगर के साथ राजपुर का नामोल्लेख भी मिलता है। राजपुर वर्तमान राजौरी है। नंदिनगर संभवतः इसी के निकट पश्चिमी कश्मीर में स्थित होगा।

नंदिपुर

जैन सूत्र प्रज्ञापणा में उल्लिखित है। इसे शांडिल्य जनपद के अंतर्गत बताया गया है। संभवतः यही वह स्थान है जहां 5वीं शती ई० में वाकाटकों की राजधानी थी। यह स्थान **रामटेक** (महाराष्ट्र) के निकट है।

नंदी (ज़िला मेदक, आं०प्र०)

प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

नंदीकल

वसीम ताम्रपट्ट-अभिलेख में नंदेड़ का प्राचीन नाम।

नंदीकुंड

साबरमती (=साभ्रमती) नदी का उद्गम (दे० पद्मपुराण उत्तरखंड, 52)।

नंदीतट

पुराणों में उल्लिखित वर्तमान **नंदेड़** का नाम ।

नंदेड़=नंदगिरि=नंदीतट (महाराष्ट्र)

पुराणों में वर्णित नंदीतट या नंदेड़ की गणना पवित्र धार्मिक स्थानों में की जाती है। मेकएलिफ् (दे० 'सिख रिलीजन') के अनुसार इस स्थान का प्राचीन नाम नवनंद था क्योंकि इस स्थान पर नौ ऋषियों ने तप किया था। इस नाम का संबंध मगध के नवनंदों से भी बताया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि 'पेरिप्लस ऑव दि एराईथ्रियन सी' नामक ग्रंथ के लेखक ने दक्षिण-भारत के जिस व्यापारिक नगर तगारा का वर्णन किया है वह नंदेड़ के निकट ही स्थित होगा(किंतु दे० तेर)। चौथी शती ई० में नंदेड़ नगर काफ़ी महत्वपूर्ण था और यहां एक छोटे से राज्य की राजधानी भी थी किंतु अब यहां अति प्राचीन भवनों आदि के अवशेष नहीं मिलते। एक ऐतिहासिक कथा के अनुसार चालुक्य-नरेश राजा आनंद ने अपनी राजधानी कल्याणी से नदेड़ ले आने का विचार किया था और नदेड़ में पत्थर के बांध बनवाकर एक तड़ाग का निर्माण भी करवाया था। उसी ने रत्नगिरि पहाड़ी पर नंदगिरि या नंदेड़ नगरी को बसाया था। चौथी शती ई० में वारंगल के चालुक्य-नरेशों की एक शाखा नंदेड़ में राज्य करती थी। वारंगल के ककातीय राजवंश के इतिहास 'प्रताप रुद्रभूषण' में वर्णन है कि ककातीय-नरेश नंद का नदेड़ पर राज्य था। नंदेदेव के पौत्र माधव-वर्मन के शासन काल में शिव तथा नंदी की पूजा को बहुत प्रोत्साहन मिला और इस समय के अनेक मंदिर नंदेड़ की प्राचीन कला और संस्कृति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। नरसिंह का मंदिर तथा बौद्ध और जैन-मंदिर हिंदूकाल के सुंदर संस्मारक हैं। मुसलमानों के दक्षिणभारत पर आक्रमण के पश्चात् नंदेड़ अलाउद्दीन खिलज़ी तथा मु० तुगलक के अधिकार में रहा। बहमनीकाल में नंदेड़ एक बड़ा व्यापारिक स्थान बन गया था क्योंकि गोदावरी नदी के तट पर स्थित होने के कारण यह उत्तरी और दक्षिणी भारत के बीच नदियों द्वारा होने वाले व्यापार के मार्ग पर पड़ता था। महमूद गवाँ ने जो बहमनी राज्य का मंत्री था, नंदेड़ को महोर के सूबे के अंतर्गत शामिल कर लिया। बहमनी-काल में नंदेड़ में कई मुसलिम संतों ने अपना आवास बनाया था। मलिक अंबर और कुतुब शाही सुलतानों की बनवाई हुई दो मसजिदें भी यहां स्थित हैं। किंतु नंदेड़ की प्रसिद्धि का विशेष कारण सिखों के दसवें गुरु गोविंदसिंह की समाधि है। औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् गोविंदसिंह बहादुर-शाह प्रथम के साथ दक्षिण भारत आए थे। यहां उन्होंने नंदेड़ के निवासी

माधोदास बैरागी (बंदा बैरागी) की वीरता से संबंधित यशोगान सुने और उससे मिलने वे नंदेड़ आए। यहीं उन्होंने अपना अस्थायी निवास बनाया था। उनके डेरे का स्थान आज भी संगत साहब गुरुद्वारा कहलाता है। गोदावरी के तट पर वह स्थान जहां गुरु की बंदा से भेंट हुई थी बंदाघाट नाम से प्रसिद्ध है। एक शिष्य ने गुरु को एक अमूल्य हीरा भेंट किया था जो उन्होंने गोदावरी के जल में फेंक दिया था। यह स्थान नगीना घाट कहलाता है। 1708 ई० में नंदेड़ में ही गुरुगोविंदसिंह जी एक क्रूर पठान के हाथों घायल होकर कुछ समय पश्चात् स्वर्गगामी हुए थे। उनकी चिता की भस्म पर एक समाधि बनवाई गई थी जो अब हुजूर साहब का गुरुद्वारा नाम से सिखों का महत्वपूर्ण तीर्थ है। इस गुरुद्वारे का महाराणा रणजीत सिंह ने 1831 ई० में निर्माण करवाया था। इसके फर्श और स्तंभों पर संगमर्मर का सुंदर काम है। गुरुद्वारे के गुंबद, छत और बीच के बरामदे पर सोने के भारी पत्तर लगे हैं। मुख्य गुरुद्वारे के अतिरिक्त नंदेड़ में सात अन्य गुरुद्वारे भी हैं—हीराघाट, शिखरघाट, माता-साहिबा, संगत-साहब, मालटेकरी, बंदाघाट और नगीनाघाट। इन सबसे गोविंदसिंह के जीवन की अनमोल कथाएं संबंधित हैं। वासिम से प्राप्त एक ताम्र पट्टलेख में नंदेड़ का प्राचीन नाम नंदीकल दिया हुआ है।

नकूर (ज़िला सहारनपुर, उ० प्र०)

स्थानीय किंवदंती है कि इस स्थान को महाभारत के नकुल के नाम पर बसाया गया था।

नगई (ज़िला गुलबर्गा, महाराष्ट्र)

दिगंबरजैनों का प्राचीन तीर्थ। यह इतिहास-प्रसिद्ध स्थान मलखेड़ के निकट बसा हुआ है।

नगनदी

'विश्रान्तस्सन् व्रज नगनदीतीरजातानिसिंचनुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि'—मेघदूत, पूर्वमेघ 28। इस श्लोक में 'नगनदी' के उल्लेख से जान पड़ता है कि कालिदास ने नगनदी का किसी विशेष नदी के नाम के रूप में उल्लेख न करके इस शब्द को सामान्य रूप से पहाड़ी नदी (नग=पर्वत) के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इस नदी का मेघ की यात्रा के क्रम में विदिशा और नीचगिरि (संभवत: सांची) के ठीक पश्चात् उल्लेख हुआ है और नगनदी के पश्चात् अगले छंदों में मेघ को उज्जयिनी का मार्ग बताया गया है। जान पड़ता है कि यह नदी वर्तमान 'बेस' है जिसके तट पर अति प्राचीन स्थान बेसनगर (जो विदिशा का उपनगर था) बसा हुआ है। बेस नदी बेसनगर के निकट

ही बेतवा में मिलती है। संभव है कि बेस नदी के छोटी सी सरिता होने के कारण कालिदास ने उसे नगनदी या पहाड़ी नदी मात्र कहा है। वैसे इस नदी का प्राचीन नाम नगनदी (या इसका कोई पर्याय) भी हो सकता है। दे० **बेस; विदिशा** (2)

नगर=जलालाबाद (अफ़गानिस्तान)

(1) चीनी यात्री युवानच्वांग की भारतयात्रा के समय (630-645 ई०) यह स्थान कपिश के अधीन था। इस समय यहां एक स्तूप था जो अशोक ने बनवाया था। इसकी ऊंचाई 200 फुट थी। युवानच्वांग लिखता है कि नगर में बौद्ध विद्वान् दीपंकरके स्मृति-चिह्न, गौतम बुद्ध की प्रकाशमान मूर्ति और उनकी उष्णीश की अस्थि विद्यमान थी। कुछ विद्वानों ने नगर का नगरहार से अभिज्ञान किया है जहां से पुरातत्व-विषयक अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। 5वीं शती में भारत आने वाले चीनी यात्री फाह्यान ने नगरहार का एक विस्तृत देश के रूप में निर्देश किया है जिसमें वर्तमान अफ़गानिस्तान, तथा पश्चिमी पाकिस्तान का सीमावर्ती प्रदेश सम्मिलित थे।

(2)=**मालवनगर** (ठिकाना उनियारा, ज़िला जयपुर, राजस्थान)

इस स्थान से अनेक प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। चतुर्भुजी दुर्गा की अनेक मृण्मूर्तियां इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं। यह कलाकृतियां आमेर (जयपुर के निकट) के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

(3) (ज़िला बस्ती, उ० प्र०) बस्ती से 9 मील दक्षिण-पश्चिम में, नगर नामक प्राचीन स्थान के बौद्धकालीन अवशेष मिले ह। स्थानीय जनश्रुति में ये खंडहर प्राचीन **कपिलवस्तु** के हैं किंतु यह उपकल्पना संदेहास्पद है। (दे० **कपिलवस्तु**)

नगरकरनूल

महबूबनगर (आं० प्र०) का प्राचीन नाम।

नगरकोट (ज़िला कांगड़ा, पंजाब)

ज्वालामुखी मंदिर के लिए प्राचीन काल से हिंदू तीर्थ के रूप में विख्यात (—दे० **कांगड़ा**।)

नगरभुक्ति (बिहार)

गुप्त अभिलेखों में उल्लिखित एक भुक्ति जो दक्षिणी बिहार में स्थित थी।

नगरहार दे० **नगर** (1)

नगरी (चित्तौड़, राजस्थान)

प्राचीन माध्यमिका नगरी का पूरा नाम तंबवती नगरी था। नगरी का

मध्यमिका से अभिज्ञान नगरी में प्राप्त द्वितीय शती ई० पू० के कुछ सिक्कों पर निर्भर है। इन पर 'मर्भ्रमिकाय शिवजनपदस्य' लेख उत्कीर्ण है। माध्यमिका के शिवि शायद उशीनरदेश से यहां आकर बस गए होंगे। नगरी के खंडहरों में एक स्तूप और एक गुप्तकालीन तोरण के अवशेष मिले हैं। चित्तौड़ का निर्माण बहुत कुछ नगरी के ध्वंसावशेषों की सामग्री से हुआ था। (दे० **मध्यमिका**)

नगवा (ज़िला वाराणसी, उ० प्र०)

वाराणसी के निकट इस ग्राम में 1927 में एक पत्थर की अश्वमूर्ति मिली थी जिस पर गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि में 'चंद्र गु' अक्षर पढ़े गए। विद्वानों का मत है कि गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त के पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय ने समुद्रगुप्त की भांति ही इस स्थान पर या काशी में, अश्वमेध-यज्ञ किया होगा जिसका स्मारक यह मूर्ति है—(दे० इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, 1927, पृ० 725)।

नगुला पहाड़ (ज़िला नलगोंडा, आं० प्र०)

यहां कई प्राचीन मंदिर स्थित हैं। एक भूरे सिकताश्म का बना है। इसके प्रवेशद्वार पर सुंदर शिल्पकला प्रदर्शित है। मंदिर को सामने वाले काले पत्थर के स्तंभ पर शक संवत् 1225=1303 ई० का प्रतापरुद्र के नाम के सहित एक अभिलेख है। तीन अन्य अभिलेख भी इस मंदिर में उत्कीर्ण हैं जिनमें से एक शक-संवत् 1150-1228 ई० का है। इसमें ककातीय-नरेश गणपति का उल्लेख है। नगुला पहाड़ के अन्य ऐतिहासिक स्मारक ये हैं—हाथी दरवाजा, जिसके स्तंभों पर सपाट पटान है, नगुलापहाड़-दरवाजा जहां कई प्रकोष्ठ बने हैं और दक्षिण की ओर कमरे की दीवार पर भवानी की मूर्ति अंकित है। यहां कुछ अभिलेख भी उत्कीर्ण हैं। इनके अतिरिक्त चावड़ी नामक स्तंभ दालान, प्राचीन गढ़ और एक मकबरा भी उल्लेखनीय हैं।

नगेन्द्र दे० **नागदा** (1)

नग्गर (हिमाचल प्रदेश)

कुलू की प्राचीन राजधानी। यहां के शिवमंदिर को काफ़ी प्राचीन कहा जाता है। इस मंदिर के लिए यहां की जनता के हृदय में असीम श्रद्धा है। नग्गर के पास एक पहाड़ी पर एक सुंदर एवं कलापूर्ण मंदिर है जिसे मुरलीधर का मंदिर कहते हैं। स्थानीय किंवदंती में कहा जाता है कि बारह वर्ष के वनवास काल में पांडवों ने इस मंदिर का निर्माण किया था। रमणीक पार्वतीय पृष्ठभूमि में स्थित इस मंदिर की वास्तुकला और शिल्पकारी वास्तव में सराहनीय है।

नचनाकुठारा (म० प्र०)

भूतपूर्व आजमगढ़ रियासत में भुमरा से 10 मील दूर स्थित है। जनरल कनिंघम ने यहां के मंदिर को पार्वती का मंदिर बताया है। यह पूर्व गुप्तकालीन जान पड़ता है। भुमरा के प्रसिद्ध मंदिर से इसका बहुत सादृश्य है। मंदिर का गर्भगृह 15½ फुट बाहर और 8 फुट अंदर से है। गर्भगृह के चारों ओर पटा हुआ प्रदक्षिणा पथ 33 फुट बाहर और 26 फुट अंदर से है। मंडप 26 फुट × 12 फुट है। नचनाकुठारा के मंदिर की तक्षणकला भुमरा के शिल्प के समान सूक्ष्म और सुकुमार नहीं है। इसमें गर्भगृह के ऊपर एक कोष्ठ भी है जो भुमरा में नहीं है। भुमरा तथा नचनाकुठारा के मंदिर पूर्वगुप्तकालीन वास्तुकला के प्रतिनिधि हैं।

नचने की तलाई (बुंदेलखंड, म० प्र०)

वाकाटकवंश के महाराज पृथ्वीसेन के दो अभिलेख इस स्थान पर गुप्त-कालीन ब्राह्मी लिपि में अंकित पाए गए हैं। पहले में केवल महाराज पृथ्वीसेन का उल्लेख है और दूसरे में इनके सामंत व्याघ्रदेव का भी। अभिलेखों का उद्देश्य व्याघ्रदेव द्वारा किसी मंदिर, कूप या तड़ाग आदि के बनवाए जाने का उल्लेख है जिसमें अभिलेख का पत्थर जड़ा रहा होगा।

नजीबाबाद (ज़िला बिजनौर, उ० प्र०)

इस नगर को जो मालन (प्राचीन **मालिनी**) नदी से कुछ दूर पर गढ़वाल की तराई में स्थित है, मुगल सम्राट् अहमदशाह के समकालीन नवाब नजी-बुद्दौला ने, 1750 ई० में बसाया था। नजीबुद्दौला एक सफल कूटनीतिज्ञ था और मुग़ल साम्राज्य की तत्कालीन राजनीति में इसका काफी दख़ल था। इसका मक़बरा नजीबाबाद में स्थित है। कहते हैं कि नजीबुद्दौला ने मराठों को नीचा दिखाने के लिए अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रण दिया था। 1857 के विद्रोह में नजीबुद्दौला के उत्तराधिकारी नवाब दूंदूखां ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध बग़ावत की थी जिसके कारण उसकी रियासत ज़ब्त कर ली गई और उसका एक भाग रामपुर रियासत को दे दिया गया। रामपुर और नजीबाबाद के नवाबी घरानों में विवाह-संबंध था।

नट्टमेडू (कुड्डलोर तालुका, ज़िला तंजौर)

1955-56 के उत्खनन में पुरातत्व विभाग को इस स्थान से मिट्टी के बर्तनों के ऐसे अवशेष मिले थे जिससे इसके प्राचीन रोम-साम्राज्य से व्यापारिक संबंधों पर प्रकाश पड़ता है। इन मृद्-भांडों में शंक्वाकार आधार सहित दो

हत्थों वाले बर्तन (amphora) और भीतर की ओर मुड़े किनारे वाली रकाबियों तथा प्यालियों के टुकड़े उल्लेखनीय हैं।

नड्वल

पाणिनि 4,2,88 में उल्लिखित है। श्री वा० स० अग्रवाल के अनुसार यह मारवाड़ का नाडौल है।

नदिया=नवद्वीप

नन्नूर (ज़िला वीरभूम, प० बंगाल)

15वीं शती में बंगाल के प्रसिद्ध कवि चंडीदास का जन्म इसी स्थान पर हुआ था। चंडीदास और रामी की प्रेम कहानी का भारत की प्राचीन प्रेम-कथाओं में विशेष स्थान है। चंडीदास ने अपनी कविता यद्यपि 15वीं शती में लिखी थी तो भी वह मानवीय गुणों से संपन्न है और उसका दृष्टिकोण आधुनिक सा जान पड़ता है—'साबार ऊपर मानुष भाई ताहार ऊपर नाँई—सबके ऊपर मानव है और उसके ऊपर कुछ नहीं—यह चंडीदास की ही अमर सूक्ति है।

नयार=नवालिका

गढ़वाल की पुराण-प्रसिद्ध नदी

नरक

महाभारत के अनुसार यवनाधिप भगदत्त का मुर तथा नरक नाम के देशों पर राज्य था—'मुरं च नरकं चैव शास्ति यो यवनाधिपः, अपर्यन्तबलो राजा प्रतीच्यां वरुणो यथा, भगदत्तो महाराज वृद्धस्तवपितुः सखा'—महा० सभा० 14,14-15। इस उद्धरण से इंगित होता है कि इस देश की स्थिति पश्चिम दिशा में (भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर) रही होगी। भगदत्त यवन (शायद ग्रीक) शासक था।

नरमान (ज़िला हलार, सौराष्ट्र, गुजरात)

इस स्थान से 1954 के उत्खनन में प्रागैतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनमें लघुपाषाण तथा पुरापाषाण युगों के उपकरणादि उल्लेखनीय हैं।

नरनारायणस्थान दे० नारायणाश्रम

नरराष्ट्र

'नरराष्ट्रं च निर्जित्य कुंतिभोजमुपाद्रवत्, प्रीतिपूर्व च तस्यासौ प्रतिजग्राह शासनम्,'—महा० सभा०, 31,6 अर्थात् सहदेव ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में नरराष्ट्र को जीतकर कुंतिभोज पर चढ़ाई की। इससे नरराष्ट्र की स्थिति कुंतिभोज (=कोतवार, ज़िला ग्वालियर, म० प्र०) के निकट प्रमाणित होती है। हमारे मत में ग्वालियर दुर्ग से प्रायः 10 मील उत्तर-पूर्व वन-प्रांत

के अंतर्गत बसे हुए नरेसर नामक स्थान से नरराष्ट्र का अभिज्ञान किया जा सकता है। नरेसर को नलेश्वर का अपभ्रंश कहा जाता है किंतु इसका संबंध तो नरराष्ट्र से जान पड़ता है। नरेसर और नरराष्ट्र नामों में ध्वनिसाम्य तो है ही, इसके अतिरिक्त नरेसर बहुत प्राचीन स्थान भी है क्योंकि यहां से अनेक पूर्व-मध्यकालीन मंदिरों तथा मूर्तियों के ध्वंसावशेष मिले हैं। यहां के खंडहर विस्तीर्ण भूभाग में फैले हुए हैं और संभव है यहां से उत्खनन में और अधिक प्राचीन अवशेष प्राप्त हों। नरराष्ट्र, नलराष्ट्र का भी रूपांतरण हो सकता है और उस दशा में इसका संबंध राजा नल से जोड़ना संभव होगा क्योंकि राजा-नल की कथा की घटनास्थली नरवर (प्राचीन नलपुर) निकट ही स्थित है। महाभारत की कई प्रतियों में नरराष्ट्र को नवराष्ट्र लिखा है जो अशुद्ध जान पड़ता है।

नरवर

(1) =**नलपुर** (ज़िला ग्वालियर म० प्र०) परंपरा के अनुसार महाभारत में वर्णित नलोपाख्यान (वनपर्व) के नायक राजानल की राजधानी नलपुर या नरवर में थी। नलपुर नाम का उल्लेख 12 वीं शती तक के संस्कृत अभिलेखों में है। यहां का पहाड़ी किला सर्वप्रथम कछवाहा-राजपूतों के अधिकार में था। इसके पश्चात् 15वीं शती में नरपुर मानसिंह तोमर (1486-1516 ई०) के अधिकार में रहा। मानसिंह और मृगनयनी की प्रसिद्ध प्रेम-कथा से नरपुर का भी संबंध बताया जाता है। कहते हैं कि नरपुर के विषय में स्थानीय रूप से प्रसिद्ध कहावत 'नरपुर चढ़े न बेड़नी बूंदी छपे न छींट, गुदनोटा भोजन नहीं एरच पके न ईंट,'—लगभग इसी समय प्रचलित हुई थी। राजस्थान की प्रसिद्ध प्रेम-कथा ढोलामारू का नायक ढोला नरवर-नरेश का ही राजपुत्र बताया गया है। मारू या मरवण पूंगलगढ़ की राजकुमारी थी। नरवर परवर्ती काल में मालवा के सुलतानों के कब्जे में रहा और 18वीं शती में मराठों का आधिपत्य यहां स्थापित हुआ। दौलतराव सिंधिया के समय के भी कुछ स्मारक, हवापोर, एकखंबाछतरी आदि यहां स्थित हैं।

(2) (ज़िला अलीगढ़, उ० प्र०) गंगातट पर स्थित राजघाट से 3 मील दूर है। जनश्रुति है कि महाराज नल की इसी स्थान पर राजधानी थी। इस स्थान के निकटवर्ती प्रदेश को नल-क्षेत्र कहते हैं। (दे० **नरवर** 1)

नरसापुर (ज़िला राजमहेंद्री, आं० प्र०)

गोदावरी की सात-धाराओं में से अंतिम वशिष्ठ धारा इस स्थान के निकट

बहती हुई मानी जाती है। इसका प्राचीन नाम अंतर्वेदी कहा जाता है। (टि० अन्तर्वेदी शब्द दोआबे का पर्याय है)। (दे० गोदावरी)

नरहट्टग्राम=नरहट्टा (दे० **कंचनपल्ली**)

नरेसर (दे० नरराष्ट्र; नलेमर)

नरैना (राजस्थान)

सांभर के निकट स्थित है। इस स्थान पर 1603 ई० में उत्तरीभारत के प्रसिद्ध संत तथा हिन्दी के कवि महात्मा दादू का निर्वाण हुआ था। इन्होंने अपने मत का प्रथम वार प्रतिपादन नरैना ही में किया था। 1833 ई० में बना इनका एक मंदिर भी यहां है।

नरौली (ज़िला एटा, उ० प्र०)

नोहखेड़ा से 3 मील पर इस ग्राम में अनेक प्राचीन हिंदू मंदिरों के ध्वंसावशेष हैं जो उत्तर गुप्तकालीन तथा मध्ययुगीन जान पड़ते हैं।

नर्थमलाई (ज़िला पुडुकोट्टाई, मद्रास)

कादंबर नामक प्राचीन भव्य मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

नर्मदा

मध्य भारत की प्रसिद्ध नदी जो विंध्याचल की मेकल नाम की पर्वत-श्रेणी (अमरकंटक पर्वत) से निस्मृत होकर भृगुकच्छ या भड़ौच नामक नगर के पास खंभात की खाड़ी में गिरती है। वेदों में नर्मदा का कोई उल्लेख नहीं है। रामायण तथा महाभारत और परवर्ती ग्रंथों में इस नदी के विषय में अनेक उल्लेख हैं। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार नर्मदा की एक नहर किसी सोमवंशी राजा ने निकाली थी जिससे उसका नाम सोमोद्भवा भी पड़ गया था। गुप्तकालीन अमरकोश में भी नर्मदा को सोमोद्भवा कहा है—'रेवातुनर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका'। कालिदास ने भी नर्मदा को सोमप्रभवा कहा है—'तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः' रघु 5,59.। रघुवंश 5,42 में नर्मदा का इस प्रकार उल्लेख है—'स नर्मदारोधसि सीकरार्द्रैर्मरुद्भिरानर्तितनक्तमाले, निवेशयामास विलंघिताध्वा क्लांतं रजोधूसरकेतु सैन्यम्'। मेघदूत में रेवा या नर्मदा का सुंदर वर्णन है (दे० रेवा)। वाल्मीकि० उत्तर० में भी नर्मदा का उल्लेख है—'पश्यमानस्ततो विध्यं रावणोनर्मदां ययौ, चलोपलजलां पुण्यां पश्चिमोदधिगामिनीम्' वाल्मीकि० उत्तर, 31,19। इसके पश्चात् के श्लोकों में नर्मदा का एक युवती नारी के रूप में सुंदर वर्णन है—'चक्रवाकैः सकारण्डैः सहंसजलकुक्कुटैः, सारसैश्च सदामत्तैः कूजद्भिः सुसमावृताम्। फुल्लद्रुमकृत्तोत्तंसां चक्रवाकयुगस्तनीम्, विस्तीर्णपुलिनश्रोणीं हंसावलि सुमेख-

लाम् । पुष्परेण्वनुलिप्तांगींजलफेनामलांशुकाम् जलावगाहसुस्पर्शां फुल्लोत्पल शुभेक्षणाम् पुष्पकादवरुह्याशु नर्मदां सरितां वराम्, इष्टामिव वरां नारीमवगाह्य दशानन:'–उत्तर० 31,21-22-23-24. । महाभारत में नर्मदा को ऋक्षपर्वत से उद्भूत माना गया है—'पुरश्चपश्चाच्च यथा महानदी तमृक्षवन्तं गिरिमेत्य नर्मदा'–शान्ति० 52,32 । (दे० वन० 82,52) । भीष्म० 9,14 में नर्मदा का गोदावरी के साथ उल्लेख है—'गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम्' । श्रीमद्भागवत 5,19,18 में रेवा और नर्मदा दोनों का ही एक स्थान पर उल्लेख है—'तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुरन्ध: शोणश्च नदौ····' । जान पडता है कि कहीं कहीं साहित्य में इस नदी के पूर्वी या पहाड़ी भाग को रेवा (शाब्दिक अर्थ—उछलने-कूदने वाली) और पश्चिमी या मैदानी भाग को नर्मदा (शाब्दिक अर्थ—नर्म या सुख देनेवाली) कहा गया है । (किंतु महाभारत के उपर्युक्त उद्धरण में उद्गम के निकट ही नदी को नर्मदा नाम से अभिहित किया गया है) । नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश को भी कभी-कभी नर्मदा नाम से ही निर्दिष्ट किया जाता था । विष्णुपुराण 4,24 के अनुसार इस प्रदेश पर शायद गुप्तकाल से पूर्व आभीर आदि शूद्रजातियों का अधिकार था—'नर्मदा मरुभू-विषयांश्च-आभीर शूद्राद्या: भोक्ष्यन्ति' । वैसे नर्मदा का नदी के रूप में विष्णु 1,2,9; 2,3,11 आदि में उल्लेख है—'तैश्चोक्तं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदा तटे, सारस्वताय तेनापि मह्यं सारस्वतेन च'; 'नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विंध्याद्रि-निर्गता:' । (दे० **रेवा, सोमोद्भवा**)

नलगोंडा (आं० प्र०)

तेलगू भाषा में नीलगिरि का पर्याय नल्लगोंडा या नलगोंडा है । नल्लगोंडा नगर में औरंगज़ेब की बनवाई हुई दो मसजिदें हैं । पास ही पहाड़ी पर प्राचीन शिवमंदिर है जिसका ध्वजस्तंभ 44 फुट ऊंचा है ।

नलपुर = नरवर

नलमाली

शूर्पारकजातक में वर्णित एक समुद्र—'यथानलो व वेणुव समुद्दोपति दिस्सति' अर्थात् जिस प्रकार नल या वेणु दिखाई देता है उसी प्रकार हरितवर्ण का यह समुद्र है । इसमें वैदूर्य उत्पन्न होता था यह समुद्र भृगुकच्छ या भडौंच से जलयान पर देशांतरों से व्यापार करने के लिए निकले हुए वणिकों को मार्ग में मिला था । अन्य समुद्रों के नाम जो उन्हें मिले थे ये हैं:—क्षुरमाली, अग्नि-माली, कुशमाली, दधिमाली, बड़वामुख ।

नलिनी

(1) विष्णुपुराण के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी—'नद्यश्चात्र महा-पुण्या सर्वपापभयापहाः सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या'

(2) वाल्मीकि० बाल० 43 में उल्लिखित नदी जो संभवतः ब्रह्मपुत्र है (श्री नं० ला० डे)

नलेसर=**नरेसर** (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

ग्वालियर के दुर्ग से प्रायः दस मील उत्तरपूर्व वनप्रांत के अंतर्गत इस नाम के ग्राम के खंडहर हैं। 11वीं-12वीं शतियों के मंदिरों तथा मूर्तियों के ध्वंसावशेष यहां से प्राप्त हुए ह जिनमें से अधिकांश शैवमत से संबंध रखते हैं। (दे० **नरराष्ट्र**)

नल्लगोंडा=**नलगोंडा**

नवकोट (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

मारवाड़ का एक अतिप्राचीन स्थान जिसका उल्लेख मुग़लकालीन साहित्य में है (दे० भूषण-शिवाबावनी, 42—'भूषन भनत गिरि-निकट निवासी लोग बावनीबवंजा नवकोट धुंधजोत हैं'।

नवद्वीप (ज़िला नदिया, बंगाल)

श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म स्थान तथा संस्कृतविद्या और न्यायशास्त्र का प्राचीन केंद्र। पाणिनि, 6,2,89 में शायद नवद्वीप का नवनगर नाम से उल्लेख है। आजकल जो नगर नवद्वीप के नाम से प्रसिद्ध है वह चैतन्य महा-प्रभु के समय में कुलिया नामक ग्राम था। प्राचीन नवद्वीप कुलिया के सामने गंगा के उस पार पूर्वी तट पर स्थित था। इसे आजकल वामनपुकुर कहा जाता है। कहते हैं प्राचीन काल में नवद्वीप की परिधि 16 कोस की थी और उसमें अंतःद्वीप, सीमंतद्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप, कोलद्वीप, ऋतुद्वीप, जह्नुद्वीप, मोदद्रुमद्वीप और रुद्रद्वीप ये नौ द्वीप सम्मिलित थे। मायापुर नामक नवद्वीप के जिस भाग में चैतन्य का जन्म हुआ था वह मध्यद्वीप के अंतर्गत था। यहीं चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र का निवास-स्थान था। यह स्थान कालांतर में गंगा के गर्भ मे विलीन हो गया था। नवद्वीप को अब नदिया कहा जाता है।

नवनंद दे० **नंदेड़**

नवनगर

(1)(=नवनर) गोदावरी नदी पर स्थित इस ग्राम का अभिज्ञान डा० भंडारकर ने प्रतिष्ठानपुर (=पैठान) से किया है। यह प्राचीन व्यापारिक

नगर था तथा शातवाहन-नरेशों के समय में उनके साम्राज्य की राजधानी इसी स्थान पर थी (दे० **प्रतिष्ठानपुर**)

(2) पाणिनि 6,2,89 में उल्लिखित । यह शायद नवद्वीप है ।

नवनगरी=नवनेरी

ओसियां का प्राचीन नाम ।

नवनर=नवनगर

नवराष्ट्र (दे० **नरराष्ट्र**)

नवादा (ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

प्राचीन काल में दून घाटी का मुख्य नगर था । 18वीं शती के प्रारंभ में, देहरादून के बस जाने के पश्चात् नवादा का महत्व घटता चला गया और कालांतर में यह स्थान खंडहर बन गया । कोई सौ वर्ष तक नवादा दूनघाटी का प्रमुख नगर था ।

नवालिका=नयार (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

ऋषिकेश से देवप्रयाग जाने वाले मार्ग में यह नदी मिलती है । इसका पुराणों में भी उल्लेख है । यह व्यासघाट नामक स्थान पर गंगा से मिल जाती है । संगम पर इंद्रप्रयाग बसा है । पुराणों में कथा है कि वृत्रासुर से परास्त होने पर इंद्र ने इसी स्थान पर आकर शिव की आराधना की थी और वरदान प्राप्त करके उन्होंने इस दैत्य का संहार किया था ।

नव्यावकाशिका (ज़िला फ़रीदपुर, प० बंगाल)

फरीदपुर से प्राप्त ताम्रपट्टाभिलेखों में इस स्थान का उल्लेख हैं । ये अभिलेख उत्तर-गुप्तकालीन हैं । इनसे तत्कालीन शासन-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है ।

नांदनेर (ज़िला होशंगाबाद, म० प्र०)

नर्मदा के उत्तरीतट पर स्थित है । यहां अनेक प्राचीन मंदिरों के खंडहर हैं ।

नांदेड दे० नंदेड

नाखोनश्रीधम्मरत (मलाया)

मलयप्रायःद्वीप में लिगोर नामक स्थान का प्राचीन भारतीय नाम । यहां भारत के बौद्धों ने उपनिवेश बसाया था । स्थान का नाम नाखोनधम्मरत नामक स्तूप के कारण पड़ा था । यह स्तूप पचास मंदिरों के बीच में बनाया गया था । यह भारतीय औपनिवेशिकों की वास्तु-कला का परिचायक है ।

नाग

विष्णुपुराण 2,2,29 के अनुसार मेरु के उत्तर की ओर स्थित एक पर्वत —'शंखकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापर:, कालंजाद्याश्च तथा उत्तरे केसराचला:'।

नागखंड (शिकारपुर तालुक, मैसूर)

14वीं शती के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस प्रदेश की रक्षा सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा की जाती थी जिससे सूचित होता है कि मौर्यसम्राट का राज्य इस स्थान तक विस्तृत था (दे० राइस-मैसूर एंड कुर्ग इंसक्रिपशंस, पृ० 10) राजावलीकथा (इंडियन ऐंटिक्वेरी 1892, पृ० 157) में वर्णित जैन परंपरा के आधार पर भी चंद्रगुप्त मौर्य के राज्य का विस्तार दक्षिण भारत विशेषत: मैसूर तक सिद्ध होता है।

नागदा (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

(1) उदयपुर से 13 मील उत्तर की ओर स्थित है। यह प्राचीन नगर(=नागह्रद या नगेंद्र) अधिकतर खंडहरों के रूप में पड़ा हुआ है। चारों ओर अर्वली पहाड़ की चोटियाँ दिखाई देती हैं। प्राचीन काल के अनेक मंदिर जिनका नष्टप्राय कलावैभव आज भी दर्शकों को मुग्ध कर लेता है, एक झील के निकट बने हुए हैं। मेवाड़ के संस्थापक बप्पारावल ने नागदा ही में अपनी राजधानी बनाई थी। यहाँ के राजा चंद्रसिंह की कन्या कोकिला से उनका विवाह हुआ था। 1210 ई० में दिल्ली के सुलतान इल्तुतमिश ने नागदा पर आक्रमण करके नगर को नष्टभ्रष्ट कर दिया। इस आक्रमण के पश्चात् नागदा के निवासी नगर को छोड़कर अहार अथवा धूलकोट (अब उदयपुर का एक भाग) नामक स्थान पर जाकर बसने लगे। किंतु फिर भी कई सौ वर्षों तक नागदा में अनेक कलापूर्ण मंदिरों का निर्माण होता रहा। नागदा के प्राचीन मंदिरों की संख्या 2112 कही जाती है जो आस-पास की पहाड़ियों पर दूर दूर तक दिखाई देते थे। वर्तमान मंदिरों में अधिकांश हिंदू शैली में बने हैं। कुछ जैन मंदिर भी हैं। दो उल्लेखनीय जैन मंदिर खुमाणरावल तथा अद्‌भुतजी नाम के हैं। यह दूसरा मंदिर 1437ई० में ओसवाल सारंग ने बनवाया था। सास-बहू के प्रसिद्ध मन्दिर विष्णु के देवालय थे। ये 10वीं-11वीं शती ई० में बने थे। ये दोनों श्वेत पत्थर के चौकोर चबूतरों पर बने हैं जो 140 फुट लंबे हैं। प्रवेशद्वार तोरण के रूप में निर्मित है। सास के मन्दिर का शिखर ईंटों का है और शेष मन्दिर संगमर्मर का बना है। ये विशाल संगमर्मर के पत्थर इतने सुदृढ़ रूप में जुड़े हैं कि सैकड़ों वर्षों बाद आज भी अडिग हैं। शिखर अब जीर्ण अवस्था में है। सास के मन्दिर के स्तंभ,

उत्कीर्ण शिलापट्ट एवं मूर्तियाँ सभी शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मन्दिर के बाहरी भाग में भी सुंदर मूर्तिकारी प्रदर्शित है। पूर्वी व दक्षिणी भागों में कई प्रकार की चित्रविचित्र जालियां बनी हैं जिनसे सूर्य का प्रकाश छन कर अंदर पहुँचता है। सभामंडप विशाल है और अद्भुत शिल्पकारी से संपन्न है। इसकी छत में एक बृहत् कमलपुष्प उकेरा हुआ है जिसकी विकसित पंखड़ियों पर चार नर्तकियाँ नृत्यमुद्रा में प्रदर्शित हैं। नृत्यमुद्रा का अंकन अपूर्व भावगरिमा एवं कलालावण्य के साथ किया गया है। स्तंभों पर भी अनेक कलामयी मूर्तियां उकेरी हुई हैं। इनमें से कई पर रास व भजन-मंडलियों के दृश्यों का अंकन है। दूसरों पर नारीसौंदर्य के अप्रतिम मूर्तिचित्र केवल उच्चकला ही के नहीं वरन् तत्कालीन समाज के भी प्रतिदर्श हैं। बहू के मंदिर की कला भी कम विदग्धता-पूर्ण नहीं। इसके सभामंडप की मूर्तियों में मुख्यतः विष्णु, शिव, गरुड़ आदि प्रदर्शित हैं। इसकी छत पर भी सुंदर तक्षणकला की अभिव्यंजना है। मंदिर का शिखर अब पूर्ण रूप से टूट चुका है। इन मंदिरों की शिल्पकला आबू के दिलवाड़ा मंदिरों की याद दिलाती है। नागदा या नागह्रद का नामोल्लेख जैनस्तोत्र तीर्थ-माला चैत्यवंदन में इस प्रकार है—'वंदे श्री करणावती शिवपुरे नागद्रहे (नागह्रदे) नाणके।'

(2) (म० प्र०) यह स्थान उज्जैन से लगभग 30 मील उत्तरपश्चिम में, पश्चिम रेलवे के बम्बई-दिल्ली मार्ग पर स्थित है। मालवा के परमारनरेशों के अभिलेखों में नागदा का प्राचीन नाम नागह्रद मिलता है। जूना नागदा नाम के पुराने गाँव में चंबल नदी के तट पर प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के अवशेष यहाँ की गई खुदाई में प्राप्त हुए हैं। इन में लघु पाषाण तथा कई कीमती पत्थरों की गुरियाँ और मिश्रित मृद्‌भांड शामिल हैं। श्री अमृत-पांड्या के मत में (जिन्होंने यहाँ उत्खनन किया था) माहिष्मती संस्कृति, जिसके अवशेष महेश्वर और प्रकाश में मिले हैं और चंबल घाटी की संस्कृति में काफी समानता है और वे समकालीन जान पड़ती हैं। नागदा से उत्खनित सभ्यता को श्री अमृतपांड्या ने मोहेंजदारो और हरप्पा की सभ्यता से भी प्राचीन सिद्ध करने का प्रयास किया है।

नागद्वीप

(1) पुराणों में वर्णित एक द्वीप। इसका अभिज्ञान कुछ विद्वानों के मत में बंगाल की खाड़ी में स्थित निकोबार द्वीपसमूह के साथ किया जा सकता है। श्री वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार इस उपकल्पना की पुष्टि वलहस्स जातक से भी होती है—(दे० जर्नल ऑव दि बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी,

पटना, 23,1)

(2) महावंश 1,47 तथा 20,24 में वर्णित लंका का उत्तरपश्चिमी भाग। पहले उल्लेख के अनुसार गौतम बुद्ध भारत से नागद्वीप आए थे।

नागधन्वा

'धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युत, यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः सन्निवेशनम्'—महा० शल्य० 37,30। इस उद्धरण के प्रसंग के अनुसार नागधन्वा की सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों में गणना थी। इसकी यात्रा बलराम ने की थी। यह शंखतीर्थ के उत्तर में स्थित था। उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि नागधन्वा के निकट नाग लोगों की बस्ती थी। यह तीर्थ दक्षिणी पंजाब या उत्तरी राजस्थान में था।

नागनूर (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

नागनूर नाम तेलगू नाल-गुनूरेलु (=चार सौ) का अपभ्रंश कहा जाता है। स्थानीय जनश्रुति है कि इस स्थान पर प्राचीन काल में चार सौ मंदिर थे। नागनूर में एक दुर्ग भी है। शिव और विष्णु के मंदिर भी यहां के सुंदर स्मारक हैं। बुधाती नामक तीन स्तूप या स्तंभ भी यहां स्थित हैं जिन्हें किवदंती के अनुसार अशोक ने बनवाया था। इससे नागनूर की प्राचीनता प्रमाणित होती है।

नागपट्टन=**नेगापटम्** (ज़िला राजमहेन्द्री, आं० प्र०)

कुछ विद्वानों के मत में पांड्य देश की राजधानी उरगपुर या उरग यही स्थान था। उरगपुर का उल्लेख कालिदास ने रघुवंश 6,59 में किया है जिसकी टीका करते हुए मल्लिनाथ ने इसे कान्यकुब्ज नदी के तट पर स्थित नागपुर बताया है (दे० उरगपुर)। चोलराज्यकालीन एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजराज चोल के शासनकाल के 21वें वर्ष (1005 ई०) में सुवर्णद्वीप (बर्मा) के शैलेन्द्रनरेश चूड़ावर्मन् ने नागपट्टन में एक बौद्ध विहार बनवाना प्रारंभ किया था। राजराज चोल ने इस विदेशी नरेश को अपने राज्य के अंतर्गत केवल बौद्ध-विहार बनवाने की ही आज्ञा न दी थी वरन् इस विहार के व्यय के लिए एक ग्राम का दान भी दिया था। चूड़ावर्मन् की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी श्रीमारविजयोत्तुंगवर्मन् ने इस विहार को पूरा करवाया था। 15वीं शती तक दो बौद्ध मंदिर नेगापट्म में थे। इनमें से एक को 1867 ई० में जेसुअट पादरियों ने नष्टभ्रष्ट कर दिया और उसके स्थान पर गिरजाघर बनवाया था (विसेंट स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 486)

नागपुर

(1) (महाराष्ट्र) नागनदी पर अवस्थित है। गौंड राजाओं ने इस नगर की नींव डाली थी। बाद में 18वीं शती में यहां भौंसला मराठों का आधिपत्य स्थापित हुआ। 1777 ई० में मराठों और अंग्रेजों का युद्ध नागपुर में हुआ था। लार्ड डलहौजी ने नागपुर की रियासत को नागपुर-नरेश के उत्तराधिकारी न होने की दशा में जब्त कर लिया और यहां के राजवंश के कीमती रत्नादिकों का नीलाम कर दिया था। भौंसला-वंश के शासनकाल का यहां एक दुर्ग तथा अन्य भवनादि स्थित हैं।

(2) हस्तिनापुर 'तं चारणसहस्राणां मुनीनामागमंतदा श्रुत्वा नागपुरे नृणां विस्मय:समपद्यत' महा० आदि 125,11।

(3) मल्लिनाथ ने रघुवंश 6,59 में उल्लिखित 'उरगाख्यपुर' की टीका करते हुए इसे नागपुर कहा है—'उरगाख्यस्य पुरस्य पांड्य देशे कान्यकुब्ज-तीरवर्ति नागपुरस्य—'। इसका अभिज्ञान नेगापट्म से किया गया है। (दे० नेगापट्म; उरगपुर)

(4) (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) इस स्थान पर एक पुरानी गढ़ी या दुर्ग के अवशेष हैं जो गढ़वाल के प्राचीन नरेशों के समय का है। इस प्रदेश का नाम गढ़वाल इसी प्रकार के अनेक गढ़ों के कारण हुआ था।

नागमती (सौराष्ट्र, गुजरात)

सौराष्ट्र-काठियावाड़ के उत्तरपश्चिमी भाग अथवा **हालार** की, रंगमती नामक नदी की एक शाखा जिसके तट पर जामनगर बसा हुआ है।

नागमाल (लंका)

महावंश 15,153 में वर्णित एक स्थान जो अनुराधपुर से संबंधित था। सिंहल-नरेश जयंत को स्थविर कश्यप बुद्ध ने इसी स्थान के उत्तर में अशोकमाल पर जाकर धर्मोपदेश दिया था जिससे सिंहल के चार सहस्र लोग बौद्धधर्म में दीक्षित हुए थे।

नागरा (ज़िला भंडारा, म० प्र०)

प्राचीन पुरातत्वविषयक अवशेष इस स्थान से प्राप्त हुए हैं जो कलचुरि-कालीन जान पड़ते हैं। इनमें मुख्य, 12वीं शती तथा उसके पश्चात् बने हुए जैन मंदिरों के खंडहर हैं। नागदा गोंदिया से चार मील दूर है।

नागसाह्वय

हस्तिनापुर का पर्याय, जिसका प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों पर उल्लेख है, उदाहरणार्थ—'बलदेवस्ततो गत्वा नगरं नागसाह्वयम्' विष्णु० 5,35,8;

'विजित्य पुरुषव्याघ्रो नागसाह्वयमागमत्' महा० वन० 254,22 । दे० हस्तिना-पुर; नागपुर (2)

नागह्रद (दे० नागदा)

नागार्जुनीकोंड (जिला गुंटूर, आं० प्र०)

हैदराबाद से 100 मील दक्षिणपूर्व की ओर अति प्राचीन स्थान। यह बौद्ध महायान के प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन (दूसरी शती ई०) के नाम पर प्रसिद्ध है। प्रथम शती ई० में तथा उसके पूर्व इसका नाम श्रीपर्वत था जिसका वर्णन महा-भारत वनपर्व, तीर्थ यात्रा के प्रसंग में है—'श्रीपर्वतमासाद्य नदीतीरमुपस्पृशेत्' वन० 85,11। श्रीमदभागवत 5,18,16 में भी श्रीशैल या श्रीपर्वत का उल्लेख है—'देवगिरि ऋष्यमुक: श्रीशैलो वेंकटो महेन्द्रो वारिधारो विंध्य:'। प्रथम शती ई० में यहां शातवाहन-नरेशों का राज्य था। हाल नामक शातवाहन राजा ने जो प्राकृत के प्रसिद्ध काव्य गाथासप्तशती के रचयिता कहे जाते हैं, नागार्जुन के लिए श्रीपर्वत के शिखर पर एक विहार बनवा दिया था जहां ये रसविद् आचार्य अपने जीवन के अंतकाल में रहे थे। उनके यहां रहने के कारण यह स्थान महायान बौद्धधर्म का केंद्र बन गया था जिससे भारत तथा बृहत्तर भारत में महायान के प्रचार में योगदान मिला। उस समय यहां एक बौद्ध महाविद्यालय स्थापित हो गया था। नागार्जुन का नाम तिब्बती तथा चीनी बौद्ध साहित्य में भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि तीसरी या चौथी शती ई० में एक अन्य तांत्रिक विद्वान् नागार्जुन भी यहां रहे थे। शातवाहनों (आंध्रनरेशों) के पश्चात् नागार्जुनीकोंड में इक्ष्वाकुनरेशों ने राज्य किया और वे आंध्रप्रदेश की राजधानी, अमरावती से यहीं ले आए। उस समय नागार्जुनी-कोंड को विजयपुर या विजयपुरी कहते थे। इक्ष्वाकु-नरेश हिंदू मतावलंबी होते हुए भी बौद्धधर्म के संरक्षक थे, यहां तक कि कई राजाओं की रानियां बौद्ध थीं और इस मत के प्रचार में क्रियात्मक रूप से भाग लेती थीं। संसार के इतिहास में धार्मिक सहिष्णुता का यह अपूर्व उदाहरण है। नागार्जुनीकोंड (विजयपुर) इक्ष्वाकुओं के शासनकाल में बहुत सुंदर नगर था। कृष्णानदी के तट पर स्थित तथा चतुर्दिक् पर्वत मालाओं से परिवृत यह नगर प्राकृतिक सौंदर्य से समन्वित होने के साथ ही दुर्भेद्यदुर्ग की भांति सुरक्षित भी था। विजयपुर के आस्थान से नौ बौद्ध स्तूपों के खंडहर लगभग चालीस वर्ष पूर्व उत्खनित किए गए थे जो इस नगर के प्राचीन गौरव तथा ऐश्वर्य के साक्षी हैं। आठवीं शती में बौद्ध-धर्म को, अन्य कारणों के अति-रिक्त महामनीषी शंकराचार्य के प्राचीन हिंदू धर्म के पुनरुज्जीवन के लिए किए

गए भगीरथप्रयत्न के परिणामस्वरूप बड़ा धक्का लगा और इसकी दक्षिण भारत में अवनति के साथ ही नागार्जुनीकोंड का महत्व भी घटने लगा। नागार्जुनीकोंड को शंकराचार्य ने अपने प्रचार का मुख्य केंद्र बनाया था जिसका परिचायक पुष्पगिरिशंकर मठ है। इस स्थान के खंडहर नल्लमलाई की पहाड़ियों के क्रोड़ में स्थित थे। अब यहां एक विशाल बांध बनने के कारण यह सारा क्षेत्र जलमग्न हो गया है। केवल पुरातत्त्व-विषयक सामग्री पहाड़ी पर बने एक संग्रहालय में सुरक्षित कर दी गई है। यहां के ध्वंसावशेष वनाच्छादित स्थली तथा पहाड़ियों के बीच पड़े हुए थे। उत्खनन द्वारा एक महाचैत्य तथा बारह स्तूपों के अवशेष मिले। इनके अतिरिक्त चार विहार, छः चैत्य और चार मंडपों के अवशेष भी उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाए गए। महाचैत्य का उत्खनन लांगहर्स्ट ने किया था। इस स्तूप में बुद्ध का एक दांत (वाम श्वदंत) धातु मंजूषा में सुरक्षित पाया गया था। मंजूषा पर अभिलेख था—'सम्यक् संबुद्धस धातुवर परगहित महाचैत्य।' आचार्य नागार्जुन के विहार का पता यहां के खंडहरों में न लग सका है। इसके विषय में युवानच्वांग ने लिखा है कि इस विहार के बनवाने में पहाड़ी के अंदर सुरंग बनानी पड़ी थी। लंबी वीथियों के बीच में बने हुए इस भवन पर पांच मंज़िलें बनाई गई थीं और प्रत्येक पर चार शिलाएँ तथा विहार थे। प्रत्येक बिहार में बुद्ध की मानवाकार स्वर्णालंकृत प्रतिमाएँ स्थापित थीं। ये कला की दृष्टि से बेजोड़ थीं। तीसरी शती ई० में इक्ष्वाकुनरेशों की रानियों ने यहां अनेक बौद्धविहारादि बनवाए थे। रानी शांतिश्री ने यहां महाविहार तथा महाचैत्य बनवाए थे। दूसरी रानी बोधिश्री ने सिंहल, कश्मीर, नेपाल और चीन के भिक्षुओं के लिए चैत्य-गृहों का निर्माण करवाया। (अंतिम खुदाई में एक पहाड़ी पर सिंहल विहार के खंडहर मिले भी थे)। इस समय नागार्जुनीकोंड वास्तव में बौद्धधर्म का अंतर्राष्ट्रीय केंद्र बना हुआ था। इस स्थान से इन भवनों के अतिरिक्त छः सौ बड़ी तथा चारसौ छोटी कलाकृतियों के अवशेष भी प्राप्त हुए थे। नागार्जुनीकोंड की वास्तुशैली निकटवर्ती अमरावती की कला से बहुत मिलती जुलती है और दोनों को एक ही नाम अर्थात् 'कृष्णा घाटी की शैली' से अभिहित किया जा सकता है। यहां का मुख्य स्तूप जो 70 फुट ऊंचा और 100 फुट चौड़ा है, ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ था जिस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियां थीं। यहां की 'आयक वेदियाँ' तथा उन पर पतले स्तंभों की पंक्तियां और सादे प्रवेश-द्वार या तोरण जिनकी रक्षा करते हुए सिंहों की मूर्तियां प्रदर्शित हैं—ये यहां के स्तूपों की विशेषताएं आंध्र में अन्यत्र अप्राप्य हैं। स्तूपादिक

के पत्थरों की तक्षणकला या नक़्क़ाशी इस कला का बेजोड़ उदाहरण है। हलके हरे रंग का पत्थर जिसका अधिकांश में यहां प्रयोग किया गया है, जीवन के विविध भावदृश्यों के अंकन के लिए विशिष्ट रूप से उपयुक्त था। इन पत्थरों पर उकेरे हुए चित्रों के आधार पर तत्कालीन (दूसरी-तीसरी शती० ई०) बौद्धधर्म तथा कला के अध्ययन में बहुत सहायता मिल सकती है। इनमें अंकित अनेक दृश्य संस्कृत बौद्धसाहित्य की कथाओं तथा घटनाओं से लिए गए हैं। इनके अतिरिक्त अनुराधापुर (लंका) की भांति ही यहां भी अनेक बौद्ध मूर्तियों को स्मारकों के आधारों के चतुर्दिक् प्रतिष्ठापित करने की प्रथा पाई गई है। यहां के शिल्प में स्तंभों की पंक्तियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं क्योंकि यही विशिष्टता आंध्रप्रदेश में परवर्तीकाल में बनने वाले मंदिरों की कला का भी एक भाग है। नागार्जुनीकोंड के अभिलेखों की भाषा अर्धसाहित्यिक प्राकृत है जो इस प्रांत के द्रविड़ भाषा-भाषियों की बोली थी। शातवाहनों के समय में इस भाषा (या महाराष्ट्री प्राकृत) का काफ़ी सम्मान था जैसा कि हाल-नरेश द्वारा रचित प्रसिद्ध प्राकृत काव्य-ग्रंथ गाथा-सप्तशती से सूचित होता है। अभिलेखों से तत्कालीन इतिहास तथा सामाजिक अवस्था पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। 1954 में नागार्जुनीकोंड से दो संगमर्मर के मूर्तिपट्ट प्राप्त हुए थे जिन्हें भारत-शासन ने सिंगापुर के संग्रहालय में भेजा है। इनमें एक पट्ट के बीच में बोधिद्रुम अंकित है जिसे बौद्ध त्रिरत्न के साथ दिखलाया गया है। दूसरे पट्ट पर संभवतः मगध के राजा बिंदुसार की बुद्ध से भेंट करने की यात्रा का अंकन किया गया है। इसमें राजा को चार घोड़ों के रथ में आसीन दिखाया गया है। रथ के आगे कुछ पैदल सैनिक चल रहे हैं। ये दृश्य बड़े मनोरंजक हैं तथा इनका चित्रण बहुत ही स्वाभाविक रीति से किया गया है।

नागार्जुनी गुहा (ज़िला गया, बिहार)

यह गुफ़ा महायान बौद्ध के प्रसिद्ध आचार्य नागार्जुन के नाम पर प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि वे यहां कुछ समय पर्यन्त रहे थे। इनका समय द्वितीय शती ई० में माना जाता है। इस गुफा में मौखरीवंश के नरेश अनंतवर्मन् का एक तिथिहीन लेख है जिसका उद्देश्य अनंतवर्मन् द्वारा इस गुहामंदिर में भूतपति शिव तथा देवी पार्वती की अर्धनारीश्वर-मूर्ति की प्रतिष्ठापना का उल्लेख है। अनंतवर्मन् ही का एक अन्य अभिलेख भी इस गुहा में है जिसमें उसके द्वारा कात्यायनी देवी की एक प्रतिमा के प्रतिष्ठापन तथा उसके लिए एक ग्राम के दान का उल्लेख है। अभिलेख 7वीं शती ई० के हैं।

नागावती

दक्षिणकलिंग की नदी जिसे लांगुलीय भी कहते हैं। यह कलिंगपटम् और चिकाकोल के निकट बहती है-(दे० बी० सी० लॉ—'सम जैन केनानिकल सूत्राज़', पृ० 146)

नागेश=नागेश्वर

नागेश या नागेश्वर द्वारका के निकट दारुकवन में स्थित है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक नागेश में माना जाता है। शिवपुराण में इसे पुण्यस्थान माना गया है—'एतद् यः शृणुयान्नित्यं नागेशोद्भवमादरात्, सर्वान् कामानियाद्धीमान् महापातकनाशनात्'। शिवपुराण—30,44.। यह स्थान गोपी तालाब से 3 मील है। टि० कुछ लोगों के मत में अल्मोड़ा (म० प्र०) से 17 मील उत्तरपूर्व में स्थित नागेश (=**जागेश्वर**) ही नागेश ज्योतिर्लिंग है।

नागोदरी (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

जोधपुर रियासत की प्राचीन राजधानी मंडौर के निकट बहने वाली नदी। मंडौर या मांडव्याश्रम में प्राप्त एक अभिलेख में शायद इसी नदी का उल्लेख है—'मांडवस्याश्रमे पुण्ये नदीनिर्झर शोभते'।

नागौर (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

इस नगर को, किंवदंती के अनुसार, नागर राजपूतों ने बसाया था। जान पड़ता है कि नागौर का मूल नाम नागपुर रहा होगा। मुगलकाल में नागौर एक प्रसिद्ध नगर था। अकबर के दरबार के रत्न अबुलफजल और फ़ैजी के पिता शेख मुबारक नागौर के ही रहने वाले थे और नागौरी कहलाते थे।

नाजोल (राजस्थान)

यह स्थान एक प्राचीन दुर्भेद्य दुर्ग के लिए प्रसिद्ध था। इस दुर्ग का निर्माण चौहान राजपूतों ने मध्यकाल में किया था।

नाडलई (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

एक प्राचीन जैन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। इस मंदिर पर विक्रम संवत् 1686 (=1629 ई०) का एक अभिलेख अंकित है जिससे ज्ञात होता है कि मंदिर का निर्माण मूलतः मौर्य-सम्राट् अशोक के पौत्र संप्रति द्वारा करवाया गया था। संप्रति को जैन परंपरा में जैन अशोक कहा गया है।

नाडोल दे० **नडवल**

नाथद्वारा (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

वल्लभ-संप्रदाय के वैष्णवों का प्राचीन मुख्य पीठ है। कहा जाता है कि

नाथद्वारा के मंदिर की मूर्ति पहले गोवर्धन (व्रज) में थी और मुसलमानों के शासन-काल में आक्रमणों के डर से इसे नाथद्वारा ले जाया गया था। नाथद्वारा प्राचीन सिहाड़ ग्राम के स्थान पर बसा है।

नाथनगर (ज़िला भागलपुर, बिहार)

भागलपुर से 3 मील दूर रेल-स्टेशन है। बौद्ध तथा पूर्व बौद्धकालीन नगरी चंपा की स्थिति इसी स्थान पर थी। चंपा अंग-जनपद की राजधानी थी। जातक-कथाओं में इस नगरी की श्रीसमृद्धि तथा यहां के संपन्न व्यापारियों का अनेक स्थानों पर उल्लेख है।

नाणक

प्राचीन जैन तीर्थ जिसका उल्लेख तीर्थमालाचैत्यवंदन में है—'वंदे श्रीकरणावती शिवपुरे नागद्रहे नाणके'। यह वर्तमान नाना नामक स्थान है जो ज़िला जोधपुर, राजस्थान में स्थित है।

नादिक

बौद्धग्रंथ महापरिनिब्बान सुत्त, अध्याय, 2 के अनुसार नादिक, वैशाली के एक भाग अथवा उपनगर का नाम था जहां वृज्जि-वंशीय क्षत्रियों का निवास-स्थान था। बुद्धचरित, 22, 13 में उल्लेख है कि अंतिम बार पाटलिपुत्र से लौटते समय वैशाली के मार्ग पर जाते हुए बुद्ध इस स्थान पर ठहरे थे। उस समय वहां अनेक लोगों की मृत्यु हुई थी। बुद्ध ने उनके जन्म-कर्म के विषय में अनेक बातें अपने शिष्यों को बताई थीं।

नाना=नाणक

नानाघाट (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

नानाघाट में स्थित एक गुफा में शातवाहन शातकर्णी नरेश की रानी नयनिका का एक अभिलेख है जिसमें उसने कई यज्ञों के किए जाने का उल्लेख किया है। इस अभिलेख में द्वितीय शती ई० के लगभग, महाराष्ट्र में, बौद्धमत के उत्कर्षकाल के पश्चात् हिंदू धर्म के पुनरुज्जीवन की प्रथम झलक मिलती है।

नाभक

शिलाभिलेख 13 में मौर्य-सम्राट् अशोक ने नाभक के नाभपंतिसों का उल्लेख किया है। संभवतः नाभक, चीनी यात्री फ़ाह्यान द्वारा उल्लिखित ना-पेई-किया नाम का स्थान है जो उसके समय में कपिलवस्तु (नेपाल की तराई) से 10 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित ककुच्छंद बुद्ध के जन्म-स्थान के रूप में प्रख्यात था। (दे० **कपिलवस्तु**)

नाभिकपुर

डा० बुलर के अनुसार ब्रह्मवैवर्त पुराण में नाभिकपुर नामक स्थान उत्तरकुरु में बताया गया है। कुछ विद्वानों के मत में नाभक और नाभिकपुर एक ही हैं किंतु यह अभिज्ञान संदिग्ध है।

नारद

विष्णुपुराण 2, 4, 7 के अनुसार **प्लक्षद्वीप** का एक मर्यादा पर्वत—'गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुंदभिस्तथा सोमकः सुमनश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः'।

नारदीगंगा

नर्मदा की सहायक नदी। इसका और नर्मदा का संगम, नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित मोतलसिर (म० प्र०) नामक ग्राम के निकट है।

नारायणकोट (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

गढ़वाल के प्राचीन राजाओं के बनवाए हुए मंदिरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

नारायण तीर्थ

महाभारत के वनपर्व में नारायण के 'स्थान' का उल्लेख है जो प्रसंग से गंडकी नदी (बिहार) के तटवर्ती क्षेत्र में अवस्थित जान पड़ता है। यहां शालग्राम विष्णु का तीर्थ माना गया है। आज भी गंडकी में पाए जाने वाले गोल कृष्णवर्ण के पत्थरों को शालग्राम के रूप में पूजा जाता है। यहां एक पुण्य कूप का भी वर्णन है—'ततो गच्छेत् राजेंद्र स्थानं नारायणस्य च। सदा संनिहितो यत्र विष्णुर्वसति भारत। यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः, आदित्या वसवो रुद्रा जनार्दनमुपासने। शालग्राम इति ख्यातो विष्णुरद्भुतकर्मकः, अभिगम्य त्रिलोकेशं वरदं विष्णुमव्ययम्। अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति। तत्रोदपानं धर्मज्ञ सर्वपापप्रमोचनम् समुद्रास्तत्र चत्वारः कूपे संनिहिताः सदा'। महा० वन० 84,122-123-124-125-126।

नारायणपुर (मैसूर)

चालुक्य-वास्तुशैली में निर्मित चालुक्य-नरेशों के समय का एक मंदिर यहां का उल्लेखनीय प्राचीन स्मारक है।

नारायणसर (कच्छ, गुजरात)

कोटीश्वर से 2 मील दूर कच्छ का अति प्राचीन तीर्थ है। यहां 16वीं शती में महाप्रभु वल्लभाचार्य आए थे।

नारायणाश्रम

बदरीनाथ के निकट गंगातट पर नर-नारायण का आश्रम। इसका उल्लेख

महाभारत में है—'तत्रापश्यत धर्मात्मा देवदेवर्षिपूजितम्, नरनारायणस्थानं भागीरथ्योपशोभितम्' वन० 145,41। यह आश्रम यद्यपि अलकनंदा के तट पर है तथापि महाभारत में इसे भागीरथी के तट पर बताया है। भागीरथी और अलकनंदा यद्यपि गंगा की दो भिन्न शाखाएं हैं किंतु यहां भागीरथी को अलकंनदा से अभिन्न माना है। वास्तव में ये दोनों देवप्रयाग में मिल कर गंगा कहलाती हैं।

नारायणी

गंडकी नदी (बिहार) का एक नाम। यह नारायण तीर्थ में बहती है जिसे महाभारत में नारायण का स्थान माना गया है। नदी के काले गोल पत्थरों को शालग्राम की मूर्ति के रूप में पूजा जाता है। (दे० नारायण तीर्थ)

नारी तीर्थ

'तानिसर्वाणि तीर्थानि ततः प्रभृति चैव ह। नारी तीर्थानि नाम्नेह ख्याति यास्यन्ति सर्वशः' महा० आदि० 216,11। उपर्युक्त श्लोक में जिन तीर्थों का निर्देश है वे ये हैं—अगस्त्य, सौभद्र, पौलोम, कारंधम और भारद्वाज। इनका उल्लेख आदि० 215,3-4 में है—'अगस्त्यतीर्थं सौभद्रं पौलोमं च सुपावनं कारंधमं प्रसन्नं च ह्यमेधफलं च तत्। भारद्वाजस्य तीर्थं तु पापप्रशमनं महत्, एतानि पंचतीर्थानि ददर्श कुरुसत्तमः'। ये पांचो नारीतीर्थ दक्षिण समुद्रतट पर स्थित थे—'दक्षिणे सागरानूपे पंचतीर्थानि संति वै पुण्यानि रमणीयानि तानि गच्छत माचिरम्' आदि० 216,217। अर्जुन ने इन तीर्थों की यात्रा की थी। वन० 118,4 में भी द्रविड़ देश में नारीतीर्थ का उल्लेख है—'ततो विपाप्मा द्रविडेषु राजन् समुद्रमासाद्य च लोक-पुण्यम्, अगस्त्यतीर्थं च महापवित्रं नारीतीर्थान्यथ वीरो ददर्श'। आदि० 215 में वर्णित कथा के अनुसार इन तीर्थों का नाम पांच शापग्रस्त अप्सराओं से संबंधित था जिन्हें अर्जुन ने शापमुक्त किया था।

नालदग्राम=नालंदा

नालंदा (बिहार)

बख्तियारपुर-राजगीर रेलमार्ग पर नालंदा स्टेशन से 1½ मील दूर, प्राचीन भारत के इस प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के ध्वंसावशेष विस्तीर्ण भूभाग को घेरे हुए हैं। यहां आजकल बड़गांव नामक ग्राम स्थित है जो राजगीर (प्राचीन राजगृह) से 7 मील तथा बख्तियारपुर से 25 मील है। चीनी यात्री युवानच्वांग ने, जो नालंदा में कई वर्ष रह कर अध्ययन करते रहे थे, नालंदा का सविस्तर हाल लिखा है। उससे तथा यहां के खंडहरों से प्राप्त अभिलेखों तथा अवशेषों से ज्ञात होता है कि गुप्तवंश के राजा कुमारगुप्त प्रथम ने 5वीं शती ई० में इस

प्राचीन और सभ्य संसार के सर्वश्रेष्ठ तथा जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। पहले यहां केवल एक बौद्धविहार बना था जो धीरे धीरे एक महान् विद्यालय के रूप में परिवर्तित हो गया। इस विश्वविद्यालय को गुप्त तथा मौखरी नरेशों और कान्यकुब्जाधिप हर्ष से निरंतर अर्थसाहाय्य और संरक्षण प्राप्त होता रहा और इन्होंने यहां अनेक भवनों, विहारों तथा मंदिरों का निर्माण करवाया। नालंदा के संरक्षक नरेशों में हर्ष के अतिरिक्त नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, वेण्यगुप्त, विष्णुगुप्त, सर्ववर्मन् और अवंतिवर्मन् मौखरी तथा कामरूप-नरेश भास्करवर्मन् मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त एक प्रस्तर-लेख में कन्नौज के यशोवर्मन् और ताम्रपट्टलेखों में धर्मपाल और देवपाल (बंगाल के पाल नरेश) नामक राजाओं का भी उल्लेख है। श्रीविजय या जावा-सुमात्रा के शैलेंद्र नरेश बलपुत्रदेव का भी नालंदा के संरक्षकों में नाम मिलता है। युवानच्वांग नालंदा में प्रथम बार 637 ई० में पहुँचे थे और उन्होंने कई वर्ष यहां अध्ययन किया था। उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर नालंदा के विद्वानों ने उन्हें मोक्षदेव की उपाधि दी थी। उनके यहां से चले जाने के बाद, नालंदा के भिक्षु प्रज्ञादेव ने युवानच्वांग को नालंदा के विद्यार्थियों की ओर से भेंट के रूप में एक जोड़ी वस्त्र भिजवाए थे। युवानच्वांग के पश्चात् भी अगले 30 वर्षों में नालंदा में प्रायः ग्यारह चीनी और कोरियायी यात्री आए थे। चीन से इत्सिंग और हुइली और कोरिया से हाइनीह, यहां आने वाले विदेशी यात्रियों में मुख्य है। 630 ई० में जब युवानच्वांग यहां आए थे तब यह विश्वविद्यालय अपने चरमोत्कर्ष पर था। इस समय यहां दस सहस्र विद्यार्थी तथा एक सहस्र आचार्य थे। विद्यार्थियों का प्रवेश नालंदा विश्वविद्यालय में काफ़ी कठिनाई से होता था क्योंकि केवल उच्चकोटि के विद्यार्थियों को ही प्रविष्ट किया जाता था। शिक्षा की व्यवस्था महास्थविर के नियंत्रण में थी। शीलभद्र उस समय यहां के प्रधानाचार्य थे। ये प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् थे। यहां के अन्य ख्यातिप्राप्त आचार्यों में नागार्जुन, पद्मसंभव (जिन्होंने तिब्बत में बौद्धधर्म का प्रचार किया), शांतिरक्षित और दीपकर, ये सभी बौद्धधर्म के इतिहास में प्रसिद्ध हैं। नालंदा 7वीं शती में तथा उसके पश्चात् कई सौ वर्षों तक एशिया का सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय था। यहां अध्ययन के लिए चीन के अतिरिक्त चंपा, कंबोज, जावा, सुमात्रा, ब्रह्मदेश, तिब्बत, लंका और ईरान आदि देशों के विद्यार्थी आते थे और विद्यालय में प्रवेश पाकर अपने को धन्य मानते थे। नालंदा के विद्यार्थियों के द्वारा ही सारी एशिया में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तृत प्रचार व प्रसार हुआ था। यहां के विद्यार्थियों और विद्वानों की मांग एशिया के सभी देशों में थी और उनका सर्वत्र आदर

होता था। तिब्बत के राजा के निमंत्रण पर भदंत शांतिरक्षित और पद्मसंभव तिब्बत गए थे और वहां उन्होंने संस्कृत, बौद्ध साहित्य और भारतीय संस्कृति का प्रचार करने में अप्रतिम योग्यता दिखाई थी। नालंदा में बौद्धधर्म के अतिरिक्त हेतुविद्या, शब्द-विद्या, चिकित्सा-शास्त्र, अथर्ववेद तथा सांख्य से संबंधित विषय भी पढ़ाए जाते थे। युवानच्वांग ने लिखा है कि नालंदा के एक सहस्र विद्वान् आचार्यों में से सौ ऐसे थे जो सूत्र और शास्त्र जानते थे, पांच सौ, 30 विषयों में पारंगत थे और बीस, 50 विषयों में। केवल शीलभद्र ही ऐसे थे जिनकी सभी विषयों में समान गति थी। नालंदा विश्वविद्यालय के तीन महान् पुस्तकालय थे—रत्नोदधि, रत्नसागर और रत्नरंजक। इनके भवनों की ऊंचाई का वर्णन करते हुए युवानच्वांग ने लिखा है कि इनकी सतमंजिली अटारियों के शिखर बादलों से भी अधिक ऊंचे थे और इन पर प्रातःकाल की हिम जम जाया करती थी। इनके झरोखों में से सूर्य का सतरंगा प्रकाश अन्दर आकर वातावरण को सुंदर एवं दिव्य बनाता था। इन पुस्तकालयों में सहस्रों हस्तलिखित ग्रंथ थे। इनमें से अनेकों की प्रतिलिपियां युवानच्वांग ने की थी। जैन ग्रंथ सूत्रकृतांग में नालंदा के हस्तियान नामक सुंदर उद्यान का वर्णन है।

1303 ई० में मुसलमानों के बिहार और बंगाल पर आक्रमण के समय, नालंदा को भी उसके प्रकोप का शिकार बनना पड़ा। यहां के सभी भिक्षुओं को आक्रांताओं ने मौत के घाट उतार दिया। मुसलमानों ने नालंदा के जगत-प्रसिद्ध पुस्तकालय को जला कर भस्मसात् कर दिया और यहां की सतमंजिली, भव्य इमारतों और सुंदर भवनों को नष्ट-भ्रष्ट करके खंडहर बना दिया। इस प्रकार भारतीय विद्या, संस्कृति, और सभ्यता के घर नालंदा को जिसकी सुरक्षा के बारे में संसार की कठोर वास्तविकताओं से दूर रहने वाले यहां के भिक्षु विद्वानों ने शायद कभी नहीं सोचा था, एक ही आक्रमण के झटके ने धूल में मिला दिया।

नालंदा के खंडहरों में विहारों, स्तूपों, मंदिरों तथा मूर्तियों के अगणित अवशेष पाए गए हैं जो स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। अनेकों अभिलेख जिनमें ईंटों पर अंकित निदानसूत्र तथा प्रातित्यसमुत्पदसूत्र जैसे बौद्ध ग्रंथ भी हैं, तथा मिट्टी की मुहरें भी, नालंदा में मिले हैं। यहां के महाविहार तथा भिक्षु-संघ की मुद्राएं भी मिली हैं।

नालंदा में मूर्तिकला की एक विशिष्ट शैली प्रचलित थी जिस पर सारनाथ-कला का काफी प्रभाव था। बुद्ध की एक सुंदर धातु-प्रतिमा जो यहां से प्राप्त हुई है सारनाथ की मूर्तियों से आड़ी भौहों, केश विन्यास तथा उष्णीष के अंकन

नालंदा
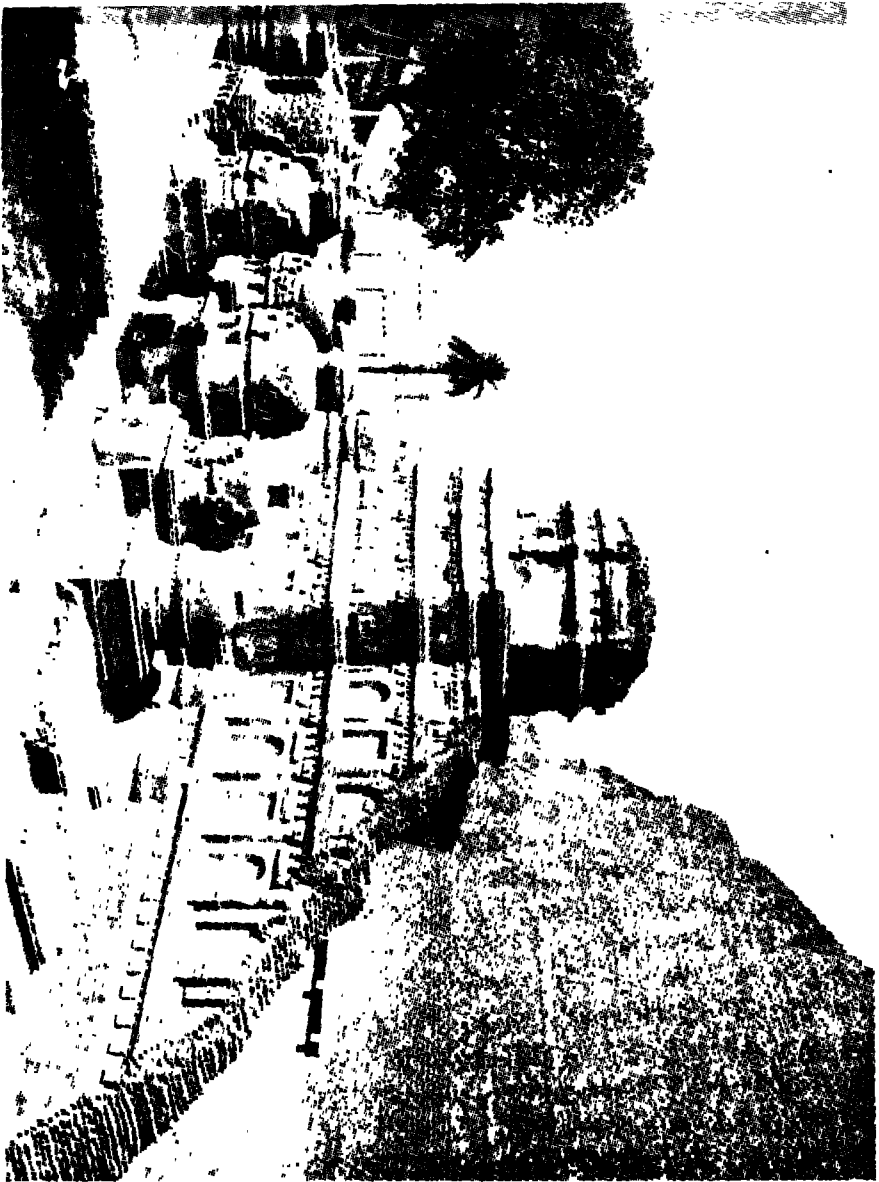
(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

में बहुत कुछ मिलती-जुलती है किंतु दोनों में थोड़ा भेद भी है। नालंदा की मूर्ति में उत्तरीय तथा अधोवस्त्र दोनों विशिष्ट प्रकार से पहने हुए हैं और उनमें वस्त्रों के मोड़ दिखाने के लिए रूढ़िगत धारियां अंकित की गई हैं (दि० हिस्ट्री ऑव फाइन आर्ट इन इंडिया एंड इंडोनीसिया, चित्र 42) नालंदा का नालंद ग्राम के रूप में उल्लेख परवर्ती गुप्त-नरेश आदित्यसेन के शाहपुर अभिलेख में है।

नालदुर्ग (ज़िला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

नालदुर्ग अपने प्राचीन सुदृढ़ किले के लिए विख्यात है। यह बोरी नदी के एक नाले के निकट मनोहारी प्राकृतिक दृश्यों के बीच स्थित है। मीडोज टेलर नामक एक अंग्रेज़ लेखक ने (19 शती में) इसका वर्णन अपनी पुस्तक—'ए स्टोरी ऑव माई लाइफ' में किया है। 14वीं शती से पहले यह एक स्थानीय राजा के अधिकार में था जो शायद चालुक्यों का सामंत था। कालक्रम में बहमनी और फिर बीजापुर के सुल्तानों का यहां अधिकार हुआ। 1558 ई० में अली आदिलशाह द्वितीय ने नालदुर्ग को किलाबंदियों से सुदृढ़ करने के अतिरिक्त, यहां स्थित सेना के लिए जल की व्यवस्था करने के लिए बोरी नदी पर एक बांध भी बनवाया। बांध तथा पानी-महल की रचना एक ईरानी वास्तुविशारद मीर इमादीन ने की थी। इस तथ्य का उल्लेख 1613 ई० के एक अभिलेख में है। तत्पश्चात् मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब का दक्षिण भारत की रियासतों पर कब्जा होने पर नालदुर्ग भी मुग़ल-सल्तनत में मिला लिया गया।

नासिक (महाराष्ट्र)

पश्चिम रेलवे के नासिक रोड स्टेशन से 5 मील दूर गोदावरी नदी के तट पर यह प्राचीन नगर बसा है। कहा जाता है कि रामायण में वर्णित पंचवटी जहां श्री राम, लक्ष्मण और सीता वनवास काल में बहुत दिनों तक रहे थे, नासिक के निकट ही है। (दे० **पंचवटी**)। किंवदंती है कि इसी स्थान पर रावण की भगिनी शूर्पनखा को लक्ष्मण ने नासिका-विहीन किया था जिसके कारण इस स्थान को नासिक कहा जाता है। नासिक के पास सीता गुफा नामक एक नीची गुफा है जिसके अंदर दो गुफाएं है। पहली में नौ सीढ़ियों के पश्चात् राम, लक्ष्मण और सीता की मूर्तियां दिखाई पड़ती हैं और दूसरी पंचरत्नेश्वर महादेव का मंदिर है। नासिक से दो मील गोदावरी के तट पर गौतम ऋषि का आश्रम है। गोदावरी का उद्गम त्र्यम्बकेश्वर की पहाड़ी में है जो नासिक से प्रायः बीस मील दूर है। नासिक में 200 ई० पू० से द्वितीय शती ई० तक की पांडुलेण नामक बौद्ध गुफाओं का एक समूह है। इसके अतिरिक्त जैनों के आठवें तीर्थंकर चंद्र-

प्रभस्वामी और कुंतीविहार नामक जैन चैत्य के 14वीं शती में यहां होने का उल्लेख जैन लेखक जिनप्रभु सूरि के ग्रंथों में मिलता है। 1680 ई० में लिखित तारीखे-औरंगज़ेब के अनुसार, नासिक के 25 मंदिर औरंगज़ेब की धर्मांधता के शिकार हुए थे। इन विनष्ट मंदिरों में नारायण, उमामहेश्वर, राम जी, कपालेश्वर और महालक्ष्मी के मंदिर उल्लेखनीय थे। इन मंदिरों की सामग्री से यहां की जामा मसजिद की रचना की गई। मसजिद के स्थान पर पहले महालक्ष्मी का मंदिर स्थित था। नीलकंठेश्वर महादेव के उस प्राचीन मंदिर की चौखट जो असरा फाटक के पास था, अब भी इसी मसजिद में लगी दिखाई देती है। नासिक के प्रायः सभी मंदिर मुसलिम शासनकाल के अंतिम दिनों के बने हुए हैं और स्वयं पेशवाओं तथा उनके संबंधियों अथवा राज्याधिकारियों द्वारा बनवाए गए थे। इनमें सबसे अधिक अलंकृत और श्री संपन्न मालेगाँव का मंदिर राजा नारूशंकर द्वारा 1747 ई० में, 18 लाख की लागत से बना था। यह मंदिर 83 फुट चौड़ा और 123 फुट लंबा है। शिल्प की दृष्टि से नासिक के सभी मंदिरों में यह सर्वोत्कृष्ट है। इसका विशाल घंटा 1721 ई० में पुर्तगाल से बनकर आया था। कालाराम नामक दूसरा मंदिर 1798 ई० का है जो बारह वर्षों में 22 लाख रुपए की लागत से बना था। यह 285 फुट लंबे और 105 फुट चौड़े चबूतरे पर अवस्थित है। कहा जाता है यह मंदिर उस स्थान पर है जहां श्रीराम ने वनवासकाल में अपनी पर्णकुटी बनाई थी। किंवदंती है कि यादव शास्त्री नामक पंडित ने इस मंदिर का पूर्वी भाग इस प्रकार बनवाया था कि मेष और तुला की संक्रांति के दिन, सूर्योदय के समय, सूर्यरश्मियां सीधी भगवान् राम की मूर्ति के मुख पर पड़ती थीं। श्री राम की मूर्ति काले पत्थर की है। सुंदर नारायण का मंदिर 1756 ई० में और भद्रकाली का मंदिर 1790 ई० में बने थे। नासिक में त्र्यंबकेश्वर महादेव का ज्योतिर्लिंग भी स्थित है। इसी कारण नासिक का माहात्म्य और भी बढ़ गया है। पौराणिक किंवदंती के अनुसार नासिक का नाम कृतयुग में पद्मनगर, त्रेता में त्रिकंटक, द्वापर में जनस्थान और कलियुग में नासिक है—'कृते तु पद्मनगरं त्रेतायां तु त्रिकंटकम्, द्वापरे च जनस्थानं कलौ नासिकमुच्चते'। नासिक को शिवपूजा का केंद्र होने के कारण दक्षिण काशी भी कहा जाता है। यहां आज भी साठ के लगभग मंदिर हैं। 'कलौ गोदावरी गंगा' के अनुसार कलियुग में गोदावरी गंगा के समान ही पवित्र मानी गई है। मराठा साम्राज्य में महत्व की दृष्टि से पूना के बाद नासिक का ही स्थान माना जाता था। एक किंवदंती के अनुसार नासिक का यह नाम पहाड़ियों के नवशिखों या

शिखरों पर इस नगरी की स्थिति होने के कारण हुआ था। ये नौ शिखर हैं— जूनीगढ़ी, नवी गढ़ी, कोंकनीटेक, जोगीवाड़ा टेक, म्हास टेक, महालक्ष्मी टेक, सुनार टेक, गणपति टेक और चित्रघंट टेक। मराठी की प्रचलित कहावत कि 'नासिक नव टेका वर वसाविले' अर्थात् नासिक नौ टेकरियों पर बसा है नासिक के नाम के बारे में इस किंवदंती की पुष्टि करती है।

नासिक के निकट एक गुफा में क्षहरात नरेश नहपान के जामाता उशवदात का एक महत्वपूर्ण उत्कीर्णलेख प्राप्त हुआ है जिससे पश्चिमी भारत के द्वितीय शती ई० के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। यह अभिलेख शक संवत् 42-120 ई० का है और इसमें बौद्ध भिक्षु संघ को एक गुहा विहार तथा उससे संबंधित नारियल के कुंज के दान में दिए जाने का उल्लेख है। नासिक का एक प्राचीन नाम गोवर्धन है जिसका उल्लेख महावस्तु (सेनार्ट' पृ० 363) में है। जैन तीर्थों में भी नासिक की गणना है। जैन स्तोत्र तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस स्थान को कुंतीविहार कहा गया है—'कुंती पल्लविहार तारणगढे सोपारकारासणे–दे० ऐंशेंट जैन हिम्स, पृ० 28।

निंबग्राम (जिला मथुरा, उ० प्र०)

गोवर्धन से पश्चिम की ओर $1\frac{1}{2}$ मील पर बरसाने की सड़क पर स्थित है। कहा जाता है कि मध्यकालीन वैष्णव संत निंबार्काचार्य जो आंध्रनिवासी थे, इसी ग्राम में रहने के कारण निंबार्काचार्य कहलाए। यहां के एक प्राचीन मंदिर में आचार्य की मूर्ति है। (किंतु दे० निंबा, निंबापुर) संभव है कि इस ग्राम का नाम पहले कुछ और रहा हो; आचार्य के रहने के कारण ही यह निंबाग्राम कहलाया।

निंबतटक

जैन ग्रंथ तीर्थमाला चैत्यवंदन में इसका उल्लेख है—'श्री तेजल्ल-विहार निंबतटके चंद्रे च दर्भावते'

निंबा=निंबापुर (जिला बिलारी, मद्रास)

प्रसिद्ध दाक्षिणात्य दार्शनिक निंबार्काचार्य का जन्म स्थान। डा० भंडारकर के अनुसार निंबा ग्राम ही प्राचीन निंबापुर है। निंबार्काचार्य की गणना भक्तिकाल के प्रसिद्ध संतों में की जाती है। इन के अनुयायी मथुरा के निकट रहते हैं (दे० **निंबग्राम**)

निकलंक (जिला उज्जैन, म० प्र०)

उज्जैन से 10 मील दूर इस ग्राम में निष्कलंक महादेव का मंदिर है जिसमें शंकर की पंचमुखी मूर्ति स्थित है।

निकाइयां

अलक्षेन्द्र (सिकंदर) के इतिहास लेखकों के अनुसार पोरस (पुरु) और यवन सम्राट् के बीच होने वाले प्रसिद्ध युद्ध की घटना-स्थली का नाम है। इसकी स्थिति झेलम नदी के किनारे करीं नामक स्थान पर रही होगी (दे० **करीं**)।

निकूट दे० **निष्कुट**

निकोबार दे० नागद्वीप (1)

निगलीव (नेपाल)

यह स्थान रुमिनीदेई या प्राचीन लुंबिनी से 13 मील उत्तर-पश्चिम की ओर ज़िला बस्ती, उ० प्र० और नेपाल की सीमा के निकट स्थित है। यहां अशोक का एक शिलास्तंभ प्राप्त हुआ था जिस पर उसने इस स्थान पर अवस्थित कोनगामन (या कनकमुनि बुद्ध जिसका उल्लेख चीनी यात्री फाह्यान ने किया है) नामक स्तूप को परिवर्धित करने तथा राज्यसंवत् 20 में इस स्थान की यात्रा का वर्णन किया है। लुंबिनी ग्राम की यात्रा भी अशोक ने इसी वर्ष में की थी जैसा कि वहां स्थित स्तंभ के लेख से प्रकट होता है।

निचुलपुर दे० **त्रिचनापल्ली**

निजामाबाद दे० **इंदूर**

निधिवन=**निधुवन** (वृन्दावन, ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

वृंदावन का एक प्रसिद्ध स्थान जो श्रीकृष्ण की महारासस्थली माना जाता है। स्वामी हरिदास इसी वन में कुटी बनाकर रहते थे। हरिदास का जन्म 1512 ई० के लगभग हुआ था। इनका समाधि-मंदिर इसी घने कुंज के अन्दर बना है। कहा जाता है कि वृन्दावन के बिहारी जी के प्रसिद्ध मंदिर की मूर्ति हरिदास को निधिवन से ही प्राप्त हुई थी। किंवदंती है कि हरिदास तानसेन के संगीत-गुरु थे और मुग़ल सम्राट् अकबर ने तानसेन के साथ छद्मवेश में इस संत के दर्शन निधिवन में ही किए थे।

निमाड़ दे० **अनुप**

निमुवां गढ़ (ज़िला नरसिंहपुर, म० प्र०)

गढ़मंडल नरेश संग्राम सिंह (मृत्यु 1541 ई०) के बावनगढ़ों में निमुवां गढ़ की भी गणना थी। संग्रामसिंह महारानी दुर्गावती के श्वसुर थे।

निर्मल

(1) (महाराष्ट्र) बेसीन के निकट एक गांव है। 1956 ई० में नव वर्ष के प्रथम दिन इस स्थान पर अशोक के नवें प्रस्तर लेख की एक नकल पाई गई थी।

(2) (ज़िला आदिलाबाद, आंध्र) यह मूलतः वेल्मा लोगों के अधिकार में था। 18वीं शती के पश्चार्ध में द्वितीय निजाम के सेनापति मिर्ज़ा इब्राहीम बेग ज़फ़रुलद्दौला (उपनाम धौंसा) ने इस पर अधिकार कर लिया। यहां का दुर्ग इसी अमीर ने बनवाया था। इसका निर्माता निज़ाम हैदराबाद की सेवा में नियुक्त एक फ्रांसिसी इंजीनियर था। अमीर की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों ने बगावत कर दी और निज़ाम ने दुर्ग पर अधिकार करके निर्मल को हैदराबाद रियासत में मिला लिया। 17वीं शती की जामा मसजिद और इब्राहीम बाग़ यहां के ऐतिहासिक स्थान हैं।

निर्मला (ज़िला पीलीभीत, उ० प्र०)

देवल नामक स्थान पर प्राप्त कुटिलाभाषा के एक अभिलेख में निर्मला नदी का उल्लेख है। (दे० देवल)। इस नदी का अभिज्ञान देवल के निकट बहने वाले कटनी नाले से किया गया है।

निर्मांड (ज़िला कांगड़ा, उ० प्र०)

इस स्थान से महासामंत महाराज समुद्रसेन का ताम्र-पट्ट प्राप्त हुआ था जो संभवतः हर्ष सवत् 6 का है। इसमें समुद्रसेन द्वारा निर्मांड अग्रहार के अथर्ववेदपाठी ब्राह्मणों को सूलिस ग्राम के दिए जाने का उल्लेख है।

निर्मोचन

महाभारत में निर्मोचन नामक नगर का कामरूप देश की राजधानी के रूप में वर्णन है। यहां के राजा भौम नरक को परास्त कर श्रीकृष्ण ने सोलह सहस्र कुमारियों को उसके बंदीगृह से छुटकारा दिलवाया था। मुरदैत्य का वध भी श्रीकृष्ण ने इसी स्थान पर किया था—'निर्मोचने षट्सहस्राणि हत्वा संच्छिद्य पाशान् सहसा क्षुरांतान् पुरंहत्वा विनिहत्यौघरक्षो निर्मोचनं चापि जगाम वीरः' उद्योग 48,83। निर्मोचन नगर शायद प्राग्ज्योतिष (=गोहाटी, असम) का नाम था क्योंकि इसी प्रसंग (उद्योग 48,807 में प्राग्ज्योतिष के दुर्ग का भी वर्णन है—'प्राग्ज्योतिषं नाम वभूव दुर्गम्'। दे० प्राग्ज्योतिष, कामरूप।

निर्विन्ध्या

मेघदूत (पूर्व मेघ, 30) में वर्णित एक नदी जिसका कालिदास ने बहुत सुंदर वर्णन किया है—वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकांचीगुणायाः, संसर्पन्त्याः स्खलितमुभगं दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्घ्यायाः पथिभवरसाभ्यंतरः सन्निपत्य स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु'। यह नदी मेघ के यात्राक्रम में विदिशा और उज्जयिनी के मार्ग में वर्णित है तथा इसकी स्थिति कालिदास के अनुसार सिंधु नदी और उज्जयिनी के ठीक पूर्व में बताई गई है। संभव है कालिदास ने

वर्तमान पार्वती नदी को ही निर्विन्ध्या कहा हो। पार्वती उज्जैन से पूर्व, विंध्य-श्रेणी से निस्सृत होकर चंबल में मिलती है। विदिशा और सिंधु (=कालीसिंध) के बीच कोई और उल्लेखनीय नदी नहीं जान पड़ती। श्रीमद्भागवत 5,19,18 की नदी सूची में भी निर्विन्ध्या का नामोल्लेख है—'कृष्णावेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विंध्या पयोष्णी तापी रेवा······' विष्णु पुराण में निर्विंध्या को तापी (=ताप्ती) और पयोष्णी के साथ ही ऋक्ष (अमरकंटक) से निर्गत बताया है—'तापीपयोष्णी निर्विन्ध्या प्रमुखा ऋक्षसंभवाः' विष्णु 2,3,31। कुछ विद्वानों ने निर्विन्ध्या का अभिज्ञान चंबल की सहायक एक छोटी सी नदी नेवाज से किया है (दे० बी० सी० ला–हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफी ऑव ऐंशेंट इंडिया, पृ० 35) वायुपुराण 65,102 में इस नदी को निर्विन्ध्या कहा गया है।

निवाई (राजस्थान)

प्राचीन राजपूत-नरेशों की समाधि-छतरियां इस स्थान पर हैं जो शिल्प के सुंदर उदाहरण हैं।

निवृत्ति

(1) विष्णु पुराण 2,4,28 के अनुसार शाल्मलद्वीप की नदी—'योनिस्तोया वितृष्णा च चंद्रामुक्ता विमोचनी, निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशांतिदाः।

(2) पुंड्र का पूर्वी भाग। गौड़ का भी एक नाम निवृत्ति था। (दे० नं० ला० डे)

निश्चीरा

फल्गु (बिहार) की सहायक नदी लीलाजन जो महाना से मिलकर फल्गु की संयुक्त धारा बनाती है। अग्निपुराण 116; मार्कंडेय पुराण 57 में निश्चीरा का उल्लेख है। यह बौद्धसाहित्य की नीरांजना है।

निषद

विष्णुपुराण 2,2,27 के अनुसार मेरु के दक्षिण में स्थित एक पर्वत—'त्रिकूटः शिशिरश्चेव पतंगो रुचकस्तथा निषदाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वताः' दे० निषध (2)। जैन ग्रंथ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में निषध (=निषद) की जंबूद्वीप के छः वर्ष-पर्वतों में गणना की गई है।

निषध

(1) महाभारत में निषध देश का, राजा नल द्वारा प्रशासित प्रदेश के रूप में वर्णन है। नल के पिता वीरसेन को भी निषध का राजा बताया गया है—'निषधेषु महीपालो वीरसेन इति श्रुतः तस्य पुत्रोऽभवन्नाम्ना नलो धर्मार्थ-

कोविदः,' ब्रह्मण्योवेदविच्छूरो निषधेषु महीपतिः'—वन० 52,55; 53,3। ग्वालियर के निकट नलपुर नामक स्थान को परंपरा से राजा नल की राजधानी माना जाता है और निषधदेश को ग्वालियर के पार्श्ववर्ती प्रदेश में ही मानना उचित होगा। विष्णुपुराण 4,24,66 में शायद निषध देश को नैषध कहा गया है—'नैषध नैमिषक मणिधान्यकवंशा भोक्ष्यन्ति'—इससे सूचित होता है कि संभवतः पूर्व गुप्तकाल में नैषध या निषध पर मणिधान्यकों का आधिपत्य था। निषधदेश का निषादों से संबंध हो सकता है जो संभवतः किसी अनार्यजाति के लोग थे (दे० निषाद)

(2) महाभारत के वर्णनानुसार हेमकूट पर्वत के उत्तर की ओर सहस्रों योजनों तक निषधपर्वत की श्रेणी पूर्व-पश्चिम समुद्र तक फैली हुई है—'हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्च नगोत्तमः' भीष्म० 6,4। श्री चि० वि० वैद्य का अनुमान है कि यह पर्वत वर्तमान अलताई पर्वत-श्रेणी का ही प्राचीन भारतीय नाम है। हेमकूट और निषध पर्वत के बीच के भाग का नाम हरिवर्ष कहा गया है। महाभारत के वर्णन में निषध पर नागजाति का निवास माना गया है—'सर्पा-नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम्' भीष्म० 6,51 विष्णु पुराण 22,10 में भी शायद इसी पर्वत का उल्लेख है—'हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे'—इसी को विष्णु 22,27 में निषद भी कहा गया है।

निषाद दे० निषादभूमि

निषादभूमि=निषाद राष्ट्र

'निषादभूमिं गोश्रृंगं पर्वतप्रवरं तथा तरसैवाजायद् श्रीमान् श्रेणिमंतं च पार्थिवम्' महा० वन० 31, 5 अर्थात् सहदेव ने गोश्रृंग को जीत कर राणा श्रेणिमान् को शीघ्र ही हरा दिया। प्रसंगानुसार निषादभूमि का मत्स्य देश के पश्चात् उल्लेख हुआ है जिससे निषादभूमि या निषाद प्रदेश उत्तरी राजस्थान के परिवर्ती प्रदेश को माना जा सकता है। निषाद (जो निषाद भूमि का पर्याय हो सकता है) का महा० 3,130,4 में भी उल्लेख है—'द्वारं निषाद-राष्ट्रस्य येषां दोषात् सरस्वती, प्रविष्टा पृथिवीं वीर मा निषादा हि मां विदुः' (यह निषादराष्ट्र का द्वार है। वीर युधिष्ठिर, उन निषादों के संसर्ग-दोष से बचने के लिए सरस्वती नदी यहां पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट हो गई है जिससे निषाद उसे न देख सकें)। इस उल्लेख से भी निषाद-राष्ट्र की स्थिति राजस्थान के उत्तरी भाग में सिद्ध होती है। यहीं महाभारत में उल्लिखित विनशन तीर्थ स्थित था। शक क्षत्रप रुद्रदामन् के गिरनार-अभिलेख (लगभग 120 ई०) में उसके राज्य-विस्तार के अंतर्गत इस प्रदेश की गणना की गई है—'स्ववीर्या जितानामानुरक्तप्रकृतीनां सुराष्ट्र श्वभ्रभरुकच्छसिंधु सौवीर कुकुरापरांत-निषादादीनाम्... '। प्रो० बुलर के मत में निषाद-राष्ट्र की स्थिति दक्षिणी

पंजाब के हिसार तथा भटनेर के इलाके में थी। निषाद नामक विदेशी या अनार्य जाति के यहां बसने के कारण इस भूभाग को निषाद-भूमि या निषाद-राष्ट्र कहा जाता था।

निष्कुट

महाभारत में अर्जुन की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में इस देश के जीते जाने का उल्लेख है—'स विनिर्जित्य संग्रामे हिमवंतं सनिष्कुटम्, श्वेतपर्वतमासाद्य न्यविशत् पुरुषर्षभः' महा० सभा० 2,27,29। निष्कुट या निकूट हिमालय के उत्तर-पश्चिमी भाग की पहाड़ियों का नाम जान पड़ता है जो धौलागिरि के सन्निकट प्रदेश में स्थित हैं।

नीचगिरि

मेघदूत (पूर्वमेघ 27) में वर्णित एक पहाड़ी—'नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतोस्त्वत् संपर्कात् पुलकितमिवप्रौढ़ पुष्पैः कदंबैः, यः पण्यस्त्री रतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणामुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि' कालिदास ने नीचगिरि का उल्लेख विदिशा (दे० बेसनगर; भीलसा) के पश्चात् किया है और सर जॉन मार्शल का अनुमान है कि शायद कालिदास ने वर्तमान सांची के स्तूप की पहाड़ी को ही नीचगिरि माना है (दे० ए गाइड टू सांची)। विदिशा के उत्कर्षकाल में सांची की पहाड़ी पर अवश्य ही इस विलासवती नगरी का क्रीडोद्यान रहा होगा। सांची विदिशा से चार-पांच मील दूर है। महावंश (आनंद कौसल्यायन की टीका, पृ० 68) में जिस पहाड़ी को दक्षिणगिरि कहा है वह नीचगिरि ही जान पड़ती है। 'नीच' और दक्षिण शब्द समानार्थक भी है। (दे० दक्षिण गिरि)

नीमसार=नैमिषारण्य

नीरा (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

पूना से लगभग 40 मील दूर बहने वाली नदी। भोर नामक स्थान पर जो इसके तट पर है, कई प्राचीन मन्दिर स्थित है। नीरा, भीमा की सहायक नदी है और यह पद्मपुराण, स्वर्ग, आदि० 3 में उल्लिखित है।

नीलंग (महाराष्ट्र)

चालुक्यवंशीय नरेशों के समय में विशिष्ट चालुक्य-वास्तुशैली में बने हुए मंदिरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

नील

(1) महाभारत के भूगोल के अनुसार (दे० सभा० 28) निषध पर्वत के उत्तर में मेरु पर्वत है। मेरु के उत्तर की ओर तीन श्रेणियां हैं—नील, श्वेत

और श्रृंगवान् जो पूर्व-पश्चिम समुद्र तक विस्तृत कही गई हैं। नील, श्वेत और श्रृंगवान् (या श्रृंगी) पर्वतों के उत्तर की ओर के प्रदेश को क्रमश: नीलवर्ष, श्वेतवर्ष और हैरण्यक या ऐरावत के नाम दिए गए हैं। सभा० 28 में नील को अर्जुन द्वारा विजित बताया गया है—'नीलं नाम गिरिं गत्वा तत्रस्थानजयत् प्रभु:' 'ततो जिष्णुरतिक्रम्य पर्वतं नीलमायतम्'। नीलपर्वत को पार करने के पश्चात् अर्जुन रम्यक, हिरण्यक और उत्तरकुरु पहुंचे थे। जैनग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में नील की जंबूद्वीप के छ: वर्षपर्वतों में गणना की गई है। विष्णुपुराण 2,2, 10 में भी नील का उल्लेख है—'नील: श्वेतश्च श्रृंगी च उत्तरवर्षपर्वता:।' श्रीमद्भागवत की पर्वतों की सूची में भी नील का नाम है—'रैवतक: ककुभो नीलो गोकामुख इंद्रकील:'।

(2) महाभारत अनुशासन० 25,13 में तीर्थों के प्रसंग में नील की पहाड़ी का तीर्थरूप में वर्णन है। यह हरद्वार के पास एक गिरिशिखर है जो शिव के नील नामक गण का तपस्या-स्थल माना जाता है। गंगा की 'नीलधारा' इसी पर्वत के निकट से बहती है—'गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत'–महा० अनुशासन० 25,13।

नीलगिरि (उड़ीसा)

(1) जैन संप्रदाय से संबंधित ये गुफाएं भुवनेश्वर से चार-पांच मील पर स्थित हैं। इनका निर्माणकाल तीसरी शती ई० पू० माना गया है। गुफाओं के पास घना वन्य प्रदेश है। नीलगिरि, खंडगिरि और उदयगिरि नामक गुहा-समूह में 66 गुफाएं हैं जो दो पहाड़ियों पर स्थित हैं।

(2) दे० **नलगोंडा**

(3) सुदूर दक्षिण की प्रसिद्ध पर्वत श्रेणी। प्राचीन काल में यह श्रेणी मलयपर्वत में सम्मिलित थी। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि महाभारत, वन० 254,15 ('स केरलं रणे चैव नीलं चापि महीपतिम्') में कर्ण की दिग्विजय के प्रसंग में केरल तथा तत्पश्चात् नील-नरेश के विजित होने का जो उल्लेख है उससे इस राजा का नील-पर्वत के प्रदेश में होना सूचित होता है।

(4) गोहाटी (असम) के निकट कामाख्या देवी के मंदिर की पहाड़ी जिसे नीलगिरि या नीलपर्वत कहते हैं।

(5)=नील (1) तथा (2)

नीलपर्वत

(1)=नील (1) तथा (2)

(2)=नीलगिरि (4)

नीलपल्ली (ज़िला गोदावरी, आं० प्र०)

यनम के निकट समुद्रतट पर स्थित प्राचीन स्थान है (दे० गज़ेटियर ऑव गोदावरी डिस्ट्रिक्ट, जिल्द 1, पृ० 213)

नीलांजना

यह नदी गया के निकट बहने वाली नदी फल्गु की सहायक है और फल्गु में, गया से तीन मील दूर मिलती है। नीलांजना बौद्ध साहित्य की प्रसिद्ध नैरंजना है। (दे० नैरंजना)

नीलाचल=नीलगिरि (1) तथा (3)

नीली

प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़ाह्यान (चौथी शती ई०) के यात्रावृत्त के अनुसार नीली नामक नगर का निर्माण मौर्य सम्राट् अशोक ने करवाया था। विंसेंट स्मिथ के अनुसार यह नगर वर्तमान पटना (बिहार) के उपनगर कुम्हरार के निकट ही बसा होगा (दे० अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 128)

नूनखार (उ० प्र०)

उत्तरपूर्व रेलवे के नूनखार स्टेशन से तीन मील दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग तीस ढूह हैं जो हिंदू-नरेशों के समय के जान पड़ते हैं। खंडहरों में एक जैन मंदिर भी है।

नूपुरगंगा (दे० वृषभाद्रि)

नूरपुर (ज़िला कांगड़ा, हि० प्र०)

राजपूतकालीन एक सुदृढ़ दुर्ग यहां का उल्लेखनीय स्मारक है। चित्रकला की प्रसिद्ध कांगड़ा शैली (जो 18वीं शती में अपने विकास पर थी) का नूरपुर तथा गुलेर में जन्म हुआ था। बसौली के राजा कृपालसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके दरबार के चित्रकार जम्मू, रामनगर, नूरपुर तथा गुलेर में जाकर बस गए थे। यहां आकर उन्होंने बसौली की परंपरा को जीवित रखा और उसके कर्कश स्वरूप को बदल कर उसमें कोमलता की पुट दी जिससे कांगड़ा की शैली का सूत्रपात हुआ।

नेगापटम्=नागपट्टन

नेत्रावती=नेत्रावली

मैसूर और केरल की एक नदी। यह श्रृंगेरी से 9 मील दूर वराह-पर्वत या श्रृंगगिरि नामक पहाड़ से निकलकर मंगलौर की ओर बहती हुई पश्चिम-समुद्र में गिरती है। दक्षिण का विख्यात तीर्थ धर्मस्थल नेत्रावती या नेत्रावली के तट पर, मंगलौर से 45 मील दूर है।

नेपाल

महाभारत वन० 254,7 में नेपाल का उल्लेख कर्ण की दिग्विजय के संबंध में है। 'नेपाल विषये ये च राजानस्तानवाजयत्, अवतीर्य तथा शैलात् पूर्वां दिशमभिद्रुत:' अर्थात् नेपाल देश में जो राजा थे उन्हें जीत कर वह हिमालय-पर्वत से नीचे उतर आया और फिर पूर्व की ओर अग्रसर हुआ। इसके बाद कर्ण की अंग-वंग आदि पर विजय का वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से नेपाल को भारत का ही एक अंग समझा जाता था। नेपाल नाम भी महाभारत के समय में प्रचलित था। नेपाल में बहुत समय तक अनार्य जातियों का राज्य रहा। मध्ययुग में राजनैतिक सत्ता मेवाड़ (राजस्थान) के राज्यवंश की एक शाखा के हाथ में आ गई। राजपूतों की यह शाखा मेवाड़ से, मुसलमानों के आक्रमणों से बचने के लिए नेपाल में आकर बस गई थी। इसी क्षत्रियवंश का राज्य आज तक नेपाल में चला आ रहा है। नेपाल के अनेक स्थान प्राचीन काल से अब तक हिंदू तथा बौद्धों के पुण्यतीर्थ रहे हैं। लुंबिनी, पशुपतिनाथ आदि स्थान भारतवासियों के लिए भी उतने ही पवित्र हैं जितने नेपालियों के लिए। (दे० कठमंडू, ललितपाटन, देवपाटन, लुंबिनी, पशुपतिनाथ आदि)

नेमावार (ज़िला इंदौर, म० प्र०)

11वीं शती में अरब पर्यटक अलबेरूनी ने इस स्थान को भारत के उत्तर-दक्षिण के व्यापार-मार्ग पर स्थित बताया है। इस ग्राम में सिद्धेश्वर महादेव का प्रसिद्ध मंदिर है जो नर्मदा के उत्तरी तट पर रमणीक दृश्यों के बीच स्थित है। मंदिर का सुंदर शिखर भीलसा ज़िले में स्थित उदयपुर के नीलकंठेश्वर मदिर की ही भांति है। यह मंदिर मध्यकालीन वास्तुकला का श्रेष्ठ उदाहरण है।

नैरोना (कच्छ, गुजरात)

भूज से 20 मील उत्तरपश्चिम में स्थित है। प्राचीन काल में यह नगर एक बंदरगाह था जिसके चिह्न अब भी मिलते हैं (दे० ट्रैवल्स इंटू बोखारा 1835, जिल्द 1, अध्याय 17) अरबों के भारत पर आक्रमण के समय तथा उससे पहले यह बंदरगाह अच्छी दशा में रहा होगा।

नेवाज दे० निर्विध्या (नदी)

नेवास (ज़िला अहमदनगर, महाराष्ट्र)

प्रवरा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित एक छोटा सा क़स्बा है। यह प्राचीन श्रीनिवास क्षेत्र है। नेवासा श्रीनिवास का ही अपभ्रंश है। 1954-55 में पूना

विश्वविद्यालय की ओर से किए गए उत्खनन में यहां तीन सहस्र वर्ष प्राचीन सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। रोम और भारत के व्यापारिक संबंधों के बारे में, उत्खनन द्वारा प्राप्त सामग्री से काफी जानकारी हुई है। संत ज्ञानेश्वर ने गीता पर अपनी प्रसिद्ध टीका ज्ञानेश्वरी का श्रीगणेश नेवासा में ही किया था। उन्होंने जिन शिलाओं पर ज्ञानेश्वरी को अंकित करवाया था वे आज भी वहां हैं।

नैकोरा (म० प्र०)

दतिया से 12 मील पश्चिम की ओर महुअर नदी के तट पर यह ग्राम बसा हुआ है। एक ऊंचे टीले से एक जलधारा निस्सृत होकर नीचे गिरती है जिसे पवित्र समझा जाता है। स्थानीय किंवदंती में नैकोरा को संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि भवभूति का जन्म स्थान माना जाता है किंतु जैसा सर्वविदित है भवभूति पद्मपुर के निवासी थे। (दे० पद्मपुर)

नैनागिरि (बुंदेलखंड, म० प्र०)

इस स्थान पर मध्ययुगीन बुंदेलखंड की संस्कृति के परिचायक तथा तत्कालीन वास्तु तथा शिल्प के स्मारक खंडहरों के रूप में हैं जिनके उत्खनन से बहुत महत्वपूर्ण पुरातत्व-संबंधी सामग्री प्राप्त हो सकती है।

नैनीताल (उ० प्र०)

स्कंदपुराण में नैनीताल का नाम त्रिऋषिसरोवर मिलता है जिसका अत्रि, पुलह और पुलस्त्य ऋषियों से संबंध बताया गया है। इस पौराणिक किंवदंती के अनुसार इन ऋषियों ने यहां सरोवर के तट पर तप किया था। नैनीताल का नाम इसी सरोवर या नैनी झील के तट पर स्थित नैनादेवी के प्राचीन मंदिर के कारण हुआ है। 1841 ई० में दो अंग्रेज़ शिकारियों ने इस स्थान की खोज की थी। प्रकृति की यह मनोरम स्थली 'गागर' की पहाड़ियों से घिरी है जो पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई हैं। उत्तर की ओर चीना-शिखर (ऊंचाई समुद्रतट से 8568 फुट), पूर्व की ओर आलमा तथा शेर का दंदा नामक शिखर, पश्चिम में एक ढलवां 8000 फुट ऊंची पहाड़ी और दक्षिण में आयारपथ नामक 7800 फुट ऊंचा गिरिश्रृंग—ये पहाड़ियां नैनीताल की चतुर्दिक्-सीमा की प्रहरी हैं। स्कंदपुराण की उपर्युक्त कथा के अनुसार तीनों देवर्षि घूमते हुए यहां पहुंचे थे किंतु उन्हें इस स्थान पर बसने में, पानी न होने के कारण कठिनाई जान पड़ी। अतः उन्होंने वहां एक बड़ा सरोवर खुदवाया जो फौरन ही जलपूर्ण हो गया। इस कथा से यह सूचित होता है कि संभवतः नैनीताल की झील कृत्रिम रूप से बनाई गई थी। इस कथा से

यह भी ज्ञात होता है कि नैनीताल के स्थान का प्राचीन काल से ही भारतीयों को पता था। सरोवर के किनारे ही नैनादेवी का प्राचीन मंदिर था, जो संभवतः इस क्षेत्र के पहाड़ी जाति के लोगों की अधिष्ठात्री देवी थी। उत्तरी भारत के मूल पर्वतवासियों की तरह नैनीताल के मूलनिवासी भी देवी के पुजारी थे। नैनादेवी कल्याणस्वरूपा देवी मानी जाती है। इसके विपरोत यहां के लोक-विश्वास के अनुसार नैनीताल की दूसरी देवी चंडी अथवा पाषाण-देवी का रूप अमांगलिक समझा जाता है। नैनीताल की झील में प्रायः प्रतिवर्ष होने वाली घटनाओं का कारण इसी देवी का प्रकोप माना जाता है।

नैमिष=नैमिषारण्य

नैमिषक=नैमिषारण्य

विष्णुपुराण 4,24,66 में वर्णित है—'नैषधनैमिषक···मणिधान्यकवंशा भोक्ष्यन्ति'। इस उल्लेख से सूचित होता है कि संभवतः गुप्तकाल से पूर्व नेमिषारण्य में मणिधान्यकों का आधिपत्य था। (दे० नैमिषारण्य)

नैमिषारण्य (जिला सीतापुर, उ० प्र०)=नीमसार

पुराणों तथा महाभारत में वर्णित नैमिषारण्य वह पुण्यस्थान है जहां 88 सहस्र ऋषीश्वरों को वेदव्यास के शिष्य सूत ने महाभारत तथा पुराणों की कथाएं सुनाई थीं—'लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे, सुखासीनानभ्यगच्छद् ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान् विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनंदनः। तमाश्रममनुप्राप्तं नैमिषारण्यवासिनाम्, चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः' महा० आदि० 1,1–2-3। नैमिष नाम की व्युत्पत्ति के विषय में वराहपुराण में यह निर्देश है—'एवंकृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा, उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम्। अरण्येऽस्मिं स्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्य संज्ञितम्'—अर्थात् ऐसा करके उस समय भगवान् ने गौरमुख मुनि से कहा कि मैंने एक निमिष में ही इस दानवसेना का संहार किया है इसलिए (भविष्य में) इस अरण्य को लोग नैमिषारण्य कहेंगे। वाल्मीकि० उत्तर० 19,15 से ज्ञात होता है कि यह पवित्र स्थली गोमती नदी के तट पर स्थित थी जैसा कि आज भी है—'यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्यानैमिषेवने'। 'ततो भ्यगच्छत् काकुत्स्थः सह सैन्येन नैमिषम्' (उत्तर 92,2) में श्रीराम का अश्वमेध-यज्ञ के लिए नैमिषारण्य जाने का उल्लेख है। रघुवंश 19,1 में भी नैमिष का वर्णन है 'शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसिनैमिषं वशी'—जिससे अयोध्या के नरेशों का वृद्धावस्था में नैमिषारण्य जाकर वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की परंपरा का पता चलता है।

नैरंजना (बिहार)

गया के पास बहने वाली फल्गुनदी की सहायक उपनदी जिसे अब नीलांजना कहते हैं। यह गया से दक्षिण में 3 मील पर महाना अथवा फल्गु में मिलती है। (गया के पूर्व में नगकूट पहाड़ी है, इसके दक्षिण में जाकर फल्गु का नाम महाना हो जाता है)। नैरंजना बौद्ध साहित्य की प्रसिद्ध नदी है। इसी के तट पर भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्ति हुई थी। अश्वघोष-रचित बुद्धचरित्र में नैरंजना का उल्लेख है—'ततो हित्वाश्रमं तस्य श्रेयोऽर्थी कृतनिश्चयः, भेजे गयस्य राजर्षेर्नगरीं संज्ञामाश्रमम्। अथ नैरंजनातीरे शुचौ शुचिपराक्रमः, चकार वासमेकांतविहाराभिरतिर्मुनिः' बुद्धचरित० 12,89-90 अर्थात् तब श्रेय पाने की इच्छा से गौतम ने (उद्रक मुनि का) आश्रम छोड़कर राजर्षिगय की नगरी से आश्रम का सेवन किया और पवित्र पराक्रमवान् एकांतविहार में आनंद प्राप्त करने वाले उस मुनि ने, नैरंजना नदी के पवित्र तीर पर निवास किया। इस उद्धरण से नैरंजना का वर्तमान नैलंजना से अभिज्ञान स्पष्ट हो जाता है।

नैषध (दे० निषध)

नोहखेड़ा (ज़िला एटा, उ० प्र०)

एटा से लगभग 20 मील दक्षिण में यहां गुप्त एवं मध्यकालीन खंडहर एक विशाल ढूह के रूप में पड़े हुए हैं। इनमें एक महत्वपूर्ण नारी-मूर्ति मिली है जिसे स्थानीय लोग रुक्मिणी कहते हैं। यह मूर्ति शीर्षविहीन है। अनुश्रुति के अनुसार इस स्थान के समीप महाभारतकालीन कुंडलपुर-या कुंडिनपुर नामक नगर बसा हुआ था जिसका संबंध राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी की मनोरंजक कथा से बताया जाता है। किंतु यह विचार ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि रुक्मिणी के पिता की राजधानी कुंडिनपुर (विदर्भ या बरार) में थी। नोहखेड़ से तीन मील दूर नरौली में प्राचीन हिंदू मंदिरों के अनेक अवशेष मिले हैं।

नौनंद देहरा दे० नंदेड़

नौप्रभ्रंशन

हिमालय का एक शृंग जिसे महाभारत मे नौ-बंधन कहा गया है। यह शतपथ ब्राह्मण में वर्णित मनोरवसर्पण है जहां मनु ने महाप्रलय के समय अपनी नाव बांध कर शरण पाई थी। महाप्रलय की कथा तथा मानवजाति के आदिपुरुष का उसमें जीवित रह जाना अनेक प्राचीन जातियों की पुरातन ऐतिहासिक परंपरा में वर्णित है। बाइबिल में नोहा या हज़रत नूह की कथा मनु की कथा का ही एक दूसरा संस्करण मालूम होता है। भौमिकी-विशारदों के मत में

वर्तमान हिमालय के स्थान पर अति प्राचीन युग में समुद्र लहराता था। इस तथ्य से भी मनु की कथा की पुष्टि होती है। जान पड़ता है मानवजाति के इतिहास के उषःकाल में सचमुच ही महाप्रलय की घटना घटी होगी और उसी की स्मृति संसार की अनेक प्राचीनतम सभ्य जातियों की पुरातन परंपराओं में सुरक्षित चली आ रही है।

नौबंधन दे० **नौप्रभ्रंशन**

न्यंकु (सौराष्ट्र, गुजरात)

काठियावाड़ के सोरठ नामक भाग की नदी जो गिरनार पर्वत—प्राचीन रैवतक से निकल कर पश्चिम समुद्र में गिरती है।

न्यग्रोधवन

युवानच्वांग द्वारा उल्लिखित स्थान जो संभवतः बौद्ध-साहित्य का पिप्पलिवाहन है (वाटर्स, जिल्द 2, पृ०-23-24)। दे० पिप्पलिवाहन

न्यासा (प० पाकि०)

अलक्षेंद्र (सिकंदर) के भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पू०) वर्तमान जलालाबाद के निकट यह नगर स्थित था। यहां गणतंत्र-शासन पद्धति प्रचलित थी।

पंगरी (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

इस स्थान से नव-पाषाण कालीन पाषाण-उपकरण प्राप्त हुए हैं।

पंगल=पूंगलगढ़ (राजस्थान)

ढोलामारू लोककथा की नायिका मरवण पूंगलगढ़ की राजकुमारी थी। इस नगर को एक प्राचीन राजस्थानी लोक-गीत में पंगल भी कहा गया है—'पगिपगि पांगी पंथ सिर, ऊपरि अंबर छाँह, पावस प्रकटऊ पद्यिणि कह उत पंगल जांह'।

पंचकर्पट

'तान् दशार्णान् स जित्वा च प्रतस्थे पांडुनंदनः, शिवीं स्त्रिगर्तानम्बष्ठान् मालवान् पंचकर्पटान्' महा० सभा० 32,7। नकुल ने अपनी दिग्विजययात्रा में पंचकर्पट देश को जीता था जो प्रसंगानुसार मालवा (म० प्र०) के सन्निकट स्थित जान पड़ता है। सभा० 32, 8 में माध्यमिका पर नकुल की विजय का वर्णन है जो चित्तौड़ के पास थी। पंचकर्पट की स्थिति इस प्रकार मेवाड़ और मालवा के बीच के प्रदेश में जान पड़ती है। मालवा यहां रावी और चिनाब के संगम पर स्थित प्रदेश भी हो सकता है और इस दशा

में पंचकर्पट को दक्षिणी पंजाब में स्थित मानना पड़ेगा।

पंचगंगा

दक्षिण महाराष्ट्र की नदी जो पांच उपनदियों से मिल कर बनी है। यह कृष्णा की सहायक नदी है। पांच उपनदियां ये हैं—कांसारी, कुंभी, तुलसी, भोगवती और सरस्वती। पंचगंगा और कृष्णा के संगम पर प्राचीन अमरपुर या नृसिंहवाड़ी (जिला कोल्हापुर) स्थित है।

पंचगण

अर्जुन की दिग्विजय-यात्रा के संबंध में महाभारत सभा० 27, 12 में इस देश का उल्लेख किया गया है—'तत्रस्थ: पुरुषैरेव धर्मराजस्य शासनात् किरीटी जितवान् राजन् देशान् पंचगणांस्तत:'। संदर्भ से सूचित होता है कि यह देश, जो गणराज्य जान पड़ता है, वर्तमान हिमाचल प्रदेश में स्थित होगा क्योंकि इससे पहले तथा इसके बाद में जिन देशों का उल्लेख इसी संदर्भ में हैं उनका अभिज्ञान हिमाचल प्रदेश के स्थानों से किया गया है (दे० मोदापुर, वामदेव, सुदामा, देवप्रस्थ)। संभव है किन्हीं पांच गणराज्यों का सामूहिक नाम ही पंचगण हो।

पंचगौड़

बंगाल की मध्ययुगीन परंपरा में (12वीं शती ई० तथा तत्पश्चात्) उत्तरी भारत या आर्यावर्त के पांच मुख्य प्रदेशो को पंचगौड़ या पंचभारत नाम से अभिहित किया जाता था। ये प्रदेश थे—सारस्वत या पंजाब (सरस्वती नदी का तटवर्ती प्रदेश), पंचाल या कान्यकुब्ज (कन्नौज), गौड या बंगाल, मिथिला या दरभंगा (बिहार) और उत्कल या उड़ीसा। इन पांचों प्रदेशों की संस्कृति में बहुत कुछ समानता बताई जाती थी। इनमें परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप ही बंगाल के प्राचीन काव्य को सामूहिक रूप से पांचाली (अर्थात् कान्यकुब्ज देश से संबंधित) कहा जाता था और पंजाब के शकसंवत् का प्रचार बंगाल में हुआ। यह भी पुरानी अनुश्रुति है कि कान्यकुब्ज (पंचाल) से बुलाए हुए विद्वान् ब्राह्मण और कायस्थ गौड़ गए थे जहां जाकर उन्होंने बंगाल की संस्कृति को आर्यदेश की संस्कृति से अनुप्राणित किया और वर्तमान बंगाल के कुलीन ब्राह्मण तथा कायस्थ इन्हीं कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की संतान माने जाते हैं (दे० दिनेश चंद्र सेन हिस्ट्री ऑव बंगाली लिटरेचर)। इसी प्रकार मिथिला के न्यायदर्शन का पठन-पाठन नवद्वीप या नदिया (बंगाल) में पहुंच कर फूलाफला और उड़ीसा से तो बंगाल का सदा से अभिन्न संबंध रहा ही है।

पंचद्रविड़

द्रविड़, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र एवं तेलंगाना या आंध्र का सामूहिक नाम।

पंचनगरी (बंगाल)

उत्तरी बंगाल में स्थित इस विषय का नाम गुप्त अभिलेखों में है। एपिग्राफिका इंडिका 21,81 में पंचनगरी के विषयपति का नाम कुलवृद्धि कहा गया है।

पंचनद

पंजाब का प्राचीन नाम जो यहां की झेलम, चिनाब, रावी, सतलज और बियास नदियों के कारण हुआ था। महाभारत में पंचनद का नामोल्लेख है—'कृत्स्नं पंचनदं चैव तथैवामरपर्वतम्, उत्तरज्योतिषं चैव तथा दिव्यकटं पुरम्,' सभा० 32,11। इसे नकुल ने अपनी दिग्विजय यात्रा में जीता था—'ततः पचनद गत्वा नियतो नियताशनः'। महा० वन० 83,16 से पंचनद की तीर्थ रूप में भी मान्यता सिद्ध होती है। पंचनद अग्निपुराण, 109 मे भी उल्लिखित है। विष्णुपुराण 38,12 में श्रीकृष्ण के स्वर्गारोहण के पश्चात् और द्वारका के समुद्र में बह जाने पर अर्जुन द्वारा द्वारकावासियों को पंचनद प्रदेश में बसाए जाने का उल्लेख है—'पार्थः पंचनदे देशे बहुधान्यधनान्विते, चकारवासं सर्वस्य जनस्य मुनिसत्तम'। यहा पंजाब को धनधान्य समन्वित देश बताया गया है जो इस प्रदेश की आज भी विशेषता है।

पंचपुर (दे० पिंजोर)

पंचप्रयाग

गढ़वाल के पांच प्रयाग या नदियों के संगम-स्थल— देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, नंदप्रयाग और विष्णुप्रयाग। गढ़वाल में नदियों के संगम पर बसे स्थानों को गंगा-यमुना के संगम पर बसे प्रसिद्ध प्रयाग की अनुकृति पर प्रयाग कहा जाता है।

पंचभारत=पंचगौड़

पंचमढ़ी (म० प्र०)

सतपुड़ा पर्वतमाला में समुद्रतट से 3500 फुट से लेकर 4000 फुट तक की ऊंचाई पर बसा पहाड़ी स्थान। इसका नाम पांच मढ़ियों या प्राचीन गुफाओं के कारण है जो किंवदंती के अनुसार महाभारतकालीन है। कहा जाता है कि अपने एक वर्ष के अज्ञातवास के समय पांडव इन गुफाओं में रहे थे। कुछ विद्वानों का मत है कि ये गुफाएं वास्तव में बौद्धभिक्षुओं के रहने के लिए बनवाई गई थीं। आधुनिक काल में पंचमढ़ी की खोज 1862 ई० में कैप्टन फोरसाइथ ने की थी। इन्होंने 'हाइलैंड्स ऑव सेंट्रल इंडिया' नामक ग्रंथ भी लिखा था। इन्हें मध्यप्रांत के चीफ कमिश्नर सर रिचर्ड टेम्पल ने सतपुड़ा की पहाड़ियों के

इस भाग के अन्वेषण के लिए विशेष रूप से भेजा था। पंचमढ़ी में अब से लगभग सौ वर्ष पहले गौंड और कोरकू नामक आदिवासियों का निवास था। यहां की अनेक चट्टानों पर आदिम निवासियों के लेख पाए गए हैं। उनके चित्र भी शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं जिनके विषय मुख्यत: ये है—गाय, बैल घोड़ा, हाथी, माला, रथ, रणभूमि के दृश्य तथा शिकार। गौंडों के इतिहास के ज्ञाताओं का कथन है कि गौंडों में प्रचलित किंवदंती में उनके जिस मूलस्थान काची-कोपालोहागढ़ का उल्लेख है वह पंचमढ़ी का बड़ा महादेव और चौरागढ़ ही है। चौरागढ़ आज भी गौंडों का प्रसिद्ध देवस्थान है। यहां के देवालय में शिव की मूर्ति है जिस पर भक्त लोग त्रिशूल चढ़ाते हैं। बेनवा (वेत्रवती) नदी का उद्गम पंचमढ़ी के निकट स्थित धूपगढ़ शिखर से हुआ है, जिसकी ऊंचाई समुद्रतट से 4454 फुट है।

पंचमी

अफगानिस्तान की पंजशीरा नदी। इसका उल्लेख महाभारत भीष्मपर्व में है।

पंचवटी (ज़िला नासिक, महाराष्ट्र)

नासिक के निकट प्रसिद्ध स्थान है। यहां श्रीरामचंद्र जी, लक्ष्मण और सीता सहित अपने वनवास-काल में काफी दिन तक रहे थे तथा यहीं रावण ने सीता का हरण किया था। मारीच का वध इसी स्थान के निकट (दे० मृगव्याधेश्वर) हुआ था। गृध्रराज जटायु से श्रीराम की मैत्री यहीं हुई थी। पंचवटी के नामकरण का कारण पंचवटों की उपस्थिति कही जाती है,—'पंचानां वटानां समाहार इति पंचवटी'। पंचवट ये हैं :—अश्वत्थ, आमलक, वट, विल्व और अशोक। वाल्मीकि-रामायण अरण्य० 15 में पंचवटी का मनोहर वर्णन है जिसका एक अंश इस प्रकार है—'अयं पंचवटीदेश: सौम्य पुष्पितकानन:, यथा ख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना। इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता, हंसकारंडवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता। नातिन्दूरे न चासन्ने मृग यूथ निपीडिता। मयूरनादित रम्या: प्रांशवो बहुकंदरा:, दृश्यन्ते गिरय: सौम्या: फुल्लैस्तरुभिरावृता:। सौवर्णै: राजतैस्ताम्रैर्देशेदेशे तथा शुभै: गवाक्षिता इव भान्ति गजा: परमभक्तिभि:' अरण्य० 15,2-12-13-14-15। उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि पंचवटी गोदावरी के तट पर स्थित थी। कालिदास ने रघुवंश में कई स्थानों पर पंचवटी का वर्णन किया है—'आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा-चिरात् पंचवटी मनो मे'—13,34। 'पंचवट्यां ततोराम: शासनात् कुंभजन्मन: अनपोढस्थितिस्तस्थौ विंध्याद्रिप्रकृताविव'—12,31 (इस श्लोक में वाल्मीकि०

अरण्य० 15,12 के समान ही, अगस्त्य ऋषि की आज्ञानुसार श्रीराम का पंचवटी में जाकर रहना कहा गया है)। रघुवंश 13,35 में पंचवटी को गोदावरी के तट पर बताया गया है—'अत्रानुगोदं मृगया निवृत्तस्तरंगवातेन विनीतखेदः रहस्त्व-दुत्संग निषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः'। भवभूति ने उत्तररामचरित, द्वितीय अंक में पंचवटी का, श्रीराम द्वारा, उनकी पूर्वस्मृति-जनित उद्वेग के कारण करुणाजनक वर्णन करवाया है—'अत्रैव सा पंचवटी यत्र चिरनिवासेन विविधविस्रम्भातिप्रसंगसाक्षिणः प्रदेशाः प्रियायाः प्रियसखी च वासंती नाम वन देवता'; 'यस्यां ते दिवसास्तया सह मयानीता यथा स्वेगृहे, यत्संबंध कथा-भिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत। एकः संप्रतिनाशित प्रियतमस्तामेव रामः कथं, पापः पंचवटीं विलोकयतु वा गच्छत्व संभाव्य वा' 2,28। अध्यात्म रामायण अरण्य० 3,48 में पंचवटी को गौतमी (=गोदावरी) के तट पर स्थित बताया है—'अस्ति पंचवटी नाम्ना आश्रमो गौतमीतटे'। यह स्थान अगस्त्य के आश्रम से दो योजन पर बताया गया है—'इतो योजनयुग्मे तु पुण्यकाननमंडितः'। वाल्मीकि और कालीदास के समान ही अध्यात्मरामायण में भी पंचवटी को अगस्त्य ने श्रीराम के रहने के लिए उपयुक्त बताया था (अरण्य० 3,48)। तुलसीदास ने रामचरितमानस के अरण्यकांड में अगस्त्य द्वारा ही श्रीराम को पंचवटी भिजवाया है—'है प्रभु परम मनोहर ठाऊं, पावन पंचवटी तेहि नाऊं। दंडक वन पुनीत प्रभु करहू, उग्रशाप मुनिवर के हरहू। चले राम मुनि आयुस पाई, तुरतहि पंचवटी नियराई। गृधराज सों भेंट भई बहुविधि प्रीति दृढ़ाय, गोदावरी समीप प्रभु रहे पर्णगृह छाय'। पंचवटी जनस्थान या दंडक वन में स्थित थी। पंचवटी या नासिक से गोदावरी का उद्गम-स्थान त्र्यंबकेश्वर लगभग बीस मील दूर है।

पंचशैलपुर

प्राचीन जैन साहित्य में राजगृह (बिहार) का एक नाम। नामकरण का कारण राजगृह के चतुर्दिक् पांच पहाड़ियों की उपस्थिति है जिन्हें आज भी पंचपहाड़ी कहा जाता है।

पंचसर (ज़िला महसाना, गुजरात)

कच्छ की रन के निकट प्राचीन नगर। 10वीं शती में चावड़ावंश के नरेश जयकृष्ण की राजधानी यहां थी। इसके पुत्र वनराज ने पंचसर को छोड़कर पाटन में अपनी राजधानी बनाई थी। हाल ही में पूर्वसोलंकीकालीन एक मंदिर के अवशेष यहां से उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाए गए हैं। यह दशवीं शती में बना था। (दे० अन्हलवाड़ा)

पंचानन

राजगृह (बिहार) के निकट प्रवाहित होने वाली नदी।

पंचाप्सरस्

पंचाप्सरस् का उल्लेख मंड (या मंद)-कर्णि मुनि के आश्रम के रूप में वाल्मीकि ने किया है—'ततः कर्तुं तपोविघ्नं सर्वदेवैर्नियोजिताः प्रधानाप्सरसः पंचविद्युच्चलितवर्चसः, इदं पंचाप्सरो नाम तड़ागं सार्वकालिकं निर्मितंतपसा तेन मुनिना मंदिकर्णिना'। कालिदास ने रघुवंश, 13,38 में पंचाप्सरस् सरोवर के पास शातकर्णि मुनि का आश्रम माना है—'एतन् मुने मानिनिशातकर्णेः पंचाप्सरो नाम विहारिवारि, आभाति पर्यंतवनं विदूरान्मेघांतरालक्ष्य मिवेंदु-बिंबम्'। स्थानीय किंवदंती में मैसूर राज्य में स्थित गंगावती या गंगोली का अभिज्ञान पंचाप्सरस् से किया जाता है। यहां पांच नदियों का संगम है।

पंचाल=पांचाल

उत्तरप्रदेश के बरेली, बदायूं और फ़रुखाबाद ज़िलों से परिवृत प्रदेश का प्राचीन नाम। कनिंघम के अनुसार वर्तमान रुहेलखंड उत्तरपंचाल और दोआबा दक्षिण पंचाल था। संहितोपनिषद् ब्राह्मण में पंचाल के प्राच्य पंचाल भाग (पूर्वी भाग) का भी उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण 13,5,4,7 में पचाल की परिवक्रा या परिचक्रा नामक नगरी का उल्लेख है जो वेबर के अनुसार महाभारत की एकचक्रा है। श्री रायचौधरी का मत है कि पंचाल पांच प्राचीन कुलों का सामूहिक नाम था। वे ये थे—'क्रिवि, केशी, सृंजय, तुर्वसस् और सोमक। ब्रह्मपुराण 13,94 तथा मत्स्यपुराण 50,3 में इन्हें मुद्गल सृंजय, बृहदिषु, यवीनर और क्रमीलाश्व कहा गया है। पंचालों और कुरुजनपदों में परस्पर लड़ाई-झगड़े चलते रहते थे। महाभारत के आदिपर्व से ज्ञात होता है कि पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य ने अर्जुन की सहायता से पंचालराज द्रुपद को हराकर उसके पास केवल दक्षिण पंचाल (जिसकी राजधानी कांपिल्य थी) रहने दिया और उत्तर पंचाल को हस्तगत कर लिया था—'अतः प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन त्वया सह, राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे'—आदि० 165, 24 अर्थात् द्रोणाचार्य ने परास्त होने पर कैद में डाले हुए पंचालराज द्रुपद से कहा—'मैंने राज्य प्राप्ति के लिए तुम्हारे साथ युद्ध किया है। अब गंगा के उत्तरतटवर्ती प्रदेश का मैं, और दक्षिण तट के तुम राजा होगे'। इस प्रकार महाभारत-काल में पंचाल, गंगा के उत्तरी और दक्षिणी दोनों तटों पर बसा हुआ था। द्रुपद पहले अहिच्छत्र या छत्रवती नगरी में रहते थे—'पार्षतो द्रुपदो नामच्छत्र-वत्यां नरेश्वर'—आदि० 165, 21। इन्हें जीतने के लिए द्रोण ने कौरवों और

पांडवों को पंचाल भेजा था—'धार्तराष्ट्रैश्च सहिताः पंचालान् पांडवा ययुः'। द्रोपदी पंचाल-राज द्रुपद की कन्या होने के कारण ही पांचाली कहलाती थी। महाभारत आदिपर्व में वर्णित द्रोपदी का स्वयंवर कांपिल्य में हुआ था। दक्षिण पंचाल की सीमा गंगा के दक्षिणी तट से लेकर चंबल या चर्मण्वती तक थी—'सोऽध्यवसद् दीनमनाः कांपिल्यं च पुरोत्तमम् दक्षिणांश्चापि पंचालान् यावच्चर्मण्वता नदी,' आदि० 137,76। विष्णुपुराण 2,3,15 में कुरु-पांचालों को मध्यदेशीय कहा गया है—'तास्विमे कुरुपांचाला मध्यदेशादयोजनाः'। पंचाल-निवासियों को भीमसेन ने अपनी पूर्व देश की दिग्विजय-यात्रा में अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर वश में कर लिया था—'सगत्वा नरशार्दूलः पंचालानां पुरं महत् पंचालान् विविधोपायैः सांत्वयामास पांडवः' सभा० 29,3-4।

पंचासर (गुजरात)

वाधवां के निकट जैनतीर्थ पंचसर। इसका नामोल्लेख जैनस्तोत्र तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार है—'हस्तोडीपुर पाडला दशपुरे चारूप पंचासरे'।

[**पंजकौरा** दे० **गौरी** (2)]

पंजली (लंका)

महावंश 32,15 में वर्णित एक पर्वत जो करिंद या वर्तमान किरिंदुओए नदी के निकट स्थित था।

पंजशीर=पंचमी (नदी)

पंडुलेण (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर क्षहरात-नरेश नहपान का एक गुफालेख प्राप्त हुआ था जिससे उसका महाराष्ट्र के इस भूभाग पर आधिपत्य प्रमाणित होता है। नहपान के अन्य अभिलेख नासिक, जुन्नार और कार्ली से प्राप्त हुए हैं।

पंडौल (बिहार)

उत्तरपूर्व रेलवे की दरभंगा—जयनगर शाखा पर स्थित। एक प्राचीन क़िले के ध्वंसावशेष यहां स्थित हैं। इसे जनश्रुति में पांडवों के समय का बताया जाता है, जैसा कि स्थान के नाम से भी सूचित होता है।

पंढरपानि (महाराष्ट्र)

कोंकण की पहाड़ियों का एक गिरिमार्ग (दर्रा)। 17वीं शती के मध्य में शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बीजापुर के सुलतान आदिलशाह ने हब्शी सरदार सीदी जोहर को उनका पीछा करने के लिए भेजा। उसने जाते ही पन्हाला दुर्ग को घेर लिया। कई मास के घेरे के पश्चात् जब दुर्ग टूटने को हुआ तो शिवाजी चुपचाप वहां से निकलकर रंगन होते हुए प्रतापगढ़ जा पहुंचे।

सीदी की सेना ने उनका पीछा किया पर पंढरपानि के गिरिमार्ग में बाजी प्रभुदेशपांडे ने दीवार की तरह खड़े होकर उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। जब शिवाजी ने विशालगढ़ के क़िले में सकुशल पहुंचकर तोप दागी तो उस आहत वीर सरदार ने सुख से अपने प्राण त्यागे। देशपांडे का नाम महाराष्ट्र के इतिहास में अमर है।

पंढरपुर (महाराष्ट्र)

शोलापुर से 38 मील पश्चिम की ओर चंद्रभागा अथवा भीमा के तट पर महाराष्ट्र का शायद यह सबसे बड़ा तीर्थ है। 11वीं शती में इस तीर्थ की स्थापना हुई थी। 1159 शकाब्द=1081 ई० के एक शिलालेख में जो यहां से प्राप्त हुआ था—'पंडरिगे' क्षेत्र के ग्राम निवासियों द्वारा वर्षाशन दिए जाने का उल्लेख है। 1195 शकाब्द=1117 ई० के दूसरे शिलालेख में पंढरपुर के मंदिर के लिए दिए गए गद्यानों (सुवर्ण मुद्राओं) का वर्णन है। इन दानियों में कर्नाटक, तेलंगाना, पैठण, विदर्भ आदि के निवासियों के नाम हैं। वास्तव में पौराणिक कथाओं के अनुसार भक्तराज पुंडलीक के स्मारक के रूप में यह मंदिर बना हुआ है। इसके अधिष्ठाता विठोबा के रूप में श्रीकृष्ण हैं जिन्होंने भक्त पुंडलीक की पितृभक्ति से प्रसन्न होकर उसके द्वारा फेंके हुए एक पत्थर (विठ या ईंट) को ही सहर्ष अपना आसन बना लिया था। कहा जाता है कि विजयनगर-नरेश कृष्णदेव विठोबा की मूर्ति को अपने राज्य में ले गया था किंतु फिर वह एक महाराष्ट्रीय भक्त द्वारा पंढरपुर वापस ले जाई गई। 1117 ई० के एक अभिलेख से यह भी सिद्ध होता है कि भागवत संप्रदाय के अंतर्गत वारकरी पंथ के भक्तों ने विट्ठलदेव के पूजनार्थ पर्याप्त धनराशि एकत्र की थी। इस मंडल के अध्यक्ष थे रामदेव राय जाधव। (दे० मराठी वांड्मया च्या इतिहास-प्रथम खंड, पृ० 334-351)। पंढरपुर की यात्रा आजकल आषाढ़ में तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को होती है।

पंपा

(1) (मद्रास) वाल्टेयर मद्रास रेलमार्ग पर अंतावरम् स्टेशन से 2 मील पर यह छोटी नदी बहती है। नदी को प्राचीनकाल से तीर्थ माना जाता है। नदी के निकट एक ऊंची पहाड़ी पर सत्यनारायण का पुराना मंदिर है।

(2) तुंगभद्रा की सहायक नदी, जिसके निकट पंपासर अवस्थित है।

(3)=**पंपासर**

पंपापुर (ज़िला मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश)

विंध्याचल के निकट आदिवासी भार लोगों से संबंधित इस प्राचीन

नगर के खडहर हैं। इसका भविष्य-पुराण में उल्लेख है।

पंपासर=पंपासरोवर (हास्पेट तालुका, मैसूर)

हंपी के निकट बसे हुए ग्राम अनेगुंदी को रामायण-कालीन किष्किधा माना जाता है। तुंगभद्रा पार करने पर अनेगुंदी जाते समय मुख्य मार्ग से कुछ हटकर बायीं ओर पश्चिम दिशा में, पंपासरोवर स्थित है। पर्वत के नीचे ही इस नाम से कहा जाने वाला यह एक छोटा सा सरोवर है। इसके पास ही एक दूसरा सरोवर, मानसरोवर कहलाता है। पंपासर के निकट पश्चिम में पर्वत के ऊपर कई जीर्णशीर्ण मंदिर दिखाई पड़ते हैं। पर्वत में एक गुफा है जिसे शबरी गुफा कहते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि वास्तव में रामायण में वर्णित विशाल पंपासरोवर इसी स्थान पर रहा होगा जहां आजकल हास्पेट का कस्बा है। वाल्मीकि० अरण्य० 74,4 ('तौ पुष्करिण्याः पंपायास्तीरमासाद्य पश्चिमम् अपश्यतां ततस्तत्रशबर्या रम्यमाश्रमम्') से सूचित होता है कि पंपासर के तट पर ही शबरी का आश्रम था। किष्किंधा के निकट सुरोवनम् नामक स्थान पर शबरी का आश्रम बताया जाता है। इसी के निकट शबरी के गुरु मतंग ऋषि के नाम पर प्रसिद्ध मतंगवन था—'शबरी दर्शयामास तावुभौतद्वनं-महत् पश्य, मेघघनप्रख्यं मृगपक्षिसमाकुलम्, मतगवनमित्येव विश्रुत रघुनंदन, इहवे भवितात्मानो गुरवो मे महाद्युते' अरण्य० 4,20-21। पंपा के निकट ही मतंगसर नामक झील थी जो मतंग ऋषि के नाम पर ही प्रसिद्ध थी। हंपी में ऋष्यमूक के राम-मंदिर के पास स्थित पहाड़ी आज भी मतंगपर्वत के नाम से जानी जाती है। कालीदास ने पंपासर का सुंदर वर्णन किया है—'उपांतवानीर वनोपगूढान्यालक्षपारिप्लवसारसानि, दूरावतीर्णा पिवतीव खेदादमूनि पंपासलिलानि दृष्टिः'। अध्यात्म० किष्किंधा 1,1-2-3 में पंपा के मनोहारी वर्णन में इसे एक कोस विस्तारवाला अगाध सरोवर बताया गया है—'ततः सलक्ष्मणो रामः शनैः पंपासरस्तटम्, आगत्य सरसां श्रेष्ठं दृष्ट्वाविस्मयमाययौ। क्रोशमात्रं सुविस्तीर्णामगाधामलशंबरम्, उत्फुल्लांबुज कह्लार कुमुदोत्पलमंडितम्। हंसकारंडवकीर्णचक्रवाकादिशोभितम् जलकुक्कुटकोयष्टिक्रौंचनादोपनादितम्'। (दे० किष्किंधा)

पक्षीतीर्थ

चिंगलपट से नौ मील पर पहाड़ी के ऊपर स्थित यह दक्षिण भारत का प्रसिद्ध तीर्थ है। मध्यान्ह के समय प्रतिदिन, दो क्षेमकरियां आकर पुजारी के हाथ से भोजन करती हैं। इनके बारे में तरह-तरह की किंवदंतियां प्रसिद्ध हैं। (दे० चिंगलपट, वेदगिरि)

पचराई (बुंदेलखंड)

मध्यकालीन बुंदेलखंड की वास्तुकला के भग्नावशेष इस स्थान के उल्लेखनीय ऐतिहासिक स्मारक हैं।

पचहरन (ज़िला गौंडा, उ० प्र०)

यहां के पुराने टीले से पृथ्वीनाथ का ताम्रपट्ट प्राप्त हुआ था। खंडहर पूर्वमध्ययुगीन जान पड़ते हैं।

पचेलगढ़ (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

इतिहास-प्रसिद्ध गढ़मंडला की रानी दुर्गावती के श्वसुर संग्रामशाह (मृत्यु 1541 ई०) के बावनगढ़ों में से एक यहां स्थित था।

पटच्चर

'सुकमारं वशं चक्रे सुमित्रं च नराधिपम्, तथैवापरमत्स्यांश्च व्यजयत् स पटच्चरान्' महा० सभा० 31,4 पटच्चरों को सहदेव ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में जीता था। संदर्भानुसार, पटच्चरजनपद की स्थिति अपरमत्स्य देश के आसपास जान पड़ती है। श्री नं० ला० डे के अनुसार यह इलाहाबाद—बांदा जिलों का प्रदेश है किंतु यह अभिज्ञान संदिग्ध है। अपरमत्स्य देश जयपुर-अलवर (**मत्स्य**) का पार्श्ववर्ती प्रदेश था। इसके पश्चात् ही अनार्य-जातीय निषादों के देश निषाद-भूमि का उल्लेख है। इससे जान पड़ता है कि पटच्चर देश दक्षिणी पंजाब और उत्तरी राजस्थान के बीच का इलाका रहा होगा। संस्कृत में पटच्चर शब्द चोर के अर्थ में प्रयुक्त है जिससे शायद पटच्चरों की तत्कालीन जातिगत विशेषता का पता चलता है। जान पड़ता है कि निषादों के समान पटच्चर भी किसी अर्धसभ्य विदेशी जाति के लोग थे जो इस इलाके में भारत के बाहर से आकर बस गए थे। संभव है यह नाम (पटच्चर) कालांतर में दरिद्र शब्द की भांति ही ('दरद' देश के लोगों के नाम से बना विशेषण—दे० **दरद**) जातिगत विशेषता के कारण संस्कृत में सामान्य विशेषण की भांति प्रयुक्त होने लगा।

पटना (दे० पाटलिपुत्र)

पटल

अलक्षेंद्र (सिकंदर) के भारत-आक्रमण के समय (327 ई० पू०) में सिंध में इस नाम का नगर बसा हुआ था जिसका उल्लेख अलक्षेंद्र के अभियान का इतिहास लिखने वाले यूनानी लेखकों ने किया है। विद्वानों का मत है कि यह नगर सिंध नदी के मुहाने पर बहमनाबाद के पास रहा होगा। अलक्षेंद्र ने इसी स्थान से अपनी सेना के एक भाग को समुद्र द्वारा अपने देश वापस भेजने का कार्यक्रम

बनाया था। बहमनाबाद से, जो बहुत प्राचीन स्थान है, प्रागैतिहासिक अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

पटिया

कटक (उड़ीसा) के निकट सारंग-केसरी नामक केशरीवंशीय नरेश द्वारा बसाया गया नगर जहां का दुर्ग सारंगगढ़ कहलाता था। यहां सारंग नाम की झील भी है।

पटियाला (पंजाब)

किंवदंती में पटियाला के नामकरण का कारण यहां रेशम की प्रचुरता का होना कहा जाता है। (पाट=रेशम, आलय=घर) आजकल भी पटियाला रेशम के कुटीर उद्योग का केन्द्र है। किंतु ऐतिहासिकों के मत में पटियाला नाम, इसके आलासिंह नाम के सरदार की पट्टी (जागीर) में स्थित होने के कारण हुआ था। पटियाला, जींद और नाभा – ये तीन स्थान फूलसिंह नामक एक डाकू को अंग्रेजों की सहायता करने के बदले में दिए गए थे। आलासिंह इसी फूलसिंह का पुत्र था। फूलसिंह ने मृत्यु से पहले पटियाला को आलासिंह की जागीर में नियत कर दिया था। आला की पट्टी या पट्टी आला से बिगड़कर ही पटियाला नाम बन गया। यहां के पुराने स्मारकों में गुलाबी बाग प्रसिद्ध है। पहले पटियाला-नरेश यहीं रहते थे। उनकी 360 रानियों के महल भी इसी बाग़ के अंदर बने थे। यहां एक चिड़ियाघर भी बनाया गया था जिसके जानवरों के शोरगुल से तंग होकर रानियों ने मोतीबाग में एक नया महल बनवाया। मोतीमहल के राजप्रासाद की इमारत बड़ी भव्य तथा सुसज्जित है। पटियाला सिखधर्म का एक केंद्र माना जाता है। गुरुगोविंदसिंह की एक कृपाण, जो उन्होंने सूरत के एक मुसलमान को दी थी, यहां के संग्रहालय में सुरक्षित है। हिंदुओं का काली मन्दिर भी पटियाला का प्रसिद्ध स्थान है। इस मन्दिर की विशालता और साजसज्जा की दृष्टि से इसे कलकत्ते के काली मन्दिर के समकक्ष ही समझा जाता है।

पटियाली (ज़िला बुलंदशहर, उ०प्र०)

(1) हिंदी और फारसी के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो का जन्मस्थान है। ये अलाउद्दीन खिलजी (1298-1316) के समकालीन थे।

(2) (ज़िला फर्रुखाबाद, उ०प्र०) इस स्थान पर मुहम्मद गौरी के बनवाए हुए एक दुर्ग के ध्वंसावशेष हैं।

पट्टदकल (ज़िला बीजापुर, महाराष्ट्र)

मालप्रभानदी के तट पर बादामी से 12 मील दूर स्थित है। 7वीं शती के अंतिम चरण से मध्यकाल तक निर्मित मन्दिरों के लिए यह स्थान प्रख्यात है। पट्टदकल को चालुक्य वास्तुकला का सर्वश्रेष्ठ केंद्र माना जाता है। 992 ई० के एक अभिलेख में इस नगर को चालुक्यवंशी नरेशों की राजधानी तथा उनके राज्याभिषेक का स्थान कहा गया है। उस समय यह प्रसिद्ध तीर्थ तो था ही, साथ ही यहां अनेक मूर्तिकार, वास्तुविशारद तथा नृत्य-कलाविद् भी निवास करते थे। चालुक्य नरेश वैष्णव थे किंतु उनके मन्दिरों में शिव की प्रतिमाएं भी प्रतिष्ठापित थीं। पट्टदकल की मूर्तिकला धार्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार की है। प्रथम में देवी-देवताओं तथा रामायण-महाभारत की अनेक धार्मिक कथाओं का चित्रण है तथा द्वितीय में सामाजिक और घरेलू जीवन, पशुपक्षी, वाद्ययंत्रों तथा पंचतंत्र की कथाओं का अंकन मिलता है। वर्तमान पट्टदकल में सबसे सुन्दर मंदिर विरूपाक्ष का है जिसे विक्रमादित्य द्वितीय चालुक्य की महारानी लोक महादेवी ने 740 ई० में बनवाया था। यह द्रविड़ शैली में बना है। द्वारमंडपों पर द्वारपालों की प्रतिमाएं हैं। एक द्वारपाल की गदा पर एक सर्प लिपटा हुआ प्रदर्शित है जिसके कारण उसके मुख पर विस्मय तथा घबराहट के भावों की अभिव्यंजना बड़े कौशल के साथ अंकित की गई है। एक स्तंभ के बाहरी भाग पर गजेंद्र मोक्ष की कथा का सुन्दर चित्रण है। मुख्य मंडप में भारी स्तंभों की छ: पंक्तियां हैं जिनमें से प्रत्येक में पांच स्तंभ हैं। इनमें से कुछ स्तंभों पर शृंगारिक दृश्यों का प्रदर्शन किया गया है। अन्य पर महाकाव्यों के चित्र उत्कीर्ण हैं जिनमें हनुमान् का रावण की सभा में आगमन, खरदूषण युद्ध तथा सीताहरण के दृश्य सराहनीय हैं। पंचतंत्र की आख्यायिकाओं में कीलोत्पाटी वानर की कथा का मनोरंजन और यथार्थ अंकन दिखलाई पड़ता है। यहां का दूसरा मंदिर पापनाथ का है। यह अपने शैली-वैचित्र्य के लिए उल्लेखनीय है। मंदिर का मुख्य भाग 8वीं शती की द्रविड़ शैली में बना हुआ है। किंतु शिखर (तत्कालीन) गुप्तकालीन उत्तर भारतीय शैली का अच्छा उदाहरण है। विरूपाक्ष मंदिर के निकट भी एक अन्य मंदिर है जो उड़ीसा के प्राचीन मंदिरों के अनुरूप है। यहाँ के मंदिरों के शिखर स्तूपाकार हैं और कई तलों में विभक्त हैं। प्रत्येक तल में वर्गाकार और दीर्घायताकार मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मंदिर सामान्यत: पत्थरों के बड़े-बड़े पट्टों के, चूने का प्रयोग किए बिना, निर्मित है। गर्भगृह के सामने पटा हुआ प्रदक्षिणा-पथ है। पट्टदकल के मंदिरों और उत्तरी व दक्षिणी कनारा ज़िलों

(मद्रास) के मुडाबिदरी, जरसोपा और भटकल के मंदिरों में काफी समानता है। इनके शिखर उत्तरी भारत के गुप्तकालीन मंदिरों के शिखरों के समरूप हैं जिससे पट्टदकल की वास्तुकला को उत्तर व दक्षिण की शैलियों के बीच की कड़ी समझा जा सकता है। आश्चर्य है कि उत्तर भारत की पूर्व गुप्तकालीन वास्तुकला, गुप्तकाल के समाप्त होने के बहुत समय पश्चात् भी दक्षिण भारत के इस भाग में जीवित रहकर फूलती-फलती रही। इस तथ्य से उत्तर और दक्षिण भारत की सामान्य सांस्कृतिक परंपरा का बोध होता है। (दे० कज़ेन्स — चालुक्यन आर्कीटेक्चर ऑव कनारीज़ डिस्ट्रिक्ट्स चित्र 35, 45)।

पठानकोट (दे० उदुंबर)

पढ़ावली (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

प्राचीन ऐतिहासिक अनुश्रुति के अनुसार मध्यभारत के नागाओं की राजधानी कांतिपुरी और पढ़ावली—दोनों नगरियां – तीसरी-चौथी शती ई० में साथ ही साथ संपन्न तथा समृद्ध दशा में थीं। किंतु ऐतिहासिक महत्व की वस्तुएं यहां 900 ई० से 1000 ई० तक की ही पाई गई हैं। पढावली के मुख्य स्थान हैं—गढ़ी का प्राचीन मंदिर, जैन तथा वैष्णव मंदिर तथा एक प्रसिद्ध प्राचीन कुवां।

पण (लंका)

महावंश 10,27-28 में उल्लिखित एक स्थान जो **कासपर्वत** या वर्तमान कहगल के निकट बताया गया है।

पतंग

विष्णुपुराण 2,2,27 के अनुसार मेरु के दक्षिण में स्थित एक पर्वत—'त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतंगोरुचकास्तथा। निषादाद्यादक्षिण तस्तस्यकेसर पर्वताः'।

पथारी (ज़िला परभणी, महाराष्ट्र)

(1) प्राचीन दुर्ग के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

(2) (ज़िला भीलसा, म० प्र०) बेसनगर के निकट और बड़ोह से 2 मील दूर प्राचीन स्थान है। यहां से निम्न पूर्वमध्ययुगीन अवशेष प्राप्त हुए हैं—सप्त मातृकाओं की मूर्तियां, प्रस्तर-स्तंभ, राष्ट्रकूट नरेश पराबल के एक मत्री द्वारा 460 ई० में बनवाई हुई वराह-मूर्ति और बालकृष्ण की एक अति सुन्दर मूर्ति जो यहां के मंदिर में प्रतिष्ठापित है। अंतिम कलाकृति में नवजात कृष्ण देवकी के पास लेटे हैं और पांच सेवक निकट ही खड़े हैं। मूर्ति बहुत भारी तथा विशाल हैं और बेगलर के मत में भारत की सभी प्राचीन मूर्तियों से अधिक सुंदर हैं।

पद्मपवाया=पद्मावती

पदरौना दे० (पावापुरी)

पद्मक्षेत्र

(1) कोणार्क (उड़ीसा) के क्षेत्र का प्राचीन नाम। पौराणिक कथा के अनुसार श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब को इस स्थान के निकट चंद्रभागा नदी में बहते हुए कमलपत्र पर सूर्य की प्रतिमा मिली थी जो बाद में कोणार्क मंदिर की अधिष्ठात्री मूर्ति के रूप में मान्य हुई। इस कमलपत्र के कारण ही इस तीर्थ को पद्मक्षेत्र कहा गया। इसका दूसरा नाम मैत्रेयवन भी है। (दे० कोणार्क)

(2) राजिम (म० प्र०) का प्राचीन नाम। राजिम राजीव या कमल का रूपांतर है। राजिम में 8वीं या 9वीं शती का राजीवलोचन विष्णु का मंदिर है। (दे० राजिम)

पद्मतीर्थ

वासिम (महाराष्ट्र) के परिवर्ती क्षेत्र का प्राचीन नाम पद्मतीर्थ कहा गया है। किंवदंती है कि वासिम में वत्स ऋषि का आश्रम था।

पद्मनगर

नासिक का एक पौराणिक नाम –'कृते नु पद्मनगरं, त्रेतायां तु त्रिकंटकम्, द्वापरे च जनस्थानं कलौ नासिकमुच्चते'।

पद्मपुर (ज़िला भंडारा, म० प्र०)

आमगांव से एक मील पर एक प्राचीन ग्राम है। प्रो० मिराशी तथा अन्य कई विद्वानों का मत है कि संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार महाकवि भवभूति इसी पद्मपुर के निवासी थे। भवभूति ने महावीरचरित्र नाटक में पद्मपुर का उल्लेख किया है तथा मालतीमाधव नाटक के प्रथम अंक में अपनी जन्मभूमि पद्मपुर नगर में बताते हुए इसकी स्थिति दक्षिणापथ में कही है—'अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुर नाम नगरम्...तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तें र्नीलकंठस्य पुत्रः श्रीकंठपदलांछनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम कवि निसर्ग-सौहृदेन भरतेषु वर्तमानः स्वकृतिमेवगुणभूयसीमस्माकं हस्ते समर्पितवान्'।

ग्राम के निकट एक पहाड़ी है जिसे आज भी लोग भवभूति की टोरिया कहते हैं और महाकवि की स्मृति में कुछ अवशेषों की पूजा भी होती है। मालती-माधव में उन्होंने जिस भ्रष्ट बौद्ध तांत्रिक समाज का वर्णन किया है उसका अस्तित्व आठवीं शती ई० में देश के इस भाग में वास्तविक रूप में ही था—इस दृष्टि से भी भवभूति के निवासस्थान का अभिज्ञान इसी पद्मपुर से करना समीचीन ही जान पड़ता है। पद्मपुर का उल्लेख द्रुग (म० प्र०) से प्राप्त एक

वाकाटक अभिलेख में है–दे० इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, 1935, पृ० 299; एपिग्राफिका इंडिका—22,207। प्राचीन समय में यहां जैन मंदिर भी अनेक होंगे क्योंकि निकटस्थ खेतों से जैन तीर्थंकरों की खंडित मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। कलचुरिकालीन अवशेष भी यहां मिले हैं।

पद्मखंडवन

बुद्धचरित (3,63,64) में वर्णित विहारोद्यान जहां सिद्धार्थ को उसका सारथी राजकुमार के मनोविनोदार्थ ले गया था—'विशेष युक्तंतु नरेंद्र-शासनात् सपद्मपंडं वनमेवनिर्ययौ। ततः शिवं कुसमितबालपादपं, परिभ्रमत् प्रमुदितमत्तकोकिलम्, विमानवत्सकमलचारु दीर्घिकं ददर्श तद्वनमिव नंदनंवनम्'। इस उद्यान में कुसुमित बालपादप, प्रमुदित कोकिलाएं तथा कमलों से भरी पूरी झील शोभायमान थीं। यह उद्यान कपिलवस्तु के निकट ही स्थित था।

पद्मसर

'रम्यं पद्मसरं गत्वा कालकूटमतीत्य च'—महा० सभा०, 20,26। इस उल्लेख से सूचित होता है कि यह सरोवर कालकूट के निकट ही स्थित होगा। कालकूट संभवतः पश्चिमी उ० प्र० का कोई स्थान था।

पद्मा (पूर्व बंगाल, पाकि०)

गंगा-ब्रह्मपुत्र की संयुक्तधारा का नाम।

पद्मालय=प्रवाल

पद्मावती

(1)=उज्जयिनी

(2) (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०) सिंध तथा पार्वती (पारा) नदियों के संगम पर स्थित, ग्वालियर से प्रायः 40 मील दूर तीसरी चौथी शती ई० में नाग-नरेशों की प्राचीन राजधानी। भवभूति ने मालतीमाधव में इस नगरी के सौंदर्य तथा वैभवविलास का वर्णन किया है। पद्मावती का अभिज्ञान वर्तमान पदमपवाया नामक ग्राम से किया गया है जो नरवर से 25 मील उत्तरपूर्व में है। (दे० पद्मपुर)। गुप्तसम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में राजा गणपति नाग का उल्लेख है जिसे समुद्रगुप्त ने हराकर अपने अधीन कर लिया था। विद्वानों के मत में यह पद्मावती ही का राजा था। नाग-राजाओं के अनेक सिक्के यहां से प्राप्त हुए हैं तथा प्रथम शती ई० से 8वीं शती ई० तक के अनेक ऐतिहासिक अवशेष भी मिले हैं। इनमें प्रमुख हैं ईंटों के बने एक विशाल भवन के खंडहर। यह भवन कई खनों का था। भारत में इस स्थान के अतिरिक्त केवल अहिच्छत्र ही में इस प्रकार के विशालकाय भवनों के अवशेष मिले हैं। जान पड़ता है कि ये भवन नागवास्तुकला के उदाहरण हैं क्योंकि दोनों ही स्थानों पर

नागनरेशों का आधिपत्य था। विष्णुपुराण 4,24,63 में पद्मावती के नागराजाओं का उल्लेख है—'उत्साद्याखिलक्षत्रजातिं नवनागाः पद्मावत्यां नाम पुर्यामनुगंगा-प्रयागं गयायाश्च मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति'।

(3) कटक (उड़ीसा) का एक नाम जो पर्याप्त काल तक प्रसिद्ध रहा।

(4) पश्चिम रेलवे के उनाई-बांसदा स्टेशन से 2 मील दूर पद्मावती नामक एक प्राचीन नगरी के खंडहर प्राप्त हुए हैं। कहते हैं कि उनाई के पास ही शरभंग-ऋषि का आश्रम था। (दे० ऊनकेश्वर)। कुछ लोगों के मत में यह नगरी पुराण-प्रसिद्ध पद्मावती है किंतु यह अभिज्ञान संदिग्ध जान पड़ता है। [दे० पद्मावती (1)]

(5) (दे० पन्ना)

पणियभूमि

जैनग्रंथ कल्पसूत्र के अनुसार इस स्थान पर तीर्थंकर महावीर ने अपने जीवन के छः वर्ष बिताए थे। यह स्थान वैशाली के निकट था।

पनागर (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

इस प्राचीन ग्राम में कलचुरिकाल की शिल्प तथा मूर्तिकला के अत्यंत सुंदर उदाहरण प्राप्त हुए हैं। यहां जैन संप्रदाय का एक मंदिर है तथा खैरमाई नाम से प्रसिद्ध जैन देवी अंबिका की एक फुट से अधिक ऊंची प्रतिमा उसमें स्थित है। देवी के मस्तक पर तत्कालीन जैन परंपरा के अनुसार नेमिनाथ की पद्मासनावस्था मूर्ति आसीन है। पृष्ठ भाग में विशाल आम्रवृक्ष की आकृति अंकित है।

पन्ना (म० प्र०)

बुंदेलखंड की भूतपूर्व रियासत जहां बुंदेलानरेश छत्रसाल ने औरंगजेब की मृत्यु (1707 ई०) के पश्चात् अपने राज्य की राजधानी बनाई थी। मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह ने 1708 ई० में छत्रसाल की सत्ता को मान लिया। कहा जाता है कि इस नगरी का प्राचीन नाम पद्मावती या पद्मावती-पुरी था जो पद्मावती देवी के नाम पर पड़ा था। देवी का मंदिर बस्ती के दूसरी ओर उत्तरपश्चिम में, एक नाले के पार आज भी स्थित है। वर्षाऋतु में यह नाला मंदिर के पास एक झरने का रूप धारण कर लेता है। झरने के ऊपर मंदिर से प्रायः एक फर्लांग की दूरी पर हनुमान जी का मंदिर है। स्थानीय जनश्रुति में पुराने जमाने में पन्ना की बस्ती नाले के उस पार थी जहां राज गोंड और कोल लोगों का राज्य था। 2 मील उत्तर की ओर महाराज छत्रसाल का पुराना महल आज भी खंडहर के रूप में वर्तमान है। पन्ना को 18वीं–19वीं शतियों में पर्णा कहते थे। यह नाम तत्कालीन राज्यपत्रों में उल्लिखित

है। ऐचिसन के प्रसिद्ध संधिपत्रों में तथा राजकीय चिट्ठियों में (1787,1822, 1831,1840,1863 ई०) इस नाम का ही उल्लेख है। निस्संदेह पन्ना पर्णा का ही अपभ्रंश है। पांडव नामक एक अति प्राचीन स्थल पन्ना-छतरपुर मार्ग में स्थित है। कहा जाता है कि पांडवों ने अपने वनवास काल का कुछ समय यहां व्यतीत किया था। यहां एक 30 फुट लंबी गुफा के अंदर, जो अति प्राचीन जान पड़ती है, कुछ अर्वाचीन मूर्तियां तथा शिव प्रतिमाएं अवस्थित हैं। गुफा की प्रस्तरभित्ति में प्रकोष्ठ के समान एक संरचना दिखाई पड़ती है। आसपास के जंगल में अनेक वन्य पशु-पक्षियों का बसेरा है। कुछ अन्य टूटी-फूटी संरचनाएं भी पास ही स्थित हैं जो पांडवों के रहने के स्थान बताए जाते हैं। पास ही तालाब है जिसके एक किनारे पर एक सुदृढ़ इमारत है जिसमें दो कमरे हैं जिनकी दीवारे प्रायः चार फुट मोटी हैं। सामने का चबूतरा हाल ही में बना है। दूसरी ओर एक ऊंचे स्थल से गिरता हुआ झरना दिखलाई देता है जो प्रस्तर-खंडों में से बहता हुआ नीचे गिरता है और एक कूप में जाकर समाप्त हो जाता है।

पन्हाला=परनाला (महाराष्ट्र)

परनाले के दुर्ग के पास 1659 ई० में महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी तथा बीजापुर के सेनापति रनदौला (या रणदूलह) रुस्तमे ज़मान में एक मुठभेड़ हुई थी। रुस्तमे ज़मान बीजापुर की रियासत के दक्षिण-पश्चिमी भाग का सूबेदार था। अफजलखां की मृत्यु के पश्चात् बीजापुर की ओर से अफजलखां के पुत्र फजलखां को साथ लेकर इसने शिवाजी पर चढ़ाई की। परनाले की लड़ाई में रुस्तमे ज़मान बुरी तरह से हारकर कृष्णा नदी की ओर भाग गया। कविवर भूषण ने इस घटना का वर्णन यों किया है—'अफजलखां रुस्तमे ज़मान फत्तेखान कूटे लूटे जूटे ए वज़ीर बिजैपुर के' शिवराजभूषण, 241; 'भेजना है भेजो सो रिसालें शिवराज जू की बाजी करनालै परनालै पर आय के'—शिवावावनी 28। मई 1660 ई० में बीजापुर की ओर से सिद्दी जौहर ने पन्हाला के क़िले को घेर लिया किंतु शिवाजी वहां से पहले ही निकल चुके थे।

पपन्नापेट (जिला मदेक, आंध्र)

ग्राम के चतुर्दिक एक प्राचीन सुदृढ़ दुर्ग स्थित है जो आज भी अच्छी दशा में है।

पपौत्त (बुंदेलखंड, म० प्र०)

मध्ययुगीन बुंदेलखंड की वास्तुकला के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

पौरा (जिला टीकमगढ़, म० प्र०)

प्राय: 75 प्राचीन जैन मंदिर इस रमणीक पहाड़ी स्थान में बने हुए हैं। इनमें प्राचीनतम अब से प्राय: आठ सौ वर्ष पुराना है।

पभोसा, पभोसी (जिला इलाहाबाद, उ० प्र०)

भरवारी स्टेशन के निकट है। यहां प्रभास-क्षेत्र नामक एक पहाड़ी पर एक प्राचीन जैन मंदिर है जिसका संबंध जैन तीर्थंकर पद्मप्रभु से बताते हैं। यह नगर शुंगकाल में प्रभास कहलाता था। यहां से प्राप्त एक अभिलेख मे शुंगवंशी नरेश बृहस्पति मित्र (दूसरी शती ई० पू०) का उल्लेख है। इसके सिक्के कौशांबी तथा अहिच्छत्र में भी मिले हैं। संभवत: मोरा ग्राम (ज़िला मथुरा) से प्राप्त अभिलेख में भी इसी राजा का उल्लेख है। इसकी पुत्री यशोमती मथुरा के किसी राजा को ब्याही थी। (दे० मथुरा-संग्रहालय-परिचय पृ० 8)। पभोसा कौशांबी से अधिक दूर नहीं है।

पयस्विनी

(1) श्रीमद्भागवत 11,5,39-40 में दक्षिण भारत की नदियों में पयस्विनी का नामोल्लेख है—'ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी, कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी'। पयस्विनी नदी संभवत: दक्षिण भारत की पालार है। श्रीमद्भागवत, 5,19,18 में भी इसका उल्लेख है—'कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्णा—'।

(2) चित्रकूट (जिला बांदा, उ० प्र०) के निकट बहने वाली नदी वर्तमान पिशुनी। चित्रकूट के निकट ही पयस्विनी और मंदाकिनी का संगम राघव-प्रयाग है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस अयोध्याकांड चित्रकूट के वर्णन में लिखा है—'लषण दीख पय उतर करारा, चहुं-दिसि फिर्‌यो धनुष जिमि नारा'। इसकी टीका में 'पय' का अर्थ करते हुए कुछ टीकाकारों ने पयस्विनी नदी का निर्देश किया है। वाल्मीकि ने चित्रकूट के वर्णन में मुख्य नदी मंदाकिनी का ही वर्णन किया है। वास्तव में पयस्विनी इसी की उपशाखा है। (दे० चित्रकूट, मंदाकिनी)।

पयोष्णी

(1) तापी या ताप्ती की उपनदी जो विंध्याचल की दक्षिण-पूर्वी पहाड़ियों से निकलकर ताप्ती में मिल जाती है। महाभारत वन० 87,4-5-6-7 में इस नदी का राजा नृग से संबंध बताया गया है, (जैसा चर्मण्वती या चंबल का राजा रंतिदेव से है) जिन्होंने इस नदी के तट पर स्थित वाराह तीर्थ में अनेक यज्ञ किए थे—'राजर्षेस्तस्य च सरिन्नृगस्य भरतर्षभ, रम्यतीर्था बहुजला

पयोष्णी द्विजसेविता। अपिचात्र महायोगी मार्कंडेयो महायशाः, अनुवंश्या जगौगाथां नृगस्य धरणीपतेः, नृगस्य यजमानस्य प्रत्यक्षमिति नः श्रुतम्, अमाद्य- दिंद्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः। पयोष्ण्यां यजमानस्य वाराहे तीर्थ उत्तमे, उद्भृतं भूतलस्थं वा वायुना समुदीरितम्। पयोष्ण्या हरते तोयं पापमामरणान्तिकम्'। महाभारत भीष्म० 9,20 में भी पयोष्णी का उल्लेख है--'शरावती पयोष्णी च वेणां भीमरथीमपि'। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में पयोष्णी का नामोल्लेख इस प्रकार है—'कृष्णा, वेण्या, भीमरथी गोदावरी निर्विध्या पयोष्णी तापी रेवा—' कुछ लोगों के मत में तापी और पयोष्णी एक ही हैं जैसा कि उनके नामार्थ से भी सूचित होता है किंतु श्रीमद्भागवत के उल्लेख में दोनों नदियों का अलग-अलग नाम दिया हुआ है। इनकी भिन्नता विष्णु० 2,3,11 के उल्लेख से भी सूचित होती है—'तापी पयोष्णी निर्विध्या प्रमुखा ऋक्ष संभवाः' —इसमें तापी और पयोष्णी दोनों को ऋक्ष पर्वत से उद्भूत माना है। जैसा ऊपर कहा गया है वास्तव में ये दो नदियां हैं जो निकलती तो एक ही पर्वत से हैं किंतु काफी दूर तक अलग-अलग मार्ग से बहती हुई आगे जाकर मिल जाती हैं।

(2)=परुष्णी

(3)=पयस्विनी (2)

परकर

गुप्तकालीन गणतंत्रराज्य जिसकी स्थिति संभवतः वर्तमान मध्यप्रदेश के उत्तरी और मध्य भाग मे रही होगी। इस भाग के अन्य राज्य थे, खाक (=काक), सनकानिक आदि। इसका उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति मे है।

परकोटा (ज़िला सागर, म० प्र०)

इस ग्राम को उदानशाह राजपूत ने 1650 ई० के लगभग बसाया था (दे० सागर)।

परखम (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा से 14 मील दूर आगरा-दिल्ली मार्ग पर स्थित ग्राम, जहां से एक यक्ष की विशालकाय मूर्ति प्राप्त हुई थी जो अब मथुरा संग्रहालय में है। मूर्ति में यक्ष को 'सुन्दर ढंग से धोती, दुपट्टा तथा कुछ सादे गहने, जैसे कर्णफूल, गुलूबंद, ग्रैवेयक आदि पहनाए गए हैं। मूर्ति की चरण-चौकी पर मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में तीन पंक्तियों का एक लेख खुदा है जिससे ज्ञात होता है कि कुणिक के शिष्य गोमित्र ने इस मूर्ति को बनाया

था' (दे० पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा, परिचय पृ० 3)। परखम से प्राप्त यह मूर्ति मथुरा की प्राचीनतम मूर्ति है। यह मौर्यकालीन है किंतु फिर भी इस पर प्रमार्जन नहीं है जो तत्कालीन स्थापत्य की विशेषता थी (जैसे अशोक प्रस्तर स्तभों का चमकीला प्रमार्जन)। इस मूर्ति के आधार पर मथुरा मूर्ति-कला की परंपरा में शुंगकाल में यक्षों की तथा कुषणकाल में बोधिसत्वों की मूर्तियों का निर्माण हुआ था।

परतंगण

'मारुताः धेनुकाश्चैव तंगणाः परतंगणाः, वाल्हिकास्तित्तराश्चैवचोला-पांड्याश्च भारत'—महा० भीष्म० 50,51; 'पारदाश्च पुलिंदाश्च तंगणा परतंगणाः' सभा० 52,3 —इन उल्लेखों से तंगणों और परतंगणों के जनपदों की स्थिति वर्तमान दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के भूभाग में सूचित होती है। दूसरे उल्लेख के प्रसंग में इन दोनों जनपदों को शैलोदा (=वर्तमान खोतान नदी) के तटवर्ती प्रदेश में स्थित कहा गया है। यहां के योद्धा पांडवों की ओर से महाभारत युद्ध में लड़े थे। (दे० तंगण, मरुत्, धेनुक)। श्री वा० श० अग्रवाल के अनुसार परतंगण जनपद कुलू-कांगड़ा के पूरब में स्थित भोट के इलाके का एक भाग है (दे० कादंबिनी—अक्टूबर, 62)।

परतियाल (मैसूर)

कृष्णा नदी की घाटी में स्थित इस स्थान से प्राचीन समय में हीरे निकाले जाते थे। 1701 ई० में पिट या रीजेंट नामक हीरा यहां की खानों से निकाला गया था। इसका नाम इंगलैंड के तत्कालीन मंत्री पिट के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था। इस हीरे का भार मूलतः 410 कैरेट था जो अब कटते-छंटते केवल 137 कैरेट रह गया है। आजकल यह हीरा फ्रांस में लूवर की अपोलो-वीथिका में प्रदर्शित है। इसका मूल्य अड़तालीस सहस्र पाउंड कूता गया है।

परथालिस

प्राचीन रोम के इतिहास लेखक प्लिनी (प्रथम-शती ई०) के अनुसार परथालिस नामक नगर कलिंग (उड़ीसा) की राजधानी था। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है। (दे० कलिंग)

परनाला=**पन्हाला**

परभणी (महाराष्ट्र)

इस जिले से पाषाणयुगीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। गोदावरी तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियों में कंकड़ तथा चिकनी मिट्टी की स्तरों में परिमृत जीवों की हड्डियाँ मिली हैं। यह भूभाग अशोक के समय उसके राज्य के

दक्षिणी भाग को जाने वाले मार्ग पर स्थित था। परभणी एक समय देवगिरि के यादव नरेशों के अधिकार में था। नगर में स्थित किला इसी काल का बना हुआ है। यादव नरेशों के समय में भगवान् शिव की पूजा बहुत प्रचलित थी। परभणी ज़िले में वे घटनास्थलियां हैं जहाँ बहमनी रियासतों में से अहमदनगर तथा बरार में परस्पर लड़ाइयाँ हुई थीं।

परमकांबोज

'लोहान् परम कांबोजानृषिकानुत्तरानपि, सहितांस्तान् महाराज व्यजयत् पाकशासनि:' महा० सभा० 27,25। अर्जुन ने अपनी उत्तर की दिग्विजय में परमकांबोजदेश पर विजय प्राप्त की थी। प्रसंगानुसार इसकी स्थिति वर्तमान सिक्यांग या चीनी तुर्किस्तान में जान पड़ती है। कंबोज कश्मीर के उत्तर पश्चिमी इलाके में था। परम कंबोज नाम अवश्य ही कंबोज के परे, उत्तर पश्चिम में स्थित देश को ही कहा गया होगा (दे० उत्तरऋषिक, कंबोज)।

परमरासस्थली (दे० पारासोली)

परली (दे० सज्जनगढ़)

परशुराम कुंड (दे० रामह्रद)

महाभारत अनुशासन० में वर्णित एक तीर्थ जो विपाशा या बियास के तट पर स्थित रहा होगा क्योंकि इसका उल्लेख पंजाब की इसी नदी के प्रसंग में है।

परशुरामक्षेत्र (दे० शूर्पारक)

शूर्पारक देश जो अपरांत भूमि में स्थित था, परशुराम के लिए सागर द्वारा उत्सृष्ट किया गया था—महा० शांति० 49,66-67।

परशुरामपुरी (राजस्थान)

पुष्कर और सांभर के बीच में सरस्वती नदी के तट पर स्थित है। कहा जाता है कि 15वीं शती के मध्य में आचार्य परशुराम देव ने इस स्थान से होकर आने जाने वाले यात्रियों को मुसलमान शासकों के उत्पीड़न से मुक्त किया था और इसी कारण यह स्थान इन्हीं के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। शेरशाह सूरी ने जो स्वयं इस स्थान पर आया था, परशुरामपुरी का नाम अपने पुत्र सलेमशाह के नाम पर सलेमाबाद कर दिया था।

परांत

अपरांत का संक्षिप्त रूप है। श्री चि० वि० वैद्य के अनुसार वर्तमान सूरत ज़िले का परिवर्ती प्रदेश महाभारत काल में परांत कहलाता था। (दे० अपरांत)

परा (पारा)=**पार्वती नदी**

परास=पलाशिनी (2)

परिचक्रा

शतपथ ब्राह्मण 13,5,4,7 में पंचाल देश की इस नगरी का नामोल्लेख है। बेवर ने इसका अभिज्ञान महाभारत की एकचक्रा (=अहिच्छत्र) से किया है—(दे० वैदिक इंडेक्स 1,494)। परिचक्रा नाम से शायद यह व्यंजित होता है कि इस नगरी का आकार चक्र के समान वर्तुल रहा होगा या संभव है अहिच्छेत्र की 'छत्र' से संबद्ध परम्परा से इसका नामकरण (चक्र—छत्र के समान गोल आकृति) हुआ हो—(दे० एकचक्रा, अहिच्छत्र)। परिचक्रा का रूपांतर परिवक्रा भी मिलता है।

परिणाह (दे० कुरु)

परिमुद

बंबई के निकट सालसेट द्वीप; यूनानी लेखकों का पेरीमूला (Perimula)।

परियर (ज़िला उन्नाव, उ० प्र०)

प्राचीन किंवदंती के अनुसार गंगातट पर स्थित इस ग्राम में वाल्मीकि ऋषि का आश्रम था। यहां से ताम्रयुगीन अवशेष भी प्राप्त हुए हैं (दे० वाल्मीकि आश्रम)।

परियार

केरल की नदी जो प्राचीन साहित्य की प्रतीची है। (दे० प्रतीची, चूर्णी)।

परिवक्रा (दे० परिचक्रा) (=अहिच्छत्र)

परीक्षितगढ़ (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

हस्तिनापुर से प्राय: 10 मील दूर स्थित है। कहा जाता है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् कुरुदेश की राजधानी हस्तिनापुर गंगा की बाढ़ में बह गई थी, इसलिए पांडवों के पौत्र और अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित ने हस्तिनापुर के निकट परीक्षितगढ़ नामक नया नगर बसाया था। परीक्षतिगढ़ नाम का कस्बा अभी तक विद्यमान हैं।

परुष्णी

पंजाब की प्रसिद्ध नदी रावी या इरावती का वैदिक नाम। इसका ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 75 (नदी सूक्त) में उल्लेख है—'इमं मे गंगेयमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया'। जान पड़ता है कि परुष्णी नाम वैदिक काल में ही प्रचलित था क्योंकि परवर्ती साहित्य में इस नदी का नाम इरावती मिलता है।

अलक्षेंद्र के समय के इतिहास लेखकों ने भी इस नदी को ह्यारोटीज (Hyarotis) लिखा है जो इरावती का ग्रीक उच्चारण है। रावी इरावती का ही अपभ्रंश है। ऋग्वेद के अनुसार परुष्णी नदी के तट पर ही तृत्स गण के राजा सुदास ने दस राजाओं की सम्मिलित सेना को हराया था। सुदास ने, जिसका राज्य परुष्णी के पूर्वी तट पर था, पश्चिम से आक्रमण करने वाले नरेश-संघ की सेना को नदी पार करने से पहले ही परास्त कर पीछे ढकेल दिया था। ऋग्वेद 8,74 ('सत्यमित्वा महेनदि परुष्ण्यवदेदिशम्' आदि) में परुष्णी के निकट अनु के वंशजों का निवास बताया गया है। अनु ययाति का पुत्र था। वैदिक काल के पश्चात् इसी प्रदेश में मद्रक तथा केकय बस गए थे। [दे० इरावती (1)]

परेंदा (ज़िला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

बहमनी राज्य के प्रसिद्ध बुद्धिमान् मंत्री महमूद गवां का बनवाया हुआ किला इस स्थान का मुख्य ऐतिहासिक स्मारक है। इसमें कई बड़ी-बड़ी तोपें रखी हुई हैं। 1605 ई० में मुगलों का अहमदनगर पर अधिकार होने के पश्चात् निज़ामशाही सुलतानों ने अपनी राजधानी यहां बनाई। तत्पश्चात् बीजापुर के सुलतान आदिलशाह ने इस पर अधिकार कर लिया। 1630 ई० में शाहजहां ने परेंदा का घेरा डाला और फिर औरंगजेब ने अपनी दक्षिण की सूबेदारी के समय इस पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया। परेंदा का क़िला तो अच्छी दशा में है किंतु पुराना नगर अब खंडहर हो गया है। खंडहरों का विस्तार देखते हुए जान पड़ता है कि प्राचीन समय में यह नगर काफी लम्बा-चौड़ा रहा होगा। संभवतः परेंदा का ही उल्लेख शिवाजी के राजकवि भूषण ने शिवराजभूषण 214 में परेझा के रूप में किया है—'बेदर कल्यान दे परेझा आदि कोट साहि एदिल गंवाए है नवाए निज सीस को'। यह किला बीजापुर के सुलतान आदिलशाह से शिवाजी ने छीन लिया था। इसी तथ्य का वर्णन भूषण ने किया है (एदिल=आदिलशाह)।

परेझा (दे० परेंदा)

परेश्वर (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

इस स्थान से नवपाषाणयुगीन अवशेष, पत्थर के उपकरणादि—प्राप्त हुए हैं जिससे इस स्थान की प्रागैतिहासिकता सिद्ध होती है।

परौली (ज़िला कानपुर, उ० प्र०)

भीतरगांव से दो मील उत्तर की ओर स्थित है। यहां भीतरगांव की भांति ही एक गुप्तकालीन शिखरसहित मंदिर के अवशेष हैं। यह सोलह

भुजाओं वाले आयताकार स्थान को घेरे हुए हैं। इसका मध्यवर्ती गर्भगृह वर्तुल है न कि भीतरगांव के मंदिर की भांति वर्गाकार।

पर्णखंड (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

बदरीनाथ के नीचे का पहाड़ी प्रांतर। कहा जाता है कि पार्वती ने शिव को प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या करते हुए धीरे-धीरे सब प्रकार के भोजन छोड़ दिए, यहां तक कि वृक्षों के पत्ते भी खाना त्याग दिया। इसी कारण वे अपर्णा कहलाईं। लोकश्रुति है कि यह भूमि पार्वती की तप:स्थली है और उनकी तपस्या का पत्तों या पर्णों से संबंध होने के कारण ही पर्णखंड कहलाती है। (पार्वती की इस घोर तपस्या का वर्णन कुमार संभव 5,28 में इस प्रकार है—'स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुन:, तदप्यपाकीर्ण-मत: प्रियंवदां, वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविद:'।) तुलसीदास ने भी रामचरित-मानस बाल० में अपर्णा का निर्देश इसी प्रकार किया है—'पुनि परिहरऊ सुखानउ परना, उमा नाम तब भयऊ अपरना'।

पर्णशाला

यामुन पर्वत की तलहटी में स्थित विद्वान ब्राह्मणों का एक ग्राम, जिसका उल्लेख महा० अनुशासन० 68, 3-4 में है —'मध्यदेशे महान् ग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह। गंगायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरध:। पर्णशालेति विख्यातो रमणीयो नराधिप, विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्मणाश्चावसंस्तथा।'

पर्णा=**पन्ना**

पर्णाशा

'चर्मण्वती तथा चैव पर्णाशा च महानदी'—महा० सभा० 9-20। पर्णाशा राजस्थान की बनास नदी है।

पर्णोत्स

चीनी यात्री युवानच्वांग के यात्रा-वृत्त में इस राज्य को कश्मीर के अधीन कहा गया है। पर्णोत्स का अभिज्ञान पूंछ (काश्मीर) से किया गया है। संभवत: पूंछ पर्णोत्स का ही अपभ्रंश है। (दे० स्मिथ—अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया—पृ० 368)

पर्शुस्थान

पर्शु नामक एक युयुत्सु जाति का पाणिनि ने उल्लेख किया है (अष्टाध्यायी 5,3,117) जो भारत के उत्तर-पश्चिम के प्रदेश में, संभवत: काबुल के निकटवर्ती भूभाग में निवास करती थी। पर्शुस्थान इन्हीं के देश का नाम था। यहीं अलसंदा की स्थिति थी। पर्शु या पार्शव का संबंध पारस

या ईरान देश से भी हो सकता है। (दे० अलसंदा)

पलाशपुर

जैन सूत्र अंतकृत दशांग में उल्लिखित एक नगर जहां के राजकुमार अतिमुक्त की कहानी इस सूत्र में वर्णित है। अभिज्ञान संदिग्ध है।

पलाशिनी

(1) (सौराष्ट्र, गुजरात) जूनागढ़ के निकट बहने वाली नदी जिसे अब पलाशियो कहते हैं। इसके नाम का कारण नदी तट पर पलाश (=ढाक) के जंगलों का होना है। पलाशियो के आसपास आज भी पलाश के विस्तृत जंगल पाए जाते हैं। गिरनार की चट्टान पर उत्कीर्ण रुद्रदामन् तथा सम्राट् स्कंदगुप्त के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि पूर्वकाल में सुवर्णसिकता (=वर्तमान सोनरेख) और पलाशिनी नदियों का पानी रोककर सिंचाई के लिए सुदर्शन नाम की एक झील बनवाई गई थी जिसका बांध घोर वर्षा के कारण टूट गया था। 453 ई० में सौराष्ट्र के शासक चक्रपालित ने जो स्कंदगुप्त द्वारा नियुक्त था इस बांध का जीर्णोद्धार करवाया था—'सुवर्णसिकता पलाशिनी प्रभृतीनां नदीनामतिमात्रोद्वृत्तैर्वेगैः सेतुमयमाणानुरूप प्रतिकारमपि'। (दे० गिरनार)।

(2) छोटा नागपुर की नदी। वह कोयल की सहायक नदी है। इसे अब परास कहते हैं।

पलासी (पश्चिमी बंगाल)

पलासी का प्रसिद्ध युद्ध 1757 ई० में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला तथा ईस्ट इंडिया कंपनी की सेनाओं के बीच हुआ था जिसमें क्लाइव की कूटनीति के कारण अंगरेजों की विजय हुई। पलासी के युद्ध के परिणामस्वरूप अंगरेजों का प्रभुत्व बंगाल में स्थापित हो गया। इस युद्ध से अंगरेजों को भारतीय राज्यों के दुर्बल सैनिक संघटन का पता चल गया। कहा जाता है कि पलाश अथवा ढाक के वृक्षों की बहुतायत होने से ही इस ग्राम को पलासी कहा जाता था। यह भागीरथी (गंगा) के वाम तट पर बसा है।

पलुर (ज़िला गंजम, उड़ीसा)

गोपालपुर के निकट यह अति प्राचीन बन्दरगाह था जहाँ से भारत के व्यापारी मलय प्रायद्वीप तथा जावा द्वीप की यात्रा के लिए जलयानों में सवार होते थे। निकटवर्ती ताम्रलिप्त (तामुलक) का बन्दरगाह भी पलुर का समकालीन था। इसका समृद्धिकाल ई० सन् के प्रारम्भ से उत्तरगुप्तकाल तक समझना चाहिए। प्राचीन रोम के भौगोलिक टॉलमी ने इसका उल्लेख किया है।

पल्लविहार

पालनपुर (गुजरात) का प्राचीन नाम। इसका उल्लेख जैन ग्रंथ तीर्थ-मालाचैत्य वंदन में इस प्रकार है—'कुंतीपल्लविहार तारणगढे सोपारकारासणे'।

पल्लावरम् (मद्रास)

मद्रास के निकट इस स्थान पर प्रागैतिहासिक युग के (नवपाषाणकालीन) अनेक समाधिस्थल पाए गए थे जिनमें अनेक शवों के अवशेष विद्यमान थे।

पवनगढ़ (महाराष्ट्र)

(1) पवनगढ़ के दुर्ग पर 17वीं शती के मध्य में अफ़जलखाँ को मारने के पश्चात् महाराष्ट्रकेसरी शिवाजी ने अपना अधिकार कर लिया था। पहले यह दुर्ग बीजापुर के सुलतान के अधीन था।

(2)=पावागढ़ (दे० चांपानेर)

पवाया=पदमपवाया (दे० पद्मावती)

पवित्रा

विष्णुपुराण 2,4,43 में उल्लिखित कुशद्वीप की एक नदी—'धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा, विद्युदंभामही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः'।

पवैया (प० पाकि०)

छठी शती ई० में हूण नरेश तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरकुल के राज्य का एक नगर जो चिनाब नदी के तट पर बसा था और हूणों की शक्ति का, शाकल या स्यालकोट के साथ ही, प्रसिद्ध केन्द्र था। (दे० जर्नल ऑव बंगाल एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी मार्च 1928, पृ० 33)

पशुपतिनाथ (नेपाल)

कठमंडू से २ मील उत्तर में बसे हुए इस स्थान पर विष्णुमती नदी के तट पर प्रसिद्ध शिवमंदिर स्थित है। पशुपतिनाथ का मंदिर बहुत प्राचीन है और शायद महाभारत में इसी को पशुभूमि नाम से अभिहित किया गया है। शिवरात्रि के दिन यहां भारत और नेपाल भर के यात्री पहुंचते हैं। (दे० पशुभूमि)।

पशुभूमि

महाभारत सभा० 30,9 में भीम की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में इस स्थान पर उनकी विजय का वर्णन है—'अनघानभयांश्चैव पशुभूमिं च सर्वशः, निवृत्य च महाबाहुर्मंदधारं महीधरम्'। कई विद्वानों के मत में पशुभूमि पशुपतिनाथ (नेपाल) का पर्याय है किंतु श्री वा० श० अग्रवाल का मत है कि यह स्थान गिरिव्रज (मगध) के आसपास की चरागाहभूमि का नाम था।

जैन आगमों के अनुसार दस सहस्र गौओं की चारण-भूमि को व्रज कहते थे और गिरिव्रज का नाम यहां विस्तृत चरागाहों की स्थिति के कारण ही हुआ था।

पहाड़पुर (ज़िला राजशाही, बंगाल)

श्री का० ना० दीक्षित ने पुरातत्व विभाग की ओर से किए गए उत्खनन में इस स्थान से एक गुप्तकालीन मंदिर के ध्वंसावशेषों को प्राप्त किया था। खंडहरों से गुप्तसंवत् 159=478-479 ई० का एक दानपट्ट भी मिला था। इसमें किसी ब्राह्मणदम्पति द्वारा एक जैन (निर्ग्रन्थ) विहार के लिए भूमिदान का उल्लेख है। पहाड़पुर में राधा और कृष्ण की मूर्तियां भी मिली हैं। गुप्तकाल की ऐसी मूर्तियाँ कहीं और प्राप्त नहीं हुई हैं।

पहूज

यमुना की सहायक नदी जो बुंदेलखंड के क्षेत्र में बहती है। यह भीष्मपर्व महा० में उल्लिखित पुष्पवती हो सकती है।

पांचजन्य

महाभारत के अनुसार द्वारका के पूर्व की ओर स्थित रैवतक नामक पर्वत के निकट पांचजन्य नामक वन सुशोभित था। इसी के पास सर्वर्तुक वन भी था। इन दोनों वनों को चित्रित वस्त्र की भांति रंग-बिरंगा कहा गया है—'चित्रकंबल वर्णाभंपांचजन्यवनं तथा सर्वर्तुकं वनंचैव भाति रैवतकं प्रति' सभा० 38 (दाक्षिणात्य पाठ)।

पांचाल (दे० पंचाल)

पांडर=पांडव (२)

पांडरेथान (कश्मीर)

श्रीनगर से तीन मील उत्तर में है। कहा जाता है कि अशोक का बसाया हुआ श्रीनगर इसी स्थान पर था। यहां स्थित प्राचीन मंदिर वास्तुशैली की दृष्टि से अनंतनाग के प्रसिद्ध मार्तंड मंदिर की परम्परा में है। (दे० श्रीनगर।)

पांडव

(1) दे० **पन्ना**

(2) (बिहार) **राजगृह** की पांच पहाड़ियों में से एक का नाम। महाभारत सभा० 21 में इसे पांडर कहा है जो पांडव का रूपांतरण या पाठांतर हो सकता है। इसके नाम से, इसका संबंध पांडवों से सूचित होता है। महा० सभा० 21 दाक्षिणात्य पाठ में पांडर का उल्लेख इस प्रकार है—'पांडर विपुले चैव तथा वाराहकेऽपिच, चैत्यके च गिरिश्रेष्ठे मातंगे च शिलोच्चये'।

पालीग्रंथों में पांडर को पांडव लिखा गया है (दे० ए गाइड टु राजगीर पृ० 1)

पांडवगुफा (ज़िला नासिक, महाराष्ट्र)

नासिक से 5 मील दूर बंबई के मार्ग पर 24 प्राचीन गुफाएं हैं जिनमें अनेक बौद्ध मूर्तियां अवस्थित हैं। स्थानीय जनश्रुति में ये गुफाएं मूलत: पांडवों से संबंधित हैं।

पांडुआ (बंगाल)

गौड़ से 20 मील दूर बंगाल की प्राचीन राजधानी। 1575 ई० में अकबर के द्वारा नियुक्त बंगाल के सूबेदार ने गौड़नगरी के सौंदर्य से आकृष्ट होकर अपनी राजधानी पांडुआ से हटा कर गौड़ में बनाई थी (दे० **गौड़**)

पांडुकेश्वर (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

जोशीमठ से बदरीनाथ के मार्ग में 9 मील दूर प्राचीन स्थान है। स्थानीय किंवदंती में इसका संबंध महाभारत के महाराजा पांडु से बताया जाता है। कहते हैं कि यहाँ योगबदरी के मंदिर की मूर्ति की स्थापना महाराज पांडु ने की थी तथा यही उनका जन्म-स्थान भी है।

पांडुखोली (तहसील रानीखेत, ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

दूनागिरि पहाड़ से चार मील उत्तर पूर्व पांडुखोली नामक पर्वत है जहां किंवदंती के अनुसार पांडवों ने अपने अज्ञातवास का कुछ समय व्यतीत किया था।

पांडुरंग (अनाम, कंबोडिया)

प्राचीन भारतीय उपनिवेश चंपा का दक्षिणी भाग। पांचवी शती ई० के प्रारंभ में वहां चंपा के राजा धर्ममहाराज श्रीभद्रवर्मन का आधिपत्य था। वीरपुर या राजपुर में यहां की राजधानी थी।

पांडुराष्ट्र

श्री चि० वि० वैद्य के अनुसार यह महाभारत-काल में वर्तमान महाराष्ट्र का एक भाग था।

पांडुल (लंका)

महावंश 10,20 में उल्लिखित है। इसकी स्थिति उपतिष्य नामक ग्राम के दक्षिण में बताई गई है।

पांडुलेण (ज़िला नासिक, महाराष्ट्र)

प्रथम शती ई० पू० से द्वितीय शती ई० तक बनी हुई चैत्यविहार गुफाएं नासिक से 5 मील दूर स्थित हैं। ये त्रिरश्मि नामक पर्वत में बनी हैं। इनमें

से कुछ तो चैत्य हैं तथा अन्य विहार के रूप में निर्मित हैं। यहां के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ये गुफाएं आंध्रकालीन राजाओं के समय में बनी थीं। इन गुफाओं की मूर्तिकारी से आंध्रकालीन संस्कृति पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। अभिलेखों से आंध्रराजा शातकर्णी तथा पुलोमी की धार्मिक श्रद्धा तथा उनके राज्यविस्तार का हाल मिलता है। ये गुफाएं बौद्धधर्म के हीनयान संप्रदाय के भिक्षुओं के लिए बनी थीं। इनकी मूर्तिकला में सांची की कला की भांति ही बुद्ध की मूर्तियां नहीं बनाई गई हैं। उनकी उपस्थिति का ज्ञान उनके उष्णीष तथा अन्य प्रतीकों द्वारा कराया गया है।

पांडुवाला (ज़िला सहारनपुर, उ० प्र०)

हरद्वार से प्राय 10 मील पूर्व और मुंढाल से छ: मील पर यहां एक प्राचीन नगर के खंडहर हैं। कनिंघम ने पुरातत्त्व विभाग की ओर से 1891 ई० की रिपोर्ट में इस स्थान को ब्रह्मपुर राज्य की राजधानी माना है जहां चीनी यात्री युवानच्वांग, 630 ई० के लगभग आया था।

पांड्य

सुदूर दक्षिण का प्राचीन राज्य। कृतमाला और ताम्रपर्णी पांड्य देश की मुख्य नदियां थीं। महाभारत सभा० 31,16 में पांड्य देश के राजा का सहदेव द्वारा परास्त होने का वर्णन है...'पुलिदांश्च रेणे जित्वा ययौ दक्षिणतः पुरः, युयुधे पांड्य-राजेन दिवसं नकुलानुजः'। टॉलमी (लगभग 150 ई०) ने पांडुदेश को पांडुओयी लिखा है और इसको पंजाब से संबद्ध बताया है। संभव है सुदूर दक्षिण के पांड्य देश और उत्तर के पांडुदेश में कुछ संबंध रहा हो। प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि शूरसेन या मथुरा, जो पांडवों के प्रिय सखा श्रीकृष्ण की जन्म भूमि होने के नाते टॉलमी द्वारा उल्लिखित पांडुदेश हो सकता है, से दक्षिण भारत का कुछ संबंध अवश्य था जैसा कि मेगस्थनीज़ के वृत्तांत से भी सूचित होता है। जिस प्रकार शूरसेन देश की राजधानी मथुरा थी उसी प्रकार पांड्य देश की राजधानी भी मधुरा या वर्तमान मदुरा (मदुरै) थी। संभवतः उत्तर के पांडुलोग ही कालांतर में दक्षिण भारत में जा कर बस गए होंगे। कात्यायन ने पांड्य शब्द की उत्पत्ति पांडु से ही बताई है। अशोक के 13 शिलाभिलेखों में पांड्य को चोल और सतियापुत्त के साथ मौर्य साम्राज्य के प्रत्यंत देशों में माना गया है। कालिदास ने रघुवंश 6,60-61-62 63-64-65 में इंदुमती-स्वयंवर के प्रसंग में पांड्यराज तथा उसके देश का मनोहारी वर्णन किया है जिसका एक अंश यह है 'पांड्योऽ यमंसार्पितलबहारः क्लृप्तांगरागोहरिचंदनेन, आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः। तांबूलबल्ली परिण-

द्रपूगास्त्वेलालतालिंगितचंदनासु, तमालपत्रास्तरणासुरंतुं प्रसीद शश्वन् मलय-स्थलीषु'। इन पद्यों में पांड्य देश के चंदन, तांबूल, एला (इलायची) तथा तमाल वृक्षों तथा लताओं का वर्णन है और मलय पर्वत की स्थिति इस देश में बताई गई है। रघु० 6,65 में पांड्यराज को 'इंदीवर श्यामतनु' कहा है जो सुदूर दक्षिण के भारतीयों का स्वाभाविक शरीर-रंग है। श्री रायचौधरी के अनुसार प्राचीन पांड्य देश में वर्तमान मदुरा, रामनाद और तिन्नेवली के ज़िले और केरल का दक्षिणी भाग सम्मिलित था तथा इसकी राजधानी कोरकई और मदुरा (दक्षिण मथुरा) में थी। (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, पृ० 270)। (दे० कोरकई, मदुरा)

पांवता साहब (ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

देहरादून से 30 मील पश्चिम की ओर है। इस गुरुद्वारे की स्थापना 1684 ई० में गुरु गोविंद सिंह ने की थी। यह स्थान अपनी प्राकृतिक शोभा के लिए प्रख्यात है।

पांशुराष्ट्र

महाभारत सभा० 52,27 में इस देश का उल्लेख है—'पांशुराष्ट्राद्वसुदानो राजा षड्विंशतिं गजान्, अश्वानां च सहस्रे द्वे राजन् कांचन मालिनाम्'—अर्थात् युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपायन या भेंट के लिए राजा वसुदान ने पांशुदेश से छब्बीस हाथी और दो सहस्र सुवर्णमालाविभूषित घोड़े (भेजे)। श्रीमोतीचंद के अनुसार पांशुराष्ट्र उड़ीसा में स्थित था। (दे० मोतीचंद, उपायन पर्व, ए स्टडी)

पाखल (पाखल तालुका, ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

वारंगल से लगभग 32 मील पूर्व में स्थित यह झील 700 वर्ष प्राचीन कही जाती है। पाखल नदी के आरपार 2000 गज़ का बांध बनाकर इस कृत्रिम झील का निर्माण किया गया था। बांध दो नीची पहाड़ियों के बीच में है। कहा जाता है कि जब ककातीय नरेश प्रतापरुद्र ने दिल्लीसम्राट् (मु० तुगलक) को कर देना बंद कर दिया तो सम्राट् के सेनापति शिताब खां ने इस झील का बांध तोड़ दिया और झील के किनारे छिपे हुए खजाने को उठा कर ले गया। ककातीय नरेश गणपति का एक अभिलेख झील के बांध पर उत्कीर्ण है जिसमें उसे कलिंग, शक, मालव, कोरल, हूण, कौर, अरिमर्द, मगध, नेपाल आदि देशों के नरेशों का अधिपति बताया गया है।

पागन [दे० ताम्रद्वीप (2)]

पाटण=**पाटन** (दे० अन्हलवाड़ा)

पाटन (1)=अन्हलवाड़ा
(2)=सोमनाथ
(3)=पाटल
(4)=देवपाटन

पाटनगढ़ (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर के पश्चिम में स्थित पाटनगढ़ के दुर्ग की गणना गढ़मंडला की वीरांगना रानी दुर्गावती के श्वसुर संग्राम सिंह (मृत्यु 1541 ई०) के बावनगढ़ों में की जाती थी।

पाटनगर

कर्निघम ने पाटनगर का भद्रावती (ज़िला चांदा, म० प्र०) से अभिज्ञान किया है। (दे० भद्रावती)

पाटनचेर (ज़िला मदेक, आं० प्र०)

वारंगल-नरेशों के समय में यह समृद्धिशाली नगर था। यहां 12वीं शती से 15वीं शती तक के हिंदू मंदिरों के अवशेष हैं। 13वीं शती में निर्मित जैन मंदिर तथा काले पत्थर की बनी तीर्थंकरों की विशाल प्रतिमाएं भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक स्तंभ पर उत्कीर्ण कमलपुष्प के चतुर्दिक राशिमंडल के चित्र अंकित हैं। कुछ अन्य प्राचीन भूमिगत मंदिरों के अवशेष भी यहां से प्राप्त हुए हैं।

पाटल (सिंध, पाकि०)

यह स्थान वर्तमान ब्राह्मनाबाद के निकट था। इसका उल्लेख अलक्षेंद्र (सिकंदर) के भारत पर आक्रमण (327 ई० पू०) का वृत्तांत लिखने वाले यूनानी इतिहासकारों ने किया है। उस समय यहां एक शक्तिशाली राजा राज्य करता था। डायोडोरस लिखता है कि पाटल का शासन-प्रबंध ग्रीक राज्य स्पार्टा के समान ही होता था।

पाटलावती

चंबल की सहायक नदी जिसका उल्लेख मालतीमाधव अंक 9 में है।

पाटलि=पाटलिपुत्र

पाटलिग्राम

महावग्ग में उल्लिखित पाटलिपुत्र का नाम।

पाटलिपुत्र=पटना (बिहार)।

गौतम बुद्ध के जीवनकाल में, बिहार में, गंगा के उत्तर की ओर लिच्छवियों का वृज्जिगणराज्य तथा दक्षिण की ओर मगध का राज्य था। बुद्ध जब अंतिम

बार मगध गए थे तो गंगा और शोण नदियों के संगम के पास पाटलि नामक ग्राम बसा हुआ था जो पाटल या ढाक के वृक्षों से आच्छादित था। मगधराज अजातशत्रु ने लिच्छवीगणराज्य का अंत करने के पश्चात्, एक मिट्टी का दुर्ग पाटलिग्राम के पास बनवाया जिससे मगध की लिच्छवियों के आक्रमणों से रक्षा हो सके। बुद्धचरित 22,3 से सूचित होता है कि यह किला मगधराज के मंत्री वर्षकार ने बनवाया था। अजातशत्रु के पुत्र उदायिन् या उदायिभद्र ने इसी स्थान पर पाटलिपुत्र नगर की नींव डाली। पाली ग्रंथों के अनुसार भी नगर का निर्माण सुनिधि और वस्सकार (=वर्षकार) नामक मंत्रियों ने करवाया था। पाली अनुश्रुति के अनुसार गौतम बुद्ध ने पाटलि के पास कई बार राजगृह और वैशाली के बीच आते-जाते गंगा को पार किया था और इस ग्राम की बढ़ती हुई सीमाओं को देखकर भविष्यवाणी की थी कि यह भविष्य में एक महान् नगर बन जाएगा। अजातशत्रु तथा उसके वंशजों के लिए पाटलिपुत्र की स्थिति महत्त्वपूर्ण थी। अब तक मगध की राजधानी राजगृह में थी किंतु अजातशत्रु द्वारा वैशाली (उत्तर बिहार) तथा काशी की विजय के पश्चात् मगध के राज्य का विस्तार भी काफी बढ़ गया था और इसी कारण अब राजगृह से अधिक केंद्रीय स्थान पर राजधानी बनाना आवश्यक हो गया था। जैनग्रंथ विविध तीर्थकल्प में पाटलिपुत्र के नामकरण के संबंध में एक मनोरंजक कथा का उल्लेख है। इसके अनुसार कुणिक अजातशत्रु की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र उदयी ने अपने पिता की मृत्यु के शोक के कारण अपनी राजधानी को चंपा से अन्यत्र ले जाने का विचार किया और शकुन बताने वालों को नई राजधानी बनाने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में भेजा। ये लोग खोजते-खोजते गंगातट पर एक स्थान पर पहुंचे। वहां उन्होंने पुष्पों से लदा हुआ एक पाटल वृक्ष (ढाक या किंशुक) देखा जिस पर एक नीलकंठ बैठा हुआ कीड़े खा रहा था। इस दृश्य को उन्होंने शुभ शकुन माना और यहां पर मगध की नई राजधानी बनाने के लिए राजा को मंत्रणा दी। फलस्वरूप जो नया नगर उदयी ने बसाया उसका नाम पाटलिपुत्र या कुसुमपुर रक्खा गया। उदयी ने यहाँ श्री नेमिका चैत्य बनाया और स्वयं जैन धर्म में दीक्षित हो गया। विविधतीर्थ कल्प में चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, अशोक और कुणाल को क्रमशः पाटलिपुत्र में राज करते बताया गया है। जैन साधु स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में ही तपस्या की थी। इस ग्रंथ में नवनंद और उनके वंश को नष्ट करने वाले चाणक्य का भी उल्लेख है। इनके अतिरिक्त सर्वकलाविद् मूलदेव और अचल सार्थवाह श्रेष्ठी का नाम

भी पाटलिपुत्र के संबंध में आया है। वायुपुराण के अनुसार कुसुमपुर या पाटलिपुत्र को उदयी ने अपने राज्याभिषेक के चतुर्थ वर्ष में बसाया था। यह तथ्य गार्गी संहिता की साक्षी से भी पुष्ट होता है। परिशिष्टपर्वन् (जैकोबी द्वारा संपादित, पृ० 42) के अनुसार भी इस नगर की नींव उदायी (=उदयी) ने डाली थी। पाटलिपुत्र का महत्त्व शोण-गंगा के संगम के कोण में बसा होने के कारण, सुरक्षा और व्यापार—दोनों ही दृष्टियों से, शीघ्रता से बढ़ता गया और नगर का क्षेत्रफल भी लगभग 20 वर्ग मील तक विस्तृत हो गया। श्री चिं०वि० वैद्य के अनुसार महाभारत के परवर्ती संस्करण के समय से पूर्व ही पाटलिपुत्र की स्थापना हो गई थी, किंतु इस नगर का नामोल्लेख इस महाकाव्य में नहीं है जब कि निकटवर्ती राजगृह या गिरिव्रज और गया आदि का वर्णन कई स्थानों पर है। पाटलिपुत्र की विशेष ख्याति भारत के ऐतिहासिक काल के विशालतम साम्राज्य—मौर्य साम्राज्य की राजधानी के रूप में हुई। चंद्रगुप्त मौर्य के समय के पाटलिपुत्र की समृद्धि तथा शासन-सुव्यवस्था का वर्णन यूनानी राजदूत मेगेस्थनीज़ ने भलीभांति किया है जिसमें पाटलिपुत्र के स्थानीय शासन के लिए बनी एक समिति की भी चर्चा की गई है। उस समय यह नगर 9 मील लंबा तथा 1½ मील चौड़ा एवं चतुर्भुजाकार था। चंद्रगुप्त के भव्य राजप्रासाद का उल्लेख भी मेगेस्थनीज़ ने किया है जिसकी स्थिति डा० स्पूनर के अनुसार वर्तमान कुम्हरार के निकट रही होगी। यह चौरासी स्तंभों पर आधृत था। इस समय नगर के चतुर्दिक् लकड़ी का परकोटा तथा जल से भरी हुई गहरी खाई भी थी। अशोक ने पाटलिपुत्र में बौद्धधर्म की शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए दो प्रस्तर-स्तंभ प्रस्थापित किए थे। इनमें से एक स्तंभ उत्खनन में मिला भी है। अशोक के शासनकाल के 18वें वर्ष में कुक्कुटाराम नामक उद्यान में मोगलीपुत्र तिस्सा (तिष्य) के सभापतित्व में द्वितीय बौद्ध धर्म-संगीति (महासम्मेलन) हुई थी। जैन अनुश्रुति में भी कहा गया है कि पाटलिपुत्र में ही जैन धर्म की प्रथम परिषद् का सत्र संपन्न हुआ था। इसमें जैन धर्म के आगमों को संगृहीत करने का कार्य किया गया था। इस परिषद् के सभापति स्थूलभद्र थे। इनका समय चौथी शती ई० पू० में माना जाता है। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र से ही संपूर्ण भारत (गंधारदेश सहित) का शासन संचालित होता था। इसका प्रमाण अशोक के भारत भर में पाए जाने वाले शिलालेख हैं। गिरनार के रुद्रदामन्-अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि मौर्यकाल में मगध से सैकड़ों मील दूर सौराष्ट्र-प्रदेश में भी पाटलिपुत्र का शासन चलता था। मौर्यों के पश्चात् शुंगों की राजधानी भी पाटलिपुत्र में ही रही। इस समय

यूनानी मेनेंडर ने साकेत और पाटलिपुत्र तक पहुंचकर देश को आक्रांत कर डाला किंतु शीघ्र ही पुष्यमित्र शुंग ने इसे परास्त करके इन दोनों नगरों में भली प्रकार शासन स्थापित किया। गुप्तकाल के प्रथम चरण में भी गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में ही स्थित थी। कई अभिलेखों से यह भी जान पड़ता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने, जो भागवत धर्म का महान् पोषक था अपने साम्राज्य की राजधानी अयोध्या में बनाई थी। चीनी यात्री फाह्यान ने जो इस समय पाटलिपुत्र आया था, इस नगर के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि यहां के भवन तथा राजप्रासाद इतने भव्य एवं विशाल थे कि शिल्प की दृष्टि से उन्हें अतिमानवीय हाथों का बनाया हुआ समझा जाता था। इस समय के (गुप्तकालीन) पाटलिपुत्र की शोभा का वर्णन संस्कृत कवि वररुचि ने इस प्रकार किया है—'सर्ववीतभयैः प्रकृष्टवदनैर्नित्योत्सवव्यापृतैः, श्रीमद्रत्नविभूषणांगरचनैः स्रग्गंधवस्त्रोज्ज्वलैः, क्रीडासौख्यपरायणैर्विरचित-प्रख्यातनामा गुणैर्भूमिः पाटलिपुत्रचारुतिलका स्वर्गायते सांप्रतम्'। पश्चगुप्त-काल में पाटलिपुत्र का महत्व गुप्त साम्राज्य की अवनति के साथ-साथ कम हो चला। तत्कालीन मुद्राओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गुप्त साम्राज्य के ताम्र-सिक्कों की टकसाल समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त द्वितीय के समय में ही अयोध्या में स्थापित हो गई थी। छठी शती ई० में हूणों के आक्रमण के कारण पाटलिपुत्र की समृद्धि को बहुत धक्का पहुंचा और उसका रहा-सहा गौरव भी जाता रहा। 630-645 ई० में भारत की यात्रा करने वाले चीनी पर्यटक युवान-च्वांग ने 638 ई० में पाटलिपुत्र में सैंकड़ों खंडहर देखे थे और गंगा के पास दीवार से घिरे हुए इस नगर में उसने केवल एक सहस्र मनुष्यों की आबादी ही पाई। युवानच्वांग ने लिखा है कि पुरानी बस्ती को छोड़कर एक नई बस्ती बसाई गई थी। महाराज हर्ष ने पाटलिपुत्र में अपनी राजधानी न बना-कर कान्यकुब्ज को यह गौरव प्रदान किया। 811 ई० के लगभग बंगाल के पाल-नरेश धर्मपाल द्वितीय ने कुछ समय के लिए पाटलिपुत्र में अपनी राजधानी बनाई। इसके पश्चात् सैंकड़ों वर्ष तक यह प्राचीन प्रसिद्ध नगर विस्मृति के गर्त में पड़ा रहा। 1541 ई० में शेरशाह ने पाटलिपुत्र को पुनः एक बार बसाया क्योंकि बिहार का निवासी होने के कारण वह इस नगर की स्थिति के महत्व को भलीभांति समझता था। अब यह नगर पटना कहलाने लगा और धीरे-धीरे बिहार का सबसे बड़ा नगर बन गया। शेरशाह से पहले बिहार प्रांत की राजधानी बिहार नामक स्थान में थी जो पाल-नरेशों के समय में उद्दंडपुर नाम से प्रसिद्ध था। शेरशाह के पश्चात् मुगल-काल में पटना ही में बिहार

प्रांत की राजधानी स्थायी रूप से रही। ब्रिटिश काल में 1892 में पटना को बिहार-उड़ीसा के संयुक्त सूबे की राजधानी बनाया गया।

पटने में बांकीपुर तथा कुम्हरार के स्थान पर उत्खनन द्वारा अनेक प्राचीन अवशेष प्रकाश में लाए गए हैं। चंद्रगुप्त मौर्य के समय के राजप्रासाद तथा नगर के काष्ठनिर्मित परकोटे के चिन्ह भी डा० स्पूनर को 1912 में मिले थे। इनमें से कई संरचनाएं काष्ठ के स्तंभों पर आधृत मालूम होती थीं। वास्तव में मौर्यकालीन नगर कुम्हरार के स्थान पर ही बसा था। अशोककालीन स्तंभ के खंडित अवशेष भी खुदाई में प्राप्त हुए थे। बौद्ध ग्रंथों में वर्णित कुक्कुटाराम (जहां अशोक के समय प्रथम बौद्ध संगीति हुई थी) के अतिरिक्त यहां कई अन्य बौद्धकालीन स्थान भी उत्खनन के परिणामस्वरूप प्रकाश में आए हैं। ऊगमसर के निकट पंचपहाड़ी पर कुछ प्राचीन खंडहर हैं जिनमें अशोक के पुत्र महेंद्र के निवास-स्थान का सूचक एक टीला बताया जाता है जिसे बौद्ध आज भी पवित्र मानते हैं। यहां प्राचीन सप्त सरोवरों में से रामसर (रामकटोरा) और श्यामसर (सेवे) और मंगलसर आज भी स्थित हैं। गौतम-गोत्रीय जैनाचार्य स्थूलभद्र (कुछ विद्वानों के मत में ये बौद्ध थे) के स्तूप के अवशेष गुलज़ारबाग स्टेशन के निकट बताए जाते हैं। स्तूप के पास की भूमि कुछ उभरी हुई है जिसे स्थानीय लोग कमलदह कहते हैं। जनश्रुति है कि मैथिलकोकिल विद्यापति को इस तड़ाग के कमल बहुत प्रिय थे। श्री का० प्र० जायसवाल-संस्था द्वारा 1953 की खुदाई में मौर्य प्रासाद के दक्षिण की ओर आरोग्यविहार मिला है, जिसका नाम यहां से प्राप्त मुद्राओं पर है। इन पर धन्वन्तरि शब्द भी अंकित है। जान पड़ता है कि यहां रोगियों की परिचर्या होती थी। कुम्हरार के हाल के उत्खनन से ज्ञात होता है कि प्राचीन पाटलिपुत्र दो बार नष्ट हुआ था। परिनिब्बान सुत्त में उल्लेख है कि बुद्ध की भविष्यवाणी के अनुसार यह नगर केवल बाढ़, अग्नि या पारस्परिक फूट से ही नष्ट हो सकता था। 1953 की खुदाई से यह प्रमाणित होता है कि मौर्य सम्राटों का प्रासाद अग्निकांड से नष्ट हुआ था। शेरशाह के शासनकाल की बनी हुई शहरपनाह के ध्वंस पटना के पास प्राप्त हुए हैं। चौक थाना के पास मदरसा मसजिद है जो शायद 1626 ई० में बनी थी। इसी के निकट चहल सतून नामक भवन था जिसमें चालीस स्तंभ थे। इसी भवन में फरुखसियर और शाहआलम को अस्तोन्मुख मुग़ल-साम्राज्य की गद्दी पर बिठाया गया था। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के पिता हयातजंग की समाधि बेगमपुर में है। प्राचीन मसजिदों में शेरशाह की मसजिद और अंबर मसजिद हैं। सिखों के दसवें गुरु गोविंद सिंह का जन्म पटना में हुआ

था। उनकी स्मृति में एक गुरुद्वारा बना हुआ है।

वायुपुराण में पाटलिपुत्र को कुसुमपुर कहा गया है। कुसुम पाटल या ढाक का ही पर्याय है। कालिदास ने इस नगरी को पुष्पपुर लिखा है (दे० पुष्पपुर)

पाटलिपुर=पाटलिपुत्र (दे० पुष्पपुर)

पाटशिला

चीनी यात्री युवानच्वांग ने, जिसने भारत का भ्रमण 630-645 ई० में किया था, सिंध (पाकि०) के इस नाम के नगर का उल्लेख किया है। वह इस स्थान से होकर गुज़रा था। वाटर्स तथा कनिंघम के अनुसार पाटशिला नगरी वर्तमान हैदराबाद (सिंध) के स्थान पर बसी होगी। शायद इसी नगर को यूनानी लेखकों ने पाटल कहा है। पाटशिला का रूपांतर पाटशील है।

पाटशील=पाटशिला

पाढम (ज़िला मैनपुरी, उ० प्र०)

स्थानीय जनश्रुति के अनुसार परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने प्रसिद्ध सर्पसत्र इसी स्थान पर किया था। स्थान प्राचीन जान पड़ता है क्योंकि यहां के खंडहरों में कनिष्क, हुविष्क आदि के सिक्के तथा अतिप्राचीन आहत मुद्राएं मिली हैं।

पाणिप्रस्थ (दे० पानीपत)

पाताल

पुराणों में वर्णित पाताल का कुछ विद्वान् मध्य अमेरिका या मेक्सिको से करते हैं। (दे० श्री मानकद, पूना ओरिएंटलिस्ट 2,2)।

पानगल (ज़िला नालगोंडा, आं० प्र०)

(1) नालगोंडा नगर के समीप स्थित इस स्थान पर ककातीयनरेश उदयादित्य के बनवाए तीन प्रसिद्ध ऐतिहासिक मंदिर हैं जिनके नाम ये हैं—पंचलसोमेश्वर या पंचेश्वर, छायल सोमेश्वर या सीतारामेश्वर और वेंकटेश्वर। पंचेश्वर मंदिर वास्तु की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। इसमें 66 स्तंभ हैं जिन पर रामायण और महाभारत की कथाएं उत्कीर्ण हैं। छायल सोमेश्वर के मंदिर के शिवलिंग की छाया, लिंग के ठीक पीछे दिखलाई पड़ती है और इसी कारण इसे छायल मंदिर कहते हैं।

(2)=महबूब नगर

पानीगिरि (ज़िला नालगोंडा, आं० प्र०)

जनगांव स्टेशन से 30 मील दूर। यहां 350 फुट ऊंची पहाड़ी पर प्रायः 2000 वर्ष प्राचीन शातवाहन-कालीन बौद्ध उपनिवेश के भग्नावशेष स्थित हैं जिनमें स्तूप, चैत्य, विहारादि सम्मिलित हैं। इनकी दीवारें लगभग तीन फुट

मोटी है और बड़ी ईंटों की बनी हैं और दीवारों के बाहरी भाग को सुदृढ़ करने के लिए पृष्ठाधार बने हैं। कई सुन्दर मूर्तियां भी यहां के खंडहरों से मिली हैं जो अपने स्वाभाविक रचनाकौशल के कारण बहुत सुन्दर दिखाई देती हैं। मूर्तियों की मुख मुद्रा पर विशिष्ट भावों का मनोहर अंकन है। एक मूर्ति के कानों में भारी आभूषण हैं जिनके भार से कानों के निचले भाग फैलकर नीचे लटक गए हैं। इसके मस्तक पर जयपत्रों (laurels) का चित्रण है जिसके कारण कुछ विद्वानों के मत में वह मूर्ति यूनानी शैली से प्रभावित जान पड़ती है। एक अन्य महत्वपूर्ण कलावशेष पत्थर का खंडित जंगला है। इस पर तीन ओर मनोरंजक विषयों का अंकन है। सामने की ओर सुविकसित कमलपुष्प है जिसकी पंखड़ियां आकर्षक ढंग से अंकित की गई हैं (वृषभ की समानता मोहंजदारों की मुद्रा पर अंकित वृषभ से की जा सकती है) यह वृषभ भय के कारण भागता हुआ दिखलाया गया है। भय का चित्रण उसकी डरी हुई आंखों और उठी हुई पूंछ से बहुत ही वास्तविक जान पड़ता है। भारी भरकम हाथी अपने लंबे-लंबे दाँतों को आगे बढ़ाकर वृषभ का पीछा कर रहा है। बीच में खड़ा पुरुष हाथी को आगे बढ़ने से बहुत ही आत्मविश्वास के साथ रोक रहा है। जंगले के बाईं ओर कमलपुष्प का एक भाग अंकित है और इसके नीचे भावमयी मानवाकृति है। दाहिनी ओर भी यही दृश्य उकेरा गया है किंतु इसमें मनुष्य के स्थान में सिंह दिखलाया गया है। दूसरे शिलापट्ट पर संभवतः कुबेर की मूर्ति है जो किसी धनी का आधुनिक व्यंग चित्र सा लगता है। कुबेर को स्थूलोदर और स्वर्णाभूषणों से अलंकृत प्रदर्शित किया गया है। चेहरे-मोहरे से यह मूर्ति किसी दक्षिण भारतीय की आकृति के अनुरूप गढ़ी हुई प्रतीत होती है। एक अन्य पट्ट पर जो शायद किसी स्तूप या विहार के जंगले का खंड है, तैरने की मुद्रा में एक पुरुष, एक मेष और झपटते हुए दो सिंह प्रदर्शित हैं। एक दूसरे प्रस्तर-खंड पर मंद-मंद टहलता हुआ एक सिंह का अंकन उत्कृष्ट शिल्पकला का द्योतक है। पानीगिरि की खोज 1939-40 में हुई थी। यहाँ की उत्कृष्ट कला दक्षिण भारत में, अमरावती की मूर्तिशिल्प की परम्परा में है। दक्षिण के शातवाहन-कालीन सांस्कृतिक इतिहास पर पानीगिरि की खोज से नया प्रकाश पड़ा है।

पानीपत (ज़िला करनाल, हरयाणा)

यह प्राचीन नगर महाभारतकालीन कुरुक्षेत्र के प्रदेश में स्थित है। इसका शुद्ध नाम शायद पाणिप्रस्थ है। यह भारत के राजनैतिक भाग्य का निपटारा

करने वाले तीन प्रसिद्ध युद्धों की स्थली है। स्थानीय किंवदंती में पानीपत को पांडवों द्वारा कौरवों से मांगे गए पांच ग्रामों में सम्मिलित माना गया है किंतु इस तथ्य का उल्लेख महाभारत में नहीं है। (पांच ग्रामों के लिए दे० अविस्थल)। पानीपत की प्रथम लड़ाई 1526 ई० में बाबर और दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी में हुई थी जिसमें बाबर की विजय हुई और फलस्वरूप भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित हुआ। इस युद्ध में बाबर की विजय का कारण उसका तोपखाना था। भारत में बारूद का प्रयोग पहली बार इसी युद्ध में बाबर ने किया था। पानीपत की दूसरी लड़ाई अकबर और अफ़गानों में 1556 ई० में हुई थी। अकबर का सेनापति बैरामखां और अफगानों का हेमू (हिंदू वैश्य) था। अफगानों की बुरी तरह हार हुई और हेमू का बैरामखां ने वध कर दिया। इस युद्ध से अकबर के राज्य की नींव सुदृढ़ हो गई और उसे मुगलसाम्राज्य को सुदृढ़ रूप से स्थापित करके उसका विस्तार करने का अवसर मिला। परिणामस्वरूप भारत में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। पानीपत का तीसरा युद्ध अफ़गानिस्तान के बादशाह अहमदशाह अब्दाली की और सदाशिवराव भाऊ की अध्यक्षता में मराठों की सेनाओं के बीच 1761 ई० में हुआ था जिसमें मराठों की भयंकर हार होने के कारण उनकी बढ़ती हुई शक्ति को भारी धक्का पहुंचा। मराठों की शक्ति कम होने से अंगरेजों को भारत के दक्षिणी और पूर्वी भाग में अपने पांव जमाने का अच्छा मौका मिल गया। इस लड़ाई के पश्चात् मुगल साम्राज्य की पहले ही से घटी हुई शक्ति और भी क्षीण हो गई। इस प्रकार पानीपत के तीनों युद्धों का भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। राजनैतिक शक्ति का केन्द्र दिल्ली में होने के कारण उस पर अधिकार करने के लिए ही ये लड़ाइयां लड़ी गई थीं क्योंकि पानीपत को दिल्ली का प्रवेशद्वार ही समझना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि महाभारत के युद्ध की स्थली कुरुक्षेत्र भी पानीपत के पार्श्व देश में ही थी। नादिरशाह और मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह की सेनाओं में जो युद्ध हुआ था (1739 ई०) वह भी पानीपत से कुछ ही दूर पर करनाल के निकट हुआ था। महाराज हर्ष के समय का प्रसिद्ध नगर स्थानेश्वर या थानेसर पानीपत के निकट ही स्थित है।

पापापुर

बुद्धचरित 25,50 के अनुसार कुशीनगर में मृत्यु होने के पूर्व तथागत बुद्ध पापापुर आए थे जहां उन्होंने अपने भक्त चुंड के यहां सूकरमाद्दव भोजन स्वीकार किया था। पापापुर पावापुरी का संस्कृत रूपांतर है। इसे जैन साहित्य

में अपापा भी कहा गया है।

पावना

प्राचीन पुंड्र। यह बंगाल में गंगा की मुख्य धारा पद्मा के उत्तर की ओर का प्रदेश था। नदी के दक्षिण का भाग वंग कहलाता था।

पार

(1)=बार

(2) [दे० पारदा]

पारकनग

प्राचीन जैन तीर्थ जिसका नामोल्लेख जैनस्तोत्र तीर्थ माला चैत्य वंदन में इस प्रकार है—'जीरापल्लि फलर्द्धि पारकनगे शैरीसशंखेश्वरे'। यह ज़िला थारपारकर (सिंध, पाकि०) का कोई नगर है। (दे० ऐशेंट जैन हिम्स–पृ० 54)।

पारद

पारद नामक जाति का निवास स्थान (दे० वायु पुराण, 88, हरिवंश 1,14)। यह पारदा नदी (वर्तमान पार या परदी), जो ज़िला सूरत, गुजरात में बहती है, के तट के निकटवर्ती प्रदेश का नाम था। किंतु श्री नं० ला० डे के अनुसार यह पार्थिया या प्राचीन परशिया या ईरान का नाम है। संभव है पारद नाम के ये दो विभिन्न प्रदेश हों।

पारदा

नासिक से प्राप्त एक अभिलेख में पारदा नदी का उल्लेख है (दे० पारद)। वायुपुराण 44 तथा हरिवंशपुराण 1,14 में जिस पारदजाति का उल्लेख है वह शायद इसी नदी के तटवर्ती प्रदेश की निवासी थी।

पारदूर (ज़िला महबूबनगर, आं० प्र०)

इस स्थान पर हिंदूकालीन एक मंदिर है जो दक्षिण भारत की वास्तु शैली में निर्मित है। पारदूर की स्थिति वर्तमान गढ़वाल या प्राचीन समस्थान के अंतर्गत है।

पारयात्र

चीनी यात्री युवानच्वांग ने इस नगर का वर्णन करते हुए इसके राजा को वैश्य-जातीय बताया है। पारयात्र का अभिज्ञान वर्तमान बैराट (ज़िला जयपुर) से किया गया है जिसे महाभारतकालीन विराट (मत्स्य देश की राजधानी) माना जाता है। यह नगर अवश्य ही पारियात्र पर्वत की श्रेणियों के सन्निकट बसा होने से ही पारियात्र या पारयात्र कहलाता था।

पारस

ईरान या फ़ारस का प्राचीन भारतीय नाम। पारस-निवासियों को संस्कृत

साहित्य में पारसीक कहा गया है। रघुवंश 4,60 और अनुवर्ती श्लोकों में कालिदास ने पारसीकों और रघु के युद्ध और रघु की उन पर विजय का चित्रात्मक वर्णन किया है, 'भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्, तस्तार सरघाव्याप्तैः सक्षौद्रपटलैरिव' आदि। इसमें पारसीकों के श्मश्रुल शिरों का वर्णन है जिस पर टीका लिखते हुए चरित्रवर्धन ने कहा है—'पाश्चात्याः श्मश्रूणि स्थापयित्वा केशान्वपन्तीति तद्देशाचारोक्तिः' अर्थात् ये पाश्चात्य लोग शिर के बालों का मुंडन करके दाढ़ीमूंछ रखते हैं। यह प्राचीन ईरानियों का रिवाज था जिसे हूणों ने भी अपना लिया था। कालिदास को भारत से पारस देश को जाने के लिए स्थल मार्ग तथा जलमार्ग दोनों का ही पता था—'पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना, इंद्रियाख्यानिवरिपूं तत्वज्ञानेन संयमी'—रघु० 4,60। पारसीक स्त्रियों को कालिदास ने यवनी कहा है—'यवनी मुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः' रघु० 4,61। यवन शब्द प्राचीन भारत में सभी पाश्चात्य विदेशियों के लिए प्रयुक्त होता था यद्यपि आद्यतः यह आयोनिया के (Ionian) ग्रीकों की ही संज्ञा थी। कालिदास ने 'संग्रामास्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः' (रघु० 4,62) में पारसीकों को पाश्चात्य भी कहा है। इस पद्य की टीका करते हुए टीकाकार, सुमतिविजय ने पारसीकों को 'सिंधुतट वासिनो म्लेच्छराजान्' कहा है जो ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि रघु० 4,60 में (दे० ऊपर) रघु का, पारसीयों की विजय के लिए स्थलवर्त्म से जाना लिखा है जिससे निश्चित है कि इनके देश में जाने के लिए समुद्रमार्ग भी था। पारसीकों को कालिदास ने 4,62 (दे० ऊपर) में अश्वसाधन अथवा अश्वसेना से संपन्न बताया है। मुद्राराक्षस 1,20 में 'मेधाक्षः पंचमोऽस्मिन् पृथुतुरगबलपारसीकाधिराजः' लिखकर, विशाखदत्त ने पारसियों के सुदृढ़ अश्वबल की ओर संकेत किया है। कालिदास ने प्राचीन ईरान के प्रसिद्ध अंगूरों के उद्यानों का भी उल्लेख किया है—'विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम्, आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु' रघु० 4,65। विष्णुपुराण 2,3,17 में पारसीकों का उल्लेख इस प्रकार है—'मद्रारामास्तथाम्बष्ठाः, पारसीकादयास्तथा'। ईरान और भारत के संबंध अति प्राचीन हैं। ईरान के सम्राट् दारा ने छठी शती ई० पू० में पश्चिमी पंजाब पर आक्रमण करके कुछ समय के लिए वहां से कर वसूल किया था। उसके नक्शे-रुस्तम तथा बहिस्तां से प्राप्त अभिलेखों में पंजाब को दारा के साम्राज्य का सबसे धनी प्रदेश बताया गया है। संभव है गुप्तकाल के राष्ट्रीय कवि कालिदास ने इसी प्राचीन कटु ऐतिहासिक स्मृति के निराकरण के लिए रघु की पारसीकों पर

विजय का वर्णन किया है। वैसे भी यह ऐतिहासिक तथ्य है कि गुप्तसम्राट् महाराज समुद्रगुप्त को पारस तथा भारत के पश्चिमोत्तर अन्य प्रदेशों से संबद्ध कई राजा और सामंत कर देते थे तथा उन्होंने समुद्रगुप्त से वैवाहिक संबंध भी स्थापित किए थे। 8वीं शती ई० के प्राकृत ग्रंथ गौडवहो (गौड़वध) नामक काव्य में कान्यकुब्ज-नरेश यशोवर्मन की पारसीकों पर विजय का उल्लेख है।

पारसनाथ (ज़िला परभणी, महाराष्ट्र)

(1) जितूर के पास इस स्थान पर एक अनोखा प्राचीन जैन मंदिर है जो एक विशाल शैलपुंज में से तराश कर निर्मित किया गया है। मंदिर तक पहुंचने के लिए एक संकीर्ण, अंधेरा मार्ग है। मंदिर शिखर सहित है। मूर्तियां भी शैलकृत्त है। बीच की मूर्ति हरे पत्थर की है और बारह फुट ऊंची है।

(2) (ज़िला हजारीबाग, बिहार) मधुबन से $5\frac{1}{3}$ मील दूर पारसनाथ के पर्वतशिखर पर 4479 फुट की ऊंचाई पर चौबीस जैन मंदिर हैं जो चौबीस तीर्थंकरों के स्मारक माने जाते हैं। जैन साहित्य मे इस पर्वत को सम्मेतशिखर कहा गया है। यह भी जैन अनुश्रुति है कि इसी शिखर पर 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया था जिससे इस पहाड़ी का नाम पार्श्वनाथ या पारसनाथ हुआ। यह पहाड़ी जिसकी सर्वोच्च चोटी प्रायः 5000 फुट ऊंची है, हिमालय के दक्षिण में सबसे ऊंचे शिखर के रूप में प्रख्यात है। पहाड़ी के शिखर पर दिगंबरों और नीचे तलहटी में श्वेतांबरों के मंदिर स्थित हैं।

(3) (ज़िला बिजनौर, उ० प्र०) नगीने से लगभग बारह मील उत्तर-पूर्व की ओर पारसनाथ के खंडहर हैं। कई वर्ष पहले यहां उत्खनन किया गया था। उसमें कुछ ऐसे अवशेष मिले जिनसे ज्ञात होता है कि यह स्थान मध्यकाल में जैनधर्म का एक केंद्र था। जान पड़ता है कि बिहार के प्रसिद्ध तीर्थ पारसनाथ के समान ही यहां भी जैनों ने प्रत्येक तीर्थंकर के लिए एक मंदिर का निर्माण किया था। इन मंदिरों के खंडहर विस्तृत क्षेत्र में आज भी दिखाई देते हैं। तीर्थंकरों की अनेक मूर्तियां, मंदिरों के टूटे-फूटे सिरदल तथा सुदर स्तंभ पर्याप्त संख्या में मिले हैं। यहां से 1067 वि० सं०=1010 ई० की एक अभिलिखित प्रतिमा भी प्राप्त हुई है जो किसी तीर्थंकर की मूर्ति जान पड़ती है।

पारसमुद्र

लंका का एक प्राचीन नाम। कौटिल्य-अर्थशास्त्र (अध्याय 11) में पारसमुद्र को लंका का नाम कहा गया है। वाल्मीकि रामायण 6,3,21 में, 'पारेसमुद्रस्य'

कहकर लंका की स्थिति का जो वर्णन है वह भी इस नाम से संबंधित हो सकता है। पेरिप्लस में इसे पालीसिमंदु (Palaesimundu) कहा गया है।

पारा

(1)=पार्वती। म० प्र० की नदी जो सिंधु (काली सिंध) में मिलती है। पारा-सिंधु संगम पर प्राचीन काल की प्रसिद्ध नगरी पद्मावती बसी हुए थी। महाभारत वनपर्व के अंतर्गत पश्चिम दिशा के तीर्थों के वर्णन में इस नदी का नर्मदा के साथ ही उल्लेख है।

पाराशरह्रद (ज़िला करनाल, हरयाणा)

कुरुक्षेत्र के अंतर्गत बहलोलपुर ग्राम के समीप करनाल-कैथल मार्ग से 6 मील उत्तर में स्थित है। किंवदंती है कि महाभारतकार व्यास के पिता पराशर ऋषि का आश्रम इसी स्थान पर था। महाभारत के युद्ध में पराजित होकर अंतिम समय दुर्योधन इसी झील में जाकर छिप गया था जिसे द्वैपायनह्रद भी कहते थे।

पारासौली (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा के निकट महाकवि सूरदास का निवासस्थान। इनका जन्म रुनकता ग्राम में हुआ था किंतु कहा जाता है कि ये प्रायः पारासौली ही में रहते थे और यहीं इन्होंने अपनी अधिकांश अमृतमयी रचनाएं की थीं। श्री वल्लभाचार्य के मत में पारासौली ही मूलवृन्दावन है। कहा जाता है कि पारासौली शब्द परमरासस्थली से बिगड़कर बना है।

पारिपात्र (दे० पारियात्र)

पारियात्र

(1) पश्चिमोत्तरी विंध्य शैलमालाओं का एक नाम जिनमें संभवतः अर्वली की श्रेणियां भी सम्मिलित थीं (दे० पार्जिटर-जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसायटी 1994, पृ० 258)। रघुवंश 18,16 के अनुसार कुश के वंशज राजा अहीनगु के पुत्र पारियात्र ने पारियात्र पर्वत को जीता था। पर्वत का नाम संभवतः इसी प्रतापी नरेश के नाम पर हुआ था, 'तस्मिन् प्रयाते परलोकयात्रां जेतर्यरीणां तनयं तदीयम्, उच्चैः शिरस्त्वाज्जित पारियात्रं लक्ष्मीः सिषेवे किल पारियात्रम्' अर्थात् अहीनगु के परलोक सिधारने पर शत्रुजेता पारियात्र ने उच्च शिखर वाले पारियात्र को जीतकर राज्यश्री को प्राप्त किया। महाभारत शांति 129,4 में पारियात्र का उल्लेख है—'पारियात्रं गिरिं प्राप्य गौतमस्याश्रमो महान्'। यहां इस पर्वत पर गौतम ऋषि के आश्रम की स्थिति बताई गई है। विष्णुपुराण 2,3,3 में पारियात्र की गणना भारत के कुलपर्वतों में की गई है—

'महेंद्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः, विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुल-पर्वताः'। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में पारियात्र का उल्लेख ऋक्षगिरि के पश्चात् है—'विंध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतक...' दशपुर या मंदसौर से प्राप्त 532-553 ई० के कूपशिलाभिलेख में राज्य-मंत्री अभयदत्त को पारियात्र और (पश्चिम) समुद्र के बीच के प्रदेश के राज्य का मंत्री बताया गया है। इस समय मंदसौर में यशोवर्मन का राज्य था। श्री चि० वि० वैद्य ने पारियात्र का अभिज्ञान वर्तमान सुलेमान पर्वत से किया है क्योंकि उनके मत में रामायण में पारियात्र को सिंधु के पार बताया गया है। संभवतः पारियात्र सुलेमान और विंध्य की पश्चिमोत्तरश्रेणी दोनों ही पर्वतमालाओं का नाम था। नदियों, पर्वतों तथा नगरादि के द्विनाम भारतीय साहित्य में अनेक हैं। (दे० विंध्य)

(2) पारियात्र पर्वत का प्रदेश (हर्षचरित, उच्छ्वास 6)। युवानच्वांग ने यहां वैश्य राजा का शासन बताया है।

पार्वती

मध्यप्रदेश की एक नदी जिसे पारा भी कहते हैं। यह विंध्याचल की पश्चिमी श्रेणियों से निकल कर ग्वालियर प्रदेश में बहती हुए सिंध (या काली सिंध) में मिल जाती है। पार्वती-सिंधु-संगम पर प्राचीन काल की प्रसिद्ध नगरी पद्मावती बसी थी। पार्वती मेघदूत की निर्विंध्या हो सकती है। पार्वती का महाभारत भीष्मपर्व में उल्लेख है। कुछ लोगों के मत में निर्विंध्या वर्तमान नेवाज नदी है।

पार्श्वनाथ तीर्थ

जैन ग्रंथ विविध तीर्थ कल्प में सम्मेतशिखर का नाम है।

पालक

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में इस स्थान के शासक उग्रसेन का समुद्रगुप्त द्वारा हराए जाने का उल्लेख है—'कांचेयकविष्णुगोपअवमुक्तक-नीलराजवैंगीयकहस्तिवर्मा पालक्क उग्रसेन दैवराष्ट्रक कुवेर...' विंसेंट स्मिथ ने इस स्थान को ज़िला नैलोर (मद्रास) के अंतर्गत बताया है। पहले कुछ विद्वानों का मत था कि यह स्थान पालघाट का प्राचीन नाम है।

पालनपुर (दे० पल्लविहार)

पालना (ज़िला बिलासपुर, म० प्र०)

रतनपुर से 15 मील दूर इस स्थान पर भगवान् शंकर का प्राचीन देवालय है जिसे छत्तीसगढ़ प्रदेश का सर्वोत्कृष्ट मंदिर कहा जाता है।

पालमपेट (मुलुग तालुका, जिला वारंगल, आं० प्र०)

वारंगल से 40 मील दूर यह स्थान रामप्पा झील के किनारे बने हुए मध्य-युगीन मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। मुख्य मंदिर एक प्राचीन भित्ति से घिरा है जो बड़े-बड़े शिला-खंडों से निर्मित है। इसके उत्तरी और दक्षिणी कोनों पर भी मंदिर हैं। मंदिर का शिखर बड़ी किंतु हलकी ईंटों का बना है। ये ईंटें इतनी हल्की हैं कि पानी पर तैर सकती हैं। शैली की दृष्टि से यह मंदिर वारंगल के सहस्रस्तंभों वाले मंदिर से मिलता-जुलता है किंतु यह उसकी अपेक्षा अधिक अलंकृत है। इसके स्तंभों तथा छतों पर रामायण तथा महाभारत के अनेक आख्यान उत्कीर्ण हैं। देवी-देवों, सैनिकों, नटों, गायकों और नर्तकियों की विभिन्न मुद्राओं के मनोरम चित्र इस मंदिर की मूर्तिकारी के विशेष अंग हैं। प्रवेश-द्वारों के आधारों पर काले पत्थर की बनी यक्षिणियों की मूर्तियां निर्मित हैं। इनकी शरीर-रचना का सौष्ठव वर्णनातीत है। ये मंदिर के द्वारों पर रक्षिकाओं के रूप में स्थित की गई थीं। एक कन्नड़-तेलगू अभिलेख के अनुसार, जो मंदिर के परकोटे की दीवार पर अंकित है, यह मंदिर 1204 ई० में बना था। रामप्पा झील ककातीय राजाओं के समय की है। पालमपेट से प्राप्त एक अभिलेख से यह सूचित होता है कि यह 1213 ई० के लगभग ककातीय नरेश गणपति के शासनकाल में बनी थी। यह सिंचाई के लिए बनवायी गई थी। इसका जल-संग्रह क्षेत्र लगभग 82 वर्गमील है और इसमें से चार नहरें काटी गई थीं। इसके साथ की दूसरी झील लकनावरम् है जो मुलुग से 13 मील दूर है।

पालामऊ (बिहार)

छोटा नागपुर के क्षेत्र में स्थित है। यहां चेरो नामक आदिवासियों का मुख्य गढ़ था जहां उनका दुर्ग रांची-डाल्टन गंज सड़क पर आज भी स्थित है। शाइस्ताखां ने 1641 ई० में पालामऊ पर आक्रमण किया किंतु चेरों ने उसे खदेड़ दिया। 1660 ई० में दाऊद खां ने इस पर कब्जा कर लिया। 1771 ई० में चेरों और अंग्रेजों में संघर्ष हुआ और केप्टन कामेक (Camac) ने इस पर अधिकार कर लिया।

पालार (दे० पयस्विनी)

पाली

(1) तहसील रानीखेत, जिला अल्मोड़ा, उ० प्र०) इस स्थान पर एक पुराने क़िले के खंडहर हैं तथा इस पर्वत-प्रदेश की पूजनीया देवी नैथान का एक प्राचीन मंदिर भी है।

(2) (ज़िला बिलासपुर, म० प्र०) रतनपुर के निकट एक ग्राम जहां मध्य-प्रदेश का एक अतिप्राचीन शिवमंदिर स्थित है। इसका निर्माण वाणवंशीय राजा विक्रमादित्य ने 870-895 ई० में करवाया था। कलचुरि नरेश जाजल्लदेव (1095-1120) ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। इस तथ्य का 'जाजल्लदेवस्यकीर्तिरियम्' वाक्य द्वारा किया गया है। मंदिर की शिल्पकारी सूक्ष्म तथा सुंदर है और आबू के जैन मंदिरों की कला की याद दिलाती है।

पालीताना (राजस्थान)

पालीताना के निकटस्थ शत्रुंजय नामक पहाड़ी के शिखर पर अनेक मध्यकालीन जैन मंदिर स्थित हैं जो अपने रचना-सौंदर्य के लिए आबू के दिलवाड़ा मंदिरों की भांति ही भारत भर में विख्यात हैं। (दे० शत्रुंजय)

पावनी

कुरुक्षेत्र की नदी (वर्तमान घग्घर) जो वाल्मीकि रामायण बाल० 43, 12 में उल्लिखित है—'ह्लादिनी पावनी चैव नलिनी च तथैव च, तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मुर्गंगाः शिवाजलाः शुभाः'। यहां इसे गंगा की तीन पूर्वगामी धाराओं में परिगणित किया है।

पावा=**पावापुरी**

पावागढ़ (दे० चांपानेर)

पावापुरी=**पावा**=**अपापा**=**पापापुर**

जैन-परंपरा के अनुसार अंतिम तीर्थंकर महावीर का निर्वाण स्थान। 13वीं शती ई० में जिनप्रभसूरि ने अपने ग्रंथ त्रिविध तीर्थ कल्प मे इसका प्राचीन नाम अपापा बताया है। पावापुरी का अभिज्ञान बिहार शरीफ रेलस्टेशन (बिहार) से 9 मील पर स्थित पावा नामक स्थान से किया गया है। यह स्थान राजगृह से दस मील पर है। महावीर के निर्वाण का सूचक एक स्तूप अभी तक यहां खंडहर के रूप में स्थित है। स्तूप से प्राप्त ईंटें राजगृह के खंडहरों की ईंटों से मिलती-जुलती हैं जिससे दोनों स्थानों की समकालीनता सिद्ध होती है। महावीर की मृत्यु 72 वर्ष की आयु में अपापा के राजा हस्तिपाल के लेखकों के कार्यालय में हुई थी। उस दिन कार्तिक की अमावस्या थी। पालीग्रंथ संगीतिसुत्तंत में पावा के मल्लों के उब्भटक नामक सभागृह का उल्लेख है। स्मिथ के अनुसार पावापुरी ज़िला पटना (बिहार) में स्थित थी। कनिंघम (ऐंशेंट ज्याग्रेफी ऑव इंडिया पृ० 49) के मत में (जिसका आधार शायद बुद्धचरित 25,52 में कुशीनगर के ठीक पूर्व की ओर पावापुरी की स्थिति का उल्लेख है) कसिया (प्राचीन कुशीनगर) से 12 मील दूर पदरौना नामक स्थान

च्वांग ने किया है। उसने इस स्थान पर तीन सहस्र बौद्ध भिक्षुकों का निवास-स्थान बताया है।

पितुव

संभवत: राजस्थान का कोई अनभिज्ञात नगर जिसका उल्लेख तिब्बत के इतिहासकार तारानाथ ने मारु या मारवाड़ के किसी राजा हर्ष (छठी शती ई०) के संबंध में किया है। इसने पितुव तथा अन्य कई स्थानों (दे० चितवर) पर बौद्धविहार बनवाए थे जिनमें से प्रत्येक में एक सहस्र से अधिक भिक्षु निवास करते थे। पितुव संभवत: मारवाड़ में स्थित था।

पिथलखोरा (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

शैलकृत गुफामंदिरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। यह कन्नड़-तालुका में कन्नड़-आउटरमघाट मार्ग से कटने वाली 7 मील लंबी सड़क के छोर पर स्थित है। गुफ़ाओं तक पहुंचने के लिए 300 गज का घुमावदार मार्ग है। गुफाएं पूर्व-बौद्धकालीन हैं। यह तथ्य इनकी वास्तुकला, शिल्पकारी, भित्तिचित्रकारी तथा यहां उत्कीर्ण अभिलेखों से सिद्ध होता है। यहां अंकित पशुओं की आकृतियां तथा कई रेखाचित्र सांची में अंकित इसी प्रकार के मूर्तिचित्रों के सदृश हैं।

पिथुड़

कलिंगनरेश खारवेल के अभिलेख के अनुसार खारवेल ने उत्तर भारत की विजय के पश्चात् दक्षिण के देशों पर आक्रमण किया था। पिथुड़ नामक नगर में उसने गधों के हल चलवाए थे। सिलवन लेवी के मतानुसार पिथुड़ पिहुंड का रूपांतर है। पिहुंड पांड्य देश का एक मुख्य व्यापारिक नगर था। टॉलमी ने इसी को पितुंद्र लिखा है। उत्तराध्ययन नामक जैन सूत्रगंथ (खंड 21) में भी पिहुंड का उल्लेख है। इस प्रसंग में पालित नाम के एक धनी व्यापारी के चंपा से पिहुंड जाने का वर्णन है। तीर्थंकर महावीर के समय में (पांचवी शती ई० पू०) व्यापारी लोग चंपा से पिहुंड तक जलयान द्वारा जाते थे। (इंडियन एंटिक्वेरी 1926, पृ० 145)। पिहुंड मछलीपटम् (मद्रास) के समीप है।

पिनाकिनी

स्कंदपुराण में वर्णित नदी जिसका अभिज्ञान मद्रास राज्य की वेन्नार नदी से किया गया है।

पिपरा (बिहार)

समस्तीपुर-मुजफ्फरपुर रेल-मार्ग के पिपरा नामक स्टेशन के निकट एक प्राचीन क़िले के खंडहर हैं जिसके भीतर सीताकुंड नामक एक तालाब है तथा

रामायण के पात्रों से संबंधित कई मंदिर हैं। पिपरा से 4 मील पर सागर नामक ग्राम के पास एक ह्रद है जिसे सागरगढ़ कहते हैं। यहीं एक सुंदर ताल है जिसे बुद्ध पोखर कहते हैं। इसका संबंध किसी बौद्ध कथा से है।

पिपरावा (ज़िला बस्ती, उ० प्र०)

पिपरावा या पिपरिया नौगढ़ रेल-स्टेशन से 13 मील उत्तर में नेपाल की सीमा के निकट बौद्धकालीन स्थान है। यहां बर्डपुर रियासत के जमींदार पीपी साहब को 1898 ई० में एक स्तूप के भीतर से बुद्ध की अस्थि-भस्म का एक प्रस्तर-कलश प्राप्त हुआ था जिस पर पांचवीं शती ई० पू० की ब्राह्मीलिपि में एक सुंदर अभिलेख अंकित है जो इस प्रकार है—'इयं सलिलनिधने बुधस-भगवते सकियनं सुकितिभतिनं सभगिणिकनं सपुत दलनम्' अर्थात् भगवान् बुद्ध के भस्मावशेष पर यह स्मारक शाक्यवंशीय सुकिति भाइयों-बहनों, बालकों और स्त्रियों ने स्थापित किया। जिस स्तूप में यह सन्निहित था उसका व्यास 116 फुट और ऊंचाई 21 फुट थी। इसकी ईंटों का परिमाण 16 इंच × 10 इंच है। यह परिमाण मौर्यकालीन ईंटों का है। बौद्ध किंवदंती है कि इस स्तूप का निर्माण शाक्यों द्वारा किया गया था। उन्होंने बुद्ध का शरीरांत होने पर भस्म का आठवां भाग प्राप्त कर उसे एक प्रस्तर-भांड में रख कर एक स्तूप के अंदर सुरक्षित कर दिया था। कुछ विद्वानों के विचार में ये अवशेष बुद्ध के निर्वाण के प्रायः सौ वर्ष पश्चात् स्तूप में निहित किए गए थे। यह संभव जान पड़ता है कि गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु पिपरावा के समीप ही स्थित थी। कई विद्वानों का मत है कि बुद्ध के समकालीन मोरियवंशीय क्षत्रियों की राजधानी पिप्पलिवाहन, पिपरावा के स्थान पर बसी हुई थी और पिपरावा पिप्पलि का ही रूपांतर है। स्तूप के कुछ अवशेष तथा भस्मकलश लखनऊ के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

पिपरिया=**पिपरावा**

पिप्पलगुहा (बिहार)

राजगीर (राजगृह) के निकट वैभार पहाड़ी के पूर्वी ढाल पर स्थित है। इसे जरासंध की गुहा भी कहते हैं। कुछ विद्वानों के मत में यह भारत की प्राचीनतम इमारत है। कहा जाता है कि महाभारत काल में इसी स्थान पर मगध-राज जरासंध का प्रासाद था। कुछ पाली ग्रंथों के अनुसार प्रथम धर्म-संगीति का सभापति महाकश्यप पिप्पलगुहा में ही रहा करता था। बुद्ध एक बार महाकश्यप से मिलने स्वयं इस स्थान पर आए थे। युवानच्वांग ने भी इस गुहा का उल्लेख किया है तथा इसे असुरों का निवास स्थान माना है। महा-

भारत में मयदानव की कथा से सूचित होता है कि असुरों या दानवों की कोई जाति प्राचीन काल में विशाल वास्तु-रचनाएं निर्माण करने मे परम कुशल थी। संभवत: पिप्पलिगुहा की निर्मिति भी इन्हीं शिल्पियों ने की होगी। जरासंध की बैठक की दीवार असाधारण रूप से स्थूल समझी जाती है। इस इमारत के पीछे एक लंबी गुफ़ा 1895 ई० तक वर्तमान थी। (दे० लिस्ट आव ऐंशेंट मान्यूमेंट्स इन बंगाल—1895, पृ० 262–263)।

पिप्पलिवन = पिप्पलिवाहन

पिप्पलिवाहन

बुद्ध के समकालीन मोरिय वंशीय क्षत्रियों की राजधानी। संभवत: युवानच्वांग द्वारा उल्लिखित न्यग्रोधवन यही है (दे० वाटर्स 2, पृ० 23-24)। फ़ाह्यान ने यहां के स्तूप की स्थिति कुशीनगर से 12 योजन पश्चिम की ओर बताई है। कुछ विद्वानों का मत है कि ज़िला बस्ती (उ० प्र०) में स्थित पिपरिया या पिपरावा नामक स्थान ही पिप्पलिवाहन है। यहीं के प्राचीन ढूह में से एक मृद्भांड प्राप्त हुआ था जिसके ब्राह्मी अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसमें बुद्ध के भस्मावशेष निहित थे (दे० पिपरावा)। बौद्ध साहित्य की कथाओं से सूचित होता है कि बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनकी अस्थि-भस्म को आठ भागों में बांट दिया गया था। प्रत्येक भाग को लेकर उसको एक महास्तूप में सुरक्षित किया गया था। इस प्रकार के आठ स्तूप बनवाए गए थे। इनमें से अंगार-स्तूप पिप्पलिवन में था। पिप्पलिवन को पिप्पलिवाहन भी कहते थे।

पिराना (ज़िला टोंक, राजस्थान)

भूतपूर्व टोंक रियासत में स्थित एक प्राचीन स्थान जहां से पुरातत्व विषयक अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहां की सामग्री का उचित अनुसंधान अभी नहीं हो सका है।

पिल्लालमर्री (सुरियापेट तालुका, ज़िला नालगोंडा, आं० प्र०)

वारंगल की राजसभा के प्रसिद्ध राजकवि पिल्लालमर्री पीना वीरभद्रकवि का जन्म स्थान। यहां के प्राचीन मंदिर पुरातत्व-विभाग के संरक्षण में है। ये ककातीय नरेशों के समय के हैं। इनके स्तंभों पर सुंदर नक़्क़ाशी है और दीवारों पर मनोरम चित्रकारी। यहां से कई अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं जिनमें गणपति नामक राजा का कन्नड-तेलगू अभिलेख (1130 शकसंवत् = 1203 ई०) और राजा रुद्रदेव का अभिलेख (1117 शकसंवत् = 1203 ई०) उल्लेखनीय है। इस स्थान से ककातीय नरेशों के अनेक सिक्के भी मिले हैं।

पिशाच

'द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः, पिशाचादारदाश्चैव पुंड्राः कुंडीविषैः सह'—महा० भीष्म० 50,50। दरद देश के निवासियों तथा पिशाचों का उपर्युक्त श्लोक में, जिसमें भारत के पश्चिमोत्तर सीमांत पर रहने वाली जातियों का उल्लेख है, साथ-साथ नामोल्लेख होने से यह अनुमेय है कि पिशाचदेश दरद-देश (वर्तमान दर्दिस्तान) के निकट होगा। वास्तव में इस देश की अनार्य तथा असभ्य जातियों के लिए ही महाभारत के समय में पिशाच शब्द व्यवहृत था। पिशाच देश के योद्धा महाभारत के युद्ध में पांडवों की ओर से लड़े थे। इस देश के निवासियों की भाषा पैशाची नाम से प्रसिद्ध है जिसमें प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र) निवासी गुणाढ्य की बृहत्कथा लिखी गई थी। पैशाची को भूत-भाषा भी कहा गया है। इस भाषा का क्षेत्र भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश और पश्चिमी कश्मीर था जिसकी पुष्टि महाभारत के उपर्युक्त उल्लेख से भी होती है। कहा जाता है कि गुणाढ्य पिशाच देश (पश्चिमी कश्मीर) में प्रतिष्ठान से जाकर बसे थे। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि आर्यों से पूर्व, कश्मीर देश में नाग-जाति का निवास था और पैशाची इन्हीं लोगों की जातीय भाषा थी। संभव है पिशाच नामक लोग इसी जाति से संबंधित हों और उनके बर्बर आचार-व्यवहार के कारण पिशाच शब्द संस्कृत में (दरिद्र की भांति) एक विशेष अर्थ का द्योतक बन गया हो। (दे० **दरद**)

पिशुनी=पयस्विनी

पिष्ठपुर

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में विजित राजाओं की सूची में पिष्ठपुर के राजा महेंद्र का भी नाम है। उल्लेख इस प्रकार है—'कौसलक महेंद्र महाकांतार व्याघ्रराज कौसलक मंटराज पैष्ठपुरक महेंद्र'। विंसेंट स्मिथ के अनुसार (फ्लीट का मत भी यही है) पिष्ठपुरम्, ज़िला गोदावरी (आं० प्र०) का पिट्ठपुर या पीठपुर नामक स्थान है। यहां कलिंग की प्राचीन राजधानी थी। पिट्ठपुर नाम के संबंध में यह तथ्य अवलोकनीय है कि खोह (नगदा, म० प्र०) से प्राप्त होने वाले कुछ गुप्तकालीन अभिलेखों में पिष्ठपुरी नामक देवी के मंदिर को दिए गए दान का उल्लेख है। यह संभव है कि पिष्ठपुर नामक कोई स्थान इस इलाके में भी स्थित रहा हो जिसके नाम पर पिष्ठपुरी नामक स्थानीय देवी का नाम पड़ा होगा।

पिहुंड (दे० पिथुड़)

पिहोवा (दे० पृथूदक)

पीरपहाड़ (ज़िला मुंगेर, बिहार)

मुंगेर से तीन मील पूर्व की ओर एक पहाड़ी। इस पर एक प्राचीन भवन स्थित है जिसका निर्माण बंगाल के नवाब मीर कासिम के सेनापति गुरगीन ने 18वीं शती में करवाया था। गुरगीन आर्मीनिया का निवासी था।

पीलीभीत (उ० प्र०)

रुहेलाकाल (18वीं शती) की कुछ इमारतें यहां हैं जिनमें रुहेला सरदार हाफिज मुहम्मद खां की बनवाई एक मसजिद उल्लेखनीय है।

पीवर

विष्णुपुराण 2,4,48 के अनुसार क्रौंच-द्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा द्युतिमान् के पुत्र पीवर के नाम से प्रसिद्ध है।

पुंडरीक

'कृतशौचं समासाद्य तीर्थ सेवी नराधिप, पुंडरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेच्च सः' महा० वन० 83,21। पुंडरीक का, जिसकी मान्यता महाभारत काल में तीर्थ रूप में थी, वर्तमान पूंडरी (पंजाब) से अभिज्ञान किया गया है। कुछ टीकाकारों ने इस श्लोक में पुंडरीक को तीर्थ का नाम न मानकर पुंडरीक यज्ञ माना है।

पुंडरीकवान्

विष्णुपुराण 2,4,51 के अनुसार क्रौंच द्वीप का एक पर्वत—**'क्रौंचश्चवामनश्चैव तृतीयश्चांधकारकः चतुर्थोरत्नशैलश्च स्वाहिनी हयसन्निभः, दिवावृत्पंचमश्चात्र तथान्यः पुंडरीकवान्, दुंदुभिश्च महाशैलो द्विगुणस्ते परस्परम्'**।

पुंडरीका

विष्णुपुराण 2,4,55 के अनुसार क्रौंचद्वीप की एक नदी···'गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा, क्षांतिश्च पुंडरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः'।

पुंडरीकिणी

पूर्वविदेह की नगरी जिसका उल्लेख पाली साहित्य में है।

पुंड्र=पौंड्र

बंगाल में गंगा की मुख्य धारा पद्मा के उत्तर में स्थित प्रदेश को प्राचीन काल में पुंड्र देश कहते थे (इंपीरियल गज़ेटियर ऑव इंडिया, पृ० 316)। नदी से दक्षिण का भूभाग वंग कहलाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि वर्तमान पबना ही प्राचीन पुंड्र है। यह नाम वास्तव में इस प्रदेश में प्राचीन काल में बसने

वाली वन्यजाति का अभिधान था। इन्हीं लोगों का मूलस्थान होने से यह प्रदेश पुंड्र कहलाया। महाभारत में पौंड्र वासुदेव के आख्यान में कृष्ण के इस प्रतिद्वंद्वी को पुंड्रदेश का ही निवासी बताया गया है। बिहार के पूर्णिया नामक नगर को भी पुंड्रदेश में स्थित कहा गया है और ऐसा विचार है कि इस नगर का नाम पुंड्र का ही अपभ्रंश है। विष्णुपुराण में पुंड्र प्रदेश पर—संभवतः पूर्व-गुप्तकाल में—देवरक्षित राजा का शासन बताया गया है—'कोशलांध्रपुंड्रताम्रलिप्तसमुद्र-तटपुरी च देवरक्षितो रक्षिता'—विष्णु 4,24,64। पुंड्र प्रदेश से संबंधित पुंड्र-नगर का उल्लेख महास्थानगढ़ (ज़िला बोगरा, बंगाल) से प्राप्त मौर्यकालीन अभिलेख में है जिसमें इस नगर को पुंड्रनगल कहा गया है। इसका अभिज्ञान महास्थानगढ़ से ही किया गया है। महास्थान (गढ़) का उल्लेख शायद पाणिनि 6,2,89 में महानगर के नाम से है। गुप्तकाल में पुंड्र, पुंड्रवर्धनभुक्ति नाम से दामोदरपुर-पट्टलेखों में वर्णित है। इस भुक्ति में अनेक विषय सम्मिलित थे (दे० पुंड्रवर्धन)। प्राचीन समय में यह देश ऊनी कपड़ों और पौंडे या गन्ने के लिए प्रसिद्ध था। (संभव है 'पौंडा' नाम इसी देश के नाम पर हुआ हो और अंततः यह पुंड्र जाति से संबंधित हो। यह भी द्रष्टव्य है कि 'गुड़' का संबंध भी गौड़ देश से इसी प्रकार जोड़ा जाता है)। महाभारत वन० 51,22 में वंग, अंग और उड्र के साथ ही पौंड्र देश का उल्लेख है—'यत्र सर्वान् महीपालाञ्छत्रतेजोभयार्दितान्, सवंगांगान् सपौंड्रोड्रान् सचोलद्राविडांध्रकान्'।

पुंड्रनगर (दे० पुंड्र)

पुंड्रवर्धन (बंगाल)

गुप्तकालीन अभिलेखों से सूचित होता है (दे० दामोदरपुर ताम्र-पट्टलेख) कि गुप्तसाम्राज्य में पुंड्रवर्धन नाम की एक भुक्ति थी जो पुंड्र देश के अंतर्गत थी। इसमें कोटिवर्ष आदि अनेक वर्ष सम्मिलित थे। इन ताम्रपट्टलेखों से सूचित होता है कि लगभग समग्र उत्तरी बंगाल या पुंड्र देश, पुंड्रवर्धन भुक्ति में सम्मिलित था और यह 443 ई० से 543 ई० तक गुप्तसाम्राज्य का अविच्छिन्न अंग था। यहां के शासक उपरिक महाराज की उपाधि धारण करते थे और इन्हें गुप्त नरेश नियुक्त करते थे। कुमारगुप्त प्रथम के समय में उपरिक चिरातदत्त को पुंड्रवर्धन का शासक नियुक्त किया गया था और बुधगुप्त के समय (163 गुप्त संवत् या 483-484 ई०) में यहां का शासक ब्रह्मदत्त था। इस भुक्ति का प्रधान नगर वर्तमान रंगपुर के निकट रहा होगा।

पुण्यपत्तन=पूना

पुण्यस्तंभ=पुनतांबा (महाराष्ट्र)

मध्यरेलवे के धौंड-मनमाड मार्ग पर स्थित है। यह प्राचीन नगर गोदावरी के तट पर बसा है। संत ज्ञानेश्वर के शिष्य महायोगी चांगदेव की समाधि गोदावरी के किनारे बनी हुई है।

पुक्कलाग्रोति

पुष्कलावती या पुष्करावती का प्राकृत रूप।

पुटभेदन

मिलिंदप्रश्न (मिलिंदपन्हो) में साकल या स्यालकोट का एक नाम। बौद्धकाल में यह बड़ा व्यापारिक नगर था जहां थोक माल की गठरियों (=पुट) की मुहर तोड़ी जाती थी।

पुनतांबा=पुण्यस्तंभ

पुन्नाट=पुन्नाड़

पुन्नाड़ (मैसूर)

5वीं-6ठी शती के एक अभिलेख में इस प्राचीन राज्य का उल्लेख है। 931 ई० में हरिषेण द्वारा रचित बृहत्कथाकोश में भी इसका नामोल्लेख है। पुन्नाड़ या पुन्नाट की राजधानी कीर्तिपुर या कित्थीपुर में थी। यह नगरी कावेरी की सहायक नदी कपिनी या कब्बिनी के तट पर स्थित थी। कीर्तिपुर का अभिज्ञान मैसूर के निकट स्थित कित्तूर से किया गया है।

पुप्फपुर

पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) का पाली या प्राकृत रूप (दे० महावंश 18,8)।

पुब्बंताग्रपरंत

पालीसाहित्य में पूर्व-पश्चिम के महाजनपथ का नाम।

पुरंदरगढ़ (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

पूना से सात मील दूर सासवड़ रोड स्टेशन से सासवड़ नामक ग्राम 11 मील है। यहां से छः मील दूर शिवाजी के समय का प्रसिद्ध क़िला पुरंदरगढ़ स्थित है। यह दुर्ग पहाड़ी के शिखर पर बना हुआ है। पहाड़ी की तलहटी में पूर नामक ग्राम बसा है जहां नारायणेश्वर शिव का अति प्राचीन देवालय स्थित है।

पुरली (ज़िला बीड़, महाराष्ट्र)

पुरली से प्रागैतिहासिक काल के कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं। शिव के द्वादश स्वयंभू ज्योतिर्लिंगों में से एक यहां स्थित है। मुख्य मंदिर देवी अहल्या-

बाई ने 18वीं शती में बनवाया था जैसा कि चांदी के किवाड़ पर उत्कीर्ण एक लेख से सूचित होना है। पुरली प्राचीन समय में विद्या का केन्द्र था।

पुरवा (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर से पांच मील दूर इस कस्बे में, भूमि से तीन सौ फुट ऊंची पहाड़ी पर कई प्राचीन भवनों के खंडहर अवस्थित हैं। इनमें पिसनहारी की मढ़िया अति प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इस मंदिर को गोंडवाने की महारानी दुर्गावती की समकालीन किसी चक्की पीसने वाली अज्ञातनामा स्त्री ने बनवाया था। यह स्थान महाकोशल के दिगंबर जैनों द्वारा पवित्र माना जाता है और यहां प्रतिवर्ष मेला भी लगता है। मंदिर तक जाने के लिए एक घुमावदार रास्ता है और पहाड़ी पर चढ़ने के लिए दो सौ आठ सीढ़ियां बनी हैं। पिसनहारी की मढ़िया के पार्श्व में केवल दो शैलखंडों पर खड़ा हुआ मदन-महल मुग़ल-सम्राट् अकबर से लोहा लेने वाली वीरांगना दुर्गावती का अमर स्मारक है। पास ही संग्रामसागर नामक विशाल झील है जो दुर्गावती के सचिव सरदार संग्रामसिंह की स्मृति संजोए हुए है। यहीं आमवास नामक स्थान है जिसके बारे में किंवदंती है कि किसी समय यहां आम के एक लाख वृक्ष थे। पास ही गोंड नरेशों के समय के खंडहर दूर तक फैले हुए हैं। इन्हीं में महारानी दुर्गावती का हाथीखाना भी है।

पुरिका दे० प्रवरपुर

पुरिमताल

जैन साहित्य में उल्लिखित प्रयाग का एक नाम। जैन ग्रंथों से विदित होता है कि 14वीं शती तक जैन परंपरा में यह नाम प्रचलित था। कहा जाता है कि ऋषभदेव को कैवल्य-ज्ञान यहीं प्राप्त हुआ था। कल्पसूत्र में पुरिमताल का उल्लेख इस प्रकार है 'जैसे हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुण बहुले तस्सणं फग्गुण बहुलस्स इक्कारसी पक्खेणं पुब्वण्हकाल समयंसि पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणांसि नग्गोहवर पायवस्स अहे'। 11वीं शती में रचित श्री जिनेश्वर सूरि के कथा कोश में भी इसी प्रकार का उल्लेख है —'अण्णया पुरिमताले संपतस्स अहे नग्गोहपाययेस्सझाणं तंरियाए वट्टमाणस्स भगवओ समुप्पणं केवल नाणं'— कथा कोश प्रकरण पृ० 52। विविधतीर्थकल्प में 'पुरिम ताले आदिनाथः' वाक्य है। धर्मोपदेशमाला में (पृ० 124) भी पुरिमताल का उल्लेख है।

पुरी

(1) दे० एलिफेंटा

(2) दे० जगन्नाथपुरी

पुरु

'सनत्कुमारः कौरव्य पुण्यंकनखलं तथा, पर्वतश्च पुरुर्नाम यत्र यातः पुरुरवाः'—महा० वन० 90,22 । यहां पुरु नामक पर्वत का कनखल (हरद्वार) के निकट उल्लेख है।

पुरुषपुर

वर्तमान पेशावर (प० पाकि०)। ऐतिहासिक परंपरा के अनुसार सम्राट् कनिष्क ने पुरुषपुर को (द्वितीय शती ई० में) बसाया था और सर्वप्रथम कनिष्क के बृहत् साम्राज्य की राजधानी बनने का सौभाग्य भी इसी नगर को प्राप्त हुआ था। कनिष्क ने बौद्धधर्म की दीक्षा लेने के पश्चात् पुरुषपुर में एक महान् स्तूप का निर्माण करवाया था जिसमें लकड़ी का प्रचुरता से प्रयोग किया गया था। स्तूप के ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां बनी थीं और ऊपर एक सुंदर काष्ठमंडप था। इसमें तेरह मंज़िलें थीं और पूरी ऊंचाई लगभग 500 हाथ थी। कहा जाता है कि यह स्तूप कनिष्क के पश्चात् कई बार जला और बना था। इस महास्तूप के पश्चिम की ओर कनिष्क ने एक सुन्दर एवं विशाल विहार भी बनवाया था जिसकी तीसरी मंजिल पर कनिष्क के गुरु भदंत पार्श्व रहते थे। तृतीय बौद्ध-संगीति कनिष्क के शासन काल में पुरुषपुर में ही हुई थी (कुछ विद्वानों के मत में यह सम्मेलन कुंडलवन कश्मीर में हुआ था)। इसके सभापति आचार्य अश्वघोष थे जिन्हें कनिष्क पाटलिपुत्र की विजय के पश्चात् अपने साथ पुरुषपुर ले आए थे। बौद्धधर्म के उद्‌भट विद्वान और बुद्ध-चरित और सौंदरानंद नामक महाकाव्यों के विख्यात रचयिता अश्वघोष पुरुषपुर में ही रहते थे। पुरुषपुर में बौद्ध महासभा के पश्चात् बौद्धधर्म के दो विभाग हो गए थे—प्राचीन हीनयान और नवीन महायान। अश्वघोष के अतिरिक्त जिन अन्य बौद्ध विद्वानों का संसर्ग पुरुषपुर से रहा था वे थे वसुबंधु तथा उनके सहोदर भ्राता असंग और विरंचि। वसुबंधु, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (चतुर्थ शती ई०) की राजसभा में भी सम्मानित हुए थे। दिङ्नाग इनके शिष्य थे। उनका रचित अभिधर्म-कोश बौद्धसाहित्य का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी रचना पुरुषपुर में ही हुई थी। वसुबंधु के गुरु आचार्य मनोरथ भी पुरुषपुर ही के रहने वाले थे। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य इनका भी बहुत आदर करता था।

पुरुषपुर प्राचीन काल में गांधार-मूर्तिकला का प्रसिद्ध केंद्र था। यह कला भारतीय तथा यूनानी शैली के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई थी। हेवेल के अनुसार

गांधार कला सर्वोच्च कोटि की कला नहीं थी और न इसमें भारतीय परंपरा तथा आदर्शवाद के तत्व ही निहित थे। वे इसे यांत्रिक तथा आत्मा से रहित कला मानते हैं। इस कला का मुख्य सौंदर्य शारीरिक रूपरेखा का कुशल अंकन माना जाता है। गांधार कला में प्रथमवार बुद्ध की मूर्ति का निर्माण हुआ था। 100 ई० पू० से पहले बुद्ध की मूर्तियां नहीं बनाई जाती थीं और उपयुक्त प्रतीकों द्वारा ही तथागत का अंकन किया जाता था। गांधारकला में प्रायः काली मिट्टी जो स्वात के प्रदेश में मिलती थी, मूर्ति-निर्माण के लिए प्रयोग में लाई जाती थी। इन मूर्तियों की शरीर रचना तथा गठन सौंदर्यपूर्ण और यथार्थ है। वस्त्रों, विशेषकर उत्तरीय का अंकन उभरी हुई धारियों से किया गया है। परवर्ती काल में पुरुषपुर या पेशावर भारत पर उत्तर पश्चिम से आक्रमण करने वाले आक्रांताओं के कारण इतिहास प्रसिद्ध रहा। 1001 ई० में महमूद गजनवी और भारतीय नरेश जयपाल में पेशावर के मैदान में घोर युद्ध हुआ जिसमें जयपाल को भारी क्षति उठानी पड़ी। जयपाल, इस युद्ध में पराजय-जनित अपमान तथा अनुताप को न सहते हुए जीवित ही अग्नि में कूदकर स्वर्ग सिधार गया। मुगलों के समय में पेशावर में मुग़लों का सेनापति रहता था और तत्कालीन अफगानी तथा सीमांत-स्थित फिरकों (यूसुफज़ाई वगैरह) से भारतीय साम्राज्य की रक्षा करता था।

पुरुषोत्तम क्षेत्र

पुराणों के अनुसार इस तीर्थ के क्षेत्र का विस्तार, उड़ीसा में दक्षिणकटक, पुरी तथा वेंकटाचल तक है। (दे० इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली 7, पृ० 245-253)।

पुरुषोत्तमपुरी दे० जगन्नाथपुरी

पुलिंद

महाभारत वन० के अन्तर्गत पुलिंदों के देश का वर्णन पांडवों की गंधमादन पर्वत की यात्रा के प्रसंग में है। जान पड़ता है कि यह देश कैलाश पर्वत या तिब्बत के ऊंचे पहाड़ों की उपत्यकाओं में बसा था। इस प्रसंग में तंगणों और किरातों का भी उल्लेख है। पुलिंद देश के बर्फीले पहाड़ों का वर्णन भी इस प्रसंग में है। अशोक के शिलालेख 13 में पारिंदों का उल्लेख है जो कुछ विद्वानों के मत में पुलिंदों का ही नाम है। किंतु भंडारकर के मत में पारिंद वरेंद्र (बंगाल) के निवासी थे। पुराणों में पुलिंदों का विंध्याचल में निवास करने वाली अन्य जातियों के साथ वर्णन है—'पुलिंदा विंध्यपुषिका वैदर्भा दंडकैः सह' मत्स्य० 114, 48। 'पुलिंदा विंध्यमूलीका वैदर्भा दंडकैः सह'-

वायु० 55,126। महाराज हस्तिन् के नवग्राम से प्राप्त 517 ई० के दानपत्र अभिलेख में पुलिंद-राष्ट्र का उल्लेख है जिसकी स्थिति डभाल (म० प्र० का उत्तरी भाग) में बताई गई है। अशोक के समय में पुलिंद नगर, जो पुलिंद देश की राजधानी थी, रूपनाथ के निकट स्थित होगा जहां अशोक का एक लघु-अभिलेख प्राप्त हुआ है (दे० राय चौधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव इंडिया—पृ० 258)। उपर्युक्त विवेचन से जान पड़ता है कि पुलिंद नामक जाति मूलत: उत्तर तिब्बत की रहने वाली थी और कालांतर में भारत में आकर विंध्य की घाटियों में बस गई थी। यह भी संभव है कि प्राचीन काल में भारतीयों ने दो भिन्न जातियों को उनके सामान्य गुणों के कारण पुलिंद नाम से अभिहित किया हो। (दे० पुलिंदनगर)

पुलिंदनगर

'ततो दक्षिणमागम्य पुलिंदनगरं महत्, सुकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नरा-धिपम्', महा० सभा० 29,10। भीमसेन ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में पुलिंदनगर पर अधिकार किया था। प्रसंग से इस महान् नगर की स्थिति विंध्यप्रदेश की उपत्यकाओं में जान पड़ती है। रायचौधरी के अनुसार यह प्रदेश रूपनाथ के निकट स्थित होगा जहां अशोक का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। (दे० पुलिंद)

पुवार (केरल)

त्रिवेंद्रम के दक्षिण में स्थित एक ग्राम जो विद्वानों के मत में प्राचीन यहूदी साहित्य का ओफीर नामक प्रसिद्ध व्यापारिक स्थान है। इस साहित्य में सम्राट् सुलेमान (प्राय: 1000 ई० पू०) के भेजे हुए व्यापारिक जलयानों का भारत के इस बंदरगाह में आने जाने का वर्णन मिलता है। अति प्राचीनकाल में पुवार के बड़े बंदरगाह होने के निश्चित चिह्न प्राप्त हुए है।

पुष्कर (ज़िला अजमेर, राजस्थान)

(1) अजमेर से सात मील दूर यह प्राचीन तीर्थ स्थित है। वाल्मीकि रामायण बाल० में पुष्कर में विश्वामित्र के तप करने का उल्लेख है—'पश्चिमायां विशालायां पुष्करेषु महात्मन: सुखं तपश्चरिष्याम: सुखं तद्धि तपोवनम्, एव-मुक्त्वा महातेजा: पुष्करेषु महामुनि:, तप उग्रं दुराधर्षं तेपे मूलफलाशन:'—बाल० 61,3-4। उत्तरकांड 53,8 में राजा नृग के पुष्कर में दिए गए दान का उल्लेख है—'नृदेवो भूमिदेवेभ्य: पुष्करेषु ददौ नृप:'। महाभारत में पुष्कर को महान् तीर्थ माना है—'पितामहसर: पुण्यं पुष्करं नाम नामत:, बैखानसानांसिद्धाना मृषीणामाश्रम: प्रिय:। अप्यत्र संश्रयार्थाय प्रजापतिरथो जगौ, पुष्करेषु कुरुश्रेष्ठ

गाथांसुकृतिनांवर। मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विनः विप्रणश्यन्ति पापानि नाकपृष्ठे च मोदते'—वन० 89,16-17-18। वन० 12,12 में पुष्कर को तपस्थली बताया गया है—'दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च, पुष्करेष्ववसः कृष्ण त्वमपो भक्षयन् पुरा'। उत्सवसंकेत गण का निवास पुष्कर के निकट ही था—दे० सभा० 27,32। विष्णुपुराण 1,22,89 में भी पुष्कर का उल्लेख है—'कार्तिकं पुष्करस्नाने द्वादशाब्देन यत् फलम्' जिससे पुष्कर का तीर्थ रूप में जो वर्तमान महत्त्व माना जाता है उसका पूर्वाभास मिलता है तथा पुष्कर के द्वादश-वर्षीय कुंभ का जो आज भी प्रचलित है, प्रारंभ भी अति प्राचीन काल (संभवतः गुप्तकाल) में सिद्ध होता है। विष्णु० 6,8,29 में पुष्कर को प्रयाग और कुरुक्षेत्र के समान माना है—'प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रे तथार्णवे, कृतोपवासः प्राप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः'। जनश्रुति में कहा जाता है कि पांडवों ने पुष्कर के चतुर्दिक् स्थित पहाड़ियों में अपने वनवास काल का कुछ समय व्यतीत किया था। इनमें से नागपहाड़ पर प्राचीन ऋषियों की तपोभूमि मानी जाती है। अगस्त्य और भर्तृहरि की गुफाएं भी इन्हीं पहाड़ियों में आज भी स्थित हैं। चतुर्थ शती ई० पू० की आहत (Punch marked) मुद्राएं तथा बेक्ट्रियन और ग्रीक नरेशों के सिक्के जो प्रथम शती ई० पू० से लेकर ई० सन् की पहली दो शतियों तक के हैं, यहां से प्राप्त हुए हैं। पौराणिक कथाओं के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना के समय इस स्थान पर यज्ञ किया था इसलिए इस स्थान को ब्रह्म पुष्कर भी कहते हैं। (दे० ऊपर उद्धृत महा० वन० 89,16-17)। संभवतः भारत भर में केवल इसी स्थान पर ब्रह्मा का मंदिर है। वर्तमान मंदिर जो झील के तट पर है अधिक प्राचीन नहीं जान पड़ता किंतु इस स्थान पर प्राचीन काल में भी ब्रह्मा का मंदिर रहा होगा। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री का मंदिर निकटवर्ती पहाड़ी पर है। ब्रह्मा के मंदिर के द्वार पर उनके वाहन हंस की मूर्ति उत्कीर्ण है। वाराणसी, गया तथा मथुरा की भांति ही पुष्कर भी कुछ समय तक बौद्ध धर्म का केन्द्र रहा किंतु इस धर्म की अवनति के साथ कालांतर में हिन्दू धर्म की यहां पुनः स्थापना हुई। जनश्रुति है कि 9वीं शती ई० में एक बार राजा नरहरिराव यहां शिकार खेलता हुआ पहुंचा। उसने प्यास बुझाने के लिए सरोवर का पानी पिया तो उसका श्वेत कुष्ठ दूर हो गया। उसने झील के जल के चमत्कारी प्रभाव को देखकर यहां पक्के घाट बनवा दिए। पुष्कर में 925 ई० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जो यहां से प्राप्त अभिलेखों में प्राचीनतम है। मुगल सम्राट् जहांगीर की बनवाई दो छतरियां झील के घाटों पर स्थित हैं। पुष्करताल पर लगभग चालीस पक्के घाट हैं जिनमें से

कुछ के ये नाम हैं—गौघाट, वराहघाट, ब्रह्मघाट, ग्वालियर घाट, चंद्रघाट, इंद्रघाट, जोधपुर घाट और छोटा घाट आदि। एक प्राचीन दंतकथा के अनुसार जिस समय ब्रह्मा ने यज्ञ प्रारम्भ करना चाहा तो अपनी पत्नी सावित्री की अनुपस्थिति में वे ऐसा न कर सके। तब उन्होंने सावित्री पर रुष्ट होकर गायत्री नामक अन्य स्त्री से विवाह करके यज्ञ संपन्न किया। सावित्री जब लौटकर आई तो वह गायत्री को अपने स्थान पर देख कर बहुत क्रुद्ध हुई और ब्रह्मा को छोड़कर पास की पहाड़ियों में चली गई जहां उसके नाम का एक मंदिर आज भी है। स्थानीय किंवदंती में यह भी प्रचलित है कि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल की नायिका शकुन्तला के पिता कण्व का आश्रम पुष्कर के पास स्थित एक पहाड़ी पर था किन्तु इस किंवदंती में कुछ भी तथ्य नहीं जान पड़ता। (कण्व के आश्रम के लिए दे० मंडावर)। पौराणिक किंवदंती में पुष्कर को सरस्वती नदी का तीर्थ माना गया है। कहते हैं कि अति प्राचीन काल में सरस्वती नदी इसी स्थान के निकट बहती थी और पुष्कर पर्वतोपत्यका में उसका छोड़ा हुआ सरोवर है। यह नदी अब भी कई स्थानों पर बहती हुई दिखलाई पड़ती है और अन्ततः कच्छ की खाड़ी में गिर जाती है। कई स्थानों पर राजस्थान की भूमि में यह विलुप्त भी हो जाती है। संभवतः यही वैदिककालीन सरस्वती थी जो पहले शायद सतलज में गिरती थी और कालांतर में मुड़कर राजस्थान की ओर बहने लगी। सरस्वती को ब्रह्मा की पत्नी माना गया है और इसी कारण पुष्कर का ब्रह्मा से संबंध परंपरागत चला आ रहा है। सरस्वती की एक धारा 'सुप्रभा' आज भी पुष्कर के निकट बहती है। महाभारत में विनशन नामक स्थान पर सरस्वती को विलुप्त होते हुए बताया गया है।

(2) (बर्मा) ब्रह्म-देश का एक प्राचीन भारतीय नगर (संभवतः रंगून) जिसका नाम भारत के प्रसिद्ध तीर्थ पुष्कर के नाम पर रखा गया प्रतीत होता है। ब्रह्मदेश में अति प्राचीन काल से मध्ययुग तक भारतीय औपनिवेशिकों ने अनेक नगरों को बसाया था तथा इस देश के अधिकांश भाग में उनके राजवंशों का राज्य रहा था।

पुष्करण

(1) ज़िला बांकुड़ा, बंगाल में सुसुनिया नामक स्थान से प्राप्त एक अभिलेख में पुष्करण के किसी राजा चंद्रवर्मन् का उल्लेख है। इस पुष्करण का अभिज्ञान रायचौधरी तथा अन्य विद्वानों ने ज़िला बांकुड़ा में दामोदर नदी पर स्थित पोखरन नामक स्थान से किया है। सुसुनिया बांकुड़ा से उत्तरपूर्व की ओर 25 मील दूर एक पहाड़ी है। गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में जिस

चंद्रवर्मन् का उल्लेख है वह पुष्करण का राजा हो सकता है ('रुद्रदेव मतिल नागदत्तचंद्रवर्मागणपतिनागनागसेन—')।

(2)=पुष्करारण्य। मारवाड़ का प्रसिद्ध प्राचीन स्थान है। श्रीहरप्रसाद शास्त्री के अनुसार **महरौली** (दिल्ली) के प्रसिद्ध लोह स्तंभ पर जिस चंद्र नामक राजा की विजयों का उल्लेख है वह पुष्करण का चंद्रवर्मन् है। यह चंद्रवर्मन् 404-405 ई० के मंदसौर अभिलेख में उल्लिखित है। श्री शास्त्री के अनुसार समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति का चंद्रवर्मन् भी यही है। यह नरवर्मन् का भाई था और ये दोनों मिलकर मालवा तथा परिवर्ती प्रदेश पर राज्य करते थे। पुष्करण या पोखरन कर्नल टाड के समय (19वीं शती का प्रथम भाग) तक मारवाड़ की एक शक्तिशाली रियासत थी। (दे० एनेल्स ऑव राजस्थान, पृ० 605)। पोखरन का प्राचीन नाम पुष्करण या पुष्करारण्य था और इसका उल्लेख महाभारत में है—'पुनश्च परिवृत्याथ पुष्करारण्य-वासिनः, गणानुत्सवसंकेतान् व्यजयत् पुरुषर्षभ' सभा० 32, 8-9। इस स्थान पर पुष्करारण्य का उल्लेख माध्यमिका या चित्तौड़ के पश्चात् होने से इसकी स्थिति मारवाड़ में सिद्ध हो जाती है। यहां के उत्सवसंकेत गणों को नकुल ने दिग्विजययात्रा के प्रसंग में हराया था।

पुष्करद्वीप

पौराणिक भूगोल की कल्पना में यह पृथ्वी के सप्त महाद्वीपों में से एक है—'जंबू प्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विज, कुशः क्रौंचस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः'–विष्णु० 2,2,5। इसके चतुर्दिक् शुद्धोदक सागर की स्थिति बताई गई है।

पुष्करवती=**पुष्कर** (2)

रंगून (बर्मा) का प्राचीन भारतीय नाम।

पुष्करवन=**पुष्करारण्य**

पुष्करारण्य दे० पुष्करण (2)

पुष्करावती=

(1) पुष्कलावती

(2) (बर्मा) ब्रह्मदेश का एक प्राचीन नगर; वर्तमान रंगून=पुष्कर (2) या पुष्करवती।

पुष्कल = पुष्कलावती

पुष्कलावत = पुष्कलावती

पुष्कलावती

भारत के सीमांत प्रदेश पर स्थित अति प्राचीन नगरी जिसका अभिज्ञान ज़िला पेशावर (प० पाकिस्तान) के चारसड्डा नामक स्थान (पेशावर से 17 मील उत्तर-पूर्व) से किया गया है। कुमारस्वामी के अनुसार यह नगरी स्वात (प्राचीन सुवास्तु) और काबुल (प्राचीन कुभा) नदियों के संगम पर बसी हुई थी जहां वर्तमान मीर जियारत या बालाहिसार है (इंडियन एंड इंडोनीसियन आर्ट —पृ० 55) वाल्मीकि रामायण में पुष्कलावत या पुष्कलावती का भरत के पुत्र पुष्कल के नाम पर बसाया जाना उल्लिखित है—'तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते गंधर्वदेशे रुचिरे गांधार-विषये ये च सः' वाल्मीकि० उत्तर 101,11। रामायणकाल में गंधार-विषय के पश्चिमी भाग की राजधानी पुष्कलावती में थी। सिंधु नदी के पश्चिम में पुष्कलावती और पूर्व में तक्षशिला भरत ने अपने पुत्र पुष्कल और तक्ष के नाम पर बसाई थीं। इस काल में यहां गंधर्वों का राज्य था जिनके आक्रमणों से तंग आकर भरत के मामा केकय-नरेश युधाजित् ने उनके विरुद्ध श्रीरामचंद्रजी से सहायता मांगी थी। इसी प्रार्थना के फलस्वरूप उन्होंने भरत को युधाजित् की ओर से गंधर्वों से लड़ने के लिए भेजा था। गंधर्वों को हटाकर भरत ने पुष्कलावती और तक्षशिला—ये दो नगर इस प्रदेश में बसाए थे। कालिदास ने रघुवंश में भी पुष्कल के नाम पर ही पुष्कलावती के बसाए जाने का उल्लेख किया है—'स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्यो तदाख्ययोः अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात् पुनः' रघु० 15,89। प्राकृत या पाली बौद्ध ग्रंथों में पुष्पकलावती को पुक्कलाओति कहा गया है—ग्रीक लेखक एरियन ने इसे प्युकेलाटोइस (Peucelatois) लिखा है। बौद्धकाल में गंधार-मूर्तिकला की अनेक सुंदर कृतियां पुष्कलावती में बनी थीं और यह स्थान ग्रीक-भारतीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान का केंद्र था। गुप्तकाल में इसी स्थान पर रहते हुए वसुमित्र ने 'अभिधर्म प्रकरण' रचा था। नगर के पूर्व की ओर अशोक का बनवाया हुआ धर्मराजिक स्तूप था। पास ही इन्हीं का निर्मित पत्थर और लकड़ी का बना साठ हाथ ऊंचा दूसरा स्तूप था। बौद्ध किंवदंती के अनुसार यहां से 6 कोस पर वह स्तूप था जहां भगवान् तथागत ने यक्षिणी हारीति का दमन किया था। पश्चिमी नगर-द्वार के बाहर महेश्वर शिव (पशुपति) का एक विशाल मंदिर था। प्रसिद्ध चीनी यात्री युवानच्वांग ने पुष्कलावती के बौद्धकालीन गौरव का वर्णन किया है जिसकी पुष्टि यहां के

खंडहरों से प्राप्त अनेक अवशेषों से होती है। पुष्कलावती नगरी के स्थान पर वर्तमान अश्तनगर या इश्तनगर कस्बा बसा हुआ है। अश्तनगर का शुद्ध रूप अस्थिनगर है। यहां के स्तूप में बुद्ध की अस्थि या भस्म धातुगर्भ के भीतर सुरक्षित थी।

पुष्पकवन

द्वारका के दक्षिण में स्थित लतावेष्ट नामक पर्वत के सन्निकट एक वन —'लतावेष्टं समंतात् तु मेरुप्रभवनं महत्, भाति तालवनं चैव पुष्पकं पुंडरीकवत्' महा० सभा० 38।

पुष्पगिरि

(1) पौराणिक कथाओं में वर्णित वरुण देव की विहार स्थली—(दे० डाउसन, क्लासिकल डिक्शनरी–'वरुण')।

(2) (मैसूर) हालेविड़ से दो मील पर पुष्पगिरि नामक पहाड़ियां हैं जहां से कृतमाला नदी निकलती है—मार्कंडेय० 57। यहीं मल्लिकार्जुन का मंदिर स्थित है।

(3) युवानच्वांग द्वारा उल्लिखित उड़ीसा का एक विहार।

पुष्पजा

कावेरी की सहायक नदी जो मलय पर्वतमाला से निस्सृत होती है। इसका उल्लेख वायुपुराण 65,105 और कूर्म पुराण 47,25 में है। इसके पुष्पजाति और पुष्पावती नाम भी मिलते हैं।

पुष्पजाति = पुष्पजा

पुष्पपुर (पाली पुप्फपुर) = पाटलिपुत्र या पटना

समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में इस नगर का समुद्रगुप्त की राजधानी के रूप में उल्लेख है। कालिदास ने रघुवंश 6,24 में पुष्पपुर में मगध-नरेश परंतप की राजधानी बताई है—'अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाणं पाणिं वरेण्येन कुरुप्रवेशम्, प्रासादवातायन संश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुरांगनानाम्'। मल्लिनाथ ने इसकी टीका में 'पुष्पपुरांगनानाम् पाटिलपुरांगनानाम्' लिखा है जिससे पुष्पपुर का पाटलिपुत्र से अभिज्ञान सिद्ध होता है। पाटलिपुर, पुष्पपुर, कुसुमपुर आदि नाम समानार्थक हैं।

पुष्पवटी = पुष्पवती = पुष्पावती

वर्तमान पूठ (ज़िला बुलंदशहर, उ० प्र०) का प्राचीन नाम। जनश्रुति के अनुसार महाभारत काल में महानगर हस्तिनापुर का दक्षिण की ओर विस्तार इस स्थान तक था और यहां हस्तिनापुर के नरेशों का पुष्पोद्यान था। पुष्पवटी

या पुष्पवती गंगा के तट पर स्थित थी। संभव है कि वाचक कुशललाभ रचित प्राकृत ग्रंथ माधवानल-कथा (1620 ई०) में वर्णित पुहुपावती यही पुष्पावती है। कवि ने इसे गंगा के तट पर बताया है—'देश पूरब देश पूरब गंगनई कंठि तिहां नगरी पुहुपावती राजकरइ हरिवंस मंडण तसु घरि प्रोहित तासु सुत माधवानल नाम बंभण'। वर्तमान पूठ गढ़मुक्तेश्वर (ज़िला मेरठ) से आठ मील दक्षिण में गंगा के दक्षिण तट पर है।

पुष्पवती

(1)=**पुष्पवटी**=**पुष्पावती**

(2)=**काशी**

(3)=मध्यभारत (बुंदेल खंड) की पहूज नदी।

पुष्पवान्

विष्णुपुराण 2,4,41 में उल्लिखित कुशद्वीप का एक पर्वत—'विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा, कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मंदराचलः'।

पुष्पावती

(1)=**काशी**

(2)=**पुष्पवटी**

(3) (म० प्र०) किंवदंती में बिलहरी (कटनी से नौ मील) का प्राचीन नाम।

(4)=**पुष्पजा नदी**

पुहुपावती दे० पुष्पवटी

पुहार दे० काकंदी

पूंगलगढ़

राजस्थान की प्रसिद्ध लोक कथा, ढोलामारू की नायिका मारू या मरवण पूंगलगढ़ की राजकुमारी थी। यह नगर राजस्थान में स्थित था। कथा में इसे पंगल भी कहा गया है।

पूंडरी=**पुंडरीक**

पूंछ दे० **पर्णोत्स**

पूठ दे० **पुष्पवटी**

पूना (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र का सांस्कृतिक केंद्र तथा पेशवाओं की प्रसिद्ध राजधानी। यह नगरी मुला तथा मुठा नदियों के बीच में स्थित है। पूना का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उल्लेख 1599 ई० का मिलता है। 1750 ई० में पेशवा ने पहले-पहल

यहां अपनी राजधानी स्थापित की थी। इससे पहले शिवाजी तथा उनके वंशजों की राजधानी सतारा में थी। 1817 ई० में पेशवा की खिड़की नामक स्थान में हार हो जाने के पश्चात् पूना पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। पूना में पार्वती देवी का एक अति प्राचीन मंदिर है जो खड़गवासला के मार्ग में स्थित है। शिवाजी का प्रसिद्ध दुर्ग सिंहगढ़ पूना से 15 मील दूर है। शिवाजी से संबंधित दूसरा प्रसिद्ध क़िला पुरंदर यहां से 24 मील है। पूना का प्राचीन नाम पुण्यपत्तन था। मराठी में पूना को पुणें कहते हैं।

पूर्णत्रयी (केरल)

त्रिपुणित्तुरै का प्राचीन संस्कृत नाम। इस स्थान पर शेषारूढ़ (विष्णु) तथा किरातरूप शिव का प्राचीन देवालय है। इस नगर में प्राचीन कोचीन नरेशों के राजभवन स्थित हैं। इनकी राजधानी यहां से 6 मील अर्नाकुलम् में थी।

पूर्णा

महाराष्ट्र की एक छोटी नदी। पूर्णा तथा सरस्वती नदियों के संगम पर प्राचीन तीर्थ बामनी है जहां एक सादा किंतु सुंदर प्राचीन मंदिर है। पूर्णा नदी सतपुडा से निकलकर बुरहानपुर के नीचे ताप्ती में मिल जाती है। इसका उल्लेख पद्मपुराण 61 में है।

पूर्णिया (बिहार)

यह ज़िला महानंद और कोसी नदियों से सिंचित है। पूर्व बौद्धकाल में पूर्णिया का पश्चिमी भाग अंग जनपद में सम्मिलित था और तत्पश्चात् मगध में। हर्ष के समय में गौड़ाधिप शशांक का राज्य यहाँ तक विस्तृत था किंतु 620 ई० के लगभग हर्ष ने शशांक को पराजित किया और यह प्रदेश भी कान्यकुब्ज के शासन के अंतर्गत आ गया। मध्ययुग में यहां बिहार के अन्य प्रदेशों की भांति ही पाल और सेन नरेशों का राज्य था। मुगलों के जमाने में पूर्णिया, साम्राज्य के सीमावर्ती इलाके में सम्मिलित था और यहां सैनिक शासन था। पूर्णिया नाम कुछ विद्वानों के मत में पुंड्र का अपभ्रंश है। (दे० पुंड्र)। स्थानीय जनश्रुति में पूर्णिया 'पुरइन' (कमल) का शुद्ध रूप माना जाता है जो यहां पहले समय में कमल-सरोवरों की स्थिति का सूचक है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि प्राचीन समय में घने जंगल या पूर्ण अरण्य होने के कारण ही इसे पूर्णिया कहा जाता था। (दे० सर जान फाउल्ट—बिहार दि हार्ट ऑव इंडिया, पृ० 121)

पूर्वदेश

बंगाल-आसाम प्रदेश का संयुक्त नाम—'पूर्व—देशादिकाश्चैव कामरूप निवासिन:'—विष्णु० 2,3,15

पूर्वराष्ट्र

गुप्तकालीन एक अभिलेख में मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग का नाम है जिसमें वर्तमान रायपुर तथा परिवर्ती प्रदेश सम्मिलित है। यह अभिलेख अरंग नामक स्थान से प्राप्त हुआ था।

पूर्वसागर

प्राचीन भारतीय साहित्य में पूर्व सागर या तो बंगाल की खाड़ी का नाम है या वर्तमान प्रशांत सागर (पेसिफ़क ओशन) का। बंगाल की खाड़ी का समुद्र तीन ओर से भूमि द्वारा परिवृत होने के कारण सामान्यतः (मानसून के समय को छोड़कर) शांत और अक्षुब्ध रहता है और प्रशांत सागर को तो प्रशांत कहते ही हैं। यह तथ्य बड़ा मनोरंजक है कि महाभारत के एक उल्लेख में पूर्वसागर को शान्ति और अक्षोभ का उपमान माना गया है—'नाभ्यगच्छत् प्रहर्षं ताः स पश्यन् सुमहातपाः, इंद्रियाणि वशेकृत्वा पूर्वसागरसन्निभः'—उद्योग 9,16,17 अर्थात् वे तपस्वी उन अप्सराओं को देखकर भी विकारवान् न हुए वरन् इंद्रियों को वश में करके पूर्वसागर के समान (अविचलित) रहे। कालिदास ने पूर्वसागर का रघु की दिग्विजय के प्रसंग में वर्णन किया है—'स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम्, बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः'—रघु० 4,32। इस उद्धरण में पूर्वसागर निश्चय रूप से बगाल की खाड़ी का नाम है क्योंकि गंगा को इसी समुद्र की ओर जाती हुई कहा गया है।

पूर्वाराम

बौद्ध साहित्य में वर्णित श्रावस्ती (=सहेत महेत; ज़िला गोंडा, उ० प्र०) का एक विहार जिसका निर्माण इस महानगरी के एक धनी सेठ की स्त्री विशाखा ने करवाया था। इसमें अपार धनराशि व्यय हुई थी। इस विहार के खंडहर सहेत-महेत में जेतवन के अवशेषों से एक मील दक्षिण की ओर एक ढूह के रूप में पड़े हुए हैं। (दे० श्रावस्ती)

पृथूदक

महाभारत में वर्णित तथा सरस्वती नदी के तट पर अवस्थित प्राचीन तीर्थ जिसका अभिज्ञान पेहेवा या पिहोवा (ज़िला अंबाला, हरयाणा) से किया गया है—'पृथूदकमिति ख्यातं कार्तिकेयस्य वै नृप, तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः'; 'पुण्यमाहुः कुरुक्षेत्रं कुरुक्षेत्रात् सरस्वती, सरस्वत्याश्च तीर्थानि तीर्थेभ्यश्च पृथूदकम्'; 'पृथूदकात् तीर्थतमं नान्यत् तीर्थं कुरुद्वह'; 'तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति येऽपि पापकृतो नराः पृथूदके नरश्रेष्ठ एवमाहुर्मनीषिणः'—महा० वन० 83, 142-145-148-149। शल्यपर्व में भी सरस्वती के तीर्थों के प्रसंग में पृथूदक

का उल्लेख है—'रुषंगुरब्रवीत् तत्र नयध्वं मां पृथूदकम्, विज्ञायातीतवयसं रुषंगु ते तपोधनाः, तं च तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम्' शल्य० 39,29-30। पृथूदक का संबंध महाराज पृथु से बताया जाता है। यहां आज भी अनेक प्राचीन मंदिरों के अवशेष हैं तथा पुरातत्व-विषयक सामग्री भी मिली है। महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी ने थानेसर को लूटने के समय पेहेवा को भी ध्वस्त कर दिया था। महाराणा रणजीतसिंह ने यहां के प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया था।

पेकीगुंडू (आं० प्र०)

कोरबल के निकट स्थित है। कुछ वर्ष हुए यहां एक चट्टान पर उत्कीर्ण अशोक का अभिलेख सं० (1) प्राप्त हुआ था।

पेगू (बर्मा)

इस स्थान को प्राचीन भारतीय साहित्य में सुवर्णभूमि कहा गया है। अशोक के शासन काल में मोग्गलिपुत्र ने सोण और उत्तर नामक दो स्थविर इस देश में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ भेजे थे।

पेनुकोंडा (मैसूर)

यहां विजयनगर नरेशों (15वीं 16वीं शती) की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी। लोगों का परंपरागत विश्वास है कि यहां श्रीरामचंद्र ने अपने वनवास-काल का कुछ समय बिताया था जिसके स्मारक कई प्राचीन मंदिर हैं। एक शिव मंदिर भी है।

पेन गंगा

दक्षिण भारत की एक नदी जो संभवतः प्राचीन साहित्य की वेणा या प्रवेणी है।

पेरूर (मद्रास)

यह स्थान एक मध्यकालीन सुंदर मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। इस मंदिर के प्रवेश द्वारों और छाजनों की शोभा अनोखी जान पड़ती है।

पेशावर दे० **पुरुषपुर**

पेहेवा=**पृथूदक**

पैठण=**पैठान**=**प्रतिष्ठान** (जिला औरंगाबाद,महाराष्ट्र)

गोदावरी तट पर स्थित अति प्राचीन व्यापारिक तथा धार्मिक स्थान है। पैठण महाराष्ट्र के वारकरी संप्रदाय का तीर्थ स्थल और प्रसिद्ध संत एकनाथ की जन्मभूमि है। पैठान को पोतन भी कहते थे। यहां अश्मक जनपद की राजधानी थी। (दे० प्रतिष्ठान)।

पैंठान = पैठण

पैठामभुक्ति (जिला रायपुर, म० प्र०)

उत्तर गुप्तकालीन (7वीं-8वीं शती ई०) एक अभिलेख से जो **राजिम** में प्राप्त हुआ था पैठामभुक्ति नामक स्थान का नाम सूचित होता है। यहां के पिपरिपद्रक ग्राम के निवासी किसी ब्राह्मण को कोसल-नरेश तीवरदेव ने एक ग्राम का दान दिया था।

पैशुनी

चित्रकूट (जिला बांदा, उ० प्र०) के निकट बहने वाली मंदाकिनी या पयस्विनी का एक नाम। संभवत: यह नाम पयस्विनी का ही अपभ्रंश रूप है।

पैसर (ज़िला बिलासपुर, म० प्र०)

महानदी के तट पर अवस्थित छोटा सा ग्राम है। प्राचीन किंवदंती है कि दंडकारण्य जाते समय श्रीरामचंद्र ने सीता और लक्ष्मण के साथ महानदी को इसी स्थान पर पार किया था। पैसर का अर्थ 'नदी को पैदल पार करना' है।

पोखरन = पुष्करण = पुष्करारण्य

पोतन दे० **पैठण**

अश्मक जनपद की राजधानी। सुत्तनिपात (977) में पोतन या पैठण में बताई गई है (दे० अश्मक)। महागोविंद सुत्तंत के अनुसार यहां का राजा ब्रह्मदत्त था किंतु अस्सक जातक में पोतन को काशी-जनपद में बताया गया है। महाभारत में शायद इसी नगर को पौदन्य (दे० रायचौधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, पृ० 121) और चुल्ल-कलिंग जातक में पोतलि कहा गया है।

पोतलि दे० **पोतन**

पोदनपुर

मैसूर राज्य में प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार गोमटेश्वर, जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र थे। इनको बाहुबली या भुजबली भी कहते थे। इनमें और इनके ज्येष्ठ भ्राता भरत में ऋषभदेव के विरक्त होने पर राज्य के लिए युद्ध हुआ। बाहुबली ने विजयी होने पर भी राज्य भरत को सौंप दिया और आप तपस्या करने वन में चले गए। भरत ने पोदनपुर में, जहां बाहुबली ने राज्य किया था, उनकी पावन-स्मृति में उनकी शरीराकृति के अनुरूप ही 525 धनुषों के प्रमाण की एक प्रस्तर प्रतिमा स्थापित करवाई। कालांतर में मूर्ति के आसपास का प्रदेश वन-कुक्कुटों तथा सर्पों से व्याप्त हो गया जिससे लोग मूर्ति को ही कुक्कुटेश्वर कहने लगे। धीरे-धीरे यह मूर्ति लुप्त हो गई और

उसके दर्शन अलभ्य हो गए। गंगवंशीय रायमल्ल के मंत्री चामुंडराय ने इस मूर्ति का वृत्तांत सुनकर इसके दर्शन करने चाहे, किंतु पोदनपुर की यात्रा कठिन समझकर श्रमणबेलगोल में उन्होंने पोदनपुर की मूर्ति के अनुरूप ही गोमटेश्वर की मूर्ति का निर्माण करवाया। यह मूर्ति संसार की विशालतम मूर्तियों में है। (दे० श्रवणबेलगोल)

पोनेरी (आं० प्र०)

अनारी नदी के तट पर बसा हुआ, यह शिव तथा विष्णु दोनों देवों का सम्मिलित तीर्थ है।

पोरबंदर (काठियावाड़, महाराष्ट्र)

प्राचीन सुदामापुरी। यहां की भूतपूर्व रियासत 14वीं शती में स्थापित हुई थी। इससे पहले सुराष्ट्र के इस प्रदेश की राजधानी घुमली में थी।

पोरशा (ज़िला दीनाजपुर, बंगाल)

इस स्थान में नवदुर्गा की एक प्रस्तर मूर्ति प्राप्त हुई थी। एक विशाल फलक पर देवी की नव मूर्तियां निर्मित हैं। मध्यवर्ती मूर्ति के अठारह हाथ और शेष आठ में से प्रत्येक के सोलह हाथ हैं। यह विलक्षण मूर्ति राजशाही के संग्रहालय में सुरक्षित है।

पोलाडोंगर (म० प्र०)

यहां 7वीं से 9वीं शती ई० की इमारतों के अनेक अवशेष मिले हैं जिससे इस स्थान की प्राचीनता सिद्ध होती है।

पोलिवापिक (लंका)

महावंश 28, 39में उल्लिखित। यह अनुराधपुर से पचास मील दूर वर्तमान ववुनिककुलम् है।

पौंडी (म० प्र०)

मैहर से कटनी जाने वाले मार्ग पर छोटा-सा ग्राम है। यहां से प्राचीनकाल की अनेक मूर्तियां मिली हैं। एक मूर्ति पर 1157 ई० का एक अभिलेख अंकित है। यह स्थान मध्ययुगीन जान पड़ता है।

पौंड्र=पुंड्र

महाभारत आदि० 174,37 में पौंड्र देश निवासियों की अनार्य जातियों में गणना की गई है 'पौंड्रान किरातान् यवनान् सिंहलान् बर्बरान् खसान्'।

पौदन्य दे० **पोतन**

पौनार (महाराष्ट्र)

कुछ विद्वानों के मत में वर्तमान पौनार, प्राचीन प्रवरपुर है जहां वाकाटक

नरेशों की गुप्तकाल में राजधानी थी।

पौलोम

नारीतीर्थों में परिगणित तीर्थ—'अगस्त्य तीर्थं सौभद्रं पौलोमं च सुपावनम्, कारंधमं प्रसन्नं च हयमेधफलं च तत्'—महा० आदि० 215,4। यह दक्षिण समुद्र-तट पर स्थित था। (दे० नारीतीर्थ)

प्रकाश (पश्चिम खानदेश, महाराष्ट्र)

ताप्ती घाटी में अवस्थित इस स्थान के निकट लगभग एक तीन सहस्र वर्ष प्राचीन नगर के अवशेष उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाए गए हैं। इसकी खोज 1954 में वल्लभ विद्यानगर की पुरातत्व संस्था द्वारा की गई थी। ये खंडहर ताप्ती के उत्तरी तट पर भूमि से काफ़ी ऊंचाई पर अवस्थित हैं। खुदाई की प्रक्रिया में सर्वप्रथम ई० सन् की प्रारम्भिक शतियों में व्यवहृत लाल मृद्भांड प्राप्त हुए। तत्पश्चात् निचले तलों में मौर्य-पूर्व मृद्भांडों तथा प्रस्तरोपकरणों के अवशेष मिले। प्रकाश में प्राप्त चित्रित मृद्भांड नगदा तथा महेश्वर से मिलनेवाले मृद्भांडों (माहिष्मती मृद्भांडों) के समान ही हैं। उपर्युक्त संस्था के संचालक श्री पंड्या के मत में ये मृद्भांड, हरप्पा-पूर्व संस्कृति (अर्थात् सिंध—बिलोचिस्तान की अमरी-ज्रोब नामक संस्कृति) से संबंधित हैं। अमरी-ज्रोब सभ्यता के लोगों को, मोहंजदारो तथा हरप्पा निवासियों के भारत में आगमन के कारण, सिंध-बिलोचिस्तान से पूर्व की ओर अग्रसर होना पड़ा था।

प्रज्ञापुर (गुजरात)

अहमदाबाद से प्रायः बीस मील दूर जैनों का प्राचीन तीर्थ है जिसे अब शेरीसाजी कहते हैं।

प्रणहिता

गोदावरी की सहायक नदी। यह वेनगगा, वरदा और पेनगंगा की संयुक्त धारा से मिलकर बनी है।

प्रणति-भूमि

जैनग्रंथ कल्पसूत्र के अनुसार तीर्थंकर महावीरजी ने एक वर्षाकाल इस स्थान पर बिताया था। अभिज्ञान संदिग्ध है।

प्रणिता=प्रणहिता

प्रतापगढ़ (महाराष्ट्र)

महाबलेश्वर से बारह मील पश्चिम की ओर शिवाजी के कृत्यों से

संबंधित पहाड़ी स्थान है। उन्होंने बीजापुर रियासत के भेजे हुए सरदार अफजलखां का इसी स्थान पर बघनख द्वारा वध किया था। यहां का दुर्ग समुद्रतल से 3543 फुट ऊंची पहाड़ी पर बना है। इसका निर्माण शिवाजी ने 1656 ई० में करवाया था। शिवाजी की अधिष्ठात्री देवी भवानी का मंदिर यहां का प्रसिद्ध स्मारक है। अफजलखां का मकबरा यहीं स्थित है जिसमें उसका कटा हुआ सिर दफ़नाया गया था।

प्रतापगिरि (महादेवपुर तालुका, ज़िला करीमनगर, आं०प्र०)

वारंगल-नरेश राजा प्रतापरुद्र के बनवाये हुए किले के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

प्रतिविंध्य

'स तेन सहितोराजन् सव्यसाची परंतपः, विजिग्ये शाकलं द्वीपं प्रतिविंध्यं च पार्थिवम्' महा० आदि० 26,5। प्रतिविंध्य के राजा को अर्जुन ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में हराया था। यह स्थान संभवतः शाकल (स्यालकोट, प० पाकिस्तान) के निकट कोई पहाड़ी स्थान था। (यह शाकल नरेश का नाम भी हो सकता है)।

प्रतिष्ठान=पैठाण (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

औरंगाबाद से 35 मील दक्षिण में, दक्षिण भारत का प्रसिद्ध प्राचीन नगर। यह गोदावरी के उत्तरी तट पर स्थित है और प्राचीन काल ही से तीर्थ के रूप में मान्यताप्राप्त स्थान है। पुराणों के अनुसार प्रतिष्ठान की स्थापना ब्रह्मा ने की थी और गोदावरी-तट पर इस सुन्दर नगर को उन्होंने अपना स्थान बनाया था। प्रतिष्ठान-माहात्म्य में कथा है कि ब्रह्मा ने इस नगर का नाम पाटन या पट्टन रखा और फिर अन्य नगरों से इसका महत्व ऊपर रखने के लिए इसका नाम बदल कर प्रतिष्ठान कर दिया। महाभारत में प्रतिष्ठान में सब तीर्थों के पुण्य को प्रतिष्ठित बताया गया है—'एवमेषा महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठता, तीर्थयात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचनी' वन० 85, 114। (यह उल्लेख प्रतिष्ठानपुर या झूसी के लिए भी हो सकता है)। प्राचीन बौद्ध (पाली) साहित्य में पतित्थान या प्रतिष्ठान का उत्तर और दक्षिण भारत के बीच जाने वाले व्यापारिक मार्ग के दक्षिणी छोर पर अवस्थित नगर के रूप में वर्णन है। इसे गोदावरी-तट पर स्थित तथा दक्षिणापथ का मुख्य व्यापारिक केन्द्र माना गया है। ग्रीक लेखक एरियन ने इसे 'प्लीथान' कहा है तथा मिश्र के रोमन भूगोल-विद् टॉलमी ने जिसने भारत की द्वितीय शती ई० में यात्रा की थी इसका नाम बैथन (Baithon) लिखा है और इसे सिरोपोलोमेयोस (सातवाहन नरेश श्री पुलोमयी द्वितीय 138-170 ई०) की राजधानी बताया है। पेरिप्लस ऑव

दि एराइथ्रियन सी के अज्ञातनाम लेखकने इस नगरका नाम पीथान (Poethan) लिखा है। प्रथम शती ई० के रोमन इतिहास लेखक प्लिनी ने प्रतिष्ठान को आंध्रदेश के वैभवशाली नगर के रूप में सराहा है। पितलखोरा गुफ़ा के एक अभिलेख तथा प्रतिष्ठान-माहात्म्य में नगर का शुद्ध नाम प्रतिष्ठान सुरक्षित है। अशोक ने अपने शिला अभिलेख 13 में जिन भोज, राष्ट्रिक व पतनिक लोगों का उल्लेख किया है संभव है वे प्रतिष्ठान-निवासी हों। किंतु बुह्लर ने इस मत को नहीं माना है और न ही डा० भंडारकर ने। (दे० अशोक पृ० 34)। प्रतिष्ठान का उल्लेख जिनप्रभासूरि के विविध तीर्थकल्प और आवश्यक सूत्र में भी है। विविध-तीर्थ-कल्पसूत्र के अनुसार महाराष्ट्र के इस नगर में शातवाहन नरेश का राज्य था। इसने उज्जयिनी के विक्रमादित्य को हराया था। शातवाहन एक ब्राह्मणी विधवा का पुत्र था और उसके पिता नागराज का गोदावरी के निकट निवास-स्थान था। शातवाहन ने दक्षिण देश में ताप्ती का निकटवर्ती प्रदेश जीत लिया था। इस ग्रंथ के अनुसार शातवाहन जैन था और उसने अनेक चैत्य बनवाए और गोदावरी के तट पर महालक्ष्मी की मूर्ति की स्थापना की। गुजरात के कायस्थ कवि सोडल्ल (या सोडठल) की सुप्रसिद्ध रचना चंपूकाव्य उदयसुन्दरी का नायक मलयवाहन प्रतिष्ठान का राजा था। उसका विवाह नागराज शिखराज तिलक की कन्या उदयसुन्दरी के साथ हुआ था। शातवाहन नरेशों की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठान इतिहास में प्रसिद्ध रहा है। जान पड़ता है कि मलयवाहन इसी वंश का राजा था। प्राचीनकाल में आंध्र साम्राज्य की राजधानी कृष्णा के मुहाने पर स्थित धन्यकटक या अमरावती में थी किंतु प्रथम शती ई० के अंतिम वर्षों में आंध्रों ने उत्तर-पश्चिम में एक दूसरी राजधानी बनाने का विचार किया क्योंकि उनके राज्य के इस भाग पर शक, पह्लव और यवनों के आक्रमणों का डर लगा हुआ था। इस प्रकार आंध्र-साम्राज्य की पश्चिमी राजधानी प्रतिष्ठान या पैठान में बनाई गई और पूर्वी भाग की राजधारी धन्यकटक में ही रही। प्रतिष्ठान में स्थापित होनेवाली आंध्र-शाखा के नरेशों ने अपने नाम के आगे आंध्रभृत्य विशेषण जोड़ा जो उनकी मुख्य आंध्र-शासकों की अधीनता का सूचक था किंतु कालांतर में वे स्वतन्त्र हो गए और शातवाहन कहलाए। पुरातत्वसंबंधी खुदाई में पैठाण या पैठन से आंध्र नरेशों के सिक्के मिले हैं जिन पर स्वस्तिक, बोधिद्रुम तथा अन्य चिन्ह अंकित हैं। अन्य अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जिनमें मिट्टी की मूर्तियां, माला की गुरियां, हाथीदांत और शंख की बनी वस्तुएं तथा मकानों के खंडहर उल्लेखनीय हैं। पैठाण की प्रायः सभी इमारतें खंडहर के रूप में हैं किंतु नगर में अपेक्षा-

कृत नवीन मंदिर भी हैं जिनमें लकड़ी का अच्छा काम है। 1734 ई० में गोदावरी पर स्थित नागाघाट निर्मित हुआ था। इसके पास ही दो मंदिर हैं जिनमें से एक गणपति का है। नगर की मसजिद में एक कूप है जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह वही कुआं है जिसमें नागराज शेष का ब्राह्मणपुत्र शालिवाहन अपनी बनाई हुई मिट्टी की मूर्तियां डालता रहा था और इन सैनिकों तथा हाथी-घोड़ों की प्रतिमाओं ने बाद में जीवित रूप धारण करके शालिवाहन की, आक्रमणकारी उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य से रक्षा की थी। विक्रमादित्य को ज्योतिषियों ने बताया था कि शालिवाहन उसका शत्रु होगा। शालिवाहन ने विक्रमादित्य को हराकर पूरे दक्षिणापथ पर अधिकार कर लिया और कहते हैं कि 78 ई० में प्रवर्तित शक-शालिवाहन नामक प्रसिद्ध संवत् उसी ने चलाया था।

पैशाची प्राकृत के प्रसिद्ध आचार्य गुणाढ्य प्रतिष्ठान-निवासी थे। पीछे वह पिशाच देश में जा बसे थे। इनका प्रख्यात ग्रंथ बृहत्कथा अब अप्राप्य है किंतु 12वीं शती तक यह उपलब्ध था। गुणाढ्य प्रतिष्ठान के राजा शालिवाहन (78 ई०) की राजसभा के रत्न थे। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध विद्वान् हेमाद्रि का भी प्रतिष्ठान से निकट संबंध था। ये शुक्ल यजुर्वेदी ब्राह्मण थे और देवगिरि के यादव नरेश महादेव तथा तत्पश्चात् रामचंद्र सेन के प्रधान मंत्री थे। इनके लिखे हुए कई प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिनमें चतुर्वर्ग चिंतामणि तथा आयुर्वेद-रसायन मुख्य हैं। हेमाद्रि को मराठी की मोडी लिपि का आविष्कारक कहा जाता है। 14वीं शती में महाराष्ट्र के महानुभाव संत संप्रदाय का जन्म प्रतिष्ठान में हुआ था। डा० भंडारकर ने प्रतिष्ठान का अभिज्ञान नवनर या नवनगर नामक स्थान से किया है जो संदेहास्पद है।

(2) प्रतिष्ठानपुर (=भूसी, प्रयाग)

प्रतिष्ठानपुर

प्रयाग के निकट गंगा के दूसरे तट पर स्थित भूसी ही प्राचीन प्रतिष्ठानपुर है। महाभारत में सब तीर्थों की यात्रा को प्रतिष्ठान (प्रतिष्ठानपुर) में प्रतिष्ठित माना गया है—'ऐत्रमेवा महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता, तीर्थ यात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचनी' वन० 85,114। (टि० यह निर्देश प्रतिष्ठान या पैठाण के लिए भी हो सकता है)। वन० 85,76 में प्रयाग के साथ ही प्रतिष्ठान का उल्लेख है—'प्रयागं सप्रतिष्ठानं कंबलाश्वतरौ तथा' (दे० भूसी)।

प्रतीची

'ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी'–श्रीमद्भागवत 11,5,39-40। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रतीची केरल

की प्रसिद्ध परियार नदी है (दे० **परियार**)।

प्रद्युम्ननगर=**पांडुआ** (ज़िला हुगली प० बंगाल) (दे० मारपुर)

प्रभाकर

विष्णुपुराण 2,4,36 के अनुसार कुशद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के पुत्र के नाम पर प्रसिद्ध है।

प्रभास

(1)=**प्रभासपाटन, प्रभासपट्टन**

सरस्वती–समुद्र संगम पर स्थित प्रसिद्ध तीर्थ—'समुद्रं पश्चिमं गत्वा सरस्वत्यब्धि संगमम्' महा० 35,77। यह तीर्थ काठियावाड़ के समुद्रतट पर स्थित वीरावल बंदरगाह की वर्तमान बस्ती का प्राचीन नाम है। किंवदंती के अनुसार जरा नामक व्याध का बाण लगने से श्रीकृष्ण इसी स्थान पर परम-धाम सिधारे थे। यह विशिष्ट स्थल या देहोत्सर्ग-तीर्थ नगर के पूर्व में हिरण्या, सरस्वती तथा कपिला के संगम पर बताया जाता है। इसे प्राची त्रिवेणी भी कहते हैं। युधिष्ठिर तथा अन्य पांडवों ने अपने वनवास-काल में अन्य तीर्थों के साथ प्रभास की भी यात्रा की थी—'द्विजैः पृथिव्यां प्रथितं महद्भिस्तीर्थं प्रभासं समुपजगाम' महा० वन० 118,15। इस तीर्थ को महोदधि (समुद्र) का तीर्थ कहा गया है—'प्रभासतीर्थं संप्राप्य पुण्यं तीर्थं महोदधेः'–वन० 1 9,3। विष्णु-पुराण के अनुसार प्रभास में ही यादव लोग परस्पर लड़भिड़ कर नष्ट हो गए थे—'ततस्ते यादवास्सर्वे रथानारुह्य शीघ्रगान्, प्रभासं प्रययुस्सार्धं कृष्ण-रामादिभिर्द्विज। प्रभासं समनुप्राप्ता कुकुरांधक वृष्णयः चक्रुस्तत्र महापानं वासु-देवेन नोदिताः, पिबतां तत्र चैतेषां संघर्षेण परस्परम्, अतिवादेन्धनोजज्ञे कल-हाग्निः क्षयावहः' विष्णु 5,37-38-39-40। देहोत्सर्ग के आगे यादव-स्थली है जहां यादव लोग परस्पर लड़भिड़ कर नष्ट हो गए थे। प्रभास पाटन का जैन साहित्य में देवकीपाटन नाम भी मिलता है। दे० तीर्थमाला चैत्यवंदन—'वंदे स्वर्णगिरौ तथा सुरगिरौ श्री देवकीपत्तने'।

(2)=**पभोसा** (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

शुंग काल (द्वितीय शती) के अनेक उत्कीर्ण लेख इस स्थान से प्राप्त हुए हैं। यह प्राचीन नगर कौशांबी के निकट स्थित था—(दे० पभोसा)।

प्रमाणकोटि

महाभारत में उल्लिखित, गंगातटवर्ती एक स्थान—'उदकक्रीडनं नाम कार-यामास भारत, प्रमाणकोट्यां तं देशं स्थलंकिंचिदुपेत्य ह'–आदि० 127,33। यहीं बचपन में पांडव और कौरव जल-विहार के लिए गए थे और कौरवों ने भीमसेन को गंगा में डुबा दिया था जिसके फलस्वरूप वे नाग लोक जा पहुंचे थे। प्रमाण-

कोटि का नाम संभवत: 'प्रमाण' नामक महावट के कारण हुआ था—'निवृत्तेषु तु पौरेषु रथानास्थाय पांडवाः आजग्मुर्जाह्नवीतीरे प्रमाणाख्यं महावटम्' वन० 1,41। जान पड़ता है कि प्रमाणकोटि हस्तिनापुर के निकट ही गंगा-तट पर कोई स्थान था जहां हस्तिनापुर के निवासी सुविधापूर्वक जल-विहार के लिए जा सकते थे।

प्रयाग (उ० प्र०)

गंगा-यमुना के संगम पर बसा हुआ प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ। प्राचीन साहित्य में केवल गंगा-यमुना, इन्हीं दो नदियों का संगम प्रयाग में माना गया है। त्रिवेणी या गंगा यमुना-सरस्वती, इन तीन नदियों के संगम की कल्पना मध्ययुगीन है। [दे० सरस्वती (2)]। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, प्राचीन पुराणों तथा कालिदास के ग्रंथों में सर्वत्र प्रयाग में गंगा-यमुना ही के संगम का वर्णन है। वाल्मीकि-रामायण में प्रयाग का उल्लेख भारद्वाज के आश्रम के संबंध में है और इस स्थान पर घोर वन की स्थिति बताई गई है—'यत्र भागीरथीं गंगां यमुनाभिप्रवर्तते जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य समुहद्वनम्। प्रयागमभित: पश्च सौमित्रे धूममुत्तमम्, अग्रेर्भगवत: केतुं मन्ये संनिहितो मुनिः। धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लंबमाने दिवाकरे, गंगायमुनयोः संधौ प्रापतुर्निलयं मुनेः। अवकाशो विविक्तो यं महानद्योः समागमे, पुण्यश्चरमणीयश्च वसत्विह भवान् सुखम्'—वाल्मीकि० अयो० 54,2-5-8-22। इस वर्णन से सूचित होता है कि प्रयाग में रामायण की कथा के समय घोर जंगल तथा मुनियों के आश्रम थे, कोई जनसंकुल बस्ती नहीं थी। महाभारत में गंगा-यमुना के संगम का उल्लेख तीर्थ रूप में अवश्य है किंतु उस समय भी यहां किसी नगर की स्थिति का आभास नहीं मिलता—'पवित्रमृषिभिर्जुष्टं पुण्यं पावनमुत्तमम्, गंगायमुनयोर्वीर संगमं लोक विश्रुतम्' वन० 87,18। 'गंगा यमुनयोर्मध्ये स्नाति यः संगमेनरः, दशाश्वमेधानाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्' वन० 84,35। 'प्रयागे देवयजने देवानां पृथिवीपते, ऊपुराप्लुत्य गात्राणि तपश्चातस्थुरुत्तमम्, गंगायमुनयो चैव संगमे सत्यसंगराः' वन० 95,4-5। बौद्ध साहित्य में भी प्रयाग का किसी बड़े नगर के रूप में वर्णन नहीं मिलता; वरन् बौद्धकाल में वत्सदेश की राजधानी के रूप में कौशांबी अधिक प्रसिद्ध थी। अशोक ने अपना प्रसिद्ध प्रयाग-स्तंभ कौशांबी में ही स्थापित किया था यद्यपि बाद में शायद अकबर के समय में वह प्रयाग ले आया गया था। इसी स्तंभ पर समुद्रगुप्त की प्रसिद्ध प्रयाग-प्रशस्ति अंकित है। कालिदास ने रघुवंश के 13वें सर्ग में गंगा-यमुना के संगम का मनोहारी वर्णन किया है (श्लोक 54 से 57 तक) तथा गंगा यमुना के संगम के स्नान को मुक्तिदायक

माना है—'समुद्र-पत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्, तत्त्वावबोधेन विनापि भूयः तनुस्त्यजां नास्ति शरीरबंधः' रघु० 13,58। विष्णुपुराण में, प्रयाग में गुप्तनरेशों का शासन बतलाया गया है—'उत्साद्याखिलक्षत्रजाति नवनागाः पद्मावत्यां नाम पुर्यामनुगंगाप्रयागं गयायाश्च मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति'। विष्णु० —6,8,29 से सूचित होता है कि इस पुराण के रचनाकाल (स्थूल रूप से गुप्त काल) में प्रयाग की तीर्थ रूप में बहुत मान्यता थी—'प्रयागे पुष्करे चैव कुरु-क्षेत्रे तथार्णवे कृतोपवासः प्राप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः'। युवानच्वांग ने कन्नौजा-धिप महाराज हर्ष का प्रति पांचवें वर्ष प्रयाग के मेले में जाकर सर्वस्व दान कर देने का अपूर्व वर्णन किया है। उत्तरकालीन पुराणों में प्रयाग के जिस अक्षयवट का उल्लेख है उसे बहुत समय तक संगम के निकट अकबर के किले के अंदर स्थित बताया जाता था। यह बात अब गलत सिद्ध हो चुकी है और असली वट-वृक्ष क़िले से कुछ दूर पर स्थित बताया जाता है। महाभारत में अक्षयवट का गया में होना वर्णित है–(वन० 84,83)। संभव है गौतम बुद्ध के गया स्थित संबोधिवृक्ष के समान ही पौराणिक काल में अक्षय वट की कल्पना की गई होगी। कहा जाता है कि अकबर के समय में प्रयाग का नाम इलाहाबाद कर दिया गया था किंतु जान पड़ता है कि प्रयाग को अकबर के पूर्व भी इलाबास कहा जाता था। एक पौराणिक कथा के अनुसार प्रतिष्ठानपुर अथवा भूसी (जो प्रयाग के निकट गंगा के उस पार है) में चंद्रवंशी राजा पुरु की राजधानी थी। इनके पूर्वज पुरुरवा थे जो मनु की पुत्री इला और बुध के पुत्र थे (दे० वाल्मीकि० उत्तर-89)। इला के नाम पर ही प्रयाग को इलाबास कहा जाता था। वास्तव में अकबर ने इसी नाम को थोड़ा बदलकर इलाहाबाद कर दिया था। वत्स या कौशांबी का राजा उदयन जो प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध है, चंद्रवंश से ही संबंधित था —इससे भी प्रयाग में चंद्रवंश के राज्य करने की पौराणिक कथा की पुष्टि होती है और इस तथ्य का भी प्रमाण मिल जाता है कि वास्तव में प्रयाग का एक प्राचीन नाम इलाबास भी था जिसे अकबर ने कुछ बदल दिया था, और उसका उद्देश्य प्रयाग नाम को हटाकर अल्लाहाबाद या इलाहाबाद नाम प्रचलित करना नहीं था। अकबर ने संगम पर स्थित किसी पूर्वयुगीन क़िले का जीर्णोद्धार करके उसका विस्तार करवाया और उसे वर्तमान सुदृढ़ किले का रूप दिया। इस तथ्य की पुष्टि तुलसीदास के इस वर्णन से भी होती है जिसमें प्रयाग में एक सुदृढ़ गढ़ का वर्णन है—'क्षेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा, सपनेहु नहिं प्रतिपच्छहिं पावा' (रामचरितमानस, अयोध्या कांड)। अकबर के समकालीन इतिहासलेखक बदायूंनी के वृत्तांत से सूचित होता है इस मुगल सम्राट् ने प्रयाग में एक बड़े

राजप्रासाद की भी नींव रखी और नगर का नाम इलाहाबाद कर दिया (दे० ऊपर)। अकबर ने प्रयाग की स्थिति की महत्ता को समझते हुए उसे अपने साम्राज्य के 12 सूबों में से एक का मुख्य स्थान भी बनाया। इसमें कड़ा और जौनपुर के प्रदेश भी सम्मिलित कर दिए गए थे। कहा जाता है कि अशोक का कौशांबी-स्तंभ इसी समय प्रयाग लाया गया था। अशोक और समुद्रगुप्त के प्रसिद्ध अभिलेखों के अतिरिक्त इस पर जहांगीर और बीरबल के लेख भी अंकित है। बीरबल का लेख उनकी प्रयाग-यात्रा का स्मारक है—'संवत् 1632 शाके 1493 मार्गवदी 5 सोमवार गंगादाससुत महाराज बीरबल श्री तीरथ राज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितम्'। खुसरो-बाग जहांगीर के समय में बना था। यह बाग चौकोर है और इसका क्षेत्रफल 64 एकड़ है। इसमें अनेक मकबरे हैं। पूर्व की ओर गुंबद वाला मक़बरा जहांगीर के विद्रोही पुत्र खुसरो का है। इसे 1662 ई० में जहांगीर ने बग़ावत करने के फलस्वरूप मृत्यु की सज़ा दी थी। इलाहाबाद के चौक में अभी कुछ समय तक वे नीम के पेड़ खड़े थे जिन पर अंग्रेज़ों ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में लड़ने वाले भारतीय वीरों को फांसी दी थी।

प्रलंब

वाल्मीकि-रामायण में इस स्थान का वर्णन अयोध्या के दूतों की केकय देश की यात्रा के प्रसंग में है—'न्यन्तेनापरतालस्य प्रलंबस्योत्तरं प्रति, निषेवमाणा जग्मुर्नदीं मध्येनमालिनीम्' अयो० 68,12। प्रलंब के संबंध में मालिनी (गंगा की सहायक नदी वर्तमान मालन) का उल्लेख होने से इस देश की स्थिति वर्तमान बिजनौर और गढ़वाल ज़िलों (उ० प्र०) के अंतर्गत माननी होगी। इसके आगे अयो० 68,13 में दूतों द्वारा हस्तिनापुर (ज़िला मेरठ) में गंगा को पार करने का उल्लेख है जिससे उपयुक्त अभिज्ञान की पुष्टि होती है।

प्रवरपुर (महाराष्ट्र)

वाकाटक-नरेशों (5वीं शती ई०) की राजधानी। इसे प्रवरसेन ने बसाया था। इसका दूसरा नाम पुरिका भी था। संभवतः वर्तमान पौनार ही प्राचीन प्रवरपुर है।

प्रवरा (गुजरात)

इस नदी के तट पर अनेक प्राचीन स्थान हैं जिनमें श्रीनिवास क्षेत्र या वर्तमान नेवासा प्रमुख है। अन्य स्थान बेलापुर, श्रीवन, तथा उक्कल ग्राम हैं जहां के प्राचीन मंदिर उल्लेखनीय हैं। इस नदी का नाम महाभारत भीष्मपर्व की नदी सूची में है—'करीषिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम् मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा' भीष्म० 9,23।

प्रवर्षणगिरि (होस्पेटतालुका, मैसूर)

इसी को प्रस्रवण गिरि भी कहते थे। प्राचीन किष्किंधा के निकट माल्यवान् पर्वत स्थित है जिसके एक भाग का नाम प्रवर्षणगिरि है। यह किष्किंधा के विरूपाक्ष मंदिर से 4 मील दूर है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार यहीं एक गुहा में श्रीराम ने वनवास काल में सीताहरण के पश्चात् और सुग्रीव का राज्याभिषेक करने पर प्रथम वर्षा ऋतु व्यतीत की थी। 'अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्, आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम्'–किष्किंधा० 27,1। इस पर्वत का वर्णन करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं—'शार्दूल मृगसंघुष्टं सिंहैर्भीमरवैर्वृतम्, नानागुल्मलतागूढ़ं बहुपादपसंकुलम्। ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्च निषेवितम्, मेघराशिनिभं शैलं नित्यं शुचिकरं शिवम्। तस्य शैलस्य शिखरे महतीमायतां गुहाम्, प्रत्यगृह्णात वासार्थं रामः सौमित्रिणा सह' किष्किंधा० 27 2-3-4। श्रीराम, लक्ष्मण से इस पर्वत का वर्णन करते हुए कहते हैं—'इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता, श्वेताभिः कृष्णताम्राभिः शिलाभिरुपशोभितम्। नानाधातुसमाकीर्णं नदीदर्दुरसंयुतम्। विविधैर्वृक्षखडैश्च चारुचित्रलतायुतम्। नानाविहग संघुष्टं मयूरवरनादितम्। मालतीकुंद गुल्मैश्च सिंदुवारैः शिरीषकैः, कदंबार्जुन सर्जैश्च पुष्पितैरुपशोभिताम्, इयं च नलिनी रम्या फुल्लपंकजमंडिता, नातिदूरे गुहायानौ भविष्यति नृपात्मज' किष्किंधा० 27,6-8-9-10-11। किष्किंधा 47,10 में भी प्रस्रवणगिरि पर राम को निवास करते हुए कहा गया है—'तं प्रस्रवणपृष्ठस्थं समासाद्याभिवाद्य च, आसीनं सहरामेण सुग्रीवमिदमब्रुवन्'। अध्यात्मरामायण में प्रवर्षण-गिरि पर राम के निवास करने का वर्णन सुंदर भाषा में है—'ततो रामो जगामाशु लक्ष्मणेन समन्वितः, प्रवर्षणगिरेरुर्ध्वं शिखरं भूरिविस्तरम्। तत्रैकं गह्वरं दृष्ट्वा स्फाटिकं दीप्तिमच्छुभम्, वर्षवातातपसहं फलमूलसमीपगम्, वासाय रोचयामास तत्र रामः सलक्ष्मणः। दिव्यमूलफलपुष्पसंयुते मौक्तिकोपमजलौघ पल्वले, चित्रवर्णमृगपक्षिशोभिते पर्वते रघुकुलोत्तमोऽवसत्'—किष्किंधा० 4,53-54-55। वाल्मीकि० किष्किंधा 27 में प्रवर्षणगिरि की गुहा के निकट किसी पहाड़ी नदी का भी वर्णन है। पहाड़ी के नाम प्रवर्षण या प्रस्रवणगिरि से सूचित होता है कि यहां वर्षाकाल में घनघोर वर्षा होती थी। (टि० वाल्मीकि रामायण में इस पहाड़ी को प्रस्रवण गिरि कहा गया है और उत्तररामचरित में भवभूति ने भी इसे इसी नाम से अभिहित किया है—'अयमविरलानोकहनिवहनिरंतरस्निग्धनीलपरिसराण्यपरिणद्धगोदावरीमुखकंदरः, संततमभिष्यन्दमानमेघदुरित नीलिमा जनस्थान मध्यगोगिरि प्रस्रवणोनाम मेघमालेव यश्चायमारादिव विभाव्यते, गिरिः प्रस्रवणः

सोऽयं यत्र गोदावरी नदी,' उत्तर राम चरित 2,24। तुलसीदास ने इसे प्रवर्षण गिरि कहा है—'तब सुग्रीव भवन फिर आए, राम प्रवर्षण गिरि पर छाये' राम चरित मानस, किष्किंधाकांड।

प्रवाल

बंबई-भुसावल रेल मार्ग पर पाचोरा जंकशन से 26 मील दूर महसावद स्टेशन है। यहां से प्रायः 5 मील दूर पद्मालय तीर्थ है जिसे प्राचीन काल में प्रवालक्षेत्र कहा जाता था।

प्रवेणी

'प्रवेण्युत्तरमार्गे तु पुण्ये कण्वाश्रमे तथा तापसानामरण्यानि कीर्तितानि यथा-श्रुति'—महा० वन० 88,11। इस उल्लेख में प्रवेणी नदी के निकट कण्वाश्रम की स्थिति बताई गई है तथा संभवतः इसी नदी के तट के समीप माठर वन ('माठरस्यवनं पुण्यं बहुमूल फलं शिवम्'—वन० 88,10) की स्थित बताया है। श्री वा० श० अग्रवाल के मत में प्रवेणी दक्षिण की वेनगंगा है। (दे० वेणी)

प्रशस्ता

'समुद्रगां पुण्यतमां प्रशस्तां जगाम पारिक्षितपांडुपुत्रः' महा० वन० 118,2। यह नदी गोदावरी के उत्तर की ओर बहती थी।

प्रस्थल

'प्रस्थला मद्रगांधारा आरट्टनामतः खशाः, वसातिसिंधुसौवीरा इति प्रायोऽति कुत्सिताः'—महा० कर्ण० 44,47। इस उद्धरण में परिगणित सभी देश, वर्तमान पंजाब (भारत तथा प० पाकि०) तथा सीमांत प्रदेश (प० पाकि०) तथा अफगानिस्तान के अंतर्गत है। इन्हें महाभारत काल में अनादर की दृष्टि से देखा जाता था जैसा कि कर्ण-पर्व के कर्ण-शल्य संवाद से स्पष्ट है। प्रस्थल की स्थिति मद्रदेश के पश्चिम में रही होगी।

प्रस्रवणगिरि=प्रवर्षणगिरि

प्रह्लादपुर (ज़िला गाजीपुर, उ० प्र०)

इस स्थान से एक गुप्तकालीन प्रस्तर-स्तंभ प्राप्त हुआ था जो 1853 ई० में बनारस भेज दिया गया और बाद में संस्कृत कालेज के मैदान में स्थापित कर दिया गया। इस पर उत्कीर्ण अभिलेख का संबंध किसी राजा से है जिसका नाम लेख के अंत में खंडित हो गया है। फ़्लीट के मतानुसार यह संभवतः शिशुपाल है जिसका नाम श्लोक के तीसरे चरण में भी आया है। राजा को 'पार्थिवानीकपाल' कहा गया है। संभव है 'पार्थिव' से तात्पर्य पल्लव या पह्लव से है जैसा कि फ़्लीट तथा ओल्डफाउसन का मत है। लिपि के आधार

पर लेख गुप्तकाल के प्रथम चरण का जान पड़ता है।

प्राक्कोसल

महाभारत में सहदेव की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में प्राक्कोसल पर उनकी विजय का उल्लेख है, 'कांतारकांश्च समरे तथा प्राक्कोसलान् नृपान् नाटकेयांश्च समरे तथा हेरंबकान् युधि'-सभा० 31,13। प्राक्कोसल या पूर्व कोसल का अधिक प्रचलित नाम दक्षिण कोसल (वर्तमान महाकोसल) है। इसमें मध्य प्रदेश के रायपुर और बिलासपुर ज़िले तथा परिवर्ती प्रदेश सम्मिलित थे। कांतारक या विंध्य का वन्यप्रदेश इसके पड़ोस में स्थित था।

प्राग्ज्योतिषपुर (असम)

गोहाटी के निकट बसा हुआ प्राचीन नगर जहां असम या कामरूप की राजधानी थी। इसे किरात देश के अंतर्गत समझा जाता था। कालिकापुराण के अनुसार ब्रह्मा ने प्राचीन काल में यहां स्थित होकर नक्षत्रों की सृष्टि की थी इसलिए इंद्रपुरी के समान यह नगरी प्राग् (=पूर्व या प्राचीन)=ज्योतिष (=नक्षत्र) कहलाई—'अत्रैव हि स्थितो ब्रह्मा प्राङ्-नक्षत्रं ससर्ज ह, ततः प्राग्ज्योतिषाख्येयं पुरी शक्रपुरी समा'। महाभारत सभा० 38 में यहां के राजा नरकासुर तथा उसके श्रीकृष्ण द्वारा वध किए जाने का प्रसंग है। इस असुर ने सोलह सहस्र कुमारियों का अपहरण करके उनके रहने के लिए मणिपर्वत पर अंतःपुर का निर्माण किया था। श्रीकृष्ण ने नरकासुर के वध के उपरांत इन स्त्रियों को मुक्त कर दिया और मणिपर्वत को उठाकर वे द्वारका ले गए—'प्राग्ज्योतिषं नाम बभूव दुर्गं पुरं घोरमसुराणामसह्यम् महाबलो नरकस्तत्र भौमो जहारादित्यामणिकुंडले शुभे' उद्योग० 48,80। प्राग्ज्योतिषपुर के निकट ही निर्मोचन नामक नगर था जहां नरकासुर ने छः सहस्र लोहमय तीक्ष्ण पाश नगर की रक्षा के लिए लगा रखे थे—'निर्मोचने षट्सहस्राणि हत्वा संच्छिद्य पाशान् सहसा क्षुरांतान्'—उद्योग० 48,83। कामरूप-नरेश भगदत्त ने महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से भाग लिया था। महाभारत में भगदत्त को प्राग्ज्योतिष-नरेश भी कहा गया है—'ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान् वै चतुर्दश, प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम—भीष्म० 95,46। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा नरकासुर और श्रीकृष्ण के युद्ध का वर्णन विष्णुपुराण 5,29 में भी है और महाभारत के वर्णन के अनुसार ही इसमें नरकासुर द्वारा नगर की रक्षार्थ तीक्ष्ण धारवाले पाशों के आयोजन का उल्लेख है—'प्राग्ज्योतिषपुरस्यापि समन्तात्छशतयोजनं, आचिता-मेरवैः पाशैः क्षुरांतैर्भूद्विजोत्तम्—विष्णु० 5,29,16। कालिदास ने रघुवंश 4,8 में प्राग्ज्योतिष के नरेश की रघुद्वारा पराजय का वर्णन इस प्रकार किया

है—'चकंपेतीर्णलौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागरुद्रुमैः, अर्थात् दिग्विजय-यात्रा के लिए निकले हुए रघु के लौहित्य या ब्रह्मपुत्र को पार करने पर प्राग्ज्योतिषपुर नरेश उसी प्रकार भयभीत होकर कांपने लगा जैसे उस देश के कालागरु के वृक्ष जिनसे रघु के हाथियों की शृंखलाएं बंधी हुई थीं। इस श्लोक में कालिदास ने प्राग्ज्योतिष या असम के वनों में पाए जाने वाले कालागरु के वृक्षों, वहां के हाथियों तथा असम की मुख्य नदी लौहित्य का एकत्र वर्णन करके इस प्रांत की स्थानीय विशेषताओं का सुंदर चित्रण किया है। कालिदास के अनुसार प्राग्ज्योतिषपुर लौहित्य के पार पूर्वी तट पर बसा हुआ था। वी०बी० आठवले के मत में प्राग्ज्योतिषपुर आनर्त या काठियावाड़ में स्थित था। (दे० भारतीय विद्या, बंबई सं० 11) किंतु यह संभव है कि प्राग्ज्योतिषपुर नाम के दो नगर या जनपद रहे हों।

प्राग्वट

वाल्मीकि-रामायण के वर्णन के अनुसार भरत ने केकय देश से अयोध्या आते समय इस स्थान के पास गंगा को पार किया था—'स गंगां प्राग्वटेतीर्त्वा समयात् कुटिकोष्टिकाम्'—यह स्थान पश्चिमी उत्तरप्रदेश में गंगा के पश्चिमी तट पर, संभवतः वर्तमान बालावाली (ज़िला बिजनौर) के सामने गंगा के पार रहा होगा। इसी के पास कुटिकोष्टिका नदी थी। (दे० अंशुधान)

प्राची दे० प्राच्य

प्राची सरस्वती (राजस्थान)

पुष्कर के निकट बहने वाली नदी। पुष्कर से बारह मील दूर प्राचीन सरस्वती और नंदा का संगम है। (दे० पुष्कर)

प्राच्य

पूर्वी भारत का प्राचीन नाम—'गोवास दासमीयानां वसातीनां च भारत, प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम्'—महा० कर्ण० 73,17। इस उल्लेख का प्राच्य, संभवतः मगध या वंग देश का कोई भाग हो सकता है। यहां की सेनाएं महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर थीं। प्राच्य या प्राचीन का प्रासी (Prasii) के रूप में उल्लेख चंद्रगुप्तमौर्य की राजसभा में स्थित यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ ने भी किया है। उसके वर्णन से स्पष्ट है कि प्राची या प्राच्य देश मगध का ही नाम था क्योंकि प्राची की राजधानी मेगस्थनीज़ ने पाटलिपुत्र में बताई है। जान पड़ता है भारत के पश्चिमी भागों के निवासी मगध या उसके परिवर्ती प्रदेश को पूर्वी देश या प्राची कहते थे।

प्रीतिकूट

कादंबरी और हर्ष चरित के प्रख्यात लेखक महाकवि बाण का जन्मस्थान तथा पैतृक निवास प्रीतिकूट नामक स्थान पर था। हर्षचरित के प्रथमोच्छवास में इस स्थान को गंगा और शोण के संगम से दक्षिण की ओर बताया गया है। इस प्रकार प्रीतिकूट को वर्तमान पटना या शाहाबाद जिले में स्थित मानना उपयुक्त होगा।

प्रोचेरा (जिला आदिलाबाद, आं० प्र०)

इस वन्य स्थान के पास एक जलप्रपात है जहां नवपाषाणयुग के अनेक पत्थर के उपकरण प्राप्त हुए हैं जिससे इस स्थान की प्रागैतिहासिकता सिद्ध होती है।

प्लक्षद्वीप

पौराणिक भूगोल की कल्पना के अनुसार पृथ्वी के सप्त महाद्वीपों में प्लक्ष-द्वीप की भी गणना की गई है—'जंबू प्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विज, कुशः क्रौंचस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः' विष्णु० 2,2,5। विष्णुपुराण 2,4 में प्लक्षद्वीप का सविस्तार वर्णन है जिससे सूचित होता है कि विशाल प्लक्ष या पाकड़ के वृक्ष की यहां स्थिति होने से यह द्वीप प्लक्ष कहलाता था। इसका विस्तार दो लक्ष योजन था। इसके सात मर्यादा पर्वत थे—गोमेद, चंद्र, नारद, दुंदुभि सोमक, सुमना और वैभ्राज। यहां की सात मुख्य नदियों के नाम हैं—अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और सुकृता। यह द्वीप लवण या क्षार सागर से घिरा हुआ था। इस द्वीप के निवासी सदा नीरोग रहते थे और पांच सहस्र वर्ष की आयु वाले थे। यहां की जो आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी नामक जातियां थीं वे ही क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थीं। प्लक्ष में आर्यकादि वर्णों द्वारा जगत्स्रष्टा हरि का पूजन सोमरूप में किया जाता था। इस द्वीप के सप्त पर्वतों में देवता और गंधर्वों के सहित सदा निष्पाप प्रजा निवास करती थी। (उपर्युक्त उद्धरण विष्णुपुराण के वर्णन का एक अंश है)

प्लक्षप्रस्रवण

'पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः, प्रभावं च सरस्वत्या. प्लक्षप्रस्रवणं बलः'—महा० शल्य० 54,11। महाभारत काल में प्लक्षप्रस्रवण सरस्वती नदी के उद्भव-स्थान का नाम था। यह पर्वतशृंग हिमालय की श्रेणी का एक भाग है। बलराम ने सरस्वती तटवर्ती तीर्थों की यात्रा में प्रभास (सरस्वती समुद्र संगम) से लेकर सरस्वती के उद्भव प्लक्षप्रस्रवण तक के सभी पुण्य स्थलों को देखा था जिनका विस्तृत वर्णन शल्यपर्व में है। (दे० प्लक्षावतरण)।
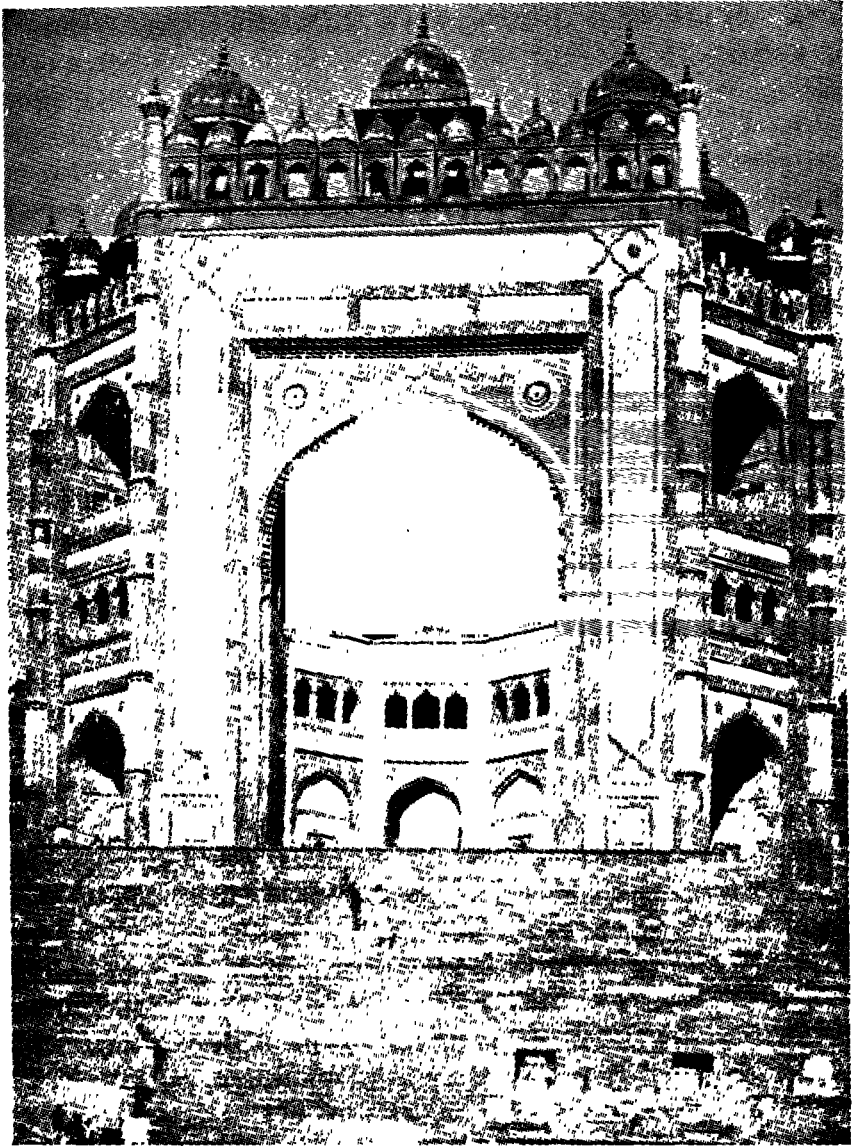
बुलंद दरवाजा, फ़तहपुर सीकरी
(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

प्लक्षावतरण

'सरस्वती महापुण्या ह्लादिनी तीर्थमालिनी, समुद्रगा महावेगा यमुना यत्र पांडव। यत्र पुण्यतरं तीर्थं प्लक्षावतरणं शुभम्, यत्र सारस्वतैरिष्ट्वा गच्छन्त्यवभृथैर्द्विजाः' महा० वन० 90,3,4। एतत् प्लक्षावतरणं यमुनातीर्थमुत्तमम् एतद् वै नाकपृष्ठस्य द्वारमाहुर्मनीषिणः'—महा० वन० 129,13। इन उल्लेखों से यह सरस्वती नदी के निकट और यमुना पर स्थित कोई तीर्थ जान पड़ता है जो कुरुक्षेत्र के पास था। कुरुक्षेत्र का वन० 129,11 में उल्लेख है। महाभारत के इस प्रसंग में प्लक्षावतरण में महर्षियों द्वारा किए गए सारस्वत यज्ञों का उल्लेख है। राजा भरत ने धर्मपूर्वक वसुधा का राज्य पाकर यहां बहुत से यज्ञ किए थे और अश्वमेधयज्ञ के उद्देश्य से इस स्थान पर कृष्णमृग के समान श्यामकर्ण अश्व को पृथ्वी पर भ्रमण करने के लिए छोड़ा था। इसी तीर्थ में महर्षि संवर्त से अभिपालित महाराज मरुत्त ने उत्तम सत्र का अनुष्ठान किया था—'अत्र वै भरतो राजा राजन् क्रतुभिरिष्टवान्, ह्यमेधेन यज्ञेन मेध्यमश्वमवासृजत्। असकृत् कृष्ण सारंगं धर्मेणाप्य च मेदिनीम, अत्रैव पुरुषव्याघ्र मरुत्तः सत्रमुत्तमम्, प्राप चैवर्षिमुख्येन संवर्तेनाभिपालितः' वन० 129,15-16-17

फतहपुर

(1) (ज़िला देहरादून, उ० प्र०) 11 वीं-12 वीं शतियों में व्यापारिक काफ़िलों के ठहरने का स्थान था। गढ़वाल के राजा यहां के बनजारों से कर वसूल करते थे किंतु अपने मुखिया के मरने पर ये लोग इस स्थान को छोड़कर शिमला की पहाड़ियों में जाकर बस गए थे।

(2) (ज़िला होशंगाबाद, म० प्र०) गढ़मंडला-नरेश संग्रामसिंह (मृत्यु 1541 ई०) के बावन गढ़ों में फतहपुर के गढ़ की गिनती थी। संग्रामसिंह राजा दलपतशाह के पिता और महारानी दुर्गावती के श्वसुर थे।

(3) (ज़िला कांगड़ा, पंजाब) कांगड़ा की पहाड़ियों के अंतर्गत प्राचीन स्थान है। यहां से गुप्तकालीन एक पीतल की मूर्ति प्राप्त हुई थी जिस पर चांदी और ताम्र का काम है। यह मूर्ति गुप्तकाल की धातुप्रतिमाओं में महत्वपूर्ण है (दे० एज आव दि इम्पीरियल गुप्ताज़, पृ० 181)

(4) (उ० प्र०) इस जिले में देंडसाही नामक स्थान (तहसील खखरेरू) से प्राप्त एक अभिलेख में फ़तहपुर नगर का संस्थापक फतहमंदखाँ बताया गया है। यह अभिलेख 917 हिजरी=1519 ई० का है)

फतहपुर सीकरी (जिला आगरा, उ० प्र०)

आगरे से 22 मील दक्षिण, मुगलसम्राट् अकबर के बसाए हुए भव्य नगर के खंडहर आज भी अपने प्राचीन वैभव की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। अकबर से पूर्व यहां फतहपुर और सीकरी नाम के दो गांव बसे हुए थे जो अब भी हैं। इन्हें अंग्रेजी शासक ओल्ड विलेजेस के नाम से पुकारते थे। सन् 1527 ई० में चित्तौड-नरेश राणा संग्रामसिंह और बाबर में यहां से लगभग दस मील दूर कनवाहा नामक स्थान पर भारी युद्ध हुआ था जिसकी स्मृति में बाबर ने इस गांव का नाम फतहपुर कर दिया था। तभी से यह स्थान फतहपुर सीकरी कहलाता है। कहा जाता है कि इस ग्राम के निवासी शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से अकबर के घर सलीम (जहाँगीर) का जन्म हुआ था। जहाँगीर की माता जोधाबाई (आमेरनरेश बिहारीमल की पुत्री) और अकबर, शेख सलीम के कहने से यहां 6 मास तक ठहरे थे जिसके प्रसादस्वरूप उन्हें पुत्र का मुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह भी किंवदंती है कि शेख सलीम चिश्ती के फतहपुर आने से पहले यहां घना बन था जिसमें जंगली जानवरों का बसेरा था किंतु इस संत के प्रभाव से वन्यपशु उनके वशवर्ती हो गए थे। शेख सलीम के सम्मानार्थ ही अकबर ने यह नया नगर बसाया था जो 11 वर्ष में बनकर तैयार हुआ था। 1587 ई० तक अकबर यहां रहा और इस काल मे फतहपुर सीकरी को मुगल-साम्राज्य की राजधानी बने रहने का गौरव प्राप्त हुआ किंतु तत्पश्चात अकबर ने इस नगर को छोड़कर अपनी राजधानी आगरे में बनाई। राजधानी बदलने का मुख्य कारण संभवत: यहां जल की कमी थी। दूसरे, शेख सलीम के मरने के बाद अकबर की तबीयत इस स्थान पर न लगी। यह भी कहा जाता है कि शेख ने अकबर को फतहपुर में किला बनाने की आज्ञा न दी थी किंतु नगर के तीन ओर एक ध्वस्त परकोटे के चिन्ह आज भी दिखाई देते हैं। फतहपुर सीकरी में अकबर के समय के अनेक भवनों, प्रासादों तथा राजसभा के भव्य अवशेष आज भी वर्तमान है। यहां की सर्वोच्च इमारत बुलंद दरवाजा है जिसकी ऊंचाई भूमि से 280 फुट है। 52 सीढ़ियों के पश्चात् दर्शक दरवाजे के अंदर पहुंचता है। दरवाज़े में पुराने जमाने के विशाल किवाड़ ज्यों के त्यों लगे हुए हैं। शेख सलीम की मानता के लिए अनेक यात्रियों द्वारा किवाड़ों पर लगवाई हुई घोड़े की नालें दिखाई देती हैं। बुलंद दरवाज़े को, 1602 ई० में अकबर ने अपनी गुजरात-विजय के स्मारक के रूप में बनवाया था। इसी दरवाज़े से होकर शेख की दरगाह में प्रवेश करना होता है। बाईं ओर जामा मसजिद है और सामने शेख का मजार। मजार या समाधि के सन्निकट उनके संबंधियों

की कब्रें हैं। मसजिद और मजार के समीप एक घने वृक्ष की छाया में एक छोटा संगमर्मर का सरोवर है। मसजिद में एक स्थान पर एक विचित्र प्रकार का पत्थर लगा है जिसको थपथपाने से नगाड़े की ध्वनि सी होती है। मसजिद पर सुंदर नक्काशी है। शेख सलीम की समाधि संगमर्मर की बनी है। इसके चतुर्दिक् पत्थर के बहुत बारीक काम की सुंदर जाली लगी है जिसके अनेक आकारप्रकार बड़े मनमोहक दिखाई पड़ते हैं। यह जाली कुछ दूर से देखने पर जालीदार श्वेत रेशमी वस्त्र की भांति दिखाई देती है। समाधि के ऊपर मूल्यवान् सीप, सींग तथा चंदन का अद्भुत शिल्प है जो 400 वर्ष प्राचीन होते हुए भी सर्वथा नया सा जान पड़ता है। श्वेत पत्थरों में खुदी विविध रंगोंवाली फूलपत्तियां नक्काशी की कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों मे से हैं। समाधि में एक चंदन का और एक सीप का कटहरा है। इन्हें ढाका के सूबेदार और शेख सलीम के पौत्र नवाब इसलाम खां ने बनवाया था। जहांगीर ने समाधि की शोभा बढ़ाने के लिए उसे श्वेत संगमर्मर का बनवा दिया था यद्यपि अकबर के समय में यह लाल पत्थर की थी। जहांगीर ने समाधि की दीवार पर चित्रकारी भी करवाई। समाधि के कटहरे का लगभग $1\frac{1}{2}$ गज़ खंभा विकृत हो जाने पर 1905 में लार्ड कर्जन ने 12 सहस्र रुपए की लागत से इसे पुन: बनवा दिया। समाधि के किवाड़ आबनूस के बने है।

अकबर के राजप्रासाद समाधि के पीछे की ओर ऊंचे लंबे-चौड़े चबूतरों पर बने है। इन में चार-चमन और ख्वाबगाह अकबर के मुख्य राजमहल थे। यहीं उसका शयनकक्ष और विश्राम-गृह थे। चार-चमन के सामने आंगन में अनूपताल है जहां तानसेन दीपक राग गाया करता था। ताल के पूर्व में अकबर की तुर्की बेगम रुकैया का महल है। यह इस्तंबूल की रहने वाली थी। कुछ लोगों के मत में इस महल में सलीमा बेगम रहती थी। यह बाबर की पोती और बैराम खां की विधवा थी। इस महल की सजावट तुर्की के दो शिल्पियों ने की थी। समुद्र की लहरें नामक कलाकृति बहुत ही सुंदर एवं वास्तविक जान पड़ती है। भित्तियों पर पशुपक्षियों के अतिसुंदर तथा कलात्मक चित्र हैं जिन्हें पीछे औरंगजेब ने नष्टभ्रष्ट कर दिया था। भवन के जड़े हुए कीमती पत्थर भी निकाल लिए गए हैं जिसके लिए अंग्रेज पर्यटक जिम्मेदार कहे जाते हैं। रुकैया बेगम के महल के दाहिनी ओर अकबर का दीवाने खास है जहां दो बेगमों के साथ अकबर न्यायासन ग्रहण करता था। बादशाह के नवरत्न-मंत्री थोड़ा हट कर नीचे बैठते थे। यहां सामान्य जनता तथा दर्शकों के लिए चतुर्दिक् बरामदे बने हैं। बीच के बड़े मैदान में हनन नामक खूनी हाथी

के बांधने का एक मोटा पत्थर गड़ा है। यह हाथी मृत्युदंडप्राप्त अपराधियों को रोंदने के काम में लाया जाता था। कहते हैं कि यह हाथी जिसे तीन बार, पादाहत करने से छोड़ देता था उसे मुक्त कर दिया जाता था। दीवानेखास की यह विशेषता है कि वह एक पद्माकार प्रस्तर-स्तंभ के ऊपर टिका हुआ है। इसी पर आसीन होकर अकबर अपने मंत्रियों के साथ गुप्त मंत्रणा करता था। दीवानेखास के निकट ही आंखमिचौनी नामक भवन है जो अकबर का निजी मामलों का दफ्तर था। पांच मंजिला पंचमहल या हवामहल जोधाबाई के सूर्य को अर्घ्य देने के लिए बनवाया गया था। यहीं से अकबर की मुसलमान बेगमें ईद का चांद देखती थी। समीप ही मुग़ल राजकुमारियों का मदरसा है। जोधाबाई का महल प्राचीन घरों के ढंग का बनवाया गया था। इसके बनवाने तथा सजाने में अकबर ने अपनी रानी की हिंदू भावनाओं का विशेष ध्यान रखा था। भवन के अंदर आंगन में तुलसी के बिरवे का थांवला है और सामने दाल्लान में एक मंदिर के चिह्न हैं। दीवारों में मूर्तियों के लिए आले बने हैं। कहीं-कहीं दीवारों पर कृष्णलीला के चित्र हैं जो अब मद्धिम पड़ गए हैं। मंदिर के घंटों के चिन्ह पत्थरों पर अंकित हैं। इस तीन मंजिले घर के ऊपर के कमरों को ग्रीष्मकालीन और शीतकालीन महल कहा जाता था। ग्रीष्मकालीन महल में पत्थर की बारीक जालियों में से ठंडी हवा छन-छन कर आती थी। इस भवन के निकट ही बीरबल का महल है जो 1582 ई० में बना था। इसके पीछे अकबर का निजी अस्तबल था जिसमें 150 घोड़े तथा अनेक ऊंटों के बांधने के लिए छेददार पत्थर लगे हैं। अस्तबल के समीप ही अबुलफजल और फैजी के निवासगृह अब नष्टभ्रष्ट दशा में हैं। यहां से पश्चिम की ओर प्रसिद्ध हिरन-मीनार है। किंवदंती है कि इस मीनार के अंदर खूनी हाथी हनन की समाधि है। मीनार में ऊपर से नीचे तक आगे निकले हुए हिरन के सींगों की तरह पत्थर जड़े हैं। मीनार के पास मैदान में अकबर शिकार खेलता था और बेगमें मीनार पर चढ़ कर तमाशा देखती थीं। जोधाबाई के महल से यहां तक बेगमों के आने के लिए अकबर ने एक आवरण-मार्ग बनवाया था। फतहपुर सीकरी से प्राय: 1 मील दूर अकबर के प्रसिद्ध मंत्री टोडरमल का निवासस्थान था जो अब भग्न दशा में है। प्राचीन समय में नगर की सीमा पर मोती झील नामक एक विस्तीर्ण तड़ाग था जिसके चिह्न अब नहीं मिलते। फतहपुरी के भवनों की कला उनकी विशालता में है; लंबे-चौड़े सरल रेखाकार नक्शों पर बने भवन, विस्तीर्ण प्रांगण तथा ऊंची छतें, कुल मिला कर दर्शक के मन में विशालता तथा विस्तीर्णता का गहरा प्रभाव डालते हैं। वास्तव में अकबर की

इस स्थापत्य-कलाकृति में उसकी अपनी विशालहृदयता तथा उदारता के दर्शन होते हैं।

फतेहाबाद (उ० प्र०)

यह नगर फ़िरोजशाह तुगलक (1351–1388) का बसाया हुआ माना जाता है।

फरीदपुर (बंगाल)

गुप्तकाल में इस नगर के परिवर्ती क्षेत्र का नाम वारक-मंडल था। फरीदपुर से गुप्तकालीन नरेश धर्मादित्य तथा गोपचंद्र के तीन दानपट्ट-अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे तत्कालीन भूमि-हस्तांतरण तथा सामान्य शासन-व्यवस्था के बारे में सूचना मिलती है।

फरुख़ाबाद (उ० प्र०)

इस नगर को नवाब मुहम्मदशाह बंगश ने मुगल-सम्राट् फरुखसियर (1712-1719) के नाम पर बसाया था। इस इलाके (जो प्राचीन काल में दक्षिण पंचाल कहलाता था) की राजधानी पहले कन्नौज थी। इस नगर के बस जाने पर राजधानी यहीं बनाई गई और कालपी के बंगश शासकों ने अपने प्रांत का मुख्य स्थान इसी नगर को बनाया।

फलकपुर

पाणिनि 4,2,101 में उल्लिखित है। यह स्थान शायद वर्तमान फिल्लौर (पंजाब) है।

फलकीवन

कुरुक्षेत्र में ओघवती नदी के तट पर शुक्रतीर्थ के निकट एक प्राचीन वन। इसका महाभारत वन० 83,86 में उल्लेख है—'ततो गच्छेत् राजेन्द्र फलकीवन मुत्तमम्, तत्र देवाः सदा राजन् फलकीवनमाश्रिताः'।

फलन

वर्णुया बन्नू को युवानच्वांग ने फलन नाम से अभिहित किया है।

फर्लाद्धि=फलौदी

फलौदी मेड़ता रोड़ स्टेशन (मारवाड़, राजस्थान) के पास ही है। यहां 12वीं शती से पूर्व का जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्राचीन मंदिर है। इस स्थान का प्राचीन नाम फर्लाद्धि है। इसका नामोल्लेख जैन स्तोत्र तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार है, 'जीरापल्लि फर्लाद्धि पारक नगे शैरीसशंखेश्वरे'।

फल्गु (बिहार)

गया के निकट बहने वाली नदी जो पुराणों में प्रसिद्ध है। महाभारत में

गया के वर्णन के प्रसंग में शायद इसी नदी का निर्देश निम्न रूप में है—'नगोगय-शिरोयत्र पुण्या चैव महानदी, वानीरमालिनी रम्या नदी पुलिनशोभिता'— वन० 95 9-10; 'महानदी च तत्रैव तथागयशिरो नृप'—वन० 88,11 । यह संभव है कि यहां 'महानदी' शब्द फल्गु के एक पर्याय या नाम के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है न कि विशेषण के रूप में। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि फल्गु का एक स्थानीय नाम आज भी महाना है जो अवश्य ही 'महानदी' का अपभ्रंश है। गया से 3 मील दूर महाना अथवा फल्गु में नीलांजना नाम की छोटी सी नदी मिलती है जो बौद्धसाहित्य की नेरंजना है।

फाजिलपुर (ज़िला गोरखपुर)

कसिया से 10 मील दक्षिण-पूर्व में स्थित है। कार्लाइल के अनुसार यही प्राचीन पावापुरी है। (दे० पावा)

फिरोजाबाद (ज़िला आगरा, उ० प्र०)

(1)फीरोज़शाह तुगलक का बसाया हुआ नगर। इस तुगलक सुलतान ने जिसका शासनकाल 1351-1388 ई० है, कई नगर बसाए थे— (दे० फतेहाबाद; हिसार)

(2) (जिला गुलबर्गा, मैसूर) इस नगर को फिरोज़शाह बहमनी (1397–1422 ई०) ने बसाया था तथा उसी ने यहां के दुर्ग का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि फ़िरोजशाह ने संत बंदानवाज़ के कहने पर गुलबर्गा को छोड़कर यहीं राजधानी बसाई थी। यह नगर भीमानदी के तट पर बसाया गया था और इसमें और अकबर के फतहपुर सीकरी में अनेक समानताएं दिखलाई पड़ती हैं। किले की प्राचीर के भीतर विशाल महल, जामामसजिद, तुर्की हम्माम तथा अन्य प्रकार के भवनों के अवशेष हैं। इन्हीं महलों में फ़िरोज-शाह के हरम की विभिन्न देशों से आई हुई, आठ सौ बेगमें रहती थीं।

फिल्लौर दे० फलकपुर

फूनान (कंबोडिया)

कंबोडिया में स्थापित सर्वप्रथम हिन्दू उपनिवेश। फूनान चीनी नाम है। इसमें वर्तमान कंबोडिया तथा कोचीन-चीन सम्मिलित थे। चीनी कथाओं के अनुसार यहां के आदिम निवासी जंगली और असभ्य थे। वे नग्न रहते थे और गोदनों से शरीर अंकित करते थे। सबसे पहले ह्वौनतीन या कौडिन्य नामक हिंदू नरेश ने इस देश में राज्य स्थापित किया तथा यहां के निवासियों को सभ्य बनाकर उन्हें कपड़े पहनना सिखाया। इस राजा का समय पहली शती ई० माना जाता है। फूनान का अस्तित्व सातवीं शती ई० के पश्चात् कंबोडिया (=कंबुज) राज्य के उत्कर्ष के साथ ही समाप्त हो गया।

फेनगिरि

सिंध नदी के मुहाने के निकट स्थित है—बृहत् संहिता 14,5,18 में इसका उल्लेख है।

फ़ैज़ाबाद (उ० प्र०)

लखनऊ को राजधानी बनाने से पूर्व, अवध के नवाबों ने फ़ैजाबाद में ही अपने रहने के लिए महल बनवाए थे। नवाब शुजाउद्दौला और परवर्ती नवाबों के समय में यहां अनेक सुंदर प्रासाद, मकबरे और उद्यान बने जिनमें से खुर्द महल, बहूबेगम का मकबरा, गुलाबबाड़ी तथा दिलकुशा आज भी वर्तमान है। कहा जाता है कि अयोध्या के अनेक प्राचीन भवनों तथा मंदिरों के मसाले से ही फ़ैजाबाद की बहुत सी इमारतें बनी थीं।

फोर्ट सेंट जार्ज (मद्रास)

मद्रास की पुरानी बस्ती का नाम चेन्नापटम् था। इसी ग्राम में 1640 ई० में अंग्रेज़ी व्यापारी फ्रांसिस डे ने फोर्ट सेंट जार्ज की स्थापना की थी। इसी क़िले के चतुर्दिक् भावी महानगरी मद्रास का कालांतर में विकास हुआ। (दे० चेन्नापटम्)

फ्रेंचराक्स (मैसूर)

मैसूर से मेलुकोटे जाने वाली सड़क पर यह स्थान है जहां हैदरअली और टीपू के सहायक फ्रांसीसी लोगों ने अपनी सेना का मुख्य शिविर बनाया था। पास ही नीले जल से भरी हुई मोती तालाब नामक मनोरम झील है जिसका बांध नौ सौ वर्ष प्राचीन है।

बंग=वंग

बंगलौर (मैसूर)

किंवदती के अनुसार इस नगर की स्थापना तथा इसके नामकरण (शब्दार्थ उबली सेमों का नगर) से यहां के एक प्राचीन राजा से संबंधित एक कथा जुड़ी है किंतु ऐतिहासिक तथ्य यह है कि 1537 ई० में शूरवीर सरदार केंपेगोदा ने इस स्थान पर एक मिट्टी का दुर्ग बनवाया था और नगर के चारों कोनों पर चार मीनारें। इस प्राचीन दुर्ग के अवशेष अभी तक स्थित हैं। हैदरअली ने इस मिट्टी के दुर्ग को पत्थर से पुनर्निर्मित करवाया (1761 ई०) और टीपू ने कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। यह किला आज मैसूर राज्य में मुसलमानी शासन काल का अच्छा उदाहरण है। क़िले से 7 मील दूर हैदरअली का लालबाग स्थित है। बंगलौर से 37 मील दूर नंदिगिरि नामक ऐतिहासिक स्थान है।

बंगाल

किंवदंती में इस देश के नामकरण का आधार इस प्रकार बताया जाता है कि

प्राचीन काल में पद्मा नदी के दक्षिण में स्थित और हुगली, और गंगा की दूसरी शाखा मधुमती के बीच के भाग को वंग या बंगा कहते थे क्योंकि यह भूभाग राजा बलि के पुत्र वंग के अधिकार में था। हुगली के ठीक पश्चिम के प्रदेश को लाहा कहा जाता था। कुछ काल पश्चात् इन्हीं दोनों भागों—बंगा और लाहा का नाम बंगाल हो गया (दे० वंग)

बंदरपूंछ दे० यामुनपर्वत

बंबई (महाराष्ट्र)

16वीं शती तक बंबई महानगरी छोटे-छोटे सात द्वीपों का समूह मात्र थी। प्राचीन ग्रीक भौगोलिकों ने इसी कारण इस स्थान को हेप्टानोसिया (Heptanesia) या सप्तद्वीप नाम दिया था। दक्षिण भारतीय नरेश भीमदेव ने 15वीं शती में महीकवती (वर्तमान महीम) में अपनी राजसभा की थी। 1534 ई० में पुर्तगालियों ने गुजरात के सुलतान से बंबई को छीन लिया। इससे पहले बहादुरशाह ने इस स्थान को राजा भीमदेव के उत्तराधिकारी नगरदेव से प्राप्त किया था। बंबई में उस समय ढेर, भंडारी तथा आदि निवासियों (कोली आदि जिनके नाम पर वर्तमान कोलाबा प्रसिद्ध है) की विरल बस्तियां थीं। पुर्तगालियों ने बंबई की स्थिति के महत्व को पहचान रखा था और उनके यहां आने पर इसकी व्यापारिक उन्नति प्रारंभ हुई। पुर्तगाल के जेसुअट पादरियों ने पहले पहल इस स्थान पर गिर्जाघर बनवाए और इसी देश के व्यापारियों ने बंबई के समुद्री व्यापार का सूत्रपात किया। इतिहास से विदित होता है कि बंबई के द्वीप को पुर्तगाल सरकार ने कुछ समय के लिए मास्टर डीगो नामक व्यक्ति को ठेके पर दे दिया था और फिर स्थायी रूप से डाक्टर गार्सिया दा हार्ता (Garcia da Harta) को। इस व्यक्ति ने भारतीय पेड़-पौधों के विषय में काफी खोज-बीन की थी। 1665 ई० में सूरत से अंग्रेजों ने बंबई पर आक्रमण किया। इसमें उन्हें हालैंड निवासियों ने भी सहायता दी। बंबई का पुर्तगाली किला अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया। उन्होंने नगर में काफी लूटमार मचाई और अनेक लोगों को बंदी बना लिया किंतु बेसीन से कुमक आ जाने पर पुर्तगालियों ने बंबई को फिर से जीतकर उस पर पूर्ववत् अधिकार कर लिया। किंतु कुछ ही समय पश्चात् 1616 ई० में पुर्तगाल के राजा डॉन अलफांसो (Don Alfanso) षष्ठम ने अपनी बहन कैथरीन ब्रेगेंजा के इंग्लैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय के साथ विवाह होने के उपलक्ष में, बंबई को दहेज में दे दिया मानों वह उसकी वैयक्तिक संपत्ति रही हो। और फिर चार्ल्स द्वितीय ने इसे दस पाउंड वार्षिक किराए पर ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम उठा दिया। कंपनी का बंबई पर अधिकार होने पर बंबई

के पुर्तगालियों ने जिनकी इस अजीब सौदे के बारे में राय न ली गई थी, अंग्रेज़ों का सशस्त्र विरोध किया किंतु 1665 ई० तक अंग्रेज़ों ने बंबई पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया। बंबई के नामकरण के विषय में कई मत हैं। किंवदंती है कि यहां प्राचीन काल में मुंबादेवी का मंदिर था जिसके कारण इस स्थान को मुंबई कहते थे। बंबई, मुंबई का ही पुर्तगाली उच्चारण है। कुछ लोगों का मत है कि बंबई का नाम पुर्तगालियों का ही गढ़ा हुआ है और बॉन (Bon) तथा बेइया (Baia) शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है अच्छी खाड़ी।

बकुलारण्य

यह मदुरांतकम् (ज़िला चेंगलपट्टु, मद्रास) के क्षेत्र का पौराणिक नाम कहा जाता है। यहां कोदंडराम के प्राचीन मंदिर के प्रांगण में आज भी एक बकुल का वृक्ष वर्तमान है।

बक्सर (बिहार)

किंवदंती है कि रामायण मे वर्णित विश्वामित्र का आश्रम जहां यज्ञ के रक्षार्थ वे राम और लक्ष्मण को दशरथ से मांग कर ले गए थे, यहीं स्थित था। जनकपुर जाते समय राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ यहीं होते हुए गए थे। मौर्यकाल की अनेक सुंदर लघु मूर्तियां यहां उत्खनन में प्राप्त हुई थीं जो अब पटना संग्रहालय में सुरक्षित हैं (बिहार, दि हार्ट ऑव इंडिया–पृ० 57) (दे० विश्वामित्र-आश्रम)

बखरा (बिहार)

बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) के निकट एक ग्राम जिसके पास अशोक का सिंह-जटित स्तंभ स्थित है। (दे० वैशाली)

बगरी (ज़िला टौंक, राजस्थान)

वगरी प्राचीन स्थान है जैसा कि यहां के ध्वंसावशेषों से ज्ञात होता है। इनका अनुसंधान अभी भलीभांति नहीं हुआ है।

बगहा (बिहार)

बड़ी गंडक पर स्थित है। इसका प्राचीन नाम चंपकारण्य कहा जाता है।

बघेलखंड

मध्यप्रदेश में स्थित भूतपूर्व रीवां रियासत तथा परिवर्ती क्षेत्र का मध्ययुगीन नाम। 12वीं शती के अंतिम भाग में बाघेल या बघेला राजपूतों ने जो गुजरात के सोलंकी राजपूतों की एक शाखा थे, पँवार राज्य के पूर्व में राज्य स्थापित करके रींवा में अपनी राजधानी बनाई थी। बघेलों का पुरखा बघ्र (व्याघ्रदेव)

गुजरात से आकर इस प्रदेश में बसा था। रीवां में बघेलों का ही राज्य था। बघेलखंड प्राचीन करूष का एक भाग है।

बछोई (तहसील करवी, ज़िला बांदा, उ० प्र०)

यह ग्राम चित्रकूट के निकट कामतानाथ से 15-16 मील दूर लालपुर पहाड़ी पर स्थित है। किंवदंती है कि रामायण-काल में आदिकवि वाल्मीकि का आश्रम इसी स्थान पर था। संभवतः गो० तुलसीदास ने रामचरितमानस, अयोध्याकांड में जिस वाल्मीकि के आश्रम का वर्णन किया है वह इसी स्थान के निकट रहा होगा क्योंकि वह चित्रकूट के समीप ही था।

बटियागढ़ (ज़िला दमोह, म० प्र०)

इस स्थान पर विक्रमसंवत् 1385=1328 ई० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था (एपिग्राफिका इंडिया–12,42) जिसके बारे में विशेष बात यह है कि इसमें मुसलमानों को शक कहा गया है। (इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं)। इसमें मुहम्मद तुगलक का उल्लेख है। इसके समय में सुल्तान की ओर से जुलचीखां नामक सूबेदार चंदेरी में नियुक्त था और सूबेदार का नायक बटियागढ़ में रहता था। उस समय इस नगर को बटिहाड़िम या बड़िहारिन कहते थे। इसमें दिल्ली का एक नाम जोगिनीपुर भी दिया हुआ है। दूसरा शिलालेख विक्रम संवत् 1381=1324 ई० का यहां के प्राचीन महल के खडहरों से मिला है जिसमें गियासुद्दीन तुगलक का उल्लेख है जिसके सूबेदार ने इस महल को बनवाया था।

बटिहाड़िम=बटियागढ़

बटेश्वर

(1) भूतेश्वर

(2) वटेश्वर

बडली (ज़िला अजमेर, राजस्थान)

इस स्थान से 1912 ई० में स्वर्गीय डा० गौ० शं० हीराचंद्र ओझा को 443 ई० पू० का एक खंडित अभिलेख किसी स्तंभ के टुकड़े पर अंकित प्राप्त हुआ था जो पिपरावा के अभिलेख (487 ई० पू०) के साथ ही भारत के अभिलेखों में प्राचीनतम समझा जाता है। अभिलेख ब्राह्मी लिपि में है। यह अजमेर के संग्रहालय में सुरक्षित है।

बडवामुख

सुप्पारकजातक में वर्णित एक समुद्र—'तत्थ उदकं कड्ढित्वा कड्ढित्वा सब्बतो भागेन उग्गच्छति। तस्मिं सब्बतो भागेन उग्गतोदकं सब्बतो भागेन

छिन्नतट महा मोब्भोविय पंचायति, ऊमिया उग्गताय एकतो पपात सदिसं होति भय-जननो सद्दो उपजति सोतानि भिन्दन्तो विय हृदयं फालेन्तो विय'— अर्थात् वहां जल निकल कर सब ओर से ऊपर आ रहा था। सब ओर से जल ऊपर उठने के कारण किनारे की ओर बड़ा गर्त सा दिखाई देता था। लहरें उठ कर एक प्रपात की तरह जान पड़ती थीं। बड़ा भय उत्पन्न करने वाला शब्द वहां हो रहा था जो हृदय को वेध सा रहा था। यह समुद्र भरुकच्छ से जहाज पर व्यापार के लिए निकले हुए धनार्थी वणिकों को अपनी लंबी यात्रा के दौरान में मिला था। (दे० नलमाली, अग्निमाली, दधिमाल, क्षुरमाली) शूर्पारक जातक में वर्णित समुद्रों का वृत्तांत अधिकांश में प्राचीन काल के देश-विदेश में घूमनेवाले नाविकों की कल्पनारंजित कथाओं पर आधारित है। डा० मोतीचंद के मत में यह समुद्र भूमध्यसागर का कोई भाग हो सकता है (दे० सार्थवाह, पृ० 59)

बड़कंत दे० कर्मांत

बड़गांव

(1) (जिला परभणी, महाराष्ट्र) एक प्राचीन दुर्ग के ध्वंसावशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

(2) दे० नालंदा

बड़नगर (जिला महसाना, गुजरात)

प्राचीन हाटकेश्वर। पुरातत्व विभाग द्वारा किए गए उत्खनन में इस स्थान से 5वीं शती ई० तथा अनुवर्ती काल के अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनसे गुजरात के प्राचीन इतिहास में इस नगर के महत्व की सूचना मिलती है। बड़-नगर, हाटकेश्वर नाम से तीर्थ-रूप में भी प्रसिद्ध था।

बड़वा (ज़िला कोटा, राजस्थान)

1935-1936 में इस स्थान से 295 कृत या विक्रम संवत् = 238 ई० के तीन यूप-लेख प्राप्त हुए थे। इनमें मौखरीवंशीय महासेनापति बल के तीन पुत्र बलवर्धन, सोमदेव और बलसिंह का एक यज्ञ के संपादन के संबंध में उल्लेख है। संभवतः इन अभिलेखों में मौखरीवंश का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। इनसे बुद्ध धर्म की अवनति तथा हिंदू धर्म के पुनरुज्जीवन के संधिकाल में यज्ञा-दिकों के पुनरारंभ की सूचना भी मिलती है।

बड़ा (पंजाब)

रोपड़ के निकट स्थित है। यहां 1954-55 में, पुरातत्व-विभाग द्वारा संपा-दित उत्खनन में उत्तरकालीन हरप्पा संस्कृति के चिह्न मिले हैं।

बड़ाचत्रा दे० वराहक्षेत्र; कोलियगणराज्य

बडिहारिन दे० बटियागढ़

बड़ौदा (गुजरात)

जनश्रुति है कि प्राचीन काल में इस स्थान के निकट अनेक वटवृक्ष थे जिन के कारण नगर को बटोदर (वट वृक्षों के भीतर स्थित) कहा जाता था। बड़ौदा या गुजराती नाम बड़ोद्रा, वटोदर शब्द का अपभ्रंश हो सकता है। बड़ोदा रियासत की नींव मराठा सरदार दामाजी गायकवाड़ ने 18वीं शती में डाली थी। चंदनावती बड़ौदा का एक प्राचीन नाम है—(दे० बालफ़ूर–साइक्लोपीडिया ऑव इंडिया)

बड़ोह (ज़िला भीलसा, म० प्र०)

बंबई–दिल्ली रेलपथ पर कुल्हड़ स्टेशन से 12 मील पूर्व की ओर स्थित है। यहां के विस्तीर्ण खंडहरों से सूचित होता है कि यह स्थान मध्यकाल में समृद्धिशाली नगर रहा होगा। स्थानीय किंवदंती के अनुसार इसका प्राचीन नाम बड़ या वटनगर था। यहां के मुख्य अवशेष हैं—गाडरमल का मंदिर, 9वीं शती ई०; सोलह खंभी, 8वीं शती ई०; दशावतार मंदिर; सतमढ़ी मंदिर जिसके साथ छः अन्य मंदिरों के अवशेष हैं और जैन मंदिर जिससे छोटे-छोटे 25 मंदिर संबंधित हैं।

बढ़ाकोटरा (तहसील मऊ, ज़िला बांदा, उ० प्र०)

मध्यकालीन हिंदू मंदिर और मूर्तियों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। मंदिर कर्कोटनाग शिव का है।

बदख्शाँ

बदख्शां अफगानिस्तान में हिंदूकुश पर्वत का निकटवर्ती प्रदेश है।(दे० द्वयक्ष)

बदनावर (म० प्र०)

मालवा-भूभाग में स्थित है। परमारकालीन (10वीं-13वीं शती) मंदिरों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

बदनौर (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

इस नगर को महाराणा लाखा ने बसाया था। उनके समय में मेरवाड़ा के पहाड़ी लुटेरों ने इस प्रदेश में बड़ा ऊधम मचाया था। इनका मुख्य स्थान वैराटगढ़ था। महाराणा ने वैराटगढ़ को ध्वस्त करके उसीके निकट बदनौर नामक नया नगर बसाया। दिल्ली के सुलतान मुहम्मदशाह लोदी ने कुछ समय पश्चात् बदनौर को घेर लिया किंतु महाराणा लाखा की सेना ने वीरतापूर्वक लड़कर लोदी की सेना को पीछे खदेड़ दिया।

बदर दे० ग्वादूर

बदरपाचन

'ततस्तीर्थवरं रामो ययौ बदरपाचनम्, तपस्विसिद्धचरितं यत्र कन्या धृतवृता'—महा० शल्य० 48,1। महाभारत-काल में बदरपाचन तीर्थ सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों में से था। इसकी यात्रा बलराम ने की थी। प्रसंग के क्रम से जान पड़ता है कि यह स्थान हरयाणा में रहा होगा। शल्य० 48 में इस तीर्थ का संबंध भारद्वाज ऋषि की कन्या श्रुतवती से बताया गया है।

बदरिकाश्रम=बदरीनाथ

बदरी=बदरी आश्रम=बदरीनाथ (उ० प्र०)

महाभारत-काल में बदरीनाथ की तीर्थ रूप में मान्यता प्रतिष्ठित हो गई थी। पांडवों ने भारत के अन्य तीर्थों की भांति बदरीनाथ की भी यात्रा की थी 'एवं सुरमणीयानि वनान्युपवनानिव, आलोकयन्तस्ते जग्मुर्विशालां बदरीं प्रति'—वन० 145,11। इस उल्लेख में बदरीनाथ को विशाला नाम से अभिहित किया गया है जो आज भी पूर्ववत् प्रचलित है ('बद्री विशाल') इस यात्रा में पांडवों ने अनेक प्रकार के पशुपक्षियों तथा अनेक नदियों को देखा था—'मयूरैश्चमरैश्च वानरैरुरुभिस्तथा, वराहैर्गवयैश्चैव महिषैश्च समावृतान्, नदीजालसमाकीर्णान् नानापक्षियुतान् बहून, नानाविधमृगैर्जुष्टान् वानरैश्चोपशोभितान्' वन० 145,15-16। बदरीनाथ में गंगा की उपस्थिति भी महाभारत में वर्णित है—'एषा शिवजलापुण्या याति सौम्य महानदी, बदरीप्रभवा राजन् देवर्षिगणसेविता' वन० 142,4। यहां गंगा को बदरीनाथ से उद्भूत माना है क्योंकि गंगोत्री बदरीनाथ से कुछ ही दूर है। वन० 139,11 में विशाला को कैलास के निकट माना है—'कैलासः पर्वतो राजन् षडयोजन समुच्छ्रितः यत्र देवा समायान्ति विशाला यत्र भारत'। बदरीनाथ में नरनारायण के स्थान (जो आज भी है) और भागीरथी का वर्णन भी महाभारत में है—'तत्रापश्यत् धर्मात्मा देवदेवर्षि पूजितम्, नरनारायणस्थानं भागीरथ्योपशोभितम्'—वन० 145,41। शांति० 127-3 में बदरीनाथ के निकट वैहायसकुंड का उल्लेख है जो संभवतः वैहायसी या आकाश-मार्ग से जाने वाली गंगा का ही कुंड है—'यत्र सा बदरी रम्या ह्रदो-वैहायसस्तथा'। बदरीनाथ के प्रसंग में गंगा को आकाशगंगा कहा भी गया है—'आकाशगंगां प्रयताः पांडवास्तेऽभ्यवादयन्' वन० 142,11। बदरीनाथ में महाभारत के आदिकर्ता महर्षि व्यास का मुख्य आश्रम था इसीलिए उन्हें बादरायण कहा जाता है। बदरीनाथ में व्यासगुफा नामक स्थान को ही व्यास का निवास स्थान माना जाता है और यह भी किंवदंती है कि महाभारत की रचना उन्होंने

यहीं की थी। परवर्तीकाल में शंकराचार्य बदरिकाश्रम में कुछ समय तक ठहरे थे। बौद्ध जनश्रुति के अनुसार शंकराचार्य से पहले बदरीनाथ में बौद्धों का मंदिर था और इसमें बुद्ध की मूर्ति स्थापित थी।

बदायूं (उ० प्र०)

बदायू मध्यकालीन नगर है। 11वीं शती के एक अभिलेख में जो बदायूं से प्राप्त हुआ है, इस नगर का तत्कालीन नाम बोदामयूता कहा गया है। इस लेख से ज्ञात होता है कि उस समय बदायू में पंचालदेश की राजधानी थी। यह जान पड़ता है कि अहिच्छत्रा नगरी जो अति प्राचीनकाल से उत्तरपचाल की राजधानी चली आई थी, इस समय तक अपना पूर्व गौरव गँवा बैठी थी। एक किंवदंती में यह भी कहा जाता है कि इस नगर को अहीर सरदार राजा बुद्ध ने 10वीं शती में बसाया था। कुछ लोगों का यह मत है कि बदायूं की नींव अजयपाल ने 1175 ई० में डाली थी। राजा लखनपाल को भी नगर के बसाने का श्रेय दिया जाता है। नीलकंठ महादेव का प्रसिद्ध मंदिर जिसे इल्तुतमिश ने तुड़वा दिया था शायद लखनपाल ही का बनवाया हुआ था। ताजुलमासिर के लेखक ने बदायू पर कुतुबुद्दीन एबक के आक्रमण का वर्णन करते हुए इस नगर को हिंद के प्रमुख नगरों में माना है। बदायू के स्मारकों में जामामसजिद भारत की मध्ययुगीन इमारतों में शायद सबसे विशाल है। यह नीलकंठ मंदिर के मसाले से बनवाई गई थी और इसका निर्माता इल्तुतमिश था जिसने इसे, गद्दी पर बैठने के बारह वर्ष पश्चात् अर्थात् 1222 ई० में बनवाया था। (टि० महमूद गजनवी के समान ही इल्तुतमिश भी कुख्यात मूर्तिभंजक था। इसने अपने समय के प्रसिद्ध देवालयों जिनमें उज्जैन का महाकाल का मंदिर भी था तुड़वाकर तत्कालीन भारतीय कला, संस्कृति तथा धर्म को भारी क्षति पहुंचाई थी) जामा मसजिद प्रायः समातर चतुर्भुज के आकार की है किंतु पूर्व की ओर अधिक चौड़ी है। भीतरी प्रांगण के पूर्वी कोण पर मुख्य मसजिद है जो तीन भागों में विभाजित है। बीच के प्रकोष्ठ पर गुंबद है। बाहर से देखने पर यह मसजिद साधारण सी दीखती है किंतु इसके चारों कोनों की बुर्जियों पर सुंदर नक्काशी और शिल्प प्रदर्शित है। बदायू में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के परिवार के बनवाए हुए कई मकबरे हैं। अलाउद्दीन ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष बदायूं में ही बिताए थे। अकबर के दरबार का इतिहास लेखक अब्दुलकादिर बदायूनी यहां अनेक वर्षों तक रहा था और इसीलिए बदायूँनी कहलाता था। 1571 ई० में बदायू में भीषण अग्निकांड हुआ था जिसको बदायूँनी ने अपनी आंखों से देखा था। बदायूँनी का मकबरा बदायूं का प्रसिद्ध स्मारक है। इसके अतिरिक्त

इमादुल्मुल्क की दरगाह (पिसनहारी का गुंबद) भी यहां की प्राचीन इमारतों में उल्लेखनीय है।

बद्रीनाथ दे० बदरीनाथ

बधन=बाधन

गढ़वाल (उ० प्र०) का एक भाग जिसका शुद्ध नाम बोधायन कहा जाता है। यहा बौद्धकाल में बौद्ध धर्म का प्रसार था।

बनछटी दे० बुलंदशहर

बनजारावाला (जिला देहरादून, उ० प्र०)

11 वीं०–12 वीं शती ई० मे व्यापारिक काफलों के ठहरने का स्थान था। गढ़वाल के राजा यहां के निवासी बनजारों से कर वसूल करते थे किंतु अपने मुखिया के मरने के पश्चात् बनजारे इस स्थान को छोड़कर शिमला की पहाड़ियों मे चले गए थे।

बनारस=वाराणसी

महा० अनुशासन० के अनुसार काशी के राजा दिवोदास ने वाराणसी नगरी को बसाया था। जान पड़ता है यह नगरी, काशी की प्राचीन नगरी के स्थान पर या उसके सन्निकट ही बसाई गई होगी। (दिल्ली की विभिन्न बस्तियों के समान)। इससे यह भी सूचित होता है कि काशी का वाराणसी नाम जो इसके वरुणा और असी नदियो के बीच मे होने के कारण पड़ा था, बाद का है। (दे० वाराणसी; काशी)

बनास

राजस्थान की एक नदी जिसका प्राचीन नाम पर्णाशा या पर्णाशा है—'चर्मण्वती तथा चैव पर्णाशा च महानदी' महा०, सभा० 9,20। श्री नं० ला० डे ने बनास का प्राचीन नाम विनाशिनी बताया है।

बन्नू (प० पाकि०)

प्राचीन नाम वर्णु या वार्णव। युवानच्वांग ने इसे फलन कहा है। उसके समय में इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का काफी प्रसार था।

बयाना (जिला भरतपुर, राजस्थान)

इस स्थान का प्राचीन नाम बाणपुर कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बाराणसी, श्रीप्रस्थ या श्रीपुर नाम भी उपलब्ध हैं। किंवदंती में बाणपुर का संबंध बाणासुर तथा उसकी कन्या ऊषा से बताया जाता है। ऊखा मंदिर ऊषा का ही स्मारक कहा जाता है। 956 ई० के एक अभिलेख में जो ऊखा मंदिर से प्राप्त हुआ था यहां के राजा लक्ष्मणसेन का उल्लेख है। एक अन्य अभिलेख बाबर के समय का (934 हिजरी या 1527 ई०) है जिससे इस वर्ष में बाबर

का बयाना पर अधिकार सूचित होता है। अवश्य ही बाबर के हाथ में यह प्रदेश राणा संग्रामसिंह के कनवाहा के युद्ध (1527 ई०) में पराजित होने पर आया होगा। बाबर के सेनापति महमूद अली का महल भीतरवाड़ी में अब भग्नावस्था में है। महमूद अली के प्रधान मंत्री अजब सिंह भांवरा थे जो जाति के ब्राह्मण बताए जाते हैं। इनके नाम से बयाना में भांवरा गली प्रसिद्ध है। इस गली में अजब सिंह के बनवाए हुए चौका महल, गिदोरिया कूप तथा अनासागर बावड़ी आज भी वर्तमान है। बयाना बहुत समय तक जाट रियासत भरतपुर की निजामत (ज़िला) था। हाल ही में 1194 वि० सं०=1137 ई० का एक अभिलेख पाल नरेशों के समय का मागरौल नामक ग्राम से प्राप्त हुआ है जो इस प्रकार है—'संवत् 1194 अगहन स्वस्ति श्री ठाकुर साहु राम कील माहड ग्राम भोगसरु-वास हुईखे श्री देवहज श्री पाल लिखी मिति 3'। यहां के पाल नरेशों में विजय-पाल प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के नाम से स्थापित विजय मंदिर गढ़ आज भी भग्नावस्था में यहां स्थित है। विजयपाल के पुत्र तिहिनपाल थे जिनके तीन पुत्र पाल भाई नाम से प्रसिद्ध हुए। 1243 वि० सं०=1186 ई० का एक अन्य हिंदी अभिलेख भी यहां मिला है।

बरकाला (म० प्र०)

पूर्व मध्यकालीन इमारतों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

बरगी (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर के दक्षिण में स्थित है। यहां की गढ़ी की गणना गढ़मंडला की रानी वीरांगना दुर्गावती के श्वसुर संग्राम सिंह (या संग्राम शाह) के बावन गढ़ों में की जाती थी।

बरन

बुलंदशहर (उ० प्र०) का प्राचीन नाम। लगभग 800 ई० में मेवाड़ से भाग कर आने वाले दोर राजपूतों की एक शाखा ने बरन पर अधिकार कर लिया था। उन्होंने 1018 ई० में आक्रमणकारी महमूद गज़नवी का डटकर सामना किया। अपने पड़ौसी तोमर राजाओं से भी वे मोर्चा लेते रहे किंतु बडगूजरों से जो तोमरों के मित्र थे, उन्हें दबना पड़ा। 1193 ई० में कुतुबुद्दीन एबक ने उनकी शक्ति को पूरी तरह से कुचल दिया। फ़तूहाते फीरोजशाही का प्रख्यात लेखक बरनी बरन का ही रहने वाला था जैसा कि उसके उपनाम से सूचित होता है। मुसलमानों के शासन काल में बरन उत्तर भारत का महत्वपूर्ण नगर था। (टि० वरण नामक एक नगर का बुद्धचरित 21,25 में उल्लेख है। संभवतः यह बरन का ही संस्कृत रूप है)। लोक प्रवाद है कि इस नगर की

स्थापना जनमेजय ने की थी (दे० ग्राउज़, 'बुलंदशहर'—कलकत्ता रिव्यू–1883) जैन अभिलेख में इसे उच्छ नगर कहा गया है (एपिग्राफिका इंडिका—जिल्द, पृ० 375)। (दे० बुलंदशहर)

बरना=वरुणा

बरनावा (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

हिंडोन और कृष्णी नदी के संगम पर—सरधना तहसील में, मेरठ से लगभग 15 मील (जनश्रुति के अनुसार) यह वही ग्राम है जहां पांडवों को भस्म कर देने के लिए दुर्योधन ने लाक्षागृह तैयार करवाया था। यह प्राचीन ग्राम वारणावत या वारणावर्त है जो उन पांच ग्रामों में था जिनकी मांग पांडवों ने दुर्योधन से महाभारत युद्ध के पूर्व की थी। (दे० वारणावत)

बरवानी (म० प्र०)

पूर्वमध्यकालीन ऐतिहासिक अवशेषों के लिए यह उल्लेखनीय है।

बरवाप्यारा (जिला जूनागढ़, सौराष्ट्र, गुजरात)

जूनागढ़ के निकट ही इस नाम की कई शैलकृत्त गुफाएं हैं जो जैन भिक्षुओं के निवास तथा पूजा आदि के लिए बनाई गई थीं। इन गुफाओं के अंदर स्वस्तिक कलश, नंदिपद, मद्रासन, मीनयुगल आदि जैनों के धार्मिक चिह्न अंकित हैं।

बरवासागर (जिला झांसी, उ० प्र०)

झांसी से 12 मील दक्षिण-पूर्व की ओर झांसी-मानिकपुर रेलपथ पर स्थित है। यहां एक प्राचीन सरोवर के तट पर तथा उसके आसपास चंदेल राजाओं के समय की अनेक सुन्दर इमारतें हैं। ओड़छा के राजा उदित सिंह का बनवाया एक दुर्ग भी सरोवर के निकट है। चंदेलनरेशों द्वारा निर्मित एक बहुत ही कलापूर्ण मन्दिर या जरायका मठ भी यहां का सुन्दर स्मारक है। मंदिर की बाह्य भित्तियों पर अनेक प्रकार की मूर्तिकारी तथा अलंकरण प्रदर्शित हैं। वास्तव में चंदेल राजपूतों के काल का यह मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि का है। मंदिर के अतिरिक्त घुघुजा मठ तथा कई मंदिरों के अवशेष भी चंदेलकालीन वास्तुकला के परिचायक हैं।

बरसाना (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

कृष्ण की प्रेयसी राधा की जन्मस्थली के रूप में प्रसिद्ध है। इस स्थान को जो एक बृहत् पहाड़ी की तलहटी में बसा है, प्राचीन समय में बृहत्सानु कहा जाता था (बृहत्+सानु=पर्वत-शिखर) इसके अन्य नाम ब्रह्मसानु या वृषभानुपुर (वृषभानु, राधा के पिता का नाम है) भी कहे जाते हैं। बरसाना

प्राचीन समय में बहुत समृद्ध नगर था। राधा का प्राचीन मंदिर मध्यकालीन है जो लाल पत्थर का बना है। यह अब परित्यक्तावस्था में है। इसकी मूर्ति अब पास ही स्थित विशाल एवं परमभव्य संगमरमर के बने मंदिर में प्रतिष्ठापित की हुई है। ये दोनों मंदिर ऊंची पहाड़ी के शिखर पर हैं। थोड़ा आगे चल कर जयपुर-नरेश का बनवाया हुआ दूसरा विशाल मंदिर पहाड़ी के दूसरे शिखर पर बना है। कहा जाता है कि औरंगजेब जिसने मथुरा व निकटवर्ती स्थानों के मंदिरों को क्रूरतापूर्वक नष्ट कर दिया था, बरसाने तक न पहुंच सका था। बरसाने की पुण्यस्थली बड़ी हरी-भरी तथा रमणीक है। इसकी पहाड़ियों के पत्थर श्याम तथा गौरवर्ण के हैं जिन्हें यहां के निवासी कृष्णा तथा राधा के अमर प्रेम का प्रतीक मानते हैं। बरसाने से 4 मील पर नंदगांव है जहां श्रीकृष्ण के पिता नंद जी का घर था। बरसाना-नंदगांव मार्ग पर संकेत नामक स्थान है जहां किंवदंती के अनुसार कृष्ण और राधा का प्रथम मिलन हुआ था। (सकेत का शब्दार्थ है पूर्वनिर्दिष्ट मिलने का स्थान)।

बरहना=भराना (ज़िला सांभर, राजस्थान)

सांभर के निकट यह ग्राम दादू पंथ के प्रवर्तक प्रसिद्ध संत दादू के मृत्यु-स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। यहां दादू की समाधि तथा मंदिर स्थित है। इन्होंने 1 03 ई० में शरीर त्याग किया था।

बराबर (ज़िला गया, बिहार)

प्राचीन नाम खल्तिक पर्वत है। गया से पटना जाने वाले रेल पथपर बेला स्टेशन से आठ मील पूर्व यह पहाड़ी स्थित है। इस पहाड़ी में लगभग सात प्राचीन गुफाएं विस्तीर्ण प्रकोष्ठों के रूप में निर्मित है। कहीं तो एक गुफा में दो कोष्ठ हैं और कहीं एक ही दीर्घ प्रकोष्ठ। इन गुफाओं में अशोककालीन वज्रलेप की प्रमार्जा (पालिश) दिखाई पड़ती है। इन गुफाओं के वर्तमान नाम सुदामा, लोमश ऋषि, रामाश्रम, विश्वझोंपड़ी, गोपी, वेदाथिक आदि हैं। गुफाओं की संख्या सात होने से पहाड़ी को सतघरवा भी कहते हैं। इनमें से तीन में अशोक के अभिलेख अंकित हैं। इनसे विदित होता है कि मूलतः इनका निर्माण अशोक के समय में आजीवक (जैन) संप्रदाय के भिक्षुओं के निवास के लिए करवाया गया था। यह संप्रदाय बुद्ध के समकालीन आचार्य मावली गौसाल ने चलाया था। अशोक के अभिलेखों से जो उसके शासनकाल के 12वे 21वें वर्ष के हैं उसकी सब धार्मिक संप्रदायों के साथ निष्पक्ष-नीति का प्रमाण मिलता है। अशोक के अतिरिक्त उसके पौत्र दशरथ (जो जैन था) के अभिलेख भी इन गुफाओं में अंकित हैं। इन गुफाओं को नागार्जुनी गुफाएं

भी कहा जाता है। इनमें परवर्तीकाल के कई अन्य अभिलेख भी हैं जिनमें मौखरीवंशीय नरेश अनंतवर्मन् का एक तिथिहीन अभिलेख उल्लेखनीय है। इसमें अनंतवर्मन् के पिता शार्दूलवर्मन् का भी नामोल्लेख है। इसका विषय अनंतवर्मन् द्वारा गुहा-मन्दिर में कृष्ण की एक मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाना है।

बरार दे० विदर्भ

बरेली (उ० प्र०)

पुरानी जनश्रुति के अनुसार बरेली को वरेल राजपूतों ने बसाया था। प्राचीन काल में बरेली का क्षेत्र पंचाल जनपद का एक भाग था। महाभारतकाल में पंचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी जो ज़िला बरेली की तहसील आंवला के निकट स्थित थी। बरेली तथा वर्तमान रुहेलखंड का अधिकांश प्रदेश 18वीं शती में रुहेलों के अधीन था। 1772 ई० में रुहेलों तथा अवध के नवाब के बीच जो युद्ध हुआ उसमें रुहेलों की पराजय हुई और उनकी सत्ता भी नष्ट हो गई। इस युद्ध से पहले रुहेलों का शासक हाफिज रहमत खां था जो बड़ा न्यायप्रिय और दयालु था। रहमत खां का मकबरा बरेली में आज भी रुहेलों के अतीत गौरव का स्मारक है। बरेली को बांसबरेली भी कहते हैं क्योंकि पहाड़ों की तराई के निकटवर्ती प्रदेश में इसकी स्थिति होने के कारण यहां लकड़ी, बांस आदि का कारोबार काफी पुराना है। 'उल्टे बांस बरेली' की कहावत भी, इस स्थान में, बांसों का प्रचुर व्यापार होने के कारण बनी है। (दे० बांसबरेली)

बर्दवान=वर्धमान

बर्बर

(1) 'वारुणीं दिशामागम्य यवनान् बर्बरांस्तथा, नृपान् पश्चिमभूमिस्थान् दापयामास वै करान्'—महा० वन० 254, 18 अर्थात् कर्ण ने तब पश्चिम दिशा मे जाकर यवन तथा बर्बर राजाओं को जो पश्चिम देश के निवासी थे, परास्त करके उनसे कर ग्रहण किया। प्राचीन काल में अफ्रीका के बार्बरी (Barbary) प्रदेश के रहने वाले 'बारबेरियन' कहलाते थे तथा इनकी आदिम रहन-सहन की अवस्था के कारण इन्हें यूरोपीय (ग्रीक) असभ्य समझते थे जिससे बार्बेरियन शब्द ही 'असभ्य' का पर्याय हो गया। महाभारत के उपर्युक्त उद्धरण में बार्बरी या वहां के निवासियों का निर्देश है अथवा भारत के पश्चिमोत्तर भूभाग या वहां बसे हुए सिथियन अथवा अनार्य जातीय लोगों का। महाभारत-युद्ध की कथा में जिस धनुर्विद् बर्बरीक का वृत्तांत है वह संभवत: बर्बरदेशीय था।

(2) काठियावाड़ या सौराष्ट्र (गुजरात) में सोरठ और गुहिलवाड़ के मध्य में स्थित प्रदेश जिसे अब बाबरियावाड़ कहते हैं। संभवत: विदेशी अनार्य जातीय

बर्बरों के इस प्रदेश में बस जाने से ही इसे बर्बर कहा जाने लगा था। इसी इलाके में बर्बर शेर या केसरी सिंह पाया जाता है।

बर्बरीक

कराची (पाकिस्तान) के निकट प्राचीन बंदरगाह। यहां गुप्त तथा गुप्तपूर्व काल में पश्चिम के देशों के साथ सक्रिय व्यापार होता था। स्थान के नाम का संभवतः बर्बर लोग से संबंध है।

बर्हिणद्वीप

पुराणों में वर्णित एक द्वीप जिसका अभिज्ञान श्री ओ० सी० गांगुली ने विशाल द्वीप बोर्नियो के साथ किया है (दे० जर्नल ऑव दि गुजरात रिसर्च सोसाइटी, बंबई 3,1)

बलईखेड़ा (उ० प्र०)

लखनऊ–काठगोदाम रेलपथ पर शाही स्टेशन से तीन मील उत्तर-पूर्व और जहानाबाद से एक मील पश्चिम की ओर इस नाम का ढूह है जो किसी प्राचीन स्थान का खंडहर जान पड़ता है। इसका उत्खनन और अनुसंधान अपेक्षित है।

बलगामी (मैसूर)

चालुक्य शैली में निर्मित केदारेश्वर का मंदिर इस स्थान का प्राचीन स्मारक है। यह चालुक्य वास्तुकला के प्राचीनतम मंदिरों में से है।

बलनी दे० बीड़

वलभी=बल्लभीपुर

बलाहक

विष्णुपुराण 2,4,26 में उल्लिखित शाल्मल द्वीप का एक पर्वत—'कुमुद-श्चोन्नतश्चैव तृतीयश्चबलाहकः, द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः'।

बलिया (उ० प्र०)

एक स्थानीय किंवदंती के अनुसार यह स्थान वाल्मीकि ऋषि के नाम पर बलिया कहलाता है। इनकी स्मृति में एक मंदिर यहां था जो अब विद्यमान नहीं है। नगर के उत्तर में धर्मारण्य नामक एक ताल है जिसके निकट अति प्राचीन काल में बौद्धों का एक संघाराम स्थित था। इसका वर्णन फाह्यान ने विशालशांति नाम से किया है। युवानच्वांग ने भी इस संघाराम का वर्णन करते हुए यहां अविद्धकर्ण साधुओं का निवास बताया है। धर्मारण्य पोखरे के निकट भृगु का आश्रम बताया जाता है। इसकी स्थापना बौद्धधर्म की अवनति के पश्चात् प्राचीन संघाराम के स्थान पर की गई होगी।

बलिहारी

बिलारी (मद्रास) का प्राचीन नाम कहा जाता है।

बलख़

बल्ख नामक नगर अफगानिस्तान में स्थित है। यहां तोपे-रुस्तम नामक खडहरों से इस स्थान पर एक अति प्राचीन और विशाल नगर के अस्तित्व का आभास मिलता है। अवशेषों से विदित होता है कि यह नगर विभिन्न देवों के उपासकों तथा अग्निपूजकों द्वारा बसाया गया होगा। यहां ऐतिहासिक गुफाएं तथा उनमें के भीतर अंकित भितिचित्रों से भी बल्ख़ की प्राचीन सभ्यता का दिग्दर्शन होता है। वास्तव में मुसलमानों के पूर्व बलख में हिंदू-बौद्धसभ्यता का पूरा-पूरा प्रभाव था। (दे० वाह्लिक)

बल्लभगढ़ (जिला गुड़गांव, हरयाणा)

दिल्ली-मथुरा रेलपथ पर स्थित है। 18वीं शती में यह स्थान जाटों की राजनैतिक शक्ति का केंद्र था। कहा जाता है कि 1705 ई० के लगभग गोपाल-सिंह जाट ने वल्लभगढ़ के निकट सीही ग्राम में बस कर अपनी शक्ति का संचय किया था। उसके प्रभाव के कारण ही फ़रीदाबाद के मुगल अधिकारी मुर्तजा खां ने उसे फरीदाबाद परगना का चौधरी नियुक्त किया था। बल्लभगढ़ का नामकरण उसके पौत्र बलराम के नाम पर हुआ था। बल्लभगढ़ में जाटों ने एक दुर्ग का निर्माण किया था। भरतपुर नरेश सूरजमल ने बल्लभगढ़ के जाटों की मुगल सेनाओं के विरुद्ध सहायता की थी। 1757 ई० में अहमदशाह अब्दाली ने बल्लभगढ़ का घेरा डालकर भरतपुर-नरेश जवाहरसिंह को गढ़ छोड़ कर भाग जाने पर विवश कर दिया। बल्लभगढ़ से एक मील दूर सीही ग्राम है जिसे महाकवि सूरदास का जन्म-स्थान माना जाता है।

बल्लमगढ़=बल्लभगढ़

बल्लालपुरी

बंगाल के बल्लालसेन और आदिसूर की राजधानी। यह वर्तमान रामपाल या बल्लाल बाड़ी (जिला ढाका, पाकि०) है। कनिंघम के अनुसार गौड़ पर मुसलमानों का कब्ज़ा हो जाने पर सेन नरेश बल्लालपुरी में आकर रहने लगे थे। (आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट—जिल्द 3, पृ० 163) बल्लालसेन के क़िले के अवशेष यहां अभी मौजूद हैं।

बसाढ़ दे० वैशाली

बसौली (हिमाचल प्रदेश)

बसौली भारतीय चित्रकला की एक विशेष शैली के लिए प्रसिद्ध है। बसौली-नरेश राजा कृपाल (1678-1693 ई०) ने चित्रकला के एक नए 'स्कूल' को जन्म दिया था। इसकी विशेषता है अभिव्यक्ति की कर्कशता तथा कठोरता।

विलियम आर्चर (भारतीय विभाग, विक्टोरिया-एलबर्ट संग्रहालय, लंदन) के अनुसार बसौली की चित्रकला के मानवचित्रों में नेत्रों का अभिव्यंजन गहरी रेखाओं और प्रकृति का चित्रण आयताकार अथवा वर्तुल रेखाओं द्वारा किया गया है। इस शैली में प्रेम के विषयों का आलेखन काव्यमय न होकर कर्कशता-पूर्ण है। (दे० गुलेर)

बहमनाबाद (सिंध, पाकि०)

सिंध नदी के मुहाने के निकट यह अति प्राचीन नगर है। विंसेंट स्मिथ के अनुसार इस नगर का नाम ईरान के शाह बहमन अथवा अहमुर (465-425 ई० पू०) के नाम पर हुआ था। यह गुश्तासिब का पौत्र था (दे० अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 107)। किंतु यह स्थान इससे कहीं अधिक प्राचीन जान पड़ता है क्योंकि यहां प्रागैतिहासिक अवशेष भी मिले है। संभवतः महाभारत सभा० 51,5 ('गोवासना ब्राह्मणाश्च दासनीयाश्च सर्वशः, प्रीत्यर्थं ते महाराज धर्मराज्ञो महात्मन:') में ब्राह्मण नाम के जिन लोगों का उल्लेख युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दक्षिणा लेकर आनेवाले जानपदिकों के साथ वर्णन है वे इसी स्थान या ब्राह्मण जनपद से संबंधित होंगे। अलक्षेंद्र (सिकंदर) के आक्रमण के वृत्तांत में ग्रीक लेखकों ने जिस पटल नामक नगर का उल्लेख किया है वह भी बहमनाबाद के निकट ही स्थित होगा। एरियन ने इसे ब्रेह्‌म्नोई (Brachmanoi) लिखा है और प्लूटार्क ने भी इसका उल्लेख किया है। पाणिनि ने ब्राह्मण जनपद का 5,2,71 में निर्देश किया है और राजशेखर ने काव्य मीमांसा में इसे ब्राह्मणावह लिखा है। अलक्षेंद्र के इतिहास-लेखकों के अनुसार इसी स्थान से यवन आक्रांता ने अपनी सेना के एक भाग को समुद्र द्वारा अपने देश को वापस भेजना निश्चित किया था। 1957 में पाकिस्तान शासन की ओर से इस स्थान पर खुदाई करवाई गई थी जिससे बहमनाबाद की अति प्राचीन बस्ती के अवशेष प्राप्त हुए है।

बहराइच (उ० प्र०)

स्थानीय जनश्रुति में बहराइच शब्द को ब्रह्मराइच का अपभ्रंश माना जाता है। ऐतिहासिक परंपरा के अनुसार इस स्थान पर जहां आजकल सईद सालार मसूद की दरगाह है, प्राचीन काल में सूर्य-मंदिर था। कहा जाता है कि इस मंदिर को रुदौली की अंधी कुमारी जौहरा बीबी ने बनवाया था। दरगाह के अहाते को बनवाने वाला दिल्ली का तुगलक सुलतान फीरोजशाह बताया जाता है।

बहादुरगढ़ (महाराष्ट्र)

भीमा नदी के तट पर बसे हुए बहादुरगढ़ का निर्माण बहादुर खां ने

करवाया था जो औरंगजेब का सेनापति था। सल्हेरी के युद्ध के पश्चात् जिसमें मुगल सेनाओं को शिवाजी ने बुरी तरह हराया था, औरंगजेब ने शाहजादा मुअज्ज़म और महावतखां के स्थान में बहादुर खां को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। बहादुर खां को मराठों से लड़ने का साहस ही न होता था अतः उसने भीमा के तट पर मेड़ गाव मे अपनी छावनी बनाकर बहादुरगढ़ के क़िले का निर्माण करवाया था।

बहादुरनगर (ज़िला रायबरेली, उ० प्र०)

यह स्थान एक मध्यकालीन मंदिर के लिए विख्यात है जो उस जमाने की छोटी ईंटों का बना है।

बहादुराबाद (ज़िला सहारनपुर, उ० प्र०)

हरद्वार से 8 मील पश्चिम में स्थित है। यहां 1953 में, उत्खनन द्वारा हरप्पा-सभ्यता के अवशेष प्रकाश में लाए गए हैं। उत्खनन भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा संचालित किया गया था। इन अवशेषों से इस महत्वपूर्ण सभ्यता के विस्तार का बोध होता है। इस सभ्यता के अवशेष अब तक श्योराजपुर (जिला कानपुर) तक मिल चुके है।

बहिर्गिरि

महाभारत, सभा० 27,3 के अनुसार दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में अर्जुन ने अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि और उपगिरि नामक हिमालय के पार्वतीय प्रदेशों को विजित किया था—'अंतर्गिरिं च कौंतेयस्तेथैव च बहिर्गिरिम् तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुषर्षभः'—बहिर्गिरि हिमालय का बाहरी भाग (Outer Himalayas) अथवा निचला तराई-क्षेत्र है। (दे० उपगिरि, अंतर्गिरि)

बहुधान्यक

महाभारत, सभा० 32,4 में वर्णित स्थान जिसका उल्लेख रोहीतक (वर्तमान रोहतक, पंजाब) के साथ है। श्री वा० श० अग्रवाल के अनुसार प्राचीन काल में बहुधान्यक पर यौधेयगण का राज्य था। इनके सिक्के रोहतक के निकट खोकराकोट नामक स्थान पर मिले हैं। कुछ विद्वानों के मत में यह वर्तमान लुधियाना है। संभव है लुधियाना बहुधान्यक का अपभ्रंश हो।

बहुरीबद (म० प्र०)

जबलपुर से 42 मील उत्तर में एक ग्राम है जिसे कनिंघम ने टॉलमी द्वारा उल्लिखित 'थोलावन' माना है। यहां जैन तीर्थंकर शांतिनाथ की 13 फुट ऊंची, श्यामपाषाण की मूर्ति अवस्थित है जिसे स्थानीय लोग खनुवादेव नाम से जानते है। मूर्ति के निम्न भाग में एक अभिलेख उत्कीर्ण है जिससे सूचित होता है कि

यह मूर्ति महासामंताधिपति गोल्हणदेव राठौड़ के समय में बनी थी और यह शासक कलचुरिराज राय कर्णदेव का सामंत था। लिपि से मूर्ति का समय 12वीं शती जान पड़ता है।

बांगरमऊ (उ० प्र०)

कानपुर-बालामऊ रेलपथ पर स्थित है। यहां प्राचीन काल का एक अद्भुत तांत्रिक मंदिर है जो कुंडलिनी योग के आधार पर बना हुआ है।

बांदा

प्राचीन नाम भुरेंदी कहा जाता है। भूरागढ़ का क़िला राजा गुमान सिंह ने 1746 ई० में बनवाया था। यहां का प्राचीनतम मंदिर भूमीश्वरी देवी का है। बांदा में अनेक हिंदू और जैन मंदिर हैं।

बाँधवगढ़

रीवां (म० प्र०) रियासत का पुराना नाम है। वास्तव में बांधवगढ़ रीवां से दक्षिण की ओर कुछ दूर पर स्थित है। यह स्थान अतिप्राचीन है जैसा कि दूसरी-तीसरी शती ई० के 23 अभिलेखों से ज्ञात होता है जो पुरातत्व विभाग को 1938 में यहां प्राप्त हुए थे। इनकी भाषा प्राकृत और संस्कृत का मिश्रण है। लिपि ब्राह्मी है। अभिलेखों में महाराज वैशिष्टीपुत्त भीमसेन तथा उनके पुत्र और पौत्र का उल्लेख है। इनका विषय मथुरा तथा कौशांबी के वणिक्-गणों द्वारा दिए गए दान का वृत्तांत है। एक अभिलेख में व्यायामशाला बनवाए जाने का भी उल्लेख है जिससे सूचित होता है कि इतने प्राचीन काल में भी जनता के स्वास्थ्य की ओर संघटित रूप से पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। बांधवगढ़ रींवा की प्राचीन राजधानी होने के कारण काफ़ी प्रख्यात नगर था और रींवा नरेश अपनी राजसी उपाधियों में अपने को बांधवेश कहलाना उचित समझते थे।

बांसखेड़ा (बिहार)

महाराज हर्षवर्धन (606-647 ई०) का एक ताम्र दानपट्ट-लेख इस स्थान से प्राप्त हुआ था। इसका समय 628-629 ई० है। इसमें महाराजाधिराज हर्ष की वंशावली दी हुई है। बांसखेड़ा-अभिलेख की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें स्वयं हर्ष के हस्ताक्षर हैं। यह हस्ताक्षर संभवतः मूल हस्ताक्षर की अनुलिपि है जिसे ताम्रपट्ट पर उतार लिया गया है। अभिलेख के अंत में यह हस्तलेख सुंदर अक्षरों में इस प्रकार है—'स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्री हर्षस्य' (दे० एपिग्राफिका इंडिका, 4, पृ० 208) यह अभिलेख वर्धमानकोटि नामक स्थान से प्रचलित किया गया था।

बांस बरेली

बरेली (उ० प्र०) का एक विशेषार्थक नाम जो यहां के तराई के जंगलों में बांस वृक्षों के बहुतायत से होने के कारण हुआ है। यह संभव है कि इस नगर को उ० प्र० के एक अन्य नगर राय बरेली (संक्षिप्त रूप बरेली) से भिन्न करने के लिए ही बांस बरेली कहा जाता है (दे० बरेली)।

बागपत (जिला मेरठ, उ० प्र०)

इस नगर का प्राचीन नाम व्याघ्रप्रस्थ या वृषप्रस्थ कहा जाता है। स्थानीय जनश्रुति में यह ग्राम उन पांच ग्रामों में से था जिनकी मांग, महाभारत युद्ध से पहले समझौता करने के लिए, पांडवों ने दुर्योधन से की थी। अन्य चार ग्राम सोनपत, तिलपत, इंद्रपत और पानीपत कहे जाते हैं। किंतु महाभारत में ये पांच ग्राम दूसरे ही हैं—ये है—अविस्थल, वृकस्थल, माकंदी, वारणावत, और पांचवा नाम रहित कोई भी अन्य ग्राम (दे० अविस्थल)। सभव है वृकस्थल बागपत का महाभारत-कालीन नाम हो। वैसे वृकस्थल (वृक—भेड़िया या बाघ) बागपत या व्याघ्रप्रस्थ का पर्याय हो सकता है।

बागबढ़ी (जिला करीम गंज, असम)

करीमगंज से 10 मील पर स्थित है। एक सहस्र वर्ष पुराना शिव मंदिर यहां के जंगलों में पाया गया है। इसकी खोज 1954 में वनों को साफ करने वाले ग्रामीणों ने की। मंदिर के अंदर कुछ मूर्तियां भी मिली हैं। इसकी दीवारों पर जो नक़्क़ाशी का काम है उससे सूचित होता है कि यह शिवमंदिर त्रिपुरा-नरेश द्वारा बनवाया गया था। कुछ वर्षों पूर्व इसी स्थान के निकट अलाउद्दीन खिलजी के समय (14वीं शती का प्रारंभ) की एक मसजिद भी मिली थी जिससे ज्ञात होता है कि मध्यकाल में यह स्थान इस प्रदेश में काफी महत्वपूर्ण था।

बागमती

नेपाल तथा उत्तरी बिहार में प्रवाहित होने वाली नदी। स्वयंभू पुराण (अध्याय 5) और वाराहपुराण (अध्याय 215) में बागमती या बाहुमती के सात नदियों के साथ संगम को बड़ा तीर्थ माना गया है। नेपाल के प्रधान संरक्षक सिद्धसंत मछींद्रनाथ का मंदिर बागमती के तट पर है। मिथिला में इस नदी के तट पर बिसपी नामक ग्राम बसा है जो मैथिल कोकिल विद्यापति का जन्म-स्थान माना जाता है।

बागरा

मध्यकाल में, विशेषतः सेन नरेशों के समय में बंगाल का एक प्रांत।

बागापथरी (जिला मिर्जापुर, उ० प्र०)

मिर्जापुर से रींवा जाने वाली सड़क पर मिर्जापुर से 45 मील दूर एक पहाड़ी है जिसमें प्रागैतिहासिक गुफाएं स्थित हैं (दे० लहोरियादह)।

बागेश्वर (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

गोमती-सरयू संगम पर समुद्रतल से 3000 फुट की ऊंचाई पर स्थित मध्यकालीन स्थान है। बागनाथ महादेव का मंदिर यहां का मुख्य स्मारक है जिसमे शिव-पार्वती की मध्यकालीन कलापूर्ण मूर्तियां हैं। मकर-संक्रांति को यहां मेला लगता है। सरयू के उस पार बेणीमाधव तथा हिरपतेश्वर के प्राचीन मंदिर हैं। इस स्थान का नाम वागीश्वर या व्याघ्रेश्वर मंदिर के कारण है। बागेश्वर के कस्बे को अल्मोड़े के राजा लक्ष्मीचंद्र ने 1450 ई० में बसाया था।

बाघ (म० प्र०)

इंदौर से लगभग 100 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर, नर्मदा की घाटी में, घोर जंगलों के बीच, पहाड़ी में काटकर बनाई हुई बाघ नामक नौ गुफाएं हैं जो अपनी भित्ति-चित्रकारी के लिए अजंता के समान ही विख्यात हैं। गुफाओं के सामने बागनी नामक बरसाती नदी बहती है। बाघ का कस्बा यहां से 5 मील दूर है। संसार की हलचल से दूर ये गुफाएं बौद्ध श्रमणों द्वारा विहारों तथा चैत्यों के रूप में—अजंता की भांति—बनाई गई थीं। इनकी भित्तियों पर बौद्ध कलाकारों ने स्वांत:सुखाय, बुद्ध तथा बौधिसत्वों की जीवनियों से संबंधित अनेक उदात्त कथाओं का मनोरम चित्रण किया है। यह चित्रकारी अधिकांश में गुप्तकालीन है। इस प्रदेश से बौद्धधर्म के 10वीं शती में नष्ट हो जाने पर इन गुफाओं का महत्व भी विस्मृत हो गया और कालांतर में स्थानीय लोगों ने इनका संबंध पंच पांडवों से जोड़ दिया। इन नौ गुफाओं में से जो कला की दृष्टि से गुप्तकालीन प्रमाणित होती हैं केवल सं० 2 से 5 तक की गुफाएँ ही खोदकर निकाली जा सकी हैं। शेष अभी तक मिट्टी में दबे हुए खंडहरों का ढेर मात्र जान पड़ती हैं। सं० 2 की गुफा में एक मध्यवर्ती मंडप है जिसके तीन ओर बीस कोष्ठ हैं जो भिक्षुओं के रहने के लिए बने थे। मंडप के आगे स्तभों पर टिका हुआ बरामदा है। पीछे की ओर बीच में एक बड़ा प्रकोष्ठ है जिसमें एक छोटा स्तूप या चैत्य है। कोष्ठ काफी अंधेरे है और निवास के लिए अधिक सुखकर नहीं जान पड़ते किंतु ये बौद्ध साधुओं के जीवन के प्रति दृष्टिकोण के अनुरूप ही बने हैं। अन्य गुफाओं की रचना भी प्राय: इसी प्रकार की है। बाघ की गुफाओं में मूर्तिकारी के अधिक सुंदर उदाहरण नहीं हैं किंतु ये अजंता की भांति ही अपनी भित्ति-चित्रकारी के लिए विख्यात हैं किंतु इस चित्रकारी

का अधिकांश भाग कालप्रवाह में नष्ट हो चुका है और दीवारों पर केवल कुछ रंगीन धब्बों के रूप में ही विद्यमान है। फिर भी बचे-खुचे चित्रों से, खंडित रूप में ही सही, हमें प्राचीन चित्रकारी के भव्य सौंदर्य का आभास तो मिल ही जाता है। ये चित्र मूलतः गुफाओं की भित्तियों, छतों और स्तंभों पर अंकित थे। सं० 4 की गुफा, रंगमहल का भीतरी भाग धुंवे से काला हो गया है। कहा जाता है यहां ठहरने वाले मूर्ख साधुओं ने इस गुफा का रसोई के रूप में प्रयोग किया था जिससे इसके सुंदर चित्र धुवाँ लगने से काले पड़ गए है। फिर भी बरामदे की चित्रकारी अपेक्षाकृत अच्छी दशा में है। यहां लगभग 45 फुट लबे और 6 फुट ऊंचे स्थान पर प्राचीन भारतीय जन-जीवन की झांकियां अतीव सुंदर रंगीन चित्रों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं। पहला चित्र एक महिला का है जो शोकनिमग्ना जान पड़ती है। इसके पास ही संगीत और नृत्य तथा साथ ही धार्मिक प्रवचन के दृश्य हैं। तीसरे चित्र में छः पुरुष जो शायद बौद्ध अर्हत हैं, बादलों पर तैरते हुए दिखाए गए हैं। उनके नीचे भूमि पर कुछ स्त्रियां संगीत में तल्लीन चित्रित हैं जिनमें से एक बांसुरी बजा रही है। ये अर्हत शायद संसार के प्रपंच से ऊपर उठकर और आनंदावस्था को प्राप्त कर सांसारिक जीवों के रागरंगमय और विलासपूर्ण जीवन को करुणापूर्ण दृष्टि से देखने के भाव में अंकित किए गए हैं। चौथा दृश्य भी संगीत में व्यस्त स्त्री-पुरुषों का है जिसमें अनियंत्रित आमोद-प्रमोद तथा संयत आनंद का विभेद स्पष्ट किया गया है। अंतिम दो दृश्यों में जिनमें लगभग बीस फुट स्थान घिरा हुआ है, दो शोभा-यात्राओं का अंकन किया गया है। इनमें घोड़ों के अभिजात स्वभाव का चित्रण आश्चर्यजनक रीति से वास्तविक तथा कलापूर्ण है और भारतीय चित्रकारी में अपूर्व जान पड़ता है। इन सब कलामय दृश्यों में परस्पर कथात्मक तारतम्य है या नहीं यह कहना संभव नहीं जान पड़ता।

बाघोरा

यह छोटी सी नदी अजंता की हरी-भरी पहाड़ियों की उपत्यका मे बहती है। अजंता के भव्य गुहामंदिरों के उच्चपर्वत का पाद-प्रक्षालन करती हुई और मनोरम कलकलध्वनि से बहने वाली यह सरिता अजंता के एकांत प्राकृतिक सौंदर्य को द्विगुणित कर देती है।

बाजनामठ (जिला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर से 6 मील दूर संग्रामसागर झील के किनारे स्थित भैरव मंदिर को बाजनामठ भी कहा जाता है। इसका निर्माण गौंड नरेश संग्राम सिंह ने करवाया था। ये भैरव के उपासक थे। बाजनामठ में स्थित भैरव का मंदिर गौंड वास्तुकला

का प्रारूपिक उदाहरण है। इसका गोलगुंबद भी विशिष्ट गौंडशैली में बना है। नवरात्र के अवसर पर यहां दूर-दूर के तांत्रिक लोग इकट्ठे होते हैं। संग्राम-सागर के बीच में आमखास नामक महल एक द्वीप पर बना है। स्थानीय लोगों का विश्वास है कि यह महल तालाब के अंदर तीन तलों तक गया हुआ है।

बाजितपुर (बिहार)

बेगूसराय के निकट छोटा सा ग्राम है। कहा जाता है कि मैथिल कौकिल विद्यापति की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थी। इनका जन्म स्थान बिसपी है।

बाजोलियाँ (मेवाड़, राजस्थान)

प्राचीन जैन मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। इस मंदिर के निकट एक चट्टान पर 1216 वि० सं०=1170 ई० में श्रेष्ठी लोलाक ने उन्नतिशिखर पुराण नामक दिगंबर जैन ग्रंथ उत्कीर्ण करवाया था। एक दूसरी चट्टान पर उपर्युक्त जैन मंदिर के विषय में एक विशाल एवं विस्तृत लेख भी अंकित है जिसमें सांभर (शाकंभर) और अजमेर के चौहानों की पूरी वंशावली दी हुई है।

बाड़ी (ज़िला भूपाल, म० प्र०)

गढ़मंडला से नरेश संग्रामसिंह के प्रसिद्ध बावनगढ़ों में से एक। संग्रामसिंह वीरांगना महारानी दुर्गावती के श्वसुर थे। इनकी मृत्यु 1541 ई० में हुई थी।

बाड़ोली (राजस्थान)

मध्यकालीन हिंदू मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। इस मंदिर का शिल्प-सौंदर्य उच्च कोटि का माना जाता है।

बाणपुर

(1) दे० बयाना

(2) दे० महाबलीपुरम्

बाणावर (मैसूर)

बंगलौर-पूना रेलमार्ग पर स्थित है। यहां का होयसलकालीन होयसलेश्वर-मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से हालेबिड़-शैली में बना हुआ है।

बादामी दे० वातापि

बाधन=**बधन**

बाँधवाँ (काठियावाड़, गुजरात)

गुजरात का प्राचीन नगर है। इसे पहले वर्धमानपुर कहते थे। यह अन्हलवाड़ा से जूनागढ़ जाने वाले मार्ग पर स्थित है। मध्यकाल में यहां जैनधर्म तथा विद्या का केंद्र था। यहां के जैन विद्वानों में ऐतिहासिक ग्रंथ 'प्रबंध चिंतामणि' के रचयिता मेरुतुंग आचार्य प्रसिद्ध हैं। इस ग्रंथ का रचनाकाल 1305-1306 ई० है। इसमें गुजरात के प्राचीन इतिहास का वर्णन है। इस ग्रंथ का अनुवाद

प्रो० सी० एच० टॉनी ने किया है। वर्धमानपुर का नाम तीर्थंकर वर्धमान महावीर के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था।

बानकोट (महाराष्ट्र)

पश्चिमी-समुद्रतट पर, बंबई के निकट स्थित है। इसी स्थान को ईस्ट इंडिया कंपनी ने फोर्ट विक्टोरिया का नाम दिया था क्योंकि कंपनी ने अपनी व्यापारिक कोठियों की रक्षा के लिए यहां इस नाम का किला बनवाया था। प्रथम पेशवा से संधि करने के पश्चात् अंग्रेज़ों को भारत के पश्चिमी तट पर सबसे पहले यही स्थान प्राप्त हुआ था।

बानपुर

(1) (ज़िला टीकमगढ़, म० प्र०) टीकमगढ़ से 4 मील पर स्थित है। यहां जमडार और जामनेर नदियों का संगम स्थल है। कहा जाता है कि पुराणों में प्रसिद्ध वाणासुर की राजधानी इसी स्थान पर थी। मध्यकालीन बुंदेलखंड की वास्तुकला के उदाहरण कई सुंदर मंदिरों के अवशेषों के रूप में यहां हैं। वाणासुर की कन्या ऊषा का विवाह कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ था जिसकी कथा श्रीमद्भागवत 10,62 में है।

(2) **महाबली पुरम्**

बाबाप्यारा (ज़िला जूनागढ़, सौराष्ट्र)

गिरनार पर्वत पर पहुंचने के लिए जो मार्ग बागेश्वरी द्वार से जाता है उस पर इस द्वार के पास ही बाबाप्यारा नाम की अशोककालीन गुफाएं स्थित हैं। रुद्रदामन् तथा अशोक के प्रसिद्ध अभिलेखों वाली चट्टान पास ही स्थित है।

बामनी (ज़िला परभणी, महाराष्ट्र)

यहाँ सरस्वती तथा पूर्णा नदी के संगम पर बसे हुए स्थान पर एक सादा किंतु सुंदर प्राचीन मंदिर है।

बामियान (अफगानिस्तान)

यह स्थान काबुल के निकट है। यहां के उल्लेखनीय स्मारक बौद्धकालीन अवशेष हैं। इनमें गंधार शैली में निर्मित बुद्ध की विशालकाय मूर्तियां प्रख्यात हैं। यह स्थान मध्ययुग से पूर्व बौद्ध विद्वानों तथा मंदिरों के लिए प्रसिद्ध था। पाणिनि की अष्टाध्यायी में इस स्थान का नाम वर्मती है। युवानच्वांग ने भी बानियान के विहारों आदि का वर्णन किया है।

बार=पार (महाराष्ट्र)

जावली के निकट एक ग्राम। इस स्थान पर बीजापुर के सरदार अफजल खां ने जो शिवाजी के विरुद्ध अभियान पर आया था, अपना पड़ाव डाला था।

कविवर भूषण ने जो शिवाजी के समकालीन थे, इस स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है—'जावलि बार सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नैरि को गाजी' शिवराज भूषण, पृ० 207।

बारा

पेशावर ज़िले की नदी जो महाभारत भीष्म० की वरा हो सकती है।

बाराणसी

(1)=वाराणसी

(2) दे० बयाना

बाराबंकी (उ० प्र०)

सिद्धौर तथा कुंतेश्वर के प्राचीन मंदिरों के लिए बाराबंकी (ज़िला) उल्लेखनीय है। इस स्थान का प्राचीन नाम जसनोल कहा जाता है। इसे 10वीं शती में जस नामक भर राजपूत सरदार ने बसाया था।

बारामूला (कश्मीर)

प्राचीन नाम वाराह (या वराह) मूल है। जान पड़ता है कि यहां प्राचीन काल में वराहोपासना का केंद्र था।

बारीसाल (बंगाल)

इस स्थान का प्राचीन नाम वारिषेण बताया जाना है। (दे० वारिषेण)

बार्हद्रथपुर

महाभारतकाल में गिरिव्रज (=राजगृह, बिहार) का एक नाम था—'विवेश राजा द्युतिमान् बार्हद्रथपुरं नृप, अभिषिक्तो महाबाहुर्जारासंधिर्महात्मभि:' सभा: 24, 44। जरासंध की राजधानी होने के कारण गिरिव्रज को बार्हद्रथपुर अर्थात् बृहद्रथ के पुत्र—जरासंध का नगर कहा जाता था। [दे० गिरिव्रज (2); राजगृह]

बालकोटि दे० कालकोटि

बालखिल्य (जिला गढ़वाल, उ० प्र०)

केदारनाथ के मार्ग में तुंगनाथ पर्वत के नीचे बालखिल्य नाम की छोटी सी नदी बहती है। इसकी पहाड़ी की ऊंचाई समुद्रतल से 4000 फुट है। मंडल चट्टी नदी की तलहटी में बसी है। यहां से $2\frac{1}{2}$ मील दूर अत्रि मुनि की पत्नी सती अनुसूया का मन्दिर है। यहां से चमोली $8\frac{1}{2}$ मील है। इस नदी से पुराणों में प्रख्यात बालखिल्य ऋषियों का सम्बन्ध बताया जाता है।

बालपुर (म० प्र०)

1954 में इस स्थान से जो रायगढ़ के निकट है, एक बौद्धकालीन प्रस्तर-स्तंभ

के अवशेष मिले है जिस पर एक पाली-अभिलेख उत्कीर्ण है।

बालब्रह्मेश्वर (जिला रायचूर, मैसूर)

यह तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित प्राचीन तीर्थ है। इसे दक्षिण काशी भी कहते हैं क्योंकि यहां नदी के तट पर अनेक प्राचीन मन्दिर हैं जो प्राचीन काल से पवित्र माने जाते हैं। यहां शातवाहन, चालुक्य, राष्ट्रकूट, कलचुरि, ककातीय और विजयनगर के नरेशों ने क्रमशः राज्य किया; तत्पश्चात् बहमनी-सुलतानों और मुगल-बादशाहों का आधिपत्य रहा। इन सबों के समय के अनेक अवशेष तथा स्मारक इस स्थान पर मिले हैं। ब्रह्मेश्वर के दुर्ग की भित्तियों पर चालुक्यों के समय का एक अभिलेख अंकित है जिसमें उनके वैभव और पराक्रम का वर्णन है। इतिहास-प्रसिद्ध चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय के प्रपौत्र ने मई 714 ई० में ब्रह्मेश्वर के मुख्य मन्दिर को तुंगभद्रा के जलप्रवाह से बचाने के लिए यहां एक प्राकारबंध निर्मित करवाया था। इसका निर्माता ईशानाचार्य स्वामीभट्टपद था। प्राचीन काल में ब्रह्मेश्वर में एक महाविद्यालय भी था जिसके आचार्य त्रिलोचन मुनिनाथ और एकांतदाशकाडीपंडित ने राजसभाओं में सम्मान प्राप्त किया था। इन्हें वीरबलजय समय नामक व्यापारिक संस्थाओं द्वारा भी आदर मिला था। ब्रह्मेश्वर के मन्दिरों के निर्माण में अजंता तथा एलौरा के गुहा मन्दिरों की झलक भी मिलती है। अधिकांश मंदिर चालुक्यकालीन है। इस समय के बारह से अधिक अभिलेख यहां मिले हैं। पश्चवर्ती शासकों के समय ब्रह्मेश्वर की ख्याति पूर्ववत् ही रही यद्यपि इस काल में अधिक मंदिर न बन सके। यहां के कुछ उल्लेखनीय मंदिर ये है— ब्रह्मेश्वर, जोगूलंबा, दंतीगणेश और काल-भैरव। ये मंदिर वाराणसी के विश्वे-श्वर, विशालाक्षी, दंती गणेश और कालभैरव के मंदिरों के प्रतिरूप माने जाते हैं। काशी के गंगातट के चौंसठ घाटों की तरह ही यहां तुंगभद्रा पर चौंसठ घाट बने हुए थे। यहां से आधा मील के लगभग पापनाश नामक मंदिर समूह स्थित है। ब्रह्मेश्वर-समूह के मंदिर दुर्ग के भीतर हैं। इनमें बाल-ब्रह्मेश्वर का मंदिर प्रमुख है। इनकी संरचना उत्तरभारतीय मदिरों को बनावट से भिन्न है और अजंता एलौरा के शैलकृत्त मंदिरों की संरचना से मिलती-जुलती है। उदाहरणार्थ, इन मंदिरों के द्वारमंडप अजंता की गुफा सं० (19) के मंडप ही के अनुरूप हैं। मन्दिरों के गभगृह वर्गाकार और प्रदक्षिणापथ से परिवृत है। गुहामन्दिरों की भांति ही इनकी भित्तियों में प्रकाश के लिए वातायनों में पत्थर की कटी जाली लगी हैं। स्तंभों तथा प्रवेशद्वारों पर सुन्दर तक्षण दिखाई पड़ता है। मन्दिरों के शिखर भी असाधारण जान

पड़ते हैं। इनकी आकृति कुछ इस प्रकार की है कि ये छिन्नशीर्ष स्तूप के ऊपर आधृत गुंबद जैसे जान पड़ते हैं। बालब्रह्मेश्वर के अन्य उल्लेखनीय स्मारकों में विजयनगर के नरेशों का बनवाया दुर्ग है जिसके प्रवेशद्वार विशाल एवं भव्य हैं। इसकी तीन खाइयां तथा तीस बुर्ज हैं। बाल-ब्रह्मेश्वर का नाम मुसलमानों के शासनकाल में आलमपुर कर दिया गया था जो आज भी प्रचलित है।

बालापुर

(1) दे० सेतव्या।

(2) (ज़िला अकोला, महाराष्ट्र) अकोला से 14 मील दूर यह स्थान मन और म्हैस नदियों के संगम पर स्थित है। 17 वीं शती के जैन साहित्य मे इस स्थान का उल्लेख है। नदी तट पर जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह की छत्री बनी है। इनका देहांत बुरहानपुर में हुआ था। मुगलों के शासनकाल में बालापुर में कागज बनाने का कारखाना था।

बालासौर (उड़ीसा)

1633 ई० में राल्फ कार्टराइट (Ralph Cart Wright) ने इस बंदरगाह तथा हरिहरपुर में प्रथम बार अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की व्यापारिक कोठियां स्थापित की थीं। 1658 ई० में यह कोठी मद्रास के अधीन कर दी गई थी। बालासौर का प्राचीन नाम बालेश्वर था। फारसी में बालासौर का अर्थ समुद्रपर स्थित नगर है।

बाली

इंडोनीसिया का, जावा के सन्निकट स्थित द्वीप जहां वर्तमान काल में भी प्राचीन हिंदू धर्म और संस्कृति जीवित अवस्था में है। सम्भवत: गुप्तकाल —चौथी पांचवी शती ई० में इस द्वीप में हिंदू उपनिवेश एवं राज्य स्थापित हुआ था। चीन के लियांगवंश (502-556 ई०) के इतिहास में इस द्वीप का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है जहां इसे पोली कहा गया है। इस उल्लेख से विदित होता है कि बाली में इस काल में एक समृद्धिशाली तथा उन्नत हिंदू राज्य स्थापित था। यहां के राजा बौद्धधर्म में भी श्रद्धा रखते थे। इस राज्य की ओर से 518 ई० में चीन को एक राजदूत भेजा गया था। चीनी यात्री इत्सिंग लिखता है कि बाली दक्षिण समुद्र के उन द्वीपों में है जहां मूल सर्वास्तिवाद निकाय का सर्वत्र प्रचार है। मध्य युग में जावा व अन्य द्वीपों में अरबों के आक्रमण हुए और प्राचीन हिंदू राज्यों की सत्ता समाप्त हो गई किंतु बाली तक अरब न पहुंच सके। फलस्वरूप यहां की प्राचीन हिंदू सभ्यता और संस्कृति व धार्मिक परंपरा वर्तमान काल तक प्राय: अक्षुण्ण बनी रही

है। 18वीं शती में बाली पर डचों का राजनैतिक अधिकार हो गया किंतु उनका प्रभाव यहां के केवल राजनैतिक जीवन पर ही पड़ा और बाली निवासियों की सामाजिक और धार्मिक परंपरा में बहुत कम परिवर्तन हुआ। कहा जाता कि इस द्वीप का नाम पुराणों में प्रसिद्ध, पातालदेश के राजा बलि के नाम पर है। बाली देश की प्राचीन भाषा को 'कवि' कहते हैं जो संस्कृत से बहुत अधिक प्रभावित हैं। बाली में संस्कृत में भी अनेक ग्रंथ लिखे गए। रामायण और महाभारत का बाली के दैनिक जीवन में आज भी अमिट प्रभाव है।

बालुकाराम

महावंश 4, 150; 4, 63 के अनुसार यह विहारवन वैशाली के समीप स्थित था।

बालुकेश्वर (महाराष्ट्र)

महाबलेश्वर की पहाड़ी। इसका उल्लेख स्कंद० सह्याद्रिखंड 2, 1 में है।

बालुगर्त

मझगावम (नागौद, म० प्र०) से प्राप्त 191 गुप्तसंवत्=510 ई० के, परिव्राजक महाराज हस्तिन् के अभिलेख (ताम्रपट्टलेख) में बालुगर्त नामक ग्राम को कुछ ब्राह्मणों के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है। यह ग्राम मझगावम के निकट ही रहा होगा।

बालोक्ष

अवदान-कल्पतरु, 57 में उल्लिखित है। श्री नं० ला० डे के मत में यह बिलोचिस्तान का संस्कृत नाम है।

बालोद (ज़िला द्रुग, म० प्र०)

कहा जाता है कि महाकोसल का प्राचीनतम सतीस्मारक इस स्थान पर है। इस पर अंकित अभिलेख प्रिसेंप साहब ने पहली बार पढ़ा था। इसका समय उन्होंने दूसरी शती ई० निश्चित किया था। दूसरा लेख 1005 वि० सं०=948 ई० का है जिसको सर्वप्रथम डा० हीरालाल ने पढ़ा था।

बावड़ी (ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

देहरादून के निकट यह रमणीक प्राचीन स्थान है जिसे न्यायदर्शनकार महर्षि गौतम की तपोभूमि माना जाता है। यहां स्फटिक श्वेत जल की बावड़ी होने के कारण ही इस स्थान को बावड़ी कहा जाता है। इसे ढकरानी भी कहते हैं।

बावनी (बुंदेलखंड, म० प्र०)

यह अंग्रेजी शासनकाल में रियासत थी। इसका संस्थापक नवाब गाजीउद्दीन

था। यह हैदराबाद के निजाम और दिल्ली के मुगल बादशाह का मंत्री था। कहा जाता है जब गाज़ीउद्दीन अपने पिता से रुष्ट होकर दक्षिण की ओर जा रहा था उस समय पेशवा ने उसे यह जागीर दी थी। किंतु ऐतिहासिक तथ्य यह जान पड़ता है कि जब गाजीउद्दीन ने 1874 ई० में पेशवा से संधि की तो उसने कालपी के पास गाजीउद्दीन को बावन गांवों की जागीर दी थी। इसी जागीर ने कालांतर में बावनी रियासत का रूप धारण कर लिया।

बावेरू

बेबीलोनिया का प्राचीन भारतीय नाम।

बासमत (ज़िला परभणी, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर ख़ाने आलम नामक मुसलमान संत की दरगाह है।

बासर (मघोल तालुका, जिला नंदेड, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर प्राचीन हिंदू काल के कई स्मारक हैं जिनमें प्रमुख सरस्वती देवी का मंदिर है।

बाह (ज़िला आगरा, उ० प्र०)

इसे भदावर नरेश कल्याणसिंह ने 17वीं शती के अंत में बसाया था।

बाहड़पुर (काठियावाड़, गुजरात)

शत्रुंजय के निकट प्राचीन जैन तीर्थ स्थल इसका उल्लेख जैन स्त्रोत तीर्थ-माला चैत्यवंदन में इस प्रकार है—'वंदे सत्यपुरे च बाहडपुरे राडद्रहे वायडे'। इसकी स्थापना गुजरात-नरेश कुमारपाल के मंत्री वाग्भट्ट ने की थी। (दे० मुनि-ज्ञानविजय रचित गुजराती ग्रंथ—जैन तीर्थानों इतिहास)

बाहुदा

महाभारत में उल्लिखित नदी। 'ततश्च बाहुदां गच्छेद् ब्रह्मचारी समाहितः तत्रोष्य रजनीमेकां स्वर्गलोके महीयते—वन० 84,67। 'बाहुदायां महीपाल चक्रुः सर्वेभिषेचनम्, प्रयागे देवयजने देवानां पृथिवीपते,' वन० 85,4। महा० शांति० 22 के अनुसार लिखित ऋषि का कटा बाहु इस नदी में स्नान करने से ठीक हो गया था जिससे इसका नाम बाहुदा हुआ। 'स गत्वा द्विजशार्दूलो हिमवन्तं महागिरिम्, अभ्यगच्छन्नदीं पुण्यां बाहुदां धर्मशालिनीम्'। अनुशासन० 19,28 से ज्ञात होता है कि यह नदी हिमालय से निकलती थी। यह शायद उत्तर भारत की रामगंगा है। अमरकोश में बाहुदा को सैतवाहिनी भी कहा गया है।

बाहुमती दे० बागमती

बाह्लिक=बाह्लीक

'केराताः दरदा दार्वाः शूरा वै यमकास्तथा, औदुंबरा दुर्विभागाः पारदा

बाह्लिकैः सह' महा० सभा० 52,13। बाह्लिक या वाह्लिक, बल्ख (=ग्रीक, बेक्ट्रिया) का प्राचीन संस्कृत नाम है। यहां के निवासी युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट लेकर आए थे। महरौली लौहस्तंभ के अभिलेख में चंद्र द्वारा सिंधु नदी के सप्तमुखों के पार वाह्लिकों के जीते जाने का उल्लेख है—'तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिंधोर्जिता-बाह्लिकाः' जिससे गुप्तकाल में वाह्लिकों की स्थिति सिंध नदी के मुहाने के पश्चिम में सिद्ध होती है। जान पड़ता है कि इस काल में बल्ख के निवासियों ने अपनी बस्तियां इस इलाके में बना ली थीं। महाभारत कर्णपर्व में संभवतः वाहीक नाम से वाह्लिक निवासियों का उल्लेख है—दे० वाहीक, वाह्लिक वाह्लीक, बाह्ली।

बाह्ली=बाह्लीक=बाह्लीक (बल्ख)

वाल्मीकि रामा० उत्तर० 83,3 में प्रजापति कर्दम के पुत्र को बाह्ली का राजा कहा है—'श्रूयते ही पुरा सौम्य कर्दमस्य प्रजापतेः, पुत्रो बाह्लीश्वरः श्रीमानिलोनाम सुधार्मिकः'। महाभारत 51,26 में बाह्ली का चीन के साथ उल्लेख है—'प्रमाणरागस्पर्शाढ्यं बाह्लीचीन समुद्भवान्'—

बिंदुसर

(1) महाभारत सभा० 3 में मैनाक पर्वत (कैलास के उत्तर में स्थित) के निकट बिंदुसर सरोवर का उल्लेख है। यहीं असुरराज वृषपर्वा ने एक महायज्ञ किया था। इस प्रसंग के अनुसार बिंदुसर के समीप मयदानव ने एक विचित्र मणिमय भांड तैयार करके रखा था। यहीं वरुण की एक गदा भी थी। इन दोनों वस्तुओं को मयदानव युधिष्ठिर की राजसभा का निर्माण करने के पूर्व बिंदुसर से ले आया था, 'चित्रं मणिमयं भांडं रम्यं बिंदुसरं प्रति, सभायां सत्य-संधस्य यदासीद् वृषपर्वणः। मनः प्रह्लादिनीं चित्रां सर्वरत्नविभूषिताम्, अस्ति बिंदुसरस्युग्रागदा च कुरुनंदन'—सभा० 3,3-5। इसी वर्णन में मयदानव के बिंदुसर तथा मैनाकपर्वत जाते समय कहा गया है कि वह इंद्रप्रस्थ से पूर्वोत्तर दिशा में और कैलास के उत्तर की ओर गया था—'इत्युक्त्वा सोऽसुरः पार्थ प्रागुदीचीं दिशं गतः, अथोत्तरेण कैलासान् मैनाकपर्वतं प्रति' सभा० 3,9। इस निर्देश से यह स्पष्ट है कि बिंदुसर तथा मैनाक कैलास के उत्तर में और इंद्रप्रस्थ की पूर्वोत्तर दिशा में स्थित थे। संभवतः बिंदुसर मानसरोवर या उसके निकट-वर्ती किसी अन्य सरोवर का नाम होगा। वाल्मीकि रामा० बाल० 43,11 में गंगा का शिव द्वारा बिंदुसर की ओर छोड़े जाने का उल्लेख है—'विससर्ज ततो गंगां हरो बिंदुसरंप्रति'। इससे भी उपयुक्त विवेचन की पुष्टि होती है।

(2) दे० सिद्धपुर

बिंबिका

भारहुत (बघेलखंड, म० प्र०) से प्राप्त कुछ अभिलेखों में उल्लिखित नदी। यह बुंदेलखंड की कोई नदी जान पड़ती है। कालिदास-रचित मालविकाग्निमित्र नाटक में 'दाक्षिण्यं नाम बिंबोष्ठिबैंबिकानां कुलव्रतम्' (अंक 4,14)—इस वाक्य में विदिशा का शासक और पुष्यमित्र शुंग का पुत्र अग्निमित्र स्वयं को बैंबकवंशीय बताता है। संभव है इसके पूर्वजों का बिंबिकानदी के तटवर्ती प्रदेश से संबंध रहा हो। (दे० रायचौधरी—पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐंशेंट इंडिया—पृ० 307)

बिंबिसारपुरी

राजगृह का, मगध नरेश बिंबिसार के नाम पर प्रसिद्ध अभिधान (दे० लॉ बुद्धघोष, पृ० 87)

बिचकुंद=मुचकुंद (जिला नंदेड़, महाराष्ट्र)

किंवदंती के अनुसार यह मुचकुंद ऋषियों का पुण्य स्थान है। प्राचीन हिंदू नरेशों के समय के कई मंदिर यहां के मुख्य स्मारक हैं।

बिजावर (बुंदेलखंड, म० प्र०)

किंवदंती है कि बिजावर ग्राम को विजय सिंह नाम के एक गौंड सामंत ने बसाया था। यह गढ़मंडला-नरेश की सेवा में था। पीछे यह स्थान महाराज छत्रसाल के अधिकार में आ गया और तत्पश्चात् उनके उत्तराधिकारी जगतसिंह को उनके अंश के रूप में मिला। बिजावर, 1947 तक बुंदेलखंड की प्रख्यात रियासत थी।

बिजनौर (उ० प्र०)

गंगा के वामतट पर लीलावाली घाट से तीन मील दूर छोटा सा कस्बा है। कहा जाता है कि इसे विजयसिंह ने बसाया था। दारानगर यहां से 7 मील दूर है और इतनी ही दूर विदुरकुटी। ये दोनों स्थान महाभारतकालीन बताए जाते हैं। स्थानीय जनश्रुति में बिजनौर के निकट गंगातटीय वन में महाभारत-काल में मयदानव का निवास स्थान था। भीम की पत्नी हिडंबा मयदानव की पुत्री थी और भीम ने उससे इसी वन में विवाह किया था। यहीं घटोत्कच का जन्म हुआ था। नगर के पश्चिमांत में एक स्थान है जिसे हिडंबा और उसके पिता मयदानव के इष्टदेव शिव का प्राचीन देवालय कहा जाता है। मेरठ या मयराष्ट्र बिजनौर के निकट गंगा के उस पार है। बिजनौर के इलाके को वाल्मीकि रामायण में प्रलंब नाम से अभिहित किया गया है। नगर से आठ मील दूर मंडावर है जहां मालिनी नदी के तट पर कालिदास के

अभिज्ञान शाकुंतल नाटक में वर्णित कण्वाश्रम की स्थिति परंपरा से मानी जाती है। (दे० मंडावर; दारानगर) (टि० कुछ लोगों का कहना है बिजनौर की स्थापना राजा बेन ने की थी जो पंखे या बीजन बेच कर अपना निजी खर्च चलाता था और बीजन से ही बिजनौर का नामकरण हुआ)।

बिजिखी (तालुका व ज़िला करीम नगर, आंध्र)

इस स्थान पर हिंदू नरेशों के समय का प्राचीन मंदिर है जिसके सभामंडप के चार केंद्रीय स्तंभों पर तक्षणशिल्प का सुंदर काम प्रदर्शित है।

बिठूर (ज़िला कानपुर, उ० प्र०)

कानपुर से 12 मील उत्तर की ओर बहुत प्राचीन स्थान है जिसका मूलनाम ब्रह्मावर्त कहा जाता है। पौराणिक किंवदंती है कि यहां ब्रह्मा ने सृष्टि रचने के हेतु अश्वमेधयज्ञ किया था। बिठूर को बालक ध्रुव के पिता उत्तानपाद की राजधानी भी माना जाता है। ध्रुव के नाम से एक टीला भी यहां विख्यात है। कहा जाता है कि वाल्मीकि का आश्रम जहां सीता निर्वासन-काल में रही थीं, यहीं था। अंतिम पेशवा बाजीराव जिन्हें अंग्रेजों ने मराठों की अंतिम लड़ाई के बाद महाराष्ट्र से निर्वासित कर दिया था, बिठूर आकर रहे थे। इनके दत्तकपुत्र नानासाहब ने 1857 के स्वतंत्रतायुद्ध में प्रमुख भाग लिया। पेशवाओं ने कई सुंदर इमारतें यहां बनवाई थीं किंतु अंग्रेजों ने इन्हें 1857 के पश्चात् अपनी विजय के मद में नष्ट कर दिया। बिठूर में प्रागैतिहासिक काल के ताम्रउपकरण तथा बाणफलक मिले हैं जिससे इस स्थान की प्राचीनता सिद्ध होती है।

बिदनूर (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के समय में बिदनूर तुंगभद्रा नदी के उद्गम स्थान के पास पश्चिमी घाट पर एक पहाड़ी राज्य था। शिवाप्पा यहां का राजा था। बीजापुर के सुलतान अलिआदिलशाह ने इस राज्य को विजय कर शिवाप्पा को अपने अधीन कर लिया किंतु एक ही वर्ष पश्चात् शिवाप्पा की मृत्यु होने पर उसका पुत्र गद्दी पर बैठा और 1676 ई० में शिवा जी ने उसे अपना करद बना लिया। शिवाजी के समकालीन कविवर भूषण ने बिदनूर को विधनोल लिखा है—'उत्तर पहार विधनोल खंडहर झारखंडहू प्रचार चारु केली है विरद की' शिवराज भूषण-159।

बिधनोल दे० बिदनूर

बिनसर (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

(1) अल्मोड़ा से प्रायः 14 मील पर प्राचीन स्थान है जहां बिनसर महादेव

का पुराना मंदिर स्थित है।

(2) (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) पौड़ी से 42 मील पूर्व स्थित है। प्राचीन नाम विश्येश्वर कहा जाता है। 7वीं से 12वीं शती तक यहां बहुत सुंदर मूर्तियां बनती थीं जिनकी कला का मुख्य तत्व सजीवता तथा भाव-प्रवणता है। अलंकरण तथा बाहरी सजावट को यहां की कला में अधिक महत्व नहीं दिया जाता था।

बिमाकाली (ज़िला रामपुर, हिमाचल प्रदेश)

प्राचीन भारत भोट शैली में निर्मित लकड़ी के बने हुए सुंदर मंदिर के लिए यह स्थान ख्याति-प्राप्त है।

बियास=विपाशा

बिलग्राम (ज़िला हरदोई, उ० प्र०)

यह कस्बा प्राचीन श्रीनगर या भिल्लग्राम नाम के नगर के खंडहरों पर बसा है। इल्तुतमिश के जमाने में इस पर मुसलमानों का कब्जा हो गया। बिलग्राम में विद्वान् मुसलमानों की परंपरा रही है। इनमें से कई ने हिंदी कविता भी लिखी है। पश्चमध्ययुगीन काल में ऐसे ही कवि मीर जलील हुए हैं जिन्होंने एक बरवैछंद में अपना परिचय लिखते हुए कहा है 'बिलग्राम कौ वासी मीर जलील, तुम्हरि सरन गहि गाहै हे निधिशील'।

बिलपक (म० प्र०)

भूतपूर्व रियासत रतलाम के अंतर्गत है। यहां पूर्व-मध्यकालीन इमारतों के अवशेष हैं।

बिलसड़ (ज़िला एटा, उ० प्र०)

इस स्थान पर गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त के शासन काल 96 गुप्तसवत्=415 ई० का एक स्तंभ-लेख प्राप्त हुआ है। इसमें ध्रुवशर्मन् द्वारा, स्वामी महासेन (कार्तिकेय) के मंदिर के विषय में किए गए कुछ पुण्य कार्यों का विवरण है—सीढ़ियों सहित प्रतोली या प्रवेशद्वार का निर्माण, सत्र या दान-शाला की स्थापना और अभिलेख वाले स्तंभ का निर्माण। संभवतः चीनी-यात्री युवानच्वांग ने इस स्थान का पिलोशना या विलासना नाम से उल्लेख किया है। वह यहां 642-643 ई० में आया था।

बिलहरी (म० प्र०)

कटनी से 9 मील दूर है। किंवदंती में बिलहरी को प्राचीन पुष्पावती बताया जाता है और इसका संबंध माधवानल और कामकंदला की प्रेम गाथा से जोड़ा गया है। यह कथा पश्चिम भारत में 17वीं शती तक काफी प्रख्यात थी किंतु, इस कथा की पुष्पावती गंगातट पर बताई गई है जो बिलहरी से अवश्य

ही भिन्न थी। हमारे अभिज्ञान के अनुसार वाचक कुशललाभ रचित माधवानल कथा में वर्णित पुष्पावती ज़िला बुलंदशहर (उ० प्र०) में गंगातट पर बसी हुई प्राचीन नगरी 'पूठ' है। किंतु बिलहरी का भी नाम पुष्पावती हो सकता है क्योंकि तरणतारण स्वामी के अनुयायी भी बिलहरी को अपने गुरु का जन्मस्थान पुष्पावती मानते हैं। बिलहरी में प्रवेश करते ही एक विशाल जलाशय तथा एक पुरानी गढ़ी दिखाई पड़ती है। यह जलाशय—लक्ष्मणसागर—नोहलादेवी के पुत्र लक्ष्मणराज ने बनवाया था जैसा कि नागपुर-संग्रहालय में संग्रहीत एक अभिलेख से सूचित होता है। गढ़ी सुदृढ़ बनी है और लोकोक्ति के अनुसार चंदेल नरेशों के समय की है। बिलहरी तथा निकटवर्ती प्रदेश पर, कलचुरियों की शक्ति क्षीण होने पर चंदेलों का राज्य स्थापित हुआ। 1857 के स्वतंत्रता-युद्ध में इस गढ़ी पर सैंकड़ों गोले पड़ने पर भी इसका बाल बांका न हुआ। लक्ष्मणराज का बनवाया हुआ एक मठ भी यहां का उल्लेखनीय स्मारक है किंतु कुछ विद्वानों के मत में यह मुगलकालीन है। बिल्हरी में कलचुरिकालीन सैंकडों सुंदर मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। ये हिंदूधर्म के सभी संप्रदायों से संबंधित हैं। एक विशिष्ट अवशेष बिलहरी से प्राप्त हुआ है, वह है मधुच्छत्र जो एक लंबे वर्ग पट्ट के रूप में है। यह परिमाण में 94"×94" है। इसके बीच में कमल की सुंदर आकृति है जिसके चार विस्तृत भाग हैं। इस पर सूक्ष्म तक्षण किया हुआ है। विचार किया जाता है कि यह छत्र शायद पहले किसी मंदिर की छत में आधार रूप से लगा होगा। इसे महाकोसल की महान् प्राचीन शिल्पकृति माना जाता है।

बिलाड़ा (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

जोधपुर के निकट अति प्राचीन स्थान है जो नवदुर्गावतार भगवती आई माता के मंदिर के लिए प्रसिद्ध है। जिस प्रकार उदयपुर या मेवाड़ के महाराणा अपने आराध्य देव एकलिंग भगवान् के दीवान कहे जाते थे उसी प्रकार मारवाड़ की सीर्खा जाति के नेता आई माता अथवा आई जी के दीवान कहलाते थे। इस दीवान वंश के कई वीर और सत्यव्रती पुरुष मारवाड़ के इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

बिलारी (मद्रास)

प्राचीन नाम बल्लारी या बलिहारी कहा जाता है। एक प्राचीन दुर्ग यहां स्थित है।

बिलासपुर दे० विलासपुर (1); (2)

बिलुनीतीर्थ

रामेश्वरम् (मद्रास) के निकट, उत्तर समुद्र के तट पर स्थित है। यहां

सीताकुंड नामक एक कूप है जिसके विषय में लोकोक्ति है कि भगवान् राम ने सीता को प्यास लगने पर धनुष की नोक से भूमि को दबाकर यहां जल का स्रोत प्रकट कर दिया था ।

बिल्लोली (मधोल तालुका, ज़िला नंदेड़, महाराष्ट)

शाहजहां के शासनकाल में (1645 ई०) बनी हुई सरफराज खां के नाम पर प्रसिद्ध मसजिद के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है ।

बिल्वक

महाभारत अनुशासन० 25,13 में तीर्थों के वर्णन में इस तीर्थ को हरद्वार तथा कनखल के निकट माना है—'गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते, तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत्' । यह स्थान निश्चय ही वर्तमान बिल्व-केश्वर महादेव है जो हरद्वार में, स्टेशन की सड़क पर ललतारौ के पुल से दो फर्लांग दूर है । यहां पहाड़ में प्राचीन गुफाएं हैं । बिल्ववृक्ष के कारण इस स्थान को बिल्वक कहते थे ।

बिल्वकेश्वर दे० बिल्वक

बिल्वाम्रक (म० प्र०)

नर्मदा और कुब्जा नदियों के संगम पर स्थित प्राचीन तीर्थ । इसे अब रामघाट कहते हैं । किंवदंती है कि राजा रंतिदेव ने इस स्थान पर महायज्ञ किया था ।

बिल्वेश्वर (काठियावाड, गुजरात)

इस स्थान पर पहुंचने के लिए पोरबंदर से 17 मील दूर साखूपुर से मार्ग जाता है । यह तीर्थ महाभारतकालीन बताया जाता है तथा किंवदंती के अनुसार श्रीकृष्ण ने यहां शिव की आराधना की थी ।

बिसपी (ज़िला दरभंगा, बिहार)

बागमती नदी के तट पर बसा हुआ प्राचीन ग्राम जो मैथिल कोकिल विद्यापति का जन्म स्थान है । इनका जन्म 14वीं शती के मध्य में हुआ था ।

बिसरण (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

गाजियाबाद से 8 मील पर स्थित है । लोकश्रुति में इसे रावण के पिता विश्रवा ऋषि का आश्रम माना जाता है । विश्रवा के आराध्य देव शिव का एक मंदिर भी यहां है जिसे शिवाजी द्वारा बनवाया हुआ कहा जाता है । कहते है कि दक्षिण से आगरा जाते समय शिवाजी इस स्थान पर भी आए थे ।

बिसौली (ज़िला बदायूं, उ० प्र०)

इस स्थान से ताम्रयुग के महत्वपूर्ण प्रागैतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए हैं ।

बिस्वां (ज़िला सीतापुर, उ० प्र०)

कहा जाता है कि 1350 ई० में विश्वनाथ नाम के संत ने इस नगर को बसाया था और उसी के नाम पर यह प्रसिद्ध भी है। महमूद गजनी के भतीजे सालार मसूद के अनुयायियों के कई मकबरे यहां हैं जिनमें हकरतिया का रौज़ा प्रसिद्ध है। जलालपुर के तालुकेदार मुमताज हुसैन ने शाहजहां के शासनकाल में यहां एक मसजिद बनवाई थी जो अब भी विद्यमान है। यह कंकर के विशालखंडों से निर्मित की गई थी। मसजिद की मीनारों में हिंदू कला की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

बिहार

(1) (बिहार) इस नगर का प्राचीन नाम उद्दंडपुर या ओदंतपुरी है। बंगाल के प्रथम पाल नरेश गोपाल ने यहां एक महाविद्यालय स्थापित किया था जिसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी। तत्पश्चात् मुसलमानों के शासनकाल में यह नगर बिहार के सूबे का मुख्य नगर बन गया। पाटलिपुत्र का गौरव हूणों के आक्रमण के समय, छठी शती ई० में, नष्ट हो चुका था इसलिए बिहार नगर को ही मुसलमानों ने सूबे के शासन का मुख्य केंद्र बनाया। 1541 ई० में पाटलिपुत्र या पटने की अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थिति की महत्ता समझते हुए शेरशाह ने प्रांत की राजधानी पुनः पटने में बनाइ। बिहार में गुप्तसम्राट् स्कंदगुप्त के समय का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था। इसमें वट नामक ग्राम में स्कंदगुप्त के किसी मंत्री (जिसकी बहिन का विवाह कुमारगुप्त से हुआ था) द्वारा एक यूप की स्थापना का उल्लेख है :

(2) बिहार के प्रांत का नाम। स्थूल रूप से यह प्राचीन मगध है। बौद्ध बिहारों की यहां बहुतायत होने के कारण ही इस प्रदेश का नाम बिहार हो गया था। यह नाम मध्यकालीन है।

(3) (म० प्र०) पूर्व मध्यकालीन इमारतों के लिए यह कस्बा उल्लेखनीय है।

बिहारोइल (ज़िला राजशाही, बंगाल)

इस स्थान से बुद्ध की एक मूर्ति प्राप्त हुई थी जिसका निर्माण मूर्तिकला की बनारस शैली के अनुसार हुआ है। श्री दयाराम साहनी का विचार था कि यह मूर्ति वास्तव में बनारस में ही बनी थी और वहां से किसी प्रकार बंगाल पहुंची होगी। किंतु श्री राखाल दास बनर्जी का कथन है कि मूर्ति का पत्थर चुनार का बलुआ पत्थर नहीं है जिससे बनारस की मूर्तियां बनती थीं (एज ऑव दि इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० 170) किंतु यह तो स्पष्ट ही है कि मूर्ति का निर्माण

बनारस शैली में ही हुआ है। इस तथ्य से बनारस की मूर्तिकला के विस्तृत प्रसार के बारे में जानकारी मिलती है। गुप्तशासनकाल में बनी हुई अधिकांश बुद्ध की मूर्तियां बनारस शैली के अंतर्गत मानी जाती हैं।

बीका पहाड़ी (राजस्थान)

चित्तौड़ के दुर्ग के बाहर एक पहाड़ी, जहां 1533 ई० में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह तथा चित्तौड़-नरेश विक्रमाजीत की सेनाओं में मुठभेड़ हुई थी। बहादुरशाह के तोपची लाबरीखां ने पहाड़ी के नीचे सुरंग खोदकर उसमें बारूद भरकर पचास हाथ लंबी जमीन उड़ा दी जिससे वहां स्थित राजपूत मोर्चे के सैनिकों का पूर्ण संहार हो गया। इसी युद्ध में वीरांगना जवाहरबाई बहादुरी से लड़ती हुई मारी गई थी। चित्तौड़ के प्रसिद्ध साकों में यह युद्ध द्वितीय साका माना जाता है जिसमें तेरह हजार राजपूत रमणियों ने अपने सतीत्व की रक्षार्थ चिता में जलकर अपने प्राणों को होम दिया था।

बीकानेर

इस नगर को जोधपुर-राज्यवंश के एक उत्तराधिकारी राव बीका ने बसाया था।

बीजबहेरा (कश्मीर)

श्रीनगर से 28 मील पर स्थित है। इस स्थान पर एक अति प्राचीन चिनार वृक्ष है। कहते हैं कि यही वृक्ष पहले-पहल ईरान से कश्मीर लाया गया था। चिनार कश्मीर का प्रसिद्ध सुंदर वृक्ष है। बीज बहेरा का चिनार कश्मीर के चिनारों का आदिजनक माना जाता है। इस वृक्ष का तना भूमितल पर 54 फुट है किंतु अब यह वृक्ष अंदर से खोखला हो गया है। इस ऐतिहासिक वृक्ष से भारत-ईरान के प्राचीन संबंधों के बारे में सूचना मिलती है।

बीजवाड़ (म० प्र०)

पूर्व मध्यकालीन इमारतों के खंडहरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

बीजागढ़ (म०प्र०)

पूर्व मध्यकालीन इमारतों के अवशेषों के लिए यह स्थान ख्याति प्राप्त है।

बीजापुर (मैसूर)

शोलापुर-हुबली रेलपथ पर शोलापुर से 68 मील दूर स्थित है। नगर का प्राचीन नाम विजयपुर कहा जाता है। 11वीं शती के बौद्ध अवशेष हाल ही की खोज में यहां प्राप्त हुए हैं जिससे इस स्थान का इतिहास पूर्व-मध्यकाल तक जा पहुंचता है। किंतु बीजापुर का जो अब तक ज्ञात इतिहास है वह प्राय: 1489 ई०

से 1686 तक के काल के अंदर ही सीमित है। इन दो सौ वर्षों में बीजापुर में आदिलशाही वंश के सुलतानों का आधिपत्य था। इस वंश का प्रथम सुलतान युसुफ था जो अलतूनिया का निवासी था। इसने बहमनी राज्य के नष्टभ्रष्ट होने पर यहां स्वाधीन रियासत स्थापित की। बीजापुर का निर्माण तालीकोट के युद्ध (1556 ई०) के पश्चात् विजयनगर के ध्वंसावशेषों की सामग्री से किया गया था। आदिलशाही सुलतान शिया थे और ईरान की संस्कृति के प्रेमी थे। इसीलिए उनकी इमारतों में विशालता और उदारता की छाप दिखाई पड़ती है। मराठों और शिवाजी की ऐतिहासिक गाथाओं के संबंध में बीजापुर का नाम बराबर सुनाई देता है। बीजापुर के सुलतान की सेनाओं को कई बार शिवाजी ने परास्त करके अपने छिने हुए क़िले वापस ले लिए थे। बीजापुर के सरदार अफजलखां को प्रतापगढ़ के क़िले क पास शिवाजी ने बड़े कौशल से मारकर मराठा इतिहास में अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त की थी। 1686 ई० में मुगल सम्राट् औरंगजेब ने बीजापुर की स्वतंत्र राज्यसत्ता का अंत कर दिया और तत्पश्चात् बीजापुर मुगलसाम्राज्य का एक अंग बन गया। बीजापुर में आदिलशाही शासन के समय की अनेक उल्लेखनीय इमारतें हैं जो उसकी तत्कालीन समृद्धि की परिचायक हैं। यहां की सभी इमारते प्राचीन क़िले या पुराने नगर के अंदर स्थित हैं। गोलगुंबज मुहम्मद आदिलशाह (1627-1657) का मक़बरा है। इसके फर्श का क्षेत्रफल 18337 वर्गफुट है जो रोम के पेंथियन के क्षेत्रफल से भी बड़ा है। गुंबद का भीतरी व्यास 125 फुट है। यह रोम के सेंट पीटर-गिर्जे के गुंबद से कुछ ही छोटा है। इसकी ऊंचाई फर्श से 175 फुट है और इसकी छत में लगभग 130 फुट वर्ग स्थान घिरा हुआ है। इस गुंबद का चाप आश्चर्यजनक रीति से विशाल है। दीवारों पर इसके धक्के की शक्ति को कम करने के लिए गुंबद में भारी निलंबित संरचनाएं बनी हैं जिससे गुंबद का भार भीतर की ओर रहे। यह गुंबद शायद संसार की सबसे बड़ी उपजाप वीथि (Whispering gallery) है जिसमें सूक्ष्म शब्द भी एक सिरे से दूसरे तक आसानी से सुना जा सकता है। इब्राहीम द्वितीय (1580-1627) का रौजा मलिक सदल नामक ईरानी वास्तु विशारद का बनाया हुआ है। गोलगुंबज के विपरीत इसकी विशेषता विशालता अथवा भव्यता में नहीं वरन् पत्थर की सूक्ष्म कारीगरी तथा तक्षणशिल्प में है। इसमें खिड़कियों की जालियां अरबी अक्षरों के रूप में काटी गई है और गुबंद की छत ऐसी बनाई गई है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें जो पत्थर लगे हैं वे बिना किसी आधार के टिके हैं। कुछ वास्तुविदों का कहना है कि भवन का निर्माणशिल्प सर्वोत्कृष्ट कोटि का है।

जामा मसजिद 1576 ई० में बननी शुरू हुई थी। 1686 ई० में औरंगजेब ने इसमें अभिवृद्धि की किंतु यह अपूर्ण ही रह गई है। इसके फर्श में 2250 आयत बने हैं। इसकी लंबाई 240 फुट और चौड़ाई 130 फुट है। इसमें लंबे बल में पांच और चौड़े बल में 9 दालान हैं। मध्य का स्थान विशाल गुंबद से ढका है जिसकी भीतरी चौड़ाई 96 फुट है। प्रांगण पूर्व-पश्चिम 187 फुट है। इसमें उत्तरदक्षिण की ओर एक बरामदा है। पूर्व के कोने में दो मीनारें बनाई जानेवाली थी किंतु केवल उत्तरी मीनार ही प्रारंभ हो सकी। गगन महल (1561 ई०) का केंद्रीय चाप भी 61 फुट चौड़ा है किंतु यह इमारत अब खंडहर हो गई है। इसकी लकड़ी की छत को मराठों ने निकाल लिया था। असर मुबारक महल भी मुख्यत: काष्ठनिर्मित है। सम्मुखीन भाग खुला हुआ है। छत दो काष्ठ-स्तंभों पर आधारित है। इसके भीतर भी लकड़ी का अलंकरण है और चित्रकारी की हुई है। मिहतर महल मे जो एक मसजिद का प्रवेश द्वार है, पत्थर की नक्काशी का सुंदर काम प्रदर्शित है। खिड़कियों के पत्थरों पर अनोखे बेल बूटे और कंगनियों के आधार-पाषाणों पर मनोहर नक्काशी, इस भवन की अन्य विशेषताएं हैं। बीजापुर की अन्य इमारतों में बुखारा मसजिद अदालत महल, याकूत दबाली की मसजिद, खवास खां की दरगाह और मसजिद, छोटा चीनी महल और अर्श-महल उल्लेखनीय हैं। बीजापुर की वास्तुकला आगरा और दिल्ली की मुगलशैली से भिन्न है किंतु मौलिकता और निर्माण-कौशल में उससे किसी अंश में न्यून नहीं। यहां की इमारतों में हिंदू प्रभाव लगभग नहीं के बराबर है किंतु इरानी निर्माण-शिल्प की छाप इनकी विशाल तथा विस्तीर्ण संरचनाओं में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

बीड़ दे० भीड़

बीदर

भूतपूर्व हैदराबाद रियासत का प्रसिद्ध नगर जिसका नाम विदर्भ का अपभ्रंश है। महाभारत तथा प्राचीन संस्कृत साहित्य के अन्य ग्रंथों में विदर्भ का अनेक बार वर्णन आया है। विदर्भ में आधुनिक बरार तथा खानदेश (महाराष्ट्र) सम्मिलित थे किंतु विदर्भ का नाम अब बीदर नामक नगर के नाम में ही अवशिष्ट रह गया है (दे० विदर्भ)। दक्षिण के उत्तरकालीन चालुक्यों (शासन-काल 974-1190 ई०) की राजधानी ज़िला बीदर में स्थित कल्याणी नाम की नगरी थी। विक्रमादित्य चालुक्य के राजकवि बिल्हण ने अपने विक्रमांक-देवचरित में कल्याण की प्रशंसा के गीत गाए हैं और उसे संसार की सर्वश्रेष्ठ नगरी बताया है। 12वीं शती में चालुक्य राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और

उसके पश्चात् बीदर के इलाके में यादवों तथा ककातीय राजाओं का शासन स्थापित हो गया। इस शती के अंतिम भाग में बिज्जल ने जो कलचुरिवंश का एक सैनिक था, अपनी शक्ति बढ़ाकर चालुक्यों की राजधानी कल्याणी में स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। 1322 ई० में मुहम्मद तुग़लक ने जो अभी तक जूना के नाम से प्रसिद्ध था बीदर पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। 1387 ई० में मुहम्मद तुग़लक का दक्षिण का राज्य छिन्न-भिन्न हो जाने पर हसन गंगू नामक सरदार ने दौलताबाद और बीदर पर अधिकार करके बहमनी राजवंश की नींव डाली। 1423 ई० में बहमनी राज्य की राजधानी बीदर में बनाई गई जिसका कारण इस की सुरक्षित स्थिति तथा स्वास्थ्यकारी जलवायु थी। बीदर नगर दक्षिण भारत के तीन मुख्य भागों—अर्थात् कर्नाटक, महाराष्ट्र और तेलंगाना से समानरूप से निकट था तथा इसकी स्थिति 200 फुट ऊंचे पठार पर होने से प्रतिरक्षा का प्रबंध भी सरलतापूर्वक हो सकता था। इसके अतिरिक्त नगर में स्वच्छ पानी के सोते थे तथा फलों के उद्यान भी। 1492 ई० में बहमनी राज्य के विघटन के पश्चात् बीदर में बरीदशाही वंश के क़ासिम बरीद ने स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। यहां का पहला शाह अली बरीद हुआ (1549 ई०)। 1619 ई० में इब्राहीम आदिलशाह ने बीदर को बीजापुर में मिला लिया किंतु 1656 ई० में औरंगजेब ने आदिलशाही सुलतान का ही अंत कर दिया और बीदर को 27 दिन के घेरे के पश्चात् सर कर लिया। बीदर पर मुगलों का आधिपत्य 18वीं शती के मध्य तक रहा जब इसका विलयन निजाम की नई रियासत हैदराबाद में हो गया।

बरीदशाही वंश का संस्थापक क़ासिम बरीद जार्जिया का तुर्क था। यह सुंदर हस्तलेख लिखता था तथा कुशल संगीतज्ञ था। अली बरीद जो बीदर का तीसरा शासक था अपने चातुर्य के कारण रूब-ए-दकन (दक्षिण की लोमड़ी) कहलाता था। बीदर के इतिहास में अनेक किंवदंतियों तथा पीर, जिनों तथा परियों की कहानियों का मिश्रण है। यहां सुलतानों के मकबरों के अतिरिक्त मुसलमान संतों की अनेक समाधियां भी हैं। बीदर नगर मंजीरा नदी के तट पर स्थित है। यहां के ऐतिहासिक स्मारकों में सबसे अधिक सुंदर अहमदशाह वली का मकबरा है। इसमें दीवारों और छतों पर सुंदर फ़ारसी शैली की नक्काशी की हुई है तथा नीली और सिंदूरी रंग की पार्श्वभूमि पर सूफी दर्शन के अनेक लेख अंकित हैं। इन लेखों पर तत्कालीन हिंदू भक्ति तथा वेदांत की भी छाप है। इसी मकबरे के दक्षिण की ओर की भित्ति पर 'मुहम्मद' और 'अहमद' ये दो नाम हिंदू स्वस्तिक चिन्ह के रूप में लिखे हुए हैं। बीदर के दो

पुराने मक़बरे जो अत्याचारी शासक हुमायूं और मुहम्मद शाह तृतीय के स्मारक थे, बिजली गिरने से भूमिसात् हो गए थे। बीदर के क़िले का निर्माण अहमद शाह वली ने 1429-1432 ई० में करवाया था। पहले इसके स्थान पर हिंदू कालीन दुर्ग था। मालवा के सुलतान महमूद ख़िलजी के आक्रमण के पश्चात् इस किले का जीर्णोद्वार निजाम शाह बहमनी ने करवाया था (1461-1463)। क़िले के दक्षिण में तीन, उत्तर पश्चिम में दो और शेष दिशाओं में केवल एक खाई है। दीवारों में सात फाटक हैं। क़िले के अंदर कई भवन हैं, (1) रंगीन महल—इसमें ईंट, पत्थर और लकड़ी का सुंदर काम दिखाई देता है। गढ़े हुए चिकने पत्थरों में सीपियां जड़ी हुई हैं। वास्तुकर्म बहमनी और बरीदी काल का है। (2) तुर्कशमहल—किसी बहमनी सुलतान की बेगम के लिए बनवाया गया था। इसमें भी बरीदकला की छाप है, (3) गगन महल, इसे बहमनी सुलतानों ने बनवाया और बरीदी शासकों ने विस्तृत करवाया था, (4) जाली-महल, यह सभागृह था। इसमें पत्थर की सुंदर जाली है, (5) तख़्त महल, इसका निर्माता अहमदशाहवली था। यह महल अपने भव्य सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध था, (6) हजार कोठरी, यह तहखानों के रूप में बनी हैं, (7) सोलहखंभा मसजिद, यह सोलह खंभों पर टिकी है। 1656 ई० में दक्षिण के सूबेदार शाहज़ादा औरंगजेब ने इसी मसजिद में शाहजहां के नाम से खुतबा पढ़ा था। यह भारत की विशाल मसजिदों में है। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसे कुबली सुलतानी ने सुलतान मुहम्मद बहमनी के शासन काल में बनवाया था, (8) वीर संगैया का प्राचीन शिवमंदिर, यह क़िले के अदर 'हिंदूकालीन स्मारक है। किवदंती के अनुसार विजयनगर की लूट में लाई हुई अपार धन राशि इस क़िले में कहीं छिपा दी गई थी किंतु इसका रहस्य अभी तक प्रकट न हो सका है। बीदर के अन्य स्मारक ये हैं–चौबारा, यह किसी प्राचीन मंदिर का दीपस्तंभ है किंतु इसकी कला मुसलिम-कालीन जान पड़ती है। महमूद गवां का मदरसा, यह बहमनी काल की सबसे अधिक प्रभावशाली इमारत है। और वास्तव में स्थापत्य तथा नक्शे की सुंदरता की दृष्टि से भातर की ऐतिहासिक इमारतों में अद्वितीय है। इस मदरसे का बनाने वाला स्वयं महमूद गवां था जो बहमनी राज्य का परम बुद्धिमान् मंत्री था। यह विद्यानुरागी तथा कलाप्रेमी था। यह मदरसा तत्कालीन समरकंद के उलुग बेग के मदरसे की अनुकृति में बनवाया गया था। इस भवन की मीनारें गोल तथा बहुत भव्य जान पड़ती हैं। प्रवेशद्वार भी बहुत विशाल तथा शानदार थे किंतु अब नष्ट हो गए हैं। महमूद गवां का मकबरा, यह बीदर से 2½ मील दूर नीम के पेड़ों की छाया में स्थित है। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण यह

मकबरा महमूद गवां के प्रभावशाली व्यक्तित्व के अनुरूप न बन सका था पर मध्य युग के इस महापुरुष की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए काफी है। गवां के मदरसे से कुछ दूर एक प्रवेशद्वार है जिसके अंदर एक भवन दिखाई देता है। इसको तख़्त-ए-किरमानी कहा जाता है क्योंकि इसका संबंध संत खलीलुल्लाह से बताया जाता है। इसके स्तंभ हिंदू मंदिरों के स्तंभों की शैली में बने हैं। बीदर से प्रायः 2 मील दूर अष्टूर नामक स्थान के निकट बहमनीकालीन आठ मकबरे हैं। इनमें अलाउद्दीनशाह (मृत्यु 1436 ई०) का मकबरा असली हालत में बहुत शानदार रहा होगा। बीदर के बरीदी सुलतानों के मकबरे बीदर से दस फर्लांग की दूरी पर हैं। इनमें अली बरीद (1542-1580) का स्मारक अपने समानुपाती सौंदर्य और सम्मिति के लिए बेजोड़ कहा जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि बहमनी काल के मकबरों की भारी भरकम शैली इस मकबरे की कला में परिवर्तित रूप में आई है किंतु अन्य लोगों का मत है कि इस स्मारक का भारी गुंबद और संकीर्ण आधार दोषरहित नहीं हैं। मकबरे की दीवारों पर फ़ारसी कवि अत्तर के शेर खुदे हैं। 1604 ई० में औरंगजेब के शासनकाल में अब्दुलरहमान रहीम की बनाई हुई काली मसजिद काले पत्थर की बनी शानदार इमारत है। फखरूल मुल्क जिलानी का मकबरा एक विशाल, ऊंचे चबूतरे पर बना है। नाई का मकबरा दिल्ली के सुल्तानों के मकबरों की शैली पर बना है। उदगीर मार्ग पर स्थित कुत्ते का मकबरा उसी कुत्ते से संबंधित है जिसका उल्लेख इतिहासलेखक फ़रिश्ता ने अहमदशाहवली के साथ किया है। उदगीर जाने वाली प्राचीन सड़क पर चार स्तंभ हैं जिन्हें रन खंभ कहा जाता है। दो खंभे एक स्थान पर और दो 591 गज की दूरी पर स्थित हैं। कहा जाता है कि ये स्तंभ बरीदी सुलतानों के मकबरों की पूर्वी ओर पश्चिमी सीमाएं निर्धारित करते थे।

बीना

मध्यप्रदेश की एक नदी जिसके तट पर एरण या प्राचीन एरकिण बसा हुआ है। बीना नामक क़स्बा भी इसी नदी के तट पर स्थित है।

बीनाजी (बुंदेलखंड, म० प्र०)

मध्यकालीन बुंदेलखंड की वास्तुकला के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

बीसलपुर दे० देवल

बीहट (बुंदेलखंड)

यमुना नदी के पश्चिम में साठ मील दूर इस स्थान पर यौधेय गणराज्य के

सिक्के मिले हैं जो इस स्थान की प्राचीनता के सूचक हैं ।

बुंदेलखंड

उत्तर प्रदेश के दक्षिण और मध्यप्रदेश के पूर्वोत्तर का पहाड़ी इलाका जिसमें पूर्व स्वातंत्र्य युग में अनेक छोटी-बड़ी रियासतें थीं। बुंदेलखंड बुंदेल राजपूतों के नाम पर प्रसिद्ध है जिनके राज्य की स्थापना 14वीं शती में हुई थी। बुंदेलों का पूर्वज पंचम बुंदेला था। बुंदेलखंड का प्राचीनतम नाम जुझोति या यजुर्होती था। श्री गोरेलाल तिवारी का मत है कि बुंदेलखंड नाम विंध्येलखंड का अपभ्रंश है। (दे० बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास)

बुकेफेला

इस नाम का नगर यवनराज अलक्षेंद्र (सिकन्दर) ने 326 ई० में झेलम नदी के किनारे बसाया था। बुकेफेला अलक्षेंद्र के प्रिय घोड़े का नाम था और भारतीय वीर पुरु या पोरस के साथ युद्ध के पश्चात् इस घोड़े की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थी। घोड़े की स्मृति में ही इस नगर का नाम बुकेफेला रखा गया था। विंसेंट स्मिथ के अनुसार यह वर्तमान झेलम नाम के नगर (पा० पाकि०) के स्थान पर बसा हुआ था और इसके चिन्ह नगर के पश्चिम की ओर एक विस्तृत टीले के रूप में आज भी देखे जा सकते हैं (दे० अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 75)

बुद्धगया=बोधिगया

बुरहानपुर (महाराष्ट्र)

ताप्ती नदी के तट पर खानदेश का प्रख्यात नगर है। जो 14वीं शती में खानदेश के एक सुलतान शेख बुरहानुद्दीन वली के नाम पर बसाया गया था। शाहजहां की प्रिय बेगम मुमताज की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थी और उसका शव यहां से आगरे ले जाया गया था। शाहजहां तथा औरंगजेब के समय में बुरहानपुर दकन के सूबे का मुख्य स्थान था। मराठों ने बुरहानपुर को अनेक बार लूटा था और बाद में इस प्रांत से चौथ वसूल करने का हक भी मुगल सम्राट् से प्राप्त कर लिया था।

बुंदिबुनेर दे० वृंदारक

बुलंदशहर (उ० प्र०)

कालिंदी नदी के दक्षिणी तट पर है। अहार के तोमर सरदार परमाल ने इसे बसाया था। पहले यह स्थान बनछटी कहलाता था। कालांतर में नागों के राज्यकाल में इसका नाम अहिवरण भी रहा। पीछे इस नगर को ऊंचनगर कहा जाने लगा क्योंकि यह एक ऊंचे टीले पर बसा हुआ था। मुसलमानों के
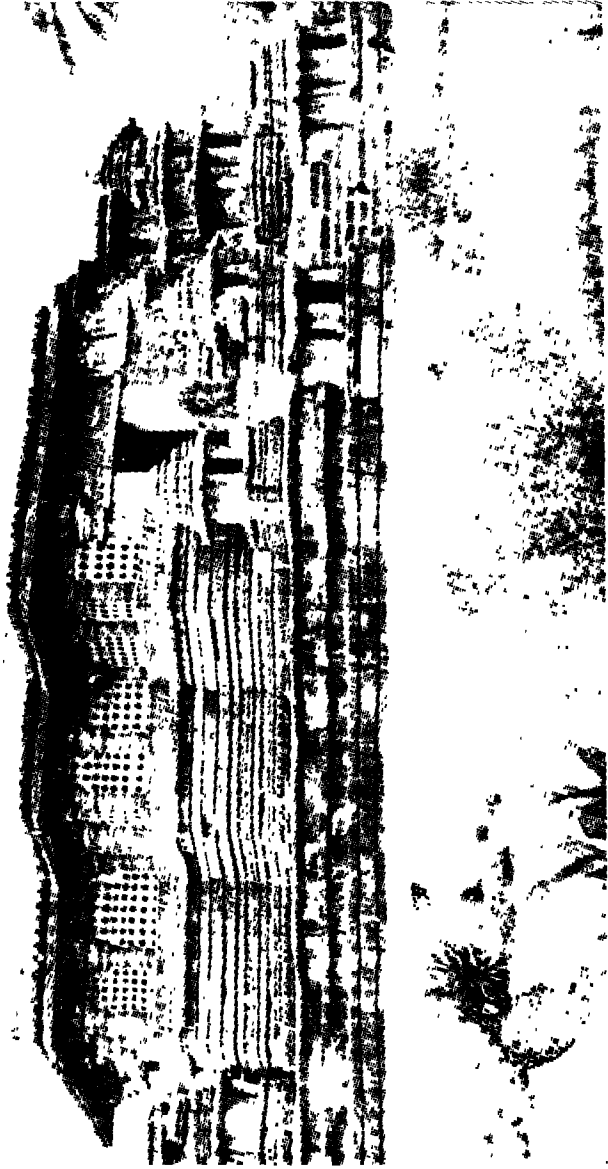
बेलूर-चेन्नाकेशव-मंदिर

(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

शासनकाल में इसी का पर्याय बुलंदशहर नाम प्रचलित कर दिया गया। यहां अलक्षेंद्र के सिक्के मिले थे। 400 से 800 ई० तक बुलंदशहर के क्षेत्र में कई बौद्ध बस्तियां थीं। 1018 ई० में महमूद गजनवी ने यहां आक्रमण किया था। उस समय यहां का राजा हरदत्त था।

बुलिय, बुल्लिय

बौद्धकालीन गणराज्य जिसकी स्थिति पूर्वी उत्तरप्रदेश या बिहार में थी। यहां के क्षत्रियों का वर्णन पाली साहित्य में अनेक स्थानों पर है। धम्मपद टीका (हार्वर्ड ओरियंटल सिरीज, 28, पृ० 247) में अल्लकप्प को ही बुलियों की राजधानी कहा गया है। अल्लकप्प वेठद्वीप या बेतिया (ज़िला चंपारन) के निकट था। किंतु यह अभिज्ञान निश्चित रूप से ठीक नहीं कहा जा सकता।

बूंदी (राजस्थान)

हाड़ा क्षत्रियों की राजधानी जिसका नाम कोटा के साथ संबद्ध है। यहां चौहानों का बनवाया हुआ तारागढ़ नामक एक प्राचीन दुर्ग स्थित है। चौरासी खंभों की छतरी शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह राव राजा अनिरुद्धसिंह की धाई के पुत्र की स्मृति में बनी थी। शाहजहां के समय में बूंदी के राजा छत्रसाल हाड़ा थे जो दारा की ओर से औरंगजेब के विरुद्ध धरमत की लड़ाई में वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते मारे गए थे। बूंदी पर मूलतः मीणा लोगों का आधिपत्य था। इसको बसाने वाला बूंदा मीणा कहा जाता है जिसके नाम पर ही इस नगरी का नामकरण हुआ था।

बृहत्सानु दे० बरसाना

बृहत्स्थल

इंद्रप्रस्थ का एक नाम (महाभारत)

बृहद्भट्ट (जिला सहारनपुर, उ० प्र०)

मौर्य-काल में सुह्म जनपद का एक ख्यातिप्राप्त नगर था जिसका वर्तमान नाम बेहट है।

बेंगिनाड (आं० प्र०)

संस्कृत के महाकवि पंडित राज जगन्नाथ का जन्म स्थान। ये तेलंग ब्राह्मण थे और मुगल शाहजहां के विशेष कृपापात्र थे। गंगालहरी इनकी प्रसिद्ध रचना है।

बेक्ट्रिया दे० बलख, वाह्लिक, बाह्ली

बेगूसराय (बिहार)

यह क़स्बा गंगातट पर स्थित है। इसी पुनीत घाट पर मैथिल कोकिल

विद्यापति मृत्यु के पहले पहुंचना चाहते थे पर मार्ग में ही बाजितपुर नामक स्थान में उनका देहांत हो गया। विद्यापति का नाथमठ नामक मंदिर यहां स्थित है।

बेग्राम

प्राचीन कपिशा (अफगानिस्तान) की राजधानी। श्वेत हूणों के आक्रमण के पूर्व दूसरी-तीसरी शती ई० में यह नगर बड़ा समृद्धिशाली था और बौद्ध-धर्म का भी यहां काफी प्रचार-प्रसार था किंतु हूणों ने इस नगर को विध्वस्त कर डाला और मिहिरकुल का यहां आधिपत्य हो गया। बेग्राम का अभिज्ञान वर्तमान कोहदामन से किया गया है। कपिशा के इसी नगर में कनिष्क की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी।

बेजवाड़ा, दे० विजयवाड़ा

बेटद्वारका (काठियावाड़, गुजरात)

गोमती द्वारका अथवा मूल द्वारका से बीस मील दूर यह स्थान समुद्र के भीतर एक बेट या द्वीप पर स्थित है। बेट द्वारका को भगवान् श्रीकृष्ण की विहारस्थली माना जाता है। यहां अनेक मंदिर हैं जो वर्तमान रूप में अधिक प्राचीन नहीं हैं। यह टापू दक्षिण-पश्चिम से पूर्वोत्तर तक लगभग सात मील लंबा है किंतु सीधी रेखा में पांच मील से अधिक नहीं। पूर्वोत्तर की नोक को हनुमान् अंतरीप कहा जाता है, क्योंकि इस अंतरीप के पास हनुमान् जी का मंदिर है। गोपी-तालाब जिसकी मिट्टी गोपीचंदन कहलाती है, बेट द्वारका के निकट प्राचीन तीर्थ है।

बेड़ी (बुंदेलखंड)

भूतपूर्व रियासत। इसके संस्थापक अछरजू या अचलजू पँवार थे। ये 18 वीं शती के अंत में संडी (ज़िला जालौन, उ० प्र०) में आकर रहने लगे थे। इनका विवाह महाराज छत्रसाल के पुत्र राजा जगतराज की कन्या के साथ हुआ था और दहेज में इन्हें बारह लाख की जागीर मिली थी जो बाद में बेड़ी की रियासत बनी।

बेणूर (मैसूर)

हालेबिड से लगभग साठ मील पर यह एक जैन तीर्थ है। यहां 1604 ई० में चामुंडराय के वंशज थिम्मराज ने भगवान् बाहुबली की 37 फुट ऊंची प्रतिमा स्थापित करवाई थी। बेणुर में और भी कई जिनालय हैं। इनमें से एक में एक सहस्र से अधिक मूर्तियां प्रतिष्ठापित हैं।

बेतवा—बेत्रवती

बेता

अवध की नदी जो संभवतः वाल्मीकि रामायण अयो० 49,8-9 की वेद-श्रुति है।

बेतिया दे० वेठद्वीप

बेनाकटक

गौतमीपुत्र (शातवाहन नरेश, द्वितीय शती ई०) के एक नासिक अभिलेख में इस स्थान को गोवर्धन (नासिक) में स्थित बतलाया गया है।

बेनीसागर (ज़िला सिंहभूम, बिहार)

9वीं व 10वीं शतियों के प्राचीन हिंदू मंदिरों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। उत्तर-गुप्तकालीन मूर्तियां भी यहां प्राप्त हुई हैं जो पटना के संग्रहालय में संगृहीत हैं। ये मूर्तियां भारी-भरकम सी हैं और कला की दृष्टि से नालंदा की कलाकृतियों से हीनतर हैं।

बेरीगाजा दे० भृगुकच्छ

बेलखारा (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

अहरौरा के निकट इस स्थान पर एक प्राचीन अभिलिखित स्तंभ स्थित है।

बेलगाम (महाराष्ट्र)

प्राचीन नाम वेणुग्राम है।

बेलूर (मैसूर)

वेलूर श्रवणबेलगोला से 22 मील दूर है। मध्यकाल में यहां होयसल-राज्य की राजधानी थी। होयसल-वंशीय नरेश विष्णुवर्धन का 1117 ई० में बनवाया हुआ चेन्नाकेशव का प्रसिद्ध मंदिर बेलूर की ख्याति का कारण है। इस मंदिर को, जो स्थापत्य एवं मूर्तिकला की दृष्टि से भारत के सर्वोत्तम मंदिरों में है, मुसलमानों ने कई बार लूटा किंतु हिंदू नरेशों ने बार-बार इसका जीर्णोद्धार करवाया। मंदिर 178 फुट लंबा और 156 फुट चौड़ा है। परकोटे में तीन प्रवेशद्वार हैं जिनमें सुंदर मूर्तिकारी है। इसमें अनेक प्रकार की मूर्तियां जैसे हाथी, पौराणिक जीवजंतु, मालाएं, स्त्रियां आदि उत्कीर्ण हैं। मंदिर का पूर्वी प्रवेशद्वार सर्वश्रेष्ठ है। यहां रामायण तथा महाभारत के अनेक दृश्य अंकित हैं। मंदिर में चालीस वातायान हैं जिनमें से कुछ के पर्दे जालीदार हैं और कुछ में रेखागणित की आकृतियां बनी हैं। अनेक खिड़कियों में पुराणों तथा विष्णु-वर्धन की राजसभा के दृश्य हैं। मंदिर की संरचना दक्षिण भारत के अनेक मंदिरों की भांति ताराकार है। इसके स्तंभों के शीर्षाधार नारी-मूर्तियों के रूप

में निर्मित हैं और अपनी सुंदर रचना, सूक्ष्म तक्षण और अलंकरण में भारत भर में बेजोड़ कहे जाते हैं। ये नारीमूर्तियां मदनकई (=मदनिका) नाम से प्रसिद्ध हैं। गिनती में ये 38 हैं, 34 बाहर और शेष अंदर। ये लगभग 2 फुट ऊंची हैं और इन पर उत्कृष्ट प्रकार की श्वेत पॉलिश है जिसके कारण ये मोम की बनी हुई जान पड़ती हैं। मूर्तियां परिधान-रहित हैं; केवल उनका सूक्ष्म अलंकरण ही उनका आच्छादन है। यह विन्यास रचना-सौष्ठव तथा नारी के भौतिक तथा आंतरिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। मूर्तियों की भिन्न-भिन्न भावभंगिमाओं के अंकन के लिए उन्हें कई प्रकार की क्रियाओं में संलग्न दिखाया गया है। एक स्त्री अपनी हथेली पर अवस्थित शुक को बोलना सिखा रही है। दूसरी धनुष संधान करती हुई प्रदर्शित है। तीसरी बांसुरी बजा रही है, चौथी केश-प्रसाधन में व्यस्त है, पांचवी सद्यः स्नाता नायिका अपने बालों को सुखा रही है, छठी अपने पति को तांबूल प्रदान कर रही है और सातवीं नृत्य की विशिष्ट मुद्रा में खड़ी है। इन कृतियों के अतिरिक्त वानर से अपने वस्त्रों को बचाती हुई युवती, वाद्ययंत्र बजाती हुई मदविह्वला नवयौवना तथा पट्टी पर प्रणय-संदेश लिखती हुई विरहिणी, ये सभी मूर्तिचित्र बहुत ही स्वाभाविक तथा भावपूर्ण हैं। एक अन्य मनोरंजक दृश्य एक सुंदरी बाला का है जो अपने परिधान में छिपे हुए बिच्छू को हटाने के लिए बड़े संभ्रम में अपने कपड़े झटक रही है। उसकी भयभीत मुद्रा का अंकन मूर्तिकार ने बड़े ही कौशल से किया है। उसकी दाहनी भौंह बड़े बांके रूप में ऊपर की ओर उठ गई है, और डर से उसके समस्य शरीर में तनाव का बोध होता है। तीव्र श्वास के कारण उदर में बल पड़ गए हैं जिसके परिणामस्वरूप कटि और नितंबों की विषम रेखाएं अधिक प्रवृद्ध रूप में प्रदर्शित की गई हैं। मंदिर के भीतर की शीर्षाधार मूर्तियों में देवी सरस्वती का उत्कृष्ट मूर्ति-चित्र देखते ही बनता है। देवी नृत्यमुद्रा में है जो विद्या की अधिष्ठात्री के लिए सर्वथा नई बात है। इस मूर्ति की विशिष्ट कला की अभिव्यंजना इसकी गुरुत्वाकर्षण-रेखा की अनोखी रचना में है। यदि मूर्ति के शिर पर पानी डाला जाए तो वह नासिका से नीचे होकर वाम पार्श्व से होता हुआ खुली वाम हथेली में आकर गिरता है और वहां से दाहिने पांव के नृत्य मुद्रा में स्थित तलवे (जो गुरुत्वाकर्षण रेखा का आधार है) में होता हुआ बाएं पांव पर गिर जाता है। वास्तव में होयसल वास्तु विशारदों ने इन कलाकृतियों के निर्माण में मूर्तिकारी की कला को चरमावस्था पर पहुंचा कर उन्हें संसार की सर्वश्रेष्ठ शिल्पकृतियों में उच्चस्थान का अधिकारी बना दिया है। 1433 ई० में ईरान के यात्री अब्दुल रज़ाक ने इस मंदिर के

बारे में लिखा था कि वह इसके शिल्प का वर्णन करते हुए डरता था कि कहीं उसके प्रशंसात्मक कथन को लोग अतिशयोक्ति न समझ लें।

बेस

ग्वालियर तथा भूपाल रियासतों में बहने वाली नदी। बेसनगर क़स्बा इसी नदी के नाम पर प्रसिद्ध है। बेस और बेतवा के संगम पर प्राचीन काल की प्रसिद्ध नगरी विदिशा बसी हुई थी। शायद बेस नदी को महाभारत सभा० 9,18 में विदिशा कहा गया है।—'कालिंदी विदिशा वेणा नर्मदा वेगवाहिनी'। यह कालिदास के मेघदूत, पूर्वमेघ 28 की नगनदी भी हो सकती है।

बेसनगर (ज़िला भीलसा, म० प्र०)

यह प्राचीन विदिशा और पाली ग्रंथों का वेस्सनगर है। यह कस्बा भीलसा से दो मील पश्चिम की ओर प्राचीन विदिशा के स्थान पर बसा हुआ है। यहां के खंडहरों में से अनेक प्राचीन महत्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें हिलियोडोरस का स्तंभ जिसे स्थानीय लोग खंभबाबा कहते हैं, मुख्य है। इस पर अंकित अभिलेख (लगभग 130 ई० पू०) से सूचित होता है कि इसे हिलियोडोरस नामक ग्रीक ने भगवान् वासुदेव (कृष्ण) के स्मारक के रूप में बनवाया था। यह यवन, तक्षशिला के भागवत (हिंदू) यवनराज अंतियालसिडस (Antialcides) का राजदूत था जिसे विदिशा के महाराज भागभद्र की राजसभा में भेजा गया था। इस स्तंभ-लेख से बौद्धधर्म की अवनति के साथ-साथ हिंदू या भागवत धर्म की बढ़ती हुई शक्ति का जिसने स्वसभ्यताभिमानी ग्रीकों को भी अपने प्रभाव में आबद्ध कर लिया था, सुंदर परिचय मिलता है।

बेसीन (महाराष्ट्र)

बंबई से 40 मील दूर है। एक कन्हेरी के गुहा-अभिलेख में इस स्थान को वसया नाम से अभिहित किया गया है। बेसीन को गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने 1534 ई० में पुर्तगालियों के हाथ बेच दिया था। इसके पश्चात् दो सौ वर्ष तक बेसीन पुर्तगालियों के पास रहा। इस काल में बेसीन को पुर्तगालियों ने श्री-समृद्धि से संपन्न करने में कोई कसर न छोड़ी, यहां तक कि अपने वैभव और ऐश्वर्य के कारण यह स्थान कोर्ट ऑव दि नार्थ (Court of the North) कहलाने लगा। बेसीन में पुर्तगालियों ने एक सुदृढ़ दुर्ग का भी निर्माण करवाया। किंतु कालांतर में बेसीन के पुर्तगालियों ने परिवर्ती प्रदेश में लूटमार करनी शुरू कर दी और उनके अत्याचार से तंग आकर 16 मई 1739 ई० को मराठों ने बेसीन को उनसे छीन लिया। इस युद्ध में चिमनाजी अप्पा ने बहुत वीरता दिखाई। अप्पा जी ने भी अपना एक दुर्ग बनवाया जिसके अंदर

वज्रेश्वरी देवी का मंदिर भी स्थित था। 1802 में बेसीन की संधि के फल-स्वरूप, जो बाजीराव पेशवा ने अंग्रेजों के साथ की थी मराठा सरदारों में विरोध का तूफान उठ खड़ा हुआ और मराठों ने अंग्रेजों के साथ युद्ध करने का निश्चय कर लिया। बेसीन का किला समुद्रतट के निकट है और कई छोटे-छोटे बंदरगाह क़िले के निकट स्थित हैं। इसमें से मांडवी बंदर से समुद्र का दृश्य बहुत भव्य दिखाई देता है। पुर्तगालियों की बनवाई हुई अनेक इमारतें, विशेषतः गिरजाघर, यहां आज भी विद्यमान हैं। बेसीन पुर्तगालियों के विरुद्ध भारतीयों के स्वतंत्रता-संग्राम का प्रथम स्मारक है।

बेहट

(1) (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०) ग्वालियर से 35 मील दूर इस ग्राम को अकबर की राजसभा के प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन (1532-1599 ई०) का जन्मस्थान माना जाता है। यहां एक प्राचीन शिवमंदिर है जिसके विषय में किंवदंती है कि यह तानसेन के गायन के प्रभाव से टेढ़ा हो गया था। यह आज भी वैसा ही है। आईने अकबरी में अकबरी-दरबार के 36 गायकों की जो सूची दी गई है उसमें 15 ग्वालियर के निवासी थे। इन्हीं में तानसेन भी थे। यह संभव है कि तानसेन मूलतः बेहट के ही रहनेवाले रहे हों और पीछे ग्वालियर में जाकर बस गए हों। उनकी समाधि ग्वालियर में अपने संगीत-गुरु सूफ़ीसंत मुहम्मद ग़ौस के मकबरे के पास है।

(2) = बृहद्भट्ट

बैजनाथ (ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

यह स्थान गोमती नदी के तट पर है। यहां नंदा देवी का मंदिर और रणचूला के क़िले में काली का मंदिर स्थित है।

बैजवाड़ा दे० विजयवाड़ा

बैतालबारी (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर कई प्राचीन क़िलाबंदियां और दुर्ग आदि हैं जिन पर मध्य-कालीन अभिलेख अंकित पाए गए हैं।

बैभार दे० वैभार

बैराट

(1) (ज़िला जयपुर, राजस्थान) कहा जाता है कि महाभारतकाल में मत्स्य-जनपद की राजधानी विराट-नगर या विराटपुर, इसी स्थान के निकट बसी हुई थी। यहां एक चट्टान पर अशोक का शिलालेख सं० 1, उत्कीर्ण है। अशोक का एक दूसरा अभिलेख एक पाषाण-पट्ट पर अंकित है जो अब कलकत्ते के रायल एशियाटिक सोसाइटी के संग्रहालय में सुरक्षित है।

बैराट या विराट जयपुर से 41 मील उत्तर की ओर स्थित है। यह मत्स्य देश के (महाभारत के समय के) राजा विराट के नाम पर प्रसिद्ध है। विराट की कन्या उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से हुआ था। अपने अज्ञातवास का एक वर्ष पांडवों ने यहीं बिताया था और भीम ने विराटराज के सेनापति कीचक का वध इसी स्थान पर किया था। महाभारत से ज्ञात होता है कि मत्स्यदेश की राजधानी वास्तव में उपप्लव्य थी किंतु विराट के नाम पर सामान्यत: इसे विराट या विराटनगर कहते होंगे। यह भी संभव है कि उपप्लव्य विराटनगर से भिन्न हो, क्योंकि महाभारत के टीकाकार नीलकंठ ने विराट 72,14 की टीका में उपप्लव्य को 'विराटनगरसमीपस्थनगरान्तरम्' लिखा है (दे० उपप्लव्य)। बैराट में आज भी एक गुफ़ा में भीम के रहने का स्थान बताया जाता है (अन्य पांडवों के नाम की गुफाएं भी हैं)। बैराट को सिद्ध पीठ भी माना जाता है। बैराट में अकबर के समय से कुछ पूर्व बना एक सुंदर जैन मंदिर भी है जिसका शुद्धीकरण जैन मुनि हरिविजय सूरी द्वारा किया गया था। यह तथ्य मंदिर में उत्कीर्ण एक अभिलेख में अंकित है। मुनि हरिविजय, अकबर के समकालीन थे और इनके उपदेशों से प्रभावित होकर मुगल सम्राट् ने वर्ष में 160 दिन के लिए पशुवध पर रोक लगा दी थी।

कुछ विद्वानों के मत में युवानच्वांग ने (सातवीं शती के आरम्भ में) जिस पारयात्र नामक नगर का उल्लेख अपने यात्रावृत्त में किया है वह बैराट ही था। यहां का तत्कालीन राजा वैश्यजाति का था।

(2) (तहसील रानीखेत, ज़िला अल्मोड़ा) इस स्थान को स्थानीय लोकश्रुति में महाभारत के राजा विराट की राजधानी विराटनगर बताया जाता है। एक पत्थर पर भीमसेन द्वारा अंकित चिह्न भी दिखाए जाते हैं। अधिकांश विद्वानों के मत में महाभारतकालीन मत्स्य देश की राजधानी ज़िला जयपुर में स्थित बैराट नामक नगर था [दे० बैराट (1)] और मत्स्य जनपद में वर्तमान अलवर-जयपुर का परिवर्ती प्रदेश शामिल था। महाभारत में मत्स्य को शूरसेन (मथुरा) के पड़ोस में बताया गया है जिससे इस अभिज्ञान की पुष्टि होती है। ज़िला अल्मोड़ा के बैराट के विषय में किंवदंती का आधार केवल नाम-साम्य ही जान पड़ता है।

बोधगया=**बोधिगया**

बोधान (ज़िला निजामाबाद, आं० प्र०)

इस स्थान पर प्राचीन काल में एक सुंदर मंदिर था जिसे मुहम्मद तुग़लक

के समय में मसजिद के रूप में परिवर्तित कर दिया गया था जैसा कि यहां अंकित दो फारसी अभिलेखों से ज्ञात होता है। इसे अब भी देवल मसजिद कहते हैं। बोधान के राष्ट्रकूट नरेशों के शासनकाल के कन्नड़-तेलुगु के कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इस स्थान का प्राचीन नाम शायद बोधायन था।

बोधायन

(1) दे० बोधान

(2) दे० बाधन

बोधिगया (बिहार)

गौतम बुद्ध ने इसी स्थान पर 'संबोधि' प्राप्त की थी (दे० **गया**)। इस स्थान से कई महत्वपूर्ण अभिलेख मिले हैं जिनसे यह अभिज्ञान प्रमाणित होता है। 269 गुप्तसंवत् = 588-589 ई० के एक अभिलेख में संभवत: सिंहलदेश के बौद्धनरेश महानामन् (जो पाली महावंश का कर्ता था) द्वारा बोधिमंड (बोधिद्रुम के नीचे बुद्धासन या किसी बिहार का नाम) के निकट एक बुद्ध-गृह के निर्माण किए जाने का उल्लेख है। महावंश के संपादक टर्नर का मत है कि अभिलेख का महानामन्, सिंहलनरेश नहीं हो सकता क्योंकि राजा महानामन् ने 459-477 ई० के लगभग (अपने भगिनीसुत धातुसेन के शासन काल में) महावंश का संकलन किया था और यह तिथि गया के उपर्युक्त अभिलेख से मेल नहीं खाती। इसी स्थविर महानामन् का एक दूसरा मूर्तिलेख भी बोधिगया से ही प्राप्त हुआ है। इसमें इस मूर्ति के दान में दिए जाने का उल्लेख है। बौद्ध संघ के नियमों के अनुसार कोई व्यक्ति 30 वर्ष की आयु से पूर्व स्थविर नहीं बन सकता था।

बोधिमंड

महावंश 29,41 में वर्णित बोधिगया के निकट एक विहार। यहां से तीस सहस्र भिक्षुओं को साथ लेकर स्थविर चित्रगुप्त सिंहल देश गए थे। बोधिमंड का उल्लेख महानामन् स्थविर के बोधिगया अभिलेख में भी है। (दे० बोधिगया)

बोरपल्ली (जिला करीमनगर, आं० प्र०)

13वीं–14वीं शती में बना एक मंदिर यहां का ऐतिहासिक स्मारक है। मंदिर में नंदी की एक प्रस्तर मूर्ति है तथा कन्नड़ भाषा के अभिलेख उत्कीर्ण हैं।

बोरविली (महाराष्ट्र)

बंबई से 22 मील। रेलस्टेशन के निकट ही कृष्णगिरि उपवन है जहां 101 बौद्ध गुहामंदिर स्थित हैं जिनका निर्माण काल प्रथम शती ई० पू० से 5वीं शती

ई० तक माना गया है। भारत में, संख्या की दृष्टि से, इनसे अधिक गुहामंदिर एक ही स्थान पर कहीं और नहीं हैं।

बोर्नियो द्वीप (इंडोनीसिया)

संभवतः इस विशाल द्वीप का प्राचीन नाम बर्हिण द्वीप है।

बौध (उड़ीसा)

तांत्रिक बौद्धधर्म के अवशेष यहां के खंडहरों से प्राप्त हुए हैं (दे० महताब—ए हिस्ट्री ऑव उड़ीसा, पृ० 155)। इसके अतिरिक्त शिव एवं विष्णु के मंदिरों के साथ-साथ एक ही स्थान पर होने से मध्यकालीन संस्कृति में इन दोनों संप्रदायों की एकता प्रकट होती है।

ब्रज=व्रज

ब्रह्मकुंड

(1) (मद्रास) रामेश्वरम् की 5 मील की परिक्रमा में यह प्राचीन पुण्य-स्थल है। यहां महिषमर्दिनी का मंदिर भी है।

(२)=ब्रह्मसर=मानसरोवर। कालिकापुराण में ब्रह्मपुत्र या लौहित्य का उद्भव ब्रह्मकुंड से माना गया है—'ब्रह्मकुंडात् सुतः सोऽय कासारे लोहिताह्वये, कैलासोपत्यकायांतुन्यपत् ब्रह्मणः सुतः' (दे० लौहित्य)। कालिदास ने सरयू का उद्गम ब्रह्मसर (=मानसरोवर) से माना है जो कालिकापुराण का ब्रह्मकुंड ही है। सरयू तथा लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) दोनों ही मानसरोवर से निकलती हैं। (दे० सरयू)

ब्रह्मगिरि

(1)=वेदगिरि

(2) (महाराष्ट्र) पश्चिमी घाट की गिरिमाला में स्थित त्र्यंबक पर्वत का एक भाग ब्रह्मगिरि कहलाता है। गोदावरी नदी यहीं से उद्भूत होती है। स्रोत के निकट पहुचने के लिए 750 सीढ़ियां है। गोदावरी का जल पहले कुशावर्त कुंड में गिरकर पृथ्वी के भीतर बहता हुआ 6 मील दूर चक्रतीर्थ में प्रकट होता है। ब्रह्मगिरि में एक प्राचीन दुर्ग अवस्थित है।

(3) (जिला चीतलदुर्ग, मैसूर) अशोक का अमुख्य शिलालेख सं० 1 इस स्थान पर एक चट्टान पर उत्कीर्ण है। यह स्थान मासकी के साथ ही अशोक के साम्राज्य की दक्षिणी सीमारेखा पर स्थित था।

(4) कुर्ग के दक्षिण में स्थित पर्वतमाला।

(5) (जिला पुरी, उडीसा) चोड़ गंगदेव (12वीं शती ई०) के बनवाए आलारनाथ के मंदिर के लिए प्रसिद्ध है। यह विष्णु, लक्ष्मी, रुक्मिणी और

सरस्वती का मंदिर है।

ब्रह्मदेश

वर्तमान बर्मा (विशेषतः दक्षिणी बर्मा) का प्राचीन भारतीय नाम। बौद्ध साहित्य में इसे सुवर्णभूमि भी कहा गया है। विद्वानों का मत है कि भारतीय सभ्यता ब्रह्मदेश में ईसवी सन् के प्रारंभ होने से बहुत पूर्व ही पहुंच गई थी।

ब्रह्मपुत्र

मानसरोवर से यह नदी सांपो नाम धारण करके निकलती है और ग्वालंदो घाट (बंगाल) के निकट गंगा में मिल जाती है। (दे० लौहित्य)

ब्रह्मपुर दे० मुंढाल

ब्रह्ममाला

वाल्मीकि-रामायण किष्किंधा० 40,22 में सुग्रीव द्वारा पूर्व दिशा में वानर सेना के भेजे जाने के प्रसंग में इस देश का उल्लेख है—'मही कालमहीं चापि शैलकाननशोभितां ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान्काशिकोसलान्'। प्रसंगानुसार यह जनपद विदेह तथा मालव-देश के निकट जान पड़ता है। संभव है कि यह ब्रह्मावर्त या बिठूर (उ० प्र०) का ही नाम हो किंतु यह अभिज्ञान अनिश्चित है।

ब्रह्मराइच दे० बहराइच

ब्रह्मराष्ट्र

चीनी यात्री इत्सिंग (672 ई०) ने भारत का तत्कालीन नाम ब्रह्मराष्ट्र बताया है। इससे उस समय पुनरुज्जीवित हिंदू धर्म की बढ़ती हुई महत्ता का प्रमाण मिलता है। बौद्धधर्म सातवीं शती में अस्तोन्मुख हो चला था।

ब्रह्मर्षि देश

मनुस्मृति 2,19 के अनुसार कुरु, पंचाल, शूरसेन तथा मत्स्य देशों का सम्मिलित नाम—'कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः, एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः'।

ब्रह्मवर्धन

पाली साहित्य में काशी का एक नाम। जातकों में प्रायः काशी के राजाओं को ब्रह्मदत्त नाम से अभिहित किया गया है।

ब्रह्मसर

(1) मानसरोवर (तिब्बत) को प्राचीन संस्कृत साहित्य में ब्रह्मसर भी कहा गया है। कालिदास ने रघुवंश, 13,60 में सरयू नदी की उत्पत्ति ब्रह्मसर से बताई है—'ब्राह्मंसरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति'। मल्लिनाथ

ने अपनी टीका में 'ब्राह्मसरो मानसाख्यं यस्याः सरय्वाः'—आदि लिखा है जिससे स्पष्ट है कि सरयू का उद्गम मानसरोवर या ब्रह्मसर है। कवि की विचित्र उपमा से यह भी ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में ब्रह्मसर तक पहुंचना यद्यपि अधिकांश लोगों के लिए असंभव ही था फिर भी सब लोगों का परंपरागत विश्वास यही था कि सरयू मानसरोवर से उद्भूत होती है। किंतु साथ यह भी दृष्टव्य है कि इस विशिष्ट भौगोलिक तथ्य की खोज, जो उस प्राचीन समय में बहुत ही कठिन रही होगी, कालिदास के समय के बहुत पूर्व ही हो चुकी थी। कालिकापुराण में ब्रह्मपुत्र या लौहित्य का उद्भव भी ब्रह्मकुंड या ब्रह्मसर से ही माना गया है। यह भी भौगोलिक तथ्य है। (दे० सरयू; लौहित्य)

(2) महाभारत अनुशासन० में पुष्कर (ज़िला अजमेर, राजस्थान) के प्रसिद्ध सरोवर का एक नाम। यह ब्रह्मा के तीर्थ के रूप में प्राचीन काल से ही प्रख्यात है।

(3) कुरुक्षेत्र मे स्थित सरोवर। शतपथ ब्राह्मण के कथानक के अनुसार राजा पुरु को खोई हुई अप्सरा उर्वशी इसी स्थान पर कमलों पर क्रीड़ा करती हुई मिली थी।

ब्रह्मसानु दे० बरसाना।

ब्रह्मस्थल

जैनग्रंथ बसुदेव हिंडि (7वीं–8वीं शती ई०) में हस्तिनापुर (ज़िला मेरठ, उ० प्र०) का एक नाम। इस ग्रंथ में महाभारत की कथा का जैन रूपांतर किया गया है।

ब्रह्महृद (राजस्थान)

लुहारू या प्राचीन लोहार्गल पर्वत की तलहटी में यह पुराण-प्रसिद्ध तीर्थ स्थित है। कहा जाता है कि महाभारत-युद्ध के पश्चात् पांडवों ने यहां की यात्रा की थी।

ब्रह्मा

मध्य-रेलवे के पुरली-बैजनाथ-बिकाराबाद मार्ग पर स्थित जहीराबाद से 8 मील केतकी-संगम नामक क्षेत्र के निकट प्रवाहित होने वाली नदी।

ब्रह्मावर्त

(1) वैदिक तथा परवर्ती काल में ब्रह्मावर्त पंजाब का वह भाग था जो सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य में स्थित था। (दे० मनुस्मृति 2,17—'सरस्वती दृषद्वत्योर्देव, नद्योर्यदन्तरम् तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते')

मेकडानेल्ड के अनुसार दृषद्वती वर्तमान घग्घर या घोगरा है। प्राचीन काल में यह यमुना और सरस्वती नदियों के बीच में बहती थी। कालिदास ने मेघदूत में महाभारत की युद्धस्थली—कुरुक्षेत्र को ब्रह्मावर्त में माना है—'ब्रह्मावर्तं जनपदमथश्छाययागाहमानः, क्षेत्रंक्षत्र प्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः' पूर्वमेघ, 50। अगले पद्य 51 में कालिदास ने ब्रह्मावर्त में सरस्वती नदी का वर्णन किया है। यह ब्रह्मावर्त की पश्चिमी सीमा पर बहती थी। किंतु अब यह प्रायः लुप्त हो गई है।

(2) बिठूर (ज़िला कानपुर, उ० प्र०) महाभारत में इस स्थान को पुण्य-तीर्थों की श्रेणी में माना गया है—'ब्रह्मावर्तं ततो गच्छेद् ब्रह्मचारी समाहितः, अश्वमेधमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति'।

ब्रह्मोद (म० प्र०)

पुराणों में उल्लिखित ब्रह्मोद तीर्थ नर्मदा के तट पर स्थित वर्तमान गोरा-घाट नामक स्थान है।

ब्राह्मण जनपद दे० बहमनाबाद

ब्राह्मणावह

राजेशखर ने काव्यमीमांसा में ब्राह्मणजनपद का ब्राह्मणावह नाम से उल्लेख किया है।

ब्राह्मणी

उड़ीसा की एक पवित्र मानी जाने वाली नदी जो जिला बालासौर में बहती है। इसका महाभारत भीष्म० 9,33 में उल्लेख है—'ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत'।

भंगोल (सौराष्ट्र, गुजरात)

इस स्थान से 1954 ई० में किए जाने वाले उत्खनन से प्रागैतिहासिक काल के अनेक अवशेष प्रकाश में आए हैं। यह स्थान हलार क्षेत्र के अंतर्गत है।

भंडग्राम

बौद्धकाल का एक व्यापारिक नगर जिसकी स्थिति श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले वणिक्पथ पर थी (दे० युग-युगों में उत्तर प्रदेश, पृ० 6)

भंवरगढ़ (ज़िला नरसिंहपुर, म० प्र०)

गढ़मंडला नरेश संग्रामशाह (मृत्यु 1541 ई०) के बावन गढ़ों में से एक की स्थिति भंवरगढ़ में थी। संग्रामशाह वीरांगना महारानी दुर्गावती के श्वसुर और दलपतशाह के पिता थे।

भक्खर (सिंध, पाकि०)

यह छोटा सा प्राचीन कस्बा है जो मुसलमानों के शासनकाल में प्रसिद्ध था—शिवाजी के राजकवि भूषण ने इसका उल्लेख किया है—'सक्खरलौं भक्खर लौं मक्खर लौं चले जाते टक्कर लिवैया कोई आर है न पार है'—भूषण ग्रंथावलि० फुटकर 37;, 'भक्खर प्रबल दल भक्खर लौं दौरिकर आय साहिजू को नंद बांधी लेत बांकरी'—भूषण ग्रंथावलि, पृ० 101. श्री वा० श० अग्रवाल के मत में पाणिनि ने अष्टाध्यायी 4,3,32 में भक्खर का 'अपकर' नाम से उल्लेख किया है।

भक्तपुर (नेपाल) दे० भटगाँव

भगवानगंज (बंगाल)

दीनाजपुर तहसील के दक्षिण की ओर स्थित है। युवानच्वांग ने जिस द्रोणस्तूप का उल्लेख किया है वह संभवतः इसी स्थान पर था। स्तूप के खंडहर अब भी पुनपुन नदी के निकट हैं।

भग्ग

बौद्धकालीन गणराज्य। महाभारत में इसे भर्ग कहा गया है और इसका उल्लेख वत्सजनपद के साथ है। इसे भीमसेन ने अपनी दिग्विजय यात्रा में जीता था—'वत्सभूमिं च कौंतेयो विजिग्ये बलवान् बलात् भर्गाणाधिपं चैव निषादाधिपतिं तथा' सभा० 30,10-11. धोनसारव जातक (सं० 353) में भग्ग की सुंसुमारगिरि नामक राजधानी का वत्स और भर्ग का साथ-साथ उल्लेख है—'प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभर्गौ बभूवतुः' और प्रतर्दन के पुत्र का नाम भर्ग बताया गया है जिसके नाम पर यह जनपद प्रसिद्ध हुआ होगा। भर्गक्षत्रियों का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण 3,84,31 तथा अष्टाध्यायी 4,1,111-177 में भी है। उपर्युक्त उल्लेख से भग्ग गणराज्य की स्थिति वत्स (कौशांबी-प्रयाग) के पार्श्ववर्ती क्षेत्र में सिद्ध होती है। सुंसुमारगिरि का अभिज्ञान चुनार (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०) की पहाड़ी से किया गया है।

भटगांव (नेपाल)

कडमंडू से 8 मील दूर है। यहां नेपाल के प्राचीन नेवार राजवंश की राजधानी थी। भटगांव के कई मंदिर उल्लेखनीय हैं। भवानी का मंदिर पांच मंज़िला है और पांच उभरी संरचनाओं के ऊपर अवस्थित है। निकटवर्ती महादेव का मंदिर दुमंज़िला है। पास ही उत्तर की ओर कृष्ण-मंदिर है जिसकी आकृति खजुराहो के मंदिरों के विमानों के अनुरूप है। सिद्धपोखरा मंदिर

1640-1650 में बना था। इसके अतिरिक्त विनायक गणेश का मंदिर भ
प्रसिद्ध है। इसका प्राचीन नाम भक्तपुर था।

भटिंडा (पंजाब)

यह मध्यकालीन नगर है जिसे कुछ तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों ने तबरहिंद कहा है। प्राय: एक सहस्र वर्ष प्राचीन एक दुर्ग यहां का मुख्य ऐतिहासिक स्मारक है। इसकी ऊंचाई 125 फुट है और इस पर 36 बुर्ज़ बने हैं। प्राचीन काल में सतलज नदी इसी दुर्ग के नीचे बहती थी। दुर्ग के निर्माता भट्टी राजपूत थे जिनके नाम पर यह नगर प्रसिद्ध है। ग़ुलाम वंश की रजिया बेगम (1236-1240 ई०) इस क़िले में कुछ समय तक क़ैद रही थी और कहते हैं यहीं उसकी मृत्यु भी हुई थी। किले का एक बुर्ज 14-10-56 को टूटकर गिर पड़ा था।

भट्टग्राम = **गढ़वा** (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

प्रयाग से लगभग 25 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर और प्रयाग-जबलपुर रेलपथ पर शंकरगढ़ स्टेशन से 6 मील उत्तर-पश्चिम में बसा हुआ छोटा सा ग्राम है। गुप्तकाल में यह स्थान काफ़ी महत्वपूर्ण और समृद्ध था जैसा कि यहां से प्राप्त शिलालेखों तथा मूर्तियों के अवशेषों से सूचित होता है। इसका वर्तमान नाम भटगढ़ या बरगढ़ है और सामान्यत: इसे गढ़वा भी कहते हैं। यहां के प्राचीन गढ़ के ध्वंसावशेष अब भी विद्यमान हैं। (दे० गढ़वा)

भट्टीप्रोलू (ज़िला कृष्णा, आं० प्र०)

एक बौद्धकालीन स्तूप के खंडहरों तथा अन्य अवशेषों के लिए यह स्थान विख्यात है। ई० सन् के पूर्व के कई अभिलेख भी यहां से प्राप्त हुए हैं जो मासकी के अशोक के शिलालेख के अतिरिक्त, दक्षिण के प्राचीनतम अभिलेख माने जाते हैं। एक अभिलेख में 'कुबिरक' नामक आंध्र नरेश का उल्लेख है। इसकी तिथि 200 ई० पू० के लगभग मानी गई है। शायद इसी आंध्र-नरेश को सर्व प्रथम ऐतिहासिक आंध्र शासक समझना चाहिए। विद्वानों का विचार है कि भट्टीप्रोलू का बौद्ध स्तूप आंध्र में अमरावती तथा अन्यत्र प्राप्त स्तूपों के अनुरूप ही रहा होगा।

भड़ौंच दे० **भृगुकच्छ**

भतकल (उत्तरी कनारा, मैसूर)

एक मध्यकालीन वर्गाकार और शिखररहित जैन मंदिर के लिए यह

स्थान उल्लेखनीय है। मंदिर का प्रदक्षिणापथ पटा हुआ है और शिखरविहीन छतों पर ढालू पत्थर लगे हैं। आश्चर्य है कि गुप्तकालीन मंदिरों की परंपरा, ग्यारह सौ वर्षों के पश्चात् भी सुदूर दक्षिण में इस मंदिर के रूप में जीवित पाई जाती है। मंदिर के गर्भगृह के सामने एक मंडप की विद्यमानता भी भतकल के मंदिर की विशेषता है। यह जैन मंदिर अपने बहिरलंकरण के लिए अधिक दर्शनीय नहीं है किंतु इसके भीतरी भाग में सुंदर अलंकरण प्रचुरता से अंकित हैं। मंदिर पाषाणचितियों पर बना है जिससे इसके फर्श के नीचे स्थान-स्थान पर अवकाश है। मंदिर के निकट एक ही पत्थर का बना दीपस्तंभ है जिस पर पाषाणनिर्मित दीपक आरूढ़ है। गर्भगृह की छत सबसे ऊँची है और तत्पश्चात् प्रथम और द्वितीय प्रदक्षिणा-पथों की छतें हैं जो क्रम से नीची होती चली गई हैं।

भदरवार

ज़िला ग्वालियर (म० प्र०) में अटेर और भिंड के परिवर्ती क्षेत्र का मध्यकालीन नाम। यहां राजपूतों की भदौरिया नामक शाखा का राज्य था।

भट्टवटिका = भद्दवतिका

सुरापानजातक में उल्लिखित एक व्यापारिक नगर जिसकी स्थिति कोशांबी (ज़िला इलाहाबाद, उ०प्र०) के पूर्व में थी। इस नगरी का प्राचीन नाम भद्रावती जान पड़ता है।

भद्दिय

प्राचीन अंग की महत्त्वपूर्ण नगरी जिसका बौद्धजातक कथाओं में उल्लेख है। मिगारमाता विशाखा, जिसकी कथाएं पाली साहित्य में विख्यात हैं का जन्म भद्दिय में ही हुआ था। इसी नगरी को संभवत: भद्दवति या भद्रिका नाम से भी अभिहित किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह वर्तमान मुंगेर ही का प्राचीन नाम है।

भद्दिलपुर

अंतकृतदशांग-सूत्र नामक जैन ग्रंथ में इस नगर को जितशत्रु नामक राजा की राजधानी बताया गया है। यहां स्थित श्रीवन नामक उद्यान का भी उल्लेख है। यह शायद भद्दिय ही है।

भद्रंकर

प्रो० प्रिजलुस्की के अनुसार मूल सर्वास्तिवादी विनय में साकल या सियालकोट (पंजाब, पाकि०) का एक नाम है।

भद्र दे० भद्रा

भद्रकर्णेश्वर

महाभारत में इस तीर्थ का वनपर्व के अंतर्गत तीर्थ-प्रसंग में उल्लेख है, 'भद्रकर्णेश्वरं गत्वा देवमर्च्ययथाविधि, न दुर्गतिमवाप्नोति नाकपृष्ठे च पूज्यते' वन० 84,39। भद्रकर्णेश्वर का अभिज्ञान ज़िला गढ़वाल (उ०प्र०) में स्थित कर्णप्रयाग से किया गया है जो प्रसंग से ठीक ही जान पड़ता है क्योंकि वन० 84,37 में रुद्रावर्त (रुद्रप्रयाग) का वर्णन है।

भद्रवती दे० भद्दिय, भद्दवतिका

भद्रवाह

हिमाचलप्रदेश और जम्मू-कश्मीर की सीमा पर स्थित सुंदर पर्वतीय तीर्थ। भद्रवाह वासुक्यकुंड के कारण प्राचीन काल से तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। वासुकिनाग की झील 2½ मील के घेरे में तीन ऊंचे हिमपर्वतों से घिरी, समुद्रतल से पंद्रह सहस्र फ़ुट की ऊंचाई पर है। यह भद्रवाह से पंद्रह मील दूर है। पहले भद्रवाह में नागों के पचास मंदिर थे जिनमें से केवल दो शेष है। इनमें से एक तो भद्रवाह नगर में है और दूसरा तीन मील दूर गाठा नामक ग्राम में। पौराणिक गाथा के अनुसार विद्याधरवंश के नागनरेश जीमूतवाहन ने एक अन्य नाग-राजा की कन्या से वासुकि झील के स्थान पर ही विवाह किया था। जीमूतवाहन को उसके पिता जीमूतकेतु ने अपने तप के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में भेजा था और उसने इसी स्थान को चुना था जो कपिलाश पर्वत (?) पर स्थित था।

भद्रविहार

कान्यकुब्ज (कन्नौज, उ० प्र०) में स्थित एक बौद्धविहार जहाँ प्रसिद्ध चीनी यात्री युवानच्वांग 635 ई० के लगभग पहुंचा था। उन्होंने यहां तीन मास तक ठहर कर आचार्य वीरसेन से बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया था। यहां उस समय एक महाविद्यालय था।

भद्रशिला

इस देश का वर्णन चंद्रप्रभजातक में है जिसमें इसे हिमाचल के निकट उत्तरदिशा में स्थित बताया गया है। दिव्यावदान में इसे परम ऐश्वर्यशाली नगरी बताया गया है। बोधिसत्वावदान-कल्पलता में इस नगरी को हिमालय के उत्तर में माना है। भद्रशिला का अभिज्ञान तक्षशिला से किया गया है।

भद्रा

(1) विष्णु-पुराण 2,2,37 के अनुसार उत्तरकुरु की एक नदी जो उत्तर

के पर्वतों को पारकर उत्तरी समुद्र में गिरती है—'भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथाकुरून् अतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति महामुने'। इसी प्रसंग (2,2,33) में सीता (=तरिम), चक्षु (=आमू या आक्सस) अलकनंदा और भद्रा, गंगा की ये चार शाखाएं कही गई हैं जो चारों दिशाओं में प्रवाहित होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णुपुराण के रचयिता के मत में ये चारों नदियां एक ही स्थान (मानसरोवर) से उद्भूत होकर क्रमशः पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की ओर बहती थीं। यह भौगोलिक उपकल्पना अन्वेषणीय अवश्य है और इसमें तथ्य का अंश जान पड़ता है। भद्रा इस प्रसंग के अनुसार साइबेरिया में बहनेवाली कोई नदी हो सकती है। श्री नं० ला० डे के अनुसार वह यारकंद नामक नदी है।

(2) तुंगभद्रा नामक नदी तुंगा तथा भद्रा, इन दो नदियों की संयुक्त धारा है। भद्रा भद्रपर्वत से उद्भूत होती है।

भद्राचलम् (ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

गोदावरी नदी के उत्तरी तट पर प्राचीन स्थान है। कहा जाता है कि इस स्थान पर भद्र नामक ऋषि ने श्रीरामचंद्र जी से वनवासकाल में भेंट की थी। किंवदंती में यह भी प्रसिद्ध है कि श्रीराम और लक्ष्मण इस स्थान के निकट अचलगिरि पर सीताहरण के पश्चात् कुछ दिन कुटी बनाकर रहे थे और फिर दक्षिण की ओर जाते समय उन्होंने यहीं गोदावरी नदी को पार किया था। अचलगिरि पर श्रीराम का एक मंदिर है जिसे रामदास अथवा गोपन्ना ने बनवाया था। यह गोलकुंडा के अंतिम सुलतान अबुलहसन तानाशाह (1654-1687) के प्रधान मंत्री अकन्ना का भ्रातृज था। कहा जाता है कि गोपन्ना ने सरकारी मालगुजारी में से 6 लाख रुपया निकाल कर इस मंदिर का निर्माण करवाया था जिसके कारण उसे गोलकुंडा के सुलतान ने कारागृह में डाल दिया (इस स्थान को आज भी रामदास का कारागार कहते हैं)। किंतु कथा के अनुसार भगवान् राम ने अपने भक्त पर जरा भी आंच न आने दी और सारा रुपया रहस्यमय रीति से सरकारी खजाने में जमा किया हुआ पाया गया। गोपन्ना को तानाशाह ने स्वयं जाकर कारागार से मुक्ति दिलवाई और राम का भक्त उस दिन से रामदास कहलाने लगा। रामनवमी को भद्राचल में आज भी भारी मेला लगता है और राम सीता का विवाह अथवा कल्याणम् धूमधाम से मनाया जाता है। यह मंदिर दक्षिण भारत का सबसे अधिक धनी मंदिर कहा जाता है।

भद्रावती

(1) दे० भद्द्वतिका, भद्दिय

(2) दे० भद्रेश्वर

(3) (ज़िला चांदा, म० प्र०) वर्धा-काजीपेट रेल-पथ पर भांदक या भांडक नामक स्थान का प्राचीन नाम। कनिंघम के अनुसार चौथी-पांचवी शती में, वाकाटकनरेशों की राजधानी इसी स्थान पर थी। (टि० विंसेंट स्मिथ के अनुसार वाकाटकों की राजधानी वाकाटकपुर में थी जो ज़िला रींवा (म० प्र०)के निकट स्थित है)। चीनी यात्री युवानच्वांग 639 ई० में भद्रावती पहुंचे थे। उस समय यहां सौ संघाराम थे जिनमें चौदह-सौ भिक्षु निवास करते थे। उस समय भद्रावती का राजा सोमवंशीय था तथा बौद्धधर्म में श्रद्धा रखता था। युवानच्वांग ने भद्रावती को कोसल की राजधानी बताया है और इसको सात मील के घेरे के अंदर स्थित कहा है। भांडक से 1 मील पर बीजासन नामक तीन गुफाएं हैं जो शायद वही गुफाएं हैं जिनका उल्लेख युवानच्वांग ने भी किया है। ये शैल-कृत्त हैं और उनके गर्भगृह में बुद्ध की विशाल मूर्तियां उकेरी हुई हैं। इनमें भिक्षुओं के निवास के लिए भी प्रकोष्ठ बने हुए हैं। एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि इन गुफाओं का निर्माण बौद्ध राजा सूर्यघोष ने करवाया था। इसका पुत्र प्रासाद पर से गिर कर मर गया था। उसी की स्मृति में सूर्यघोष ने इस गुहामंदिर को बनवाया था। तत्पश्चात् उदयन और भवदेव ने सुगत के इस गुहा-मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया (दे० डा० हीरालाल—मध्य प्रदेश का इतिहास, पृ० 13)। यहां आज भी प्रचुर बौद्ध अवशेष विस्तृत खंडहरों के रूप में हैं। भांडक में पार्श्वनाथ का जैन मंदिर भी है जिसके निकट एक सरोवर से अनेक प्राचीन मूर्तियां प्राप्त हुई थीं। बौद्ध तथा जैनधर्म से संबंधित अवशेषों के अतिरिक्त, भांडक में हिंदू मंदिरादि के भी अवशेष प्रचुरता से मिलते हैं। भद्रावतीनगरी को जैमिनी के महाभारत में युवानाश्व की राजधानी बताया गया है। भद्रनाग का मंदिर जिसके अधिष्ठातृ-देव नाग हैं, प्राचीन वास्तु का श्रेष्ठ उदाहरण है। नाग की प्रतिमा अनेक फनों से युक्त है। मंदिर की दीवारों के बाहरी भाग पर शिल्प का सुंदर एवं सूक्ष्म काम प्रदर्शित है। इसी के साथ शेषशायी विष्णु की मूर्ति भी कला का अद्भुत उदाहरण है। विष्णु के निकट लक्ष्मी उनके चरणों के पास स्थित है। विष्णु की नाभि में से सनाल कमल-पुष्प तथा उस पर आसीन ब्रह्मा का अंकन बड़े कौशल से किया गया है। दशावतार का प्रदर्शन करने वाले पाषाण-पट्ट भी मंदिर की शोभा बढ़ाते हैं। बाहर के बरामदे में वराह भगवान् की मूर्ति अवस्थित है। मंदिर के निकट एक गुहा

है जिसका पता हाल ही में लगा है। इसमें भी प्राचीन अवशेष मिले हैं। जैन मंदिर के पास चंडिका का नष्ट-भ्रष्ट मंदिर है। यहां से आधा मील दूर डोलारा जलाशय के निकट एक टीले पर प्राचीन खंडहर बिखरे पड़े हैं। जलाशय के तट पर भी शिव, पार्वती, कार्तिकेय, सूर्य, कृष्ण, सरस्वती आदि की प्राचीन मूर्तियां मिली हैं। भद्रावती के खंडहरों में उत्खनन का कार्य अभी तक नहीं के बराबर हुआ है। व्यवस्थित रूप से खुदाई होने पर यहां से अवश्य ही अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाश में लाया जा सकेगा।

(4) (सौराष्ट्र, गुजरात) सोरठ में बहने वाली एक नदी जो प्राचीन वेत्रवती (वर्तमान बर्तोई नदी) के दक्षिण में है। भद्रावती का उद्गम गिरनार पर्वत में है। जूनागढ़ इसी नदी के कांठे में बसा है।

भद्राश्व

पौराणिक भूगोल के अनुसार भद्राश्व जंबूद्वीप का एक भाग है। इसके उपास्य देव हयग्रीव हैं। विष्णुपुराण में भद्राश्व को मेरु के पूर्व में माना है—'भद्राश्वं पूर्वतो मेरोः केतुमालं च पश्चिमे' विष्णु॰ 2,2,23। विष्णु॰ 2,2,34 में सीता या तरिम नदी को भद्राश्व की नदी कहा गया है—'पूर्वेण शैलात्सीता तु शैलं यात्यंतरिक्षगा, तत्श्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम्'—इस वर्णन से भद्राश्व, सिंक्यिांग (चीन) का प्राचीन पौराणिक नाम जान पड़ता है। महाभारत सभा॰ में अर्जुन की उत्तर दिशा की दिग्विजय-यात्रा में उनका भद्राश्व पहुंचना भी वर्णित है—'तं माल्यवंतं शैलेंद्रं समतिक्रम्य पांडवः, भद्राश्वं प्रतिवेशाथ वर्षं स्वर्गोपमं शुभम्'—सभा॰ 28 दाक्षिणात्य पाठ। (दे॰ सीता)

भद्रिका=भद्दिय

जैन कल्पसूत्र में वर्णित है कि तीर्थंकर महावीर ने इस स्थान पर दो वर्षाकाल बिताए थे। (दे॰ भद्दिय)

भद्रेश्वर (कच्छ, गुजरात)

इस नगर का प्राचीन नाम भद्रावती भी था। यहां जैन तीर्थंकर महावीर का अति प्राचीन मंदिर समुद्रतट पर अवस्थित है।

भनकोली (ज़िला देहरादून, उ॰ प्र॰)

लाखामंडल से आगे इस स्थान पर महासू या महाशिव का तिब्बत शैली में निर्मित सुंदर प्राचीन मंदिर है।

भनयूर (कश्मीर)

मार्तंड मंदिर की शैली में बना एक मंदिर यहां का उल्लेखनीय स्मारक है।

भबुआ (ज़िला शाहाबाद, बिहार)

इस स्थान पर 7वीं शती ई० के पूर्वार्ध में बना हुआ, मुंडेश्वरी देवी का मंदिर उत्तरी भारत के प्राचीनतम मंदिरों में से है। इस मंदिर के प्रवेशद्वार की पत्थर की चौखट के पट्टों पर देवताओं विशेषकर गंगा-यमुना की मूर्तियां अंकित है जो गुप्त-मंदिरों के वास्तु का प्रिय विषय था। इस मंदिर की खोज 1905-6 में डा० ब्लॉक ने की थी। एक दानलेख में जो यहां मिला है, महासामंत उदयसेन के शासनकाल में भागुदलन नामक व्यक्ति के कुछ दानों का वर्णन है। इसमें विनीतेश्वर के मंदिर के निकट एक मठ के बनवाए जाने तथा मंडलेश्वरी (=मुंडेश्वरी) विष्णु के मंदिर के लिए दिए हुए दान का विवरण है। पाल-नरेशों के शासन काल (800-1200 ई०) में इस मंदिर में कई परिवर्तन किए गए थे। मुंडकेश्वरी का मंदिर षट्कोण आधार पर बना है। ऐसा नक्शा भारत में अन्य प्राचीन मंदिरों में अन्यत्र नहीं दिखाई देता। भुमरा के मंदिर की भांति ही इसकी कुर्सी के आधार पर गोल चौड़ी उभरी हुई पट्टियाँ बनी हैं और कीर्तिमुख सिंहों के मुखों में माला धारण किए हुए मूर्तियाँ निर्मित हैं। प्रवेशद्वार की चौखट पर सूक्ष्म तक्षण के साथ मानव-मूर्तियों का भी अंकन है। गुप्त-कालीन मंदिरों की कला-परंपरा के अनुकूल ही इस मंदिर में भी सुघड़ चैत्य-वातायनों को धारण करने वाले स्तंभ हैं जिन पर अंकित मूर्तिकारी बड़ी मनोरम जान पड़ती है।

भरतपुर (राजस्थान)

प्रसिद्ध भूतपूर्व जाट-रियासत का मुख्य नगर जिसकी स्थापना चूणामणि जाट ने 1700 ई० के लगभग की थी। इमादउस्-सयादत के लेखक के अनुसार चूरामन (=चूड़ामणि) ने जो अपने प्रारंभिक जीवन में लूटमार किया करता था, भरतपुर की नींव एक सुदृढ़ गढ़ी के रूप में डाली थी। यह स्थान आगरे से 48 कोस पर स्थित था। गढ़ी के चारों ओर एक गहरी परिखा थी। धीरे-धीरे चूरामन ने इसको एक मोटी व मजबूत मिट्टी की दीवार से घेर लिया। गढ़ी के अंदर ही यह अपना लूट का माल लाकर जमा कर देता था। आसपास के कुछ गांवों से उसने कुछ चर्मकारों को यहां लाकर बसाया और गढ़ी की रक्षा का भार उन्हें सौंप दिया। जब उसके सैनिकों की संख्या लगभग चौदह हज़ार हो गई तो चूरामन एक विश्वस्त सरदार को गढ़ो का अधिकार देकर लूटमार करने के लिए कोटा-बूंदी की ओर चला गया। भरतपुर की शोभा बढ़ाने तथा राजधानी को सुंदर तथा शानदार महलों से अलंकृत करने का कार्य राजा सूरजमल जाट ने किया जो भरतपुर का सर्वश्रेष्ठ शासक था। 1803 ई० में

लार्ड लेक ने भरतपुर के क़िले का घेरा डाला। इस समय भरतपुर तथा परिवर्ती प्रदेश में आगरे तक राजा जवाहरसिंह का राज्य था। क़िले की स्थूल मिट्टी की दीवारों को तोप के गोलों से टूटता न देख कर लेक ने इन की नींव में बारूद भरकर इन्हें उड़ा दिया। इस युद्ध के पश्चात् भरतपुर की रियासत अंग्रेजों के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत आ गई।

भरुकच्छ

भरुकच्छ भृगुकच्छ (=भड़ौंच) का रूपांतरण है। महाभारत, सभा० 51,10 में भरुकच्छ निवासियों का युधिष्ठिर की राजसभा में गांधार देश के बहुत से घोड़ों को भेंट में लेकर आने का वर्णन है—'बलि च कृत्स्नमादाय भरुकच्छनिवासिनः, उपनिन्युर्महाराज हयान्गांधारदेशजान्'—इसके आगे (सभा० 51,10) समुद्रनिष्कुटप्रदेश के निवासियों का उल्लेख है। समुद्रनिष्कुट कच्छ का प्राचीन अभिधान था। इस से भरुकच्छ का भड़ौंच से अभिज्ञान पुष्ट हो जाता है। शूर्पारक जातक में भरुकच्छ को भरुराष्ट्र का मुख्य स्थान माना गया है। इस जातक में भरुकच्छ के समुद्र-व्यापारियों की साहसिक यात्राओं का विशद वर्णन है। भरुकच्छ का उल्लेख (एक पाठ के अनुसार) रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में है—'श्वभ्रभरुकच्छ सिंधु······' आदि।

भरुराष्ट्र

भृगुकच्छ या भड़ौंच जनपद का नाम। शूर्पारकजातक में भरुरट्ठ (=भरुराष्ट्र) का नामोल्लेख इस प्रकार है—'अतीते भरुरट्ठे भरुराजा नाम रज्जं कारेसि, भरुकच्छं नाम पट्टनगामो अहोसि'—अर्थात् भरुराष्ट्र में भरु राजा राज करता था जिसकी राजधानी भरुकच्छ में थी। इस प्रदेश के समुद्रवणिकों की साहसयात्राओं का रोमांचकारी वृत्तांत शूर्पारक-जातक में वर्णित है। (दे० भृगुकच्छ।)

भर्ग दे० भग्ग

भर्भक

'शर्मकान् भर्भकांश्चैव व्यजयत् सांत्वपूर्वकम्, वैदेहकं च राजानं जनकं जगतीपतिम्' महा० सभा० 30,13। शर्मक-भर्भक निवासियों को भीम ने अपनी पूर्वदिशा की दिग्विजय-यात्रा में हराया था। संदर्भ से इनकी स्थिति विदेह या मिथिला (बिहार) तथा गोरखपुर (उ० प्र०) के बीच के प्रदेश में जान पड़ती है। श्री वा० श० अग्रवाल के मतानुसार शर्मक-भर्भक लिच्छवियों की उपजातियां थीं। यदि यह तथ्य हो तो इन स्थानों का संबंध वैशाली से होना चाहिए। भर्भक का पाठांतर महाभारत के नीलकंठी संस्करण में वर्मक है।

भलदरिया (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

वन्य प्रदेश में बहने वाली इस नदी के कांठे में कई प्रागैतिहासिक गुफाएं अवस्थित हैं जिनमें आदियुगीन चित्रकारी का अंकन है। एक चित्र में एक जंगली सुअर के शिकार का सजीव आलेखन है। सुअर के शरीर में तेज तीर जैसे अस्त्र घुसे हुए हैं और उससे रक्त बह रहा है। सुअर की मुद्रा से उसके शरीर की पीड़ा झलक रही है।

भल्लाट

'एवं बहुविधान् दिशान् विजिग्ये भरतर्षभ: भल्लाटमभितो जिग्ये शुक्तिमंत च पर्वतम्'—महा० सभा०, 30,5। भीमसेन ने पूर्व दिशा की दिग्विजय यात्रा में इस देश को विजित किया था। इसका नाम शुक्तिमान् पर्वत के साथ तथा काशी (सभा० 30,6) से पहले होने से ऐसा जान पड़ता है कि यह काशी और विंध्याचल की उत्तरी शैलमाला के बीच का भाग रहा होगा। संभव है यह ज़िला मिर्जापुर (उ० प्र०) के निकटवर्ती भूभाग का नाम हो। कल्किपुराण में भी इसका उल्लेख है।

भवपुर (कंबोडिया)

प्राचीन भारतीय उपनिवेश कंबुज का एक नगर। कंबुज में हिंदू नरेशों का राज प्रायः तेरह सौ वर्ष तक रहा था।

भवरोगहर

वह वैद्यनाथ धाम है। 'वैद्याभ्यां पूजितं सत्यं लिंगमेतत् पुरा मम। वैद्यनाथमिति ख्यातं सर्व कामप्रदायकम्' शिवपुराण।

भांखरी (ज़िला अलीगढ़, उ० प्र०)

इस ग्राम से विष्णु की एक सुंदर गुप्तकालीन मूर्ति प्राप्त हुई थी जो मथुरा-मूर्तिकला की परंपरा में निर्मित होने के कारण वहीं के संग्रहालय में रखी गई है। इसमें विष्णु के साधारण मुख के अतिरिक्त नृसिंह और वराह की मुखाकृतियां भी प्रदर्शित हैं। गुप्तकाल में इस प्रकार की मूर्तियों का प्रचलन था। मूर्ति के पीछे एक प्रभामंडल था जो अब टूटी हुई दशा में है। इस पर अग्नि, नवग्रह, अश्विनीकुमार तथा सनक, सनातन तथा सनत्कुमार की प्रतिमाएं अंकित हैं। विद्वानों का विचार है कि विष्णु के नृसिंह और वराह रूपों का अंकन, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की शकविजय तथा दुःखमग्ना पृथ्वी के उद्धार का प्रतीक है।

भांडक=भांदक दे० भद्रावती (3)

भांडारेज (राजस्थान)

इस स्थान पर एक बावड़ी है जो राजस्थान की प्राचीन शिल्पकला का

सुंदर उदाहरण है। इसके विषय में स्थानीय कपोलकल्पना है कि इसे प्रेतात्माओं ने अर्ध रात्रि के समय बनवाया था।

भांडासर (ज़िला बीकानेर, राजस्थान)

इस स्थान पर राणकपुर के त्रैलोक्यदीपक नामक ऋषभदेव के प्रसिद्ध मंदिर के अनुकरण पर बना हुआ जैन मंदिर है किंतु इसमें राणकपुर के मंदिर की भव्यता तथा कला-सौंदर्य के दर्शन नहीं होते।

भागनगर, भागनगरी=भागनेर

हैदराबाद का प्राचीन नाम। शिवाजी के राजकवि भूषण ने भागनगर का नामोल्लेख कई स्थानों पर किया है—'भूषन भनत भागनगरी कुतुबसाही दैकरि गंवायो रामगिरि से गिरीस को'—शिवराज भूषण, 241। 'गढ़नेर, गढ़चांदा, भागनेर, बीजापुर नृपन की बारी रोप हाथनि मलत है' शिवराजभूषण, 116. भूषण के अनुसार भागनगर को कुतुबशाह (सुलतान गोलकुंडा) ने शिवाजी को दे दिया था और शिवाजी ने संधि होने पर मुगलों को। भागनगर को गोलकुंडा के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने 1591 ई० में अपनी प्रेयसी भागमती के नाम पर बसाया था। (दे० हैदराबाद)

भागलपुर

(1) दे० चंपा

(2) (उ० प्र०) भटनी-इलाहाबाद रेल शाखा पर तुर्तीपार स्टेशन के निकट है। यहां एक खंडित स्तंभ है जिस पर 10वीं शती की कुटिलालिपि में एक अभिलेख अंकित है। इस के ऊपर उस समय के प्रसिद्ध तीर्थ यात्री नगरध्वज-जोगी का नाम उत्कीर्ण है। नाम के आगे 900 का अंक है जिसका संबंध हर्षसंवत् से जान पड़ता है। स्थानीय लोकश्रुति से विदित होता है कि मझौली परिवार के पूर्वज राजा भिमल ने इस स्तंभ को बनवाया था।

भागीरथी

गंगा का एक नाम जिसका संबंध महाराज भगीरथ से है। भगीरथ की तपस्या के फलस्वरूप गंगा के अवतरण की कथा वाल्मीकि बाल० 38 से 44 अध्याय तक है। कथा के अंत में गंगा के भागीरथी नाम का उल्लेख है—'गंगा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च त्रीन्पथो भावयन्तीति तस्मान् त्रिपथगा स्मृता'—बाल० 44,6। महाभारत में भी भागीरथी गंगा का वर्णन पांडवों की तीर्थयात्रा के प्रसंग में हैं—'तत्रापश्यत् धर्मात्मा देव देवर्षिपूजितम्, नरनारायण-स्थानं भागीरथ्योपशोभितम्'। यह बदरीनाथ का वर्णन है। भागीरथी गंगा की उस शाखा को कहते हैं जो गढ़वाल (उ० प्र०) में गंगोत्री से निकल कर देव-

प्रयाग तक आती है और वहां गंगा की मूलधारा अलकनंदा में मिल जाती है।

भाजा (महाराष्ट्र)

बंबई-पूना रेलपथ पर मलवणी स्टेशन के निकट यह स्थान बौद्धकालीन गुहामंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। ये संख्या में 18 हैं। इनके बीच में 17 फुट लंबी चौड़ी चैत्यशाला है जो बहुत प्राचीन है। इसके सामने बरामदा और आठ प्रकोष्ठ हैं जो भिक्षुओं के रहने के काम में आते थे। गुहाओं में मूर्तिकला के उदाहरण बहुत थोड़े हैं। इसकी भित्तियों पर पांच मानवाकृतियां उत्कीर्ण हैं जिनके नीचे दानवों की प्रतिमाएं बनी हैं। दूसरी मूर्ति संभवत: गजारूढ़ देवेंद्र की है। यह गुहाविहार सूर्य के उपासकों द्वारा निर्मित जान पड़ता है। इसका निर्माण-काल 200-300 ई० पू० है। भाजा का पहाड़ी पर लोहगढ़ तथा ईशापुरी के प्राचीन दुर्ग हैं।

भाभेर (ज़िला खानदेश, महाराष्ट्र)

धूलिया से 30 मील दूर यहां एक प्राचीन जैन गुहा मंदिर है जो अब नष्ट हो गया है। यह एक छोटी पहाड़ी में से काट कर बनाया गया है। इसमें तीर्थंकरों की कई मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

भारत=भारतवर्ष

पौराणिक भूगोल के अनुसार भारतवर्ष जंबूद्वीप का एक वर्ष या भाग है। इसका नाम दुष्यन्त-शकुंतला के पुत्र भरत के नाम पर प्रसिद्ध हुआ है। किंतु विष्णुपुराण के अनुसार भरत को ऋषभदेव का पुत्र बताया गया है जिसे ऋषभदेव ने वन जाते समय अपना राजपाट सौंप दिया था—'ततश्च भारतंवर्षमेतल्लोकेषु गीयते, भरताय यत: पित्रा दत्तं प्रतिष्ठता वनम्'—विष्णु 2,1,32। विष्णुपुराण 2,3,1 में भारतवर्ष की निम्न परिभाषा है—'उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं वर्षं त भारतं नाम भारती यत्र सन्तति:'। अगले श्लोकों में इस देश का विस्तार नौ सहस्र योजन कहा गया है और इसमें सात कुलपर्वतों की स्थिति बताई गई है। भारतवर्ष के निम्न नौ खंड या भाग हैं—इंद्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व, वारुण और भारत (विष्णु० 2,3,6-7) विष्णुपुराण के रचयिता ने देश-प्रेम की भावना से अभिभूत होकर कितने सुंदर शब्दों में भारत की गौरव गाथा लिखी है।—'अत्र जन्म सहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम कदाचिल्लभते जंतुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात्'; 'गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तुते भारतभूमिभागे, स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात्' विष्णु० 2,3,23-24। अर्थात् हे महापुरुष, सहस्रों

जन्मों के पुण्य संचित होने पर ही जीवों का, संयोग से, इस महान् देश में जन्म होता है। देवगण भी निरंतर यही गान करते हैं कि स्वर्गापवर्ग के मार्गस्वरूप इस भारत में जन्म लेकर मनुष्य देवताओं से भी अधिक गौरवशाली और धन्य हो जाते हैं। वास्तव में बौद्धधर्म के अपकर्ष के पश्चात् और प्राचीन हिंदू धर्म के पुनरुज्जीवन काल (गुप्तकाल) में, भारत के भौगोलिक स्वरूप में दृढ़ आस्था तथा इसके पर्वतों, नदियों, नगरों वरन् देश के प्रत्येक भूमि-भाग के प्रति प्रगाढ़ प्रेम एवं उनकी तीर्थरूप में मान्यता—ये पुनीत भावनाएं प्रत्येक भारत-वासी के हृदय में प्रतिष्ठित हो गई थीं। इन्हीं भावनाओं ने गुप्तकाल में, जो कालिदास, विष्णुपुराण और महाभारत (नवीन संस्करण) का युग था, एक नई चेतना एवं राष्ट्रीय संस्कृति को जन्म दिया जिनका मुख्य आधार राष्ट्र की भौतिक तथा भौगोलिक एकता के प्रति अगाध और अटूट प्रेम था। बौद्ध धर्म की अंतर्राष्ट्रीयता ने राष्ट्रीय एकता के सूत्र विच्छिन्न कर दिए थे। उन्हें इस काल में देश के मनीषियों ने, जिनमें पुराणों तथा धर्मशास्त्रों के रचयिता प्रमुख थे, बड़े परिश्रम से फिर से संजोया और इनके सुदृढ़ बंधन में पूरे भारत की समाज तथा संस्कृति को बांधकर एक महान् राष्ट्र की स्थापना की जिससे सैकड़ों वर्षों तक शत्रुओं से देश की रक्षा होती रही।

जैन ग्रंथ जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति में भारतवर्ष को जूंबद्वीप के अंतर्गत चक्रवर्ती सम्राट् का राज्य बताया गया है और विंध्याचल (वैताढ्य) पर्वत द्वारा इसको आर्यावर्त और दाक्षिणात्य दो विभागों में विभक्त माना गया है।

भारद्वाज दे० नारीतीर्थ

भारद्वाज-आश्रम

यह रामायण काल में प्रयाग के अन्तर्गत था। आज भी प्रयाग रेल-स्टेशन के निकट इसकी स्थिति बताई जाती है। वन जाते समय श्रीरामचंद्र, लक्ष्मण और सीता तथा उनसे मिलने के लिए चित्रकूट आते हुए भरत और पुरवासी-गण, भारद्वाज के आश्रम में ठहरे थे। वह गंगा-यमुना के संगम के पास स्थित था। चित्रकूट भी यहां से पास ही था। (दे० चित्रकूट)

भारद्वाजी

गोदावरी नदी की सप्त शाखाओं में से एक है।

भारमौर (हिमाचल प्रदेश)

इस स्थान पर प्रायः 1200 वर्ष प्राचीन कई मंदिर हैं। ये शिखर सहित हैं तथा प्राचीन वास्तु के अच्छे उदाहरण हैं।

भारहुत (म० प्र०)

भूतपूर्व नागोद रियासत में स्थित है। यह स्थान प्रथम-द्वितीय शती ई० पू० में निर्मित बौद्धस्तूप तथा इसके तोरणों पर अंकित मूर्तिकारी के लिए सांची के समान ही प्रसिद्ध है। स्तूप के पूर्व में स्थित तोरण के स्तंभ पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण 'वाछीपुत धनभूति' ने करवाया था जो गोतीपुत अगरजु का पुत्र और राजा गागीपुत विसदेव का प्रपौत्र था। इस अभिलेख की लिपि से यह विदित होता है कि यह तोरण शुंग-काल—(प्रथम-द्वितीय शती ई० पू०) में बना था। भारहुत और सांची के तोरणों की मूर्तिकारी तथा कला में बहुत साम्य है क्योंकि ये दोनों लगभग एक काल के हैं और इनका विषय भी प्रायः एक ही है। इनमें से अधिकांश में, बौद्ध जातक कथाओं का सरल, सुंदर और कलात्मक अंकन है। भारहुत का स्तूप पूर्णरूपेण नष्ट हो चुका है। इसके तोरणों के केवल कुछ ही कलापट्ट कलकत्ता के संग्रहालय में सुरक्षित हैं किंतु ये भारहुत की कला के सरल सौंदर्य के परिचय के लिए पर्याप्त हैं।

भारुंड

वाल्मीकि रामायण में भारुंड वन का उल्लेख भरत की केकय देश से अयोध्या तक की यात्रा के प्रसंग में है, 'सरस्वती च गंगा च युग्मेन प्रतिपद्य च, उत्तरान्वीरमत्स्यानां भारुंडं प्राविशद्‌वनम्' अयो० 71,5। सरस्वती और गंगा के बीच में इस वन की स्थिति थी।

भार्गवी

कावेरी नदी के शिवसमुद्रम् नामक द्वीप से प्रायः तीन मील दूर भार्गवी नदी है जिसका नाम भृगुवंशीय परशुराम के नाम पर प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि भार्गवी नदी के तट पर परशुराम की तपःस्थली थी।

भालक=भालकेश्वर=भालेश्वर (काठियावाड़, गुजरात)

प्रभासपाटन के निकट ही यह वह स्थान है जहां पीपल वृक्ष के नीचे बैठे हुए भगवान् कृष्ण के चरण में जरा नामक व्याध ने धोखे से बाण मारा था जिसके परिणामस्वरूप वे शरीर त्याग कर परमधाम सिधारे थे। आज भी यहां उसी पीपल का वंशज, मोक्षपीपल नामक वृक्ष स्थित है।

भावन

द्वारका के उत्तर की ओर वेणुमान् पर्वत का एक वन—'भाति चैत्ररथं चैव नंदनं च महावनम्, रमणं भावनं चैव वेणुमन्तः समंततः'—महा० सभा०, 38 दाक्षिणात्य पाठ।

भावापार (ज़िला बस्ती, उ० प्र०)

प्राचीन बौद्ध स्मारकों के खंडहरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। बस्ती के ज़िले में या उसके सीमावर्ती नेपाल के संलग्न भूभाग में, बुद्ध की जीवनी से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। इन्हीं में इसकी भी गणना है।

भास्कर क्षेत्र=भास्करपुरम् (दे० करूर)

भिसरोर (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

इस स्थान पर प्राचीन समय में मेवाड़ राज्य का एक प्राचीन दुर्ग था। हल्दीघाटी के युद्ध के पश्चात् जब राणाप्रताप और उनके भाई शक्तसिंह में पुनः मेल हो गया तो राणा ने शक्तसिंह के अपराध क्षमा करके उसे भिसरोर का दुर्ग जीतने को कहा। यह दुर्ग मुगलों के अधिकार में था। शक्तसिंह ने बड़ी वीरता से युद्ध करके इस को विजित कर लिया। प्रतापसिंह ने दुर्ग को शक्तसिंह को सौंप कर उसे ही यहां का अधिकारी बना दिया। शक्तसिंह के वंशजों—शक्तावत राजपूतों का यहां बहुत समय तक अधिकार रहा।

भिकियासेण (तहसील रानीखेत, ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

रामगंगा और गगास नदियों के संगम पर बसा हुआ तीर्थ। यहां का प्राचीन शिवमंदिर उल्लेखनीय है।

भिन्नमाल=भिलमाल=श्रीमाल (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

आबू पहाड़ से 50 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है। चीनी यात्री युवानच्वांग ने भिन्नमाल को संभवतः पिलोमोलो नाम से अभिहित किया है और इस नगर को गुर्जरदेश की राजधानी बताया है। भिन्नमाल का एक अन्य नाम श्रीमाल भी प्रचलित है। 12वीं-13वीं शती में रचित प्रभावकचरित नामक ग्रंथ में प्रभाचंद्र ने श्रीमाल को गुर्जर देश का प्रमुख नगर कहा है—'अस्ति-गुर्जरदेशोऽन्यसज्जराजन्यदुर्जरः तत्र श्रीमालमित्यस्ति पुरं मुखमिव क्षितेः'। इस ग्रंथ में यहां के तत्कालीन राजा श्रीवर्मल का उल्लेख है। सातवीं शती ई० में गुर्जर-प्रतिहार राजपूतों की शक्ति का विकास दक्षिणी मारवाड़ में प्रारंभ हुआ था। इन्होंने अपनी राजधानी भिन्नमाल में बनाई। ये राजपूत स्वयं को विशुद्ध क्षत्रिय और श्रीराम के प्रतिहार लक्ष्मण का वंशज मानते थे। भिन्नमाल और कन्नौज के गुर्जर–प्रतिहार राजा बहुत प्रतापी और यशस्वी हुए। भिन्नमाल के राजाओं में वत्सराज (775-800 ई०) पहला प्रतापी राजा था। इसने बंगाल तक अपनी विजय-पताका फहराई और वहां के पालवंशीय राजा धर्मपाल को युद्ध में पराजित किया। मालवा पर भी इसका शासन स्थापित हो गया था। वत्सराज को राष्ट्रकूट नरेश राजध्रुव से पराजित होना पड़ा अतः उसका

महाराष्ट्र-विजय का स्वप्न साकार न हो सका। वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने धर्मपाल को मुंगेर की लड़ाई में हराया और उसके द्वारा नियुक्त कन्नौज के शासक चक्रायुध से कन्नौज को छीन लिया। उसके प्रभुत्व का विस्तार काठियावाड़ से बंगाल तक और कन्नौज से आंध्रप्रदेश तक स्थापित था। उसने सिंध के अरबों को भी पश्चिमी भारत में अग्रसर होने से रोका। किंतु अपने पिता की भांति नागभट्ट को भी राष्ट्रकूट नरेश से हार माननी पड़ी। इस समय राष्ट्रकूट का शासक गोविंद तृतीय था। नागभट्ट के पौत्र मिहिर भोज (836-890 ई०) ने उत्तरभारत में गुर्जर-प्रतिहारों के समाप्त होते हुए प्रभुत्व को सँभाला। इसने अपने विस्तृत राज्य का भली-भांति शासन प्रबंध करने के लिए, अपनी राजधानी भिन्नमाल से हटाकर कन्नौज में स्थापित की। इस प्रकार भिन्नमाल को लगभग 100 वर्षों तक प्रतापी गुर्जर-प्रतिहारों की राजधानी बने रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भिन्नमाल में इनके शासनकाल के अनेक ऐतिहासिक अवशेष स्थित हैं। अनुमान है कि इनका समय 7वीं शती का उत्तरार्ध और 8वीं शती का पूर्वार्ध था। शिशुपालवध की कई प्राचीन हस्तलिपियों में महाकवि माघ का भिन्नमालव या भिन्नमाल से संबंध इस प्रकार बताया गया है—'इति श्री भिन्नमालववास्तव्यदत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये'—माघ के पितामह सुप्रभदेव श्रीमालनरेश वर्मलात या वर्मल के महामात्य थे। ऐतिहासिक किंवदंतियों से भी यही सूचित होता है कि संस्कृत के महाकवि माघ भिन्नमाल के ही निवासी थे। भिन्नमाल का रूपांतर भिलमाल भी प्रचलित है।

भिलायो

सूरत के निकट एक नगर जिसका उल्लेख छत्रपति शिवाजी के राजकवि भूषण ने किया है—'सहर भिलायो मारि गरद मिलाओ गढ़ अजहूं न आगे पाछे भूप किन नाकरी' (भूषण ग्रंथावलि, फुटकर छंद 30)। जान पड़ता है कि शिवाजी ने सूरत पर आक्रमण के समय भिलायो को भी विध्वंस किया था। भूषण ने यहां के गढ़ के शिवाजी द्वारा धूल में मिलाए जाने का उल्लेख किया है।

भिल्लग्राम=दे० बिलग्राम

भीटा (ज़िला इलाहाबाद, उ०प्र०)

प्रयाग से लगभग बारह मील दक्षिण-पश्चिम की ओर यमुना तट पर कई विस्तृत खंडहर हैं जो एक प्राचीन समृद्धिशाली नगर के अवशेष हैं। इन खंडहरों से प्राप्त अभिलेखों में इस स्थान का प्राचीन नाम सहजाति है। 1909-1910 में भीटा में भारतीय पुरातत्व-विभाग की ओर से मार्शल ने

उत्खनन किया था। विभाग के प्रतिवेदन में कहा गया है कि खुदाई में एक सुन्दर, मिट्टी का बना हुआ वर्तुल पट्ट प्राप्त हुआ था जिस पर संभवतः शकुन्तला-दुष्यन्त की आख्यायिका का एक दृश्य अंकित है। इसमें दुष्यन्त और उनका सारथी कण्व के आश्रम में प्रवेश करते हुए प्रदर्शित हैं और एक आश्रमवासी उनसे आश्रम के हरिण को न मारने के लिए प्रार्थना कर रहा है। पास ही एक कुटी भी है जिसके सामने एक कन्या आश्रम के वृक्षों को सींच रही है। यह मृत्खंड शुंगकालीन है (117–72 ई० पू०) और इस पर अंकित चित्र यदि वास्तव में दुष्यन्त-शकुन्तला की कथा (जिस प्रकार वह कालिदास के नाटक में वर्णित है) से संबंधित है, तो महाकवि कालिदास का समय इस तथ्य के आधार पर, गुप्तकाल (5वीं शती ई०) के बजाए पहली या दूसरी शती से भी काफी पूर्व मानना होगा। किंतु पुरातत्व-विभाग के प्रतिवेदन में इस दृश्य की समानता कालिदास द्वारा वर्णित दृश्य से आवश्यक नहीं मानी गई है। भीटा से, खुदाई में, मौर्यकालीन विशाल ईंटें, परवर्तीकाल की मूर्तियां, मिट्टी की मुद्राएँ तथा अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक यह नगर काफी समृद्धिशाली था। यहां से प्राप्त सामग्री लखनऊ के संग्रहालय में है। भीटा के समीप ही मानकुंवर ग्राम से एक सुंदर बुद्ध-प्रतिमा मिली थी जिस पर महाराजाधिराज कुमारगुप्त के समय का एक अभिलेख उत्कीर्ण है (129 गुप्त संवत्=449)। सहजाति या भीटा, गुप्त और शुंग-काल के पूर्व एक व्यस्त व्यापारिक नगर के रूप में भी प्रख्यात था क्योंकि एक मिट्टी की मुद्रा पर 'सहजातिये निगमस' यह पाली शब्द तीसरी शती ई० पू० की ब्राह्मीलिपि में अंकित पाये गए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इतने प्राचीनकाल में भी यह स्थान व्यापारियों के निगम या व्यापारिक संगठन का केंद्र था। वास्तव में यह नगर मौर्यकाल में भी काफी समुन्नत रहा होगा जैसा कि उस समय के अवशेषों से सूचित होता है।

भीड़ (बीड़) (महाराष्ट्र)

किंवदंती के अनुसार महाभारतकाल में इस नगर का नाम दुर्गावती था। कुछ समय पश्चात् यह नाम बलनी हो गया। तत्पश्चात् विक्रमादित्य की बहिन चंपावती ने यहां विक्रमादित्य का अधिकार हो जाने पर इसका नाम चंपावती रख दिया। बीड़ का संभवतः सर्वप्रथम उल्लेख विज्जलवीड नाम से गणितज्ञ भास्कराचार्य के ग्रंथों में मिलता है। इनका जन्म विज्जलवीड में हुआ था जो सह्याद्रि में स्थित था। भीड़ या बीड़ विज्जलवीड का ही संक्षिप्त अपभ्रंश

जान पड़ता है। भास्कराचार्य 12वीं शती के प्रारंभ में हुए थे। इनके ग्रंथों—लीलावती तथा सिद्धांतशिरोमणि की तिथि 1120 ई० के आसपास मानी जाती है। बीड़ का प्राचीन इतिहास अंधकार में है किंतु यह निश्चित है कि यहां कालक्रमानुसार आंध्र, चालुक्य, राष्ट्रकूट, यादव और फिर देहली के सुलतानों का आधिपत्य रहा। अकबर के समकालीन इतिहास लेखक फरिश्ता ने लिखा है कि 1326 ई० में मुहम्मद तुगलक बीड़ होकर गुजरा था। तुगलकों के पश्चात् बीड़ पर बहमनी वंश के निजामशाही और फिर आदिलशाही सुलतानों का कब्जा हुआ और 1635 ई० में मुगलों का। मुगलों के पश्चात् यह स्थान मराठों और इसके बाद निजाम के राज्य में सम्मिलित हो गया। भूतपूर्व हैदराबाद रियासत के भारत में विलयन तक यह नगर इसी रियासत में था।

बीड़ का जिला मराठी कवि मुकुंदराम की जन्मभूमि है। इनका जन्म अंबाजोगई नामक स्थान पर हुआ था। महानुभाव-साहित्य की खोज होने से पूर्व ये मराठी के प्राचीनतम कवि माने जाते थे। इनके ग्रंथ विवेकसिंधु, परमामृत आदि हैं। अंबाजोगई में ही दासोपंत (1550-1615 ई०) का निवास स्थान था। इन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता पर बृहत् टीका लिखी है। कागज के अभाव में इन्होंने अपने ग्रंथ खद्दर के कपड़े पर लिखे थे। इनका एक ग्रंथ परिमाण में 24 हाथ लंबा और $2\frac{1}{2}$ हाथ चौड़ा है। बीड़ में खंडेश्वरी देवी के दो मंदिर हैं। मंदिर के एक ओर की दीवार गढ़े हुए सुडौल पत्थरों की बनी है। दूसरा मंदिर नगर से कुछ दूर है। इसमें मूल मूर्ति के अभाव में खांडोबा की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। इस मंदिर में 45 फुट ऊंचे दो दीपस्तंभ हैं जो वर्गाकार आधार पर स्थित हैं। 1660 ई० में बनी जामा मसजिद भी यहां का ऐतिहासिक स्मारक है।

भीतरगांव (जिला कानपुर, उ० प्र०)

कानपुर से लगभग 20 मील दूर इस स्थान पर ईंटों के बने हुए एक गुप्तकालीन मंदिर के अवशेष हैं। यह मंदिर कनिंघम के अनुसार (आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट जिल्द 11, पृ० 40-46) सातवीं-आठवीं शती ई० का है किंतु वोगल (Vogel) ने प्रमाणित किया है कि यह इससे कम-से-कम तीन सौ वर्ष अधिक प्राचीन है (आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट 1908-1909, पृ० 9)। संभवतः यह भारत का प्राचीनतम मंदिर है। यह पक्की ईंटों का बना है। इसका विवरण इस प्रकार है—एक वर्गाकार स्थान पर यह मंदिर बना है। वर्ग के कोने, एक छोड़कर एक, इस प्रकार से बने हैं और मध्य में 15 वर्ग फुट वर्ग का एक गर्भगृह तथा उसके साथ एक 7 फुट वर्ग का मंडप है। दोनों

के बीच एक मार्ग है। गर्भगृह के ऊपर एक वेश्म है जिसका क्षेत्र नीचे के कक्ष से लगभग आधा है। 1850 ई० में ऊपरी भाग की छत बिजली गिरने से नष्ट हो गई थी। स्थूल दीवारों के बाह्य भाग पर आयताकार घेरों में सुंदर मूर्तिकारी का अंकन है। ये मूर्तियां पकी हुई मिट्टी की बनी हैं। मंदिर में अनेक सुंदर अलंकरणों का प्रदर्शन किया गया है। भित्तियों के ऊपरी भागों पर एकांतरित घेरे तथा अलंकरण-स्तंभ बने हैं। कसिया के निर्वाण-मंदिर की कुर्सी के पूर्वी भाग पर भी इसी प्रकार का अलंकरण है जिससे इन दोनों संरचनाओं की समकालीनता सूचित होती है। श्री राखालदास बनर्जी के मत में इस मंदिर के शिखर में महराबों की पंक्तियां बनी हैं जो चैत्यवातायनों से भिन्न हैं। मंदिर की कुर्सी के ऊपर उभरी हुई पट्टियां नहीं हैं जिससे नचना-कुठारा तथा भुमरा के मंदिरों की वास्तुकला से भीतरगांव की कला भिन्न जान पड़ती है। मंदिर का शिखर वास्तविक शिखर है तथा 40 फुट के करीब ऊंचा है। भीतरगांव का मंदिर, गुप्त वास्तुकला का अनुपम उदाहरण माना जाता है।

भीतरी (ज़िला गाजीपुर, उ०प्र०)

सैदपुर-भीतरी नाम के रेलस्टेशन से पांच मील उत्तर-पूर्व में एक बड़ा ग्राम है जिसमें कई गुप्तकालीन खंडहर हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्कंदगुप्त के समय का प्रसिद्ध स्तंभ है जिस पर अंकित अभिलेख में गुप्त-सम्राट् स्कंदगुप्त के राज्यकाल के प्रारंभिक वर्षों के संघर्षमय जीवन का वर्णन सुंदर संस्कृत काव्य-शैली में प्रणीत है। स्कंदगुप्त ने अपने भुजबल से हूणों तथा पुष्यमित्रों के आक्रमणों से गुप्त-साम्राज्य की रक्षा किस प्रकार की इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—'पितरि दिविमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं, भुजबलविजितार्या: यः प्रतिस्थाप्य भूयः, जितमितिपरितोषान् मातरम् सानेस्त्रत्रां हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेत'। इस उद्धरण से स्कंदगुप्त की माता का नाम देवकी जान पड़ता है। स्कंदगुप्त को पुष्यमित्रों से युद्ध करते समय भूमि पर शयन कर तीन रातें बितानी पड़ी थीं—'विचलित कुललक्ष्मीस्तंभनेयोद्यतेन क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा, समुदितबलकोशान् पुष्यमित्रान् च जित्वा क्षितिपचरण पीठे स्थापितो वामपादः'। यह स्तंभ बालु-प्रस्तर का बना है। विष्णु की एक मूर्ति पहले इस स्तंभ के शीर्ष पर स्थापित थी। यह अब नहीं है। अभिलेख जो तिथिरहित है, संभवतः 455 ई० के लगभग उत्कीर्ण किया गया था।

भीमकुल्या

नर्मदा की सहायक नदी जो पिपरिया से एक मील दूर नर्मदा में मिलती

है। किंवदंती है कि इस स्थान पर मार्कंडेय-ऋषि का आश्रम था।

भीमरथी

'वेणा भीमरथी चैव नद्यौ पापभयापहे, मृगद्विजसमाकीर्णे तापसालय-भूषिते'—महा० वन० 88,3 अर्थात् वेणा और भीमरथी नदियां समस्त पापभय को नाश करने वाली हैं। इनके तट पर मृगों और द्विजों का निवास है तथा तपस्वियों के आश्रम हैं। भीमरथी, कृष्णा की सहायक नदी भीमा है। उपर्युक्त उद्धरण में पांडवों के पुरोहित धौम्य ने दक्षिण दिशा के तीर्थों के संबंध में इस नदी का उल्लेख किया है। भीष्म० 9,20 में भी भीमरथी का उल्लेख है—'शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि'। विष्णुपुराण 2,3,12 में भीमरथी को सह्याद्रि से उद्भूत कहा गया है—'गोदावरीभीमरथा कृष्णवेण्यादिकास्तथा सह्यपादोद्भूताः नद्यः स्मृताः पापभयापहाः'। सह्याद्रि पश्चिमी घाट की पर्वत-श्रेणी का नाम है। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में भीमरथी का वेण्या और गोदावरी के साथ उल्लेख है—'तुंगभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी।

भीमशंकर (महाराष्ट्र)

बंबई से पूर्व की ओर 70 मील और पूना से उत्तर की ओर 43 मील पर भीमशंकर का मंदिर स्थित है जिसकी गणना द्वादश ज्योतिर्लिंगों में की जाती है। यह भीमा नदी के तट पर और सह्याद्रि पर्वत पर स्थित है। पुराणों में इस मंदिर की स्थिति डाकिनी ग्राम में मानी है ('डाकिन्यां भीमशंकरम्')। भीमनदी भीमशंकर पर्वत से ही निकलती है। भीमशंकर पर्वत सह्याद्रि का एक शिखर है।

भीमा

(1)=भीमरथी

(2) महाराष्ट्र की चंद्रभागा नदी जिसके तट पर प्रसिद्ध तीर्थ पंढरपुर स्थित है। यह सह्याद्रि से निकल कर कृष्णा नदी में मिल जाती है। संभवतः महाभारत भीष्म० 9,22 में इसी का उल्लेख है—'पूर्वाभिरामां वीरांच भीमामोघवतीं तथा, पाशाशिनीं पापहरां महेंद्रां पाटलावतीम्'। भीमरथी का उल्लेख इसी संदर्भ में, 9,20 में है जिससे इन दोनों की भिन्नता सूचित होती है।

भीमाक्षी (गुजरात)

यह नदी खेड़ाब्रह्मा के निकट हिरण्याक्षी और कोसंबी नदियों के संगम पर इनसे मिलती है। संगम पर भृगु का आश्रम बताया जाता है।

भीमावत (ज़िला गोरखपुर, उ० प्र०)

कसिया के माथाकुंवर कोट के उत्तर और दक्षिण की ओर विस्तृत मैदान है जहां तृणाच्छादिक अनेक प्राचीन ढूह हैं। 1904-1905 की खुदाई में पुरातत्त्व विभाग को यहां के खंडहरों से कुछ मुहरें प्राप्त हुई थीं जिसमें मल्लों के उस स्थान का वर्णन है जहां भगवान् बुद्ध की अंतिम क्रिया के लिए चिता तैयार की गई थी।

भीलसा (म० प्र०)

भीलसा का नाम संभवत: भैल्लस्वामिन् के सूर्य-मंदिर के नाम के साथ संबंधित है। 11 वीं शती में अलबेरुनी ने इस स्थान को महाबलिस्तान लिखा था। यह स्थान प्राचीन नगरी विदिशा के निकट था। (दे० विदिशा, बेसनगर)

भुमरा (म० प्र०)

जबलपुर-इटारसी रेल-शाखा पर उंछेरा स्टेशन से छ: मील है। 1920 ई० में यहां स्थित एक गुप्तकालीन मंदिर का पता लगा था जिसकी खोज का श्रेय श्री राखालदास बनर्जी को है। मंदिर 35 फुट लंबा और इतना ही चौड़ा है। इसमें शिखर का अभाव है और छत सपाट है। मंदिर के सामने 13 फुट चौड़ी कुर्सी दिखाई पड़ती है जिस पर प्राचीनकाल में मंदिर का सभामंडप स्थित रहा होगा। इसमें आगे सीढ़ियां हैं और दोनों ओर दो अन्य छोटे मंदिरों की कुर्सियाँ। मंदिर का गर्भगृह 15 फुट लंबा और इतना ही चौड़ा है। यह कैमूर में प्राप्त होने वाले लाल बलुआ पत्थर का बना है जिसमें चूने का प्रयोग नहीं है। छत लबे सपाट पत्थरों से ढकी है। मंदिर की भित्तियों तथा छत के पत्थरों पर भी सूक्ष्म नक्काशी का काम है। भुमरा से एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ-अभिलेख भी प्राप्त हुआ था। इसका संबंध परिव्राजक महाराज हस्तिन् तथा उच्छकल्प के महाराज सर्वनाथ से है। फ्लीट के मत में यह तिथि-हीन अभिलेख संभवत: 508-509 ई० का है। इस लेख का प्रयोजन अंबलोद नामक ग्राम में इन दोनों महाराजाओं के राज्यों की सीमा पर स्तंभ बनवाने का उल्लेख है। यह स्तंभ ग्रामिक वासु के पुत्र शिवदास द्वारा स्थापित किया गया था। अंबलोद भुमरा का ही तत्कालीन नाम जान पड़ता है।

भुरेंधी=दे० बांदा।

भुवनगिरि=भौनगिरि (ज़िला नलगोंडा, आं० प्र०)

इस स्थान पर भयानक चट्टान पर बना हुआ प्राचीन काल का एक दुर्भेद्य दुर्ग स्थित है। यादगिरि पहाड़ी पर नरसिंह स्वामी का प्राचीन मंदिर है और पास ही संत जमाल बहर का मकबरा।

भुवनेश्वर (उड़ीसा)

उड़ीसा की प्राचीन राजधानी। इसको पहले एकाम्रकानन भी कहते थे। भुवनेश्वर को बहुत प्राचीन काल से ही उत्कल की राजधानी बने रहने का सौभाग्य मिला है। केसरीवंशीय राजाओं ने चौथी शती ई० के उत्तरार्ध से 11वीं शती ई० के पूर्वार्ध तक, प्राय: 670 वर्ष या चवालीस पीढ़ियों तक उड़ीसा पर शासन किया और इस लंबी अवधि में उनकी राजधानी अधिकतर भुवनेश्वर में ही रही। एक अनुश्रुति के अनुसार राजा ययातिकेसरी ने 474 ई० में भुवनेश्वर में पहली बार अपनी राजधानी बनाई थी। कहा जाता है कि केसरीनरेशों ने भुवनेश्वर को लगभग सात सहस्र सुन्दर मंदिरों से अलंकृत किया था। अब कुल केवल पांच सौ मंदिरों के ही अवशेष विद्यमान हैं। इनका निर्माण काल 500 ई० से 1100 ई० तक है। मुख्य मंदिर लिंगराज का है जिसे ललाटेंदुकेशरी (617-657ई०) ने बनवाया था। यह जगत्प्रसिद्ध मंदिर उत्तरी भारत के मंदिरों में रचना-सौंदर्य तथा शोभा और अलंकरण की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस मंदिर का शिखर भारतीय मंदिरों के शिखरों के विकास-क्रम में प्रारंभिक अवस्था का शिखर माना जाता है। यह नीचे तो प्राय: सीधा तथा समकोण है किंतु ऊपर पहुंच कर धीरे-धीरे वक्र होता चला गया है और शीर्ष पर प्राय: वर्तुल दिखाई देता है। इसका शीर्ष चालुक्य-मंदिरों के शिखरों पर बने छोटे गुंबदों की भांति नहीं है। मंदिर की पार्श्व-भित्तियों पर अत्यधिक सुंदर नक्काशी की हुई है यहाँ तक कि मंदिर के प्रत्येक पाषाण पर कोई न कोई अलंकरण उत्कीर्ण है। जगह-जगह मानवाकृतियों तथा पशु-पक्षियों से संबद्ध सुन्दर मूर्तिकारी भी प्रदर्शित है। सर्वांग-रूप से देखने पर मंदिर चारों ओर से, स्थूल व लंबी पुष्पमालाएं या फूलों के मोटे गजरे पहने हुए जान पड़ता है। मंदिर के शिखर की ऊंचाई 180 फुट है। गणेश, कार्तिकेय तथा गौरी के तीन छोटे मंदिर भी मुख्य मंदिर के विमान से संलग्न हैं। गौरीमंदिर में पार्वती की काले पत्थर की बनी प्रतिमा है। मंदिर के चतुर्दिक् गज-सिंहों की उकेरी हुई मूर्तियां दिखाई पड़ती हैं। वर्तमानकाल में भुवनेश्वर को फिर से उड़ीसा की राजधानी बनाया गया है।

भूकुंड भैरव (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

केदारनाथ के निकट एक बर्फानी झील है जिसे मंदाकिनी गंगा का उद्गम होने के कारण प्राचीन समय से ही पुण्यस्थान माना जाता है।

भूतपुरी (मद्रास)

मद्रास से 37 मील और त्रैवलूर से 12 मील दक्षिण की ओर स्थित है।

भूतपुरी दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक रामानुजाचार्य (15 वीं शती) का जन्मस्थान है। अनंत सरोवर के निकट आचार्य के नाम पर एक प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर है। यह मंदिर बहुत विशाल और भव्य है। यहीं केशव भगवान् का मंदिर और विशाल स्तंभों वाले कई सभामंडप स्थित हैं। भूतपुरी का स्थानीय नाम श्रीपेरम्मुदूर है।

भूतलय

महाभारत में वर्णित एक अपवित्र स्थान—'युगंधरे दधिप्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले, तद्वद्भूतलये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमर्हसि' वन० 129,9। धर्मशास्त्र के अनुसार इस दूषित ग्राम में रहने मात्र से प्राजापत्य व्रत करने की आवश्यकता थी—'प्रोष्य भूतलये विप्रः प्राजापत्यं व्रतं चरेत्'। श्री चि० वि० वैद्य के मत में यह स्थान यमुनानदी के तट पर था क्योंकि वन० 129,13 में इसी प्रसंग के अन्तर्गत प्लक्षावतरण का वर्णन है जिसे 'यमुनातीर्थमुत्तमम्' कहा गया है।

भूतांबिलिका

घुमली (सौराष्ट्र, गुजरात) का प्राचीन नाम। इसे भूभृतपल्ली भी कहते थे। (दे० घुमली)

भूतेश्वर (म० प्र०)

भूतपूर्व ग्वालियर रियासत में पढ़ावली नामक स्थान के निकट एक पहाड़ी क्षेत्र या घाटी जिसमें प्राचीन समय के अगणित छोटे-छोटे शिव या विष्णुमंदिर हैं। इनमें से वर्तमान समय में केवल भूतेश्वर शिव के मंदिर की ही मान्यता शेष है।

भूपाल (म० प्र०)

कहते हैं कि परमारवंशीय नरेशों में प्रसिद्ध राजाभोज ने 1010 के लगभग इस नगर को बसाया था। भोजपाल इसका प्राचीन नाम था। अब तक भूपाल का एक भाग भोजपुरा के नाम से प्रसिद्ध है जहां का प्राचीन कलापूर्ण शिवालय इस स्थान का सुंदर स्मारक है। भूपाल के निकट ही प्राचीनकाल में एक बड़ी झील राजा भोज ने सिंचाई के लिए बनवाई थी। इसके बांध को गुजरात के सुल्तान होशंगशाह ने कटवा दिया था। कहा जाता है कि तीन साल तक इस झील का पानी निरंतर बहता रहा और तीन साल में यह स्थान बसने योग्य हुआ था। आजकल भी भूपाल के पास का क्षेत्र बहुत उपजाऊ है। वर्तमान ताल इसी प्राचीन झील का अवशिष्ट अंश हो सकता है। किंवदंती के अनुसार वास्तव में यह झील बहुत पुरानी है और कई लोग इसे रामायण में वर्णित पंपासर भी मानते हैं किंतु यह अभिज्ञान ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि पंपासरोवर

किष्किंधा के निकट स्थित था (दे० पंपा, किष्किंधा)। भूपाल के ताल के तट पर प्राचीन गोंड शासिका कमलापति का दो मंजिला भवन है। कहा जाता है यह प्रासाद पहले सात मंजिला था और इसकी कई मंजिलें तालाब के अंदर हैं। यह जन-प्रवाद यहां प्रचलित है कि कमलापति ने अपने पति की मृत्यु का संकेत पाकर अट्टालिका से नीचे ताल में कूदकर आत्म-हत्या कर ली थी। भूपाल में, भूतपूर्व मुसलमानी राजवंश का राज्य 18वीं शती के उत्तरार्ध में स्थापित हुआ था। इस राजवंश के शासनकाल के अनेक राजमहल तथा सुंदर भवन यहां के भव्य स्मारक हैं। इनमें सात मंजिला ताजमहल जो शाहजहां बेगम का निवास-गृह था, अब भी भूपाल के गतवैभव का साक्षी है। सचिवालय से प्रायः दो फर्लांग की दूरी पर भूपाल के भूतपूर्व नवाब हमीदुल्ला खां का महल है जिसे अहमदाबाद कहा जाता है।

भूभृतपल्ली

घुमली (सौराष्ट्र, गुजरात) का प्राचीन नाम। इसे भूतांबिलिका भी कहते थे।

भूरिसर (हरयाणा)

कुरुक्षेत्र में स्थित ज्योतिसर से 5 मील दूर पश्चिम में पेहेवा (प्राचीन पृथूदक) जाने वाले मार्ग पर स्थित है। कहा जाता है कि कौरवों के वीर सेनानी भूरिश्रवा की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थी। महाभारत द्रोण० 143,54 में सात्यकि द्वारा भूरिश्रवा का खड्ग से शिर काट लिए जाने का वर्णन है— 'प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे, सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनापाहरच्छिरः'।

भृगुकच्छ = भडौंच (गुजरात)

खंभात की खाड़ी के निकट, और नर्मदा के दाहिने तट पर नदी के मुहाने से लगभग 30 मील दूर बसा है। किंवदंती के अनुसार इस स्थान को जिसे शूर्पारकक्षेत्र भी कहा जाता था भृगुऋषि ने बसाया था। सन् 60 से 210 ई० तक रोमन इतिहास लेखकों—प्लिनी आदि ने इस व्यापारिक नगर को बेरीगाजा नाम से अभिहित किया है जो भृगुकच्छ का ही लैटिन रूपांतर है। पौराणिक कथा में यह वर्णित है कि भृगुवंशी परशुराम ने अपने परशु द्वारा इस स्थान से समुद्र को पीछे हटाकर इसे मनुष्यों के बसने योग्य बनाया था। नर्मदा के तट पर भृगु का मंदिर है और नदी-तट पर लगभग 100 फुट से अधिक ऊंची पहाड़ी पर प्राचीन दुर्ग अवस्थित है। भृगुकच्छ को सुप्पारक जातक में भरु-कच्छ कहा गया है और इसकी स्थिति भृगुराष्ट्र में बताई गई है तथा महाभारत में भी इसका भरुकच्छ नाम से उल्लेख है (दे० भरुराष्ट्र, भरुकच्छ)। सुप्पारक जातक में भरुकच्छ के वणिकों की अनजाने समुद्रों में साहस-यात्राओं का अनोखा

और रोमांचकारी वर्णन है जिसमें 'भरुकच्छा पयातानं वणिजानं धनेसिनं, नावाय विप्पपनठ्ठाय खुरमालीति वुच्चतीति' (अर्थात् भरुकच्छ से जहाज पर निकले हुए धनार्थी वणिकों को यह विदित हो कि इस समुद्र का नाम क्षुरमाली है)। इस वर्णन के प्रसंग में भृगुकच्छ के पोतवणिकों या समुद्र-व्यापारियों का बारबार उल्लेख है। इससे 5वीं–6वीं शती ई० पू० में भृगुकच्छ के बंदरगाह की एक व्यापारिक नगर के रूप में ख्याति प्रमाणित होती है। उस समय यह नगर समुद्रतट पर ही स्थित था। कालांतर में इसका बंदरगाह नर्मदा की लाई हुई मिट्टी से अँटकर बेकार हो गया।

भृगुक्षेत्र (जिला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर से 13 मील दूर स्थित भेड़ाघाट का प्राचीन पौराणिक नाम। यहां नर्मदा का प्रवाह ऊंची-ऊंची पहाड़ियों से घिर कर झील के रूप में परिणत हो गया है। चारों ओर रंगीन और श्वेत चमकदार संगमर्मर की पहाड़ियों का दृश्य बहुत ही अद्भुत और मनोमुग्धकारी है। भेड़ाघाट में भृगुऋषि की तपस्थली मानी जाती है। यहां कई पुराने मंदिर पहाड़ी के ऊपर स्थित हैं। यह स्थान अवश्य ही बहुत प्राचीन है। महाभारत में संभवत: यहां की संगमर्मर की पहाड़ियों का वैदूर्य-शिखर या वैदूर्य-पर्वत के नाम से वर्णन किया गया है। 'वैदूर्य-शिखरो नाम पुण्यो गिरिवर: शिव:'—महा० वन० 89,6; 'स पयोष्ण्यां नरश्रेष्ठ स्नात्वा वै भ्रातृभि: सह, वैदूर्यपर्वतंचैव नर्मदां च महानदीम्, देवाना मेति कौंतेय तथा राज्ञां सलोकताम्, वैदूर्यपर्वतं दृष्ट्वा नर्मदामवतीर्य च' वन० 121,16—19। धुवांधार नामक नर्मदा नदी के झरने के निकट द्वितीय शती ई० की एक मूर्ति प्राप्त हुई थी जो अब चौंसठ जोगिनियों के मंदिर में है। कई अन्य गुप्तकालीन मूर्तियां भी यहां से प्राप्त हुई थीं जो इस प्रदेश के तत्कालीन शासक परिव्राजक महाराजाओं तथा उच्छकल्प के नरेशों के समय में निर्मित हुई थीं। चौंसठ जोगनियों के मंदिर में त्रिपुरी के हैहयवंशी राजाओं के समय की भी कई मूर्तियां लक्ष्मणराज की रानी नोहाला द्वारा प्रतिष्ठापित हुई थी। चौंसठ जोगनियों के मंदिर का निर्माण कलचुरि संवत् 907=1155–1156 ई० में अल्हणदेवी ने करवाया था। इस मंदिर को गोलाकृति होने के कारण गोलकीमठ भी कहते हैं।

भृगुतुंग

(1)=तुंगनाथ

(2) वितस्ता या झेलम के निकट संभवत: पश्चिमी कश्मीर में स्थित हिमालय की श्रेणी का एक भाग। इसका वर्णन एक तीर्थ के रूप में महाभारत वन०

130,19 में है—'समाधीनां समासस्तु पांडवेय श्रुतस्त्वया तं द्रक्ष्यसि महाराज भृगुतुंगं महागिरिम्'—इससे अगले श्लोक में वितस्ता का उल्लेख है—'वितस्तां पश्य राजेंद्र सर्वपापप्रमोचनीम्'। यह पर्वत भृगुतुंग (1) से अवश्य ही भिन्न है।

(3) वाल्मीकि रामायण बाल० 61,11 में उल्लिखित एक पर्वत—'सपुत्र-सहितं तात सभार्यं रघुनंदन भुगुतुंगे समासीनमृचीकं संददर्श ह।' यह उपर्युक्त (1) या (2) में से कोई हो सकता है। यहाँ ऋचीक ऋषि का निवास स्थान बताया गया है।

भृगुपत्तन=भृगुकच्छ (भड़ौंच)

जैन तीर्थ माला चैत्यवंदन में उल्लिखित है 'श्री शत्रुंजय रैवताद्रिशिखर-द्वीपे भृगोः पत्तने'।

भृगुराष्ट्र दे० भरुराष्ट्र

भेड़ाघाट दे० भृगुक्षेत्र

भैरोंगढ़ (ज़िला उज्जैन, म० प्र०)

उज्जैन से एक मील उत्तर की ओर स्थित है। यहां पर द्वितीय-तृतीय शती ई० पू० की उज्जयिनी के खंडहर पाए गए हैं। वेश्याटेकरी और कुम्हार-टेकरी नाम के टीलों को खोदने से तत्कालीन उज्जयिनी के अनेक अवशेष मिले हैं। इन टीलों से कई प्राचीन किंवदंतियों का संबंध बताया जाता है।

भैसा (मधोल तालुका, ज़िला नंदेड़, महाराष्ट्र)

11वीं से 13वीं शती के बीच के काल में बने हुए एक मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। यह हेमाड़पंथी शैली में निर्मित है। मंदिर के अतिरिक्त तीन दरगाहें और एक तड़ाग यहां के प्राचीन स्मारक हैं।

भोकरदन (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर भूगर्भ में बनी गुफाओं में कई वैष्णव मंदिर अवस्थित हैं जिनका निर्माणकाल 8वीं या 9वीं शती ई० है, जैसा कि बरामदे में अंकित अभिलेख की लिपि से सूचित होता है। गुफाएं केलना नदी के तट पर हैं। भोकरदन में नवपाषाण-युग के उपकरणादि भी प्राप्त हुए हैं।

भोगनगर

हार्नल (Hoernle) के अनुसार भोगनगर में भोजक्षत्रियों की राजधानी थी और यह वैशाली और पावा के निकट स्थित था। यह बौद्धकालीन नगर था। बौद्ध-साहित्य में इसे मल्लराष्ट्र का एक नगर बताया गया है (दे० बुद्ध-चरित 25, 36—'तब वैशाली से चलकर धीरे-धीरे तथागत भोगनगर की ओर बढ़े और वहां रुककर सर्वज्ञ ने अपने साथियों से कहा—।'

भोगवती

(1)=**उज्जयिनी** (दे० अवंती)

(2) दे० **पंचगंगा**

(3) =**सरस्वती नदी**—'मनोरमां भोगवतीमुपेत्य, पूतात्मनां चीरजटाधराणाम् तस्मिन् वने धर्मभृतां निवासे ददर्श सिद्धर्षिगणाननेकान्—महा० वन० 24, 20। भोगवती नदी का इस स्थान पर द्वैतवन के संबंध में उल्लेख होने से यह सरस्वती नदी ही जान पड़ती है।

(4) पाताल की एक नगरी—'सतु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्, कृत्वा नागान्वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम्'—वाल्मीकि० उत्तर, 23,5. यह नगरी वासुकि नामक नाग-नरेश—द्वारा पालित थी। इसकी स्थित मणिपुर के पास जान पड़ती है।

भोगवर्धन

पुराणों में वर्णित और गोदावरी तट पर स्थित प्रदेश। इसका ठीक-ठीक अभिज्ञान अनिश्चित है। मार्कण्डेय पुराण, 57, 48-49 में इसका उल्लेख है।

भोगवान्

'ततोदक्षिणमल्लांश्च भोगवंतं च पर्वतम्, तरसैवाजयद् भीमो नाति तीव्रेण कर्मणा'—30,12। दक्षिण मल्लदेश के निकट स्थित इस पर्वत को भीम ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में विजित किया था। इसकी स्थिति दक्षिण-पूर्वी उत्तर-प्रदेश के पहाड़ी इलाके में जान पड़ती है।

भोज

श्रीभोज या श्रीविजय (सुमात्रा) की राजधानी जिसका उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग (671 ई०) ने किया है।

भोजकट

महाभारत में भोजकट को विदर्भ देश के राजा भीष्मक की राजधानी बताया गया है। इसे तथा इसके पुत्र रुक्मी को सहदेव ने दक्षिण दिशा को दिग्विजय-यात्रा में दूत भेजकर मित्र बना लिया था—'सुराष्ट्रविषयस्थश्च प्रेषयामास रुक्मिणे राज्ञे भोजकटस्थाय महामात्राय धीमते, भीष्मकाय स धर्मात्मा साक्षादिंद्रसखाय वै, स चास्य प्रतिजग्राह ससुतः शासनं तदा'—सभा० 31, 62-63-64। इससे पहले (सभा० 31, 11) सहदेव द्वारा भोजकट की विजय का वर्णन है—'ततो रत्नमादाय पुरं भोजकटं ययौ, तत्र युद्धमूभद् राजन् दिवसंद्वयमच्युत'। श्रीकृष्ण की महारानी रुक्मिणी इन्हीं राजा भीष्मक की पुत्री तथा रुक्मी की बहिन थी। उद्योग 158, 14–16 में वर्णित है कि भोजकट

(भोजराज के कटक का स्थान) उसी जगह बसाया गया था जहां विदर्भ की राजकुमारी रुक्मिणी को हरने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उसके भाई की सेनाओं को हराया था—'यत्रैव कृष्णेन् रणे निर्जित: परवीरहा, तत्र भोजकटं नाम कृतं नगरमुत्तमम्, सैन्येन् महता तेन प्रभूत गजवाजिना पुरंतद् भुविविख्यातं नाम्ना भोजकटं नृप'। विदर्भ की प्राचीन राजधानी कुंडिनपुर में थी। हरिवंशपुराण (विष्णुपर्व 60, 32) के अनुसार भी भोजकट की स्थिति विदर्भ देश में थी। यह नगर वाकाटक नरेशों का मूल निवासस्थान भी था। वाकाटक-नरेश प्रवरसेन द्वितीय के चम्मक दान-पट्टलेख से स्पष्ट है कि भोजकट प्रदेश में विदर्भ का इलिचपुर जिला सम्मिलित था (दे० जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1914, पृ० 329)। विसेंट स्मिथ के अनुसार भोजकट का अर्थ भोज का किला है (इंडियन ऐण्टिक्वेरी, 1923, पृ० 262-263)। भोजकट का अभिज्ञान कुछ लोगों ने धार (म०प्र०) से 24 मील दूर स्थित भोपावर नामक कस्बे से किया है। विदर्भ के शासकों का सामान्य नाम भोज था जैसा कि कालिदास के रघुवंश के सातवें सर्ग के अंतर्गत इंदुमती के स्वयंवर के प्रसंग से भी स्पष्ट है—'इति स्वसुर्भोजकुलप्रदीप: संपाद्यपाणिग्रहणं स राजा' रघु० 7,29। अशोक के शिलालेख सं० 13 में भी दक्षिण के भोजनरेशों का उल्लेख है। (दे० कुंडिनपुर, भोपावर)

भोजनगर

महाभारत में इस नगर को राजा उशीनर की राजधानी बताया गया है—'गालवो विमृशन्नेव स्वकार्यं गतमानस: जगाम भोजनगरं द्रष्टुमौशीनरं नृपम्' उद्योग० 118,2। प्रसंग से जान पड़ता है कि भोजनगर में राजा शिवि की भी राजधानी थी। इस प्रकार इस नगर की स्थिति उशीनर प्रदेश (ज़िला सहारनपुर या हरद्वार का परिवर्ती प्रदेश) में सिद्ध होती है। (दे० उशीनर)

भोजपाल=भूपाल

भोजपुर (ज़िला सिहोर, म० प्र०)

(1) भूपाल से 15 मील दक्षिण की ओर इस मध्यकालीन नगर के खंडहर हैं। अब यह छोटा सा ग्राम मात्र है। नगर वेत्रवती या बेतवा के तट पर स्थित था। जान पड़ता है कि इस नगर का नाम मालवा के प्रसिद्ध राजा भोज के नाम पर पड़ा होगा। भोजपुर का क्षेत्र पठार है और यह निर्जन और शुष्क दिखाई देता है। भोजपुर का मुख्य ऐतिहासिक स्मारक यहां का भव्य शिव मंदिर है जिसका ऊपरी भाग दूर-दूर तक दिखाई देता है। इसका निर्माण राजा भोज के ही समय में हुआ था और इस प्रकार यह आज से प्राय: एक सहस्र वर्ष प्राचीन है। मंदिर अपनी मूलावस्था में बहुत भव्य तथा विशाल रहा

होगा—यह अनुमान उसकी वर्तमान दशा से भली-भांति किया जा सकता है। इसकी वर्तमान ऊंचाई 50 फुट है किंतु ऊंचाई के अनुपात से उसकी चौड़ाई अधिक है जिससे जान पड़ता है कि प्राचीन समय में इसकी ऊंचाई अब से बहुत अधिक होगी। मंदिर की रचना विशाल प्रस्तरखंडों से की गई जिसमें से कई आज भी मंदिर के आस-पास पड़े हैं। ये पत्थर मसाले से जुड़े थे जो अब पत्थरों के बीच-बीच में से निकल गया है। मंदिर का प्रवेशद्वार भूमि से प्रायः 7 फुट ऊंचा है। सीढ़ियां पत्थर की बनी हैं। द्वार के दोनों ओर देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं जो संभवतः उत्तर-गुप्तकालीन हैं। एक छोटा मंदिर सीढ़ियों से ऊपर है जो मुख्य मंदिर की दीवार ही में काटा हुआ है। इसमें एक विष्णुमूर्ति प्रतिष्ठापित है। यह विष्णु-मंदिर दो स्तंभों पर आधारित है। स्तंभों की वास्तु-कला उच्चकोटि की है। विष्णु की प्रतिमा के भिन्न अंगों का अनुपात, भाव-भंगिमा, और खड़े होने की मुद्रा—ये सभी शिल्पशास्त्र की दृष्टि से सुंदर एवं सुतथ्य हैं। मूर्ति पर जिन आभूषणों का अंकन है वे सभी गुप्तकाल में प्रचलित थे। प्रवेशद्वार से नीचे उतरने के लिए अनेक सीढ़ियां हैं जो भूमितल तक बनी हैं। मंदिर अंदर से चतुष्कोण है यद्यपि बाहर से ऐसा नहीं जान पड़ता। इसका फ़र्श पत्थर का बना है। इसके केंद्रस्थान में उस आधार-स्तंभ की रचना की गई है जिस पर शिवलिंग स्थापित है। इस आधार स्तंभ में तीन चक्र पहनाए गए हैं। नीचे से तीसरे के बीच में शिवलिंग स्थापित है। यह आधार-स्तंभ भूमि से लगभग दस फुट ऊंचा है। काले पत्थर के बने हुए शिवलिंग की ऊंचाई आठ फुट है और परिधि भी काफी चौड़ी है। कहा जाता है इतना विशाल शिवलिंग भारत में अन्यत्र नहीं है। शिवलिंग और उसकी आधार-शिलाएं इस प्रकार जुड़ी हैं कि वे एक ही पत्थर में से कटी प्रतीत होती हैं। मंदिर के बाह्य भाग का शिल्प भी सराह-नीय है। इसकी चौकोर छत पर जो अब नष्ट हो गई है अद्भुत कारीगरी है। कुछ विद्वानों का विचार है कि देवगढ़ के गुप्तकालीन मंदिर की तुलना में भोजपुर का मंदिर श्रेष्ठ जान पड़ता है यद्यपि इसकी ख्याति देवगढ़ के मंदिर की भांति न हो सकी। छत की नक्काशी के लिए भोजपुर के शिल्पियों ने उसे कई वृत्तों में विभाजित किया है और इनमें से प्रत्येक के अंदर कलात्मक अलंकरणों के जाल पिरोए हुए हैं। यह छत चार विशाल प्रस्तर-स्तंभों पर टिकी है जिनकी मोटाई और ऊंचाई पर्याप्त अधिक है। इनकी तुलना सांची तथा तिगांव के स्तंभों से की जा सकती है। इनका निम्न भाग अपेक्षाकृत साधारण है किंतु जैसे-जैसे दृष्टि ऊपर जाती है इनकी कला का सौंदर्य बढ़ता जाता है और सर्वोच्च भाग

पर पहुंचते-पहुंचते कला की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। मंदिर की बाह्य-भित्तियां सादी हैं। इसमें प्रदक्षिणा-पथ भी नहीं है। इस शिवमंदिर से थोड़ी ही दूर पर एक छोटा सा जैन मंदिर है जो प्राचीन होते हुए भी ऐसा नहीं दीखता क्योंकि परवर्ती काल में इसका कई बार पुनर्निर्माण हुआ था। यह मंदिर चौकोर है और इसकी छत भी गुप्तकालीन मंदिरों की छतों की भांति सपाट है। मंदिर किसी जैन तीर्थंकर का है। इसकी मूर्ति विवस्त्र है और प्रायः बीस फुट ऊंची है। मूर्ति के दोनो ओर यक्ष-यक्षिणियों की प्रतिमाएं है।

(2) (बिहार) एक ग्राम है जहां अंग्रेजी शासनकाल के प्रारंभिक काल में फौजी भर्ती होती थी। भोजपुरी बोली का नाम इसी ग्राम के नाम पर प्रसिद्ध है।

भोनगिरि=भुवन गिरि

भोनरासा (म० प्र०)

पूर्वमध्यकालीन इमारतों के खंडहरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

भोपावर (म० प्र०)

धार से 24 मील दूर है। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार महाभारतकालीन भोजकट नगर इसी स्थान पर था (दे० भोजकट) किंतु इस किंवदंती में सार नहीं जान पड़ता क्योंकि इस नगर के विषय में जो उल्लेख महाभारत में है उससे भोजकट बरार या विदर्भ में और कुंडिनपुर के निकट होना चाहिए।

भौनरी (ज़िला बांदा, उ० प्र०)

चित्रकूट से 10 मील उत्तर में है। स्थानीय किंवदंती है कि श्रीरामचंद्र जी अपनी वनयात्रा के समय चित्रकूट जाते समय इस स्थान पर ठहरे थे और यहीं वाल्मीकि का आश्रम था। यहां से लगभग 5 मील दक्षिण चल कर उन्होंने वर्तमान हनुमान-धारा नामक स्थान पर विश्राम किया था। यहीं सीता रसोई स्थित है। अगले दिन वे मंदाकिनी के तट पर पहुंच गए थे। वाल्मीकि रामायण के वर्णन के अनुसार वाल्मीकि ने ही रामचंद्र जी को चित्रकूट में रहने का सुझाव दिया था।

भौम

विष्णु० 4,24,65 में उल्लिखित देश—'कलिंगमाहिषमहेंद्रभौमान् गुहा भोक्ष्यन्ति'। प्रसंगानुसार इसकी स्थिति उड़ीसा में जान पड़ती है। विष्णुपुराण ने इस प्रदेश में गुप्त या पूर्वगुप्त काल में जो विष्णुपुराण का निर्माणकाल है, अनार्य गुहों का शासन बतलाया है।

मंगरोल=मंगलपुर (1)

मंगलगिरि (ज़िला गंतूर, मद्रास)

यह प्राचीन तीर्थ है। यहां एक ऊंची पहाड़ी पर कई सौ वर्ष पुराना विष्णु-मंदिर स्थित है। शिखर तक पहुंचने के लिए पहाड़ी में छः सौ सीढ़ियां बनी हैं।

मंगलपुर (सौराष्ट्र, गुजरात)

(1) वर्तमान मंगरोल। यहां के खंडहरों से अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई थीं जो अब राजकोट के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस नगर का जैनतीर्थ के रूप में उल्लेख 'तीर्थमाला चैत्यवंदन' में इस प्रकार है—'सिहद्वीप धनेर मंगलपुरे त्राज्जाहरे श्रीपुरे'।

(2) (मैसूर) वर्तमान मंगलोर। यह प्राचीन तीर्थ है। नगर के पूर्व में मंगलादेवी का प्राचीन मंदिर है।

(3) स्वात नदी (अफगानिस्तान) के तट पर स्थित मंगलौरा जहां उद्यान देश की राजधानी थी। (दे० उद्यान)

मंगलप्रस्थ

'भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छेला: सन्ति बहवोमलयो मंगलप्रस्थो मैनाक स्त्रिकूटऋषभकूटक:—' श्रीमद्‌भागवत पुराण 5,19,16। संदर्भ से, और जिस क्रम से पर्वतों के नाम इस उद्धरण में परिगणित हैं उससे, सूचित होता है कि मंगलप्रस्थ संभवत: मंगलगिरि (जिला गंतूर, मद्रास) है। इस पहाड़ी पर जो विष्णुमंदिर है वह बहुत प्राचीन है।

मगलातीर्थ (मद्रास)

रामेश्वरम् के निकट पाम्बन की सड़क पर यह प्राचीन पौराणिक तीर्थ अवस्थित है। यहां मंगलातीर्थ नामक एक सरोवर है जहां पुराणों की कथा के अनुसार गौतम के शाप से छुटकारा पाने के लिए इंद्र ने तप किया था। निकट ही राममंदिर है जहां इंद्र ने भगवान् राम की उपासना की थी।

मंगलोर=मंगलपुर (2)

मंजीरा

गोदावरी की सहायक नदी का नाम। यह प्राचीन अश्मक जनपद में प्रवाहित होती थी। इस जनपद की स्थिति विदर्भ के पार्श्व में थी। वर्तमान नगर बीदर इसी नदी के तट पर बसा है। यह बालाघाट के पहाड़ों से निकलती है और गोदावरी में मिलती है। इसमें पांच उपनदियां दाहिनी ओर से और तीन बाईं ओर से आकर मिलती हैं। इसका नाम वायुपुराण (45,104) में वंजुला है।

मंजुपाटन (नेपाल)

मौर्य-सम्राट् अशोक की नेपाल यात्रा (लगभग 250 ई० पू०) से पूर्व वर्तमान कठमंडू के निकट बसा हुआ एक नगर जहां नेपाल की तत्कालीन राजधानी थी। अशोक ने इस नगर के स्थान पर देवपाटन या ललितपाटन नामक एक नगर बसाया था। यह कठमंडू से $2\frac{1}{2}$ मील दक्षिण की ओर है (दे० ललितपाटन, देवपाटन)

मंडकर्णि-आश्रम दे० पंचाप्सरस्

मंडद्वीप

महावंश 15,127-132 में वर्णित लंका का प्राचीन नाम है।

मंडपदुर्ग=मंडपपुर=मंडू

मंडपेश्वर (महाराष्ट्र)

माउंट पोयसर रेल स्टेशन के निकट अति प्राचीन गुहामंदिर। गुफाएं 8वीं शती ई० की जान पड़ती हैं। इनकी मूर्तिकारी का संबंध हिंदू देवी-देवताओं से है। पुर्तगाली कैथलिकों ने 16वीं शती में यहां गिरजाघर बनवाया था। यहां उस समय पचास योगी रहते थे।

मंडलेश्वर

प्राचीन माहिष्मती (=महेश्वर, म० प्र०) के निकट एक कस्बा है जो किंवदंती में मंडन मिश्र का निवास-स्थान माना जाता है। मंडन मिश्र और उनकी पत्नी भारती ने जगद्गुरु शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। शंकर-दिग्विजय में उन्हें माहिष्मती का निवासी कहा गया है। (दे० माहिष्मती)

मंडावर (ज़िला बिजनौर, उ० प्र०)

कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतल में वर्णित मालिनी (=मालन) नदी के तट पर बसा हुआ प्राचीन स्थान है। स्थानीय किंवदंती में इस कस्बे को बड़े प्राचीन काल से ही कण्व ऋषि का आश्रम माना गया है जो यहां की स्थिति को देखते हुए ठीक जान पड़ता है। पाणिनि ने शायद इसी स्थान को अष्टाध्यायी 4,2,10 में मार्देयपुर कहा है। मंडावर के उत्तर की ओर कुछ दूर पर गंगा है जिसके दूसरे तट पर वर्तमान शुक्करताल (ज़िला मुजफ्फर नगर, उ० प्र०) या अभिज्ञान-शाकुंतल का शक्रावतार है। हस्तिनापुर जाते समय शकुंतला की उंगली से दुष्यंत की अंगूठी इसी स्थान पर गंगा के स्रोत में गिर गई थी। हस्तिनापुर का मार्ग मंडावर से गंगा पार शुक्करताल हो कर ही जाता है। मंडावर के उत्तर-पश्चिम में नजीबाबाद के ऊपर कजलीवन स्थित है जहां कालिदास के वर्णन के अनुसार दुष्यंत आखेट के

लिए आया था (इस विषय में दे० लेखक का माडर्न रिव्यू नवंबर 1951 में 'टॉपोग्राफ़ी ऑव अभिज्ञान शांकुतल' नामक लेख)। मंडावर का प्राचीन नाम कनिंघम के अनुसार मतिपुर है जहां 634 ई० के लगभग चीनी यात्री युवानच्वांग आया था। यहाँ उस समय बौद्धविहार था जहां गुणप्रभ का शिष्य मित्रसेन रहता था। इसकी आयु 90 वर्ष की थी। गुणप्रभ ने सैंकड़ों ग्रंथों की रचना की थी। युवानच्वांग के अनुसार मतिपुर जिस देश की राजधानी था उसका क्षेत्रफल 6000 ली या 1000 मील था। यहां उस समय 20 बौद्ध संघाराम और 50 देवमंदिर स्थित थे। युवानच्वांग ने इस नगर को, जिसका राजा उस समय शूद्र जाति का था बहुत समृद्ध दशा में पाया था। उसने इसे माटीपोलो नाम से अभिहित किया है। चीनी यात्री ने जिन स्तूपों का वर्णन किया है उनका अभिज्ञान करने का प्रयास भी कनिंघम ने किया है। यहां से उत्खनन में कुषाण तथा गुप्त-नरेशों के सिक्के, मध्यकालीन मूर्तियां तथा अन्य अवशेष मिले हैं। किंवदंती ही है कि यहां का पीरवाली ताल, बौद्ध संत विमल मित्र के मरने पर जो भूचाल आया था उसके कारण बना है। यह घटना प्राय: 700 वर्ष पुरानी कही जाती है। मंडावर बिजनौर से प्राय: 10 मील उत्तर-पूर्व की ओर है। उत्तर-रेल का चंदक स्टेशन (मुरादाबाद-सहारनपुर लाइन) मंडावर से प्राय: चार मील है।

मंडी (हिमाचल प्रदेश)

किंवदंती के अनुसार मांडव्य ऋषि के नाम पर प्रसिद्ध है। मंडी में भूतनाथ महादेव का मंदिर है। इनकी पूजा नगर के अधिष्ठातृ देव के रूप में होती है। कहा जाता है कि मंडी की नगरी को बसाने वाले राजा अजबरसेन ने इस मंदिर में प्रतिष्ठापित मूर्ति को प्राप्त किया था। 1520 ई० में बना त्रिलोकनाथ का मंदिर कला की दृष्टि से उत्कृष्ट स्मारक है। इसके स्तंभों पर पुष्पों तथा पशु-पक्षियों का मूर्तिमय अंकन बड़े कौशल से किया गया है। मंडी से 2 मील पूर्व रवालसर नामक सरोवर है जिसे हिंदू, बौद्ध तथा सिख पवित्र मानते हैं। कहा जाता है कि गुरु नानकदेव इस स्थान पर एक बार आए थे।

मंडु

पाणिनि, 4,2,77 में उल्लिखित है। यह शायद अटक (पश्चिम पाकि०) के निकट स्थित उंड है (सिलवनलेवी)

मंडू (जिला इंदौर, म० प्र०)

मंडू का प्राचीन नाम मंडप दुर्ग या मांडवगढ़ कहा जाता है। मंडप नाम

से इस नगर का उल्लेख जैन-ग्रंथ तीर्थमाला चैत्यवंदन में किया गया है— 'कोडीनारक मंत्रि दाहड़ पुरे श्री मंडपे चार्बुदे'। जनश्रुति है कि यह स्थान रामायण तथा महाभारत के समय का है किंतु इस नगर का नियमित इतिहास मध्यकालीन ही है। कन्नौज के प्रतिहार नरेशों के समय में परमारवंशीय श्रीसरमन मालवा को राज्यपाल नियुक्त किया गया था। उस समय भी मांडवगढ़ काफी शोभा-संपन्न नगर था। प्रतिहारों के पतन के पश्चात् परमार स्वतंत्र हो गए और उनकी वंश परंपरा में मुंज, भोज आदि प्रसिद्ध नरेश हुए। 12वीं, 13वीं शतियों में शासन की डोर जैन मंत्रियों के हाथ में थी और मांडवगढ़ ऐश्वर्य की चरम सीमा तक पहुंचा हुआ था। कहा जाता है कि उस समय यहां की जनसंख्या सात लाख थी और हिंदू मंदिरों के अतिरिक्त 300 जैन मंदिर भी यहां की शोभा बढ़ाते थे। अलाउद्दीन खिलजी के मंडू पर आक्रमण के पश्चात् यहां से हिंदू राज्य-सत्ता ने बिदा ली। यह आक्रमण अलाउद्दीन के सेनापति आईन-उलमुल्क ने किया था। इसने यहां कत्लेआम भी करवाया था। 1401 ई० में मंडू दिल्ली के तुगलकों के आधिपत्य से स्वतत्र हो गया और मालवा के शासक दिलावर खां गौरी ने मंडू के पठान शासकों की वंश-परंपरा प्रारंभ की। इन सुलतानों ने मंडू में जो सुंदर भवन तथा प्रासाद बनवाए थे उनके अवशेष मंडू को आज भी आकर्षण का केंद्र बनाए हुए हैं। दिलावरखां का पुत्र होशंगशाह 1405 ई० में अपनी राजधानी धार से उठाकर मंडू में ले आया। मंडू के किले का निर्माता यही था। इस राज्य-वंश के वैभवविलास की चरम सीमा 15वीं शती के अंत में ग़यासुद्दीन के शासन-काल में दिखाई पड़ी। गयासुद्दीन ने विलासिता का वह दौर शुरू किया जिसकी चर्चा तत्कालीन भारत में सर्वत्र थी। कहा जाता है उसके हरम मे 15 सहस्र सुंदरियां थीं। 1531 ई० में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मंडू पर हमला किया और 1534 ई० में हुमायूं ने यहां अपना आधिपत्य स्थापित किया। 1554 ई० में मंडू बाजबहादुर के शासनाधीन हुआ। किंतु 1570 ई० में अकबर के सेनापति आदमखां और आसफखां ने बाजबहादुर को परास्त कर मंडू पर अधिकार कर लिया। कहा जाता है कि बाजबहादुर के इस युद्ध मे मारे जाने पर उसकी प्रेयसी रूपमती ने विषपान करके अपने जीवन का अंत कर दिया। मंडू की लूट में आसफखां ने बहुत सी धनराशि अपने अधिकार में करली जिससे क्रुद्ध होकर अकबर ने आदमखां को आगरे के क़िले की दीवार से नीचे फिंकवा कर मरवा दिया। यह अकबर का कोका भाई (धात्री पुत्र) था। बाजबहादुर और रूपमती की प्रेमकथाएं आज भी मालवा के लोकगीतों में गूंजती हैं। बाजबहादुर

संगीत-प्रेमी भी था। कुछ लोगों का मत है कि जहाज़महल और हिंडोला महल उसने ही बनवाए थे। मंडू के सौंदर्य ने अकबर तथा जहांगीर दोनों ही को आकृष्ट किया था। यहां के एक शिलालेख से सूचित होता है कि अकबर एक बार मंडू आकर नीलकंठ नामक भवन में ठहरा था। जहांगीर की आत्म-कथा तुज़के जहांगीरी में वर्णन है कि जहांगीर को मंडू के प्राकृतिक दृश्यों से बड़ा प्रेम था और वह यहां प्रायः महीनों शिविर डाल कर ठहरा करता था। मुगल-साम्राज्य के पतन के पश्चात् पेशवाओं का यहां कुछ दिन अधिकार रहा और तत्पश्चात् यह स्थान इंदौर की मराठा रियासत में शामिल हो गया। मडू के स्मारक, जहाज महल के अतिरिक्त, ये हैं—दिलावर खां की मसजिद, नाहर झरोखा, हाथी-पोल दरवाजा (मुगल कालीन), होशंगशाह तथा महमूद खिलजी के मकबरे। रेवाकुंड बाजबहादुर और रूपमती के महलों के पास स्थित है। यहां से रेवा या नर्मदा दिखलाई पड़ती है। कहा जाता है रूपमती प्रतिदिन अपने महल से नर्मदा का पवित्र दर्शन किया करती थी। शिवाजी के राजकवि भूषण ने पौरचवंशीयनरेश अमरसिंह के पुत्र अनिरुद्धसिंह की प्रशंसा में कहे गए एक छंद में (भूषण ग्रंथावली फुटकर 45) मंडू को इनकी राजधानी बताया है —'सरद के घन की घटान सी घमंडती हैं मंडू तें उमंडती हैं मंडती महीतलें'—किसी-किसी प्रति में इस स्थान पर मंडू के बजाए मेंडू भी पाठ है! मेंडू को कुछ लोग उत्तरप्रदेश में स्थित मानते हैं क्योंकि पौरच राजपूत अलीगढ़ के परिवर्ती प्रदेश से संबद्ध थे।

मंडोदर=मंडौर

मंडौर (ज़िला जोधपुर, राजस्थान)

मारवाड़ की जोधपुर से पहले की राजधानी। मंडौर नामक वर्तमान ग्राम का प्राचीन नाम मंडोदर या मांडव्यपुर है। कहा जाता है कि यहां मांडव्यऋषि का आश्रम था। स्थानीय रूप से यह जनश्रुति है कि नगर का नाम रावण की रानी मंदोदरी के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था और वह स्थान जहां लंकापति के साथ मंदोदरी का विवाह हुआ था आज भी मंडौर में स्थित बताया जाता है। 7वीं शती ई० के उपरांत गुर्जर-नरेशों ने मंडौर में अपनी राजधानी बनाई थी। मांडव्यऋषि के आश्रम के समीप स्थित मांडव्यदुर्ग की गणना राजस्थान के महत्वशाली दुर्गों में की जाती है। मंडौर में प्राप्त एक शिलालेख में इस स्थान को मांडव्याश्रम कहा गया है और इसके निकट एक पुण्यशालिनी नदी का उल्लेख है जो संभवतः नागोदरी है, 'मांडवत्रस्थाश्रमे पुण्ये नदीनिर्भर शोभते'। दुर्ग के अंदर विष्णु तथा जैन मंदिरों के खंडहर हैं। 12वीं-13वीं शतियों की कई

मूर्तियां यहां से प्राप्त हुई हैं। मंदिर यद्यपि खंडहर की अवस्था में है किंतु उसकी दीवारों पर बेल-बूटे, पशुपक्षी, कीर्तिमुख आदि का तक्षण बड़ी सुंदर रीति से किया गया है। आधुनिक मंडौर ग्राम तथा दुर्ग के मध्यवर्ती भाग में खुदाई में मिट्टी के कुंभ मिले हैं जिनमें से एक पर गुप्तलिपि में विखय (=विषय) शब्द खुदा है। दुर्ग के नीचे पंचकुंडा की ओर नरेशों की छतरियां, चूंडा जी का देवल तथा पंचकुंडा दर्शनीय है।

मंतोट दे० महातीर्थ

मंत्रालय (मद्रास)

इस नाम के रेल स्टेशन से 9 मील पर यह सुंदर तीर्थस्थान बसा है। तुंगभद्रा नदी पास ही बहती है। यहां श्री राघवेंद्र स्वामी का प्रख्यात मंदिर है जहां दूर-दूर से यात्री आते हैं। मंदिर के प्रांगण में कई प्राचीन संतों की समाधियां हैं। राघवेंद्र स्वामी के मंदिर का वृन्दावन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

मंदग

विष्णुपुराण 2,4,48 के अनुसार क्रौंच द्वीप का एक भाग या वर्ष जो द्वीप के राजा द्युतिमान् के पुत्र के नाम पर प्रसिद्ध है।

मंदर

(1) (पर्वत) वाल्मीकि रामायण किष्किंधा 40,25 में सुग्रीव ने सीता के अन्वेषणार्थ पूर्व दिशा में वानर-सेना को भेजते हुए और वहां के स्थानों का वर्णन करते हुए मंदर नामक पर्वत का उल्लेख इस प्रकार किया है 'समुद्रमवगाढांश्च पर्वतान्पत्तनानिच, मंदरस्य च ये कोटिं संश्रिता: केचिदालया:' अर्थात् जो पर्वत या बंदरगाह समुद्रतट पर स्थित हों अथवा जो स्थान मंदर के शिखर पर हों (वहां भी सीता को ढूंढना)। इसी श्लोक के तत्काल पश्चात् द्वीप निवासी किरातों संभवत: अंडमान निवासियों का विचित्र वर्णन है। इस स्थिति में मंदर ब्रह्मदेश या बर्मा के पश्चिमी तट की पर्वत श्रेणी के किसी भाग का नाम हो सकता है।

(2)=**मंदराचल**। 'श्वेतं गिरिं प्रवेक्ष्यामो मंदरं चैव पर्वतं, यत्र मणिवरौ यक्ष: कुबेरश्चैव यक्षराट्'—महा० 139,5। इस उद्धरण में मंदराचल का पांडवों की उत्तराखंड की यात्रा के संबंध में उल्लेख है जिससे यह पर्वत हिमालय में बदरीनाथ या कैलास के निकट कोई गिरि-शृंग जान पड़ता है। विष्णुपुराण 2,2,16 के अनुसार मंदरपर्वत इलावृत के पूर्व में है—'पूर्वेण मंदरोनाम दक्षिणे गंधमादन:'। मंदराचल का पुराणों में क्षीरसागर-मंथन की कथा में भी वर्णन

है। इस आख्यायिका के अनुसार सागर-मंथन के समय देवताओं और दानवों ने मंदराचल को मथानी बनाया था।

मंदसौर दे० दशपुर

मंदाकिनी

(1) चित्रकूट (ज़िला बांदा, उ० प्र०) के निकट बहने वाली नदी। इसे आज भी मंदाकिनी कहते हैं। वाल्मीकि रामायण अयोध्याकांड में इसका कई स्थानों पर उल्लेख है—'अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मंदाकिनी नदी, एतत् प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभंवनम्'; 'अथ शैलाद्विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोशलेश्वरः, अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मंदाकिनीं नदीम्। विचित्र पुलिनां रम्यां हंससारससेविताम् कुसुमैरुपसंपन्नां पश्य मंदाकिनीं नदीम्। नानाविधैस्तीररुहैर्वृतां पुष्पफलद्रुमैः राजन्तीं राजराजस्य नलिनीमिव सर्वतः। क्वचिन्मणिनिकाशोदां क्वचित् पुलिनशालिनीम्, क्वचित्सिद्धजनाकीर्णं पश्य मंदाकिनीं नदीम्। दर्शनं चित्रकूटस्य मंदाकिन्याश्च शोभने अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात्। सखीवच्च विगाहस्व सीते मंदाकिनींनदीम्, कमलान्यवमज्जन्ती पुष्कराणि च भामिनि' अयो० 93,8;95,1-3-4-9-12-14। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में मंदाकिनी का नामोल्लेख इस प्रकार है—'कौशिकी मंदाकिनी यमुना······'। कालिदास ने रघुवंश 13,48 में मंदाकिनी का विमानारूढ़ राम से (चित्रकूट के निकट) कितना हृदयग्राही वर्णन करवाया है—'एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद् विदूरांतरभावतन्वी, मंदाकिनी भाति नगोपकंठे मुक्तावली कंठगतैव भूमेः'। अध्यात्मरामायण अयो० 63 में मंदाकिनी को गंगा कहा गया है—'ऊचुरग्रे गिरेः पश्चाद् गंगाया उत्तरतटे विविक्तं रामसदनं रम्यं काननमंडितम्'। तुलसीदासजी ने (रामचरितमानस, अयोध्या कांड) में मंदाकिनी को सुरसरि की धारा कहा है—'सुरसरि धार नाम मंदाकिनी जो सब पातक-पोतक डाकिनि'। उन्होंने मंदाकिनी के संबंध में प्रसिद्ध पौराणिक कथा का भी निर्देश किया है जिसमें इस नदी को अत्रिऋषि की पत्नी अनसूया द्वारा चित्रकूट में लाए जाने का वर्णन है—'नदी पुनीत पुरान बखानी, अत्रिप्रिया निज तपबल आनी'। मंदाकिनी और पयास्विनी नदियों के संगम पर राघवप्रयाग नामक स्थान है। (मंदाकिनी शब्द का अर्थ 'मंद-मंद बहने वाली' है। इसके इस विशिष्ट गुण का वर्णन कालिदास ने उपर्युक्त श्लोक में 'स्तिमित प्रवाहा' कह कर किया है।

(2) ताप्ती से पांच मील दक्षिण में बहने वाली छोटी नदी। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक की कई प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के पाठ में मंदाकिनी नामक एक नदी का इस प्रकार उल्लेख है—'स भर्त्रा मंदाकिनी तीरेऽन्त-

पालदुर्गे स्थापितः'। रायचौधरी के अनुसार यह मंदाकिनी ताप्ती की सहायक नदी है (पोलीटिकल हिस्ट्री आव ऐंशेंट इंडिया, पृ० 309। अन्य प्रतियों में पाठ 'नर्मदा' है जो अधिक समीचीन जान पड़ता है।

(3) यह नदी गढ़वाल (उ० प्र०) में केदार नाथ के पर्वत-शृंग से निकल कर कालीमठ, चंद्रापुरी, अगस्त्यमुनि आदि स्थानों से होती हुई रुद्रप्रयाग में आकर गंगा की मुख्य धारा अलकनंदा में मिल जाती है। इसका जल श्याम होने से इसे काली गंगा भी कहते हैं।

मंदारगिरि (ज़िला भागलपुर, बिहार)

इस स्थान से गुप्तनरेश आदित्यसेन के दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं। ये दोनों एक ही लेख की दो प्रतिलिपियां हैं। इसमें आदित्यसेन के नाम के पहले, परमभट्टारक तथा महाराजाधिराज की उपाधियां जोड़ी गई हैं जिससे सूचित होता है कि यह अपसढ़-अभिलेख के बाद लिखा गया है क्योंकि उसमें आदित्यसेन की ये उपाधियां उल्लिखित नहीं हैं। इस अभिलेख से जान पड़ता है कि हर्ष की मृत्यु के पश्चात् राजनैतिक उथल-पुथल में, मगध में स्थित गुप्त राजाओं के वंशज शक्तिशाली हो गए और आदित्यसेन स्वतंत्र राजा के रूप में राज करने लगा। इस अभिलेख में आदित्यसेन की रानी कोणदेवी द्वारा एक तड़ाग बनवाए जाने का उल्लेख है।

मंदोदर दे० मंडौर

मऊरानीपुरा (बुंदेलखंड, उ० प्र०)

झांसी-मानिकपुर रेल मार्ग पर स्टेशन है। 17वीं शती के अंत में बुंदेला-नरेश सुजान सिंह की माता ने इस ग्राम को बसाया था।

मकरान (सिंध, पाकि०)

अरब सागर के तटवर्ती प्रदेश का एक भाग। बृहत्संहिता में इस प्रदेश के निवासियों को 'मकर' कहा गया है। कर्जन ने इस नाम को मूलरूप में तामिल भाषा का शब्द माना है। फारसी के प्राचीन महाकाव्य शाहनामा में उल्लेख है कि इस प्रदेश पर ईरान के सम्राट् कैखुसरों ने कब्जा किया था जिसके नाम से खुसरैर नामक स्थान आज भी मकरान में है। 7वीं शती ई० में सिंध-नरेश रायचच का मकरान पर अधिकार था जैसा कि चचनामा नामक ग्रंथ से सूचित होता है। 712 ई० में यहां अरबों का अधिकार हुआ और तत्पश्चात् इतिहास में सिंध प्रांत के साथ ही मकरान के भाग्य का निपटारा होता रहा। ग्रीक लेखकों ने मकरान को गेदरोजिया लिखा है जो ग्वादूर का अपभ्रंश जान पड़ता है। यह स्थान मकरान का प्राचीन बंदरगाह था।

मकुल (पर्वत)

बौद्ध गया से 26 मील दक्षिण कलुहा पहाड़। बुद्ध ने छठा वर्षाकाल यहां बिताया था।

मगडोवा (ज़िला फरीदपुर, बंगाल)

इस ग्राम में चैतन्य महाप्रभु (15वीं शती) की माता शचीदेवी का पितृगृह था। उनके पिता पं० नीलांबर चक्रवर्ती विद्याध्ययन के लिए मगडोवा से नवद्वीप में आकर बस गए थे।

मगद्वीप

भविष्यपुराण 39 में वर्णित जनपद जहां के निवासी मगों के सोलह परिवारों को कृष्ण के पुत्र सांब ने स्वनिर्मित सूर्य-मंदिर में उपासना के लिए शकस्थान से लाकर बसाया था। सांब ने दुर्वासा के शाप के फलस्वरूप कुष्ठ रोग से पीड़ित होकर सूर्य की उपासना की थी। मग निवासियों का वर्णन प्रमाणित करता है कि ये लोग ईरान देश से आए थे। ये लोग पारसियों की भांति कटि-मेखला पहनते, मृत शरीर को छूना पाप समझते, खाते समय मौन रहते और प्रार्थना के समय मुख को कपड़े से ढका रखते थे। वास्तव में प्राचीन ईरानी साम्राज्य के मीडिया नामक नगर की एक जाति को मग या मागी कहते थे (इसी से अंग्रेजी शब्द Magician बना है)। मगों का संबंध शाकलद्वीप या सियालकोट से भी जान पड़ता है जहां ये भारत में आने पर बस गए थे। वाराहमिहिर की बृहत्संहिता 58 में वर्णित सूर्य-प्रतिमाओं के वेश तथा आकृति से विशेषत: कटि-मेखला तथा आजानु जूतों से यह तथ्य पुष्ट होता है कि भारत में सूर्योपासना के केंद्रों में ईरानी लोगों का काफी प्रभाव था। कालांतर में मगों को हिंदू समाज में ब्राह्मणों के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। इन्हें आज भी मग, शाकल या शाकल द्वीपी ब्राह्मण कहा जाता है।

मगध

बौद्धकाल तथा परवर्तीकाल में उत्तरी भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली जनपद। इसकी स्थिति स्थूल रूप से दक्षिण बिहार के प्रदेश में थी। मगध का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद (5,22,14) में है—'गंधारिम्भ्यो मूजवद्भ्योङ्गेभ्योमगधेभ्य: प्रैष्यन् जनमिव शेवधि तक्मानं परिदद्मसि'। इससे सूचित होता है कि प्राय: उत्तर वैदिक काल तक मगध, आर्य सभ्यता के प्रभाव क्षेत्र के बाहर था। विष्णुपुराण (4,24,61) से सूचित होता है कि विश्वस्फटिक नामक राजा ने मगध में प्रथम बार वर्णों की परंपरा प्रचलित करके आर्य सभ्यता का प्रचार किया था। 'मगधायां तु विश्वस्फटिकसंज्ञोऽन्यान्वर्णान् करिष्यति'। वाजसेनीय

संहिता (30,5) में मागधों या मगध के चारणों का उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण (बाल० 32,8-9) में मगध के गिरिव्रज का नाम वसुमती कहा गया है और सुमागधी नदी को इस नगर के निकट बहती हुई बताया गया है —'एषा वसुमती नाम वसोस्तस्य महात्मनः, एते शैलवराः पंच प्रकाशन्ते समंततः, सुमागधीनदी रम्या मागधान्विश्रुताऽऽययौ, पंचानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते'। महाभारत के समय में मगध में जरासंध का राज्य था जिसकी राजधानी गिरिव्रज में थी। जरासंध के वध के लिए श्रीकृष्ण अर्जुन और भीम के साथ मगध देश में स्थित इसी नगर में आए थे —'गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम्'—महा० सभा० 20,30। जरासंध के वध के पश्चात् भीम ने जब पूर्व दिशा की दिग्विजय की तो उन्होंने जरासंध के पुत्र सहदेव को, अपने संरक्षण में ले लिया और उससे कर ग्रहण किया 'ततः सुह्मान् प्रसुह्मांश्च सपक्षानतिवीर्यवान्विजित्य युधिकौंतेयो मागधानभ्यधाद्बली'। 'जारासंधि सान्त्वयित्वा करे च विनिवेश्य ह' सभा० .0,16-17। गौतम बुद्ध के समय में मगध में बिंबिसार और तत्पश्चात् उसके पुत्र अजातशत्रु का राज था। इस समय मगध की कोसल जनपद से बड़ी अनबन थी यद्यपि कोसल-नरेश प्रसेनजित की कन्या का विवाह बिंबिसार से हुआ था। इस विवाह के फलस्वरूप काशी का जनपद मगधराज को दहेज के रूप में मिला था। यह मगध के उत्कर्ष का समय था और परवर्ती शतियों में इस जनपद की शक्ति बराबर बढ़ती रही। चौथी शती ई० पू० में मगध के शासक नव नंद थे। इनके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक के राज्यकाल में मगध के प्रभावशाली राज्य की शक्ति अपने उच्चतम गौरव के शिखर पर पहुंची हुई थी और मगध की राजधानी पाटलिपुत्र भारत भर की राजनैतिक सत्ता का केंद्र बिंदु थी। मगध का महत्व इसके पश्चात् भी कई शतियों तक बना रहा और गुप्तकाल के प्रारंभ में काफ़ी समय तक गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र ही में रही। जान पड़ता है कि कालिदास के समय (संभवतः 5वीं शती ई०) में भी मगध की प्रतिष्ठा पूर्ववत् थी क्योंकि रघुवंश 6,21 में इंदुमती के स्वयंवर के प्रसंग में मगधनरेश परंतप का भारत के सब राजाओं में सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है। इसी प्रसंग में मगध-नरेश की राजधानी को कालिदास ने पुष्पपुर में बताया है—'प्रासादवातायन संश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुरांगनानाम्' 6,24। गुप्त साम्राज्य की अवनति के साथ-साथ ही मगध की प्रतिष्ठा भी कम हो चली और छठी-सातवीं शतियों के पश्चात् मगध भारत का एक छोटा सा प्रांत मात्र रह गया। मध्यकाल में यह बिहार नामक प्रांत में विलीन हो गया और मगध का पूर्व गौरव इतिहास

का विषय बन गया। जैन साहित्य में अनेक स्थलों पर मगध तथा उसकी राजधानी राजगृह (प्राकृत रायगिह) का उल्लेख है। (दे० प्रज्ञापण सूत्र)

मगधपुर

गिरिव्रज को महा० सभा० 20,30 में मगधपुर कहा गया है जहाँ जरासंध की राजधानी थी—'गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम्'। (दे० मगध; गिरिव्रज (2))

मगधभुक्ति

गुप्त अभिलेखों में पटना-गया ज़िलों के परिवर्ती प्रदेश का नाम। इसे पाल-नरेशों के राज्य काल में श्रृंगारभुक्ति कहा जाता था। (दे० बिहार थ्रू दि एजज़, पृ० 53,54)

मगल (ज़िला बिलारी, मद्रास)

चालुक्य-वास्तु शैली में निर्मित मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

मगह = मगध

मगध का प्राकृत नाम—'मगह गयादिक तीरथ जैसे'—तुलसीदास।

मगहर (जिला बस्ती, उ० प्र०)

उत्तर भारत के प्रसिद्ध संत कबीर का मृत्यु स्थान। इनकी मृत्यु 1500 ई० के लगभग हुई थी। तत्कालीन लोक-विश्वास के अनुसार मगहर में मृत्यु अशुभ समझी जाती थी। इस विश्वास को झुठलाने के लिए ही ये महात्मा मृत्यु से पहले मगहर चले गए थे। उनका कहना था कि जो 'कबिरा काशी मरे तो रामहिं कौन निहोरा'। कहा जाता है कि मगहर में मरने के उपरांत उनकी चादर के नीचे केवल फूल मिले थे जिन्हें हिंदू-मुसलमानों ने आधा-आधा बांट कर अपने-अपने धर्म की रीति के अनुसार कबीर की समाधि बनवाई। आमी नदी के दाहिने तट पर दोनों समाधियां आज भी विद्यमान हैं।

मछेरी दे० अलवर

मझगावम (बघेलखंड, म० प्र०)

भूतपूर्व नागौद रियासत में स्थित है। इस स्थान से परिव्राजक महाराज हस्तिन् का 191 गुप्त संवत् (=510 ई०) का एक ताम्रपट्ट-अभिलेख प्राप्त हुआ था जिसमें महादेवी देव नामक व्यक्ति की प्रार्थना पर महाराज हस्तिन् द्वारा वालुगर्त नाम के ग्राम को कुछ ब्राह्मणों के लिए दान में दिए जाने का उल्लेख है।

मझौली (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर से 34 मील दूर यह स्थान वराह भगवान् के अति प्राचीन मंदिर

के लिए विख्यात है। वराह की प्रतिमा लगभग 9 फुट ऊंची है। मझौली से 12 मील पर रूपनाथ नामक ग्राम है जहां अशोक का एक शिलालेख स्थित है।

मणियादो (ज़िला दमोह, म० प्र०)

गढ़मंडला नरेश संग्रामसिंह (मृत्यु 1540 ई०) के 52 गढ़ों में से एक। संग्रामसिंह प्रसिद्ध वीरांगना रानी दुर्गावती के श्वसुर थे और इन्होंने गढ़-मंडला राज्य की संस्थापना की थी जिसका अंत मुगल सम्राट् अकबर के समय में हो गया।

मढ़ा

(1) (जिला झांसी, उ० प्र०) बुंदेलखंड वास्तु-शैली में निर्मित कई मंदिरों के अवशेष यहां स्थित हैं।

(2) (जिला देहरादून, उ० प्र०) कालसी से 25 मील दूर गंगा-तट पर स्थित है। 600 ई० का लाखा-मंदिर यहां का प्राचीन स्मारक है।

मणिकियाला (जिला रावलपिंडी, पाकि०)

यह स्थान कनिष्ककालीन है। यहाँ के बौद्धस्तूप के भग्नावशेषों में एक चांदी के वर्तुल पट्टक पर कुशान सम्राट् कनिष्क के शासनकाल (लगभग 120 ई०) का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिससे इस प्रदेश में उसकी प्रभुता का विस्तार प्रमाणित होता है। यहां के स्तूप की खोज 1830 ई० में जनरल वेंटुरा और कोर्ट ने की थी। इसमें से कनिष्क के सिक्के भी प्राप्त हुए थे। बरजेस का मत है कि मौलिक स्तूप (जो कनिष्क-कालीन है) पर 25 फुट मोटा बाह्यावरण है जो शायद 8वीं शती में बना था।

मणितार

हर्षचरित के लेखक महाकवि बाणभट्ट के अनुसार यह स्थान अजिरावती नदी के तट पर स्थित था। महाराजाधिराज हर्ष (606-647 ई०) ने अपना राज-शिविर इस स्थान पर कुछ दिनों के लिए स्थापित किया था और यहां अनेक करद नरेश और सामंत राज-भक्ति प्रदर्शित करने के लिए एकत्र हुए थे। इसी स्थान पर बाण की महाराज हर्ष से सर्वप्रथम भेंट हुई थी। डा० रा० कु० मुकर्जी के मत में यह स्थान अवध, उत्तर प्रदेश में था (दे० अजिरावती)। अजिरावती या अचिरावती का छोटी राप्ती से अभिज्ञान किया गया है। श्रावस्ती इसी नदी के तट पर स्थित थी।

मणिनाग

राजगृह (=राजगीर, बिहार) के खंडहरों में स्थित अति प्राचीन स्थान है इसे अब मणियार मठ कहते हैं। महाभारत में मणिनाग का तीर्थरूप में

उल्लेख है—'मणिनागं ततोगत्वा गोसहस्रफलंलभेत्' वन० 84,106। 'तैर्थिकं भुंजते यस्तु मणिनागस्य भारत, दष्टस्याशीर्विषेणापि न तस्य क्रमते विषम्' —वन० 84,107। निश्चय ही यह स्थान महाभारत-काल में नागों का तीर्थ था। मणियार मठ से, उत्खनन द्वारा गुप्तकालीन कई नागमूर्तियाँ मिली हैं और एक नागमूर्ति पर तो मणिनाग शब्द भी उत्कीर्ण है। यह प्रायः निश्चित है कि महाभारत में जिस मणिनाग का उल्लेख है वह वर्तमान मणियार मठ ही था क्योंकि महाभारत के वन-पर्व के अन्तर्गत तीर्थयात्रा के प्रसंग का अधिकांश, मूल महाभारत के समय के बाद का है और बौद्धकालीन जान पड़ता है जैसा कि मणिनाग के प्रसंग में राजगृह के नामोल्लेख से सूचित होता है—'ततो राजगृहं गच्छेत् तीर्थसवी नराधिप' वन० 84, 104। राजगृह नाम बुद्ध के समकालीन मगधराज बिंबसार का रखा हुआ था। (दे० राजगृह)

मणिपर्वत

प्रागज्योतिषपुर (गोहाटी, असम) में स्थित एक पर्वत जहां महाभारतकाल में नरकासुर ने सोलह सहस्र कुमारियों का अपहरण करके उनके रहने के लिए अन्तःपुर बनवाया था। श्रीकृष्ण ने नरकासुर के वध के पश्चात् मणिपर्वत पर पहुंच कर इन कन्याओं को कारागार से छुटकारा दिला दिया था—'एतत् तु गरुडे सर्वं क्षिप्रामारोप्य वासवः दाशार्हपतिना सार्धमुपायान्मणिपर्वतम्' सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ। इस प्रसंग में यह वर्णन भी है कि कृष्ण मणिपर्वत को उखाड़ कर प्राग्ज्योतिषपुर से द्वारका ले गए थे और उन्होंने उसे वहीं स्थापित कर दिया था—'तं महेंद्रानुजः शौरिश्चकार गरुडोपरि पश्यतां सर्वभूतानामुत्पाट्य मणिपर्वतम्'; 'ततः शौरिः सुपर्णेन एवं निवेशनमभ्ययात् चकाराथ यथोद्देशमीश्वरो मणिपर्वतम्' सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ।

मणिपुर (असम)

भारत की पूर्वी सीमा पर स्थित अति प्राचीन स्थान। वाल्मीकि० उत्तर० 23,5 में शायद इसी को मणिमयीपुरी कहा गया है। यहां नागों की स्थिति बताई गई है—'सतु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालितां कृत्वा नागान्वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम्'। मणिपुर का राज्य महाभारत के समय में भी था। वहां संभवतः इस स्थान को ही मणिमान् कहा गया है। नागकन्या उलूपी जिससे अर्जुन का विवाह हुआ था और उनका पुत्र बभ्रुवाहन नागदेश में रहते थे। किंवदंती में इसे मणिपुर का प्रदेश माना जाता है। आज भी मणिपुर के आदिनिवासी नागा लोग ही हैं। 1714 ई० से मणिपुर का ज्ञात

इतिहास प्रारंभ होता है। इससे पूर्व यह प्रदेश छोटे-छोटे कबीलों में बंटा हुआ था जिन पर नागा सरदारों का प्रभुत्व था। इस वर्ष पामबीह नामक नागा ने हिंदू धर्म स्वीकार कर लिया और पूरे प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित किया। इसने अपना नाम गरीबनिवाज रखा था। यही वर्तमान मणिपुर का सर्व प्रथम राजा माना जाता है। इसने ब्रह्मदेश के कुछ क्षेत्र जीत कर मणिपुर में मिला लिए। इसके पश्चात् यहां के राजा जयसिंह हुए। इनके समय में मणिपुर पर ब्रह्मदेश का असफल आक्रमण हुआ। 1824 ई० में मणिपुर पर फिर एक बार ब्रह्मदेश के राजा ने आक्रमण किया किंतु अंग्रेजी सेना की सहायता से उसे विफल बना दिया गया। इस समय मणिपुर में गंभीरसिंह का राज्य था। इनकी मृत्यु 1834 ई० में हो गई और नरसिंहदेव गद्दी पर बैठे। इन्होंने अंग्रेजों के आदेश से ब्रह्मदेश से संधि करली और कूबो की घाटी लौटा दी। 1851 ई० में चंद्रकीर्तिसिंह को अंग्रेजों ने मणिपुर का राजा बनाया। इसने 1879 ई० में अंग्रेजों की नागाओं के विरुद्ध युद्ध में सहायता की। लार्ड लैन्सडाउन के समय में अंग्रेजों और मणिपुर के शासक टिकेंद्रजीतसिंह में शत्रुता के कारण युद्ध हुआ जिसमें मणिपुर की पराजय हुई और तत्पश्चात् यहां पूरी तरह से अंग्रेजी सत्ता स्थापित हो गई जो 1947 ई० तक रही। मणिपुर का क्षेत्रफल 8 सहस्र वर्ग मील है। इस रियासत में छोटी-छोटी एक हजार बस्तियां हैं। उत्तरी भाग में नरभक्षी नागा और दक्षिण में कुर्की लोग रहते हैं। मणिपुर प्राचीनकाल से अपने विशिष्ट लोक-नृत्यों के लिए प्रसिद्ध रहा है।

मणिमती

'इल्वलो नाम दैतेय आसीत् कौरवनंदन, मणिमत्यां पुरि पुरा वातापिस्तस्य चानुजः' महा० वन० 96,4। इस नगरी को गया (बिहार) के निकट बताया गया है तथा यहां अगस्त्याश्रम की स्थिति मानी गई है। उपर्युक्त प्रसंग में इल्वल दैत्य के वध की कथा यहीं घटित हुई कही गई है। संभव है मणिनाग और मणिमती एक ही हों। ऐसी दशा में मणिमती को राजगृह (राजगीर, बिहार) के सन्निकट माना जा सकता है। (दे० मणिनाग)

मणिमुक्ता (मद्रास)

कुंभकोणम् से दक्षिण-पूर्व 6 मील पर स्थित तिरुनारैयूर या सुगंधगिरि नामक प्राचीन स्थान के निकट बहने वाली नदी। यह स्थान विष्णु की उपासना का केन्द्र है।

मणियार मठ दे० मणिनाग

मण्यखेट दे० मलखेड़

मतंगवन दे० पंपासर

मतंगसर

वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह सरोवर किष्किंधा के प्रसिद्ध पंपासर के निकट स्थित था—'तामासाद्य वै रामो दूरात्पानीयवाहिनीम्, मतंगसरसं नाम ह्रदं समवगाहत'—अरण्य० 75, 14 अर्थात् दूर से आनेवालों के लिए पीने के योग्य जलवाले पंपासर के पास पहुंच कर रामचन्द्र मतंगसर नामक झील में नहाए।

मत्तिपुर दे० मंडावर

मत्स्य

(1) महाभारत-काल का एक प्रसिद्ध जनपद जिसकी स्थिति अलवर-जयपुर के परिवर्ती प्रदेश में मानी गई है। इस देश में विराट का राज था तथा वहां की राजधानी उपप्लव नामक नगर में थी। विराट-नगर मत्स्य देश का दूसरा प्रमुख नगर था। सहदेव ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में मत्स्य देश पर विजय प्राप्त की थी—'मत्स्यराजं च कौरव्यो वशे चक्रे बलाद्बली'—महा० सभा० 31,2। भीम ने भी मत्स्यों को विजित किया था—'ततो मत्स्यान् महातेजा मलदांश्च महाबलान्'—सभा० 30,9। अलवर के एक भाग में शाल्व-देश था जो मत्स्य का पार्श्ववर्ती जनपद था। पांडवों ने मत्स्यदेश में विराट के यहां रह कर अपने अज्ञातवास का एक वर्ष बिताया था (दे० उद्योगपर्व)। मत्स्य निवासियों का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में है—पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासोनिशिता अपीव, श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायामतर-द्विषूचो: ऋग्० 7,18,6। इस उद्धरण में मत्स्यों का वैदिक काल के प्रसिद्ध राजा सुदास के शत्रुओं के साथ उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण 13,5,4,9 में मत्स्य-नरेश ध्वसन्द्वैतवन का उल्लेख है, जिसने सरस्वती के तट पर अश्वमेधयज्ञ किया था। इस उल्लेख से मत्स्य देश में सरस्वती तथा द्वैतवन सरोवर की स्थिति सूचित होती है। गोपथ ब्राह्मण (1-2-9) में मत्स्यों को शाल्वों और कौशीतकी उपनिषद् (14, 1) में कुरु-पंचालों से संबद्ध बताया गया है। महाभारत में इनका त्रिगर्तों और चेदियों के साथ भी उल्लेख है—'सहजश्चेदिमत्स्यानां प्रवीराणां वृषध्वजः' महा० उद्योग० 74-16। मनुसंहिता में मत्स्यवासियों को पांचाल और शूरसेन के निवासियों के साथ ही ब्रह्मर्षि-देश में स्थित माना है—'कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचाला: शूरसेनका: एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मवर्तादनंतर:'

मनु० 2,19। उड़ीसा की भूतपूर्व मयूरभंज रियासत में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार मत्स्यदेश सतियापारा (ज़िला मयूरभंज) का प्राचीन नाम था। उपर्युक्त विवेचन से मत्स्य की स्थिति पूर्वोत्तर राजस्थान में सिद्ध होती है किंतु इस किंवदंती का आधार शायद यह तथ्य है कि मत्स्यों की एक शाखा मध्यकाल के पूर्व विजिगापटम् (आं० प्र०) के निकट जा कर बस गई थी (दे० दिब्बिड़ ताम्रपत्र, एपिग्राफिका इंडिया, 5,108)। उड़ीसा के राजा जयत्सेन ने अपनी कन्या प्रभावती का विवाह मत्स्यवंशीय सत्यमार्तंड से किया था जिनका वंशज 1269 ई० में अर्जुन नामक व्यक्ति था। संभव है प्राचीन मत्स्य देश की पांडवों से संबंधित किंवदंतियां उड़ीसा में मत्स्यों की इसी शाखा द्वारा पहुंची हों। (दे० अपरमत्स्य)

(2) मल्लराष्ट्र का एक नाम—'ततो मत्स्यान् महातेजा मलदांश्च महाबलान्, अनघानभयांश्चैव पशुभूमिं च सर्वशः' महा० 2,30,8। प्रसंग की दृष्टि से यह जनपद उत्तरी बिहार या नेपाल के निकट जान पड़ता है और मल्लराष्ट्र से इसका अभिज्ञान ठीक जान पड़ता है।

मथुरा (उ० प्र०)

भगवान् कृष्ण की जन्मस्थली और भारत की परम प्राचीन तथा जगद्-विख्यात नगरी। शूरसेन देश की यहां राजधानी थी। मथुरा का उल्लेख वैदिक साहित्य में नहीं है। वाल्मीकि रामायण में मथुरा को मधुपुर या मधुदानव का नगर कहा गया है तथा यहां लवणासुर की राजधानी बताई गई है—'एवं भवतु काकुत्स्थ क्रियतां मम शासनम्, राज्ये त्वामभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे शुभे। नगरं यमुनाजुष्टं तथा जनपदाञ्शुभान् यो हि वंश समुत्पाद्य पार्थिवस्य निवेशने' उत्तर० 62,16-18। इस नगरी को इस प्रसंग में मधुदैत्य द्वारा बसाई बताया गया है। लवणासुर जिसको शत्रुघ्न ने युद्ध में हराकर मारा था इसी मधुदानव का पुत्र था, 'तं पुत्रं दुर्विनीतं तु दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः, मधुः स शोकमापेदे न चैनं किंचिदब्रवीत्'—उत्तर० 61,18। इससे मधुपुरी या मथुरा का रामायण-काल में बसाया जाना सूचित होता है। रामायण में इस नगरी की समृद्धि का वर्णन इस प्रकार है—'अर्ध चंद्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता, शोभिता गृहमुख्यैश्च चत्वरापणवीथिकैः, चातुर्वर्ण्य समायुक्ता नानावाणिज्यशोभिता' उत्तर० 70, 11। इस नगरी को लवणासुर ने भी सजाया संवारा था—'यच्चतेनपुरा शुभ्रं लवणेन कृतं महत्, तच्छोभयति शत्रुघ्नो नानावर्णोपशोभिताम्। आरामैश्व विहारैश्च शोभमानं समन्ततः शोभितां शोभनीयैश्च तथान्यैर्दैवमानुषैः' उत्तर० 70-12-13। उत्तर० 70,5 ('इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता') में इस नगरी को मधुरा नाम से अभिहित किया गया है। लवणासुर

के वधोपरांत शत्रुघ्न ने इस नगरी को पुनः बसाया था। उन्होंने मधुवन को कटवा कर उसके स्थान पर नई नगरी बसाई थी (दे० महोली)। महाभारत के समय में मथुरा शूरसेन देश की प्रख्यात नगरी थी। यहीं कृष्ण का जन्म यहां के अधिपति कंस के कारागार में हुआ तथा उन्होंने बचपन ही में अत्याचारी कंस का वध करके देश को उसके अभिशाप से छुटकारा दिलवाया। कंस की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण मथुरा ही में बस गए किंतु जरासंध के आक्रमणों से बचने के लिए उन्होंने मथुरा छोड़ कर द्वारकापुरी बसाई ('वयं चैव महाराज, जरासंधभयात् तदा, मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारावतीं पुरीम्' महा० सभा० 14,67। श्रीमद्भागवत 10,41,20-21-22-23 में कंस के समय की मथुरा का सुंदर वर्णन है। दशम सर्ग, 58 में मथुरा पर कालयवन के आक्रमण का वृत्तांत है। इसने तीन करोड़ मलेच्छों को लेकर मथुरा को घेर लिया था। ('रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभि:)। हरिवंश पुराण 1,54 में भी मथुरा के विलास-वैभव का मनोहर चित्र है, 'सा पुरी परमोदारा साट्टप्राकारतोरणा स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना। उद्यानवन संपन्ना सुसीमासुप्रतिष्ठिता, प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुल मेखला'। विष्णुपुराण में भी मथुरा का उल्लेख है, 'संप्राप्तश्चापि सायाह्ने सोऽक्रूरो मथुरांपुरीम्' 5,19,9। विष्णुपुराण 4,5,101 में शत्रुघ्न द्वारा पुरानी मथुरा के स्थान पर ही नई नगरी के बसाए जाने का उल्लेख है—'शत्रुघ्नेनाप्यमितबलपराक्रमो मधुपुत्रो लवणो नाम राक्षसोऽभिहतो मथुरा च निवेशिता')। इस समय तक मधुरा नाम का रूपांतर मथुरा प्रचलित हो गया था। कालिदास ने रघुवंश 6,48 में इंदुमती के स्वयंवर के प्रसंग में शूरसेनाधिप सुषेण की राजधानी मथुरा में वर्णित की है—'यस्यावरोधस्तनचंदनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले, कलिंदकन्या मथुरां गतापि गंगोर्मिसंसक्तजलेव भाति'। इसके साथ ही गोवर्धन का भी उल्लेख है। मल्लिनाथ ने 'मथुरा' की टीका करते हुए लिखा है'—'कालिंदीतीरे मथुरा लवणासुरवधकाले शत्रुघ्नेन निर्मास्यतेति वक्ष्यति'। बौद्धसाहित्य में मथुरा के विषय में अनेक उल्लेख हैं। 600 ई० पू० में यहां अवंतिपुत्र (अंवतिपुत्तो) नामक राजा का राज्य था जिसके समय में बौद्ध अनुश्रुति (अंगुत्तरनिकाय) के अनुसार गौतम बुद्ध स्वयं मथुरा आए थे। उस समय यह नगरी बुद्ध के लिए अधिक आकर्षक सिद्ध न हुई क्योंकि संभवतः उस समय यहां प्राचीन वैदिक मत सुदृढ़ रूप से स्थापित था (दे० श्री कृ० द० वाजपेयी—मथुरा परिचय, पृ० 46)। चंद्रगुप्त मौर्य के समय में मथुरा मौर्य-साम्राज्य के अंतर्गत थी। ग्रीक राजदूत मेगेस्थनीज़ ने सूरसेनाई तथा उनके मथोरा और क्लीसोबोरा नामक नगरों का

उल्लेख किया है तथा इन्हें कृष्णोपासना का केंद्र बताया है। अशोक के समय में मथुरा में बौद्धधर्म का काफी प्रचार हुआ। बौद्ध साहित्य तथा युवानच्वांग के यात्रावृत्त में अशोक के गुरु उपगुप्त का उल्लेख है जो मथुरा का निवासी था। जैन अनुश्रुति में कहा गया है कि जैन संघ की दूसरी परिषद् मथुरा में स्कंदिलाचार्य की अध्यक्षता में हुई थी जिसमें 'माथुर वाचना' नाम से जैन आगमों को संहिताबद्ध किया गया था। 5वीं शती ई० के अंत में अकाल पड़ने के कारण यह 'वाचना' विलुप्त हो गई थी। आगमों का पुनरुद्धार तीसरी परिषद् में किया गया था जो वल्लभिपुर में हुई। विविधतीर्थकल्प में मथुरा को दो जैन साधुओं—धर्मरुचि और धर्मघोष का निवास स्थान बताया गया है। जैन साहित्य में मथुरा की श्रीसंपन्नता का भी वर्णन है—मथुरा बारह योजन लंबी और नौ योजन चौड़ी थी। नगरी के चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ था और वह हर-मंदिरों, जिनशालाओं, सरोवरों आदि से संपन्न थी। जैन साधु वृक्षों से भरे हुए भूधरमणि उद्यान में निवास करते थे। इस उद्यान के स्वामी कुवेर ने यहां एक जैन स्तूप बनवाया था जिसमें सुपार्श्व की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। विविधतीर्थकल्प में मथुरा में भंडीर यक्ष के मंदिर का उल्लेख है। मथुरा में ताल, भंडीर कौल, बहुल, बिल्व और लोहजंघ नाम के उद्यान थे। इस ग्रंथ में अर्कस्थल, वीरस्थल, पद्मस्थल, कुशस्थल और महास्थल नामक पांच पवित्र जैनस्थलों का भी उल्लेख है। निम्न 12 वनों के नाम भी इस ग्रंथ में मिलते हैं—लौहजंघवन, मधुवन, बिल्ववन, तालवन, कुमुदवन, वृंदावन, भांडीरवन, खदिरवन, कामिकवन, कोलवन, बहुलावन और महावन। पांच प्रसिद्ध मंदिरों में विश्रांतिक तीर्थ (विश्राम घाट) असिकुंडा तीर्थ (असकुंडा घाट) वैकुंठ तीर्थ, कालिंजर तीर्थ और चक्रतीर्थ की गणना की गई है। इस ग्रंथ में निम्न जैन साधुओं को मथुरा से संबंधित बतलाया गया है—कालवेशिक, सोमदेव, कंबल और संबल। एक बार घोर अकाल पड़ने पर मथुरा के एक जैन नागरिक खंडी ने अनिवार्य रूप से जैन आगमों के पाठन की प्रथा चलाई थी।

शुंगकाल के प्रारंभ से ही मथुरा का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया था। इस समय शुंग-साम्राज्य के पश्चिमी प्रदेश की राजधानी मथुरा ही में थी। गार्गी-संहिता के एक निर्देश से जान पड़ता है कि १५० ई० पू० के लगभग यवनराज दिमित्रियस (Demetrius) ने कुछ काल के लिए मथुरा पर अधिकार किया था किंतु शीघ्र ही शुंगों ने अपना आधिपत्य यहां स्थापित कर लिया। १०० ई० पू० के आसपास शुंगों की शक्ति क्षीण होने पर इस

नगरी पर पश्चिमोत्तर प्रदेश के शकक्षत्रपों ने अपना अधिकार जमा लिया और वे प्राय: ७५ वर्षों तक राज्य करते रहे। क्षत्रपवंश के महाक्षत्रप राजुल तथा उसका पुत्र शोडास प्रतापी राजा थे। मथुरा से प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इन्होंने यहां यमुना-तट पर एक विशाल सिंह-स्तंभ बनवाया था जिसका शीर्ष लंदन के संग्रहालय में है। शोडास के अभिलेख से जो खंडितावस्था में है, मथुरा का, उस काल में भगवान् वासुदेव कृष्ण की उपासना का केन्द्र होना सिद्ध होता है—'वसुना भगवतो वासुदेवस्य महास्थान चतुःशालं तोरणं वेदिका प्रतिष्ठापितो प्रीतोभवतु वासुदेव: स्वामिस्य महाक्षत्रपस्य शोडासस्य संवर्तेयाताम्' । मथुरा के इतिहास में ई० सन् के प्रारंभ से ३०० ई० तक का समय कुषाणों के राज्यकाल का है । इस काल में इस नगरी की सर्वांगीण उन्नति हुई। इस स्वर्णयुग के उन्नत कला-वैभव की छाप तत्कालीन मूर्तियों में अमिट रूप से अंकित है। इस काल में बुद्ध की मानवमूर्तियाँ बनने लगी थीं। कुषाणवंशीय विमकेदफिसस और कनिष्क की कायपरिमाण मूर्तियां यहां के खंडहरों से प्राप्त हुई थीं । कुषाणों के पश्चात् मथुरा में गुप्तों का शासन स्थापित हुआ। इनके समय में मथुरा की मूर्तिकला जो शुंगकाल में भी काफी उन्नत थी, सौंदर्य की पराकाष्ठा को पहुंच गई और यहां की बनी मूर्तियां देश के कोने-कोने में मूर्तिकला के नमूनों के रूप में भेजी जाने लगीं। मथुरा के अधिकांश विहार, देवकुल, मंदिर आदि जिनका वर्णन फाह्यान (३२० ई०) ने किया है (इसके समय में मथुरा के बीस विहारों में तीन सहस्र भिक्षु निवास करते थे) गुप्त शासन के दुर्बल हो जाने पर हूणों के विध्वंसकारी आक्रमणों के शिकार हो गए। ७ वीं शती ई० में चीनी यात्री युवानच्वांग ने अपने यात्रावृत्त में बौद्धधर्म की अवनति के स्पष्ट चिह्नों का उल्लेख किया है। उसने भिक्षु उपगुप्त के विहार को देखा था जो शायद वर्तमान कंकाली टीले पर स्थित था । इस समय तक यहां के प्राचीन बौद्ध भवन, विहार आदि नष्ट हो चुके थे; जो बचे वे ११वीं शती में महमूद गजनी के आक्रमण ने समाप्त कर दिए। महमूद गजनी ने मथुरा में भगवान् कृष्ण का विशाल मंदिर विध्वस्त कर दिया। मुसलमानों के शासनकाल में मथुरा नगरी कई शतियों तक उपेक्षित अवस्था में पड़ी रही। अकबर और जहांगीर के शासनकाल में अवश्य कुछ भव्य मंदिर यहां बने किंतु औरंगजेब की कट्टर धर्मनीति ने मथुरा का सर्वनाश ही कर दिया। उसने यहां के प्रसिद्ध जन्मस्थान के मंदिर को तुड़वा कर वर्तमान मसजिद बनवाई और मथुरा का नाम बदल

कर इसलामाबाद कर दिया। किंतु यह नाम अधिक दिनों तक न चल सका। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय (1761 ई०) में फिर एक बार मथुरा को दुर्दिन देखने पड़े। इस बर्बर आक्रांता ने सात दिनों तक मथुरा निवासियों के खून की होली खेली और इतना रक्तपात किया कि यमुना का पानी एक सप्ताह के लिए लाल रंग का हो गया। मुगल-साम्राज्य की अवनति के पश्चात् मथुरा पर मराठों का प्रभुत्व स्थापित हुआ और इस नगरी ने शतियों के पश्चात् चैन की सांस ली। 1803 ई० में लार्ड लेक ने सिंधिया को हराकर मथुरा–आगरा प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया।

मथुरा में श्रीकृष्ण के जन्मस्थान (कटरा केशवदेव) का भी एक अलग ही और अद्भुत इतिहास है। प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार भगवान् का जन्म इसी स्थान पर कंस के कारागार में हुआ था। यह स्थान यमुनातट पर था और सामने ही नदी के दूसरे तट पर गोकुल बसा हुआ था जहां श्रीकृष्ण का बचपन ग्वाल-बालों के बीच बीता। इस स्थान से जो प्राचीनतम अभिलेख मिला है वह शोडास के शासनकाल (80—57 ई० पू०) का है। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इससे सूचित होता है कि संभवत: शोडास के शासनकाल में ही मथुरा का सर्वप्रथम ऐतिहासिक कृष्णमंदिर भगवान् के जन्मस्थान पर बना था। इसके पश्चात् दूसरा बड़ा मंदिर 400 ई० के लगभग बना जिसका निर्माता शायद चंद्रगुप्त विक्रमादित्य था। इस विशाल मंदिर को धर्मांध महमूद गज़नी ने 1017 ई० में गिरवा दिया। इसका वर्णन महमूद के मीर मुंशी अलउतबी ने इस प्रकार किया है—महमूद ने एक निहायत उम्दा इमारत देखी जिसे लोग इंसान के बजाए देवों द्वारा निर्मित मानते थे। नगर के बीचों-बीच एक बहुत बड़ा मंदिर था जो सबसे अधिक सुंदर और भव्य था। इसका वर्णन शब्दों अथवा चित्रों से नहीं किया जा सकता। महमूद ने इस मंदिर के बारे में खुद कहा था कि 'यदि कोई मनुष्य इस तरह का भवन बनवाए तो उसे 10 करोड़ दीनार खर्च करने पड़ेंगे और इस काम में 200 वर्षों से कम समय नहीं लगेगा चाहे कितने ही अनुभवी कारीगर काम पर क्यों न लगा दिए जाएं'। कटरा केशवदेव से प्राप्त एक संस्कृत शिलालेख से पता लगता है कि 1207 वि० सं० = 1150 ई० में, जब महाराज विजयपाल देव मथुरा पर शासन करते थे, जज्ज नामक एक व्यक्ति ने श्रीकृष्ण के जन्म स्थान पर एक नया मंदिर बनवाया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शायद इसी मंदिर को देखा था—'मथुरा आशिया करिला विश्रामतीर्थे स्नान, जन्म स्थान केशव देखि करिला प्रणाम, प्रेमावेश नाचे गाए सघन हुकांर, प्रभु प्रेमावेश देखि लोके चमत्कार' (चैतन्य

चरितावली)। (कहा जाता है कि चैतन्य ने कृष्णलीला से संबद्ध अनेक स्थानों तथा यमुना के प्राचीन घाटों की पहचान की थी)। यह मंदिर भी सिकंदर लोदी के शासनकाल (16वीं शती के प्रारंभ) में नष्ट कर किया गया। इसके पश्चात् मुगल-सम्राट् जहांगीर के समय में ओड़छा नरेश वीरसिंह देव बुंदेला ने इसी स्थान पर एक अन्य विशाल मंदिर बनवाया। फ्रांसीसी यात्री टेवर्नियर ने जो 1650 ई० के लगभग यहां आया था, इस अद्भुत मंदिर का वर्णन इस प्रकार लिखा है—'यह मंदिर समस्त भारत के अपूर्व भवनों में से है। यह इतना विशाल है कि यद्यपि यह नीची जगह पर बना है तथापि पांच छः कोस की दूरी से दिखाई पड़ता है। मंदिर बहुत ही ऊंचा और भव्य है'। इटली के पर्यटक मनूची के वर्णन से ज्ञात होता है कि इस मंदिर का शिखर इतना ऊंचा था कि 36 मील दूर आगरे से दिखाई पड़ता था। जन्माष्टमी के दिन जब इस पर दीपक जलाए जाते थे तो उनका प्रकाश आगरे से भलीभांति देखा जा सकता था और बादशाह भी उसे देखा करते थे। मनूची ने स्वयं केशवदेव के मंदिर को कई बार देखा था। श्रीकृष्ण के जन्म स्थान के इस अंतिम भव्य और ऐतिहासिक स्मारक को 1668 ई० में संकीर्ण-हृदय औरंगजेब ने तुड़वा दिया और मंदिर की लंबी चौड़ी कुर्सी के मुख्य भाग पर ईदगाह बनवाई जो आज भी विद्यमान है। उसकी धर्मांध नीति को कार्य रूप में परिणत करने वाला सूबेदार अब्दुल-नबी था जिसको हिंदू मंदिरों के तुड़वाने का कार्य विशेष रूप में सौंपा गया था। इस अभागे की मृत्यु मथुरा में ही विद्रोहियों के हाथों हुई। 1815 ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी ने कटरा केशवदेव को बनारस के राजा पट्टनीमल के हाथ बेच दिया। इन्होंने मथुरा में अनेक इमारतों का निर्माण करवाया जिनमें शिवताल भी है। अब केशवदेव में पुनः कृष्ण-मंदिर बनाने की व्यवस्था की गई है और इस प्रकार इस मंदिर की सैंकड़ों वर्षों की परंपरा को पुनरुज्जीवित किया जा रहा है (दे० मधुवन; मधूपघ्न)

मदखेरा (म० प्र०)

टीकमगढ़ के निकट इस स्थान पर एक मध्यकालीन मंदिर स्थित है जो वास्तुकला की दृष्टि से सराहनीय है।

मदधार

'निवृत्य च महाबाहुर्मदधारं महीधरम्, सोमधेयांश्च निर्जित्य प्रययावुत्तरा-मुखः'—महा० सभा० 30,9-10। इस पर्वत पर भीमसेन ने अपनी पूर्व दिशा की दिग्विजय यात्रा में अधिकार किया था। प्रसंग से यह वत्स (प्रयाग-कौशांबी

का क्षेत्र) के दक्षिण-पूर्व में विंध्याचल पर्वत-श्रेणी का कोई भाग जान पड़ता है। संभवतः इसकी स्थिति चुनार के निकट थी।

मदनपुर

(1) (ज़िला सागर, म० प्र०) बुंदेलखंड के चंदेल राजा मदनवर्मा ने 12वीं शती में इस नगर को बसाया था। यहां से बुंदेल नरेशों के कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं। 1238 वि० सं०=1181 ई० के अभिलेख से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज चौहान चंदेल-नरेश परमाल के साथ युद्ध करने के लिए जाते समय इस स्थान पर आये थे। यहां स्थित जैन मंदिर के एक स्तंभ पर परमाल पर पृथ्वीराज की विजय का वृत्तांत उत्कीर्ण है।

(2) (ज़िला ललितपुर, उ० प्र०) ललितपुर से 38 मील दूर है। 12वीं शती में बने एक जैन मंदिर पर खुदे अभिलेख (1149 ई०) में इस स्थान को मदनपुर कहा गया है।

मदना

उड़ीसा का प्राचीन अनभिज्ञात बंदरगाह जिसका उल्लेख रोम के भौगोलिक टॉलमी ने किया है (महताब, हिस्ट्री ऑव उड़ीसा, पृ० 24)

मदुरांतक (ज़िला चेंगलपुर, मद्रास)

इस नगर का प्राचीन नाम मधुरांतक और क्षेत्र का नाम बकुलारण्य है। कोदंडराम के अति प्राचीन मंदिर में एक बकुल—मौलसिरी—का पेड़ है। इसी के नीचे दक्षिण के प्रसिद्ध दार्शनिक संत रामानुजाचार्य ने महापूर्णस्वामी से दीक्षा ली थी। इसी मंदिर के साथ जानकी सीता का मंदिर है जो यहां के एक तामिल-तेलगू शिलालेख के अनुसार एक अंग्रेज सज्जन लायनस प्लेस द्वारा 1778 ई० में बनवाया गया था। लेख में कहा गया है कि यहां के बड़े जलाशय का बांध 1775 ई० से बनवाया जा रहा था किंतु प्रत्येक वर्ष वर्षाकाल में टूट जाता था। एक वैष्णव की प्रेरणा से प्लेस ने जानकी मंदिर बनवाने की मनौती के साथ बांध को पुनः बनवाया और उस बार की घोर वर्षा में भी वह स्थिर रहा। तभी स्वयं प्लेस ने जानकी-मंदिर की स्थापना की थी।

मदुरा=मदुरै (मद्रास)

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में इस स्थान को दक्षिण मधुरा (उत्तर मधुर=मथुरा) कहा गया है। जैन ग्रंथों में मदुरा को पांड्यदेश की राजधानी बताया गया है। (दे० बी० सा० लॉ—सम जैन कैनॉनिकल सूत्राज़, पृ० 52)। प्राचीन पांड्य देश की राजधानी होने के कारण ही शायद इस नगरी को दक्षिण मधुरा कहते थे क्योंकि पांड्य नरेशों का संबंध पांडवों की किसी शाखा से बताया जाता है

और पांडवों का, अपने प्रिय मित्र कृष्ण की नगरी मथुरा (=मधुरा) से संबंध सुविदित ही है। यह नगर वैगा नदी के दक्षिणी तट पर बसा है। वैसे तो मदुरा नगरी बहुत प्राचीन है किंतु यहां का प्रसिद्ध मीनाक्षी-मंदिर तथा अन्य स्मारक 16वीं-17वीं शतियों में ही बने थे। इन्हें मदुरा-नरेश तिरुमलाई नायक तथा उसके वंशजों ने बनवाया था। मीनाक्षी का मंदिर 845 फुट लंबा और 725 फुट चौड़ा है। इसका बाह्य परकोटा लगभग 21 फुट ऊंचा है। इसके चारों कोनों पर ग्यारह मंजिल और ग्यारह कलस वाले भव्य गोपुर हैं। इनमें से एक 152 फुट ऊंचा और 105 फुट चौड़ा है। इन विशाल गोपुरों के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर पांच छोटे गोपुर भी हैं। मंदिर के दो भाग हैं। दक्षिणी भाग में मीनाक्षी का मंदिर पत्थर का बना है। इसमें भव्य स्थापत्य और सूक्ष्मशिल्प के एकत्र ही दर्शन होते हैं। मदुरा सती के बावन पीठों में से है और सती की आंख का प्रतीक माना जाता है। मीनाक्षी नाम का आधार भी संभवतः यही तथ्य है।

(2) जावा के उत्तर में छोटा सा द्वीप है जो जावा से प्रायः संलग्न है। यहां ई० सन् की प्रारंभिक शतियों में हिंदू उपनिवेश बसाए गए थे। जान पड़ता है कि इसको बसाने वाले दक्षिण भारत की मदुरा नगरी से संबंधित रहे होंगे।

मद्र

प्राचीन काल में इस देश के दो भाग थे—उत्तर मद्र जो ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार हिमवान् पर्वत के उस पार उत्तर कुरु देश के समीप था (जिमर और मैकडानेल्ड के मत में यह कश्मीर में स्थित था) और दक्षिण मद्र जो पंजाब के मध्यवर्ती प्रदेश में था। इसका मुख्य नगर साकल, सागल नगर या वर्तमान सियालकोट (पाकि०) था। वाल्मीकि रामायण किष्किंधा 43,11 में मद्र देश का उल्लेख है—'तत्र म्लेच्छान्पुलिंदांश्चशूरसेनां स्तथैव च। प्रस्थलान्भरतांश्चैव कुरूंश्च सहमद्रकैः'। मद्र का पाणिनि ने (4,1,176;4 2,131) में उल्लेख किया है। पतंजलि के महाभाष्य 1,1,8; 1,3,2 में भी मद्र का नामोल्लेख है। महाभारत कर्ण० में इस देश के निवासियों के अनार्य रीति-रिवाजों का अच्छा वर्णन है—'दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः, यावदन्त्यं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम्'; 'नापि वैरं न सौहार्द्रं मद्रकेण समाचरेत्, मद्रके संगतं नास्तिमद्रकोहि सदामलः'—महा० कर्ण० 40, 24-29-30। किंतु पूर्व महाभारत काल में मद्रनिवासियों के शील की ख्याति थी। परमसती सावित्री मद्र देश के राजा अश्वपति की पुत्री थी—'आसीन् मद्रेषु धर्मात्मा राजा परमधार्मिकः, ब्रह्मण्यश्च महात्मा च सत्यसंधो जितेंद्रियः'—

महा, वन० 293 5। मद्र के शाकल या सागल नगर का उल्लेख कालिंगबोधि और कुसजातक में भी है। स्यालकोट के आस-पास का प्रदेश गुरुगोविंदसिंह के समय (17वीं शती) तक मद्र देश कहलाता था। (दे० शाकल)

मद्रास

सन् 1639 ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी फ्रांसिस डे ने विजय-नगर के राजा से कुछ भूमि लेकर इस नगरी की स्थापना की थी। उस समय का बना हुआ क़िला अभी तक विद्यमान है। मद्रास के उपनगर मयलापुर में कपालीश्वर शिव का प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर है। मायलापुर का शाब्दिक अर्थ मयूरनगर है। पौराणिक जनश्रुति के अनुसार पार्वती ने मयूर का रूप धारण करके शिवजी की इस स्थान पर पूजा की थी। इसी कथा का अंकन इस मंदिर की मूर्तिकारी में है। मंदिर के पीछे एक पवित्र ताल है। ट्रिप्लीकेन में पार्थसारथी का मंदिर भी उल्लेखनीय है। मद्रास के स्थान पर प्राचीन समय में चैन्नापटम् नामक ग्राम बसा हुआ था।

मद्रापुर (बंगाल)

पांडुआ से 20 मील। यहां मध्यकालीन इमारतों के भग्नावशेष हैं। देश के इस भाग में वर्षा अधिक होने के कारण यहां तथा निकटवर्ती ऐतिहासिक स्थानों की प्राचीन इमारतें नष्ट-भ्रष्ट हो गई हैं।

मधुगंगा

केदारनाथ (गढ़वाल, उ० प्र०) के निकट बहने वाली एक नदी। इस क्षेत्र की प्रायः सभी नदियां गंगा कहलाती हैं क्योंकि अंततः वे सभी गंगा की मूलधारा में मिल जाती हैं।

मधुपुरी

वाल्मीकि रामायण में मथुरा का प्राचीन नाम मधुरा या मधुपुरी है। इसके निकट स्थित वन मधुवन कहलाता था। नगर को मधुनामक दैत्य ने बसाया था। उत्तर 62,17 तथा 68-3 से यह सूचित होता है कि मधुपुरी यमुना के पश्चिमी तट पर बसी थी। जब रामचंद्रजी के अनुज शत्रुघ्न, लवणासुर (मधु का पुत्र) को जीतने के लिए अयोध्या से मधुपुरी गए तो उन्हें गंगा और यमुना दोनों नदियों को पार करना पड़ा था। इससे भी मधुपुरी का मथुरा से अभिज्ञान प्रमाणित हो जाता है। संभवतः मथुरा से 3½ मील दूर महोली नामक ग्राम प्राचीन मधुपुरी के स्थान पर बसा हुआ है।

मधुमंत

वाल्मीकि रामायण (उत्तर० 92,18) के अनुसार दंडक-प्रदेश की

राजधानी। महावस्तु (पृ० 263) में दंडक की राजधानी गोवर्धन (=नासिक) में कही गई है। (दे० रायचौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आव ऐंशेंट इंडिया, पृ० 78)

मधुमत् (म०प्र)

भूतपूर्व ग्वालियर रियासत में बहने वाली नदी महुवार का प्राचीन नाम।

मधुमती (गुजरात)

(1) नर्मदा की सहायक नदी। मधुमती-नर्मदा संगम पर मोटासांजा नामक प्राचीन तीर्थ है जहां संगमेश्वर का मंदिर है।

(2) बंगाल की एक नदी जो गंगा ही की एक सहायक शाखा है। हुगली और मधुमती नदियों के बीच के प्रदेश को प्राचीन काल में वंग या वंगा कहते थे। वर्तमान बंगाल, वंग का ही रूपांतर है।

मधुरांतक=मदुरांतक

मधुरा

(1)=मथुरा

(2)=मदुरा

मधुवंती (सौराष्ट्र, गुजरात)

सोरठ प्रांत में बहने वाली एक नदी। जूनागढ़ मधुवंती और भद्रावती नदियों से सिंचित क्षेत्र में बसा हुआ है। मधुवंती गिरनार (प्राचीन रैवतक) पर्वत से निकल कर पश्चिम समुद्र (अरब सागर) में गिरती है।

मधुवन

(1) वाल्मीकि रामायण, सुंदर 62, 31 के अनुसार वानरराज सुग्रीव का प्रिय वन—'इष्टं मधुवनं ह्येतत् सुग्रीवस्य महात्मनः, पितृ पैतामहं दिव्यं देवैरपि दुरासदम्'। हनुमान् तथा उनके साथियों ने सीता का पता लगने की खुशी में इस वन के वृक्षों पर खूब खेल-कूद मचा कर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। इस बात से सुग्रीव को सूचना मिल गई कि सीता का पता लग गया है। एक किंवदंती के अनुसार मैसूर राज्य में स्थित रामगिरि सुग्रीव का मधुवन है। यह स्थान बंगलौर-मैसूर रेलपथ के मद्दर स्टेशन से 12 मील दूर है।

(2) मधुपुरी या मधुरा के पास एक वन जिसका स्वामी मधुदैत्य था। मधु के पुत्र लवणासुर को शत्रुघ्न ने विजित किया था। इस वन का उल्लेख वाल्मीकि रामायण उत्तर० 67,13 में इस प्रकार है—'तमुवाच सहस्राक्षो लवणो नाम राक्षसः मधुपुत्रो मधुवने न तेऽज्ञां कुरुतेऽनघ'। विष्णुपुराण 1,12,2-3 में भी यमुना तटवर्ती इस वन का वर्णन है—'मधुसंज्ञं महापुण्यं जगाम यमुनातटम्,

पुनश्च मधुमंज्ञेन दैत्यानाधिष्ठितं यतः, ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले'। विष्णु० 1,12,4 से सूचित होता है कि शत्रुघ्न ने मधुवन के स्थान पर नई नगरी बसाई थी—'हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम्, शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरींयत्र चकार वै'। हरिवंश० पुराण 1,54-55 के अनुसार इस वन को शत्रुघ्न ने कटवा दिया था—'छित्वा वनं तत् सौमित्रिः...'। पौराणिक कथा के अनुसार ध्रुव ने इसी वन में तपस्या की थी। प्राचीन सस्कृत साहित्य में मधुवन को श्रीकृष्ण की अनेक चंचल बाल-लीलाओं की क्रीड़ास्थली बताया गया है। यह गोकुल या वृंदावन के निकट कोई वन था। आजकल मथुरा से 3½ मील दूर महोलीमधुवन नामक एक ग्राम है। पारंपरिक अनुश्रुति में मधुदैत्य की मथुरा और उसका मधुवन इसी स्थान पर थे। यहां लवणासुर की गुफा नामक एक स्थान है जिसे मधु के पुत्र लवणासुर का निवासस्थान माना जाता है। (दे० मथुरा)

मधुविला=समंगा

'एषा मधुविला राजन् समंगा सम्प्रकाशते एतत् कर्दमिल नाम भरतस्याभिषेचनम्। अलक्ष्म्या किल संयुक्तो वृत्रं हत्वा शचीपतिः, आप्लुतः सर्व पापेभ्यः समंगायां व्यमुच्यत' महा०, वन० 135,1-2। तीर्थयात्रा के इस प्रसंग में इस नदी को विनशन के निकट तथा कनखल (हरद्वार) के उत्तर की ओर बताया गया है (वन० 135-3,135-5)। इसे इस वर्णन में समंगा नाम से भी अभिहित किया गया है। यह गंगा की कोई सहायक या शाखानदी जान पड़ती है। मधुविला के सिंचित प्रदेश को उपर्युक्त उद्धरण में कर्दमिलक्षेत्र कहा गया है।

मधुस्रवा

(1) वामन पुराण 39,6-8 के अनुसार मधुस्रवा कुरुक्षेत्र की सात नदियों में से है—'मधुस्रवाऽम्लुनदी कौशिकी पापनाशिनी'। [दे० आपगा (2)]

(2) (बिहार) गया के निकट बहनेवाली फल्गु की सहायक नदी।

मधूपघ्न=मधूपघ्ना

रामायणकाल में लवणासुर की राजधानी मथुरा या उसके सन्निकट स्थित उपनगर। इसका नाम लवणासुर के पिता मधुदैत्य के नाम पर प्रसिद्ध था। मधुरा, मधुपुरी या मधुवन भी मधु के ही नाम पर प्रसिद्ध थे। कालिदास ने रघुवंश, 15,15 में मधूपघ्न का उल्लेख इस प्रकार किया है—'स च प्राप मधूपघ्नं कुंभीनस्याश्च कुक्षिजः वनात्करमिवादाय सत्वराशिमुपस्थितः अर्थात् मधूपघ्न में जसे ही शत्रुघ्न पहुंचे, कुंभीनसी का पुत्र (लवणासुर) वन से, जीवों की राशि के साथ मानों कर देने के लिए वहां आया। मल्लिनाथ ने इस नगर को अपनी

टीका में 'लवणपुर' लिखा है। रघुवंश 15,28 से विदित होता है कि लवणासुर का वध करने के उपरांत, शत्रुघ्न ने शूरसेन-प्रदेश की पुरानी राजधानी मधुरा के स्थान में नई नगरी बसाई जो यमुना के तट पर थी—'उपकूलं च कालिंद्याः पुरीं पौरुषभूषणः, निर्ममेनिर्ममोऽर्थेषु मधुरा मधुराकृतिः' (दे० विष्णु पुराण-4,5,107—'शत्रुघ्नेनाप्यमितबलपराक्रमो मधुपुत्रो लवणोनाम राक्षसोऽभिहतो मथुरा निवेशिता)। मधुरघ्न या लवणपुर, तत्कालीन मधुरा या मथुरा से शायद भिन्न था फिर भी इसकी स्थिति मथुरा के सन्निकट ही थी क्योंकि शत्रुघ्न ने पुरानी नगरी मथुरा के स्थान पर ही नई नगरी बसाई थी। जैन विद्वान् हेमचंद्राचार्य के अभिधान चिंतामणि नामक ग्रंथ (पृ० 390) में भी मथुरा को मधूपघ्ना कहा गया है। (दे० मथुरा, मधुवन)

मध्यदेश

विष्णुपुराण 2, 3, 15 के अनुसार कुरुपांचाल का प्रदेश मध्यदेश नाम से अभिहित किया जाता था—'तास्विमे कुरुपांचाला मध्यदेशादयोजनाः, पूर्व-देशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः'—स्थूल रूप से इसमें उत्तरप्रदेश का अधिकांश भाग, पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली का परिवर्ती क्षेत्र सम्मिलित था।

मध्यमिका

चित्तौड़ (राजस्थान) से 8 मील उत्तर की ओर स्थित नगरी नामक प्राचीन बस्ती को प्राचीन साहित्य की मध्यमिका माना जाता है। महाभारत, सभा० 32,8 में इस नगरी, जिसमें वाटधान द्विजों का निवास था, के नकुल द्वारा विजित किए जाने का उल्लेख है—'तथा माध्यमिकांश्चैव वाटधानान् द्विजानथ पुनश्च परिवृत्याथ पुष्करारण्यवासिनः'। पतंजलि के महाभाष्य 'अरुनद्यवनः साकेतम्, अरुनद्यवनः मध्यमिकाम्' से सूचित होता है कि पतंजलि के समय में किसी यवन या ग्रीक आक्रमणकारी ने साकेत (अयोध्या का उपनगर) और मध्यमिका का घेरा डाला था। श्री डी० आर० भंडारकर के मत में पतंजलि पुष्यमित्र शुंग के काल में हुए थे (दूसरी शती ई०पू०)। इस यवन आक्रांता को कुछ विद्वानों ने मीनेंडर या बौद्ध साहित्य का मिलिंद (मिलिंदपन्हो ग्रन्थ में उल्लिखित) माना है। गार्गी संहिता में भी संभवतः इस आक्रमण का उल्लेख है। नगरी का माध्यमिका से अभिज्ञान इस प्राचीन स्थान से मिले हुए द्वितीय शती ई० पू० के कुछ विद्वानों के साक्ष्य पर निर्भर है। इन पर 'मझमिकाय शिबिजनपदस्य' लेख उत्कीर्ण है। मध्यमिका के शिवि शायद उशीनर (ज़िला सहारनपुर, उ०प्र०) के प्राचीन शिविवंश की शाखा माने जा सकते हैं जो अपने मूल स्थान से आकर राजस्थान में बस गई

होगी। नगरी के खंडहरों में एक प्राचीन स्तूप और गुप्तकालीन तोरण के चिह्न मिले हैं। चित्तौड का निर्माण बहुत कुछ नगरी के खंडहरों से प्राप्त सामग्री द्वारा किया गया था। (दे० नगरी; चित्तौड़)

मनथानी (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)=महादेवपुर

किंवदंती के अनुसार यह गौतम ऋषि की तपोभूमि थी। यहां के प्राचीन मंदिरों में शिलेश्वरगुड़ी का मंदिर उल्लेखनीय है। इसका शिखर दक्षिण भारतीय मंदिरों के शिखर के अनुरूप है। यहां से प्राप्त एक शिलालेख में जो प्राचीन नागरी लिपि में है वारंगल-नरेश गणपति का उल्लेख है।

मनहाली (प० बंगाल)

बंगाल के पाल-वंश के नरेश मदनपाल का एक ताम्रदानपट्ट इस स्थान से प्राप्त हुआ है।

मनाली (हिमाचलप्रदेश)

स्थानीय किंवदंती में इस स्थान का नाम मनु से संबंधित कहा जाता है। मनुरिखी या मनुऋषि का प्राचीन मंदिर गांव के बीच में है। यह काष्ठ-निर्मित है। महाभारत में वर्णित हिडंबा दानवी का स्थान भी मनाली में माना जाता है। इसके नाम से प्रसिद्ध मंदिर मनाली से कुछ दूर एक विजनवन में बना हुआ है। यह मंदिर भी लकड़ी का बना है और सात मंजिला है। (हिडंबा से संबद्ध अन्य किंवदंती के लिए दे० बिजनौर)

मनिकर्ण (हिमाचल प्रदेश)

कुल्लू के पास प्राचीन तीर्थ है। यहां मंडी कुल्लू मार्ग से होकर पहुंचा जा सकता है।

मनिकियाला (दे० मणिकियाला)

मनियर (ज़िला बलिया उ०प्र०)

यह स्थान सरयूतट पर है। कहा जाता है कि मेधस् ऋषि जिनका उल्लेख दुर्गासप्तशती में है, का आश्रम मनियर में स्थित था। यहां का चतुर्मुखी देवी दुर्गा का मंदिर शायद इन से संबंधित कथा का स्मारक है।

मनियागढ़ (म०प्र०)

यह दुर्ग भूतपूर्व छतरपुर रियासत में खजुराहो से बारह मील दूर एक पहाड़ी पर स्थित है। इसकी प्राचीर प्रायः सात मील लंबी है। आल्हा काव्य में इस दुर्ग का अनेक बार उल्लेख है। यह चंदेलों के आठ प्रसिद्ध किलों में से था।

मनोखसर्पण दे० नौप्रभंशन

मनोजवा

विष्णुपुराण 2,4,55 के अनुसार क्रौंच-द्वीप की एक नदी—'गौरी कुमुदवती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा, क्षांतिश्च पुंडरीका च सप्तैते वर्षनिम्नगाः'

मन्नानूर (ज़िला महबूबनगर, आं० प्र०)

इस स्थान से प्राचीन मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो संभवतः वारंगल-नरेशों के समय के हैं।

मम्मलपुरम् दे० महाबलीपुरम्

मयराष्ट्र दे० मेरठ

मयूर

इस नगर का वर्णन चीनी यात्री युवानच्वांग के यात्रावृत्त में है। इसका अभिज्ञान वाटर्स (पृ० 328) ने हरद्वार से किया है। संभव है हरद्वार के प्राचीन नाम मायापुर का ही चीनी यात्री ने मयूररूप में उल्लेख किया है। युवानच्वांग के वर्णन के अनुसार इस स्थान की जनसंख्या बड़ी विशाल थी और यहां के पवित्र जल में स्नान करने के लिए दूर-दूर से यात्री आते थे। अनेक पुण्यशालाएं जहां निर्धनों को दान दिया जाता था, यहां स्थित थीं। इन्हें धर्मप्राण नरेशों ने स्थापित किया था। गरीबों को निःशुल्क स्वादु भोजन तथा रोगियों को निःशुल्क ओषधि भी यहां मिलती थी।

मयूरभंज (जिला सिंहभूमि, बिहार)

इस स्थान से 12वीं शती ई० के ताम्रपट्टलेख मिले है जिनसे यहां तत्कालीन राज्यवंशों के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

मयूरध्वजपुरी दे० मोरवी

मयूराक्षी

वैद्यनाथ (बिहार) से छः मील दूर त्रिकूट पर्वत से निकलने वाली नदी।

मयूरी

यह मलाबार तट पर स्थित मही है।

मरकरा

भूतपूर्व कुर्ग की राजधानी। यहां के दुर्ग का निर्माण कुर्ग के प्राचीन राजाओं ने किया था। दुर्ग के भीतर राजप्रासाद आदि भी स्थित हैं। इसके सन्निकट ओंकारेश्वर का विशाल मंदिर है। इसकी वास्तुकला में हिंदू तथा स्थानीय मुसलिम कला के तत्त्वों का अपूर्व संगम दिखाई देता है। मरकरा का प्राचीन नाम मुडीकेडी (स्वच्छ ग्राम) है।

मरकुला (जिला पंगी, हिमाचल प्रदेश)

भारत-भोट वास्तुशैली में निर्मित प्राचीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। मंदिर काष्ठ-निर्मित है।

मरफा (जिला बांदा, उ० प्र०)

चंदेल शासनकाल में बने हुए दुर्ग के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

मरिचपत्तन दे० मुर्चिपत्तन

मरिचवट्टी (लंका)

महावंश 26,8 में उल्लिखित है। यह अनुराधपुर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित वर्तमान मिरिसवट्टी है। यहां स्थित विहार को सिंहल नरेश ग्रामणी ने बौद्धसंघ को दान में दे दिया था। विहार का नामकरण इस राजा के, संग को बिना भोजन दिए मिर्च खा लेने पर हुआ था (दे० महावंश, 26,16)

मरिचीपत्तन=**मुर्चिपत्तन**

मरीचक

विष्णुपुराण 2,4,60 के अनुसार शाकद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा भव्य के पुत्र के नाम पर है।

मरीची

ऋग्वेद में वर्णित पर्वत जो श्री हरिराम धमसाना के मत में गढ़वाल में स्थित है। (दे० ऋग्वैदिक भूगोल)

मरु

मारवाड़ (राजस्थान) का प्राचीन नाम जिसका अर्थ मरुस्थल या रेगिस्तान है। मरु का उल्लेख रुद्रदामन् के जूनागढ़ अभिलेख मे है—'·········श्वभ्र मरुकच्छ सिंधु सौवीर'—(दे० गिरनार)

मरुत्

'मारुता: धेनुकाश्चैव तंगणा: परतंगणा:, वाह्लिकास्तित्तराश्चैव चोला: पांड्याश्च भारत'—महा० भीष्म० 50,51। इस उद्धरण मे भारत के सीमांत पर बसने वाली जातियों के नाम उल्लिखित हैं। प्रसंग से जान पड़ता है कि मरुत्-जनपद, जहां के निवासियों को यहां मारुता: कहा गया है, भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा के परे बसने वाली किसी जाति का निवास स्थान होगा। तंगण और परतंगण मरुत् के पार्श्ववर्ती प्रदेश जान पड़ते हैं। सभा० 52,3 के उल्लेख में तंगण-परतंगण प्रदेश को शैलोदा नदी (=खोतन) की उपत्यका में स्थित बताया गया है।

मरुद्वृधा

पंजाब की एक नदी जिसका नामोल्लेख ऋग्वेद 10,75,5-6 (नदीसूक्त) में है—'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया'। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में भी मरुद्वृधा का वितस्ता (झेलम) तथा, असिक्नी' (चिनाब) के साथ उल्लेख है—'चंद्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी। रेगोजिन' (वैदिक इंडिया, पृ० 451) इसे झेलम चिनाब की संयुक्त धारा का नाम मानते हैं।

मरुभू=मरुभूमि

राजस्थान का मरुप्रदेश या मारवाड़। महाभारत सभा० 32,5 में मरुभूमि के नकुलद्वारा जीते जाने का वर्णन है—'यत्र युद्धं महच्चासीच्छूरैर्मत्तमयूरकैः मरुभूमिं च कार्त्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम्'। विष्णुपुराण, 4,24,68 से सूचित होता है कि गुप्तकाल से कुछ पूर्व मरुभू (=मरुभूमि) पर आभीर आदि जातियों का प्रभुत्व था—'नर्मदा मरुभूविषयांश्च आभीरशूद्राद्या भोक्ष्यन्ति'।

मरोल (महाराष्ट्र)

जोगेश्वरी गुफा के निकट मरोल नाम की 20 गुफाएं हैं जो बौद्धकालीन जान पड़ती है। अधिकांश गुहामंदिर नष्ट हो गए हैं। इनकी वास्तु एवं मूर्ति कला जोगेश्वरी गुफा मंदिर की कला के समान ही उच्चकोटि की थी। गुफाएं भूमितल तथा पर्वत-शिखर के मध्य में स्थित है। पहाड़ी के इस स्थान का पत्थर भुरभुरा तथा क्षीण होने के कारण ये गुफाएं काल के प्रवाह में नष्ट-भ्रष्ट हो गई है।

मर्कटह्रद दे० वैशाली

मर्जाद (गुजरात)

पाटन के निकट वर्तमान मजादर। इस प्राचीन जैन तीर्थ का उल्लेख तीर्थ-माला चैत्यवंदन में इस प्रकार है—'वंदे नंदसमे ममीधवलके मर्जादमुंडस्थले'।

मर्दकुक्षि (बिहार)

पाली ग्रंथों के अनुसार राजगृह (वर्तमान राजगीर) के पास मर्दकुक्षि वह स्थान था जहां मगधराज बिंबिसार की महारानी छलना ने यह जानकर कि उसके गर्भ में पितृघातक पुत्र (अजातशत्रु) है उसे निष्कासित करने के लिए अपने उदर (कुक्षि) का मर्दन किया था। इस स्थान के उल्लेख से सूचित होता है कि यह (मर्दकुक्षि) गृध्रकूट पर्वत की तलहटी में ही कहीं था क्योंकि पालीग्रंथों में यह कथा भी वर्णित है कि देवदत्त द्वारा एक पत्थर से आहत होने पर गौतम को पहले मर्दकुक्षि में लाया गया था और फिर वे जीवक वैद्य के विहार में

उपचारार्थ ले जाए गए थे। यह विहार गृध्रकूट पर्वत के निकट ही था।

मलंगूर (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

मलंगूर की पहाड़ी पर एक दुर्ग है जिसे एक सहस्र वर्ष प्राचीन कहा जाता है। दुर्ग के सन्निकट संभवत: जैनों की प्राचीन समाधियां बनी हैं।

मलखेड़ (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर)

भीमा नदी की सहायक कगना के दक्षिण तट पर छोटा सा ग्राम है जो किसी समय दक्षिण भारत के प्रसिद्ध राष्ट्रकूट राजवंश की समृद्धिशाली राजधानी मण्यखेट के रूप में प्रख्यात था। राष्ट्रकूटों का राज्य यहां 8वीं शती से 10वीं शती ई० तक रहा था। ग्राम के आसपास दुर्ग तथा भवनों के अतिरिक्त मंदिरों तथा मूर्तियों के भी विस्तृत अवशेष मिले हैं जिससे ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट-काल में इस नगर का कितना विस्तार था। 962 ई० में परमार नरेश सियक ने नगर को लूटा और नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तत्पश्चात् 14वीं शती तक मलखेड़ अंधकार-युग में पड़ा रहा। इस शती में यह नगर बहमनी राज्य का एक अंग बन गया। बहमनीकाल के प्रसिद्ध हिंदू दार्शनिक जयतीर्थ की समाधि मलखेड़ में आज भी विद्यमान है। जयतीर्थ द्वैतवादी माध्वसंप्रदाय के अनुयायी थे। उनके लिखे हुए ग्रंथ 'न्याय' और 'सुधा' हैं। 17वीं शती के अंत में औरंगजेब ने इस स्थान को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। प्रसिद्ध राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के शासनकाल में मलखेड़ जैन धर्म, साहित्य तथा संस्कृति का महत्वपूर्ण केंद्र था। अमोघवर्ष का गुरु और आदि पुराण तथा पार्श्वाभ्युदय काव्य इत्यादि का रचयिता जिनसेन यहीं का निवासी था। इनके अतिरिक्त जैन गणितज्ञ महेंद्र, गुणभद्र, पुष्पदत, और कन्नड़ लेखक पोन्ना भी यहीं के निवासी थे। अमोघवर्ष स्वयं भी वृद्धावस्था में राजपाट त्याग कर जैन श्रवण बन गया था। इंद्रराज चतुर्थ ने भी जैनधर्म के अनुसार सन्यास की दीक्षा ले ली थी। मलखेड़ में, इस काल में, संस्कृत और कन्नड़ भाषाओं की बहुत उन्नति हुई। जिनसेन के ग्रंथों के अतिरिक्त, राष्ट्रकूट-नरेशों के समय में उनके द्वारा या उनके प्रोत्साहन से अमोघवृत्ति (संस्कृत व्याकरण टीका), गणितसार (महावीर-द्वारा रचित), कविराज-मार्ग (कन्नड़ काव्यशास्त्र पर अमोघवर्ष की रचना) और रत्नमालिका (अमोघवर्ष की कृति) आदि ग्रंथों की रचना भी की गई। गुणभद्र ने आदिपुराण का उत्तरभाग उत्तरपुराण राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय के शासनकाल में लिखा। इसी समय का सबसे प्रसिद्ध लेखक पुष्पदंत था जिसके लिखे हुए महापुराण, नयकुमाराचरिपु (अपभ्रंश ग्रंथ) आज भी विद्यमान हैं। कृष्ण द्वितीय के शासनकाल में (939 ई०) इंद्रनंदी ने ज्वालमालिनी कल्प

और सोमदेव ने 959 ई० में यशस्तिलक चंपूकाव्य लिखे। उपर्युक्त सभी कृतियों का संबंध मण्यखेट से था जिसके कारण इस नगर की मध्यकाल में, दक्षिण भारत के सभी विद्या केंद्रों से अधिक ख्याति थी। राष्ट्रकूट-काल में मलखेड़ अपने भव्य प्रासादों, व्यस्त बाजारों, प्रमोदवनों और उद्यानों के लिए प्रसिद्ध था। वर्तमान समय में मलखेड़, सिराम और नगई नामक ग्राम प्राचीन मण्यखेट के स्थान पर बसे हुए हैं। दिगंबर जैन नगई को अब भी तीर्थ मानते हैं। यहां 16 नक्काशीदार स्तंभों का एक भव्य मंडप है जो किसी प्राचीन मंदिर का प्रवेश द्वार था। इस मंदिर का आधार ताराकार है जो चालुक्य वास्तु-कला का लक्षण माना जाता है। इसमें काले पत्थर के दो अभिलिखित पट्ट जड़े हैं। पास ही हनुमान मंदिर है जिसका सुंदर दीपस्तंभ गर्जराकार बना है। सिराम में पंचलिंग मंदिर है जिसका दीपदानस्तंभ एक ही पत्थर में से तराशा हुआ है। यह 11वीं-12 वीं शती की रचना है। इसके अतिरिक्त 11वीं से 13वीं शती के कुछ जैन मंदिर तथा मूर्तियां भी यहां हैं।

मलद

(1)=मलय

(2) वाल्मीकि० रामायण, बाल० 24,32 में उल्लिखित देश—'मलदांश्च करूषांश्च ताटका दुष्टचारिणी, सेयं पंथानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने'। यह ज़िला शाहाबाद (बिहार) में स्थित बक्सर का प्रदेश है।

मलपर्वा (महाराष्ट्र)

यह नदी जिला बीजापुर में बादामी या प्राचीन वातापि से प्रायः 5 मील दूर बहती है। यहां इसके तट पर अनेक पुराने मंदिर बने है।

मलप्रभा

महाराष्ट्र की छोटी सी नदी है जो प्राचीन तीर्थ रेणुकाद्रि से चार मील दूर बहती है। यह स्थान सौंदत्ती कहलाता है और पूना-बंगलौर रेलपथ पर धारवाड़ से 25 मील दूर है।

मलय

(1) सप्त कुलपर्वतों में से एक है। इसका अभिज्ञान पूर्वी घाट के दक्षिणी भाग की श्रेणियों से किया गया है। यह पूर्वी और पश्चिमी घाट की पर्वत-मालाओं के बीच की शृंखला के रूप में स्थित है। नीलगिरि की पहाड़ियां इसी पर्वत का अंग हैं। संस्कृत साहित्य में मलयपर्वत पर चंदन वृक्षों की प्रचुरता मानी गई है तथा मलयानिल या मलयपर्वत की वायु को चंदन से सुगंधित माना गया है। मलय का दर्दुर के साथ उल्लेख वाल्मीकि रामायण अयो० 91,24 में

है 'मलयं दर्दुरं चैव ततः स्वेदनुदोनिलः, उपस्पृश्य ववौ युक्त्वा सुप्रियात्मा सुखं शिवः'। कालिदास ने रघु की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में मलयाद्रि की उपत्यकाओं में मारीच या कालीमिर्च के वनों और यहां विहार करने वाले हारीत या हरित-शुकों का मनोहर उल्लेख किया है—'वलैरध्युषितास्तस्य विजिगीषोर्गताध्वनः, मारीचोद्भ्रांतहारीताः मलयाद्रेरुपत्यकाः' रघु० 4,46। भवभूति ने उत्तर रामचरित में मलयपर्वत को कावेरी नदी से परिवृत बताया है। बालरामायण 3,31 में मलय पर्वत को एला और चंदन के वनों से ढका हुआ कहा है (चंदन का पर्याय ही मलय हो गया है)। हर्ष के नागानंद और रत्नावली नाटकों में भी मलय पर्वत का उल्लेख है। मलय को कालिदास ने दक्षिण समुद्र (रत्नाकर) तक विस्तृत माना है—'वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्' रघु० 13,2। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में पर्वतों की सूची में मलय को पहला स्थान दिया गया है—'मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटऋषभः....'। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी मलयगिरि तथा मलयानिल का वर्णन अनेक स्थानों पर है—दे० 'सरस बसंत समय भल पाइल दछिन (मलय) पवन बहुधीरे'—विद्यापति; 'मलयागिरि की भीलनी चंदन दैत जराय' वृंद। मलय के मलयागिरि, मलयाचल, मलयाद्रि इत्यादि पर्याय प्रसिद्ध है।

(2) बिहार में स्थित मलद नामक जनपद जो मत्स्य (2) या मल्ल देश के निकट था। मलय मलद का ही पाठांतर है—'ततो मत्स्यान् महातेजा मलदांश्च महाबलान्, अनघानभयांश्चैव पशुभूमिं च सर्वशः' महा० 2,30,8

(3) महावंश 7,68 में उल्लिखित लंका का मध्यवर्ती पर्वतीय प्रदेश।

मलयस्थली

मलयपर्वत का प्रदेश जो प्राचीनकाल में पांड्यदेश के अंतर्गत था—'तमालपत्रास्तरणासुरंतुं प्रमोद शश्वन्मलयस्थलीषु'—रघुवंश 6,64। (दे० पांड्य)। इसकी स्थिति वर्तमान मैसूर तथा केरल के पहाड़ी भागों में समझनी चाहिए।

मलयाचल दे० मलय (1)

मलयाद्रि दे० मलय (1)

मलयु

सुमात्रा (इंडोनीसिया) में स्थित एक प्राचीन हिंदू राज्य जो संभवतः ईस्वी सन् की प्रारंभिक शतियों में स्थापित हुआ था। इसका आधुनिक नाम जंबी है। 7वीं शती ई० में यह छोटी सी रियासत जावा के श्रीविजय नामक साम्राज्य में सम्मिलित हो गई थी। चीनी-यात्री इत्सिंग मलयु होकर ही भारत पहुंचा

था। उसने मलयु को श्रीभोज का एक भाग बताया है। इत्सिंग भारत में 672 ई० में आया था।

मलवई (म० प्र०)

राजपुर के निकट इस स्थान पर पूर्व मध्यकालीन मंदिरों के अवशेष पाए गए हैं।

मलिया (ज़िला जूनागढ़, गुजरात)

इस स्थान से वलभिनरेश महाराज धरसेन द्वितीय का एक ताम्रदानपट्ट प्राप्त हुआ है जिसकी तिथि 252 गुप्त-संवत्—571-572 ई० है। इसमें उल्लेख है कि धरसेन द्वारा अंतरता, डोंभिग्राम और वज्रग्राम का कुछ भाग ब्राह्मणों को पंचयज्ञ संपन्न करने के लिए दिया गया था। इस अभिलेख में कई तत्कालीन अधिकारियों के पदों के नाम हैं—अयुक्तक, विनियुक्तक, द्रंगिक, महत्तर, ध्रुवाधिकरण, दंडपाशिक, राजस्थानीय, कुमारामात्य आदि।

मलिहाबाद (ज़िला रायचूर, मैसूर)

इस स्थान पर एक हिंदूकालीन दुर्ग अवस्थित है। अब यह खंडहर हो गया है। दुर्ग के अंदर एक द्वार के सामने लाल पत्थर में तराशे हुए दो हाथियों की मूर्तियां रखी हैं। किले में ककातीय-राजाओं का एक अभिलेख कन्नड–तेलगू मिश्र-भाषा में उत्कीर्ण है।

मल्ल

(1)=मल्लराष्ट्र। मल्लदेश का सर्वप्रथम निश्चित उल्लेख शायद वाल्मीकि रामायण उत्तर० 102 में इस प्रकार है 'चंद्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता, चंद्रकांतेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा'। अर्थात् रामचंद्रजी ने लक्ष्मण-पुत्र चंद्रकेतु के लिए मल्लदेश की भूमि में चंद्रकांता नामक पुरी बसाई जो स्वर्ग के समान दिव्य थी। महाभारत में मल्ल देश के विषय में कई उल्लेख हैं—'मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा माहिका शशिकास्तथा' भीष्म० 9,46; "अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम्'—भीष्म० 9,44; 'ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कोसलान्, मल्लानामधिपं चैव पार्थिवं चाजयत् प्रभुः' सभा० 30,3। बौद्ध-ग्रंथ अंगुत्तरनिकाय में मल्लजनपद का उत्तरीभारत के सोलह जनपदों में उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में मल्लदेश की दो राजधानियों का वर्णन है—कुशावती (कुशीनगर) और पावा (दे० कुसजातक; महापरिनिब्बान सुत्त)। महापरिनिब्बानसुत्त के वर्णन के अनुसार गौतम बुद्ध के समय में कुसीनारा या कुशीनगर के निकट मल्लों का शालवन हिरण्यवती (गंडक) नदी के तट पर स्थित था। मनुस्मृति में मल्लों को व्रात्यक्षत्रियों में परिगणित किया गया है

क्योंकि ये बौद्ध धर्म के दृढ़ अनुयायी थे। कुसजातक में ओक्काक (=इक्ष्वाकु) नामक मल्लनरेश का उल्लेख है। इक्ष्वाकुवंशीय नरेशों का परंपरागत राज्य अयोध्या या कोसलप्रदेश में था। रायचौधरी का मत है (दे० पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐशेंट इंडिया, पृ० 107-108) कि मल्लराष्ट्र में बिंबिसार के पूर्व गणराज्य स्थापित हो गया था। इससे पहले यहां के अनेक राजाओं के नाम मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में मल्लजनपद के भोगनगर, अनुप्रिय तथा उरुवेलकप्प नामक नगरों के नाम मिलते हैं। बौद्ध तथा जैन साहित्य में मल्लों और लिच्छवियों की प्रतिद्वंद्विता के अनेक उल्लेख हैं—(दे० बुद्धसाल जातक, कल्पसूत्र आदि)। बुद्ध के कुशीनगर में निर्वाण प्राप्त करने के उपरांत, उनके अस्थि-अवशेषों का एक भाग मल्लों को मिला था जिसके संस्मरणार्थ उन्होंने कुशीनगर में एक स्तूप या चैत्य का निर्माण किया था। इसके खंडहर कसिया में मिले हैं। इस स्थान से प्राप्त एक ताम्रपट्टलेख से यह तथ्य प्रमाणित भी होता है—'(परिनि) र्वाण चैत्यताम्रपट्ट इति'। मगध के राजनैतिक उत्कर्ष के समय मल्ल जनपद इसी साम्राज्य की विस्तरणशील सत्ता के सामने न टिक सका और चौथी शती ई० पू० में चंद्रगुप्त मौर्य के महान् साम्राज्य में विलीन हो गया। जैनग्रंथ भगवती सूत्र में मोलि या मालि नाम से मल्ल-जनपद का उल्लेख है। बौद्ध काल में मल्लराष्ट्र की स्थिति उत्तरप्रदेश के पूर्वी और बिहार के पश्चिमी भाग के अंतर्गत समझनी चाहिए।

(2) दे० मत्स्य (2)

(3) मल्लराष्ट्र की स्थिति श्री चि० वि० वैद्य ने महाराष्ट्र में मानी है। यह मालवा का रूपांतर हो सकता है।

मल्लक

(1)=मालव। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित है।

(2)=मल्ल (1)

मल्लिकार्जुन (जिला कृष्णा, आं० प्र०)

इस स्थान (=श्रीशैल) पर शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक स्थित है। पौराणिक किंवदंती में इस स्थान को दक्षिण में काशी के समान ही पवित्र माना जाता है 'श्री शैलं···दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते'। (दे० श्रीशैल)

मवाना (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

कहा जाता है कि इस स्थान का प्राचीन नाम मुहाना (मुख्य द्वार) था क्योंकि महाभारत में कौरवों की महानगरी हस्तिनापुर, जो यहां से प्रायः सात मील दूर है—का मुख्य-द्वार इसी स्थान पर था।

मवाली (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

1537 ई० में इस स्थान पर मेवाड़-नरेश उदयसिंह ने बनवीर का वध किया था। बनवीर ने मेवाड़ की गद्दी पर अवैध अधिकार कर लिया था।

मसागा (पश्चिमी पाकि०)

सिंध और पंजौरा नदियों के बीच के प्रदेश में बसा हुआ एक सुरक्षित नगर जिसे विजित करने में यवन आक्रांता अलक्षेंद्र (सिकन्दर) को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा था (327 ई० पू०)। यहां उस समय अस्सक (अश्वक) गणराज्य की राजधानी थी। अश्वकों ने यवन-राज का सामना करने के लिए बीस सहस्र अश्वारोही सेना (जिसके कारण वे अश्वक कहलाते थे, दे० केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया, जिल्द 1), तीस सहस्र पैदल सिपाही और तीस हाथी मोर्चे पर खड़े किए। नगर चारों ओर से पर्वत, नदी तथा कृत्रिम खाइयों और परकोटे से घिरा होने के कारण पूर्णरूप से सुरक्षित था। अलक्षेंद्र, नगर की किलाबंदी का निरीक्षण करते समय अश्वकों के तीर से घायल हो गया। इससे घबरा कर उसने नगर के अंदर के सात सहस्र सैनिकों को सुरक्षा का वचन देकर उन पर धोखे से आक्रमण कर दिया और इस प्रकार नगर पर अधिकार कर लिया। फिर भी यह अधिकार कुछ ही समय तक रहा और अलक्षेंद्र के भारत से बिदा होते ही अन्य प्रदेशों की भांति मसागा भी स्वतंत्र हो गया। मसागा की स्थिति का ठीक-ठीक अभिज्ञान नहीं हो सका है किंतु यह निश्चित है कि यह नगर बजौर की घाटी में कहीं था।

महती=**मही** (2)

महत्नु

ऋगवेद 10,75 में उल्लिखित नदी जिसका अभिज्ञान अफगानिस्तान की अर्गेसन नदी से किया गया है। यह गोमती या गोमल नदी में मिलती है।

महद्गिरि

पुराणों में संभवतः वर्तमान संभल (ज़िला मुरादाबाद, उ० प्र०) का नाम। कहा जाता है कि भविष्य का कल्कि अवतार संभल में ही होगा।

महबूबनगर (आं० प्र०)

प्राचीन पानगल। यह नगर चोलवाड़ी के अंतर्गत है। यहां का प्राचीन किला ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण समझा जाता है। इसी किले के बाहर 147 ई० में फिरोजशाह बहमनी को वारंगल तथा विजयनगर के राजाओं की संयुक्त सेनाओं ने हराया था। 1513 ई० में सुलतान कुली कुतुबशाह ने विजयनगर नरेश को यहीं परास्त किया। यह किला $1\frac{1}{2}$ मील लंबा और एक

मील चौड़ा है। इसकी सात दीवारें है। बीच में एक दुर्ग है और सात ही मीनारें है। एक तेलगु अभिलेख से सूचित होता है कि 1604 ई० में किले का रक्षपाल खैरात खां था और बादशाह की माता इसी दुर्ग में रहती थी। द्वितीय निजाम, 1786 से 1789 तक इस किले के अंदर एक भवन में रहा था।

महरिया (ज़िला मिर्ज़ापुर, उ० प्र०)

यहाँ सोन नदी की घाटी में स्थित कई गुफाओं में प्रागैतिहासिक चित्रकारी के नमूने प्राप्त हुए हैं। एक चित्र में नृत्य करते हुए पुरुषों और वन्यमृगों को अंकित किया गया है। यह आखेट का चित्र जान पड़ता है।

महरौली

दिल्ली से 13 मील दूर छोटा सा कस्बा है। पृथ्वीराज चौहान (12वीं शती का अंत) के समय की दिल्ली इसी स्थान के निकट थी। पृथ्वीराज की अधिष्ठात्री देवी जोगमाया का मंदिर भी यहां है। इसी मंदिर के कारण दिल्ली का एक मध्यकालीन नाम जोगिनीपुर भी प्रसिद्ध था। गुलाम-वंश के सुलतानों की दिल्ली भी महरौली के आस-पास बसी हुई थी। कुतुबमीनार के निकट प्रसिद्ध लौहस्तंभ है जिसका गुप्तकालीन अभिलेख महरौली स्तंभ-अभिलेख कहलाता है। इसमें चंद्र (शायद चंद्रगुप्त द्वितीय) नामक राजा की विजय-यात्राओं तथा मरणोत्तर कीर्ति का यशोगान है (दे० दिल्ली)। कुछ विद्वानों का कहना है कि महरौली में प्राचीन काल में वेधशाला थी और इसी कारण महरौली या मिहिरपुरी मिहिर या सूर्य के नाम पर प्रसिद्ध थी।

महाकंदर

महावंश, 8,12 के अनुसार कुमारविजय की मृत्यु के पश्चात् सिंदपुर का राजकुमार पांडुवासुदेव भारत से लंका आकर बत्तीस अमात्य-पुत्रों के साथ महाकंदर नदी के मुहाने पर उतरा था। यही बाद में लंका का राजा बना। महाकंदर नदी शायद वर्तमान मांकदुरु है।

महाकांतार

प्रयाग-स्तंभ पर उत्कीर्ण समुद्रगुप्त की प्रख्यात प्रशस्ति में इस वन्य-प्रदेश का राजा व्याघ्रराज बताया गया है ('महाकांतारकव्याघ्रराज')। स्मिथ के मतानुसार महाकांतार (अर्थात् घोरवन) मध्य-प्रदेश तथा उड़ीसा के जंगली इलाके का नाम था जहां आज भी घने वन पाए जाते हैं। रायचौधरी के अनुसार मध्यप्रदेश की भूतपूर्व जसो रियासत इस वन्य प्रदेश में सम्मिलित थी। शायद महाकांतार के शासक इसी व्याघ्रराज का नाम, पृथ्वीसेन के नचने की तलाई तथा गंज से प्राप्त गुप्तकालीन अभिलेखों में है।

महाकाम

बोर्नियो (इंडोनेसिया) की एक नदी जिसके तटवर्ती प्रदेश में ई० सन् की प्रारंभिक शतियों में भारतीय सभ्यता का विकास हुआ था।

महाकाल

उज्जयिनी में स्थित भगवान् शिव का अति प्राचीन मंदिर। इसका वर्णन कालिदास ने मेघदूत, (पूर्वमेघ, 36 तथा अनुवर्ती छंद में किया है—'अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले, स्थातव्यं ते नयनविषयंयावदभ्येति भानु:, कुर्वन् संध्यावलिपटहतां शूलिन: श्लाघनीया, मा मंद्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्'—आदि। रघुवंश 6,34 में इंदुमती-स्वयंवर के प्रसंग में अवंतिनरेश के परिचय के संबंध में भी महाकाल का वर्णन है—'असौमहाकाल निकेतनस्य वसन्नदूरे किल चंद्रमौले: तमिस्त्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावतो निर्वशति प्रदोषान्'। उज्जयिनी को प्राचीनकाल में ज्योतिष-विद्या का घर माना जाता था। इस नगरी में प्राचीन काल में भारतीय कालक्रम की गणना का केंद्र होने के कारण भी महाकाल मंदिर का नाम सार्थक जान पड़ता है (प्राचीन भारत में ज्योतिष-विद्या विशारदों ने कालक्रम मापने के लिए उज्जयिनी में शून्य अक्षांश की स्थिति मानी थी जैसा कि वर्तमान काल में ग्रीनिच में है)। जयपुर नरेश जयसिंह द्वितीय ने एक प्रसिद्ध वेधशाला भी यहां बनवाई थी। महाकाल का मंदिर उज्जैन मे आज भी है किंतु यह कालिदास द्वारा वर्णित प्राचीन मंदिर से अवश्य भिन्न है। प्राचीन मंदिर को गुलाम वंश के सुलतान इल्तुतमिश ने 13वीं शती में नष्ट कर दिया था। नवीन मंदिर प्राचीन देवालय के स्थान पर ही बनाया गया जान पड़ता है। यह मंदिर भूमि के नीचे गहरे स्थान में बना हुआ है। पास ही शिप्रा नदी बहती है जिसका वर्णन कालिदास ने महाकाल मंदिर के प्रसंग में किया है।

महाकूट (ज़िला बीजापुर, मैसूर)

यह स्थान चालुक्यकालीन है (6ठी–7वीं शती ई०)। यहां इस काल में निर्मित दो मंदिर उल्लेखनीय हैं जो मुख्य रूप से उत्तरी भारत के पूर्वगुप्तकालीन मंदिरों के अनुरूप हैं। इनके मध्य में गर्भगृह और उसके चतुर्दिक् पटा हुआ प्रदक्षिणापथ है। ये मंदिर बीजापुर ज़िले के अन्य मंदिरों के समान गुप्तकालीन मंदिरों की परंपरा में हैं जो गुप्तकाल की समाप्ति के 11 शतियों के बाद भी दक्षिण भारत में जीवित रही। सुदूर दक्षिण में कनारा प्रदेश (मैसूर) के मंदिर भी (दे० भटकल; मुडाबिदरी; जरसोप्पा) इसी परंपरा के अंतर्गत हैं।

महाकूट में 602 ई० का एक स्तंभलेख मिला है जिसमें चालिक्य या चालुक्य-वंशीय कीर्तिवर्मन् प्रथम की वंग, अंग, मगधादि देशों पर विजय का वर्णन है। कीर्तिवर्मन् के पिता द्वारा किए गए अश्वमेधयज्ञ का वर्णन भी इस अभिलेख में है। अभिलेख से चालुक्यनरेश मंगलेश के विषय में सूचना मिलती है।

महाकोशी

कुमारसंभव 6,33 में उल्लिखित कैलास के निकट बहने वाली कोई नदी। शिव ने सप्तर्षियों को पार्वती की मंगनी के लिए औषधिप्रस्थ भेजते हुए उनसे लौट कर महाकोशी के प्रपात के निकट मिलने के लिए कहा था—'तत्प्रयातौषधिप्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरं महाकोशीप्रपातेऽस्मिन् संगमः पुनरेव नः'

महाकोसल दे० दक्षिणकोसल

महाखुषापार

गुप्त अभिलेखों में उल्लिखित स्थान जिसका अभिज्ञान अनिश्चित है (दे० रायचौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐशेंट इंडिया, पृ० 472)।

महागंगा=महावेलिगंगा (लंका)

लंका के प्राचीन बौद्ध इतिहास ग्रंथ महावंश (10,57) में उल्लिखित नदी।

महातीर्थ (लंका)

महावंश 7,58 के अनुसार राजकुमार विजय के निमंत्रण पर भारत के पांड्य देश से आने वाले लोग लंका पहुंच कर जलयान से इसी स्थान पर उतरे थे। यह मनार द्वीप के सामने वर्तमान मंतोट है।

महादेव

विंध्य के दक्षिण तथा सतपुड़ा के निकट स्थित पर्वत-श्रेणी जो संभवतः प्राचीन शुक्तिमान् पर्वतमाला के अंतर्गत थी।

महादेवपुर=मनथानी

महाद्रुम

विष्णुपुराण 2,4,60 के अनुसार शाकद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा भव्य के पुत्र महाद्रुम के नाम से प्रसिद्ध है।

महानंद

जिला पूर्णिया (बिहार) की एक नदी। संभव है इसका नाम मगध के राजा महानंद के नाम पर प्रसिद्ध हुआ हो।

महानंदी (मैसूर)

नंद्याल के निकट यह स्थान प्राचीन शिव मंदिर के लिए प्रसिद्ध है।

महानगर

पाणिनि 6,2,89 में उल्लिखित है। यह महास्थान, जिला बोगरा, बंगाल का प्राचीन नाम है।

महानदी

(1) महेंद्रपर्वत के निकट से होकर बहने वाली नदी जो उड़ीसा को सिंचित करती हुई कटक के पास बंगाल की खाड़ी में गिरती है। श्रीमद्भागवत 5,19, 18 में शायद इसीका उल्लेख है—'महानदी वेदस्मृतिऋषिकुल्या'। महाभारत भीष्म० 9,14 में भी महानदी का नामोल्लेख है—'नदीं पिबन्ति विपुलां गंगां सिंधुं सरस्वतीम्, गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम्'

(2) गया (बिहार) के निकट बहने वाली फल्गु को ही महाभारत वन० 95,9 में, 'महानदी' नाम से अभिहित किया गया है—'नगो गयशिरो यत्र पुण्या चैव महानदी'। फल्गु को स्थानीय रूप से आज भी 'महाना' कहा जाता है जो अवश्य ही महानदी का अपभ्रंश है। उपयुक्त उल्लेख में महानदी शब्द व्यक्ति-वाचक संज्ञा है।

महाना दे० फल्गु; महानदी (2)

महापद्मसर

वुलर झील (कश्मीर) का प्राचीन संस्कृत नाम।

महाबलिस्तान

11वीं शती के प्रसिद्ध अरब विद्वान् और पर्यटक अलबेरूनी ने भीलसा या विदिशा का प्राचीन नाम महाबलिस्तान लिखा है।

महाबलीपुरम् (मद्रास)

मद्रास से लगभग 40 मील दूर समुद्र तट पर स्थित वर्तमान मम्मलपुर। इसका एक अन्य प्राचीन नाम बाणपुर भी है। यह पल्लवनरेशों के समय (7वीं शती ई०) में बने सप्तरथ नामक विशाल मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। ये मंदिर भारत के प्राचीन वास्तुशिल्प के गौरवमय उदाहरण माने जाते हैं। पल्लवों के समय में दक्षिणभारत की संस्कृति उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंची हुई थी। इस काल में बृहत्तर भारत, विशेष कर स्याम, कंबोडिया, मलाया और इंडोनेसिया में दक्षिण भारत से बहुसंख्यक लोग जाकर बसे थे और वहां पहुंच कर उन्होंने नए नए भारतीय उपनिवेशों की स्थापना की थी। महाबलीपुर के निकट एक पहाड़ी पर स्थित दीपस्तंभ समुद्र-यात्राओं की सुरक्षा के लिए बनवाया गया था। इसके निकट ही सप्तरथों के परम विशाल मंदिर विदेश-यात्राओं पर जाने वाले यात्रियों को मातृभूमि का अंतिम संदेश देते रहे होंगे।

दीपस्तंभ के शिखर से शिल्पकृतियों के चार समूह दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम समूह एक ही पत्थर में से काटे हुए पांच मंदिरों का है जिन्हें रथ कहते हैं। ये कणाश्म या ग्रेनाइट पत्थर के बने हैं। इनमें से विशालतम धर्मरथ है जो पांच तलों से युक्त है। इसकी दीवारों पर सघन मूर्तिकारी दिखाई पड़ती है। भूमितल की भित्ति पर आठ चित्रफलक प्रदर्शित हैं जिनमें अर्धनारीश्वर की कलापूर्ण मूर्ति का निर्माण बड़ी कुशलता से किया गया है। दूसरे तल पर शिव, विष्णु और कृष्ण की मूर्तियों का चित्रण है। फूलों की डलिया लिए हुए एक सुंदरी का मूर्तिचित्र अत्यंत मनोरम है। दूसरा रथ भीमरथ नामक है जिसकी छत गाड़ी के टाप के सदृश जान पड़ती है। तीसरा मंदिर धर्मरथ के समान है। इसमें वामनों और हंसों का सुंदर अंकन है। चौथे में महिषासुरमर्दिनी दुर्गा की मूर्ति है। पांचवाँ एक ही पत्थर में से कटा हुआ है और हाथी की आकृति के समान जान पड़ता है।

दूसरा समूह दीपस्तंभ की पहाड़ी में स्थित कई गुफाओं के रूप में दिखाई पड़ता है। वराह गुफा में वराह अवतार की कथा का और महिषासुर गुफा में महिषासुर तथा अनंतशायी विष्णु की मूर्तियों का अंकन है। वराहगुफा में जो अब नितान्त अंधेरी है बहुत सुंदर मूर्तिकारी प्रदर्शित है। इसी में हाथियों द्वारा स्नापित गजलक्ष्मी का भी अंकन है। साथ ही सस्त्रीक पल्लवनरेशों की उभरी हुई प्रतिमाएं हैं जो वास्तविकता तथा कलापूर्ण भावचित्रण में बेजोड़ कही जाती हैं।

तीसरा समूह सुदीर्घ शिलाओं के मुखपृष्ठ पर उकेरे हुए कृष्णलीला तथा महाभारत के दृश्यों के विविध मूर्तिचित्रों का है जिनमें गोवर्धन-धारण, अर्जुन की तपस्या आदि के दृश्य अतीव सुंदर हैं। इनसे पता चलता है कि स्वदेश से दक्षिणपूर्वएशिया के देशों में जाकर बस जाने वाले भारतीयों में महाभारत तथा पुराणों आदि की कथाओं के प्रति कितनी गहरी आस्था थी। इन लोगों ने नए उपनिवेशों में जाकर भी अपनी सांस्कृतिक परंपरा को बनाए रखा था। जैसा ऊपर कहा गया है महाबलीपुर समुद्रपार जाने वाले यात्रियों के लिए मुख्य बंदरगाह था और मातृभूमि छोड़ते समय ये मूर्ति-चित्र इन्हें अपने देश की पुरानी संस्कृति की याद दिलाते थे।

चौथा समूह समुद्रतट पर तथा सन्निकट समुद्र के अंदर स्थित सप्तरथों का है जिनमें से छः तो समुद्र में समा गए हैं और एक समुद्र-तट पर विशाल मंदिर के रूप में विद्यमान है। ये छः भी पत्थरों के ढेरों के रूप में समुद्र के अंदर दिखाई पड़ते हैं।

महाबलीपुर के रथ जो शैलकृत्त हैं अजंता या इलौरा के गुहा मंदिरों की भांति पहाड़ी चट्टानों को काट कर तो अवश्य बनाए गए हैं किंतु उनके विपरीत ये रथ, पहाड़ी के भीतर बने हुए वेश्म नहीं हैं अर्थात् ये शैलकृत्त होते हुए भी संरचनात्मक हैं। इनको बनाते समय शिल्पियों ने चट्टान को भीतर और बाहर से काट कर पहाड़ से अलग कर दिया है जिससे ये पहाड़ी के पार्श्व में स्थित नहीं जान पड़ते वरन् उससे अलग खड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। महाबलीपुर दो वर्ग मील के घेरे में फैला हुआ है। वास्तव में यह स्थान पल्लवनरेशों की शिल्प-साधना का अमर स्मारक है। महाबलीपुर के नाम के विषय में किंवदंती है कि वामन् भगवान् ने (जिनके नाम से एक गुहामंदिर प्रसिद्ध है) दैत्यराज बलि को पृथ्वी का दान इसी स्थान पर दिया था।

महाबलेश्वर (महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र का रमणीक गिरिनगर। इसकी ऊंचाई समुद्रतल से 4500 फुट है। इसकी खोज 1824 ई० में, जनरल पी० लॉडविक (P. Lodwick) ने की थी। 1828 ई० में बंबई के गवर्नर सर मालकम ने सतारा के राजा से इसे लेकर बदले में उसे दूसरा स्थान दे दिया। महाबलेश्वर के समीप एक पहाड़ी से दक्षिणभारत की प्रसिद्ध नदी कृष्णा निकली है। महाबलेश्वर ग्राम में महा-बलेश्वर शिव का प्राचीन मंदिर है।

महामृत्युंजय (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

यह पुराण-प्रसिद्ध पर्वत कर्णप्रयाग से 18 मील पूर्व की ओर स्थित है।

महामेघवनाराम (लंका)

महावंश 1, 80,15-24-25 में उल्लिखित यह स्थान जो एक उद्यान के रूप में प्रसिद्ध था, लंका की प्राचीन राजधानी अनुराधपुर के पूर्वी द्वार के निकट था। इसे देवानांप्रिय तिष्य (सिंहलनरेश) ने बौद्धसंघ को समर्पित कर दिया था। यह 'नगर से न बहुत दूर और न बहुत समीप था और रमणीय छाया और सुंदर जल से युक्त था'। यहीं अशोक के पुत्र स्थविर महेंद्र को सिंहलनरेश तिष्य ने ठहराया था।

महावन

(1) (ज़िला मथुरा, उ० प्र०) मथुरा के समीप, यमुना के दूसरे तट पर स्थित अति प्राचीन स्थान है जिसे बालकृष्ण की क्रीडास्थली माना जाता है। यहां अनेक छोटे-छोटे मंदिर हैं जो अधिक पुराने नहीं हैं। व्रज के चौरासी वनों में महावन मुख्य था। महावन को औरंगजेब के समय में उसकी धर्मांधनीति का शिकार बनना पड़ा था। इसके बाद, 1757 ई० में अफगान अहमदशाह

अब्दाली ने जब मथुरा पर आक्रमण किया तो उसने महावन में सेना का शिविर बनाया। वह यहां ठहर कर गोकुल को नष्ट करना चाहता था किंतु महावन के चारहजार नागा सन्यासियों ने उसकी सेना के 2000 सिपाहियों को मार डाला और स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए। गोकुल पर होने वाले आक्रमण का इस प्रकार निराकरण हुआ और अब्दाली ने अपनी फौज वापस बुला ली। इसके पश्चात् महावन के शिविर में विशूचिका के प्रकोप से अब्दाली के अनेक सिपाही मर गए। अतः वह शीघ्र दिल्ली लौट गया किंतु जाते-जाते भी इस बर्बर आक्रांता ने मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों पर जो लूट मचाई और लोमहर्षक विध्वंस और रक्तपात किया वह इसके पूर्व कृत्यों के अनुकूल ही था।

(2) महावंश 4,12 में वर्णित एक स्थान जो संभवतः वैशाली के प्रमोदवन का नाम था। इसका अभिज्ञान बसाढ़ (जिला मुज़फ्फ़रपुर, बिहार) से 2 मील उत्तरपश्चिम की ओर स्थित वर्तमान कोलुआ से किया गया है जहां अशोक का एक स्तंभ भी विद्यमान है। बसाढ़ ग्राम प्राचीन वैशाली नगरी के स्थान पर बसा हुआ है।

महावीरजी दे० चांदनगांव

महावीरवर्ष

विष्णुपुराण 2,4,74 में वर्णित पुष्कर द्वीप का एक भाग—'महावीरं तथैवान्यद्धातकीखंडसंज्ञितम्'।

महावेलिगंगा दे० महागंगा

महाशोण = महाशोणा = शोण

'गंडकीञ्च महाशोणां सदानीरां तथैव च एकपर्वतके नद्यः क्रमेणैत्याव्रजन्त ते' महा० सभा० 20,27। (दे० शोण)

महासागर

महावंश 15,152 में उल्लिखित महामेघवनाराम का ही एक नाम है। इस उद्यान को लंका के राजा जयंत ने कश्यप बुद्ध को समर्पित किया था। यहीं बोधिवृक्ष की एक शाखा भी जयंत ने लगाई थी।

महास्थानगढ़ दे० पुंड्र, पुंड्रनगर

महाहिमवद्धिष्ठातृ

जैन सूत्र-ग्रंथ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में उल्लिखित महाहिमवंत का एक शिखर।

महाहिमवंत = अंतर्गिरि

महिष

विष्णुपुराण 2,4,26-27 में उल्लिखित शाल्मल-द्वीप का एक पर्वत 'कुमुद-

श्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहकः, द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः। कंकस्तु पंचमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा, ककुद्मान् पर्वतवरः सरिन्नामानि मे श्रृणु'।

महिषासुर दे० मैसूर

महिष्मंडल

नर्मदा के दक्षिणतट पर स्थित प्रदेश (खानदेश इसमें सम्मिलित था)। इसका नाम माहिष्मती नगरी के संबंध से महिष्मंडल हुआ था। लंका के प्राचीन बौद्ध इतिहास महावंश 12,3 में इसका उल्लेख है। अशोक के समय में होने वाली प्रथम धर्मसंगीति के पश्चात् मोग्गलिपुत्र ने कई स्थविरों को पड़ोसी देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भेजा था। उनमें से स्थविर महादेव को महिष्मंडल भेजा गया था।

महिष्मती=**माहिष्मती**

मही

(1) वाल्मीकि रामायण किष्किंधा 40,22 में मही और कालमही का उल्लेख है। सुग्रीव ने सीता के अन्वेषणार्थ वानरों को पूर्व दिशा की ओर भेजते हुए इन स्थानों का वर्णन किया था—'महीं कालमहीं चापि शैलकाननशोभितां, ब्रह्ममालान्विदेहांश्च मालवान् काशिकोसलान्'। मही संभवतः गंडकी नदी (बिहार) है। इसे माही भी कहते थे।

(2)=माही। यह नदी मालवा के पहाड़ों (पारियात्र शैलमाला) से निकल कर खंभात की खाड़ी, में प्राचीन स्तंभतीर्थ के निकट गिरती है। यह स्थान स्कंदपुराण, कुमारिका खंड में पवित्र तीर्थ बताया गया है। इसे वायुपुराण 65, 97 में महती और वराहपुराण, 65 में रोहि कहा गया है।

(3) विष्णु पुराण 2,4,43 में उल्लिखित कुशद्वीप की एक नदी—'विद्युदंभा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः'।

महीकवती

बंबई के उपनगर महीम का प्राचीन नाम। गुर्जर-नरेश भीमदेव ने 15वीं शती में इस स्थान पर अपनी राजसभा की थी।

महीधर

मैहर (भूतपूर्व मैहर रियासत, म० प्र०) का प्राचीन नाम है। 'ततो महीधरं जग्मुः धर्मज्ञेनाभिसंस्कृतम् राजर्षिणा पुण्यकृता गयेनानुपमद्युते' महा० वन० 85,8-9। यहाँ इसकी स्थिति प्रसंगानुसार प्रयाग के दक्षिण में है जो वर्तमान मैहर की स्थिति के अनुरूप ही है।

महीवती

'तब तथागत ने तपस्वी कपिल को महीवती में विनीत बनाया जहां शि ल ;5र मुनि के चरण अंकित थे'—बुद्धचरित 21,24। इस नगरी का अभिज्ञान अनिश्चित है। संभवतः यह मही नदी या माही के तट पर स्थित प्राचीन स्तंभ-तीर्थ (=खंभात) है। बुद्धचरित 21,22 में शूर्पारक का उल्लेख है जो प्रसंग से महीवती के निकट ही होना चाहिए। अतः यह अभिज्ञान ठीक जान पड़ता है।

महीशूर दे० मैसूर

महुआ

भूतपूर्व रियासत ग्वालियर (म० प्र०) में तिराही से एक मील दक्षिण की ओर स्थित है। यहां तीन प्राचीन शिवमंदिरों के खंडहर हैं। एक मंदिर पर संभवतः 7वीं शती ई० का अभिलेख उत्कीर्ण है।

महुड़ी

भूतपूर्व रियासत बड़ौदा (गुजरात) में विजापुर के निकट महुड़ी ग्राम में कोट्यर्क के मंदिर की खुदाई करने से चार धातु प्रतिमाएं प्राप्त हुई थी। इनका वर्णन रिपोर्ट ऑव दि आर्क्योलोजिकल सर्वे, बड़ौदा स्टेट, 1937 में प्रकाशित हुआ था। मूर्तियां गुप्तकालीन जान पड़ती हैं। इनमें से एक में उष्णीष और ऊर्णा का अलंकरण विद्यमान है। मूर्ति पर यह लेख है—'नमः सिद्ध (नम्) वैरिगणस उप (रि) का आर्यसंघश्रावक'। मूर्ति जैन धर्म से संबंधित है।

महुवार दे० मधुमत्

महेत्थ=**महोत्थ**

महेंद्र

(1) भारत के प्राचीन कुलपर्वतों में इसकी भी गणना है। इसका अभिज्ञान सामान्य रूप से पूर्वी घाट की पर्वतमाला के उत्तरी भाग से किया गया है। महानदी इसी पहाड़ से निकलती है। इस पर्वत का अभिज्ञान विशेष रूप से मद्रास-कलकत्ता रेलपथ पर मंडासा रोड स्टेशन से 20 मील पश्चिमोत्तर में स्थित महेंद्रगिरि से किया जाता है। यह पर्वत समुद्रतल से 5000 फुट ऊंचा है। यहां पांडवों और कुंती के नाम से प्रसिद्ध एक मंदिर स्थित है। रघुवंश 4,39 में कालिदास ने रघु की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में भी इसका उल्लेख किया है—'स प्रतापं महेंद्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्, अंकुशं द्विरदस्यैवगन्ता गंभीरवेदिनः'। रघुवंश 6,54 में भी कलिंग-नरेश के संबंध में इसका वर्णन है—'असौ महेंद्राद्रिसमानसारः पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्च यस्य क्षरत् सैन्यगजच्छलेन यात्रासु यातीव

पुरो महेंद्र:' । इन दोनों ही उल्लेखों में इस पर्वत के संबंध में हाथियों का वर्णन है । कलिंग के हाथी प्राचीन काल में प्रसिद्ध थे । श्रीमद्भागवत 5,19,16 में भी इस पर्वत का नामोल्लेख है—'श्रीशैलोवेंकटो महेंद्रो वारिधारो विंध्य:' । विष्णुपुराण 4,24,65 में इसका उल्लेख कलिंगादि देशों के साथ है—'कलिंग माहिष महेंद्र भौमान् गुहा भोक्ष्यंन्ति'

(2) वाल्मीकि-रामायण किष्किंधा 67,39 में वर्णित एक पर्वत जिस पर हनुमान् लंका के लिए प्रस्थान करते समय आरूढ़ हुए थे—'आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दन:' । इसको वाल्मीकि ने महागिरि (किष्किंधा० 67,46) कहा है—'शैलश्रृंगशिलोत्पातस्तदाभूत स महागिरि:' । यह महेंद्र पर्वत केरल में समुद्रतट तक फैले हुए प्राचीन मलय-पर्वत की श्रृंखला का ही कोई शिखर जान पड़ता है । अध्यात्मरामायण, किष्किंधा 9,28 में भी इसी प्रसंग में महेंद्र का उल्लेख है—'महेंद्रादिशिरोगत्वा बभूवाद्भुतदर्शन:'

(3) प्राचीन कंबुज (कंबोडिया,) का बड़ा पहाड़ी नगर जहां 9वीं शती में हिंदू राजा जयवर्मन् द्वितीय की राजधानी कुछ समय पर्यंत रही थी। इसका अभिज्ञान अंगकोरथोम के उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित फनोम कुलेन नामक स्थान से किया गया है ।

महेंद्रवाडी (मद्रास)

आरकट और अरकोनम के बीच इस पल्लवकालीन नगर के खंडहर स्थित हैं । महेन्द्रवर्मन् प्रथम (600-625 ई०) ने जो पल्लव वंश का प्रतिभाशाली शासक, था संभवत: इस नगर की सस्थापना की थी। नगर के निकट महेंद्रताल नामक एक झील के चिह्न हैं जिसका निर्माण महेंद्रवर्मन् ने ही करवाया था ।

महेवा

भूतपूर्व छतरपुर रियासत (म० प्र०) में स्थित । बुंदेला-नरेश छत्रसाल के पिता चंपतराय (17 वीं शती का उत्तरार्ध) को यहां की जागीर बंटवारे में अपने पूर्वजों से मिली थी । यह छोटी सी जागीर बुंदेला राजा उदयजीत के पुत्र और पौत्रों में बंटती चली आई थी । जो हिस्सा चंपतराय को मिला उसकी आय केवल 350 रु० वार्षिक थी । कविवर भूषण ने 'छत्रसाल दशक' में छत्रसाल को महेवा-महिपाल कहा है—'जंगजीत लेवा तऊ ह्वै कै दामदेवाभूप, सेवा लागे करन महेवा-महिपाल को' । महेवा की जागीर ही बढ़कर छत्रसाल की भावी रियासत के रूप में परिणत हो गई ।

महेश्वर दे० माहिष्मती

महोत्थ

रूपांतर **महेत्थ**। 'शैरीषकं महोत्थं च वशेचक्रे महाद्युतिः, आक्रोशं चैव राजर्षि तेन युद्धमभून्महत्' महा० 32,6। नकुल ने अपनी दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में शैरीषक (=सिरसा, हरयाणा) और महोत्थ पर अधिकार कर लिया था। महोत्थ के राजा का नाम आक्रोश बताया गया है। इस प्रदेश को 32,5 में बहुधान्यक कहा गया है। दक्षिणीपंजाब का यह क्षेत्र जिसमें रोहतक, सिरसा आदि स्थित हैं, आज तक भारत के उपजाऊ क्षेत्रों में गिना जाता है। महोत्थ सिरसा के निकट ही स्थित होगा।

महोत्सव नगर=महोबा

महोदय

(1)=**कान्यकुब्ज**। 'पंचालाख्योऽस्ति विषयो मध्यदेशे महोदयपुरं तत्र' विष्णुधर्मोत्तर पुराण 1,20,2-3। (दे० कान्यकुब्ज)

(2) वाल्मीकि रामायण, युद्ध० 101,29-30 में उल्लिखित पर्वत जहां से लंका के रणक्षेत्र में घायल हुए लक्ष्मण के उपचार के लिए हनुमान् औषधि लाए थे—'सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम्, पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीरजांबवता तव, दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय'।

महोबा (ज़िला हमीरपुर, उ० प्र०)

831 ई० के लगभग चंदेल राजपूतों ने महोबा पर अधिकार करके अपने इतिहास-प्रसिद्ध राजवंश की नींव डाली थी। जनश्रुति है कि चंदेलों के आदि-पुरुष चंद्रवर्मा ने यहां महोत्सव किया था जिससे इस स्थान का नाम महोत्सवपुर या उससे बिगड़ कर महोबा हुआ। 12वीं शती के अंत में महोबा में राजा परमाल का राज्य था। पृथ्वीराज चौहान ने 1182 ई० के प्रसिद्ध युद्ध में जिसमें चंदेलों की ओर से आल्हा-ऊदल लड़े थे महोबा परमाल से छीन लिया था किंतु कुछ समय पश्चात् चंदेलों का पुनः इस पर अधिकार हो गया। 1196 ई० के लगभग कुतुबुद्दीनएबक ने महोबा और कालपी दोनों पर अधिकार कर लिया और और अपना सूबेदार यहां नियुक्त कर दिया। तैमूर के आक्रमण के समय कालपी और महोबा के सूबेदार स्वतंत्र हो गए। 1434 ई० में जौनपुर के सूबेदार इब्राहीमशाह ने महोबा और कालपी पर अधिकार कर लिया किंतु अगले वर्ष मालवा के सुलतान होशंगशाह ने इसे छीन लिया किंतु पुनः यह नगर जौनपुर के सुलतान के कब्जे में आ गया। 16वीं शती में मुगलों का साम्राज्य दिल्ली में स्थापित हुआ और साथ ही महोबा भी मुगल साम्राज्य का एक अंग न गया। औरंगजेब के समय में बुंदेलखंड के प्रतापी राजा छत्रसाल का महोबा

पर अधिकार हो गया और यह नगर शीघ्र ही उनके राज्य का एक बड़ा नगर बन गया। किंतु अंग्रेजी राज्य स्थापित होने के पश्चात् महोबा एक छोटा महत्व-हीन कस्बा बन गया और उसी रूप में आज भी है। चंदेलों के समय के कुछ अवशेष महोबा में मिले हैं तथा आल्हा-ऊदल की दंत कथाओं से संबंधित ताल आदि भी यहां बताए जाते हैं। चंदेलनरेश वास्तुकला के प्रेमी थे। इन्हीं के जमाने में जगत्-प्रसिद्ध खजुराहो के मंदिरों का निर्माण हुआ था। किंतु जान पड़ता है कि युद्धों की अग्नि में महोबा के प्राय: सभी महत्वपूर्ण अवशेष नष्ट हो गए। फिर भी राजपूतों के समय के अवशेषों में यहां से प्राप्त हिंदू तथा जैन-धर्म से संबंधित कुछ मूर्तियां अवश्य उल्लेखनीय हैं। सिंहनाद अविलोकि-तेश्वर की एक अभिलिखित मूर्ति भी महोबा से प्राप्त हुई थी जो अब लखनऊ के संग्रहालय में है। यह मध्यकालीन बुंदेलखंड की मूर्तिकला का सुंदर उदाहरण है।

महोली (जिला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा से लगभग साढ़े तीन मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित यह ग्राम वाल्मीकि रामायण में वर्णित मधुपुरी के स्थान पर बसा हुआ है। मधुपुरी को मधुनामक दैत्य ने बसाया था। उसके पुत्र लवणासुर को शत्रुघ्न ने युद्ध में पराजित कर उसका वध कर दिया था और मधुपुरी के स्थान पर उन्होंने नई मधुरा या मथुरा नगरी बसाई थी। महोली ग्राम को आजकल मधुवन-महोली कहते हैं। महोली मधुपुरी का अपभ्रंश है। लगभग 100 वर्ष पूर्व इस ग्राम से गौतम बुद्ध की एक मूर्ति मिली थी। इस कलाकृति में भगवान् को परमकृशावस्था में प्रदर्शित किया गया है। यह उनकी उस समय की अवस्था का अंकन है जब बोधिगया में 6 वर्षों तक कठोर तपस्या करने के उपरांत उनके शरीर का केवल शरपंजर मात्र ही अवशिष्ट रह गया था।

महोदधि

भारत के दक्षिण में स्थित समुद्र जिसे इंडियन ओशन कहा जाता है—'सेतुर्येन महोदधौ विरचित: क्वासौदशस्यांतक.' से स्पष्ट है कि राम ने इसी समुद्र पर पुल बांध कर लंका पर चढ़ाई की थी।

महौनी (बुंदेलखंड)

वीरभद्र अथवा वीर बुंदेला ने जो 1071 ई० में बुंदेलों का राजा हुआ था, बुंदेलखंड का विस्तृत भाग अपने अधिकार में करके महौनी में अपनी राजधानी बनाई थी। वहां बुंदेलों की राजधानी काफी समय तक रही।

मागधी=सोन नदी

माझा (पंजाब)

रावी और ब्यास नदियों के बीच (माझा=मध्य) का प्रदेश। अलक्षेंद्र के आक्रमण के समय (327 ई० पू०) इस दोआबे में कठजाति का गणराज्य स्थापित था।

मांडवगढ़=मंडू

मांडवी

गोआ के निकट बहने वाली नदी जो सह्याद्रि से निस्सृत होकर अरब सागर में गिरती है।

मांडव्यपुर दे० मंडोर

मांडव्याश्रम दे० मंडोर

मांधाता (ज़िला इंदौर, म० प्र०)

ओंकारेश्वर से प्राय: 7 मील और इंदौर से 54 मील दूर नर्मदा के बीच में छोटा सा द्वीप है। किंवदंती में कहा जाता है कि इस स्थान पर राजा मांधाता ने शिव की आराधना की थी। यह द्वीप नर्मदा और उसकी उपधारा कावेरी से घिरा हुआ है। मांधाता द्वीप का आकार ओंकार या प्रणव के प्रतीक से मिलता जुलता है। संभवत: इसीलिए इसे ओंकारेश्वर भी कहा जाता है। इसके आस-पास अनेक प्राचीन तीर्थस्थल हैं। मांधाता को अमरेश्वर भी कहते हैं। स्कंद-पुराण, रेवाखंड 28,133 में इसका वर्णन है।

माकंदी

महाभारत, आदि० 137,73 में इसका इस प्रकार उल्लेख है—'माकंदीमथ गंगायास्तीरे जनपदायुताम्, सोऽध्यावसद् दीनमना: काम्पिल्यं च पुरोत्तमम्' अर्थात् तदनंतर राजा द्रुपद द्रोणाचार्य द्वारा आधा राज्य छीन लिए जाने पर, दीनता-पूर्ण हृदय से गंगातटवर्ती अनेक जनपदों से युक्त माकंदी में तथा नगरों में श्रेष्ठ कांपिल्य में निवास करने लगे। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि माकंदी पंचाल राज्य का एक छोटा भाग रहा होगा। इस उल्लेख में वर्णित माकंदी, नगर विशेष का नाम नहीं जान पड़ता। यह संभवत: किसी बड़े जनपद का नाम था क्योंकि इसे जनपदों से युक्त बताया गया है। यह संभव है कि कांपिल्य (ज़िला फरुखाबाद, उ० प्र०) इसी प्रदेश में स्थित था। किंतु महाभारत, उद्योग 31,19 में माकंदी नामक ग्राम का भी उल्लेख है जिसे पांडवों ने चार अन्य स्थानों के साथ कौरवों से मांगा था—'अविस्थलं वृकस्थलं माकंदीं वारणवतम्, अवसानं भवेत्वत्र किंचिदेकं च पंचमम्'। संभवत: माकंदी ग्राम या नगर के नाम पर

ही माकंदी जनपद भी प्रसिद्ध था। इस नगर की स्थिति पंचालदेश में ही समझनी चाहिए।

माट (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा से आठ मील दूर है। इस ग्राम से कुषाणकाल के अनेक महत्वपूर्ण अवशेष प्राप्त हुए हैं। संस्कृत में एक शिलालेख से जो यहां से प्राप्त हुआ था विदित होता है कि महाराजधिराज देवपुत्र हुविष्क के पितामह ने जो सत्य और धर्म में सदैव स्थिर थे एक देवकुल बनवाया था जो कालांतर में नष्ट भ्रष्ट हो गया था। अतः किसी महादंडनायक के पुत्र ने जो राजकर्मचारी था इस देवकुल का जीर्णोद्धार करवाया और ब्राह्मणों तथा अतिथियों के लिए प्रतिदिन सदाव्रत का प्रबंध किया। माट से कुशान सम्राट् कनिष्क (120 ई०) और विम केडफ़िसस की कायपरिमाण मूर्तियां प्राप्त हुई थीं जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित हैं। कनिष्क की मूर्ति लाल पत्थर की है और वर्तमान दशा में शिरविहीन है। इस मूर्ति से कनिष्क की वेषभूषा का अच्छा ज्ञान होता है। इसमें इसे लंबा चोगा और घुटनों तक ऊंचे जूते पहने दिखाया गया है। यह वेशभूषा कुषाणों के आद्य-स्थान पश्चिमी चीन या तुर्किस्तान में आज तक प्रचलित है।

मांडू (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

पूठ से 8 मील दूर इस ग्राम में, स्थानीय किंवदंती के अनुसार, प्राचीन काल में मांडव्य ऋषि का आश्रम था।

माणिकपुर=मनिकियाला

मातंग

(1) राजगृह के निकट एक पहाड़ी (दे० राजगृह)

(2) कामरूप के दक्षिण-पूर्व में स्थित देश जो हीरे की खानों के लिए प्रसिद्ध था (युक्तिकल्पतरु)।

माती दे० कुरिया

माधवपुर (काठियावाड़, गुजरात)

पोरबंदर से 40 मील दूर छोटा सा बंदरगाह है। इस स्थान पर मलुमती नदी सागर में गिरती है। स्थानीय किंवदंती के अनुसार यहां रुक्मिणी के पिता राजा भीष्मक की राजधानी थी। माधवपुर में श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के मंदिर भी हैं। किंतु जैसा कि महाभारत से स्पष्ट है भीष्मक विदर्भ देश का राजा था और उनकी राजधानी कुंडिनपुर में थी।

मानकुंवर (तहसील करछना, जिला इलाहाबाद, उ० प्र०)

इस स्थान से गुप्त सम्राट् कुमार गुप्त के शासनकाल की एक अभिलिखित

बुद्ध-मूर्ति प्राप्त हुई है। इसकी तिथि 129 गु० सं० = 449 ई० है। अभिलेख में भिक्षु बुद्धमित्र द्वारा इस प्रतिमा की प्रतिष्ठापना का उल्लेख है। इस अभिलेख की विशेष बात यह है कि इसमें गुप्तकाल के अन्य अभिलेखों की भांति कुमार-गुप्त को महाराजाधिराज न कह कर केवल महाराज कहा गया है जो सामान्य सामंतों की उपाधि थी। फ्लीट का मत है कि कुमारगुप्त के शासनकाल के अंतिम वर्षों में पुष्यमित्रों तथा हूणों के आक्रमण के कारण गुप्त-साम्राज्य की प्रतिष्ठा कम हो चली थी और इस तथ्य की झलक हमें इस अभिलेख में प्रयुक्त महाराज शब्द से मिलती है। यह बुद्ध की मूर्ति मथुरा-शैली में निर्मित है। इसका शिर मुंडित है और यह अभय मुद्रा में स्थित है। मूर्ति की बैठक पर सिंह और धर्मचक्र अंकित हैं। शरीर के अंगों के अनुपात और मुखमुद्रा के आधार पर मूर्ति कुषाणकाल की मूर्तियों से मिलती-जुलती कही जा सकती है किंतु उष्णीय की उपस्थिति अवश्य ही इसे गुप्तकालीन प्रमाणित करती है।

मानकेसर (जिला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

13वीं–14वीं शती के, चालुक्य-शैली में बने शिव-मंदिरों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। ये कणाश्म (ग्रेनाइट) के बने हैं और इनमें सुंदर मूर्तिकारी प्रदर्शित है।

मानपुर (महाराष्ट्र)

मानपुर में दक्षिणभारत के प्रसिद्ध राष्ट्रकूट-वंश की सर्वप्रथम राजधानी थी। कई विद्वानों का मत है कि यह राजधानी लटूर में थी

मानवी (ज़िला रायचूर, मैसूर)

यहां रामसिंह, वेंकटेश्वर तथा मारुति के मंदिर स्थित हैं। एक प्राचीन क़िले के खंडहर भी दिखलाई पड़ते हैं। मारुति-मंदिर तथा किले के भीतर कन्नड़-अभिलेख पत्थरों पर उत्कीर्ण हैं।

मानस

(1) विष्णुपुराण 2,4,29 के अनुसार शाल्मल द्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा वपुष्मान् के पुत्र मानस के नाम पर प्रसिद्ध है।

(2) = मानसरोवर

(3) वाल्मीकि० 43,28 में उल्लिखित एक पर्वत—'अवृक्षं कामशैलं च मानसं विहगालयम् न गतिस्तत्र भूतानां देवानां न च रक्षसाम्'। इसकी स्थिति हिमालय में कैलाश के उत्तर में, क्रौंचगिरि के निकट कही गई है। इसकी ऊंचाई बहुत अधिक रही होगी क्योंकि पर्वत को 'अवृक्ष' कहा गया है।

मानसरोवर

इसका प्राचीन नाम ब्रह्मसर भी है। मानसरोवर भारत के उत्तर में हिमालय पर्वतश्रेणियों में कैलास पर्वत के निकट (तिब्बत में) स्थित विस्तीर्ण झील है। इस झील से भारत की तथा मध्यएशिया की कई नदियां निकली हैं। गंगा का मूल स्रोत भी इसी झील से निस्तृत है। कई भौगोलिकों के मतानुसार ये नदियां वास्तव में मानसरोवर से नहीं वरन् उसके आसपास की कई झीलों से निकलती हैं जैसे रावणहृद नामक झील से सतलज निकलती है (दे० डाउसन, क्लासिकेल डिक्शनरी—'मानसरोवर')। किंतु यह निश्चित है कि सिंध तथा पंजाब की कई नदियां, झेलम आदि मूलरूप में इसी झील से उद्भुत हैं। सरयू और ब्रह्मपुत्र का उदगम भी मान सरोवर ही है। वाल्मीकि० किष्किंधा० 43,20-21-22 में कैलास, कुबेरभवन तथा उसके निकट विशाल 'नलिनी' या सरोवर का उल्लेख है जो अवश्य ही मानसरोवर है—'तत्तु शीघ्रमतिक्रम्य कांतारं रोमहर्षणम् कैलासं पांडुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ। तत्र पांडुरमेघाभं जांबूनदपरिष्कृतम्, कुबेरभवनं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा। विशाला नलिनी यत्र प्रभूतकमलोत्पला, हंसकारंडवाकीर्णा अप्सरोगणसेविता'। वाल्मीकि० बाल० 24,8-9-10 में मानसरोवर की उत्पत्ति तथा सरयू का इससे निस्मृत होने का वर्णन है—'कैलासपर्वते राम मनसानिर्मितं परम्, ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः, तस्मात् सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते सरः प्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता'। महाभारत वनपर्व में पांडवों की उत्तरदिशा के तीर्थों की यात्रा के प्रसंग में मानस का उल्लेख है—'एतद् द्वारं महाराज मानसस्य प्रकाशते, वर्षमस्य गिरेर्मध्ये रामेण श्रीमता कृतम्'। मेघदूत में कालिदास ने मानस को सुवर्णकमल वाला सरोवर बताया है तथा इसका अलका और कैलास के निकट वर्णन किया है—'हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददान, कुर्व्वन् कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य धुन्वन् वातैस्सजल पृषतैः कल्पवृक्षांशुकानिच्छायाभिन्नस्फटिक विशदं निर्व्विशेस्तं नगेंद्रम्'—पूर्वमेघ 64। इसका तिब्बती नाम चोमापन है।

मानसेहरा (ज़िला हजारा, प० पाकि०)

मौर्य-सम्राट् अशोक के चौदह मुख्य शिलालेख इस स्थान पर (खरोष्ट्रीलिपि में) एक चट्टान के ऊपर अंकित हैं।

मानिकगढ़ (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

1700 फुट ऊंची एक पहाड़ी पर यह सुदृढ़ दुर्ग अवस्थित है। यह चांदा (म० प्र०) के गौंड राजाओं के अधिकार में बहुत समय तक रहा। किंवदंती है कि गौंडों ने 9वीं शती में अपने राज्य की स्थापना की थी। 16वीं शती तक

ये स्वतंत्र रूप से राज करते रहे। इस काल में इन्होंने मुगलों की सत्ता नाममात्र को स्वीकार कर ली थी। 1751 ई० में मराठों के उत्कर्ष के साथ चांदा का गौंड-राज्य समाप्त हो गया। मानिकगढ़ के आसपास गौंड लोग अब भी सहस्रों की संख्या में हैं। केसलापुर नामक ग्राम में इनका भारी वार्षिक मेला लगता है।

मानिकपुर (ज़िला बांदा, उ० प्र०)

इस स्थान के निकट शिलाओं पर प्रागैतिहासिक काल की चित्रकारी के अवशेष मिले हैं।

माब (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

गढ़वाल के मध्यकालीन राजपूत-नरेशों के समय की एक गढ़ी यहां स्थित है। गढ़वाल ऐसी ही अनेक गढ़ियों के कारण गढ़वाल नाम से प्रसिद्ध हुआ था।

मामाल=मावल

माया

पुराणों की सप्तपुरियों में से एक—'काशी कांची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि, मथुरावंतिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदाः'। इसका अभिज्ञान वर्तमान हरद्वार (उ० प्र०) के क्षेत्र से किया गया है। युवानच्वांग ने संभवतः मायापुरी का ही मयूर नाम से वर्णन किया है। मायापुरी, कनखल, ज्वालापुर और भीमगोड़ा नामक पंचपुरियों से मिलकर हरद्वार बना है। हरद्वार में मायादेवी का प्राचीन मंदिर विष्णुघाट से दक्षिण की ओर स्थित है।

मायापुर

(1)=माया

(2)=नदिया। यह श्री चैतन्यदेव की जन्मभूमि है। इसका वास्तविक नाम नवद्वीप था।

मायावरम् (मद्रास)

मद्रास-धनुष्कोटि मार्ग में स्थित है। इस स्थान का प्राचीन संस्कृत नाम मायूरम् है। इस नाम का संबंध एक पौराणिक कथा से बताया जाता है जिसके अनुसार पार्वती ने मयूरी रूप में जन्मधारण कर शिव की आराधना की थी।

मायूरम्=मायावरम्

मारकंड

समरकंद का संस्कृत नाम (नं० ला० डे)

मारपुर

ज़िला हुगली (बंगाल) में स्थित प्रद्युम्ननगर या वर्तमान पांडुआ।

मारवाड़

राजस्थान में भूतपूर्व जोधपुर रियासत का परिवर्ती भाग। इसका प्राचीन नाम मरु था जिसका अर्थ मरुस्थल है। (दे० मरु)

मारुध

'मारुधं च विनिर्जित्य रम्यग्राममथोबलात्, नाचीनानर्बुकांश्चैव राज्ञश्चैव महाबल:' महा० सभा० 31,14। इस देश को सहदेव ने दक्षिण दिशा की दिग्विजययात्रा के समय जीता था। इस प्रदेश की स्थिति प्रसंगानुसार विदर्भ-देश के दक्षिण में जान पड़ती है।

मारूगढ़ (ज़िला मंडला, म० प्र०)

मंडला के निकट है। यहां गढ़मंडला नरेश संग्रामसिंह (मृत्यु 1540 ई०) का एक दुर्ग था जो उनके समय के 52 गढ़ों में परिगणित किया जाता था। संग्रामसिंह के पुत्र दलपतशाह वीरांगना दुर्गावती के पति थे।

मार्कंडेय

'मार्कंडेयस्य राजेंद्र तीर्थमासाद्य दुर्लभम्। गोमतीगंगयोश्चैव संगमे लोक-विश्रुते'—महा० वन० 84,80-81। यह प्राचीन तीर्थ गोमती और गंगा के संगम पर स्थित था। इस प्रकार यह स्थल वाराणसी से पूर्व-दक्षिण की ओर, उत्तरप्रदेश और बिहार की सीमा के निकट रहा होगा।

मार्कंडेयाश्रम दे० विलासपुर

मार्तिकावतक

द्वारका पर आक्रमण करने वाले राजा शाल्व के देश का नाम—'तमश्रौष-महं गत्वा यथावृत्त: स दुर्मति:, मयि कौरव्य दुष्टात्मा मार्तिकावतको नृप:'। कहा जाता है कि शाल्वपुर वर्तमान अलवर है। इस प्रकार मार्तिकावतक की स्थिति अलवर के समीपवर्ती प्रदेश में मानी जा सकती है। श्री नं० ला० डे के अनुसार यह वर्तमान मेड़ता है।

मार्देयपुर

पाणिनि 4,2,101 में उल्लिखित स्थान जो शायद वर्तमान मंडावर है।

माल

'त्वय्यायत्तंकृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञै प्रीतिस्निग्धै र्जनपदवधूलोचनै: पीयमान:, सद्यस्सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालं किंचित् पश्चाद् व्रज लघु-गति: किंचिदेवोत्तरेण'—पूर्व मेघदूत 16। कालिदास के अनुसार मालदेश राम-गिरि अथवा वर्तमान रामटेक (जिला नागपुर, महाराष्ट्र) से उत्तर-पश्चिम की ओर आम्रकूट (पूर्वमेघ 17-18) और नर्मदा (पूर्वमेघ, 20-21) से पहले

ही कहीं मार्ग में स्थित था। नर्मदा के पूर्व में स्थित आम्रकूट वर्तमान पंचमढ़ी या महादेव की पहाड़ियों का कोई शृंग जान पड़ता है। अतः मालदेश पंचमढ़ी और नागपुर के बीच के प्रदेश का कोई भाग हो सकता है। यह भी संभव है कि कालिदास के समय मालवा या मालदेश, वर्तमान मालवा के पूर्व में रहा हो क्योंकि वर्तमान मालवा (ग्वालियर, इंदौर, उज्जैन, भूपाल का इलाका) को कालिदास ने दशार्ण कहा है। (दे० पूर्वमेघ 25)

मालकूट

सुदूर दक्षिण का प्रदेश जिसमें ताम्रपर्णी और कृतमाला नदियां प्रवाहित होती हैं। चीनी यात्री युवानच्वांग ने इस देश का अपने यात्रावृत्त में वर्णन किया है। 640 ई० में दक्षिण भारत की यात्रा के समय वह कांची आया था और यहीं मालकूट के विषय में उसने सूचना प्राप्त की थी। वह यहां स्वयं न जा सका था। ऐसा जान पड़ता है कि मालकूट में उस समय पांड्यों का राज था जो कांची के शक्तिशाली पल्लवों के अधीन रहे होंगे। मदुरा यहां की राजधानी थी यद्यपि युवानच्वांग ने उसका उल्लेख नहीं किया है। उसके लेख के अनुसार मालकूट में बौद्धधर्म प्रायः लुप्त हो गया था। यहां उस समय हिंदू देवालय और दिगंबर जैन मंदिर सहस्रों की संख्या में थे। यहां के व्यापारी दूर-दूर देशों से व्यापार करने में व्यस्त रहते थे।

मालकेतु

महाभारत तथा पद्मपुराण में उल्लिखित एक पर्वत जो अर्वली पहाड़ (राजस्थान) का ही कोई भाग जान पड़ता है।

मालखेड़ दे० मलखेड़

मालथोन (बुंदेलखंड)

मुगल-सम्राट् अकबर के सरदार मुहम्मद खां ने इस स्थान को बसाया था। कुछ दिनों में यहां गौंडों का अधिकार हो गया। तदुपरांत ओड़छा के दीवान अचलसिंह ने यहां क़ब्जा कर लिया और 1748 ई० में गढ़ाकोला के जागीरदार पृथ्वीसिंह ने इसे अपनी रियासत में मिला लिया। इसके बाद उसके उत्तराधिकारी अर्जुनसिंह ने इसे सिंधिया को दे दिया और सिंधिया ने 1820 में अंग्रेजों को।

मालदा (बंगाल)

पांडुआ से 5 मील दक्षिण में स्थित है। इस स्थान पर पांडुआ की भांति ही 'पूर्वी' शासकों के बनवाए हुए कई मकबरे, मसजिदें तथा तोरण हैं।

मालव=मालवा

भारत का प्राचीन गणराज्य मल्लोई जिसकी स्थिति अलक्षेंद्र के आक्रमण

के समय (327 ई० पू०) पंजाब (रावी-चिनाब के संगम के निकट) में थी। इन्होंने यवनराज की सेनाओं का बड़ी वीरता से सामना किया था। मालवों का पाणिनि ने भी उल्लेख किया है। कालांतर में मालवनिवासी पंजाब से भारत के अन्य भागों में जाकर फैल गए। इनकी मुख्यशाखा वर्तमान मालवा (म० प्र०) में जाकर बस गई जो इन्हीं के नाम पर मालव या मालवा कहलाया। इसका प्राचीन नाम दशार्ण.था। पंजाब के मालव जनपद का उल्लेख महाभारत सभा० 32,7 में अन्य पार्श्ववती जनपदों के साथ है—'शिबींस्त्रिगर्तानम्बष्ठान् मालवान् पंचकर्पटान्'। विष्णुपुराण 2,3,17 में मध्यप्रदेश के मालव का उल्लेख इस प्रकार है—'कारूषा मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः'। कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक की नायिका मालविका इसी मालव देश की निवासिनी थी। कुछ विद्वानों के मत में विक्रम संवत् (प्रारंभ 57 ई० पू०) पहले मालव-संवत् के नाम से प्रसिद्ध था। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपनी मालव-विजय के पश्चात् इसका नाम विक्रम-संवत् कर दिया। उत्तरगुप्तकाल में सप्त-मालव-जनपदों का उल्लेख मिलता है। एपिग्राफ़िका इंडिका जिल्द 5, पृ० 229 के अभिलेख में विक्रमादित्य (?) के सामंत दंडनायक अनंतपाल की सप्तमालवों पर विजय का वर्णन है। श्री रायचौधरी के अनुसार ये जनपद इस प्रकार थे—(1) पश्चिमी घाट पर स्थित कनारा प्रदेश जहां के निवासी शिवाजी के समय में मावली कहलाते थे (2) मालवक-आहार जिसका उल्लेख वलभि दानपट्टों में है तथा जिसे युवानच्वांग ने मोलापो कहा है। यहां उसके समय में मैत्रेयकों का राज्य था (3) अवंतिका, यहां छठी शती ई० में कलचुरियों का राज्य था (4) पूर्वमालव या भीलसा का परिवर्ती क्षेत्र (5) प्रयाग, कौशांबी तथा फतहपुर (उ० प्र०) का प्रदेश। तारानाथ (अनुवाद, शीफनर पृ० 251) ने इस मालव का उल्लेख किया है। हर्षचरित में राज्यश्री के पति की हत्या करने वाले व्यक्ति को मालवनरेश कहा गया है। शायद यह प्रयाग के समीपस्थ देश का ही नाम था (दे० स्मिथ० पृ० 350)। (6) पूर्वराजस्थान का एक भाग और (7) सतलज के पूर्व में स्थित प्रदेश जो हिमालय तक विस्तृत था। श्रीमद्भागवत में मालवों का संबंध आबू पहाड़ से बतलाया गया है और अवंति को उससे भिन्न कहा गया है—'सौराष्ट्रवन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुद मालवाः, व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्रायाजनाधिपाः'। राजशेखर कृत विद्धभटशालभंजिका (अंक 4) में भी मालव और अवंतिनरेशों का अलग-अलग उल्लेख है।

मालवनगर दे० नगर (2)

माला

जिला छपरा (बिहार) का परिवर्ती प्रदेश (महा० सभा० 29)

मालिनी

(1) अभिज्ञानशाकुंतल में वर्णित नदी जिसके तट पर शकुंतला के पिता कण्वका आश्रम स्थित था—'कार्या सैकतलोनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी, पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः, शाखालंबितवल्कलस्य च तरोः निर्मातुमिच्छाम्यधः, शृंगे कृष्णामृगस्य वामनयनं कंडूयमानां मृगीम्' (अंक 5)। महाभारत, आदि० 72,10 में शकुंतला का मेनका द्वारा मालिनी नदी के तट पर उत्सर्जित किए जाने का उल्लेख है—'प्रस्थे हिमवतो रम्ये मालिनीमभितोनदीम्, जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनका मालिनीमनु' महा०, आदि० 72,10। महाभारत और अभिज्ञानशाकुंतल दोनों ही की कथा में मालिनी को हिमालय के समीप बताया गया है। मालिनी का अभिज्ञान गढ़वाल और बिजनौर के जिलों में प्रवाहित होने वाली वर्तमान मालन नदी से किया गया है (दे० ग्रंथकार का लेख—माडर्न रिव्यू, अक्तूबर 1949)। यह नदी गढ़वाल के पहाड़ों से निकल कर बिजनौर से 6 मील उत्तर की ओर गंगा में रावलीघाट नामक स्थान पर मिलती है। कण्वाश्रम की स्थिति ज़िला बिजनौर में स्थित मंडावर नामक स्थान पर मानी गई है जो मालन के निकट बसा है। (दे० मंडावर; शक्रावतार; रावली घाट)

(2)=**चंपा** (1)

मालेगांव (कंदहार तालुका, जिला नंदेड़, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर एक अतिप्राचीन वार्षिक मेला लगता है जिसकी परंपरा ककातीय-नरेश माधववर्मन् द्वारा प्रारभ की गई थी। माधववर्मन् को पशुओं विशेषकर अश्वों की विविध जातियों का अच्छा ज्ञान था और उनकी नस्लें सुधारने का भी शौक था। इस मेले में दूर-दूर से घोड़े आदि आते थे।

माल्यवती

वाल्मीकि रामायण 2,56,38 के निम्न वर्णन के अनुसार यह नदी चित्रकूट के निकट बहने वाली मंदाकिनी जान पड़ती है—'सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम्, ननंद हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुर-विप्रवासात्'। कालिदास ने चित्रकूट के निकट बहने वाली मंदाकिनी को भूमि के गले में पड़ी हुई मौक्तिक माला के समान बताया है। (दे० मंदाकिनी)

माल्यवान्

(1) किष्किंधा के निकट एक पर्वत जहां श्रीराम ओर लक्ष्मण ने सीता-हरण के पश्चात् वर्षाकाल व्यतीत किया था—'तथा स बालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च, वसन् माल्यवतः पृष्ठे रामोलक्ष्मणमब्रवीत्' वाल्मीकि० किष्किंधा, 27 1.। रघुवंश 13-26 में इस पर्वत पर श्रीराम के प्रथम वर्षा प्रवास का सुंदर वर्णन किया गया है—'एतद् गिरे र्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यंबरलेखि श्रृंगम्, नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रुसमं विसृष्टम्'। यह पर्वत किष्किंधा (हंपी, मैसूर) में विरूपाक्ष मंदिर से 4 मील दूर है। इसके निकट ही प्रस्रवणगिरि है। (दे० किष्किंधा; ऋष्यमूक)

(2) हिमालय पर्वत-श्रेणी के उत्तरी भाग में स्थित एक पर्वत। महाभारत, सभा० 28 दाक्षिणात्य पाठ में इसका इस प्रकार उल्लेख है—'तं माल्यवंतं शैलेंद्रं समतिक्रम्य पांडवः भद्राश्वं प्रविवेशाथ वर्षं स्वर्गोपमं शुभम्'। इस पर्वत का वर्णन शैलोदा नदी के पश्चात् है जिसका अभिज्ञान खोतन नदी से किया गया है। अतः माल्यवान् इस नदी के उत्तर में स्थित शैल-श्रेणी का नाम जान पड़ता है।

मावल=मामाल (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

कार्ली का परिवर्ती प्रदेश। कार्ली अभिलेख में शातवाहन नरेश गौतमी-पुत्र (द्वितीय शती ई०) के किसी अमात्य का शासन यहां बताया गया है। शिवाजी के समय में उनके वीर मावली सैनिक इसी स्थान से संबधित थे। इन्हीं में तानाजी मालसुरे भी थे। मावल का वास्तविक नाम मालव था। (दे० मालव)

माशल्ली (ज़िला कोलर, मैसूर)

इस स्थान से नवपाषाणयुगीन प्रस्तर-उपकरण प्राप्त हुए थे जो मृद्भांडों के खंडों के साथ मिले थे। ये बर्तन कुंभकार के चाक से बने हुए हैं जिनके कारण विद्वानों ने इन्हें नवपाषाणयुगीन माना है।

मासंगी=**मासकी**

मासकी (मैसूर)

अशोक के लघु शिलालेख के यहां मिलने के कारण यह स्थान प्रसिद्ध है। अशोक के समय यह स्थान दक्षिणापथ के अंतर्गत तथा अशोक के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा पर था। मासकी के अभिलेख की विशेष बात यह है कि उसमें अशोक के अन्य अभिलेखों के विपरीत मौर्यसम्राट् का नाम देवानंप्रिय (=देवानां-प्रिय) के अतिरिक्त अशोक भी दिया हुआ है जिससे देवानांप्रिय उपाधि वाले

(तथा अशोक नाम से रहित) भारत के अन्य सभी अभिलेख सम्राट् अशोक के सिद्ध हो जाते हैं । मासकी के अतिरिक्त हाल ही में गुजर्रा नामक स्थान पर मिले अभिलेख में भी अशोक का नाम दिया हुआ है । अशोक के शिलालेख के अतिरिक्त, मासकी से 200-300 ई० की, स्फटिक निर्मित बुद्ध के शिर की प्रतिमा भी उल्लेखनीय है । अंतिम शातवाहन नरेश सम्राट् गौतमीपुत्र स्वामी श्रीयज्ञ शातकर्णी (लगभग 186 ई०) के समय के, सिक्के भी यहां से प्राप्त हुए हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि मौर्यकाल में दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि जिसका उल्लेख बौद्ध साहित्य में है, मासकी के पास ही थी ।

मासी (तहसील रानीखेत, ज़िला अल्मोड़ा, उ० प्र०)

बैराट से 4 मील दूर है । यहां नाथेश्वर, रामपादुका तथा इंद्रेश्वर के प्राचीन मंदिर स्थित हैं । यह स्थान रामगंगा के निकट है । यहां सोमनाथ का प्रसिद्ध मेला लगता है ।

माहिष = माहिषक

मैसूर का प्राचीन नाम 'कारस्कारन् माहिष्कान कुरंडान् केरलांस्तथा, कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्माश्च विवर्जयेत्' महा० कर्ण० 44,43 । माहिषक देश को महाभारत काल में विवर्जनीय समझा जाता था । विष्णुपुराण 4,24,65 में माहिष देश का उल्लेख है—'कलिंगमाहिषमहेंद्रभौमान् गुहा भोक्ष्यन्ति' । यह देश माहिष्मती भी हो सकता है । (दे० मैसूर)

माहिष्मती

चेदि जनपद की राजधानी (पाली माहिस्सती) जो नर्मदा के तट पर स्थित थी । इसका अभिज्ञान जिला इंदौर (म० प्र०) में स्थित महेश्वर नामक स्थान से किया गया है जो पश्चिम रेलवे के अजमेर-खंडवा मार्ग पर बड़वाहा स्टेशन से 35 मील दूर है । महाभारत के समय यहां राजा नील का राज्य था जिसे सहदेव ने युद्ध में परास्त किया था—'ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ । तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभः'—महा० सभा० 32,21. । राजा नील महाभारत के युद्ध में कौरवों की ओर से लड़ता हुआ मारा गया था । बौद्ध साहित्य में माहिष्मती को दक्षिण-अवंतिजनपद का मुख्य नगर बताया गया है । बुद्धकाल में यह नगरी समृद्धिशाली थी तथा व्यापारिक केंद्र के रूप में विख्यात थी । तत्पश्चात् उज्जयिनी की प्रतिष्ठा बढ़ने के साथ साथ इस नगरी का गौरव कम होता गया । फिर भी गुप्तकाल में 5वीं शती तक माहिष्मती का बराबर उल्लेख मिलता है । कालिदास ने रघुवंश 6,43 में इंदुमती के स्वयंवर के प्रसंग में नर्मदा-तट पर स्थिति माहिष्मती का वर्णन किया है और यहां के राजा का नाम प्रतीप

बताया है—'अस्यांकलक्ष्मीभवदीर्घबाहो माहिष्मतीवप्रनितंबकांचीम् प्रासाद-जालैर्जलवेणि रम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्तिकाम:'। इस उल्लेख में माहिष्मती नगरी के परकोटे के नीचे कांची या मेखला की भांति सुशोभित नर्मदा का सुंदर वर्णन है। माहिष्मती नरेश को कालिदास ने अनूपराज भी कहा है (रघु० 6,37) जिससे ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में माहिष्मती का प्रदेश नर्मदा के तट के निकट होने के कारण अनूप (जल के निकट स्थित) कहलाता था। पौराणिक कथाओं में माहिष्मती को हैहयवंशीय कार्तवीर्यअर्जुन अथवा सहस्रबाहु की राजधानी बताया गया है। किंवदंती है कि इसने अपनी सहस्र भुजाओं से नर्मदा का प्रवाह रोक दिया था। चीनी यात्री युवानच्वांग, 640 ई० के लगभग इस स्थान पर आया था। उसके लेख के अनुसार उस समय माहिष्मती में एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था। अनुश्रुति है कि शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाले मंडन मिश्र तथा उनकी पत्नी भारती माहिष्मती के ही निवासी थे। कहा जाता है कि महेश्वर के निकट मंडलेश्वर नामक बस्ती मंडन मिश्र के नाम पर ही विख्यात है। माहिष्मती में मंडन मिश्र के समय संस्कृत विद्या का अभूतपूर्व केंद्र था। महेश्वर में इंदौर की महारानी अहिल्याबाई ने नर्मदा के उत्तरी तट पर अनेक घाट बनवाए थे जो आज भी वर्तमान हैं। यह धर्मप्राण रानी 1767 के पश्चात् इंदौर छोड़कर प्रायः इसी पवित्र स्थल पर रहने लगी थी। नर्मदा के तट पर अहिल्याबाई तथा होलकर-नरेशों की कई छतरियां बनी हैं। ये वास्तुकला की दृष्टि से प्राचीन हिंदू मंदिरों के स्थापत्य की अनुकृति हैं। भूतपूर्व इंदौर रियासत की आद्य राजधानी यहीं थी। एक पौराणिक अनुश्रुति में कहा गया है कि माहिष्मती का बसाने वाला महिष्मान् नामक चंद्रवंशी नरेश था। सहस्रबाहु इन्हीं के वंश में हुआ था। महेश्वरी नामक नदी जो माहिष्मती अथवा महिष्मान् के नाम पर प्रसिद्ध है, महेश्वर से कुछ ही दूर पर नर्मदा में मिलती है। हरिवंश-पुराण 7,19 की टीका में नीलकंठ ने माहिष्मती की स्थिति विंध्य और ऋक्ष-पर्वतों के बीच में विंध्य के उत्तर में, और ऋक्ष के दक्षिण में बताई है।

माहिस्सती दे० माहिष्मती

माही=मही

माहुर (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

यह यवतमाल के निकट प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है। दक्षिण के प्राचीनतम मंदिरों में एक, रेणुकादेवी का मंदिर यहां स्थित है। रेणुका परशुराम की माता और जमदग्नि की पत्नी थी। जमदग्नि की समाधि माहुर में स्थित है। माहुर में दत्तात्रेय संप्रदाय का केंद्र भी है। इसे मध्यकालीन

मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ संप्रदाय के नागपंथी गोसांइयों और गुरुचरित्र ग्रंथ के लेखक ने काफी प्रोत्साहन दिया था। कहा जाता है कि दत्तात्रेय भगवान् का निवास-स्थान यही है। महाराष्ट्र के महानुभाव संप्रदाय का भी जिसका 13वीं शती में काफी प्रचार हो चुका था, माहुर में केंद्र माना जाता है। देवगिरि के यादव नरेशों के शासनकाल में तथा उसके पश्चात् महानुभाव संप्रदाय के महाराष्ट्र संतों तथा कवियों से संबंध होने के कारण माहुर ने प्रसिद्धि प्राप्त की थी। आज भी महानुभाव संप्रदाय का मठ यहां स्थित है। यह 184 फुट लंबा चौडा तथा 54 फुट ऊंचा है। 14वीं शती में उत्तर भारत के गोसाइयों ने यहां पदार्पण किया और गोस्वामी सिद्धनाथ ने यहां पहला गोसाईं मठ स्थापित किया। माहुर में शिखर नामक दत्तात्रेय (जमदग्नि के गुरु) का विशाल मंदिर है जिसका प्रबंध गोसाईं जागीरदारों के हाथ में हैं। 1696 ई० के, औरंगजेब द्वारा प्रदत्त कुछ पट्टे गोसाइयों के पास आज भी सुरक्षित हैं। माहुर में उपर्युक्त मंदिरों के अतिरिक्त एक प्राचीन दुर्ग भी है। इसे संभवतः यादव-नरेशों ने बनवाया था किंतु 1420 ई० में यह बहमनी सुलतानों के हाथ में पड़ गया। बरार की इमादशाही सल्तनत के स्थापित होने पर माहुर इसका मुख्य सैनिक केंद्र बन गया। 1592 ई० में बरार प्रांत के साथ ही माहुर मुगलराज्य में विलीन हो गया। स्थानीय किंवदंती के अनुसार माहुर में उस महल के खंडहर आज भी हैं जहाँ शाहज़ादा खुर्रम जहांगीर की सेना से बचने के लिए छिप गया था।

माहुली (महाराष्ट्र)

इस स्थान पर शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास पर्याप्त समय तक रहे थे। यहीं दास-पंचायतन के सदस्यों (जयराम, रंगनाथ, आनंद, केशव तथा समर्थ) का मुख्य केंद्र था। इन्हीं लोगों के प्रयत्न से महाराष्ट्र में 17वीं शती में राष्ट्रीय जागृति की लहर आयी थी जिसके कारण शिवाजी को महाराष्ट्र में स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफलता मिली थी।

मिगदाय=मृगदाव (दे० सारनाथ)

मितावली (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

पढ़ावली से 2 कोस पूर्व में है। यहां भी पढ़ावली की भांति ही अनेक मंदिर हैं जो मध्ययुगीन हैं। इनमें एकोत्तरसौ नामक महादेव का मंदिर प्रसिद्ध है।

मित्रवन

(1) = मुलतान

(2) = काणार्क

मिथिला (बिहार)

बिहार-नेपाल सीमा पर विदेह (तिरहुत) का प्रदेश जो कोसी और गडकी नदियों के बीच में स्थित है। इस प्रदेश की प्राचीन राजधानी जनकपुर में थी। रामायण-काल में यह जनपद बहुत प्रसिद्ध था तथा सीता के पिता जनक का राज्य इसी प्रदेश में था। मिथिला जनकपुर को भी कहते थे—(दे० वाल्मीकि रामायण बाल० 48-49—'ततः परमसत्कारं सुमते प्राप्य राघवौ, उष्यतत्र निशामेकां जग्मतुः मिथिलां ततः। तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम् साधुसाध्वतिशंसन्तो मिथिलां संपूजयन्। मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः, पुराणं निर्जने रम्यं प्रयच्छ मुनिपुंगवम्'। अहल्याश्रम मिथिला के सन्निकट स्थित था। वाल्मीकि रामायण, 1,71,3 के अनुसार मिथिला के राज्यवंश का संस्थापक निमि था। मिथि इसके पुत्र थे और मिथि के पुत्र जनक। इन्हीं के नामराशि वंशज सीता के पिता जनक थे। वायुपुराण (88, 7-8) और विष्णु पुराण (4, 5, 1) में निमि को विदेह का राजा कहा है तथा उसे इक्ष्वाकुवंशी माना है (दे० विदेह)। मिथिला राजा मिथि के नाम पर प्रसिद्ध हुई। विष्णुपुराण 4, 13, 93 में मिथिलावन का उल्लेख है—'सा च बडवाशतयोजन प्रमाणमार्गमतीता पुनरपि वाह्यमाना मिथिलावनोद्देशे प्राणानुत्ससर्ज'। विष्णुपुराण 4, 13, 107 में मिथिला का विदेहनगरी कहा गया है। मज्झिम-निकाय 2, 74, 83 और निमिजातक में मिथिला का सर्वप्रथम राजा मखादेव बताया गया है। जातक सं० 539 में मिथिला के महाजनक नामक राजा का उल्लेख है। महाभारत, शांति० 219 दाक्षिणात्य पाठ में मिथिला के जनक की निम्न दार्शनिक उक्तियों का उल्लेख है—'मिथिलायां प्रदीप्तयां नमे दह्यति किंचन'। वास्तव में जनक नाम के राजाओं का वंश मिथिला का सर्वप्रसिद्ध राज्यवंश था। महाभारत, सभा० 30, 13 में भीमसेन द्वारा विदेहराज जनक की पराजय का वर्णन है। शांति 218, 1 में मिथिलाधिप जनक का उल्लेख है—'केनवृत्तेन वृत्तज्ञ जनको मिथिलाधिपः'। जैन ग्रंथ विविधकल्प सूत्र में इस नगरी का जैन तीर्थ के रूप में वर्णन है। इस ग्रंथ से निम्न सूचना मिलती है...इसका एक अन्य नाम जगती भी था। इसके निकट ही कनकपुर नामक नगर स्थित था। मल्लिनाथ और नेमिनाथ दोनों ही तीर्थंकरों ने जैन धर्म में यहीं दीक्षा ली थी और यहीं उन्हें कैवल्य ज्ञान की

प्राप्ति हुई थी। यहीं अकंपित का जन्म हुआ था। मिथिला में गंगा और गंडकी का संगम है। महावीर ने यहां निवास किया था तथा अपने परिभ्रमण में वहां आते-जाते थे। जिस स्थान पर राम और सीता का विवाह हुआ था वह शाकल्य कुंड कहलाता था। जैन सूत्र-प्रज्ञापणा में मिथिला को मिलिलवी कहा है।

(2) (बर्मा) ब्रह्मदेश का प्राचीन भारतीय औपनिवेशिक नगर जिसका नाम प्राचीन बिहार की प्रसिद्ध नगरी तथा जनपद मिथिला के नाम पर था। संभवतः इसको बसाने वाले भारतीयों का संबंध मूल मिथिला से था या उन्होंने अपने मातृदेश भारत के प्रमुख जनपदों के नाम पर विदेशी उपनवेशों के नाम रखने की प्रचलित प्रथा के अनुसार ही इस स्थान का नामकरण किया होगा।

मिन्नगर=मिन्नगल

लेटिन के पेरिप्लस नामक यात्रावृत (प्रथम शती ई०) में इस भारतीय नगर का नामोल्लेख है। इस मेम्बारस (Membarus) नामक राजा की राजधानी बताया गया है। कुछ विद्वानों के मत में यह नगर मंदसौर या दशपुर (म० प्र०) है और मेम्बारस, क्षहरात नरेश नहपान। फ्लीट ने मिन्नगर का अभिज्ञान दोहद से किया है (जर्नल ऑव दि ऐशियाटिक सोसाइटी, 1912 पृ० 708)। किंतु पेरिप्लस में इस नगर की स्थिति का जो विवरण है (बेरीगाजा या भृगुकच्छ से 2° पूर्व और 2° उत्तर) उससे पूर्वोक्त अभिज्ञान ही ठीक जान पड़ता है।

मियानी (सिंध, प० पाकि०)

हैदराबाद से 6 मील उत्तर की ओर इस स्थान पर 1845 ई० में कुटिल-नीतिज्ञ जनरल नेपियर ने सिंध के अमीरों पर अकारण ही आक्रमण कर उन्हें परास्त किया और सिंध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। मियानी के युद्ध के पश्चात् नेपियर ने गवर्नर जनरल को अपनी जीत की सूचना इन इतिहास-प्रसिद्ध शब्दों में भेजी थी=Peccavi-I have Sinned (Sind)

मिलिन्नवी=जैन सूत्र प्रज्ञापणा में उल्लिखित मिथिला का प्राकृत रूपांतर।

मिश्रक=मिसरिख

मिश्रक पर्वत (लंका)

महावंश 13, 18-20। वर्तमान मिहिंतले की पहाड़ी से इसका अभिज्ञान किया गया है।

मिसरिख (जिला सीतापुर, उ० प्र०)

वर्तमान नीमसार से 6 मील दूर प्राचीन तीर्थ नेमिषारण्य है जिसे पौराणिक किंवदंतो में महर्षि दधीचि की बलिदान-स्थली माना जाता है। महाभारत वन 83, 91 में इसका उल्लेख है—'ततो गच्छेत् राजेंद्र मिश्रकं तीर्थमुत्तमम्, तत्र तीर्थानि राजेंद्रमिश्रितानि महात्मना'। इसके नामकरण का कारण (इस श्लोक के अनुसार) यहाँ सभी तीर्थों का एकत्र सम्मिश्रण है। मिसरिख वास्तव में नैमिषारण्य क्षेत्र ही का एक भाग है जहां सूतजी ने शौनकादि ऋषीश्वरों को महाभारत तथा पुराणों की कथा सुनाई थी।

मिहरपुरी दे० महरौली

मीरठ (जिला मेरठ, उ० प्र०)

मेरठ के निकट एक ग्राम जहां पूर्वकाल में अशोक का एक प्रस्तर-स्तंभ स्थित था। इस स्तंभ को दिल्ली का सुलतान फीरोज तुगलक (1351-1837) दिल्ली ले आया था जहां पहाड़ी (Ridge) पर आज वह भी स्थित है। इस स्तंभ पर अशोक के 1-6 स्तंभ-अभिलेख उत्कीर्ण हैं।

मीरनपुर कटरा (रुहेलखंड, उ० प्र०)

इस स्थान पर, जो शाहजहांपुर—बरेली रेलपथ पर स्थित है रुहेलों और अवध के नवाब में घोर युद्ध हुआ था (1773 ई०)। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने अवध की सहायता की जिसके फलस्वरूप रुहेलों की भारी पराजय हुई। इस युद्ध में भाग लेने के कारण वारेन हेस्टिंग्ज की, जो ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से बंगाल में गवर्नर-जनरल नियुक्त था, इंगलैंड में बड़ी निंदा हुई थी। लड़ाई का मैदान मीरनपुर कटरा स्टेशन के निकट ही स्थित है।

मुंगेर (बिहार)

महाभारत में इसे मोदागिरि कहा गया है—'अथ मोदागिरौ चैव राजानं बलवत्तरम् पांडवो बाहुवीर्येण निजघान महामृधे' वन० 30, 21 अर्थात् पूर्व दिशा की दिग्विजय यात्रा में मगध पहुंचने के उपरांत मोदागिरि के अत्यंत बलवान् नरेश को भुजाबल से युद्ध में मार गिराया। इसका वर्णन गिरिव्रज (=राजगीर) के पश्चात् है तथा इसके उल्लेख के पहले भीम की कर्ण पर विजय का वर्णन है। किंवदंती के अनुसार मुंगेर की नींव डालनेवाला चंद्र नामक राजा था। मुंगेर कई पहाड़ियों से घिरा हुआ नगर है। कर्णचूर की पहाड़ी महाभारत के कर्ण से संबंधित बताई जाती है। महाभारत के उर्युक्त प्रसंग में भी कर्ण और भीम का युद्ध मुंगेर के उल्लेख से ठीक पूर्व वर्णित है (दे० कर्णगढ़)। नगर के निकट सीता-कुंड नामक स्थान है जहां कहा जाता है कि

सीता अपने दूसरे बनवासकाल में अग्नि-प्रवेश के लिए उतरी थीं। चंडी स्थान भी प्राचीन स्थल है। एक किंवदंती में मुंगेर का वास्तविक नाम मुनिगृह भी बताया जाता है। कहते हैं यहीं पहाड़ी पर मुद्गल मुनि का निवास स्थान होने से ही यह स्थान मुद्गलनगरी कहलाता था। किंतु इसका संबंध महाभारत के मोदागिरि से जोड़ना अधिक समीचीन है। कनिंघम के मत में 7 वीं शती में युवानच्वांग ने इस स्थान को लोहपानिनीलो (लावणनील) कहा है। 10 वीं शती में पालवंशी देवपाल का यहां राज था जैसा कि उसके ताम्रपट्ट लेख में वर्णित है। मुंगेर में मुसलमान बादशाहों ने भी काफी समय तक अपना मुख्य प्रशासन-केंद्र बनाया था जिसके फलस्वरूप यहां उस समय के कई अवशेष हैं। मुगलों के समय का एक क़िला भी उल्लेखनीय है। यह गंगा के तट पर बना है। इसके उत्तर पश्चिम के कोने में कष्टतारिणी नामक गंगा का घाट है जहां 10 वीं शती का एक अभिलेख है। किले से आधा मील पर 'मान पत्थर' है जो गंगा के अंदर एक चट्टान है। कहा जाता है कि इस पर श्रीकृष्ण के पदचिन्ह बने हैं। किले के पश्चिम की ओर मुल्ला सईद का मकबरा है। ये अशरफ नाम से फारसी में कविता लिखते थे और औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा के काव्य-गुरु भी थे। इनका मूल निवास स्थान केस्पियन सागर के पास मजनदारन नामक स्थान था। अकबर के समय में टोडरमल ने बंगाल के विद्रोहियों को दबाने के लिए अभियान का मुख्य केंद्र मुंगेर में ही बनाया था। शाहजहां के पुत्र शाहशुजा ने उत्तराधिकार-युद्ध के समय इस स्थान में दो बार शरण ली थी। कुछ विद्वानों का मत है कि मुंगेर का एक नाम हिरण्यपर्वत भी है जो सातवीं शती या उसके निकटवर्ती काल में प्रचलित था। (दे० बिहार दि हार्ट आफ इंडिया पृ० 59)

मुंजग्राम दे० रम्य ग्राम

मुंजपृष्ठ

'मुंजपृष्ठं जगामाथ पितृदेवर्षिपूजितम्, तत्र श्रृंगे हिमवतो मेरो कनकपर्वते। यत्र मुंजावटे रामो जटाहरणमादिशत्। तदा प्रभृति राजेंद्र ऋषिभिः संशितव्रतैः, मुंजपृष्ठ इति प्रोक्तः स देशो रुद्रसेवितः' महा० शांति 122,2-3-4. अर्थात् वे अंगदेश के राजा वसुहोम मुंजपृष्ठ नामक तीर्थ में आए। वह स्थान स्वर्णमय पर्वत सुमेरु के समीप हिमालय के शिखर पर है, जहां मुंजावट में परशुराम ने अपनी जटाएं बांधने का आदेश दिया था। तभी से कठोर व्रती ऋषियों ने उस रुद्रसेवित प्रदेश को मुंजपृष्ठ नाम दे दिया। मुंजावट या मुंजपृष्ठ वैदिक मूजवत् का रूपांतरण प्रतीत होता है।

मंडस्थल (राजस्थान)

आबू पर्वत के नीचे स्थित प्राचीन जैन तीर्थ। तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस तीर्थ का उल्लेख इस प्रकार है—'वंदनंदसमे समीघवलके मर्जाद मुंडस्थले'।

मुंढाल (ज़िला सहारनपुर, उ० प्र०)

हरद्वार से 6 मील पूर्व। इसका वर्णन जनरल कनिंघम ने 1866 ई० में किया था। उस समय यहां एक देवालय था जो बीस फुट चौड़े चबूतरे पर अवस्थित था। इसके चतुर्दिक् एक परिखा थी। चारों कोनों पर परिखा की समाप्ति शीर्षों के रूप में होती थी। दक्षिण में कलशवाहिनी की मूर्ति थी। पश्चिम में सिंह और उत्तर में मेष की मूर्तियां थीं। पूर्व का कोना खंडितावस्था में था। देवालय के पास जंगल में अनेक शिलाएं बिखरी हुई थीं जो कभी स्तंभों के खंड, सिरदल आदि रही होंगी। अब इस देवालय के स्थान पर वनविभाग का विश्रामगृह है जो उसी के पत्थरों से निर्मित है। इसमें मंदिर की कई मूर्तियाँ रखी हैं। इस स्थान से चार मील पूर्व की ओर एक प्राचीन नगर के अवशेष हैं जिसका वर्तमान नाम पांडुवाला है। कनिंघम ने इस स्थान को ब्रह्मपुर राज्य की राजधानी माना है जहां चीनी यात्री युवानच्वांग आया था। (दे० पुरातत्त्व विभाग की रिपोर्ट 1891)

मुकुटबंधन चैत्य दे० कुशीनगर

मुक्तवेणी

यह हुगली (प० बंगाल) के उत्तर की ओर स्थित है जहां तीन नदियां एक साथ मिलती हैं और फिर अलग हो जाती हैं। सप्तर्षि का मंदिर त्रिवेणी के निकट है।

मुक्ता

विष्णुपुराण 2, 4, 28 में उल्लिखित शाल्मल द्वीप की एक नदी-'योनिस्तोया वितृष्णा च चंद्रा मुक्ता विमोचनी, निवृतिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशांतिदा.'।

मुक्तागिरि (गिरार, महाराष्ट्र)

एलिचपुर से 12 मील दूर जंगल के बीच इस पहाड़ी में अनेक गुफा मंदिर हैं जिनमें प्राचीन जैन मूर्तियां अवस्थित हैं। गुफाओं के निकट 52 जैन मंदिर बने हैं। जैन इस स्थान को पवित्र मानते हैं।

मुक्तिनाथ (नेपाल)

समुद्रतट से 12000 फुट की ऊंचाई पर स्थित प्राचीन हिंदू तीर्थ है जिसका महत्त्व पशुपतिनाथ के समान ही समझा जाता है। तिब्बत के बौद्ध भी इस

स्थान को पवित्र मानते हैं और इसे छूमिकग्यासा कहते हैं। कृष्ण-गंडकी नदी मुक्तिनाथ की हिमाच्छादित पर्वतमाला से निकलती है और मुक्तिनाथ के पास देविका तथा चक्रा नामक नदियों से मिल जाती हैं। मुक्तिनाथ कठमंडू से प्राय: 140 मील दूर है। भारत से यहाँ पहुँचने के लिए नौतनवा या बुटवल होकर मार्ग जाता है।

मुखलिगम् (ज़िला गंजम, उड़ीसा)

प्राचीन कलिंगनगर। यहाँ उडीसा की प्राचीनतम राजधानी थी। 10 वीं-11 वीं शती ई० में भी गंगवंशीय नरेशों में अनंतवर्मन् चौड़गंग (1076-1147 ई०) सबसे अधिक प्रसिद्ध था। इसी ने पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर बनवाया था। मुखलिगम् वंशधारा नदी के तट पर स्थित है। (दे० कलिंगनगर)

मुचकुंद=बिचकुंद (ज़िला नंदेड़, महाराष्ट्र)

मुचकुंद ऋषियों का पुण्यस्थान।

मुज़रिस दे० क्रंगनौर

मुट्टियमंडल (बर्मा)

दक्षिण ब्रह्मा में स्थित एक प्राचीन भारतीय उपनिवेश जो वर्तमान मर्तबान के निकट था।

मुडबदरी (ज़िला कनारा, मैसूर)

इस स्थान पर 15 वीं-16वीं शती का शिखर सहित वर्गाकार सुंदर मंदिर है जो पूर्वगुप्तकालीन मंदिरों की परंपरा में है। छत सपाट पत्थरों से पटी है किंतु पत्थरों को ढलवां रखा गया है जो इस प्रदेश में होने वाली अधिक वर्षा की दृष्टि से आवश्यक था। मुडबदरी तथा कनारा ज़िले के अन्य प्राचीन मंदिरों में गुप्तकालीन मंदिरों की भांति ही पटे हुए प्रदक्षिणापथ तथा गर्भगृह के सम्मुख सभामंडप स्थित हैं। यह मंदिर इस बात का प्रमाण है कि गुप्त-कालीन मंदिरों की परंपरा उत्तरी भारत में तो विदेशी प्रभावों के कारण शीघ्र ही नष्ट हो गई किंतु दक्षिण में, 15 वीं-16 वीं शती तक प्रचलित रही। यह स्थान प्राचीन काल में जैन विद्यार्थियों का केंद्र था। आज भी प्राचीन जैन ग्रंथों की (जैसे धवलादिसिद्धान्त ग्रंथ) यहां प्राचीनतम प्रतियां सुरक्षित हैं। यहां 22 जैन मंदिर हैं जिनमें चंद्रप्रभु का मंदिर विशाल एवं प्राचीन है। चंद्रप्रभु की मूर्ति पंचधातु की बनी है और अति भव्य है। इस मंदिर का निर्माण 1429 ई० में 10 करोड़ रुपये की लागत से हुआ था।

इसी मंदिर के सहस्रकूट जिनालय में धातु की 1008 प्रतिमाएं हैं। मुडबदरी वेणूर से 12 मील दूर है।

मुडोकेडी

कुर्ग की राजधानी मरकरा का प्राचीन नाम. अर्थ है स्वच्छग्राम।

मुढेरा (गुजरात)

प्राचीन सूर्य-मंदिर के विशाल खंडहर यहां स्थित हैं जिनसे इस मंदिर की उत्कृष्ट कला का कुछ आभास मिलता है। इस प्राचीन मंदिर को मध्यकाल में मुसलमान आक्रमणकारियों ने ध्वस्त कर दिया था।

मुद्गल (जिला रायचूर, मैसूर)

1250 ई० में देवगिरि के प्रसिद्ध यादव नरेशों का मुख्य नगर। कालक्रम में वारंगल, बहमनीराज्य और बीजापुर रियासत के मुगल साम्राज्य में मिलाए जाने पर मुद्गल भी इसी साम्राज्य में विलीन हो गया। रोमन केथलिकों का एक उपनिवेश मुद्गल में स्थित है जो गोआ से सेंटज़ेवियर के भेजे हुए प्रचारक द्वारा ईसाई बना लिए गए थे। यहाँ का गिर्जा काफी प्राचीन है और उसमें मेडौना का एक प्राचीन चित्र है। दक्षिण भारत की एक प्रख्यात प्रेमगाथा की नायिका पारथल की जन्मभूमि मुद्गल ही कही जाती है। सुंदरी पारथल मुद्गल के एक स्वर्णकार की पुत्री थी।

मुनि

विष्णुपुराण 2,4,48 के अनुसार क्रौंचद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा द्युतिमान् के पुत्र मुनि के नाम पर प्रसिद्ध है।

मुरंड दे० कुरंड

मुर

'मुरं च नरकं चैव शास्ति यो यवनाधिपः, अपर्यन्तबलो राजा प्रतीच्यां वरुणो यथा। भगदत्तो महाराज वृद्धस्तवपितुःसखा'—महा० सभा० 14,14-15. महाभारतकाल में यवनाधिप भगदत्त का मुर तथा नरक प्रदेश पर राज्य था। नरक शायद नरकासुर के नाम से प्रसिद्ध था और इसकी स्थिति कामरूप (असम) में माननी चाहिए। मुरदेश को इसके पार्श्व में स्थित समझना चाहिए। भगदत्त को उपर्युक्त प्रसंग में जरासंध के अधीन कहा गया है। जरासंध मगध का राजा था और उसका प्रभाव अवश्य ही असम के इन देशों तक विस्तृत रहा होगा।

मुरचीपत्तन

'कृत्स्नं कोलगिरिं चैव मुरचीपत्तनं तथा द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं

तथा' —महा० सभा० 31,68। इसे सहदेव ने दक्षिण की विजय-यात्रा में विजित किया था। महाभारत की कई प्रतियो में मुरचीपत्तन का पाठांतर सुरभीपत्तन है। मुरचीपत्तन का उल्लेख वाल्मीकि रामायण किष्किंधा० 42,13 में भी है— 'वेलातल निविष्टेसु पर्वतेषु वनेषु च मुरचीपत्तनं चैव रम्यं चैव जटापुरम्'। मुरचीपत्तन रोमन लेखकों का मुजरिस है। (दे० क्रंगनौर, तिरुवांचीकुलम्)

मुरल

संभवत: केरल प्रदेश का प्राचीन नाम है। कलचुरि-राजा कर्णदेव द्वारा विजित देशों में मुरल भी था जैसा कि अल्हणदेवी के भेड़ाघाट अभिलेख से विदित होता है, 'पांड्य: चंडितमतां मुमोच मुरलस्तत्याजगर्वग्रहम्', अर्थात् कर्णदेव के पराक्रम के सामने पांड्य देशवासियों ने अपनी प्रखरता तथा मुरलवासियों ने अपना गर्व छोड दिया (दे० एपिग्राफिका इंडिया, जिल्द 2 पृ० 11)। संस्कृत के महाकवि राजशेखर ने कन्नौजाधिप महीपाल (9वीं शती ई०) को मुरल तथा कई अन्य प्रदेशों का विजेता कहा है।

मुरला

(1) भवभूति-रचित उत्तररामचरित में उल्लिखित एक नदी जो नर्मदा जान पड़ती है। भवभूति ने मुरला तथा तमसा को मानवी के रूप में चित्रित किया है। (दे० उत्तररामचरित, तृतीयांक)।

(2) केरल की नदी (मुरल=केरल)। इसका वर्णन कालिदास ने रघुवंश 4,55 में इस प्रकार किया है—'मुरलामारुतोद्धूतमगमत्कैतकं रज:, तद्योधवारवाणानामयत्नपटवासताम्'। टीकाकार ने मुरला की टीका में 'केरल देशेषु काचिन्नदी' लिखा है। कुछ विद्वानों के मत में मुरला संभवत: काली नदी है जिसके तट पर सदाशिवगढ़ बसा है।

मुरादाबाद (उ० प्र०)

इस नगर का प्राचीन नाम चौपाला है। पुरानी बस्ती चार भागों में बटी हुई थी—भादुरिया, दीनदारपुर, मानपुर और डिहरी। मुगल सूबेदार रुस्तमखां ने मुगल बादशाह शाहजहां के पुत्र मुरादबख्श के नाम पर चौपाला का नाम मुरादाबाद रखा था। यहां की जामा मसजिद इसी समय (1631) बनी थी।

मुविपत्तन=मुरचीपत्तन दे० क्रगनौर,

मुर्शिदाबाद (बंगाल)

मध्यकाल में बंगाल की राजधानी कर्णसुवर्ण या कानसोना (सेनवंशीय नरेशों का मुख्य नगर) के स्थान पर बसा हुआ नगर। ढाके के नवाब मुर्शिदकुली खां ने यहां अपनी नई राजधानी बनाई थी और उसी के नाम से यह

नगर प्रसिद्ध हुआ। पलासी के युद्ध (1757 ई०) तक बंगाल के नवाबों की राजधानी मुर्शिदाबाद में रही। उस समय यह नगर समृद्धिशाली तथा बंगाल का व्यापारिक केंद्र था। रेशमी वस्त्र, मिट्टी के बर्तन तथा हाथीदांत का सुंदर काम यहां की प्रसिद्ध व्यापारिक वस्तुएं थीं।

मुलतान (प० पाकि०)

जनश्रुति के अनुसार इस नगर का वास्तविक नाम मूलस्थान था। यह एक प्राचीन सूर्य-मंदिर के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। भविष्यपुराण, 39 की एक कथा में वर्णित है कि कृष्ण के पुत्र साम्ब ने दुर्वासा के शाप के परिणामस्वरूप कुष्ठ रोग से पीड़ित होने पर सूर्य की उपासना की थी और मूलस्थान में सूर्यदेव का मंदिर बनवाया था। उसने मगद्वीप से सूर्योपासना में दक्ष सोलह मग परिवारों को बुलाया था। ये मग लोग शायद ईरान-निवासी थे और शाकल द्वीप में बसे हुए थे (दे० मगद्वीप)। इस सूर्य-मंदिर के खंडहर मुलतान में आज भी स्थित है। स्कंदपुराण के प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य, अध्याय 278 में इस मंदिर को देविका नदी के तट पर बताया गया है—'ततो गच्छेत् महादेविमूलस्थानमिति श्रुतम्, देविकायास्तटे रम्ये भास्करं वारितस्करम्'। देविका वर्तमान देह नदी है। युवानच्वांग के समय में सिंधु और मुलतान पड़ोसी देश थे। अलबेरूनी ने सौवीर देश का विस्तार मुलतान तक बताया है। एक प्राचीन किंवदंती में मुलतान को, विष्णु-भक्त प्रह्लाद का जन्म स्थान तथा हिरण्यकशिपु की राजधानी माना जाता है। प्रह्लाद के नाम से एक प्रसिद्ध मंदिर भी यहां स्थित है।

मुषिक

'त्रैराज्य मुषिकजनपदान्कनकाह्वयोभोक्ष्यति' विष्णु० 4,24,67। इस उद्धरणमें मुषिक जनपद के कनक नाम के नरेश का उल्लेख है। मुषिक संभवत: मूषिक का रूपांतरण है। (दे० मूषिक)

मूँगी (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

गोदावरी के वामतट पर स्थित है। इस ग्राम से पुरापाषाणयुगीन अवशेष प्राप्त हुए हैं जिन्हें औरंगाबाद ज़िले में सबसे प्राचीन मानव बस्ती के चिह्न माना जाता है।

मूजवत्

ऋग्वेद में उल्लिखित हिमालय का एक पर्वत शृंग। इसे सोम का स्थान माना गया है। अर्थववेद ने गंधारियों (गंधार-निवासी जाति) को मूजवतों के पार्श्व में बताया है। ये मूजवत्, अवश्य ही ऋग्वेद में वर्णित मूजवत् पर्वत के निकटस्थ रहे होंगे। मेकडॉनेल्ड (दे० ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, पृ० 144) के

अनुसार यह पर्वत कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित पर्वतमाला का एक भाग था। संभवतः महाभारत में इसी को मुंजवट या मुंज-पृष्ठ कहा गया है। मेकडॉनेल्ड के मत में ऋग्वेद में हिमालय के केवल इसी शृंग का उल्लेख है।

मूलक

बुद्धपूर्वकाल में मूलक तथा अश्मक जनपद पड़ौसी देश थे। डॉ० भंडारकर (कारमेइकल व्याख्यान 1918, पृ० 53,54) के मतानुसार प्रारंभिक पाली साहित्य में मूलक देश को अश्मक के उत्तर में बताया गया है और उत्तर-पाली साहित्य में मूलक का उल्लेख अश्मक के एक भाग के रूप में ही किया गया है। गौतमी बलश्री के नासिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसके पुत्र शातवाहन-नरेश गौतमीपुत्र के राज्य में यह देश सम्मिलित था। अश्मक देश से संबंधित होने के कारण मूलक की स्थिति गोदावरी के तट पर स्थित पैठान के पार्श्ववर्ती प्रदेश में मानी जा सकती है। पैठान या प्रतिष्ठान में अश्मक की राजधानी थी।

मूलसेतु (मद्रास)

रामनाथपुर से 12 मील दूर देवीपत्तन को ही मूलसेतु कहा जाता है। किंवदंती है कि इस स्थान से श्रीराम ने लंका जाने के लिए समुद्र पर पुल बांधना प्रारंभ किया था। स्कंदपुराण की कथा है कि इस स्थान पर धर्म-पुष्करिणी नामक झील थी जहां महिषमर्दिनी देवी ने महिषासुरका वध किया था।

मूलस्थान = मुलतान

मूला

(1) पंजाब की एक नदी जिसके तटवर्ती निवासी मौलेय कहलाते थे।

(2) पूना (महाराष्ट्र) के निकट बहने वाली नदी।

मूषिक

(1) इस जनपद का प्राचीन साहित्य में कई स्थानों पर उल्लेख है। श्री रायचौधरी के मत में (दे० पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एशेंट इंडिया पृ० 80) मूषिक-निवासियों को सांख्यायन श्रौतसूत्र में मूचीप या मूवीप कहा गया है। इनका नामोल्लेख मार्कंडेयपुराण 57,46 में भी है। संभवतः मूषिक देश हैदराबाद (आंध्र) के निकट बहने वाली मूसी नदी के कांठे में बसे प्रदेश का नाम था।

(2) अलक्षेंद्र (सिकंदर) के भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पू०)

मूषिकों का जनपद जिन्हें ग्रीक लेखकों ने मौसीकानोज़ लिखा है वर्तमान सिंध (पाकिस्तान) में स्थित था। इसकी राजधानी अलोर या अरोर (=रोरी) में थी। ग्रीक लेखकों ने मूषिकों के विषय में अनेक आश्चर्यजनक बातें लिखीं है जिनमें निम्न उल्लेखनीय हैं—इनकी आयु 130 वर्ष की होती थी जो इन लेखकों के अनुसार इनके संयमित भोजन के कारण थी। इनके देश में सोने-चांदी की बहुत-सी खानें थी किंतु ये इन धातुओं का प्रयोग नहीं करते थे। मूषिकों के के यहां दासप्रथा नहीं थी। ये लोग चिकित्सा-शास्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य शास्त्र का पढ़ना आवश्यक नहीं समझते थे। मूषिकों के न्यायालयों में केवल महान अपराधों का ही निपटारा होता था। साधारण दोषों के निर्णय के लिए न्यायालयों को अधिकार नहीं दिए गए थे (दे० स्ट्रेबो पृ० 15,34-35)। मूषिकों का वास्तविक नाम शायद मुचुकर्ण था। विष्णुपुराण में इन्हें ही संभवतः मुषिक कहा गया है। दक्षिण के मूषिक उत्तरी मूषिकों की ही एक शाखा थे।

मूसानगर (ज़िला कानपुर, उ० प्र०)

1954 की खुदाई में इस स्थान से शुंगकाल से मध्यकाल तक की कलाकृतियों के अनेक सुंदर अवशेष प्राप्त हुए हैं। मराठों के समय में बना हुआ मुक्ता देवी का एक मंदिर भी इस स्थान पर यमुना के तट पर अवस्थित है।

मूसी

हैदराबाद (आं० प्र०) के निकट बहने वाली नदी जिसका नाम शायद मूषिकों के नाम पर है (दे० मूषिक 1,2)। दक्षिण का मूषिक जनपद संभवतः इसी नदी के आसपास स्थित था। नदी के एक ओर गोलकुंडा और दूसरी ओर हैदराबाद है। गोलकुंडा-नरेश कुतुबशाह इसी नदी को पार करके अपनी प्रेयसी भागमती से मिलने के लिए उसके ग्राम में जाया करता था। इसी ग्राम के स्थान पर, भागमती से विवाह करने के पश्चात्, उसने भागनगर की नींव डाली थी जो बाद में हैदराबाद कहलाया। (दे० भागनगर)

मृगदाव=सारनाथ

'शक्ति एवं गौरव से सुशोभित तथा सूर्य के समान तेज से कांतिवान् मुनि बुद्ध मृगदाव में आए जहां कोकिलों की ध्वनि से निनादित तरुवरों के बीच महर्षिगणों के आश्रम थे'–बुद्धचरित। (दे० सारनाथ)

मृगव्याधेश्वर (ज़िला नासिक, महाराष्ट्र)

यह स्थान अब बांध बन जाने से जलमग्न हो गया है। कहा जाता है कि श्री रामचंद्रजी ने मारीच-मृग का वध इसी स्थान पर किया था। पंचवटी इस स्थान के निकट ही है।

मृगशिखावन

चीनी यात्री इत्सिंग ने इस स्थान पर महाराज श्रीगुप्त द्वारा एक मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख किया है। उसके वृत्तांत से जान पड़ता है कि यह मंदिर लगभग 175 ई० में बना होगा। ऐलन (Allen) के मत में यह श्रीगुप्त समुद्रगुप्त का प्रपितामह महाराज गुप्त ही है जिसका गुप्तकालीन अभिलेखों में नामोल्लेख है। किंतु यह मत भ्रामक है क्योंकि महाराज गुप्त की तिथि इत्सिंग के श्रीगुप्त से प्रायः सौ वर्ष पीछे होनी चाहिए। मृगशिखावन का अभिज्ञान अनिश्चित है। संभवतः यह स्थान और मृगदाव या सारनाथ एक ही हैं।

मृत्तिकावती

'वत्सभूमि विनिर्जित्य केवलां मृत्तिकावतीम् मोहनं पत्तनं चैव त्रिपुरीं कोसलां तथा'—महा० वन० 254,10। यह नगरी कर्ण द्वारा जीती गई थी। इसकी स्थिति प्रयाग के दक्षिण और त्रिपुरी के उत्तर में रही होगी।

मेंडू दे० मंडू

मेकल = मेखल

विंध्याचल पर्वतमाला के अंतर्गत अमरकंटक पहाड़ जो नर्मदा का उद्गम स्थान है। मेकल-श्रेणी की स्थिति विंध्य और सतपुड़ा पर्वतमाला के बीच में है और यह इन दोनों को मेखला के रूप में बांधे हुए प्रतीत होती है। इस पर्वत का निकटवर्ती प्रदेश भी इसी नाम से प्रसिद्ध था। पौराणिक कथा के अनुसार राजा मेकल ने इस पर्वतीय प्रदेश में घोर तपस्या की थी जिसके कारण यह पर्वत तथा उसका क्षेत्र इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस स्थल को व्यास, भृगु तथा कपिल आदि की तपःस्थली भी माना जाता है। संभवतः मेकल का मेखल के रूप में उल्लेख कविवर राजशेखर ने कन्नौजाधिप महीपाल द्वारा विजित प्रदेशों में किया है। मेकल-पर्वत से शोण (=सोन) नदी भी निकली है। नर्मदा का उद्गम मेकल में होने के कारण इस नदी को मेकलसुता या मेकलकन्या कहते हैं।

मेकलकन्यका, मेकलकन्या, मेकलसुता

नर्मदा का पर्याय (दे० मेकल)। मेकल-पर्वत से निस्मृत होने के कारण ही नर्मदा को मेकल की पुत्री कहा जाता है। 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका'-अमर कोश। तुलसीदास ने नर्मदा को मेकलसुता कहा है—'सुरसरि सरसई दिनकरकन्या, मेकलसुता गोदावरी धन्या'–रामचरितमानस, अयोध्याकांड।

मेकोंग (कंबोडिया)

कंबोडिया की एक नदी। कुछ लोगों के मत में मेकोंग शब्द 'मागंगा' से बना है। इस नदी का यह नाम भारतीय औपनिवेशिकों ने दिया था। मेकोंग कंबोडिया निवासियों के लिए गंगा की ही भांति महत्त्वपूर्ण है।

मेखल दे० मेकल

मेगुटी (ज़िला बीजापुर, मैसूर)

इस स्थान पर 634 ई० में, चालुक्य वास्तु शैली में निर्मित एक महत्वपूर्ण मंदिर है। इसमें गर्भगृह के चतुर्दिक् पटा हुआ प्रदक्षिणापथ है। इसका शिखर विकास की प्रारंभिक अवस्था का द्योतक है (कज़िंस:आर्क्योलोजिकल सव रिपोर्ट 1907–1908) पुरातत्त्व के विद्वानों का मत है कि मेगुटी का मंदिर तथा बीजापुर ज़िले के अन्य चालुक्यकालीन मंदिर, मुख्यतः उत्तर तथा मध्य भारत के पूर्वगुप्तकालीन मंदिरों की परंपरा में हैं। भेद केवल शिखर की उपस्थिति के कारण है जो प्राचीन परंपरा के विकसित रूप का परिचायक है। (दे० कज़िंस-चालुक्यन आर्किटेक्चर ऑव दि कनारा डिस्ट्रिक्टस)

मेघंकर=मेहकर (ज़िला खामगांव, महाराष्ट्र)

खामगांव से 50 मील दूर है। यह प्राचीन तीर्थ गंगा के तट पर है। इस का वर्णन मत्स्यपुराण 22, 40, ब्रह्मपुराण 93, 46 तथा पद्मपुराण उत्तर० 175, 181, 4, 1 आदि में है। यहां के खंडहरों से प्राप्त कई सुंदर मूर्तियां लंदन के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

मेघनाद=मेघवाहन

पूर्व बंगाल (पाकि०) की मेघना नदी जो ब्रह्मपुत्र की दक्षिणी शाखा का नाम है।

मेड़ता (राजस्थान)

जोधपुर से 100 मील दूर है। मेड़ता प्रसिद्ध भक्त-कवियित्री मीराबाई का जन्मस्थान माना जाता है। यहां राजपूत-काल का एक किला है। 1562 ई० में इस दुर्ग को अकबर ने जीता था। श्री नं० ला० डे के अनुसार इसका प्राचीन नाम मार्तिकावत है।

मेदक (आं० प्र०)

यहां 300 फुट ऊँची पहाड़ी पर एक प्राचीन दुर्ग स्थित है। मुबारकमहल नामक भवन इस दुर्ग के भीतर है। इसके प्रवेशद्वार पर एक द्विमुख पक्षी का चित्र उकेरा हुआ है जिसने अपनी चोंच तथा चंगुल में हाथियों को पकड़ रखा है। 1641 ई० में बनी हुई अरब खाँ की मसजिद भी यहाँ का प्राचीन

स्मारक है।

मेमिराकोट दे० कपिलवस्तु

मेरठ (उ० प्र०)

प्राचीन नाम मयराष्ट्र। किवदंती के अनुसार इस नगर को महाभारतकाल में मयदानव ने बसाया था। मयदानव उस समय का महान् शिल्पी था तथा इसी ने युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में अद्भुत सभाभवन का निर्माण किया था। अर्जुन तथा कृष्ण ने खांडववन को जलाते समय यहां रहने वाले मयदानव की रक्षा करके उसे अपना मित्र बना लिया था (दे० आदिपर्व 233, सभा० 1)। संभवत खांडववन की स्थिति वर्तमान मेरठ के निकटवर्ती क्षेत्र में थी। जान पड़ता है कि वास्तव में खांडववन दिल्ली के इंद्रप्रस्थ नामक स्थान के निकट (पुराने किले के आसपास) रहा होगा क्योंकि पांडवों की राजधानी इंद्रप्रस्थ, इसी वन को जला डालने पर जो स्वच्छ भूभाग प्राप्त हुआ था उसी में बसाई गई थी। किंतु यह भी संभव है कि यह वन वर्तमान दिल्ली से लेकर मेरठ तक के क्षेत्र में विस्तृत था।

11वीं शती ई० में दोर राजपूत हरदत्त ने मेरठ को जीतकर यहां एक किला बनवाया जिसे कुतुबुद्दीन ने 1191 में जीत लिया। यहां एक बौद्ध मंदिर के भी अवशेष मिले थे। शाहपीर की दरगाह को नूरजहां ने बनवाया था। जामा मसजिद, महमूद गजनी के वज़ीर हसन मेहदी ने बनवाई थी (1019 ई०)। इसकी मरम्मत हुमायूं ने करवाई थी।

मेरु

पौराणिक भूगोल में शायद उत्तरमेरु (उत्तरी साइबेरिया) के निकट स्थित पर्वत का नाम है। इसी को संभवत: सुमेरु कहा गया है—'भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतं हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज' विष्णु० 2,2, 12। इसके चारों ओर नौसहस्र योजन तक इलावृत नामक महाद्वीप है—'मेरो चतुर्दिशं तत्तुनवसाहस्रविस्तृतम्, इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्वताः' विष्णु० 2,2,15। विष्णुपुराण 2,8,22 के अनुसार या तो यहां दिन ही या रात्रि ही रहती है—'तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हृ, सर्वेषां द्वीप-वर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः'। इसके आगे के श्लोक में 'मेरुप्रभा' (Aurora-Borealis) का वर्णन इस प्रकार है—'प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे, विशत्यग्निमतो रात्रौवह्निर्दूरात् प्रकाशते' अर्थात् रात्रि के समय सूर्य के अस्त हो जाने पर उसका तेज अग्नि में प्रविष्ट हो जाता है और यह रात्रि में दूर से

ही प्रकाशित होता है। वाल्मीकि रामायण में भी मेरुप्रदेश या उत्तरकुरु में होने वाले प्रकृति के इस विस्मयजनक व्यापार का वर्णन इस प्रकार है—'तमतिक्रम्य शैलेंद्रमुत्तरः पयसां निधिः, तत्र सोमगिरिर्नाम मध्येहेममयो महान्। स तु देशो विसूर्योपि तस्य भासा प्रकाशते, सूर्यलक्ष्याभिविज्ञेयस्तपतेव विवस्वता'— किष्किंधा० 43,53-54 (दे० उत्तरकुरु)। महाभारत के वर्णन के अनुसार निषधपर्वत के उत्तर और मध्य में मेरुपर्वत की स्थिति है। मेरु के उत्तर में नील, श्वेत और शृंगवान् पर्वत हैं जो पूर्व-पश्चिम समुद्र तक फैले हैं। मेरु को महामेरु नाम से भी अभिहित किया गया है—'स ददर्श महामेरुं शिखराणां प्रभुं महत्, तं कांचनमयं दिव्यं चतुर्वर्णं दुरासदम्, आयतं शतसाहस्रं योजनानां तु सुस्थितम्, ज्वलन्तमचलं मेरुं तेजोराशिमनुत्तमम्' महा० सभा० 28 दाक्षिणात्य पाठ। मेरु को सुवर्णमय पर्वत शायद मेरुप्रभा की दीप्ति ही के कारण कहा गया है। मेरु के प्रदेश को महाभारत सभा० 28, दाक्षिणात्य पाठ में इलावृत, कहा गया है—'मेरोरिलावृतं वर्षं सर्वतः परिमंडलम्'। यह साइबेरिया का उत्तरीभाग हो सकता है। इसी प्रदेश के निकट उत्तरकुरु की स्थिति थी। वास्तव में हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में मेरु का अद्भुत वर्णन, जो काल्पनिक होते हुए भी भौगोलिक तथ्यों से भरा हुआ है, सिद्ध करता है कि प्राचीन भारतीय, उस समय में भी जब यातायात के साधन नगण्य थे, पृथ्वी के दूरतम प्रदेशों तक जा पहुंचे थे। मत्स्यपुराण में सुमेरु या मेरु पर देवगणों का निवास बताया गया है। कुछ लोगों का मत है कि पामीर पर्वत को ही पुराणों में सुमेरु या मेरु कहा गया है।

मेरुप्रभ

द्वारका के दक्षिण भाग में स्थित लतावेष्ट नामक पर्वत के चतुर्दिक् स्थित उपवन का नाम—'लतावेष्टं समंतात् तु मेरुप्रभवनं महत् भातितालवनं चैव पुष्पकं पुण्डरीकवत्' महा० सभा० 38 दाक्षिणत्य पाठ।

मेलरपत्तन दे० ओमियां

मेलात्तूर (ज़िला तंजौर, मद्रास)

तंजौर के निकट एक ग्राम जो प्राचीनकाल में दक्षिण भारत की विशिष्ट नृत्यशैली, भरत-नाट्यम् के लिए प्रसिद्ध था। यह ग्राम इस नृत्य का एक केंद्र समझा जाता था। इस नृत्यशैली के अन्य केंद्र शूलमंगलम् और उथूकाडू थे।

मेलूकोटे (मैसूर)

मैसूर नगर से 35 मील दूर है। यह प्रसिद्ध स्थान—प्राचीन यादव गिरि—आज भी अतीत के गौरव को अपने ऐतिहासिक अवशेषों में संजोए हुए है। इस

नगर की सड़कें जिन पर पत्थर जड़े हैं लगभग नौ सौ वर्ष प्राचीन हैं। दक्षिण के प्रसिद्ध दार्शनिक संत रामानुज को यहीं कल्याणी सरोवर के तट पर नारायण की मूर्ति प्राप्त हुई थी जो यहां के प्रमुख मंदिर में प्रतिष्ठापित है। यहां के प्राचीन स्मारक हैं—गोपालराय का विशाल तोरण जो 500 वर्ष पुराना होता हुआ भी आज भी शिल्प का अद्भुत उदाहरण है, प्राचीन दुर्ग की टूटी-फूटी दीवारें, वेदपुष्करणी नामक सरोवर तथा अनेक शिलालेख। रामानुज इस स्थान पर लगभग बारह वर्ष तक रहे थे और यहां निवास करते हुए उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों का प्रचार किया था। वे यहां 1089 ई० में राजा विष्णुवर्धन की शरण में आकर रहे थे। मार्च मास में वैरामुड़ी नामक उत्सव यहां मनाया जाता है। इसमें देवता की मूर्ति को एक सातसौ वर्ष पुराने हीरक-मुकुट से अलंकृत किया जाता है जिसे होयसलनरेश ने भेंट में दिया था। कहते हैं कि मुकुट में अमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। (दे० तोन्नूर, यादवगिरि)

मेहकर=**मेघंकर**

मेहनगर (जिला आजमगढ़, उ० प्र०)

दौलत और अभिमन के पुराने मकबरे के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

मैत्रेयवन

कोणार्क (उड़ीसा) के क्षेत्र का प्राचीन पौराणिक नाम। इसे पद्मक्षेत्र भी कहा गया है।

मैनपुरी (उ० प्र०)

यह चौहान राजपूतों के समय की नगरी है। तत्कालीन अवशेष भी यहां मिले हैं। एक प्राचीन जैन मंदिर भी है।

मैनाक

(1) कैलास पर्वत (तिब्बत) के उत्तर में स्थित एक पर्वत—'उत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति यियक्षमाणेषु पुरा दानवेषु मयाकृतम्' महा० सभा० 3,2। इस पर्वत पर दैत्यों द्वारा किए जाने वाले यज्ञ का वर्णन है। युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ के लिए, मयदानव मैनाक पर्वत पर से (बिंदुसर के पास से) एक विचित्र रत्न-भांड, देवदत्त नामक शंख तथा एक गदा लेकर आया था, 'इत्युक्त्वा सोऽसुरः पार्थं प्रागुदीचीं दिशंगतः, अथोत्तरेण कैलासान्मैनाकं पर्वतं प्रति' सभा० 3,9। इस रत्न-भांड के द्रव्य से ही उसने युधिष्ठिर का अद्भुत सभाभवन निर्मित किया था। मैनाक पर्वत पर असुरों के राजा वृषपर्वा का अधिकार था। महाभारत, वन 139,1 में मैनाक का उशीरबीज, श्वेत तथा कालबीज नामक पर्वतों के साथ उल्लेख है—'उशीरबीजं मैनाकं गिरिश्वेतं च

भारत, समतीतोऽसि कौंतेय कालशैलं च पार्थिव'। वाल्मीकि रामायण किष्किंधा-कांड में भी इसी मैनाक का वर्णन है जहां इसे क्रौंच पर्वत के पार बताया गया है। इसी प्रसंग में कैलास का उल्लेख है—'तत्तु शीघ्रमतिक्रम्य कांतारं रोमहर्षणम्, कैलासं पांडुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ। क्रौंचं तु गिरिमासाद्य बिलंतस्य सुदुर्गमम्, अप्रमत्तैः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं हि तत्स्मृतम्। अवृक्षं कामशैलं च मानसं विहगालयम् न गतिस्तत्र भूतानांदेवानां न च रक्षसाम्। स च सर्वैविचेतव्यः ससानुप्रस्थभूधरः, क्रौंचगिरिमतिक्रम्य मैनाको नाम पर्वतः' किष्किंधा० 43,20-25-28-29। महाभारत की कथा के अनुसार ही वाल्मीकि रामायण में मैनाक पर मयदानव का भवन बताया गया है—'मयस्यभवनं तत्र दानवस्य स्वयं कृतम्, मैनाकस्तु विचेतव्यः ससानुप्रस्थकंदरः' किष्किंधा 43,30। वाल्मीकि ने इस पर्वत पर अश्वमुखी स्त्रियों का निवास बताया है—'स्त्रीणामश्वमुखीनां तु निकेतस्तत्र तत्र तु'—किष्किंधा० 43,31। संभव है मय से संबंध होने के कारण ही इस पर्वत को मयनाक या मैनाक कहा गया हो (मय+नाक, उच्चलोक)।

(2) वाल्मीकि रामायण सुंदर० (1,90) के अनुसार भारत और लंका के मध्यवर्ती समुद्र में स्थित एक पर्वत। यह समुद्र के अदर डूबा हुआ था किंतु लंका के लिए समुद्र पार करते हुए हनुमान् के विश्राम करने के लिए समुद्र ने इस पर्वत को जल से ऊपर उठा दिया था—'इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि हिरण्यनाभं मैनाकं मुवाच गिरिसत्तमम्' (इस वर्णन से जान पड़ता है कि मैनाक उसी पर्वतमाला का भाग है जो भारत के दक्षिणी भू छोर से लेकर समुद्र के अंदर होती हुई लंका तक चली गई है। प्रागैतिहासिककाल में लंका और दक्षिण भारत एक ही स्थल-खड के भाग थे और दक्षिण की मलयपर्वतमाला लंका तक फैली हुई थी। कालांतर में बंगाल की खाड़ी और अरबसागर ने लंका और भारत के बीच का संकीर्ण स्थल-मार्ग काट दिया और इस पर्वत-श्रेणी का अधिकांश भाग विशेष कर निचला भाग, जलमग्न हो गया। इसी कारण पौराणिक दंतकथा मे भी मैनाक को पर्वतों के पक्षच्छेदन करने वाले इंद्र के भय से समुद्र में छिपा हुआ कहा गया है। अध्यात्मरामायण, सुंदर० 1,26 में वाल्मीकि रामायण के अनुरूप ही मैनाक का इसी प्रसग मे वर्णन है—'समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकांचनपर्वतम्, गच्छत्येष महासत्वो हनुमान् मारुतात्मजः'। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में मैनाक का त्रिकूटादि पर्वतों के साथ उल्लेख है—'मैनाकस्त्रिकूटऋषभः कूटकः'। तुलसीदास ने (रामचरित मानस, सुंदर कांड) भी हनुमान के लंकाभिगमन-प्रसंग में मैनाक का उल्लेख किया है—'जलनिधि रघुपति दूत विचारी, तें मैनाक होहि श्रमहारी'।

मैनामती (पूर्व पाकि०)

कोमिल्ला से चार मील दूर है। 1954 ई० के उत्खनन में इस स्थान पर एक प्राचीन बौद्ध मंदिर तथा विहार के भग्नावशेष प्रकाश में आए थे। पुरातत्वज्ञों के मत में मैनामती में सभ्यता के पांच विभिन्न स्तर मिले हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

मैसूर (मैसूर)

मैसूर का नाम महिषासुर दैत्य के नाम पर प्रसिद्ध है। किंवदंती है कि देवी चंडी ने महिषासुर का वध इसी स्थान पर किया था। मैसूर के प्रांत का महत्व अति प्राचीन काल से चला आ रहा है क्योंकि मौर्य सम्राट् अशोक (तीसरी शती ई० पू०) के दो शिलालेख मैसूर राज्य में प्राप्त हुए हैं (दे० ब्रह्मगिरि; मासकी)। मैसूर नगर इस प्रांत की पुरानी राजधानी है। नगर के पास चौमुंडी की पहाड़ी पर चौमुंडेश्वरी देवी का मंदिर उसी स्थान पर है जहां देवी ने महिषासुर का वध किया था। 12वीं शती में होयसल-नरेशों के समय मैसूर राज्य में वास्तुकला उन्नति के शिखर पर पहुंच गई थी जिसका उदाहरण बेलूर का प्रसिद्ध मंदिर है। मैसूर का प्राचीन नाम महीशूर भी कहा जाता है। महाभारत में संभवतः मैसूर के जनपद का नाम माहिष या माहिषक है। (दे० माहिष)

मैहर=**महीधर**

मोटामचिलिया (ज़िला हलार, सौराष्ट्र, गुजरात)

इस स्थान पर उत्खनन से अनेक प्रागैतिहासिक अवशेष प्रकाश में आए हैं। कुछ पुरातत्वविदों का मत है कि ये अवशेष अणुपाषाण तथा पुरापाषाण युगों की सभ्यता से संबंधित हैं जिसका मूल स्थान बेबिलोनिया में था।

मोडमेरा (ज़िला महसाना, गुजरात)

10वीं शती के मंदिर के भग्नावशेष यहां उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाए गए हैं। यह मंदिर पूर्वसोलंकीकालीन है।

मोढेरा (गुजरात)

यह प्रसिद्ध जैन तीर्थ वर्तमान मुढेरा है। इसका उल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार है—'मोढेरे दधिप्रद कर्करपुरे ग्रामादि चैत्यालये'—(दे० मुढेरा)

मोतीतालाब (मैसूर)

मैसूर से मेलूकोटे जानेवाले मार्ग पर दोनों नगरों के बीच यह नीले जल

से भरी झील स्थित है जिसका बांध नौसौ वर्ष प्राचीन माना जाता है। झील के निकट ही फ्रेंच रॉक्स नामक स्थान है जहां हैदरअली और टीपू के सहायक फ्रांसीसियों ने अपनी सेना का मुख्य शिविर बनाया था।

मोदागिरि=मुंगेर

मोदाचल=मुंगेर

मोदापुर

'मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम्, कुलूतानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञ: समानयत्'—महा० सभा० 27,11। मोदापुर को अर्जुन ने अपनी उत्तर दिशा की दिग्विजय-यात्रा में विजित किया था। इसकी स्थिति कुलूत या कुलू की घाटी के अन्तर्गत जान पड़ती है।

मोदी (म० प्र०)

मालवा के क्षेत्र में स्थित है। यहां पूर्व मध्यकालीन इमारतों के खंडहर स्थित हैं।

मोमिनाबाद (महाराष्ट्र)

यहां प्राचीन जैन गुहा-मंदिर हैं जो अब अच्छी अवस्था में नहीं हैं (दे० आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑव वेस्टर्न इंडिया जिल्द 3, पृ० 48-52)। इनका समय पूर्व मध्यकाल है।

(2) वृंदावन (उ० प्र०) का औरंगजेब द्वारा दिया गया नाम जो कभी प्रचलित न हो सका।

मोरंग

इस देश का हिंदी के प्राचीन साहित्य तथा लोकगीतों में कई स्थानों पर उल्लेख है। यह नेपाल की तराई के पूर्व में, कूचबिहार के पश्चिम में और पूर्णिया (बिहार) के उत्तर में स्थित प्रदेश का नाम था। भूषण कवि ने शिवाबावनी, 42 में इसका उल्लेख किया है—'मोरंग कुमायूं आदि बांधव पलाऊं सबै कहां लौं गनाऊं जेते भूपति के गोत हैं।' शिवराजभूषण 250 में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'मोरंग जाहु कि जाहु कुमायूं सिरीनगरै कि कवित्त बनाए'। भूषण ने इन दोनों स्थानों पर मोरंग का कुमायूं (नैनीताल-अल्मोड़ा का क्षेत्र) के साथ वर्णन किया है।

मोर (बुंदेलखंड)

बुंदेलानरेश छत्रसाल का जन्म इस स्थान पर 1648 ई० में हुआ था। यह कटेरा नामक ग्राम से चार पांच मील दूर है। छत्रसाल के पिता चंपतराय इस समय औरंगजेब के साथ युद्ध कर रहे थे और उन्होंने मोर पहाड़ी के वनों में

शरण ली थी।

मोरध्वज (तहसील नजीबाबाद, ज़िला बिजनौर)

यहां एक प्राचीन दुर्ग के खंडहर हैं जो संभवत: पहले बौद्ध स्तूप था। स्थानीय किंवदंती में इस स्थान को राजा मयूरध्वज की कथा से संबंधित बताया जाता है।

मोरना (ज़िला मुज़फ्फरनगर, उत्तर प्रदेश)

मुज़फ्फरनगर-बिजनौर मार्ग पर स्थित प्राचीन ग्राम है। शुक्करताल (जहां परीक्षित ने शुकदेव से भागवत की कथा सुनी थी) यहां से पास ही है। स्थानीय किंवदंती के अनुसार मोरना वह स्थल है जहां पर परीक्षित को डसने के लिए जाते समय तक्षक नाग की धन्वंतरि से भेंट हुई थी और तक्षक ने धन का लोभ देकर वैद्यराज को परीक्षित का उपचार करने से रोक दिया था। इस स्थान से धन्वंतरि को मोड़ दिए जाने पर ही इस ग्राम का नाम 'मोरना' पड़ गया।

मोरवी (काठियावाड़, गुजरात)

इस नगर का प्राचीन पौराणिक नाम मयूरध्वजपुरी कहा जाता है। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार मूलराज सोलंकी नामक सौराष्ट्र नरेश ने मोरवी में एक सहस्र वेदपाठी ब्राह्मणों को उत्तर भारत से लाकर बसाया था। मूलराज की मृत्यु 997 ई० में हुई थी। मोरवी नगर मच्छी नदी के तट पर बसा हुआ है। यहां का विशाल मणिमंदिर एक परकोटे के भीतर स्थित है। यह स्थापत्य का सुंदर उदाहरण है।

मोरहनापथरी—(ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

लहोरियादह के निकट मोरहनापथरी नामक पहाड़ी में प्रागैतिहासिक गुफाएं बनी हैं जो आदिकालीन मानवों के द्वारा की हुई चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध हैं। (दे० लहोरियादह)

मोरा (ज़िला मथुरा, उत्तर प्रदेश)

इस ग्राम से महाक्षत्रप शोडास (80-57 ई० पू०) के समय का एक शिला-पट्ट लेख प्राप्त हुआ था जो मथुरा के संग्रहालय में है। इससे ज्ञात होता है कि इस ग्राम में तोषा नामक किसी स्त्री ने एक मंदिर बनवाकर पंचवीरों की मूर्तियां स्थापित की थीं। डा० ल्यूडर्स के मत में इस लेख में जिन पंचवीरों का उल्लेख है वे कृष्ण, बलराम आदि यदुवंशीय योद्धा थे। लेख उच्चकोटि की संस्कृत में है और छंद भुजंगप्रयात है। इसी ग्राम से एक स्त्री की मूर्ति भी प्राप्त हुई है जो ल्यूडर्स के मत में तोषा की है। यहीं से तीन महावीरों

की मूर्तियां मिली थीं जो अब मथुरा-संग्रहालय में सुरक्षित हैं । एक अभिलिखित ईंट भी मोरा से प्राप्त हुइ थी (यह मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है) जिससे ज्ञात होता है कि जिस भवन में यह ईंट लगी थी उसे बृहस्पतिमित्र की पुत्री राजभार्या यशोमती ने बनवाया था । यह बृहस्पतिमित्र वही शुंग-वंशीय नरेश जान पड़ता है जिसके सिक्के कौशांबी तथा अहिच्छत्र में प्राप्त हुए थे । यशोमती का विवाह मथुरा के किसी राजा से हुआ होगा ।

मोरा से क्षत्रप रंजुबल का भी अभिलेख प्राप्त हुआ है । इसमें इसे महाक्षत्रप कहा गया है । इसका समय प्रथम शती ई० है । शकक्षत्रपों के इन अभिलेखों से सिद्ध होता है कि मथुरा पर प्रथम-द्वितीय शती ई० में शकों का प्रभुत्व था ।

मोरिय

बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि मोरिय नामक छोटा सा गणराज्य 500 ई० पू० के लगभग स्थित था । चद्रगुप्त मौर्य इसी राज्य से संबंध रखता था । इस राज्य का मुख्य स्थान पिप्पलिवाहन था । कुछ विद्वानों ने पिप्पलिवाहन का अभिज्ञान जिला बस्ती में स्थित पिपरिया या पिपरावा नामक स्थान से किया है ।

मोहंजदारो (ज़िला लरकाना, सिंध, पाकिस्तान)

इस स्थान पर 1930 में एक अति प्राचीन महान् सभ्यता के अवशेष प्रकाश में लाए गए थे जिसे सिंधु घाटी की सभ्यता का नाम दिया गया है । सर जॉन मार्शल ने इस सभ्यता को ईसा से प्राय: 3-4 सहस्र वर्ष प्राचीन माना है । उनके मत में यह सभ्यता पूर्व-वैदिककालीन है । मोहंजदारों में विस्तृत उत्खनन किया जा चुका है । इससे ज्ञात हुआ है कि इस सभ्यता के निर्माता कांस्ययुगीन संस्कृति से संबद्ध थे । यहां के अवशेषों में लोहे के प्रयोग का कोई प्रमाण नहीं मिला है । मोहंजदारों के निवासियों के घर लंबे चौड़े तथा कई मंजिलों के होते थे जैसा कि उनकी असाधारण रूप से स्थूल भित्तियों से सूचित होता है । सड़कें चौड़ी थीं और नगर में जल-प्रवाह या नालियों का बहुत ही सुचारु प्रबंध था । यहां के निवासी लोहे को छोड़कर प्राय: सभी धातुओं का उपयोग करते थे और विविध भांति के आभूषण धारण करते थे । इनकी मुद्राएँ अभिलिखित हैं किंतु उनको अभी तक ठीक-ठीक पढ़ा नहीं जा सका है । इन पर वृषभ तथा देवी-देवताओं, वृक्षों आदि की प्रतिमाएँ हैं जिससे इन लोगों के धार्मिक विचारों या विश्वासों के बारे में सूचना मिलती है । कहा जाता है कि मातृदेवी, शिव आदि देवताओं (विष्णु तथा उनक रूपों को

छोड़कर) की पूजा इन लोगों में प्रचलित थी। ये पशु, वृक्ष, जल आदि की उपासना करते थे। गेहूं, जौ, चावल इत्यादि धान्यों तथा कपास की खेती का भी इन्हें ज्ञान था। ये घोड़े को छोड़कर (जो आर्यों के साथ भारत आया) प्राय: सभी अन्य पशुओं का उपयोग करते थे।

मार्शल ने मोहूंजदारो की मुद्राओं तथा यहाँ से मिलने वाले अनेक अवशेषों को मेसोपोटेमिया की सुमेरु-सभ्यता के तिथि-सहित अवशेषों के अनुरूप देखकर उनकी तिथि का निर्धारण किया है और दोनों सभ्यताओं को समकालीन माना है। संभवत: इन दोनों में व्यापारिक संबंध भी थे और सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी स्थापित था। मोहूंजदारो की सभ्यता को कुछ विद्वानों ने द्रविड़ सभ्यता माना है और कुछ विद्वानों ने इसे आर्यों की ही एक शाखा द्वारा निर्मित सभ्यता बताया है। यह विषय पर्याप्त विवादास्पद है। पिछले वर्षों में सिंधु घाटी की सभ्यता का विस्तार हरप्पा (जिला मोंटगोमरी, पंजाब, पाकिस्तान) के अतिरिक्त रोपड़ (पंजाब, भारत) रंगपुर (गुजरात), कालीबंगन (बीकानेर) तक पाया गया है और इसके महत्वपूर्ण अंगों पर नया प्रकाश पड़ा है।

मोहन

'वत्सभूमिं विनिर्जित्य केवलां मृतिकावतीम्, मोहनं पत्तनं चैव त्रिपुरीं कोसलां तथा' महा० वन० 254, 10। मोहन को कर्ण ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में जीता था। प्रसंग से यह नगर त्रिपुरी (जिला जबलपुर, मध्यप्रदेश) के निकट स्थित जान पड़ता है।

मोदहा (ज़िला हमीरपुर, बुंदेलखंड, उ० प्र०)

बुंदेला नरेश छत्रसाल और औरंगजेब के सेनापति अब्दुल समद की भारी सेना में घनघोर युद्ध इस स्थान के निकट हुआ था। इसमें मुगलसेना की बुरी तरह पराजय हुई। छत्रसाल की ओर से बलदिवान, कुंवरसेन, धंधेरा और अंगदराय सैन्य-संचालक थे। अंगदराय ने वीरता से मुगलों का तोपखाना छीन लिया। छत्रसाल इस युद्ध में घायल तो हुए किंतु उन्होंने अंत में बड़ी बहादुरी से मुगलों के पैर उखाड़ दिए। महाकवि भूषण ने छत्रसाल-दशक में इसे बेतवा का युद्ध कहा है तथा इसका जीवत चित्र खींचा है। (मौदहा बेतवा के निकट है)—'अत्र गहि छत्रसाल खिज्यो खेत बेतवे के, उतते पठानन हूं कीन्हीं झुकि झपटैं। हिम्मत बड़ी के कबड़ी के खिलवारनलौं दंत शै हजारन हजार बार चपटैं। भूषन भनत काली हुलसी अशीशन को शीशन को ईस की जमाति जोर जपटैं, समदलौं समद की सेना त्यों बुंदेलन की, सेलें समसेरें भईं बाड़व की लपटैं। (समद=समुद्र और अब्दुलसमद)

मौदाकि

विष्णुपुराण 2, 4, 60 के अनुसार शाकद्वीप का एक भाग या वर्ष [illegible] द्वीप के राजा मौदाकि के नाम पर ही प्रसिद्ध है।

मौर्य (बर्मा)

इरावदी (इरावती) नदी के तट पर स्थित म्वीयन (Mweyin) का प्राचीन भारतीय नाम जिसका उल्लेख ब्रह्मदेश के प्राचीन अभिलेखों में मिलता है। टॉलमी (Ptolemy) ने इसी को मारयूरा कहा है और इस प्रकार इस नाम की प्रचीनता कम-से-कम द्वितीय शती ई० तक तो पहुँच ही जाती है। मौर्य का नामकरण भारतीय औपनिवेशिकों ने किया था।

मौलाअली (आं० प्र०)

हैदराबाद से 6 मील दूर पहाड़ी पर स्थित एक विस्तीर्ण प्रागैतिहासिक समाधिस्थली है जहाँ लगभग 600 समाधियां हैं। इस स्थान पर पुरातत्त्व विभाग ने खुदाई करके मिट्टी के बर्तन, लोहे के औजार और मानव शरीर के पंजरों के अवशेष प्राप्त किये है। पहाड़ी के दक्षिण में गोलकुंडा के सुलतान इब्राहीम कुतुबशाह चतुर्थ की बनवाई हुई मसजिद है। तुजुके-कुतुबशाही से विदित होता है कि याकूत नामक एक व्यक्ति ने यहां एक दरगाह भी बनवाई थी। गोलकुंडा के अंतिम सुलतान तानाशाह के मंत्री सैयद मुजफ्फर की पुत्री जो लवण-रहित भोजन करने के कारण फीकी बी कहलाती थी, इस दरगाह की संरक्षिका थी। इसकी समाधि दरगाह के उत्तरी प्रांगण में बनी है।

मौलिनी=काशी

यकृल्लोम

महाभारत के अनुसार यह देश शूरसेन (मथुरा) और मत्स्य (अलवर-जयपुर) के निकट स्थित था। विराटनगर (मत्स्य) जाते समय पांडव, यमुना के दक्षिण तट पर चलते हुए दशार्ण (मालवा) से उत्तर और पंचाल से दक्षिण एव यकृल्लोम और शूरसेन-प्रदेश के बीच से होते हुए वहां पहुँचे थे—'ततस्ते दक्षिणां तीरमन्वगच्छन् पदातयः। उत्तरेण दशार्णांस्ते पंचालान दक्षिणेन च। अंतरेण यकृल्लोमान् शूरसेनांश्च पांडवाः, लुब्धा ब्रुवाणामत्स्यस्य विषय प्राविशन् वनात् 5, 2-3-4। यकृल्लोम मथुरा और जयपुर के बीच के भूभाग में स्थित रहा होगा। इस नाम का शाब्दिक अर्थ (यकृत्-लोम) बड़ा विचित्र सा जान पड़ता है। संभवतः यह शब्द किसी संस्कृतेतर भाषा के नाम का संस्कृत रूप है।

यजुर्होती=जुझौती (बुंदेलखंड)

यज्ञपुर=जाजपुर=जाजनगर (उड़ीसा)

वैतरणी नदी के तट पर स्थित है। कहा जाता है इस की स्थापना उड़ीसा के राजा ययतिकेसरी ने छटी शती ई० में की थी। यह प्राचीन पौराणिक स्थान है जहां किवदंती के अनुसार पृथ्वी यज्ञ-वेदी के रूप में पूजित हुई थी। बैखानस का स्वयंभू नामक आश्रम इसी स्थान पर था। पीछे यज्ञपुर को विष्णु का गदाक्षेत्र भी माना गया। इस स्थान का उल्लेख महाभारत वनपर्व में पांडवों की तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में भी है। इसको महाभारत में विरजा-क्षेत्र भी कहा गया है (विरजा=रजोगुणहीन देवी)। विरजा ययाति-केसरी की इष्टदेवी थी। 1421 ई० में मालवा के सुलतान होशंगशाह ने जाजनगर पर आक्रमण किया था। जाजपुर में वैतरणी के तट पर यज्ञवेदी के चिह्न आज भी देखे जा सकते हैं।

यमुना

गंगा की प्रमुख सहायक नदी जो हिमालय-पर्वतमाला में स्थित यमुनोत्री (कुरसोली से 8 मील) से निकल कर प्रयाग (उत्तर प्रदेश) में गंगा में मिल जाती है। यमुना का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद 10-75, 5 (नदी-सूक्त) में है—'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया असिक्नया मरुद्वृधे वितस्त-यार्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया'—इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में अन्य दो स्थानों पर पर भी यमुना का नाम है तथा यह ऐतरेय ब्राह्मण 8, 4, 8 में भी उल्लिखित है। वाल्मीकि-रामायण में यमुना का कई स्थानों पर वर्णन है—'वेगिनी च कुलिगा-ख्यां ह्लादिनीं पर्वतावृताम्, यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा' अयो० 11, 6; 'ततः प्लवेनांशुमतीं शीघ्रगामूर्मिमालिनीम्, तीरजैर्बहुभिर्वृक्षैः सतेरु-र्यमुनां नदीम्'—अयो० 55, 22; । 'नगरं यमुनाजुष्टं तथा जनपदाञ्शुभान् यो हि वंशं समुत्पाद्य पार्थिवस्य निवेशने,' उत्तर० 62, 18 आदि। महाभारत में यमुना-तटवर्ती अनेक तीर्थों का वर्णन है, यथा 'यमुना-प्रभवं गत्वा समुपस्पृश्य यामुनम् अश्वमेधफलं लब्धवा स्वर्गलोके महीयते' वन 84, 44। कौरव-पांडवों के पितामाह भीष्म के पिता शांतनु ने यमुनातटवर्ती ग्राम में रहने वाले धीवर की पुत्री सत्यवती से विवाह किया था। यहां वे शिकार खेलते हुए आ पहुंचे थे, 'स कदाचिद् वनं यातो यमुनामभितो नदीम्' आदि 100 45। कृष्णद्वैपायन व्यास का जन्म सत्यवती के गर्भ से यमुना के द्वीप पर हुआ था—'आजगाम तरीं धीमांस्तरिष्यन् यमुनां नदीम्'; 'ततो मामाह स मुनिर्गर्भमुत्सृज्य मामकम् द्वीपेऽस्या एव सरितः कन्यैवभविष्यसि' आदि० 104, 8, 13। इस घटना

का उल्लेख अश्वघोष ने बुद्धचरित 4, 76 में भी किया है—'काली चैव पुराकन्यां जल प्रभवसंभवाम्, जगाम यमुनातीरे जातराग: पराशर:'। कालिदास ने मथुरा के निकट कालिंदकन्या या यमुना का सुंदर वर्णन किया है—'यस्यावरोधस्तनचंदनानां प्रक्षालनाद्वारिविहार काले, कालिंदकन्या मथुरां गतापि गंगोर्मिसंसक्त जलेवभाति' रघु० 6, 48, तथा प्रयाग में गंगा यमुना-संगम का उल्लेख भी बहुत मनोहर है—'पश्यानवद्यांगि विभातिगंगा, भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगै: रघु० 13-57 आदि। श्रीमद्भागवत, दशम स्कंध में श्रीकृष्ण के जन्म तथा उन की विविधलीलाओं के संबंध में तो यमुना का अनेक बार उल्लेख है जिसमें से सर्वप्रथम यहां उद्धृत किया जाता है—'मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा गंभीरतोयौघजवोर्मिफेनिला भयानकावर्तशताकुला नदी मार्ग ददौ सिंधुरिव श्रिय: पते: 10, 3, 50 (यमानुजा=यमुना)। इसी प्रसंग के वर्णन में विष्णुपुराण का निम्न उल्लेख कितना सुंदर है—'यमुनां चातिगंभीरांनानावर्तशताकुलाम्, वसुदेवो वहन्विष्णुं जानुमात्रवहां ययौ' विष्णु० 5, 3, 18। अध्यात्म रामायण, अयोध्या० 6, 42 में श्रीराम-लक्ष्मण-सीता के यमुना पार करने का उल्लेख इस प्रकार है—'प्रातरुत्थाय यमुनामुर्त्तीय मुनिदारकै; कृताप्लवेन मुनिना दृष्टमार्गेण राघव:'। महाभारत वन०, 324, 25-26 में अश्व नदी का चर्मण्वती में, चर्मण्वती का यमुना में और यमुना का गंगा में मिलने का उल्लेख है। यमुना के रवितनया, सूर्यकन्या, कलिंदकन्या आदि नाम साहित्य में मिलते हैं। इसे सूर्य की पुत्री तथा यम की वहिन माना गया है। कलिंदपर्वत से निस्तृत होने से यह कालिंदी या कलिंदकन्या कहलाती है।

(2) ब्रह्मपुत्र का एक नाम :—(हिस्टारिकल ज्योग्रेफी ऑव ऐंशेट इंडिया पृ० 34)

यमुनाचल (महाराष्ट्र)

शोलापुर से 24 मील दूर एक पहाड़ी जिस पर महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी की अधिष्ठात्री देवी तुलजा का प्राचीन मंदिर स्थित है।

यमुनाप्रभव=दे० यमुना

महाभारत 84, 44 में उल्लिखित संभवत: यमुना का उद्गम-स्थान है। इसे यमुनोत्री भी कहा जाता है।

यमुनोत्री

यमुना नदी का उद्गम-स्थान जो गढ़वाल के पर्वतों में स्थित है। (दे० यमुनाप्रभव)

ययातिनगर=ययातिनगरी (उड़ीसा)

महानदी के तट पर स्थित है। यह सोनपुर के निकट है। प्राचीनकाल में यह नगरी समृद्धिशाली थी जैसा कि धोई कवि के पवनदूत से ज्ञात होता है—'लीलां नेतुं पवनपदवीमुत्कलानां रतेश्चेत् गच्छे: ख्यातां जगति नगरीमाख्ययातां ययाते:'। यह उड़ीसा नरेश ययातिकेसरी के नाम पर प्रसिद्ध थी। डा० फ्लीट के अनुसार कटक ही प्राचीन ययातिनगरी है (एपिग्राफिका इंडिका जिल्द 3, पृ० 223)। कुछ समय पूर्व उपर्युक्त स्थान (महानदी के तट पर, सोनपुर के निकट) से उद्योतकेसरी के तीन प्रस्तर लेख और एक ताम्रपट्ट लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें उसकी अनेक पार्श्ववर्ती राजाओं पर विजय प्राप्त करने का वृतांत उत्कीर्ण है।

ययातिपुर (ज़िला कानपुर, उ० प्र०)=जाजमऊ

(1) कानपुर से 3 मील दूर है। राजा ययाति के किले के अवशेष जाजमऊ की प्राचीनता के द्योतक हैं। किंतु श्री नं० ला० डे के अनुसार यह किला राजा जीजत का बनवाया हुआ है। यह चंदेलों का पूर्वज था। कानपुर की प्रसिद्धि के पूर्व जाजमऊ इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण नगर था।

(2)=ययातिनगर

यल्लेश्वरम् (ज़िला नलगोंड़ा, ना० प्र०)

इस स्थान से बौद्ध तथा मध्यकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। पुरातत्व विभाग द्वारा उत्खनन किए जाने पर यहां से बहुत कुछ मूल्यवान ऐतिहासिक सामग्री मिलने की संभावना है। यह स्थान शायद पानीगिरि तथा गजुलीबंडा का समकालीन था :

यवद्वीप=जावा द्वीप

गुजरात के राजकुमार विजय ने सर्वप्रथम इस देश में भारतीय उपनिवेश की संस्थापना की थी (603 ई०)। इसका ब्रह्मांडपुराण पूर्व० 51 में उल्लेख है।

यवननगर दे० जूनागढ़

यवनपुर

(1)=जौनपुर

(2) 'अंतार्खी चैव रोमां च यवनानांपुरं तथा, दूतैरेव वशे चक्रे करं चैनानदापयत्'—महा० सभा० 31,72। सहदेव ने यवनों (ग्रीक लोगों) के यवनपुर नामक नगर को अपनी दिग्विजय यात्रा में विजित करके वहां से कर ग्रहण किया था। इसका अभिज्ञान मिस्र के प्राचीन नगर एलेग्जेंड्रिया से किया गया है (अंतार्खी=ऐंटिओकस, रोमा=रोम)। इस श्लोक के

पाठांतर के लिए दे० अंताखी

यव्यावती

गोमल नदी की सहायक मझोव का प्राचीन नाम ।

यशोधरपुर=कबुंपुरी

यष्टिवन (जिला गया, बिहार)

गृध्रतीर्थ के निकट तपोवन से दो मील वर्तमान जेठियान । गौतम बुद्ध ने यहाँ कई चमत्कार दिखाए थे और बिंबिसार को दीक्षा भी इसी स्थान पर दी गई थी । (दे० ग्रियर्सन—नोट्स ऑन दि डिस्ट्रिक्ट ऑव गया)

यादगिरि (जिला गुलबर्गा मैसूर)

इस स्थान पर वारंगल के यादव-नरेशों का बनवाया एक किला है जिसका जीर्णोद्धार बहमनी सुलतान फ़िरोजशाह ने करवाया था ।

यादवगिरि=यादवाद्रि (मैसूर)

मैसूर से 30 मील दूर मेलूकोटे । यहीं तोन्नूर नामक ग्राम बसा हुआ है ।

यादवस्थली (काठियावाड़, गुजरात)

प्रभासपट्टन के निकट हिरण्या नदी के तट पर यह वह स्थान माना जाता है जहाँ द्वापर के अंत में श्रीकृष्ण के संबंधी यादव लोग परस्पर झगड़े के कारण लड़भिड़ कर नष्ट हो गए थे ।

यादवाद्रि=यादवगिरि

यामुनपर्वत

'वारणं वाटधानं च यामुनश्चैव पर्वतः, एष देश सुविस्तीर्णः प्रभूत धन-धान्यवान्' महा० उद्योग 19,31; 'यमुनाप्रभवं गत्वा समुस्पृश्य यामुनम् अश्वमेध-फलं लब्ध्वा स्वर्गलोके महीयते,' वन०84,44 । श्री वा० श० अग्रवाल ने इस पर्वत का अभिज्ञान हिमालय-पर्वतमाला में स्थित बंदरपूंछ नामक पर्वत (जिला गढ़वाल, उ० प्र०) में किया है । बंदरपूंछ का संबंध महाभारत के प्रसिद्ध आख्यान से है जिसमें भीम और हनुमान् की भेंट का वर्णन है । अनुशासन पर्व 68,3-4 में यामुनगिरि को गंगा-यमुना के मध्यभाग में स्थित बताया है तथा इस पहाड़ी की तलहटी के निकट पर्णशाला नामक ग्राम का उल्लेख है, —'मध्यदेशे महान् ग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह । गंगायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः । पर्णशालेतिविख्यातो रमणीयोनराधिप' ।

यारकंद (नदी) दे० सीता

यिंदु=दे० इंदु

युगंधर

पाठांतर युगंधर । 'युगंधरे दधिप्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले तद्वद् भूतलये

स्नात्वा सपुत्रावस्तुमर्हसि' महा० वन० 129,9। पाणिनि की अष्टाध्यायी 4,2,130 में भी इसका नामोल्लेख है। श्री बी० सी० लॉ के अनुसार दक्षिण पंजाब का जींद का प्रदेश ही युगंधर है (किंतु दे० जयंती)। युगंधर को उपर्युक्त उद्धरण में दूषित स्थान बताया गया है। श्री चि. वि. वैद्य इसे यमुना नदी के तट पर मानते हैं।

यूची देश दे० उत्तर ऋषिक

यूथीडिमिया

प्राचीन रोम के भूगोलशास्त्री टॉलमी ने भारत के यूथीडिमिया या यूथीमिडिया नामक भारतीय नगर का उल्लेख अपने भूगोल के ग्रंथ में किया है। इस नगर का नाम ग्रीक-नरेश यूथीडिमोस के नाम पर प्रसिद्ध था। इसका समय दूसरी शती ई० पू० माना जाता है। स्ट्रेबो नामक ग्रीक लेखक के अनुसार यूथीडिमोस के पुत्र डिमिट्रयस ने ग्रीक-राज्य की सीमा भारत तक विस्तृत की थी। यूथीडिमिया नगर का अभिज्ञान शाकल या वर्तमान स्यालकोट (पंजाव, पाकि०) से किया गया है। मिलिंदपन्हो के नायक यवनराज मिनेंडर (जो बाद में बौद्ध हो गया था) की राजधानी भी शाकल में थी। (दे० मैक्रिडल-ऐशेंटइंडिया एज़ डेसक्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर-पृ० 200)

येडुपैलू (ज़िला मेदक, आं० प्र०)

मंजीरा नदी की सात सहायक नदियों के संगम पर अवस्थित यह नगर प्रकृति की सौंदय-स्थली होने के साथ-साथ प्राचीन तीर्थ भी है। संगमस्थान पर धार्मिक मेला प्रतिवर्ष लगता है।

योगेश्वर दे० जोगेश्वर

योनकराष्ट्र

प्राचीन गंधार (युन्नान) के पूर्व और स्याम-देश के पश्चिम में स्थित एक प्राचीन भारतीय औपनिवेशिक राज्य। इसकी स्थिति उन्मार्गशील के दक्षिण में थी। योनकराष्ट्र का उल्लेख स्थानीय पाली इतिहास-ग्रंथों में है।

योनि (नदी)

विष्णु पुराण 24,28 के अनुसार शाल्मल-द्वीप की एक नदी 'योनिस्तोया वितृष्णा च चंद्रा मुक्ता विमोचनी, निवृतिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशांतिदाः'

यौधेयदेश

झेलम और सिंधु नदी के बीच का भाग जहां प्राचीन काल में योधेय-गण का राज्य था। कनिंघम के अनुसार यौधेय-देश सतलज के दोनों तटों पर विस्तृत

था। (आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट जिल्द 14) समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में भी यौधेयों का उल्लेख है।

रंगना (महाराष्ट्र)

11वीं शती के मध्य में महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी ने रंगना में स्थित किले पर अपना अधिकार कर लिया था। इससे पहले यह बीजापुर के सुलतान के अधीन था।

रंगपुर

(1) दे० पुंड्वर्धन

(2) (सौराष्ट्र, गुजरात) गोहिलवाड़ प्रांत में सुकभादर नदी के पश्चिम-समुद्र में गिरने के स्थान से कुछ ऊपर की ओर स्थित है। यहां 1935 तथा तथा 1947 में उत्खनन द्वारा सिंध-घाटी सभ्यता के अवशेष प्रकाश में लाए गए थे। पहली बार की खुदाई के अवशेषों से विद्वानों ने यह समझा था कि ये हरप्पा-सभ्यता के दक्षिणतम प्रसार के चिन्ह हैं जिनका समय लगभग 2000 ई० पू० होना चाहिए। 1944 के जनवरी मास में यहाँ पुरातत्त्व विभाग ने पुनः उत्खनन किया जिससे अनेक अवशेष प्राप्त हुए। इनमें प्रमुख ये हैं—अंलकृत व चिकने मृद्भांड, जिनपर हरिण तथा अन्य पशुओं के चित्र हैं, सोने तथा कीमती पत्थरों की बनी हुई गुरियां तथा धूप में सुखाई हुई ईटें। यहां से, भूमि की सतह के नीचे नालियों तथा कमरों के चिन्ह भी मिले हैं। इसी खुदाई से रंगपुर में अति प्राचीन अणुपाषाण-युगीन सभ्यता के भी खंडहर मिले हैं (प्रायः 2000-1000 ई० पू०)। इस सभ्यता का मूल स्थान बेबिलोनिया बताया जाता है। रंगपुरी के निकटवर्ती अन्य कई स्थानों से सिंधु-घाटी-सभ्यता के अवशेष प्रकाश में लाए गए हैं। (दे० नरमान, भंगोल, मधुपुर, वेनीवडार तथा मोटामचिलिया)

(3) (जिला महबूबनगर आं० प्र०) प्राचीन वारंगल-नरेशों के समय के मंदिरों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

रंगमती

सौराष्ट्र (गुजरात) के उत्तर-पश्चिमी प्रांत हालार की एक नदी। इसकी एक शाखा को नागमती भी कहते हैं।

रंजनी (जिला भीड़, महाराष्ट्र)

भीड़ से 8 मील दूर दक्षिण की ओर स्थित है। अकबर के समकालीन इतिहाक-लेखक फ़रिश्ता ने लिखा है कि 1326 ई० में दिल्ली का सुलतान मुहम्मद तुगलक भीड़ के पास से होकर गुज़रा था जहाँ उसने अपना एक

स्मारक भी बनवाया था। स्थानीय किंवदंती में इस स्थान को रंजनी-ग्राम के निकट कहा जाता है।

रंतिपुर

रंतिपुर को चंबल की उपशाखा गोमती पर स्थित महाराज रंतिदेव का निवासस्थान माना जाता है। इसका वर्तमान नाम रिंतिपुर है (नं० ला० डे०)

रक्तमृतिका (ज़िला मुर्शिदाबाद, बंगाल)

वर्तमान रांगामाटी। रक्तमृत्तिका इस जिले का अति प्राचीन स्थान है। यहां के निवासी महानाविक बुद्धगुप्त का एक अभिलेख जो चौथी शती ई० का है, मलाया प्रायद्वीप के वेलेजली जिले में प्राप्त हुआ था।

रक्षाभुवन (ज़िला भीड़, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर 1763 ई० में रघुनाथराव और माधवराव ने नवाब निजाम अली को हराकर, पहले पूना में नवाब ने जो अग्निकांड किया था, उसका बदला चुकाया था। प्रधान मंत्री विट्ठल सुंदर और उसका भतीजा विनायकदास इस युद्ध में मारे गए थे।

रजतपीठपुर

उदीपी का प्राचीन नाम है।

रजाग्रोना (बिहार)

इस स्थान से पाटलिपुत्र की मूर्तिकला शैली के सुंदरतम उदाहरण प्राप्त हुए हैं जिसमें खंडित स्तंभ प्रमुख हैं। इनके निम्न भाग नितांत सादे तथा वर्गाकार हैं। मध्य में दोनों ओर दो बाहर निकले हुए प्रक्षेप हैं। निचले प्रक्षेप के ऊपर एक पट्टक है जो उभरे हुए चौखटे के अन्दर अंकित है। इस पर कैलास पर भगीरथ की शिवपूजा, गंगावतरण, अर्जुन का शिव से वरदान प्राप्त करना आदि दृश्यों का सुंदर अंकन है। प्रक्षेप से तनिक ऊपर अर्धवर्तुलों में कीर्तिमुख तथा सुपर्ण जैसे परंपरागत विषयों को उत्कीर्ण किया गया है (दे० एज ऑव दि इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० 192)।

रणथंभौर (जिला जयपुर, राजस्थान)

सवाई माधोसिंह नामक कस्बे से 6 मील दूर घने जंगलों के बीच राजस्थान का यह इतिहासप्रसिद्ध दुर्ग स्थित है। रणथंभौर का दुर्ग सीधी ऊँची खड़ी पहाड़ी पर लगभग 9 मील के घेरे में विस्तृत है। किले के तीन ओर प्राकृतिक खाई बनी है जिसमें जल बहता रहता है। किला सुदृढ़ और दुर्गम परकोटे से घिरा हुआ है। दुर्ग के दक्षिण की ओर 3 कोस पर एक पहाड़ी है जहां मामा-भानजे की कब्रें हैं। संभवतः इस पहाड़ी पर से यवन सैनिकों ने इस किले को जीतने का

प्रयत्न किया होगा और उसी में यह सरदार मारे गए होंगे। रणथंभौर गढ़ के निर्माता का नाम अनिश्चित है। किंतु इतिहास में सर्वप्रथम इस पर चौहानों के अधिकार का उल्लेख मिलता है। संभव है कि राजस्थान के अनेक प्राचीन दुर्गों की भांति इसे भी चौहानों ने ही बनवाया हो। जनश्रुति है कि प्रारंभ में इस दुर्ग के स्थान के निकट पद्मला नामक एक सरोवर था। यह इसी नाम से आज भी किले के अंदर स्थित है। इसके तट पर पद्मऋषि का आश्रम था। इन्हीं की प्रेरणा से जयंत और रणवीर नामक दो राजकुमारों ने जो अचानक ही शिकार खेलते हुए वहाँ पहुँच गए थे इस किले को बनवाया और इसका नाम रणस्तंभर रखा। किले की स्थापना पर यहाँ गणेशजी की प्रतिष्ठा की गई थी जिसका आह्वान राज्य भर में विवाहों के अवसर पर किया जाता है।

किले का प्रारंभिक इतिहास अनिश्चित है। राजपूत-काल के पश्चात् से 1563 ई० तक यहाँ मुसलमानो का अधिकार था। इससे पहले बीच में कुछ समय तक मेवाड़ नरेशों के हाथ में भी यह दुर्ग रहा। इनमें राणा हम्मीर प्रमुख हैं। इनके साथ दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी का भयानक युद्ध हुआ जिसके फलस्वरूप रणथंभौर की वीर नारियां पातिव्रत धर्म की खातिर चिता में जलकर भस्म हो गई और राणा हम्मीर युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए (1301 ई०)। इस युद्ध का वृतांत जयचंद्र के हम्मीर महाकाव्य में है। 1563 ई० में बूंदी के एक सरदार सामंत सिंह हाड़ा ने बेदला और कोठारिया के चौहानों की सहायता से मुसलमानों से यह किला छीन लिया और वह बूंदी नरेश सुजानसिंह हाड़ा के अधिकार में आ गया। 4 वर्ष बाद अकबर ने चित्तौड़ की चढ़ाई के पश्चात् मानसिंह को साथ लेकर रणथभौर पर चढ़ाई की। अकबर ने परकोटे की दीवारों को ध्वस्त करने मे कोई कसर न छोड़ी किंतु पहाड़ियों के प्राकृतिक परकोटों और वीर हाड़ाओं के दुर्दमनीय शौर्य के आगे उसकी एक न चली। किंतु राजा मानसिंह ने छलपूर्वक राव सुर्जन को अकबर से संधि करने पर विवश किया। सुर्जन ने लोभवश किला अकबर को दे दिया किंतु सामंत सिंह ने फिर भी अकबर के दांत खट्टे करके मरने के पश्चात् ही किला छोड़ा। 1754 ई० तक रणथंभौर पर मुगलों का अधिकार रहा। इस वर्ष इसे मराठों ने घेर लिया किंतु दुर्गाध्यक्ष ने जयपुर के महाराज सवाई माधोसिंह की सहायता से मराठों के आक्रमण को विफल कर दिया और अपने वचनानुसार दुर्गाध्यक्ष ने किले को जयपुर-नरेश को सौंप दिया। तब से आधुनिक समय तक यह किला जयपुर रियासत के अधिकार में रहा।

रतनपुर=रत्नपुर

(1) (ज़िला बिलासपुर, म० प्र०) बिलासपुर से 10 मील दूर, छत्तीसगढ़ के हैहय नरेशों की प्राचीन राजधानी है। 11 वीं शती ई० के प्रारंभ काल से ही प्राचीन चेदि-राज्य के दो भाग हो गए थे—पश्चिमी चेदि, जिसकी राजधानी त्रिपुरी में थी और पूर्वी चेदि या महाकोसल जिसकी राजधानी रत्नपुर थी। कहा जाता है कि रत्नपुर में पौराणिक राजा मयूरध्वज की राजधानी थी। छत्तीसगढ़ के प्राचीन राजाओं का बनवाया एक दुर्ग भी यहां स्थित है। रत्नपुर में अनेक प्राचीन मंदिरों के अवशेष हैं। मंदिरों की संख्या के कारण स्थानीय रूप से इस स्थान को छोटी काशी भी कहा जाता है। यह स्थान दुल्हरा नदी के तट पर है।

(2)=रत्नपुरी (जिला फैजाबाद, उ०प्र०)। सोहावल स्टेशन से 1 मील पर स्थित इस ग्राम को जैन तीर्थंकर धर्मनाथ का स्थान माना जाता है। (दे० रत्नवाहपुर)

रत्नगिरि

राजगृह के निकट सप्तपर्वतों में से एक का वर्तमान नाम है। (दे० राजगृह)

रत्नवाहपुर

कोसल देश का एक नगर जो घार्घरा (सरयू) के तट पर स्थित था। विविधतीर्थ कल्प (जैन ग्रंथ) में कहा गया है कि इस नगर में इक्ष्वाकुवंशी राजा भानु के पुत्र धर्मनाथ ने जन्म लिया था। धर्मनाथ के सम्मान में रत्नवाहनपुर में एक नाग राजकुमार ने चैत्य बनवाया था और इसी जैन साधु की मूर्ति इस चैत्य में नागों की मूर्तियों के बीच में दिखाई पड़ती थी।

रत्नशैल

विष्णुपुराण 2,4,50 के अनुसार क्रौंचद्वीप का एक पर्वत—'क्रौंचश्चवामनश्चैव तृतीयश्चांधकारकः, चतुर्थो रत्नशैलस्य स्वाहिनी हय सन्निभः'

रत्नाकर

(1) भारत-लंका के बीच का समुद्र जो प्राचीन काल से ही सुंदर रत्नों विशेषतः मोतियों के लिए प्रसिद्ध है। रघुवंश, 13,1 में कालिदास ने इसी समुद्र के लिए रत्नाकर शब्द का प्रयोग किया है—'रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच'। रघु० 13,17 में इस समुद्र के तट पर सीपियों से भिन्न हुए मोतियों (पर्यस्तमुक्तापटल) का वर्णन है।

(2) ज़िला हुगली (प० बंगाल) की काना नदी जिसके तट पर खानाकुल कृष्णनगर बसा है।

रत्नावती (गुजरात)

पश्चिमी रेलवे के रांतेज स्टेशन के निकट ही यह प्राचीन नगरी बसी हुई थी। यहाँ जैनों के कई प्राचीन मंदिर थे जिनके खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं। रांतेज संभवतः रत्नावती का ही अपभ्रंश है।

रथपातस्थली

तामिल महाकवि कंब के जन्मस्थान तेरलुंदुर का प्राचीन नाम।

रथावर्त

जैनसाहित्य के सर्वप्राचीन आगम ग्रंथ एकादश-अंगादि में उल्लिखित तीर्थ जिसका अब पता नहीं है।

रधिया दे० लौरिया अरराज

रनसिंगनल्लूर=इरेनियल

रमठ=रामठ=रमण

'सकृद्ग्रहाः कुलात्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह, तथैव रमठाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः'—महा० भीष्म 9,16 ; 'द्वारपालं च तरसा वशे चक्रे महाद्युतिः रामठान् हारहूणांश्च प्रतीच्याश्चैव ये नृपाः' महा० सभा० 32,12। द्वितीय उद्धरण में उल्लिखित द्वारपाल का अभिज्ञान खैबर दर्रे से और हारहूण का दक्षिणी-पश्चिमी अफगानिस्तान से किया गया है। इसी आधार पर रमठ या रामठ को ग़जनी का प्रदेश माना गया है। रमठ का पाठांतर रमण है। संस्कृत कवि राजशेखर ने कन्नोजाधिप महीपाल (9 वीं शती ई०) द्वारा विजित प्रदेशों में रमठ की गणना की है। इनमें मुरल, मेखल, कलिंग, केरल, कुलूत और कंतल भी हैं।

रमण

(1)=रमठ

(2) 'भाति चैत्ररथं चैव नंदनं च महावनम्, रमणं भावनं चैव वेणुमंतः संमततः' महा० सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ। इस उद्धरण मे रमण नामक वन को द्वारका के उत्तर की ओर स्थित वेणुमान् पर्वत के निकट बताया गया है।

रमणक

'दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः' महा० सभा० 8,2। श्वेत के दक्षिण तथा निषध के उत्तर में एक वर्ष या महाद्वीप।

रमसा (ज़िला कामरूप, असम)

असम के प्राचीन अहोम-नरेशों ने इस ग्राम में अम्रातकेश्वर शिव का मंदिर बनवाया था। मत्स्यपुराण के अनुसार मूल अम्रातकेश्वर का मंदिर काशी में स्थित था और वहां के आठ प्रधान शिवमंदिरों में से था। इसकी प्रसिद्धि के कारण ही असम के राजाओं ने इसी नाम का मंदिर अपने प्रांत में बनवाया था। (दे० एज ऑव दि इम्पीरियल गुप्ताज़, पृ० 116)

रमौल (बिहार)

कमतौल स्टेशन से लगभग 3 मील दूर छोटा सा ग्राम है। इसके निकट ही वटवृक्षों का एक वन है। कहा जाता है कि मिथिलानरेश जनक की सभा के रत्न महर्षि याज्ञवल्क्य का आश्रम इसी स्थान पर था। याज्ञवल्क्य प्राचीन भारत के महान् विचारक तथा मेधावी विद्वान् थे।

रम्मानगरी=रामानगरी

काशी का एक नाम जो बौद्ध साहित्य में मिलता है।

रम्यकवर्ष

पौराणिक भूगोल के वर्णन के अनुसार रम्यक, जंबूद्वीप का एक भाग है जिसके उपास्य देव वैवस्वत मनु हैं। विष्णु 2,2,13 में इसे जंबूद्वीप का उत्तरी वर्ष कहा गया है—'रम्यकं चोत्तरं वर्ष तस्यैवानु हिरण्मयम्, उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा'। महाभारत सभा० 28 से जान पड़ता है कि अर्जुन ने उत्तर दिशा की दिग्विजय यात्रा के समय यहाँ प्रवेश किया था—'तथा जिष्णु रतिक्रम्य पर्वतं नीलमायतम्, विवेशरम्यकं वर्षं संकीर्णं मिथुनैः शुभैः'। यह देश सुंदर नरनारियों से आकीर्ण था। इसे जीत कर अर्जुन ने यहाँ से कर ग्रहण किया था—'त देशमथजित्वा च करे च विनिवेश्य च'। उपर्युक्त उद्धरणों से रम्यक वर्ष की स्थिति उत्तरकुरु या एशिया के उत्तरी भाग या साइबेरिया के निकट प्रमाणित होती है। इसके उत्तर में संभवतः हिरण्मय-वर्ष था।

रम्यग्राम

'मारुधं च विनिर्जित्य रम्यग्राममथोबलात्' महा० 2,31,14। सहदेव ने अपनी दक्षिणी भारत की विजय-यात्रा में इस स्थान को विजित किया था। संदर्भ से यह मालवा के क्षेत्र में जान पड़ता है।

रवालसर (हिमाचल प्रदेश)

प्राचीन नाम रोयलेश्वर। यहां पुराने समय का बौद्ध मंदिर है जिसमें पद्मसंभव नामक बौद्धभिक्षु की एक विशाल मूर्ति है। मंदिर में भित्तिचित्र भी हैं। पद्मसंभव ने तिब्बत जाकर बौद्धधर्म का प्रचार किया था। जान

पड़ता है कि पद्मसंभव इस स्थान पर कुछ समय तक रहे होंगे। इस स्थान का संबंध महर्षि लोमश तथा पांडवों से भी बताया जाता है। गुरु गोविंदसिंहजी यहां कुछ काल पर्यंत रहे थे। भारत से तिब्बत को जाने वाला प्राचीन मार्ग रवालसर हो कर ही जाता था। इस स्थान का एक पुराना नाम रेवासर भी है।

रांगामाटी=रक्तमृत्तिका

राँतेज दे० रत्नावती

राजगढ़ (महाराष्ट्र)

तोरण के दुर्ग से 6 मील दूर मोरबंद नामक पर्वतशृंग पर स्थित इस किले की स्थापना 1646 ई० के लगभग छत्रपति शिवाजी द्वारा की गई थी। इस किले को बनवाने के लिए उन्हें तोरण दुर्ग से प्राप्त गड़े हुए खजाने से काफी सहायता मिली थी।

राजगीर=**राजगृह**

राजगृह

(1)=राजगीर (बिहार)। बुद्ध के समकालीन मगध-नरेश बिंबिसार ने शिशुनाग अथवा हर्यक-वंश के नरेशों की पुरानी राजधानी गिरिव्रज को छोड़-कर नई राजधानी उसके निकट ही बसाई थी (दे० गिरिव्रज) (2)। पहले गिरिव्रज के पुराने नगर से बाहर उसने अपने प्रासाद बनवाए थे जो राजगृह के नाम से प्रसिद्ध हुए। पीछे अनेक धनिक नागरिकों के बस जाने से राजगृह के नाम से एक नवीन नगर ही बस गया। गिरिव्रज में महाभारत के समय में जरासंध की राजधानी भी रह चुकी थी। राजगृह के निकट वन में जरासंध को बैठक नामक एक बारादरी स्थित है जो महाभारतकालीन ही बताई जाती है। महाभारत वन० 84,104 में राजगृह का उल्लेख है जिससे महाभारत का यह प्रसंग बौद्धकालीन मालूम होता है, 'ततो राजगृहं गच्छेत् तीर्थसेवी नराधिप'। इससे सूचित होता है कि महाभारतकाल में राजगृह तीर्थस्थान के रूप में माना जाता था। आगे के प्रसंग से यह भी सूचित होता है कि मणिनाग तीर्थ राजगृह के अन्तर्गत था। यह संभव है कि उस समय राजगृह नागों का विशेष स्थान था (दे० मणियार मठ, मणिनाग)। राजगृह का बौद्ध जातकों में कई बार उल्लेख है। मंगलजातक (सं० 87) में उल्लेख है कि राजगृह मगधदेश में स्थित था। राजगृह के वे स्थान जो बुद्ध के समय में विद्यमान थे और जिनसे उनका संबंध रहा था, एक पाली ग्रंथ में इस प्रकार गिनाए गए हैं—गृध्रकूट, गौतम-न्यग्रोध, चौर प्रपात, सप्तपर्णिगुहा, काल-

शिला, शीतवन, सर्पशौंडिक प्राग्भार, तपोदाराम, वेणुवनस्थित कलंदक तड़ाग, जीवक का आम्रवन, मर्दकुक्षि तथा मृगवन। इनमें से कई स्थानों के खंडहर आज भी राजगृह में देखे जा सकते हैं। बुद्धचरित 10,1 में गौतम का गंगा को पार करके राजगृह में जाने का वर्णन है—'स राजवत्सः पृथुपीन वक्षास्तौसव्यमंत्राधिकृतौ विहाय, उत्तीर्य गंगां प्रचलत्तरंगां श्रीमदगृहं राजगृहं जगाम'। जैन ग्रंथ सूत्र कृतांग में राजगृह का संपन्न, धनवान् और सुखी नर-नारियों के नगर के रूप में वर्णन है। एक अन्य जैन सूत्र, अंतकृत दशांग में राजगृह के पुष्पोद्यानों का उल्लेख है। साथ ही यक्ष मुद्गरपानि के एक मंदिर की भी वहीं स्थिति बताई गई है। भास-रचित 'स्वप्नवासवदत्ता' नामक नाटक में राजगृह का इस प्रकार उल्लेख है—'ब्रह्मचारी, भो श्रूयताम्। राजगृहतोऽस्मि। श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोपितवानस्मि्'। युवानच्वांग ने भी राजगृह के उन कई स्थानों का वर्णन किया है जिनसे गौतम बुद्ध का संबंध बताया जाता है (दे० सोनभंडार; पांडव; मर्दकुक्षि; पिप्पलगिरि; सप्तपर्णिगुहा; ऋषिगिरि; पिप्पलिगुहा)। वाल्मीकिरामायण में गिरिव्रज की पांच पहाड़ियों का तथा सुमागधी नामक नदी का उल्लेख है—'एषा वसुमती नाम वसोस्तस्य महात्मनः एतेशैलवराः पंच प्रकाशन्ते समंततः। सुमागधीनदी रम्या मागधान् विश्रुताऽऽययौपचानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते'। इन पहाड़ियों के नाम महाभारत में ये हैं—पांडर, विपुल, वाराहक, चैत्यक, और मातंग। पाली साहित्य में इन्हें वेभार, पांडव, वेपुल्ल, गिज्झकूट और इसिगिलि कहा गया है (दे० ए गाइड टू राजगीर, पृ० 1) [दे० महा० सभा० 21, दाक्षिणात्य पाठ—'पांडरे विपुले चैव तथा वाराहकेऽपि च, चैत्यके च गिरिश्रेष्ठे मातगे च शिलोच्चये' (दे० चैत्यक)]। किंतु महाभारत, सभा० 21,2 में इन्हीं पहाड़ियों को विपुल, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक कहा गया है—'वैहारो विपुलो शैलो वराहो वृषभस्तथा, तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यक पंचमा.'। इनके वर्तमान नाम ये हैं—वैभार, विपुल, रत्न, छत्ता और सोनागिरि। जैन कल्पसूत्र के अनुसार महावीर ने राजगृह में 14 वर्षाकाल बिताए थे। दे० गिरिव्रज (2)

(2) =गिरिव्रज। केकय देश में स्थित गिरिव्रज का भी दूसरा नाम राजगृह था [दे० गिरिव्रज (1)] इसका अभिज्ञान गिरजाक अथवा जलालपुर (पाकि०) से किया गया है। इस राजगृह का नामोल्लेख वाल्मीकि रामायण० अयो० 67,7 में इस प्रकार है—'उभयौ भरतशत्रुघ्नौकेकयेषु परंतपौ, पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने' (टि० यह तथ्य द्रष्टव्य है कि बुद्ध-काल तथा

उसके पीछे राजगृह मगध की राजधानी का भी नाम था। इस राजगृह का भी दूसरा नाम गिरिव्रज ही था)। विद्वानों का अनुमान है कि केकयदेशीय राजगृह में अलक्षेंद्र से युद्ध करने वाले प्रसिद्ध महाराज पुरु (ग्रीकभाषा में पोरस) की राजधानी थी।

(3) ब्रह्मदेश (बर्मा) में एक प्राचीन भारतीय औपनिवेशिक नगर जिसका संभवतः मगध के प्राचीन नगर राजगृह के नाम पर बसाया गया था। सुवर्णभूमि (बर्मा) में भारतीय उपनिवेशों पर हिंदू तथा बौद्ध नरेशों ने अति प्राचीन काल से मध्य काल तक राज किया था तथा यहाँ सर्वत्र भारतीय संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार था। ब्रह्मदेश में अनेक प्राचीन भारतीय उपनिवेशों का नाम भारत के प्रमुख नगरों के नाम पर रखा गया था यथा वाराणसी, पुष्करावती, वैशाली, कुसुमपुर, मिथिला, अवंती, चंपापुर, कंबोज आदि।

राजगोपालपेट (ज़िला करीकनगर, आं० प्र०)

मुगल सम्राट् औरंगजेब की बनवाई हुई मसजिद यहाँ का उल्लेखनीय स्मारक है।

राजद्रह

उदयपुर (राजस्थान) में स्थिति राजसागर झील। इसका जैन तीर्थ के रूप में उल्लेख तीर्थमाला चैत्य वंदन में है—'विध्यस्तंभन शीट्ठ मीट्ठ नगरे राजद्रहे श्री नगे'। इस झील के निकट राजनगर स्थित था जिसके खंडहरों में 'दयालशाह का किला' नामक स्थान पर तीर्थंकर का मंदिर है।

राजधानी (उ० प्र०)

राजधानी तथा उपधौली नामक ग्रामों में जो कुसम्ही स्टेशन से 11 मील दक्षिण में हैं विशाल प्राचीन खंडहरों के अवशेष हैं। चीनी यात्री युवानच्वांग जो इस स्थान पर 640 ई० में आया था, लिखता है कि यहाँ पर मौर्यों ने बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके शरीर की भस्म पर एक स्तूप बनवाया था। शायद इसी स्तूप के खंडहर यहाँ 30 फुट ऊँचे ईटों के टीले के रूप में पड़े हुए हैं।

राजनगर=अहमदाबाद

राजन्य

महाभारत, सभा० 52,14 में वर्णित एक जनपद जिसके निवासी युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट लेकर उपस्थित हुए थे—'काश्मीराश्च कुमाराश्च, घोरका हंसकायनाः शिवित्रिगर्त यौधेयाराजन्या मद्रकेकयाः'। राजन्य जनपद के सिक्के जिला होशियारपुर (पंजाब) से प्राप्त हुए हैं।

राजपिप्पली (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

चित्तौड़ की निकटवर्ती पहाड़ियों के बीच एक घना वन जहाँ मध्यकाल में गुहिल लोग निवास करते थे। 1567 ई० में जब अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया तो मेवाड़-नरेश महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ छोड़ कर राजपिप्पली के वन में गुहिलों के साथ रहने लगे थे।

राजपुर

(1)=राजौरी। महाभारत द्रोण० 4-5 में कर्ण का राजपुर पहुँच कर कांबोजों (दे० कंबोज) को जीतने का उल्लेख है—'स्वबाहुबलवीर्येण धार्तराष्ट्रजयैषिणा, कर्णराजपुरं गत्वा कांबोजा निर्जितास्त्वया'। युवानच्वांग ने भी इस स्थान का अपने यात्रावृत्त में उल्लेख किया है। कनिंघम ने राजपुर का अभिज्ञान पश्चिमी कश्मीर में स्थित राजौरी से किया है। (ऐशेंट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, 192 पृ० 148)

(2) महाभारत में कलिंगदेश की राजधानी का नाम भी राजपुर है—'श्रीमद्राजपुरं नाम नगरं तत्र भारत, राजानः शतशस्तत्र कन्यार्थं समुपागमन् शांति, 4,3। यहां के राजा चित्रांगद की कन्या का हरण दुर्योधन ने कर्ण की सहायता से किया था।

(3) (जिला बिजनौर, उ० प्र०) इस स्थान से प्रागैतिहासिक अवशेष-विशेषकर तांबे के अनेक उपकरण प्राप्त हुए हैं।

(4)=वीरपुर (कंबोडिया)। प्राचीन भारतीय उपनिवेश चंपापुरी के दक्षिणी प्रांत-पांडुरंग-की राजधानी।

राजमहल दे० उगमहल, और कजंगल।

राजमहेंद्री (आं० प्र०)

गोदावरी नदी के वाम तट पर समुद्रतट से 30 मील दूर है। किंवदंती के अनुसार गोदावरी की सात धाराओं में से अंतिम—वशिष्ठधारा राजमहेंद्री के निकट अंतर्वेदी नामक स्थान में है। इसके निकट नरसापुर ग्राम बसा है। राजमहेंद्री में ई० सन् से बहुत पहले उड़ीसा की सर्वप्राचीन राजधानी थी। कहा जाता है इसे उड़ीसा के प्रथम राजवंश के राजामहेंद्रदेव ने बसाया था जिसके नाम पर यह नगरी राजमहेंद्री कहलाई।

राजमाची (महाराष्ट्र)

यहाँ का दुर्ग 17 वीं शती में बीजापुर रियासत के अधिकार में था। महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी ने इस दुर्ग को बीजापुर के सुल्तान से छीन लिया था। यह किला उत्तर महाल के उन नौ किलों में था जिनपर शिवाजी

ने अधिकार कर लिया था।

राजविहार

कपिशा (अफ़गानिस्तान का एक इलाका) में स्थित एक विहार जिस. निर्माण कुशनसम्राट् कनिष्क ने चीन के राजकुमार के निवास के लिए करवाया था। चीन के सम्राट् ने राजकुमार को कनिष्क से पराजित होने पर बंधक-रूप में भेजा था। इसका कनिष्क ने बहुत सम्मान किया और उसके निवास के लिए शीतकाल में भारत, शरद् में गंधार तथा ग्रीष्म में कपिशा में स्थान नियत कर दिए थे। इसी राजकुमार के वैयक्तिक व्यय के लिए चीन-भुक्ति नामक प्रदेश की आय प्रदान कर दी गई थी।

राजसदन (महाराष्ट्र)

जलिना स्टेशन से 14 मील दूर राजूर नामक कस्बे का प्राचीन नाम राजसदन कहा जाता है। यह प्राचीन गणपति-क्षेत्र माना जाता है।

राजसीन=रायसेन

राजापुर

(1) (जिला बाँदा, उ० प्र०) हिंदी के महाकवि तुलसीदास का जन्म-स्थान। यह कस्बा यमुना तट पर बसा है और चित्रकूट के निकट है। नदी के किनारे पर तुलसीदास जी के नाम से प्रसिद्ध मंदिर है जो अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। यहाँ महाकवि के हाथ की लिखी हुई रामचरितमानस की प्रति अबतक सुरक्षित है।

(2) अल्मोड़ा (उ०प्र०) का प्राचीन नाम।

राजिम (ज़िला रायपुर, म० प्र०)

यहाँ राजिम या राजीवलोचन भगवान् रामचंद्र का प्राचीन मंदिर है, जो शायद 8 वीं या 9 वीं शती का है। यहाँ से प्राप्त दो अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इस मंदिर के निर्माता राजा जगतपाल थे। इनमें से एक अभिलेख राजा वसंतराज से संबंधित है। किंतु लक्ष्मणदेवालय के एक दूसरे अभिलेख से विदित होता है कि इस मंदिर को मगध-नरेश सूर्यवर्मा (8 वीं शती ई०) की पुत्री तथा शिवगुप्त की माता 'वासटा' ने बनवाया था। मंदिर के स्तंभ पर चालुक्य-नरेशों के समय में निर्मित नरवराह की चतुर्भुज मूर्ति उल्लेखनीय है। वराह के वामहस्त पर भू देवी अवस्थित है। शायद यह मध्य-प्रदेश में प्राप्त प्राचीनतम मूर्ति है। राजिम से पांडुवंशीय कोसल-नरेश तीवरदेव का ताम्रदानपट्ट प्राप्त हुआ था जिसमें तीवरदेव द्वारा पैठामभुक्ति में स्थित पिपरिपद्रक ग्राम के निवासी किसी ब्राह्मण को दिए गए दान का वर्णन है। यह

दानपट्ट तीवरदेव के 7 वें वर्ष में श्रीपुर (सिरपुर) से प्रचलित किया गया था। फ़्लीट के अनुसार तीवरदेव का समय 8 वीं शती ई० के पश्चात् मानना चाहिए। एक स्थानीय दंतकथा के अनुसार इस स्थान का नाम राजिव या राजिम नामक एक तैलिक स्त्री के नाम से हुआ था। मंदिर के भीतर सती-चौरा है जिसका संबंध इस स्त्री से हो सकता है। राजिम में महानदी और पैरी नामक नदियों का संगम है। संगमस्थल पर कुलेश्वर महादेव का मंदिर है जो इतना सुदृढ़ है कि सैकडों वर्षों से नदी के निरंतर प्रवाह के थपेड़े सहता हुआ अडिग खड़ा है। राजिम या राजीव का प्राचीन नामांतर पद्मक्षेत्र भी कहा जाता है (राजीव=कमल)। पद्मपुराण, पाताल० 27,58-59 में श्री रामचंद्रजी का इस स्थान (देवपुर) से संबंध बताया गया है।

राजुकोंडा (आं० प्र०)

1335-1336 ई० में बहमनी राज्य की अवनति के पश्चात् प्राचीन आंध्र-प्रदेश नई स्वतंत्र रियासतों में बँट गया था। इनमें से एक रियासत पद्मवेलमा लोगों ने स्थापित की थी जिसकी राजधानी राजुकोंडा में थी। इसकी नींव रेचरला सिंगमनय ने डाली थी।

राजुलमंडगिरि (पट्टीकोंडा तालुका, जिला कुरनूल, आं० प्र०)

1953-1954 में इस स्थान से मौर्य सम्राट् अशोक का एक शिलालेख प्राप्त हुआ था। यह इस ग्राम में स्थित रामलिंगेश्वर के शिवमंदिर की चट्टान पर उत्कीर्ण है। इस अभिलेख में 15 पंक्तियां हैं किंतु वह खंडितावस्था में हैं। भारतीय पुरातत्व विभाग के अनुसार यह धर्मलिपि येरागुड़ी की 'अमुख्य' धर्मलिपि की एक प्रतिलिपि जान पड़ती है जो अब से 25 वर्ष पहले ज्ञात हुई थी।

राजूर

(1)=राजसदन

(2) (जिला आदिलाबाद, आं० प्र०) यादवनरेशों के शासनकाल के मंदिरों के लिए उल्लेनीय है। यादव राज्य की समाप्ति 1320 ई० में अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण भारत पर आक्रमण के समय हुई थी।

राजौरी दे० राजपुर (1); कंबोज

राठ (जिला हमीरपुर उ० प्र०)

यहां मध्यकाल में चंदेल राजपूतों का राज्य था। राठ के चंदेलनरेश कीलादित्य की पुत्री इतिहास प्रसिद्ध दुर्गावती थी जिसका विवाह गढ़मंडला-नरेश राजा दलपतिशाह से हुआ था। वीरांगना दुर्गावती ने मुगल सम्राट्

अकबर की सेनाओं से युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की थी।

राडद्रह

प्राचीन जैनतीर्थ जिसका उल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में है—'वंदे सत्यपुरे च बाहडपुरे, राडद्रहे वायडे'। इसका प्राचीन साहित्य में लाटह्रद नाम भी प्राप्त है। यह तीर्थ गुजरात में था किंतु इसका अभिज्ञान संदिग्ध है। 1209 वि० सं० के एक अभिलेख में इस स्थान को गुजरात-नरेश कुमारपाल के सामंत राजा अल्हणदेव की जागीर के अन्तर्गत बताया गया है।

राढ़=राढ़ी

प्राचीन और मध्यकाल में, विशेषकर सेनवंशीय नरेशों के शासनकाल में, बंगाल के चार प्रांतों में से एक। ये प्रांत थे—बरेंद्र, बागरा, वंग और राढ़। कुछ विद्वानों ने जैन ग्रंथ आयरंगसुत्त में उल्लिखित लाढ नामक प्रदेश का अभिज्ञान राढ़ से किया है किन्तु यह सही नहीं जान पड़ता (दे० भंडारकर, अशोक, पृ० 37)। सिंहल देश में सात सौ साथियों के सहित जाकर बस जाने वाला राजकुमार विजय, राढ़ देश का ही निवासी माना जाता है। राढ़, पश्चिमी बंगाल का एक भाग, विशेषतः बर्दवान कमिश्नरी का परिवर्ती प्रदेश था। (दे० लाढ़)

राणपुर=राणकपुर (जिला जोधपुर, राजस्थान)

यह कस्बा मारवाड़ में, सादड़ी से 6 मील दूर है और दक्षिण की ओर अरावली पर्वतमाला से घिरा हुआ है। यहां का प्रसिद्ध स्मारक ऋषभदेव का चौमुखा मंदिर (त्रैलोक्य दीपक प्रासाद) है जो शायद 15 वीं शती में बना था। यहां 1496 वि० सं० = 1439 ई० का धारणाक का एक अभिलेख मिला है। किंवदंती है कि प्राचीन समय में नंदिया के रहने वाले धन्ना तथा रत्ना नामक दो सहोदर भाइयों ने राणपुर के मंदिर का निर्माण करवाया था। यह मंदिर बहुत ऊंचा तथा भव्य है। इसमें 1444 स्तंभ हैं। कहा जाता है कि इसे बनवाने में 96 लाख रुपए खर्च हुए थे। इसका जीर्णोद्धार हाल ही में 10 लाख रुपए की लागत से हुआ था।

राणीहाट (जिला टेहरी-गढ़वाल, उ० प्र०)

श्रीनगर से तीन मील दूर अलकनंदा के तट पर स्थित ग्राम है। राजराजेश्वरी के प्राचीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि पूर्वकाल में इस मंदिर के चतुर्दिक 360 अन्य मंदिर भी थे। 11वीं और 12वीं शती की अनेक मूर्तियां यहां मिली हैं।

राणोद (जिला ग्वालियर, म० प्र०)

प्राचीन समय में शैवमत का केन्द्र था। 10 वीं शती ई० के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि राजा अवंतिवर्मन् के गुरु पुरंदर द्वारा एक मठ यहां बनवाया गया था तथा उसका विस्तार व्योमशिव ने करवाया था। राणोद को इस अभिलेख में रानीपद्र कहा गया है। इस अभिलेख में उल्लिखित मठ वर्तमान खोखई मठ है।

रात्रि

विष्णुपुराण 2,4,55 के अनुसार क्रौंचद्वीप की एक नदी—'गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा, क्षांतिश्चपुंडरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगा।'

राधा=राधापुरी

पश्चिमी बंगाल की एक प्राचीन नगरी जिसका उल्लेख प्रबोधचंद्रोदय नाटक (अंक 2) में है। इसका संबंध गौड़ों से बताया गया है। श्री रा० दा० बनर्जी ने इसे अपसढ़ अभिलेख में उल्लिखित उत्तरकालीन गुप्तनरेश महासेन गुप्त के राज्य के अंतर्गत बताया है।

रानीगुफा (उड़ीसा)

भुवनेश्वर से चार-पांच मील की दूरी पर रानीगुंफा स्थित है। यह जैन गुहा-मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। इस गुंफा या गुफा का निर्माण तीसरी शती ई० पू० में हुआ जान पड़ता है। इस गुफा में जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन से संबंधित कई दृश्य मूर्तिकारी के रूप में अंकित हैं। गणेशगुफा और हाथी-गुफा रानीगुंफा के गुहासमूह के ही अंतर्गत हैं।

रानीताल दे० कवर

रानीपद्र—दे० राणोद

रापर (कच्छ, गुजरात)

कच्छ में मनफरा से 26 मील दूर है। यह स्थान एक प्राचीन विशाल जैन-मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। इस मंदिर में पहले चिंतामणि पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठापित थी।

रापरी (तहसील शिकोहाबाद, जिला मैनपुरी, उ० प्र०)

यहां अलाउद्दीन खिलजी के जमाने की मसजिद है जिसे मलिक काफूर ने बनवाया था।

राप्ती

पूर्वी उत्तरप्रदेश की नदी। राप्ती संभवतः वारवत्या या इरावती का अपभ्रंश है। कुछ विद्वानों के मत में यह बौद्ध साहित्य की अचिरावती है।

(दे० वारवत्या, इरावती, अचिरावती)।

रामक

'कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपत्तनं तथा, द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा' महा० सभा० 31, 68। यह शायद रामेश्वरम् की पहाड़ी है। यह स्थान लंका में स्थित एडम्स पीक भी हो सकता है। इसे बौद्धों ने सुमनकूट नाम दिया था। (दे० रामपर्वत)

रामकेलि (बंगाल)

15 वीं शती ई० में बंगाल के शासक हुसैन शाह के मंत्रिद्वय रूप और सनातन ने इस नगर को बसाया तथा यहां राममंदिर का निर्माण करवाया था। रामकेलि के निकट इन्होंने कन्हाई नाट्यशाला नामक कृष्णमंदिर भी बनवाया था। रूप और सनातन कालांतर में चैतन्य महाप्रभु के शिष्य बनकर वृन्दावन चले गये थे। चैतन्य भी स्वयं रामकेलि आए थे।

रामगंगा (उ० प्र०)

मध्यकाल के मुसलमान इतिहासकारों ने इसी नदी को राहिब लिखा है। यह शायद वाल्मीकि रामायण अयोध्याकांड 71, 14 ('वासंकृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वाचोत्तरगां नदीम्, अन्यानदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरंगमैः)' में वर्णित 'उत्तरगा' नदी है। रामगंगा कुमायूं की पहाड़ियों से निकलकर गंगा में कन्नौज के पास गिरती है।

रामगढ़ (उ० प्र०)

(1) यह ग्राम उत्तरपूर्व रेलवे के राजवाड़ी स्टेशन से 7 मील दूर है। इसका संबंध महाभारत के राजा विराट से बतलाया जाता है। राजा वैरत (या विराट) का टूटा-फूटा एक क़िला भी यहां स्थित है। किले और गंगा के बीच एक प्राचीन ताल है जिसे भक्तिन ताल कहते हैं। इसके पश्चिमी तट पर राम-शाला मंदिर है जहां कई प्रसिद्ध संतों का निवासस्थान रहा है। यहां प्राचीन-काल के खंडहरों के कई टीले हैं।

(2) दे० अलीगढ़

(3) दे० रामगिरि (2)

रामगाम=रामग्राम

बौद्ध साहित्य के अनुसार बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके शरीर की भस्म के एक भाग के ऊपर एक महास्तूप रामगाम या रामपुर (दे० बुद्धचरित, 28, 66) नामक स्थान पर बनवाया गया था। बुद्धचरित के उल्लेख से ज्ञात होता है कि रामपुर में स्थित आठवां मूल स्तूप उस समय विश्वस्त नागों द्वारा

रक्षित था और इसीलिए राजा अशोक ने उस स्तूप की धातुएं अन्य सात स्तूपों की भांति ग्रहण नहीं कीं। यह कोलिय क्षत्रियों का प्रमुख नगर था। रामग्राम कपिलवस्तु के पूर्व की ओर स्थित था। कुणाल जातक के भूमिका-भाग से सूचित होता है कि रोहिणी या राप्ती नदी कपिलवस्तु और रामगाम जनपदों के बीच की सीमारेखा बनाती थी। इस नदी पर एक ही बांध द्वारा दोनों जनपदों को सिंचाई के लिए जल प्राप्त होता था। रामगाम की ठीक-ठीक स्थिति का सूचक कोई स्थान शायद इस समय नहीं है किंतु यह निश्चित है कि कपिलवस्तु (नेपाल की तराई, जिला बस्ती की उत्तरी सीमा के निकट) के पूर्व की ओर यह स्थान रहा होगा। चीनी यात्री युवानच्वांग जिसने भारत का पर्यटन 630-645 ई० में किया था, अपने यात्रा-क्रम में रामगाम भी आया था [दे० रामपुर (1)]

रामगिरि

(1) कालिदास के मेघदूत में वर्णित यक्ष के निर्वासनकाल का स्थान—'कश्चित्कांताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः, शापेनास्तं गमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्तुः, यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु, स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु' पूर्वमेघ 1.। रामगिरि का अभिज्ञान अनेक विद्वानों ने जिला नागपुर (महाराष्ट्र) में स्थित रामटेक से किया है। कालिदास के अनुसार इस स्थान के जल (सरोवर आदि) सीता के स्नान से पवित्र हुए थे तथा यहां की भूमि राम के पद-चिह्नों से अंकित थी ('वंद्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु')। रामटेक में प्राचीन परंपरागत किंवदंती है कि श्रीराम ने वनवास-काल का कुछ समय इस स्थान पर सीता और लक्ष्मण के साथ व्यतीत किया था। रामगिरि के आगे मेघ की अलका-यात्रा के प्रसंग में पहाड़ और नदियों का जो वर्णन कालिदास ने किया है वह भी भौगोलिक दृष्टि से रामटेक को मेघ का प्रस्थान-बिन्दु मानकर ठीक बैठता है। कुछ विद्वानों के मत में उत्तर-प्रदेश के अंतर्गत चित्रकूट ही को कालिदास ने रामगिरि कहा है किंतु यह अभिज्ञान नितांत संदिग्ध है क्योंकि चित्रकूट से यदि मेघ अलका के लिए जाता तो उसे ठीक उत्तर-पश्चिम की ओर सरल रेखा में यात्रा करनी थी और इस दशा में उसे मार्ग में मालदेश, आम्रकूट, नर्मदा, विदिशा आदि स्थान न पड़ते क्योंकि ये स्थान चित्रकूट के दक्षिण-पश्चिम में हैं। कुछ अन्य विद्वानों ने भूतपूर्व सरगुजा रियासत (म० प्र०) के रामगढ़ से ही रामगिरि का अभिज्ञान किया है।

(2) (भूतपूर्व सरगुजा रियासत, म० प्र०) लक्ष्मणपुर से 12वें मील पर

रामगिरि नामक पहाड़ी है जिसे रामगढ़ कहते हैं। इसकी गुफाओं में अनेक भित्तिचित्र प्राप्त हुए हैं। एक गुफा में एक ब्राह्मी अभिलेख भी मिला है जिससे इसका निर्माण काल डॉ० ब्लाख के मत से तीसरी शती ई० पू० जान पड़ता है। कहा जाता है इसी स्थान पर उग्रादित्याचार्य ने, अपने वैद्यक ग्रंथ कल्याणकारक की रचना की थी। इसमें शायद, इन्हीं अलंकृत चैत्यगृहाओं का उल्लेख है। कुछ लोगों के मत में मेघदूत की रामगिरि यहीं है।

(3) (महाराष्ट्र) शिवाजी के राजकवि भूषण ने शिवराजभूषण, छंद 214 में जयसिंह के साथ संधि होने पर रामगिरि नामक दुर्ग का शिवाजी द्वारा मुगलों को दिए जाने का उल्लेख किया है। उन्हें यह स्थान कुतुबशाह (गोलकुंडा के सुल्तान) से मिला था। यह उल्लेख भी इसी छंद में है—'भूषन भनत भागनगरी कुतुब साह दै करि गंवायो रामगिरि से गिरीस को, सरजा सिवाजी जयसिंह मिरजा को लीबे सौगुनी बडाई गढ़ दीन्हें हैं दिल्लीस को'।

(4) (मैसूर) बंगलौर-मैसूर रेलमार्ग पर मद्दूर स्टेशन से 12 मील पर यह पहाड़ी स्थित है। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार सुग्रीव का मधुवन इसी स्थान पर था। पर्वत के शिखर पर कोदंड रामस्वामी का मंदिर है जहां राम-लक्ष्मण-सीता की मूर्तियाँ हैं।

रामग्राम = रामगाम

रामचौरा

टौंस नदी पर अयोध्या के निकट घाट। कहते है वन जाते समय राम-लक्ष्मण-सीता ने तमसा नदी को इसी स्थान पर पार किया था। (दे० तमसा)

रामटेक

नागपुर से 20 मील दूर रमणीक और ऊंची पहाड़ियों पर स्थित है। कुछ विद्वानों के मत में यह मेघदूत में वर्णित रामगिरि है। यहां विस्तीर्ण पर्वतीय प्रदेश में अनेक छोटे-छोटे सरोवर स्थित है जो शायद पूर्वमेघ में उल्लिखित—'जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु' में निर्दिष्ट जलाशय है। किंवदंती है कि वनवास काल में राम-लक्ष्मण-सीता इस स्थान पर रहे थे। श्रीरामचंद्रजी का एक सुंदर मंदिर ऊंची पहाड़ी पर बना है। मंदिर के निकट विशाल वराह की मूर्ति के आकार में कटा हुआ एक शैलखंड स्थित है। रामटेक को सिंदूरगिरि भी कहते हैं। रामटेक के पूर्व की ओर सुरनदी या सूर्यनदी बहती है। इस स्थान पर एक ऊंचा टीला है जिसे गुप्तकालीन बताया जाता है। चंद्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त ने रामगिरि की यात्रा की थी—इस तथ्य का जानकारी हमे रिद्धपुर के ताम्रपत्र-लेख से होती है। प्राचीन जनश्रुति के अनुसार श्रीरामचंद्रजी

ने शंबुक का वध इसी स्थान पर किया था।

रामठ=रमठ

रामणा (काठियावाड़, गुजरात)

बेट द्वारका से 56 मील दूर प्राचीन वैष्णव तीर्थ है।

रामणीयक द्वीप

महाभारत, आदि० 26,8 में वर्णित—'तदा भूरभवच्छन्ना जलोर्मिभिरनेकशः, रामणीयकमागच्छन् मात्रासहभुजंगमाः'। श्री नं० ल० डे के मत में यह वर्तमान आर्मिनिया देश है।

रामतीर्थ

'शुभ्रं तीर्थवरं तस्माद् रामतीर्थं जगामह'—महा० शल्य० 49,7। महाभारत-काल में यह सरस्वती नदी के तट पर स्थित एक तीर्थ था जिसकी यात्रा बलराम जी ने सरस्वती के अन्य तीर्थों की यात्रा के साथ की थी। महाभारत की कथा के अनुसार, यह तीर्थ परशुराम के नाम पर प्रसिद्ध था।

रामनगर

(1) (कोंकण, महाराष्ट्र) शिवाजी के समय में यह एक छोटा सा राज्य था। इसे सलहेरि के युद्ध के पश्चात्, 1672 ई० में शिवाजी ने जीत लिया था। इस कार्य में शिवाजी को अपने सेनापति मोरोपंत पिंगले से सहायता मिली थी। महाकवि भूषण ने इस घटना का उल्लेख किया है—'भूषन भनत रामनगर जवारि तेरे बैरपरबाह बहे रुधिर नदीन के'—शिवराजभूषण, 173।

(2) (ज़िला वाराणसी, उ० प्र०) काशी की सुप्रसिद्ध रियासत का मुख्य स्थान जो वाराणसी के सामने गंगा के उस पार स्थित है। यह पश्चमध्यकालीन रियासत थी जो अब वाराणसी ज़िले में विलीन हो गई है। बौद्ध साहित्य में काशी का एक नाम रामानगरी मिलता है। संभव है रामनगर का इस नाम से संबंध हो।

रामनाद (मद्रास)

रामनादनरेश, रामेश्वर द्वीप के परंपरागत शासक माने जाते हैं। यह स्थान रामेश्वरम् के मार्ग में है। यहां से 5 मील दूर त्रिपुलानी और 10 मील पर देवीपाटन के प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर हैं।

रामपर्वत

'कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपत्तनं तथा, द्वीपं ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा'—महा० सभा० 31,68। इस स्थान को सहदेव ने दक्षिण की दिग्विजय-यात्रा में विजित किया था। प्रसंग से यह स्थान रामेश्वरम् की पहाड़ी जान

पड़ता है। इसका अभिज्ञान लंका में स्थित बौद्ध तीर्थ सुमनकूट या आदम की चोटी (Adam's Peak) से भी किया जा सकता है। प्राचीन किंवदंती के अनुसार इस पहाड़ी पर जो चरणचिह्न बने हैं वे भगवान् राम के हैं। वे समुद्र पार करने के पश्चात् लंका में इस पहाड़ी के पास पहुंचे थे और उनके पावन चरण-चिह्न इस पहाड़ी की भूमि पर अंकित हो गए थे। बाद में बौद्धों ने इन्हें महात्मा बुद्ध के और ईसाइयों ने आदम के चरणचिह्न मान लिया।

रामपुर

(1) (ज़िला बस्ती, उ० प्र०) मुंडरवा रेल-स्टेशन से 3 मील दक्षिण की ओर स्थित है। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके अस्थि-अवशेषों के आठ भागों में से एक पर एक स्तूप बनाया गया था जिसे रामभार स्तूप कहा जाता था। संभवत: इसी स्तूप के खंडहर इस स्थान पर मिले हैं। किंवदंती है कि इसी स्तूप से नागाओं ने बुद्ध का दाँत चुरा लिया था जो लंका में काँडी के मंदिर में सुरक्षित है। रामपुर को कुछ विद्वान रामगाम मानते हैं। रामपुर का उल्लेख बुद्धचरित 28,65 में है जहा रामपुर के स्तूप का विश्वस्त नागों द्वारा रक्षित होना कहा गया है। कहा जाता है कि इसी कारण अशोक ने बुद्ध की शरीर-धातु अन्य सात स्तूपों की धातु की भांति, इस स्तूप से प्राप्त नहीं की थी।

(2) (भूतपूर्व रियासत, उ० प्र०) रुहेलखंड की प्राय: 200 वर्ष प्राचीन रियासत जो अब उत्तर प्रदेश में विलीन हो गई है। इसके संस्थापक रुहेले थे। रामपुर के क्षेत्र का नाम युवानच्वांग ने गोविषाण लिखा है।

(3) (दक्षिण बर्मा) वर्तमान मोलमीन के निकट स्थित प्राचीन भारतीय उपनिवेश।

रामपुरवा

(1) (ज़िला चंपारन, बिहार) गोनहा स्टेशन से एक मील दक्षिण की ओर यह ग्राम बसा है। यहां अशोक के दो खंडित प्रस्तर-स्तंभ स्थित हैं। इनके शीर्षों पर सिंह और वृष की प्रतिमाएं निर्मित हैं। पहले पर अशोक की धर्म-लिपियां अंकित हैं।

(2) (म० प्र०) उत्तरमध्यकालीन इमारतों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

रामप्पा दे० पालमपेट

रामभार स्तूप दे० रामपुर (1); रामग्राम

रामवन (ज़िला रींवा, म० प्र०)

सतना-रींवा मार्ग पर सतना से 10 वें मील पर स्थित है। वाकाटक तथा

गुप्तनरेशों के समय के अनेक अवशेष रामवन में पाए गए हैं।

रामह्रद

महाभारत अनुशासन० में उल्लिखित एक तीर्थ जो विपाशा या ब्यास (पंजाब) के तट पर स्थित रहा होगा। इसको परशुराम कुंड भी कहते थे। यह विपाशा का ही कोई कुंड जान पड़ता है—'रामह्रद उपस्पृश्य विपाशायां कृतोदकः, द्वादशाहं निराहारः कल्पपाद् प्रमुच्यते' अनुशासन० 25,47। (दे० शर्यणावत्)

रामाधार दे० कुशीनगर

रामानगरी

बौद्ध साहित्य में काशी का एक नाम (पाली—रम्मानगरी)। संभवतः यह नाम वर्तमान रामनगर के रूप में आज भी जीवित है।

रामावती (बर्मा)

अराकान में स्थित रामी या रांबी नामक स्थान। अराकान के प्राचीन इतिहास से सूचित होता है कि इस नगरी को वाराणसी के एक राजकुमार ने जिसने अराकान या वैशाली में प्रथम भारतीय राजवंश की नींव डाली थी, अपनी राजधानी बनाया था। जान पड़ता है कि रामावती वर्तमान रंगून के निकट स्थित थी। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वाराणसी का बौद्ध साहित्य में एक नाम रामानगरी भी मिलता है और वाराणसी के एक राजकुमार द्वारा ब्रह्मदेश में रामावती नाम की नगरी का बसाया जाना अर्थपूर्ण है।

रामेश्वरम् (मद्रास)

मनार की खाड़ी में स्थित द्वीप जहां भगवान् राम का लोक-प्रसिद्ध विशाल मंदिर है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर श्रीरामचंद्रजी ने लंका के अभियान के पूर्व शिव की आराधना करके उनकी मूर्ति की स्थापना की थी। वास्तव में यह स्थान उत्तर और दक्षिण भारत की संस्कृतियों का संगम है। पुराणों में रामेश्वरम् का नाम गंधमादन है। मनारद्वीप उत्तर से दक्षिण तक लगभग ग्यारह और पूर्व से पश्चिम तक लगभग सात मील चौड़ा है। बस्ती के पूर्वी समुद्र तट पर लगभग 900 फुट लंबे और 600 फुट चौड़े स्थान पर रामेश्वरम् का मंदिर बना है। इसके चतुर्दिक् परकोटा है जिसकी ऊंचाई 22 फुट है। इसमें तीन ओर एक-एक और पूर्व की ओर दो गोपुर हैं। पश्चिम का गोपुर सात-खना है और लगभग सौ फुट ऊंचा है। अन्य गोपुर अर्धनिर्मित अवस्था में है और दीवार से अधिक ऊंचे नहीं है। रामेश्वरम् का मुख्य मंदिर 120 फुट ऊंचा है। तीन प्रवेशद्वारों के भीतर शिव के प्रख्यात द्वादश ज्योति-

लिंगों में से एक यहां स्थित है। मूर्ति के ऊपर शेषनाग अपने फनों से छाया करते हुए प्रदर्शित हैं। रामेश्वरम् के मंदिर की भव्यता उसके सहस्रों स्तंभों वाले बरामदे के कारण है। यह 4000 फुट लंबा है। लगभग 690 फुट की अव्यवहित दूरी तक इन स्तंभों की लगातार पंक्तियां देखकर जिस भव्य तथा अनोखे दृश्य का आंखों को ज्ञान होता है वह अविस्मरणीय है। भारतीय वास्तु के विद्वान् फर्ग्युसन के मत में रामेश्वरम्-मंदिर की कला में द्रविड़ शैली के सर्वोत्कृष्ट सौंदर्य तथा उसके दोषों दोनों ही का समावेश है। उनका कहना है कि तंजौर का मंदिर यद्यपि रामेश्वरम्-मंदिर की अपेक्षा विशालता तथा सूक्ष्म तक्षण की दृष्टि से उत्तमता में उसका दशमांश भी नहीं है किंतु संपूर्ण रूप से देखने पर उससे अधिक प्रभावशाली जान पड़ता है। रामेश्वरम् के निकट लक्ष्मणतीर्थ, रामतीर्थ, रामझरोखा (जहां श्रीराम के चरणचिह्नों की पूजा होती है), सुग्रीव आदि उल्लेखनीय स्थान हैं। रामेश्वरम् से चार मील पर मंगलातीर्थ और इसके निकट विलुनी तीर्थ हैं। रामेश्वरम् से थोड़ी ही दूर पर जटा तीर्थ नामक कुंड है जहां किंवदंती के अनुसार रामचन्द्र जी ने लंका युद्ध के पश्चात् अपने केशों का प्रक्षालन किया था। रामेश्वरम् का शायद रामपर्वत के नाम से महाभारत में उल्लेख है। (दे० रामपर्वत, गंधमादन)

रायगढ़ (जिला कोलाबा, महाराष्ट्र)

1662 ई० में शिवाजी तथा बीजापुर के सुलतान में काफी संघर्ष के पश्चात् संधि हुई थी जिससे शिवाजी ने अपना जीता हुआ सारा प्रदेश प्राप्त कर लिया था। इस संधि के लिए शिवाजी के पिता शाहजी कई वर्ष पश्चात् पुत्र से मिलने आए थे। शिवाजी ने उन्हें अपना समस्त जीता हुआ प्रांत दिखाया था। उस समय शाहजी के सुझाव को मानकर रैरी पहाड़ी के उच्च शृंग पर शिवाजी ने रायगढ़ को बसाने का इरादा किया था। यहां उन्होंने एक किला तथा प्रासाद बनवाया और वे यहीं निवास करने लगे। इस प्रकार शिवाजी के राज्य की राजधानी रायगढ़ में ही स्थापित हुई। रायगढ चारों ओर से सह्याद्रि की अनेक पर्वत मालाओं से घिरा हुआ था और उसके उच्च शृंग दूर से दिखाई देते थे। महाकवि भूषण ने रायगढ के विषय में लिखा है—'दच्छिन के सब दुग्ग जिति दुग्ग सहार विलास सिव सेवक सिव गढ़ पती कियो रायगढ़ धाम, तँह नृप राजधानी करी, जीति सकल तुरकान, सिव सरजा रुचि दान में, कीन्हो सुजस जहान'। शिवराजभूषण में—छंद 15 से छंद 24 तक रायगढ़ के वैभव-विलास का विस्तृत वर्णन है। छंद 15

('वारि पताल सो माची मही अमरावती की छबि ऊपर छाजें') से यह भी ज्ञात होता है कि रायगढ़ के दुर्ग की पानी से भरी हुई एक बहुत गहरी खाई भी थी। शिवाजी का राज्याभिषेक रायगढ़ में, 6 जून, 1674 ई० को हुआ था। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् गंगाभट्ट इस समारोह के आचार्य थे। शिवाजी की समाधि भी रायगढ़ में ही है।

रायचूर (मैसूर)

दक्षिण का प्रसिद्ध प्राचीन नगर है। रायचूर का मुख्य ऐतिहासिक स्मारक यहां का दुर्ग है जिसे वारंगल नरेश के मन्त्री गोरे गंगायरुड्डी वारु ने 1294 ई० में बनवाया था। यह सूचना एक विशाल पाषाण फलक पर उत्कीर्ण अभिलेख से मिलती है। प्रारंभ में रायचूर में हिंदू तथा जैन राजवंशों का राज था। पीछे बहमनी सल्तनत का यहां कब्जा हो गया। 15वीं शती के अंत में बहमनी राज्य की अवनति होने पर बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर पर अधिकार कर लिया और तत्पश्चात् औरंगजेब द्वारा बीजापुर रियासत के मुगल-साम्राज्य में मिला लिए जाने पर यह नगर भी इस साम्राज्य का एक अंग बन गया। इसी समय रायचूर के किले में मुगल सेनाओं का शिविर बनाया गया था। किले के पश्चिमी दरवाजे के पास ही एक सुंदर भवन के अवशेष हैं। किला दो प्राचीरों से घिरा हुआ है। भीतरी प्राचीर और उसके प्रवेश द्वार इब्राहीम आदिलशाह ने 1549 ई० के लगभग बनवाए थे। प्राचीरों के तीन ओर एक गहरी खाई है और दक्षिण की ओर एक पहाड़ी। ये दीवारें बारह फुट लंबे और तीन फुट मोटे प्रस्तर खंडों से बनी हैं। ये पत्थर बिना चूने या मसाले के परस्पर जुड़े हुए हैं। रायचूर की जामा-मसजिद 1618 ई० में बनी थी। एक-मीनार नाम की मसजिद महमूदशाह बहमनी के काल (919 हिजरी) मे बनी थी। यह सूचना एक फारसी अभिलेख से प्राप्त होती है जो इसकी देहली पर खुदा हुआ है। मसजिद में केवल एक ही मीनार है जिसकी ऊंचाई 65 फुट है। यह मसजिद के दक्षिण-पूर्वी कोने में स्थित है। इसमें दो मंजिलें हैं। मीनार ऊपर की ओर पतली है और शीर्ष पर बहमनी शैली के गुंबद से ढकी हुई है। इस मसजिद के पास यतीमशाह की मसजिद तथा एक दरवाजा है। अन्य दरवाजों में नौरंगी दर-वाजा हिंदूकालीन जान पड़ता है। इसके एक बुर्ज पर एक नाग-राजा की मूर्ति है जिसके सिर पर पंचमुखी सर्प का मुकुट है।

रायपुर (म० प्र०)

छत्तीसगढ़ (प्राचीन दक्षिण कोसल) के क्षेत्र का मुख्य नगर है। इसकी

स्थापना संभवतः 14वीं शती के अंतिम चरण में हुई थी। खलारी के कलचुरि-नरेश राजा सिंहा ने प्रथम बार यहां अपनी राजधानी बनाई। रायपुर में एक मध्ययुगीन दुर्ग भी है जिसके अंदर कई प्राचीन मंदिर हैं। यहां का सर्वश्रेष्ठ मंदिर दूधाधारी महाराज के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें बहुत से भाग श्रीपुर या सिरपुर के कलावशेषों से निर्मित किए गए हैं। इनमें मुख्य पत्थर के स्तंभ हैं जिन पर हिंदू देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियां खुदी हुई हैं। मंदिर के शिखर के निचले भाग में रामायण की कथा के कुछ सुंदर दृश्य उत्कीर्ण हैं जो अधिक प्राचीन नहीं हैं। प्रदक्षिणापथ के गवाक्ष में नृसिंहावतार की मूर्ति तथा अन्य मूर्तियां स्थापित हैं। ये सिरपुर से लाई गई थीं। ये उच्चकोटि की मूर्तिकला के उदाहरण हैं। इस मंदिर तथा संलग्न मठ का निर्माण दूधाधारी महाराज द्वारा भौंसले राजाओं के समय में किया गया था। इससे पहले छत्तीसगढ़ में तांत्रिक संप्रदाय का बहुत जोर था। दूधाधारी महाराज ने प्रांत की नवीन सांस्कृतिक चेतना के उद्बोधन में प्रमुख भाग लिया और तांत्रिक संप्रदाय की भ्रष्ट परंपराओं को वैष्णव मत की सुरुचि-संपन्न मान्यताओं द्वारा परिष्कृत करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया था। रायपुर से राजा महासौदेवराज का सरभपुर नामक ग्राम से प्रचलित किया गया एक ताम्रदानपट्ट प्राप्त हुआ है जिसके अभिलेख से यह गुप्तकालीन सिद्ध होता है। इसमें सौदेवराज द्वारा पूर्वराष्ट्र में स्थित श्रीसाहिक नामक ग्राम को दो ब्राह्मणों को दान में दिए जाने का उल्लेख है।

(2) (जिला सुलतानपुर, उ० प्र०) अमेठी के पास स्थित इस ग्राम में अनेक बौद्धकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं।

रायलसीमा (आं० प्र०)

यहां स्थित लेपाक्षी का मंदिर वास्तुसौंदर्य तथा भित्तिचित्रों के लिए उल्लेखनीय है।

रायसेन = राजसीन (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

मालव-क्षेत्र में स्थित मध्यकालीन नगर। बाबर के समय में यहां का राजा शीलादित्य था जो ग्वालियर के विक्रमादित्य, चित्तौड़ के राणासांगा, चंदेरी के मेदिनीराय तथा अन्य राजपूत नरेशों के साथ कनवा के युद्ध में बाबर से लड़ा था (1527 ई०)। टाड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है कि शीलादित्य राणासांगा से विश्वासघात करके बाबर से मिल गया था। 1543 ई० में रायसेन के दुर्ग पर शेरशाह ने आक्रमण किया। उसने इस किले पर अधिकार तो कर लिया किंतु इसके बाद विश्वासघात करके उसने उन

दुर्गस्थ राजपूतों को मरवा डाला जिनकी रक्षा का वचन उसने पहले दिया था। इस बात से राजपूत शेरशाह के पक्के शत्रु बन गये और कालिंजर के युद्ध में उन्होंने शेरशाह का डटकर सामना किया।

रावणह्रद

मानसरोवर (तिब्बत)के निकट पश्चिम की ओर एक झील जिससे सतलज नदी निकलती है।

रावतपुर (जिला हमीरपुर, उ०प्र०)

मध्यकाल के चन्देल-नरेशों के समय के ध्वंसावशेष इस स्थान पर पाये गए हैं।

रावल (जिला मथुरा, उ०प्र०)

यमुना तट के समीप छोटा-सा ग्राम है जिसे श्रीकृष्ण की प्रेयसी राधा की जन्मभूमि माना जाता है किन्तु परंपरागत अनुश्रुति में बरसाना को ही यह गौरव प्राप्त है।

रावली (ज़िला बिजनौर, उ०प्र०)

मालिनी और गंगा का संगम-स्थान जो बिजनौर नगर से 6 मील उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित है। मालिनी नदी के तट पर कालिदास के अभिज्ञान-शाकुंतल में वर्णित कण्वाश्रम की स्थिति थी—(दे० मंडावर)। स्थानीय जन-श्रुति मे कहा जाता है कि यह आश्रम रावलीघाट के समीप ही स्थित था। (दे० मालिनी)

रावी

पंजाब की प्रसिद्ध नदी—प्राचीन इरावती। (दे० **इरावती**)

राहतगढ़ (जिला सागर, म०प्र०)

गढ़मंडला नरेश संग्राम शाह (मृत्यु 1541 ई०) के बावनगढ़ों में से एक। अकबर ने गढ़मंडला की रानी वीरांगना दुर्गावती के निधन के पश्चात् उसके पुत्र वीरनारायण के उत्तराधिकारी चंद्रशाह को गोंडवाना का राजा बनाने के पश्चात् जो किले ले लिये थे उनमें से यह भी था।

राहिब

महमूद गजनी के इतिहासकारों ने रामगंगा नदी को राहिब लिखा है। कन्नौज के राजा त्रिलोचनपाल और महमूद गजनी मे परस्पर युद्ध 1019 ई० में रामगंगा के तट पर ही हुआ था। उस समय त्रिलोचनपाल कन्नौज के निकट बारी नामक स्थान पर रहता था।

रिद्धपुर (म०प्र०)

इस स्थान पर गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिसमें समुद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त 'तत्पादपरिगृहीत' शब्दों से ज्ञात होता है कि उसके पिता चंद्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त की योग्यता को जानते हुए ही उसे अपने राज्य का उत्तराधिकारी चुना था।

रीवां (म० प्र०)

प्राचीन नाम बांधवगढ़ है। यहां बुंदेला क्षत्रियों का राज्य था।

रुचक

विष्णुपुराण 2, 2, 27 के अनुसार मेरुपर्वत के दक्षिण में स्थित एक पर्वत —'त्रिकूटः शिशिरश्च पतंगो रुचकस्तथा निषदाद्यादक्षिणतस्तस्य केसर-पर्वताः'।

रुद्रपुर (ज़िला गोरखपुर, उ० प्र०)

गौरी बाजार रेलवे स्टेशन से प्रायः 10 मील दक्षिण की ओर इस छोटे-से कस्बे के पास सहनकोट नामक एक जीर्ण-शीर्ण दुर्ग स्थित है। इस स्थान का वर्णन चीनी यात्री युवानच्वांग ने अपने यात्रावृत्त मे किया है। इसकी यात्रा के समय 630-645 ई० है। इस स्थान पर एक बड़ा नगर बसा हुआ था। यहा एक धनी ब्राह्मण रहता था जो परम धार्मिक तथा चरित्रवान् था। इसने भिक्षुकों के स्वागत के लिए एक विशाल मंदिर बनवाया था। युवानच्वांग इस स्थान पर कुशीनगर से बनारस जाते समय आया था। किले के पूर्व में दूधनाथ का मंदिर है। कुछ दूर पर एक वृक्ष के नीचे 11 फुट ऊंची विष्णु की मूर्ति स्थापित है। रुद्रपुर के चारों ओर हिंदू नरेशों के समय के अनेक मंदिर हैं।

रुद्रप्रयाग = रुद्रावर्त (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

महाभारत वन० मे तीर्थ-वर्णन के प्रसंग में उल्लिखित है—'रुद्रावर्त ततो गच्छेत् तीर्थसेवी नराधिप, तत्रस्नात्वा नरो राजन् स्वर्गलोकं च गच्छति'— वन० 84, 37। रुद्रप्रयाग में मदाकिनी [(दे० मंदाकिनी 3)] और गंगा की मुख्य धारा अलकनंदा का संगम है। गढ़वाल में नदियों के संगम-स्थानों को बहुधा प्रयाग नाम से अभिहित किया गया है—यथा देवप्रयाग, कर्ण-प्रयाग, आदि।

रुद्रावर्त दे० रुद्रप्रयाग

रुनुकता (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा-आगरा मार्ग पर मथुरा से 10 मील पर स्थित छोटा-सा ग्राम है। इसका प्राचीन नाम रेणुका क्षेत्र कहा जाता है। किंवदंती है कि यहां महर्षि

जमदग्नि का आश्रम स्थित था। एक ऊंचे टीले पर जमदग्नि और उनकी पत्नी रेणुका का मंदिर है। नीचे उनके पुत्र परशुराम के नाम पर प्रसिद्ध दूसरा मंदिर है। (रेणुका के नाम से संबद्ध अन्य स्थान के लिए दे० चंद्रवट)। जनश्रुति है कि महाकवि सूरदास का जन्म इसी स्थान पर हुआ था। ये मुगल सम्राट् अकबर के समकालीन थे। परामौली नाम के ग्राम में सूरदास का निवास-स्थान बताया जाता है। रुनुकता में यमुना पूर्व दिशा की ओर बहते-बहते एकाएक घूमकर कुछ दूर तक पश्चिम की ओर बहती है। (टि० सीही नामक ग्राम को भी सूरदास का जन्मस्थान माना जाता है।)

रुमा

सांभर झील (ज़िला अजमेर, राजस्थान) के निकटवर्ती क्षेत्र का नाम। रुमा झील से मिलने वाले नमक को सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रंथों में रोमक कहा गया है।

रुम्मिनीदेई दे० लुंबिनीग्राम

रुहेलखंड (उ० प्र०)

अफगानिस्तान के निवासी रुहेलों के नाम से प्रसिद्ध इलाका जिसमें बिजनौर, मुरादाबाद, बरेली, शाहजहांपुर आदि ज़िले शामिल हैं। रुहेलों का राज्य इस क्षेत्र में 18वीं शती में था किंतु 1764 ई० में मीरनपुर कटरा के युद्ध में रुहेले, नवाब अवध और अंग्रेजों की संयुक्त सेनाओं से परास्त हो गए और उनके राज्य की इतिश्री हुई। रुहेलखंड के इलाके को प्राचीन समय में कटेहर कहते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि महाभारत सभा० 27, 17 में वर्णित लोह या रोह (=रोहित) नामक प्रदेश ही प्राचीनकाल में रुहेलों का मूल निवास स्थान था और उनका नाम इसी प्रदेश में रहने के कारण रोहेला या रुहेला हुआ था। लोह वर्तमान काफिरिस्तान का ही प्राचीन नाम था। (दे० लोह)

रूपनगर (राजस्थान)

औरंगजेब के समय में रूपनगर की रियासत में विक्रम सोलंकी का राज्य था। इनकी पुत्री चंचलाकुमारी ने मुगल सम्राट् की मानहानि की थी जिसके दंडस्वरूप औरंगजेब ने रूपनगर पर आक्रमण किया। आड़े समय पर उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने रूपनगर की सहायता की और मुगल सेना को पराजित होकर पीछे लौटना पड़ा। युद्ध के पश्चात् चंचला और राजसिंह का विवाह हो गया।

रूपनाथ (ज़िला जबलपुर, म०प्र०)

स्लीमेनाबाद से 14 मील पश्चिम की ओर एक छोटा-सा रमणीक स्थान है। रूपनाथ शिव का प्राचीन मंदिर यहां स्थित है। अशोक का अमुख्य शिलालेख सं० 1 यहां एक चट्टान पर उत्कीर्ण है जिसका संस्कृत रूपांतर निम्नलिखित है— देवानां प्रियः एवं आह सातिरेकाणि सार्धद्वयानि वर्षाणि अस्मि अहं श्रावकः न तु वाढं प्रकांतः, सातिरेकः तु संवत्सरः यत् अस्मि संघं उपेतः, वाढं तु प्रकांतः। ये अमुष्मैकालाय जंबूद्वीपे अमृषादेवाः अभूवन् ते इदानीं मृषाः कृता। प्रक्रमस्य हि इदं फलम्। न तु इदं महत्तया प्राप्तव्यम्। क्षुद्रकेण हि केनापि प्रक्रममाणेन शक्यः विपुलोऽपि स्वर्गः आराधयितुम, एतस्मै अर्थाय च श्रावणं कृतं क्षुद्रकाः च उदाराः च प्रक्रमन्तां इति। अंताः अपि च जानन्तु अयं प्रक्रमः किमति चिरस्थितकः स्यात्। अयं हि अर्थः वर्धिष्यते वाढं वर्धिष्यते। इमं च अर्थं पर्वतेषु लेखयत परत्र इह च। सति शिलास्तंभे शिलास्तंभे लेखितव्यः। सर्वत्रविवसितव्यमिति। व्युष्टेन श्रावणं कृतं 256 सत्रविवासात्।' जान पड़ता है कि अशोक के समय में यह स्थान तीर्थरूप में मान्य था।

रूपनारायण

प्राचीन ताम्रलिप्ति या वर्तमान तामलुक के निकट बहने वाली नदी। प्राचीनकाल मे ताम्रलिप्ति बंगाल की खाड़ी पर बसा हुआ एक बंदरगाह था किंतु अब यह स्थान समुद्र-तट से प्राय. 60 मील दूर है। रूपनारायण नदी गंगा में मिलती है। तामलुक दोनों नदियों के संगम के निकट स्थित है।

रूपवहिक, रूपवाहित

महाभारत में वर्णित एक जनपद जो चि० वि० वैद्य के मत में वर्तमान महाराष्ट्र एक भाग था—'कुंतयोऽवंत्यश्चैव तथैवा परकुंतयः, गोमंता मंडकाः संडा विदर्भा रूपवाहिकाः' भीष्म 9, 43।

रूपालनगर=रूपावती

रूपावती=रूपालनगर (गुजरात)

पश्चिम-रेलवे के सोनीपुर-रूपाल स्टेशन से रूपावती—वर्तमान रूपाल-नगर—केवल दो मील दूर है। स्थानीय किंवदंती है कि श्रीराम तथा पांडव अपने वनवासकाल में कुछ दिनों तक यहां रहे थे।

रेढ़ (ज़िला टोंक, राजस्थान)

नवाई स्टेशन से 15 मील दक्षिण-पूर्व में स्थित है। बनास की एक उपनदी इस ग्राम के निकट बहती है। यहां आहत टंक मुद्राओं (Punchmarked Coins)

सहित एक मृद्भांड प्राप्त हुआ था जिसमें माला के दाने, शंख, हाथीदांत और कांसे आदि की वस्तुएं भी रखी थीं। सिक्कों से अलक्षेंद्र (सिकंदर) की लौटती हुई सेना के विरुद्ध युद्ध करने वाले एक राजवंश के अस्तित्व के बारे में सूचना मिलती है।

रेणु

रेहंद नदी का प्राचीन नाम।

रेणुका

(1) (ज़िला सिरमूर, हिमाचल प्रदेश) पुराण-प्रसिद्ध परशुराम की माता रेणुका से इस स्थान का संबंध बताया जाता है।

(2) (ज़िला आगरा, उ० प्र०) आगरा से 12 मील पश्चिम की ओर परशुराम की माता के नाम से यह स्थान प्रसिद्ध है। रेणुका यमुना-तट पर बसा हुआ बहुत प्राचीन स्थान है जैसा कि यहां के अनेक मंदिरों के ध्वंसावशेषों से प्रमाणित होता है। (दे० रुनकता)

रेणुकागिरि (राजस्थान)

इसे रैनागिरि भी कहते है। यह स्थान अलवर-रिवाड़ी रेलपथ पर खैरथल स्टेशन से पांच मील दूर है। कहा जाता है कि इस स्थान का संबंध परशुराम की माता रेणुका से है। यहां बेनामी पंथ के प्रवर्तक संतलदास की समाधि भी है।

रेणुकाद्रि=दे० सौंदत्ती।

रेमुणा (बंगाल)

बालासौर से 6 मील सप्तशरा नदी के तट पर स्थित है। कहते हैं कि पुरी जाते समय श्री चैतन्य इस स्थान पर ठहरे थे। यहां लांगुला नरसिंहदेव ने गोपीनाथ का भव्य मंदिर बनवाया था।

रेवा

नर्मदा का एक नाम। रेवा का शाब्दिक अर्थ उछलने कूदने वाली (नदी) है जो मूलतः इसके पार्वतीय प्रदेश में बहनेवाले भाग का नाम है। (रेव् धातु का अर्थ उछलना कूदना है)। नर्मदा का अर्थ नर्म अथवा सुख-प्रदायिनी है। वास्तव में नर्मदा नाम इस नदी के उस भाग का निर्देश करता है जो मैदान में प्रवाहित है। नर्मदा के अन्य नाम सोमोद्भवा (सोमपर्वत से निस्सृत) और मेकलकन्या (मेकलपर्वत से निकलने वाली) भी हैं—'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवामेकलकन्याका'–अमरकोश। मेघदूत, (पूर्वमेघ,२०) में कालिदास ने रेवा का सुंदर वर्णन किया है—'स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुंजे मुहूर्तम्,

तोयोत्सर्गाद्द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्मतीर्णः, रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विंध्यपादे विशीर्णाम्, भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य'। रामटेक को मेघ का प्रस्थानबिंदु मानते हुए मेघ के यात्रा-क्रम से सूचित होता है कि उपर्युक्त छंद में जिस स्थान पर रेवा का वर्णन है वह वर्तमान होशंगाबाद (म० प्र०) के निकट रहा होगा। अमरकोश के उपर्युक्त उद्धरण से तथा मेघदूत के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि नर्मदा और रेवा दोनों ही नाम काफी प्राचीन हैं। श्रीमद्-भागवत 5,19,18 में रेवा और नर्मदा दोनों का नाम एक ही स्थान पर उल्लिखित है। इसका समाधान इस तथ्य से हो जाता है कि कहीं-कहीं प्राचीन संस्कृत साहित्य में रेवा इस नदी के पूर्वी अथवा पर्वतीय भाग को और नर्मदा पश्चिमी अथवा मैदानी भाग को कहा गया है (दे० नर्मदा)। मेघदूत के उपर्युक्त उद्धरण से भी इस बात की पुष्टि होती है। प्राचीन काल की प्रसिद्ध नगरी माहिष्मती रेवा के तट पर बसी हुई थी जैसा कि रघुवंश 6,43 से स्पष्ट है। (दे० माहिष्मती)

रेवासर दे० रवालसर

रेहद (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

यह नदी विंध्याचल से निकलकर सोन में गिरती है। इसका प्राचीन नाम रेणु कहा जाता है।

रेहली (ज़िला सागर, म० प्र०)

गढ़मंडला नरेश संग्रामसिंह (मृत्यु 1540 ई०) के 52 गढ़ों में से एक की स्थिति रेहली में बताई जाती है। संग्रामसिंह के पुत्र दलपतशाह से वीरांगना दुर्गावती का विवाह हुआ था।

रेहिक

इस देश का उल्लेख कविवर दंडी रचित दशकुमारचरित के 8वें उच्छ्वास में है। रेहिक नरेश ने विदर्भराज के विरुद्ध विद्रोह किया था। प्रसंगानुसार जान पड़ता है कि यह देश मैसूर और नासिक या पश्चिम-दक्षिणी महाराष्ट्र के बीच में कोई छोटा जनपद होगा।

रैनागिरि दे० रेणुकागिरि

रैभ्याश्रम

हरद्वार के निकट कुब्जमार। रैभ्यऋषि का आश्रम इसी स्थान पर था।

रैरि (महाराष्ट्र)

17वीं शती में रैरि का किला बीजापुर रियासत के अधीन था। महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी ने बीजापुर से इसे छीनकर यहां अपना अधिकार कर लिया

था। यह उत्तर महाल के उन नौ किलों में से था जिन पर शिवाजी ने अपना अधिकार स्थापित किया था।

रैवतक

(1) द्वारका (प्राचीन कुशस्थली) के पूर्व की ओर स्थित पर्वत जिसका उल्लेख महाभारत सभा० अध्याय 38 दाक्षिणात्य पाठ के अंतर्गत (तथा अन्य स्थानों पर भी) है—'भाति रैवतक: शैलो रम्यसानुर्महाजिर:, पूर्वस्यादिशि रम्यायां द्वारकायां विभूषणम्'। इसके पास पांचजन्य तथा सर्वर्तुक नामक उद्यानवन सुशोभित थे जो रंगबिरंगे फूलों से चित्रित वस्त्र की भांति सुंदर दीखते थे— चित्रकम्बलवर्णाभं पांचजन्यवनं तथा सर्वर्तुकवनं चैव भाति रैवतकं प्रति'; 'कुशस्थली पुरीरम्या रैवतेनोपशोभिताम्,' महा० सभा० 14,50। सौराष्ट्र-काठियावाड़ का गिरनार नामक पर्वत ही महाभारत का रैवतक है। महाभारत और हरिवंशपुराण से विदित होता है कि रैवतक के निकट यादवों की बस्ती थी और यह लोग प्रतिवर्ष संभवत: कार्तिकमास में धूमधाम से रैवतकमह नामक उत्सव मनाते थे जिसमें रैवतकपर्वत की प्राय: 25 मील की परिक्रमा की जाती थी। जैन ग्रंथ अंतकृत दशांग में रैवतक को द्वारवती के उत्तरपूर्व में स्थित माना गया है तथा पर्वत के शिखर पर नंदनवन नामक एक उद्यान की स्थिति बताई गई है। विष्णुपुराण 4,1-64 के अनुसार आनर्त का पुत्र रेवत नामक राजा था जिसने कुशस्थली (द्वारका का पूर्व नाम) में रह कर राज्य किया था, 'आनर्तस्यापि रेवतनामा पुत्रो जज्ञे योऽसावानर्तविषयं बुभुजे पुरीं च कुशस्थलीमध्युवास'। इसी रेवत के नाम पर रैवतक-पर्वत प्रसिद्ध हुआ था। रेवत की पुत्री रेवती, कृष्ण के भाई बलराम को ब्याही थी (दे० कुशस्थली)। रैवतक का नामोल्लेख श्रीमद्भागवत में भी है, 'द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतक. ककुभो नीलो गोकामुख इंद्रकील:'। महाकवि माघ ने शिशुपालवध 4,7 में रैवतक का सविस्तार काव्यमय वर्णन किया है। कवि ने रैवतक की क्षण-क्षण में नवीन होने वाली सुंदरता का कितना भावमय वर्णन किया है—'दृष्टोपि शैल: स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद् विस्मयमाततान, क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:' अर्थात् यद्यपि कृष्ण ने रैवतक को कई बार देखा था किंतु इस बार भी पहले कभी न देखे हुए के समान उसने उनका विस्मय बढ़ाया क्योंकि रमणीयता का सच्चा स्वरूप यही है कि वह क्षण-क्षण में नई ही जान पड़ती है।

जैन-ग्रंथ विविध तीर्थ कल्प में रैवतक तीर्थरूप में वर्णित है। यहां 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने छत्र-शिला नामक स्थान के पास दीक्षा ली थी। यहीं

अवलोकन नाम के शिखर पर उन्हें कैवल्य-ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इस स्थान पर कृष्ण ने सिद्ध विनायक मंदिर की स्थापना की थी। काल-मेघ, मेघनाद, गिरिविदारण, कपाट, सिंहनाद, खोड़िक और रेवया नामक सात क्षेत्रपालों का यहीं जन्म हुआ था।

इस पर्वत में 24 पवित्र गुफाएं हैं जिनका जैन सिद्धों से संबंध रहा है। रैवतक का दूसरा नाम गिरनार भी है। रैवताद्रि का जैनस्तोत्र श्री तीर्थमाला-चैत्यवंदनम में भी उल्लेख है, 'श्री शत्रुंजय रैवताद्रि शिखरे द्वीपे भृगोःपत्तने'।

(2) विष्णुपुराण 2-4-62 के अनुसार शाकद्वीप का एक पर्वत, 'पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलाधारस्तथापरः तथा रैवतकः श्यामस्तथैवास्तगिरिर्द्विज'।

रैवतोद्यान

रैवतक पर्वत के निकट एक उद्यान जो द्वारका के पास स्थित था 'एकदा रैवतोद्याने पपौ पानं हलायुधः' विष्णु 5-36,11।

रोजननगर

सिंहलद्वीप के प्राचीन इतिहास दीपवंश के अनुसार एक भारतीय नगर जहां के अंतिम राजा महिंद का नाम दीपवंश 3-14 मे दी हुई वंशावलि मे हैं।

रोर्णा

पाणिनि 4-2-78। यह स्थान ज़िला हिसार का रोड़ी हो सकता है।

रोदा (जिला सबरकंठ, गुजरात)

10वीं शती ई० के एक मंदिर के अवशेष इस स्थान से सन् 1955 के प्रारंभ में प्राप्त हुए थे। यह मंदिर गुजरात के मध्यकालीन मंदिरों के अनुरूप ही जान पड़ता है।

रोधस्वती

श्रीमद्भागवत 5-19-18 में उल्लिखित नदी, 'गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती ...' सूची में स्थिति के अनुसार यह सरयू की निकटवर्तिनी कोई नदी जान पड़ती है। संभव है यह राप्ती हो।

रोम, रोमक (दे० रोमा)

रोमा

'अताखीं चैव रोमां च यवनानां पुरं तथा, दूतैरेव वशेचक्रे करं चैनानदापयत्' महा० सभा० 31-72। सहदेव ने रोम, अतियोकस, तथा यवनपुर (मिस्र देश मे स्थित एलेग्जेंड्रिया) नगरों को अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में जीत कर इन पर कर लगाया था। रोम अवश्य ही रोमा का रूपांतर है। (श्लोक के

पाटांतर के लिए दे० अंताखी)। रोम-निवासियों का वर्णन सभा 51-17 में, युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में उपहार लेकर आने वाले विदेशियों के साथ भी किया गया है—'द्वयक्षांत्र्यक्षांल्ललाटाक्षान् नानादिग्भ्यः समागतान् औष्णीकानन्तवासांश्च रोमकान् पुरुषादकान्'।

रोयलेश्वर=रवालसर=रोरुक।

रोरी

सक्कर (सिंध, पाकि०) से छः मील दूर। बुद्धकाल (6ठी शती ई० पू०) में रोरी का प्रदेश सौवीर या दक्षिण सिंधुदेश के अन्तर्गत था। दिव्यावदान (पृ० 545) में रोरी या रोरुक के राजा रुद्रायण का उल्लेख है। इस नगर का नामांतर अलोर या अरोर है। यहां अलक्षेंद्र के भारत-आक्रमण के समय मूषिकों का राज्य था। (दे० अलोर)

रोरुक=रोरी

रोह=लोह

रोहण (लंका)

महावंश 22,6; 23,13 में उल्लिखित लंका का दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी भाग। हुवाचकण्णिका इसी का एक भाग था। यहीं चूलनाग पर्वत नामक बौद्ध-विहार स्थित था (महावंश, 34-90)।

रोहणखेड़ (बरार, महाराष्ट्र)

खामगांव से 8 मील पर स्थित है। राष्ट्रकूट नरेशों के समय में यह प्रख्यात नगर था। यहाँ प्राचीन मंदिरों के ध्वंसावशेष अब भी देखे जा सकते हैं। इन मंदिरों में शिव का मंदिर प्रमुख है। इस की छत सपाट, स्तंभ चतुष्कोण और षटकोण और गर्भगृह पर्याप्त विस्तीर्ण है। तोरण पर बेलबूटों की नक्काशी बड़ी मनोहर है। मंदिर के निकट एक चट्टान पर एक भग्न अभिलेख है जिसमें केवल 'तदन्वये भूपतिः कूटः' शब्द शेष हैं। इससे प्रकट होता है कि यह मदिर राष्ट्रकूटों के समय का है। एलौरा का प्रसिद्ध कैलाश-मदिर जो राष्ट्रकूटों के समय में बना था, रोहणखेड के मंदिर से मिलता जुलता है। इस मदिर के पाषाणों को सुदृढ़ रूप से जोड़ने के लिए उनके बीच-बीच में तांबे की शलाकाएं जड़ी हुई हैं। बरामदे में शेषशायी विष्णु की मूर्ति अंकित है जो कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर है। रोहणखेड़ के खंडहरों से मध्यकालीन जैन मूर्तियों के भी खंडित अवशेष प्राप्त हुए हैं। अपभ्रंश भाषा के कवि पुष्पदंत इसी स्थान के निवासी कहे जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि यही पुष्पदंत, महिम्नस्तोत्र के रचयिता थे।

रोहतक=रोहितक=रोहीतक (हरयाणा)

दक्षिण पंजाब का यह अति प्राचीन नगर है। इसका उल्लेख महा० सभा० 32, 4-5 में इस प्रकार है (प्रसंग नकुल की पश्चिम दिशा की दिग्विजय का है)—"ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत्, कार्तिकेयस्य दयितं रोहीतकमुपाद्रवत्, तत्र युद्धं महच्चासीच्छूरैर्मत्तमयूरकैः'। इस प्रदेश को यहां बहुत उपजाऊ बताया गया है तथा इसमे मत्तमयूरकों का निवास बताया गया है जिनके इष्टदेव स्वामी कार्तिकेय थे (मयूर, कार्तिकेय का वाहन माना जाता है)। इसी प्रसंग में इसके पश्चात् ही शैरीषक (वर्तमान सिरसा) का उल्लेख है (दे० शैरीषक)। उद्योग० 19, 30, में भी रोहितक को कुरुदेश के सन्निकट बताया गया है—दुर्योधन के सहायतार्थ जो सेनाएं आई थीं वे रोहतक के पास भी ठहरी थी—'तथा रोहिताकारण्यं मरुभूमिश्च केवला, अहिच्छत्रं कालकूटं गंगाकूलं च भारत'। रोहतक के पास उस समय वन-प्रदेश रहा होगा जिसे यहां रोहिताकारण्य कहा गया है। कर्ण ने भी रोहितक निवासियों को जीता था 'भद्रान् रोहितकांश्चैव आग्रेयान् मालवानपि,' वन० 254, 20। प्राचीन नगर की स्थिति वर्तमान खोखराकोट के पास कही जाती है।

रोहतासगढ़ (बिहार)

सहसराम के निकट, कैमूर पहाड़ पर और सोन नदी के तट पर यह प्राचीन ग्राम है, जो अपने दुर्ग के लिए प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यह स्थान महाराज हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था। प्राचीनकाल में इनका एक मंदिर भी यहाँ स्थित था जिसे औरंगजेब के शासन-काल में तुड़वा दिया गया था। रोहतासगढ़ से बंगाल के महासामंत शशांकदेव (7वीं शती ई०; ये महाराज हर्ष के समकालीन थे तथा इन्होंने हर्ष के भाई राज्यवर्धन का युद्ध में वध किया था) का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था। मुसलमानों के समय में यह नगर बंगाल का दूसरा नाका समझा जाता था (पहला नाका चुनार में था)। रोहतासगढ़ कुछ काल तक शेरशाह के अधिकार में रहा था। राजा मानसिंह ने 1597 ई० में किले की मरम्मत करवाई थी। इस समय वे बंगाल-बिहार के सूबेदार थे। मानसिंह का अभिलेख किले के अन्दर पाया गया है। (दे० जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल 1839, पृ० 354; 693)

रोहि=मही (2)

रोहिणी (उ० प्र०)

पूर्वी उत्तर-प्रदेश में बहने वाली राप्ती की छोटी सहायक नदी। कुणाल-

जातक के अनुसार बुद्धकाल में शाक्यवंशीय तथा कोलिय-वंशीय क्षत्रियों के राज्यों के बीच की सीमा रोहिणी नदी ही बनाती थी। दोनों राज्यों के खेतों की सिंचाई रोहिणी नदी के बांध से की जाती थी। एक बार 'ज्येष्ठमूल' मास में पानी की कमी के कारण, दोनों ओर के ग्रामवासियों में परस्पर काफी झगड़ा हुआ था जिसमें कोलियों ने शाक्यों पर यह दोषारोपण किया था कि उनके यहां राज्य-परिवार में भाई-बहिनों में परस्पर विवाह संबंध होता है।

रोहित

(1) विष्णुपुराण 2, 4, 29 के अनुसार शाल्मलद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा वपुष्मान् के पुत्र रोहित के नाम पर प्रसिद्ध हुआ था।

(2)=रोह, लोह।

(3)=रोहतासगढ़।

रोहितक दे० रोहतक

रोहिता

जैन ग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार हिमालय की पद्महृद झील से निकलने वाली एक नदी। इसके अतिरिक्त इस झील से निकलने वाली अन्य नदियों में गंगा, सिंधु और हरिकांता की गणना की गई है।

रोहितानदीसुगी

जैन ग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति 4, 80 में उल्लिखित महाहिमवंत का एक शिखर।

रोहिननाला (बिहार)

उरैन, जिला मुंगेर से पांच मील उत्तर-पश्चिम में स्थित वर्तमान रेहुआ नाला। यह युवानच्वांग का लो-इन नीलो है। यहां बौद्धकाल के अनेक अवशेष हैं।

रोहिला (जिला हमीरपुर, उ० प्र०)

महोबा से दो मील दूर इस नगर की स्थापना चंदेल राजा राहिल ने 10वीं शती ई० में की थी। यहां उसने एक सुन्दर मंदिर भी बनवाया था। मंदिर तो अब खंडहर बन गया है किंतु ग्राम प्राचीन नाम से अब भी विद्यमान है।

रोहीतक दे० रोहतक

रौप्यपीठपुर

उदीपी का प्राचीन नाम।

रौप्या

यमुना के निकट बहने वाली नदी—'एतच्चर्चीकपुत्रस्य योगैर्विचरतो महीन् प्रसर्पण महीपाल रौप्यायामनितौजसः' महा० वन० 129,7. इस प्रसंग में यमुना का उल्लेख 129,2 में है —'अंबरीषश्च नाभाग इष्टवान् यमुनामनु'। रौप्या पर स्थित उपर्युक्त स्थान (प्रसर्पण) अशुभ माना गया है तथा वहां एक रात्रि से अधिक ठहरना भी अपवित्र कहा गया है। इसे कुरुक्षेत्र का द्वार बताया गया है—'अद्यचात्र निवत्स्यामः क्षपां भरतसत्तम, द्वारमेतत् तु कौंतेय कुरुक्षेत्रस्य भारत,' वन० 129, 11। इस नदी का अभिज्ञान अनिश्चित है।

लंका

रामायण-काल में रावण की राजधानी, जिसकी स्थिति वर्तमान सिंहल (सीलोन) या लंका द्वीप में मानी जाती है। भारत और लंका के बीच के समुद्र पर पुल बनाकर श्रीरामचंद्र अपनी सेना को लंका ले गए थे। वाल्मीकि-रामायण के अनुसार, भारत के दक्षिणतम भाग में स्थित महेंद्र नामक पर्वत से कूदकर हनुमान् समुद्रपार लंका पहुंचे थे। रामचंद्रजी की सेना ने लंका में पहुंच कर समुद्रतट के निकट सुवेल पर्वत पर पहला शिविर बनाया था। लंका और भारत के बीच के उथले समुद्र में जो जलमग्न पर्वत-श्रेणी है उसके एक भाग को वाल्मीकि रामायण में मैनाक कहा गया है। लंका त्रिकूट नामक पर्वत पर स्थित थी। यह नगरी अपने ऐश्वर्य और वैभव की पराकाष्ठा के कारण स्वर्ण-मयी कही जाती थी। वाल्मीकि ने अरण्य० 55,7-9 और सुंदर० 2,48-50 में लंका का सुंदर वर्णन किया है 'प्रदोषकाले हनुमास्तूर्णमुत्प्लुत्य वीर्यवान्, प्रविवेश पुरीं रम्यां प्रविभक्तां महापथाम्, प्रासादमाला वितता स्तंभैः कांचनसंनिभैः, शातकुम्भनिभैर्जालैर्गंधर्वनगरोपमाम्, सप्तभौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम्; स्थलैः स्फटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरविभूषितैः, तैस्ते शुशुभिरे तानि भवान्यत्र रक्षसाम्।' सुंदरकांड 3 में भी इस रम्यनगरी का मनोहर वर्णन है, जिसका मुख्य भाग इस प्रकार है—'शारदाम्बुधरप्रख्यैर्भवनैरुपशोभिताम्, सागरोपम निर्घोषां सागरा-निलसेविताम्। सुपुष्टबलसंपुष्टां यथैव विटपावतीम् चारुतोरणनिर्यूहां पांडुर-द्वारतोरणाम्। भुजगाचरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिव, तां सविद्युद्घनाकीर्णां ज्योतिर्गणनिषेविताम्। चंडमारुतनिर्ह्रादां यथा चाप्यमरावतीम्, शातकुंभेन महता प्राकारेणाभिसंवृताम् किंकणीजालघोषाभिः पताकाभिरलंकृताम्, आसाद्य सहसा हृष्टः प्राकारमभिपेदिवान्। वैदूर्यकृतसोपानैः स्फटिक मुक्ताभिर्मणिकुट्टिमभूषितैः तप्तहाटक निर्यूहैः राजतामलपांडुरैः, वैदूर्यकृतसोपानैः स्फटिकान्तरपांसुभिः, चारुसंजवनोपेतैः खमिवोत्पतितैः शुभैः, क्रौंचबर्हिणसंघुष्टैर्राजहंसनिषेवितैः,

तूर्याभरणनिर्घोषैः सर्वतः परिनादिताम् । वस्त्रोकसारप्रतिमां समीक्ष्य नगरीं ततः, खमिवोत्पतितां लंकां जहर्ष हनुमान् कपिः', सुंदर० 3,2-3-4-5-6-7-8-9-10 11-12 । हनुमान् ने सीता से अशोकवनिका में भेंट करने के उपरांत, लंका का एक भाग जलाकर भस्म कर दिया था । सुंदर० 54,8-9 और सुंदर० 14 में लंका के अनेक कृत्रिम वनों एवं तड़ागों का वर्णन है । राम ने रावण के वधोपरान्त लंका का राज्य विभीषण को दे दिया था । बौद्धकालीन लका का इतिहास महावंश तथा दीपवंश नामक पाली ग्रथों में प्राप्त होता है । अशोक के पुत्र महेंद्र तथा पुत्री संघमित्रा ने सर्वप्रथम लका में बौद्ध मत का प्रचार किया था । (दे० सिहल)

लंगूरगढ़ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

लैंसडाऊन के पश्चिम में कुछ दूर पर स्थित है । यहां गढ़वाल की प्राचीन गढ़ी तथा कई राजप्रासाद स्थित थे जिनके खंडहर यहां आज भी देखे जा सकते हैं । प्राचीनकाल में यहां गढ़वाल का सेना का शिविर भी अवस्थित था । यहां की सेनाओं ने रुहेलों और गोरखों से कई बार वीरतापूर्ण मोर्चा लेकर गढ़वाल की रक्षा की थी ।

लंघती

'लंघती गोमती चैव संध्या त्रिस्रोतसी तथा, एताश्चान्याश्च राजेन्द्र सुतीर्था लोकविश्रुताः' महा० सभा० 9,23 । गोमती के निकट कोई नदी जिसका अभिज्ञान अनिश्चित है ।

लंजिका (जिला भंडारा, म० प्र०)

यह स्थान कलचुरिनरेशों के समय के भग्नावशेषों के लिए उल्लेखनीय है ।

लंपाक (अफगानिस्तान)

लंपाक का वर्तमान लमग़ान से अभिज्ञान किया गया है । हेमचंद्र के अभिज्ञान चिंतामणि नामक कोश के उल्लेख से प्रकट होता है कि लंपाक में मुरुंड या शक लोग बसते थे 'लंपाकास्तु मुरुंडास्युः' । युवानच्वांग ने अपनी भारत-यात्रा के दौरान में इस स्थान को देखा था । उन्होंने इस स्थान को कपीसीन से 100 मील पूर्व बताया है । (कपीसीन=कपिशा ।)

लंबन

विष्णुपुराण 2,4,36 के अनुसार कुशद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के पुत्र के नाम पर प्रसिद्ध था ।

लकनावरम् (मुलुगतालुका, ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

यह वारंगल-नरेशों के समय में बनी हुई झील है जो रामप्पा के समान ही एक बृहत् सरोवर है। जैसे रामप्पा राम के नाम पर है वैसे ही यह लक्ष्मण के नाम पर प्रसिद्ध है। झील का जलसंग्रह-क्षेत्र 75 वर्गमील है। इसमें से तीन नहरें काटी गई थीं जिनसे तेरह सहस्र एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती थी। इस झील का निर्माण तीन संकीर्ण घाटियों को बांध द्वारा रोक कर किया गया था।

लकहरपथरी (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

लहोरियादह नामक ग्राम के पास इस नाम की पहाड़ी के क्रोड़ में प्रागैतिहासिक गुफ़ाएं अवस्थित हैं, जिनकी भित्तियों पर रंगीन चित्रकारी प्रदर्शित है। ये चित्र कई सहस्र वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में बसने वाले आदिमानवों की कलाकृतियां हैं।

लकुंडी (मैसूर)

गदग स्टेशन से आठ मील पूर्व की ओर लोकोकंडी या प्राचीन लकुंडी की बस्ती है। यहां विश्वनाथ और मल्लिकार्जुन नामक शिवमंदिर स्थापत्य की दृष्टि से उच्चकोटि के माने जाते हैं। ये मंदिर बहुत प्राचीन हैं।

लक्षेट्टीपट्ट (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

इस स्थान पर 12 वीं और 14 वीं शतियों की हिंदू सैनिक क़िलाबंदियों के अवशेष उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मणटीला दे० लखनऊ

लक्ष्मणतीर्थ (मद्रास)

रामेश्वरम् के मंदिर से लगभग 1 मील पश्चिम की ओर पांबन के मार्ग के दक्षिण पार्श्व में लक्ष्मणकुंड नामक सरोवर है, जो लक्ष्मणतीर्थ कहलाता है। यहां रामेश्वरम् के नाम के अनुरूप ही लक्ष्मणेश्वर शिव का मंदिर है। किंवदंती है कि यहां लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी के समान ही समुद्र पर सेतु बांधने से पहले शिव की आराधना की थी।

लक्ष्मणपुर दे० लखनऊ

लक्ष्मणवती दे० (1) लखनऊ (2) लखनौती

लक्ष्या

जिला ढाका (पूर्वी पाक०) की एक सुंदर नदी जो ब्रह्मपुत्र की प्राचीन धारा से निकलनेवाली तीन छोटी-छोटी नदियों से मिलकर बनी है।

लखनऊ (उ० प्र०)

गोमती-नदी के दक्षिणतट पर बसा हुआ रमणीक नगर है। स्थानीय जन-श्रुति के अनुसार इस नगर का प्राचीन नाम लक्ष्मणपुर या लक्ष्मणवती था और इसकी संस्थापना श्रीरामचंद्रजी के अनुज लक्ष्मण ने की थी। श्रीराम की राजधानी अयोध्या लखनऊ के निकट ही स्थित है। नगर के पुराने भाग में एक ऊंचा दूह है जिसे आज भी लक्ष्मणटीला कहा जाता है। हाल ही में लक्ष्मणटीले की खुदाई में वैदिककालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। यही टीला जिस पर अब औरंगजेब के समय में बनी मसजिद है, यहां का प्राचीनतम स्थल है। इस स्थान पर लक्ष्मण जी का प्राचीन मंदिर था जिसे इस धर्मांध सम्राट् ने काशी, मथुरा आदि के प्राचीन ऐतिहासिक मंदिरों के समान ही तुड़वा डाला था। लखनऊ का प्राचीन इतिहास अप्राप्य है। इसकी विशेष उन्नति का इतिहास मध्ययुग के पश्चात् ही प्रारम्भ हुआ जान पड़ता है क्योंकि हिंदू काल में, अयोध्या की विशेष महत्ता के कारण लखनऊ प्राय अज्ञात ही रहा। सर्वप्रथम, मुगल सम्राट् अकबर के समय मे चौक में स्थित अकबरी दरवाजे का निर्माण हुआ था। जहांगीर और शाहजहां के जमाने में भी इमारतें बनीं, किंतु लखनऊ की वास्तविक उन्नति तो नवाबी काल में ही हुई। मुहम्मदशाह के समय मे दिल्ली का मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था। 1720 ई० में अवध के सूबेदार सआदतखां ने लखनऊ में स्वतन्त्र सल्तनत कायम करली और लखनऊ के शिया संप्रदाय के नवाबों की प्रख्यात परंपरा का आरंभ किया। उसके पश्चात् लखनऊ मे सफदरजंग, शुजाउद्दौला, आसफुद्दौला, सआदतअली, गाजीउद्दीन हैदर, नसीरुद्दीन हैदर, मुहम्मद अली शाह और अत में लोकप्रिय नवाब वाजिदअलीशाह ने क्रमशः शासन किया। नवाब आसफुद्दौला (1775-1797 ई०) के समय से राजधानी फैज़ाबाद से लखनऊ लाई गई (1775 ई०)। आसफुद्दौला ने लखनऊ में बड़ा इमामबाड़ा, विशाल रूमी दरवाजा और आसफी मसजिद नामक इमारतें बनवाई—इनमें अधिकांश इमारतें अकाल पीड़ितों को मजदूरी देने के लिए बनवाई गई थीं। आसफुद्दौला को लखनऊ निवासी 'जिसे न दे मौला, उसे दे आसफुद्दौला' कहकर आज भी याद करते हैं। आसफुद्दौला के जमाने में ही अन्य कई प्रसिद्ध भवन, बाजार तथा दरवाजे बने थे जिनमें प्रमुख ये हैं—दौलतखाना, रेजीडैंसी, बिबियापुर कोठी, चौक बाजार आदि। आसफुद्दौला के उत्तराधिकारी सआदत अलीखां (1798-1814 ई०) के शासनकाल में दिलकुशामहल, बेली गारद दरवाजा और लाल बारादरी का निर्माण हुआ। गाजीउद्दीन हैदर (1814-1827 ई०) ने मोती महल, मुबारक मंजिल

सआदतअली और खुर्शीदजादी के मकबरे आदि बनवाए। नसीरुद्दीन हैदर के जमाने में प्रसिद्ध छतर मंजिल और शाहनजफ़ आदि बने। मुहम्मद अलीशाह (1837-1842 ई०) ने हुसैनाबाद का इमामबाड़ा, बड़ी जामामसजिद और हुसैनाबाद की बारादरी बनवायी। वाजिदअलीशाह ने लखनऊ के विशाल एवं भव्य क़ैसरबाग का निर्माण करवाया। यह कलाप्रिय एवं विलासी नवाब यहाँ कई-कई दिन चलने वाले अपने संगीतनाटकों का जिनमें इंद्रसभा नाटक प्रमुख था—अभिनय करवाया करता था। 1856 ई० में अंग्रेजों ने वाजिदअलीशाह को गद्दी से उतार कर अवध की रियासत की समाप्ति कर दी और उसे ब्रिटिश भारत में सम्मिलित कर लिया। 1857 ई० के भारत के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम में लखनऊ की जनता ने रेजीडेंसी तथा अन्य इमारतों पर अधिकार कर लिया था किंतु शीघ्र ही पुनः राज्यसत्ता अंग्रेजों के हाथ में चली गई और स्वतन्त्रता-युद्ध के सैनिकों को कठोर दंड दिया गया।

लखनादौन (म० प्र०)

सिवनी-जबलपुर मार्ग पर 39 वें मील पर स्थित है। इस ग्राम से अनेक प्राचीन मूर्तियां तथा अभिलेख मिले हैं। यह स्थान जैनमत से संबंधित जान पड़ता है क्योंकि विक्रमसेन के खंडित लेख से ज्ञात पड़ता है कि उन्होंने किसी तीर्थंकर का मंदिर यहां बनवाया था।

लखनौती=गौड़।

लखराम (गुजरात)

गुजरात के प्रसिद्ध नगर पाटन या अन्हलवाड़ा की स्थापना 746 ई० में इसी ग्राम के स्थान पर वनराज चावड़ा द्वारा की गई थी। यह ग्राम सरस्वती नदी के तट पर बसा हुआ था। (दे० अन्हलवाड़ा)

लखुरबाग (भूतपूर्व जसो रियासत, म० प्र०)

जसो से 15 मील पर एक पहाड़ी के क्रोड में यह प्राचीन ग्राम स्थित है: यहां गुप्तकालीन मूर्तियों के अवशेष पर्याप्त संख्या में मिले हैं। निकटस्थ क्षेत्र में प्राचीन जैन मूर्तियां प्रायः मिल जाती हैं। इस स्थान पर पहले अवश्य कई मंदिर रहे होंगे।

लमगान (अफगानिस्तान) दे० लपाक

लचदरलेण (महाराष्ट्र)

धरसेव या उस उसमानाबाद के पास यह गुहामंदिर है जिसका निर्माण काल 500-600 ई० के लगभग माना जाता है। (दे० धरसेव)।

लच्छागिर (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

इंडियाख़ास स्टेशन से 3 मील पर स्थित है। स्थानीय दंतकथाओं में इस स्थान का संबंध महाभारत में वर्णित लाक्षागृह से बताया जाता है जैसा कि ग्राम के नाम से इंगित होता है किंतु इसमें सत्य का जरा भी अंश नहीं है क्योंकि महाभारत के प्रसंगानुसार लाक्षागृह हस्तिनापुर के निकट ही स्थित था। (दे० वारणावत)

लटूर=लट्टनूर (ज़िला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

दक्षिणभारत के प्रसिद्ध राष्ट्रकूट राजवंश का मूल निवास-स्थान है। राज-शक्ति प्राप्त होने पर राजा गोविंद तृतीय ने मण्यखेट (=मलखेड़) को अपनी राजधानी बनाया था। (दे० मण्यखेट, मलखेड़)

लतावेष्ट

द्वारका के दक्षिणी भाग में स्थित एक पर्वत जो पंचवर्ण होने के कारण इन्द्रध्वज सा प्रतीत होता था—'दक्षिणस्यां लतावेष्ट: पंचवर्णो विराजते, इन्द्र-केतुप्रतीकाशं पश्चिमां दिशमाश्रित.'—महा० सभा० 38, दाक्षिणात्य पाठ। इस पर्वत के निकट मेरुप्रभ, तालवन और पुष्पक नामक वन थे—'लतावेष्टं समन्तात तु मेरुप्रभवनं महत्, भाति तालवनं चैव पुष्पकं पुंडरीकवत्'—महा० सभा० 38।

लद्दाख=लद्दाख दे० ललाटाक्ष।

लधूरा (जिला झांसी, उ० प्र०)

प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेषों के लिए उल्लेखनीय है।

लमेटाघाट (जिला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर के निकट नर्मदा के किनारे बसा हुआ छोटा-सा ग्राम है जिसके प्राचीन ध्वंसावशेषों में पुरातत्व की बहुमूल्य सामग्री बिखरी पड़ी है।

ललाटाक्ष, ललाताक्ष

'द्व्यक्षांस्त्र्यक्षाल्ललाटाक्षान् (=ललाताक्षान्) नानादिग्भ्य: समागतान्, औष्णीकानन्तवासांश्च रोमकान् पुरुषादकान्' महा० सभा० 51,17। इस प्रसंग में युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में विदेशों से भांति-भांति के उपहार लेकर आनेवाले विभिन्न लोगों के वर्णन में ललाटाक्षों (या ललाताक्षों) का उल्लेख भी किया गया है। विद्वानों के मत में द्व्यक्ष बदख्शां, त्र्यक्ष तरख़ान तथा ललाटाक्ष लदाख या लद्दाख है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारतकार ने यहां विदेशी नामों को संस्कृत में रूपांतरित करके लिखा है। वैसे इन शब्दों को टीकाकारों ने सार्थक बनाने का प्रयत्न किया है जैसे ललाटाक्ष को ललाट पर आंखों वाले

मनुष्य कहा गया है। उपर्युक्त श्लोक में संभवतः इन सभी विदेशी लोगों को पगड़ी धारण करने वाला कहा गया है। (दे० द्वयक्ष, त्र्यक्ष)

ललितगिरि (उडीसा)

तांत्रिक बौद्ध धर्म के उत्कर्षकाल के अनेक ध्वंसावशेष इस स्थान से प्राप्त हुए हैं। यह स्थान कटक के निकट है।

ललितपाटन (नेपाल)

मौर्यसम्राट् अशोक ने अपनी नेपालयात्रा के समय (250 ई० पू०) इस नगर को नेपाल की प्राचीन राजधानी मंजुपाटन के स्थान पर बसाया था। यह नगर आज भी कठमंडू से 2½ मील दक्षिण पूर्व की ओर स्थित है। इसको ललितपुर भी कहा जाता है। ललितपाटन में अशोक ने पांच बड़े स्तूप बनवाए थे, एक नगर के मध्य में और अन्य नगर के परकोटे के बाहर चारों कोनों पर। ये स्तूप अब भी विद्यमान हैं। उत्तरीकोण में स्थित स्तूप को स्थानीय बोली में जिपीतौडु कहते हैं (दे० सिलवेन लेवी—'ले नेपाल' (फ्रेंच) जिल्द 1, पृ० 263,331) इसी यात्रा के समय अशोक की पुत्री चारुमती ने अपने पति के नाम पर नेपाल में देवपाटन नामक नगर बसाया था।

ललितपुर

(1)=ललितपाटन।

(2)=लाटपौर (कश्मीर)। इस प्राचीन नगर की संस्थापना कश्मीर के प्रतापी नरेश ललितादित्य मुक्तापीड ने 7वीं शती में की थी। ललितादित्य की विजययात्राओं तथा उसके शासनकाल का वर्णन कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है।

(3) (उ० प्र०) यहां प्राचीन हिंदूमंदिरों के ध्वंसावशेषों पर एक मसजिद है जो बाँमा मसजिद कहलाती है। इस पर फ़िरोजशाह के समय का एक देवनागरी अभिलेख है। यह स्थान झांसी के निकट है।

लवणपुर

वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि लवणपुर लवणासुर की राजधानी का नाम था, जो वर्तमान मथुरा (उ० प्र०) के निकट स्थित थी। इसे मधुपुरी या मधुरा भी कहते थे। लवणासुर के वधोपरांत शत्रुघ्न ने इसी के स्थान पर नई मथुरा नगरी बसाई थी। लवणपुर को कालिदास ने मधूपघ्न कहा है। (दे० मधुपुरी; मधुरा; मधूपघ्न)

लवणसागर

पौराणिक भूगोल के अनुसार यह सागर जंबुद्वीप के चतुर्दिक् स्थिति है

इस के आगे क्रमानुसार विशालतर सागरों के नाम ये हैं—इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध, और जल—'लवणेक्षु सुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम्, जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः' विष्णु० 2,2,6 ।

लवणोत्स

कश्मीर का एक ग्राम जिसका उल्लेख यशस्करदेव के समय के इतिहास के प्रसंग में राजतरंगिणी में है। यहां एक रमणीय उद्यान स्थित था। नाम से इंगित होता है कि इस स्थान पर नमकीन पानी के सोते रहे होंगे। यशस्करदेव का समय संभवतः 9वीं-10वीं शती ई० है।

लवपुरी

(1) प्राचीन भारतीय उपनिवेश कंबुज (कंबोडिया) का एक भाग, लोपबुरी, जो 10वीं शती ई० में कंबुज राज्य के अधिकार में आया था। इसका विस्तार दक्षिण में स्याम की खाड़ी से, उत्तर में कमफेंग फेट तक था। लवपुरी नाम ही की नगरी इस प्रदेश की राजधानी भी थी। (दे० द्वारवती 2)

(2) = लाहौर

लहरताल (वाराणसी, उ० प्र०)

वाराणसी से 3 मील दूर एक छोटी सी झील है जहां किंवदंती के अनुसार उत्तर भारत के प्रसिद्ध संत कवि कबीर का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि वे एक विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे जो नवजात शिशु को लोकलाज से बचने के लिए इस ताल के किनारे डाल गई थी। दैवात् उधर से नीमा तथा नीरू नाम के जुलाहा दंपति जा रहे थे। वे इस बालक को ममतावश घर ले आए और उसे पालपोस कर बड़ा किया। लहरताल एक शांतिपूर्ण एवं रमणीक स्थान है और इसके निकट घने वृक्षों का उपवन है। इसके पास ही कबीर का एक पुराना मंदिर है। कबीर का जन्म संभवतः 1397 ई० में हुआ था।

लहोर (जिला अटक, प० पाकि०)

अटक के निकट एक छोटा सा ग्राम है जो संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि का जन्मस्थान शलातुर है। लहोर या लाहुर शलातुर का अपभ्रंश जान पड़ता है।

लहोरियादह (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

मिर्जापुर से रींवा जाने वाली सड़क ग्रेट दकन रोड पर, मिर्जापुर से प्रायः 45 मील दूर इस छोटे से ग्राम के निकट, सड़क से कुछ दूर पर अनेक प्रागैतिहासिक गुफाएं अवस्थित हैं। सहबइयापथरी, मोरहनापथरी, बागापथरी तथा लकहरपथरी नामक पहाड़ियों में इस प्रकार की लगभग सौ गुफाएं पाई

गई हैं। इनके अंदर भित्तियों पर लाल, पीले और श्वेत रंगों में चार-पांच सहस्र वर्ष प्राचीन चित्रकारी देखी जा सकती है। ये चित्र प्रागैतिहासिक काल में इस वन्य भूखंड के आदिम निवासियों द्वारा बनाए गए थे। कुछ विद्वानों का मत है कि इस प्रकार के चित्र जादू-टोने से संबंधित है। एक जगह सुसज्जित द्वार के भीतर एक विचित्र मनुष्य चित्रित है जिसका मुख पक्षी की चोंच के आकार का है। उसके सामने बैठे हुए दो मनुष्य उसकी पूजा कर रहे हैं। इन चित्रों से सभ्यता के विकास के पूर्व के मानव का आचार-विचार ज्ञात होता है। संभव है कि इनके तथा इस प्रकार के अन्य चित्रों के अध्ययन से वर्तमान आदि-वासियों के जीवन तथा प्रागैतिहासिक मनुष्यों के रहन-सहन में समानता की कुछ बातें मिलें।

लांका (ज़िला बिलासपुर, म० प्र०)

गढ़मंडल-नरेश राजा संग्रामसिंह (मृत्यु० 1541 ई०) के 52 गढ़ों में से एक यहां था। संग्रामसिंह के पुत्र दलपतशाह से वीरांगना दुर्गावती का विवाह हुआ था।

लांगल

चीनी यात्री युवानच्वांग ने अपने यात्रावृत में इस स्थान का उल्लेख किया है। कनिंघम के अनुसार यह स्थान मकराना (सिंध प० पाकि०) के सन्निकट रहा होगा।

लांगली

'सरयूर्वारवत्याथ लांगली च सरिद्वरा, करतोया तथात्रेयी लौहित्यश्च महानदः' महा० सभा० 9,22। इस उल्लेख के अनुसार यह सरयू के पूर्व में बहने वाली कोई नदी जान पड़ती है जिसका अभिज्ञान अनिश्चित है।

लांगूलिनी

कलिंग-उड़ीसा की एक छोटी नदी जो ऋषिकुल्या के दक्षिण में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में, चिकाकोल के नीचे गिरती है। इसे आजकल लांगुलिया कहते हैं।

लाखामंडल (ज़िला देहरादून, उ० प्र०)

चकरौता से 22 मील दूर स्थित है। यमुना नदी के निकट ही यह ग्राम बसा है। जनश्रुति है कि लाखों प्राचीन मूर्तियां इस स्थान से निकली थीं जिसके कारण इसे लाखामंडल कहा जाने लगा। यहां अब एक ही प्राचीन मंदिर है जिसमें शिव, दुर्गा, कुबेर, लक्ष्मीनारायण, सूर्य आदि देवों की कलामय मूर्तियां हैं। मंदिरों के बाहर छठी शती ई० की दो बड़ी मूर्तियां अवस्थित हैं।

लाट

दक्षिण गुजरात का प्राचीन नाम जिसका गुप्त अभिलेखों में उल्लेख है। संस्कृत काव्य का लाटानुप्रास नामक अलंकार, लाट के कवियों द्वारा ही प्रचलित किया गया था। मंदसौर अभिलेख (472 ई०) में लाट देश से दशपुर में जाकर बसने वाले पट्टवाय-शिल्पियों का उल्लेख है – 'लाटविषयान्नगावृतशैलाज्जगति-प्रथितशिल्पा:'। इस अभिलेख में लाट को 'कुसुमभरानततरुवरदेवकुलसभा-विहाररमणीय' देश कहा गया है (दे० दशपुर)। बाण ने प्रभाकरवर्धन को 'लाटपाटवपाटच्चर' (लाट देश के कौशल को चुरा लेने वाला) कहकर उसकी लाट-विजय का निर्देश किया है (हर्षचरित, उच्छ्वास 4)।

लाटपोर (कश्मीर)

प्राचीन ललितपुर। [दे० ललितपुर (2)]

लाटह्रद दे० राडद्रह।

लाढ

'आयरंग सुत' में उल्लिखित जनपद। कुछ विद्वानों ने इसका अभिज्ञान राढ़ (प० बंगाल) से किया है किंतु राढ़ नाम 11वीं शती ई० के पूर्व प्रचलित नहीं था (दे० भंडारकर, 'अशोक' पृ० 37)। आयरंगसुत में लाढ़प्रदेश को मार्गविहीन बताया गया है। इस सूत्र में लाढ़ के दो भाग सुब्बभूमि (सुह्म) और वज्जभूमि (वर्तमान मिदनापुर जिला, प० बंगाल) का भी उल्लेख है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि लाढ शायद लाट का ही रूपांतर है।

लाबूग्रामक (लंका)

महावंश 10,72 में उल्लिखित है। इसका अभिज्ञान रिनिगल (प्राचीन अरिट्ठ) पर्वत के उत्तर-पश्चिम में स्थित वर्तमान लबुनोरुव से किया गया है।

लामपुर

यह लवपुर या लाहौर है। (दे० एपिग्राफिका इंडिका, जिल्द-2 पृ० 38-39)

लावणनील (बिहार)

7वीं शती में भारत का भ्रमण करने वाले चीनी पर्यटक युवानच्वांग ने इस स्थान को चीनी भाषा में लोहपानिनीलो लिखा है। कनिंघम के अनुसार यह स्थान वर्तमान मुंगेर हो सकता है।

लावाणक

संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भास के स्वप्नवासवदत्ता-नाटक में लावाणक नामक स्थान का उल्लेख है ('वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रो-षितवानस्मि, अंक 1)। इसे वत्स देश के अंतर्गत बताया गया है। वत्सनरेश

उदयन, आरुणि से पराजित होकर अपनी राजधानी कौशांबी को छोड़कर, कुछ दिन तक लावाणक में रहा था। इसका लावणनील नामक नगर से अभिज्ञान करना संभव जान पड़ता है। (दे० लावणनील)

लाहा (प० बंगाल)

हुगली के पश्चिम में बसे हुए भाग का प्राचीन नाम है। (दे० बंगाल)

लाहुर

शलातुर का अपभ्रंश। यह ग्राम संस्कृत के वैयाकरण पाणिनि की जन्मभूमि माना जाता है। इसको लहोर भी कहते हैं। यह अटक और ओहिंद (प० पाकि०) के निकट है। (दे० शलातुर, लाहौर)

लाहूल (हिमाचल प्रदेश)

महाभारत के समय यह प्रदेश उत्सवसंकेत अथवा किन्नर देश के अंतर्गत था। आज भी यहां पर प्रचलित विवाह आदि की प्रथाएं प्राचीन काल के विचित्र रीति रिवाजों की ही परंपरा में हैं। कुछ विद्वानों के मत में महाभारत सभा० 27,17 में लाहूल को ही लोहित कहा गया है। लाहूल में 8वीं शती ई० का बना हुआ त्रिलोकनाथ का मंदिर स्थित है। इसमें श्वेत संगमर्मर की 3 फुट ऊंची मूर्ति प्रतिष्ठित है। मंदिर की पुस्तिका के लेख के अनुसार त्रिलोकनाथ अथवा बोधिसत्व की इस मूर्ति का प्रतिष्ठापन पद्मसंभव नामक बौद्ध भिक्षु ने आठवीं शती ई० में किया था। पद्मसंभव ने तिब्बत के राजा के निमंत्रण पर भारत से तिब्बत जाकर बौद्धधर्म का प्रचार किया था। मंदिर को हिंदू तथा बौद्ध दोनों ही पवित्र मानते हैं। भारत से तिब्बत को जाने वाला प्राचीन मार्ग लाहूल होकर ही जाता है।

लाहौर (प० पाकि०)

रावी नदी के तट पर स्थित बहुत प्राचीन नगर है। जनश्रुति के अनुसार इस नगर का प्राचीन नाम लवपुर या लवपुरी था और इसे श्रीरामचंद्र के पुत्र लव ने बसाया था। कहा जाता है कि लाहौर के पास स्थित कसूर नामक नगर को लव के बड़े भाई कुश ने बसाया था। वैसे वाल्मीकि रामायण से इस लोकश्रुति की पुष्टि स्पष्ट रूप से नहीं होती क्योंकि इस महाकाव्य में श्रीराम द्वारा लव को उत्तर और कुश को दक्षिण कोसल का राज्य दिए जाने का उल्लेख है—'कोसलेषुकुशं वीरमुत्तरेषु तथालवम्' (उत्तर कांड)। दक्षिण-कोसल में कुश ने कुशावती नामक नगरी बसाई थी। लव द्वारा किसी नगरी के बसाए जाने का उल्लेख रामायण में नहीं है। लाहौर का मुसलमानों के पूर्व का इतिहास प्रायः अंधकारमय और अज्ञात है। केवल इतना अवश्य पता

है कि 11वीं शती के पहले यहां एक राजपूत वंश की राजधानी थी। 1022 ई० में महमूदगजनी की सेनाओं ने लाहौर पर आक्रमण करके इसे लूटा। संभवतः इसी काल के इतिहासकारों ने लाहौर का पहली बार उल्लेख किया है। गुलामवंश तथा परवर्ती राजवंशों के शासनकाल में भी कभी-कभी लाहौर का नाम सुनाई पड़ जाता है। 1206 ई० में मु० गौरी की मृत्यु के पश्चात् लाहौर पर अधिकार करने के लिए कई सरदारों में संघर्ष हुआ जिसमें अंततः दिल्ली का क़ुतुबुद्दीन एबक सफल हुआ। तैमूर ने 14वीं शती में लाहौर के बाजारों को लूटा और 1524 ई० में बाबर ने नगर को लूटकर जला दिया किंतु उसके बाद शीघ्र ही पुराने नगर के स्थान पर नया नगर बस गया। वास्तव में, लाहौर को अकबर के समय से ही महत्व मिलना शुरू हुआ। 1584 ई० के पश्चात् अकबर कई वर्षों तक लाहौर में रहा और जहांगीर ने तो लाहौर को अपनी राजधानी बनाकर अपने शासनकाल का अधिकांश वहीं बिताया। मुग़लों के समय में, उत्तर-पश्चिमी सीमांत पर होने वाले युद्धों के सुचारू संचालन के लिए भी लाहौर में शासन का केंद्र बनाना आवश्यक हो गया था। इसके साथ ही जहांगीर को कश्मीर घाटी के आकर्षक सौंदर्य ने भी आगरा छोड़कर लाहौर में रहने को प्रेरित किया क्योंकि यहां से कश्मीर अपेक्षाकृत निकट था। शाहजहाँ को भी लाहौर का काफ़ी आकर्षण था किंतु औरंगजेब के समय में लाहौर के मुग़लकालीन वैभव विलास का क्षय प्रारंभ हो गया। 1738 ई० में नादिरशाह ने लाहौर पर आक्रमण किया किंतु अपार धन राशि लेकर उसने यहां लूट मार मचाने का इरादा छोड़ दिया। 1799 ई० में पंजाब केसरी रणजीत सिंह के समय में लाहौर को फिर एक बार पंजाब की राजधानी बनने का गौरव मिला। 1849 ई० में पंजाब को ब्रिटिश भारत में मिला लिया गया और लाहौर को सूबे का मुख्य शासन केंद्र बनाया गया। लाहौर के प्राचीन स्मारक हैं—किला, जहांगीर का मकबरा, शालीमार बाग और रणजीत सिंह की समाधि। लाहौर का क़िला तथा इसके अंतर्गत भवनादि मुख्य रूप में अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब के बनवाए हुए हैं। हाथीपांव द्वार के अंदर प्रवेश करने पर पहले लव के प्राचीन मंदिर के दर्शन होते हैं। यहीं औरंगजेब का बनवाया हुआ नौलखा भवन है जो संगमर्मर का बना है। इसके आगे मुसम्मन बुर्ज है जहां से महाराजा रणजीतसिंह रावी नदी का दृश्य देखा करते थे। पास ही शाहजहां के समय में बना शीशमहल है। यहां रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी ने सर जॉन लारेंस को कोहनूर हीरा भेंट में दिया था। क़िले के अंदर अन्य उल्लेखनीय इमारतें ये हैं–बड़ी ख्वाबगाह,

दीवानेआम, मोती मसजिद, हजूरी बाग और बारादरी। हजूरी बाग से बादशाही मसजिद को जिसे 1674 ई० में औरंगजेब ने बनवाया था, रास्ता जाता है। शाहदरा, जहां जहांगीर का मकबरा अवस्थित है, रावी के दूसरे तट पर लाहौर से 3 मील दूर है। मकबरे के निकट ही नूरजहां के बनवाए हुए दिलकुशा उद्यान के खंडहर हैं। मकबरा लाल पत्थर का बना हुआ है जिस पर सफ़ेद संगमर्मर का काम है। इसमें गुंबद नहीं है। इसकी मीनारें अठकोण हैं। जहांगीर की समाधि के चारों ओर संगमर्मर की नक़्क़ाशीदार जाली के पर हैं। छत पर भी बहुत ही सुंदर शिल्पकारी है। इस मकबरे को जहांगीर की प्रिय बेगम नूरजहां ने बनवाया था। नूरजहां की समाधि जहांगीर के मकबरे के निकट ही स्थित है। इस पर कोई मकबरा नहीं है और बेगम तथा उसकी एक मात्र संतान लाड़ली बेगम की कब्रें अनलंकृत और सादे रूप में सब ओर से खुले हुए मंडप के अंदर बनी हैं। ये शाहजहां के जमाने में बनी थीं। शाहजहां का बनवाया हुआ शालीमार बाग कश्मीर के इसी नाम के बाग की अनुकृति है। यह लाहौर से 6 मील दूर है। रणजीतसिंह की तथा उनकी आठ रानियों की समाधियां किले के निकट ही एक छतरी के नीचे बनी हुई हैं। ये रानियां रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् सती हो गई थीं।

शत्रुंजय के एक अभिलेख में लवपुर या लाहौर को लामपुर कहा गया है।

लिंगसुगुर (ज़िला रायपुर, मैसूर)

लिंगसुगुर के तालुके में अनेक प्रागैतिहासिक स्थल पाए गए हैं।

लिखुनिया (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

सोन नदी की घाटी में स्थित इस ग्राम के निकट कई प्रागैतिहासिक गुफाएं हैं जिनमें तत्कालीन चित्रकारी प्रदर्शित है। इसमें घुड़सवारों द्वारा पालतू हाथियों की सहायता से एक जंगली हाथी को पकड़ने का दृश्य है तथा विशाल पक्षियों को जाल में फंसाने जैसे कई विषयों का जीवंत चित्रों द्वारा अंकन किया गया है।

लीलाजन

नीरांजना या फल्गु नदी।

लुंबिनीग्राम (नेपाल)

ज़िला बस्ती (उ० प्र०) के ककराहा नामक ग्राम से 14 मील और नेपाल-भारत सीमा से कुछ दूर पर नेपाल के अंदर स्थित रुमिनीदेई नामक ग्राम ही लुंबिनीग्राम है जो गौतमबुद्ध के जन्म स्थान के रूप में जगत्प्रसिद्ध है। नौतनवां स्टेशन से यह स्थान दस मील है। बुद्ध की माता मायादेवी कपिलवस्तु से

कोलियगणराज्य का राजधानी देवदह जाते समय लुंबिनीग्राम में एक शालवृक्ष के नीचे ठहरी थीं (देवदह में माया का पितृगृह था), उसी समय बुद्ध का जन्म हुआ था। जिस स्थान पर जन्म हुआ था वहां बाद में मौर्य सम्राट् अशोक ने एक प्रस्तरस्तंभ का निर्माण करवाया। स्तंभ के पास ही एक सरोवर है जिसमें बौद्धकथाओं के अनुसार नवजात शिशु को देवताओं ने स्नान करवाया था। यह स्थान अनेक शतियों तक वन्यपशुओं से भरे हुए घने जंगलों के बीच छिपा पड़ा रहा। 19वीं शती में इस स्थान का पता चला और यहां स्थित अशोक स्तंभ के निम्न अभिलेख से ही इसका लुंबिनी से अभिज्ञान निश्चित हो सका—'देवानं पियेन पियदसिना लाजिना वीसतिवसाभिसितेन अतन आगाच महीयते हिदबुधेजाते साक्यमुनीनि सिलाविगड़भी चाकालापित सिलाथभेच उसपापिते–हिद भगवं जातेति लुम्मनिगामे उबलिके कटे अठभागिए च' अर्थात् देवानांमप्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) ने राज्यभिषेक के बीसवें वर्ष यहां आकर बुद्ध की पूजा की। यहां शाक्यमुनि का जन्म हुआ था अतः उसने यहां शिलाभित्ति बनवाई और शिला-स्तंभ स्थापित किया। क्योंकि भगवान् बुद्ध का लुंबिनी ग्राम में जन्म हुआ था, इसीलिए इस ग्राम को उलि-कर से रहित कर दिया गया और उस पर भूमिकर का केवल अष्टम भाग (षष्ठांश के बजाय) नियत किया गया। इस स्तंभ के शीर्ष पर पहले अश्व-मूर्ति प्रतिष्ठित थी जो अब नष्ट हो गई है। स्तंभ पर अनेक वर्ष पूर्व बिजली गिरने से नीचे से ऊपर की ओर एक दरार पड़ गई है। चीनी पर्यटक युवानच्वांग ने भारत भ्रमण'के दौरान (630–645 ई०) लुंबिनी की यात्रा की थी। उसने यहां का वर्णन इस प्रकार किया है—'इस उद्यान मे सुंदर तड़ाग है, जहां शाक्य स्नान करते थे। इससे 400 पग की दूरी पर एक प्राचीन साल का पेड़ है जिसके नीचे भगवान् बुद्ध अवतीर्ण हुए थे। पूर्व की ओर अशोक का स्तूप था। इस स्थान पर दो नागों ने कुमार सिद्धार्थ को गर्म और ठंडे पानी से स्नान करवाया था। इसके दक्षिण में एक स्तूप है जहां इंद्र ने नवजात शिशु को स्नान करवाया था। इसके पास ही स्वर्ग के उन चार राजाओं के चार स्तूप हैं जिन्होंने शिशु की देखभाल की थी। इन स्तूपों के पास एक शिला-स्तंभ था जिसे अशोक ने बनवाया था। इसके शीर्ष पर अश्व की मूर्ति निर्मित थी'। स्तूपों के अब कोई चिह्न नहीं मिलते। अश्वघोष ने बुद्धचरित 1,6 में लुंबिनी वन में बुद्ध के जन्म का उल्लेख किया है। (यह मूलश्लोक विलुप्त हो गया है)। बुद्धचरित 1,8 में इस वन का पुनः उल्लेख किया गया है—'तस्मिन् वने श्रीमतिराजपत्नी प्रसूतिकालं समवेक्षमाणा, शय्यां वितानोपहितां प्रपदे नारी सहस्रैरभिनंद्यमाना।

लुनार (बरार, महाराष्ट्र)

लुनार नामक पहाड़ी पर एक ग्राम के निकट पर्वतों से घिरी हुई खारी पानी की झील है जिसके भीतर कई स्रोत हैं। झील शान्त ज्वालामुखी पहाड़ का मुख जान पड़ती है। स्थानीय किवदंती है कि यहां लवणासुर के रहने की गुफा थी और विष्णु ने इस असुर को इसी स्थान पर मारा था।

लुहारू=लोहार्गल (राजस्थान)

सीकर से 20 मील दूर राजस्थान का प्राचीन तीर्थ है। यह रामानंद संप्रदाय का विशिष्ट स्थान है। यहां सूर्य का एक प्राचीन मंदिर स्थित है। पर्वत के नीचे पुराणों में प्रसिद्ध ब्रह्मसर बताया जाता है। ऐसी प्राचीन अनुश्रुति प्रचलित है कि पांडवों ने महाभारत के युद्ध के पश्चात् यहां की यात्रा की थी।

लैचा (जिला बूंदी, राजस्थान)

1533 ई० में इस स्थान पर चित्तौड़ नरेश विक्रमाजीत और गुजरात के सुलतान बहादुरशाह में भारी युद्ध हुआ था। चित्तौड़ की सहायता के लिए बूंदी, शोन गढ़ा, देवर, तथा कई अन्य ठिकानों ने अपनी सेनाएं भेजी थीं। युद्ध के मैदान में बहादुरशाह की फौजों के आगे तोपखाना लगा था जिसका संचालन लाब्री खां नामक गोलंदाज कर रहा था। गोलों की बौछार से राजपूत सेना को बड़ी क्षति हुई। तोपें न होने से राजपूत केवल धनुषबाण और तलवारों से ही लड़ते रहे। राजपूत सरदारों ने तोपों की मार से बचने के लिए अपनी सेना को पीछे हटाया और संयोग पाकर दाहिने और बांए से गुजरात की सेना पर बाणप्रहार करने का आदेश दिया। इसमें कुछ सफलता भी मिली किंतु गोलों की बौछार के धुंए से अंधेरा हो जाने के कारण राजपूत-सेना को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। अंधकार की भीषणता में अचानक ही बहादुरशाह का सेना ने गोलाबारी रोककर राजपूतों पर तलवार से हमला कर दिया जिससे उनकी सेना का भयंकर संहार हुआ क्योंकि उन्हें अंधेरे में कुछ भी नहीं सूझ रहा था। उनका साहस टूट गया और वे युद्धस्थल से तेजी के साथ पीछे हट आए। लैचा के मैदान से भाग कर राजपूत सेना ने चित्तौड़ की रक्षा पर ही अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर दी।

लोकपाल (जिला गढ़वाल, उ० प्र०)

जोशीमठ से आगे सातवें मील से लोकपाल के लिए मार्ग जाता है। समुद्रतल से इसकी ऊंचाई 14200 फुट है। सिखधर्म की परंपरा के अनुसार यह गुरुगोविंदसिंह के पूर्वजन्म की तप:स्थली है। लोकपाल में हेमकुंड नामक

एक सरोवर है। पास ही लक्ष्मण जी का एक मंदिर तथा एक गुरुद्वारा है। लोकपाल के लिए संसार-प्रसिद्ध फूलों की घाटी से हो कर मार्ग गया है।

लोकालोक

पौराणिक भूगोल के अनुसार यह पर्वत सबसे विशाल महाद्वीप पुष्कर के आगे स्थित है।

लोकोकंडी=लकुंडी

लोथाल (ज़िला अहमदाबाद, गुजरात)

1954-1955 के उत्खनन में एक प्राचीन ढूह से हड़प्पा संस्कृति (=सिंधु-घाटी सभ्यता) के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें पांच हड़प्पा-मुद्राएं भी हैं। इस उत्खनन से सिद्ध हो गया है कि ई० सन् से तीन-चार सहस्रवर्ष प्राचीन हड़प्पा सभ्यता का विस्तार गुजरात तक तो अवश्य ही था।

लोद्रवा, लोद्रवापुर (ज़िला जैसलमेर, राजस्थान)

मध्यकालीन मंदिरों के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है। 1327 वि० सं०=1280 ई० में बने हुए गणेशमंदिर में गणेशप्रतिमा एक चरणचौकी पर आसीन है जिस पर इस संवत् का अभिलेख अंकित है। इस अभिलेख में सच्चिकादेवी (महिषमर्दिनी देवी) की उपासना का भी उल्लेख है। 15वीं शती के जैन मंदिर की स्थापत्य कला भव्यता तथा सूक्ष्म शिल्प दोनों ही दृष्टियों से अनोखी है। मंदिर के प्रवेशद्वार तथा तोरण पर सूक्ष्म शिल्पकारी और अलंकरण तत्कालीन कला के अद्भुत उदाहरण हैं।

लोध्रवन=लोधमूना वन (कुमायूं)

वाल्मीकि रामायण-किष्किंधा० 43 में उल्लिखित है—'लोध्रपद्मखंडेषु देव-दारुवनेषु च, रावण: सह वैदेह्या मार्गितव्यस्ततस्तत:'।

लोनी (ज़िला मेरठ, उ० प्र०)

पृथ्वीराज चौहान के समय (12वीं शती ई०) के ध्वंसावशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

लोपबुरी दे० लवपुरी (1)

लोह

महाभारत सभा० 27,27 में इस देश का उल्लेख अर्जुन की उत्तर दिशा के देशों की दिग्विजय के संबंध में है—'लोहान् परमकांबोजानृषिकानुत्तरानपि, सहितास्तान् महाराज व्यजयत् पाकशासनि:'। परमकांबोज संभवत: वर्तमान चीनी तुर्किस्तान (सीक्यांग) के कुछ भागों में रहने वाले कबीलों का देश था। इसी के निकट लोह-प्रदेश की स्थित रही होगी। श्री वा० श० अग्रवाल के

मत में लोह या रोह (अथवा लोहित, रोहित) दर्दिस्तान के पश्चिम में स्थित काफिरिस्तान या कोहिस्तान का प्रदेश है जो अफगानिस्तान की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर हिंदूकुश पर्वत तक विस्तृत है। रुहेले जो मूलत: इसी प्रदेश के निवासी थे, रोह के नाम पर ही रुहेले कहलाए। पाणिनि तथा भुवनकोश में भी इस देश का नामोल्लेख है।

लोहगढ़ (महाराष्ट्र)

जुन्नेर के दक्षिण में इंद्रायण नदी की घाटी के पश्चिम की ओर लोहगढ़ एक सुदृढ़ दुर्ग था। यह भाजा की पहाड़ी पर स्थित हैं। इसे छत्रपति शिवाजी ने बीजापुर के सुलतान से छीन लिया था। यह उत्तर महाल के नौ क़िलों में से था जिन पर शिवाजी ने अधिकार कर लिया था। जयसिंह के साथ संधि होने पर यह क़िला शिवाजी ने औरंगजेब को लौटा दिया। पीछे 1670 ई० में सिंहगढ़ की विजय के बाद शिवाजी के सेनापति मोरोपंत ने इसे फिर से जीत लिया।

लोहगांव (महाराष्ट्र)

इस ग्राम का संबंध महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संतकवि तुकाराम (मृत्यु 1649 ई०) से बताया जाता है। यहां इनका एक प्राचीन स्मारक है। वारकर-संप्रदाय के भक्त देहू तथा लोहगांव की यात्रा करते हैं।

लोहना (बिहार)

दरभंगा–निर्मली रेलमार्ग पर लोहना स्टेशन के निकट प्राचीन ग्राम जिसे कवि गोविंददास का जन्मस्थान माना जाता है। गोविंददास की पदावलियां बंगाल में प्रसिद्ध हैं।

लोहबा (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

इस स्थान पर गढ़वाल के प्राचीन नरेशों के समय का एक गढ़ है जो अब खंडहर हो गया है। गढ़वाल में इस प्रकार के अनेक गढ़ों के खडहर हैं।

लोहा=लोह।

लोहाचल (होस्पेट तालुका, मैसूर)

वेल्लारी से 6 मील पूर्व की ओर यह एक पहाड़ी है। संभवत: इसका प्राचीन नाम क्रौंच था और वाल्मीकि रामायण में वर्णित क्रौंचारण्य शायद इसी के निकट स्थित था—'तत: परं जनस्थानात् त्रिकोशं गम्य राघवौ, क्रौंचारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ'–अरण्य०69,5। श्रीराम और लक्ष्मण सीताहरण के पश्चात् पंचवटी से चलकर तीन कोस की यात्रा के पश्चात् यहां पहुंचे थे। (दे० क्रौंचारण्य)

लोहानीपुर (पटना, बिहार)

यह पटना का उपनगर है। इस स्थान से मौर्यकालीन दिगंबर जैन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनका विवरण जैन ऐंटिक्वेरी भाग 5, अंक 3 में है। ये मूर्तियां 14 फरवरी 1937 ई० को मिली थीं। इनमें एक तीर्थंकर महावीर की मूर्ति है। यह चुनार के बलुआपत्थर के एक ही खंड में से कटी हुई है। मूर्ति पर बहुत सुंदर और चमकदार प्रमार्जन है जो मौर्यकालीन कला की विशेषता थी। लगभग दो सहस्र वर्ष प्राचीन होते हुए भी इस मूर्ति के प्रमार्जन में तनिक भी मैलापन नहीं दिखाई देता। कहा जाता है कि पटना सग्रहालय में सुरक्षित इस मूर्ति से अधिक सुंदर प्रमार्जित मूर्ति भारत भर में दूसरी नहीं है।

लोहार्गल

(1) दे० लुहारू।

(2) वराहपुराण 15, में उल्लिखित है। यह स्थान संभवत: कुमायूं में चंपावत के निकट लोहाघाट है। यह वैष्णवतीर्थ हैं।

लोहित

(1)=लोह (रोह)

(2)=लाहूल (हिमाचल प्रदेश)

तिब्बत-भारत सीमा पर स्थित है। इसका उल्लेख महाभारत सभा० 27, 17 में अर्जुन की दिग्विजय यात्रा के संबंध में है—'तत: काश्मीरकान् वीरान्क्षत्रियान् क्षत्रिर्षभ:, व्यजयल्लोहितं चैव मंडलैर्दशभि: सह'। (दे० लाहूल)

लोहितगंगा

ब्रह्मपुत्र या लौहित्य नदी जो प्राग्ज्योतिष (=गोहाटी, असम) के निकट बहती है। महाभारत, सभा० 38 में नरकासुरवध-प्रसंग में इसका नामोल्लेख है—'मध्ये लोहितगंगायां भगवान् देवकीसुत: औदकायां विरूपाक्षं जघान भरतर्षभ'। (दे० लौहित्य)

लोहित्य

वाल्मीकि रामायण अयो० 71, 15 में उल्लिखित है—'हस्तिपृष्टकमासाद्य कुटिकामप्यवर्तत ततार च नरव्याघ्रो लोहित्ये च कपीवतीम'। इस स्थान के पास भरत ने केकयदेश से अयोध्या आते समय कपीवती नदी को पार किया था। प्रसंग से यह स्थान अयोध्या से अधिक दूर नहीं जान पड़ता।

लोरयाअराराज (बिहार)

मोतीहारी से 18 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित है। इस ग्राम से एक मील दूर अशोक का शिलास्तंभ है जिस पर मौर्य सम्राट् के छ: अभिलेख

अंकित हैं। यह स्तंभ 37 फुट ऊंचा है। इसका शीर्ष नष्ट हो गया है किंतु जान पड़ता है कि स्तंभ पर पहले अवश्य ही किसी पशु (वृष,सिंह, अश्व या गज, जो बुद्ध की जीवन कथा से संबंधित माने जाते हैं) की मूर्ति रही होगी। स्तंभ का अभिलेख दो भागों में उत्कीर्ण किया गया है, पहला उत्तर की ओर 18 पंक्तियों में और दूसरा दक्षिण की ओर 23 पंक्तियों में।

लोरियानंदन गढ़ (ज़िला चंपारन, बिहार)

बेतिया से 16 मील दूर है। यहां अशोक का एक शिलास्तंभ है, जिसके शीर्ष पर सिंह की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस पर ब्राह्मी में 5 अभिलेख उत्कीर्ण हैं। बुद्ध के समय वृज्जिगण की नगरी अलप्पा या अल्लकप्प इसी स्थान पर थी जिसके विस्तीर्ण खंडहर यहां दिखाई पड़ते हैं। वृज्जियों के आठ गोत्र थे। इनमें से बुलियों की राजधानी इस स्थान पर थी। अशोक ने गौतम बुद्ध की जीवन कथाओं से सवद्ध इस नगरी के निकट शिलास्तंभ स्थापित करके इसका महत्त्व बढाया था।

लौहित्य

ब्रह्मपुत्र नदी। कालिकापुराण के निम्न श्लोकों में ब्रह्मपुत्र या लोहित्य के साथ संबद्ध पौराणिक कथा का निर्देश है—'जातसंप्रत्ययः सोऽथ तीर्थमासाद्य तं वरम्, वीथिं परशुना कृत्वा ब्रह्मपुत्रमवाहयत्। ब्रह्मकुंडात्सुतः सोऽथ कासारे लोहिताह्वये, कैलासोपत्यकायां तुन्यापतत् ब्राह्मणः सुतः। तस्य नाम विधिश्चक्रे स्वयं लोहितगंगकम् लौहित्यात्सरसो जातो लौहित्याख्यस्ततोऽभवत्। स कामरूपमखिलं पीठमाप्लाव्य वारिणा गोपयन्सर्वतीर्थाणि दक्षिणं याति सागरम्'। इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार ब्रह्मकुंड या लौहित्यसर (=मानसरोवर) से उत्पन्न होने के कारण ही इस नदी को ब्रह्मपुत्र और लौहित्य नामों से अभिहित किया जाता था। कैलास-पर्वत की उपत्यका से निकल कर कामरूप में बहती हुई यह नदी दक्षिण सागर (बंगाल की खाड़ी) में गिरती है। इसे इस उद्धरण में लोहितगंगा भी कहा गया है। इस नाम का महाभारत में भी उल्लेख है। ब्रह्मकुंड या ब्रह्मसर मानसरोवर का ही अभिधान है। [टि०-भौगोलिक तथ्य के अनुसार ब्रह्मपुत्र तिब्बत के दक्षिण पश्चिमी भाग की कुबी गांगरी नामक हिमनदी से निस्सृत हुई है। प्रायः सात सौ मील तक यह नदी तिब्बत के पठार पर ही बहती है जिसमें 100 मील तक इसका मार्ग हिमालय श्रेणी के समानांतर है। तिब्बती भाषा में इस नदी को त्सिहांग और त्सांगपो (पवित्र करने वाली) कहते हैं। इस प्रदेश में इसकी सहायक नदियां हैं—एकात्सांगयो, क्योचू (ल्हासा इसी के तट पर है),

न्यांगचू और ग्यामदा। सदिया के निकट ब्रह्मपुत्र असम में प्रवेश करती है। जहां यह गंगा से मिलती है, वहां इसे यमुना कहते हैं। इसके आगे यह पद्मा नाम से प्रसिद्ध है और समुद्र में गिरने के स्थान के समीप इसे मेघना कहा जाता है। वर्तमान काल में ब्रह्मपुत्र के उद्गम तक पहुंचने का श्रेय कैप्टन किंगडम वार्डनामक यात्री को दिया जाता है। इन्होंने नदी के उद्गम क्षेत्र की यात्रा 1924 में की थी।] महाभारत में भीम की पूर्व दिशा की दिग्विजय के संबंध में सुह्म देश के आगे लौहित्य तक पहुंचने का उल्लेख है—'सुह्मानामधिपं चैव ये च सागरवासिनः, सर्वान् म्लेच्छगणांश्चैव विजिग्ये भरतर्षभः, एवं बहु-विधान देशान् विजित्य पवनात्मजः, वसुतेभ्य उपादाय लौहित्यगमद्बली'—सभा० 30,25,26। कालिदास ने रघुवंश 4,81 में रघु की दिग्विजय के संबंध में प्राग्ज्योतिषपुर (=गोहाटी, असम) के राजा के, रघु के लौहित्य को पार कर लेने पर, भयभीत होने का वर्णन किया है—'चकम्पे तीर्णलौहित्येतस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वरः तद्गजालानतां प्राप्तैः सहकालागुरुद्रुमैः' इस श्लोक में लौहित्य नदी के तटवर्ती प्रदेश में कालागुरु के वृक्षों का वर्णन कालिदास ने किया है जो बहुत समीचीन है। कभी-कभी इस नदी की उत्तरी धारा को जो उत्तर असम में प्रवाहित है लौहित्य और दक्षिणी धारा को जो पूर्व बंगाल (पाकि०) में बहती है ब्रह्मपुत्र कहा जाता था। ब्रह्मपुत्र का अर्थ ब्रह्मसर से और लौहित्य का अर्थ लोहित-सर से निकलनेवाली नदी है। शायद नदी के अरुणाभ जल के कारण भी इसे लौहित्य कहा जाता था। लौहित्य नदी के तटवर्ती प्रदेश को भी लौहित्य नाम से अभिहित किया जाता था। उपर्युक्त महा० सभा० 30,26 में लौहित्य, नदी के प्रदेश का भी नाम हो सकता है।

वंक्षु

ऑक्सस (Oxus) या आमू नदी (दक्षिण रूस)। 'प्रमाणरागसंपन्नान् वंक्षु-तीरसमुद्भवान्, बल्यर्थं ददतस्तस्मै हिरण्यं रजतं बहु' महा० सभा० 50,20—इस प्रसंग में युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में वहां के निवासियों द्वारा भेंट में लाए गए तेज दौड़ने वाले रासभों ('रासभान् दूरपातिन': सभा० 50,19) का भी उल्लेख है। रघुवंश 4,67 में 'सिंधुतीर विचेष्टनैः' ('विनीताध्व श्रमास्तस्य सिंधुतीरविचेष्टनैः, दुधुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुंकुमकेसरान्') के स्थान में किसी किसी प्राचीन प्रति में 'वंक्षुतीर विचेष्टनैः, पाठ है। यदि यह शुद्ध है तो कालिदास के समय में वंक्षु नदी के प्रदेश को भारत के सम्राट् अपने साम्राज्य का ही एक अंग समझते थे—इस तथ्य को मान्यता प्रदान करनी पड़ेगी। वंक्षु का रूपांतर साहित्य में वक्षु या चक्षु भी मिलता है (दे० चक्षु)। अरबी में इस

नदी को जिहुन कहते हैं ।

वंग

वंग या बंग बंगाल का प्राचीन नाम है । महाभारत में वंग नरेश पर भीम की चढ़ाई का उल्लेख है—'उभौ बलभृतौ वीरावुभौतीव्रपराक्रमौ निर्जित्याजौ महाराज वंगराजमुपाद्रवत्'—सभा० 30, 23 । वंग-निवासियों के युधिष्ठिर के राजसूय में कलिंग और मगध के लोगों के साथ आगमन का वर्णन सभा० 52,18 में इस प्रकार है—'वंगाः कलिंगा मगधास्ताम्रलिप्ताः संपुड्रकाः दौवालिकाः सागरकाः पत्रोर्णाः शैशवास्तथा' । कालिदास ने रघुकी दिग्विजय यात्रा के दौरान वंग-निवासियों का युद्ध में परास्त होने का वर्णन किया है—'वंगानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्, निचखान जयस्तंभान्गंगास्रोतोन्तरेषु सः' । अर्थात् रघु ने अनेक नौकाओं के साधन से संपन्न वंग-निवासियों को बलात् विस्थापित करके गंगा के स्रोतों के बीच बीच विजय स्तंभ गड़वाए' । महरौली के लौहस्तंभ पर चंद्र नामक नरेश के अभिलेख में उसकी विजय का विस्तार वंगदेश तक बताया गया है—'यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान, वंगेष्वाहववर्तिनो ऽभिलिखिता खड्गेनकीर्तिर्भजे···' (नई खोजों के अनुसार इस अभिलेख का वंग शायद सिंध देश का एक भाग था) प्राचीन काल में वंग सामान्य रूप से पूरे बंगाल का नाम था किंतु कभी कभी यह शब्द केवल पूर्वी बंगाल के लिए ही व्यवहृत होता था । माधवचंद्र में वंग और गौड़ भिन्न प्रदेश माने गए है । सुह्म पश्चिमी-दक्षिणी बंगाल, (राजधानी-ताम्रलिप्ति) और समतट बंगाल की खाड़ी के तटवर्ती प्रदेश का नाम था । राढ़ या राढी भी बंगाल का एक भाग (बर्दवान कमिश्नरी) था । पुंड्र गंगा का मुख्य धारा पद्मा (ब्रह्मपुत्र-गंगा की संयुक्त धारा) के उत्तर में स्थित प्रदेश का नाम था । डाउसन (दे० क्लासिकल डिक्शनरी) के अनुसार प्राचीन काल में वंग भागीरथी के उत्तर में स्थित भाग का नाम था जिसमें जैसोर और कृष्णनगर के ज़िले सम्मिलित थे ।

जैन साहित्य में वंग का कई स्थानों पर उल्लेख है । प्रज्ञापणा सूत्र में वंग को अंग के साथ ही आर्यजनों का श्रेष्ठ स्थान बताया गया है ।

वंचि=**वंजि** ।

वंजि (केरल)

वंजि में केरल या चेर की प्राचीन राजधानी थी । यह नगरी परियार नदी के तट पर स्थित थी । इसको वंचि और करूर भी कहते थे । वंजि का अभिज्ञान कोचीन से 28 मील पूर्वोत्तर में बसे हुए ग्राम तिरुकरूर से किया गया

है। (दे० करूर, तिरुवंजिकलम्)

वंजुला

मंजीरा नदी का एक नाम।

वंश=वश

ऐतरेय ब्राह्मण तथा कौशीतकी उपनिषत् में इस देश का नाम (वश) कुरु-पंचाल तथा उशीनर के प्रसंग में उल्लिखित है। (तथा दे० शतपथ ब्राह्मण 12;2,2,13)। ओल्डनबर्ग के अनुसार वश या वंश वत्स के ही रूपांतर हैं। (दे०वत्स)

वंशगुल्म

विदर्भ का प्राचीन तीर्थ। इसका उल्लेख महाभारत वन० 85,9 में इस प्रकार है—'शोणस्य नर्मदायाश्च प्रभवे कुरुनंदन, वंशगुल्म उपस्पृश्य वाजिमेधफलं लभेत्'। इस वर्णन से इसकी स्थिति अमरकंटक के निकट सिद्ध होती है क्योंकि अमरकंटक पर्वत से ही नर्मदा और शोण नदियां उद्भूत होती हैं। प्राचीन काल में विदर्भ का यहां तक विस्तार था तथा वंशगुल्म में इस देश की राजधानी थी। इस स्थान का अभिज्ञान वासिम (म० प्र०) से किया गया है।

वंशधारा (उड़ीसा)

उड़ीसा की प्राचीन राजधानी कलिंगनगर इसी नदी के तट पर बसी हुई थी। कलिंगनगर की स्थिति वर्तमान मुखलिंगम् (ज़िला गंजम) के सन्निकट थी (दे० पार्जिटर द्वारा संपादित मार्कंडेय पुराण, 57,3)।

वकड़ी (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

14वीं व 16वीं शती ई० की दक्षिण भारतीय वास्तुशैली में निर्मित मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

वक्कलीरी (मैसूर)

इस ग्राम से चालुक्यवंशीय नरेश कीर्तिवर्मन् द्वितीय (757 ई०) के कई ताम्रदानपट्ट प्राप्त हुए हैं। ये ताम्रपट्ट भीमरथी अथवा भीमा नदी के उत्तरी तट पर स्थित भंडारगविट्टगे नामक स्थान (वर्तमान कोठेम) से प्रचलित किए गए थे। इनमें सुल्लोपूर ग्राम (हंगल, ज़िला धारवाड़ के निकट) के दान में दिये जाने का उल्लेख है।

वक्षु दे० वंक्षु

वजिरा

लंका के प्राचीन बौद्ध इतिहास ग्रंथ दीपवंश, 3,14 में दी हुई वंशावलि में

वजिरा का अंतिम राजा साधीन कहा गया है। वजिरा संभवतः वृज्जि या वज्जि का ही रूपांतर है जिसकी स्थिति बिहार में थी। (दे० वृज्जि)

वज़ीरिस्तान दे० वृजिस्थान।

वज्जि=वृजि, वृजिक।

वज्र

बुंदेलखंड का एक प्राचीन नाम (दे० श्री गो० ला० तिवारी-बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 1)।

वज्रयोगिनी (विक्रमणीपुर परगना, पूर्व बंगाल, पाकि०)

महान् बौद्ध विद्वान् व पर्यटक दीपंकर श्रीज्ञान (10वीं शती ई०) का जन्म-स्थान। दीपंकर ने तिब्बत और सुमात्रा में जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। कुछ समय तक ये विक्रमशिला विश्वविद्यालय के अध्यक्ष भी रहे थे।

वज्रासन

मूलतः, बौद्ध गया में अश्वत्थ वृक्ष के नीचे उस स्थान का नाम जहां आसीन होकर गौतम को संबुद्धि प्राप्त हुई थी। कालांतर में बौद्धगया को ही वज्रासन कहा जाने लगा। इसका नाम, ज्ञान प्राप्त करने के लिए किए गए बुद्ध के वज्र-संकल्प का प्रतीक है।

वज्रि दे० वृजि।

वटाटवी

आटविक प्रदेश (मुख्यतः मध्य प्रदेश का पहाड़ी और वन्य भाग) का एक पार्श्व जिसका उल्लेख एक प्राचीन अभिलेख में है। (दे० एपिग्राफिका इंडिका, 7, पृ० 126)

वटेश्वर=बटेसर (ज़िला आगरा, उ० प्र०)

आगरे से 44 मील और शिकोहाबाद से 13 मील दूर यह प्राचीन कस्बा यमुनातट पर बसा हुआ है। यह व्रजमंडल की चौरासी कोस की यात्रा के अंतर्गत है। इसका पुराना नाम शौरिपुर है। किवदंती के अनुसार यहां श्रीकृष्ण के पितामह राजा शूरसेन की राजधानी थी। (शौरि कृष्ण का भी नाम है)। जरासंध ने जब मथुरा पर आक्रमण किया तो यह स्थान भी नष्ट-भ्रष्ट हो गया था। वटेश्वर-महात्म्य के अनुसार महाभारत युद्ध के समय बलभद्र विरक्त होकर इस स्थान पर तीर्थ-यात्रा के लिए आए थे। यह भी लोकश्रुति है कि कंस का मृत शरीर बहते हुए बटेश्वर में आकर कंस किनारा नामक स्थान पर ठहर गया था। वटेश्वर को ब्रजभाषा का मूल उद्गम और प्रधान केंद्र माना जाता है (दे० भूषण विमर्ष)। जैनों के 22वें तीर्थंकर स्वामी नेमिनाथ का

जन्म स्थल शौरिपुर ही माना जाता है। जैनमुनि गर्भकल्याणक तथा जन्म-कल्याणक का इसी स्थान पर निर्वाण हुआ था, ऐसी जैन परंपरा भी यहां प्रचलित है। अकबर के समय में यहां भदौरिया राजपूत राज्य करते थे। कहा जाता है कि एक बार राजा बदनसिंह जो यहां के तत्कालीन शासक थे, अकबर से मिलने आए और उसे बटेश्वर आने का निमंत्रण देते समय भूल से यह कह गए कि आगरे से बटेश्वर पहुंचने में यमुना को नहीं पार करना पड़ता जो वस्तुस्थिति के विपरीत था। घर लौटने पर उन्हें अपनी भूल मालूम हुई क्योंकि आगरे से बिना यमुना पार किए वटेश्वर नहीं पहुँचा जा सकता था। राजा बदनसिंह बड़ी चिंता में पड़े और इस भय से कि कहीं सम्राट् के सामने झूठा न बनना पड़े, उन्होंने यमुना की धारा को पूर्व से पश्चिम की ओर मुड़वा कर उसे बटेश्वर के दूसरी ओर कर दिया और इसलिए कि नगर को यमुना की धारा से हानि न पहुंचे, एक मील लंबे, अत्यंत सुदृढ़ और पक्के घाटों का नदी-तट पर निर्माण करवाया। वटेश्वर के घाट इसी कारण प्रसिद्ध हैं कि उनकी लंबी श्रेणी अविच्छिन्नरूप से दूर तक चली गई है। उनमें बनारस की भांति बीच बीच में रिक्त स्थान नहीं दिखलाई पड़ता। वटेश्वर के घाटों पर स्थित मंदिरों की संख्या 101 है। यमुना की धारा को मोड़ देने के कारण 19 मील का चक्कर पड़ गया है। भदोरिया-वंश के पतन के पश्चात् वटेश्वर में 17वीं शती में मराठों का आधिपत्य स्थापित हुआ। इस काल में संस्कृतविद्या का यहां काफी प्रचलन था जिसके कारण वटेश्वर को छोटी काशी भी कहा जाने लगा। पानीपत के तृतीय युद्ध (1761 ई०) के पश्चात् वीरगति पाने वाले मराठों को नारूशंकर नामक सरदार ने इसी स्थान पर श्रद्धांजलि दी थी और उनकी स्मृति में एक विशाल मंदिर भी बनवाया था जो आज भी विद्यमान है। शौरीपुर के सिद्धि क्षेत्र की खुदाई में अनेक वैष्णव और जैन मंदिरों के ध्वंसावशेष तथा मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। यहां के वर्तमान शिवमंदिर बड़े विशाल एवं भव्य हैं। एक मंदिर में स्वर्णाभूषणों से अलंकृत पार्वती की 6 फुट ऊंची मूर्ति है जिसकी गणना भारत की सुंदरतम मूर्तियों में की जाती है।

वटोदर दे० बड़ौदा

वणिजग्राम

वैशाली के निकट एक कस्बा जहां तीर्थंकर महावीर ने कई वर्षाकाल बिताए थे।

वत्स

इस जनपद की राजधानी कौशांबी (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०) थी।

ओल्डनबर्ग के अनुसार ऐतरेय ब्राह्मण में जिन वंश लोगों का उल्लेख है वे इसी देश के निवासी थे। कौशांबी में इस जनपद की राजधानी प्रथम बार पांडवों के वंशज निचक्षु ने बनाई थी। वत्स देश का नामोल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी है—'स लोकपालप्रतिप्रभावस्तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम्, ततः समृद्धाञ्छुभसस्यमालिनः क्षणेन वत्सान्मुदितानुपागमत्' अयो० 52,101। अर्थात् लोकपालों के समान प्रभाववाले रामचंद्र, वन जाते समय, महानदी गंगा को पार करके, शीघ्र ही धनधान्य से समृद्ध और प्रसन्न वत्स देश में पहुंचे। इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि रामायण-काल में गंगा नदी वत्स और कोसल जनपदों की सीमा पर बहती थी। गौतम बुद्ध के समय वत्सदेश का राजा उदयन था जिसने अवंती-नरेश चंडप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से विवाह किया था। इस समय कौशांबी की गणना उत्तरी भारत के महान् नगरों में की जाती थी। अंगुत्तरनिकाय के सोलह जनपदों में वत्सदेश की भी गिनती की गई है। वत्स देश के लावाणक नामक ग्राम का उल्लेख भास विरचित स्वप्नवासवदत्ता नाटक के प्रथम अंक में है—'ब्रह्मचारी भोः श्रूयताम्। राजगृहतोऽस्मि। श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रौषितवानस्मि'। षष्ठ अंक में राजा उदयन के निम्न कथन से सूचित होता है कि वत्सराज्य पर अपना अधिकार स्थापित करने में उदयन को महासेन अथवा चंडप्रद्योत से सहायता मिली थी—'ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम्'। महाभारत, सभा० 30,10 के अनुसार भीमसेन ने पूर्व दिशा की दिग्विजय के प्रसंग में वत्सभूमि पर विजय प्राप्त की थी—'सोमधेयांश्च निर्जित्य प्रययावुत्तरामुखः, वत्सभूमिं च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान् बलात्'।

वनवास = वनवासी

महावंश 12,4 में उल्लिखित एक प्रदेश जिसका अभिज्ञान वर्तमान मैसूर राज्य के उत्तरी भाग (उत्तर कनारा) से किया गया है। इस उल्लेख से जान पड़ता है कि अशोक के शासनकाल में मोग्गलिपुत्र ने रक्षित नामक स्थविर को बौद्धधर्म के प्रचारार्थ यहां भेजा था। महाभारत में संभवतः इसी प्रदेश के निवासियों को वनवासी कहा गया है—'तिमिंगलं च स नृपं वशेकृत्वा महामतिः, एकपादांश्च पुरुषान्, केरलान् वनवासिन':-सभा० 31,69। वायुपुराण 45,125 और हरिवंश 95 में भी इसका उल्लेख है। वनवासी या वनवास जनपद का उल्लेख शातकर्णी नरेशों (द्वितीय शती ई०) के अभिलेखों में भी है। यहां इन आंध्र राजाओं के अमात्य का मुख्य स्थान था। इस प्रदेश का वर्णन दशकुमार-चरित के 8वें उच्छ्वास में भी आया है। बृहत्संहिता (14,12) में वनवासी

को दक्षिण में स्थित बताया गया है ।

वनायु

'दीर्घेष्वमी नियमिताः पटमंडपेषु निद्रांविहाय वनजाक्ष वनायुदेश्याः वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि, लेह्यानि सैंधवशिला शकलानि वाहाः' रघुवंश, 5,73 । कालिदास ने इस संदर्भ में वनायुप्रदेश के घोड़ों का उल्लेख किया है । कोशकार हलायुध ने 'पारसीका वनायुजाः' कहकर वनायु को फारस या ईरान माना है । कुछ विद्वानों के मत में वनायु अरब देश का प्राचीन भारतीय नाम है (दे० आरब) । वाल्मीकि-रामायण (बाल० 6,22) में वनायु के श्याम वर्ण के अनेक घोड़ों से अयोध्या को भरीपूरी बताया गया है—'कांबोजविषये जातैर्बाह्लीकैश्च हयोत्तमैः वनायुजैर्नदीजैश्चपूर्णा हरिहयोत्तमैः' । कालिदास को उपर्युक्त वर्णन की प्रेरणा अवश्य ही वाल्मीकि रामायण के उल्लेख से मिली होगी क्योंकि रघुवंश में भी, वनायु के घोड़ों का वर्णन अयोध्या के प्रसंग में ही है ।

वनिजगाम=वणिजग्राम ।

वनोशिला दे० जयंतीक्षेत्र ।

वप्रकेश्वर

बोर्नियो द्वीप (इंडोनेशिया) के कोटी प्रदेश में स्थित मुआराकामन । चौथी शती ई० में यहां एक हिंदू राज्य स्थित था । यहां के शासक मूलवर्मन् ने 400 ई० के लगभग वप्रकेश्वर में बहुसुवर्णक नामक महायज्ञ किया था और बीस सहस्र गौएँ ब्राह्मणों को दान में दी थीं । यह सूचना इस स्थान से प्राप्त चार संस्कृत अभिलेखों से मिलती है ।

वरदक (अफगानिस्तान)

यहां एक प्राचीन बौद्ध स्तूप स्थित है जिसमें एक पीतल के घड़े पर 6 ई० पू० का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है । चीनी यात्री युवानच्वांग ने (630-645 ई० इनका भारत-भ्रमण काल है) इस स्थान का उल्लेख वर्तमान गजनी से 40 मील पर किया है । युवानच्वांग के अनुसार यहां का राजा तुर्की बौद्ध था । इसे वरदस्थान भी कहा जाता था ।

वरदा (म० प्र०)

वर्धा के पास बहने वाली नदी । इसका उल्लेख महाभारत वन 85,35 में है—'वरदासंगमे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्' ।

वरदातट

वरदा नदी का तटवर्ती प्रदेश अथवा विदर्भ जिसका उल्लेख अबुलफज़ल ने आईनेअकबरी में भी किया है । जान पड़ता है कि वरदा या वर्धा नदी के कांठे

में स्थित होने के कारण ही विदर्भ या बरार के प्रदेश को मुगलकाल में वरदा कहा जाने लगा था।

वरघन्नापेट (ज़िला वारंगल, आं० प्र०)

यहां जफरुद्दौला का बनवाया हुआ किला है जो 18वीं शती में बना था।

वरण

बुद्धचरित 21,25 में वर्णित एक नगर जहां वारण नामक यक्ष को बुद्ध ने धर्म की दीक्षा दी थी। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है। (दे० बरन)

वरणा

पाणिनि 4,2,82 में उल्लिखित है। इसको वरण वृक्ष के निकट बताया गया है। यह सिंधु और स्वात नदियों के बीच में स्थित एक स्थान का नाम था। आश्वकायनों का निवास इसी भूमि में था।

वरनगर दे० आनंदपुर।

वरा

महाभारत भीष्म० में उल्लिखित पेशावर के निकट बहनेवाली नदी वारा।

वराह

(1) गिरिव्रज (राजगृह) के समीप एक पहाड़ी—'वैहारो विपुलः शैलो वराहो वृषभस्तथा, तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यकपंचमाः एते पंच महाश्रृंगाः पर्वताः शीतलद्रुमाः रक्षन्तीवाभिसंहत्य संहतांगा गिरिव्रजम्' महा० सभा० 21, 2-3। (दे० राजगृह)

(2) (मैसूर) श्रृंगेरी से 9 मील दूर स्थित श्रृंगगिरि का प्राचीन नाम। इस पर्वत से तुंगा, भद्रा, नेत्रावती और वाराही ये चार नदियां निकलती हैं।

वराहक्षेत्र=बड़ा चत्रा (जिला बस्ती, उ० प्र०)

टिनिच रेल स्टेशन से दो मील पूर्व और कुआनो नदी के दक्षिणी तट पर, रेल के पुल से आधे मील पर एक ग्राम है जो जनश्रुति के अनुसार वराह-अवतार की स्थली है। कुछ लोगों के विचार में पुराणों में वर्णित व्याघ्रपुर इसी स्थान पर बसा था। कहा जाता है यही बौद्ध साहित्य का कोलिया नामक स्थान है जहां सिद्धार्थ की माता मायादेवी के पिता कोलिय-वंशीय सुप्रबुद्ध की राजधानी थी। (दे० कोलिय गणराज्य)

वराहपुरी (ज़िला बनासकांठा, राजस्थान)

यह ढीमा नामक ग्राम के निकट है। प्राचीन काल में यहां वराह भगवान्

का मंदिर था जिसे मध्यकाल में मुसलमानों ने नष्ट कर दिया। अब इस स्थान को धरणीधर कहते हैं। धरणीधर पुराणों के अनुसार वराह (शूकर) का ही पर्याय है।

वराहमूल=बारामूला

वरुणद्वीप=वारुणद्वीप

'इंद्रद्वीपंकशेरुं च ताम्रद्वीपं गभस्तिमत् गांधर्वं वारुणं द्वीपं सौम्याक्षमिति च प्रभुः' महा० सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ। इस उल्लेख के अनुसार वारुण (या वरुण) द्वीप को अन्य द्वीपों के साथ, शक्तिशाली सहस्रबाहु ने जीत लिया था। यह द्वीप संभवत; बोर्नियो (इंडोनीसिया) है। ताम्रद्वीप लंका का ही नाम है। बोर्नियो का एक अन्य नाम संभवतः बर्हिण भी था। मार्कंडेय पुराण में वारुण के साथ भारत के व्यापार का उल्लेख है।

वरुणा

(1) वाराणसी के निकट गंगा से मिलने वाली एक छोटी नदी जिसे अब बरना कहते हैं। जनश्रुति है कि वरुणा और असी नदियों के बीच में बसे होने के कारण वाराणसी का यह नाम हुआ था।

(2) (म० प्र०) नर्मदा की सहायक नदी जो सोहागपुर स्टेशन (इटारसी-इलाहाबाद रेलपथ) से कुछ मील दूर नर्मदा में मिलती है। संगम पर वारुणेश्वर-मंदिर स्थित है और पास ही सिगलवाड़ा नामक ग्राम।

वरुणिक दे० देवबरनार्क

वरूथ

'तोरणं दक्षिणार्धेन जंबूप्रस्थं समागतम्, वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः —वाल्मीकि० अयो० 71,11। भरत केकय देश से अयोध्या जाते समय जंबूप्रस्थ के निकट इस ग्राम से होकर निकले थे। प्रसंग से जंबूप्रस्थ तथा वरूथ की स्थिति गंगा के पूर्व की ओर जान पड़ती है। यह दोनों स्थान संभवतः वर्तमान रूहेलखंड के अंतर्गत रहे होंगे। अयोध्या० 71,12 से यह भी ज्ञात होता है कि वरूथ के निकट एक रम्य वन भी स्थित था जहां भरत ने विश्राम किया था —'तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्रांङ्मुखोययौ'।

वरेंद्र

उत्तर बंगाल का प्राचीन व मध्ययुगीन नाम। वरेंद्र सेनवंशीय नरेशों के शासनकाल में बंगाल के चार प्रांतों (वंग, बागरा, राढी, वरेंद्र) का संपूर्ण भाग प्रायः वर्तमान राजशाही डिवीजन में स्थित था। भंडारकर के अनुसार अशोक के शिलालेख सं० 13 में उल्लिखित पारिंद लोग वरेंद्र के ही निवासी थे।

वर्कला (केरल)

त्रिवेंद्रम से 20 मील उत्तर में स्थित है। यहां समुद्र तट पर एक पहाड़ी के ऊपर जनार्दन विष्णु का एक प्राचीन मंदिर है जिसके विषय में किंवदंती है कि 16वीं शती में हालैंड के एक दुर्घटनाग्रस्त जलयान-चालक ने आपत्ति से छुटकारा मिलने पर इस मंदिर को कृतज्ञतास्वरूप अपने जलयान के घंटे का दान दे दिया था। इस मंदिर के पुजारी की प्रार्थना से अवरुद्ध वायु चलने लगी और समुद्र में फंसे हुए जलयान की यात्रा संभव हो सकी।

वर्णु

वर्तमान बन्नू (प० पाकि०) जिसे चीनीयात्री युवानच्वांग ने फलन लिखा है।

वर्तोई

सौराष्ट्र (गुजरात) के पश्चिमी भाग में बहने वाली नदी वेत्रवती। घुमली से प्राप्त ताम्रपत्रों में वेत्रवती के नाम का उल्लेख है। वर्तोई वेत्रवती का ही अपभ्रंश है।

वर्धन (ज़िला उदयपुर, राजस्थान)

प्राचीन काल में यहां मेरों का दुर्ग था जिसे मेवाड़नरेश महाराणा लाखा ने उनसे छीन लिया था।

वर्धमान

(1) (बंगाल) बर्दवान का प्राचीन नाम। कुछ समय पूर्व तक यह एक प्राचीन रियासत थी। वर्धमानभुक्ति का नाम गुप्त-अभिलेखों में भी मिला है।

(2) (लंका) महावंश 15,92 में उल्लिखित एक स्थान जो महामेघवन (अनुराधपुर के निकट) के दक्षिण की ओर स्थित था।

(3) हस्तिनापुर का नगरद्वार

(4) कथासरित्सागर 24 में उल्लिखित एक नगर जो वाराणसी और प्रयाग के बीच में स्थित था। इसका उल्लेख मार्कंडेयपुराण और वेतालपंचाशतिका में भी है।

वर्धमानकोटि (बिहार)

महाराज हर्ष के समय के बांसखेड़ा अभिलेख (628–629 ई०) में इस स्थान का उल्लेख है जो उस समय किसी 'विषय' का मुख्य स्थान रहा होगा। यह अभिलेख इसी स्थान से प्रचलित किया गया था। इसकी स्थिति बांसखेड़ा के निकट रही होगी। (दे० बांसखेड़ा)

वर्धमानपुर (काठियावाड़, गुजरात)

झालावाड़-प्रदेश के अंतर्गत वर्तमान वाधवां। जैन हरिवंश की तिथि के बारे में लिखते हुए जिनसेन ने इस नगर का उल्लेख किया है।

वर्धमानभुक्ति दे० वर्धमान (1)

वर्धा (नदी) दे० वरदा

वर्मक दे० भर्भक

वर्मती

पाणिनि 4,3,94 में उल्लिखित यह स्थान वर्तमान बामियान (अफगानिस्तान) है। यहां के घोड़ों को वार्मतेय कहा जाता था।

वलभी दे० वल्लभीपुर

वला दे० वल्लभीपुर

वल्लभीपुर (काठियावाड़, गुजरात)

प्राचीन काल में यह राज्य गुजरात के प्रायद्वीपीय भाग में स्थित था। वर्तमान समय में इसका नाम वला नामक भूतपूर्व रियासत तथा उसके मुख्य स्थान वलभी के नाम में सुरक्षित रह गया है। 770 ई० के पूर्व यह देश भारत में विख्यात था। यहां की प्रसिद्धि का कारण वल्लभी विश्वविद्यालय था जो तक्षशिला तथा नालंदा की परंपरा में था। वल्लभीपुर या वलभि से यहां के शासकों के उत्तरगुप्तकालीन अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं। बुंदेलों के परंपरागत इतिहास से सूचित होता है कि वल्लभीपुर की स्थापना उनके पूर्वपुरुष कनकसेन ने की थी जो श्रीरामचंद्र के पुत्र लव का वंशज था। इसका समय 144 ई० कहा जाता है। जैन अनुश्रुति के अनुसार जैन धर्म की तीसरी परिषद् वल्लभीपुर में हुई थी जिसके अध्यक्ष देवर्धिगणि नामक आचार्य थे। इस परिषद् द्वारा प्राचीन जैन आगमों का संपादन किया गया था। जो संग्रह संपादित हुआ उसकी अनेक प्रतियां बना कर भारत के बड़े-बड़े नगरों में सुरक्षित कर दी गयी थीं। यह परिषद् छठी शती ई० में हुई थी। जैन ग्रंथ विविध तीर्थ कल्प के अनुसार वलभि गुजरात की परम वैभवशालिनी नगरी थी। वलभि नरेश शीलादित्य ने रंकज नामक एक धनी व्यापारी का अपमान किया था जिसने (अफगानिस्तान के) अमीर या 'हम्मीर' को शीलादित्य के विरुद्ध भड़का कर आक्रमण करने के लिए निमंत्रित किया था। इस युद्ध में शीलादित्य मारा गया था।

वल्लारी

बिलारी मैसूर का प्राचीन नाम जो संभवतः बलिहारी का रूपांतर है।

वल्लिमल्लई (उत्तर अर्काट, मद्रास)

गंगनरेश राजमल्ल प्रथम द्वारा निर्मित जैन गुहामंदिरों के कारण यह स्थान

उल्लेखनीय है ।

ववनिया (कच्छ, गुजरात)

इस स्थान पर प्राचीनकाल के किसी अज्ञात बंदरगाह के चिह्न मिले हैं। यहां समुद्रतल में 15 फुट की गहराई से एक टूटे-फूटे पुराने जलयान के खंड भी प्राप्त हुए थे। ऐसा विचार है कि यह बंदरगाह भारत पर अरब-आक्रमण के पूर्व अच्छी दशा में रहा होगा—(दे० अलग्जेंडर बर्नस्, ट्रैवल्स इंटू बुखारा—1835, जिल्द 1, अध्याय 11, पृ० 320-325)

वश दे० वंश, वत्स ।

वशाति=बसाति ।

'वशातयः शाल्वकाः केकयाश्च तथाम्बष्ठा ये त्रिगर्ताश्च मुख्याः' महा० उद्योग 30,23 । महाभारत सभा० 51, दाक्षिणात्यपाठ में भी वशाति या वसाति-निवासियों का उल्लेख पांडवों के राजसूययज्ञ में उपायान लेकर उपस्थित होने वाले लोगों के संबंध में है—'शैव्यो वसादिभः सार्धं त्रिगर्तोमालवैः सह' । वशाति-जनपद का अभिज्ञान हिमाचल प्रदेश में स्थिति सीबी से किया गया है । इस तथ्य की पुष्टि उपर्युक्त उद्धरणों में इस प्रदेश के अन्य पार्श्ववर्ती जनपदों के उल्लेख से होती है ।

वश्या

वेसीन का प्राचीन नाम जो एक कन्हेरी अभिलेख में उल्लिखित है ।

वशिष्ठ-पर्वत

महाभारत, आदि० 214, 2 के अनुसार इस पर्वत पर अर्जुन अपने द्वादश वर्ष के वनवास काल में आए थे—'अगस्त्यवटमासाद्य वशिष्ठस्य च पर्वतम् भृगुतुंगे च कौन्तेयः कृतवाञ्छौचमात्मनः' । यह स्थान हिमालय के पार्श्व में गंगा-द्वार या हरद्वार के ऊपर कहीं स्थित था जैसा कि 214, 1 से सूचित होता है।

वसंतगढ़ (राजस्थान)

आबू के निकट स्थित है । 9वीं शती ई० में जैनों का यह महत्त्वपूर्ण तीर्थ था । यहां के खंडहरों से प्राप्त उस समय की अनेक धातु प्रतिमाएं पीड़वाड़े के जैन मंदिर में रख दी गई हैं ।

वसाति=वशाति ।

वसिष्ठा

गोदावरी की एक शाखा या उपनदी । (दे० गोदावरी)

वसुकुंड

कुंदग्राम का एक नाम । (दे० वैशाली)

वसुधानगर

पुराणों के अनुसार वरुणदेव का नगर जिसे सुखा भी कहते थे। (दे० डाउसन क्लासिकल डिक्शनरी 'वरुण')

वसुमती दे० गिरिव्रज (2)

वहिंदा=हकरा

मुसलमान इतिहास-लेखकों के बयान से सूचित होता है कि मुसलमानों के भारत पर आक्रमण के समय बीकानेर, बहावलपुर और सिंध के वर्तमान मरु-स्थलीय भागों में उस समय हकरा या वहिंदा नाम की एक विशाल नदी प्रवाहित होती थी जो कालांतर में शुष्क होकर समाप्त हो गई। इस नदी के कारण यह मरुस्थलीय प्रदेश उस समय इतना सूखा बंजर नहीं था जितना कि अब है। इसका प्राचीन नाम अज्ञात है।

वांगठ (कश्मीर)

वांगठ का प्राचीन मंदिर वास्तुकला की दृष्टि से अनन्तनाग के प्रसिद्ध मार्तंड मंदिर की परंपरा में है।

वाई (महाराष्ट्र)

कृष्णा नदी के तट पर महाराष्ट्र का प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ है। बंगलौर-पूना रेल मार्ग पर वाठर स्टेशन से यह 20 मील दूर है। वाई का संबंध महाराष्ट्र के 17वीं शती के प्रसिद्ध संत समर्थ रामदास से बताया जाता है। प्राचीन किवदंती के अनुसार कृष्णा के तट पर वाई के निकटवर्ती प्रदेश में पहले अनेक ऋषियों की तपःस्थली थी। कहा जाता है कि रामडीह नामक स्थान पर वनवास काल में श्रीरामचंद्र जी ने कृष्णा नदी में स्नान किया था। पांडव भी यहां अपने वनवास काल में कुछ समय तक रहे थे। वाई का प्राचीन नाम वैराज क्षेत्र है।

वाकाट=वाकाटपुर (भूतपूर्व ओड़छा रियासत, म० प्र०)

काशीप्रसाद जायसवाल तथा फ्लीट के मतानुसार वाकाटक नरेशों का मूलस्थान। ये गुप्त सम्राटों के समकालीन थे और मध्य-प्रदेश के कई स्थानों पर इनका राज्य था।

वाजना (जिला मथुरा, उ० प्र०)

इस ग्राम से गुप्तकाल के अनेक प्रमार्जित प्रस्तर-खंड प्राप्त हुए हैं जो भांति भांति के अलंकरणों से युक्त हैं। इनमें त्रिरत्न और पूर्ण विकसित कमल-पुष्पों को नालों के द्वारा चोंच में पकड़े हुए हंसों का अंकन अतीव सुंदर है।

वाटधान

महाभारत, सभा० 328 में वर्णित एक स्थान जो संभवतः माध्यमिका,

(दे० चित्तौड़) और पुष्कर (ज़िला अजमेर) के निकट था। इस पर नकुल ने अपनी दिग्विजय यात्रा में अधिकार प्राप्त किया था—'तथा माध्यमिकांश्चैव वाटधानान् द्विजानथ पुनश्च परिवृत्याथ पुष्करारण्यवासिनः'। डा० वा० श० अग्रवाल के मत में यह भटिंडा का इलाका है। (दे० 'कादंबिनी' अक्टूबर, 62)

वाडापल्ली (ज़िला नलगोंडा, आं० प्र०)

इस स्थान पर मूसी और कृष्णा का संगमस्थल है जहां वारंगल-नरेश प्रतापरुद्र का, 13वीं शती के अंत में बनवाया हुआ प्राचीन किला है। दुर्ग के भीतर नरसिंह स्वामी और अगस्त्येश्वर के प्रसिद्ध मंदिर हैं। संगम से 400 फुट ऊपर पाताल गंगातीर्थ है।

वाणियगाम (वाणिज्यग्राम)

वैशाली का एक उपनगर जहां वृज्जिवंशी क्षत्रियों का निवासस्थान था। यहां विशजनों और कम्मकरों अर्थात् वाणिज्य-व्यवसाय करने वालों की प्रधानता थी।

वातापि (ज़िला बीजापुर)

शोलापुर से 141 मील दूर स्थित वर्तमान बादामी ही प्राचीन वातापि है। यह शोलापुर-गदग रेल-मार्ग पर स्थित है। बादामी की बस्ती दो पहाड़ियों के बीच में है। वातापि का नाम पुराणों में उल्लिखित है जहां इसका संबंध वातापि नामक दैत्य से बताया गया है जिसे अगस्त्य ऋषि ने मारा था (दे० ब्रह्मपुराण—'अगस्त्यो दक्षिणामाशामाश्रित्य नभसि स्थितः, तरुणस्यात्मजो योगी विंध्यवातापि मर्दनः')। छठी-सातवीं शती ई० में वातापि नगरी चालुक्य-वंश की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध थी। पहली बार यहां 550 ई० के लगभग पुलकेशिन् प्रथम ने अपनी राजधानी स्थापित की। उसने वातापि में अश्वमेध यज्ञ संपन्न करके अपने वंश की सुदृढ़ नींव स्थापित की। 608 ई० में पुलकेशिन् द्वितीय वातापि के सिंहासन पर आसीन हुआ। यह बहुत प्रतापी राजा था। इसने प्रायः 20 वर्षों में गुजरात, राजस्थान, मालवा, कोंकण, वेंगी आदि प्रदेश को विजित किया। 620 ई० के लगभग उसने उत्तर भारत के प्रसिद्ध नरेश महाराज हर्ष को भी हराया जिससे हर्ष की दक्षिण देशों के विजय की आकांक्षा फलीभूत न हो सकी। 630 ई० के आसपास नर्मदा के दक्षिण में वातापि नरेश की सर्वत्र दुंदुभि बज रही थी और उसके समान यशस्वी राजा दक्षिण भारत में दूसरा नहीं था। मुसलमान इतिहास लेखक तबरी के अनुसार 625-626 ई० में ईरान के बादशाह खुसरो द्वितीय ने पुलकेशिन् की राजसभा में अपना एक दूत भेजकर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया था। शायद इसी घटना का

दृश्य अजंता के एक चित्र (गुहा सं० 1) में अंकित किया गया है। वातापि नगरी इस समय अपनी स्मृद्धि के मध्याह्न काल में थी। किंतु 642 ई० में पल्लवनरेश नरसिंह वर्मन् ने पुलकेशिन् को युद्ध में परास्त कर चालुक्य-सत्ता का अंत कर दिया। पुलकेशिन् स्वंय भी इस युद्ध में आहत हुआ। वातापि को जीतकर नरसिंहवर्मन् ने नगर में खूब लूटमार मचाई। पल्लवों और चालुक्यों की शत्रुता इसके पश्चात् भी चलती रही। 750 ई० में राष्ट्रकूटों ने वातापि तथा परिवर्ती प्रदेश पर अधिकार कर लिया। वातापि पर चालुक्यों का 200 वर्ष तक राज्य रहा था। इस काल में वातापि ने बहुत उन्नति की। हिंदू, बौद्ध और जैन तीनों ही संप्रदायों ने अनेक मंदिरों तथा कलाकृतियों से इस नगरी को सुशोभित किया। 6ठी शती के अंत में मंगलेश चालुक्य ने वातापि में एक गुहामंदिर बनवाया था जिसकी वास्तुकला बौद्ध गुहा-मंदिरों जैसी है। वातापि के राष्ट्रकूट-नरेशों में दंतिदुर्ग और कृष्ण प्रथम प्रमुख हैं। कृष्ण के समय में एलौरा का जगत् प्रसिद्ध मंदिर बना था किंतु राष्ट्रकूटों के शासनकाल में वातापि का चालुक्यकालीन गौरव फिर न उभर सका और इसकी ख्याति धीरे-धीरे विलुप्त हो गई।

वाघवां दे० वर्धमानपुर

वामदेव

'मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम्, उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत्'—महा: सभा० 27, 11। अर्जुन ने अनेक पर्वतीय देशों के साथ वामदेव पर भी अपनी दिग्विजय-यात्रा में विजय प्राप्त की थी। प्रसंग से यह स्थान कुलू के पहाड़ी प्रदेश के अन्तर्गत जान पड़ता है।

वामन

विष्णुपुराण 2, 4, 50 के अनुसार क्रौंचद्वीप का एक पर्वत—'क्रौंचश्च वामनश्चैव तृतीयश्चांधकारक:, चतुर्थो रत्नशैलश्च स्वाहिनी हयसन्निभ:'।

वामनगंगा (म० प्र०)

यह नर्मदा की सहायक उपनदी है। भेड़ाघाट (ज़िला जबलपुर) के निकट दोनों का संगम है।

वामनपुकर दे० नवद्वीप

वायड़, बायड़ (गुजरात)

प्रचीन जैन तीर्थ जिसका उल्लेख तीर्थ माला चैत्यवंदन में है—'वंदे सत्यपुरे च बाहडपुरे राडद्रहे वायडे'।

वारंगल (आं० प्र०)

वारंगल या वारंकल—तेलगू शब्द ओरुकल या ओरुगल्लू का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है 'एक शिला'। इससे तात्पर्य उस विशाल अकेली चट्टान से है जिस पर ककातीय नरेशों के समय का बनवाया हुआ दुर्ग अवस्थित है। कुछ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि संस्कृत में इस स्थान के ये नाम तथा पर्याय भी प्रचलित थे—एकोपल, एकशिला, एकोपलपुरी या एकोपलपुरम्। रघुनाथ भास्कर के कोश में एकशिलानगर, एकशालिगर, एकशिलापाटन—ये नाम भी मिलते हैं। टॉलमी द्वारा उल्लिखित कोरुनकुला वारंगल ही जान पड़ता है। 11 वीं शती ई० से 13 वीं शती ई० तक वारंगल की गिनती दक्षिण के प्रमुख नगरों में थी। इस काल में ककातीय वंश के राजाओं की राजधानी यहां रही। इन्होंने वारंगल का दुर्ग, हनमकोंडा में सहस्र स्तंभों वाला मंदिर और पालमपेट का रामप्पा-मंदिर बनवाए थे। वारंगल का किला 1199 ई० में बनना प्रारम्भ हुआ था। ककातीय राजा गणपति ने इसकी नींव डाली और 1261 ई० में रुद्रमा देवी ने इसे पूरा करवाया था। किले के बीच में स्थित एक विशाल मंदिर के खंडहर मिले हैं जिसके चारों ओर चार तोरण द्वार थे। सांची के स्तूप के तोरणों के समान ही इन पर भी उत्कृष्ट मूर्तिकारी का प्रदर्शन किया गया था। किले की दो भित्तियां हैं। अन्दर की भित्ति पत्थर की ओर बाहर की मिट्टी की बनी है। बाहरी दीवार 72 फुट चौड़ी और 56 फुट गहरी खाई से घिरी है। हनमकोंडा से 6 मील दक्षिण की ओर एक तीसरी दीवार के चिह्न भी मिलते हैं। एक इतिहास लेखक के अनुसार परकोटे की परिधि तीस मील की थी जिसका उदाहरण भारत में अन्यत्र नहीं है। किले के अन्दर अगणित मूर्तियां, अलंकृत प्रस्तर-खंड, अभिलेख आदि प्राप्त हुए हैं जो शिताबखां के दरबार भवन में संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त अनेक छोटे बड़े मंदिर भी यहां स्थित हैं। अलंकृत तोरणों के भीतर नरसिंह स्वामी, पद्माक्षी, और गोविंद राजुलुस्वामी के प्राचीन मंदिर हैं। इनमें से अंतिम एक ऊंची पहाड़ी के शिखर पर अवस्थित है। यहां से दूर-दूर तक का मनोरम दृश्य दिखलाई देता है। 12 वीं 13 वीं शती का एक विशाल मंदिर भी यहां से कुछ दूर पर है जिसके आंगन की दीवार दुहरी तथा असाधारण रूप से स्थूल है। यह विशेषता ककातीय शैली के अनुरूप ही है। इसकी बाहरी दीवार में तीन प्रवेश-द्वार हैं जो वारंगल के किले के मुख्य मंदिर के तोरणों की भांति ही हैं। यहां से दो ककातीय-अभिलेख प्राप्त हुए हैं—पहला सातफुट लंबी वेदी पर और दूसरा एक तड़ाग के बांध पर अंकित है। वारंगल पर प्रारम्भ में दक्षिण के

प्रसिद्ध आंध्रवंशीय नरेशों का अधिकार था। तत्पश्चात् मध्यकाल में चालुक्यों और ककातीयोंका शासन रहा। ककातीय-वंश का सर्वप्रथम प्रतापशाली राजा गणपति था जो 1199 ई० में गद्दी पर बैठा। गणपति का राज्य गोंडवाना से कांची तक और बंगाल की खाड़ी से बीदर और हैदराबाद तक फैला हुआ था। इसी ने पहली बार वारंगल में अपनी राजधानी बनाई और यहां के प्रसिद्ध दुर्ग की नींव डाली। गणपति के पश्चात् उसकी पुत्री रुद्रमा देवी ने 1260 से 1296 ई० तक राज्य किया। इसी के शासन-काल में इटली का प्रसिद्ध पर्यटक मार्कोपोलो मोटुपल्ली के बंदरगाह पर उतर कर आंध्रप्रदेश में आया था। मार्कोपोलो ने वारंगल का वर्णन करते हुए लिखा है कि यहां संसार का सबसे बारीक सूती कपड़ा (मलमल) तैयार होता है जो मकड़ी के जाले के समान दिखाई देता है। संसार में ऐसा कोई राजा या रानी नहीं है जो इस आश्चर्यजनक कपड़े के वस्त्र पहन कर स्वयं को गौरवान्वित न माने। रुद्रमादेवी ने 36 वर्ष तक बड़ी योग्यता से राज्य किया। उसे रुद्रदेव महाराज कहकर संबोधित किया जाता था। प्रतापरुद्र (शासन-काल 1296-1326 ई०) रुद्रमा का दौहित्र था। इसने पांड्यनरेश को हराकर कांची को जीता। इसने छः बार मुसलमानों के आक्रमणों को विफल किया किंतु 1326 ई० में उलुगखां ने जो पीछे मु० तुगलक नाम से दिल्ली का सुलतान हुआ, ककातीयवंश के राज्य की समाप्ति कर दी। उसने प्रतापरुद्र को बंदी बनाकर दिल्ली ले जाना चाहा था किंतु मार्ग ही में नर्मदातट पर इस स्वाभिमानी और वीर पुरुष ने अपने प्राण त्याग दिए। ककातीयों के शासनकाल में वारंगल में हिंदू संस्कृति तथा संस्कृत और तेलगू भाषाओं की अभूतपूर्व उन्नति हुई। शैवधर्म के अन्तर्गत पाशुपत-संप्रदाय का यह उत्कर्षकाल था। इस समय वारंगल का दूर-दूर देशों से समृद्ध व्यापार होता था। वारंगल के संस्कृत-कवियों में सर्वशास्त्र विशारद वीरभल्लातदेशिक, और नलकीर्तिकौमुदी के रचयिता अगस्त्य के नाम उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि अलंकारशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ प्रतापरुद्रभूषण का लेखक विद्यानाथ यही अगस्त्य था। गणपति का हस्तिसेनापति जयप, नृत्यरत्नावली का रचयिता था। संस्कृत कवि शाकल्यमल्ल भी इसी का समकालीन था। तेलगू के कवियों में रंगनाथ-रामायणमु का रचयिता गोनबुद्धरेड्डी और बासवपुराणमु और पंडिता-राध्यचरितमु का लेखक पलकुरिकी सोमनाथ मुख्य हैं। इसी समय भास्कर रामायणमु भी लिखी गई। वारंगल-नरेश प्रतापरुद्र स्वयं भी तेलगू का अच्छा कवि था। इसने नीतिसार नामक ग्रंथ लिखा था। दिल्ली के तुगलक वंश की शक्ति क्षीण होने पर 1335-1336 के पश्चात् तेलंगाना में कपय नायक ने

स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। इसकी राजधानी वारंगल में थी। 1442 ई० में वारंगल पर बहमनी-राज्य का आधिपत्य हो गया और तत्पश्चात् गोलकुंडा के कुतुबशाही नरेशों का। इस समय शिताबखां वारंगल का सूबेदार नियुक्त हुआ। उससे शीघ्र ही स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया किंतु कुछ समय उपरांत वारंगल को गोलकुंडा के साथ ही औरंगजेब के विस्तृत मुगल-साम्राज्य का अंग बनना पड़ा। मुगल-साम्राज्य के अंतिम समय में वारंगल को नई रियासत हैदराबाद में सम्मिलित कर लिया गया।

वारकमंडल (ज़िला फरीदपुर, बंगाल)

फरीदपुर दानपट्टों की मुद्राओं पर इस प्रदेश का उल्लेख इस प्रकार है—'वारक मंडलाधिकारगणस्य' जिससे जान पड़ता है कि उत्तर-गुप्तकाल में वारक-मंडल एक आधुनिक जिले की भांति ही प्रशासन का एकक था। इसकी स्थिति फरीदपुर के आसपास ही रही होगी।

वारण

महाभारत उद्योग० 29, 31 में इस स्थान का उल्लेख इस प्रकार है—'वारणं वाटधानं च यामनुश्चैव पर्वतः, एष देशः सुविस्तीर्णः प्रभूतधनधान्यवान्'। यहां दुर्योधन के सहायतार्थ आने वाली असंख्य सेनाओं के ठहरने के लिए जो स्थान नियत किए गए थे उनका वर्णन है। जान पड़ता है वारण, महाभारत में अन्यत्र उल्लिखित वारणावत ही है। वारणावत' का अभिज्ञान बरनावा (ज़िला मेरठ, उ० प्र०) से किया गया है। (दे० वारणावत)

वारणावत

महाभारत के अनुसार इस नगर में दुर्योधन ने लाक्षागृह बनवाकर पांडवों को जला डालने की चाल चली थी जो पांडवों की चतुराई के कारण सफल न हो सकी। वारणवत में शिव की पूजा के लिए जुड़े हुए 'समाज' अथवा मेले को देखने के लिए पांडव लोग धृतराष्ट्र की आज्ञा से गये थे—'धृतराष्ट्र-प्रयुक्तास्ते केचित् कुशलमंत्रिणः, कथयांचक्रिरे रम्य नगरं वारणावतम्। अयं समाजः सुमहान् रमणीयतमो भुवि, उपस्थितः पशुपतेर्नगरे वारणावत' महा० आदि० 142, 2-3; 'सर्वा मातृस्तथाऽऽपृच्छ्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्, सर्वाः प्रकृतयश्चैव प्रययुर्वारणावतम्'-आदि० 144,4। यहीं पुरोचन ने छद्म रूप से सन, राल, मूंज, बल्वज, बाँस आदि पदार्थों से लाक्षागृह की रचना की थी—'शणसर्जरसंव्यक्तमानीय गृहकर्मणि। मुंजबल्वजवंशादि द्रव्यं सर्वघृतोक्षितम्, शिल्पिभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि, विश्वस्तं मामयं पापो दग्धुकामः पुरोचनः—आदि० 145, 15-16. महाभारत, उद्योग० 31-19 के अनुसार

वारणावत उन पांच ग्रामों में से था जिन्हें युधिष्ठिर ने दुर्योधन से युद्ध को रोकने का प्रस्ताव करते हुए मांगा था—'अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्, अवसानं भवेत्वत्र किंचिदेकं च पंचमम्'। वारणावत का अभिज्ञान ज़िला मेरठ (उ० प्र०) में स्थित बरनावा नामक स्थान से किया गया है। बरनावा हिंडन और कृष्णी नदी के संगम पर, मेरठ नगर से 15 मील दूर है। जान पड़ता है कि महाभारत काल में कौरवों की प्रसिद्ध राजधानी हस्तिनापुर का विस्तार पश्चिम में वारणावत तक था। वारणावत के विषय में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि यहां, जैसा कि महाभारत, आदि 142, 3 से सूचित होता है, उस समय शिवोपासना से संबंधित भारी मेला लगता था जिसे 'समाज' कहा गया है। इस प्रकार के 'समाजों' का उल्लेख अशोक के शिला-अभिलेख सं० 1 में भी है।

वारवत्या

'सरयूर्वारवत्याथ लांगली च सरिद्वरा, करतोया तथात्रेयी लौहित्यश्च महानदः' महा० सभा० 10, 12। प्रसंगानुसार, वारवती वर्तमान राप्ती जान पड़ती है। राप्ती को सामान्यतः इरावती का अपभ्रंश कहा जाता है। संभव है इसका शुद्ध नाम वारवत्या या वारवती ही हो।

वाराणसी

महाभारत में काशी का नाम वाराणसी भी मिलता है—'समेतं पार्थिवं-क्षत्रं वाराणस्यां नदीसुतः, कन्यार्थमाह्वयद् वीरो रथनैकेन संयुगे' शान्ति० 27, 9; 'ततो वाराणसीं गत्वा अर्चयित्वा वृषभध्वजम्, कपिलाह्रदे नरः स्नात्वा राजसूयमवाप्नुयात्' वन० 84,78। जैन ग्रंथ प्रज्ञापणा सूत्र में भी वाराणसी का उल्लेख हैं। विविधितीर्थकल्प के अनुसार असी गंगा और वरुणा के तट पर स्थित होने के कारण यह नगरी वाराणसी कहलाती थी। वाराणसी के संबंध में महाराज हरिश्चन्द्र की कथा, रूपांतरण के साथ इस जैन ग्रंथ में वर्णित है। वाराणसी के इस ग्रंथ में पांच मुख्य विभाग बतलाए गए हैं—देव वाराणसी, जहां विश्वनाथ का मंदिर तथा चौबीस जिनपट्ट स्थित हैं; राजधानी वाराणसी; यवनों का निवास स्थान; मदन वाराणसी और विजय वाराणसी। दंतखात सरोवर के निकट तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चैत्य स्थित था और उससे 6 मील पर बोधिसत्व मंदिर। (दे० काशी; बनारस)

(2) ब्रह्मदेश का भारतीय औपनिवेशिक नगर जिसे संभवतः वाराणसी से ब्रह्मदेश (बर्मा) जाने वाले भारतीय व्यापारियों ने बसाया था। ब्रह्मदेश में मध्यकाल से पूर्व अनेक भारतीय उपनिवेश बसाए गए थे।

वाराणसीकटक

कटक (उड़ीसा) के निकट महानदी और काठजूरी नदियों के बीच मे केसरीवंशीय नरेश नृपकेसरी द्वारा बसाया हुआ नगर। विडनासी नामक कस्बे से इस स्थान का अभिज्ञान किया गया है जहां प्राचीन दुर्ग के खंडहर स्थित हैं। नृपकेसरी का शासनकाल 920-951 ई० है (दे० महताब, हिस्ट्री ऑव उड़ीसा पृ० 66)

वाराहक

राजगृह (बिहार) के निकट एक पहाड़ी [दे० राजगृह (1)]

वाराहतीर्थ दे० पयोष्णी।

वाराही (मैसूर)

वाराही नदी वराह पर्वत से निकल कर बंगलौर की ओर बहती हुई पश्चिम सागर में गिरती है। इसके उद्गम को प्रचीन काल से तीर्थ माना जाता रहा है।

वारिधार

श्रीमद्भागवत पुराण 5, 19, 16 में उल्लिखित एक पर्वत—'श्रीशैलोवेंकटो महेन्द्रो वारिधारो विंध्य:'। संदर्भ से यह दक्षिण भारत का कोई पर्वत जान पड़ता है। संभव है यह किष्किधा का प्रस्रवण या प्रवर्षणगिरि हो क्योंकि वारिधार और प्रस्रवण (=प्रवर्षण) समानार्थक जान पड़ते हैं।

वारिषेण

महाभारत सभा० 52 में उल्लिखित है। यहां के निवासी युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में उपायन लेकर उपस्थित हुए थे। वारिषेण वर्तमान बारीसाल (पूर्व बंगाल, पाकि०) है।

वारुणद्वीप=वरुणद्वीप

वार्णव

पाणिनि 4, 2, 77 में उल्लिखित नगर जो वर्णुनद पर स्थित था। यह वर्तमान बन्नू (प० पाकि०) है। (दे० वर्णु)

वालवी=**वलभी**

वालीकंटपुरम् (जिला त्रिशिरापल्ली, मद्रास)

प्राचीन शिवमंदिर के लिए प्रसिद्ध है। यह स्थान शिवोपासना का केंद्र था।

वालुवाहिनी

स्कंदपुराण में उल्लिखित यमुना की सहायक नदा।

वाल्मीकि-आश्रम

रामायण के रचयिता आदि कवि वाल्मीकि का आश्रम चित्रकूट (ज़िला बाँदा, उ० प्र०) के निकट कामतानाथ से पंद्रह-सोलह मील दूर लालपुर पहाड़ी पर स्थित बछोई ग्राम में बताया जाता है। संभवतः गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस, अयोध्यकांड में इसी स्थान को वाल्मीकि का आश्रम कहा है—'देखत वन सर शैल सुहाए, वाल्मीकि आश्रम प्रभु आए, रामदीख मुनिवास सुहावन, सुंदर गिरि कानन जलपावन। सरनि सरोज (विटप वन) फूले, गुंजत मंजुमधुप रस भूले। खगमृग विपुल कोलाहल करहीं, विरहित वैर मुदित मन चरहीं'। किंतु वाल्मीकि रामायण, उत्तर०, 47, 15 के अनुसार वाल्मीकि का आश्रम गंगा तट पर स्थित था, 'तदेतज्जाह्नवीतीरे ब्रह्मर्षीणां तपोवनम्'। सीता के विवासन के समय लक्ष्मण और सीता को यहां पहुंचने में गंगा को पार करना पड़ा था—'गंगां संतारयामास लक्ष्मणस्तां समाहितः' उत्तर० 46,33। वाल्मीकि रामायण बाल० 2,3 से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि का आश्रम तमसा नदी के तट पर और गंगा के निकट स्थित था—'स मूहूर्तंगते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः'। इससे स्पष्ट है कि यह आश्रम तमसा और गंगा के संगम पर स्थित था। रघुवंश 14, 76 में भी कालिदास ने इस आश्रम को तमसा तट पर स्थित बताया है—'अशून्यतीरां मुनिसंनिवेशैस्तमोपहन्त्रीं तमसां वगाह्य'। कालिदास (रघु० 14,52) के अनुसार भी यहां पहुंचने में लक्ष्मण और सीता को गंगा पार करनी पड़ी थी, 'रथात्सयंत्रा-निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य गंगां निषादाहृतनौ विशेषस्ततार संधामिवसत्यसंधः'। (दे० द्वैलव, परियर)

वाह्लीक

वाल्मीकि रामायण अयो० 68,18-19 में विपाशानदी के पूर्व में वाल्हीकदेश का वर्णन है—'अवेक्ष्यांजलिपानांश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान्, ययुर्मध्येन वाल्हीकान्सुदामानं च पर्वतम्, विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्'। (दे० वाह्लिक)

वाविहपुर

यह वर्तमान वावीपुर है जो राधनपुर (गुजरात) के समीप है। इसकी जैन ग्रंथ तीर्थमालाचैत्यवंदन में तीर्थ के रूप में वंदना की गई है। 'धारापद्रपुरे च वाविहपुरे कासद्रहे चेडरे'।

वाशिम=वासिम।

वासण (गुजरात)

पश्चिम-रेलवे के वासण स्टेशन से तीन मील दूर है। किंवदंती के अनुसार

यहां दो सहस्र वर्ष प्राचीन वैद्यनाथ शिव का मंदिर स्थित है जिसे उत्तर भारत का विशालतम मंदिर माना जाता है।

वासिम (जिला अकोला, बरार, महाराष्ट्र)

अकोला से 22 मील दूर है। कहा जाता है कि इस स्थान पर प्राचीन समय में वत्सऋषि का आश्रम था, जिसके नाम पर ही इस स्थान को वासिम कहा जाता है। नगर के बाहर का स्थान प्राचीन पौराणिक पद्मक्षेत्र माना जाता है। कुछ विद्वानों के मत में महाभारत में वर्णित वंशगुल्म वासिम का ही प्रदेश है। (दे० वंशगुल्म)

वाह्लिक=वाह्लीक (दे० वाहीक)

वाहीक

महाभारतकाल में यह पंजाब के आरट्ट देश का ही एक नाम था। यहां के निवासियों को कर्णपर्व में भ्रष्ट आचरण के लिए कुख्यात बताया गया है। इस नाम की उत्पत्ति इस प्रकार कही गई है—'वहिश्चनाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः' महा० कर्ण० 44,41-42 अर्थात् विपाशानदी में दो पिशाच रहते थे, वहि और हीक। इन्हीं दोनों की संतान वाहीक कहलाती है। इस श्लोक में अनार्य अथवा म्लेच्छ जाति के वाहीकों या आरट्ट-वासियों की काल्पनिक उत्पत्ति का वर्णन है। संभव है इन्हें वास्तविक पिशाच जाति से संबद्ध माना जाता हो। पिशाच जाति का प्राचीन ग्रंथों में वर्णन है। पैशाची भाषा में ग्रंथों की रचना भी हुई है (गुणाढ्य ने अपनी कथाओं को इसी भाषा में लिखा था)। यह भी माना जाता है कि आर्यों के आने के पूर्व कश्मीर में पिशाच और नागजातियों का निवास था। जान पड़ता है कि वाहीक, बाह्लिक या बाह्लीक का ही रूपांतर है जो मूलरूप से बल्ख या बेक्ट्रिया (अफ़गानिस्तान में स्थित) का प्राचीन भारतीय नाम था। यहीं के लोग कालांतर में पंजाब और निकटवर्ती क्षेत्रों में आकर बस गए। ये अपने अनार्य रीति रिवाजों के कारण उस समय अनादर की दृष्टि से देखे जाते थे। वाहीकों का मुख्य नगर शाकल (सियालकोट, पाकि०) था जहां जर्तिक (जाट ?) नाम के वाहीक रहते थे—'शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा, जर्तिकानामवाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम्' महा० कर्ण० 44,10। वाहीक का अर्थ बाह्य या विदेशी भी हो सकता है (दे० कानूनगो—हिस्ट्री ऑव दि जाट्स, पृ० 14) किंतु अधिक संभव यही जान पड़ता है यह शब्द, जिसकी काल्पनिक या लोक-प्रचलित व्युत्पत्ति महाभारत के उपर्युक्त उद्धरण में बताई गई है, वस्तुतः बाह्लिक या फारसी बल्ख का ही रूपांतरण है। (दे० बाह्लिक, बल्ख, आरट्ट)

विज्ञवन

पालीग्रंथों में उल्लिखित है। इसका शुद्ध रूप विंध्यवन जान पड़ता है। यह विंध्याटवी का प्रदेश है जिसमें मध्यप्रदेश के कुछ पूर्वी जिले सम्मिलित थे। कुछ विद्वानों के मत में पाली ग्रंथों में विज्ञवन, वैद्यनाथ (पूर्वी बिहार) का नाम है।

विंद

'ततस्तेनैव सहितो नर्मदामभितो ययौ, विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्येन महताऽवृतौ—महा० सभा० 31,10.। यह अवन्तिजनपद का एक नगर था। (दे० अनुविंद)

विंध्य=विंध्याचल पर्वत

विंध्य शब्द की व्युत्पत्ति विध् धातु (वेधन करना) से कही जाती है। भूमि को वेध कर यह पर्वतमाला भारत के मध्य में स्थित है— यही मूल कल्पना इस नाम में निहित जान पड़ती है। विंध्य की गणना सप्त कुलपर्वतों में है (दे० कुलपर्वत)। विंध्य का नाम पूर्व वैदिक साहित्य में नहीं है। वाल्मीकि रामायण किष्किंधा० 60,4-6 में विंध्य का उल्लेख संपाती नामक गृध्रराज ने इस प्रकार किया है— 'अस्य विंध्यस्य शिखरे पतितोऽस्मि पुरानघ सूर्यतापपरीतांगो निर्दग्धः सूर्यरश्मिभिः, ततस्तु सागराञ्शैलान्नदीः सर्वाः सरांसि च, वनानि च प्रदेशांश्च निरीक्ष्य मतिरागता हृष्टपक्षिगणाकीर्णः कंदरोदरकूटवान्, दक्षिणस्योदधेस्तीरे विंध्योऽयमिति निश्चितः'। महाभारत, भीष्म० 9,11 में विंध्य को कुलपर्वतों की सूची में परिगणित किया गया है। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में भी विंध्य का नामोल्लेख है—'वारिधारो विंध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः'—। कालिदास ने कुश की राजधानी कुशावती को विंध्य के दक्षिण में बताया है। कुशावती को छोड़ कर अयोध्या वापस आते समय कुश ने विंध्य का पार किया था, 'व्यलंङ्घयद्विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि,' रघु० 16,32। विष्णुपुराण 3,11 में नर्मदा और सुरसा आदि नदियों को विंध्य पर्वत से उद्भूत बताया गया है—'नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विंध्याद्विनिर्गताः'। पुराणों के प्रसिद्ध अध्येता पार्जिटर के अनुसार (दे० जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1894, पृ० 258) मार्कंडेय पुराण, 57 में जिन नदियों और पर्वतों के नाम है उनके परीक्षण से सूचित होता है कि प्राचीन काल में विंध्य, वर्तमान विंध्याचल के केवल पूर्वी भाग का ही नाम था जिसका विस्तार नर्मदा के उत्तर की ओर भूपाल से लेकर दक्षिण बिहार तक था। इसके पश्चिमी भाग और अर्वली की

पहाड़ियों का संयुक्त नाम पारिपात्र (=पारियात्र) था। पौराणिक कथाओं से सूचित होता है कि विंध्याचल को पार करके अगस्त्य ऋषि सर्वप्रथम दक्षिण दिशा में गए थे और वहां जाकर उन्होंने आर्य-संस्कृति का प्रचार किया था। (दे० ब्रह्मपुराण-'अगस्त्योदक्षिणमाशामाश्रित्य नभसि स्थितः, वरुणस्यात्मजो योगी विंध्यवातापिमर्दनः')। अगस्त्य शब्द की व्युत्पत्ति भी व्याख्याकारों ने इसी कथा के सबंध में इस प्रकार की है 'अगं विंध्यपर्वतं स्तयायति अगस्त्यः (अर्थात् अग या (विंध्य) पर्वत को निरुद्ध करने वाला)। (दे० अकतेश्वर)

विंध्याचल

(जिला मिर्जापुर, उ० प्र०) विंध्यवासिनी देवी के प्राचीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

विंध्याचलवामचंद्र (म० प्र०)

पहाड़ी में उत्खनित एक जैन गुहा-मंदिर यहां का प्राचीन स्मारक है।

विंध्याटवी

वाणभट्ट के हर्षचरित में वर्णित विंध्याचल में स्थित वनप्रदेश (दे० अटवी)। अपने पति गृहवर्मा के मारे जाने के पश्चात् राज्यश्री का विंध्याटवी में प्रवेश करने का बाण ने उल्लेख इस प्रकार किया है—'देव देवभूयं गते देवे-राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च गृहीते कुशस्थले देवी राज्यश्रीः परिमृश्यबंधनाद्विंध्याटवीं सपरिवारा प्रविष्टेति' हर्षचरित, उच्छ्वास 6।

विंध्येलखंड

बुंदेलखंड का प्राचीन नाम। श्री गोरेलाल तिवारी के अनुसार विंध्याटवी में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम विंध्येलखंड पड़ा, बाद में अपभ्रष्ट होकर यह बुंदेलखंड कहलाया। (दे० बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 1)

विक्रमपुर(1) पूर्वबंगाल, पाकि०)

मध्यकाल में बौद्ध धर्म का, एक केंद्र। उस समय यहां के बौद्ध विहारों तथा विद्यालयों को ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। 11 वीं शती ई० के राजा भोजवर्मदेव का एक महत्त्वपूर्ण ताम्रपट्ट-लेख मिला है जो विक्रमपुर से प्रचलित किया गया था। उस समय यहाँ भोजवर्मदेव का शिविर था। इस अभिलेख से तत्कालीन शासन व्यवस्था के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। निम्न अधिकारियों का उल्लेख इस अभिलेख में है—राजामात्य, पुरोहित, पीठिकावित्त, महाधर्माध्यक्ष, महासंधिविग्रहक, अंतरंग-वृहदुपरिक, महाक्षिपटलिक, महाप्रतिहार, महाभोगिक, महाव्यूहपति, महापीलुपति (=हस्तिसेनाध्यक्ष), महागणस्थ, दोस्साधिक, चौरोद्धरणिक, गुल्मिक,

दंडपाशिक, दंडनायक, विषयपति, आदि।

(2) (कंबोडिया,) प्राचीन कंबुज का एक भारतीय औपनिवेशिक नगर। कंबुज में हिंदू नरेशों ने प्राय: तेरह सौ वर्ष तक राज्य किया था।

विक्रमशिला (ज़िला भागलपुर, बिहार)

विक्रमशिला में प्राचीन काल में एक प्रख्यात विश्वविद्यालय स्थित था जो प्राय: चार सौ वर्षों तक नालंदा विश्वविद्यालय का समकालीन था। कुछ विद्वानों का मत है कि इस विश्वविद्यालय की स्थित भागलपुर नगर से 19 मील दूर कोलगांव रेल स्टेशन के समीप थी। कोलगांव से तीन मील पूर्व गंगातट पर बटेश्वरनाथ का टीला नामक स्थान है जहां अनेक प्राचीन खडहर पड़े हुए हैं। इनसे अनेक मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं जो इस स्थान की प्राचीनता सिद्ध करती हैं। अन्य विद्वानों के विचार में विक्रमशिला जिला भागलपुर में पथरघाट नामक स्थान के निकट बसा हुआ था। बंगाल के पालनरेश धर्मपाल ने 8 वीं शती ई० में इस प्रसिद्ध बौद्ध महाविद्यालय की नींव डाली थी। यहां लगभग 160 विहार थे जिनमें अनेक विशाल प्रकोष्ठ बने हुए थे। विद्यालय में सौ शिक्षकों की व्यवस्था थी। नालंदा की भांति विक्रमशिला का महाविद्यालय भी बौद्ध संसार में सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। इस महाविद्यालय के अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों में दीपंकरश्रीज्ञान प्रमुख थे। ये ओदंतपुरी के विद्यालय के छात्र थे और विक्रमशिला के आचार्य। 11 वीं शतीं में तिब्बत के राजा के निमंत्रण पर ये वहाँ गए थे। तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में इनका योगदान बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है। 12 वीं शती में यह विश्वविद्यालय एक विराट् शिक्षा-संस्था के रूप में प्रसिद्ध था। इस समय यहां तीन सहस्र विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए समुचित व्यवस्था थी। संस्था का एक प्रधान अध्यक्ष तथा छ: विद्वानों की एक समिति मिलकर विद्यालय की परीक्षा, शिक्षा, अनुशासन आदि का प्रबंध करती थी। 1203 ई० में मुसलमानों ने जब बिहार पर आक्रमण किया, तब नालंदा की भांति विक्रमशिला को भी उन्होंने पूर्णरूपेण नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और यह महान् विश्वविद्यालय जो उस समय एशिया भर में विख्यात था, खंडहरों के रूप में परिणत हो गया।

विजय (कंबोडिया)

प्राचीन भारतीय उपनिवेश चंपा का मध्यवर्ती भाग। 5 वीं शतीं ई० में प्रारंभ में यहां चंपा के राजा धर्ममहाराज श्री भद्रवर्मन् का आधिपत्य था। विजय नामक नगर में इस राज्य की राजधानी थी। श्रीविनय नामक प्रसिद्ध

बंदरगाह यहीं स्थित था।

विजयगढ़(1 ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

एक अतिप्राचीन दुर्ग के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। किले के मार्ग में एक शिला पर प्रागैतिहासिक चित्रकारी अंकित है जिसमें एक योद्धा तथा सिंह की आकृतियाँ बनी हैं। किले की पहाड़ी पर 5 वीं शती ई० से 8 वीं शती ई० तक के बीस से अधिक अभिलेख उत्कीर्ण हैं।

(2) (जिला भरतपुर, राजस्थान) बयाना से 2 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित है। यहां से यौधेय-गण का एक शिलालेख (दूसरी शती ई०) प्राप्त हुआ है जिससे इस काल में यौधेयों के राज्य का प्रसार इस क्षेत्र में सिद्ध होता है। गिरनार-स्थित रुद्रदामन् (लगभग 120 ई०) के अभिलेख में उसकी यौधेयों पर प्राप्त विजय का उल्लेख है। बाद में यौधेयों को गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त से भी परास्त होना पड़ा था जैसा कि हरिषेण लिखित प्रयाग-प्रशस्ति (पंक्ति 22) से ज्ञात होता है। विजयगढ़ के इस अभिलेख से इसके खंडित होने के कारण और अधिक ऐतिहासिक जानकारी न मिल सकी है। विजयगढ़ से वारिककुल के राजा विष्णुवर्धन का एक प्रस्तर-स्तंभ लेख भी मिला है। इसमें संवत् 428 दिया हुआ है जो लिपि के आधार पर अभिलेख की परीक्षा करने से, विक्रम संवत् (=372-373 ई०) जान पड़ता है। यदि यह तिथि-अभिज्ञान ठीक हो तो वारिक-विष्णुवर्धन को समुद्रगुप्त का समकालीन तथा उसका करद सामंत मानना पड़ेगा। इस अभिलेख में विष्णुवर्धन द्वारा पुंडरीक यज्ञों के पश्चात् यूपस्तंभ के निर्माण करवाए जाने का उल्लेख है।

विजयनगर(1) (मैसूर)

दक्षिण भारत का मध्यकालीन प्रसिद्ध नगर जो विजयनगर राज्य का मुख्य नगर था। 15वीं और 16वीं शतियों में यह नगर समृद्धि तथा ऐश्वर्य की पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ था। इस काल में ईरान के एक पर्यटक अब्दुल रज्जाक ने विजयनगर के सौंदर्य और वैभव को सराहते हुए लिखा है कि विजयनगर का सा सौंदर्य और कला-वैभव उस समय संसार के किसी नगर में दृष्टिगोचर नहीं होता था। यहां के निवासियों को अब्दुल रज्जाक ने फूलों का प्रेमी बताते हुए लिखा है कि बाजार में जिधर जाओ फूल ही फूल बिकते हुए नजर आते हैं। विजयनगर के हिंदू राजाओं ने यहां 150 सुंदर मंदिर बनवाए थे। इस प्रसिद्ध राज्य की नींव 1336 ई० में हरिहर और बुक्का नामक भाइयों ने डाली थी और प्राय: दो सौ वर्ष तक इस राज्य ने कई प्रतापी नरेशों

के शासनाधीन रहते हुए दक्षिण के बहमनी सुलतानों से निरंतर संघर्ष जारी रक्खा, जिसकी समाप्ति 1565 ई० के तालीकोट के युद्ध द्वारा हुई। इस महायुद्ध में विजयनगर की बुरी तरह हार हुई, यहां तक कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। फरिश्ता नामक इतिहास लेखक ने लिखा है कि विजयनगर की सेना में नौ लाख पैदल, पैंतालीस सहस्र अश्वारोही, दो सहस्र गजारोही तथा एक सहस्र बंदूकें थी। विजयनगर की लूट प्राय: पांच मास तक जारी रही जैसा कि पुर्तगाली लेखक फरिआएसूज़ा के लेख से सूचित होता है। इस लूट मे मुसलमानों को अपार संपत्ति तथा धनराशि मिली। प्रसिद्ध लेखक सिवेल 'ए फ़ारगॉटन एपायर' में लिखता है, 'तालीकोट के युद्ध के पश्चात् विजेता मुसलमानों ने विजयनगर पहुंच कर पांच महीने तक लगातार आगजनी, तलवारों, कुल्हाड़ियों और लोहे की शलाकाओं द्वारा इस सुंदर नगर के विनाश का काम जारी रखा। शायद विश्व के इतिहास में इससे पहले एक शानदार नगर का इतना भयानक विनाश इतनी शीघ्रता से कभी नहीं हुआ था। वास्तव में, इस विनाशकारी युद्ध के पश्चात् विजयनगर की, जो अपने समय में संसार का सबसे अनोखा और अभूतपूर्व नगर था, जो दशा हुई वह वर्णनातीत है। विजयनगर की उत्कृष्ट कला के वैभव से भरे-पूरे देवमंदिर, सुंदर और सुखी नर नारियों के कोलाहल से गूजते भवन, जनाकीर्ण सड़कें, हीरे-जवाहरातों की दूकानों से जगमगाते बाजार तथा उत्तुंग अट्टालिकाओं की निरंतर पंक्तियां, ये सभी बर्बर आक्रमणकारियों की प्रतीकारभावना की आग में जलकर राख का ढेर बन गए।'

विजयनगर के खंडहर हंपी नामक स्थान के निकट आज भी देखे जा सकते हैं। कुछ प्राचीन मंदिरों के अवशेषों से विजयनगर की वास्तुकला का थोड़ा बहुत परिचय हो सकता है—इस कला की अभिव्यक्ति यहां के मंडपों के आधारभूत स्तंभों में बड़ी सुंदरता से हुई है। स्तंभों के आधार चौकोन है। शीर्षों पर चारों ओर बारीक और घनी नक्काशी दिखाई पड़ती है जो कलाकार की कोमल कला-भावना और उच्चकल्पना का परिचायक है। इन स्तभों के पत्थरों को इतना कलापूर्ण बनाया गया है तथा इस प्रकार गढ़ा गया है कि उनको थपथपाने से संगीतमय ध्वनि सुनी जा सकती है। कहते है कि विजयनगर रामायण-कालीन किष्किंधा नगरी के स्थान पर ही वसा हुआ था। (दे० हंपी)

(2)=विजयपुर (प० बंगाल)। कलकत्ता–मालदा मार्ग पर गंगा तट पर गोदागिरी के निकट 12वीं शती का ख्याति प्राप्त नगर है जहां गौड़ के सेन-नरेशों ने लक्ष्मणावती के पूर्व अपनी राजधानी बनाई थी। विजयनगर वरेंद्र (वर्तमान राजशाही डिवीजन) में स्थित था। सेन-नरेशों ने वरेंद्र पर अधिकार करने के

पश्चात् विजयनगर में अपनी राजधानी स्थापित की थी ।

विजयपुर

(1) आंध्र के इक्ष्वाकु-नरेशों की प्रख्यात राजधानी नागार्जुनीकोंड । इसे विजयपुरी भी कहते थे ।

(2) = विजयनगर (2)

विजयवाड़ा = बैजवाड़ा (आं० प्र०)

कृष्णा नदी के तट पर स्थित है । नदी के निकट ही पर्वत पर एक प्राचीन दुर्ग है जो अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है । इसमें कई बौद्ध गुफाएं पत्थर काट कर निर्मित की गई हैं ।

विजिजम (केरल)

त्रिवांकुर (ट्रावनकोर) का प्राचीन बंदरगाह जो त्रिवेंद्रम से लगभग 7 मील दूर है । आजकल इस ग्राम में मछियारों की बस्ती है ।

विजिगापट्टम = विशाखापत्तन

विजित = विजितपुर (लंका)

महावंश 7,45 के अनुसार इस नगर की स्थापना राजकुमार विजय के एक सामंत ने की थी । जनश्रुति में इस नगर का अभिज्ञान अनुराधपुर से 24 मील कालवापी (कलवेव) झील के समीप स्थित वर्तमान विजितपुर से किया गया है । महावंश, 25, 19-24 में भी इस नगर का उल्लेख है ।

विज्जलवीड

किंवदंती के अनुसार प्राचीन भारत के प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य का जन्म सह्याद्रि में स्थित विज्जलबीड़ नामक नगर में हुआ था जो अब बीड़ कहलाता है । उनके ग्रंथों में भी इसका उल्लेख है ।

विटंकपुर

कथासरित्सागर के अनुसार (25, 35; 26 115; 82; 316) यह नगर अंगदेश (दक्षिण-पूर्वी बिहार) में समुद्र-तट पर स्थित था ।

विडनासी दे० वाराणसीकटक

वितस्ता

वितस्ता झेलम (कश्मीर तथा पंजाब में बहने वाली नदी) का प्राचीन वैदिक नाम है । ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदीसूक्त (10,75,5) में इसका उल्लेख है —'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया' । महाभारत के समय यह नदी पवित्र मानी जाने लगी थी—'वितस्तां पश्य राजेंद्र सर्वपापप्रमोचनीम्, महर्षिभिश्चा-

ध्युषितांशीततोयां सुनिर्मलाम्' वन० 130,20। भीष्म० 9,16 में इसका उल्लेख इरावती (=रावी) के साथ है—'नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम्, इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि'। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में इसका नाम मरुद्वृधा तथा असिक्नी के साथ है, 'चंद्रभागा मरुद्वृधा वितस्ताअसिक्नी'। वितस्ता शब्द की व्युत्पत्ति, मोनियर विलियम्स के संस्कृत-अंग्रेजी कोश में 'तंस्' धातु से बताई गई है जिसका अर्थ है-उंडेलना। पानी के अजस्र प्रवाह का नदी रूप में (पर्वत से) नीचे गिरना-यही भाव इस नदी के नाम में निहित है। वितस्ता नाम का संबंध वितस्ति (=हिंदी बीता) से भी जोड़ा जा सकता है जिसका अर्थ 'विस्तार' है। वितस्ता को कश्मीर में स्थानीय रूप से व्यथ और पंजाबी में वेहत या बेहट कहा जाता है। ये नाम वितस्ता के ही अपभ्रंश रूप हैं। ग्रीक लेखकों ने इसे ह्यायडेसपीज़ (Hydaspes) कहा है जो वितस्ता का रूपांतरण है। नदी का झेलम नाम मुसलमानों के समय का है जो इस नदी के तट पर बसे हुए झेलम नामक कस्बे के कारण हुआ है। इसी स्थान पर पश्चिम से पंजाब में आते समय झेलम नदी को पार किया जाता था (दे० झेलम)। राजतरंगिणी में उल्लिखित वितस्तात्र नामक नगर शायद वितस्ता के तट पर ही बसा हुआ था।

वितस्तात्र

कश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासलेखक कल्हण के अनुसार (दे० राज तरंगिणी 1,102-106) सम्राट् अशोक ने कश्मीर में शुष्कलेत्र और वितस्तात्र नामक स्थानों पर अगणित स्तूप बनवाए थे। वितस्तात्र के धर्मारण्य विहार के भीतर अशोक ने जो चैत्य बनवाया था उसकी ऊंचाई इतनी थी कि दृष्टि वहां तक पहुंच ही नहीं पाती थी। वितस्तात्र का अभिज्ञान अनिश्चित है किंतु नाम से जान पड़ता है कि यह नगर वितस्ता या झेलम के तट पर स्थित होगा।

वितृष्णा

विष्णुपुराण 2,4,28 में उल्लिखित शाल्मलद्वीप की एक नदी—'योनि-स्तोया वितृष्णा च चंद्रा मुक्ता विमोचिनी ··'

विदर्भ

विंध्याचल के दक्षिण में अवस्थित प्रदेश जिसकी स्थिति वर्तमान बरार के परिवर्ती क्षेत्र में मानी गई है। विदर्भ अतिप्राचीन समय से दक्षिण के जनपदों में प्रसिद्ध रहा है। बृहदारण्यकोपनिषत् में विदर्भी-कौंडिन्य नामक ऋषि का उल्लेख है जो विदर्भ के निवासी रहे होंगे। पौराणिक अनुश्रुति में कहा गया है कि किसी ऋषि के शाप से इस देश में घास या दर्भ उगनी बंद हो गई थी

जिसके कारण यह विदर्भ कहलाया। महाभारत में विदर्भ देश के राजा भीम का उल्लेख है जिसकी राजधानी कुंडिनपुर में थी। इसकी पुत्री दमयंती निषध-नरेश नल की महारानी थी ('ततो विदर्भान् संप्राप्तं सायाह्ने सत्यविक्रमम्, ऋतुपर्णं जना राज्ञेभीमाय प्रत्यवेदयन्'—वन० 73,1)। विदर्भ नरेश भोज की कन्या रुक्मिणी के हरण तथा कृष्ण के साथ उसके विवाह का वर्णन भी श्रीमद्भागवत में है। श्रीकृष्ण, रुक्मिणी की प्रणय-याचना के फलस्वरूप आनर्त देश (द्वारका) से विदर्भ पहुंचे थे—'आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः' (श्रीमद्भागवत 10, 53,6)। महाभारत में भीष्मक को जो रुक्मिणी का पिता था विदर्भदेश का राजा कहा गया है। भोजकट में उसकी राजधानी थी। हरिवंश-पुराण, विष्णुपर्व 60,32 में भी विदर्भ की राजधानी भोजकट में बताई गई है। कालिदास के समय में विदर्भ का विस्तार नर्मदा के दक्षिण से लेकर (रघुवंश सर्ग 5 के वर्णन के अनुसार अज ने जिसकी राजधानी अयोध्या (उ० प्र०) में थी विदर्भराज भोज की कन्या इंदुमती के स्वयंवर में जाते समय नर्मदा को पार किया था) कृष्णा के उत्तरी तट तक था। रघुवंश 5,41 में अज का इंदुमती-स्वयंवर के लिए विदर्भदेश की राजधानी जाने का उल्लेख है, —'प्रस्थापयामास ससैन्यमेनमृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम्'। विदर्भ, उत्तरी और दक्षिणी भागों में विभक्त था। उत्तरी विदर्भ की राजधानी अमरावती और दक्षिण विदर्भ की प्रतिष्ठान में थी। मालविकाग्निमित्र, अंक 5 के निम्न वर्णन से सूचित होता है कि शुंगकाल में विदर्भ-विषय नामक एक स्वतंत्र राज्य था—'विदर्भविषयाद् भ्रात्रा वीरसेनेन प्रेषितं लेखं लेखकरैः वाच्यमानं शृणोति'। मालविकाग्निमित्र में विदर्भ-राज और विदिशा के शासक अग्निमित्र (पुष्यमित्र शुंग का पुत्र) के परस्पर वैमनस्य और युद्ध का वर्णन है। विष्णु-पुराण 4,4,1 में विदर्भ राजतनया केशिनी का उल्लेख है जो सगर की पत्नी थी, 'काश्यपदुहिता सुमति विदर्भराजतनया केशिनी च द्वे भार्ये सगरस्यास्ताम्'। मुगलसम्राट् अकबर के समकालीन अबुलफजल ने आइनेअकबरी में विदर्भ का नाम वरदातट लिखा है। संभवतः वरदा नदी (=वर्धा) के निकट स्थित होने के कारण ही मुगलकाल में विदर्भ का यह नाम प्रचलित हो गया था। 'बरार' तथा 'बीदर' नामों की व्युत्पत्ति भी विदर्भ से ही मानी जाती है।

विदिशा (1) (म० प्र०)

प्राचीन भारत की प्रसिद्ध नगरी जिसका अभिज्ञान वर्तमान भीलसा या बेसनगर से किया गया है। यह नगरी वेत्रवती नदी (=बेतवा) के तट पर बसी हुई थी। विदिशा का शायद सर्वप्रथम उल्लेख वाल्मीकि-

रामायण, उत्तर० 108,10 में है जिससे सूचित होता है कि शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुघाती को विदिशा और सुबाहु को मधुरा या मथुरा का राजा बनाया गया था—'सुबाहुर्मधुरां लेभे, शत्रुघाती च वैदिशम्'। कालिदास ने भी इस तथ्य का उल्लेख रघुवंश 15,36 में किया है—'शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः, सुबाहौ च बहुश्रुते मधुरा विदिशे सून्वो निर्दधे पूर्वजोत्सुकः'। अशोक के समय में विदिशा दक्षिणापथ की मुख्य नगरी थी। अपने पिता के शासनकाल में अशोक दक्षिणापथ का शासक था और विदिशा में ही रहता था। यहीं के एक धनवान् श्रेष्ठी की कन्या देवी से उसने विवाह किया था। बौद्ध साहित्य से सूचित होता है कि अशोक के पुत्र और पुत्री महेंद्र और संघमित्रा, देवी ही की संतान थे (दे० महावंश, 13,7—'फिर धीरे-धीरे महेंद्र (अशोक का पुत्र स्थविर महेंद्र) ने विदिशागिरि नगर में पहुंच कर अपनी माता देवी के दर्शन किए और उन्हें विदिशा-गिरि विहार में उतारा'। (यहां विदिशागिरि से सांची की पहाड़ी निर्दिष्ट जान पड़ती है)। अशोक ने मगध-सम्राट् बनने के पश्चात् विदिशा के उपनगर सांची में अपना प्रसिद्ध स्तूप बनवाया था। इसके तोरण शुंगकाल में बने थे। पुष्पमित्र शुंग जिस समय मगध का सम्राट् था (द्वितीय शती ई० पू०) तब विदिशा में उसका पुत्र अग्निमित्र शासक के रूप में रहता था। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक में विदिशा को अग्निमित्र की राजधानी माना है—'स्वस्ति। यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्येदमनुदर्शयति'—अंक 5। विदिशा उस समय समृद्धशालिनी नगरी थी तथा यहाँ व्यापारिक सार्थ (काफले) निरंतर आते-जाते रहते थे—'इमां तथागत भ्रातृकां मया सार्धमपवाह्य भवत् संबंधापेक्षया पथिकसार्थं विदिशागामिनमनुप्रविष्टः' वही, अंक 5। विदिशा का दशार्ण की राजधानी के रूप में उल्लेख तथा उसके निकट बहनेवाली नदी वेत्रवती का सुंदर वर्णन कालिदास ने मेघदूत (पूर्वमेघ 26) में इस प्रकार किया है—'तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम् गत्वा सद्यः फलमतिमहत् कामुकत्वस्य लब्ध्वा, तीरोपान्तस्तनित सुभगं पास्यसि स्वादुयुक्तम्, सभ्रूभगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मिः'। इस वर्णन से इस बात का प्रमाण मिलता है कि कालिदास के समय तक (संभवतः 5वीं शती ई० का पूर्व भाग) विदिशा 'प्रथित' अथवा प्रसिद्ध नगरी थी। महाकवि बाणभट (7वीं शती ई०) ने कादंबरी के प्रारंभ में ही अपनी कथा के पात्र राजा शूद्रक की राजधानी विदिशा में वेत्रवती के तट पर बताई है—'वेत्रवत्या सरितापरिगतविदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्'। विष्णुपुराण 3,64 में भी विदिशा का नामोल्लेख है—'विदिशाख्यं पुरं गत्वा तदवस्थं ददर्श तम्'। गुप्तयुग

के पश्चात् काफी समय तक विदिशा का इतिहास तिमिराच्छन्न रहा। 11वीं शती में अलबेरुनी ने विदिशा या भीलसा का नाम महाबलिस्तान बताया है। मध्ययुग में, विदिशा के बहुत दिनों तक मालवा के सुलतानों के शासनाधीन रहने के प्रमाण मिलते हैं। मुगलकाल में विदिशा (भीलसा) मालवा के सूबे की छोटी सी नगरी मात्र थी। धर्मांध औरंगज़ेब ने इस प्राचीन नगरी का नाम बदल कर आलमगीरपुर रखा था जो कभी प्रचलित न हुआ। 18वीं शती में विदिशा में मराठों का राज्य स्थापित हो गया और तब से आधुनिक काल तक यह भूतपूर्व ग्वालियर रियासत की एक छोटी किंतु महत्त्वपूर्ण नगरी बनी रही। विदिशा के अनेक प्राचीन स्मारकों में विजयामंडल या बीजमंडल नामक मसजिद भी है जो 11वीं शती के लगभग बने चर्चिका या विजयादेवी के मंदिर को तोड़कर उसी के मसाले से बनवाई गई थी। इसका प्रमाण मसजिद के एक स्तंभ पर उत्कीर्ण संस्कृत लेख से मिलता है। बेसनगर (पाली बेस्सनगर) विदिशा की प्राचीन मुख्य नगरी का ही एक भाग था और भीलसा इस नगरी के मध्ययुगीन संस्करण का नाम है।

(2) विदिशा नामक नदी का उल्लेख महाभारत, सभा० 9,18 में है—'कालिंदी विदिशा वेणा नर्मदा वेगवाहिनी'। निश्चय रूप से यह विदिशा या वर्तमान बेसनगर के पास बहने वाली बेस नदी का ही नाम है।

विदिशागिरि

यह महावंश 13, में उल्लिखित है। विदिशागिरि या तो विदिशा नगरी ही है या उसके पास की सांची की पहाड़ी।

विदुरकुटी दे० दारानगर।

विदेघ=**विदेह**।

विदेह

(1) उत्तरी बिहार का प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी मिथिला में थी। स्थूलरूप से इसकी स्थिति वर्तमान तिरहुत के क्षेत्र में मानी जा सकती है। कोसल और विदेह की सीमा पर सदानीरा नदी बहती थी। ब्राह्मण-ग्रंथों में विदेहराज जनक को सम्राट् कहा गया है जिससे उत्तर वैदिक काल में विदेह राज्य का महत्त्व सूचित होता है। शतपथ-ब्राह्मण में विदेघ (=विदेह) के राजा माठव का उल्लेख है जो मूलरूप से सरस्वती नदी के तटवर्ती प्रदेश में रहते थे और पीछे विदेह में जाकर बस गए थे। इन्होंने ही पूर्वी भारत में आर्य-सभ्यता का प्रसार किया था। शांखायन-श्रौत सूत्र 16,29,5 में जलजातु-

कर्ण्य नामक विदेह, काशी और कोसल के पुरोहित का उल्लेख है। वाल्मीकि-रामायण में सीता के पिता मिथिलाधिप जनक को वैदेह कहा गया है—'ऐवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं वैदेहो मिथिलाधिपः' बाल० 65,39। सीता इसी कारण वैदेही कहलाती थीं। महाभारत में विदेह देश पर भीम की विजय का उल्लेख है तथा जनक को यहां का राजा बताया गया है जो निश्चयपूर्वक ही विदेह-नरेशों का कुलनाम था—'शर्मकान् वर्मकांश्चैव व्यजयत् सान्त्वपूर्वकम्, वैदेहकं राजानं जनकं जगतीपतिम्'–सभा० 30 13। भास ने स्वप्नवासवदत्ता अंक 6 में सहस्रानीक के वैदेहीपुत्र नामक पुत्र का उल्लेख किया है जिससे ऐसा जान पड़ता है कि उसकी माता विदेह की राजकुमारी थी। वायुपुराण 88,7-8 में निमि को विदेह-नरेश बताया गया है। विष्णुपुराण 4,13,107 में विदेहनगरी (मिथिला) का उल्लेख है—'वर्षत्रयान्ते च बभ्रूग्रसेन प्रभृतिभिर्यादवैर्न तद्रत्नं कृष्णेनापहृतमिति कृतावगतिभिर्विदेहनगरीं गत्वा बलदेवस्सम्प्रत्याय्यद्वारकामानीतः'। बौद्ध काल में संभवतः बिहार के वृज्जि तथा लिच्छवी जनपदों कीभांति ही विदेह भी गणराज्य बन गया था। जैन तीर्थंकर महावीर की माता त्रिशला को जैन साहित्य में विदेहदत्ता कहा गया है। इस समय वैशाली की स्थिति विदेह राज्य में मानी जाती थी जैसा कि आचरांगसूत्र (आयरंग सुत्त) 2,15,17 से सूचित होता है, यद्यपि बुद्ध और महावीर के समय में वैशाली लिच्छवी गणराज्य की भी राजधानी थी। तथ्य यह जान पड़ता है कि इस काल में विदेह नाम संभवतः स्थूल रूप से उत्तरी बिहार के संपूर्ण क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होने लगा था। यह तथ्य दिग्घनिकाय में अजातशत्रु (जो वैशाली के लिच्छवीवंश की राजकुमारी छलना का पुत्र था) के वैदेहीपुत्र नाम से उल्लिखित होने से भी सिद्ध होता है। (दे० मिथिला)

(2) (स्याम या थाइलैंड) प्राचीन गंधार अथवा युन्नान का एक भाग। मिथिला यहां की राजधानी थी। इस उपनिवेश को बसाने वाले भारतीयों का बिहार-स्थित विदेह से अवश्य ही संबंध रहा होगा।

(3) बुद्धचरित 21,10 के अनुसार अंगदेश के निकट एक पर्वत जहां बुद्ध ने पंचशिख, असुर और देवों को धर्म-प्रवचन सुनाया था।

विदेहनगरी=**मिथिला** दे० विदेह, मिथिला

विद्याधरपुरम् (ज़िला गुंटूर, आं० प्र०)

श्री री (Rhea) ने इस स्थन पर एक प्राचीन बौद्ध चैत्य की खोज की थी। यह पश्चिमी भारत के शैलकृत चैत्यों के विपरीत संरचनात्मक रीति से बना है।

विद्युत्

विष्णुपुराण 2,41,43 में उल्लिखित कुशद्वीप की एक नदी, 'धूतपापा' शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा, विद्युदंभा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमाः'

विद्रुम

विष्णुपुराण 2,4,41 में वर्णित कुशद्वीप का एक वर्षपर्वत—'विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा, कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मंदराचलः' ।

विधनोल दे० बिदनूर

विनत

वाल्मीकि रामायण अयो० 71,16 के अनुसार गोमती नदी के तट पर स्थित एक नगर जहां केकय-देश से अयोध्या आते समय भरत ने इस नदी को पार किया था—'एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमतीं नदीम्, कलिंगनगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा' । यह स्थान वर्तमान लखनऊ के निकट रहा होगा।

विनशन

महाभारत के अनुसार विनशन तीर्थ—उस स्थान पर बसा था जहां सरस्वती नदी राजस्थान के मरुस्थल में विनष्ट या विलुप्त हो गई थी—'ततो विनशनं राजन् जगामाथ हलायुधः, शूद्राभीरान् प्रति द्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती' शल्य० 37,1 । वन० 81,111 में सरस्वती को यहां अंतर्हित रूप से बहती बताया गया है—'ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः, गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती,' । वन० 130,4 में विनशन को निषादराष्ट्र का द्वार कहा गया है—'एतद्विनशनं नाम सरस्वत्या विशाम्पते, द्वारं निषादराष्ट्रस्य येषां दोषात् सरस्वती प्रविष्टा पृथिवीं वीर मा निषादा हि मां विदुः' । संस्कृत के कवि राजशेखर ने विनशन से लेकर प्रयाग तक के प्रदेश को अंतर्वेदि कहा है। विनशन बिंदुसर नामक तीर्थ हो सकता है जो सिद्धराज (ज़िला बड़ौदा, गुजरात) में स्थित है।

विनाशिनी दे० बनास।

विनीता

जैन ग्रंथ आवश्यक सूत्र के अनुसार अयोध्या का एक नाम।

विपापा

'शतद्रुंच चंद्रभागां च यमुनां च महानदीम् दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम्'—महा० भीष्म० 9,15 । इस नदी का अभिज्ञान संदिग्ध है किंतु उल्लेख से यह उत्तरभारत (संभवतः पंजाब) की कोई नदी जान पड़ती है।

विपाश=विपाशा

(1) बियास नदी (पंजाब) का वैदिक नाम। इसका उल्लेख ऋग्वेद में

केवल एक बार 3,33,3 में है—'अच्छासिंधुं मातृतमामयांस विपाशमुर्वीं सुभगामगन्मवत्समिवमातरासंरिहाणे समानं योनिमनुसंचरंती'। बृहद्देवता 1,114 में शुतुद्री या सतलज और विपाश का एक साथ उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण अयो० 68,19 में अयोध्या के दूतों की केकयदेश की यात्रा के प्रसंग में विपाशा (वैदिक नाम विपाश) को पार करने का उल्लेख है, 'विष्णोःपदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्, नदीर्वापीतटाकानि पल्वलानि सरांसि च'। महाभारत, वन० 130,8 में भी विपाशा के तट पर विष्णुपदतीर्थ का वर्णन है —'एतद् विष्णुपदं नाम दृश्यते तीर्थमुत्तमम्, एषा रम्या विपाशा च नदी परमपावनी'। इसके आगे (130,9) विपाशा के नामकरण का कारण पौराणिक कथा के अनुसार इस प्रकार वर्णित है—'अत्र वै पुत्रशोकेन वसिष्ठो भगवानृषिः, बद्ध्वात्मानं निपतितो विपाशः पुनरुत्थितः' अर्थात् वसिष्ठ पुत्रशोक से पीड़ित हो अपने शरीर को पाश से बांधकर इस नदी में कूद पड़े थे किंतु विपाश या पाशमुक्त होकर जल से बाहर निकल आए। महाभारत अनुशासन 3,12,13 में भी इसी कथा की आवृत्ति की गई है—'तथैवास्यभयाद् बद्ध्वा वसिष्ठः सलिले पुरा, आत्मानं मज्जयञ्श्रीमान् विपाशः पुनरुत्थितः। तदाप्रभृति पुण्या ही विपाशान् भून्महानदी, विख्याता कर्मणातेन वसिष्ठस्य महात्मनः'। दि मिहरान ऑव सिंध एंड इट्ज़ ट्रिव्यूटेरीज़ के लेखक रेवर्टी का मत है कि बियास का प्राचीन मार्ग 1790 ई० में बदल कर पूर्व की ओर हट गया था और सतलज का पश्चिम की ओर, और ये दोनों नदियां संयुक्त रूप से बहने लगी थीं। रेवर्टी का विचार है कि प्राचीन काल में सतलज बियास में नहीं मिलती थी। किंतु वाल्मीकि रामायण अयो० 71,2 में वर्णित है कि शतद्रु या सतलज पश्चिमी की ओर बहने वाली नदी थी ('प्रत्यक् स्रोतस्तरंगिणी,') (दे० शतद्रु)। अतः रेवर्टी का मत संदिग्ध जान पड़ता है। बियास को ग्रीक लेखकों ने हाइफेसिस (Hyphasis) कहा है।

(2) विष्णुपुराण 2,4,11 के अनुसार प्लक्षद्वीप की एक नदी 'अनुतप्ता शिखी चैव विपाशात्रिदिवा क्लमा अमृता सुकृता चैव सप्तेतास्तत्र निम्नगाः'।

विपुल=विपुलगिरि=विपुलाचल

(1) राजगृह (=राजगीर, बिहार) के सातपर्वतों में परिगणित है (दे० राजगृह 1)। इसका महाभारत, सभा० 2,1 दाक्षिणात्य पाठ में उल्लेख है - पाडंरे विपुले चैव तथा वाराहकेऽपि च चैत्यके च गिरिश्रेष्ठे मातंगेच शिलोच्चये'। पाली साहित्य में इसे वेपुल्ल कहा गया है। विपुलगिरि या विपुलाचल जैन धर्म के अंतिम शास्ता भगवान् महावीर के प्रथम प्रवचन की स्थली होने

के कारण भी प्रसिद्ध है। उन्होंने इस स्थान से बारह वर्ष की मौन तपस्या के उपरांत श्रावण कृष्ण को प्रतिपदा की पुण्य वेला में सूर्योदय के समय अपनी सर्वप्रथम 'देशना' की थी जिसमें उन्होंने कहा था—'सव्वे विजीवा इच्छन्ति, जीवउंण मरिज्जउं, तम्हा पाणिवधं समणा परिवज्जयंतिणं–अर्थात् सभी प्राणी जीना चाहते हैं मरना कोई नहीं चाहता, इसलिए प्राणिवाध घोर पाप है। जो श्रमण हैं वे इसका परित्याग करते हैं। विपुलाचल का महत्त्व जैनधर्म में वही है जो सारनाथ का बौद्धधर्म में।

(2) पुराणों के अनुसार इलावृत के चार पर्वतों (विपुल, सुपार्श्व, मंदर, गंधमादन) में से पश्चिम की ओर का पर्वत–(दे० विष्णु पुराण 2,2,17—'विपुल: पश्चिमे पाश्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृत: ।)

विमोचिनी

बिष्णुपुराण 2,4,28 में वर्णित शाल्मलद्वीप की एक नदी—'योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचिनी, निवृति: सप्तमी तासां स्मृतास्ता: पापशान्तिदा:' ।

विरजाक्षेत्र दे० यज्ञपुर ।

विराटनगर दे० बैराट (1), (2) तथा उपप्लव्य

विराधकुंड (ज़िला बांदा, उ० प्र०)

इटारसी–इलाहाबाद रेलमार्ग पर स्थित टिकरिया स्टेशन से लगभग 2 मील दूर घने वन के बीच यह विस्तीर्ण खाई है जिसे किंवदंती में वह स्थान कहा जाता है जहां भगवान् राम ने वन-यात्रा के समय विराध नामक राक्षस का वध किया था। यह राक्षस चित्रकूट के आगे दंडकवन के मार्ग में एक घने जंगल में रहता था—'निष्कूजमानशकुनिझिल्लिकागणनादितम्, लक्ष्मणानुचरो रामोवनमध्यं ददर्शह, सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन् घोरमृगायुते, ददर्श गिरिश्रृंगाभं पुरुषादं महास्वनम्। अधर्मचारिणौ पापौ को युवां मुनिदूषकौ, अहं वनमिदं दुर्ग विराधो नाम राक्षस: चरामि सायुधौ नित्यमृषिमांसानि भक्षयन्। इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति' वाल्मीकि० अरण्य 2,3-4-12-13। विराधकुंड से चित्रकूट अधिक दूर नहीं है।

विराधवन

विराध राक्षस के रहने का स्थान। यह वन चित्रकूट में स्थित था। (दे० विराधकुंड)

विरूपा

कटक (उड़ीसा) के निकट बहने वाली एक नदी। (दे० कटक)

विलासना दे० बिलसड़

विलासपुर (1) (हिमाचल प्रदेश)

जिला बिलासपुर का मुख्य नगर, जिसकी नींव राजा दीपचंद्र ने 1653 ई० में डाली थी। उन्होंने महाभारतकार महर्षि व्यास की स्मृति में इस नगर को बसाया था और इसका मूल नाम व्यासपुर ही रखा था जो बिगड़ कर विलासपुर बन गया। किंवदंती है कि वेदव्यास ने इस स्थान के पास एक गुफा में तपस्या की थी। सतलज के वामतट पर एक पहाड़ी के नीचे व्यासगुफा अभी तक स्थित है। मार्कंडेय का आश्रम भी यहां से चार मील दूर है। कहते हैं कि दोनों ऋषि एक सुरंग द्वारा परस्पर मिलने आते-जाते थे। बिलासपुर के पास कई मंदिर हैं रवानम, रवेनसर, रघुनाथ, मुरली मनोहर और काकरी। जनश्रुति है कि इन्हें पांडवों ने बनवाया था। पहाड़ी की चोटी पर नैनादेवी का मंदिर है जिसे राजा वीरचंद (697-780 ई०) ने बनवाया था। विलासपुर रोपड़ से 50 मील और शिमला से 37 मील दूर है। यूरोपीय यात्री विग्ने ने 1838 ई० में इस नगर के सौंदर्य तथा वैभव के बारे में अपने संस्मरण लिखे थे। प्राचीन विलासपुर भाकरा-नंगल बांध के कारण अब जलमग्न हो चुका है।

(2) (म० प्र०) विलासपुर प्राचीनकाल में मछियारों की छोटी-सी बस्ती मात्र था। किंवदंती के अनुसार इसे एक मछियारे की स्त्री विलास के नाम पर इसे विलासपुर कहा जाने लगा था। रायपुर-विलासपुर के ज़िले प्राचीन काल में दक्षिण-कोसल में सम्मिलित थे।

विशल्या

महाभारत, सभा०, 9,20 के अनुसार एक नदी जिसका उल्लेख किंपुना तथा वैतरणी के साथ किया गया है—'किंपुना च विशल्या च तथा वैतरणी नदी'। वैतरणी उड़ीसा की नदी है। विशल्या इसी के समीप बहने वाली कोई नदी जान पड़ती है।

विशाखयूप

बदरीनाथ के पास हिमालय के क्रोड़ में स्थित वन—'तस्मिन् गिरौ प्रस्रवणोपपन्नहिमोत्तरीयारुणपांडुसानौ, विशाखयूपं समुपेत्य चक्रुस्तदानिवासं पुरुषप्रवीरा:'—महा० वन० 177-16। वन० 177,15 में यामुनपर्वत या यमुनोत्री का उल्लेख है।

विशाखा दे० विशोक

विशाखापट्टन=विजिगापट्टम् (आं० प्र०)

पौराणिक किंवदंती के अनुसार यह शिव के पुत्र कार्तिकेय का नगर है। विशाख कार्तिकेय का ही एक नाम है-(दे० अमरकोश-1,40—'बाहुलेयस्तारकजिद्विशाख: शिखिवाहन: षाण्मातुर: शक्तिधर:, कुमार: क्रौंचदारण:'। यह नगर अब एक विशाल समुद्रपत्तन है।

विशाल (लंका)

महावंश 15,126 में वर्णित है। इसको मंडद्वीप या लंका की प्राचीन राजधानी कहा है। यह नगर महामेघवन से पश्चिम की ओर स्थित था।

विशालगढ़ (महाराष्ट्र)

सत्रहवीं शती के मध्य में छत्रपति शिवाजी ने विशालगढ़ के किले को बीजापुर के सुलतान से छीन कर अपने अधिकार में ले लिया था।

विशाला

(1)=उज्जयिनी। दे० मेघदूत, पूर्वमेघ, 32—'प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् पूर्वोद्दिष्टामनुसरपुरीं श्रीविशालां विशालाम्'।

(2) वाल्मीकि रामायण, बाल० 45,10 में उल्लिखित एक नगरी जो संभवत: बौद्ध साहित्य में प्रसिद्ध वैशाली (=बसाढ़, ज़िला मुजफ्फरपुर, बिहार) का ही रामायणकालीन नाम है। इस नगरी को राम-लक्ष्मण ने विश्वामित्र के साथ अयोध्या से जनकपुर जाते समय गगा को पार करने के पश्चात् देखा था—'उत्तरं तीरमासाद्य संपूज्यर्षिगणं तत:, गंगाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशु: पुरीम्'। विशाला नगरी के राजवंश की कथा बाल० 45 में है जिससे ज्ञात होता है कि इस नगरी को बसाने वाला राजा विशाल था जो अलंबुषा नामक अप्सरा से उत्पन्न इक्ष्वाकु का पुत्र था। रामायण की कथा के समय यहां राजा सुमति का राज्य था—'अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुत: तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरीकृता···' तस्य पुत्रो महातेजा: संप्रत्येष पुरीमिमाम्, आवसत्परमप्रख्य: सुमतिर्नामदुर्जय:' बाल० 47,17। विशाला पहुंच कर राम-लक्ष्मण ने एक रात्रि के लिए सुमति (विशाल के पुत्र) का अतिथ्य ग्रहण किया था। अगले दिन विशाला से चलकर थोड़ी दूर पर स्थित मिथिला-नगरी या जनकपुर पहुंच कर राजा जनक की राजधानी में प्रवेश किया था—'तत: परमसत्कारं सुमते:, प्राप्य राघवौ, उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां तत:'। विष्णुपुराण 4,1,49 में भी विशाला नगरी को राजा विशाल द्वारा निर्मित बताया गया है और इसे अलम्बुषा अप्सरा का ही पुत्र माना हैं किंतु इसके पिता को यहां तृणबिंदु कहा गया है—'ततश्चालंबुषानाम

वराप्सरास्तृणबिंदु भेजे तस्यामप्यस्य विशालो जज्ञे यः पुरीं विशालां निर्ममे'। (दे० वैशाली)

(3)=बदरीनाथ

विशालिका (राजस्थान)

पुष्कर के निकट बहने वाली एक नदी। कहा जाता है कि विशालिका पुष्कर क्षेत्र की मुख्य नदी सरस्वती (जो महाभारतकाल ही में लुप्त हो गई थी) का अवशिष्ट अंश है। (दे० पुष्कर)

विशोक

चीनी यात्री युवानच्वांग (7वीं शती ई०) ने विशोक या विशाखा नामक नगर का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस स्थान में 20 बौद्ध विहार तथा 50 देवमंदिर थे। इस नगर की स्थिति विंसेंट स्मिथ ने ज़िला बाराबंकी (उ० प्र०) में मानी है। युवानच्वांग ने इस नगर को साकेत (अयोध्या) के निकट बताया है। चौथी शती ई० में भारत आनेवाला चीनी यात्री फ़ाह्यान विशाखा से आठ योजन चलकर श्रावस्ती पहुंचा था और इस आधार पर कुछ विद्वान विशोक को अयोध्या या साकेत का ही कोई उपनगर मानते हैं।

विश्मीका (ज़िला दरभंगा, बिहार)

मधुबनी के निकट यह ग्राम मैथिलकोकिल विद्यापति के निवासस्थान के रूप में विख्यात है। कहा जाता है कि 1400 ई० के लगभग महाराज शिवसिंह ने यह ग्राम विद्यापति को दान में दे दिया था।

विश्वा

श्रीमद्भागवत में उल्लिखित एक नदी—'वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः' 5,19,18। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है किंतु प्रसंगानुसार यह पंजाब की कोई नदी जान पड़ती है।

विश्वामित्र-आश्रम

किंवदंती है कि महर्षि विश्वामित्र का आश्रम बक्सर (बिहार) में स्थित था। रामायण की कथा के अनुसार इसी आश्रम में विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को लेकर आए थे जहां उन्होंने ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसों को मारा था। इस स्थान को गंगा-सरयू संगम के निकट बताया गया है—'तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम्, ददृशास्ते ततस्तत्र सरय्वाः संगमे शुभे, तत्राश्रमं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम्' बाल० 23,5-6-7। संगम के निकट गंगा को पार करने के पश्चात् उन्होंने वह भयानक वन देखा था जहां ताड़का का निवास था। वह वन मलद और कारुष जनपदों के निकट था। विश्वामित्र के आश्रम

को सिद्धाश्रम भी कहा जाता था ।

विश्वामित्री

यह नदी चांपानेर (गुजरात) के निकट एक पहाड़ी से निकलती है और बड़ौदा के समीप चार अन्य नदियों के संगम स्थान पर उनसे मिल जाती है । (दे० चांपानेर)

विषप्रस्थ=वृषप्रस्थ ।

विष्णुदेवी (जम्मू, कश्मीर)

जम्मू से उत्तर की ओर 39 मील दूर त्रिकूट पर्वत पर समुद्र तल से 6000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है । विष्णु या वैष्णव देवी का उल्लेख मार्कंडेयपुराण के अंतर्गत दुर्गासप्तशती में है । इस स्थान पर देवी की मूर्तियां एक संकीर्ण और अंधेरी गुफा के अंतिम छोर पर हैं । मूर्तियां गायत्री, सरस्वती और महा लक्ष्मी की हैं जो विष्णु देवी के विभिन्न रूप माने जाते हैं ।

विष्णुपद

(1) विपाशा (=बियास) के तट (पंजाब में) पर स्थित एक प्राचीन तीर्थ जिसका उल्लेख रामायण तथा महाभारत में है—'विष्णोःपदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्, नदीं वापीतटाकानि पल्वलानि सरांसि च'—वाल्मीकि रामा० अयो० 68,19 । महाभारत वन० 130,8 में भी इसी स्थान का वर्णन है—'एतद् विष्णुपदं नाम दृश्यते तीर्थमुत्तमम्, एषा रम्या विपाशा च नदी परमपावनी' ।

(2) गया (बिहार) की पहाड़ी । महाभारत, शान्ति० 29,35 में अंग के राजा बृहद्रथ द्वारा विष्णुपद-पर्वत पर यज्ञ करवाए जाने का उल्लेख है—'अंगस्य यजमानस्य तदा विष्णुपदे गिरौ' ।

(3) महरौली (दिल्ली) के लौह स्तंभ पर उत्कीर्ण संस्कृत अभिलेख में वर्णित स्थान विशेष जहाँ मूलतः यह स्तंभ प्रतिष्ठित था—'प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः' । कहा जाता है कि यह विष्णुपद, विपाशा नदी के तट पर स्थित विष्णुपद ही है । दिल्ली के चौहान नरेश अनगपाल ने इस स्तंभ को विष्णुपद से लाकर दिल्ली में स्थापित किया था (दे० जयचंद्र विद्यालंकार, उत्कीर्ण लेखांजलि, पृ० 15) कुछ विद्वानों के मत में इस स्तभ का मूल स्थान—विष्णुपदगिरि वास्तव में मथुरा के समीप गोवर्धन पर्वत है । ये दोनों ही अभिज्ञान अभी तक प्रमाणित नहीं हो सके हैं । (दे० महरौली, दिल्ली)

विष्णुपुर (बिहार)

यहां स्थित एक तड़ाग से एक काष्ठनिर्मित जिन प्रतिमा प्राप्त हुई थी जो

कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष संग्रहालय में सुरक्षित है। श्री डी० पी० घोष के मत में यह मूर्ति प्राय: 2000 वर्ष प्राचीन है और मौर्यकालीन हो सकती है। तड़ाग में जलमग्न रहने के कारण, मूर्ति के काष्ठ में अनेक सिकुड़नें पड़ गई हैं।

विष्णुमती (नेपाल)

कठमंडू के निकट बहने वाली नदी जिसके तट पर पशुपतिनाथ का प्रसिद्ध मंदिर स्थित है। कठमंडू विष्णुमती और बागमती के बीच में बसा हुआ है।

विहला

रैवतक (गिरनार) से निकलने वाली नदी।

विहारगांव

कार्ली का एक नाम। यह नाम यहां स्थित बौद्ध-विहार तथा चैत्य के कारण ही हुआ था। (दे० कार्ली)

विहारबीज (लंका)

महावंश 17,59-60 में उल्लिखित एक ग्राम। यहां के निवासी पांच सौ युवकों ने एक साथ ही प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

वीतभय

जैनग्रंथ 'प्रवचन सारद्वार' में सौवीर देश की राजधानी के रूप में वर्णित है। एक अन्य ग्रंथ—सूत्रप्रज्ञापणा में इसे सिंध देश में स्थित बताया गया है।

वीरक

'कारस्करान्माहिष्कान् कुरण्डान् केरलांस्तथा, कर्कोटकान् वीरकांश्च दुधर्मांश्च विवर्जयेत्'—महा० कर्ण० 44,43। इस उल्लेख में वर्णित जनपदों के निवासियों को महाभारत के समय में दूषित समझा जाता था क्योंकि संभवत: ये लोग अनार्यजातियों से संबंधित थे। प्रसंगानुसार वीरक दक्षिणभारत का कोई जनपद जान पड़ता है।

वीरनगर

'देविकायास्तटे वीरनगरं नाम वै पुरम्, समृद्धिमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम्' विष्णु० 2,15,6। इस उद्धरण से सूचित होता है कि वीरनगर देविका नदी के तट पर स्थित था और इसकी स्थापना पुलस्त्य ऋषि ने की थी। प्राचीन साहित्य में देविका नाम की कई नदियों का उल्लेख है। एक गंडकी की सहायक नदी देविका नेपाल में थी, दूसरी सौवीर में, तीसरी मुलतान के निकट। वीरनगर की स्थिति इन्हीं नदियों में किसी के तट पर हो सकती है। संभवत: यह नेपाल का वीरनगर है (?)।

वीरपुर (1) (भूतपूर्व रियासत ओड़छा, म० प्र०)

ओड़छा नरेश वीरसिंहदेव ने जो अकबर और जहांगीर के समकालीन थे इस नगर को अपने नाम पर बसाया था। उन्होंने वीरसागर नामक तालाब भी यहां बनवाया था।

(2)=राजपुर (4)

वीरमत्स्य

'सरस्वतीं च गंगां च युग्मेन प्रतिपद्य च, उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारुंडं प्राविशद्वनम्' वाल्मीकि रामा०, अयो० 71,5। वीरमत्स्य जनपद, भरत को केकय देश से अयोध्या आते समय सरस्वती और गंगा नदियों के समीप मिला था। यह गंगा नदी संभवत: सरस्वती की कोई सहायक नदी हो सकती है क्योंकि भागीरथी गंगा को भरत ने यमुना पार करने के पश्चात् पार किया था जो भूगोल की दृष्टि से ठीक भी है। भरत ने यमुना को वीरमत्स्य पहुंचने के पश्चात् पार किया था—'यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा' (अयो० 71,6)। इस प्रकार वीरमत्स्य की स्थिति यमुना के पश्चिम की ओर पूर्वी पंजाब में माननी चाहिए। संभवत: वीरमत्स्य में वर्तमान जगाधरी का ज़िला या इसका कोई भाग सम्मिलित रहा होगा।

वीरावल (काठियावाड़, गुजरात)

यह छोटा-सा बंदरगाह वही स्थान है जहां इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ का मंदिर स्थित था। इस को 1024 ई० में महमूद गजनी ने तोड़ा था। प्राचीन मंदिर के खंडहर समुद्रतट पर एक ऊँचे टीले पर स्थित हैं। इस स्थान के निकट युद्ध में आहत गज़नी के सैनिकों की सैंकड़ों कब्रें दिखाई पड़ती हैं जिससे जान पड़ता है कि गज़नी की सेना को काफी क्षति उठानी पड़ी थी और स्थानीय राजपूतों ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया था। सोमनाथ का अपेक्षाकृत नया मंदिर जो पुराने के समीप है अहल्याबाई ने बनवाया था। वीरावल के पास ही प्रभास क्षेत्र है जिसे भगवान् कृष्ण का देहोत्सर्ग-स्थल माना जाता है। वीरावल या वेरावल का प्राचीन नाम वेलाकूल कहा जाता है। (वेलाकूल का अर्थ समुद्रतट है)

वुलर

कश्मीर की झील। कहा जाता है कि वुलर शब्द शायद उल्लोल (ऊंची चंचल लहरियों वाली) का अपभ्रंश है। इस झील का प्राचीन नाम महापद्मसर था।

वृंद=वृंदारक

महाभारत सभा० 32,11 के एक पाठ के अनुसार वृंदारक पर नकुल ने अपनी पश्चिमी दिशा की दिग्विजय के प्रसंग में अधिकार किया था। श्री वा० श० अग्रवाल के मत में वृंदारक या वृंद वर्तमान अटक (प० पाकि०) के निकट बुरिंदुबुनेर नामक स्थान है। इसके आगे द्वारपाल या (संभवत:) खैबर का उल्लेख है।

वृंदावन (ज़िला मथुरा, उ० प्र०)

मथुरा से 6 मील, यमुना तट पर स्थित कृष्ण की लीलास्थली। हरिवंश-पुराण, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण आदि में वृंदावन की महिमा वर्णित है। कालिदास ने इसका उल्लेख रघुवंश में इंदुमती-स्वयंवर के प्रसंग में शूरसेनाधिप सुषेण का परिचय देते हुए किया है—'संभाव्य भर्तारममुंयुवानंमृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये, वृंदावने चैत्ररथादनूनं निर्विश्यतां सुंदरि यौवनश्रीः' रघु० 6,50. इससे कालिदास के समय में यहां मनोहारी उद्यानों की स्थिति का पता चलता है। श्रीमद्भागवत की कथा के अनुसार गोकुल से कंस के अत्याचार से बचने के लिए नंदजी कुटुंबियों और सजातीयों के साथ वृंदावन चले आये थे—'वनं वृंदावनं नाम पशव्यं नवकाननं गोपगोपीगवां सेव्य पुण्याद्रितृणवीरुधम्। तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युङ्क्तमाचिरम्, गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते। वृंदावनं सम्प्रविश्य सर्वकालसुखावहम्, तत्र चक्रुः व्रजावास शकटैरर्धचन्द्रवत्। वृंदावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च, वीक्ष्यासीदुत्तमाप्रीती राममाधवयोर्नृप' श्रीमद्भागवत, 10,11,28-29-35-36। विष्णुपुराण 5,6,28 में इसी प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार है—'वृंदावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा शुभेण मनसाध्यातं गवां सिद्धिमभीप्सता।' अन्यत्र वृंदावन में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी है 'यथा एकदा तु विना रामं कृष्णो वृंदावन ययुः' विष्णु० 5,7,1; दे० विष्णु० 5,13,24 आदि। कहते हैं कि वर्तमान वृंदावन असली या प्राचीन वृंदावन नहीं है। श्रीमद्भागवत 10,36 के वर्णन तथा अन्य उल्लेखों से जान पड़ता है कि प्राचीन वृंदावन गोवर्धन के निकट था। गोवर्धन-धारण की प्रसिद्ध कथा की स्थली वृंदावन ही थी। अतः वृंदावन गोवर्धन पर्वत के पास ही स्थित रहा होगा न कि वर्तमान वृंदावन के स्थान पर। महाप्रभु वल्लभाचार्य के मत में मूल वृंदावन पारासौली (=परम रासस्थली) के निकट था। महाकवि सूरदास इसी ग्राम में दीर्घकाल तक रहे थे। कहा जाता है कि प्राचीन वृंदावन मुसलमानों के शासन काल में उनके निरंतर आक्रमणों के कारण नष्ट हो गया था और कृष्णलीला की स्थली का कोई अभिज्ञान शेष नहीं रहा था। 15वीं

शती में महाप्रभु चैतन्यदेव ने अपनी व्रजयात्रा के समय वृंदावन तथा कृष्णकथा से संबंधित अन्य स्थानों को अपने अंतर्ज्ञान द्वारा पहचाना था। वर्तमान वृंदावन में प्राचीनतम मंदिर राजा मानसिंह का बनवाया हुआ है। यह मुगल सम्राट् अकबर के शासनकाल में बना था। मूलतः यह मंदिर सात मंजिलों का था। उपरले दो खंड औरंगज़ेब ने तुड़वा दिए थे। कहा जाता है कि इस मंदिर के सर्वोच्च शिखर पर जलने वाले दीप मथुरा से दिखाई पड़ते थे। यहां का विशालतम मंदिर रंगजी के नाम से प्रसिद्ध है। यह दाक्षिणात्य शैली में बना हुआ है। इसके गोपुर बड़े विशाल एवं भव्य हैं। यह मंदिर दक्षिण भारत के श्रीरंगम् के मंदिर की अनुकृति जान पड़ता है। वृंदावन के अन्य प्रसिद्ध स्थान हैं–निधिवन (हरिदास का निवास कुंज), कालियदह, सेवाकुंज आदि।

वृक

पाणिनि द्वारा उल्लिखित गणराज्य जिसकी स्थिति पंजाब या उसके निकटवर्ती क्षेत्र में थी। संभव है यह वृकस्थल हो।

वृकप्रस्थ

बागपत (ज़िला मेरठ उ० प्र०) का प्राचीन नाम। (दे० बागपत, वृकस्थल)। कुछ लोगों का कहना है कि बागपत व्याघ्रप्रस्थ का अपभ्रंश है।

वृकस्थल=वृकप्रस्थ

यह स्थान उन पांच ग्रामों में था जिनकी मांग पांडवों ने युद्ध के निवारणार्थ, दुर्योधन से की थी—'अविस्थलंवृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्, अवसानं भवेत्वत्र किंचिदेकं तु पंचमम्'–महा० उद्योग० 31,19। वृकस्थल या वृकप्रस्थ का अभिज्ञान किंवदंती के अनुसार बागपत (ज़िला मेरठ, उ० प्र०) से किया जाता है। (दे० बागपत)

वृजि=वृजिक (वृज्जि)

उत्तरबिहार का बौद्धकालीन गणराज्य जिसे बौद्ध साहित्य में वृज्जि कहा गया है। वास्तव में यह गणराज्य एक राज्य-संघ का अंग था जिसके आठ अन्य सदस्य (अट्ठकुल) थे जिनमें विदेह, लिच्छवि तथा ज्ञातृकगण प्रसिद्ध थे। वृजियों का उल्लेख पाणिनि 4,2,131 में है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में वृजिकों को लिच्छविकों से भिन्न बताया गया है और वृजियों के संघ का भी उल्लेख किया गया है। युवानच्वांग ने भी वृजिदेश को वैशाली से अलग बताया है (दे० वाटर्स 2,81) किंतु फिर भी वृजियों का वैशाली से निकट संबंध था। बुद्ध के जीवनकाल में मगध सम्राट् अजातशत्रु और वृज्जिगणराज्य में बहुत दिनों तक संघर्ष चलता रहा। महावग्ग के अनुसार अजातशत्रु के दो मंत्रियों

—सुनिध और वर्षकार (वस्सकार) ने पाटलिग्राम (पाटलिपुत्र) में एक किला वृज्जियों के आक्रमणों को रोकने के लिए बनवाया था। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में भी अजातशत्रु और वृज्जियों के विरोध का वर्णन है। वज्रि शायद वृजि का ही रूपांतर है (दे० रायचौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐशेंट इंडिया–पृ० 255)। बुह्लर के मत में वज्रि का नामोल्लेख अशोक के शिलालेख सं० 13 में है। जैन तीर्थंकर महावीर वृज्जिगणराज्य के ही राजकुमार थे।

वृजिस्थान

युवानच्वांग ने इस स्थान का उल्लेख फो-लि शतंगना नाम से किया है। यह वर्तमान वज़ीरस्तान (प० पाकि०) है।

वृद्ध गौतमी

गोदावरी की एक शाखा। गोदावरी की सात शाखा नदियां-मानी गई हैं जिन्हें सप्तगोदावरी कहते हैं। (दे० गोदावरी)

वृषप्रस्थ

'कन्यातीर्थे ऽश्वतीर्थे च गवां तीर्थे च भारत, कालकोट्यां वृषप्रस्थे गिरावुष्य च पांडवाः, बाहुदायां महीपाल चक्रुः सर्वे ऽभिषेचनम्'—महा० वन० 95, 3-4। कान्यकुब्ज, अश्ववीर्थ, कालकोटि आदि के साथ इस पर्वत का तीर्थरूप में उल्लेख होने से यह बुंदेलखंड की कोई पहाड़ी जान पड़ती है। संभवतः यह कालिंजर के निकट स्थित है। वृषप्रस्थ का पाठांतर विषप्रस्थ भी है।

वृषभ

महाभारत, सभा० 21,2 के अनुसार गिरिव्रज (=राजगृह, बिहार) के निकट एक पहाड़ी, 'वैहारो विपुलः, शैलो वराहो वृषभस्तथा, तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यक पंचमाः' [(दे० राजगृह (1)]

वृषभाद्रि (ज़िला मदुरै, मद्रास)

मदुरै या मदुरा से बारह मील उत्तर की ओर प्राचीन तीर्थ है। इसका वर्णन वाराह, वामन ब्रह्मांड तथा अग्निपुराण में है। कहा जाता है कि अपने वनवास-काल में पांडवों ने द्रौपदी के साथ इस पर्वत पर कुछ समय तक निवास किया था। वे जिस गुफा में रहे थे वह आज भी पांडवशैया कहलाती है। वृषभाद्रि पर एक प्राचीन दुर्ग है तथा नूपुरगंगा नामक एक विस्तृत जल स्रोत।

वृषभानपुर दे० बरसाना

वृष्णि

वृष्णि-गणराज्य शूरसेन-प्रदेश में स्थित था। वृष्णियों का तथा अंधकों का प्राचीन साहित्य में साथ-साथ उल्लेख है। श्रीकृष्ण वृष्णि वंश से ही संबंधित

थे। पाणिनि 4,1,114 तथा 6,2,34 में वृष्णियों तथा अंधकों का उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (पृ० 12) में वृष्णियों के संघ-राज्य का वर्णन है। महाभारत शांति० 81,29 में अंधक वृष्णियों का कृष्ण के संबंध में वर्णन है—'यादवाः कुकुरा भोजाः सर्वे चान्धकवृष्णयः, त्वय्यासक्ताः महाबाहो लोकालोकेश्वराश्च ये।' इसी प्रसंग में कृष्ण को संघमुख्य भी कहा गया है जिससे सूचित होता है कि वृष्णि तथा अंधक गणजातियों के राज्य थे—'भेदाद् विनाशः संघानां संघमुख्योऽसि केशव' शांति० 81,25। वृष्णियों का हर्षचरित (कॉवेल, पृ० 193) में भी उल्लेख है। वृष्णि-संघ का नाम एक सिक्के पर भी अंकित पाया गया है जिसका अभिलेख इस प्रकार है—'वृष्णि राजज्ञागणस्य भुभरस्य।' यह सिक्का वृष्णि-गणराज्य द्वारा प्रचलित किया गया था और इसकी तिथि प्रथम या द्वितीय शती ई० पू० है (दे० मजुमदार—कार्पोरेट लाइफ इन ऐंशेंट इंडिया—पृ० 280)

वेंकटाचल = वेंकटरमनाचलम् = शेषाचल

तिरुमला पहाड़ी की सातवीं चोटी का नाम जो समुद्रतल से 2500 फुट ऊंची है। यहां बालाजी का प्राचीन मंदिर है। यह पत्थर की बनी तीन दीवारों से परिवृत है और तीन ही गोपुर इसको सुशोभित करते हैं। बीच में सशिखर मंदिर है जिसका प्रांगण 410 फुट लंबा और 260 फुट चौड़ा है। कई प्रवेश-द्वारों के भीतर पहुंचकर सात फुट ऊंची बालाजी की पाषाण-मूर्ति दृष्टिगोचर होती है। बालाजी को दक्षिणी लोग वेंकटेश कहते हैं। पहाड़ी पर बालाजी के मंदिर से 3 मील दूर पापनाशिनी गंगा और दो मील पर कपिलधारा स्थित है। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में वेंकटाचल का उल्लेख है—'श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधारो विंध्यः' '।

वेंगी

समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में वर्णित स्थान जहां के शासक हस्तिवर्मन् को गुप्तसम्राट् ने परास्त किया था -'वैंगीयकहस्तिवर्मापालक्कउग्रसेनदैवराष्ट्रककुबेरकौस्थलपुरकधनंजयप्रभृति-सर्वदक्षिणापथ राजागृहणमोक्षानुग्रहजनित-प्रतापोन्मिश्रमहाभाग्यस्य च'। वेंगी का अभिज्ञान वेंगी और पेड्डवेगी नामक स्थान से किया गया है जो कृष्णा और गोदावरी नदियों के बीच में स्थित एलौर नामक स्थान से सात मील उत्तर में है। दूसरी शती ई० में वेंगी के शालंकायन नामक नरेशों का पता चला है। टॉलमी ने इन्हें ही सलकेनोई नाम से अभिहित किया है। इससे पहले यहां इक्ष्वाकुओं का राज्य था।

। डाली (लिंगसुगुर तालुका, ज़िला रायचूर, मैसूर)

इस स्थान से प्रागैतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। प्राचीन समय में लोहा

गलाने की निर्माणियाँ भी यहां थीं जिनके खंडहर मिले हैं।

वेक्करई (केरल)

मलाबार के समुद्रतट पर स्थित बंदरगाह है जो ई० सन् की प्रारंभिक शतियों में दक्षिण भारत और रोम-साम्राज्य के बीच होने वाले व्यापार का महत्वपूर्ण केंद्र था। तत्कालीन रोमन इतिहास लेखक प्लिनी ने इसे बेकारे (Becare) और टॉलमी ने अपने भूगोल में इसे बकारई या बर्करे (Bakarai, Barkare) नाम से अभिहित किया है। प्लिनी के अनुसार यह बंदरगाह मदुरा देश में स्थित था जहां पांड्य-नरेश का राज्य था। वेक्करई कोट्टायम नगर के निकट स्थित था।

वेगवती

(1) = वेगा

(2) रैवतक या गिरनार पर्वत से निस्सृत नदी।

वेगा

मदुरा (मद्रास) के समीप बहनेवाली नदी। यह पश्चिमी घाट की पर्वत-माला से निस्सृत होकर मदुरा के दक्षिण-पूर्व में रामेश्वरम् के द्वीप के पास समुद्र में मिलती है। नदी स्थान-स्थान पर लुप्त हो जाती है।

वेगी दे० वेंगी।

वेठद्वीप

इस नगर का प्राचीन बौद्धसाहित्य में उल्लेख है। कुछ विद्वानों ने इसका अभिज्ञान बेतिया (ज़िला चंपारन) से किया है। मजुमदार शास्त्री (दे० ऐंशेंट ज्यॉग्रेफी ऑव इंडिया 1924, पृ० 714) के अनुसार यह कसिया का नाम है। धम्मपदटीका (हार्वर्ड ओरियंटल सिरीज, 28, पृ० 247) में वेठदीपक नामक एक राजा का उल्लेख है जिसका संबंध अल्लकप्प के राजा के साथ बताया है।

वेता = **त्रेता** दे० वेदश्रुति

वेणा

'स विजित्य दुराधर्षं भीष्मकं माद्रिनंदन: कोसलाधिपं चैव तथा वेणातटाधिपं'— महा० सभा० 31,12; 'वेणा भीमरथी चैव नद्यौ पापभयापहे, मृगद्विज-समाकीर्णे तापसालयभूषिते'–महा० वन० 88,3। इस नदी (जिसका उल्लेख भीमरथी या भीमा के साथ है) का अभिज्ञान पेनगंगा से किया गया है। पेनगंगा भीमा के समान ही सह्याद्रि से निकलकर पूर्वसमुद्र में गिरती है। महाभारत में वेणा-समुद्र संगम को पवित्र स्थली बताया गया है—'वेणाया: संगमे स्नात्वा

वाजिमेधफलं लभेत्' वन० 85,34। संभवतः इसे ही श्रीमद्भागवत 5,19,18 में वेण्या कहा गया है—'तुंगभद्राकृष्णावेण्याभीमरथीगोदावरी'। यहां भी इसका भीमरथी के साथ उल्लेख है। यह वेनगंगा या प्रवेणी भी हो सकती है।

वेणी

महाराष्ट्र की एक छोटी नदी। सतारा (महाराष्ट्र) से पांच मील पूर्व कृष्णा और वेणी के संगम पर माहुली नामक पुण्यतीर्थ बसा है। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में वेणी का उल्लेख है—'वैहायसीकावेरीवेणीपयस्विनीशर्करावर्ती तुंगभद्राकृष्णावेण्या ...'।

वेणुकंटक

बुद्धचरित 21,8 के अनुसार इस स्थान पर बुद्ध ने नंद की माता को प्रव्रजित किया था। यह स्थान राजगृह के निकट स्थित था। राजगृह बिहार में स्थित राजगीर है।

वेणुका

विष्णुपुराण 2,4 66 के अनुसार शाकद्वीप की एक नदी—'इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्तीसप्तमी तथा, अन्याश्च शतशस्तत्र क्षुद्रनद्योमहामुने'।

वेणुमंत

द्वारका के उत्तर की ओर स्थित पर्वत –'उत्तरस्यां दिशि तथा वेणुमन्तो विराजते, इंदुकेतुप्रतीकाशः पश्चिमांदिशिमाश्रितः'—महा० सभा० 38। यह पर्वत गिरनार पर्वत-श्रेणी का कोई भाग जान पड़ता है।

वेणुमती

बुद्धचरित 23,62 में वर्णित स्थान जो वैशाली के निकट था। यहां गौतम बुद्ध ने आम्रपाली का आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् वर्षा व्यतीत की थी।

वेणुमान्

विष्णुपुराण 2,4,36 में उल्लिखित कुशद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के पुत्र वेणुमान् के नाम पर प्रसिद्ध है।

वेणुवन=वेणुवनाराम

महावंश 5,115 के अनुसार यह वन या उद्यान राजगृह (=राजगीर, बिहार) में वैभार पर्वत की तलहटी में नदी के दोनों ओर स्थित था। इसे मगध-सम्राट् बिंबसार ने गौतम बुद्ध को समर्पित कर दिया था। इसे महावंश 15,16-17 में वेणुवनाराम कहा गया है। संभवतः बांस के वृक्षों की अधिकता के कारण ही इसे वेणुवन कहा जाता था। बुद्धचरित 16,49 के अनुसार 'तब वेणुवन मे तथागत का आगमन सुनकर मगधराज अपने मंत्रिगणों के साथ उनसे

मिलने के लिए आया'।

वेण्या दे० वेणा

वेत्रवती

(1) यमुना की सहायक नदी बेतवा। यह नदी पंचमढ़ी (म० प्र०) के समीप धूपगढ़ नामक पहाड़ी (पारियात्र शैलमाला) से निकलती है तथा मध्यप्रदेश में बहती हुई यमुना में दक्षिण की ओर से आकर मिल जाती है। इसका महाभारत भीष्म० 9,16 में उल्लेख है—'नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम्, इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि'। प्राचीन काल की प्रसिद्ध नगरी विदिशा वेत्रवती के तट पर ही बसी थी। मेघदूत (पूर्वमेघ, 26) में कालिदास ने वेत्रवती का विदिशा के संबंध में मनोहारी वर्णन किया है—'तेषां दिक्षुप्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्, गत्वा सद्यः फलमति महत् कामुकत्वस्यलब्ध्वा तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादुयुक्तम् सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मिः'। बाणभट्ट ने कादंबरी के प्रारंभ में राजा शूद्रक की राजधानी विदिशा को वेत्रवती के तट पर स्थित बताया है—'वेत्रवत्यासरितापरिगत विदिशाभिधाननगरी राजधान्यासीत्'। बुंदेलखंड का मध्यकालीन नगर ओड़छा भी इसी नदी (बेतवा) के तट पर स्थित है। हिंदी के महाकवि केशवदास (16वीं शती) ने बेतवा का मनोरम वर्णन किया है—'नदी बेतवै तीर जँह तीरथ तुंगारन्य, नगर ओड़छो बहुबसै धरनी तल में धन्य'। 'केशव तुंगारन्य में नदी बेतवैतीर, नगर ओड़छे बहुबसै पंडित मंडित भीर;' 'ओड़छेतीर तरंगिन बेतवै ताहितरै नर केशव को है। अर्जुनबाहुप्रबाहुप्रबोधित रेवाज्यों राजन की रज मोहै, जोतिजगै जमुना सी लगै जगलाल विलोचन पाप बियो है। सूरसुता सुभसंगम तुंगतरंग तरंगित गंग सी सोहै'। इन पद्यों में केशवदास ने बेतवा को तुंगारण्य में ओड़छे के निकट बहने वाली नदी कहा है तथा सूरसुता अथवा यमुना से उसके संगम का वर्णन किया है। केशव के अनुसार बेतवा का तरना दुर्गम था। इस नदी के तट पर बेत के पौधों की बहुलता के कारण ही इस नदी का नाम वेत्रवती पड़ा होगा। बेतवा भारत की सुंदरतम नदियों में से है।

(2)=बर्तोई

वेथाली दे० वैशाली (2)

वेदगिरि (मद्रास)

मद्रास से 44 मील दूर पक्षीतीर्थ की पहाड़ी का नाम। पौराणिक कथा के अनुसार वेदों की स्थापना इस पहाड़ी पर कुछ समय तक शिव की

आज्ञा से की गई थी। पहाड़ी 500 फुट ऊंची है और इसका क्षेत्रफल प्राय: 265 एकड़ और घेरा दो मील के लगभग है। पहाड़ी के नीचे बने हुए मंदिर की बहुत ख्याति है और कहा जाता है कि अप्पर, संबंदर, अरुणागिरि, शंकरर तथा अन्य महात्माओं ने यहां आकर भक्तवत्सलेश्वर तथा त्रिपुरसुंदरी के दर्शन किए थे। गिरिशिखर पर बना हुआ मंदिर भी बहुत प्रसिद्ध है। शिखर के नीचे की ओर जाते हुए एक गुफा मंदिर मिलता है—जो एक ही विशाल प्रस्तर-खंड में से कटा हुआ है। इसी कारण इसे ओरुक्कल मंडप कहते हैं। इसके दो बरामदे हैं जिनमें से प्रत्येक चार भारी स्तंभों पर आधृत है। मंडप के भीतर पल्लवकालीन (7वीं शती ई० की) अनेक कलापूर्ण मूर्तियां हैं। वेदगिरि को ब्रह्मगिरि भी कहते हैं।

वेदवती

वेदवती दक्षिण भारत की नदी है जो भीमा के निकट ही बहती है। विंसेंट-स्मिथ के अनुसार (अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 156,) कुंतलदेश (=कर्नाटक) वेदवती और भीमा के बीच में स्थित था। महाभारत भीष्म० 9,17 में वेदवती का उल्लेख है—'वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम्'। श्री बी० सी० लॉ के अनुसार यह वरदा है। (दे० हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफी ऑव ऐंशेंट इंडिया)

वेदश्रुति

वाल्मीकि रामायण के वर्णन के अनुसार श्रीराम-लक्ष्मण-सीता ने अयोध्या से वन जाते समय कोसल देश की सीमा पर बहने वाली इस नदी को पार किया था—'एता वाचोमनुष्याणां ग्रामसंवासवासिनां शृण्वन्नतिययौवीर: कोसलान् कोसलेश्वर:। ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम् उत्तीर्याभिमुख: प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम्' अयो० 49,8-9। इससे पहले तमसा-तीर पर उन्होंने वनवास की पहली रात्रि व्यतीत की थी (अयो० 46,1)। वेदश्रुति के पश्चात् गोमती (अयो० 49,10) तथा स्यंदिका (अयो० 49,11) को उन्होंने पार किया था। वेदश्रुति इस प्रकार तमसा और गोमती के बीच में स्थित कोई नदी जान पड़ती है। श्री नं० ला० डे के अनुसार यह अवध की बेता (वेता) नदी है।

वेदसा (महाराष्ट्र)

बंबई-पूना रेलमार्ग पर बड़गांव स्टेशन से 6 मील दूर यह ग्राम स्थित है। पहाड़ी पर कार्ली और भाजा के गुफा-मंदिरों के समान ही बौद्ध गुफा-मंदिर हैं जिनमें एक चैत्य गुफा भी सम्मिलित है।

वेदस्मृता

'वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम्'—महा० भीष्म० 9,17. इस नदी का अभिज्ञान अनिश्चित है किंतु वेदस्मृति नामक किसी नदी को विष्णुपुराण 2,3,10 में परियात्र (प० विंध्य) से निस्तृत बताया गया है-- 'वेदस्मृतिमुखाद्याः श्च पारियात्रोद्भवामुने'। वेदस्मृति का श्रीमद्भागवत् 5,19,18 में भी उल्लेख है —'महानदीवेदस्मृतिऋषिकुल्यात्रिसामाकौशिकी'। संभवतः वेदस्मृता वेद-स्मृति का ही नामांतर है।

वेदस्मृति दे० वेदस्मृता

वेदोप

बौद्ध किंवदंती के अनुसार वेदोप उन आठ स्थानों में से था जहां के नरेश भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके शरीर की भस्म लेने के लिए कुशी-नगर आए थे।

वेनगंगा दे० प्रवेणी

वेनाड

त्रिवांकुर (केरल) का प्राचीन नाम। 18वीं शती के मध्यकाल में राजा मार्तंडवर्मा ने वेनाड राज्य की सीमाएं बहुत विस्तृत कर ली थीं। रामीन नामक एक सैनिक ने इस कार्य में उसकी बहुत सहायता की थी। अपनी अभूतपूर्व विजयों के पश्चात् मार्तंडवर्मा ने केरलराज्य को त्रिवेंद्रम के अधिष्ठातृ देव श्रीपद्मनाभ के लिए समर्पित कर दिया था। इसके पश्चात् ही त्रिवांकुर राज्य की राजधानी त्रिवेंद्रम में स्थापित की गई और वेनाड का नया नाम त्रिवांकुर (ट्रावनकोर) प्रचलित हुआ। (दे० त्रिवांकुर, केरल)

वेनीवडार (काठियावाड, गुजरात)

इस स्थान पर उत्खनन द्वारा अनेक प्रागैतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। पुरातत्त्व के विद्वानों का मत है कि ये अवशेष अणुपाषाण तथा पूर्व-पाषाण युग की उस सभ्यता से संबंधित हैं जिसका मूलस्थान बेबिलोनिया में था।

वेमलवाड़ा (ज़िला करीमनगर, आं० प्र०)

इस स्थान पर एक विशाल झील के तट पर एक प्राचीन मंदिर स्थित है जहां यात्रा के लिए प्रतिवर्ष सहस्रों यात्री आते-जाते रहते हैं।

वेरावल दे० वीरावल।

वेरीनाग (कश्मीर)

वेरीनाग का अर्थ विशाल नाग अथवा स्रोत है। झेलम नदी का उद्गम

यही स्रोत कहा जाता है। प्राचीन समय में स्रोत के निकट शिव और गणेश के मंदिर स्थित थे। मुगल सम्राट् जहांगीर ने इन मंदिरों को न छेड़ते हुए स्रोत के निकट ही एक सुंदर इमारत बनवाई थी। इसकी नींव 1620 ई० मे पड़ी थी किंतु यह 1627 ई० में बनकर तैयार हुई थी। वेरीनाग नूरजहां को बहुत प्रिय था और अपने कश्मीर-प्रवास में वह प्रायः यहां ठहरती थी। बेरीनाग का स्रोत 52 फुट गहरा है और इसकी तलहटी के ऊपर दो वेदिकाएं बनी हुई हैं। सन्निकट उद्यान के बाहर एक छोटा-सा प्रासाद बना है।

वेरुल दे० इलौरा

वेललि=वेलिग्राम (ज़िला मंगलूर, मैसूर)

इस छोटे से ग्राम में जो उड्पी क्षेत्र के अंतर्गत माना जाता है, माघ शुक्ल सप्तमी 1295 वि० सं०=1238 ई० में प्रसिद्ध दार्शनिक मध्वाचार्य का जन्म हुआ था। इनके पिता भार्गवगोत्रीय नारायण भट्ट थे तथा इनकी माता का नाम वेदवती था। माध्व का बचपन का नाम वासुदेव था। ये द्वैत सिद्धांत के प्रतिपादक तथा भक्तिमार्ग के परिपोषक थे। इस स्थान को वेल्ले भी कहते हैं। यह उडुपी से सात मील दूर है।

वेलाकूल दे० वीरावल

वेलापुर=वेल्लूर

वेलिग्राम=वेललि

वेल्लूर (मद्रास)

प्राचीन नाम वेलापुर है। यह स्थान एक मध्ययुगीन दुर्ग के लिए प्रख्यात है जो 1274 ई० में बोम्मी रेडी ने बनवाया था। यह व्यक्ति भद्राचल से यहां आकर बस गया था। विजयनगर के नरेशों के समय इस स्थान की बहुत उन्नति हुई। 17वीं शती के मध्य में बीजापुर के सुल्तानों ने यहां आक्रमण करके दुर्ग का घेरा डाला। 1676 ई० में मराठों ने इस स्थाम पर अधिकार कर लिया किन्तु 1707 ई० में मुग़ल सेनापति दाऊद ने इसे उनसे छीन लिया। 1760 ई० में यहां अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया। टीपू सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवार के सदस्यों को यही किले में रखा गया। इन्होंने किले में स्थित भारतीय सैनिकों को अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत करने के लिए उकसाया था। वेल्लूर दुर्ग के अन्दर एक बहुत सुन्दर मंदिर स्थित है जिने अंग्रेजों की छावनी बनने से बहुत क्षति पहुंची। इसके प्रवेश द्वारों पर शार्दूल—दानवों और अश्वारोहियों की मूर्तियां हैं। मंडपों के स्तंभों की शिल्पकारी अनोखी जान पड़ती है। फ़र्ग्यूसन के मत में यह मंदिर 13वीं या 14वीं शती

का जान पड़ता है ।

वेल्ले=वेललि

वैंकक

विष्णुपुराण के अनुसार मेरु के पूर्व की ओर स्थित पर्वत—'शीतांभश्च कुमुदश्च कुररी माल्यवांस्तथा वैंककप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः'—विष्णु० 2,2,26।

वैजयंत=वैजयंती

कर्नाटक (मैसूर) में स्थित नगर जिसका उल्लेख द्वितीय शती ई० के नासिक अभिलेख में है। शातवाहन गौतमीपुत्र के गोवर्धन (नासिक) में स्थित अमात्य को यह आदेश-लेख वैजयंती के शिखर से प्रेषित किया गया था। वैजयंत जो वैजयंती का रूपांतर है, रामायणकालीन नगर था। वाल्मीकि रामायण अयो० 9,12 में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'दिशामास्थाय कैकयि दक्षिणां दंडकान्प्रति, वैजयन्तमितिख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः'। रामायण की इस प्रसंग की कथा में वर्णित है कि वैजयंत में, जो दंडकारण्य का मुख्य नगर था, तिमिध्वज या शंबर का राज्य था। इंद्र ने इससे युद्ध करने के लिए राजा दशरथ की सहायता मांगी। दशरथ इस युद्ध में गए किंतु वे घायल हो गए और कैकयी जो उनके साथ थी उनकी रक्षा करने के लिए उन्हें संग्राम स्थल से दूर ले गई। प्राणरक्षा के उपलक्ष्य में दशरथ ने कैकयी को दो वरदान देने का वचन दिया जो उसने बाद में मांग लिए।

वैडूर्य

विष्णुपुराण 2,2,28 के अनुसार मेरु के पश्चिम में स्थित एक पर्वत (केसराचल)—'शिखिवासाः सवैडूर्य; कपिलो गंधमादनः, जारुधिप्रमुखास्तद्वत् पश्चिमे केसराचलाः'।

वैतरणी

(1) कुरुक्षेत्र की एक नदी। वामनपुराण 39,6-8 में इसकी कुरुक्षेत्र की सप्तनदियों में गणना की गई है—'सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी, आपगा च महापुण्या गंगा-मंदाकिनी नदी। मधुस्रवा अम्लुनदी कौशिकी पापनाशिनी, दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी'।

(2) उड़ीसा की नदी जो सिंहभूम के पहाड़ों से निकल कर बंगाल की खाड़ी में—धामरा नामक स्थान के निकट गिरती है। यह कलिंग की प्रख्यात नदी थी। महाभारत, भीष्म 9,34 में इस प्रदेश की अन्य नदियों के साथ ही इसका भी उल्लेख है—'चित्रोत्पलां चित्ररथां मंजुलां वाहिनीं तथा मंदाकिनीं वैतरणीं

कोषां चापि महानदीम्'। पद्मपुराण, 21 में इसे पवित्र नदी माना है। बौद्ध ग्रंथ संयुत्तनिकाय 1,21 में इसे यम की नदी कहा है—'यमस्स वेतरिणम्'। पौराणिक अनुश्रुति में वैतरणी नामक नदी को परलोक में स्थित माना गया है जिसे पार करने के पश्चात् ही जीव की सद्गति संभव होती है।

वैताढ्य

विंध्याचल पर्वत का एक नाम जिसका उल्लेख जैनग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में है। इसके द्वारा भारतवर्ष को आर्यावर्त तथा दाक्षिणात्य— इन दो भागों में विभाजित माना गया है। वैताढ्य पर्वत के सिद्धायतन, तमिस्रा गुहा आदि नौ शिखर गिनाए गए हैं (जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, 1,12)।

वैदूर्यपत्तन (आं० प्र०)

गोदावरी के तट पर स्थित है। इस कस्बे के निकट अरुणाश्रम नामक स्थान को दक्षिण के प्रसिद्ध दार्शनिक संत निंबार्काचार्य का जन्मस्थान माना जाता है। इनका एक मात्र ग्रंथ वेदांत सूत्रों पर भाष्य, 'वेदांत पारिजात सौरभ' ही मिलता है। उन्होंने द्वैताद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादन तथा भक्ति मार्ग का संपोषण किया था। श्रीमद्भागवत से इन्हें बहुत अनुराग था।

वैदूर्य पर्वत=वैदूर्य शिखर

(1) महाभारत वनपर्व में धौम्य मुनि द्वारा वर्णित तीर्थों में इस पर्वत का उल्लेख है—'वैदूर्यशिखरो नाम पुण्यो गिरवर: शिव:, नित्यपुष्पफलास्तत्र पादपा-हरितच्छदा:, तस्य शैलस्य शिखरे सर: पुण्यं महीपते, फुल्लपद्मं महाराज देवगंधर्वसेवितम्' वन० 89,6-7। इस प्रसंग में नर्मदा का वर्णन है जिसके कारण वैदूर्यशिखर का भेड़ाघाट (भृगुक्षेत्र) के समीप स्थित संगमर्मर की चट्टानों वाली पर्वतमाला से अभिज्ञान किया जा सकता है। वैदूर्य या बिल्लोर शब्द श्वेत संगमर्मर के लिए प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। उपर्युक्त उद्धरण में वैदूर्यशिखिर पर जिस सरोवर का वर्णन है वह शायद नर्मदा की वह गहरी झील है जो इन पहाड़ियों के बीच में नदी प्रवाह के रुक जाने से बन गई है। वन० 121,16-19 में भी वैदूर्य पर्वत का, नर्मदा और पयोष्णी के संबंध में वर्णन है—'स पयोष्ण्यां नरश्रेष्ठ: स्नात्वा वै भ्रातृभि: सह वैदूर्यपर्वतं चैव नर्मदां च महानदीम्। देवानामेति कौंतेय यथा राजां सलोकताम्, वैदूर्य पर्वतं दृष्ट्वा नर्मदामवतीर्य च'। (दे० भृगुक्षेत्र)

(2) महाहिमवंत के आठ शिखरों में से एक, जिसका उल्लेख जैन ग्रंथ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में है।

वैद्यनाथ (बिहार)

'वैद्याभ्यांपूजितं मत्यं लिंगमेतत्पुरा मम, वैद्यनाथमितिख्यातं सर्वकामप्रदायकम्'—शिवपुराण। शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में इसकी गणना है। यहां शिव तथा पार्वती के लगभग 25 मंदिर हैं। इस तीर्थ में शिवपार्वती की संपृक्त पूजा की जाती है जिसके प्रतीक-स्वरूप दोनों मंदिरों के शिखरों की मालाओं को एक साथ बांधा जाता है। वैद्यनाथ को भवरोगहर भी कहा जाता है। शिवपुराण के अनुसार देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार ने इस स्थान पर तप किया था। पद्मपुराण के पातालखंड में भी इस तीर्थ का उल्लेख है। वैद्यनाथ के निकट कई स्थान प्रसिद्ध हैं, जिनमें त्रिकूट, नंदनपर्वत, तपोवन, शिवगंगा आदि प्रमुख है। इन सबके विषय में पौराणिक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। त्रिकूट से मयूराक्षी नदी निकलती है।

वैद्युत

विष्णुपुराण 2,4,29 के अनुसार शाल्मल द्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा वपुष्मान के पुत्र वैद्युत के नाम पर प्रसिद्ध है।

वैभार

राजगृह (=राजगीर, बिहार) के निकट एक पर्वत जिसका नामोल्लेख महाभारत सभा० 21,2 में है—'वैभारो विपुलो शैलो वराहो वृषभस्तथा' [दे० राजगृह (1)]। इसका पाठांतर वैहार है। पालीग्रंथों में इसे वेभार कहा गया है—दे० महावंश 3,19। सप्तपर्णि (सोनभंडार) नामक गुहा इसी पहाड़ी में स्थित थी। यहां बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् प्रथम धर्म-संगीति का अधिवेशन हुआ था जिसमें 500 भिक्षुओं ने भाग लिया था। जैन ग्रंथ 'विविध तीर्थ कल्प' में राजगृह की इस पहाड़ी के त्रिकूट एवं खंडिक नाम के दो शिखरों का उल्लेख है। पहाडी पर होने वाली अनेक ओषधियों का भी वर्णन है। इस ग्रंथ के अनुसार सरस्वती नदी यहां प्रवाहित होती थी और मगध, लोचन आदि नाम के जैन देवालय स्थित थे जिनमें जैन अर्हतों की मूर्तियां थीं। कहा जाता है कि यहाँ के देवालयों के निकट सिंह आदि हिंसक पशु भी सौम्यतापूर्वक रहते थे। प्राचीन समय में यहाँ रौहिणेय नामक महात्मा का निवास था।

वैभ्राज

विष्णुपुराण 2,4,7 में उल्लिखित प्लक्षद्वीप के सप्तपर्वतों में से एक है 'गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दंदुभिस्तथा, सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्च सप्तमः'।

वैरंजा

बुद्धचरित 21,27 में बुद्ध का इस अनभिज्ञात नगर में पहुँच कर विरिंच

नामक व्यक्ति को धर्म की दीक्षा देने का उल्लेख है। यह नगर श्रावस्ती-मथुरा मार्ग पर स्थित था और मथुरा के निकट ही था। यहां के ब्राह्मणों का बौद्ध साहित्य में उल्लेख है। गौतम बुद्ध यहां ठहरे थे और उन्होंने इस नगर के निवासियों के समक्ष प्रवचन भी किया था।

वैरंत्य नगर

संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भास के 'अविमारक' नाटक की पार्श्वस्थली। यहां कुंतिभोज की राजधानी थी। हर्षचरित में इसे रंतिदेव की राजधानी कहा गया है। यह मालवा का एक छोटा-सा नगर था जिसकी स्थिति चंबल की सहायक अश्वनदी के तट पर थी। इसे भोज भी कहते थे।

वैरथ

विष्णुपुराण 2,4,36 के अनुसार कुशद्वीप का भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा ज्योतिष्मान् के पुत्र के नाम पर प्रसिद्ध है।

वैरागिनी (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

गोपेश्वर के नीचे कुछ ही दूर पर वैरागिनी नामक नदी प्रवाहित होती है जिसे प्राचीन काल से तीर्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है।

वैराज दे० वाई

वैराट

जैन-ग्रंथ सूत्र प्रज्ञापणा में उल्लिखित एक नगर जिसे वत्स राज्य के अंतर्गत बताया गया है।

वैलारुद्रपुर दे० द्वैलव।

वैशगढ़ दे० जिजंला।

वैशाली (ज़िला मुजफ़्फ़रपुर, बिहार)

(1) प्राचीन नगरी वैशाली(पाली—वैसाली) के भग्नावशेष वर्तमान बसाढ़ नामक स्थान के निकट जो मुजफ़्फ़रपुर से 20 मील दक्षिण पश्चिम की ओर है, स्थित हैं। पास ही बखरा नामक ग्राम बसा हुआ है। इस नगरी का प्राचीन नाम विशाला था जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण में है (दे० विशाला)। गौतम बुद्ध के समय में तथा उनसे पूर्व लिच्छवीगणराज्य की यहां राजधानी थी। यहाँ वृजियों (लिच्छवियों की एक शाखा) का संस्थागार था जो उनका संसद्-सदन था। वृजियों की न्यायप्रियता की बुद्ध ने बहुत सराहना की थी। वैशाली के संस्थागार में सभी राजनीतिक विषयों की चर्चा होती थी। यहां अपराधियों के लिए दंडव्यवस्था भी की जाती थी। कथित अपराधी का अपराध सिद्ध करने के लिए विनिश्चयमहामात्य, व्यावहारिक, सूत्रधार, अष्ट-

कुलिक, सेनापति, उपराज या उपगणपति और अंत में गणपति क्रमिक रूप से विचार करते थे और अपराध प्रमाणित न होने पर कोई भी अधिकारी दोषी को छोड़ सकता था। दंडविधान संहिता को प्रवेणिपुस्तक कहते थे। वैशाली की प्रशासनपद्धति के बारे में यहां से प्राप्त मुद्राओं से बहुत कुछ जानकारी होती है। वैशाली के बाहर स्थित कूटागारशाला में तथागत कई बार रहे थे और अपने जीवन का अंतिम वर्ष भी उन्होंने अधिकांश में वहीं व्यतीत किया था। इसी स्थान पर अशोक ने एक प्रस्तर-स्तंभ स्थापित किया था। वैशाली के चतुर्दिक् चार प्रसिद्ध चैत्य थे—पूर्व में उदयन, दक्षिण में गौतमक, पश्चिम में सप्ताम्रक, और उत्तर में बहुपुत्रक। अन्य चैत्यों के नाम थे—कोरमट्टक, चापाल चैत्य आदि। बौद्ध किंवदंती के अनुसार तथागत ने चापाल चैत्य ही में अपने प्रिय शिष्य आनंद से कहा था कि तीन मास पश्चात् मेरे जीवन का अंत हो जाएगा। लिच्छवी लोग वीर थे किंतु आपस की फूट के कारण ही वे मगध-राज अजातशत्रु की राज्यलिप्सा का शिकार बने। एकपण्ण जातक (कॉवेल, सं० 149) के प्रारंभ में वर्णन है कि वैशाली के चारों ओर तीन भित्तियां थीं जिनके बीच की दूरी एक एक कोस थी और नगरी के तीन ही सिंहद्वार थे जिनके ऊपर प्रहरियों के लिए स्थान बने हुए थे। बुद्ध के समय में वैशाली अति समृद्धिशाली नगरी थी। बौद्धसाहित्य में यहां की प्रसिद्ध गणिका आम्रपालिका के विशाल प्रासाद तथा उद्यान का वर्णन है। इसने तथागत से उनके धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली थी। तथागत को वैशाली तथा उसके निवासियों से बहुत प्रेम था। उन्होंने यहां के गणप्रमुखों की देवों से उपमा दी थी। अंतिम समय में वैशाली से कुशीनारा आते समय उन्होंने करुणापूर्ण ढंग से कहा था कि 'आनंद, अब तथागत इस सुंदर नगरी का दर्शन न कर सकेंगे' (दे० बुद्धचरित, 25,34) जैनों के अंतिम तीर्थंकर महावीर भी वैशाली के ही राजकुमार थे। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ तथा माता का त्रिशला था। ये लिच्छवी-वंश के ही रत्न थे। इनका जन्मस्थान वैशाली का उपनगर कुंद या कुंड था जिसका अभिज्ञान बसाढ़ के निकट वसुकुंड नामक ग्राम से किया गया है। वैशाली के कई उपनगरों के नाम पाली साहित्य से प्राप्त होते हैं—कुंदनगर, कोल्लाग, नादिक वाणियगाम, हत्थीगाम आदि। महावंश 4,150,4,63 के अनुसार वैशाली के निकट बालुकाराम नामक उद्यान स्थित था। बरवरा ग्राम से एक मील दूर कोल्हू नामक स्थान के पास एक महंत के आश्रम में अशोक का सिंह-शीर्ष स्तंभ है जो प्रायः पचास फुट ऊंचा है किंतु भूमि के ऊपर यह केवल अठारह फुट ही है। चीनी यात्री युवानच्वांग ने इसका उल्लेख किया है।

पास ही मर्कटह्रद नामक तड़ाग है। कहा जाता है कि इसे बंदरों के एक समूह ने बुद्ध भगवान् के लिए खोदा था। मर्कटह्रद का उल्लेख बुद्धचरित 23,63 में है। यहां उन्होंने मार या कामदेव को बताया था कि वे तीन मास में निर्वाण प्राप्त कर लेंगे। तड़ाग के निकट कुताग्र नामक स्थान है जहां बुद्ध ने धर्मचक्र-प्रवर्तन के पांचवें वर्ष में निवास किया था। बसाढ़ के खंडहरों में एक विशाल दुर्ग के ध्वंसावशेष भी स्थित हैं। इसको राजा वैशाली का गढ़ कहते हैं। एक स्तूप के अवशेष भी पाए गए हैं।

(2) = वेथाली (अराकान, बर्मा)। 8वीं शती ई० में धन्यवती के अराकान की प्राचीन हिंदू राजधानी के रूप में परित्यक्त होने पर, वैसाली—वर्तमान वेथाली—को अराकान की राजधानी बनाया गया था। यह कार्य महातैनचंद्र द्वारा संपादित हुआ था। 11वीं शती के प्रारंभिक वर्षों में इस राजवंश के समाप्त होने पर वैसाली से भी राजधानी हटाली गई (1018 ई०)। वैसाली का अभिज्ञान वेथाली नामक ग्राम से किया गया है जहां के खंडहरों से वैशाली के पूर्वगौरव की झलक मिलती है। इन खंडहरों में प्राचीन भवनों तथा कलाकृतियों के अनेक ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं जिन पर गुप्तकालीन भारत की कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। वेथाली म्रोहांग से आठ मील उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित है।

वैसाली दे० वैशाली

वैहायसी

(1) श्रीमद्भागवत 5,19,18 में वर्णित नदी—'चन्द्रवसाताम्रपर्णीअवटोदा कृतमालावैहायसीकावेरी—'। संदर्भ से यह दक्षिणभारत की नदी जान पड़ती है।

(2) दे० बदरीनाथ

वैहार = **वैभार**

वोक्कण = **वारवन** (अफगानिस्तान)

बृहत्संहिता नामक ज्योतिष ग्रंथ मे (9,21;16,35) में इस देश का गंधार के साथ उल्लेख है। यहां के निवासियों को शूलिक कहा गया है। संभव है इस देश का वंक्षु से संबंध हो जैसा कि नाम से प्रतीत होता है।

वोदामयूता दे० बदायूं

व्याघ्रपल्लिक दे० खोह

व्याघ्रपल्लिक दे० वराहक्षेत्र

व्याधपुर

8वीं शती ई० में दक्षिण कंबोडिया या कंबुज में स्थित छोटा-सा राज्य

था। इस भारतीय उपनिवेश का उल्लेख कंबोडिया के प्राचीन इतिहास में है।

व्यासक्षेत्र दे० कालपी

व्यासगुफा (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

बदरीनाथ से वसुधारा जानेवाले मार्ग पर पहाड़ में इस नाम की एक गुफा है। कहा जाता है कि भगवान् व्यास ने इसी गुफा में महाभारत तथा पुराणों की रचना की थी। पास ही गणेश गुफा है जिसका संबंध गणेशजी से, जिन्होंने व्यासजी के महाभारत के लेखक का कार्य किया था, बताया जाता है। बादरायण व्यास का बदरीनाथ से संबंध प्रसिद्ध ही है। (दे० बदरीनाथ)

व्यासघाट (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

देवप्रयाग से 9 मील दूर है। यह स्थान नवालिका-गंगा संगम के निकट है और इसे भगवान् व्यास की तपःस्थली माना जाता है।

व्यासटीला (ज़िला जालौन, उ० प्र०)

व्यासटीला कालपी के पास यमुना-तट पर व्यासक्षेत्र के अंतर्गत स्थित है। कहा जाता है कि महाभारतकार भगवान् व्यास का यहां आश्रम था। यह स्थान उपेक्षित दशा में है। (दे० कालपी)

व्यासपुर (दे० विलासपुर)

व्यासस्थली

महाभारत वन० 83,95-97 में इस पुण्यस्थली का वर्णन दृषद्वती-कौशिकी संगम के पश्चात् है—'ततो व्यासस्थली नाम यत्रव्यासेन धीमता पुत्रशोकाभितप्तेन देहत्यागेकृतामतिः। ततो देवैस्तु राजेन्द्र पुनरुत्थापितस्तदा'। प्रसंग से यह स्थान कुरुक्षेत्र (पंजाब) के निकट जान पड़ता है।

व्योमस्तंभ (आं० प्र०)

काकरवाड़ (प्राचीन काकुंभकर) के निकट और कृष्णा नदी के दक्षिण तट पर स्थित एक पर्वत। व्योम-स्तंभ का अर्थ आकाश का स्तंभ है जो इस पर्वत का सार्थक नाम जान पड़ता है। काकुंभकर को प्राचीनकाल में तीर्थ की मान्यता प्राप्त थी और इसका संबंध महाप्रभु वल्लभाचार्य से बताया जाता है।

व्रज

मथुरा (उ० प्र०) तथा उसका परिवर्ती प्रदेश (प्राचीन शूरसेन) जो श्रीकृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध है। ब्रज का विस्तार 84 कोस में कहा जाता है। यहां के 12 वनों और 24 उपवनों की यात्रा की जाती है। व्रज का अर्थ गोचर भूमि है और यमुना के तट पर प्राचीन समय में इस प्रकार की भूमि की प्रचुरता होने से ही इस क्षेत्र को व्रज कहा

जाता था। व्रज का वर्णन विशेषरूप से भारतीय मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में प्रचुरता से है। वैसे इसका उल्लेख कृष्ण के संबंध में श्रीमद्‌भागवत तथा विष्णुपुराणादि प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है—'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिराशश्वदत्रहि' श्रीमद्‌भागवत 10,31,1; 'विना वृषेण का गावः विना कृष्णेन को व्रजः' विष्णु० 5, 7,27; 'तयोर्विहरतोरेवं रामकेशवयोर्व्रजे' विष्णु० 5,10,1; 'तत्याज व्रजभूभागं सहरामेण केशवः' विष्णु 5,18,32; 'प्रीतिः सस्त्री-कुमारस्य व्रजस्य त्वयि केशव' विष्णु० 5,13,6। हिंदी में सूरदास आदि भक्ति-कालीन कवियों ने तो व्रज की महिमा के अनंत गीत गाए हैं। 'ऊधो मोंहि व्रज बिसरत नाही' इस पद में सूर के कृष्ण का ब्रज के प्रति बालपन का प्रेम बड़ी ही मार्मिक रीति से व्यक्त किया गया है।

शंकरगढ़ (म० प्र०)

भूतपूर्व नागौर रियासत में उचहरा के निकट स्थित है। शकरगढ़ में मुख्यत जैन सप्रदाय से संबंधित अनेक ध्वसावशेष प्राप्त हुए हैं। पुरातत्वविद् रा० दा० बनर्जी को यहां से एक गुप्तकालीन मंदिर के अवशेष भी मिले थे। यह मदिर देवगढ़ के प्रसिद्ध मंदिर से पूर्व का है। इसके प्रवेशद्वार की पत्थर की चौखट पर सुंदर नक्काशी की हुई है जो गुप्तकालीन मंदिरों की विशेषता है। शकरगढ़ से प्राप्त होने वाले पत्थर का, इस क्षेत्र में निर्मित होनेवाली अनेक मूर्तियों के बनाने मे प्रयोग किया जाता था।

शंखकूट

विष्णुपुराण के अनुसार शखकूट पर्वत मेरु के उत्तर की ओर स्थित है—'शंखकूटोऽथ ऋषभोहंसो नागस्तथापरः कलंजाद्याश्चतथा उत्तरे केसराचलः' विष्णु० 2,2,29।

शंखक्षेत्र

जगन्नाथपुरी के क्षेत्र का प्राचीन पौराणिक नाम। कहा जाता है कि इस क्षेत्र की आकृति शंख के समान है। शाक्तों के अनुसार इसका नाम उड्डियान पीठ है।

शंखतीर्थ

'उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान् विप्रेभ्यो विप्रदाय सः नीलवासास्तदागच्छच्छंख-तीर्थं महायशाः' महा० शल्य० 37,19। इस उल्लेख के अनुसार शंखतीर्थ की सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों में गणना थी। इसकी यात्रा बलराम ने की थी। शंखतीर्थ गर्गस्रोत के उत्तर में था।

शंखेश्वर

वर्तमान शंखेश्वर-पार्श्वनाथ तीर्थ जो धनपुर (गुजरात) के निकट है। इसका नामोल्लेख जैन स्त्रोत तीर्थमालाचैत्यवंदन में इस प्रकार है—'जीरापल्लिफलर्द्धि पारक नगे शैरीस शंखेश्वरे'।

शंखोद्धार (ज़िला झालवाड़, राजस्थान)

चंद्रभागा नदी के तट पर स्थित तीर्थ जिसका उल्लेख स्कंदपुराण में है। स्कंदपुराण की कथा के अनुसार अंधक असुर को मारकर भगवान् ने जहां शंख-ध्वनि की थी, यह वही स्थान हैं। यहां एक सूर्य मंदिर स्थित है।

शंबल

विष्णुपुराण 4,24, 98 में शंबलग्राम में भविष्य के कल्कि अवतार होने का उल्लेख है 'शंबलग्रामप्रधानब्राह्मणस्यविष्णुयशसोगृहेऽष्टगुणर्द्धिसमन्वितः कल्कि-रूपी जगत्यात्रावतीर्य स्वधर्मेषु चाखिलमेव संस्थापयिष्यति'। कुछ लोगों के मत में शंबल ग्राम वर्तमान संभल (ज़िला मुरादाबाद, उ० प्र०) है

शंभुपुर

8वीं शती ई० में दक्षिण कंबोडिया (कंबुज) में एक छोटा-सा राज्य जिसका उल्लेख कंबोडिया के प्राचीन इतिहास में है। इस भारतीय उपनिवेश की स्थिति वर्तमान संभोर के निकट थी जो मिकोंग नदी पर है। संभोर, शंभुपुर ही का अपभ्रंश है।

शकरदर्रा दे० शाल

शकस्थान

शकों का मूल निवासस्थान जो ईरान के उत्तर-पश्चिमी भाग तथा परिवर्ती प्रदेश में स्थित था। इसे सीस्तान कहा जाता है। शकस्थान का उल्लेख महा-मायूरि 95, मथुरा सिंहस्तंभ-लेख और कंदबनरेश मयूरशर्मन् के चंद्रवल्ली प्रस्तर-लेख में है। मथुरा-अभिलेख के शब्द हैं—'सर्वस सकस्तनस पुयेइ' जिसका अर्थ, कनिंघम के अनुसार 'शकस्तान निवासियों के पुण्यार्थ' है। रायचौधरी (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव ऐशेंट इंडिया पृ० 526) के मत में शकस्तान ईरान में स्थित था और शकवंशीय चष्टन और रुद्रदामन के पूर्व पुरुष गुज-रात-काठियावाड़ में इसी स्थान से आकर बसे थे। शकों का उल्लेख रामायण ('तैरासीत् संवृताभूमिः शकैर्यवनमिश्रितैः' बाल० 54,21; 'कांबोजयवनां श्चैव-शकानांपत्तनानिच' किष्किंधा०, 43,12); महाभारत ('पहल्वान् बर्बरांश्चैव किरातान् यवनाञ्छकान्' सभा० 32,17); मनुस्मृति ('पौंड्रकाश्चौड्रद्रविड़ाः कांबोजा यवनाः शकाः' 10,44) तथा महाभाष्य (दे० इंडियन एंटिक्वेरी 1875,

पृ० 244) आदि ग्रंथों में है।

शकुनिकाविहार=दे० अश्वबोधतीर्थ

शक्रपुरी=इंद्रप्रस्थ

शक्रावतार

अभिज्ञानशाकुंतल, अंक 5 के उल्लेख अनुसार हस्तिनापुर जाते समय शक्रावतार के अंतर्गत शचीतीर्थ में गंगा के स्रोत में शकुंतला की अंगूठी गिरकर खो गई थी—'नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिले वन्दमानाया: प्रभ्रष्ट-मंगुलीयकम्'। यह अंगूठी शक्रावतार के धीवर को एक मछली के उदर से प्राप्त हुई थी—'शृणुत इदानीम् अहं शक्रावतारवासी धीवर:'-अंक 6। शची-तीर्थ में गंगा की विद्यमानता का उल्लेख इस प्रकार है—'शचीतीर्थंवंदमानायाः सख्यास्ते हस्ताद्गंगास्त्रोतसि परिभ्रष्टम्'—अंक 6। हमारे मत में शक्रावतार का अभिज्ञान ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर (उ० प्र०) में गंगातट पर स्थित शुक्कर-ताल नामक स्थान से किया जा सकता है। शुक्करताल, शक्रावतार का ही अपभ्रंश जान पड़ता है। यह स्थान मालन नदी के निकट स्थित मंडावर (ज़िला बिजनौर) के सामने गंगा के दूसरी ओर स्थित है। मंडावर में कण्वाश्रम की स्थिति परंपरा से मानी जाती है। मंडावर से हस्तिनापुर (ज़िला मेरठ) जाते समय शुक्करताल, गंगा पार करने के पश्चात् दूसरे तट पर मिलता है और इस प्रकार कालिदास द्वारा वर्णित भौगोलिक परिस्थिति में यह अभिज्ञान ठीक बैठता है। शुक्करताल का संबंध शुकदेव से बताया जाता है और यह स्थान अवश्य ही बहुत प्राचीन है। बहुत संभव है कि शक्रावतार का शक्र ही शुक्कर बन गया है और इस शब्द का शुकदेव से कोई संबंध नहीं है। [दे० माडर्न रिव्यू नवम्बर 1951, में ग्रंथकर्ता का लेख 'टापोग्राफी ऑव अभिज्ञानशाकुंतल')। महाभारत, वन० 84, 29 में उल्लिखित शक्रावर्त भी यही स्थान जान पड़ता है।

शक्रावर्त

महाभारत वन० 84,29 में शक्रावर्त नामक तीर्थ का उल्लेख गंगाद्वार या हरद्वार के पश्चात् है—'सप्तगंगे त्रिगंगे च शक्रावर्ते च तर्पयन् देवान् पितृंश्च विधिवत् पुण्यलोके महीयते'। संभवत: शक्रावर्त कालिदास द्वारा अभिज्ञान शाकुंतल में वर्णित शक्रावतार ही है। वर्तमान शक्रावतार या शुक्करताल (ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर, उ० प्र०) हरद्वार से दक्षिण में, गंगा-तट पर स्थित है।

शतद्रु=शतद्रू

सतलज नदी (पंजाब) का प्राचीन नाम। ऋग्वेद के नदीसूक्त में इसे

शुतुद्रि कहा गया है—'इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुषण्या असिक्न्यामरुद्‌वृधे वितस्तयर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया—10,75,5। वैदिक काल में सरस्वती नदी शुतुद्रि में ही मिलती थी (दे० मेकडानल्ड—हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, पृ० 142)। परवर्ती साहित्य में इसका प्रचलित नाम शतद्रु या शतद्रू (सौ शाखाओं वाली) है। वाल्मीकि रामायण में केकय से अयोध्या आते समय भरत द्वारा शतद्रु के पार करने का वर्णन है—'ह्लादिनीं दूरपारां च प्रत्यक् स्रोतस्तरंगिणीम् शतद्रुमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः' अयो० 71,2 अर्थात् श्रीमान् इक्ष्वाकुनन्दन भरत ने प्रसन्नता प्रदान करने वाली, चौड़े पाट वाली, और पश्चिम को ओर बहने वाली नदी शतद्रु पार की। महाभारत भीष्म० 9,15 में पंजाब की अन्य नदियों के साथ ही शतद्रु का भी उल्लेख है—'शतद्रुं-चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम्, दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम्'। श्रीमद्‌भागवत 5,18,18 में इसका चन्द्रभागा तथा मरुद्‌वृधा आदि के साथ उल्लेख है—'सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागामरुद्‌वृधा वितस्ता।' विष्णुपुराण 2,3,10 में शतद्रु को हिमवान् पर्वत से निस्सृत कहा गया है—'शतद्रूचन्द्रभागाद्या हिम-वत्पादनिर्गताः'। वातस्व में सतलज का स्रोत रावणह्रद नामक झील है जो मानसरोवर के पश्चिम में है। वर्तमान समय में सतलज बियास (विपाशा) में मिलती है किंतु 'दि मिहरान ऑव सिंध एंड इट्‌ज़ ट्रिब्यूटेरीज' के लेखक रेवर्टी का मत है कि 1790 ई० के पहले सतलज, बियास में नहीं मिलती थी। इस वर्ष बियास और सतलज दोनों के मार्ग बदल गए और वे सन्निकट आकर मिल गईं (दे० विपाशा)। शतद्रु वैदिक शुतुद्रि का रूपांतर है तथा इसका अर्थ शत धाराओं वाली नदी किया जा सकता है जिससे इसकी अनेक उपनदियों का अस्तित्व इंगित होता है। ग्रीक लेखकों ने सतलज को हेज़ीड्रस (Hesidrus) कहा है किंतु इनके ग्रंथों में इस नदी का उल्लेख बहुत कम आया है क्योंकि अलक्षेंद्र की सेनाएं बियास नदी से ही वापस चली गई थीं और उन्हें बियास के पूर्व में स्थित देश की जानकरी बहुत थोड़ी हो सकी थी।

शतमाला दे० कृतमाला

शतशृंग

हिमालय के उत्तर में स्थित पर्वत जहां महाभारत के अनुसार महाराजा पांडु, माद्री और कुंती के साथ जाकर रहने लगे थे। यहीं पांचों पांडवों की देवताओं के आह्वान द्वारा उत्पत्ति हुई थी। शतशृंग तक पहुंचने में पांडु को चैत्ररथ (कुबेर का वन जो अलका के निकट था) कालकूट और हिमालय को पार करने के बाद गंधमादन, इंद्रद्युम्न सर तथा हंसकूट के उत्तर में जाना पड़ा

था—'स चैत्ररथमासाद्य कालकूटमतीत्य च हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गंधमादनम्। रक्ष्यमाणो महाभूतैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः उवास स महाराज समेषु विषमेषु च। इन्द्रद्युम्नसरः प्राप्य हंसकूटमतीत्यच, शतशृंगे महाराज तापसः समतप्यत' महा० आदि० 118,48 49-50। शतशृंगनिवासियों को पांडु के पांचों पुत्रों से बड़ा प्रेम था—'मुदं परमिकां लेभे ननन्द च नराधिपः ऋषीणामपि सर्वेषां शतशृंग-निवासिनाम्' आदि० 122,24। यहीं असंयम के कारण और किसी ऋषि के शाप के फलस्वरूप पांडु की मृत्यु हुई थी और उनका अंतिम संस्कार शतशृंग निवासियों को ही करना पड़ा था—'अर्हतस्तस्य कृत्यानि शतशृंगनिवासिनः, तापसा विधिवच्चक्रुश्चारणाऋषिभिः सह' (महा० आदि० 124,31 से आगे दाक्षिणात्य पाठ)। प्रसंगानुसार यह पर्वत हिमालय की उत्तरी शृंखला में स्थित जान पड़ता है। यहां से हस्तिनापुर तक के मार्ग को महाभारतकार ने बहुत लंबा बताया है 'प्रपन्ना दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तदमन्यत' आदि० 125,8।

शत्रुंजय (काठियावाड़, गुजरात)

पालीताना के निकट पांच पहाड़ियों में सबसे अधिक पवित्र पहाड़ी, जिस पर जैनों के प्रख्यात मंदिर स्थित हैं। जैन ग्रंथ 'विविध तीर्थकल्प' में शत्रुंजय के निम्न नाम दिए हैं—सिद्धिक्षेत्र, तीर्थराज, मरुदेव, भगीरथ, विमलाद्रि, बाहुबली, सहस्रकमल, तालभज, कदंब, शतपत्र, नगाधिराज, अष्टोत्तरशतकूट, सहस्रपत्र, धणिक, लौहित्य, कपर्दिनिवास, सिद्धिशेखर, मुक्तिनिलय, सिद्धिपर्वत, पुंडरीक। शत्रुंजय के 5 शिखर (कूट) बताए गए हैं। ऋषभसेन और 24 जैन तीर्थकरों में से 23 (नेमिश्वर को छोड़कर) इस पर्वत पर आए थे। महाराजा बाहुबली ने यहां मरुदेव के मंदिर का निर्माण किया था। इस स्थान पर पार्श्व और महावीर के मंदिर स्थित थे। नीचे नेमिदेव का विशाल मंदिर था। युगादिश के मंदिर का जीर्णोद्धार मंत्रीश्वर बाणभट्ट ने किया था। श्रेष्ठी जावड़ि ने पुंडरीक और कपर्दी की मूर्तियां यहां के जैन चैत्य में प्रतिष्ठापित करके पुण्य प्राप्त किया था। अजित चैत्य के निकट अनुपम सरोवर स्थित था। मरुदेवी के निकट महात्मा शांति का चैत्य था जिसके निकट सोने चांदी की खानें थीं। यहां वास्तुपाल नामक मंत्री ने आदि अर्हत ऋषभदेव और पुंडरीक की मूर्तियां स्थापित की थीं।

इस जैन ग्रंथ में यह भी उल्लेख है कि पांचों पांडवों और उनकी माता कुंती ने यहां आकर परमावस्था को प्राप्त किया था। एक अन्य प्रसिद्ध जैन स्तोत्र 'तीर्थमाला चैत्यवंदन' में शत्रुंजय का अनेक तीर्थों की सूची में सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है—'श्री शत्रुंजयरैवताद्रिशिखरे द्वीपे भृगोः पत्तने'। शत्रुंजय की

पहाड़ी पालीताना से 1½ मील दूर और समुद्रतल से 2000 फुट ऊंची है। इसे जैन साहित्य में सिद्धाचल भी कहा गया है। पर्वतशिखर पर 3 मील की कठिन चढ़ाई के पश्चात् कई जैनमंदिर दिखाई पड़ते हैं जो एक परकोटे के अंदर बने हैं। इनमें आदिनाथ, कुमारपाल, विमलसाह और चतुर्मुख के नाम पर प्रसिद्ध मंदिर प्रमुख हैं। ये मंदिर मध्यकालीन जैन राजस्थानी वास्तुकला के सुंदर उदाहरण हैं। कुछ मंदिर 11वीं शती ई० के हैं किंतु अधिकांश 1500 ई० के आसपास बने थे। इन मंदिरों की समानता आबू स्थित दिलवाड़ा मंदिरों से की जाती है। कहा जाता है कि मूलरूप से ये मंदिर दिलवाड़ा मंदिरों की ही भांति अलंकृत तथा सूक्ष्म शिल्प और नक्काशी के काम से युक्त थे किंतु मुसलमानों के आक्रमणों से नष्ट-भ्रष्ट हो गए और बाद में इनका जीर्णोद्धार न हो सका। फिर भी इन मंदिरों की मूर्तिकारी इतनी सघन है कि एक बार तीर्थंकरों की लगभग 6500 मूर्तियों की यहां गणना की गई थी।

शत्रुंजया (सौराष्ट्र, गुजरात)

गोहिलवाड प्रांत में बहने वाली एक नदी जिसके निकट शत्रुंजय (जैन तीर्थ) स्थित है। इस नदी को आजकल शत्रुंजी कहते हैं।

शबरी-आश्रम दे० सुरोवनम्, पंपासर

शरदंडा

वाल्मीकि रामायण, अयो० 68,16 में उल्लिखित एक नदी जो अयोध्या के दूतों को केकय देश जाते समय मार्ग में मिली थी—'ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नानाविहग सेविताम्, उपातिजग्मुर्वेगेन शरदंडां जलाकुलाम्।' प्रसंग से यह सतलज के पास बहने वाली कोई नदी जान पड़ती है। डॉ० मोतीचंद के अनुसार यह वर्तमान सरहिंद नदी है। 'वेद धरातल' नामक ग्रंथ के पृ० 646 में पर यह मत प्रकट किया गया है कि यह नदी शरावती या रावी है। पराशरतंत्र में शरदंडदेश का उल्लेख है। इसके दक्षिण-पश्चिम में भूलिंग देश स्थित था।

शरभंगाश्रम

ज़िला बांदा (उ० प्र०) में इलाहाबाद मानिकपुर रेल मार्ग के जैतवारा स्टेशन से लगभग 15 मील दूर वनप्रांत में स्थित शरभंग के नाम से प्रसिद्ध स्थान को शरभंगाश्रम कहा जाता है दे० ऊनकेश्वर। यहां श्रीराम का एक मंदिर स्थित है। शरभंगाश्रम का उल्लेख वाल्मीकि तथा कालिदास के अतिरिक्त तुलसीदास ने भी किया है, 'पुनि आए जह मुनि सरभंगा, सुंदर अनुज जानकी संगा'। यह स्थान विराध-वन के निकट ही स्थित था (दे० विराधकुंड)। अध्यात्म० आरण्य० 2,1 में इसका वर्णन इस प्रकार है—'विराधे

स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया, जगाम शरभंगस्य वनं सर्वसुखावहम्'। रामायण की कथा के प्रसंग से इसकी अवस्थिति को ऊनकेश्वर की अपेक्षा ज़िला बांदा में मानना अधिक समीचीन जान पड़ता है। (दे० सुतीक्ष्णाश्रम)

शरवती=सरावती=रावी

शरवन दे० श्रावस्ती

शरावती (मैसूर)

शरावती नदी ज़िला शिमोगा में स्थित अंबुतीर्थ नामक स्थान से निस्सृत हुई है। कहा जाता है कि यह सरिता श्रीराम के बाण मारने से प्रगट हुई थी। प्रसिद्ध जोग-प्रपात इसी नदी में है। अमरकोश 1,10,34 में शरावती का नामोल्लेख है—'शरावती वेत्रवती चान्द्रभागं सरस्वती'। महाभारत भीष्म० 9,20 में इसका पयोष्णी (ताप्ती), वेणा (पेन गंगा), भीमरथी (भीमा) और कावेरी के साथ वर्णन है—'शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि, कावेरीं चुलुकां चापि वाणी शतबलामपि'। शरावती का झरना जोग-प्रपात या जेरुसोप्पा शिमोगा से 62 मील दूर है। इस जगत्प्रसिद्ध झरने की ऊंचाई 830 फुट है।

शर्करा

पाणिनि, 4,2,83 में उल्लिखित है जो संभवत: वर्तमान सक्खर है। सक्खर पश्चिमी पाकिस्तान का प्रसिद्ध नगर है जहां सिंध नदी का प्रख्यात बांध है।

शर्करावती

श्रीमद्भागवत 5,19,18 में दी हुई नदियों की सूची में उल्लिखित है—'चन्द्रवसाताम्रपर्णीअवटोदाकृतमालावैहायसीकावेरीवेणीपयस्विनीशर्करावर्तातुंग-भद्रा'। संदर्भ से यह दक्षिण भारत की नदी (संभवत: शरावती) जान पड़ती है।

शर्भक

पाठांतर शर्मक। 'शर्भकान्भर्भकांश्चैव व्यजयत् सान्त्वपूर्वकम्, वैदेहकं च राजानं जनकं जगतीपतिम्' महा०, सभा० 30,131. संदर्भ से शर्भक देश की स्थिति पूर्वी उत्तर-प्रदेश और मिथिला या विदेह के बीच के भूभाग के अंतर्गत जान पड़ती है। (दे० भर्भक)

शर्मक=शर्भक

शर्मणावत्

ऋग्वेद, 1,84,14 तथा पाणिनि 4,2,86 में उल्लिखित है। श्री वा० श० अग्रवाल के अनुसार यह थानेसर के निकट रामह्रद है।

शलातुर

प्राचीन उद्भांड या वर्तमान ओहिंद (प० पाकिस्तान) से लगभग छः सात मील दूर उत्तर-पश्चिम की ओर बसा हुआ ग्राम जिसे संस्कृत के वैयाकरण पाणिनि का जन्मस्थान माना जाता है और जिसे अब लाहुर कहते हैं। इनका जन्म 7वीं शती या 8वीं शती ई० पूर्व में हुआ था। इनकी माता का नाम दक्षी था। सिंध नदी ओहिंद के निकट बहती है। प्रसिद्ध चीनी यात्री युवानच्वांग ने 630 ई० के आसपास इस नगर को देखा था। उसने इसे पोलोतूलू लिखा है। युवानच्वांग ने शलातुर के निकट भीमादेवी का मंदिर देखा था जो शिव-मंदिर के निकट था। यहां भस्म रमाने वाले तीर्थिक नामक साधुओं का निवास था।

शल्यकर्षण

वाल्मीकि रामायण अयो० 71,3 में उल्लिखित नगर जो प्रसंगानुसार शतद्रु या सतलज के पूर्वी तट पर स्थित जान पड़ता है—'ऐलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान्, शिलामाकुर्वन्तीं तीर्त्वाऽग्नेयंशल्यकर्षणम्' (दे० ऐलधान)।

शशिमती (सौराष्ट्र, गुजरात)

हालार-प्रदेश में प्रवाहित होने वाली नदी जिसे अब ससोई कहते हैं। ससोई शशिमती का अपभ्रंश है।

शहबाजगढ़ी (ज़िला पेशावर, प० पाकि०)

मरदान से नौ मील दूर इस स्थान पर मौर्य सम्राट् अशोक के मुख्य शिलालेख जिनकी संख्या 14 है एक चट्टान पर उत्कीर्ण हैं। इनकी लिपि खरोष्ठी है जो ब्राह्मी का उत्तर-पश्चिमी रूप है। इन्हीं अभिलेखों की एक प्रतिलिपि मानसेहरा मे पाई गई है जिसकी लिपि भी खरोष्ठी है।

शांकरी

स्कंदपुराण के अनुसार नर्मदा का एक नाम। नर्मदा नदी के तट पर शिव से संबद्ध कई प्राचीन तीर्थ स्थित है इसीलिए इसे शकर की नदी कहा गया है।

शांडिल्य

जैन सूत्र 'प्रज्ञापणा' में इस जनपद का उल्लेख है तथा यहां नंदिपुर नामक नगर की अवस्थिति बताई गई है।

शांतहय

विष्णुपुराण 2,4,5 के अनुसार प्लक्षद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा मेधाति के पुत्र शांतह्रय के नाम पर प्रसिद्ध है।

शांति

श्री नं० ला० डे के अनुसार साँची का नाम है।

शाकंभरी=सांभर (राजस्थान)

शाकंभरी देवी के नाम पर प्रसिद्ध स्थान। इसका उल्लेख महाभारत, वन-पर्व के तीर्थयात्रा-प्रसंग में है—'ततो गच्छेत् राजेन्द्र देव्याः स्थानं सुदुर्लभम्, शाकम्भरीति विख्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता' वन० 84,13,। इसके पश्चात् शाकंभरी देवी के नाम का कारण इस प्रकार बताया गया है—'दिव्यं वर्षसहस्रं हि शाकेन किल सुव्रता, आहारं सकृत्वती मासि मासि नराधिप, ऋषयोऽभ्यागता स्तत्र देव्या भक्त्या तपोधनाः, आतिथ्यं च कृतं तेषां शाकेन किल भारत ततः शाकम्भरीत्येवनाम तस्याः प्रतिष्ठितम्' वन० 84,14-15-16। शाकंभरी या वर्तमान सांभर ज़िला जयपुर (राजस्थान) में सीकर के निकट है। सांभर-झील जो पास ही स्थित है शाकंभरी देवी के नाम पर ही प्रसिद्ध है। यहां शाकंभरी का प्राचीन मंदिर भी है। 12वीं शती के अंतिम चरण में सांभर के प्रदेश में चौहानों का राज्य था। अर्णोराज्य चौहान यहां के प्रतापी राजा थे। इनकी रानी देवलदेवी गुजरात के राजा कुमारपाल की बहन थीं। एक छोटी-सी बात पर रुष्ट होकर कुमारपाल ने अर्णोराज पर आक्रमण कर दिया जिसके परिणाम-स्वरूप अर्णोराज को कैद कर लिया गया। किंतु उनके मंत्री उदयमहत्ता और देवलदेवी के प्रयत्न से वे छूट गए और अंत में शाकंभरी-नरेश ने अपनी कन्या मीनलकुमारी का विवाह कुमारपाल के साथ कर दिया।

शाकल=शाकल नगर=स्यालकोट (प० पाकि०)

विद्वानों का मत है कि शाकल नाम का संबंध 'शक' से है। यह स्थान संभवतः शकों अथवा शकस्थान के निवासी ईरानियों के निवास के कारण शाकल कहलाता था। ईरानी मगों का संबंध भी शाकल से बताया जाता है (दे० मगद्वीप)। महाभारत में शाकल को मद्र देश में स्थित माना गया है। इस नगर में मद्राधिप शल्य का राज्य था। इन्हें नकुल ने अपनी दिग्विजय यात्रा के प्रसंग मे विजित किया था—'स चास्यगतभी राजन् प्रतिजग्राह शासनम्, ततः शाकल-मभ्येत्य मद्राणां पुटभेदनम्, मातुलं प्रीतिपूर्वेण शल्य चक्रेवशे बली' सभा० 32, 14-15। मिलिंदपन्हों में यवनराज मिलिंद अथवा मिनेंडर (द्वितीय शती ई० पू०) की राजधानी सागल या शाकल में बताई गई है। अलक्षेंद्र (अलेग्जेंडर) के इतिहासलेखकों ने भी इस स्थान को सागल या सांगल कहा है। यूनानी लेखकों ने सांगल को कठजाति के वीरक्षत्रियों का मुख्य स्थान बताया है और उनके शौर्य की बहुत प्रशंसा की है (दे० सांगल)। चीनी यात्री युवानच्वांग (7वीं शती) ने इस नगर को देखा था। उसने इसे शेकालो लिखा है और हूण-नरेश मिहिर-कुल की यहां राजधानी बताई है। कनिंघम ने सागल का अभिज्ञान ज़िला

गुजरांवाला (पंजाब) में स्थित संगला नामक पहाड़ी से किया है। स्मिथ के अनुसार यह स्थान ज़िला झंग में स्थित चिनोट या शाहकोट है किंतु अनेक प्रमाणों के बल पर फ़्लीट ने यह सिद्ध किया है कि शाकल वास्तव में स्यालकोट ही है (दे० चतुर्दश ओरियंटल कांग्रेस 1905, एलजीयर्स, भारत-विभाग-पृ० 164)। महाभारत काल में शाकल निवासियों के आचार-व्यवहार को दूषित समझा जाता था—'शाकलं नाम नगरमापगानाम निम्नगा, जर्तिकानाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम्' महा० कर्ण० 44,10। इस उद्धरण से सूचित होता है कि महाभारत के समय में वाहीकों की राजधानी शाकल में थी तथा वहां जर्तिक (जाट) नामक वाहीकों का निवास था। शाकल के निकट आपगा नामक नदी बहती थी। शाकल को महाभारत में शाकलद्वीप भी कहा गया है। कर्ण० 44.7 से यह भी विदित होता है कि वाहीक देश पंजाब की पांच नदियों से तथा छठी सिंधु से घिरा हुआ था और इसका एक नाम आरट्ट भी था। कलिंगबोधि जातक तथा कुरुजातक में भी साकल (शाकल) का मद्रदेश के नगर के रूप में उल्लेख है। स्यालकोट के आसपास का प्रदेश तो गुरु गोविंदसिंह के समय तक (17वीं शती) तक मद्रदेश कहलाता था। (दे० मालकम—स्केच आॅव दि सिखस्, पृ० 55) (दे० मद्र)। किंवदंती के अनुसार भक्त पूरनमल स्यालकोट के निवासी थे। इस स्थान पर वह कूप भी स्थित है जिसमें पूरनमल को हाथ-पांव काट कर डाल दिया गया था। कूप के निकट ही गुरु गोरखनाथ का मंदिर है। शाकल या सांगल को सागलनगर भी कहते हैं। एक प्राचीन किंवदंती के अनुसार शाकल को महाभारतकालीन राजा शाल्व ने बसाया था तथा राजा शालिवाहन ने इस नगर को दुबारा बसा कर यहां एक दुर्ग का निर्माण किया था।

शाक्य

शाक्य गणराज्य बुद्ध काल में तथा उसके पूर्व, उत्तर-प्रदेश के पूर्वोत्तर भाग तथा नेपाल की तराई के भूभाग में स्थित था। कपिलवस्तु यहां की राजधानी थी। गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन इसी राज्य के गणमुख्य थे। शाक्य-देश के संबंध से ही शुद्धोदन का वंश शाक्य नाम से प्रसिद्ध था और बुद्ध को 'शाक्यसिंह' कहा जाता था। कहा जाता है कि शाक या सागौन के वृक्षों के आधिक्य के कारण इस देश का अभिधान शाक्य हुआ था—'शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे, तस्मादिक्ष्वाकुवंशास्तेभुवि शाक्या इति स्मृता: (अश्वघोषकृत सौंदरानन्द, 1,24)। भद्दसाल जातक से सूचित होता है कि शाक्य-प्रदेश कोसल-राज के अधीन था।

शातकर्णिआश्रम दे० पंचाप्सरस्

शातकर्णिक दे० सेतकन्निक

शातवाहन राष्ट्र=सातहनिरट्ठ (प्राकृत)

यह पल्लवनरेश शिवस्कंदवर्मन् के हीरहदगल्ली-अभिलेख में उल्लिखित है। यही शातवाहन-नरेश सिरि पुलुमावि के एक अभिलेख में शातवाहनीहार नाम से वर्णित है। डा० सुथंकर के अनुसार शातवाहनीहार में मैसूर राज्य के बिलारी ज़िले का अधिकांश भाग सम्मिलित था। संभवतः यही प्रदेश दक्षिण के सातवाहन नरेशों (प्रथम शती ई०) का मूलस्थान था।

कुछ वर्ष पूर्व 10वीं शती ई० के एक मंदिर के अवशेष इस स्थान से प्राप्त हुए थे। उत्खनन कलकत्ता विश्वविद्यालय के श्री निर्मल कुमार बोस तथा बल्लभविद्यानगर के श्री अमृतपंड्या ने किया था।

शारदा (उ० प्र०)

यह नदी नंदादेवी-पर्वत से निकल कर, फैज़ाबाद के नीचे सरयू में मिल जाती है।

शारीपुर (ज़िला आगरा, उ० प्र०)

बटेसर (वटेश्वर) से 1 मील पर जैनों का तीर्थ है जिसे जैन जनश्रुति में नेमिनाथ का जन्मस्थान कहा जाता है।

शाल

शक-संवत 40=118 ई० का एक खरोष्ठी अभिलेख शकरदर्रा (ज़िला कैंपबेलपुर, पाकि०)से प्राप्त हुआ था जिसमें शाल नामक ग्राम का उल्लेख है। यह शालातुर या शलातुर का संक्षिप्त रूप जान पड़ता है। शलातुर महर्षि पाणिनि का जन्मस्थान माना जाता है। यह अभिलेख लाहौर संग्रहालय में है। इसी की एक प्रतिलिपि रावल नामक ग्राम (ज़िला मथुरा, उ० प्र०) से प्राप्त हुई थी जिसे कोई यात्री मथुरा ले आया था। (दे० मथुरा म्यूजियम गाइड, पृ० 24)

शालातुर=शलातुर

शालिहुंडम् (ज़िला श्रीकाकुलम, आं० प्र०)

वंशधारा नदी के दक्षिण तट पर कलिंगपटनम् के निकट एक ग्राम। यहां पर प्रथम या द्वितीय शती ई० में निर्मित एक सुंदर बौद्धस्तूप के अवशेष प्राप्त हुए थे। इस स्तूप की खोज राममूर्ति पंतलू महोदय ने 1919 ई० में की थी। इसके पश्चात् लांगहर्स्ट ने 1920-21 में पुरातत्व विभाग की ओर से यहां नियमित उत्खनन किया। यह स्तूप भूमितल से 400 फुट ऊंचा है। इसके भीतर

अशोक-कालीन ब्राह्मीलिपि का एक अभिलेख मिला था। स्तूप के निकट ही नीची पहाड़ी पर बौद्धकालीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें मुख्यतः महायान-संप्रदाय से संबद्ध बोधिसत्व की सुंदर मूर्तियां हैं। इनमें मंजुश्री व अवलोकितेश्वर की प्रतिमाएं उल्लेखनीय हैं।

शाल्मल द्वीप

पौराणिक भूगोल की संकल्पना के अनुसार पृथ्वी के सप्तद्वीपों में से एक है—'जंबूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विज, कुशः क्रौंचस्तथा शाकः पुष्कर-श्चैव सप्तमः' विष्णु० 2,2,5। शाल्मल द्वीप के सात वर्ष—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ माने गए हैं। इक्षुरस का समुद्र इसको परिवृत करता है('शाल्मलेन समुद्रोऽसौ द्वीपनेक्षुरसोदकः', विष्णु० 2,4,24)। इसके सात पर्वत हैं—कुमुद, उन्नत, बलाहक, द्रोणाचल, कंक, महिष, कुकुद्मान् और सात ही नदियां जिनके नाम हैं—योनि, तोया, वितृष्णा, चंद्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृति। इसमें कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण वर्ण के लोग रहते हैं—('कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक्-पृथक्' विष्णु० 2,4,30)। शाल्मलि के एक महान् वृक्ष के यहां स्थित होने के कारण इस महाद्वीप को शाल्मल कहा जाता है ('शाल्मलिः सुमहान् वृक्षो नाम्ना निर्वृत्तिकारकः' विष्णु० 2,4,33)। शाल्मल को महाभारत भीष्म० 11,3 में शाल्मलि कहा गया है' 'शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौंचद्वीपं तथैव च'। श्री नंदलाल डे के अनुसार यह असीरिया या चाल्डिया है।

शाल्व

अलवर (राजस्थान) के परिवर्ती प्रदेश का प्राचीन नाम, जिसका महाभारत मे उल्लेख है। शाल्वराज ने, काशिराज की सबसे बड़ी कन्या अंबा का, जो उससे विवाह करने की इच्छुक थी, भीष्म द्वारा हरण किए जाने पर उनके साथ युद्ध किया था, जिसका वर्णन आदि० 102 में है। शाल्वराज के पास सौभ नामक एक अद्भुत नगराकार विमान था जिसकी सहायता से उसने श्रीकृष्ण की द्वारका पर आक्रमण किया था (महा० वन० 14 से 22 तक)। बुद्धचरित 9,70 में शाल्वाधिपति द्रुम का उल्लेख है—'तथैव शाल्वाधिपतिर्द्रुमाख्यो वनात्-समूनुर्नगरं विवेश'। महा० वन० 294,7 के अनुसार, सावित्री के श्वसुर द्युमत्सेन शाल्वदेश के राजा थे—'आसीच्छाल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवी-पतिः द्युमत्सेन इतिख्यातः पश्चादन्धो बभूव ह'। अलवर का प्राचीन नाम शाल्वपुर कहा जाता है। संभव है, अलवर, शाल्वपुर का अपभ्रंश हो। शाल्व-निवासियों का विष्णुपुराण 2,3,17 में भी उल्लेख है—'सौवीरा सैंधवाहूणाः

शाल्वाः कोशलवासिनः'। महाभारत में शाल्व को मार्तिकावतक का राजा कहा है। इस देश की स्थिति अलवर के परिवर्ती प्रदेश में मानी जाती है। किंवदंती मे प्राचीन शाकल या वर्तमान स्यालकोट से भी राजा शाल्व का संबंध बताया जाता है।

शाल्वपुर दे० शाल्व

शाष्ठी=सालसट (महाराष्ट्र)

बंबईनगरी के निकट एक टापू। बेसीन के टापू के साथ ही इसका नाम भारत में अंग्रेजी राज्य के इतिहास में कई बार आता है। बाजीराव पेशवा ने वेलेजली से सहायक-संधि करते समय बेसीन और सालसट अंग्रेजों को दे दिए थे।

शाहगढ़

(1) (उ० प्र०) लखनऊ-काठगोदाम रेल-मार्ग पर एक स्टेशन है जिसके निकट प्राचीन खंडहर स्थित हैं। इस स्थान के परकोटे का घेरा तीन मील के लगभग है। किंवदंती के अनुसार इस नगर की नींव राजा वेन ने डाली थी। स्थान की प्राचीनता यहां पाई जाने वाली बड़ी-बड़ी ईंटों से सूचित होती है। शाहगढ़ का नगर कुछ समय पहले तक बसा हुआ था जैसा कि नेपाल के वर्मा-नरेशों के सिक्कों से ज्ञात होता है।

(2) (ज़िला सुलतानपुर, उ० प्र०) इस स्थान से बौद्धकालीन भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं।

(3) (ज़िला सागर, म० प्र०) गढ़मंडल-नरेश राजा संग्रामसिंह (मृत्यु, 1541 ई०) के 52 किलों में से एक। ये रानी दुर्गावती के श्वसुर थे।

शाहजहांपुर (उ० प्र०)

इस नगर को शाहजहां के राज्यकाल में बहादुरखां और दिलेर खां ने 1647 ई० में बसाया था।

शाहजी की ढेरी (पाकि०)

पेशावर के लाहौरी दरवाजे के बाहर स्थित इस प्राचीन टीले के खंडहरों से मुख्यतः कनिष्क-कालीन (द्वितीय शती ई०) बौद्ध अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें कनिष्क के काष्ठनिर्मित बृहत् स्तूप के चिह्न उल्लेखनीय हैं। यहां बहुत समय तक एक बौद्धविद्यालय स्थित था। 10वीं शती ई० तक इस स्तूप के विषय में उल्लेख मिलते हैं। तब तक यह तीन बार जल चुका था। अंतिम बार महमूद गजनवी ने उसका नाम सदा के लिए मिटा दिया। शाहजी की ढेरी से गांधार मूर्तिकला के उदाहरण भी मिले हैं।

शाहपुर

(1) ज़िला पटना, बिहार) इस स्थान से (फ्लीट के मतानुसार) हर्षसंवत् 66=672-73 ई० का अभिलेख एक प्रस्तर-मूर्ति पर उत्कीर्ण पाया गया है। यह परवर्ती गुप्तनरेश आदित्यसेन के समय का है। इसमें बलाधिकृत सालपक्ष द्वारा नालंद ग्राम (नालंदा) में सूर्य की एक मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है। जान पड़ता है कि यह मूर्ति मूल रूप से नालंदा में स्थापित की गई थी।

(2) (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर) इस स्थान पर आदिलशाही सुलतानों के मक़बरे और वारंगल-नरेशों के बनवाए हुए एक किले के खंडहर स्थित हैं। फारसी अभिलेखों से ज्ञात होता है कि वर्तमान किला बहमनी तथा आदिलशाही सुलतानों ने बनवाया था। यह संभव है कि इस किले को आरंभ में वारंगल के हिंदू राजाओं ने बनवाया था और इसका जीर्णोद्धार मुसलमान बादशाहों द्वारा किया गया। पहाड़ी पर एक प्राचीन मंदिर और एक मसजिद है जो अब नष्ट-भ्रष्ट दशा में है। कुछ प्रागैतिहासिक अवशेष भी यहां से मिले है।

(3)=सागर

शाहाबाद (ज़िला हरदोई, उ० प्र०)

शाहजहां के समकालीन नवाब दिलेरखां के मकबरे के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। शाहाबाद का रेल स्टेशन आंझी कहलाता है।

शिखावल

पाणिनि की अष्टाध्यायी 4,2,89 में उल्लिखित है। श्री वा० श० अग्रवाल के अनुसार यह रीवां (मध्य प्रदेश) में स्थित सिहावल नामक स्थान है।

शिखिवासस्

विष्णुपुराण 2,2,28 के अनुसार मेरु के पश्चिम में स्थित एक महान् पर्वत (केसराचल)—'शिखिवासाः सवैडूर्यः कपिलो गंधमादनः, जारुधि प्रमुखा स्तद्वत्पश्चिमे केसराचलाः'।

शिखी

विष्णुपुराण 2,4,11 में उल्लिखित प्लक्षद्वीप की एक नदी, 'अनुतप्ता शिखी-चैव विपाशा त्रिदिवा क्लमा, अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः'।

शिप्रा=सिप्रा

उज्जयिनी के निकट बहने वाली नदी। यह चंबल की सहायक नदी है। मेघदूत (पूर्वमेघ 33) में इस नदी का उज्जयिनी के संबंध में उल्लेख है, 'दीर्घीकुर्वन्पटुमदकलंकूजितं सारसानां, प्रत्यूषेषु स्फुटित कमलामोदमैत्री कषायः, यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमगानुकूलः शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः'

अर्थात् अवंती में शिप्रा-पवन सारसों की मदभरी कूक को बढ़ाता है, उष:काल में खिले कमलों को सुगंध के स्पर्श से कसैला जान पड़ता है, स्त्रियों की सुरत-ग्लानि को हरने के कारण शरीर को आनंददायक प्रतीत होता है और प्रियतम के समान विनती करने में बड़ा कुशल है। रघुवंश 6,35 में भी कालिदास ने इंदुमती-स्वयंवर के प्रसंग में शिप्रा की वायु का मनोहर वर्णन किया है, 'अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिन्मनसो-रुचिस्ते, शिप्रातरंगानिलकम्पितासु-विहर्तुमुद्यानपरम्परासु'। इंदुमती की सखी सुनंदा अवंतिराज का परिचय कराने के पश्चात् उससे कहती है—'क्या तेरी रुचि इस अवंतिनाथ के साथ (उज्जयिनी के) उन उद्यानों में विहरण करने की है जो शिप्रातरंगों से स्पृष्ट पवन द्वारा कंपित होते रहते हैं' ?

शिबि

पंजाब का एक जनपद –'शिबींस्त्रिगर्तानम्बष्ठान् मालवान् पंचकर्पटान् तथा माध्यमिकांश्चैव वाटधानान् द्विजानथ' महा० सभा० 32,7-8। यहां शिबि का त्रिगर्त (जलंधर दोआब)के साथ वर्णन है। इस जनपद को नकुल ने पश्चिम दिशा की विजय के प्रसंग में जीता था। शिबिपुर (या शिवपुर) नामक नगर का उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य, 4,2,2 में है। इसका अभिज्ञान वोगल ने ज़िला झंग पंजाब-पाकिस्तान में स्थित शोरकोट नामक स्थान के साथ किया है (दे० एपिग्राफिका इंडिका, 1921 पृ० 16)। 'शोर' शिवपुर का अपभ्रंश जान पड़ता है। शिबिपुर का उल्लेख शोरकोट से प्राप्त एक अभिलेख में हुआ है। यह अभिलेख 83 गुप्त संवत् = 402-3 ई० का है और एक विशाल तांबे के कढ़ाव पर उत्कीर्ण है जो यहां स्थित प्राचीन बौद्धबिहार से प्राप्त हुआ था। यह लाहौर के संग्रहालय में सुरक्षित है। शोरकोट के इलाके को आइनेअकबरी में अबुलफजल ने शोर लिखा है। यह लगभग निश्चित ही समझना चाहिए कि शिबि जनपद की अवस्थिति इसी स्थान के परिवर्ती प्रदेश में थी और शिबिपुर इसका मुख्य नगर था। शिबियों (सिबोई) का उल्लेख अलक्षेंद्र के इतिहास-लेखकों ने भी किया है और लिखा है कि इनके पास चालीस सहस्र पैदल सेना थी, और ये लोग वन्य पशुओं की खाल के कपड़े पहनते थे। शिबि-नरेश द्वारा अपने राजकुमार बेस्ततर को देश निकाला दिए जाने की कथा का वेस्संतरजातक में वर्णन है। उम्मदंतिजातक में शिबिदेश के अरिठ्ठपुर तथा वेस्सतरजातक में इस जनपद के जेतुत्तर नामक नगर का उल्लेख है। ऋग्वेद 7,18,7 में संभवत: शिबियों का ही शिव नाम से उल्लेख है—'आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिन: शिवास:। आयोऽनयत्सधमा-आर्यस्य गव्या-

तृत्सुभ्यो अजगन्नयुधानृन्' । महाभारत में शिबि-देश के राजा उशीनर की कथा है। श्येन से कपोत के प्राण बचाने में तत्पर राजा श्येन से कहता है—'राष्ट्रं शिबीनामृद्धं वै ददानि तव खेचर' वन० 131 21. रायचौधरी (पृ० 205) के अनुसार उशीनरदेश (उत्तर-पश्चिम उ० प्र०) पहले शिबियों का मूल स्थान रहा होगा। बाद में ये लोग पश्चिम की ओर जाकर बस गए होंगे। शिबियों की स्थिति का पता सिंध में मध्यमिका (राजस्थान के निकट) और कावेरी-तट (दशकुमारचरित) पर भी मिलता है।

शिबिपुर दे० शिबि

शिरिनेत=सिरनेत

गढ़वाल अथवा श्रीनगर का निकटवर्ती प्रदेश। शायद सिरनेत या शिरनेत श्रीनगर का ही अपभ्रंश है।

शिरीषवस्तु=श्रीशवस्तु

शिरोवन (मैसूर)

यह श्रीरंगपट्टन से 40 मील पूर्व में तलकाड नामक स्थान है जहां प्राचीन चेर देश की राजधानी थी। यह स्थान कावेरी के बालू में दबा पड़ा है।

शिला

वाल्मीकि रामायण 2,71,14 में वर्णित एक नदी—'एलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान्, शिलामाकुर्वन्तीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्पणम्'। यह सतलज की सहायक नदी जान पड़ती है। (दे० ऐलधान)

शिव

विष्णु 2,4,5 के अनुसार प्लक्षद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा मेधातिथि के पुत्र के नाम पर प्रसिद्ध है।

शिवगंगा (मद्रास)

पूना से बंगलौर जाने वाली रेल-शाखा पर निदवंदा स्टेशन के निकट स्थित है। यहां एक छोटा-सा प्राचीन दुर्ग है जो इस स्थान का उल्लेखनीय स्मारक है। इसका सिंहद्वार चापाकार है। यहां का मंदिर जो कणाश्म (ग्रेनाइट) के चार स्तंभों पर आधृत था, 955 में चक्रवात से गिर गया था। तत्पश्चात् पुरातत्त्व-विभाग ने मूल शिखर के समान ही एक नया शिखर बनाकर मंदिर का जीर्णोद्धार किया था। मंदिर के प्रांगण में भगवान् रामके चरण-चिह्न अवस्थित हैं जिन्हें रामपद्म कहा जाता है।

शिवनेर (महाराष्ट्र)

1627 ई० में जुन्नार के इस गिरिदुर्ग में जो पहले अहमदनगर राज्य के

अधीन था, महाराष्ट्र-केसरी छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ था। शिवाजी के पितामह मालोजी को अहमदनगर के सुल्तान ने शिवनेर तथा चाकण के दुर्ग जागीर में दिए थे। इस स्थान पर बालक शिवाजी अधिक समय तक न रह सके थे और इनका पालन-पोषण पूना के निकट अपने पिता की जागीर में हुआ था।

शिवपुर

(1) दे० शिबि

(2) = अहिच्छत्र

शिवपुरी

(1) = उज्जयिनी (दे० अवंती)

(2) (जिला टोंक, राजस्थान) किसी अनभिज्ञात नगर के खंडहर इस स्थान पर मिले हैं।

शिवराजपुर (जिला फ़तहपुर, उ० प्र०)

इस स्थान से हाल ही में महत्वपूर्ण प्रागैतिहासिक अवशेष मिले हैं जो ताम्र-युगीन कहे जाते हैं। यहां कई प्राचीन मंदिर भी हैं और इस स्थान को तीर्थ-रूप में मान्यता प्राप्त है। यह स्थान चरणदासी संप्रदाय का केंद्र था। सौ वर्ष प्राचीन एक हस्तलिखित ग्रंथ से विदित होता है कि प्रसिद्ध भक्त कवियित्री मीराबाई इस स्थान पर आयी थीं। इस ग्रंथ में शिवराजपुर का माहात्म्य वर्णित है। मीराबाई की स्मृति में गिरधर-गोपाल का मंदिर बना हुआ है।

शिववल्लभपुर

गढ़मुक्तेश्वर का एक प्राचीन पौराणिक नाम जिसका उल्लेख स्कंद-पुराण में है।

शिवसमुद्रम् (मैसूर)

सोमनाथपुर से 17 मील दूर, कावेरी की दो शाखाओं के मध्य में छोटा-सा द्वीप-नगर है। गगन-चक्की और बराचक्की नामक दो झरने द्वीप के निकट प्रकृति की रम्य छटा उपस्थित करते हैं। शिव और विष्णु के दो विराटकाय और भव्य मंदिर इस स्थान के मुख्य स्मारक हैं।

शिवसागर (असम)

यह स्थान मुक्तिनाथ शिव-मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। अहोम-वंशीय राजा शिवसिंह ने यह मंदिर बनवाया था।

शिवसिंहपुर (जिला दरभंगा, बिहार)

मैथिलकोकिल विद्यापति के संरक्षक-नरेश शिवसिंह की राजधानी के

रूप में प्रसिद्ध यह कस्बा दरभंगा से 4 मील दक्षिण की ओर स्थित है।

शिवा

विष्णुपुराण 2,4,33 में उल्लिखित कुशद्वीप की एक नदी 'धूपतापा शिवा-चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा विद्युदम्भा मही चान्या सर्वपापहरास्त्विमा:'।

शिवालय

कहा जाता है कि सिवालिक (हरद्वार-देहरादून, उ० प्र०) की पहाड़ियों का वास्तविक प्राचीन नाम शिवालय है क्योंकि इन पर्वतों में शिवोपासना के अनेक तीर्थ स्थित हैं।

शिवालिक=सिवालिक

शिवाली=उडुपि

शिवि=शिबि

शिशिर

(1) विष्णुपुराण, 2,2,27 के अनुसार मेरुपर्वत के दक्षिण में स्थित एक पर्वत—'त्रिकूट: शिशिरश्चैव पतंगो रुचकस्तथा···'

(2) विष्णु० 2,4,5 के अनुसार प्लक्ष-द्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा मेधातिथि के पुत्र शिशिर के नाम पर प्रसिद्ध है।

शिशुपालगढ़ (उड़ीसा)

कलिंग की प्रसिद्ध प्राचीन राजधानी। भुवनेश्वर के निकट इस प्राचीन नगर के ध्वंसावशेष स्थित हैं। यहां 1949 ई० में विस्तृत उत्खनन किया गया था। इस नगर का संबंध महाभारत के शिशुपाल से नहीं जान पड़ता क्योंकि इस का अस्तित्वकाल तीसरी शती ई० पू० से चौथी शती ई० तक है। शिशु-पालगढ़ से तीन मील दूर धौली नामक स्थान है जो अशोक के शिलालेख (कलिंग-अभिलेख) के लिए प्रख्यात है। इस अभिलेख में इस स्थान का नाम तोसलि कहा गया है। उस समय इस स्थान के आसपास एक विशाल नगर स्थित होगा जैसा कि खंडहरों तथा निकटस्थ ऐतिहासिक स्थलों से सिद्ध होता है। श्री ह० कृ० महताब के मत में केसरीवंशीय नरेश शिशुपालकेसरी के नाम पर ही शिशुपाल-गढ़ का नामकरण हुआ होगा (हिस्ट्री ऑव उडीसा, पृ० 66)। शिशुपालगढ़ से छ: मील दूर खंडगिरि और उदयगिरि की पहाड़ियां हैं जहां दो प्रसिद्ध गुफाओं में ई० सन् के पूर्व के अभिलेख प्राप्त हुए हैं। हाथीगुफा नामक गुफा में कलिंगराज खारवेल का और वैकुंठपुर गुफा में उसकी रानी का अभिलेख अंकित है। ये गुफाएं तीसरी शती ई० पू० में आजीवक साधुओं के रहने के लिए अशोक ने बनवाई थीं जैसा कि उसके अभिलेख से जान पड़ता है। खारवेल

के लेख में इस स्थान का नाम कलिंग नगर दिया हुआ है।

शीट्ठमिट्ठनगर=सहेत महेत (श्रावस्ती)

दे० जैनस्तोत्र तीर्थ माला चैत्यवंदन—'विध्यस्थं भनशीट्ठमीट्ठनगरे राजद्रहे-श्रीनगे।'

शीतांभ

विष्णुपुराण 2,2,26 में उल्लिखित मेरु-पर्वत के पश्चिम में स्थित एक पर्वत—'शीतांभश्च कुमुन्दश्च कुररीमाल्वांस्तथा, वैकंकप्रमुखा मेरोः पूर्वतः केसराचलाः'।

शीलकूट (लंका)

महावंश 13,18,20 में इसे मिश्रक-पर्वत का शिखर कहा गया है। यह वर्तमान मिहिंताल की पहाडी का उत्तरी शिखर है।

शीलभद्र विहार (जिला गया, बिहार)

कावाडोल की पहाड़ी। युवानच्वांग ने इसे देखा था।

शुंडिक

महाभारत के वर्णन के अनुसार अंग, वंग, कलि, और मिथिला के निकट स्थित जनपद जिसे महारथी कर्ण ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में विजित किया था, 'अंगान् वंगान् कलिंगाश्च शुंडिकान् मिथिलानथ, मागधान् कर्कखंडांश्च निवेश्य विषयेऽऽत्मनः'।

शुकुलिदेश

गुप्त-अभिलेखों में उल्लिखित एक 'देश'। गुप्तकाल में 'देश' साम्राज्य का एक बड़ा विभाग था जिसके अंतर्गत विषय तथा भुक्तियां थीं। (दे० राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंशेंट इंडिया, पृ० 471) शुकुलिदेश का अभिज्ञान अनिश्चित है। संभव है इसकी स्थिति गुजरात में भड़ौंच के निकट रही हो जहां शुक्लतीर्थ है।

शुक्करताल दे० शक्रावतार

शुक्तिमती

(1) महाभारत काल में चेदिदेश (बुंदेलखंड तथा जबलपुर का भूभाग) की राजधानी। इसे शुक्तिसाह्वय भी कहा गया है (महा० आश्वमेधिक० 83,2)। चेदिदेश का राजा शिशुपाल था जिसका वध श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में किया था। चेतियजातक में वर्णित सोत्थिवती (नगरी) जिसे चेदि या चेतिराज्य की राजधानी कहा गया है शुक्तिमती का ही पाली रूप है। जान पड़ता है शुक्तिमती नदी के नाम पर ही नगरी का नाम भी प्रसिद्ध

हो गया था।

(2) शुक्तिमती नामक नदी (=केन) चेदिदेश की इसी नाम की राजधानी के पास बहती थी—'पुरोपवाहिनीं तस्य नदीं शुक्तिमतीं गिर:' महा० आदि० 63,35। इस नदी को चेदिराज उपरिचर की राजधानी के पास बहती हुई बताया गया है। पार्जिटर के अनुसार शुक्तिमती नदी बांदा (उ० प्र०) के निकट बहने वाली केन नदी है (जर्नल ऑव एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, 1895, पृ० 255)। (दे० शुक्तिमान्)

शुक्तिमान्

प्राचीन भारत के सप्तकुल पर्वतों में इसकी भी गणना है—'महेन्द्रो मलय: सह्य: शुक्तिमानृक्षपर्वत:, विंध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वता:' विष्णु० 2,3, 3। महाभारत में इस पर्वत पर भीमसेन द्वारा विजय प्राप्त करने का वर्णन है—'एवं बहुविधान् देशान् विजित्ये भरतर्षभ:, भल्लाटमभितो जिग्ये शुक्तिमन्तं च पर्वतम्' सभा० 30,5। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में भी इसका उल्लेख है—'विंध्य: शुक्तिमानृक्षगिरि: पारियात्रो द्रोणाश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतक:'—इस पर्वत का सतपुड़ा या महादेव पर्वत-माला से अभिज्ञान किया जा सकता है। विष्णु 2,3,14 में शुक्तिमान् से उड़ीसा की ऋषिकुल्या नामक नदी को उद्भूत माना है—'ऋषिकुल्या कुमार्याद्या: शुक्तिमत्पादसंभवा:'—इस उल्लेख से विदित होता है कि यह पर्वत विंध्याचल के पूर्वी भाग का कोई पर्वत है जिससे निस्सृत होकर ऋषिकुल्या उड़ीसा में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है। शुक्तिमान् पर्वत का शुक्तिमती नाम की नदी और इसी नाम की नगरी से संबंध जान पड़ता है।

शुक्तिसाह्वय

'तत: स पुनरावर्त्य हय: कामचरो बली। आससाद पुरीं रम्यां चेदीनां शुक्तिसाह्वयाम्' महा० आश्वमेधिक० 83,2। [दे० शुक्तिमती (1)]

शुक्राचार्य-आश्रम दे० देवयानी ; कोपरगांव

शुक्लतीर्थ (महाराष्ट्र)

भड़ौंच से 10 मील पूर्व नर्मदा के उत्तरी तट पर प्राचीन तीर्थ है। यहां के अधिष्ठातृ-देव शुक्लनारायण हैं। किंवदंती है कि चंद्रगुप्त-मौर्य और चाणक्य शुक्लतीर्थ की यात्रा पर आए थे। यहां कवि, ओंकारेश्वर और शुक्ल नामक पवित्र कुंड हैं। एक मील दूर मंगलेश्वर के सामने नर्मदा नदी के टापू में कबीर-वृक्ष नामक वटवृक्ष है जिसका संबंध संत कबीर से बताया जाता है।

शुतुद्रि=शतद्रु

सतलज नदी का ऋग्वैदिक नाम। परवर्ती साहित्य में इसे शतद्रु कहा गया है। (दे० शतद्रु)

शुभ्रकूट (लंका)

महावंश 15,131 में वर्णित मंडद्वीप या सिंहल देश का एक पर्वत जहां कश्यप बुद्ध वीस सहस्र अर्हतों के साथ आकाश-मार्ग से आकर उतरे थे।

शुष्कक्षेत्र

कश्मीर के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक कल्हण के वर्णन से ज्ञात होता है कि मौर्य सम्राट् अशोक ने अपनी कश्मीर यात्रा के समय, शुष्क क्षेत्र और वितस्तात्र नामक स्थानों पर अनेक स्तूपों का निर्माण करवाया था (राजतरंगिणी 1,102-106)। संभव है इसकी स्थिति वर्तमान श्रीनगर के पास रही हो क्योंकि किंवदंती में श्रीनगर का बसाने वाला भी अशोक ही कहा जाता है।

शूकरक्षेत्र=सोरों (जिला बुलंदशहर, उ० प्र०)

इसका पुराना नाम उकला भी है। कहा जाता है कि विष्णु का वराह (=शूकर) अवतार इसी स्थान पर हुआ था। ऐसा जान पड़ता है कि वराह-अवतार की कथा की सृष्टि विजातीय हूणों के धार्मिक विश्वासों के आधार पर हिंदू धर्म के साहित्य मे की गई। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि आक्रमणकारी हूणों के अनेक दल जो उत्तर भारत में गुप्तकाल में आए थे, यहां आकर बस गए और विशाल हिंदू समाज में विलीन हो कर एक हो गए। उनके अनेक धार्मिक विश्वासों को हिंदूधर्म में मिला लिया गया और जान पड़ता है कि वराहोपासना इन्हीं विश्वासों का एक अंग थी और कालांतर में हिंदू धर्म ने इसे अंगीकार कर विष्णु के एक अवतार की ही वराह के रूप में कल्पना कर ली। शूकरक्षेत्र मध्यकाल में तथा उसके पश्चात् तीर्थ-रूप से मान्य रहा है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण की कथा सर्वप्रथम शूकरक्षेत्र ही में सुनी थी—'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुशूकरक्षेत्र समुझि नहीं तस बालपन, तब अति रह्यो अचेत' राम० बालकांड, 30। तुलसीदास के गुरु नरहरिदास का आश्रम यहीं था। यहां प्राचीन ढूह है जो गंगा के तट पर ऊंचे स्थान पर प्राचीन खंडहर के रूप में पड़ा हुआ है। इस पर सीता-राम जी का वर्गाकार मंदिर है। इसके 16 स्तंभ हैं जिन पर अनेक यात्राओं का वृत्तान्त उत्कीर्ण है। सबसे अधिक प्राचीन लेख जो पढ़ा जा सका है 1226 वि० सं०=1169 ई० का है जिससे मंदिर के निर्माण का समय ज्ञात होता है। इस मंदिर का 1511 ई० के पश्चात् का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता क्योंकि इति-

हास से सूचित होता है कि इसे सिकंदर लोदी ने नष्ट कर दिया था। नगर के उत्तर-पश्चिम की ओर वराह का मंदिर है जिसमे वराह-लक्ष्मी की मूर्ति की पूजा आज भी होती है। पाली साहित्य में इसे सौरेय्य कहा गया है। (दे० सोरों)

शूरसेन

उत्तरी-भारत का प्रसिद्ध जनपद जिसकी राजधानी मथुरा मे थी। इस प्रदेश का नाम संभवतः मधुरापुरी (मथुरा) के शासक, लवणासुर के वधोपरान्त, शत्रुघ्न ने अपने पुत्र शूरसेन के नाम पर रखा था। उन्होंने पुरानी मथुरा के स्थान पर नई नगरी बसाई थी जिसका वर्णन वाल्मीकि रामायण के उत्तर-कांड में है (दे० मथुरा)। शूरसेन-जानपदीयों का नाम भी वाल्मीकि रामायण में आया है—'तत्र म्लेच्छान्पुलिंदांश्च शूरसेनांस्तथैव च, प्रस्थलान् भरतांश्चैव कुरूंश्च सह मद्रकैः' किष्किंधा 43,11। वाल्मीकि रामा० उत्तर० 70,6 में मथुरा को शूरसेना कहा गया है, 'भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयः'। महाभारत में शूरसेन-जनपद पर सहदेव की विजय का उल्लेख है—'स शूरसेनान् कार्त्स्न्येन पूर्वमेवाजयत् प्रभुः, मत्स्यराजच कौरव्यो वशेचक्रे बलाद् बली' सभा० 31,2। कालिदास ने रघुवंश 6,45 मे शूरसेनाधिपति सुषेण का वर्णन किया है—'सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम्, आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी'। इसकी राजधानी मथुरा का उल्लेख कालिदास ने इसके आगे 6,48 में किया है। श्रीमद्भागवत में यदुराज शूरसेन का उल्लेख है जिसका राज्य शूरसेन-प्रदेश मे कहा गया है। मथुरा उसकी राजधानी थी—'शूरसेना यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम्, माथुरान्छूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा, राजधानी ततः साभूत सर्वयादवभूभुजाम्, मथुरा-भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः' 10,1,27-28। विष्णुपुराण में शूरसेन के निवासियों को ही संभवतः शूर कहा गया है और इनका आभीरों के साथ उल्लेख है—'तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः' विष्णु० 2,3,16।

शूर्पारक=सोपारा

महाभारत शांति० 49,66-67 के अनुसार शूर्पारक देश को महर्षि परशुराम के लिए सागर ने रिक्त कर दिया था—'ततः शूर्पारकं देशं सागरस्तस्य निर्ममे, सहसा जामदग्नस्य सोऽपरान्तमहीतलम्'। शूर्पारक वर्तमान सोपारा (बेसीन तालुका, जिला थाना, बंबई) का तटवर्ती प्रदेश है और महाभारत के उपर्युक्त अवतरण से जान पड़ता है कि पहले यह भूभाग सागर के अतर्गत था। यह अपरांत का ही एक भाग था। शूर्पारक पर सहदेव की विजय का वर्णन भी

महा० सभा० 31,65 में है, 'ततः स रत्नमादाय पुनः प्रायाद युधाम्पतिः ततः शूर्पारकं चैव तालाकटमथापि च'। वन० 188,8 में पांडवों की शूर्पारक-यात्रा का उल्लेख है। अशोक के 14 मुख्य शिलालेखों में से केवल 8वां यहां एक शिला पर अंकित है जिससे मौर्यकाल में इस स्थान की महत्ता सूचित होती है। उस समय यह अपरान्त का समुद्रपत्तन(बंदरगाह) रहा होगा। शूर्पारक (सुप्पारक)-जातक में भरुकच्छ के व्यापारियों की दूर-दूर के विचित्र समुद्रों की यात्रा करने का रोमांचकारी वर्णन है (दे० अग्निमाली, नलमाली)। इस जातक से सूचित होता है कि शूर्पारक भृगुकच्छ-प्रदेश का बंदरगाह था। इस जातक में भरुकच्छ के राजपुत्र का नाम सुप्पारककुमार कहा गया है। बुद्धचरित 21,22 में बुद्ध का शूर्पारक जाना वर्णित है।

शूरमंगलम (ज़िला तंजौर, मद्रास)

तंजौर के निकट एक ग्राम जो दक्षिण भारत की विशिष्ट नृत्यशैली भरत-नाट्यम् के लिए प्राचीन समय में प्रसिद्ध था। यह ग्राम इस नृत्य का एक केंद्र समझा जाता था। इस नृत्य के अन्य केंद्र मेलात्तर तथा उथूकाडू थे।

शृंगऋषि (ज़िला मुंगेर, बिहार)

मुंगेर से 20 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर एक पहाड़ी। रामायण में प्रसिद्ध शृंग मुनि के नाम पर यह प्रसिद्ध है। यहां शिवरात्रि को मेला लगता है। 1766 ई० में यहां पर रहने वाले अंग्रेजी सैनिकों में गदर हो गया था जो श्वेत गदर (White mutiny) के नाम से मशहूर है। दे० ऋषिकुंड

शृंगगिरि

दे० शृंगेरी (2)

शृंगभेरी (मैसूर)

कई विद्वानों के मत में श्री शंकराचार्य का जन्मस्थान यही ग्राम था जो कर्नाटक प्रदेश में तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित है किंतु अधिकांश लोगों का मत है कि शंकर का जन्म उडुपि नामक स्थान में हुआ था।

शृंगवान्

पौराणिक भूगोल के अनुसार मेरु के उत्तर की ओर एक पर्वत-श्रेणी जो पूर्व-पश्चिम की ओर समुद्र तक विस्तृत है। शृंगवान् को विष्णु० 2,2,10 में शृंगी कहा गया है—'नीलः श्वेतश्च शृंगी च उत्तरे वर्षपर्वताः'। महाभारत के अनुसार शृंगवान् के तीन शिखर है, एक मणिमय, दूसरा सुवर्णमय और तीसरा सर्वरत्नमय। वहां स्वयंप्रभा देवी नित्य निवास करती हैं। शृंगवान् के उत्तर-समुद्र के निकट ऐरावतवर्ष है जहां सूर्य तापरहित है। वहां के मनुष्य कभी

बूढ़े नहीं होते—'श्रृंगाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप, एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम्, सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् । तत्र स्वयं प्रभादेवी नित्यं वसति शांडिली, उत्तरेणतु श्रृंगस्य समुद्रान्ते जनाधिप । वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृंगमतः परम्, न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः' भीष्म० 8,8-9-10-11 । जैन ग्रंथ जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति में श्रृंगवान् की जंबूद्वीप के 6 वर्ष पर्वतों में गणना की गई है।

श्रृंगवेरपुर

रामायण में वर्णित वह स्थान है जहां वन जाते समय श्रीराम, लक्ष्मण और सीता एक रात्रि के लिए ठहरे थे। इसका अभिज्ञान सिंगरौर (ज़िला इलाहाबाद उ० प्र०) से किया गया है। यह स्थान गंगा-तीर पर स्थित था तथा यहीं रामचंद्रजी की भेंट गुह निषाद से हुई थी—'समुद्रमहिषीं गंगां सारसक्रौंच-नादिताम्, आससाद महाबाहुः श्रृंगवेरपुरं प्रति । तत्रराजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा, निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः' वाल्मीकि० राम० अयो० 50,26-33 । यहीं उन्होंने नौका द्वारा गंगा को पार किया था और अपने सारथी सुमंत को वापस अयोध्या भेज दिया था। भरत भी जब राम से मिलने चित्रकूट गए थे तो वे श्रृंगवेरपुर आए थे—'ते गत्वा दूरमध्वानं रथ यानाश्वकुंजरैः समासेदुस्ततो गंगां श्रृंगवेरपुरं प्रति' अयो० 83,19 । अध्यात्मरामायण अयो० 5,60 में भी श्रीराम का श्रृंगवेरपुर में गंगा के तट पर पहुंचना वर्णित है—'गंगातीरं समागच्छच्छृंगवेराविदूरतः गंगां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानसः'। यहां श्रीराम शीशम के वृक्ष के नीचे बैठे थे—'शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः'—अध्यात्म० अयो० 5,61 । भरत का श्रृंगवेरपुर पहुंचना, अध्यात्म-रामायण में इस प्रकार वर्णित है—'श्रृंगवेरपुरं गत्वा गंगाकूले समन्ततः उवास महती सेना शत्रुघ्नपरिणोदिताः' अयो० 8,14 । कालिदास ने रघुवंश में निषादाधिपति गुह के पुर (श्रृंगवेरपुर) में श्रीराम के मुकुट उतार कर जटाएँ बनाने तथा यह देखकर सुमंत के रो पड़ने के दृश्य का मार्मिक वर्णन किया है—'पुरं निषादाधिपतेरिदं तद्यस्मिन्मया मौलिमणिं विहाय, जटासु बद्धास्वरुदत्सुमंत्रः कैकयिकामाः फलितास्तवेति' रघु० 13,59 । भवभूति ने उत्तररामचरित 1,21 में राम से, अपने जीवनचरित्र संबंधी चित्रों के वर्णन के प्रसंग में श्रृंगवेरपुर का वर्णन इस प्रकार करवाया है—'इंगुदीपादपः सोयं श्रृंगवेरपुरे पुरा, निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागमः'। तुलसीदास ने भी रामचरितमानस, अयोध्याकांड में सिंगरौर या श्रृंगवेरपुर का इन्हीं प्रसंगों में उल्लेख किया है—'सीता सचिव सहित दोउ भाई, श्रृंगवेरपुर पहुंचे जाई;' 'अनुज सहित

सिर जटा बनाए, देखि सुमंत्र नयन जल छाए;' 'केवट कीन्ह बहुत सेवकाई, सो जामिनि सिगरौर गंवाई;' 'सई तीर बसि चले बिहाने, शृंगवेरपुर सब नियराने;' 'शृंगवेरपुर भरत दीख जब, भे सनेह बस अंग विकल सब'। महाभारत में शृंगवेरपुर का तीर्थरूप में उल्लेख है—'ततो गच्छेत राजेन्द्र शृंगवेरपुरं महत् यत्र तीर्णो महाराज रामो दाशरथि: पुरा' महा० वन० 85,65।

वर्तमान सिंगरौर (जान पड़ता है तुलसीदास को शृंगवेर पुर का सिंगरौर होना पता था जैसा 'सो' जामिनि सिगरौर गवाई' से प्रमाणित होता है) अयोध्या (उ० प्र०) से 80 मील है। यह कस्बा गंगा के उत्तरी तट पर एक छोटी पहाड़ी पर बसा हुआ है। प्रयाग से यह स्थान 22 मील उत्तर-पश्चिम की ओर है। उस स्थान को जहां राम-लक्ष्मण-सीता ने रात्रि व्यतीत की थी रामचौरा कहते हैं। घाट के पास दो सुंदर शीशम के वृक्ष खड़े हैं; लोग कहते हैं ये उसी महाभाग वृक्ष की संतान हैं जिसके नीचे श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण के समेत रात्रि व्यतीत की थी (तुलसी ने इसी संबंध में लिखा है—'तब निषाद पति उर अनुमाना, तरु शिंशपा मनोहर जाना; लै रघुनाथहि ठांव दिखावा, कहेउ राम सब भांति सुहावा'; 'जहं शिंशपा पुनीत तरु रघुवर किय विश्राम, अति सनेह सादर भरत कीन्हें दंड प्रनाम'। वाल्मीकि० अयो० 50, 28 में इस वृक्ष को इंगुदी (हिंगोट) कहा गया है—'सुमहानिंगुदीवृक्षो वसाभोऽत्रैव सारथे'। भवभूति ने भी (दे० ऊपर) इसे इंगुदी ही कहा है। अध्यात्मरामायण तथा रामचरितमानस में इस वृक्ष को शीशम लिखा है। शृंगवेरपुर में गंगा को पार करके रामचंद्रजी उस स्थान पर उतरे थे जहां लोकश्रुति के अनुसार आजकल कुरई नामक ग्राम स्थित है। कहा जाता है कि इस स्थान पर शृंगी ऋषि का आश्रम था जिनसे राजा दशरथ की कन्या शांता ब्याही थी। शांता के नाम पर प्रसिद्ध एक मंदिर भी यहां स्थित है। यहां एक छोटा-सा राममंदिर बना है। शृंगवेरपुर के आगे चलकर श्रीरामचंद्रजी प्रयाग पहुंचे थे।

शृंगी=शृंगवान्

शृंगेरी

(1) (जिला कदूर, मैसूर) बिरूर स्टेशन से 60 मील दूर तुगनदी के वामतट पर छोटा सा ग्राम है। इसका नाम यहां से 9 मील दूर शृंगगिरिपर्वत के नाम पर ही शृंगगिरि पड़ा था जिसका अपभ्रंश शृंगेरी है। कहा जाता है यहां शृंगी ऋषि का जन्म हुआ था। एक छोटी पहाड़ी पर शृंगी के पिता विभांडक का आश्रम स्थित बताया जाता है। 8 वीं शती इस में स्थान पर महान् दार्शनिक शंकराचार्य ने अपने चार पीठों में से एक स्थापित किया

था। चार पीठ नासिक, शृंगेरी, पुरी, तथा द्वारका में स्थित है। (शृंगीऋषि से संबंधित स्थानों के लिए दे० ऋषिकुंड ऋषितीर्थ, शृंगऋषि)

(2) शृंगेरी के निकट स्थित पर्वत। इसे वराह-पर्वत भी कहते हैं। यहां से तुंगा, भद्रा, नेत्रवती, और वाराही नामक चार नदियां निकलती हैं।

शेखावटी (राजस्थान)

जयपुर ज़िले का वह भाग जिसमें सीकर का ठिकाना सम्मिलित है। कहा जाता है कि इस इलाके को सरदार राव शेखाजी ने बसाया था जिनके नाम पर ही यह प्रसिद्ध है।

शेरगढ़

(1) दे० सीही

(2) (उ० प्र०) शेरशाह के नाम पर बसाया हुआ यह कस्बा लखनऊ-काठगोदाम रेलमार्ग के देवरानियां स्टेशन से 7 मील दूर स्थित है। यहां पहले शेरशाह का बनवाया हुआ एक दुर्ग भी था जो लगभग 1540 में निर्मित हुआ था। अब इस प्राचीन नगर के खंडहर यहां के निकटवर्ती चार ग्रामों में विस्तृत हैं। (दे० कबर)

शेरीसाजी = प्रज्ञापुर

शेषाचल दे० वेंकटाचल

शैरीषक

महाभारत सभा० 32, 6 में वर्णित स्थान जिसे नकुल ने अपनी पश्चिम दिशा की दिग्विजय-यात्रा में जीता था—'शैरीषकं महोत्थं च वशे चक्रे महा-द्युतिः, आक्रोशं चैव राजर्षि तेन युद्धमभून्महत्।' शैरीषक का अभिज्ञान वर्तमान सिरसा से किया जाता है। इससे पहले सभा० 32, 4 में रोहीतक या वर्तमान रोहतक का उल्लेख है। सिरसा, दिल्ली के निकट स्थित है।

शैरीस

वर्तमान सेरया (ज़िला अहमदाबाद, गुजरात)। जैन स्तोत्र तीर्थमाला-चैत्यवदन में इसका नामोल्लेख इस प्रकार है—'जीरापल्लिफलर्द्धिपारकनगे शैरीसशंखेश्वरे।'

शैल

राजगृह की प्राचीन सात पहाड़ियों में से एक का वर्तमान नाम। महा-भारत सभा० 21, दाक्षिणात्य पाठ में शायद इसे ही शिलोच्चय कहा है। (दे० राजगृह)

शैलोदा

वाल्मीकि-रामायण में इस नदी का उल्लेख उत्तरकुरु के संबंध में है—'तं तु देशमतिक्रम्य शैलोदानाम निम्नगा, उभयोस्तीरयोस्तस्याः कीचका नाम वेणवः' किष्किंधा० 43, 37। महाभारत सभा० 28, दाक्षिणात्य पाठ में भी इसका वर्णन है, 'मेरुमंदरयोर्मध्ये शैलोदामभितो नदीम्, ये ते कीचकवेणूनां छायां रम्यामुपासते। खशाञ्झखाञ्चनद्योतान् प्रघसान्दीर्घवेणिकान्, पशुपांश्च कुलिंदांश्च तंगणान् परतंगणान्।' यह नदी मेरु और मंदराचल पर्वतों के मध्य में स्थित कही गई है और उसके दोनों तटों पर कीचक नाम के बांसों के वन बताए गए हैं। वाल्मीकि ने भी इसके तट पर कीचक-वृक्षों का वर्णन किया है (दे० ऊपर)। कीचक चीनी भाषा का शब्द कहा जाता है। नदी के तट पर खश, प्रघस, कुलिंद, तंगण, परतंगण आदि लोगों का निवास बताया गया है। ये लोग युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में 'पिपीलक सुवर्ण' लाए थे—'तद् वै पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत् पिपीलिकैः जातरूपं द्रोणमेयमहार्षुः पुंजशो नृपाः' सभा० 52, 4। पिपीलक-सुवर्ण के बारे में किंवदंती का उल्लेख मेगस्थनीज़ (चंद्रगुप्त मौर्य की सभा के यवनदूत) ने भी किया है। यह किंवदंती प्राचीन व्यापारिक जगत में तिब्बती सुवर्ण के बारे में प्रचलित थी। श्री० वा० श० अग्रवाल ने शैलोदा नदी का अभिज्ञान वर्तमान खोतन नदी से किया है। इस नदा के तट पर आज भी यशब या अश्मसार की खाने हैं जिसे शायद प्राचीन काल में सुवर्ण कहा जाता था। खोतन नदी पश्चिमी चीन तथा रूस की सीमा के निकट बहती है।

शैवालगिरि=रामटेक

शोण=महाशोणा=हिरण्यवाह

यह वर्तमान सोन नदी है जो पटना के निकट गंगा में मिलती है। यह नदी नर्मदा के उद्गम से चार-पांच मील दूर गोंडवाना पर्वत-श्रेणी (शोण-भद्र) से निकलती है और प्रायः 600 मील का मार्ग तय करके गंगा में गिर जाती है। महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित (प्रथम उच्छ्वास) में अपना जन्म-स्थान शोण तथा गंगा के संगम के निकट प्रीतिकूट नाम ग्राम बताया है। अपनी पूर्वजा पौराणिक देवी सरस्वती के मर्त्यलोक मे अवतीर्ण होने के स्थान को शोण के निकट वर्णित करते हुए बाण ने शोण को दंडकारण्य और विंध्य से उद्गत नदी माना है और उसका उद्भव चंद्रपर्वत बताया है। इसी चंद्र का पर्याय सोम है और यही नर्मदा का उद्भव है क्योंकि साहित्य में नर्मदा को सोमोद्भवा कहा गया है। यह अमरकंटक की एक श्रेणी है। शोण का उल्लेख संभवतः शोणा के रूप में, महा० भीष्म० 9,29 में है—'कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहु-

दामथ चंद्रमाम्'। कालिदास ने रघुवंश में शोण और भागीरथी के संगम का उपमेयरूप में वर्णन किया है जो मगध की राजधानी पाटलिपुत्र के निकट होने के कारण प्रख्यात रहा होगा—'तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः, प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथींशोणइवोत्तरंगः' रघु० 7,36; अर्थात् अज इंदुमती की रक्षार्थ अपने पिता के सचिव को नियुक्त करके उसी प्रकार अपने (प्रतिद्वंद्वी) राजाओं की सेना पर टूट पड़ा जिस प्रकार गंगा पर उत्ताल तरंगों वाला शोण। मेगस्थनीज ने, जो चंद्रगुप्त मौर्य की सभा में रहने वाला यवन दूत था, पाटलिपुत्र या पटने को गंगा तथा इरानोबाओस (Eranobaos) के संगम पर स्थित बताया है। इरानोबाओस हिरण्यवाह (शोण का एक नाम) का ही ग्रीक उच्चारण है। शोण को महाशोण या महाशोणा नाम से भी अभिहित किया जाता था। 'गंडकीञ्च महाशोणा सदानीरां तथैव च' महा० सभा० 20,27। श्रीमद्भागवत में शोण का सिंधु के साथ उल्लेख है—'सिंधुरंधः शोणश्च नदो महानदी'—शोण शब्द का अर्थ गहरा लाल रंग है जो इस नदी के जल का विशेषण हो सकता है।

शोणप्रस्थ दे० सोनपत

शोणभद्र

शोणनदी का उद्गम (दे० शोण)। हर्षचरित उच्छ्वास 1, में बाण ने शोण के उद्गम को चंद्रपर्वत कहा है।

शोणितपुर

(1) प्राचीन किंवदंती के अनुसार महाभारत में ऊषा-अनिरुद्ध उपाख्यान के संबंध में वर्णित ऊषा के पिता बाणासुर की राजधानी। कहा जाता है कि कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने ऊषा का हरण इसी स्थान पर किया था और यहीं उनका बाणासुर से युद्ध हुआ था। महा० सभा० 38 में बाणासुर को शोणितपुर का राजा कहा गया है—'तस्माल्लब्ध्वा वरान् बाणो दुर्लभान् स सुरैरपि, स शोणितपुरे राज्यं चकाराप्रतिमो बली'। इस पुरी का वर्णन इसी अध्याय में (दाक्षिणात्यपाठ) इस प्रकार है—'अथासाद्य महाराज तत्पुरीं ददृशुश्च ते, ताम्र-प्राकार संवीतां रूप्यद्वारैश्च शोभिताम्, हेमप्रासाद सम्बाधां मुक्तामणिविचित्रिताम् उद्यानवनसम्पन्नां नृत्तगीतैश्च शोभिताम्। तोरणैः पक्षिभिः कीर्णां पुष्करिण्या च शोभिताम् तां पुरीं स्वर्गसंकाशां हृष्टपुष्ट जनाकुलाम्'। विष्णु पुराण 5,33,11 में भी बाणासुर की राजधानी शोणितपुर में बताई गई है—'तं शोणितपुरं नीतं श्रुत्वा विद्याविदग्धया'। शोणितपुर का अभिज्ञान कुछ विद्वानों ने असम की वर्तमान राजधानी गोहाटी से किया है। इसको प्राग्ज्योतिषपुर

भी कहा जाता था। श्रीमद्भागवत 10,62,4 में ऊषा-अनिरुद्ध की कथा के प्रसंग में शोणितपुर को बाणासुर का राजधानी बताया गया है 'शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत् पुरा, तस्य शंभोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः'। ऊषा की सखी सोते हुए अनिरुद्ध को द्वारका से योग-क्रिया द्वारा उठाकर शोणितपुर ले आई थी 'तत्र सुप्तं सुपर्यंके प्राद्युम्निं योगमास्थिता गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियम्-दर्शयत्' श्रीमद्भागवत 10,62,23।

(2) = सोजत

(3) (महाराष्ट्र) इटारसी से 30 मील दूर सोहागपुर रेल-स्टेशन के निकट स्थित है। स्थानीय जनश्रुति में इस स्थान को बाणासुर की राजधानी बताया जाना है (दे० शोणितपुर 1)। नर्मदा नदी ग्राम के निकट बहती है।

शोरकोट (जिला झंग मधियाना, पाकि०)

प्राचीन शिबिराष्ट्र की स्थिति शोरकोट के निकट ही कही जाती है। शोर-कोट के इलाके को अबुलफ़जल ने आइनेअकबरी में शोर कहा है। शोर शिबि-पुर का अपभ्रंश जान पड़ता है।

शोरापुर (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर)

प्राचीन समय में यहां स्थित दुर्ग बंदेर-नरेश सनंकस ने बनवाया था किंतु उसका अब कोई चिह्न नहीं है। वर्तमान किले के एक प्रवेशद्वार पर औरंगजेब का 1116 हिजरी का एक अभिलेख है। नगर में शोरापुर के राजा के महल हैं। उत्तर की ओर एक टीले पर टेलर-मंजिल नामक कर्नल मीडोज टेलर का निवास स्थान है। टेलर ने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'कन्फ़ेशंस ऑव ए ठग' और 'माई लाइफ' में 19वीं शती के पूर्वार्ध के भारत की अव्यवस्थापूर्ण दशा का सुंदर चित्रण किया है। कृष्णा नदी के तट पर मनोरम झरनों के निकट छाया भगवती का मंदिर है। यहां दूर-दूर से प्राकृतिक सौंदर्य के पुजारी आते हैं।

शोलापुर (मैसूर)

नगर के दक्षिण में एक झील के बीच में सिद्धेश्वर का मंदिर है। एक मील दूर एक प्राचीन किले के अवशेष हैं।

शोरिपुर दे० सौरीपुर

शौर्यपुर

जैन उत्तराध्ययन सूत्र में वसुदेव को यहां का राजा बताया गया है। रोहिणी और देविकी इसकी रानियां थीं और राम और केशव इनके पुत्र। स्पष्ट ही है कि यह कहानी श्रीकृष्ण की कथा का जैनरूप है। यह नगर शूरसेन या मथुरा ही जान पड़ता है।

श्याम

विष्णुपुराण 2,4,62 में उल्लिखित शाकद्वीप का एक पर्वत—'पूर्वस्तत्रोदयगिरिर्जलाधारस्तथापर: तथा रैवतक: श्यामस्तथैवास्तगिरिर्द्विज ।'

श्यामप्रयाग (जिला गढ़वाल, उ० प्र०)

उत्तराखंड का सुंदर तीर्थ। यहां दो नदियों का संगम, पहाड़ों से घिरा होने के कारण श्यामवर्ण दिखाई पड़ता है।

श्येनी दे० केन

श्योराजपुर (जिला कानपुर, उ० प्र०)

इस स्थान से हाल ही में उत्तरप्रदेश की सर्वप्राचीन मूर्तिकला के उदाहरण मिले हैं। ये ताम्रनिर्मित मानवाकृतियां हैं जो ताम्रपाषाणयुगीन (लगभग 3000 वर्ष प्राचीन) हैं। ताम्रपाषाणयुग सिंधु-घाटी-सभ्यता का समकालीन माना जाता है। नई खोजों से सिद्ध होता है कि सिंधु-घाटी-सभ्यता केवल सिंध-पंजाब तक ही सीमित नहीं थी, किंतु उसका प्रसार समस्त उत्तर भारत, राजस्थान और गुजरात तक था। उत्तर प्रदेश में इसके अवशेष बहादुराबाद (हरद्वार के निकट) में भी मिले हैं।

श्रमणगिरि

(1) (बिहार) राजगृह के निकट पांच पर्वतों में परिगणित ऋषिगिरि का एक नाम। यहां बौद्धकाल में श्रमणों का निवास होने के कारण इस पहाड़ी को श्रमणगिरि कहते थे। स्वर्णगिरि इसी का उच्चारणभेद है।

(2)=सोनागिरि (मध्य प्रदेश)। ग्वालियर-झांसी रेल मार्ग पर सोनागिरि स्टेशन के निकट छोटी पहाड़ी है जहां प्राचीन काल में अनेक जैन मुनियों या श्रमणों का निवास स्थान था। पहाड़ी के शिखर पर 77 तथा इसके नीचे 17 जैन मंदिर आज भी अवस्थित है। ये मध्ययुगीन बुंदेलखंड की वास्तुकला के उदाहरण हैं। इस पहाड़ी को सिद्ध-क्षेत्र कहा जाता है।

श्रमणबेलगोला=श्रवणबेलगोला (मैसूर)

चंद्रगिरि तथा इंद्रगिरि नामक पहाड़ियों के मध्य में स्थित यह ऐतिहासिक स्थान प्राचीन काल में जैन धर्म व संस्कृति का महान केंद्र था। यहां का संसार प्रसिद्ध स्मारक, गोम्मटेश्वर की विराट 57 फुट ऊंची मूर्ति है जो एक ही पत्थर से काट कर इस स्थान पर बनवाई गई है। यह गंग नरेशों (लगभग 1000 ई०) की कीर्ति की अचल पताका है। जैन किंवदंती के अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य वृद्धावस्था में राजपाट त्याग कर दक्षिण भारत चले आए थे और जैन-धर्म में दीक्षित होकर इसी स्थान (चंद्रगिरि) पर रहने लगे थे। उपर्युक्त दोनों

ही पहाड़ियों पर प्राचीन ऐतिहासिक अवशेष बिखरे पड़े हैं। बड़ी पहाड़ी इंद्रगिरि पर ही गोम्मटेश्वर की मूर्ति स्थित है। यह पहाड़ी 470 फुट ऊंची है। पहाड़ी के नीचे कल्याणी नामक झील है जिसे धवलसरोवर भी कहते थे। बेलगोल कन्नड का शब्द है जिसका अर्थ धवलसरोवर है। यहां से प्राय: 500 सीढ़ियों पर चढ़कर पहाड़ी की चोटी पर पहुंचा जा सकता है। गोम्मटेश्वर की मूर्ति मध्ययुगीन मूर्तिकला का अप्रतिम उदाहरण है। फुर्ग्युसन के मत में मिस्र देश को छोड़कर संसार में अन्यत्र इस प्रकार की विशाल मूर्ति नहीं बनाई गई। इसका निर्माण 983 ई० में गंगनरेश रचमल्ल के प्रधान मंत्री चामुंडराय ने करवाया था। कहा जाता है कि मूर्ति उदारहृदय बाहुबली (ऋषभदेव के पुत्र) की है जिन्होंने अपने बड़े भाई भरत के साथ हुए घोर संघर्ष के पश्चात् जीता हुआ राज्य उन्हीं को लौटा दिया था। इस प्रकार इस मूर्ति में शक्ति तथा साधुत्व और बल तथा औदार्य की उदात्त भावनाओं का अपूर्व संगम प्रदर्शित किया गया है। इस मूर्ति का अभिषेक विशेष पर्वों पर होता है। इस विषय का सर्वप्रथम उल्लेख 1398 ई० का मिलता है। इस मूर्ति का सुंदर वर्णन 1180 ई० में बोप्पदेव कवि द्वारा रचित एक कन्नड शिलालेख में हैं। श्रवण-बेलगोल से प्राप्त दो स्तंभलेखों में पश्चिमी गंग-राजवंश के प्रसिद्ध राजा नोलंबांतक, मारसिंह, (975 ई०) और जैन प्रचारक मल्लीषेण (1129 ई०) के विषय में सूचना प्राप्त होती है। एक अन्य अभिलेख में प्रथम विजयनगर-नरेश बुक्काराय का उल्लेख है, जिसने वैष्णवों तथा जैनों के पारस्परिक विरोधों को मिटाने की चेष्टा की थी और दोनों संप्रदायों को समान अधिकार दिए थे।

श्रावस्ती

बौद्ध काल की परम समृद्धिशाली नगरी और कोसल जनपद की राजधानी श्रावस्ती के खंडहर जिला गोंडा (उ० प्र०) में सहेत-महेत नामक ग्राम के निकट स्थित हैं। यह स्थान बलरामपुर रेलस्टेशन से 7 मील दक्षिण-पश्चिम में पक्की सड़क पर स्थित है। श्रावस्ती राप्ती नदी के तट पर बसी हुई थी। वाल्मीकि-रामायण उत्तर० 107, 17 में वर्णन है कि रामचंद्रजी ने (दक्षिण-) कोसल का अपने पुत्र कुश को और उत्तर कोसल का लव को राजा बनाया था—'कोसलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्, अभिषिच्य महात्मानावुभौ रामः कुशीलवौ'। उत्तर० 108,5 के अनुसार लव की राजधानी श्रावस्ती में थी, 'श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य ह अयोध्यां विजनां कृत्वा राघवो भरतस्तथा' अर्थात् मधुपुरी में शत्रुघ्न को सूचना मिली कि लव के लिए श्रावस्ती नामक नगरी

राम ने बसाई है और अयोध्या को जनहीन करके (उन्होंने स्वर्ग जाने का विचार किया है)। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि श्रीराम के स्वर्गारोहण के पश्चात् अयोध्या उजड़ गई थी और कोसल की नई राजधानी श्रावस्ती में बनाई गई थी। बौद्धकाल में श्रावस्ती के पश्चात् अयोध्या का उपनगर साकेत, कोसल का दूसरा प्रमुख स्थान था। कालिदास ने रघुवंश में लव को शरावती नामक नगरी का राजा बनाया जाना लिखा है—'स निवेश्यकुशावत्यां रिपुनागांकुशं कुशम् शरावत्यां सतांसूक्तैर्जनिताश्रुलवंलवम्, रघु० 15, 97। इस उल्लेख में शरावती, निश्चय रूप से श्रावस्ती का ही उच्चारण-भेद है। श्रावस्ती की स्थापना पुराणों के अनुसार, श्रवस्त नाम के सूर्यवंशी राजा ने की थी (दे० 'युग-युग में उत्तर प्रदेश' पृ० 40)। लव ने यहां कोसल की नई राजधानी बनाई और श्रावस्ती धीरे-धीरे उत्तर कोसल की वैभवशालिनी नगरी बन गई।

सहेत-महेत के खडहरों से जान पड़ता है कि इस नगर का आकार अर्ध-चंद्राकार था। गौतम बुद्ध के समय यहां कोसल-नरेश प्रसेनजित् की राजधानी थी। बुद्ध के जीवन से संबंधित अनेक स्थलों के खंडहर यहां उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाए गये हैं। इन स्थलों का पाली ग्रंथों के अतिरिक्त चीनी-यात्री फाह्यान और युवानच्वांग ने भी उल्लेख किया है। इनमें प्रसेनजित् के मंत्री सुदत्त के तथा क्रूर दस्यु अंगुलीमाल (जो बाद में बुद्ध के प्रवचनों से प्रभावित होकर उनके धर्म में दीक्षित हो गया था) के नाम से प्रसिद्ध स्तूपों के तथा जेतवन-बिहार के खंडहर मुख्य हैं। जेतवन-विहार को सुदत्त या अनाथपिंडक ने बुद्ध के जीवनकाल ही में बनवाया था। सुदत्त ने इस उपवन की भूमि को राजकुमार जेत से, उस पर स्वर्ण मुद्राएं बिछाकर, खरीदा था और फिर इस उपवन को बुद्ध को दान कर दिया था। जेत ने इन स्वर्ण मुद्राओं को प्राप्त कर इस धन से श्रावस्ती में सात तलों का एक प्रासाद बनवाया था जो चंदन, छत्र और तोरणों से सुसज्जित था। इसमें चारों ओर फूल ही फूल बिखरे रहते थे और इतना अधिक प्रकाश किया जाता था कि रात भी दिन ही प्रतीत होती थी। फाह्यान लिखता है कि एक दिन एक मूषक एक दीपक की बत्ती को उठा कर इधर-उधर दौड़ने लगा जिससे इस महल में आग लग गई और यह सत-मंजिला भवन जलकर राख हो गया। बौद्धों के विश्वास के अनुसार इस दुर्घटना का कारण वास्तव में जेत की लालची मनोवृत्ति ही थी जिसके वशीभूत होकर उसने बुद्ध के निवास स्थान के लिए भूमि देने में आनाकानी की थी और उसके लिए इतना अधिक धन मांगा था। जेतवन के खंडहरों में बुद्ध के निवासगृह गंधकुटी तथा कोशंबकुटी नामक दो विहारों के अवशेष देखे जा सकते हैं। बुद्ध श्रावस्ती

में नौ वर्ष रहे थे और यहां रहते हुए उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रवचन दिए थे। सहेत-महेत के दक्षिण-पश्चिम की ओर जेतवन-विहार से आधा मील दूर सोमनाथ नाम का एक ऊंचा ढूह (स्तूप) है। जेतवन से एक मील दक्षिण-पूर्व में एक दूसरा टीला है जिसे ओराझार कहा जाता है। यह वही स्थान है जहां मिगार श्रेष्ठी की पुत्रवधू विशाखा ने अपार धन-राशि व्यय करके पूर्वरमा नामक विहार बनवाया था। बौद्ध और जैन साहित्य में श्रावस्ती को सावत्थी या सावित्थपुर कहा गया है। महापरिनिब्बान सुत्त (दे० सेक्रेड बुक्स आव दी ईस्ट, पृ० 99) में श्रावस्ती और साकेत की गणना भारत के प्रमुख सात नगरों मे की गई है। जैन ग्रंथ 'उपासकदशा' में श्रावस्ती की शरवन नामक बस्ती या सन्निवेश का उल्लेख है जहां आजीवक संप्रदाय के मुख्य उपदेष्टा गोसाल मंखलिपुत्र का जन्म हुआ था। जैन ग्रंथ विविधतीर्थकल्प में श्रावस्ती का जैनतीर्थ के रूप में वर्णन किया गया है। श्री संभवनाथ की मूर्ति से विभूषित एक चैत्य यहां था जिसके द्वार पर एक रक्ताशोक दिखाई देता था। एक बौद्ध मंदिर भी यहां स्थित था जहां देवताओं के सामने घोड़ों की बलि दी जाती थी। इसी स्थान पर भगवान् संभवस्वामी को कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ था। श्री महावीर स्वामी ने एक बार वर्षाकाल यहां व्यतीत किया था और अनेक प्रकार की तपस्याएं की थीं। महाराज जितशत्रु का पुत्र भद्र भी यहां आकर साधु हो गया था और तत्पश्चात् उसे परम ज्ञान प्राप्त हुआ था।

जैन साहित्य में श्रावस्ती को चंद्रपुरी और चंद्रिकापुरी भी कहा गया है क्योंकि इसे तीर्थंकर चंद्रप्रभानाथ की जन्मभूमि माना गया है। तीर्थंकर संभवनाथ की भी यही जन्मभूमि है। कल्पसूत्र के एक उल्लेख से सूचित होता है कि अंतिम तीर्थंकर महावीर ने मंखलिपुत्र गोसाल से श्रावस्ती में, संबंध विच्छेद होने के बाद, सर्वप्रथम भेंट की थी। महावीर यहां कई बार आए थे।

चीनी यात्री फाह्यान और युवानच्वांग ने श्रावस्ती का विस्तृत वर्णन किया है। फाह्यान के समय (5 वीं शती का पूर्वार्ध) में श्रावस्ती उजाड़ हो चली थी और यहां केवल दो सौ कुटुंब निवास करते थे। फाह्यान लिखता है कि यहां बुद्ध के समय प्रसेनजित् का राज्य था और तथागत से संबंधित स्मारक अनेक स्थलों पर बने हुए थे। उसने सुदत्त के विहार का भी वर्णन किया है और इसके मुख्य द्वार के दोनों ओर दो स्तंभों की स्थिति बताई है जो संभवतः अशोक के बनवाए हुए थे। इनके शीर्ष पर वृषभ तथा चक्र की प्रतिमाएं जटित थीं। फाह्यान को देखकर और उसे चीन से आया जान श्रावस्ती के निवासी विस्मित हुए थे क्योंकि उससे पहले उनके नगर में चीन से कभी कोई नहीं आया था।

फाह्यान ने श्रावस्ती में 98 विहार देखे थे। युवानच्वांग के समय (7 वीं शती के पूर्वार्ध) में तो यह नगरी सर्वथा ही खंडहरों के रूप में परिणत हो गई थी और उसने केवल एक ही बौद्ध विहार को यहां स्थित पाया था। वास्तव में गुप्तकाल में उत्तर-पूर्व भारत के बौद्ध धर्म के सभी प्राचीन केंद्र अव्यवस्थित तथा उजाड़ हो गए थे।

जैन जनश्रुति से तथा सहेत महेत के खंडहरों के अवशेषों से विदित होता है कि श्रावस्ती में जैनों का पर्याप्त समय तक प्रभाव रहा था। यहां कई प्राचीन जैन मंदिरों के खंडहर मिले हैं। श्रावस्तीभुक्ति नामक भुक्ति का नामोल्लेख गुप्त अभिलेखों से प्राप्त होता है। गुप्तकाल में इसकी स्थिति श्रावस्तीनगरी के परिवर्ती प्रदेश में ज़िला गौंडा के आसपास रही होगी।

श्रीकंठ

हर्षचरित्र में उल्लिखित जनपद, जहां प्रभाकरवर्धन (हर्ष का पिता) की राजधानी स्थाण्वीश्वर या स्थानेश्वर (=थानेसर) स्थित थी। इसका विस्तार पूर्वी पंजाब, पश्चिमी उत्तरप्रदेश तथा दिल्ली राज्य के कुछ भाग में था। हर्ष-चरित, तृतीय उच्छ्वास, में इस जनपद की समृद्धि तथा वैभव का काव्यात्मक वर्णन किया गया है। बाण ने इस देश में ईख, धान तथा गेहूं की खेती का उल्लेख भी किया है, इसके अतिरिक्त तरह-तरह के द्राक्षा तथा दाड़िम के उद्यान यहां की शोभा बढ़ाते थे। वहां के गांवों की धरती केलों के निकुंजों से श्यामल दीखती थी। पद-पद पर ऊंटों के झुंड थे। सहस्रों कृष्ण-मृगों से वह देश चित्र-विचित्र लगता था। (दे० हर्षचरित, हिंदी अनुवाद, सूर्यनारायण चौधरी, पृ० 119)।

श्रीक्षेत्र

(1) (बर्मा) दक्षिण ब्रह्मदेश में एक प्राचीन भारतीय औपनिवेशिक राज्य जिसका अभिज्ञान प्रोम के निकट स्थित हमाजा (Hmauza) से किया गया है। इसकी स्थापना प्यूस (Pyus) लोगों ने की थी जो हिंदू धर्म के अनुयायी थे। चीनी यात्री युवानच्वांग के अनुसार श्रीक्षेत्र-राज्य पूर्वी भारत की सीमा के बाहर प्रथम विशाल हिंदू राज्य था। यहां से प्राप्त प्यूस अभिलेखों से विदित होता है कि इस राज्य की समृद्धि का युग तीसरी शती ई० से सातवीं शती ई० तक था। नवीं शती के पश्चात् श्रीक्षेत्र-राज्य की पूर्ण अवनति हो गई थी।

(2)=**पुरी** (उड़ीसा)

श्रीदेव=सीतेप (थाइलैंड)

स्याम या थाइलैंड का प्राचीन भारतीय औपनिवेशिक नगर। तृतीय-चतुर्थ

शती ई० की अनेक भारतीय कलाकृतियां यहां उत्खनन द्वारा प्रकाश में लाई गई हैं। इनमें यक्षिणी की एक सुंदर मूर्ति भी है जिसमें भारत की गुप्तकालीन कला की पूरी-पूरी झलक दिखाई पड़ती है। श्रीदेव का अभिज्ञान वर्तमान सीतेप से किया गया है। सीतेप, श्रीदेव का ही अपभ्रंश है।

श्रीनग=श्रीशैल (श्रीपर्वत)

जैन तीर्थ के रूप में इसका उल्लेख तीर्थमालाचैत्यवंदन में है—'विंध्य-स्थंभन शीट्ठमीट्ठ नगरे राजद्रहे श्रीनगे।'

श्रीनगर

(1) (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) गढ़वाल की प्राचीन राजधानी। यह नगर गंगा के तट पर स्थित है। 1894 ई० मे बिरही नदी की बाढ़ में यह नगर बह गया था। नए वर्तमान श्रीनगर को 1895 ई० में पॉ नामक अंग्रेज ने प्राचीन नगर के निकट ही बसाया था। श्रीनगर के आस पास कई प्राचीन मंदिर हैं।

(2) (कश्मीर) झेलम के तट पर स्थित कश्मीर की राजधानी जिसकी नींव, कल्हणरचित राजतरंगिणी, 1,5,104 (स्टाइन का अनुवाद) के अनुसार मौर्य-सम्राट् अशोक ने डाली थी। उसने कश्मीर की यात्रा 245 ई० पू० में की थी। इस तथ्य को देखते हुए श्रीनगर लगभग 2200 वर्ष प्राचीन नगर ठहरता है। अशोक का बसाया हुआ नगर वर्तमान श्रीनगर से प्राय: 3 मील उत्तर में बसा हुआ था। प्राचीन नगर की स्थिति को आजकल पांडरेथान अथवा प्राचीन स्थान कहा जाता है। महाराज ललितादित्य यहां का प्रख्यात हिंदू राजा था। इसका शासनकाल 700 ई० के लगभग था। इसने श्रीनगर की श्रीवृद्धि की तथा कश्मीर के राज्य का दूर-दूर तक विस्तार भी किया। इसने झेलम पर कई पुल बंधवाए तथा नहरें बनवाईं। श्रीनगर में हिंदू नरेशों के समय के अनेक प्राचीन मंदिर थे जिन्हें मुसलमानों के शासनकाल में नष्ट-भ्रष्ट करके उनके स्थान पर दरगाहें तथा मसजिदें इत्यादि बनाली गई थीं। झेलम के तीसरे पुल पर महाराज नरेंद्र द्वितीय का 180 ई० के लगभग बनवाया हुआ नरेंद्र-स्वामी का मंदिर था। यह नरपीर की जियारतगाह के रूप में परिणत कर दिया गया था। चौथे पुल के निकट नदी के दक्षिणी तट पर पांच शिखरों वाला मंदिर महाश्रीमंदिर नाम से विख्यात था; इसे महाराज प्रवरसेन द्वितीय ने अपार धन-राशि व्यय कर निर्मित करवाया था। 1404 ई० में कश्मीर के शासक शाह सिकंदर की बेगम की मृत्यु होने पर उसे इस मंदिर के आंगन में दफना दिया गया और उसी समय से यह विशाल मंदिर मकबरा बन गया। कश्मीर का प्रसिद्ध सुलतान जैनुलआबदीन, जिसे कश्मीर का अकबर कहा जाता

है, इसी मंदिर के प्रांगण में दफ़नाया गया था। यह स्थान मकबरा शाही के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कहा जाता है कि नदी के छठे पुल के समीप, दक्षिणी तट पर महाराज युधिष्ठिर के मंत्री स्कंदगुप्त द्वारा बनवाया एक अन्य मंदिर था। इसे पीर बाशू की जियारतगाह के रूप में परिणत कर दिया गया। 684-693 ई० में महाराज चंद्रापदी द्वारा बनवाया हुआ त्रिभुवन स्वामी का मंदिर भी समीप ही स्थित था। इस पर टांगा बाबा नामक एक पीर ने अधिकार करके इसे दरगाह का रूप दे दिया। सुलतान सिकंदर ने 1404 ई० में जामा मसजिद बनाने के लिए महाराज तारापदी द्वारा 693-697 में निर्मित एक प्रसिद्ध मंदिर तोड़ डाला और उसकी सारी सामग्री मसजिद में लगा दी। 1623 ई० के लगभग बेगम नूरजहां ने, जब वह जहांगीर के साथ कश्मीर आई, सुलेमान पर्वत के ऊपर बना हुआ शंकराचार्य का मंदिर देखा और इसकी पैड़ियों में लगे हुए बहुमूल्य पत्थर के टुकड़ों को उखड़वाकर उन्हें अपनी बनवाई हुई मसजिद में लगवा दिया। केवल शंकराचार्य का मंदिर ही अब श्रीनगर का प्राचीन हिंदू स्मारक कहा जा सकता है। किंवदंती के अनुसार इस मंदिर की स्थापना दक्षिण के प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य ने 8वीं शती ई० में की थी। जहांगीर तथा शाहजहां के समय के शालामार तथा निशात नामक सुंदर उद्यान, तथा इसी काल की कई मसजिदें श्रीनगर के प्रमुख ऐतिहासिक स्मारक हैं। कहा जाता है निशातबाग नूरजहां के भाई आसफखां का बनवाया हुआ था। शालीमार का निर्माण जहांगीर और उसकी प्रिय बेगम नूरजहां ने किया था। मुगलों ने कश्मीर में 700 बाग़ लगवाए थे।

(3) दे० बिलग्राम

श्रीनिवास दे० नेवासा

श्रीपर्वत दे० नागार्जुनीकोंड

श्रीपाद दे० सुमनकूट

श्रीपुर

(1) दे० बयाना

(2) यह वर्तमान सिरपुर या सीरपुर (ज़िला रायपुर, म० प्र०) है जो रायपुर से 40 मील दूर महानदी के तट पर स्थित है। ऐतिहासिक जनश्रुति से विदित होता है कि भद्रावती के सोमवंशी पांडव-नरेशों ने भद्रावती को छोड़कर श्रीपुर बसाया था। ये राजा पहले बौद्ध थे किंतु पीछे शैवमत के अनुयायी बन गए। श्रीपुर में गुप्तकाल में तथा परवर्ती काल में बहुत समय तक दक्षिण कोसल अथवा महाकोसल की राजधानी रही। इस स्थान पर ईंटों के बने गुप्त-

कालीन मंदिरों के अवशेष हैं जो सोमवंश के नरेशों के अभिलेखों (एपिग्राफिका इंडिका, जिल्द 11, पृ० 184-197) से 8वीं शती के सिद्ध होते हैं। ये परौली और भीतरगांव के गुप्तकालीन मंदिरों की परंपरा में हैं। श्री कुमारस्वामी ने भूल से इन मंदिरों को छठी शती का मान लिया था (ए हिस्ट्री ऑव आर्ट इन इंडिया एंड इंडोनीसिया)। 1954 ई० के उत्खनन में भी यहां उत्तर-गुप्तकालीन मंदिर के अवशेष मिले हैं। यहां की उत्तर गुप्तकालीन कला की विशेषता जानने के लिए विशाल लक्ष्मण-मंदिर का वर्णन पर्याप्त होगा—इसका तोरण 6' × 6' है जिस पर अनेक प्रकार की सुंदर नक्काशी की गई है। इसके ऊपर शेषशायी विष्णु की सुंदर प्रतिमा अवस्थित है। विष्णु की नाभि से उद्भूत कमल पर ब्रह्मा आसीन हैं और विष्णु के चरणों में लक्ष्मी स्थित है। पास ही वाद्य ग्रहण किए हुए गंधर्व प्रदर्शित हैं। तोरण लाल पत्थर का बना है। मंदिर के गर्भ-गृह में लक्ष्मण की मूर्ति है। यह 26" × 16" है। इसकी कटि में मेखला, गले में यज्ञोपवीत, कानों में कुंडल और मस्तक पर जटाजूट शोभित हैं। यह मूर्ति एक पांच फनों वाले सर्प पर आसीन है जो शेषनाग का प्रतीक है। मंदिर मुख्यत: ईंटों से निर्मित है किंतु उस पर जो शिल्प प्रदर्शित है उससे यह तथ्य बहुत आश्चर्यजनक जान पड़ता है क्योंकि ऐसी सूक्ष्म नक्काशी तो पत्थर पर भी कठिनाई से की जा सकती है। शिखर तथा स्तंभों पर जो बारीक काम है वह भारतीय शिल्पकला का अद्भुत उदाहरण है। गुप्तकालीन भित्ति-गवाक्ष इस मंदिर की विशेषता हैं। मंदिर की ईंटे 18" × 8" हैं। इन पर जो सुकुमार तथा सूक्ष्म नक्काशी है वह भारत भर में बेजोड़ है। ईंटों के मंदिर गुप्तकाल के वास्तु में बहुत सामान्य थे। लक्ष्मण-देवालय के निकट ही राम-मंदिर है किंतु यह अब खंडहर हो गया है। सिरपुर का एक अन्य मंदिर गंधेश्वर महादेव का है जो महानदी के तट पर स्थित है। इसके दो स्तंभों पर अभिलेख उत्कीर्ण हैं। कहा जाता है चिमनाजी भौंसले ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था एवं इसकी व्यवस्था के लिए जागीर नियत कर दी थी। यह मंदिर वास्तव में सिरपुर के अवशेषों की सामग्री से ही बना प्रतीत होता है। सिरपुर से बौद्धकालीन अनेक मूर्तियां भी मिली हैं जिनमें तारा की मूर्ति सर्वांगसुंदर है। श्रीपुर का तीवरदेव के राजिम-ताम्रपट्ट लेख में उल्लेख है (दे० राजिम)। 14वीं शती के प्रारंभ में, यह नगर वारंगल के ककातीय नरेशों के राज्य की सीमा पर स्थित था। 310 ई० में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने वारंगल की ओर कूच करते समय श्रीपुर पर भी धावा किया था जिसका वृत्तांत अमीर खुसरो ने लिखा है। श्रीपुर को उस समय सीरपुर कहा जाता था।

श्रीपरेंबुदूर (मद्रास)

मद्रास से 26 मील दूर श्रीरामानुजाचार्य के जन्मस्थान के रूप में प्रख्यात है। यहां इनका भाष्यकारस्वामी के नाम से प्रसिद्ध मंदिर स्थित है जिसके सामने सौ स्तंभों का मंडप है। यह रामानुज के जन्मस्थल का निर्देशक समझा जाता है। मंदिर की भित्तियों पर आचार्य तथा उनके 95 शिष्यों की मूर्तियां अंकित हैं।

श्रीप्रस्थ दे० बयाना

श्रीभोज=**श्रीविजय** (सुमात्रा)

7वीं शती ई० में इस देश की राजधानी भोज नामक नगर में थी। इस तथ्य का उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग ने किया है जो सुमात्रा होते हुए भारत (672 ई० में) पहुंचा था।

श्रीमाल दे० भिन्नमाल

श्रीरंगपट्टन (मैसूर)

मैसूर से 9 मील दूर कावेरी नदी के टापू पर स्थित है। पौराणिक किंवदंती है कि पूर्व काल में इस स्थान पर गौतम ऋषि का आश्रम था। श्रीरंगपट्टन का प्रसिद्ध मंदिर अभिलेखों के आधार पर 1200 ई० का सिद्ध होता है। 18वीं शती के उत्तरार्ध में मैसूर में हैदरअली और तत्पश्चात् उसके पुत्र टीपू सुलतान का राज्य था। टीपू के समय मैसूर की राजधानी इसी स्थान पर थी। उस समय हैदर की मराठों तथा अंग्रेजों से अनबन रहती थी। 1759 ई० में मराठों ने श्रीरंगपट्टन पर आक्रमण किया किंतु हैदरअली ने नगर की सफलतापूर्वक रक्षा की। 1799 में टीपू की मैसूर की चौथी लड़ाई में पराजय हुई, फलस्वरूप मैसूर रियासत पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। टीपू श्रीरंगपट्टन के दुर्ग के बाहर लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। श्रीरंगपट्टन की भूमि पर प्रत्येक स्थान पर आज भी इस भयानक तथा निर्णायक युद्ध के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। अंग्रेजों की सेना के निवासस्थान की टूटी हुई दीवारें, सैनिक चिकित्सालय के खंडहर, भूमिगत तहखाने तथा अंग्रेज कैदियों का आवास-ये सब पुरानी कहानियों की स्मृति को नवीन बना देते हैं। टीपू की बनवाई हुई जामामसजिद यहां के विशाल भवनों में से है। दुर्ग के बाहर काष्ठनिर्मित 'दरिया दौलत' नामक भवन टीपू ने 1784 में बनवाया था। कावेरी के रमणीक तट पर एक सुंदर उद्यान के बीच में यह ग्रीष्म-प्रासाद स्थित है। इसकी दीवारें, स्तंभ, महराब और छतें अनेक प्रकार की नक्काशी से अलंकृत है। बीच-बीच में सोने का सुंदर काम भी दिखाई पड़ता है जिससे इसकी शोभा दुगनी हो गई है। बहिर्भित्तियों पर

युद्धस्थली के दृश्य तथा युद्ध-यात्राओं के मनोरंजक चित्र अंकित है। द्वीप के पूर्वी किनारे पर टीपू का मकबरा अथवा गुंबज स्थित है। यह भी एक सुंदर उद्यान के भीतर बना है। इसे टीपू ने अपनी माता तथा पिता हैदरअली के लिए बनवाया था किंतु अंग्रजो ने टीपू की कब्र भी इसी में बनवा दी।

श्रीरंगम् (मद्रास)

त्रिचनापल्ली (त्रिशिरापल्ली) से 8 मील दूर स्थित है। 17वीं शती ई० का एक विशाल, भव्य विष्णु-मंदिर यहां का उल्लेखनीय स्मारक है। मंदिर का शिखर स्वर्णिम है। मंदिर के चतुर्दिक् परकोटा खिंचा हुआ है जिसमें लगभग 18 गोपुर बने हैं। दो गोपुर अतिविशाल हैं। परकोटे के भीतर अन्य मंदिर भी हैं। मंदिर के कुल सात घेरे हैं जिनमें से चार के अंदर नगर बसा हुआ है। सबसे बाहर का प्रांगण सबसे अधिक भव्य जान पड़ता है क्योंकि इसमें एक सहस्र स्तंभों की एक शाला है। मंदिर के शेष गिरिराव मंडपम् में अद्भुत नक्काशी प्रदर्शित है। यह मंडप अश्वमूर्तियों वाले स्तंभों पर आधृत है। इस मंदिर के गोपुर अलग-अलग देखने पर काफी प्रभावशाली दिखाई देते हैं, किंतु संपूर्ण मंदिर की पृष्ठभूमि में इनका प्रभाव कुछ घट-सा जाता है। कहा जाता है कि यह मंदिर भारत का सबसे बड़ा तथा विशाल-मंदिर है। वृंदावन (उ० प्र०) का श्रीरंगजी का मंदिर दक्षिण के इसी मंदिर की अनुकृति जान पड़ता है।

श्रीराज्य

(1) मैसूर का एक भाग जहां गंग-वंशीय नरेशों का राज्य था। इसमें श्रवणबेलगोला तथा परिवर्ती प्रदेश भी सम्मिलित थे। सेरी-वणिज जातक का सेरीजनपद यही हो सकता है।

(2) सुमात्राद्वीप (इंडोनेसिया) में स्थित भारतीय उपनिवेश। इसे श्रीविजय या श्रीविषय भी कहते थे।

श्रीवन=दे० भद्दिलपुर

श्रीवर्धन (जिला पूना, महाराष्ट्र)

महाराष्ट्र के नायक बालाजी विश्वनाथ के सुपुत्र बाजीराव (दूसरे पेशवा) का जन्मस्थान। इस होनहार बालक का, जिसने महाराष्ट्र की शक्ति की दुंदुभि सारे भारत में बजाई, जन्म 1699 ई० में हुआ था। पिता की मृत्यु के पंद्रह दिन पश्चात् ही इन्हें पेशवा की गद्दी पर साहू ने आसीन कर दिया था। इन्होंने हिंदू जाति के संगठन को सुदृढ़ बनाने का बहुत प्रयास किया। इनके समय में महाराष्ट्र की राज्यसत्ता की धाक उत्तरी हिंदुस्तान में भी छाई हुई थी

यहां तक कि दिल्ली का मुगल सम्राट् भी इनका वशवर्ती बन गया था।

श्रीवर्धनपुर

सिंहल में स्थित बौद्ध तीर्थ कांडी

श्रीविजय

सुमात्रा (इंडोनेसिया) द्वीप में बसा हुआ सर्वप्रथम भारतीय उपनिवेश जिसका वर्तमान नाम पेलंबंग है। इस राज्य की स्थापना चौथी शती ई० में या उससे भी पहले हुई थी (दे० सेरी)। सातवीं शती में श्रीविजय या श्रीभोज वैभव के शिखर पर था। 671 ई० में चीनी यात्री इत्सिंग श्रीभोज (=श्रीविजय) होते हुए भारत आया था। उसने यहां की राजधानी भोज लिखी है। इस समय इसके अधीन एक अन्य हिंदूराज्य मलयु तथा निकटवर्ती द्वीप बांका भी थे। 684 ई० में श्रीविजय पर बौद्ध राजा श्रीजयनाग या जयनाश का राज्य था। 686 ई० में इस राजा या उसके उत्तराधिकारी ने जावा के विरुद्ध सैनिक अभियान भेजा था और एक घोषणा प्रचारित की थी जिसकी दो प्रतिलिपियां प्रस्तर-लेखों के रूप में आज भी सुरक्षित हैं। चीनी यात्री इत्सिंग के लेख के अनुसार श्रीविजय बौद्ध संस्कृति तथा शिक्षा का केंद्र था। श्रीविजय के राजा के पास व्यापारिक जलयानों का एक बेड़ा था जिससे भारत और श्रीविजय के बीच व्यापार होता था। 7वीं शती ई० में मलय प्रायद्वीप में भी श्रीविजय की राज्यसत्ता स्थापित हो गयी थी। श्रीविजय का नामांतर श्रीविषय है।

श्रीविनय (कंबोडिया)

यह अनाम या प्राचीन चंपापुरी के विजय नामक प्रांत में स्थित बंदरगाह था। (दे० विजय)।

श्रीविल्लीपुत्तूर (मद्रास)

यह स्थान एक प्राचीन मंदिर के लिए उल्लेखनीय है। इस मंदिर में देवी सरस्वती की मूर्ति को खड़ा हुआ प्रदर्शित किया गया है जो यहां की विशेषता है।

श्रीविषय=श्रीविजय

श्रीशवस्तु

बलाहाश्वजातक में इस नगर का उल्लेख इस प्रकार है—'अतीते तम्बपण्णि-दीपे सिरीसवत्थं नाम यक्खनगरं अहोसि' अर्थात् ताम्रपर्णी द्वीप में श्रीश या शिरीषवस्तु नाम का यक्षनगर था। ताम्रपर्णी द्वीप लंका तथा भारत के संकीर्ण समुद्र में स्थित जाफना द्वीप का प्राचीन नाम था। इस प्रकार इस नगरी की

स्थिति इस द्वीप पर ही रही होगी। यहां के आदिम निवासियों को ही यक्ष कहा गया प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सिंहल-द्वीप या लंका का ही नाम ताम्रपर्णी था।

श्रीशैल दे० नागार्जुनीकोंड

श्रीस्थल

वर्तमान सिद्धपुर (गुजरात) का प्राचीन नाम। इसे धर्मारण्य भी कहते हैं। (दे० धर्मारण्य; सिद्धपुर)

श्रीहट्ट

सिलहट (आसाम) का प्राचीन नाम। चैतन्यमहाप्रभु के पूर्वज यहीं के निवासी थे। उनके पितामह भरद्वाजवंशीय उपेंद्रमिश्र और पिता जगन्नाथ मिश्र थे। जगन्नाथ मिश्र श्रीहट्ट छोड़कर नवद्वीप में जाकर बस गए थे। यहीं चैतन्य का जन्म हुआ था।

श्रुघ्न

यमुना के पश्चिमी तट के निकट स्थित नगर। गुप्तकाल में इस स्थान के बौद्ध भिक्षुओं की विद्वत्ता की ख्याति दूर-दूर तक थी। यहां के अभिधर्म और दर्शन के पंडितों के पास पढ़ने के लिए देश के अनेक भागों से विद्यार्थी आते थे। चीनी यात्री युवानच्वांग के वर्णन से प्रतीत होता है कि श्रुघ्न की स्थिति हरियाणा के उत्तर-पूर्वी भाग में थी। युवानच्वांग ने इस स्थान को मतिपुर (मंडावर, ज़िला बिजनौर, उ० प्र०) तथा जलंधर (पूर्वी पंजाब) के बीच में बताया है। चीनी यात्री यहां के बौद्ध विहार में कई मास तक निरंतर ठहरकर जयगुप्त नामक विद्वान् के पास अध्ययन करता रहा था।

श्रृंगारभुक्ति दे० मगधभुक्ति

श्रेष्ठपुर

कंबुज (कंबोडिया) की प्राचीन राजधानी। (दे० कंबुज)

श्वभ्र

श्वभ्रमती या साबरमती नदी (गुजरात) का तटवर्ती प्रदेश। रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में इस प्रदेश का रुद्रदामन् द्वारा जीते जाने का वर्णन है 'स्ववीर्यार्जितानमनुरक्तसर्वप्रकृतीनां ··आनर्तसुराष्ट्रश्वभ्रभरुक सिंधुसौवीर—'

श्वभ्रमती

साबरमती नदी (गुजरात) का प्राचीन नाम। यह नदी मीरपुर के निकट नंदिकुंड से निकलकर कैंबे की खाड़ी में गिरती है। श्वभ्र अथवा साबरमती के तटवर्ती प्रदेश का उल्लेख रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में है।

श्वेत

(1)=श्वेतवर्ष

(2)=श्वेत गिरि। 'श्वेतंगिरिं प्रवेक्ष्यामो मंदरं चैव पर्वतम्, यत्रमणिवरोः यक्षः कुबेरश्चैव यक्षराट्' महा०, वन० 139,5। इसे मंदराचल के निकट बताया गया है। यक्षराज कुबेर का निवास कहे जाने से जान पड़ता है कि श्वेतगिरि कैलास पर्वत का ही एक नाम था। कैलास के हिमधवल शिखरों की श्वेतता का वर्णन संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध ही है (दे० कैलास)। कैलास का उल्लेख महा० वन० 139,11 में कुछ आगे इसी प्रसंग के अंतर्गत है।

जैन ग्रंथ 'जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति' में श्वेतगिरि की जंबूद्वीप के 6 वर्षप-र्वतों में गणना की गई है। विष्णुपुराण 2,2,10 में मेरु के उत्तर में तीन पर्वत-श्रेणियां बताई गई हैं—नील, श्वेत तथा शृंगी; 'नीलः श्वेतश्च शृंगी च उत्तरे वर्षपर्वताः' यह श्वेतवर्ष का मुख्य पर्वत है। महाभारत का श्वेतगिरि तथा विष्णुपुराण का श्वेत एक ही जान पड़ते हैं। श्वेतगिरि का अभिज्ञान कुछ विद्वान् हिमालय में स्थित धवलगिरि या धौलागिरि से भी करते हैं। श्वेतगिरि को महाभारत में श्वेतपर्वत भी कहा गया है। मत्स्य-पुराण में दैत्य-दानवों को श्वेतपर्वत का निवासी बताया गया है।

(2) (मद्रास) त्रिचनापल्ली से प्रायः 13 और श्रीरंगम् से 10 मील पर स्थित तिरुवेल्लार का प्राचीन नाम। यह दक्षिण भारत में लक्ष्मी-विष्णु का उपासना का केंद्र है।

श्वेतपर्वत

'श्वेतपर्वतमासाद्यन्यविशत् पुरुषर्षभः' महाभारत सभा० 27,29; 'स श्वेत-पर्वतं वीरः समतिक्रम्य वीर्यवान्, देशं किंपुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम्' महा० सभा० 28,1। श्वेतपर्वत श्वेतगिरि ही का पर्याय जान पड़ता है। इसका अभिज्ञान धवलगिरि या धौलागिरि नामक हिमालय शृग से किया गया है। श्वेतपर्वत के उत्तर में हिरण्यकवर्ष की स्थिति बताई गई है। हिरण्यक (हिरण्मय) मंगोलिया या दक्षिणी साइबेरिया का प्रदेश जान पड़ता है।

श्वेतपुर (बिहार)

यहां महाराज हर्ष के शासनकाल में वैशाली के प्रदेश के अंतर्गत एक प्रख्यात बौद्धविहार स्थित था। चीनी यात्री युवानच्वांग ने यहां से महायान-संप्रदाय का एक ग्रंथ प्राप्त किया था।

श्वेतपवर्ष=श्वेत

विष्णुपुराण के अनुसार शाल्मलद्वीप का एक वर्ष या भाग जो इस द्वीप के

राजा वपुष्मान् के पुत्र श्वेत के नाम से प्रसिद्ध है। इसी वर्ष में संभवतः श्वेत-पर्वत या श्वेतगिरि की स्थिति थी। यदि श्वेतगिरि का अभिज्ञान धवलगिरि या धौलागिरि से निश्चित समझा जा सके तो श्वेतवर्ष की स्थिति धौलागिरि के पर्वतीय प्रदेश या तिब्बत में मानी जा सकती है। (दे० श्वेतगिरि; श्वेतपर्वत)

श्वेतारण्य दे० तिरुवेन्काडू

षोडशजनपद

बौद्ध साहित्य (अंगुत्तरनिकाय आदि) में बुद्ध के जीवन-काल में (छठी शती ई० पू०) प्रसिद्ध सोलह जनपदों के नाम मिलते हैं जो ये हैं—अंग मगध, काशी, कोसल, वज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पंचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवंति, गंधार और कंबोज।

संकस्स दे० सांकाश्य

संकश्या (ज़िला एटा, उ० प्र०)

बौद्धकालीन प्रसिद्ध नगर जिसका अभिज्ञान संकिसा बसंतपुर नामक ग्राम से किया गया है। यह स्थान फरुखाबाद के निकट है। (दे० सांकाश्य)

संकाश्य=सांकाश्य

संकिश=सांकाश्य

संकिसा=सांकाश्य

संकेत (ज़िला, मथुरा उ० प्र०)

नंदगांव-बरसाना मार्ग पर प्राचीन स्थान है जहां किंवदंती के अनुसार राधा तथा कृष्ण की प्रथम भेंट हुई थी। यह स्थान उन दोनों के मिलने का संकेत-स्थल माना जाता है और आजकल तीर्थरूप में मान्य है।

संख्यावती

विविध तीर्थकल्प नामक जैन ग्रंथ में अहिच्छत्रा (अहिक्षेत्र), (पंचाल देश की महाभारतकालीन राजधानी) का नाम संख्यावती बताया गया है। इसमें वर्णित है कि एक समय जब तीर्थंकर पार्श्वनाथ संख्यावती में ठहरे हुए थे तो कमठदानव ने उनके ऊपर घोर वर्षा की। उस समय नागराज धरणींद्र ने उनके ऊपर अपने फनों को फैलाकर उनकी रक्षा की और इसीलिए इस नगरी का नाम अहिच्छत्रा हो गया। इस ग्रंथ के विवरण से सूचित होता है कि इस नगरी के पास प्राचीनकाल में बहुत से घने वन थे और उनमें नाग जाति का निवास था। यह अनुश्रुति युवानच्वांग के वृत्तांत से भी पुष्ट होती है। (दे० अहिक्षेत्र)

संगल दे० सांगल

संगारेड्डी (ज़िला मेदक, आं० प्र०)

हैदराबाद से 37 मील दूर है। इस नगर के चारों ओर आंध्र के प्राचीन

राजवंश के नरेश सदाशिवरेड्डी द्वारा बनाई हुई प्राचीर स्थित है। नगर का नाम सदाशिव ने अपने पुत्र संगारेड्डी के नाम पर रखा था। यहां श्री रामस्वामी का मंदिर उल्लेखनीय है। इस तालुके में प्रागैतिहासिक समाधिस्थल, मिट्टी की मूर्तियां, पत्थर तथा लोहे के औज़ार, रोम के सम्राटों तथा आंध्र-नरेशों के सिक्के, मिट्टी के बर्तन तथा मुद्राएं और हाथीदांत, अस्थि, शीशे तथा कीमती पत्थरों की बनी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त एक स्तूप, चैत्य, विहार तथा भट्टियों और निर्माणियों के खंडहर भी काफी संख्या में प्राप्त हुए हैं।

संग्रामपुर

(1) (बिहार) चंपारन के निकट स्थित है। इस ग्राम को किंवदंती के अनुसार वाल्मीकि का आश्रम कहा जाता है।

(2) (जिला उन्नाव, उ० प्र०)

मोरावां से जबैला जाने वाले मार्ग पर एक मील दक्षिण की ओर मौरावां से छः मील दूर है। स्थानीय जनश्रुति है कि रामायण की कथा में वर्णित श्रवणकुमार, दशरथ द्वारा इसी स्थान पर मृत्यु को प्राप्त हुआ था। यहां एक तड़ाग के तट पर श्रवणकुमार की मूर्ति बनी हुई है। कहा जाता है यह वही तड़ाग है जहां श्रवण अपने अंधे माता-पिता के लिए जल लेने के लिए आया था। किंतु वाल्मीकि रामायण में इस घटना की स्थली सरयू के तट पर बताई गई है—'तस्मिन्नतिसुखेकाले धनुष्मानिपुमान्रथी व्यायामकृतसंकल्पः सरयू-मन्वगां नदीम्' अयोध्या० 63,20।

(3) (ज़िला दमोह, म० प्र०)

सिंगौरगढ़ से प्रायः चार मील दूर वह स्थल है जहां गढ़मंडला की वीरांगना रानी दुर्गावती और मुगल सम्राट् अकबर की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ था जिसके फलस्वरूप रानी वीरता पूर्वक लड़ती हुई मारी गई थी। अकबर की सेना आसफखां की अध्यक्षता में थी। रानी दुर्गावती का स्मारक उनकी मृत्यु के स्थान पर अभी तक वर्तमान है। यह ग्राम राजा संग्रामसिंह के नाम पर प्रसिद्ध है जो रानी दुर्गावती के श्वसुर थे। इनकी मृत्यु 1540 ई० मे हुई थी।

सजन=संजयंती

संजयंती

महाभारत, सभा० 31,70 में उल्लिखित दक्षिण भारत की नगरी जिस पर सहदेव ने अपनी दक्षिण दिशा की दिग्विजय यात्रा में विजय प्राप्त की थी

--'नगरीं संजयंतीं च पाखंडं करहाटकम् दूतैरेव वशे चक्रे करं चैनानदापयत् ।' संजयंती का अभिज्ञान वर्तमान संजन या सजान से किया गया है जो ज़िला थाना, महाराष्ट्र में स्थित है । कहा जाता है कि इसी स्थान पर खुरासान से भारत आनेवाले पारसियों का सर्वप्रथम उपनिवेश 735 ई० में बसाया गया था (इंडियन एंटिक्विटी, 1912, पृ० 174)

सजान=संजयंती

संधिमान् पर्वत

श्रीनगर (कश्मीर) के निकट शंकराचार्य की पहाड़ी ।

संध्या

(1) महाभारत सभा० 9,23 के अनुसार तीर्थरूप मे मान्यता प्राप्त नदी —'लंघती गोमती चैव संध्या त्रि:स्रोतसी तथा एताश्चान्याश्च राजेन्द्र सुतीर्था लोकविश्रुता:'। प्रसंग से यह गोमती (उ० प्र०) के निकट बहने वाली कोई नदी जान पड़ती है ।

(2) विष्णुपुराण में उल्लिखित क्रौंच द्वीप की एक नदी 'गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा क्षान्तिश्च पुंडरीका च सप्तैता वर्ष निम्नगा:' ।

संबलतुरि (लंका) दे० जंबुकोल

संभल (ज़िला मुरादाबाद, उ० प्र०)

संभल प्राचीन तीर्थ है । पुराणों में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में इसके नाम क्रमश: सत्यव्रत, महद्‌गिरि, पिंगल और संभल या शंबल वर्णित हैं । पुराणों के अनुसार कलियुग के अंत में भगवान् कल्कि का जन्म शंबल नामक ग्राम में होगा जिसका अभिज्ञान लोकविश्वास में इसी नगर से किया जाता है । यह टॉलमी द्वारा उल्लिखित संबलक है । (दे० शंबल)

संभोर दे० शंभुपुर

सम्पत्ति

'विष्णुपुराण 2,4,63 में उल्लिखित कुशद्वीप की एक नदी, 'धूपतापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा, विद्युदम्भा मही चान्या सर्व पापहरास्त्विमा.'

सम्मेतशिखर

जैन साहित्य में पारसनाथ पर्वत का एक नाम (दे० पारसनाथ 2)

संवित्=सौंदे

संवेद्य

महाभारत वन० 85,1 में वर्णित तीर्थ—'अथ संध्यां समासाद्य संवेद्यं तीर्थ-मुत्तमम् उपस्पृश्य नरोविद्यां लभते नात्र संशय:' अर्थात् संध्या के समय श्रेष्ठ

तीर्थ संवेद्य में जाकर स्नान करने से मनुष्य को विद्या का लाभ होता है, इसमें संदेह नहीं है। इस तीर्थ का अभिज्ञान सदिया (बंगाल) से किया गया है। संवेद्य के आगे वन० 85,2-3 में लौहित्य और करतोया का उल्लेख है।

सई=स्यंदिका

अयोध्या के निकट बहने वाली एक नदी जिसका वर्णन रामायण में है। सई गोमती में गिरती है। इसका उद्‌गम कुमायूं की पहाड़ियों में है। (दे० स्यंदिका)

सकरार (ज़िला झांसी, उ० प्र०)

राजपूतों के शासनकाल के मंदिरादि के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

सक्खर दे० शर्करा

सगर (महाराष्ट्र)

मध्यरेल के बंबई-रायचूर रेलमार्ग पर यादगिरि स्टेशन से 21 मील पर स्थित वर्तमान शाहपुर। इसी के निकट सगराद्रि नामक पर्वत है।

सगराद्रि (महाराष्ट्र)

बंबई–रायचूर रेलमार्ग पर यादगिरि स्टेशन के निकट एक पहाड़ी जो पुराण-प्रसिद्ध राजा सगर के नाम पर प्रसिद्ध है। सागर का बनवाया हुआ यहां एक दुर्ग स्थित था। बीजापुर के सुल्तानों ने भी यहां किला बनवाया था। सगराद्रि की तलहटी में सगर नामक प्राचीन नगर स्थित है जिसे अब शाहपुर कहते हैं।

सचोर=सत्यपुर

सज्जनगढ़ (ज़िला सतारा, महाराष्ट्र)

इस स्थान पर महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत तथा शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास प्रायः रहा करते थे। उन्होंने यहां एक मठ भी स्थापित किया था। शिवाजी प्रायः समर्थ से मिलने सज्जनगढ़ आया करते थे। उन्हें अपने जीवन के कई महत्त्वपूर्ण निर्णयों के लिए इसी स्थान पर रामदास से भेंट करने के उपरान्त प्रेरणा मिली थी। सज्जनगढ़ का दुर्ग परलीग्राम के पास पहाड़ी के ऊपर है। समर्थ के मठ के भीतर श्रीराम का मंदिर स्थित है। दुर्ग के दक्षिण कोण में अंगलाई देवी का मंदिर है। कहा जाता है देवी की प्रतिमा समर्थ को अंगापुर की नदी से प्राप्त हुई थी।

सज्जनालय

स्याम में स्थित सुखोदय राज्य की एक राजधानी। (दे० सुखोदय)

सतधारा (ज़िला भोपाल, म० प्र०)

सांची के निकट इस स्थान से एक प्राचीन बौद्ध स्तूप के भीतर से सम्राट् अशोक के समकालीन सारिपुत्र उपतिस्या और महामौग्गलायन नामक प्रसिद्ध धर्मप्रचारकों के अस्थि अवशेष प्राप्त हुए थे। इन्हीं के अवशेष सांची स्तूप से भी मिले थे।

सतपुड़ा

विंध्याचल के दक्षिण में स्थित महान् पर्वत-श्रेणी। सतपुड़ा शब्द सप्तपुत्र का अपभ्रंश कहा जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सतपुड़ा पर्वत की सात श्रेणियां हैं जिनके कारण ही इसे सप्तपुत्र का अभिधान दिया गया था। महाभारत में इस पर्वत को नर्मदा और ताप्ती के बीच में वर्णित किया गया है।

सतलज दे० शतद्रु

सतियपुत्रदेश

अशोक के शिलालेख 13 में उल्लिखित सतियपुत्रों का देश, जो अशोक के साम्राज्य के बाहर किंतु उसके प्रत्यंत या पड़ोस में स्थित था। यह वर्तमान केरल के उत्तर में था। इसका एक नाम कूपक भी था।

सतियापारा=सप्तिपारा

सत्यपथ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

इस तीर्थ के विषय में स्कंदपुराण, केदारखंड में निम्न उक्ति है—'परं सत्यपथं तीर्थं त्रिषुलोकेषु दुर्लभम्, तत्र स्नात्वा महाभागे विष्णुसायुज्य माप्नुयात्'। सत्यपथ बदरीनारायण से 17½ मील उत्तर में स्थित है। इसकी ऊंचाई समुद्रतल से 14440 फुट है। यहां एक त्रिकोण झील है जिसे सत्य-सरोवर कहते हैं।

सचौर=सत्यपुर

सत्यपुर (ज़िला पालनपुर, राजस्थान)

जैन तीर्थंकर महावीर का एक प्राचीन मंदिर यहां स्थित है। प्राचीनकाल में यह जैनों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। यह नगर प्राचीन गुजरात में स्थित था। इसका जैन ग्रंथ 'विविधतीर्थ कल्प' में जैनतीर्थ के रूप में वर्णन है। इसके अनुसार यहां 24 वें तीर्थंकर महावीर का एक मंदिर था जिसे किसी मुसलमान सुल्तान ने गुजरात पर आक्रमण के समय तोड़ना चाहा था। मालवा के राजा ने भी सत्यपुर पर आक्रमण किया था किंतु उसकी सेना को ब्रह्मशांति नामक यक्ष ने परास्त कर दिया था और इस प्रकार सत्यपुर की रक्षा हुई थी। जैन स्तोत्र तीर्थमालाचैत्यवंदन में भी इस नगर का उल्लेख है। सत्यपुर वर्तमान

सचौर है जो ज़िला पालनपुर में दीस रेलस्टेशन से 80 वें मील पर स्थित है। (प्राकृत ग्रंथों में इसे सच्चौर कहा गया है, 'वंदे सत्यपुरे च बाहडपुरे राडद्रहे वायडे')। महावीरस्वामी के शिष्य द्वारा रचित जगचिंतामणि चैत्यवंदन में भी इसका नामोल्लेख है।

सत्यव्रत

(1) दे० संभल

(2) कांची का पौराणिक नाम सत्यव्रतक्षेत्र कहा जाता है।

सदानीरा

प्राचीन कोसल और विदेह राज्य की सीमा पर बहने वाली नदी। शतपथ-ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में बहुत समय तक आर्य जगत की प्राच्यसीमा का निर्देश यह नदी करती रही (शतपथ 9,4)। इसके पूर्व में दलदल का प्रदेश था जहां वैदिककालीन आर्यों की पहुंच बहुत काल तक नहीं हुई। तत्पश्चात् माठव विदेह नामक प्रसिद्ध ऐश्वर्यशाली राज्य स्थापित हुआ जिसके राजा रामायणकाल में विदेह जनक हुए। इस नदी का अभिज्ञान सामान्यत: गंडकी से किया जाता है जो नेपाल के पहाड़ों से निकलती है और पटना के समीप गंगा में गिरती है किंतु महाभारत सभा० 20,27 में गंडकी और सदानीरा को भिन्न माना गया है—'गंडकींच महाशोणां सदानीरां तथैव च एकपर्वतके नद्यः क्रमेणैत्याव्रजन्त ते'। इस उल्लेख में यह नदी राप्ती हो सकती है। पार्जिटर के अनुसार सदानीरा राप्ती का ही प्राचीन नाम है, न कि गंडकी का (दे० गंडकी)। महा० सभा० 9,4 में भी सदानीरा का उल्लेख है, 'सदा नीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम्'। अमरकोश 1,10,33 में करतोया को सदानीरा का पर्याय कहा है।

सदिया दे० संवेद्य

सनकानिक

गुप्तकालीन गणराज्य जिसकी स्थिति संभवत: मध्यभारत में थी। सनकानिकों का उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति में है 'मालवार्जुनायनयौधेय-मद्रकआभीरप्रर्जुन सनकानिककाक (खाक) खरपरिक···'

सनातन

'मतंगवाप्यां य: स्नायादेकरात्रेणसिद्धयति विगाहतिह्यनालंबमंधकं वै सनातनम्' महा० अनुशासन० 25,32। इस तीर्थ का उल्लेख नैमिषारण्य के ठीक पूर्व है जिससे इसकी स्थिति नैमिषारण्य (उ० प्र०) के निकट मानी जा सकती है।

सन्निहती

'मासि मासि नरव्याघ्र संनिहत्यां न संशय: तीर्थसंनिहनादेव संनिहत्येति विश्रुता' महा० वन० 83,195 अर्थात् प्रत्येक मास की अमावस्या को (पृथ्वी के सभी तीर्थ) सन्निहती में आते हैं और तीर्थों के समूह के कारण ही इस स्थान को सन्निहती कहा जाता है। यह कुरुक्षेत्र का तीर्थ है जिसका अभिज्ञान सन्निहती-ताल से किया जाता है जो कुरुक्षेत्र (पंजाब) में स्थित है।

सपादलक्ष

शिवालिक पर्वतश्रेणी (देहरादून-हरद्वार, उ० प्र० की गिरिमाला) के निकट स्थित एक प्रदेश का प्राचीन नाम। सपालदक्ष का अर्थ सवालाख है, सिवालिक या शिवालित शब्द को इसी का अपभ्रंश माना जा सकता है। डा० भंडारकर के अनुसार दक्षिण के चालुक्य राजपूत मूलत: सपादलक्ष-प्रदेश की राजधानी अहिच्छत्र के निवासी थे। (इंडियन एंटिक्विरी, 11)

सप्तगंगा

शिवपुराण 2,13। गंगा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिंधु, सरयू और नर्मदा।

सप्तग्राम = सात गांव

सप्तद्वीप

जंबु, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शक एवं पुष्कर—ये पौराणिक सप्त-द्वीप हैं।

सप्तपर्णिगुहा

महावंश 3,19 राजगृह के निकट वैभारपर्वत की एक गुहा। यहीं बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् प्रथम धर्म-संगीति का अधिवेशन हुआ था जिसमें 500 भिक्षुओं ने भाग लिया था।

सप्तपर्वत दे० कुलपर्वत

सप्तपुरी

पुराणों में वर्णित सात मोक्षदायिका पुरियों में काशी, कांची, माया, अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवंतिका की गणना की गई है—'काशी कांची चमाया-ख्यात्वयोध्याद्वारवत्यपि, मथुराऽवन्तिका चैता: सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा:'; 'अयोध्या-मथुरामायाकाशीकांचीत्वन्तिका, पुरी द्वारावतीचैव सप्तैते मोक्षदायिका:'।

सप्तवती

श्रीमद्भागवत 5,19,18 में उल्लिखित एक नदी, 'सरयूरोधस्वती सप्तवती सुषोमाशतद्रू:'—इसका अभिज्ञान अनिश्चित है। यह सिंधु नदी का नाम हो

सकता है क्योंकि यह नदी सप्तनदियों की संयुक्त धारा बनकर समुद्र में गिरती है। (दे० सप्तसिंधु)

सप्तशरा (बंगाल)

बालासोर से छः मील दूर यह नदी बहती है। यहां इसके तट पर रेमुणा नामक ग्राम है जहां श्री चैतन्यमहाप्रभु पुरी जाते समय आए थे।

सप्तसागर

लवण, क्षीर, सुरा, घृत, इक्षु, दधि एवं स्वादु—ये पौराणिक सप्तसागर हैं।

सप्तसारस्वत

'सप्तसारस्वतं तीर्थं ततोगच्छेन्नराधिप, यत्र मंकणकः सिद्धो महर्षिर्लोकविश्रुतः' महा० वन० 83,115,116; 'सप्तसारस्वते स्नात्वा अर्चयिष्यन्ति ये तु माम्, न तेषां दुर्लभं किंचिदिहलोके परत्र च' महा० वन० 83,133। यह स्थान सरस्वती नदी के तट पर स्थित था।

सप्तसिंधु दे० सिंधु

सप्तिपारा (ज़िला मयूरभंज, उड़ीसा)

स्थानीय किंवदंती के अनुसार यह महाभारतकाल का मत्स्यदेश है किंतु यह तथ्य नहीं जान पड़ता क्योंकि मत्स्यदेश का अभिज्ञान जयपुर व अलवर (राजस्थान) के कुछ भागों के साथ निश्चित रूप से हो चुका है। इस किंवदंती का आधार निम्न विवेचन से स्पष्ट हो जाता है—दिब्बिड़ ताम्रपत्रों (एपिग्राफिका इंडिका 5,108) से सूचित होता है कि मत्स्य-निवासियों की एक शाखा मध्यकाल में विजिगापटम् प्रदेश (आंध्र) में जाकर बस गई थी। उत्कल-नरेश जयत्सेन ने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह इसी परिवार के कुमार सत्यमार्तंड से किया और उसे ओड्डवाड़ी (उड़ीसा का एक भाग) का शासक नियुक्त किया। 23 पीढ़ियों के पश्चात् 1269 ई० में इसी के वंशज अर्जुन का यहां राज्य था। इससे अनुमान किया जाता है कि किस प्रकार मत्स्य-देश की प्राचीन अनुश्रुतियां व परंपराएं सैंकड़ों मील के व्यवधान को पारकर उड़ीसा जा पहुंचीं। इसीलिए पांडवों के अज्ञातवास से संबद्ध कथाएं भी सप्तिपारा में आज तक परंपरा से प्रचलित चली आ रही हैं।

सफीदों दे० सर्वदेवी

सबरीमलाई (केरल)

प्राचीन स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार इसी स्थान पर वनवास-काल में भगवान् राम ने शबरी से भेंट की थी। शबरी के आश्रम की स्थिति के कारण

ही इस स्थान को सबरीमलाई कहा जाता है। यह किंवदंती अधिक विश्वसनीय नहीं जान पड़ती क्योंकि वाल्मीकि रामायण में शबरी के आश्रम को पंपासर के पास बताया गया है जो किष्किंधा के निकट था। पंपा के पास पर्वत में एक गुहा को शबरीगुफा कहा भी जाता है जो सुरावन नामक स्थान के निकट है। किष्किंधा होस्पेट तालुका, मैसूर में स्थित है। सबरीमलाई में मकर-सक्रांति के दिन केरल के लोकप्रिय देवता अयप्पन की पूजा होती है।

सबलगढ़ (तहसील नजीबाबाद, ज़िला बिजनौर, उ० प्र०)

शाहजहां के समकालीन नवाब सबलखां ने इस कस्बे को बसाया था। पुरानी गढ़ी के खंडहर आज भी यहां पाए जाते हैं।

समंगा दे० मधुविला

समंतपंचक

'प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते सनातनं राम समन्तपंचकम्, समीजिरे यत्र पुरा-दिवौकसो वरेण सत्रेण महावरप्रदाः, पुरा च राजर्षिवरेण धीमता, बहूनि वर्षाण्यमितेन तेजसा, प्रकृष्टमेतत् कुरुणा महात्मना ततः कुरुक्षेत्रमितीह पप्रथे' महा० शल्य० 53 1-2। उपर्युक्त अवतरण से विदित होता है कि महाभारत काल में समंतपंचक कुरुक्षेत्र का ही दूसरा नाम था। यह सरस्वती नदी के तट पर स्थित था तथा इसकी यात्रा बलराम ने सरस्वती के अन्य तीर्थों के साथ की थी। श्रीमद्भागवत 10,82,2 में इसका उल्लेख है—'तंज्ञात्वा मनुजा राजन् पुरस्तादेव सर्वतः, समन्तपंचकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया'। यहां श्रीकृष्ण सूर्यग्रहण के अवसर पर आए थे।

समतट

प्राचीन तथा मध्यकाल में पूर्वीबंगाल के समुद्रतटवर्ती प्रदेश का नाम। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में इस प्रदेश का उल्लेख गुप्त-साम्राज्य के प्रत्यंत देशों में है—'समतट डावक कामरूपनेपालकर्तृपुरादिप्रत्यन्तनृपतिभिः'। डावक के साथ समतट भी समुद्रगुप्त के साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर स्थित था। चीनी यात्री युवानच्वांग ने अपनी भारत-यात्रा के समय (615-645 ई०) इस स्थान में 30 बौद्ध-विहार और 100 से ऊपर देवमंदिर देखे थे। समतट-प्रदेश की राजधानी मध्यकाल में करुमंत (वर्तमान कंत) नामक स्थान पर थी जो कोमिल्ला (पूर्व पाकिस्तान) से 12 मील पश्चिम की ओर स्थित है। 10वीं शती में यहां अराकान के चंद्रवंशी राजाओं का शासन था।

समथर

बुंदेलखंड की भूतपूर्व छोटी रियासत। 1733 ई० में दतिया के राजा

इंद्रजीत के समय में दतिया की गद्दी के लिए झगड़ा हुआ था। उस समय इंद्रजीत की नन्हें शाहगूजर ने बहुत सहायता की थी जिसके उपलक्ष में इसके पुत्र मदनसिंह को समथर के किले की किलेदारी और राजधर की पदवी मिली थी। पीछे से इसके पुत्र देवीसिंह को पांच गांवों की जागीर भी दे दी गई थी। इस समय बुंदेलखंड पर मराठों की चढ़ाइयां प्रारंभ हो गई थीं और शीघ्र ही समथर के जागीरदार स्वतंत्र बन बैठे।

समनगढ़ (ज़िला आदिलाबाद, आंध्र)

यहां मुसलिम सैनिक वास्तुशैली में बना हुआ 17वीं शती का किला स्थित है।

समरकंद (दक्षिण रूस)

प्राचीन साहित्य में उल्लिखित मारकंड है।

समस्थान दे० पारदूर

समापा

अशोक के धौली-जौगड़ा शिलालेख में तोसली के साथ ही समापा का उल्लेख है। जान पड़ता है कि तोसली तो कलिंग की राजधानी थी और समापा कलिंग का एक मुख्य स्थान था। यहां स्थित महामात्रों को कड़ी चेतावनी देकर अशोक ने उन लोगों को मुक्त करने का आदेश दिया था जिन्हें इन प्रशासकों ने अकारण ही कारागार में डाल रखा था (दे० तोसली)। समापा की स्थिति संभवत: ज़िला पुरी, उड़ीसा में थी।

समुद्रतटपुरी

'कोशलान्ध्र पुंड्रताम्रलिप्तिसमुद्रतटपुरीं च देवरक्षितो रक्षिता' विष्णु० 4,24,64। इस उद्धरण में उल्लिखित समुद्रतटपुरी शायद वर्तमान जगन्नाथपुरी ही है। यहां के देवरक्षित नामक राजा का इस स्थान पर उल्लेख है।

समुद्रनिष्कुट

'इन्द्रकृष्टैर्वर्तयन्ति धान्यैर्येच नदीमुखैः समुद्रनिष्कुटेजाताः पारेसिंधु च मानवाः, ते वैरामाः पारदाश्च आभीराः कितवैः सह, विविधि बलिमादाय रत्नानि विविधानि च' महा० सभा० 51,11 अर्थात् युधिष्ठिर की राजसभा में समुद्रनिष्कुट तथा सिंधु के पार रहने वाले तथा मेघों के और नदी के जल से उत्पन्न धान्यों द्वारा जीविका प्राप्त करने वाले वैराम, पारद, आभीर तथा कितव कर के रूप में अनेक प्रकार की भेंट लेकर उपस्थित हुए। समुद्रनिष्कुट संभवत: कच्छ-काठियावाड़ (सौराष्ट्र) के छोटे-से प्रायद्वीप का नाम है। निष्कुट गृहोद्यान का पर्याय है और सौराष्ट्र प्रायद्वीप की समुद्र के भीतर

स्थिति का परिचायक है ।

समोद्भवा

=नर्मदा । (दे० हिस्टॉरिकल ज्याग्रेफी ऑव एंशेंट इंडिया, पृ० 36) । यह सोमोद्भवा का रूपांतर है ।

सम्मेतशिखर

सम्मेतशैल या सम्मेतशिखर का नामोल्लेख तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार है 'वंदेऽष्टापदगुंडरेगजपदेसम्मेतशैलाभिधे ।' [दे० पारसनाथ (2)]

सरथौली (ज़िला शाहजहांपुर, उ० प्र०)

इस स्थान से ताम्रयुगीन अवशेष प्राप्त हुए हैं ।

सरभपुर (ज़िला रायपुर, म० प्र०)

अरंग के निकट एक स्थान जो अरंग-दानपट्ट तथा रायपुर-दानपट्ट अभिलेखों के आधार पर पूर्व राष्ट्र का मुख्य नगर जान पड़ता है । ये दोनों अभिलेख गुप्तकालीन हैं । (दे० अरंग; रायपुर)

सरभू

बौद्ध-साहित्य (मिलिंदपन्हो, चूलवग्ग, विनयपिटक) में सरयू का रूपांतरित नाम ।

सरयू

अयोध्या (उ० प्र०) के निकट बहने वाली प्रसिद्ध नदी । रामायणकाल में कोसल जनपद की यह प्रमुख नदी थी, 'कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्, निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् । अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्' वाल्मीकि० 5,19 । अयोध्या से कुछ दूर पर सरयू के तट पर घना वन स्थित था जहां अयोध्या-नरेश आखेट के लिए जाया करते थे । दशरथ ने इसी वन में आखेट के समय भूल से, श्रवण का, जो सरयू से अपने अंधे माता-पिता के लिए जल लेने के लिए आया था वध कर दिया था, 'तस्मिन्नति सुखकाले धनुष्मानिषुमान्रथी व्यायामकृतसंकल्पः सरयूमन्वगां नदीम्, निपाने महिषं रात्रौगजं वाभ्यागतंमृगम्, अन्यद् वा श्वापदं किंचिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः'; 'अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम्, अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम्' अयोध्या० 63,20-21-36 । सरयू नदी का ऋग्वेद में उल्लेख है और यह कहा गया है कि यदु और तुर्वसस् ने इसे पार किया था (ऋग्० 4,30,18; 10,64,9; 5,53,9) । पाणिनि ने अष्टाध्यायी (6,4,174) में सरयू का नामोल्लेख किया है । पद्मपुराण उत्तर खंड 35-38 में इसका माहात्म्य वर्णित है । सरयू अयोध्यावासियों की बड़ी

प्रिय नदी थी । कालिदास के रघुवंश में राम सरयू को जननी के समान ही पूज्य कहते हैं—'सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूवियुक्ता, दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरुपगूहतीव' रघु० 13,63 । सरयू के तट पर अनेक यज्ञों के यूपों का वर्णन कालिदास ने रघु० 13,61 में किया है, 'जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्' । महा० अनुशासन० 155 में सरयू को मानसरोवर से निस्सृत माना गया है । अध्यात्मरामायण में भी इसी तथ्य का निर्देश है, 'एषा भागीरथी गंगा दृश्यते लोकपावनी, एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी' युद्धकांड 14,13 । सरयू मानसरोवर से निकलती है जिसका नाम ब्रह्मसर भी है । कालिदास के निम्न वर्णन (रघु० 13,60) से यह तथ्य सूचित होता है—'पयोधरैः पुण्यजनांगनानां निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः ब्राह्मंसरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति' । इस उद्धरण से यह भी जान पड़ता है कि कालिदास के समय में परंपरागत रूप में इस तथ्य की जानकारी यद्यपि थी, तो भी सरयू के उद्गम को शायद ही किसी ने देखा था । इस भौगोलिक तथ्य का ज्ञान तुलसीदास को भी था क्योंकि उन्होंने सरयू को मानस-नंदिनी कहा है (रामचरितमानस, बालकांड) । सरयू मानसरोवर से पहले कौड़याली नाम धारण करके बहती है; फिर इसका नाम सरयू और अंत में घाघरा या घर्घरा हो जाता है । सरयू छपरा (बिहार) के निकट गंगा में मिल जाती है । गंगा-सरयू संगम पर चेरान नामक प्राचीन स्थान है(इसके कुछ आगे पटना के ऊपर शोण, गंगा से मिलती है) । कालिदास ने सरयू-जाह्नवी संगम को तीर्थ बताया है । यहां दशरथ के पिता अज ने वृद्धावस्था में प्राण त्याग किए थे, 'तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वो र्देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः' रघु०8, 95 । यह तीर्थ चेरान के निकट रहा होगा । महाभारत भीष्म 9,19 में सरयू का नामोल्लेख इस प्रकार है—'रहस्यां शतकुंभां च सरयूं च तथैव च, चर्मण्वतीं वेत्रवतीं हस्तिसोमां दिशं तथा' । श्रीमद्भागवत 5,19,18 में नदियों की सूची में भी सरयू परिगणित है—'यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू' । मिलिंदपन्ह नामक बौद्धग्रंथ में सरयू को सरभू कहा गया है जो पाठांतर मात्र है ।

सरवती=शरवती दे० शरावती

सरवन

बुद्ध के समकालीन गोसाल मंखलिपुत्र का श्रावस्ती के निकट जन्म-स्थान ।

सरवार (उ० प्र०)

गोरखपुर और बस्ती ज़िलों के प्रदेश का प्राचीन नाम जो सरयूपार का

अपभ्रंश है। सरवरिया ब्राह्मण यहीं के रहने वाले माने जाते हैं। यह प्रदेश सरयू के उत्तर की ओर स्थित है।

सरस्वती

(1) प्राचीन भारत की प्रसिद्ध नदी। वैदिक काल में सरस्वती की बड़ी महिमा थी और इसे परम पवित्र नदी माना जाता था। ऋग्वेद के नदी सूक्त में सरस्वती का उल्लेख है, 'इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया' 10,75,5। सरस्वती ऋग्वेद में केवल 'नदी देवता' के रूप में वर्णित है (इसकी वंदना तीन सम्पूर्ण तथा अनेक प्रकीर्ण मंत्रों में की गई है), किंतु ब्राह्मण ग्रथों में इसे वाणी की देवी या वाच् के रूप में देखा गया और उत्तर वैदिक काल में सरस्वती को मुख्यत:, वाणी के अतिरिक्त बुद्धि या विद्या की अधिष्ठात्री देवी भी माना गया है और ब्रह्मा की पत्नी के रूप में इसकी वंदना के गीत गाये गए हैं। ऋग्वेद में सरस्वती को एक विशाल नदी के रूप में वर्णित किया गया है और इसीलिए रॉथ आदि मनीषियों का विचार था कि ऋग्वेद में सरस्वती वस्तुत: मूलरूप में सिंधु का ही अभिधान है। किंतु मेकडॉनेल्ड के अनुसार सरस्वती ऋग्वेद में कई स्थानों पर सतलज और यमुना के बीच की छोटी नदी ही के रूप में वर्णित है। सरस्वती और दृषद्वती परवर्ती काल में ब्रह्मावर्त की पूर्वी सीमा की नदियां कही गई हैं। यह छोटी-सी नदी अब राजस्थान के मरुस्थल में पहुंचकर शुष्क हो जाती है, किंतु पंजाब की नदियों के प्राचीन मार्ग के अध्ययन से कुछ भूगोलविदों का विचार है कि सरस्वती पूर्वकाल में सतलज की सहायक नदी अवश्य रही होगी और इस प्रकार वैदिक काल में यह समुद्र-गामिनी नदी थी। यह भी संभव है कि कालांतर में यह नदी दक्षिण की ओर प्रवाहित होने लगी और राजस्थान होती हुई कच्छ की खाड़ी में गिरने लगी। राजस्थान तथा गुजरात की यह नदी आज भी कई स्थानों पर दिखाई पड़ती है। सिद्धपुर इसके तट पर है। संभव है कि कुरुक्षेत्र का सन्निहत ताल और राजस्थान का प्रसिद्ध ताल पुष्कर इसी नदी के छोड़े हुए सरोवर हैं। यह नदी कई स्थानों पर लुप्त हो गई है। हॉपकिंस का मत है कि ऋग्वेद का अधिकांश भाग सरस्वती के तटवर्ती प्रदेश में (अंबाला के दक्षिण का भूभाग) रचित हुआ था। शायद यही कारण है कि सरस्वती नदी वैदिक काल में इतनी पवित्र समझी जाती थी और परवर्ती काल में तो इसको विद्या, बुद्धि तथा वाणी की देवी के रूप में माना गया। मेकडॉनल्ड का मत है कि यजुर्वेद तथा उसके ब्राह्मणग्रंथ सरस्वती और यमुना के बीच के प्रदेश में जिसे कुरुक्षेत्र भी कहते थे रचे गये थे। सामवेद के

पंचविंश ब्राह्मण (प्रौढ या तांड्य ब्राह्मण) में सरस्वती और दृषद्वती नदियों के तट पर किए गए यज्ञों का सविस्तार वर्णन है जिससे ब्राह्मणकाल में सरस्वती के प्रदेश की पुण्यभूमि के रूप में मान्यता सिद्ध होती है। शतपथ ब्राह्मण में विदेघ (=विदेह) के राजा माठव का मूल स्थान सरस्वती नदी के तट पर बताया गया है और कालांतर मे वैदिक सभ्यता का पूर्व की ओर प्रसार होने के साथ ही माठव के विदेह (बिहार) में जाकर बसने का वर्णन है। इस कथा से भी सरस्वती का तटवर्ती प्रदेश वैदिक काल की सभ्यता का मूल केंद्र प्रमाणित होता है। वाल्मीकि रामायण में भरत के केकय देश से अयोध्या आने के प्रसंग में सरस्वती और गंगा को पार करने का वर्णन है—'सरस्वतीं च गगां च युग्मेन प्रतिपद्य च, उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम्' अयो० 71,5। सरस्वती नदी के तटवर्ती सभी तीर्थों का वर्णन महाभारत में शल्यपर्व के 35 वें से 54 वें अध्याय तक सविस्तार दिया गया है। इन स्थानों की यात्रा बलराम ने की थी। जिस स्थान पर मरुभूमि में सरस्वती लुप्त हो गई थी उसे विनशन कहते थे—'ततो विनशनं राजन् जगामाथ हलायुधः शूद्राभीरान् प्रतिद्वेषाद् यत्र नष्टा सरस्वती' महा० शल्य० 37,1 इस उल्लेख में सरस्वती के लुप्त होने के स्थान के पास आभीरों का उल्लेख है। यूनानी लेखकों ने अलक्षेंद्र के समय इनका राज्य सवखर रोरी (सिंध, पाकि०) में लिखा है। इस स्थान पर प्राचीन ऐतिहासिक स्मृति के आधार पर सरस्वती को अंतर्हित भाव से बहती माना जाता था, 'ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती (दे० विनशन)। महाभारतकाल मे तत्कालीन विचारों के आधार पर यह किंवदंती प्रसिद्ध थी कि प्राचीन पवित्र नदी (सरस्वती) विनशन पहुंचकर निषाद नामक विजातियों के स्पर्श-दोष से बचने के लिए पृथ्वी में प्रवेश कर गई थी—'एतद् विनशनं नाम सरस्वत्या विशाम्पते द्वारं निषादराष्ट्रस्य येषां दोषात् सरस्वती। प्रविष्टा पृथिवीं वीर मा निषादा हि मां विदुः'। सिद्धपुर (गुजरात) सरस्वती नदी के तट पर बसा हुआ है। पास ही बिंदुसर नामक सरोवर है जो महाभारत का विनशन हो सकता है। यह सरस्वती मुख्य सरस्वती ही की धारा जान पड़ती है। यह कच्छ में गिरती है किंतु मार्ग में कई स्थानों पर लुप्त हो जाती है। 'सरस्वती' का अर्थ है सरोवरों वाली नदी जो इसके छोड़े हुए सरोवरों से सिद्ध होता है। महाभारत में अनेक स्थानों पर सरस्वती का उल्लेख है। श्रीमद्भागवत में (5,19,18) यमुना तथा दृषद्वती के साथ सरस्वती का उल्लेख है—'मंदाकिनीयमुनासरस्वतीदृषद्वती गोमतीसरयू'। मेघदूत (पूर्वमेघ 51) में कालिदास ने सरस्वती का ब्रह्मावर्त के अंतर्गत वर्णन किया है 'कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीनामन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण

कृष्ण:' । सरस्वती का नाम कालांतर में इतना प्रसिद्ध हुआ कि भारत की अनेक नदियों को इसी के नाम पर सरस्वती कहा जाने लगा (दे० नीचे) । पारसियों के धर्मग्रंथ जेंदावस्ता में सरस्वती का नाम हरहवती मिलता है ।

(2) प्रयाग के निकट गंगा-यमुना संगम में मिलने वाली एक नदी जिसका रंग लाल माना जाता था । इस नदी का कोई उल्लेख मध्यकाल के पूर्व नहीं मिलता और त्रिवेणी की कल्पना काफी बाद की जान पड़ती है। जिस प्रकार पंजाब की प्रसिद्ध सरस्वती मरुभूमि में लुप्त हो गई थी उसी प्रकार प्रयाग की ' रस्वती के विषय में भी कल्पना कर ली गई कि वह भी प्रयाग में अंतर्हित भाव से बहती है (दे० प्रयाग) । गंगा-यमुना के संगम के संबंध में केवल इन्हीं दो नदियों के संगम का वृत्तांत रामायण, महाभारत, कालिदास तथा प्राचीन पुराणों में मिलता है । परवर्ती पुराणों तथा हिंदी आदि भाषाओं के साहित्य में त्रिवेणी का उल्लेख –है ('भरत वचन सुनि मांझ त्रिवेनी, भई मृदुबानि सुमंगल देनी' —तुलसीदास) कुछ लोगों का मत है कि गंगा-यमुना की संयुक्तधारा का ही नाम सरस्वती है । अन्य लोगों का विचार है कि पहले प्रयाग में संगम-स्थल पर एक छोटी-सी नदी आकर मिलती थी जो अब लुप्त हो गई है । 19 वीं शती में, इटली के निवासी मनूची ने प्रयाग के किले की चट्टान से नीले पानी की सरस्वती नदी को निकलते देखा था । यह नदी गंगा-यमुना के संगम में ही मिल जाती थी । (दे० मनूची, जिल्द 3, पृ० 75.)

(3) (सौराष्ट्र) प्रभास पाटन के पूर्व की ओर बहने वाली छोटी नदी जो कपिला में मिलती है । कपिला हिरण्या की सहायक नदी है जो दोनों का जल लेती हुई प्राची सरस्वती में मिलकर समुद्र में गिरती है ।

(4) (महाराष्ट्र) कृष्णा की सहायक पंचगंगा की एक शाखा । कृष्णा-पंचगंगा संगम पर अमरपुर नामक प्राचीन तीर्थ है ।

(5) (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) एक छोटी पहाड़ी नदी जो बदरीनारायण में वसुधारा जाते समय मिलती है । सरस्वती और अलकनंदा (गंगा) के संगम पर केशवप्रयाग स्थित है ।

(6) (बिहार) राजगीर, (राजगृह) के समीप बहने वाली नदी जो प्राचीन काल में तपोदा कहलाती थी । इस सरिता में उष्ण जल के स्रोत थे । इसी कारण यह तपोदा नाम से प्रसिद्ध थी । तपोद तीर्थ का, जो इस नदी के तट पर था, महाभारत वनपर्व में उल्लेख है । गौतमबुद्ध के समय तपोदाराम नामक उद्यान इसी नदी के तट पर स्थित था । मगध-सम्राट् बिंदुसार प्रायः इस नदी में स्नान करते थे । (दे० तपोदा)

(7) केरल की एक नदी जिसके तट पर होनावर स्थित है।
(8)=प्राची सरस्वती

(9) (ज़िला परभणी, महाराष्ट्र) एक छोटी नदी जो पूर्णा की सहायक है। सरस्वती-पूर्णा संगम पर एक प्राचीन सुंदर मंदिर स्थित है।

सरस्वतीपत्तन (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

शिवपुरी के निकट वनप्रांतर में स्थित है। सुरवाया ग्राम के निकट गढ़ी में पूर्वकाल में किसी धार्मिक सम्प्रदाय के साधुओं का निवास-स्थान था। गढ़ी के अंतर्गत अनेक मध्यकालीन मंदिर हैं जिनमें शिखर का अभाव उल्लेखनीय है। इनकी छतों में कहीं-कहीं अपूर्व मूर्तिकारी दिखाई पड़ती है। सुरवाया ग्राम ही प्राचीन सरस्वतीपत्तन कहा जाता है।

सरहिंद (पूर्व पंजाब)

पूर्व मध्यकालीन नगर है। दिल्ली पर अधिकार करने के लिए सरहिंद को विदेशी आक्रमणकारी महत्त्वपूर्ण नाका समझते थे। शाहबुद्दीन गौरी ने इस नगर को 1192 ई० में जीता था किंतु तत्पश्चात् पृथ्वीराज चौहान ने इसे उसकी सेनाओं से छीन लिया। औरंगज़ेब के शासनकाल में सरहिंद के सूबेदारों ने सिखों के दसवें गुरु गोविंदसिंह के दो पुत्रों को मुसलमान न बनने के कारण जीवित ही दीवार में चुनवा दिया था। फलस्वरूप 1761 में सिक्खों ने नगर को मुसलमानों से छीन कर नष्ट कर दिया। उपर्युक्त घटना के पश्चात् सरहिंद सिक्खों के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया और प्रत्येक सिक्ख यहां की ईंटों को घर ले जाना धार्मिक कृत्य समझने लगा। सरहिंद का परिवर्ती क्षेत्र वैदिक काल में सरस्वती नदी के तटवर्ती प्रदेश के अंतर्गत था। यह आर्य सभ्यता की मुख्य पुण्यभूमि मानी जाती थी। (दे० सैरध्र, सैरींध्र)

सरहिंद (नदी) दे० शरदंडा

सरहुत (ज़िला, बांदा, उ० प्र०)

पाषाणयुगीन शिला-चित्रकारी के उदाहरण इस स्थान के निकटवर्ती वन-प्रदेश से प्राप्त हुए हैं।

सरालक

पाणिनि की अष्टाध्यायी 4,3,93 में उल्लिखित है। यह स्थान संभवतः ज़िला लुधियाना (पंजाब) में स्थित सहराल है।

सरिसावा (जिला दरभंगा, बिहार)

लोहना के निकट एक ग्राम जिसे वाचस्पति मिश्र, शंकर मिश्र, भूतनाथ मिश्र प्रभृति दार्शनिक विद्वानों का जन्मस्थान कहा जाता है।

सरीला (बुंदेलखण्ड)

अंग्रेजी शासन काल के अंत तक एक छोटी सी रियासत थी। महाराज छत्रसाल के पौत्र पहाड़सिंह को विरासत में जैतपुर का राज्य मिला था। पहाड़-सिंह के पुत्र गजसिंह ने जैतपुर की रियासत में से सरीला अपने भाई अमानसिंह को जागीर में दिया था। कालांतर में यहां स्वतन्त्र रियासत स्थापित हो गई।

सर्पदेवी=दे० सर्वदेवी

सर्राघाट दे० सौगंधिक वन

सर्वतीर्थ

वाल्मीकि-रामायण अयोध्या० 71,14 में वर्णित एक स्थान जहां केकय से अयोध्या आते समय भरत कुछ समय के लिए ठहरे थे—'वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तरगां नदीम् अन्यानदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरंगमैः'। इससे सूचित होता है कि सर्वतीर्थ किसी उत्तर की ओर बहने वाली नदी के तट पर बसा हुआ था। यह उज्जिहाना नगरी के पूर्व में स्थित था।

सर्वदेवी

महाभारत, वन० 83,14,15 में वर्णित तीर्थ (पाठांतर सर्पदेवी)। 'सर्वदेवी समासाद्य नागानां तीर्थमुत्तमम्। अग्निष्टोमपवाप्नोति नागलोकं च विन्दति। ततोगच्छेत् धर्मज्ञ द्वारपालं तरन्तुकम्'। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के मत में यह वर्तमान सफीदों (पश्चिमी पाकिस्तान) है। द्वारपाल शब्द संभवतः खैबर के दर्रे के लिए प्रयुक्त हुआ है। द्वारपाल का उल्लेख सभा० 32,12 में भी पश्चि-मोत्तर में स्थित प्रदेशों के साथ है। सफीदों सर्वदेवी का ही फारसी रूपांतरण प्रतीत होता है।

सर्वर्तुक

रैवतक पर्वत के निकट स्थित वनोद्यान—'चित्रकम्बलवर्णाभं पांचजन्यवनं तथा, सर्वर्तुकवनं चैव भाति रैवतकं प्रति' महा० सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ। यह वन द्वारका के समीप था।

सलहेरि

सलहेरि का किला सूरत के निकट स्थित था। शिवाजी के प्रधान सेनापति मोरोपत ने इसे 1671 ई० में जीत लिया था। 1672 में दिल्ली के सेनापति दिलेरखां ने इसे घेर लिया और मराठा तथा मुगल-सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। मुगलसेना की बुरी तरह से हार हुई और वह तितर-बितर हो गई। मुगलों के मुख्य सेनानायकों में से 22 मारे गए और अनेक बंदी हुए। महाकवि भूषण ने शिवराज भूषण में कई स्थानों पर इस युद्ध का उल्लेख किया है—

'साहितनै सरजा खुमान सलहेरिपास किन्ही कुरुखेत खीभि मीर अचलनसी' छंद, 96। इसी युद्ध में मुगलों की ओर से लड़ने वाला अमरसिंह चंदावत भी मारा गया था जिसका उल्लेख उपर्युक्त छंद में इस प्रकार है, 'अमर के नाम के बहाने गो अमनपुर, चंदावत लरि सिवराज के बलन सों'।

सलातुर=शलातुर

सलिलराज

सिंध नदी के समुद्र में गिरने का स्थान (दे० महा० वन०42; पद्मपुराण स्वर्ग 11)।

सलीमगढ़

दिल्ली में यमुना के पुल के निकट स्थित है। इस क़िले की स्थापना 1546 ई० में शेरशाह के पुत्र सलीमशाह ने हुमायूं के आक्रमणों को रोकने के लिए की थी। शाहजहां ने दिल्ली का प्रसिद्ध लालकिला, सलीमगढ़ के किले के दक्षिण में बनवाया था।

सलेमाबाद दे० परशुरामपुरी

सवाईमाधोसिंह (राजस्थान)

सवाईमाधोसिंह नाम के स्टेशन के निकट ही यह पुराना नगर बसा हुआ है। इसे जयपुर नरेश सवाई माधोसिंह ने बसाया था। ऐसा प्रतीत होता है कि रणथंभोर का प्रसिद्ध गढ़ हाथ आने पर ही इसके निकट यह नगर महाराज ने बसाया था। प्राचीन नगर यद्यपि अब जीर्णशीर्ण दशा में है किंतु बसाया यह काफी विस्तार से गया था। रणथंभोर का इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग यहां से प्राय: छ: मीलदूर है। सवाई माधोपुर में तीन जैन मंदिर और एक चैत्यालय है।

ससोई=शशिमती

सहजाति (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०)

इस बौद्धकालीन नगर का अभिज्ञान वर्तमान भीटा नामक कस्बे के साथ किया गया है। बौद्धकाल के अनेक अवशेष इस स्थान से प्राप्त हुए हैं। एक मुहर पर 'सहजातिये निगमस' शब्द अंकित है जिससे इस स्थान का प्राचीन काल में व्यापारिक महत्त्व सिद्ध होता है। (दे० रिपोर्ट, पुरातत्व विभाग 1911-12, पृ० 38) निगम व्यापारिक संघ को कहते थे। राइस डेवीज़ के अनुसार सहजाति गंगा नदी के तट पर व्यापारिक नगर था। (बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० 103) अंगुत्तरनिकाय नामक पाली ग्रंथ में इस नगर को चेदि (पाली चेति) जनपद का नगर बताया गया है—'आयस्मा महाचुंडो चेतिसु विहरति सहजातियम्'। महावंश 4,23 में भी सहजाति का उल्लेख है।
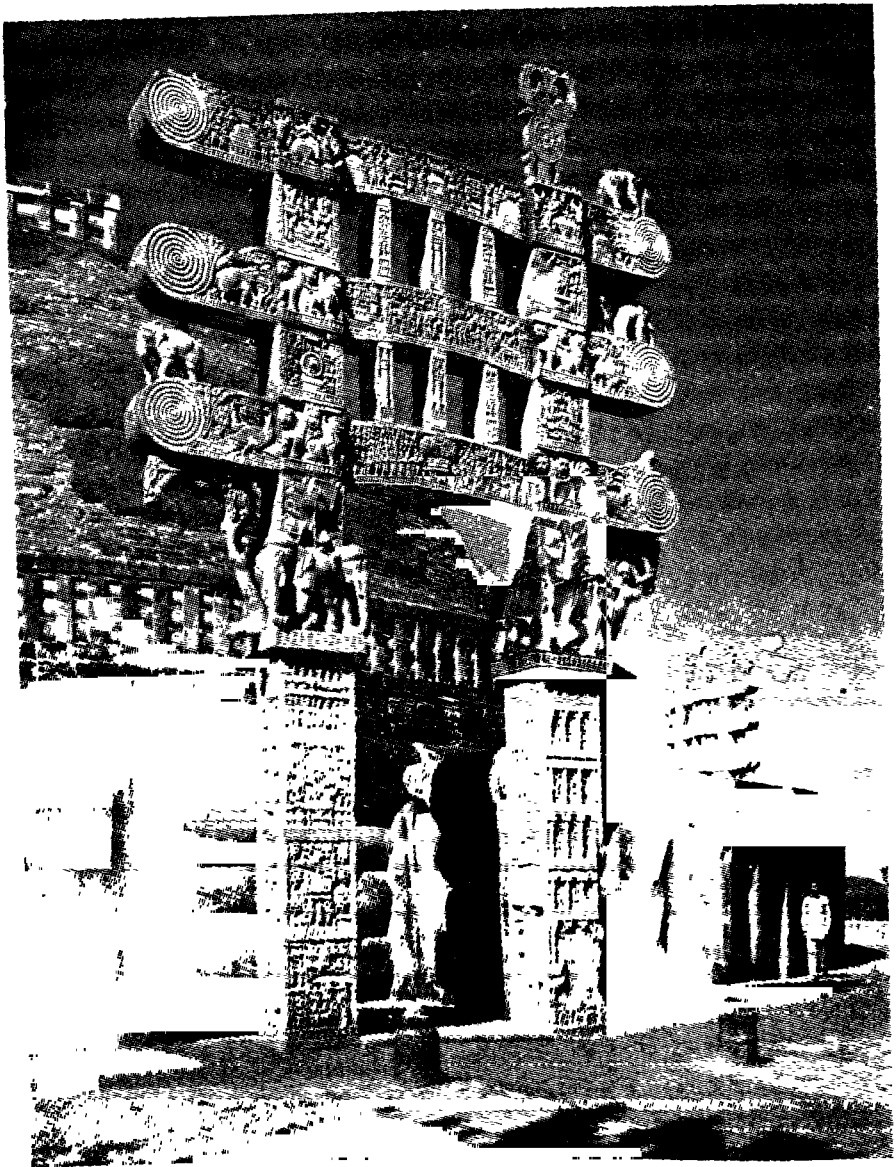
सांची स्तूप का पूर्वी तोरण-द्वार
(भारतीय पुरातत्त्व-विभाग के सौजन्य से)

सहनकोट दे० रुद्रपुर

सहवइया पथरी दे० लहोरियादह

सहराल दे० सरालक

सहलाटवी

आटविक (अटवी) प्रदेश का एक भाग जिसका उल्लेख लूडर्स की लिस्ट के अभिलेख सं० 1995 में है।

सहसराम (तहसील और जिला शाहाबाद, बिहार)

सहसराम में दिल्ली के सुलतान शेरशाह सूरी (1540-1545 ई०) तथा उसके पिता के मकबरे स्थित हैं। शेरशाह का जन्मस्थान सहसराम ही है। उसका मक़बरा एक विस्तीर्ण तड़ाग के अंदर बना है। यह भवन अठकोण है। इसमें एक बाहरी बरामदा है। गुंबद भीतरी दीवारों पर आधृत है। मक़बरे के चारों ओर एक वर्गाकार चबूतरा है जिसके कोनों पर छोटे-छोटे मंडप बने हुए हैं। गुंबद के शीर्ष के चतुर्दिक् अठकोणस्तभाकार रचनाएं हैं जिससे मक़बरे की बहीरेखा की सुंदरता द्विगुणित हो जाती है। सहसराम के पूर्व की ओर चंदनपीर की पहाड़ी की एक गुफा में अशोक का लघु शिलालेख सं० 1 उत्कीर्ण है।

सहसवां (ज़िला बदायूं)

प्राचीन नाम सहस्रबाहुनगर कहा जाता है।

सहस्रधारा (ज़िला मांडला, म० प्र०)

नर्मदा नदी के प्रपात के कारण उल्लेखनीय है। कहा जाता है इसी स्थान पर सहस्रबाहु ने नर्मदा के प्रवाह को अपनी हज़ार बाहुओं से रोक लिया था।

सहस्रबाहुनगर=सहसवां

सहस्रावर्त (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

नर्मदा के तट पर प्राचीन तीर्थ है। इसका वर्तमान नाम सुनाचार घाट है। सहस्रावर्त का शाब्दिक अर्थ सहस्र भंवरों वाला स्थान है जो नदी की गंभीरता को प्रकट करता है।

सहेठ-महेठ दे० श्रावस्ती

सह्‌य=सह्याद्रि

पश्चिमी घाट की पर्वत-शृंखला। सह्य की गिनती पुराणों में उल्लिखित सप्तकुलपर्वतों में की गई है—'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः विन्ध्यश्च पारियात्रश्चसप्तैते कुलपर्वताः' विष्णु० 2,3,3। विष्णु० 2,3,12 में गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा (कृष्णा) आदि नदियों को सह्याद्रि से निस्सृत माना है—

'गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा सह्यपादोद्भूताः नद्यः स्मृताः पापभयापहाः'। सप्तकुलपर्वतों का परिचायक उपर्युक्त श्लोक महाभारत (भीष्म० 9,11) में भी ठीक इसी प्रकार दिया हुआ है। श्रीमद्भागवत 5,19,16 में सह्य की गणना अन्य भारतीय पर्वतों के साथ की गई है—'मलयो मंगलप्रस्थो-मैनाकस्त्रिकूटऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः'। रघुवंश 4, 52,53 में सह्याद्रि का उल्लेख रघु की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में है—'असह्य विक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलंघयत्, तस्यानीकै विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न। इवार्णवः' इस उद्धरण में सह्याद्रि का अपरान्त की विजय के संबंध में वर्णन किया गया है। श्री चि० वि० वैद्य के अनुसार सह्याद्रि का विस्तार त्र्यंबकेश्वर (नासिक के समीप पर्वत) से मलाबार तक माना गया है। इसके दक्षिण में मलय-गिरिमाल स्थित है। वाल्मीकि युद्ध० 4,94 में सह्य तथा मलय का उल्लेख है, 'ते सह्यं समतिक्रम्य मलयंच महागिरिम्, आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिः-स्वनम्'।

सांक

ग्वालियर (म० प्र०) के निकट बहने वाली एक नदी जो ग्वालियर के प्रसिद्ध तोमर नरेश मानसिंह (15 वीं शती) की रानी मृगनयनी के जन्मस्थान राई नामक ग्राम के पास बहती थी। ग्वालियर के प्रदेश की लोक-कथाओं में मृगनयनी के संबंध में सांक का भी उल्लेख मिलता है। उसे यह नदी बहुत प्रिय थी।

सांकाश्य

(1) प्राचीन भारत मे पंचाल जनपद का प्रसिद्ध नगर जो वर्तमान संकिसा-बसंतपुर (जिला एटा, उ० प्र०) है। यह फर्रुखाबाद के निकट स्थित है। सांकाश्य का सर्वप्रथम उल्लेख संभवतः वाल्मीकि आदि० 71,16-19 में है जहां सांकाश्य-नरेश सुधन्वा का जनक की राजधानी मिथिला पर आक्रमण करने का उल्लेख है। सुधन्वा सीता से विवाह करने का इच्छुक था। जनक के साथ युद्ध में सुधन्वा मारा गया तथा सांकाश्य के राज्य का शासक जनक ने अपने भाई कुशध्वज को बना दिया। उर्मिला इन्हीं कुशध्वज की पुत्री थी, 'कस्यचित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात, सुधन्वा वीर्यवान् राजा मिथिलामवरोधकः। निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम्, सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम्'। महाभारत-काल में सांकाश्य की स्थिति पूर्व पंचालदेश में थी और यह नगर पंचाल की राजधानी कांपिल्य से अधिक दूर नहीं था। गौतम

बुद्ध के जीवन काल में सांकाश्य ख्यातिप्राप्त नगर था। पाली कथाओं के अनुसार यहीं बुद्ध त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से अवतरित होकर आए थे। इस स्वर्ग में वे अपनी माता तथा तैंतीस देवताओं को अभिधम्म की शिक्षा देने गए थे। पाली-दंतकथाओं के अनुसार बुद्ध तीन सीढ़ियों द्वारा स्वर्ग से उतरे थे और उनके साथ ब्रह्मा और शक्र भी थे। इस घटना से संबंध होने के कारण बौद्ध, सांकाश्य को पवित्र तीर्थ मानते थे और इसी कारण यहां अनेक स्तूप एवं विहार आदि का निमाण हुआ था। यह उनके जीवन की चार आश्चर्यजनक घटनाओं में से एक मानी जाती है। सांकाश्य ही में बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्य आनंद के कहने से स्त्रियों की प्रव्रज्या पर लगाई हुई रोक को तोड़ा था और भिक्षुणी उत्पलवर्णा को दीक्षा देकर स्त्रियों के लिए भी बौद्ध संघ का द्वार खोल दिया था। पालि-ग्रंथ अभिधानप्पदीपिका में संकस्स (सांकाश्य) की उत्तरी भारत के बीस प्रमुख नगरों में गणना की गई है। पाणिनि ने 4,2,80 में सांकाश्य की स्थिति इक्षुमती नदी पर कही है जो संकिसा के पास बहने वाली ईखन है। 5 वीं शती में चीनी यात्री फाह्यान ने संकिसा के जनपद के संख्यातीत बौद्ध विहारों का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि यहां इतने अधिक विहार थे कि कोई मनुष्य एक-दो दिन ठहर कर तो उनकी गिनती भी नहीं कर सकता था। संकिसा के संघाराम में उस समय छः या सात सौ भिक्षुओं का निवास था। युवानच्वांग ने 7वीं शती में, सांकाश्य में स्थित एक 70 फुट ऊंचे स्तंभ का उल्लेख किया है जिसे राजा अशोक ने बनवाया था। इसका रंग बैंजनी था। यह इतना चमकदार था कि जल में भीगा सा जान पड़ता था। स्तंभ के शीर्ष पर सिंह की विशाल प्रतिमा जटित थी जिसका मुख राजाओं द्वारा बनाई हुई सीढ़ियों की ओर था। इस स्तंभ पर चित्र-विचित्र रचनायें बनी थीं जो बौद्धों के विश्वास के अनुसार केवल साधु पुरुषों को ही दिखलाई देती थीं। चीनी-यात्री ने इस स्तभ का जो वर्णन किया है वह वास्तव में अद्भुत है। यह स्तंभ सांकाश्य की खुदाई में अभी तक नहीं मिला है। विषहरी देवी के मंदिर के पास जो स्तंभ-शीर्ष रखा है वह सम्भवतः एक विशाल हाथी की प्रतिमा है न कि सिंह की और इस प्रकार इसका अशोकस्तंभ का शीर्ष होना संदिग्ध है। युवांगच्वांग ने सांकाश्य का नाम कपित्थ भी लिखा है। संकिसा के उत्तर की ओर एक स्थान कारेवर तथा नागताल नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन किंवदंती के अनुसार कारेवर एक विशाल सर्प का नाम था। लोग उसकी पूजा करते थे और इस प्रकार उसकी कृपा से आसपास का क्षेत्र सुरक्षित रहता था। ताल के चिह्न आज भी है। इसकी परिक्रमा बौद्ध यात्री करते हैं। जैन मतावलंबी

सांकाश्य को तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ की ज्ञान-प्राप्ति का स्थान मानते हैं। संकिसा ग्राम आजकल एक ऊंचे टीले पर स्थित है। इसके आस-पास अनेक टीले हैं जिन्हें कोटपाकर, कोटमुझा, कोटद्वारा, ताराटीला, गौंसरताल आदि नामों से अभिहित किया जाता है। इसका उत्खनन होने पर इस स्थान से अनेक बहुमूल्य प्राचीन अवशेषों के प्राप्त होने की आशा है। प्राचीन सांकाश्य पर्याप्त बड़ा नगर रहा होगा क्योंकि इसकी नगर-भित्ति के अवशेष जो आज भी वर्तमान हैं, प्रायः 4 मील के घेरे में हैं।

(2) (बर्मा) ब्रह्मदेश का प्राचीन भारतीय नगर। इस देश में अति प्राचीन समय से लेकर मध्यकाल तक अनेक भारतीय उपनिवेशों को बसाया गया जहां हिंदू एवं बौद्ध नरेशों का राज्य था। संकाश्य या सांकाश्य नामक नगर, संभवतः भारत के इसी नाम से प्रसिद्ध प्राचीन नगर के नाम पर बसाया गया था।

सांख (ज़िला फतहपुर, उ० प्र०)

यह ग्राम बौद्धकालीन जान पड़ता है। यहां पांच प्राचीन मठ हैं जिनमें से एक बौधायन के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। संभव है यह सांख वही स्थान है जिसका उल्लेख चीनी यात्री फाह्यान ने अपने यात्रा-वृत्त में किया है।

सांगल

यह नगर अलक्षेंद्र को अपने भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पू०) रावी नदी को पार करने पर, 3 दिन की यात्रा के पश्चात् मिला था। नगर एक परकोटे के अंदर स्थित था। इसी स्थान पर कठ आदि कई गणतंत्र-राज्यों ने मिलकर अलक्षेंद्र का डटकर सामना किया था। इस स्थान का अभिज्ञान अभी तक ठीक प्रकार से नहीं किया जा सका है। कनिंघम ने इस आधार पर कि शाकल और सांगल एक ही हैं, संगलटिब्बा से इसका अभिज्ञान किया था किंतु 'रिपोर्ट ऑन-संगलटिब्बा' (न्यूजप्रेस लाहौर, 1906) में सी० जी० रोजर्स ने इस अभिज्ञान को गलत साबित किया था। स्मिथ के अनुसार यह स्थान गुरुदासपुर जिले में रहा होगा। इस नगर को अलक्षेंद्र की सेना ने पूर्णरूपेण विध्वंस कर दिया था इसलिए उसके अवशेष मिलने की कोई संभावना नहीं है (दे० शाकल)। कैंब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया, जिल्द 1, पृ० 371 में सांगल की स्थिति अमृतसर से पूर्व वर्तमान जांदियाल के पास मानी गई है। श्री वा० श० अग्रवाल के मत में पाणिनि ने 4-2-75 में इसी का संकल नाम से उल्लेख किया है।

साँची (म० प्र०)

यह प्रसिद्ध स्थान, जहां अशोक द्वारा निर्मित एक महान् स्तूप, शुंगों के शासनकाल में निर्मित इस स्तूप के भव्य तोरणद्वार तथा उन पर की गई जगत्-प्रसिद्ध मूर्तिकारी भारत के प्राचीन वास्तु तथा मूर्तिकला के सर्वोत्तम उदाहरणों में हैं, बौद्धकाल की प्रसिद्ध ऐश्वर्यशालिनी नगरी विदिशा (भीलसा) के निकट स्थित है। जान पड़ता है कि बौद्धकाल में साँची, महानगरी विदिशा की उपनगरी तथा विहार-स्थली थी। सर जॉन मार्शल के मत में (दे० ए गाइड टु साँची) कालिदास ने नीचगिरि नाम से जिस स्थान का वर्णन मेघदूत में विदिशा के निकट किया है, वह साँची की पहाड़ी ही है।

कहा जाता है कि अशोक ने अपनी प्रिय पत्नी देवी के कहने पर ही साँची में यह सुंदर स्तूप बनवाया था। देवी, विदिशा के एक श्रेष्ठी की पुत्री थी और अशोक ने उस समत उससे विवाह किया था जब वह अपने पिता के राज्यकाल में विदिशा का कुमारामात्य था।

यह स्तूप एक ऊंची पहाड़ी पर निर्मित है। इसके चारों ओर सुंदर परिक्रमा-पथ है। बालु-प्रस्तर के बने चार तोरण स्तूप के चतुर्दिक् स्थित हैं जिन के लंबे-लंबे पट्टकों पर बुद्ध के जीवन से संबंधित, विशेषत: जातकों में वर्णित कथाओं का मूर्तिकारी के रूप मे अद्भुत अंकन किया गया है। इस मूर्तिकारी में प्राचीन भारतीय जीवन के सभी रूपों का दिग्दर्शन किया गया है। मनुष्यों के अतिरिक्त पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधों के जीवंत चित्र इस कला की मुख्य विशेषता हैं। सरल तथा सामान्य सौंदर्य की उद्भावना ही साँची की मूर्तिकला की प्रेरणात्मक शक्ति है। इस मूर्तिकारी में गौतम बुद्ध की मूर्ति नहीं पाई जाती क्योंकि उस समय तक (शुंग काल, द्वितीय शती ई० पू०) बुद्ध को देवता के रूप में मूर्ति बनाकर नहीं पूजा जाता था। कनिष्क के काल मे महायान धर्म के उदय होने के साथ ही बौद्ध धर्म में गौतम बुद्ध की मूर्ति का प्रवेश हुआ। साँची म बुद्ध की उपस्थिति का आभास उनके कुछ विशिष्ट प्रतीकों द्वारा किया गया है, जैसे उनके गृहपरित्याग का चित्रण अश्वारोही से रहित, केवल दौड़ते हुए घोड़े के द्वारा, जिस पर एक छत्र स्थापित है, किया गया है। इसी प्रकार बुद्ध की संबोधि का आभास पीपल के वृक्ष के नीचे खाली वज्रासन द्वारा दिया गया है। पशु-पक्षियों के चित्रण में साँची का एक मूर्तिचित्र अतीव मनोहर है। इसमें जानवरों के एक चिकित्सालय का चित्रण है जहां एक तोते की विकृत आँख का एक वानर मनोरंजक ढंग से परीक्षण कर रहा है। तपस्वी बुद्ध को एक वानर द्वारा दिए गए पायस का चित्रण भी अद्भुत रूप से किया गया है।

एक कटोरे में खीर लिए हुए एक वानर का अश्वत्थ वृक्ष के नीचे वज्रासन के निकट धीरे-धीरे आने तथा खाली कटोरा लेकर लौट जाने का अंकन है जिसमें वास्तविकता का भाव दिखाने के लिए उसी वानर की लगातार कई प्रतिमाएं चित्रित हैं। साँची की मूर्तिकला दक्षिण भारत की अमरावती की मूर्तिकला की भांति ही पूर्व बौद्ध कालीन भारत के सामान्य तथा सरल जीवन की मनोहर झांकी प्रस्तुत करती है। सांची के इस स्तूप में से उत्खनन द्वारा सारिपुत्र तथा मोग्गलायन नामक भिक्षुओं के अस्थिअवशेष प्राप्त हुए थे जो अब स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। सांची में अशोक के समय का एक दूसरा छोटा स्तूप भी है: इसमें तोरण-द्वार नहीं हैं। अशोक का एक प्रस्तर-स्तंभ जिस पर मौर्य सम्राट् का शिलालेख उत्कीर्ण है यहां के महत्त्वपूर्ण स्मारकों में से है। यह स्तंभ भग्नावस्था में प्राप्त हुआ था।

साँची से मिलने वाले कई अभिलेखों में इस स्थान को काकनादबोट नाम से अभिहित किया गया है। इनमें से प्रमुख 131 गुप्त संवत् (=450-51) ई० का है जो कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल से संबंधित है। इसमें बौद्ध उपासक सनसिद्ध की पत्नी उपासिका हरिस्वामिनी द्वारा काकनादबोट में स्थित आर्यसंघ के नाम कुछ धन के दान मे दिए जाने का उल्लेख है। एक अन्य लेख एक स्तंभ पर उत्कीर्ण है जिसका संबंध गोसुरसिंहबल के पुत्र विहारस्वामिन् से है। यह भी गुप्तकालीन है।

सांभर दे० शांकभरी

साकित (ज़िला एटा, उ० प्र०)

यह स्थान सकतदेव चौहान का बसाया हुआ है। 1285 ई० में यहां बलबन ने मसजिद बनवाई थी।

साकेत

अयोध्या (उ० प्र०) के निकट, पूर्व-बौद्धकाल में बसा हुआ नगर जो अयोध्या का एक उपनगर था। वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि श्रीराम के स्वर्गारोहण के पश्चात् अयोध्या उजाड़ हो गई थी। जान पड़ता है कि कालांतर में, इस नगरी के, गुप्तकाल में फिर से बसने के पूर्व ही साकेत नामक उपनगर स्थापित हो गया था। वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत के प्राचीन भाग में साकेत का नाम नहीं है। बौद्ध साहित्य में अधिकतर, अयोध्या के उल्लेख के बजाय सर्वत्र साकेत का ही उल्लेख मिलता है, यद्यपि दोनों नगरियों का साथ-साथ वर्णन भी है (दे० राइस डेवीज—बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० 39)। गुप्तकाल में साकेत तथा अयोध्या दोनों ही का नाम मिलता है। इस समय तक

अयोध्या पुनः बस गई थी और चंद्रगुप्त द्वितीय ने यहां अपनी राजधानी भी बनाई थी। कुछ लोगों के मत में बौद्धकाल में साकेत तथा अयोध्या दोनों पर्यायवाची नाम थे किंतु यह सत्य नहीं जान पड़ता। अयोध्या की प्राचीन बस्ती इस समय भी रही होगी किंतु उजाड़ होने के कारण उसका पूर्वगौरव विलुप्त हो गया था। वेबर के अनुसार साकेत नाम के कई नगर थे (इंडियन एंटिक्वेरी, 2, 208)। कनिंघम ने साकेत का अभिज्ञान फाह्यान के शाचे (Shache) और युवानच्वांग की विशाखा नगरी से किया है किंतु अब यह अभिज्ञान अशुद्ध प्रमाणित हो चुका है। सब बातों का निष्कर्ष यह जान पड़ता है कि अयोध्या की रामायणकालीन बस्ती के उजड़ जाने के पश्चात् बौद्धकाल के प्रारंभ में (6ठी-5वीं शती ई० पू०) साकेत नामक अयोध्या का एक उपनगर बस गया था जो गुप्तकाल तक प्रसिद्ध रहा और हिंदू धर्म के उत्कर्षकाल में अयोध्या की बस्ती फिर से बस जाने के पश्चात् धीरे-धीरे उसी का अंग बन कर अपना पृथक् अस्तित्व खो बैठा। ऐतिहासिक दृष्टि से साकेत का सर्वप्रथम उल्लेख शायद बौद्ध जातककथाओं में मिलता है। नंदियमिग जातक में साकेत को कोसल-राज की राजधानी बताया गया है। महावग्ग 7,11 में साकेत को श्रावस्ती से 6 कोस दूर बताया गया है। पतंजलि ने द्वितीय शती ई० पू० में साकेत में ग्रीक (यवन) आक्रमणकारियों का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा साकेत के आक्रांत होने का वर्णन किया है, 'अरुनद् यवनः साकेतम् अरुनद् यवनो मध्यमिकाम्'। अधिकांश विद्वानों के मत में पतंजलि ने यहां मेनेंडर (बौद्ध साहित्य का मिलिंद) के भारत-आक्रमण का उल्लेख किया है। कालिदास ने रघुवंश 5,31 में रघु की राजधानी को साकेत कहा है—'जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्य सत्वौ, गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च'। रघु० 13,62 में राम की राजधानी के निवासियों को साकेत नाम से अभिहित किया गया है 'यां सैकतोत्संगसुखोचितानाम्'। रघु० 13,79 में साकेत के उपवन का उल्लेख है जिसमें लंका से लौटने के पश्चात् श्रीराम को ठहराया गया था—'साकेतोपवनमुदारमध्युवास'। रघु० 14,13 में साकेत की पुरनारियों का वर्णन है—'प्रासादवातायनदृश्यबंधैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः'। उपर्युक्त उद्धरणों से जान पड़ता है कि कालिदास ने अयोध्या और साकेत को एक ही नगरी माना है। यह स्थिति गुप्तकाल अथवा कालिदास के समय में वास्तविक रूप में रही होगी क्योंकि इस समय तक अयोध्या की नई बस्ती फिर से बस चुकी थी और बौद्धकाल का साकेत इसी में सम्मिलित हो गया था। कालिदास ने अयोध्या का तो अनेक स्थानों पर उल्लेख किया ही है (दे० **अयोध्या**)।

आनुषांगिक रूप से, इस तथ्य से, कालिदास का समय गुप्तकाल ही सिद्ध होता है।

सागर

(1) (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर) बहमनी और आदिलशाही शासनकाल में सागर की राजनैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से दक्षिण के महत्त्वपूर्ण नगरों में गिनती थी जैसा कि यहां की विशिष्ट दुर्गरचनाओं, प्रवेशद्वारों, दरगाहों तथा विशाल जामा मसजिद के अवशेष से ज्ञात होता है।

(2) (म० प्र०) दक्षिण बुंदेलखंड के एक भाग पर मुगलकाल में कुछ समय तक निहालसिंह राजपूत के वंशजों का राज्य रहा था। इसी वंश के नरेश उदानशाह ने 1650 ई० में सागर नगर बसाया था। कहा जाता है कि सागर के पास का परकोटा नामक ग्राम भी इसी ने बसाया था। गढ़पहरा नामक नगर छत्रसाल के आक्रमण के पश्चात् उजाड़ हो गया था और वहां के निवासी सागर आकर बस गए थे।

सागरकुक्षि

'ततः सागरकुक्षिस्थान् म्लेच्छान् परमदारुणान् पह्लवान् बर्बरांश्चैव किरातान् यवनाञ्छकान्। ततो रत्नान्युपादाय वशे कृत्वा च पार्थिवान् न्यवर्तत कुरुश्रेष्ठो नकुलश्चित्रमार्गवित्' महा० सभा० 32,16-17। नकुल ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में सागरकुक्षि में स्थित म्लेच्छ तथा बर्बरों को परास्त किया था। यह स्थान सिंधु नदी के मुहाने के निकट का प्रदेश हो सकता है (श्री. वा. श. अग्रवाल)। इसका अभिज्ञान इस मुहाने के निकट छोटे-छोटे टापुओं से किया जा सकता है, जो कराची (पाकिस्तान) के निकट समुद्र में स्थित हैं। (दे० सागरद्वीप)

सागरद्वीप

'ततः शूर्पारकं चैव तालाकटमथापि च, वशेचक्रे महातेजा दंडकांश्च महाबलः, सागरद्वीपवासांश्च नृपतीन् म्लेच्छयोनिजान्, निषादान् पुरुषादांश्च कर्णप्रावरणानपि' महा० 31,66। सागरद्वीप-निवासियों और निषाद आदि विजातियों पर अपनी दिग्विजय-यात्रा में सहदेव ने विजय प्राप्त की थी। रायचौधरी के मत में यह सिंध का दक्षिणी समुद्रतट या कच्छ हो सकता है। शायद इसी का उल्लेख यूनानी लेखकों (स्ट्रैबो) ने साइगर्डिस (Siegerdis) के नाम से किया है जो सागरद्वीप का ग्रीक रूपांतरण जान पड़ता है।

सागलनगर दे० शाकल

साचौर=सत्यपुर

साणा (सौराष्ट्र, बंबई)

साणा प्राचीन बर्बर जनपद या वर्तमान बावारियावाड़ के अंतर्गत स्थित है। यहां एक पहाड़ी में कटी हुई 62 गुफाएं हैं जो संभवत: जैन भिक्षुओं के निवास के लिए निर्मित की गई थीं।

सातगांव (ज़िला हुगली, पश्चिम बंगाल)

प्रारंभिक ई० शतियों में रोम के साथ व्यापार के लिए यह बंदरगाह प्रसिद्ध था। रोमन इसे गंगा की राजधानी (Ganges regia) कहते थे।

सातहनिरट्ठ=शातवाहन राष्ट्र

सादापुरवेदक

ज़िला मेदक (आंध्र) का मध्यकालीन नाम। गोलकुंडा-नरेशों के शासन-काल में बदल कर यह नाम गुलशनाबाद कर दिया गया था। हैदराबाद के शासकों के समय इसका नाम पुन: एक बार बदल गया और तेलगू शब्द मेथुकु (चावल का प्याला) के आधार पर इसे मेदक कहा जाने लगा। यह तालुका चावल की उपज के लिए प्रसिद्ध है।

सानोउड्यार (ज़िला अलमोड़ा, उ० प्र०)

स्थानीय जनश्रुति के अनुसार यह स्थान शांडिल्य ऋषि का तप:स्थल है और उन्हीं के नाम पर इस स्थान का नामकरण हुआ था।

साबरमती

प्राचीन नाम श्वभ्रमती और गिरिकर्णिका। (दे० श्वभ्र)

साबितगढ़ दे० अलीगढ़

सामूगढ़ (ज़िला आगरा, उ० प्र०)

1658 में शाहजहां की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में राजसिंहासन के लिए घोर संघर्ष हुआ। औरंगज़ेब और मुराद की संयुक्त सेनाओं ने आगरे पर चढ़ाई की और शाहजहां के ज्येष्ठ पुत्र दारा को सामूगढ़ के मैदान में होने वाले भारी युद्ध में हराया। दारा की सेना की भयानक पराजय हुई जिसके कारण यह अभागा राजकुमार दर-दर का फ़क़ीर बन गया और अंत मे औरंगज़ेब द्वारा पकड़ा और मारा गया।

सारंगगढ़ दे० पटिया

सारंगनाथ दे० सारनाथ

सारंगपुर (म० प्र०)

उत्तरमध्यकालीन भवनों के अवशेष के लिए यह स्थान प्रसिद्ध है।

सारनाथ (ज़िला वाराणसी, उ० प्र०)

वाराणसी से 4 मील उत्तर की ओर बसा हुआ इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है जो गौतम बुद्ध के प्रथम धर्मप्रवचन (धर्मचक्रप्रवर्तन) के लिए जगद्विख्यात है। बौद्धकाल में इसे ऋषिपत्तन (पाली—इसीपत्तन) भी कहते थे क्योंकि ज्ञान-विज्ञान के केंद्र काशी के निकट होने के कारण यहां भी ऋषि-मुनि निवास करते थे। ऋषिपट्टन के निकट ही मृगदाव नामक मृगों के रहने का वन था जिसका संबंध बोधिसत्व की एक कथा में भी जोड़ा जाता है। बोधिसत्व ने अपने किसी पूर्वजन्म में, जब वे मृगदाव में मृगों के राजा थे, अपने प्राणों की बलि देकर एक गर्भवती हरिणी की जान बचाई थी। इसी कारण इस वन को सार—या सारंग (मृग)—नाथ कहने लगे। रायबहादुर दयाराम साहनी के अनुसार शिव को भी पौराणिक साहित्य में सारंगनाथ कहा गया है और महादेव शिव की नगरी काशी की समीपता के कारण यह स्थान शिवोपासना की भी स्थली बन गया। इस तथ्य की पुष्टि सारनाथ में, सारनाथ नामक शिवमंदिर की वर्तमानता से होती है। एक स्थानीय किंवदंती के अनुसार बौद्धधर्म के प्रचार के पूर्व सारनाथ शिवोपासना का केंद्र था। किंतु, जैसे गया आदि और भी कई स्थानों के इतिहास से प्रमाणित होता है बात इसकी उल्टी भी हो सकती है, अर्थात् बौद्धधर्म के पतन के पश्चात् ही शिव की उपासना यहां प्रचलित हुई हो। जान पड़ता है कि जैसे कई प्राचीन विशाल नगरों के उपनगर या नगरोद्यान थे (जैसे प्राचीन विदिशा का सांची, अयोध्या का साकेत आदि) उसी प्रकार सारनाथ में मूलतः ऋषियों या तपस्वियों के आश्रम स्थित थे जो उन्होंने काशी के कोलाहल से बचने के लिए, किंतु फिर भी महान् नगरी के सान्निध्य में, रहने के लिए बनाए थे।

गौतमबुद्ध गया में संबुद्धि प्राप्त करने के अनंतर यहां आए थे और उन्होंने कौंडिन्य आदि अपने पूर्व साथियों को प्रथम बार प्रवचन सुनाकर अपने नये मत में दीक्षित किया था। इसी प्रथम प्रवचन को उन्होंने धर्मचक्रप्रवर्तन कहा जो कालांतर में, भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में सारनाथ का प्रतीक माना गया। बुद्ध ही के जीवनकाल में काशी के श्रेष्ठी नंदी ने ऋषिपत्तन में एक बौद्ध विहार बनवाया था (दे० वियवग्ग, वग्ग: 16, बुद्धघोष-रचित टीका)। तीसरी शती ई० पू० में अशोक ने सारनाथ की यात्रा की और यहां कई स्तूप और एक सुंदर प्रस्तरस्तंभ स्थापित किया जिस पर मौर्य सम्राट् की एक धर्मलिपि अंकित है। इसी स्तंभ का सिंहशीर्ष तथा धर्मचक्र भारतीय गणराज्य का राजचिह्न बनाया गया है। चौथी शती ई० में चीनी यात्री फाह्यान इस स्थान पर आया

था। उसने सारनाथ में चार बड़े स्तूप और पांच विहार देखे थे। 6ठी शती ई० में हूणों ने इस स्थान पर आक्रमण करके यहां के प्राचीन स्मारकों को घोर क्षति पहुंचाई। इनका सेनानायक मिहिरकुल था। 7वीं० शती ई० के पूर्वार्ध में, प्रसिद्ध चीनी यात्री युवानच्वांग ने वाराणसी और सारनाथ की यात्रा की थी। उस समय यहां 30 बौद्ध विहार थे जिनमें 1500 थेरावादी भिक्षु निवास करते थे। युवानच्वांग ने सारनाथ में 100 हिंदू देवालय भी देखे थे जो बौद्ध धर्म के धीरे-धीरे पतनोन्मुख होने तथा प्राचीन धर्म के पुनरोत्कर्ष के परिचायक थे। 11वीं शती में महमूद गजनवी ने सारनाथ पर आक्रमण किया और यहां के स्मारकों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तत्पश्चात् 1194 ई० में मुहम्मद गोरी के सेनापति कुतुबुद्दीन ने तो यहां की बचीखुची प्राय: सभी इमारतों तथा कला-कृतियों को लगभग समाप्त ही कर दिया। केवल दो विशाल स्तूप ही छः शतियों तक अपने स्थान पर खड़े रहे। 1794 ई० में काशी-नरेश चेतसिंह के दीवान जगतसिंह ने जगतगंज नामक वाराणसी के मुहल्ले को बनवाने के लिए एक स्तूप की सामग्री काम में ले ली। यह स्तूप ईंटों का बना था। इसका व्यास 110 फुट था। कुछ विद्वानों का कथन है कि यह अशोक द्वारा निर्मित धर्मराजिक नामक स्तूप था। जगतसिंह ने इस स्तूप का जो उत्खनन करवाया था उसमें इस विशाल स्तूप के अंदर से बलुआ पत्थर और संगमरमर के दो बर्तन मिले थे जिनमें बुद्ध के अस्थि-अवशेष पाए गए थे। इन्हें गंगा में प्रवाहित कर दिया गया।

पुरातत्त्व विभाग द्वारा यहां जो उत्खनन किया गया उसमें 12वीं शती ई० में यहां होने वाले विनाश के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहां के निवासी मुसलमानों के आक्रमण के समय एकाएक ही भाग निकले थे क्योंकि विहारों की कई कोठरियों में मिट्टी के बर्तनों में पकी दाल और चावल के अवशेष मिले थे। 1854 ई० में भारत सरकार ने सारनाथ को एक नील के व्यवसायी फ़र्ग्युसन से खरीद लिया। लंका के अनागरिक धर्मपाल के प्रयत्नों से यहां मूलगंधकुटीविहार नामक बौद्ध मंदिर बना था। सारनाथ के अवशिष्ट प्राचीन स्मारकों में निम्न स्तूप उल्लेखनीय हैं—चौखंडी स्तूप इस पर मुग़ल सम्राट् अकबर द्वारा अंकित 1588 ई० का एक फारसी अभिलेख खुदा है जिसमें हुमायूं के इस स्थान पर आकर विश्राम करने का उल्लेख है। (चौखंडी स्तूप के निर्माता का ठीक-ठीक पता नहीं है। कनिंघम ने इस स्तूप का उत्खनन द्वारा अनुसंधान किया भी था किंतु कोई अवशेष न मिले); धमेख अथवा धर्ममुख स्तूप—पुरातत्त्व विद्वानों के मतानुसार यह स्तूप गुप्तकालीन है और भावी बुद्ध मैत्रेय के सम्मानार्थ बनवाया गया था। किंवदंती है कि यह वही स्थल है जहां मैत्रेय

को गौतम बुद्ध ने उसके भावी बुद्ध बनने के विषय में भविष्यवाणी की थी (आर्कियालोजिकल रिपोर्ट 1904-5)। खुदाई में इसी स्तूप के पास अनेक खरल आदि मिले थे जिससे संभावना होती है कि किसी समय यहां औषधालय रहा होगा। इस स्तूप में से अनेक सुंदर पत्थर निकले थे।

सारनाथ के क्षेत्र की खुदाई से गुप्तकालीन अनेक कलाकृतियां तथा बुद्ध-प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जो वर्तमान संग्रहालय में सुरक्षित हैं। गुप्तकाल में सारनाथ की मूर्तिकला की एक अलग ही शैली प्रचलित थी, जो बुद्ध की मूर्तियों के आत्मिक सौंदर्य तथा शारीरिक सौष्ठव की सम्मिश्रित भावयोजना के लिए भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में प्रसिद्ध है। सारनाथ में एक प्राचीन शिव-मंदिर तथा एक जैन मंदिर भी स्थित हैं। जैन मंदिर 1824 ई० में बना था; इसमें श्रियांशदेव की प्रतिमा है। जैन किंवदंती है कि ये तीर्थंकर सारनाथ से लगभग दो मील दूर स्थित सिंह नामक ग्राम में तीर्थंकर भाव को प्राप्त हुए थे। सारनाथ से कई महत्त्वपूर्ण अभिलेख भी मिले हैं जिनमें प्रमुख काशीराज प्रकटादित्य का शिलालेख है। इसमें बालादित्य नरेश का उल्लेख है जो फ्लीट के मत में वही बालादित्य है जो मिहिरकुल हूण के साथ वीरतापूर्वक लड़ा था। यह अभिलेख शायद 7वीं शती के पूर्व का है। दूसरे अभिलेख में हरिगुप्त नामक एक साधु द्वारा मूर्तिदान का उल्लेख है। यह अभिलेख 8वीं शती ई० का जान पड़ता है।

सारस्वत

सरस्वती का तटवर्ती प्रदेश (दे० पंचगौड)

सालनू (ज़िला मंडी, हिमाचल प्रदेश)

मंडी ज़िले का सर्व-प्राचीन अभिलेख इस स्थान पर एक शिला पर उत्कीर्ण है। यह चौथी या पांचवीं शती ई० का जान पड़ता है।

सालसट=दे० शाष्ठी, परिमुद

सावित्री

महाबलेश्वर की पहाड़ियों (सह्याद्रि) से निकलने वाली एक नदी जिसकी प्राचीन समय से तीर्थ रूप में मान्यता है।

सासनी (ज़िला अलीगढ़)

अलीगढ से 14 मील दूर है। यहां एक पुराना मिट्टी का किला है।

सिंगपुरम=सिंहपुरम्

सिंगरौर दे० शृंगवेरपुर

सिंगारपुरी (महाराष्ट्र)

नीरा नदी के दक्षिण में सतारा से प्रायः 45 मील पूर्व में स्थित है। महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के समय यहां का राजा सूर्यराव था जो शिवाजी के साथ सदा कूटनीति की चालें चला करता था। सिंगारपुरी को 1664 ई० में शिवाजी ने अपने अधिकार में कर लिया। कविवर भूषण ने इस स्थान का उल्लेख शिवराज भूषण, छंद 207 में इस प्रकार किया है—'जावलिबार सिंगारपुरी औ जवारिको राम के नेरि को गाजी, भूषन भौंसिला भूपति ते सब दूर किए करि कीरति ताजी'।

सिंगौरगढ़ (ज़िला दमोह, म० प्र०)

गढ़मंडला की रानी वीरांगना दुर्गावती के श्वसुर राजा संग्रामशाह (मृत्यु 1540) के 52 गढ़ों में सिंगौरगढ़ की भी गणना थी। संग्रामशाह के पुत्र और दुर्गावती के पति दलपतशाह ने मदनमहल (जबलपुर के निकट) को छोड़कर सिंगौरगढ़ में अपनी राजधानी बनाई थी। उन्होंने यहां के किले को बढ़ाकर उसे सुदृढ़ बनाया था। यह किला परिहार राजपूतों के समय में निर्मित हुआ था। गौंड राजाओं के समय के अवशेष भी यहां से प्राप्त हुए हैं।

सिंघाना (म० प्र०)

पूर्वमध्यकालीन इमारतों के अवशेष यहां से प्राप्त हुए हैं।

सिंदिमान

अलक्षेंद्र के भारत पर आक्रमण के समय (327 ई० पू०) सिंध नदी के निकट बसा एक नगर जिसका अभिज्ञान कुछ विद्वानों ने वर्तमान सिहवान से किया है, किंतु यह अभिज्ञान संदिग्ध है (दे० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 106)। यहां के राजा का नाम ग्रीक लेखकों ने सांबोस (Sambos) बताया है। यह अलक्षेंद्र के आक्रमण के समय नगर छोड़कर चला गया था।

सिंदी (म० प्र०)

केलझर से 7 मील पर स्थित है। प्राचीन दिगंबर जैन मंदिर में पद्मावती देवी की 3 फुट ऊंची मूर्ति है जिसके मस्तक पर तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति आसीन है। मूर्ति पर सर्वत्र उच्चकोटि के शिल्प का प्रदर्शन है। इसके साथ ही मूर्ति के शरीर पर विविध आभूषणों का विन्यास विशेषरूप से शोभनीय जान पड़ता है।

सिंदूरगिरि

रामटेक (ज़िला नागपुर, महाराष्ट्र) की पहाड़ियों का एक नाम। इन पहाड़ियों में लाल रंग का पत्थर मिलता है जिसका सिंदूर का सा वर्ण है।

किंवदंती है कि नृसिंह अवतार में हिरण्यकशिपु के रक्त से यह स्थान लाल रंग का हो गया था।

सिंध=सिंधु

सिंधु

(1) सिंध नदी हिमालय की पश्चिमी श्रेणियों से निकल कर कराची के निकट समुद्र में गिरती है। इस नदी की महिमा ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर वर्णित है --'त्वंसिंधो कुभया गोमतीं क्रुमुमेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे' 10,75,6। ऋग्० 10,75,4 में सिंधु में अन्य नदियों के मिलने की समानता बछड़े से मिलने के लिए आतुर गायों से की गई है—'अभित्वा सिंधो शिशु-भिन्नमानरो वाश्रा अर्पन्ति पयमेव धेनवः'। सिंधु के नाद को आकाश तक पहुंचता हुआ कहा गया है। जिस प्रकार मेघों से पृथ्वी पर घोर निनाद के साथ वर्षा होती है उसी प्रकार सिंधु दहाड़ते हुए वृषभ की तरह अपने चमकदार जल को उछालती हुई आगे बढ़ती चली जाती है—'दिवि स्वनो यततेभूम्यो पर्यनन्तं शुष्ममुदिर्यतिभानुना। अभ्रादिव प्रस्तनयन्ति वृष्टयः सिंधुर्यदेति वृषभो न रोरुवत्' ऋग्० 10,75,3।

सिंधु शब्द से प्राचीन फारसी का हिंदू शब्द बना है क्योंकि यह नदी भारत की पश्चिमी सीमा पर बहती थी और इस सीमा के उस पार से आने वाली जातियों के लिए सिंधु नदी को पार करने का अर्थ भारत में प्रवेश करना था। यूनानियों ने इसी आधार पर सिंध को इंडस और भारत को इंडिया नाम दिया था। अवेस्ता में हिंदू शब्द भारतवर्ष के लिए ही प्रयुक्त हुआ है (दे० मेकडानेल्ड—ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, पृ० 141)। ऋग्वेद में सप्तसिंधवः का उल्लेख है जिसे अवस्ता में हप्तहिंदू कहा गया है। यह सिंधु तथा उसकी पंजाब की छः अन्य सहायक नदियों (वितस्ता, असिक्नी, परुष्णी, विपाशा, शुतुद्रि, तथा सरस्वती) का संयुक्त नाम है। सप्तसिंधु नाम रोमन सम्राट् आगस्टस के समकालीन रोमनों को भी ज्ञात था जैसा कि महाकवि वर्जिल के Aeneid, 9,30 के उल्लेख से स्पष्ट है—Ceu septum surgens, sedatis omnibus altus per tacitum—Ganges.'

सिंधु की पश्चिम की ओर की सहायक नदियों—कुभा सुवास्तु, क्रुमु और गोमती का उल्लेख भी ऋग्वेद में है। सिंधु नदी की महानता के कारण उत्तर-वैदिक काल में समुद्र का नाम भी सिंधु ही पड़ गया था। आज भी सिंधु नदी के प्रदेश के निवासी इस नदी को 'सिंध का समुद्र' कहते हैं (मेकडानेल्ड, पृ०

143) वाल्मीकि रामायण बाल० 43,13 में सिंधु को महा नदी की संज्ञा दी गई है, 'सुचक्षुश्चैव सीता च, सिंधुश्चैव महानदी, तिस्रश्चैता दिशं जग्मुः प्रतीचीं सु दिशं शुभाः'। इस प्रसंग में सिंधु को सुचक्षु (=वंक्षु) तथा सीता (=तरिम) के साथ गंगा की पश्चिमी धारा माना गया है। महाभारत, भीष्म 9.14 में सिंधु का, गंगा और सरस्वती के साथ उल्लेख है, 'नदीं पिबन्ति विपुलां गंगां सिंधुं सरस्वतीम् गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम्'। सिंधु नदी के तटवर्ती ग्रामणीयों को नकुल ने अपनी पश्चिमी दिशा की दिग्विजय यात्रा में जीता था, 'गणानुत्सवसंकेतान् व्यजयत् पुरुषर्षभः सिंधुकूलाश्रिता ये च ग्रामणीया महाबलाः' सभा० 32,9। ग्रामणीय या ग्रामणेय लोग वर्तमान यूसुफ़जाइयों आदि कबीलों के पूर्वपुरुष थे। उत्सेधजीवी ग्रामीणीयों (उत्सेध-जीवी=लुटेरा) को पूगग्रामणीय भी कहा जाता था। ये कबीले अपने सरदारों के नाम से ही अभिहित किए जाते थे, जैसा कि पाणिनि के उल्लेख से स्पष्ट है 'स एषां ग्रामणीः'। श्रीमद्भागवत 5,19,18 में शायद सिंधु को सप्तवती कहा गया है, क्योंकि सिंधु सात नदियों की संयुक्त धारा के रूप में समुद्र में गिरती है।

महारौली स्थित लौहस्तंभ पर चंद्र के अभिलेख में सिंधु के सप्तमुखों का उल्लेख है (दे० सप्तसिंधु)। रघुवंश 4,67 में कालिदास ने रघु की दिग्विजय के प्रसंग में सिंधु तीर पर सेना के घोड़ों के विश्राम करते समय भूमि पर लोटने के कारण उनके कंधों से संलग्न केसरलवों के विकीर्ण हो जाने का मनोहर वर्णन किया है, 'विनीताध्वश्रमास्तस्य सिंधुतीरविचेष्टनैः दुधुवुर्वाजिनः स्कंधांल्लग्नकुंकुमकेसरान्'। इस वर्णन से यह सूचित होता है कि कालिदास के समय में केसर सिंधु नदी की घाटी में उत्पन्न होता था। महाभारत में वर्णित सागरद्वीप शायद सिंध नदी का दक्षिणी समुद्र तट है। जैनग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में सिंधु नदी को चुल्लहिमवान् के एक विशाल सरोवर के पश्चिम की ओर से निस्सृत माना है और गंगा को पूर्व की ओर से।

(2) सिंध नदी के सिंचित प्रदेश—वर्तमान सिंध (पाकि०) का प्रांत। रघुवंश 15,87 में सिंध नामक देश का रामचंद्रजी द्वारा भरत को दिए जाने का उल्लेख है, 'युधाजितश्च संदेशात्स देशं सिंधुनामकम् ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः'। इस प्रसंग में यह भी वर्णित है कि युधाजित् (भरत का मामा, केकय नरेश) से संदेश मिलने पर उन्होंने यह कार्य सम्पन्न किया था। संभव है कि सिंधु देश उस समय केकय देश के अधीन रहा हो। सिंधु पर अधिकार करने के लिए भरत ने गंधर्वों को हराया था—'भरतस्तत्र गंधर्वा-

न्युधि निर्जित्य केवलम् आतोद्यग्राहयामास समत्याजयदायुधम्' रघु० 15,88 अर्थात् भरत ने युद्ध में (सिंधु देश के) गंधर्वों को हराकर उन्हें शस्त्र त्याग कर वीणा ग्रहण करने पर विवश किया। वाल्मीकि रामायण उत्तर० 100-101 में भी यही प्रसंग सविस्तर वर्णित है, 'सिंधोरुभयतः पार्श्वेदेशः परमशोभनं तं च रक्षन्ति गंधर्वाः सायुधा युद्धकोविदाः' उत्तर 100,11)। इससे सूचित होता है कि सिंधु नदी के दोनों ओर के प्रदेश को ही सिंधु-देश कहा जाता था। इसमें गंधार या गंधर्वों का प्रदेश भी सम्मिलित रहा होगा। यह तथ्य इस प्रकार भी सिद्ध होता है कि भरत ने इस देश को जीतकर अपने पुत्रों को तक्षशिला और पुष्कलावती (गंधार देश में स्थित नगर) का शासक नियुक्त किया था। तक्षशिला सिंधु नदी के पूर्व में और पुष्कलावती पश्चिम में स्थित थी। ये दोनों नगर इन दोनों भागों की राजधानी रहे होंगे। सिंध के निवासियों को विष्णु 2,3,17 में सैंधवाः कहा गया है—'सौवीरा सैंधवाहूणाः शाल्वाः कोसलवासिनः'। सिंधु देश में उत्पन्न लवण (सैंधव) का उल्लेख कालिदास ने रघु० 5,73 में इस प्रकार किया है—'वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि, लेह्यानि सैंधवशिलाशकलानि वाहाः' अर्थात् सामने रखे हुए सैंधव लवण के लेह्य शिलाखडों को घोड़े अपने मुख की भाप से धुंधला कर रहे हैं। सौवीर सिंधु देश का ही एक भाग था। महरौली (दिल्ली) में स्थित चंद्र के लौहस्तंभ के अभिलेख में चंद्र द्वारा सिंधु नदी के सप्तमुखों को जीते जाने का उल्लेख है—'तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिंधोर्जिता वाह्लिकाः' तथा इस प्रदेश में वाह्लिकों की स्थिति बताई गई है (दे० दिल्ली)। यूनान के लेखकों ने अलक्षेंद्र के भारत-आक्रमण के संबंध में सिंधु-देश के नगरों का उल्लेख किया है। साइगरडिस (Sigerdis) नामक स्थान शायद सागर-द्वीप है जो सिंधु देश का समुद्रतट या सिंधु नदी का मुहाना जान पड़ता है। अलक्षेंद्र की सेनाएं सिंधु नदी तथा इसके तटवर्ती प्रदेश में होकर ही वापस लौटी थीं। हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास में बाण ने प्रभाकरवर्धन को 'सिंधुराजज्वरः' कहा है जिससे सिंधु देश पर उसके आतंक का बोध होता है। अरबों के सिंध पर आक्रमण के समय वहां दाहिर नामक ब्राह्मण-नरेश का राज्य था। यह आक्रमणकारियों से बहुत ही वीरता के साथ लड़ता हुआ मारा गया था। इसकी वीरांगना पुत्रियों ने बाद में, अरब सेनापति मुहम्मद बिनकासिम से अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया और स्वयं आत्महत्या करली। सिंध पर मुसलमानों का अधिकार 1845 ई० तक रहा जब यहां के अमीरों को जनरल नेपियर ने मियानी के युद्ध में हराकर इस प्रांत को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया।

3. =सिंध नदी। यह नदी विन्ध्य श्रेणी से (सिरौज (म० प्र०) के उत्तर से) निकलकर, इटावा और जालौन (उ० प्र०) के बीच यमुना में मिल जाती है। श्रीमद्भागवत में इसका नर्मदा, चर्मण्वती और शोण आदि के साथ उल्लेख है—'नर्मदा चर्मण्वती सिंधुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी…'। मेघदूत (पूर्वमेघ, 31) में कालिदास ने सिंधु का इस प्रकार वर्णन किया है—'वेणीभूतप्रतनुसलिला सावतीतस्य सिंधुः पांडुच्छायातटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः, सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यंजयन्ती, कार्श्यंयेन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः'। मेघ के यात्रा-क्रम के अनुसार यह यमुना की सहायक प्रसिद्ध सिंधु हो सकती है, किंतु मेघ को, विदिशा से उज्जयिनी के मार्ग में, इस सिंध के मिलने की संभावना अधिक नहीं जान पड़ती क्योंकि वर्तमान भीलसा (प्राचीन विदिशा) से उज्जैन तक जाने वाली सीधी रेखा से यह नदी पर्याप्त उत्तर में छूट जाती है। यह अधिक संभव जान पड़ता है कि कालिदास ने इस स्थान पर सिंधु से कालीसिंध नामक नदी का निर्देश किया है। यह नदी भी विंध्याचल की पहाड़ियों से निकल कर उज्जैन से थोड़ी दूर पश्चिम की ओर बहती हुई कोटा के उत्तर में चंबल में मिल जाती है। सिंधु नदी के वर्णन के पश्चात् ही 32 वें पद में कालिदास ने अवंती या उज्जैन का उल्लेख किया है जो इस नदी के कालीसिंध के साथ अभिज्ञान से ही ठीक जंचता है। यमुना की सहायक सिंध तो उज्जैन से काफी दूर—150 मील के लगभग उत्तर-पश्चिम की ओर विदिशा—उज्जैन के सीधे मार्ग मे बाहर छूट जाती है। काली सिंध ही उज्जैन से ठीक पूर्व की ओर इसी मार्ग पर पड़ती है।

4. =काली सिंध। (दे० सिंधु 3)

सिसपावन

सेतव्या के निकट एक नगर जिसका उल्लेख दीर्घनिकाय (2,316) में है। बौद्ध स्थविर कुमारकस्सप यहां रहते थे।

सिंहगढ़ (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

यह प्रसिद्ध किला महाराष्ट्र के प्रख्यात दुर्गों में से था। यह पूना से लगभग 17 मील दूर नैऋत्य-कोण में स्थित है और समुद्रतट से प्रायः 4300 फुट ऊंची पहाड़ी पर बसा हुआ है। इसका पहला नाम कोंडाणा था जो संभवतः इसी नाम के निकटवर्ती ग्राम के कारण हुआ था। दंतकथाओं के अनुसार यहां पर प्राचीन काल में कौंडिन्य अथवा शृंगी ऋषि का आश्रम था। इतिहासज्ञों का विचार है कि महाराष्ट्र के यादव या शिलाहार नरेशों में से किसी ने कोंडाणा के किले को बनवाया होगा। मुहम्मद तुग़लक के समय में यह नागनायक नामक राजा

के अधिकार में था। इसने तुग़लक का आठ मास तक सामना किया था। इसके पश्चात् अहमदनगर के संस्थापक मलिक अहमद का यहां कब्जा रहा और तत्पश्चात् बीजापुर के सुलतान का। छत्रपति शिवाजी ने इस किले को बीजापुर से छीन लिया था। शायस्ताखां को परास्त करने की योजनाएं शिवाजी ने इस किले में रहते हुए ही बनाई थीं और 1664 ई० में सूरत की लूट के पश्चात् वे यहीं आकर रहने भी लगे थे। अपने पिता शाहजी की मृत्यु के पश्चात् उनका अंतिम संस्कार भी उन्होंने यहीं किया था। 1665 ई० में राजा जयसिंह की मध्यस्थता द्वारा शिवाजी ने औरंगज़ेब से संधि करके यह क़िला मुगल सम्राट् को (कुछ अन्य क़िलों के साथ) दे दिया पर औरंगजेब की धूर्तता के कारण यह संधि अधिक न चल सकी और शिवाजी ने अपने सभी किलों को वापस ले लेने की योजना बनाई। उनकी माता जीजाबाई ने भी कोंडाणा के किले को ले लेने के लिए शिवाजी को बहुत प्रोत्साहित किया। 1670 ई० में शिवाजी के बाल-मित्र मावला सरदार तानाजी मालुसरे अंधेरी रात में 300 मावालियों को लेकर क़िले पर चढ़ गये और उन्होंने इसे मुग़लों से छीन लिया किंतु इस युद्ध में वे किले के संरक्षक उदयभानु राठौड़ के साथ लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए। मराठा सैनिकों ने अलाव जलाकर शिवाजी को विजय की सूचना दी। शिवाजी ने यहां पहुंच कर इसी अवसर पर ये प्रसिद्ध शब्द कहे थे कि 'गढ़आला सिंह गेला' अर्थात् गढ़ तो मिला किंतु सिंह (तानाजी) चला गया। उसी दिन से कोंडाणा का नाम सिंहगढ़ हो गया। सिंहगढ़ की विजय का वर्णन कविवर भूषण ने इस प्रकार किया है—'साहितनै सिवसाहि निसा में निसंक लियो गढ़ सिंह सोहानौ, राठिवरों को संहार भयौ, लरिकै सरदार गिर्यो उदैभानौ, भूषन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानों मसानौ, ऊंचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानों'। इस छंद में शिवाजी को सूचना देने के लिए ऊंचे स्थानों पर बनी फूस की झोपड़ियों में आग लगा कर प्रकाश करने का भी वर्णन है।

सिंहद्वीप

तीर्थमाला चैत्यवंदन नामक जैन स्तोत्र-ग्रंथ में सिंहलद्वीप को ही संभवतः सिंहद्वीप कहा गया है। बौद्धों की तीर्थस्थली होने के अतिरिक्त यह प्राचीन जैन तीर्थ भी था। इसकी पुष्टि विविधतीर्थकल्प नामक प्राचीन जैन ग्रंथ से होती है। किंतु उपर्युक्त स्तोत्र में झेलम (पाकिस्तान) के निकट सिंहपुर नामक प्राचीन जैनतीर्थ का भी उल्लेख हो सकता है। यह उल्लेख इस प्रकार है—'सिंहद्वीप धनेर मंगलपुरे चाज्जाहरे श्रीपुरे'।

सिंहपानीय दे० सुहानिया

सिंहपुर

(1) सारनाथ के निकट एक छोटा-सा ग्राम है। जैन किंवदंती में कहा जाता है कि तीर्थंकर श्रियांसदेव को इसी स्थान पर तीर्थंकर भाव प्राप्त हुआ था। इनके नाम से प्रसिद्ध मंदिर सारनाथ में स्थित है।

(2) महावंश 6,35 के अनुसार कुमार सिंहबाहु ने लाटदेश के इस नगर को बसाया था। इसका अभिज्ञान सौराष्ट्र (बंबई) में वला (प्राचीन वलभि) के निकट वर्तमान सिहोर से किया गया है।

(3) (पश्चिम पाकि०) इस नाम के नगर का वर्णन युवानच्वांग के यात्रा-वृत्त में है। उसने इस स्थान को तक्षशिला से प्राय: 85 मील पर कश्मीर के मार्ग में देखा था। वह लिखता है कि सिंहपुर और तक्षशिला के बीच में डाकुओं का बहुत भय था। शायद यह नगर नमक की पहाड़ियों (Salt Ranges) के प्रदेश में स्थित था और वहां का मुख्य स्थान था। इसी सिंहपुर का उल्लेख महाभारत सभा० 27,20 में है—'तत: सिंहपुरं रम्यंचित्रायुधसुरक्षितम्, प्राधमद् बलमास्थाय पाकशासनिराहवे'। इस नगर को अभिसारी तथा उरगा को जीतने के पश्चात् अर्जुन ने अपनी दिग्विजययात्रा के प्रसंग में जीता था। यहां सिंहपुर के राजा का नाम चित्रायुध दिया हुआ है। अभिसारी तक्षशिला के निकट स्थान था तथा उरगा वर्तमान हजारा (पश्चिम पाकि०) है। यह जैन तीर्थ भी था।

(4) दे० सीहपुर

सिंहभूम (बिहार)

यह जिला छोटा नागपुर के अंतर्गत स्थित है। मयूरभंज के निकट बागन-मती में रोम सम्राट् कोंस्टेन्टाइन के स्वर्ण के सिक्के मिले थे जिससे यह सूचित होता है कि प्राचीन काल में ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से एक व्यापारिक मार्ग यहां होकर, उत्तर की ओर जाता था। बेनुसागर नामक स्थान पर 9-10वीं शती ई० के मंदिरों के अवशेष हैं। सिंहभूम जिले में तांबे के सिक्के बनाने के कारखाने थे।

सिंहल

(1) लंका का बौद्धकालीन नाम। सिंहल के प्राचीन बौद्ध (पाली) इतिहास-ग्रंथ महावंश में उल्लिखित किंवदंती के अनुसार लंका के प्रथम भारतीय नरेश की उत्पत्ति सिंह से होने के कारण इस देश को सिंहल कहा जाता था। सिंहल के बौद्धकालीन इतिहास का सविस्तार वर्णन महावंश में है। इस ग्रंथ में वर्णित है कि मौर्य सम्राट् अशोक के पुत्र महेंद्र और संघमित्रा ने सिंहद्वीप पहुंचकर

वहां प्रथम बार बौद्ध मत का प्रचार किया था। गुप्तकाल में समुद्रगुप्त की सत्ता का प्रभाव सिंहल तक माना जाता था और हरिषेण-रचित प्रयाग प्रशस्ति में सैंहलकों का गुप्त-सम्राट् के लिए भेंट आदि लेकर उपस्थित होना वर्णित है—'दैवपुत्र शाहीशाहानुशाहीशकमुरण्डैः सैंहलक आदिभिः'। बोधगया में प्राप्त एक अभिलेख से यह भी सूचित होता है कि समुद्रगुप्त के शासनकाल में सिंहल-नरेश मेघवर्णन ने इस पुण्यस्थान पर एक विहार बनवाया था। मध्यकाल की अनेक लोककथाओं में सिंहल का उल्लेख है। जायसी रचित पद्मावत में सिंहल की राजकुमारी पद्मावती की प्रसिद्ध कहानी वर्णित है। लोककथाओं में सिंहल देश को धनधान्यपूर्ण रत्नप्रसविनी भूमि माना गया है जहां की सुंदरी राज-कुमारियों से विवाह करने के लिए भारत के अनेक नरेश इच्छुक रहते थे। सिलोन सिंहल का ही अंग्रेजी रूपान्तर है। लंका के अतिरिक्त सिंहल के पार-समुद्र, ताम्रद्वीप, ताम्रपर्णी तथा धर्मद्वीप आदि नाम भी बौद्ध साहित्य में प्राप्त होते हैं।

(2) कलिंग का एक नगर जिसका वर्णन महावस्तु में है। (दे० कलिंग)

सिंहाचलम् (मद्रास)

वाल्टेयर स्टेशन से प्रायः तीन मील की दूरी पर पहाड़ के ऊपर नृसिंह-स्वामी का प्राचीन मंदिर है। पर्वत पर 988 सीढ़ियां हैं। मंदिर से 100 गज की दूरी पर गंगाधारा नामक तीर्थ है। किंवदंती के अनुसार यह स्थान नृसिंहा-वतार की स्थली है।

सिंहेश्वर (बिहार)

दौराममधेपुरा नामक स्टेशन से 3 मील दूर स्थित है। कहा जाता है कि यहां प्राचीन समय में शृंगी मुनि का आश्रम था। मुंगेर यहां से 20 मील दूर है।

सिंहेश्वरी दे० अहल्याश्रम

सिउनी (म० प्र०)

मध्यकालीन जैन मंदिरों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। वाकाटक महाराज प्रवरसेन द्वितीय का ताम्रदानपट्ट यहां से प्राप्त हुआ था जो उनके शासन के 18 वें वर्ष में जारी किया गया था। इसमें ब्रह्मपूरक नामक ग्राम को दान में दिए जाने का उल्लेख है। इसमें अन्य कई ग्रामों का वर्णन भी है जिनमें से कोल्लहपुर भी है।

सिकंदरा (उ० प्र०)

आगरे से छः मील दूर अकबर का समाधि-स्थान। स्थान का नाम सिकंदर

लोदी के नाम पर प्रसिद्ध है। अकबर का मकबरा गुंबद-रहित है। कहते हैं मुगल सम्राट् ने स्वयं ही इसका नक्शा बनवाया था। इसके वास्तु में हिंदू एवं बौद्ध कला-शैलियों का सम्मिश्रण है। औरंगजेब के समय में मथुरा-आगरा क्षेत्र के जाटों ने जब विद्रोह किया तो उन्होंने अकबर के मकबरे में स्थित उसकी कब्र को खोद डाला और हड्डियां निकाल कर उन्हें जला दिया।

सिगौली (बिहार)

मोतीहारी के पश्चिम में स्थित है। इस स्थान पर 1816 ई० में नेपाल-युद्ध के पश्चात् नेपालियों और अंग्रेजों में संधि हुई थी जिससे उत्तरी भारत का बड़ा पहाड़ी इलाका अंग्रेजों को मिल गया।

सितन्नवासल (मद्रास)

मूलनाम संभवतः 'सिद्धण्णवास' अर्थात् 'सिद्धों का डेरा' है। यह स्थान पड्डुक्कोटा से 9 मील दूर है। यहां पथरीली पहाड़ियों में शैलकृत्त जैन गुहा-मंदिर स्थित है। तीसरी शती ई० पू० का एक ब्राह्मी अभिलेख भी यहां उपलब्ध हुआ है। इसमें इन गुफाओं का जैन मुनियों के निवास के लिए निर्मित किया जाना उल्लिखित है। गुफाओं में अजंता की शैली के पल्लवकालीन (7वीं शती ई०) भित्तिचित्र भी प्राप्त हुए हैं।

सिद्धटेक (ज़िला पूना, महाराष्ट्र)

भीमा (=भीमरथी) के तट पर स्थित अष्टविनायकों में से एक है। यह महाराष्ट्र के वीर सेनानी हरिपंत फड़के का जन्मस्थान भी है। कहा जाता है ये कभी किसी युद्ध में नहीं हारे। निजाम की सेनाएं कई बार यहां आकर परास्त हुई। ग्राम के चतुर्दिक् एक परकोटा है जिस पर सदा नगाड़ा बजता रहता था। कहा जाता है कि बादामी का किला जीतने के पहले हरिपंत फड़के ने सिद्धटेक के गणेश की मनौती की थी कि यदि जीत जाऊंगा तो किले को तोड़कर उसकी सामग्री से सिद्धटेक का परकोटा बनाऊंगा। यह चहारदीवारी उनके वचन की पूर्ति के प्रमाणस्वरूप आज भी स्थित है।

सिद्धण्णवास दे० सितन्नवासल

सिद्धपुर

(1) (ज़िला बड़ौदा, गुजरात) इस नगर की स्थापना पाटण (गुजरात) के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज ने 12वीं शती ई० में की थी। नगर सरस्वती नदी के तट पर बसा हुआ था। यह नदी आबू पहाड़ से निकल कर कच्छ की खाड़ी में गिरती है किंतु मार्ग में अनेक स्थानों पर लुप्त हो जाती है। किंवदंती है कि कौरवों के विनाश के पश्चात् प्रायश्चित रूप में भीम ने इसी स्थान पर सरस्वती

नदी में स्नान किया था। इस स्थान का प्राचीन नाम श्रीस्थल अथवा धर्मारण्य कहा जाता है (दे० धर्मारण्य)। पाटण-नरेश सिद्धराज ने इसके प्राचीन नाम को परिवर्तन करके सिद्धपुर कर दिया था। इस नगर में गुर्जरेश्वर मूलराज सोलंकी और उसके पुत्र सिद्धराज जयसिंह द्वारा निर्मित विशाल शिवमंदिर था जिसे रुद्रमहालय कहते थे। यह सरस्वती तट पर स्थित था। इसे अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर आक्रमण के समय तोड़ दिया था और अब केवल इसके खंडहर दिखाई पड़ते हैं। मूल मंदिर के स्थान पर मसजिद बनवाई गई थी। हिंदू काल के कई अन्य मंदिर भी यहां स्थित हैं। सिद्धराज से 1 मील के लगभग बिंदुसर नामक सरोवर है जहां किंवदंती के अनुसार स्नान करने से कपिल की माता देवहूति का शरीर सुंदर हो गया था। यह महाभारत में वर्णित विनशन नामक तीर्थ हो सकता है। हाल ही में पूर्व-सोलंकीकालीन (10वीं शती ई०) मंदिर के अवशेष यहां से उत्खनन द्वारा प्राप्त हुए हैं। इसका श्रेय निर्मल कुमार बोस तथा अमृतपांड्या को है। सिद्धराज को मातृ-श्राद्ध का तीर्थ माना जाना है।

(2) (मैसूर) इस स्थान पर अशोक का लघु शिलालेख एक चट्टान पर उत्कीर्ण है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस अभिलेख में वर्णित इसिला नामक नगरी जो इस प्रदेश की मौर्यकालीन राजधानी थी, सिद्धपुर नगर के स्थान पर ही रही होगी।

सिद्धाचल

जैन-साहित्य में शत्रुंजय का नाम है।

सिद्धायतन

(1) जैन सूत्र-ग्रंथ जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति में वर्णित महाहिमवंत का एक शिखर (2) वैताढ्य पर्वत (विंध्याचल) का एक शिखर (3) चुल्लहिमवंत का एक शिखर।

सिप्रा=शिप्रा

सिमरागढ़ (बिहार)

घोड़ा सहन रेल स्टेशन से 5 मील पर नेपाल में स्थित है। यह स्थान राजा शिवसिंह की राजधानी थी। इन्हीं शिवसिंह और इनकी रानी लखिमाबाई का मैथिलकोकिल विद्यापति ने अपने काव्य में वर्णन किया है।

सियालकोट दे० शाकल

सिरनेत=शिरनेत

सिरपुर दे० श्रीपुर (2)

सिरसागढ़ (बुंदेलखंड, म० प्र०)

पहूज नदी के तट पर स्थित है। यह स्थान 12वीं शती ई० में चंदेल राज्यसत्ता का केंद्र था। पृथ्वीराज चौहान ने परिमर्ददेव(परमाल) पर आक्रमण करते समय प्रथम युद्ध यहीं किया था। सिरसागढ़ की लड़ाई का वर्णन आल्हाकाव्य का महत्त्वपूर्ण अंश है।

सिराम दे० मलखेड़

सिरालादेगांव (मधोल तालुका, ज़िला नंदेड़, महाराष्ट्र)

इस स्थान से हिंदूकाल के भवनों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

सिरौंज (ज़िला भोपाल, म० प्र०)

भोपाल के पास पुराना कस्बा है। यह मुगलकाल में काफ़ी प्रसिद्ध था। सिरौंज के लिए मध्य रेल के गंजबसोदा स्टेशन से मार्ग जाता है। 1738 ई० में मराठों ने इस स्थान पर निजाम को हराया था। कविवर भूषण ने सिरौंज का कई बार उल्लेख किया है और लिखा है कि शिवाजी के डर से भाग कर मुसलमान सरदार सिरौंज में आकर शरण लेते थे—'भूषण सिरौंज लों परावने परत फेर दिल्ली पर परत परिंदन की छार है'; 'सहर सिरौंज लों परावने परत है'।

सिलहट=श्रीहट्ट

सिवालिक

देहरादून हरद्वार की पहाड़ियों का नाम जो सामान्यत: शिवालिक या शिवालय का अपभ्रंश माना जाता है। किंतु इसका एक नाम सपादलक्ष भी ज्ञात होता है। सपादलक्ष का हिंदी अर्थ सवालाख है जो सिवालिक या सवालक से मिलता-जुलता है।

सिहवान दे० सिंदिमान

सिहावल दे० शिखावल

सिहावा (ज़िला रायपुर, म० प्र०)

महानदी के उद्गम-स्थान धमतरी से 44 मील दूर है। किंवदंती है कि इस स्थान पर पूर्वकाल में शृंगी आदि सप्तऋषियों की तपोभूमि थी जिनके नाम से प्रसिद्ध कई गुफाएं पहाड़ी के उच्चशिखरों पर अवस्थित हैं। यहां के खंडहरों से छ: मंदिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। पांच मंदिरों का निर्माण चंद्रवंशी राजा कर्ण ने 1114 शक संवत्=1192 ई० के लगभग करवाया था जैसा कि यहां से प्राप्त निम्न अभिलेख से स्पष्ट है, 'तीर्थेदेवह्रदे तेन कृतं प्रासादापंचकम् स्वीयं तत्र द्वयं जातं यत्र शंकरकेशवौ। पितृभ्यां प्रददौ चान्यत् कारयित्वा

द्वयंनृप: सदनं देवदेवस्य मनोहारि त्रिशूलिन:। रणकेसरिणे प्रादान्नृपायैकं सुरालयं, तद्वंशक्षीणतां ज्ञात्वाभातृस्नेहेन कर्णराट् चतुर्दशोत्तरेसेयमेकादशशते शके वर्द्धतां सर्वतो नित्यं नृसिंहकविताकृति:' (एपिग्राफिका इंडिका, भाग 9, पृ० 182)। इस अभिलेख से सूचित होता है कि इस स्थान का नाम देवह्लद था और इसे तीर्थ रूप में मान्यता प्राप्त थी। महाभारत अनुशासन 25,44 में भी एक देवह्लद का करवीरपुर के साथ उल्लेख है।

सीता

वर्तमान तरिम नदी जो पश्चिमी चीन के सिंकियांग प्रांत में बहती है। इसकी एक शाखा यारकंद नगर के निकट है (दे० एशेंट खोतान–स्टाइन पृ० 27-35-42)। यह शाखा तिब्बत के उत्तरी पर्वतों में से निकलती है। संभवत: इसका उद्‌गम गंगा के उद्‌गम मानसरोवर के निकट ही है और इसीलिए हमारे प्राचीन साहित्य में इस नदी को गंगा की ही एक पश्चिमी शाखा माना गया है। शायद सीता का सर्वप्रथम उल्लेख वाल्मीकि रामायण बाल० 43,13 में है—'सुचक्षुश्चैव सीता च सिंधुश्चैव महानदी। तिस्र: प्राचीं दिशं जग्मु: गंगा: शिवाजला: शुभा:' अर्थात् सुचक्षु, सीता और सिंधु पुण्यजला गंगा की तीन पश्चिमगामिनी शाखाएं हैं। महाभारत भीष्म० 6,48 में भी सीता को गंगा की धारा माना है—'वस्वोकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती, जंबूनदी च सीता च गंगा सिंधुश्च सप्तमी'। विष्णुपुराण के अनुसार सीता भद्राश्ववर्ष की एक नदी है जो गंगा ही की एक शाखा है—'विष्णुपादविनिष्क्रांता प्लावयित्वेन्दुमंडलम्, समन्ताद् ब्रह्मण: पुर्यांगंगा पतति वै दिव:। सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्द्धा प्रतिपद्यते, सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात्'। पूर्वेण शैलात्सीता तु शैलं यात्यन्तरिक्षगा, ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम्'—इस उद्धरण के अनुसार सीता, पूर्व की ओर से एक पर्वत से दूसरे पर प्रवाहित होती हुई भद्राश्व को पारकर समुद्र में मिल जाती है।

सीतादोहर दे० टंडवा

सीतानगर (जिला दमोह, म० प्र०)

दमोह से 17 मील पर सुनार नदी के तट पर स्थित है। सुनार, वेक और कोपर नदियों का संगमस्थल निकट ही है। यह प्राचीन तीर्थ है। कहा जाता है यहां वाल्मीकि का आश्रम था जहां सीता अपने दूसरे वनवास-काल में रही थीं। संगम पर मढकोलेश्वर शिव का प्राचीन मंदिर स्थित है।

सीतापुरी दे० चित्रकूट

सीतामढ़ी (ज़िला मुजफ्फरपुर, बिहार)

प्राचीन जनश्रुति में सीतामढ़ी को जनकनंदिनी सीता का जन्मस्थान माना जाता है। यह ग्राम लखनदेई नदी के तट पर अवस्थित है। सीतामढ़ी से एक मील पर पुनउड़ा नाम के गांव के पास एक पक्का सरोवर तथा मंदिर स्थित है। कहते हैं कि सीता का जन्म इसी स्थान पर हुआ था।

सीतेप=श्रीदेव

सीबी दे० वशाति

सीरपुर=सिरपुर [दे० श्रीपुर (2)]

सीस्तान दे० शकस्थान

सीहपुर

चेतियजातक के अनुसार चेदिराज उपचर के पुत्र ने चेदिजनपद में इस नगर को बसाया था। इसका शुद्ध नाम सिंहपुर हो सकता है।

सीही

16 वीं शती में गोसाईं गोकुलनाथ द्वारा लिखित ग्रंथ 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार इस स्थान को महाकवि सूरदास का जन्मस्थान माना गया है और इसे दिल्ली के निकट बताया गया है। 1647 ई० में इस ग्रंथ के संपादक कंठमणि शास्त्री ने लिखा था कि सीही गांव का सीहोरा और शेरगढ़ नाम से प्राचीन ग्रंथों मे उल्लेख मिलता है। वर्तमान सीही दिल्ली से 10-12 मील दूर (दिल्ली-मथुरा रेल मार्ग पर ज़िला गुड़गांव (पंजाब) के बल्लभगढ़ कस्बे से एक मील) स्थित है। किंवदंती है कि प्राचीन काल मे इस स्थान पर जनमेजय ने नागयज्ञ किया था। प्राचीन बस्ती अब एक बृहत् टीले के रूप में है जिसे ग्रामवासी खेड़ा कहते हैं। यहां की मिट्टी में जले हुए लोहे के अनुरूप कोई वस्तु पाई जाती है जिसे ग्रामीण कीटी कहते हैं और उनका विश्वास है कि यह जले हुए सर्पों के अस्थिसंचय जैसी कोई वस्तु है। वास्तविकता यह है कि टीले के नीचे पुरानी इमारतों के चिह्न मिलते हैं और स्थान काफ़ी प्राचीन जान पड़ता है। नगर में पहले लोहा फूंकने का कारखाना स्थित था क्योंकि लोहे की भट्टियों के अवशेष भी यहां मिले हैं। लोहे के अवशेषों के आधार पर ही उपर्युक्त किंवदंती गढ़ी गई प्रतीत होती है। अष्टछाप नामक ग्रंथ में भी सीही को सूरदास का जन्मस्थान बताया गया है और इसकी दिल्ली से दूरी चार कोस कही गई है।

सीहोरा दे० सीही

सुंदरगढ़

उड़ीसा का एक ज़िला जहां नवपाषाण-युगीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें नवपाषाण-उपकरण तथा चकमक-पत्थर के बने औजार उल्लेखनीय हैं। यहां उषाकुटी नामक चार गुफाएं हैं जिनमें भित्ति-चित्र तथा अभिलेख उत्कीर्ण हैं।

सुंदरसी (म० प्र०)

पूर्व-मध्यकालीन इमारतों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

सुंदरिकाह्लद

'देविकायामुपस्पृश्य तथा सुंदरिकाह्लदे, अश्विन्या रूपवर्चस्कं प्रेत्य वै लभते-नरः' महा० अनुशासन 25,21। यह देविका (पंजाब की नदी देह) के निकट कोई तीर्थ जान पड़ता है। संभव है यह सुंदरिका नदी का कोई कुंड हो।

सुसुमारगिरि

बुद्धपूर्व काल में तथा बुद्ध के समय, पूर्वी उत्तरप्रदेश में शायद ज़िला मिर्जापुर मे स्थित चुनार के निकट यह स्थान भग्गगणराज्य की राजधानी के रूप में विख्यात था। पीछे वत्सजनपद के राजाओं ने भग्गों को हरा कर उनका राज्य वत्स में सम्मिलित कर लिया था। धोनसारव जातक (कॉवेल सं० 353) में सुंसुमारगिरि को वत्स के अधीन बताया गया है। संभव है चुनार की पहाड़ी का नाम ही सुंसुमारगिरि हो क्योकि इसकी आकृति शिशुमार (पाली सुंसुमार) या मगर से मिलती-जुलती है। इस पहाड़ी का आकार 'चरण' के समान भी माना गया है जिसके आधार पर इसे चरणाद्रि (चुनार का शुद्धरूप) नाम से अभिहित किया गया था।

सुईविहार (ज़िला बहावलपुर, सिंध, पश्चिमी पाकिस्तान)

बहावलपुर से 16 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित है। कनिष्ककालीन एक बौद्धविहार के अवशेष यहां प्राप्त हुए हैं। इस स्थान से सम्राट् कनिष्क (78 ई० या 120 ई० के लगभग) का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिससे उसके राज्य का विस्तार इस प्रदेश तक सूचित होता है। यहां एक ऊंचे, संकीर्ण स्तूप से एक अन्य अभिलेख 46 ई० पू० का भी मिला है जो ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण है। यह ताम्रपट्ट 2½ फुट लंबा-चौड़ा है।

सुकक्ष

द्वारका के निकट एक पर्वत जिसका उल्लेख महाभारत सभापर्व, 38 में है—'सुकक्षो राजतः शैलश्चित्रपुष्पमहावनम्'। इसके चारों ओर चित्रपुष्प,

शतपत्र, करवीर, तथा कुसंभि नामक वन स्थित थे।

सुकुमार

(1) महाभारत सभा 29,10 में उल्लिखित एक पर्वत जिसे भीम ने पूर्व दिशा की दिग्विजय के प्रसंग में जीता था, 'ततो दक्षिणमागम्य पुलिन्दनगरं महत्, सुकुमारं वशेचक्रे सुमित्रं च नराधिपम्'। जान पड़ता है कि यहां पुलिंद-नगर को ही सुकुमार नाम से अभिहित किया गया है। इसके पूर्व ही अश्व-मेधनगर की विजय का उल्लेख है जो संभवतः चंबल की उपनदी अश्व के तट पर कान्यकुब्ज या कन्नौज के निकट बसा हुआ था। सुकुमार या पुलिदनगर इसके दक्षिण की ओर रहा होगा। यहां के राजा सुमित्र का इसी प्रसंग में नामोल्लेख है। महाभारत-काल में पुलिद नामक जाति विंध्याचल की तराई में बेतवा के दोनों तटों के समीप निवास करती थी। सुमित्र शायद पुलिंदजातीय था। सहदेव ने अपनी दक्षिण दिशा की दिग्विजय में भी सुकुमार पर अधिकार किया था—'सुकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नराधिपम् तथैवापरमत्स्यांश्च व्यजयत् स पटच्चरान्' सभा० 31,4। अपरमत्स्य का प्रदेश मथुरा और राजस्थान के बीच का भाग था। सुकुमार का इसी के पश्चात् उल्लेख है।

(2) विष्णु० 2,4,60 के अनुसार शाकद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस द्वीप के राजा भव्य के पुत्र सुकुमार के नाम पर ही सुकुमार कहलाता है।

सुकुमारी

(1) 'नद्यश्चात्र महापुण्याः, सर्वपापभयापहाः, सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या, इक्षुश्चवेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा अन्याश्च शतस्तत्रक्षुद्रनद्यो महामुने' विष्णु० 2,4,65-66। इस उद्धरण से विदित होता है कि सुकुमारी शाकद्वीप की सप्त महानदियों में से है। [दे० सुकुमार, (2)]

2=कुमारी नदी (मत्स्यपुराण 113)

सुकृता

विष्णुपुराण 2, 4, 11 के अनुसार प्लक्षद्वीप की एक नदी, 'अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्लमा, अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः'।

सुकुट्ट

यह स्थान महाभारत में उल्लिखित है। वा० श० अग्रवाल के अनुसार यह वर्तमान सुकेत (हिमाचल प्रदेश) है। (दे० कादंबिनी, अक्तूबर 1962)

सुकेत (हिमाचल प्रदेश)

सुकेत शुकदेव की पुण्यभूमि कही जाती है। शुकदेव-वाटिका नामक एक उद्यान शुकदेव के नाम पर यहां स्थित भी है जहां से, किंवदंती के अनुसार

एक सुरंग हरद्वार जाती है। सुकेत नाम को शुकदेव का ही अपभ्रंश रूप कहा जाता है। (दे० सुकट्ट)

सुख

विष्णुपुराण 2,45 के अनुसार प्लक्षद्वीप का एक 'वर्ष' जो इस द्वीप के राजा मेधातिथि के पुत्र सुख के नाम पर प्रसिद्ध है।

सुखा

वरुण की नगरी। इसे वसुधा नगर भी कहते हैं।

सुखोदय (थाईलैंड)

उत्तरी स्याम (थाईलैंड) में 13वीं शती में स्थापित हिंदू राज्य। इसका संस्थापक इंद्रादित्य नामक एक थाई हिंदू सरदार था। इसने कंबुज-नरेश के विरुद्ध विद्रोह करके एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था जिसकी राजधानी सुखोदय (सुखोथाई) नामक नगर में थी। इसने सुखोदय-राज्य की सीमाओं का दूर-दूर तक विस्तार किया। इसके पुत्र रामकामहेंग के राज्यकाल में सुखोदय की और भी अधिक उन्नति हुई। यह बौद्ध था। इस राज्य की दूसरी राजधानी सज्जनालय नामक नगर में थी। रामकामहेंग के एक अभिलेख में तत्कालीन सुखोदय के संबंध में काफी सूचना मिलती है। आरंभ में सुखोदय राज्य का एक नाम स्याम या स्याम (चीनी भाषा में 'सीएन') भी था जो कालांतर में पूरे देश का ही नाम हो गया।

सुगंधगिरि (मद्रास)

कुंभकोणम् से दक्षिण-पूर्व 6 मील पर तिरुनारैयूर ही प्राचीन सुंगधगिरि है जो विष्णु की उपासना का प्राचीन केंद्र है।

सुग्ध

बुखार और समरकंद के प्रदेश का, जिसमें वर्तमान अफ़गानिस्तान का उत्तरी तथा रूस का दक्षिणी भाग सम्मिलित है, प्राचीन भारतीय नाम।

सुचक्षु

वाल्मीकि रामायण में वर्णित एक नदी जो विष्णुपुराण की चक्षु या प्रसिद्ध नदी आक्सस (वंक्षु, वक्षु) ही जान पड़ती है। इसको सीता (=तरिम नदी) और सिंधु के साथ गंगा की पश्चिमगामिनी शाखा माना गया है। जान पड़ता कि प्राचीन भारतीयों के मत में सुचक्षु का मूल स्रोत गंगा के उद्गम के पास ही स्थित था, 'सुचक्षुश्चैव सीता च सिंधुश्चैव महानदी तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मुः गंगाः शिवजलाः शुभाः' वाल्मीकि० बाल० 43,13 (दे० सीता, चक्षु, वंक्षु)

सुचींद्रम् (केरल)

त्रिवेंद्रम से कन्याकुमारी जाने वाले मार्ग पर स्थित है। यहां स्थित प्राचीन मंदिर दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। सुचींद्रम् से कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अभिलेख भी मिले हैं। मंदिर की प्रस्तर मूर्तिकारी विशेष रूप से सराहनीय है।

सुतीक्ष्णाश्रम (ज़िला बांदा, उ० प्र०)

इलाहाबाद-मानिकपुर रेल मार्ग पर जैंतवारा स्टेशन से प्राय: 20 मील और शरभंगाश्रम से सीधे जाने पर 10 मील पर स्थित है। वाल्मीकिरामायण में चित्रकूट से आगे जाने पर अनेक मुनियों के आश्रमों से होते हुए राम-लक्ष्मण-सीता के ऋषि सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुंचने का उल्लेख है। यहां वे वनवास काल के 10वें वर्ष के व्यतीत होने पर पहुंचे थे—'रमतश्चानुकूल्येन ययु: संवत्सरा: दश, परिसृत्यच धर्मज्ञो राघव: सह सीतया। सुतीक्ष्णास्याश्रमपदं पुनरेव जगाम ह, स तमाश्रनमागम्य मुनिभि: परिपूजित:। तत्रापि न्यवसद्राम: किंचित्कालमरिंदम, अथाश्रमस्थो विनयात्कदाचित्तं महामुनिम्' अरण्य० 11, 27-28-29। यहां से वे सुतीक्ष्ण के गुरु अगस्त्य के आश्रम में पहुंचे थे। रघुवंश, 13,41 में पुष्पकविमानारूढ़ राम सुतीक्ष्ण का वर्णन इस प्रकार करते हैं, 'हविर्भुजा मेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्ति: असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्ण: चरितेन दान्त:'। सुतीक्ष्णाश्रम के आगे शरभंगाश्रम का तथा फिर चित्रकूट का वर्णन रघु० 13 में होने से सुतीक्ष्णाश्रम की स्थिति उपर्युक्त अभिज्ञान के अनुसार ठीक समझी जा सकती है, क्योंकि चित्रकूट इस स्थान से अधिक दूर नहीं होना चाहिए। चित्रकूट भी ज़िला बांदा में ही है। अध्यात्मरामायण, अरण्य० 2,55 में सुतीक्ष्ण के आश्रम का इस प्रकार वर्णन है—'सुतीक्ष्णास्याश्रमं प्रागात्प्रख्यातमृषिसंकुलम्, सर्वर्तुगुण सम्पन्नं सर्वकालसुखावहम्'। तुलसीदास ने रामचरितमानस, अरण्यकांड दोहा 9 के आगे सुतीक्ष्ण-राम-मिलन का मधुर वर्णन किया है। (दे० शरभंगाश्रम)

सुदर्शन

(1)=काशी

(2) महाभारत भीष्मपर्व 5,6 के अनुसार एक भूखंड जिसका प्रतिबिंब चंद्रमा में दिखाई देता है—'एवं सुदर्शनद्वीपो दृश्यते चंद्रमंडले' भीष्म० 5,16।

(3) वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा० 43,16 में उल्लिखित हिमालय की उत्तरी श्रेणियों का कोई शिखर 'तमतिक्रम्य शैलेंद्रं, हेमगर्भं महागिरिम्, तत: सुदर्शनं नाम पर्वतं गन्तुमर्हथ'।

(4) =सुदर्शन सरोवर (दे० गिरनार)

सुदस्सन दे० काशी

सुदामा

(1) वाल्मीकि रामायण, अयो० 68,18 में इस पर्वत का उल्लेख है। इसके पास से होते हुए अयोध्या के दूत केकय देश गये थे—'अवेक्ष्याञ्जलिपानांश्च ब्राह्मणान् वेदपारगान्, ययुर्मध्येन वाह्लीकान् सुदामानं च पर्वतम्'। इस पर्वत का उल्लेख महाभारत सभा० 27,17 में भी है। इसे अर्जुन ने उत्तर दिशा की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में विजित किया था—'मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम् उलूकानुत्तरांश्चैव तांश्च राज्ञः समानयत्'। प्रसंगानुसार यह पर्वत कुलू की पहाड़ियों का कोई भाग जान पड़ता है। यहीं सुसंकुल जनपद की भी स्थिति थी। (दे० मोदापुर, वामदेव, उलूक)

(2) सुदामा नाम की नदी केकय-देश की राजधानी राजगृह या गिरिव्रज के पास बहती थी। भरत ने अयोध्या आते समय इसे पार किया था, 'स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान् ततः सुदामां द्युतिमान् संतीर्यावेक्ष्य तां नदीम्,' वाल्मीकि रामा०, अयो० 71, 1.

सुदामापुरी

पोरबदर (काठियावाड़, बंबई) का प्राचीन नाम सुदामापुरी कहा जाता है। श्रीमद्भागवत मे वर्णित सुदामा और कृष्ण की कथा के अनुसार निर्धन ब्राह्मण सुदामा जो द्वारकापति कृष्ण का बालमित्र था उनके पास बड़े संकोच से अपनी दरिद्रता के निवारण के लिए गया था जिसके फलस्वरूप कृष्ण ने सुदामा की पुरी को उसके अनजाने में ही द्वारका के समान समृद्धशालिनी बना दिया था—'इति तच्चिन्तयन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम्, सूर्यानलेन्दु संकाशैर्विमानैः सर्वतोवृतम्, विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः, प्रोत्फुल्ल कुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः, जुष्टम् स्वलङ्कृतैः पुंभिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः किमिदं कस्य वास्थानं कथं तदिदमित्यभूत्' श्रीमद्भागवत 10,81,21-22-23। पोरबंदर की स्थिति द्वारका के निकट होने के कारण इसको सुदामापुरी मानना संगत जान पड़ता है।

सुधम्मवती (बर्मा)

थाटन का प्राचीन भारतीय नाम। ब्रह्मदेश की प्राचीन ऐतिहासिक कथाओं के अनुसार सुधर्म्मवती 59 भारतीय नरेशों की राजधानी रही थी। थाटन सुधम्मवती का ही अपभ्रंश कहा जाता है।

सुनकोसी

उत्तर-पूर्व भारत की नदी। इसमें ताम्रा और अरुणा नदियां मिलती हैं। इसी स्थान पर कोकामुख तीर्थ था।

सुनाचारघाट दे० सहस्रावर्त

सुपर्णा

गोदावरी की एक दक्षिणी शाखा।

सुपार्श्व

विष्णुपुराण 2,2,17 के अनुसार इलावृत के चार पर्वतों में से है जो इस भूखंड के पश्चिम में स्थित हैं—'विपुल: पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृत:'।

सुप्रभ

विष्णुपुराण 2,4,29 के अनुसार शाल्मलद्वीप का एक भाग या वर्ष जो इस महाद्वीप के राजा वपुष्मान् के पुत्र सुप्रभ के नाम पर प्रसिद्ध है।

सुप्रभा

पुष्कर (ज़िला अजमेर, राजस्थान) के निकट बहने वाली एक नदी जो पुष्कर की प्रसिद्ध नदी सरस्वती ही की एक धारा मानी जाती है।

सुप्रात

मेसोपोटेमिया की फ़रात (Euphrates) नदी का संस्कृत नाम।

सुबाहुपुर

'अतीत्य दुर्गं हिमवत्प्रदेशं पुरं सुबाहोर्ददृशुर्नृवीरा:' महा० वन० 177, 12। हिमालय पर्वत में बदरीनारायण के निकट नगर जिसकी स्थिति वर्तमान टिहरी-गढ़वाल के क्षेत्र में थी। यहां अपनी हिमालय-यात्रा में पांडव कुछ समय ठहरे थे।

सुभूमिक

महाभारत के अनुसार सुभूमिक तीर्थ सरस्वती नदी के तट पर स्थित था। यह विनशन से उत्तर में था - 'सुभूमिकं ततोऽगच्छत् सरस्वत्यास्तटेवरे तत्र-चाप्सरस: शुभ्रा नित्यकालमतन्द्रिता:' महा०शल्य० 37,3। इस तीर्थ की, बलराम ने सरस्वती के अन्य तीर्थों के साथ यात्रा की थी। इसकी स्थिति राजस्थान के उत्तरी या पंजाब के दक्षिणी भाग में मानी जा सकती है।

सुमनकूट

सिंहल के प्राचीन इतिहास-ग्रंथ महावंश 1,33 में उल्लिखित है। यह लंका में स्थित श्रीपाद या आदम की चोटी (Adam's Peak) का नाम है। महावंश के वर्णन के अनुसार गौतमबुद्ध जंबूद्वीप से सिंहल आते समय इस चोटी

पर उतरे थे। यह कथा काल्पनिक है। यहां दो चरण चिह्न अवस्थित हैं जिन्हें बौद्ध बुद्ध के पांवों के निशान मानते हैं और ईसाई आदम के। प्राचीन समय-में इन्हें भगवान् राम के चरण चिह्न माना जाता था। यह पर्वत वाल्मीकि रामायण का सुवेल हो सकता है। महाभारत, सभा० 31,68 में इसे शायद रामक या रामपर्वत कहा गया है।

सुमनस्

विष्णुपुराण 2,4,7 में उल्लिखित प्लक्षद्वीप का एक पर्वत, 'गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुंदुभिस्तथा, सोमकःसुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः'।

सुमागधी

वाल्मीकि रामायण बाल०32,9 में वर्णित एक नदी जिसे मगध देश में स्थित गिरिव्रज या राजगृह के निकट और पांच पहाड़ों के बीच में बहती हुई कहा गया है—'सुमागधी नदी रम्या मागधान्विश्रुताययौ, पंचाऽऽनां शैलमुख्यानाम् मध्ये मालेव शोभते'। इस नदी का अभिज्ञान वैभार-पहाड़ी के नीचे जरासंघ की रणभूमि के निकट से बहने वाले नाले '(रणभूमि का नाला)' से किया गया है। (गाइड टु राजगीर, पृ० 17) [दे० गिरिव्रज (2) राजगृह]।

सुमात्रा दे० श्रीविजय; सौम्याक्ष

सुमेरपुर (ज़िला हमीरपुर, उ० प्र०)

यहाँ रेलस्टेशन के निकट चंदेल राजपूतों के समय (12वीं शती ई०) के भग्नावशेष स्थित हैं। 12वीं शती में यहां परिमर्द्दिदेव (परमाल) का राज्य था जिसे पृथ्वीराज चौहान ने हराया था।

सुमेरु दे० मेरु

सुरगिरि

=देवगिरि (दौलताबाद)। इसका प्राचीन जैन-तीर्थ के रूप में उल्लेख (तीर्थ माला चैत्यवंदन में) इस प्रकार है—'वंदे स्वर्णगिरौ तथा सुरगिरौ श्रीदेवकी-पत्तने'।

सुरनदी

(1) रामटेक (ज़िला नागपुर, महाराष्ट्र) के पूर्व में बहने वाली नदी जिसे सूर्यनदी भी कहा जाता है।

(2) =गंगा

सुरभीपत्तन

महाभारत, सभा० 31,68 में वर्णित है। इसको महदेव ने अपनी दक्षिण की दिग्विजय यात्रा में जीता था।—'कृत्स्नं कोलगिरिं चैव सुरभीपतनं तथा द्वीपं

ताम्राह्वयं चैव पर्वतं रामकं तथा'। प्रसंग से यह स्थान कोलाचल के निकट कोई बंदरगाह (पत्तन) जान पड़ता है। महाभारत के कुछ संस्करणों में इसका पाठांतर मुरचीपत्तन है जो वर्तमान क्रंगनौर (केरल) का बंदरगाह है (दे० मुरचीपत्तन; क्रंगनौर; तिरूवांचीकुलम्)

सुरवल=**सुरौल**

सुरवाया दे० सरस्वतीपत्तन

सुरसरि

(1)=गंगा। 'सुरसरि सरसई दिनकर कन्या;' 'सुरसरिधार नाम मदाकिनि' तुलसीदास। पुराणों में गंगा को देवनदी माना गया है।

(2) गुजरात की छोटीसी नदी जो ऋषितीर्थ के निकट साबरमती में मिल जाती है।

सुरसा

श्रीमद्भागवत् 5,19,18 में नदियों की सूची में उल्लिखित है जहां इसका नामोल्लेख रेवा (नर्मदा का पूर्वी पहाड़ी भाग) और नर्मदा (नर्मदा का पश्चिमी मैदानी भाग) के बीच में है। विष्णुपुराण 2,3,11 के अनुसार यह नदी नर्मदा नदी के समान विंध्याचल मे निकलती है, 'नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विंध्याद्रि निर्गताः'। यह नर्मदा के निकट प्रवाहित होने वाली कोई नदी है। सुरसा का अर्थ सुंदर रस या जलवाली नदी है।

सुराष्ट्र

काठियावाड़ (गुजरात, बम्बई) तथा निकटवर्ती प्रदेश का प्राचीन नाम। इसे सौराष्ट्र भी कहते थे। महाभारत, सभा० 31,62 में सहदेव द्वारा सुराष्ट्राधिप पर विजय पाने का उल्लेख है। 'वशे चक्रे महाबाहुः सुराष्ट्रधिपतिं तदा, सुराष्ट्रविषयस्थश्च प्रेषयामास रुक्मिणे'। रुद्रदामन् के गिरिनार अभिलेख (150 ई० के लगभग) में सुराष्ट्र को क्षत्रप रुद्रदामन् द्वारा विजित प्रदेश बतलाया है, 'स्ववीर्योर्जितानामनुरक्तसर्वप्रकृतीनां आनर्त सुराष्ट्रश्वभ्रमरुकच्छ सिंधुसौवीरकुकुरापरान्तनिषदादीनाम्'। (दे० सौराष्ट्र)

सुरासागर

पौराणिक भूगोल की कल्पना के अनुसार पृथ्वी के सप्तसागरों में से है, 'एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृत्ताः लवणेक्षु सुरासर्पिदधिदुग्धजलैः समम्'—विष्णु० 2,2,6।

सुरोर (म० प्र०)

मध्य रेलवे के जुकेही रेल स्टेशन से 14 मील दूर एक ग्राम है जहां मुइनुद्दीन

महमूद के समय का एक शिला अभिलेख, जिसकी तिथि जेठ सुदी 11,1385 वि० सं०=1328 ई० है, पाया गया है। यह स्थान सतीचौरा है।

सुरोवनम्

किष्किंधा के निकट शबरी के आश्रम के रूप में यह स्थान प्रसिद्ध है। यहां श्रीराम-लक्ष्मण के मंदिर में शबरी की मूर्ति भी स्थित है (दे० किष्किंधा; सबरीमलाई)। शबरी का आश्रम पंपासरोवर के निकट था (शबरी के आश्रम का वाल्मीकि-रामायण में जो उल्लेख है उसके लिए दे० पंपासर)। अध्यात्म-रामायण में शबरी और राम के मिलन की कथा अरण्यकांड, दशम सर्ग में सविस्तर दी हुई है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—'त्यक्त्वा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादि। दूषितम् शनैराश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः। शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा। संपूज्य विधिवद्रामं स सौमित्रं सपर्यया, संगृहीतानि दिव्यानि रामार्थं शबरीमुदा। फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामायभक्तितः, पादौ संपूज्य कुसुमैः सुगंधैः सानुलेपनैः' अरण्य० 10,4-5-8-9। तुलसीदास रामचरितमानस, अरण्यकांड में लिखते हैं—'ताहि देई गति राम उदारा, सबरी के आश्रम पगुधारा। सबरी देख राम गृह आए, मुनि के बचन समुझि जिय भाए। सरसिज लोचन बाहु विशाला, जटा-मुकुट सिर उर बन माला। कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहु आनि, प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि'।

सुरौल=सुरवल दे० जीरादेई

सुलतानगंज (जिला भागलपुर, बिहार)

गंगातट पर यह संभवतः बौद्धकालीन स्थान है। कई विहारों तथा एक स्तूप के अवशेष यहां से प्राप्त हुए हैं। बुद्ध की एक विशाल ताम्र-प्रतिमा यहां के अवशेषों में उल्लेखनीय है। इस मूर्ति की कला-शैली नालंदा से प्राप्त धातु-मूर्तियों से मिलती-जुलती है। यह मूर्ति अब बरमिंघम (इंगलैंड) के संग्रहालय में सुरक्षित है। रा० दा० बनर्जी ने इस मूर्ति को मूर्तिकला की पाटलिपुत्र शैली में निर्मित माना है।

सुलतानपुर दे० कुशभवनपुर

सुवर्णगिरि

अशोक के लघुशिला लेख सं० 1 में वर्णित नगरी जो मौर्यकाल में दक्षिणापथ की राजधानी थी। इस प्रांत का शासक कुमारामात्य सुवर्णगिरि में ही रहता था। कुछ विद्वानों ने सुवर्णगिरि का मासकी से अभिज्ञान किया है जहां अशोक का उपर्युक्त शिलालेख उत्कीर्ण है। हुल्ट्ज के मत में अशोक के

समय की सुवर्णगिरि मासकी के दक्षिण में स्थित सोनगिरि नामक स्थान भी हो सकता है। खानदेश के प्रदेश में कोंकण और खानदेश के उत्तरवर्त्ती मौर्यों के अभिलेख प्राप्त भी हुए हैं (दे० राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 257)। जान पड़ता है कि सुवर्णगिरि, मैसूर के उस भाग (दे० कोलर) में स्थित थी जो सोने की खानों के लिए प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है और इस दृष्टि से मासकी से ही इस नगरी का अभिज्ञान अधिक समीचीन जान पड़ता है।

सुवर्णगोत्र

युवानच्वांग ने इस स्थान पर स्त्री-राज्य का वर्णन किया है। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है। (दे० मुकर्जी, हर्ष, पृ० 41)

सुवर्णग्राम

(1)=सोनार गांव

(2) गंधार (युन्नान) के पूर्व और स्याम (थाईलैंड) के पश्चिम में स्थित प्राचीन भारतीय उपनिवेश जिसका उल्लेख स्याम के प्राचीन पाली इतिहास-ग्रंथों में है। इसके उत्तर में खेमराष्ट्र स्थित था।

सुवर्णद्वीप=सुवर्णभूमि

सुदूरपूर्व के देशों तथा द्वीपों का प्राचीन सामूहिक नाम। इनमें ब्रह्मदेश (बर्मा), मलय प्रायद्वीप के देश तथा इंडोनिसिया के द्वीप—जावा, सुमात्रा बोर्नियो, बाली आदि सम्मिलित थे। प्राचीन काल में, चौथी-पांचवी शती ई० पूर्व में तथा निकटवर्ती काल में इस भूभाग की समृद्धि की भारत के व्यापारियों में बड़ी चर्चा थी जैसा कि अनेक जातक-कथाओं से सूचित होता है (दे० मजूमदार-हिंदू कोलोनीज इन दी फ़ार ईस्ट, पृ० 8)। सुवर्णभूमि और भारत के बीच सक्रिय व्यापार का वर्णन बौद्ध साहित्य में है। चीनी यात्री फाह्यान के वर्णन से भी ज्ञात होता है कि गुप्तकाल के प्रारंभिक वर्षों में भारत से सिंहल तथा वहां से जावा आदि देशों के लिए नियमित रूप से व्यापारिक जलयान चलते थे। कथासरित्सागर में सुवर्णद्वीप और भारत के परस्पर व्यापार का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ में सानुदास की साहसपूर्ण कथा बहुत रोचक है। इस कथा से यह भी सूचित होता है कि सुवर्णद्वीप की नदियों के रेत में से सोने के कण निकाले जाते थे। बौद्ध साहित्य में केवल दक्षिणी ब्रह्मदेश, थाटन और पीगू को प्रायः सुवर्ण-भूमि के नाम से अभिहित किया गया है। सिंहल के बौद्ध इतिहास-ग्रंथों तथा बुद्धघोष के ग्रंथों से सूचित होता है कि सम्राट अशोक के सोण और उत्तर

नामक दो बौद्ध प्रचारकों ने (जिन्हें मोग्गलिपुत्र ने नियुक्त किया था) सुवर्ण-भूमि के निवासियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था (दे० महावंश 12,6)। इसी प्रदेश से सर्वप्रथम बौद्ध बनने वाले दो व्यापारी तपुस और भल्लुक भारत जाकर बुद्ध के आठ केश लाए थे जिन्हें उन्होंने रंगून के निकट श्वेदेगुन पेगोडा में संरक्षित किया था।

सुवर्णप्रस्थ

संभवतः सोनीपत का प्राचीन नाम।

सुवर्णभूमि दे० सुवर्णद्वीप

सुवर्णमाली (लंका)

यह स्थान महावंश 27,4 में उल्लिखित है। इसका वर्तमान नाम सवन-वैलि कहा जाता है।

सुवर्णमुखी

(1) (मद्रास) तिरुपदी स्टेशन से 1 मील दक्षिण में है। नदी के किनारे प्राचीन मंदिर स्थित है जिसके गोपुर की भित्तियों पर सुंदर तथा सूक्ष्म शिल्प प्रदर्शित है।

(2) (आं० प्र०) काल-हस्ती के निकट बहने वाली नदी। नदीतट की पहाड़ी कैलाशगिरि कहलाती है।

सुवर्णरेखा

(1) (ज़िला मयूरभंज, उड़ीसा) मयूरभंज के उत्तरी भाग मे बहने वाली एक नदी जिसके निकट बंगाल के सेन राजाओं की प्रथम राजधानी काशीपुरी बसी हुई थी। (दे० काशीपुरी)

(2) जूनागढ़ (गुजरात) के निकट प्रवाहित होने वाली नदी; वर्तमान सोनरेखा। सुवर्णरेखा (दे० सुवर्णसिकता) और पलाशिनी (वर्तमान पला-शियों) का उल्लेख गिरनार की चट्टान पर अंकित सम्राट् स्कंदगुप्त के प्रसिद्ध अभिलेख में है। इस वर्णन के अनुसार इन दोनों नदियों का पानी रोककर सिंचाई के लिए झील बनाई गई थी। 453 ई० में उसका बांध घोर वर्षा के कारण टूट गया और तब स्कंदगुप्त के अधीन सौराष्ट्र के शासक चक्रपालित ने इसका जीर्णोद्धार करवाया था।

सुवर्णसिकता

सौराष्ट्र की नदी जिसका वर्णन पलाशिनी के साथ रुद्रदामन् के गिरनार-अभिलेख में है—'सुवर्णसिकतापलाशिनी प्रभृतीनां नदीनामतिमात्रोद्वृत्तैर्वेगैः'। इसका अभिज्ञान सुवर्णरेखा या वर्तमान सोनरेखा से किया गया है जो जूनागढ़

के निकट बहती है। (पलाशिनी वर्तमान पलाशियाँ है)। सुवर्णरेखा का उल्लेख गिरनार-स्थित स्कंदगुप्त के अभिलेख में भी है। मंडलीक-काव्य में भी सुवर्ण-सिकता को सुवर्णरेखा कहा गया है (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 3, पृ० 336)

सुवस्तु=सुवास्तु दे० स्वात

सुवेल

लंका में समुद्रतट पर स्थित एक पर्वत जहां सेना सहित समुद्र-पार करने के उपरांत श्रीराम कुछ समय के लिए शिविर बना कर ठहरे थे—'ततस्तम क्षोभ्यबलं लंकाधिपतये चराः सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन्' वाल्मीकि० रामा० युद्ध० 31, 1 अर्थात् तब रावण को उसके दूतों ने विशाल सेना से संपन्न राम के सुवेल पर्वत पर आगमन की सूचना दी। अध्यात्मरामायण 4, 8 के अनुसार 'तेनैवजग्मुः कपयो योजनानां शतंद्रुतम्, असंख्याताः सुवेलाद्रि रुरुधुः प्लवगोत्तमाः' अर्थात् उसी पुल पर से वानरसेना सौ योजन समुद्रपार चली गई और फिर असंख्य वानर वीरों ने सुवेल पर्वत को घेर लिया। तुलसीदास ने भी (रामचरितमानस, लंका, दोहा 10 के आगे) सुवेल का इसी प्रसंग में इस प्रकार वर्णन किया है—'यहां सुवेल शैल रघुवीरा, उतरे सेन सहित अति भीरा'। सुवेल बौद्ध साहित्य में वर्णित सुमनकूट और वर्तमान एडम्स पीक नामक पर्वत हो सकता है। इस पर्वत पर दो चरण चिह्न बने हैं जो प्राचीन काल में भगवान् राम के पैरों के निशान समझे जाते थे। महाभारत वनपर्व में इसी पर्वत को शायद रामक पर्वत या रामपर्वत कहा गया है।

सुषोमा

श्रीमद्भागवत 5,18,18 में उल्लिखित नदी—'सुषोमा शतद्रूश्चंद्रभागामरु-द्वृधा वितस्ता'। प्रसंगानुसार यह इरावती (रावी) या बियास (विपाशा) हो सकती है।

सुसंकुल

'मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम्, उलूकानुत्तरांश्चैवतांश्च राज्ञः समा-नयत्' महा० 27,11। यह कुलू की पहाड़ियों का कोई भाग जान पड़ता है। (दे० सुदामा)

सुसारी (म० प्र०)

यहां पूर्वमध्यकालीन भवनों के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

सुसुनिया दे० पुष्करण (1)

सुहागपुर (बुंदेलखंड, म० प्र०)

मध्यकालीन विशाल मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

सुहानिया (ज़िला ग्वालियर, म० प्र०)

भूतपूर्व रियासत ग्वालियर का एक प्राचीन नगर जिसका नाम ग्वालियर के दुर्ग में स्थित सासबाहु मंदिर के एक अभिलेख के अनुसार सिहपानीय है। तोमर राजपूतों का बनवाया हुआ 11वीं शती का एक विशाल शिवमंदिर यहां अभी तक स्थित है।

सुह्म

बंगाल के दक्षिणी समुद्रतट के प्रदेश का प्राचीन नाम (पाठांतर सुह्य)। पौराणिक कथाओं के अनुसार राजा बलि के चतुर्थ पुत्र सुह्म के नाम पर यह जनपद प्रसिद्ध हुआ था। दंडी के दशकुमारचरित में ताम्रलिप्ति को सुह्म प्रदेश के अंतर्गत बतलाया गया है जिससे इस देश की स्थिति का ज्ञान होता है। ताम्रलिप्ति नगरी ज़िला मिदनापुर (बंगाल) में समुद्रतट के निकट स्थित थी। इसका अभिज्ञान वर्तमान तामलुक से किया गया है किंतु महाभारत सभा० 30,24-25 में ताम्रलिप्ति और सुह्म का अलग-अगल उल्लेख है—'समुद्रसेनं निर्जित्य चन्द्रसेनं च पार्थिवम् ताम्रलिप्तं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा। सुह्मानामधिपं चैव ये च सागरवासिनः सर्वान्म्लेच्छगणांश्चेव विजिग्ये भरतर्षभः।' फिर भी इस उल्लेख से सुह्म का बंगाल-सागर के निकट स्थित होना सिद्ध होता है। कालिदास ने भी रघुवंश में सुह्म का वंग के पश्चिम में उल्लेख किया है—'अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिधुरयादिव, आत्मासंरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्—रघु० 4,35। इसके आगे 4,36 में वंग का उल्लेख है। टीकाकार वल्लभ ने 'सुह्मैः' पद की 'ब्रह्मदेशीयैःराजिभिः' टीका की है जो ठीक नहीं जान पड़ती। बुद्धचरित 21,13 में बुद्ध द्वारा सुह्म निवासियों के बीच अंगुलिमाल ब्राह्मण को विनीत किए जाने का उल्लेख है। यहां वे पाटलिपुत्र से चलकर अंगदेश होते हुए आए थे। धोयी कवि के पवनदूत (5,36) में भागीरथी को सुह्म में प्रवाहित माना है।

(2) महाभारत सभा० 27,21 में अर्जुन की उत्तर दिशा की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में सुह्म का उल्लेख इस प्रकार है—'ततः सुह्मांश्चचोलांश्च किरीटी पांडवर्षभः, सहितः सर्वसैन्येन् प्रामथत् कुरुनन्दनः'। चोल का अभिज्ञान चोलिस्तान से किया गया है जो वंक्षु या ऑक्सस नदी के दक्षिण में स्थित है। चोलिस्तान से संबंधित होने के कारण सुह्म इसी के पार्श्ववर्ती प्रदेश में स्थित रहा होगा। बंगाल के समुद्रतट का भी एक नाम सुह्म साहित्य में मिलता है

(दे० सुह्म) जो भारत की उतरी-पश्चिमी सीमा के परे स्थित इसी नाम के जनपद से अवश्य ही भिन्न है। महा० सभा० 27,21 में 'सुह्म' पाठ की शुद्धता अनिश्चित है।

सूकरक्षेत्र=शूकरक्षेत्र

सुक्तिमति=शुक्तिमती (दे० कृ० द० वाजपेयी—'मथुरा परिचय,' पृ० 15)

सूरजकुंड

दिल्ली से प्राय: 15 मील दक्षिण की ओर पूर्वमध्यकालीन एक नगर के खंडहर इस स्थान पर हैं। इस नगर की स्थापना 1000 ई० के लगभग तोमर-नरेश अनंगपाल ने की थी। सूरजकुंड इस क्षेत्र का सर्व प्राचीन स्मारक है। महाराज पृथ्वीराज चौहान की राजधानी 12वीं शती में इसी स्थान पर बसे हुए नगर में थी। पृथ्वीराज की इष्टदेवी जोगमाया का मंदिर जो सूरजकुंड से कुछ दूर स्थित है मूलरूप में पृथ्वीराज के समय का ही बताया जाता है।

सूरत (गुजरात)

पौराणिक किंवदंती में सूरत का प्राचीन नाम सूर्यपुर है। एक प्राचीन कथा के अनुसार ताप्ती या तापी नदी जो सूरत के निकट ही गिरती है, सूर्य-कन्या मानी गई है। सूर्यपुर जो बाद में सूरत कहलाया सूर्य-कन्या ताप्ती के संबंध के कारण ही इस नाम से अभिहित किया गया था। किंतु कई विद्वानों के मत में सूरत सुराष्ट्र या सोरठ का अपभ्रंश रूप है क्योंकि प्राचीन समय में सूरत, सौराष्ट्र का मुख्य बंदरगाह तथा नगर था। एक किंवदंती के अनुसार 15वीं शती के अंत में गोपी नामक एक हिंदू वणिक ने इस नगर की नींव ताप्ती के मुहाने पर डाली थी। यह भी कहा जाता है कि कुस्तुनतुनिया के सम्राट् के हरम से भाग कर यहां आई हुई सूरत नाम की एक महिला के नाम पर ही नगर का नाम सूरत पड़ा था। इस संबंध में यह भी जनश्रुति प्रचलित है कि गोपी ने किसी ज्योतिषी के कहने से इस व्यापारिक बस्ती का नाम सूर्यपुर रखा था जो बाद में गुजरात के किसी मुसलमान सूबेदार ने बदलकर सूरत कर दिया(सूरत कुरान के अध्याय को कहते हैं)। 1540 ई० में बने हुए एक किले के खंडहर यहां आज भी देखे जा सकते हैं। इसकी दीवारें आठ फुट चौड़ी हैं। अंग्रेजी ईस्टइंडिया कंपनी ने प्रथम बार 1608 ई० में यहां पदार्पण किया था किंतु पहली स्थायी व्यापारिक कोठी 1612 में बनी। इसकी स्थापना टॉमस एल्डवर्थ ने की थी। इस कार्य के लिए उसे मुगल-सम्राट् जहांगीर से फ़र्मान प्राप्त करना पड़ा था जो पुर्तगालियों पर बेस्ट नामक अंग्रेज द्वारा विजय करने के उपरांत सरलता से मिल गया था। मुगल-सम्राट् पुर्तगालियों से सदा रुष्ट

रहते थे। 16वीं शती तक तो यहां उस समय के सभ्य संसार के प्रायः सभी देशों के निवासी देखे जा सकते थे। अरब, यहूदी, पारसी, फ्रेंच, अंग्रेज, तुर्क और आर्मीनी व्यापारियों की भीड़ उस समय सूरत में क्रय-विक्रय करती हुई देखी जा सकती थी। औरंगजेब के समय में एक मुग़ल सूबेदार सूरत में रहता था। उस समय महाराष्ट्र में शिवाजी का प्रभाव बढ़ रहा था और उन्होंने तीन बार सूरत की कोठी को लूट कर अनंत धन-राशि प्राप्त की जिसकी सहायता से उन्हें अपने महान् कार्य को सम्पन्न करने में सफलता मिली। भूषण ने 'दिल्ली दलन दबाय करि शिव सरजा निश्शंक, लूट लियो सूरत शहर बंक्ककरि अति डंक' (शिवराजभूषण) लिखकर सूरत की लूट का निर्देश किया है। 1669 ई०तक सूरत का व्यापारिक महत्त्व अक्षुण्ण रहा। इस वर्ष यहां के अंग्रेजी अधिकारी जिरेल्ड आंजियर (Gerald Aungier) ने सूरत को छोड़ कर बंबई में अपना व्यापारिक केंद्र स्थापित करने का प्रस्ताव रखा जो शीघ्र ही कार्यान्वित हुआ। सूरत का किला (दे० ऊपर) एक तुर्की सरदार खुदावंद खां ने बनवाया था। सूरत में अंग्रेजों और मुग़लों के सीदी अरब सूबेदारों के झंडे साथ साथ फहराते थे। सूरत के बंदर से ही पहली बार जहांगीर के समय में तंबाकू भारत में लाया गया था जिसके कारण खाने वाले तंबाकू का नाम सुर्ती प्रचलित हुआ। सुर्ती शब्द उत्तरप्रदेश में अब भी चलता है।

सूरसेन = शूरसेन

सूर्यनाथ (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र)

इस स्थान के विषय में किंवदंती है कि यहां रावण की भगिनी शूर्पनखा का निवास-स्थान था। इसकी भेंट राम-लक्ष्मण और सीता से नासिक के निकट पंचवटी में हुई थी।

सूर्यनदी दे० सुरनदी (1)

सूर्यपुर दे० सूरत

सूलेमान

सिंध नदी के पश्चिम में स्थित पर्वत-श्रेणी। (दे० पारियात्र)

सेंग

कन्नौज (उ० प्र०) से 18 मील दूर यह स्थान शृंगी-ऋषि के आश्रम के रूप में प्रसिद्ध है। शृंगी-ऋषि ने राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ संपन्न किया था। सेंग शृंगी-ऋषि का ही अपभ्रंश कहा जाता है।

सेंधव (म० प्र०)

14वीं शती के पश्चात् की इमारतों के ध्वंसावशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है ।

सेहुंडा (बुंदेलखंड)

दतिया से 36 मील दूर काली सिंध के तट पर स्थित प्राचीन स्थान है । यहां मुगलकाल में बुंदेलों का राज्य था । छत्रसाल पर जब कालपी के सूबेदार शाह बंगश ने आक्रमण किया तो सेहुंडा के जागीरदार पृथ्वीसिंह ने उसकी सहायता की थी । दुर्गासप्तशती का हिंदी में अनुवाद करने वाले विद्वान् कवि अनन्य का यहीं निवास स्थान था । ये छत्रसाल के समकालीन थे ।

सेक

'सेकानपरसेकांश्च व्यजयत् सुमहाबलः' महा० सभा० 319 । सहदेव ने दक्षिण दिशा की विजययात्रा में इस देश पर और इसके पार्श्ववर्ती अपरसेक पर विजय प्राप्त की थी । प्रसंगानुसार इसकी स्थिति चंबल और नर्मदा के मध्यवर्ती प्रदेश में माननी उचित होगी ।

सेतकन्निक = शातकर्णिक

बौद्धविनयपिटक में इस नगर का नामोल्लेख है (सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट 17,38) । इसकी स्थिति मज्झिम या मध्यदेश की दक्षिणी सीमा पर बताई गई है । नगर का नाम शातकर्णि नरेशों के नाम पर प्रसिद्ध जान पड़ता है । अभिज्ञान अनिश्चित है ।

सेतव्य = सेतव्या

बौद्धकाल का एक व्यापारिक नगर जो श्रावस्ती से राजगृह (मगध) जाने वाले वणिक्पथ पर स्थित था (दे० कृ० द० वाजपेयी—युग-युग में उत्तर-प्रदेश, पृ० 6) । इस नगर का सेतव्या के रूप में उल्लेख बौद्ध ग्रंथ पायासि सुत्तन्त में है जिससे इसकी प्राचीनता का प्रमाण मिलता है । यह नगर उत्तर प्रदेश के पूर्वी या बिहार के पश्चिमी भाग में स्थित था । डा० मोतीचंद (दे० सार्थवाह) का विचार है कि यह स्थान शायद ज़िला गोंडा (उ० प्र०) में स्थित बालापुर के खंडहरों के स्थान पर बसा हुआ था । जैन ग्रंथ राजप्रश्नीय सूत्र में भी इस नगरी का उल्लेख है ।

सेयविया

जैन लेखकों के वर्णन के अनुसार यह नगर केकय देश (पंजाब) में स्थित था । इसका अभिज्ञान अनिश्चित है (दे० इंडियन एंटिक्वेरी, 1891 पृ० 375)। सेयविया शाब्दिक रूप से सेतव्या का अर्धमागधी अपभ्रंश जान पड़ता है

किंतु दोनों नगरों की स्थितियों का विभेद इन क्षेत्रों के एक समझने में कठिनाई उपस्थित करता है।

सेरी

सेरीवनिज जातक में इस जनपद का उल्लेख है। कुछ विद्वानों का मत है कि सेरी श्रीराज्य का अपभ्रंश है जो मैसूर के गंग राज्य का बोधक है। रायचौधरी के मत में सेरी श्रीविजय या श्रीविषय (सुमात्रा) का भी पर्याय हो सकता है।

सैरींध्र दे० सरहिंद

सैरौन (बुंदेलखंड)

मध्यकालीन बुंदेलखंड की वास्तुकला के अवशेषों के अवशेष इस स्थान से प्राप्त हुए हैं।

सैतवाहिनी

'करतोया सदानीरा बाहुदा सैतवाहिनी'–अमरकोश 1,10,33। इस उल्लेख में संभवतः सैतवाहिनी को बाहुदा नदी का ही पर्याय बताया गया है। (दे० बाहुदा)

सैदपुरभीतरी=भीतरी

सैनी (जिला मेरठ, उ० प्र०)

इस ग्राम का पूरा नाम मुजफ्फरनगर-सैनी है जो मेरठ से 6 मील दूर स्थित है। इस ग्राम के बीच में ऊंचे स्थान पर एक स्तंभ है जिसे डा० फ्यूरर ने प्राचीन हस्तिनापुर के महान् द्वार का अवशेष बताया है। (दे० हस्तिनापुर)

सैरंध्र दे० सरहिंद

सोंजत (जिला जोधपुर, राजस्थान)

रेलस्टेशन बिलाड़ा से 16 मील दूर स्थित है। स्थानीय किंवदंती है कि बाणासुर की पुत्री ऊषा का विवाह इसी स्थान पर हुआ था जो बाणासुर की राजधानी शोणितपुर के नाम से विख्यात था। इस प्रकार की किंवदंती अन्य स्थानों के विषय में भी प्रचलित है। (दे० शोणितपुर)

सोंधवाड़ (राजस्थान)

डग, गंगधार और पंचपहाड़ तहसीलों के सम्मिलित इलाके का प्राचीन राजस्थानी नाम।

सोंधी दे० दशपुर

सोत्थिवती दे० शुक्तिमती

सोदनी (जिला ग्वालियर, म० प्र०)

इस स्थान पर एक गुप्तकालीन मंदिर के खंडहर पाए गए हैं। एक शिव-मूर्ति तथा द्वारपालों की कई प्रतिमाएं जो गुप्तकाल की मूर्तिकला के सुंदर उदाहरण हैं, ध्वंसावशेषों से प्राप्त हुई हैं। द्वारपालों की प्रतिमाओं को देखकर एरण में स्थित मंदिर के अवशेषों से प्राप्त विशाल विष्णु की मूर्ति का ध्यान आ जाता है (दे० आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट 1925-26 चित्र 3)

सोनगिरि दे० सुवर्णगिरि

सोनपत=सोनीपत (पंजाब)

प्राचीन नाम संभवत: शोणप्रस्थ या सुवर्णप्रस्थ है। यहां से कन्नौजाधिप हर्षवर्धन (606-647 ई०) की एक ताम्रमुद्रा प्राप्त हुई है जो किसी ताम्र-दानपट्ट से सन्नद्ध रही होगी। दानपट्ट अप्राप्य है। इस मुद्रा पर हर्ष की वंशावली का उल्लेख इस प्रकार है—महाराज राज्यवर्धन (पत्नी—महादेवी), महाराज आदित्यवर्धन (पत्नी—महासेन गुप्ता), परम भट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्धन (पत्नी—यशोमती), राज्यवर्धन, हर्षवर्धन। प्रभाकरवर्धन को आदित्य अथवा सूर्य का उपासक तथा वर्णाश्रमधर्म का संरक्षक कहा गया है।

सोनपुर

(1) (बिहार) यह स्थान गंगा-शोण के संगम पर बसा हुआ है। संगम के एक ओर पाटलिपुत्र (पटना) तथा दूसरी ओर सोनपुर अवस्थित है। इसका पौराणिक नाम हरिहरक्षेत्र है। कहा जाता है कि हरिहरमंदिर की स्थापना विश्वामित्र के साथ जनकपुर जाते समय रामचंद्रजी ने की थी। गंडकी नदी का भी गंगा के साथ संगम सोनपुर के निकट ही होता है। तेल नदी भी पास ही बहती है जिसके तट पर सुवर्णमेरु महादेव का मंदिर है। इसके कारण ही संभवत: सोनपुर का यह नाम हुआ था। कहते हैं एक धनी व्यापारी ने सुवर्णमेरु का मंदिर बनवाया था। हरिहरक्षेत्र को पौराणिक कथा में वर्णित गजग्राह-युद्ध की स्थली माना गया है किंतु श्रीमद्भागवत 8, 2, 1 में इस कथा की घटना स्थली त्रिकूट नामक पर्वत पर मानी गई है, 'आसीद् गिरिवरो राजस्त्रिकूट इति विश्रुत:, क्षीरोदेनावृत: श्रीमान् योजनायुत्तमुच्छ्रित:'। बिहार में त्रिकूट नामक पर्वत वैद्यनाथ के निकट है किंतु वह सोनपुर से काफी दूर है।

(2) महानदी (उड़ीसा) पर बसा हुआ नगर। इसके निकट ही प्राचीन ययाति-नगरी स्थित थी।

सोनभंडार (बिहार)

राजगृह के निकट वैभार पहाड़ी के दक्षिणी क्रोड में उत्खनित दो गुहाएं

तीसरी-चौथी शती ई० में एक जैन साधु द्वारा बनवाई गई थीं जैसा कि एक अभिलेख से ज्ञात होता है, 'निर्वाण लाभाय तपस्वी योग्येशुभे गुहे···र्हत प्रतिमा प्रतिष्ठे आचार्यरत्नं मुनिवैरदेवः विमुक्तये-कारयद्-दीर्घतेजाः' (?)। यह अभिलेख, लिपि के आधार पर, तीसरी या चौथी शती ई० का जान पड़ता है। कुछ विद्वानों का मत है कि वैभार पर्वत की सप्तपर्णि-गुहा सोनभंडार का ही दूसरा नाम है (दे० कनिंघम—आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट जिल्द 3, पृ० 140)। सप्तपर्णि-गुहा में प्रथम धर्म-संगीति का अधिवेशन बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् हुआ था जिसमें 500 भिक्षुओं ने भाग लिया था। किंतु उपर्युक्त अभिलेख से यह उपकल्पना गलत प्रमाणित हो गई है। (दे० गाइड टु राजगीर, पृ० 17) (दे० वैभार)

सोनरेखा=सुवर्णरेखा (2)

सोनगढ़ (ज़िला आदिलाबाद, आं० प्र०)

यहां 18वीं शती का बना हुआ एक किला है जो मुसलिम सैनिक वास्तु-शैली के अनुसार बना है। इस स्थान पर प्रागैतिहासिक श्मशानों तथा नव-पाषाण युगीन हथियारों तथा उपकरणों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

सोनागिरि

(1) (म० प्र०) मध्यकालीन बुंदेलखंड की वास्तुशैली में बने कई स्मारकों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है। इस पहाड़ी को सिद्धक्षेत्र माना जाता है। इसे श्रमणगिरि भी कहते हैं। [दे० श्रमणगिरि (2)]

(2) दे० राजगृह

सोनारगांव

(बंगाल, पूर्वपाकिस्तान) 1200 ई० में गौड़ाधिप लक्ष्मणसेन ने जिनकी राजधानी लखनौती में थी, मुहम्मद बखतियार खिलजी द्वारा धोखे से परास्त किए जाने पर, लखनौती को छोड़कर सोनारगांव (सुवर्णग्राम) में अपनी राजधानी बनाई थी। यह नगर ढाके के निकट स्थित था। सेन-वंशी की राजधानी यहां 13वीं शती ई० तक रही थी।

सोनारी (ज़िला भूपाल, म० प्र०)

सांची के निकट स्थित है। यहां अशोक के समय के स्तूप हैं। इनमें से एक में से स्फटिक-मंजूषा प्राप्त हुई थी जिसके अंदर एक छोटे-से पत्थर पर एक ब्राह्मी लेख उत्कीर्ण पाया गया था। इससे सूचित होता है कि इस मंजूषा में हिमवत् प्रदेशीय गोतीपुत्र दुदुभिसार (दुदुंभिसार) के अस्थि-अवशेष सुरक्षित थे। अन्य दो मंजूषाओं में से जो स्तूप से प्राप्त हुई थीं, कोटीपुत्र

कस्सपगोत्त तथा कोंडनीपुत्त मज्झिम के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए थे। ये सब स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्सा द्वारा बौद्धधर्म के प्रचारार्थ हिमालयप्रदेश में भेजे गए थे। दुदुंभिसार का नाम बौद्ध साहित्य में अन्यत्र भी मिलता है। (इस प्रसंग के लिए दे० दीपवंश 8, 10)

सोनीपत=सोनपत

सोनीपेट (जिला करीमनगर, आं० प्र०)

मुगल सम्राट् औरंगजेब द्वारा 17वीं शती के अंत मे बनवाई हुई एक विशाल मसजिद के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

सोपारा दे० शूर्पारक

सोम दे० सोमोद्भवा

सोमक

विष्णुपुराण 2,4,7 में वर्णित प्लक्षद्वीप के सात मर्यादा-पर्वतों में से एक—'गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुंदुभिस्तथा, सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः।'

सोमकुंदका दे० कुंडधानी।

सोमगिरि

उत्तरकुरु या मेरु प्रदेश का स्वर्णिम प्रभा से मंडित एक पर्वत जिसका उल्लेख वाल्मीकि-रामायण के किष्किधाकांड में है (दे० उत्तरकुरु, मेरु)। इस उल्लेख से ऐसा जान पड़ता है कि इस पर्वत को मेरुप्रभा (Aurora Borealis) नामक प्रकृति के अद्भुत दृश्य से संबंधित माना जाता था। यह दृश्य उत्तर मेरुप्रदेशमें आज भी सामान्य रूप से देखा जाता है।

सोमतीर्थ

कालिदास रचित अभिज्ञान शाकुंतल प्रथम अंक में इस तीर्थ का उल्लेख है। जिस समय दुष्यंत शकुंतला से मिले थे कण्व-ऋषि सोमतीर्थ की यात्रा के लिए गए थे—'इदानीमेवदुहितरं शकुन्तलाम् अतिथिसत्काराय संदिश्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः'। संभवतः प्रभासपाटन (काठियावाड़, गुजरात) के निकट सोमनाथ के प्राचीन तीर्थ को ही कालिदास ने सोमतीर्थ कहा है। किंतु यह गढ़वाल की पहाड़ियों में स्थित सोमप्रयाग नामक तीर्थ भी हो सकता है (दे० सोमनदी), जो कण्वाश्रम (=मंडावर, ज़िला बिजनौर, उ० प्र०) के निकट ही है। पौराणिक किंवदंती के अनुसार कुरुक्षेत्र में भी एक तीर्थ इस नाम का था जहां कार्तिकेय ने तारकासुर को मारा था (महा० शल्य० 44, 52)।

सोमनदी (जिला गढ़वाल, उ० प्र०)

केदारनाथ के नीचे की पहाड़ियों पर बहने वाली छोटी नदी। सोमनदी और वासुकीगंगा के संगम पर सोमप्रयाग तीर्थ स्थित है। (दे० सोमतीर्थ)

सोमधेय

महाभारत में वर्णित जनपद जिसे भीमसेन ने पूर्व दिशा की दिग्विजय यात्रा में विजित किया था, 'सोमधेयांश्च निर्जित्य प्रययावुत्तरामुखः, वत्सभूमिं च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान् बलात्' महा० सभा० 30,10। यह वत्स जनपद (कौशांबी, ज़िला प्रयाग, उ० प्र० का परिवर्ती प्रदेश) के सन्निकट, दक्षिण की ओर स्थित था।

सोमनाथ=सोमनाथपाटन=पाटण (काठियावाड़, गुजरात)

पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित शिवोपासना का प्राचीन केंद्र। यह प्रभासक्षेत्र के भीतर स्थित है जो भगवान् कृष्ण के देहोत्सर्ग का स्थान (भालक तीर्थ) है। यहां से दो मील के लगभग सरस्वती, हिरण्या और कपिला नामक तीन नदियों का संगम या त्रिवेणी है। वीरावल बंदरगाह सन्निकट स्थित है। सोमनाथ का मंदिर भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध रहा है। अनेक बार इसे मुसलमान आक्रमणकारियों तथा शासकों ने नष्ट-भ्रष्ट किया किंतु बार-बार इसका पुनरुत्थान होता रहा। सोमनाथ का आदि मंदिर कितना प्राचीन है यह ठीक-ठीक कहना कठिन है किंतु, महाभारतकालीन प्रभासक्षेत्र से संबद्ध होने के कारण इसकी प्राचीनता सर्वमान्य है। कुछ विद्वानों का मत है कि अभिज्ञान शाकुंतल में उल्लिखित सोमतीर्थ, सोमनाथ का ही निर्देश करता है। किंतु सोमनाथ के विषय में सर्वप्राचीन ऐतिहासिक उल्लेख अन्हलवाड़ा-पाटण के शासक मूलराज (842-997 ई०) के एक अभिलेख में है जिसमें कहा गया है कि इसने चूड़ासम राजा ग्रहरिपु को हराकर सोमनाथ की यात्रा की थी। 1025 ई० में गज़नी के सुलतान महमूद ने इस मंदिर पर आक्रमण किया। उसने मंदिर के विषय में अनेक किंवदंतियां सुनी थीं। महमूद अत्यधिक धर्मांध तथा धनलोलुप व्यक्ति था और इस मंदिर पर आक्रमण करने में उसकी यही दोनों मनोवृत्तियां सक्रिय थीं। मंदिर के बाहर गुर्जर देश के राजाओं से उसे काफी कठिन मोर्चा लेना पड़ा और उसके अनगिनत सिपाही काम आए। (स्थानीय किंवदंती के अनुसार इन सैनिकों की कब्रें अब भी वहाँ हजारों की संख्या में बनी हुई हैं)। परन्तु अंत में मंदिर के अंदर प्रवेश करने में महमूद सफल हुआ। उसने मूर्ति को तोड़-फोड डाला और मंदिर को जलाकर राख कर दिया। महमूद शीघ्र ही यहां से लौट गया क्योंकि उसे ज्ञात हुआ कि राजपूत राजा परमदेव, उसके

लौटने के मार्ग को घेरने के लिए बढ़ा चला आ रहा था। महमूद गजनी के द्वारा विनष्ट किए जाने के पश्चात् सोमनाथ के मंदिर का पुनर्निर्माण संभवतः गुर्जर नरेश भोजदेव ने करवाया था जैसा कि इनकी उदयपुर-प्रशस्ति से सूचित होता है। मेरुतुंगाचार्य रचित प्रबंध-चितामणि में भीमदेव के पुत्र कर्णराज की पत्नी मयणल्लदेवी की सोमनाथ की यात्रा का उल्लेख है। 1100 ई० में इसके पुत्र सिद्धराज ने भी यहां की यात्रा की थी। भद्रकाली मंदिर के अभिलेख (1169 ई०) से भी ज्ञात होता है कि जयसिंह के उत्तराधिकारी नरेश कुमारपाल ने सोमनाथ में एक मेरुप्रासाद बनवाया था। इस लेख में उस पौराणिक कथा का भी जिक्र है जिसमें कहा गया है कि यहां सोमराज ने सोने, कृष्ण ने चांदी और भीम ने पत्थरों का मंदिर बनवाया था। देवपाटन की श्रीधर प्रशस्ति (1216 ई०) से यह भी विदित होता है कि भीमदेव द्वितीय ने यहां मेघध्वनि नामक एक सोमेश्वर मंडप का निर्माण करवाया था। सारंगदेव की, 1292 ई० में लिखित प्रशस्ति में उसके द्वारा सोमेश्वर-मंडप के उत्तर में पांच मंदिर और गंड त्रिपुरांतक द्वारा दो स्तंभों पर आधृत एक तोरण बनवाए जाने का उल्लेख है। 1297 ई० में अलाउद्दीन खिलजी के सरदार अलफखां ने सोमनाथ पर आक्रमण किया और इस प्रसिद्ध मंदिर को जो अब तक पर्याप्त विशाल बन गया था, नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। तत्पश्चात् पुनः महिपालदेव (1308-1325 ई०) ने इसका जीर्णोद्धार करवाया। इसके पुत्र खंगार (1325-1351 ई०) ने मंदिर में शिव की प्रतिमा की प्रतिष्ठापना की। इससे पूर्व, मंदिर पर 1318 ई० मे एक छोटा आक्रमण और हुआ था जिसका उल्लेख कजिन्स ने 'सोमनाथ एंड अदर मेडिईवल टेम्पल्स इन काठियावाड़' नामक ग्रंथ में (पृ० 25) किया है। किंतु इससे कहीं अधिक भयानक आक्रमण 1394 ई० में गुजरात के सूबेदार मुजफ्फरखां ने किया और मंदिर को प्रायः भूमिसात् कर दिया। किंतु जान पड़ता है कि शीघ्र ही अस्थायी रूप में मंदिर फिर से बन गया था क्योंकि 1413 ई० में मुजफ्फर के पौत्र अहमदशाह द्वारा सोमनाथ मंदिर का पुनः ध्वंस किए जाने का वर्णन मिलता है। 1459 ई० में गुजरात के शासक महमूद बेगड़ा ने धर्मांधता के आवेश में मंदिर को अपवित्र किया जिसका उल्लेख दीवान रणछोड़जी अमर की तारीखे-सोरठ में है। यह मंदिर इस प्रकार निरंतर बनता-बिगड़ता रहा। 1699 ई० में मुगल-सम्राट् औरंगजेब ने भारत के अन्य प्रसिद्ध मंदिरों के साथ ही इस मंदिर को विनष्ट करने के लिए भी फरमान निकाला किंतु मीराते अहमदी नामक फारसी ग्रंथ से ज्ञात होता है कि 1706 ई० तक स्थानीय हिंदू लोग इस मंदिर में बादशाह की आज्ञा

की अवहेलना करके बराबर पूजा करते रहे। इस वर्ष मंदिर के स्थान पर मसजिद बनाने का हुक्म धर्मांध औरंगजेब ने जारी किया किंतु मीराते-अहमदी में जो 1760 ई० के आसपास लिखी गई थी, मंदिर के मसजिद के रूप में प्रयोग किए जाने का कोई हवाला नहीं है। 1707 ई० में औरंगजेब के मरने के पीछे धीरे-धीरे मुसलमानों का प्रभुत्व इस प्रदेश से सदा के लिए समाप्त हो गया और 1783 ई० में अहल्याबाई होलकर ने सोमनाथ में, जहां इस समय मराठों का प्रभाव था मुख्य मंदिर के निकट ही एक नया मंदिर बनवाया। 1812 ई० में बड़ौदा के गायकवाड़ ने जूनागढ़ के नवाब से सोमनाथ के मंदिर का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। लेफ्टीनेंट पोस्टेंस के लेखों से ज्ञात होता है कि 1838 ई० में मंदिर की छत को, वीरावल के बंदरगाह के रक्षार्थ तोपें रखने के काम में लाया गया था। 1922 ई० में मंदिर के मंडप की छत नष्ट हो चुकी थी। 1947 ई० में भारत के स्वतंत्र होने के साथ ही, सोमनाथ के अविनाशी मदिर के पुनर्निर्माण का कार्य फिर से प्रारंभ किया गया।

सोमनाथ मंदिर की समृद्धि तथा कला-वैभव महमूद गजनी के आक्रमण के समय अपनी पराकाष्ठा को पहुंचे हुए थे। तत्कालीन मुसलमान लेखकों के अनुसार मंदिर का गर्भगृह, जहां मूर्ति स्थापित थी, जड़ाऊ फ़ानूसों से सजा था और द्वार पर कीमती पर्दे लगे हुए थे (कमीलुत्तवारीख, जिल्द 9, पृ० 241)। गर्भगृह के सामने 200 मन की स्वर्ण शृंखला छत से लटकी हुई थी जिसमें सोने की घंटियां लगी थीं जो पूजा के समय निरन्तर बजती रहती थीं। गर्भगृह के पास ही एक प्रकोष्ठ में अनेक रत्नों का भंडार भरा हुआ था। मंदिर के व्यय के लिए दस सहस्रग्रामों की जागीर लगी हुई थी। मंदिर के एक सहस्त्र पुजारी थे। चंद्रग्रहण के समय मंदिर में विशेष रूप से पूजा होती थी क्योंकि मंदिर के अधिष्ठातृ-देव शिव की, चंद्रमा के स्वामी (सोमनाथ) के रूप में इस स्थान पर पूजा की जाती थी। (यहां शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक स्थित है)। मंदिर में तीन सौ गायक तथा देवदासियां भी रहती थीं तथा तीन सौ ही नापित जो यात्रियों के मुंडन के लिए नियुक्त थे। कहा जाता है कि प्रतिदिन कश्मीर से ताजे कमल के फूल और हरद्वार से ताज़ा गंगा-जल लाने के लिए सैकड़ों व्यक्ति मंदिर की सेवा में नियुक्त थे। कुछ मुसलमान इतिहास-लेखकों ने लिखा है (ये महमूद के समकालीन नहीं थे) कि मंदिर की मूर्ति मानवरूप थी तथा उसके अंदर हीरे-जवाहरात भरे थे जिन्हें महमूद ने मूर्ति तोड़ कर निकाल लिया। किंतु यह लेख सर्वथा अप्रामाणिक है। मूर्ति ठोस शिवलिंग के रूप में थी जैसा कि सभी प्राचीन

शिवमंदिरों की परंपरा थी। मूर्ति को नष्ट करते समय, अपार धनराशि के बदले उसे अछूता छोड़ देने की प्रार्थना पुजारियों द्वारा किए जाने पर धर्मांध महमूद ने उत्तर दिया था कि वह मूर्ति-विक्रेता न होकर मूर्तिभंजक कहलवाना अधिक पसंद करेगा। मंदिर के भीतर मूर्ति के अधर में लटके होने की बात भी मुसलमान लेखकों ने कही है। संभव है कि शिवलिंग के ऊपर छत से लटकने-वाली जलहरी के वर्णन के कारण ही बाद के मुसलमान इतिहास-लेखकों को यह भ्रम उत्पन्न हुआ हो। महमूद के साथ आए समकालीन इतिहास लेखकों ने ऐसा कोई निश्चित उल्लेख नहीं किया है किंतु यह भी संभव है कि मूर्ति, छत तथा भूमि पर लगे विशाल एवं शक्तिशाली चुंबकों द्वारा अधर में स्थित की गई हो। यदि यह तथ्य हो तो इसे तत्कालीन हिंदू विज्ञान का अपूर्व कौशल मानना पड़ेगा। वैसे मंदिर के विषय में अनेक कपोल-कल्पनाएं बाद के लेखकों ने की हैं जिनमें शेखदीन द्वारा रचित कविता मुख्य है (दे० वाटसन का लेख—इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द 8,1879, पृ० 160)

सोमनाथपुर (मैसूर राज्य)

मैसूर से 13 मील पूर्व कावेरी के तट पर स्थित है। श्रीरंगपट्टन यहां से 15 मील दूर है। भगवान् केशव का सुंदर मंदिर इस छोटे-से ग्राम का सर्वांग सुंदर स्मारक है। इसे 1268 ई० में मैसूर के होयसलवंशीय नरेश नरसिंह तृतीय के एक सेनापति सोमदेव ने बनवाया था। इस तथ्य का उल्लेख मंदिर के प्रवेश-द्वार पर अंकित है। सोमदेव ने मंदिर के चतुर्दिक् एक ग्राम भी बसाया था और अनेक घरों को बनवाकर उन्हें ब्राह्मणों को दान में दे दिया था। अभिलेख के अनुसार यहां के घरों में विद्या की इतनी अधिक चर्चा थी कि ग्राम के तोते भी शास्त्रार्थ करनेमें चतुर थे। यह मंदिर होयसल वास्तुकला का पूर्ण विकसित उदाहरण है और इस प्रदेश के हेलबिड़ तथा बेलूर के मंदिरों की भांति ही कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मंदिर एक विशाल चौक के अंदर स्थित है। चतु-र्दिक् बने हुए बरामदे में 64 कोष्ठ थे किंतु अब इनका कोई चिह्न नहीं हैं। मंदिर का आधार ताराकार है। इसमें तीन गर्भगृह अवस्थित हैं। बहिर्भित्तियों पर चारों ओर रामायण, महाभारत तथा पुराणों की अनेक कथाएं मूर्तिकारी के रूप में उत्कीर्ण हैं। इस मूर्तिकारी का शिल्प, कलाकौशल और रचना-विन्यास तत्कालीन दक्षिण के मंदिरों की शैली के अनुसार ही अद्भुत रूप से सुंदर है। मंदिर में स्तंभों के शीर्षों के रूप में जो संरचनाएं या ब्रेकेट हैं वे लावण्यमयी नारियों की मानवाकार प्रतिमाओं से बनी हैं जो आज भी दर्शक के हृदय पर मूर्तिकला के उदात्त सौंदर्य की अमिट छाप डालती हैं। इन्हें देखकर अंग्रेजी कवि कीट्स

की प्रसिद्ध पंक्ति, A thing of beauty is a joy for ever याद आती है। मंदिर के तीनों शिखरों का बाह्य भाग प्रायः 30 फुट तक घनी मूर्तिकारी से भरा पूरा है। मंदिर के मध्यवर्ती गर्भगृह की भीतरी छत गढ़े हुए पत्थरों के नक्काशीदार टुकड़ों को जोड़कर बनाई गई हैं। केशवमंदिर की मूर्तिकारी के विषय में विल ड्यूरेंट Will Durant लिखता है—'the gigantic masses of stone are here carved with the delicacy of lace'–अर्थात् विशालकाय भारी-भरकम पत्थरों पर यहां सूक्ष्म और बारीक नक्काशी इसी प्रकार की गई है मानों सुंदर बेल-बूटे काढ़े गए हों।

सोमनाथ स्तूप दे० श्रावस्ती

सोमपुरी (बंगाल)

पहाड़पुर के निकट स्थित इस नगरी की ख्याति का कारण एक मध्यकालीन बौद्ध विहार है। विहार के साथ ही साथ यह शिक्षा का केंद्र भी था जहां दूर-दूर से बौद्ध विद्यार्थी अध्ययनार्थ आते थे।

सोमप्रयाग (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०)

केदारनाथ से बदरीनाथ जाने वाले मार्ग पर प्राचीन तीर्थ जो सोमनदी तथा वासुकीगंगा के संगम पर स्थित है। (दे० सोमतीर्थ)

सोमरथ (ज़िला मिर्जापुर, उ० प्र०)

प्राचीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है।

सोमेश्वर

(1) (ज़िला अलमोड़ा, उ० प्र०) अलमोड़ा से प्रायः 19 मील पर स्थित सुंदर स्थान है। यहां सोमेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर है।

(2) (बिहार) हरिनगर स्टेशन से यहां तक (ऊंचाई समुद्रतल से 2884 फुट) सड़क गई है। पहाड़ी पर प्राचीन किले के खंडहर हैं।

सोमोद्भवा

नर्मदा नदी का पर्याय [दे० अमरकोश—'रेवातुनर्मदा सोमोद्भवा मेकल-कन्यका'। रघुवंश 5,59 में कालिदास ने नर्मदा के इस नाम का उल्लेख किया है—'तथेत्युपस्पृश्य पयः पवित्रं सोमोद्भवायाः सरितो नृसोमः, उदङ्मुखः सोऽस्त्र-विदस्त्रमंत्रं जग्राहतस्मान्निगृहीत शापात्'। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार नर्मदा की नहर किसी सोमवंशीय राजा ने निर्मित की थी। इसी से नदी को सोमोद्भवा कहा जाने लगा था। हर्षचरित के प्रथमोच्छ्वास में बाण ने शोण को विंध्यगिरि के चंद्र नामक पर्वत से निस्सृत माना है। शोण और नर्मदा दोनों अमरकंटक से निकलती हैं और चंद्र इसी पर्वत का नाम जान

पड़ता है। यह तथ्य नर्मदा के सोमोद्भवा नाम से सिद्ध होता है। (सोम=चंद्र)

सोरठ

सौराष्ट्र (काठियावाड़, गुजरात) का पश्चिमी भाग। यह नाम सौराष्ट्र का ही अपभ्रंश है। हिंदी का प्रसिद्ध छंद सोरठा इसी देश से ही संबद्ध माना जाता है। सोरठ नाम का एक प्रसिद्ध राग भी है।

सोरेय्य

सोरों का प्राचीन नाम।

सोरों

यह कासगंज (ज़िला एटा, उ० प्र०) से 9 मील दूर प्राचीन शूकरक्षेत्र है। पहले सोरों के निकट गंगा बहती थी, अब दूर हट गई है। पुरानी धारा के तट पर अनेक प्राचीन मंदिर स्थित हैं। तुलसीदास ने रामायण की कथा अपने गुरु नरहरिदास से प्रथम बार यहीं सुनी थी। उनके भ्राता नंददास जी द्वारा स्थापित बलदेव का मंदिर सोरों का प्राचीन स्मारक है। गंगा के तट पर एक प्राचीन स्तूप के खंडहर भी मिले हैं जिनमें सीताराम के नाम से प्रसिद्ध मंदिर स्थित हैं। कहा जाता है इसे राजा बेन ने बनवाया था। प्राचीन मंदिर काफ़ी विशाल था जैसा कि उसकी प्राचीन भित्तियों की गहरी नींव से प्रतीत होता है। अनेक प्राचीन अभिलेख भी मंदिर पर उत्कीर्ण हैं जिनमें सर्वप्राचीन अभिलेख 1226 वि० सं० = 1169 ई० का है। कहा जाता है कि इस मंदिर को 1511 ई० के लगभग सिकन्दर लोदी ने नष्ट कर दिया था। सोरों के प्राचीन नाम सोरेय्य का उल्लेख पाली साहित्य में है।

सोलह जनपद दे० **षोडश जनपद**

सोहगौर

(उ० प्र०) गोरखपुर से 14 मील दूर इस ग्राम में 1874 ई० में एक ताम्रपट्ट प्राप्त हुआ था जिस पर महत्त्वपूर्ण अभिलेख अंकित था। इसमें श्रावस्ती के कुछ राज्यअधिकारियों के सरकारी अन्नभंडार के रक्षकों के प्रति आदेश सन्निहित है। इसमें कहा गया है कि इस प्रदेश में अकाल पड़ने के कारण सरकारी भंडार से अकाल-पीड़ितों को बराबर अन्न बांटा जाए। अन्न के सम-भक्त (Rationing) किए जाने के विषय में दिव्यावदान (प्रथम शती ई०) के 10वें अध्याय में उल्लेख है। इस संबंध में अवदानशतक (प्रथम शती ई०) में काशी-नरेश ब्रह्मदत्त द्वारा अकालपीड़ितों को समान मात्रा में अन्न बांटने का वर्णन है। स्वयं राजा ने एक भूखे निर्धन के साथ अपने द्विगुण भाग का बंट-वारा कर लिया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी समभक्त के विषय में सूचना

मिलती है ।

सौंदत्ती (महाराष्ट्र)

धारवाड़ से 25 मील दूर प्राचीन तीर्थ है । यहां रेणुकाद्रि पर्वत पर दत्तात्रेय का स्थान कहा जाता है । पर्वत परशुराम की माता के नाम पर प्रसिद्ध है । रेणुकाद्रि से 5 मील दूर मलप्रभा नामक नदी बहती है ।

सौंदे

बंबई-रायूचर रेल मार्ग पर जेऊर स्टेशन से 7 मील दूर यह ग्राम स्थित है जो कालभैरव के प्राचीन मंदिर के लिए विख्यात है । यह प्राचीन संवित् नामक तीर्थ है ।

सौगंधिक वन

(1) यह प्राचीन तीर्थ वर्तमान सर्गघाट है जो नर्मदा के तट पर स्थित है ।

(2) महाभारत, वनपर्व क तीर्थ-यात्रा प्रसंग में इस स्थान का वर्णन निम्नलिखित है—'सौगंधिकवनं राजंस्ततोगच्छेत् मानवः, तद्वनं प्रविशन्नेव सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततश्चापिसरिच्छ्रे्ष्ठा नदीनामुत्तमानदी, प्लक्षाद्देवी स्नुता राजन् महापुण्या सरस्वती, तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निस्सृते जले' वन० 84, 4, 67 । इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान सरस्वती नदी के उद्गम के निकट स्थित था । सौगंधिकवन से छः शम्यानिपात पर (प्रायः आधा मील दूर) ईशानाध्युषित नामक तीर्थ था ।

सौपर्णिका (मैसूर)

कुल्लूर के निकट बहने वाली नदी । कुल्लूर में मूकांबिका देवी का सिद्ध-पीठ है जिसकी स्थापना आदि शंकराचार्य ने 8वीं शती ई० में की थी ।

सोभद्र

दक्षिण समुद्रतट के पंचनारी तीर्थों में से एक है । (दे० नारीतीर्थ)

सौभ=सौभनगर

महाभारत में कृष्ण के शत्रु शाल्व के नगर को सौभ कहा गया है । शाल्व ने शिशुपाल के वध के उपरांत उसका बदला लेने के लिए द्वारका पर आक्रमण किया था । सौभ को श्रीकृष्ण ने घोर युद्ध के पश्चात् नष्ट कर दिया था—'शाल्वस्य नगरं सौभं गतोऽहं भरतर्षभ, निहन्तुं कौरवश्रेष्ठ तत्र मे श्रृणु कारणम्' वन० 14,2 । शाल्व को सौभराट् भी कहा गया है—'मया किल रणे योद्धुं कांक्षमाणः स सौभराट्' वन० 14,11 किंतु महाभारत के वर्णन से यह भी जान पड़ता है कि सोम वास्तव में एक विशालकाय विमान था जो नगर की भांति ही जान पड़ता था । इसी में स्थित रहकर उसने द्वारकापुरी पर आकाश

से ही आक्रमण किया था, 'अरुन्धत्तां सुदुष्टात्मा सर्वतः पांडुनंदन, शाल्वो वैहायसं चापि तत् पुरं व्यूह्य विष्ठितः' अर्थात् उस दुष्टात्मा शाल्व ने द्वारका को चारों तरफ से घेर लिया। वह स्वयं उस आकाशचारी नगर (सौभविमान) पर व्यूह रचना करके स्थित था। सौभ को सुदर्शनचक्र से कृष्ण ने नष्ट कर दिया था, 'तत् समासाद्य नगरं सौभं व्यपगतत्विषम्, मध्येन पाटयामास क्रकचो दार्विवोच्छ्रितम्'। कुछ विद्वानों के मत में सौभनगर में मार्तिकावतक देश की राजधानी थी किंतु उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि यह नगर वास्तव में एक विशाल गगनविहारी विमान था जिसकी विशेषता यह थी कि यह आकाश में एक स्थान पर ठहरा रह सकता था और कामगामी (इच्छाचारी) था, 'सौभं कामगमं वीर मोहयन्मम चक्षुषी' वन० 22,9; 'एवमादि महाराज-विलप्य दिवमास्थितः कामगेन स सौभेन क्षिप्त्वा मां कुरुनन्दन' वन० 14,15। (दे० शाल्व; शाल्वपुर)

सौम्याक्षद्वीप

महाभारत, सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार एक द्वीप जिसे शक्तिशाली सहस्रबाहु ने जीता था, 'इन्द्रद्वीपं कशेरुं च ताम्रद्वीपं गभस्तिमत्, गांधर्वं वारुणं द्वीपं सौम्याक्षमिति च प्रभुः'। इसमें संभवतः ताम्रद्वीप लंका और वरुण बोर्नियो है। सौम्याक्ष इंडोनिज़िया का कोई द्वीप (सुमात्रा) हो सकता है। इंद्र-द्वीप संभवतः सुमात्रा का वह भाग था जिसकी राजधानी इंद्रपुरी थी।

सौरथ (विहार)

मधुवनी से सात-आठ मील पश्चिम की ओर एक प्रसिद्ध ग्राम है, जहां वार्षिक मेले में मैथिल ब्राह्मण अपने बालकों का विवाह ठहराने के लिए एकत्र होते हैं। सौरथ बौद्धकालीन स्थान प्रतीत होता है। दो विशालकाय ढूहों के खंडहर ग्राम के चतुर्दिक् एक मील तक विस्तृत हैं। ये संभवतः बौद्ध स्तूप थे।

सौराष्ट्र=सुराष्ट्र

वर्तमान काठियावाड़-प्रदेश जो समुद्र के भीतर आम्राकार भूमि पर स्थित है। महाभारत के समय द्वारकापुरी इसी देश में स्थित थी। सुराष्ट्र या सौराष्ट्र को सहदेव ने अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में विजित किया था (दे० सुराष्ट्र)। विष्णु-पुराण में अपरांत के साथ सौराष्ट्र का उल्लेख है—'तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः' विष्णु० 2,3,16। विष्णु० 4,24,68 में सौराष्ट्र में शूद्रों का राज्य बताया गया है, 'सौराष्ट्र विषयांश्च शूद्राद्याभोक्ष्यन्ति'। इतिहास-प्रसिद्ध सोमनाथ का मंदिर सौराष्ट्र ही की विभूति था। रैवतकपर्वत गिरनार पर्वतमाला का ही एक भाग था। अशोक, रुद्रदामन् तथा गुप्तसम्राट् स्कंदगुप्त

के समय के महत्त्वपूर्ण अभिलेख जूनागढ़ के निकट एक चट्टान पर अंकित हैं, जिससे प्राचीन काल में इस प्रदेश के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। रुद्रदामन् के अभिलेख में सुराष्ट्र पर शकक्षत्रपों का प्रभुत्व बताया गया है (दे० सुराष्ट्र तथा गिरनार)। जान पड़ता है अलक्षेंद्र के पंजाब पर आक्रमण के समय वहां निवास करने वाली जाति कठ जिसने यवन सम्राट् के दांत खट्टे कर दिए थे कालांतर में पंजाब छोड़कर दक्षिण की ओर आ गई और सौराष्ट्र में बस गई जिससे इस देश का एक नाम काठियावाड़ भी हो गया। इतिहास के अधिकांश काल में सौराष्ट्र पर गुजरात-नरेशों का अधिकार रहा और गुजरात के इतिहास के साथ ही इसका भाग्य बंधा रहा। सौराष्ट्र के कई भागों के नाम हमें इतिहास में मिलते हैं। हालार (उत्तर-पश्चिमी भाग), सोरठ (पश्चिमी भाग), गोहिलवाड़ (दक्षिण-पूर्वी भाग) आदि। सोरठ और गोहिलवाड़ के बीच का प्रदेश बबड़िया-वाड़ या बर्बर देश कहलाता था। इसी इलाके में बबर शेर या सिंह पाया जाता है। सौराष्ट्र के बारे में एक प्राचीन कहावत प्रसिद्ध है—'सौराष्ट्रे पंचरत्नानि नदीनारीतुरंगमाः चतुर्थः सोमनाथश्च पंचमम् हरिदर्शनम्'; इस श्लोक में सौराष्ट्र की मनोहर नदियों–जैसे चंद्रभागा, भद्रावती, प्राची-सरस्वती, शशिमती, वेत्रवती, पलाशिनी और सुवर्णसिकता; घोघा आदि प्रदेशों की लोक-कथाओं में वर्णित सुंदर नारियों, सुंदर अरबी जाति के तेज़ घोड़ों और सोमनाथ और कृष्ण की पुण्यनगरी द्वारका के मंदिरों को सौराष्ट्र के रत्न बताया गया है।

सौरीपुर (ज़िला आगरा, उ० प्र०)

बटेश्वर या बटेसर का प्राचीन नाम है जो शौरिपुर का अपभ्रंश है। शौरि यादवों का नाम था। इस स्थान पर यदुवंश में जैनो के 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ था। जैन साहित्य में मथुरा को भी सौरीपुर कहा गया है (दे० उत्तराध्ययन)। किंतु ढाल सागर नामक एक जैन ग्रंथ में ही दोनों को भिन्न बताया गया है।

सौवर्ण्यकुड्ड

प्राचीन काल में इस नगर में बना हुआ ऊनी कपड़ा बहुत प्रसिद्ध था। इसका अभिज्ञान अनिश्चित है।

सौवीर

गुजरात, दक्षिणी सिंध (पाकि०) तथा दक्षिणी पंजाब के प्रदेश का प्राचीन नाम। महाभारत-काल में दक्षिण-सिंधु देश को सौवीर कहा जाता था। सिंधु-राज जयद्रथ को सौवीर का राजा भी कहा गया है। सभापर्व, 51 में सिंधु-देश के घोड़ों तथा सौवीर के हाथियों का युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में उपायन

के रूप में दिए जाने का साथ-साथ ही उल्लेख है—'सैंधवानां सहस्राणि हयानां पंचविंशतिम् अददात् सैंधवो राजा हेममाल्यैरंलकृतान्। सौवीरो हस्तिभिर्युक्तान् रथांश्च त्रिशतावरान्, जातरूपपरिष्कारान् मणिरत्नविभूषितान्'। विष्णुपुराण में भी सौवीर और सिंधु-निवासियों का साथ ही वर्णन है—'सौवीराः सैंधवाः हूणाः शाल्वाः कोशलवासिनः'। रोरुकनगर (वर्तमान रोरी, सिंधु, पाकि०) सौवीर में ही स्थित था (दे० दिव्यावदान पृ० 545)। यहां के राजा रुद्रायण का दिव्यावदान में उल्लेख है। मिलिंदपन्हो (सेक्रेड् बुक्स ऑव दि ईस्ट 36, पृ० 269) से सूचित होता है कि सौवीर में सिंध के समुद्रतट का प्रदेश भी सम्मिलित था (सिंधु देश, सिंधु नदी के पश्चिम की अन्तर्भूमि का नाम था)। सौवीर में समुद्रतट के पश्चिम की ओर मुलतान तक का प्रदेश भी शामिल था जैसा कि अलबेरुनी के साक्ष्य (1,302) से सिद्ध होता है। अलबेरूनी ने सौवीर को मुलतान और जहरावार प्रदेशों का नाम बताया है। उसकी सूचना का स्रोत वाराहमिहिर संहिता जान पड़ती है। जैन ग्रंथ प्रवचन-सारद्धार में इस देश की राजधानी का नाम वीतभय दिया हुआ है। एक अन्य जैन सूत्र व्याख्याप्रज्ञप्ति में यह नाम वीतहव्य है जो राजा केशी के समय में बिल्कुल उजाड़ हो गया था। शकक्षत्रप रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में उसके द्वारा सौवीर को विजित किए जाने का उल्लेख है—'आनर्तसुराष्टश्वभ्रभरुकच्छ सिंधुसौवीरकुकुरापरान्त निषादादीनां समग्राणां' (दे० गिरनार)। अग्निपुराण में देविका नदी (जो मुलतान या मूलस्थान के निकट बहती थी) का संबंध सौवीर से बताया गया है—'सौवीरराजस्यपुरा मैत्रेयोभूत पुरोहितः, तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे'—अग्नि० अध्याय 200। इससे अलबेरुनी द्वारा वर्णित तथ्य प्रमाणित होता है। ग्रीक लेखकों ने सौवीर को सोफीर या ओफीर लिखा है। पाणिनि के अनुसार सौवीर के गोत्रों में उत्पन्न व्यक्तियों के नामों में 'आयनि' प्रत्यय लगता था जैसे मिमत में उत्पन्न मैमतायनि, फांटाहृत में उत्पन्न फांटाहृतायनि। सिंधी लोगों के नामों में अभी तक 'आनी' शब्द लगता है जैसे कृपलानी, वास्वानी आदि।

स्कंदगुप्तवट

बिहार (ज़िला पटना, बिहार) के निकट एक ग्राम जिसका उल्लेख बिहार से प्राप्त स्कंदगुप्त के समय के अभिलेख में है (दे० बिहार)

स्तंभतीर्थ=खंभात

जैन स्तोत्र तीर्थमालाचैत्य वंदन में इस तीर्थ का नामोल्लेख है—'विंध्यस्थंभन शीट्ठमीट्ठनगरे राजद्रहे श्रीनगे।'

स्तनकुंड दे० गौरीशिखर

स्त्रीराज्य

महाभारत,शांति० 4,7 में स्त्रीराज्य के अधिपति शृगाल का उल्लेख है—'शृगालश्च महाराज स्त्रीराज्याधिपतिश्च'। यह कलिगराज चित्रांगद की पुत्री के स्वयंवर में गया था। स्त्रीराज्य का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी है। स्त्रीराज्य की स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं है। चीनी यात्री युवानच्वांग ने सुवर्णगोत्र नामक स्थान पर स्त्रियों के शासन का वर्णन अपने यात्रावृत्त में किया है। विक्रमांकदेवचरित, 18,57 तथा गरुड़पुराण 55 में इसे सुवर्णगोत्र कहा गया है। जैमिनीभारत, 22 में स्त्रीराज्य की शासिका प्रमीला और अर्जुन के युद्ध का उल्लेख है। श्री नं० ला० डे० के अनुसार स्त्रीराज्य में गढ़वाल-कुमायूं का एक भाग सम्मिलित था।

स्थाणुमती

(1) वाल्मीकि रामायण अयो० 71,16 के अनुसार गोमती (उ० प्र०) के पश्चिम की ओर बहने वाली नदी जिसे भरत ने केकय देश से अयोध्या आते समय एकसाल नामक स्थान के निकट पार किया था, 'एकसाले स्थाणुमतीं विनते गोमतीनदीम्, कलिंगनगरे चापि प्राप्य सालवनं तदा'।

(2) बुद्धचरित 21,9 के अनुसार बुद्ध ने कूटदत्त ब्राह्मण को इस स्थान पर प्रव्रजित किया था। यह ग्राम राजगृह के निकट था।

स्थाण्वीश्वर दे० स्थानेश्वर

स्थानेश्वर

ज़िला करनाल, हरियाणा में स्थित वर्तमान थानेसर प्राचीन स्थानेश्वर या स्थाण्वीश्वर है। कहा जाता है कि इस स्थान के परिवर्ती प्रदेश में अनेक बार निर्णायक युद्धों द्वारा भारत के भाग्य का निपटारा हुआ है। महाभारत के युद्ध की स्थली कुरुक्षेत्र इसी के निकट है। पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी की सेनाओं में दो बार युद्ध इसी स्थान के पास तरायन के रणस्थल में हुए जिनके फलस्वरूप मुसलमान सलतनत की नींव भारत में जमी। पानीपत का मैदान भी जहां भारतीय इतिहास के तीन प्रसिद्ध युद्ध हुए थे, इसी इलाके के अंतर्गत है। बाणभट्ट ने हर्षचरित में कन्नौजाधिप महाराजाधिराज हर्ष (606-636 ई०) के पिता प्रभाकरवर्धन की राजधानी स्थानेश्वर (स्थाण्वीश्वर) ही में बतायी है। बाण ने इसे श्रीकंठ जनपद का प्रमुख स्थान माना है। उसके काव्यमय वर्णन के अनुसार इस देश (श्रीकंठ) में स्थाण्वीश्वर नामक एक छोटासा देश है, 'यह देश जगती के नवयौवन के समान, उद्यानपंक्तियों के

मनोहर पुष्पों के पराग से रमणीय जान पड़ता है। स्वर्ग की तरह इस के प्रांत-भाग मरुतों के द्वारा उद्वीजित चमरीगाय के बालव्यजनों के समान धवल दिखाई देते हैं। कृतयुग के शिविर की तरह इसकी दसों दिशाएं यज्ञ की प्रज्वलित सहस्रों अग्नियों से प्रदीप्त दिखाई देती हैं। उत्तरकुरुदेश के प्रतिद्वंद्वी के समान वह कलकल ध्वनि करती विशाल नदियों (या सेनाओं) से भरा पूरा है'; इत्यादि (दे० हर्षचरित, हिंदी अनुवाद सूर्यनारायण चौधरी, पृ० 122)। बाणभट्ट ने यहां की जिस समृद्धि का वर्णन किया है उसकी पुष्टि चीनी यात्री युवानच्वांग के यात्रावृत्त से भी होती है। हर्ष ने अपने राज्य का पूर्व की ओर विस्तार होने के कारण अपनी राजधानी स्थाण्वीश्वर से हटाकर कन्नौज में बनाई थी। इस स्थान पर सिद्धशिव-मंदिर को हर्ष ने अपने चक्रवर्ती सम्राट् बनने के उपलक्ष में बनवाया था। महमूद गजनी ने 1014 में स्थानेश्वर पर आक्रमण किया और इस प्रसिद्ध शिवमंदिर की शिलाओं से एक मसजिद बनवाई जो थानेसर के पश्चिम में आज भी विद्यमान है। अलबेरूनी ने शायद थानेसर को ही गुडदेश नाम से अभिहित किया है। मुहम्मद गौरी और सिकंदर लोदी ने भी इस स्थान पर हमले किए थे। 1567 ई० में सूर्यग्रहण के अवसर पर अकबर ने यहां (कुरुक्षेत्र) की यात्रा की थी। मुलतान-दिल्ली के राजपथ पर स्थित होने के कारण आक्रमणकारियों के प्रभाव से यह स्थान मुश्किल से बच पाता था। तैमूरलंग ने भी इस धनी नगर को लूट कर नष्टभ्रष्ट कर दिया था। थानेसर का एक रोचक स्थान शेखचिल्ली का रोजा है। कहते हैं इसे शाहजहां ने बनवाया था। शेखचिल्ली की हास्यकथाएं भारत भर में प्रसिद्ध हैं।

स्थाण्वीश्वर (स्थाणु ईश्वर) शिव का नाम है। जान पड़ता है कि इस नगर में प्राचीन काल से ही शिव की उपासना का केंद्र था जैसा कि बाणभट्ट के वर्णन से सिद्ध भी होता है। (हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वास)

स्थिरपुर (राजस्थान)

पालनपुर-कंडला (गांधीधाम) रेलमार्ग पर देवराज स्टेशन के निकट प्राचीन जैन तीर्थ। यहां पूर्वकाल में विशाल जिनालय था जो मुसलमानों के आक्रमणों के फलस्वरूप नष्ट हो गया। आजकल भी यहां के खंडहरों से अनेक जैन मूर्तियां प्राप्त होती हैं। स्थिरपुर का वर्तमान नाम थराद है जो प्राचीन नाम का ही अपभ्रंश जान पड़ता है।

स्थूलकोष्ठक

बुद्धचरित 21,26 में वर्णित अनभिज्ञात नगर—'तब स्थूलकोष्ठ नगर में तथागत बुद्ध ने राष्ट्रपाल नामक व्यक्ति को धर्म की दीक्षा दी, जिसका धन

राजा की संपत्ति के बराबर था'।

स्यंदिका

पूर्वी उत्तर-प्रदेश में बहने वाली सई नदी का प्राचीन नाम। यह गोमती की सहायक नदी है। इसका उद्गम भवाली से नीचे कुमायूं की पहाड़ियों में है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार श्रीरामचंद्र ने अयोध्या से वन जाते समय इस नदी को गोमती के पश्चात् पार किया था—'गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यंदिकां नदीम्' वाल्मीकि अयो० 49,11। इस नदी को पार करने के पश्चात्, गंगातट पर, शृंगवेरपुर से पहले, श्रीराम ने पीछे छूटे हुए अनेक जनपदों वाले और मनु द्वारा इक्ष्वाकु को प्रदत्त, समृद्ध कोशल जनपद की भूमि सीता को दिखाई थी—'स महीं मनुना राज्ञा दत्तामिक्ष्वाकवे पुरा, स्फीतां राष्ट्रवतीं रामो वैदेहीमन्वदर्शयत्'—अयो० 49,12। इस वर्णन से सूचित होता है कि स्यदिका, कोशलजनपद की सीमा पर बहती थी (किंतु अयोध्या 49,8-9 से यह भी जान पड़ताहै कि वेदश्रुति नामक नदी भी कोसल की सीमा के निकट बहती थी)। भरत की चित्रकूट-यात्रा के संबंध में वाल्मीकि ने इस नदी का उल्लेख नहीं किया है। अध्यात्म-रामायण में स्यंदिका का कोई वर्णन राम के वनगमन के संबंध मे नहीं है। तुलसीदास ने रामचरितमानस, अयोध्याकांड 188 दोहे के आगे, सई का उल्लेख किया है, 'सई तीर बसि चले बिहाने, शृगवेरपुर सब निअराने'। तुलसी ने गोमती और गंगा के बीच में सई का वर्णन किया है जो भौगोलिक दृष्टि से ठीक है और वाल्मीकि के उपर्युक्त स्यंदिका-विषयक उल्लेख से मिल जाता है। सई लगभग 230 मील लंबी नदी है। यह जौनपुर से लगभग 10 मील दूर गोमती में मिलती है।

स्याम

थाईलैंड का प्राचीन भारतीय नाम। स्याम में भारतीय हिंदू उपनिवेश ई० सन् की प्रारभिक शतियों में (संभव है इससे पूर्व भी) स्थापित किए गये थे। भारत से संबंधित सर्वप्राचीन अवशेष भारतीय शिल्पियों की बनाई मूर्ति है जो प्रापाथोम नामक स्थान पर मिली है। वह द्वितीय शती ई० या उससे कुछ पूर्व की बताई जाती है। इस देश में हिंदू राज्य का उत्कर्षकाल 13वीं शती तक बना रहा। इस शती में यहां के प्राचीन निवासियों या थाई लोगों ने देश पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। स्याम का एक महत्त्वपूर्ण हिंदू राज्य द्वारावती नामक था जिसकी राजधानी लवपुरी (लोपबुरी) में थी।

स्यालकोट दे० शाकल

स्रुघ्न

चीनी यात्री युवानच्वांग को यह जनपद स्थानेश्वर (थानेश्वर, जिला करनाल, पंजाब) से मतिपुर (मंडावर, ज़िला बिजनौर, पश्चिमी उ० प्र०) आते समय मिला था। वाटर्स के अनुसार इसकी स्थिति यमुना के प्राचीन प्रवाह-पथ पर थी। इस प्रकार इस देश को (7वीं शती के पूर्वार्ध में) सहारनपुर (उ० प्र०) के पश्चिम की ओर यमुना के निकटवर्ती क्षेत्र में स्थित माना जा सकता है। श्री नं० ला० डे के अनुसार ज़िला देहरादून की कालसी स्रुघ्न में स्थित थी।

स्लीमनाबाद (ज़िला जबलपुर, म० प्र०)

जबलपुर-कटनी मार्ग पर 39वें मील के निकट स्थित है। इस कस्बे को 1832 ई० के लगभग कर्नल स्लीमेन ने, जिन्होंने तत्कालीन ठगी की प्रथा का अंत करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, बसाया था। इसके लिए उन्होंने कोहका नामक ग्राम की भूमि प्राप्त की थी (दे० जबलपुर ज्योति)। यहां एक प्राचीन शिवमंदिर स्थित है।

स्वभोगनगर दे० एरण

स्वभ्र=श्वभ्र

स्वभ्रमती=श्वभ्रमती (साबरमती नदी)

स्वयंप्रभागुहा (मद्रास)

दक्षिण रेल के कलयनल्लूर स्टेशन से ½ मील दूर स्थित एक पहाड़ी में 30 फुट लंबी गुहा है जिसे किंवदंती के अनुसार रामायण में उल्लिखित स्वयंप्रभा की गुहा कहा जाता है। कथा इस प्रकार है—सीतान्वेषण के समय वानरों को एक स्थान पर बहुत प्यास लगी। एक गुहा (=ऋक्षबिल) में से जल-विहंगमों को निकलते देखकर उन्होंने यहां जल का अनुमान किया। गुफा के अंदर प्रवेश करने पर उन्हें स्वयंप्रभा नाम की तपस्विनी के दर्शन हुए, जिसने इन्हें अपनी योगशक्ति से समुद्रतट पर पहुंचा दिया। इस कथा का वर्णन वाल्मीकि रामायण के किष्किंधाकांड सर्ग 50,51,52 में किया गया है—दे० ऋक्षबिल। स्वयंप्रभा ने अपना परिचय वानरों को इस प्रकार दिया था—'शाश्वतः कामभोगश्च गृहं चेदं हिरण्मयम् दुहितामेरु सावर्णेरहं तस्याः स्वयं प्रभा' किष्किंधा 51,16 तथा दे० 'तस्या अहं सखी विष्णुतत्परा मोक्षकांक्षिणी नाम्ना स्वयंप्रभा दिव्यगंधर्वतनयापुरा' अध्यात्म०, किष्किंधा, 6,53।

स्वराष्ट्र

संभवत: सुराष्ट्र या सौराष्ट्र (काठियावाड़) का नाम-भेद। इसका ,उल्लेख महाभारत, भीष्म० 9,48 में इस प्रकार है—'अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष, उपावृत्तानुपावृत्ता: स्वराष्ट्रा: केकयास्तथा'।

स्वर्गद्वार

मुहम्मद तुगलक (1325-51 ई०) ने कड़ा के निकट (ज़िला इलाहाबाद, उ० प्र०) इस नाम का एक नया नगर बसाया था। यहां उसने दोआबे के अकालपीड़ित लोगों को ले जाकर बसाया और अयोध्या से अन्न मंगावाकर उन्हें बांटा था।

स्वर्गपुरी (ज़िला पुरी, उड़ीसा)

हाथीगुंफा के निकट एक गुफा जहां खारवेल (चौथी शती ई० पू०) की रानी का एक अभिलेख है। इस गुफा को, इसी रानी ने जो हस्तिसिंह की पुत्री थी बनवाया था।

स्वर्गरोहिणी

केदारनाथ (ज़िला गढ़वाल, उ० प्र०) के निकट बहने वाली एक नदी। कहा जाता है यह वही नदी है जिसके किनारे-किनारे पांडव अपने अंतिम समय में हिमालय की पहाड़ियों में गलने के लिए गए थे।

स्वर्णगिरि

(1)=सुवर्णगिरि

(2) मारवाड़ (राजस्थान) में स्थित वर्तमान जलोर। इस जैन तीर्थ का तीर्थमाला चैत्यवंदन में इस प्रकार उल्लेख है—'वंदे स्वर्णगिरौ तथा सुरगिरौ श्रीदेवकीपत्तने'।

स्वर्णगोत्र=सुवर्णगोत्र

स्वर्णग्राम=सुवर्णग्राम (दे० सोनारगांव)

स्वर्णद्वीप=सुवर्णद्वीप

स्वर्णप्रस्थ=सुवर्णप्रस्थ

स्वर्णभूमि=सुवर्ण भूमि

स्वर्णमाली=सुवर्णमाली

स्वर्णरेखा=सुवर्णरेखा

स्वर्णसिकता=सुवर्णसिकता

स्वात

(1) सिंधु नदी (सिंध, पाकिस्तान) में पश्चिम की ओर से मिलने वाली उप-

नदी जिसका वैदिक नाम सुवास्तु है। सुवास्तु का अर्थ सुंदर वास्तु या भवनों से अलंकृत तटप्रदेश वाली नदी हो सकता है। सुवास्तु को ग्रीक लेखक एरियन ने सोआस्टस (Soastus) कहा है। स्वात में काबुल (वैदिक कालीन कुभा) नदी मिलती है। संगम पर रामायणकालीन पुष्कलावती नामक नगरी बसी हुई थी।

(2) स्वात या सुवास्त नदी का तटवर्ती देश जिसे सातवीं शती ई० में चीनी यात्री युवानच्वांग ने उद्यान नाम से अभिहित किया है। स्वात की काली मिट्टी से गंधार कला की अधिकांश मूर्तियां निर्मित हुई थीं। पेशावर संग्रहालय में इनका अच्छा संग्रह है।

हंपी (मैसूर)

प्रसिद्ध मध्यकालीन विजयनगर राज्य के खंडहर हंपी के निकट विशाल खंडहरों के रूप में पड़े हुए हैं। कहते हैं कि पंपपति के कारण ही इस स्थान का नाम हंपी हुआ है। स्थानीय लोग 'प' का उच्चारण 'ह' करते हैं और पंपपति को हंपपति (हंपपथी) कहते हैं। हंपी हंपपति का ही लघुरूप है। इस मंदिर में शिव के नंदी की खड़ी हुई मूर्ति है। हंपी में सबसे ऊंचा मंदिर विट्ठल जी का है। यह विजयनगर के ऐश्वर्य तथा कलावैभव के चरमोत्कर्ष का द्योतक है। मंदिर के कल्याणमंडप की नक्क़ाशी इतनी सूक्ष्म और सघन है कि देखते ही बनता है। मंदिर का भीतरी भाग 55 फुट लंबा है और इसके मध्य में ऊँची वेदिका बनी है। विट्ठल भगवान् का रथ केवल एक ही पत्थर में से कटा हुआ है। मंदिर के निचले भाग में सर्वत्र नक्क़ाशी की हुई है। लांगहर्स्ट के कथनानुसार यद्यपि मंडप की छत कभी पूरी नहीं बनाई जा सकी थी और इसके स्तंभों में से अनेक को मुसलमान आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया था तो भी यह मंदिर दक्षिणभारत का सर्वोत्कृष्ट मंदिर कहा जा सकता है। फ़र्ग्युसन ने भी इस मंदिर में की हुई नक्क़ाशी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कहा जाता है कि पंढरपुर के विट्ठल भगवान् इस मंदिर की विशालता देखकर यहां आकर फिर पंढरपुर चले गए थे। हजाराराम का मंदिर दुर्ग के अंदर ही स्थित है। इसका निर्माण कृष्णदेवराय के समय में ही प्रारंभ हो गया था। यह मंदिर राजपरिवार की रानियों की पूजा के लिए बनवाया गया था। मंदिर की दीवारों पर रामायण के सभी प्रमुख दृश्य बड़ी सुंदरता से उकेरे हुए हैं। इस मंदिर के स्तंभ घनाकार हैं (दे० विजयनगर)

हंस

विष्णुपुराण के अनुसार मेरु के उत्तर की ओर स्थित एक पर्वत—'शंख

कूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः, कालंजाद्याश्चतथा उत्तरे केसराचलाः' 2,2,29।

हंसकायन

महाभारत, सभा० 52,14 में उल्लिखित एक प्रदेश जहां के निवासी युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट की सामग्री लेकर उपस्थित हुए थे—'काश्मीराश्च कुमाराश्च घोरका हंसकायनाः, शिबित्रिगर्तयौधेया राजन्या मद्रकेकयाः'। कुछ विद्वानों ने हंसकायन का अभिज्ञान कश्मीर के उत्तर-पश्चिम में स्थित हुंजा प्रदेश से किया है जो प्रसंग से ठीक जान पड़ता है।

हंसकूट

(1) द्वारका के निकट स्थित पर्वत, 'हंसकूटस्ययत्छृंगमिन्द्रद्युम्नसरो महत्' महा० सभा० 38 दाक्षिणात्य पाठ। यह गिरनार पर्वतमाला का ही कोई भाग जान पड़ता है।

(2) हिमालय के उत्तर में स्थित पर्वत। यह, उत्तर कुरु-प्रदेश में स्थित शतश्रृंग-पर्वत के दक्षिण में स्थित था, 'इन्द्रद्युम्नसरः प्राप्य हंसकूटमतीत्य च शतश्रृंगे महाराज तापसःसमतप्यत'। इस पर्वत पर इन्द्रद्युम्न सरोवर स्थित था।

हंसमार्ग

हंसों के भारत में आने का मार्ग—हुंजा (काश्मीर) के इलाके के दर्रे।

हंसावती

पीगू (दक्षिण बर्मा) का प्राचीन भारतीय नाम। यहां भारतीय औपनिवेशिकों ने पांचवी-छठी शती ई० पू० में ही बस्तियां स्थापित करली थीं।

हकरा दे० वॉहिदा

हजारा दे० उरसा

हटा (ज़िला दमोह, म० प्र०)

गढ़मंडल-नरेश राजा संग्राम सिंह (मृत्यु 1541 ई०) के 52 गढ़ों में से एक। यहां की गढ़ी काफी प्राचीन थी।

हड्डी दे० अस्थि

हत्थिगाम=हत्थीगाम=हस्तिग्राम

हत्थिपुर

हस्तिनापुर का एक पाली नाम। लंका के बौद्धकालीन इतिहासग्रंथ दीपवंश 3,14 के अनुसार यहां का अंतिम राजा कंबलवसन था।

हनमकोंडा (जिला वारंगल, आं० प्र०)

वारंगल का उपनगर। यहां ककातीयनरेशों के समय में बना हुआ मंदिर

दक्षिण भारत के सर्वोत्कृष्ट मंदिरों में परिगणित किया जाता है। इस मंदिर की स्थापना महाराज गणपति ने थी। इसका उल्लेख प्रतापचरित्र नामक ग्रंथ में है। चालुक्यकालीन मंदिरों की भांति ही इसका आधार ताराकार है और इसमें सूर्य, विष्णु तथा शिव के तीन देवालय हैं। देवालयों में मूर्तियां नहीं हैं किंतु कटे हुए पत्थरों की जालियों में इन देवताओं की मूर्तियां निर्मित हैं। मंदिर के सामने काले पत्थर का बना हुआ नंदी स्थित है। यह मूर्ति एक ही पत्थर में से काटी गई है। मंदिर के एक तेलगू-कन्नड़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण 1164 ई० में हुआ था। इस अभिलेख में ककातीयनरेश गणपति की वंशावली तथा तत्कालीन घटनाओं का विवरण है।

हप्तहिंदू=सप्तसिंधु दे० सिंधु (1)

हमीरपुर (उ० प्र०)

इस नगर को राजा हमीरदेव ने बसाया था। इनका किला खंडहर के रूप में यहां आज भी है।

हयमुख

सांकाश्य के निकट इस स्थान पर चीनी यात्री युवानच्वांग ने 1000 बौद्ध भिक्षुओं की उपस्थिति का वर्णन किया है। यह संभवतः कान्यकुब्ज के निकट अश्वतीर्थ नामक स्थान था। कनिंघम ने इसका अभिज्ञान डोंडीखेड़ा नामक स्थान से किया है जो प्रयाग से 104 मील उत्तर-पश्चिम में है। बील (Beal) ने इस अभिज्ञान को नहीं माना है (रेकार्ड्स ऑव वेस्टर्न कंट्रीज़ 1,229)

हरकेल

बंगाल या पूर्वी बंगाल (दे० हेमचंद्र, अभिधान चिंतामणि)

हरगांव (जिला सीतापुर, उ० प्र०)

स्थानीय किंवदंतियों के अनुसार इस प्राचीन कस्बे की नींव अयोध्यानरेश महाराज हरिश्चंद्र ने डाली थी। एक खेड़े के खंडहर भी यहां मिले हैं। इसके ऊपर पहले एक मंदिर था जिसका स्थान अब एक मसजिद ने ले लिया है। मंदिर के पास एक सरोवर है जिसके बारे में कहा जाता है कि इसे पांडवों ने एक रात में बनवाया था। स्थानीय अनुश्रुति में इस स्थान को राजा विराट का नगर माना जाता है। कस्बे के दक्षिण की ओर कीचक की समाधि बताई जाती है। यह किंवदंती निस्सार मालूम पड़ती है। (दे० विराटनगर)

हरद्वार=**हरिद्वार** (उ० प्र०)

सिवालिक पहाड़ियों के क्रोड में बसा हुआ प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ। यहां पहाड़ियों से निकल कर भागीरथी गंगा पहली बार मैदान मे आती है। गंगा के

उत्तरी भाग में बसे हुए बदरीनारायण तथा केदारनाथ नामक विष्णु और शिव के प्रसिद्ध तीर्थों के लिए इसी स्थान से मार्ग जाता है और इसीलिए इसे हरिद्वार अथवा हरद्वार दोनों ही नामों से अभिहित किया जाता है। हरद्वार का प्राचीन पौराणिक नाम माया या मायापुरी है जिसकी सप्त मोक्षदायिनी पुरियों में गणना की जाती थी (दे० माया)। हरद्वार का एक भाग आज भी मायापुरी नाम से प्रसिद्ध है। संभवतः माया का ही चीनी यात्री युवानच्वांग ने मयूर नाम से वर्णन किया है (दे० मयूर)। महाभारत में हरद्वार को गंगाद्वार कहा गया है। इस ग्रंथ में इस स्थान का प्रख्यात तीर्थों के साथ उल्लेख है (दे० गंगाद्वार)। किंतु हरद्वार नाम भी अवश्य ही प्राचीन है क्योंकि हरिवंशपुराण में हरद्वार या हरिद्वार का तीर्थ रूप में वर्णन है—'हरिद्वारे कुशावर्ते नीलके भिल्लपर्वते। स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते'। इसी प्रकार मत्स्यपुराण में भी,—'सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा, हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे'। किंतु युवानच्वांग के समय तक (7वीं शती ई०) हरद्वार का मायापुरी नाम ही अधिक प्रचलित था। मध्यकाल में इस स्थान की कई प्राचीन बस्तियों को जिनमें मायापुरी, कनखल, ज्वालापुर और भीमगोड़ा मुख्य हैं, सामूहिक रूप से हरद्वार कहा जाने लगा था। हरद्वार को सदा से ही ऋषियों की तपोभूमि माना जाता रहा है। कहा जाता है कि स्वर्गारोहण के पूर्व लक्ष्मणजी ने लक्ष्मण-झूला स्थान के निकट तपस्या की थी।

हरनंदी दे० हिंडोन

हरयाणा=हरियाना

दक्षिणी पंजाब में रोहतक-गुड़गांव का परवर्ती प्रदेश जिसमें मूलतः दिल्ली भी शामिल है। अब इस नाम का एक नया राज्य बन गया है। 1327 के एक अभिलेख में ढिल्लीका या दिल्ली को हरियाना के अंतर्गत बताया गया है—'देशोऽस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः, ढिल्लकाख्यापुरी यत्र तोमरैरस्ति निर्मिता'। कुछ विद्वानों के मत में हरयाणा या हरियाना शब्द, 'अहीराना' का अपभ्रंश है। इस प्रदेश में प्राचीन काल से ही अच्छी चरागाह भूमि होने के कारण अहीरों या आभीर जाति के लोगों का निवास रहा है।

हरि

(1) विष्णुपुराण 2,4,41 में उल्लिखित एक पर्वत जो कुशद्वीप में स्थित है—'विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा, कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मंदराचलः'।

(2)=हरिवर्ष

हरिकांता

जैन ग्रंथ जंबुद्वीपप्रज्ञप्ति के अनुसार (4,34,35) हिमालय की पद्महृद झील से निकलने वाली एक नदी। हरिकांता के अतिरिक्त इस झील से निकलने वाली अन्य नदियों में गंगा, रोहिता और सिंधु की गणना की गई है।

हरिकांतानदीसुरी

जैन ग्रंथ जंबुद्वीपप्रज्ञप्ति (4,80) में उल्लिखित महाहिमवंत का एक शिखर।

हरिकेल=हरकेल

हरिणी

नर्मदा की सहायक नदी। इन दोनों का संगम सांकल ग्राम के निकट है जहां किंवदंती के अनुसार आदि शंकराचार्य आए थे।

हरिण्या (ज़िला गोरखपुर, उ० प्र०)

गंडक की सहायक नदी। बौद्धसाहित्य के अनुसार गौतम बुद्ध का दाह-संस्कार इसी नदी के तट पर हुआ था। यह नदी जो अब प्रायः सूखी रहती है, कसिया या प्राचीन कुशीनगर के निकट बहती है। इसे अतीतवती भी कहते थे जो हिरण्यवती का ही प्राकृत रूपांतरण जान पड़ता है।

हरित

विष्णुपुराण 2,4,29 के अनुसार शाल्मलद्वीप का एक वर्ष या भाग जो इस द्वीप के राजा वपुष्मान् के पुत्र हरित के नाम पर प्रसिद्ध है।

हरिदासपुर (ज़िला अलीगढ़, उ० प्र०)

अलीगढ़ के निकट इस ग्राम में, 1512 ई० में, प्रसिद्ध वैष्णव संगीतज्ञ तथा संत हरिदास का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम आशुधीर था। अकबर की राजसभा का प्रख्यात संगीतकार तानसेन तथा तत्कालीन अन्य कई महान् गायक बैजू बावरा, गोपालराय, रामदास आदि, हरिदास के ही शिष्य कहे जाते हैं। हरिदास की समाधिस्थली वृंदावन में स्थित निधिवन है।

हरिद्वार=हरद्वार

हरिपुंजय

उत्तरी स्याम (थाईलैंड) में स्थित प्राचीन भारतीय राज्य जिसका वृत्तांत स्याम की पाली इतिहास कथाओं-चामदेवीवंश तथा जिनकालमालिनी (15वीं-16वीं शती ई०) में मिलता है। इनसे ज्ञात होता है कि हरिपुंजय की स्थापना

661 ई० में ऋषि वासुदेव ने की थी। दो वर्ष पश्चात् इनका निमंत्रण पाकर चामदेवी, जो लवणपुरी की राजकुमारी थी, यहां आई थी। इसके साथ अनेक बौद्ध भिक्षु भी आए थे जिन्होंने हरिपुंजय मे बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

हरिपुर

(1) (जिला देहरादून, उ० प्र०) देहरादून से 35 मील दूर कालसी के सन्निकट स्थित ग्राम। इस स्थान से 1860 ई० में फ़ॉरेस्ट को अशोक की 14 धर्मलिपियों की संपूर्ण प्रति एक शिला पर उत्कीर्ण प्राप्त हुई थी जो अब कालसी-शिललेख कहलाता है। हरिपुर में यमुना हिमालय के उच्च श्रृंगों से उतरकर नीचे आती है। यमुना पर हरिपुर की स्थिति गंगा पर हरद्वार जैसी ही है।

(2) (जिला कांगड़ा, पंजाब) यह छोटा-सा कस्बा, प्राचीन अंबिकेश्वर के मंदिर तथा राजपूतों के समय मे निर्मित सुदृढ दुर्ग के लिए उल्लेखनीय है।

हरियाना दे० हरयाणा

हरिवर्ष

प्राचीन भूगोल के अनुसार जंबूद्वीप का एक भाग या वर्ष। विष्णुपुराण के वर्णन में जबूद्वीप के अधीश्वर राजा आग्नीध्र के नौ पुत्रों मे हरिवर्ष का भी नाम है। इसके नाम पर ही संभवतः हरिवर्ष भूखंड का नाम प्रसिद्ध हुआ (विष्णु० 2,1,16)। यहां निषध-पर्वत स्थित था। हरिवर्ष को मेरुपर्वत के दक्षिण की ओर माना गया है। इसके तथा भारत के बीच मे किंपुरुषवर्ष स्थित था—'भारतं प्रथमं वर्ष ततः किंपुरुषंस्मृतम्, हरिवर्ष तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज'—विष्णु० 2,2,12। महाभारत सभा० में हरिवर्ष को मानसरोवर, गधर्वों के देश और हेमकूट पर्वत (कैलास) के उत्तर में स्थित माना गया है। अर्जुन ने अपनी दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में इस देश को भी विजित किया था। यहां उन्होंने बहुत से मनोरम नगर, सुंदर वन तथा निर्मल जलवाली नदियां देखी थी। यहां के स्त्री-पुरुष बहुत सुंदर थे तथा भूमि रत्नप्रसवा थी। यहीं अर्जुन ने निषध-पर्वत को भी देखा था—'सरो मानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः, गंधर्वरक्षितं देशमजयत् पांडवस्ततः, हेमकूटमासाद्य न्यविशत् फाल्गुनस्तथा, त हेमकूटं राजेन्द्र समतिक्रम्य पांडवः, हरिवर्ष विवेशाथ, सैन्येन महतावृतः तत्र पार्थो ददर्शाथ बहूनि हि मनोरमान्, नगरांश्च वनांश्चैव नदीश्च विमलोदकाः, तान् सर्वांश्च दृष्ट्वा मुदायुक्तो धनंजयः, वशेचक्रेऽथरत्नानि लेभे च सुबहूनि च, ततो निषधमासाद्य गिरिस्थानजयत् प्रभुः'—सभा० 28,5 तथा आगे दाक्षिणात्य पाठ। महाभारत, भीष्म० 6,8 में हेमकूट के परे हरिवर्ष की स्थिति बताई गई है—'हेमकूटात्

परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते'। हेमकूट को कैलास पर्वत माना गया है—'हेमकूटस्तु समुहान् कैलासो नाम पर्वतः' भीष्म 6,41। प्रसंग से हरिवर्ष उत्तरी तिब्बत तथा दक्षिणी चीन का समीपवर्ती भूखंड जान पड़ता है। शायद यह वर्तमान सिंक्यांग का प्रदेश है जो पहले चीनी तुर्किस्तान कहलाता था। महाभारत में हरिवर्ष के उत्तर में इलावृत का उल्लेख है जिसे जंबूद्वीप का मध्य भाग बताया गया है।

हरिवर्षपर्वत

जैनसूत्रग्रंथ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में वर्णित महाहिमवंत का एक शिखर (4,80)।

हरिहर

(1) (मैसूर) यह स्थान एक सुंदर चालुक्यकालीन मंदिर के लिए उल्लेखनीय है जो तत्कालीन वास्तु का अच्छा उदाहरण है। इसकी विशालता तथा भव्यता परम प्रशंसनीय है। हरिहर चीतलदुर्ग के निकट बंबई-मैसूर राज्यों की सीमा पर स्थित है।

(2) =हरिहर क्षेत्र या गंगा-शोण संगम का परिवर्ती प्रदेश (बिहार) जहां सोनपुर नगर स्थित है। यह प्राचीन तीर्थ माना जाता है।

हरिहरपुर (बंगाल)

1633 में राल्फ् कार्टराइट ने इस स्थान तथा बालासोर में प्रथम बार अंग्रेजों की व्यापारिक कोठियां स्थापित की थीं। 1658 में हरिहरपुर की कोठी ईस्ट इंडिया कंपनी के आदेश द्वारा मद्रास के अधीन कर दी गई थी।

हरिहरालय

प्राचीन कंबुज (कंबोडिया) का एक नगर जहां 9 वीं शती ई० में हिंदू नरेश जयवर्मन् द्वितीय की राजधानी कुछ समय तक रही थी।

हुर्नहल्ली (मैसूर)

चालुक्य-नरेशों के समय में चालुक्य वास्तुशैली के अनुसार निर्मित मंदिर यहां का उल्लेखनीय स्मारक है। चालुक्य-शैली की मुख्य विशेषता मंदिर का ताराकृति आधार है।

हर्षगिरि दे० हर्षनाथ

हर्षनगरी=**हर्षनाथ**

हर्षनाथ (ठिकाना सीकर, जिला जयपुर, राजस्थान)

इस प्राचीन नगर के अवशेष सीकर के निकट स्थित हैं। स्थानीय अनुश्रुति के अनुसार यह नगर पूर्वकाल में 36 मील के घेरे में बसा हुआ था। एक प्राचीन कहावत भी प्रचलित है—'जगमालपुरा हर्षनगरी, जीमैं हाठ हजार मढ़ै, गुदड़ी

बमें तलाब बड़ी छतरी'। आजकल हर्षनाथ नामक ग्राम हर्षगिरि पहाड़ी की तलहटी में बसा हुआ है और सीकर से प्रायः आठ मील दक्षिण-पूर्व में है। हर्षगिरि पहाड़ी समुद्रतल से 3000 फुट ऊंची है और इस पर लगभग 900 वर्ष से अधिक प्राचीन मंदिरों के खंडहर स्थित हैं। इन्हीं में से एक पर काले पत्थर पर उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुआ है जो शिवस्तुति से प्रारंभ होता है और पौराणिक कथा के रूप में लिखा गया है। लेख में हर्षगिरि और मंदिर का वर्णन है और कहा गया है कि मंदिर के निर्माण का कार्य आषाढ़ शुक्ल 13, सोमवार 1013 वि० सं० (=956 ई०) को प्रारंभ होकर विग्रहराज चौहान के समय में आषाढ़ कृष्ण 15, 1030 वि० सं० (=973 ई०) को पूरा हुआ था। यह लेख संस्कृत में है और इसे रामचन्द्र नामक कवि ने निबद्ध किया है। मंदिर के भग्नावशेषों में अनेक सुंदर कलापूर्ण मूर्तियां तथा स्तंभ आदि प्राप्त हुए हैं जिनमें से अधिकांश सीकर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

हर्षपुर (मेवाड़, राजस्थान)

मेवाड़ में एक प्राचीन स्थान जिसका उल्लेख इंडियन एंटिक्वेरी, 1910, पृ० 187 में है। विंसेंट स्मिथ के अनुसार यह नगर मेवाड़ अथवा मारवाड़ के किसी हर्ष नामक नरेश के नाम पर प्रसिद्ध हुआ होगा। संभवतः यह वही हर्ष है जिसका उल्लेख तिब्बत के बौद्ध इतिहासकार तारानाथ ने किया है। (दे० अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, पृ० 361)

हलसी (मैसूर)

छठी शती ई० में हलसी के जैन-मत के अनुयायी कदंब-नरेशों ने पल्लवों तथा मैसूर-नरेश गंग को परास्त कर दक्षिण महाराष्ट्र में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था।

हलीशहर (बंगाल)

कंचनपल्ली से दो मील दूर चैतन्य महाप्रभु के गुरु ईश्वरीपुरी का जन्म स्थान। बंगला के प्रसिद्ध कवि मुकुंदराम कविकंकण ने इस स्थान का नाम कुमारहट्टा भी लिखा है। चैतन्यदेव यहां तीर्थयात्रा के लिए आए थे। चैतन्य के शिष्य श्रीवास पंडित यहीं के निवासी थे। चैतन्यदेव के विषय में पदावली लिखकर प्रसिद्ध हो जाने वाले कवि वासुदेव घोष का भी हलीशहर या कुमार-हट्टा से संबंध था। कुमारहट्टा में वैष्णव संप्रदाय के साथ ही साथ शाक्तमत का भी काफी प्रचार था। काली के प्रसिद्ध भक्त कवि रामप्रसाद सेन भी यहीं के रहने वाले कहे जाते हैं। यहां रामप्रसाद के सिद्धि प्राप्त करने का स्थल, पंचवट आज तक सुरक्षित है। रामप्रसाद की काली-विषयक सुंदर भावमयी

कविता आज भी बंगाल में बड़े प्रेम से गाई जाती है।

हलोल (गुजरात)

चांपानेर का एक उपनगर जो 16वीं शती ई० में समृद्ध अवस्था में था (दे० चांपानेर)

हल्दीघाटी (जिला उदयपुर, राजस्थान)

उदयपुर से नाथद्वारा जाने वाली सड़क से कुछ दूर हटकर पहाड़ियों के बीच वह इतिहास-प्रसिद्ध स्थान है जहां 1576 ई० में महाराणा प्रताप और मुगलसम्राट् अकबर की सेनाओं के बीच घोर युद्ध हुआ था। इस स्थान को गोगंदा भी कहा जाता है। अकबर के समय के राजपूत-नरेशों में मेवाड़ के महाराणा प्रताप ही ऐसे थे जिन्हें मुगलसम्राट् की मैत्रीपूर्ण दासता पसन्द न थी। इसी बात पर उनकी आमेरपति मानसिंह से भी अनबन हो गई जिसके फलस्वरूप मानसिंह के भड़काने से अकबर ने स्वयं मानसिंह और सलीम की अध्यक्षता में मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भारी सेना भेजी। हल्दीघाटी की लड़ाई 20 जून 1576 ई० को हुई थी। इसमें राणाप्रताप ने अप्रतिम वीरता दिखाई थी। उनका परम भक्त सरदार झाला इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। स्वयं प्रताप के दुर्धर्ष भाले से गजासीन सलीम बाल-बाल बच गया। किन्तु प्रताप की छोटी सेना मुगलों की विशाल सेना के सामने अधिक सफल न हो सकी और प्रताप अपने घायल किन्तु बहादुर घोड़े चेतक पर युद्ध-क्षेत्र से बाहर आ गए जहां चेतक ने प्राण छोड़ दिए। इस स्थान पर इस स्वामिभक्त घोड़े की समाधि आज भी देखी जा सकती है। इस युद्ध में प्रताप की 22 सहस्र सेना में से 14 सहस्र काम आई थी। इसमें पांच सौ वीर सैनिक राणाप्रताप के सम्बंधी थे। मुगल सेना की भी भारी क्षति हुई तथा उसके भी 500 के लगभग सरदार मारे गए थे। सलीम के साथ जो सेना आई थी उसके अलावा एक सेना वक्त पर सहायता के लिए सुरक्षित रखी गई थी और इस सेना द्वारा मुख्य सेना की हानिपूर्ति बराबर होती रही थी। इसी कारण मुगलों के हताहतों की ठीक-ठीक संख्या इतिहासकारों ने नहीं लिखी है। इस युद्ध के पश्चात् राणाप्रताप को बड़ी कठिनाई का समय व्यतीत करना पड़ा था किन्तु उन्होंने कभी साहस न छोड़ा और अंत में अपने खोए हुए राज्य का अधिकांश मुगलों से वापस छीन लिया।

हसनगांव (ज़िला उसमानाबाद, महाराष्ट्र)

यह स्थान नालदुर्ग से 40 मील उत्तर-पश्चिम में है। यहां पहाड़ी में कटी हुई दो विशाल गुफाएं हैं जिनमें हिन्दू मूर्तियां स्थापित थीं। इन गुफाओं का निर्माणकाल 7वीं-8वीं शती हो सकता है।

हसराकोल (ज़िला गया, बिहार)

इस स्थान से 9वीं शती ई० में बनी, काले पत्थर की तीन सुंदर मूर्तियां प्राप्त हुई थीं जो आजकल पटना संग्रहालय में हैं। इनमें एक बडे आकार की प्रतिमा बुद्ध की है। दूसरी अवलोकितेश्वर और तीसरी मैत्रेय की है। इन सभी मूर्तियों की निर्मिति में विवरण के प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

हसुआ (ज़िला फतहपुर, उ० प्र०)

इस स्थान पर 17वीं शती के महात्मा चंददास की समाधि है। ये हिन्दी के कवि थे। इनका लिखा ग्रंथ भक्तविहार हाल में ही में प्रकाश में आया है।

हस्तकवप्र

भावनगर (गुजरात) के निकट हाठब। इसका टॉलमी के अप्टकप्र से अभिज्ञान किया गया है—(दे० बांबे गजेटियर जिल्द 1, भाग 1, पृ० 539)

हस्तिकुंडी दे० हस्तोड़ी

हस्तिग्राम

(i) पाली हत्थि या हत्थीग्राम। बौद्धकाल का एक व्यापारिक नगर जो श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले वणिक्पथ पर वैशाली के निकट स्थित था। यहां वृज्जिवंशीय क्षत्रियों की राजधानी थी। अंगुत्तरनिकाय 4, 212 में उग्र-क्षत्रियों का सम्बंध हत्थीग्राम से बताया गया है। जान पड़ता है यह व्यापारिक नगर के रूप में भी ख्यातिप्राप्त था।

(2)=हस्तिनापुर

हस्तिनापुर=हास्तिनपुर (जिला मेरठ, उ० प्र०)

मेरठ से 22 मील उत्तरपूर्व में गंगा की प्राचीन धारा के किनारे बसा हुआ है। हस्तिनापुर महाभारत के समय में, कौरवों की वैभवशालिनी राजधानी के रूप में भारत भर में प्रसिद्ध था। प्राचीन नगर गंगातट पर स्थित था किन्तु अब नदी यहां से कई मील दूर हट गई है। गंगा की पुरानी धारा जिसे बूढ़ी गंगा कहते हैं, यहां के प्राचीन टीलों के समीप बहती है। पौराणिक किंवदंती के अनुसार नगर की स्थापना पुरुवंशी बृहत्क्षत्र के पुत्र हस्तिन् ने की थी और उसी के नाम से यह नगर हस्तिनापुर कहलाया। हस्तिन् के पश्चात् अजामीढ़, दक्ष, संवरण और कुरु क्रमानुसार हस्तिनापुर में राज्य करते रहे। कुरु के वंश में ही शांतनु और उनके पौत्र पांडु तथा धृतराष्ट्र हुए जिनके पुत्र पांडव व कौरव कहलाए। महाभारत के युद्ध के समय हस्तिनापुर बड़ा विशाल नगर था। महाभारत, आदिपर्व में इसका वर्णन इस प्रकार है—

'नगरं हास्तिनपुरं शनैः प्रविविशुस्तदा । पांडवानागतांञ्छ्रुत्वा नागरास्तु कुतूहलात्, मंडयांचक्रिरेतत्र नगरं नागसाह्वयम् । मुक्तपुष्पावकीर्णं तज्जलसिक्तं तु सर्वश', धूपितं दिव्यधूपेन मंडनैश्चापि संवृतम् । पताकोच्छ्रितमाल्यं च पुरमप्रतिमंबभौ, शंखभेरीनिनादैश्चनागवादित्रनि.स्वनैः । कौतूहलेन नगरं दीप्यमानमिवाभवत्, तत्र ते पुरुषव्याघ्राः दुःखशोकविनाशनाः' आदि० 20', 14—दाक्षिणात्य पाठ, 15 । कहा जाता है कि महाभारत के समय हस्तिनापुर राज्य की उत्तरी सीमा शुक्करताल (ज़िला मुजफ्फरनगर), दक्षिणी सीमा पुष्पवटी (=पूठ, ज़िला बुलंदशहर) और पश्चिमी सीमा वारणावत (=बरनावा, ज़िला मेरठ) तक थी । पूर्व की ओर गंगा प्रवाहित होती थी । गढ़मुक्तेश्वर शायद यहां का एक उपनगर था और मेरठ या मयराष्ट्र भी इसकी परिसीमा के भीतर स्थित था (दि मानुमेंटल ऐंटिक्विटीज़ एण्ड इंसक्रिपशंस ऑव एन डब्ल्यू प्राविंसेज़, 1891) । मेरठ से 15 मील उत्तर-पूर्व में स्थित मवाना (मुहाना) नामक ग्राम को हस्तिनापुर का प्रमुख द्वार कहा जाता है (दे० हस्तिनापुर, शिक्षा विभाग, उ० प्र०, पृ० २)। महाभारत आदि० 125, 9 में हस्तिनापुर के वर्धमान नामक पुरद्वार का उल्लेख है । पांडु की मृत्यु के पश्चात् शतशृंग से हस्तिनापुर आते समय कुंती अपने पुत्रों सहित इसी द्वार से राजधानी में प्रविष्ट हुई थी— 'सात्वदीर्घेण कालेन सम्प्राप्ता कुरुजांगलम्, वर्धमानपुरद्वारमाससाद यशस्विनी ।' महाभारत के युद्ध के पश्चात् हस्तिनापुर की पूर्व गरिमा समाप्त हो गई । विष्णुपुराण से ज्ञात होता है कि बलराम ने कौरवों पर क्रोध करके उनके नगर हस्तिनापुर को अपने हल की नोक से खींच कर गंगा में गिराना चाहा था किंतु पीछे उन्हें क्षमा कर दिया किन्तु उसके पश्चात् हस्तिनापुर गंगा की ओर कुछ झुका हुआ-सा प्रतीत होने लगा था— 'बलदेवस्ततोगत्वा नगरं नागसाह्वयम् बाह्योपवनमध्येऽभून्नविवेशततपुरम्' । विष्णु० 5, 35,8; 'अद्याप्याघूर्णिताकारं लक्ष्यते तत्पुरं द्विज, एष प्रभावो रामस्य बलशौर्योपलक्षणः' विष्णु० 5, 35, 37 । इससे जान पड़ता है कि हस्तिनापुर को गंगा की धारा से भय कौरवों के समय में ही उत्पन्न हो गया था । परीक्षित के वंशज निचक्षु (या निचक्नु) के समय में तो वास्तव में ही गंगा ने हस्तिनापुर को बहा दिया और उसे इस नगर को छोड़कर वत्स देश की प्रसिद्ध नगरी कोशांबी में जाकर बसना पड़ा था—'अधिसीमकृष्णान्निचक्नुः यो गंगया पहृते हस्तिनापुरे कौशम्बयां निवत्स्यति' विष्णु० 21, 7-8 (दे० पार्जिटर—डायनेस्टजी ऑव दि कलि एज, पृ० 5) । पुरातत्त्वज्ञों की खोजों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है । उत्खनन से ज्ञात होता है कि हस्तिनापुर की सर्वप्राचीन

बस्ती 1000 ई० पू० से पहले की अवश्य थी और यह कई शतियों तक स्थित रही। दूसरी बस्ती 900 ई० पू० के लगभग बसाई गई थी जो 300 ई० पू० के लगभग तक रही। तीसरी बस्ती 200 ई० पू० से लगभग 200 ई० तक विद्यमान थी और अंतिम 11वीं से 14वीं शती तक। इस प्रकार हस्तिनापुर इतिहास में कई बार बना और बिगड़ा। परवर्तीकाल में जैन तीर्थ के रूप में इस नगर की ख्याति बनी रही। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इस नगर के हास्तिनपुर (पाणिनि 4, 2, 101), गजपुर, नागपुर, नागसाह्वय, हस्तिग्राम्, आसन्दीवत् और ब्रह्मस्थल आदि नाम मिलते हैं। कहा जाता है कि हाथियों की बहुतायत के कारण इस प्रदेश का प्रथम नाम गजपुर था, पीछे राजा हस्तिन् के नाम पर यह हस्तिनापुर कहलाया और महाभारत के युद्ध के पश्चात् नागजाति का प्रभुत्व होने से यह नगर नागपुर या नागसाह्वय कहलाया। ये सब पर्यायवाची नाम हैं। आसंदीवत् का बौद्ध साहित्य (दे० अवदान, 2, पृ० 359) में उल्लेख है। संभव है विष्णुपुराण के उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार गंगा की ओर झुके हुए होने के कारण ही यह नाम पड़ा हो(आसंदी=कुर्सी)। इस उल्लेख में इसे कुरुरट्ठ (कुरुराष्ट्र) की राजधानी बताया गया है। वसुदेव-हिंडि नामक ग्रंथ में ब्रह्मस्थल नाम भी मिलता है। यह जैन ग्रंथ है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतल मे दुष्यंत की राजधानी के रूप में हस्तिनापुर का उल्लेख किया है। दुष्यंत से गंधर्वविवाह होने के पश्चात् शकुंतला ऋषिकुमारों के साथ कण्वाश्रम से दुष्यंत की राजधानी हस्तिनापुर गई थी, 'अनुसूये त्वरस्व, त्वरस्व, एतेखलु हस्तिनपुरगामिनः ऋषयः शब्दाय्यन्ते' अंक 4। हस्तिनापुर के पूर्व की ओर गंगा के पार उस समय विस्तृत घना वन-प्रदेश था जहां दुष्यंत आखेट के लिए गया था और जहां मालिनी के तट पर कण्वाश्रम में उसकी भेंट शकुंतला से हुई थी। यह वन गढ़वाल (उ० प्र०) की तराई के क्षेत्र में स्थित था तथा इसका विस्तार ज़िला बिजनौर तथा गढ़वाल के इलाके में था। वर्तमान् हस्तिनापुर नामक ग्राम मे, जो इसी नाम से आज तक प्रसिद्ध है, प्राचीन नगर के खंडहर, ऊंचे-नीचे टीलों की शृंखलाओं के रूप में दूर-दूर तक फैले हैं। मुख्य टीला विदुर का टीला या उलटाखेड़ा कहलाता है। इसकी खुदाई से अनेक प्राचीन अवशेष प्रकाश में आए हैं।

जन-परम्परा में हस्तिनापुर का काफी महत्त्व रहा है। जैन ग्रंथ विविध-तीर्थकल्प के अनुसार महाराज ऋषभदेव (प्रथम तीर्थंकर) ने अपने सम्बंधी कुरु को कुरुक्षेत्र का राज्य दे दिया था। इन्हीं कुरु के पुत्र हस्ति ने हस्तिनापुर को भागीरथी के किनारे बसाया था। हस्तिनापुर में शांति, कुंथु और अरनाथ तीर्थंकरों का जन्म हुआ

था। ये क्रमशः 16वें, 17वें और 18वें तीर्थंकर थे। 5वें, 6ठे और 7वें तीर्थंकरों ने यहां 'केवल ज्ञान' प्राप्त किया। हस्तिनापुरनरेश बाहुबली के पौत्र श्रेयांश के निवासस्थान पर ऋषभदेव ने प्रथम उपवास का पारण किया था। विष्णुकुमार नामक जैन साधु जिन्होने नमुचि नामक दैत्य को वश में किया था, हस्तिनापुर ही के निवासी थे। इनके अतिरिक्त सनत्कुमार, महापद्म, सुभूम और परशुराम का जन्म भी हस्तिनापुर में हुआ था। यहाँ चार चैत्यों का भी निर्माण किया गया था।

हस्तिमती

साबरमती (गुजरात) की सहायक नदी (दे० पद्मपुराण उत्तर 55)

हस्तिसोम

महानदी की सहायक नदी हस्तु जिसका पद्मपुराण, स्वर्गखंड में उल्लेख है।

हस्तु=**हस्तिसोम**

हस्तोडीपुर

जैन स्तोत्र तीर्थमाला चैत्यवंदन मे उल्लिखित प्राचीन जैन तीर्थ, 'हस्तोडी-पुरपाडलादशपुरे चारूप पंचासरे'। कुछ विद्वानों के मत में यह हस्तिकुंडी नामक तीर्थ है जो बीजापुर से 2 मील दूर है। (दे० ऐंशेंट जैन हिम्ज, पृ० 56)

हांगल (महाराष्ट्र)

इस स्थान पर चालुक्य-नरेशों के समय (7वीं-8वीं शती) का एक विशाल मंदिर स्थित है जिसकी विशेषता इसका ताराकृति आधार है। यह चालुक्य-वास्तुकला का सुंदर उदाहरण है।

हांसी (हरयाणा)

यह मध्यकालीन नगर है। पाणिनि ने इसे ही शायद असिका कहा है। इसकी स्थापना पृथ्वीराज चौहान के मातामह आनंदपाल ने की थी (12वीं शती ई०)। मुसलमान इतिहास-लेखकों के ग्रंथों मे इस नगर का उल्लेख है। इब्नबतूता ने नगर की समृद्धि और अपार जनसंख्या का उल्लेख किया है।

हाजीपुर (बिहार)

गंगा-गंडक के संगम के निकट स्थित है। इस नगर को शमशुद्दीन इलयास या हाजी इलियास ने 14वीं शती के मध्यकाल में बसाया था। पुराने किले में इलियास की बनवाई मसजिद है जो अपनी तीन मीनारों के लिए उल्लेखनीय हैं। गंडक के पुल निकट हाजी इलियास की क़ब्र है। यह नगर पटने के समीप ही स्थित है।

हाटक

महाभारत सभा० 28,3 में उल्लिखित स्थान जिसे यक्षों का देश कहा गया है। इस पर उत्तर दिशा की दिग्विजय के प्रसंग में अर्जुन ने विजय प्राप्त की थी—'तं जित्वा हाटकं नाम देशं गुह्यकरक्षितम्, पाकशासनिरव्यग्रः सहसैन्यः समासदत्'। यह स्थान कालिदास के मेघदूत की अलका के निकट ही स्थित होगा। मानसरोवर यहां से समीप ही था—'सरोमानसमासाद्यहाटकानभितः प्रभु, गंधर्वरक्षितं देशमजयत् पांडवस्ततः' सभा० 28,5। यह तिब्बत में स्थित वर्तमान मानसरोवर और कैलास का निकटवर्ती प्रदेश था। यहां गुह्यकों (यक्षों) तथा गंधर्वों की बस्ती थी। श्री० बी० सी० लॉ के मत में हाटक, वर्तमान अटक (पश्चिम पाकि०) है। नं० ला० डे के अनुसार यह हूण देश का नाम है।

हाटकेश्वर (गुजरात)

मेहसाणा से 21 मील दूर प्राचीन तीर्थ है जिसे अब बड़नगर कहते हैं। इसका उल्लेख स्कंदपुराण 27,76 में है—'आनर्तविषये रम्यं सर्वतीर्थमयं शुभम्, हाटकेश्वरजं क्षेत्रं महापातकनाशनम्। (दे० बड़नगर)

हाठब=हस्तकवप्र

हाथीगुफा (ज़िला भुवनेश्वर, उड़ीसा)

भुवनेश्वर से 4-5 मील दूर एक पहाड़ी में यह प्राचीन गुहा (गुफा) स्थित है। इस गुफा में कलिंग-नरेश खारवेल का एक पाली अभिलेख उत्कीर्ण है जिसका ठीक-ठीक निर्वचन अद्यावत् एक समस्या बना हुआ है। फिर भी जो सूचना इस अभिलेख से मिलती है वह स्थूल रूप से यह है कि खारवेल ने (जिसका समय ई० सन् से पूर्व माना जाता है,) बहपतिमित (बृहस्पतिमित्र) को हराया, वह मगध के नंद राजा से प्रथम जैन तीर्थंकर की मूर्ति (जो नंद पहले कलिंग से ले गया था) वापस लाया और उसने एक प्राचीन नहर का पुनर्निर्माण करवाया। अभिलेख में कहा गया है कि यह नहर नंद राजा के बाद 'तिवससत' तक काम में न आई थी ('पंचमे च दानि वसे नंदराज तिवससत...')। मुख्य विवाद 'तिवससत' शब्द पर है। रा० दा० बनर्जी के मत मे इसका अर्थ 300 है, किंतु अन्य विद्वानों के अनुसार इसे 103 समझना चाहिए। निर्वचन-भेद के कारण राजा खारवेल के समय में 200 वर्षों का अंतर पड़ जाता है। फिर भी पहला मत आजकल अधिक ग्राह्य माना जाता है। हाथीगुफा अभिलेख के अध्ययन में का० प्र० जायसवाल ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

हापुड़ (ज़िला मेरठ, उ०प्र०)

दोर राजपूत हरदत्त का बसाया हुआ है। यहां औरंगजेब के समय की

एक मसजिद है जिस पर 1081 हिजरी=1703 ई० का अभिलेख खुदा है। कहा जाता है कि गयासुद्दीनतुग़लक ने इस शहर में कुछ नागा लोगों को देखकर इसका नाम हयापुर रख दिया था। फ्यूरर (Fuhrer) ने हापुड़ का अर्थ फलोद्यान किया है किंतु संभवतः 'हापुड़' हरपुर का बिगड़ा हुआ रूप है।

हामटा (ज़िला कांगड़ा, हिमाचलप्रदेश)

जगतमुख से कुछ दूर स्थित है। इसका प्राचीन नाम हेमगिरि कहा जाता है। अर्जुन गुफा जो पहाड़ी में है, अर्जुन से संबद्ध बताई जाती है। इसमें अर्जुन की मूर्ति देखी जा सकती है। संभव है उत्तर दिशा की दिग्विजययात्रा के प्रसग में अर्जुन यहां आए हों। कांगड़ा के अनेक देशों को उन्होने विजित किया था। (दे० मोदापुर, वामदेव, सुदामा, कुलूत, पंचगण, देवप्रस्थ)

हारहूण

(पाठांतर हारहूर)। महाभारत सभा० 32,12 के अनुसार इस जनपद को नकुल ने पश्चिम-दिशा की दिग्विजय में विजित किया था—'द्वारपालं च तरसा वशे चक्रे महाद्युतिः, रामठान् हारहूणांश्च प्रतीच्याश्चैव ये नृपाः'। इस उल्लेख में द्वारपाल संभवतः खैबर और रमठ गजनी (अफ़गानिस्तान) है। हारहूण या हारहूर को वा० श० अग्रवाल ने अफगानिस्तान की नदी अरगंदाबीन माना है जो इस देश के दक्षिण-पश्चिमी भाग में बहती है। यदि यह अभिज्ञान ठीक है तो इस प्रसंग में हारहूण को इस नदी का तटवर्ती प्रदेश समझा जा सकता है (दे० बृहत्संहिता 14,33)। संभव है इस स्थान का हूणों से संबंध हो।

हारावती

भूतपूर्व कोटा बूंदी (राजस्थान) रियासत का संयुक्त नाम। हारावती का नामकरण हारसिंह के नाम पर हुआ था जिन्होंने इस राज्य की नींव डाली थी। इन्हीं के नाम पर हारावती के शासक हाड़ा कहलाते थे।

हारीत-आश्रम

उदयपुर (राजस्थान) से 6 मील दूर एकलिंग नामक स्थान। कहा जाता है कि यहां हारीत-संहिता के प्रणेता महर्षि हारीत का आश्रम था।

हालार

सौराष्ट्र का उत्तर-पश्चिमी भाग। (दे० सौराष्ट्र)

हालेबिड़ (मैसूर)

होयसल वंश की राजधानी द्वारसमुद्र का वर्तमान नाम (दे० द्वारसमुद्र)। हालेबिड़ के वर्तमान मंदिरों में होयसलेश्वर का प्राचीन मंदिर प्रख्यात है।

संभवत: 1140 ई० में यह मंदिर बनना प्रारंभ हुआ था । बेलूर के मंदिर की भांति ही इसकी भित्ति पर चतुर्दिक् सात लंबी पंक्तियों में अद्भुत मूर्तिकारी की गई है । इन पंक्तियों के ऊपर देवताओं की अनेक अकेली मूर्तियां भी हैं । मूर्तिकारी में तत्कालीन भारतीय जीवन के अनेक कलापूर्ण चित्र जीवित हो उठे हैं । राजा और प्रजा के सामान्य दैनिक जीवन की सुंदर भांकियां यहां देखी जा सकती हैं । अश्वारोही पुरुष, किसी नवयौवना का दर्पणादि प्रसाधन सामग्री से विभूशित श्रृंगार-कक्ष, पशुपक्षियों तथा फूल-पौधों से सुशोभित उद्यान इत्यादि के मूर्ति-चित्र यहां के कलाकारों की अविस्मरणीय रचनाएं हैं । इनमें मानवीय गुणों से समन्वित जिस उच्चकोटि की मूर्तिकला का सौंदर्य प्रदर्शित है वह शायद बेलूर के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है । होयसलेश्वर का मंदिर ताराकार आधार पर बना है । इसकी लंबाई 160 फुट और चौड़ाई 122 फुट है । कहा जाता है कि होयसलनरेश विष्णुवर्धन ने इसको बनवाना प्रारंभ किया था किंतु 100 वर्ष तक काम होने के पश्चात् 1240 ई० में भी यह पूरा न हो सका था । यह मंदिर शिखर रहित है । विष्णुवर्धन पहले जैन संप्रदाय का अनुयायी था किंतु रामानुजाचार्य के प्रभाव से 1117 ई० में उसने वैष्णवधर्म अंगीकार कर लिया था । हालेबिड़ का दूसरा मंदिर कैटभेश्वर विष्णु का है जो अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है । यह चालुक्य-वास्तुशैली में निर्मित है । इसका आधार भी ताराकार है । प्राचीन समय मे इस मंदिर की गणना चालुक्य-वास्तुकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरणों में की जाती थी । हालेबिड़ जैनों का भी विख्यात तीर्थ है । 1133 ई० में बोप्पा ने यहां अपने पिता गंगराज की स्मृति में 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया था । इसमें तीर्थंकर की 14 फुट ऊंची प्रतिमा है । इस मंदिर के 14 स्तंभ कसौटी पत्थर के बने है । एक अन्य मंदिर में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की मूर्ति है । इसे 1138 ई० में हेगड़े मल्लिमाया ने बनवाया था । तृतीय जैन मंदिर 1204 ई० का है जिसमें भगवान् शांतिनाथ की 14 फुट ऊंची मूर्ति प्रतिष्ठित है । कहा जाता है कि किसी समय हालेबिड़ में 700 जैन मंदिर थे ।

हास्तिनपुर दे० हस्तिनापुर

हिंगलाजगढ़ (म० प्र०)

पूर्वमध्यकालीन भवनों के अवशेषों के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है ।

हिंगुल

बिलोचिस्तान के प्रदेश का एक प्राचीन भारतीय नाम । यह प्रदेश हींग के उत्पादन के लिए प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध है । युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ

में हिंगुल निवासी भेंट लेकर उपस्थित हुए थे (महा० सभा० 51)। यह स्थान सती के 52 पीठों में से है।

हिंगोली (जिला परभणी, महाराष्ट्र)

लार्ड बैंटिक के शासनकाल में (1833 ई०) ठगी की प्रथा के उत्सादनार्थ जो महाअभियान आरंभ किया गया था उसका आरंभ इसी स्थान से हुआ था। हिंगोली तालुके में कई स्थानों पर नवपाषाणयुगीन प्रस्तर-उपकरण तथा हथियार प्राप्त हुए हैं।

हिंडोन (जिला मेरठ, उ० प्र०)

हिंडोन नदी मेरठ जिले में बहती है। इसका प्राचीन नाम हरनंदी कहा जाता है। हाल ही में मेरठ-बागपत सड़क पर इस नदी के तट के निकटवर्ती क्षेत्र में अनेक प्राचीन अवशेष मिले हैं।

हिंदु दे० इंदु; सिंधु (1)

हिद्दा दे० अस्थि

हिमकूट=हिमवान्=हिमालय

हिमवान्=हिमालय

भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित संसार की सर्वोच्च पर्वत-शृंखला। वास्तव में वैदिक काल से ही हिमवान् भारतीय संस्कृति का प्रेरणा-स्रोत रहा है। ऋग्वेद में हिमवान् शब्द का बहुवचन में (हिमवन्तः) प्रयोग किया गया है जिससे हिमालय की बृहत् पर्वत-शृंखला का बोध होता है। हिमालय के मूजवत् शिखर का भी ऋग्वेद में उल्लेख है। अथर्ववेद में दो अन्य शिखरों का वर्णन है—त्रिककुद् और नावप्रभ्रंशन 19, 39, 8। वाल्मीकि-रामायण में गंगा को हिमवान् की ज्येष्ठ दुहिता कहा गया है, 'गंगा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुषर्षभ' बाल० 41, 18; 'तदा हैमवती ज्येष्ठा सर्व-लोक नमस्कृता तदा सातिमहद्रूपं कृत्वावेगं च दुःसहम्' बाल० 43, 4। वाल्मीकि को हिमवान् पर्वत के अंचल में निवास करने वाली विविध जातियों का भी ज्ञान था, 'काम्बोजयवनांश्चैव शकानांपत्तनानिच, अन्वीक्ष्य वरदांश्चैव हिमवन्तं विचिन्वथ' किष्किंधा० 43, 12। महाभारत, वनपर्व में पांडवों की हिमालय-यात्रा का बडा मनोरम वर्णन है। इसके कैलास, मैनाक तथा गंधमादन नामक शिखरों की कठोर यात्रा पांडवों ने की थी, 'अवेक्षमाणः कैलासं मैनाकं चैव पर्वतम्, गंधमादनपादांश्च श्वेतं चापि शिलोच्चयम्। उपर्युपरि शैलस्य बह्वीश्च सरितः शिवाः, पृष्ठं हिमवतः पुण्यं ययौ सप्तदशेऽहनि' वन०, 158, 18। पांडव अंतिम समय में हिमालय पर गलने के लिए चले गए थे तथा उनका जन्म

भी शतशृंग नामक हिमालय के शिखर पर ही हुआ था। हिमालयपर्वत में बसे हुए अनेक तीर्थों का वर्णन महाभारत में है। वास्तव में इस महाकाव्य के अध्ययन से महाभारतकार की हिमालय के प्रति अगाध आस्था का बोध होता है। कालिदास को भी हिमालय से अद्भुत प्रेम था। कुमारसंभव के प्रथम सर्ग में नगाधिराज हिमालय का सुन्दर काव्यमय वर्णन है। इसमें हिमालय को पृथ्वी का मानदण्ड कहा है—'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदंडः' कुमारसंभव 1, 1। इस सर्ग में कालिदास ने हिमालय की अनंतरत्नप्रभवता, अप्सराओं के अलंकरण-प्रसाधन में सहायक रंगीन बादल, पर्वत के क्रोड में संचरणशील मेघों की छाया, हिमाचलवासी किरातों द्वारा गजमुक्ताओं के सहारे सिंह-मार्ग का अन्वेषण, विद्याधर-सुंदरियों का प्रणयपत्रलेखन, कीचकरन्ध्रों में वायु का वेणुवादन, देवदारु-वृक्षों के क्षीर से सुगंधित शिखर, मणिप्रदीप्त गिरि गुहाएँ, किंनरियों की मंथरगति, पर्वत-गुहा में छिपा हुआ अंधकार, चंद्रकिरणों के समान धवलपुच्छ वाली चमरियां और मृगान्वेषी किरात—इन सभी दृश्यों और घटनाओं के बड़े ही मनोरम और यथार्थ चित्र खींचे हैं। मेघदूत में कालिदास ने हिमालय को प्रालेयाद्रि ('प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्' पूर्वमेघ 59) तथा गंगा का 'प्रभव' तथा 'तुषारगौर' पर्वत माना है—'आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगंधैर्मृगाणां तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः' पूर्वमेघ, 54। विष्णुपुराण में सतलज, चिनाब आदि नदियां हिमालय से संभूत कही गई हैं, 'शतद्रूचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गताः' विष्णु० 2, 3, 10। अन्य पुराणों में भी हिमालय के विषय में असंख्य उल्लेख हैं। हिमवान् नाम वैदिक है तथा सर्वप्राचीन प्रतीत होता है। हिमालय नाम परवर्ती काल में प्रचलित था। कालिदास ने इसका प्रयोग किया है (दे० ऊपर 'हिमालयो नाम नगाधिराजः')। जैन ग्रंथ जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में हिमवान् की जंबुद्वीप के छः वर्षपर्वतों में गणना की गई है और इस पर्वतमाला के महाहिमवंत और चुल्लहिमवंत नाम के दो भाग बताए गए हैं। महाहिमवंत पूर्वसमुद्र (बंगाल की खाड़ी) तक फैला हुआ है और चुल्लहिमवंत पश्चिम और दक्षिण की ओर वर्षधर पर्वत के नीचे वाले सागर (अरब सागर) तक विस्तृत है। इस ग्रंथ में गंगा और सिंधु नदियों का उद्गम चुल्लहिमालय में स्थित सरोवरों से माना गया है। महाहिमवत के 8 और चुल्ल के 11 शिखरों का उल्लेख इस जैन ग्रंथ में है।

हिमाचल=हिमालय

हिमालय दे० हिमवान्

हिरण्मय

महाभारत के भूगोल के अनुसार जंबूद्वीप का एक विभाग—'दक्षिणेन तु नीलस्य: निषधस्योत्तरेणतु, वर्ष हिरण्मयं यत्र हैरण्वती नदी। यत्र चायं महाराज पक्षिराट् पनगोत्तम:, यक्षानुगा महाराज धनिन: प्रियदर्शना:। महाबलास्तत्र जना राजन् मुदितमानसा, एकादशसहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप, आयु: प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पंच च, शृंगाणि च विचित्राणि त्रीण्येव मनुजाधिप। एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम्, तत्र स्वयं प्रभादेवी नित्यं वसति शांडिली' महा० भीष्म० 9, 5 6-7-8-9-10। विष्णुपुराण 2, 2, 13 में हिरण्मय को रम्यक के उत्तर और उत्तरकुरु के दक्षिण में बताया गया है—'रम्यकंचोत्तरं वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम्, उत्तरा: कुरवःश्चैव तथा वै भारत तथा'। इस प्रकार इसकी स्थिति साइबेरिया के दक्षिण भाग या मंगोलिया के परिवर्ती प्रदेश में मानी जा सकती है।

हिरण्यकवर्ष

महाभारत, सभापर्व, 28 दाक्षिणात्यपाठ के अनुसार अपनी उत्तर दिशा की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में अर्जुन हिरण्यकवर्ष पहुंचे थे। यह रम्यकवर्ष के उत्तर में स्थित था जिससे यह भीष्म० 9 में वर्णित हिरण्मयवर्ष का ही पर्याय जान पड़ता है—'सश्वेतं पर्वतं राजन् समतिक्रम्य पांडव:, वर्ष हिरण्यकं नाम विवेशाथ महीपते। स तु देशेषुरम्येषुगन्तुं तत्रोपचक्रमे, मध्ये प्रासादवृन्देषु नक्षत्राणां शशी यथा। महापथेषु राजेन्द्रसर्वतोयान्तमर्जुनम् प्रासादवरशृंगस्था:, परया वीर्यशोभया, ददृशुस्ता: स्त्रिय: सर्वा: पार्थमात्मयशस्करम्'।

हिरण्यपर्वत

मुंगेर का एक प्राचीन नाम जिसका उल्लेख युवानच्वांग ने किया है।

हिरण्यपुर

महाभारत वन० 173 में दानवों के हिरण्यपुर नामक नगर का उल्लेख है। यहां कालकेय तथा पौलोम नामक दानवों का निवास माना गया है—'हिरण्यपुर-मित्येव ख्यायते नगरं महत्, रक्षितं कालकेयैश्च पौलोमैश्च महासुरै:' वन० 173, 13। आगे, वन० 173, 26-27 मे कहा गया है कि सूर्य के समान प्रका-शित होने वाला दैत्यों का आकाशचारी नगर उनकी इच्छा के अनुसार चलने वाला था और दैत्य लोग वरदान के प्रभाव से उसे सुखपूर्वक आकाश में धारण करते थे—'तत् पुरं खचरं दिव्यं कामगं सूर्यसप्रभम् दैतेयैर्वरदानेन धार्यते स्म यथासुखम्'। यह दिव्य नगर कभी पृथ्वी पर आता तो कभी पाताल में चला जाता, कभी ऊपर उड़ता, कभी तिरछी दिशाओं में चलता और कभी

शीघ्र ही जल में डूब जाता था, 'अन्तर्भूमौ निपतति पुनरूर्ध्वं प्रतिष्ठते, पुनस्तिर्यक् प्रयात्याशु पुनरप्सु निमज्जति'। यहां के निवासी दानवों का वध अर्जुन ने किया था। महाभारत के अनुसार यह नगर समुद्र के पार स्थित था। पाताल देश के निवातकवच नामक दैत्यों को हराकर लौटते समय अर्जुन यहां आए थे (वन० 173)। आगे हिरण्यपुर का उल्लेख महाभारत उद्योग: 100, 1-2-3 में इस प्रकार है, 'हिरण्यपुरमित्येतत् ख्यातं पुरवरं महत्, दैत्यानां दानवानां च मायाशतविचारिणाम्, अनल्पेन प्रयत्नेन निर्मितं विश्वकर्मणा, मयेन मनसा सृष्टं पातालतलमाश्रितम्। अत्र मायासहस्राणि विकुर्वाणा महो· जसः, दानवा निवसन्तिस्म शूरा दत्तवराः पुरा'। इसी प्रसंग (उद्योग 100,9-10-11-12-13-14-15) में हिरण्यपुर का सविस्तर वर्णन है—'पश्य वेश्मानि रौक्माणि मातले राजतानि च, कर्मणा विधियुक्तेन युक्तान्युपगतानि च। वैदूर्य मणिचित्राणि प्रवालरुचिराणि च, अर्कस्फटिकशुभ्राणि वज्रसारोज्ज्वलानिच। पार्थिवानीव चाभान्ति पद्मरागमयानि च, शैलानीव च दृश्यन्ते दारवाणीव चाप्युत। सूर्यरूपाणि चाभान्ति दीप्ताग्निसदृशानि च, मणिजालविचित्राणि प्रांशूनि निबिडानिच। नैतानि शक्यं निर्देष्टुं रूपतोद्रव्यतस्तथा, गुणतश्चैव सिद्धानि प्रमाणगुणवन्ति च। आक्रीडन् पश्यदैत्यानांतथैव शयनान्युत। रत्नवन्ति महार्हाणि भाजनान्यासनानिच। जलदाभांस्तथाशैलांस्तोयप्रस्रवणानि च कामपुष्पफलांश्चापि पादपान् कामचारिणः'। श्लोक 1-2-3 से सूचित होता है कि यह नगर मयदानव द्वारा निर्मित किया गया था। यह संभव है कि हिरण्यपुर उत्तरी अमेरिका में स्थिति वर्तमान मेक्सिको (Mexico) की प्राचीन 'माया' जाति का कोई नगर रहा हो। दो तथ्य यहां इस विषय में विशेष रूप से विचारणीय हैं। हिरण्यपुर को पाताल देश में स्थित बताया गया है जो अमेरिका ही जान पड़ता है क्योंकि पृथ्वी पर अमेरिका भारत के सर्वथा ही नीचे या दूसरी ओर (पश्चिमी गोलार्ध) में है। दूसरी बात यह है कि हिरण्यपुर को मय दानव द्वारा निर्मित बताया गया है और यहां के निवासियों का सहस्रों मायाओं ('मायासहस्राणि') के जानने वाले लोगों के रूप में वर्णन है। यह बात विचारणीय है कि मेक्सिको की प्राचीन जाति जिसका नाम 'माया' था, तथा महाभारत में कथित मयदानव के बसाए हुए नगर में रहने वाले तथा अनेक प्रकार की माया जानने वाले लोगों में परस्पर बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है। इस प्रसंग में महाभारत में माया शब्द का प्रयोग बहुत ही सारगर्भित जान पड़ता है। महाभारत में जो वर्णन हिरण्यपुर के वैभव-विलास का है वह भी प्राचीन मेक्सिको की माया-सभ्यता के अनुरूप ही है। ऊपर कहा गया है

कि अर्जुन ने इस देश में जाकर यहां के दानवों को पराजित किया था। भारतीयों का इस देश से सम्बंध इस बात से भी प्रकट होता है कि मानव-शास्त्र के अनुसार मेक्सिको के प्राचीन निवासियों की जाति, उनकी रूपाकृति, उनके कितने ही धार्मिक रीति-रिवाज (जैसे राम-सीता का उत्सव) तथा उनकी भाषा के अनेक शब्द भारतीय जान पड़ते हैं। कुछ विद्वानों का तो यह निश्चित मत है कि माया लोग भारत से ही आकर मेक्सिको में बसे थे (दे० श्रीचमन लाल कृत 'हिन्दू अमेरिका')।

हिरण्यवती

(1) =उज्जयिनी

(2) [दे० गंडकी, इरावती (2)] बुद्धचरित के वर्णन से यह नदी राप्ती जान पड़ती है।

(3) वामनपुराण में वर्णित कुरुक्षेत्र की एक नदी–'सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी, आपगा च महापुण्या गंगा मंदाकिनी नदी, मधुस्रवा अम्लु नदी, कौशिकी पापनाशिनी दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्यवती नदी' 39, 6-7-8।

हिरण्यवाह दे० शोण

हिरण्यबिंदु

इसे, महाभारत वन० 87, 20 में कालंजर (कालिंजर) की पहाड़ी पर स्थित एक तीर्थ माना गया है—'हिरण्यबिंदुः कथितो गिरौ कालंजरे महान्'।

हिरण्या

सौराष्ट्र की एक छोटी नदी जो प्रभासपाटन के निकट पूर्व की ओर बहती हुई पश्चिमी समुद्र में गिरती है। हिरण्या में कपिला और कपिला में प्राची सरस्वती नदी मिलती है। हिरण्या नदी के तट पर तीनों नदियों के संगम के निकट देहोत्सर्ग नामक तीर्थ स्थित है जिसके कुछ आगे चलकर यादवस्थली है जहां यादव परस्पर लड़भिड़ कर नष्ट हो गए थे। देहोत्सर्ग भगवान् कृष्ण के स्वर्ग सिधारने का स्थान है। यहीं उन्हें जरा नामक व्याध ने मृग के धोखे से बाण द्वारा आहत किया था। (दे० प्रभास)

हिरणयाक्षी (गुजरात)

खेड़ब्रह्मा रेल-स्टेशन के निकट यह नदी बहती है। निकट ही हिरण्याक्षी, कोसंबी और मीनाक्षी नदियों का संगम है जहां भृगु का प्राचीन आश्रम स्थित

कहा जाता है ।

हिसार (हरयाणा)

इस नगर को फिरोजशाह तुगलक (राज्याभिषेक 1351 ई०) ने बसाया था । कहा जाता है हिसार के पास के वनों में फीरोज आखेट के लिए प्रायः आया करता था और उसने यहां एक दुर्ग (हिसार=दुर्ग) बनवाया था जहां कालांतर में आबादी हो गई । हिसार के पास अग्राहा नामक स्थान है जो प्राचीन अग्रोदक कहा जाता है । यह नगर महाभारत-कालीन माना जाता है । अलक्षेंद्र के आक्रमण के समय (327 ई० पू०) इस स्थान पर आग्रेयगण का राज्य था । वा० शा० अग्रवाल का विचार है कि पाणिनि 4, 2, 54 में उल्लिखित 'एषुकारिभक्त' हिसार का ही प्राचीन नाम है । इसे कुरु प्रदेश का एक बड़ा नगर कहा गया है ।

हुंजा दे० **हंसकायन**

हुगली (बंगाल)

कलकत्ते के निकट इस स्थान पर 1651 ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेजी व्यापारियों ने एक व्यापारिक कोठी बनाई थी । इस कार्य में जेबराइल बाऊटन नामक अंग्रेज सर्जन ने जो बंगाल के तत्कालीन मुगल सूबेदार का पारिवारिक चिकित्सक था, बहुत सहायता दी थी । 1658 में यह कोठी मद्रास के अधीन कर दी गई थी ।

हुच्चमल्लीगुड़ी (ज़िला बीजापुर, मैसूर)

चालुक्यकालीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है । मंदिर में मध्यस्थ गर्भगृह तथा उसके चतुर्दिक् संवृत प्रदक्षिणापथ है । मंदिर शिखरसहित है यद्यपि शिखर अविकमित अवस्था में है । अपनी विशिष्ट शैली के कारण इस मंदिर को उत्तरभारतीय गुप्तकालीन मन्दिरों की परम्परा में माना जाता है । यह मंदिर लगभग 600 ई० का है । (दे० हेनरी कज़िन्स-आर्कियालोजिकल सर्वे रिपोर्ट, 1907-8) ।

हुवाचकण्णिका (लंका)

महावंश, 34, 90 में उल्लिखित रोहणप्रांत का एक भाग । यहां चूलनाग-पर्वत विहार स्थित था ।

हुविनाहडगट्ट (ज़िला बिल्लारी, मैसूर)

एक मध्यकालीन मंदिर के लिए यह स्थान उल्लेखनीय है । मंदिर के

स्तंभों की शिल्प कला तथा उन पर की हुई नक्काशी सराहनीय है ।

हुष्कपुर

कनिष्क के उत्तराधिकारी हुविष्क या हुष्क (111-138 ई०) का बसाया हुआ नगर । इसकी स्थिति कश्मीर-घाटी में स्थित बारामूला के गिरिद्वार (दर्रे) के ठीक बाहर पश्चिम की ओर थी । उस काल में यह स्थान कश्मीर का पश्चिमी द्वार कहलाता था (दे० स्टाइन —राजतरंगिणी 5, 168-171) । चीनी यात्री युवानच्वांग हुष्कपुर के विहार में 631 ई० के लगभग पहुंचा था । वह यहां कई दिन ठहरा था । विहार से वह नगर में भी गया था जहां उसने पांच सहस्र भिक्षु देखे थे । बारामूला गिरिद्वार के निकट हुष्कपुर के खंडहर और एक छोटा सा उष्कूर नामक ग्राम जो हुष्कपुर का स्मारक है, स्थित हैं । उष्कूर मे एक प्राचीन स्तूप के चिह्न देखे जा सकते हैं । उष्कूर, हुष्कपुर का ही अपभ्रंश है ।

हेमकूट

महाभारत के अनुसार हरिवर्ष के दक्षिण में स्थित एक पर्वत । इस पर्वत को पार करने के पश्चात् अर्जुन अपनी दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में हरिवर्ष पहुंचे थे—'सरोमानससमासाद्यहाटकानभित: प्रभुः गंधर्वरक्षितं देशमजयत् पांडवस्तत: । हेमकूटमासाद्य न्यविशत् फाल्गुनस्तथा, तं हेमकूटं राजेन्द्र समतिक्रम्य पांडव: । हरिवर्षं विवेशाथ सैन्येन महता वृत:' सभा० 28-5 तथा दाक्षिणात्य पाठ । इससे हेमकूट तथा मानसरोवर का सान्निध्य भी सूचित होता है । वास्तव में भीष्म० 6, 41 में तो हेमकूट को कैलास का पर्याय ही कहा गया है, 'हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वत:', भीष्म० 6, 41 । मत्स्यपुराण में हेमकूट पर अप्सराओं का निवास बताया गया है । विष्णुपुराण 2, 2, 10 में मेरुपर्वत के दक्षिण में हिमवान्, हेमकूट और निषध नामक पर्वतों की स्थिति बताई गई है—'हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे' । श्री चि० वि० वैद्य के मत में हेमकूट पर्वत वर्तमान कराकोरम है किन्तु श्री एच० वी० त्रिवेदी के अनुसार हेमकूट पर्वतश्रेणी का विस्तार पश्चिम कश्मीर में है (इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली 12, पृ० 534-540) । किन्तु जैसा महाभारत के उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है हेमकूट कैलास या उसके निकट की हिमालय-श्रेणी का ही नाम जान पड़ता है । जैन ग्रंथ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में हेमकूट को जंबूद्वीप के छः वर्षपर्वतों में से एक माना गया है ।

हेमगर्भ

'तमतिक्रम्य शैलेन्द्रं हेमगर्भं महागिरिम् ततः सुदर्शननाम पर्वतं गन्तुमर्हथ'

वाल्मीकि रामा० किष्किंधा 43, 16। प्रसंग से यह पर्वत हेमकूट जान पड़ता है।

हेमगिरि

(1) दे० हामटा

(2) स्वर्णनिर्मित पर्वत अथवा हेमकूट। यह हिमालय का पर्याय भी हो सकता है, 'किंतेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा' सुभाषित०।

हेमपर्वत=हेमशैल

(1) विष्णु० 2, 4, 41 में उल्लिखित कुशद्वीप का एक पर्वत—'विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा, कुशेशयोहरिश्चैव सप्तमो मदराचल:'। महाभारत, भीष्म० 12-9-10 में भी कुशद्वीप के सम्बन्ध में इस पर्वत का उल्लेख है—'कुशद्वीपेतु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चित: सुधामा नाम दुर्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वत:'

(2)=हेमकूट

हैदराबाद

(1) (आं० प्र०) दक्षिण की भूतपूर्व रियासत तथा उसका मुख्य नगर। ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्राचीन न होते हुए भी पिछले दो सौ वर्षों से दक्षिण की राजनीति में इस नगर का प्रमुख भाग रहा है। ककातीयनरेश गणपति ने वर्तमान गोलकुंडा की पहाडी पर एक कच्चा किला बनवाया था। 14वीं शती में इस प्रदेश में मुसलमानों का अधिकार होने के पश्चात् बहमनी-राज्य स्थापित हुआ। 1482ई० में बहमनी-राज्य के एक सूबेदार सुलतान कुलीकुतुबुलमुल्क ने इस कच्चे किले को पक्का बनवाकर गोलकुंडा में अपनी राजधानी बनवाई। कुतुब-शाही वंश के पांचवें सुलतान कुलीकुतुबशाह ने, 1591 ई० में गोलकुंडा से अपनी राजधानी हटाकर नई राजधानी मूसी नदी के दक्षिणी तट पर बनाई जहां हैदराबाद स्थित है। राजधानी गोलकुंडा से हटाने का कारण था वहां की खराब जलवायु तथा जल की कमी। यह नया हराभरा तथा खुला स्थान सुलतान ने यों ही एक दिन वहां आखेट करते हुए पसंद कर लिया था। उसने इस नए नगर का नाम अपनी प्रेमिका भागमती के नाम पर भागनगर रखा। मूसी नदी के पास एक गांव चिचेलम, जहां भागमती रहती थी, नए नगर के भावी विकास का केंद्र बना। सुंदरी भागमती को कुतुबशाह ने बाद में हैदरमहल की उपाधि प्रदान की और तत्पश्चात् भागनगर भी हैदराबाद कहलाने लगा। कुतुबशाह फारसी का अच्छा कवि था तथा स्वभाव से बड़ा उदार। अपनी प्रेमिका का स्मारक होने के कारण हैदराबाद को उसने बहुत सुंदरता से बसाया था। चिचेलम ग्राम के स्थान पर चारमीनार नामक भवन बनवाया

गया जिसके ऊपर एक हिन्दू मन्दिर स्थित था। गिरधारी प्रसाद द्वारा रचित हैदराबाद के इतिहास से सूचित होता है कि चारमीनार के ऊपर एक कलापूर्ण फव्वारा भी था। हैदराबाद के अनेक भवनों में खुदादाद नामक महल कुतुबशाह को बहुत प्रिय था। इसके विषय में उसने अपनी कविता में लिखा है कि यह महल स्वर्ग के समान ही सुन्दर तथा सुखदाई था। यहां उसकी बारह बेगमें तथा प्रमिकाएं रहती थीं। हैदराबाद का नक्शा त्रिकोण था। इसमें गोलकुंडा की सारी आबादी को लाकर बसाया गया था। नगर शीघ्र ही उन्नति करता चला गया। टेवर्निग्रर नामक फ्रांसीसी यात्री ने, जो यहां, नगर के निर्माण के थोड़े ही समय पश्चात् आया था, लिखा है कि नगर को बहुत ही कलापूर्ण ढंग से बनाया तथा नियोजित किया गया था और उसकी सड़कें भी बहुत चौड़ी थीं। नगर में चार बाजारों का निर्माण किया गया था जिनके प्रवेश-द्वारों पर चार कमान नामक तोरण बनवाए गए थे। इनके दक्षिण की ओर चारमीनार स्थित है। इसका प्रयोजन अभी तक निश्चित नहीं किया जा सका है। 1597-98 में विशाल जामा मसजिद बनकर तैयार हुई। इसी समय के आस-पास मूसी नदी का पुल, राजप्रासाद (जो पुरानी हवेली के पास था), गुलजार हौज, खुदादाद महल (जो दकन के सूबेदार इब्राहीमखां के समय में जलकर भस्म हो गया) और नदीमहल (जिसका पता अब नहीं मिलता) इत्यादि बने। हैदराबाद शीघ्र ही अपने सौंदर्य और वैभव के कारण जगत्प्रसिद्ध नगर हो गया। फारस के शाह के राजदूत तथा तहमास्पशाह का पुत्र यहां कई वर्षों तक रहते रहे। 1617 ई० में जहांगीर के दो राजदूत मीर-मक्की तथा मुंशी जादवराय यहां नियुक्त थे। हैदराबाद पर मुगल सम्राट् औरंगजेब की बहुत दिनो से कुदृष्टि थी। उसने 1687 ई० में गोलकुंडा पर चढ़ाई करके किले को हस्तगत कर लिया और हैदराबाद का नगर भी उसके हाथ में आ गया। मुगल साम्राज्य की अवनति होने पर मुहम्मदशाह रंगीले के शासनकाल में दकन का सूबेदार निजामुलमुल्क आसफखां स्वतंत्र हो गया और 1724 ई० में उसने हैदराबाद की स्वतंत्र रियासत कायम कर ली। उन दिनों मराठों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण निजाम की दशा अच्छी न थी, किन्तु 18वीं शती के अन्त में अंग्रेजों से 'सहायक सन्धि' करने के उपरान्त निजाम अंग्रेजों के नियत्रण में आ गया और उसकी रियासत की रक्षा स्वतंत्रता बेच कर हुई। हैदराबाद में कई ऐतिहासिक मंदिर भी स्थित हैं। इनमें झाम-सिंह का मंदिर प्रसिद्ध है। इसे तृतीय निजाम सिकन्दरशाह के समय में उसके अश्वसेनापति झामसिंह ने बनवाया था। यह मंदिर बालाजी का है। इसके

लिए निजाम ने जागीर भी निश्चित की थी। इस मन्दिर के द्वार पर अश्व-प्रतिमाएं बनी हैं। हैदराबाद की रेजीडेंसी 1803 से 1808 ई० तक बनी थी। इसको केप्टन एचीलीज क्रिकपेट्रिक (बाद में हशमतजंग बहादुर के नाम से प्रसिद्ध) ने बनवाया था। क्रिकपेट्रिक ने अपनी मुसलमान बेगम खैरुन्निसा के लिए रेजीडेंसी के अंदर रंगमहल बनवाया था। हुसैन सागर झील जो $1\frac{1}{2}$ मील लम्बी है, 1560 ई० के लगभग इब्राहीम कुली कुतुबशाह द्वारा बनवाई गई थी। पुराने समय में इस झील के तट पर दो सरायें थीं जिनमें परस्पर गूंज द्वारा बातचीत की जा सकती थी। विशाल मक्का-मसजिद को गोलकुंडा के सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह ने बनवाना प्रारम्भ किया था और यह औरंगजेब के समय में 1687 ई० में पूरी हुई थी। फ्रांसीसी सरदार रेमंड का मकबरा सुरूरनगर की पहाड़ी पर है। निजाम की ओर से यह सरदार खुर्दा (कुर्दला) की लड़ाई में मराठों से लड़ा था। इस मकबरे के पास वेंकटेश्वर का अति प्राचीन मंदिर है। सिकंदराबाद, हैदराबाद के निकट फौजी छावनी है। 1806 ई० में अंग्रेजों की सहायक सेना प्रथम बार आकर यहां रहने लगी थी। सिकन्दराबाद को सिकन्दरजाह तृतीय निजाम ने बसाया था। यहीं 19वीं शती में सर रोनेल्ड रॉस ने मलेरिया के मच्छर की खोज की थी। (दे० गोलकुंडा)

(2) (सिंध, पाकि०) कहा जाता है कि वर्तमान हैदराबाद के स्थान पर प्राचीन समय में पाटशिला नामक नगर बसा हुआ था। (दे० पाटशिला)

हैमवतपति

जैन ग्रंथ जंबुद्वीपप्रज्ञप्ति (4, 80) में उल्लिखित महाहिमवंतपर्वत का एक शिखर।

हैमवतवर्ष

पौराणिक भूगोल के अनुसार हेमकूट के दक्षिण में स्थित प्रदेश। यह हिमालय पर्वत-माला से घिरा हुआ प्रदेश है जिसमे तिब्बत आदि स्थित हैं। यह हिमवान् (हिमालय) के नाम पर ही प्रसिद्ध था।

हैमवती (नदी)

(1) = ऋषिकुल्या

(2) = रावी

(3) = सतलज (शतद्रु)

हैरण्यक वर्ष = हिरण्यक वर्ष

हैरण्वती

हिरण्मय वर्ष की नदी, 'दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेणतु वर्षं हिरण्मयं

यत्र हैरण्वती नदी'। यह साइबेरिया या मंगोलिया की कोई नदी हो सकती है। (दे० हिरण्मय)

हैहय

खानदेश और दक्षिणी मालवा का भाग। यह कार्तवीर्यार्जुन का शासित प्रदेश था। माहिष्मती इस प्रदेश की राजधानी थी। (दे० माहिष्मती)

होडल

दिल्ली-मथुरा रेल मार्ग पर दिल्ली से 53 मील दूर है। 1720 ई० में दिल्ली के मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रंगीले और सैयद अब्दुल्ला की सेनाओं में इस स्थान के निकट युद्ध हुआ था। इस युद्ध में भरतपुर का संस्थापक चूड़ामन जाट भी अब्दुल्ला की ओर से लडा था। अब्दुल्ला की सेना पूरी तरह नष्ट हो गई थी। अब्दुल्ला तथा उसके भाई हुसैन को परवर्ती मुगलकालीन इतिहास के लेखकों ने नृपकर्ता कहा है क्योंकि इन्होंने दिल्ली के तख्त पर एक के बाद एक कई बादशाओं को मनचाहे ढंग से बिठाकर राज्यशक्ति स्वयं अपने हाथ में रखी थी। भरतपुर के राजा सूरजमल ने होडलनिवासी चौधरी काशी की पुत्री से विवाह किया था जो आगे चलकर रानी किशोरी या हँसिया रानी कहलाई। रानी किशोरी का भरतपुर-राज्य के इतिहास में प्रमुख स्थान है। उसने भरतपुर को कई बार आकस्मिक राजनीतिक दुर्घटनाओं से बचाया था।

होनहल्ली (लिंगसुगुर तालुका, ज़िला रायचुर, मैसूर)

यहां लोहा गलाने के प्राचीन कारखानों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिससे इस स्थान पर मध्यकाल में लोहा गलाने तथा ढालने के उद्योग की विद्यमानता सिद्ध होती है।

होमनाबाद (ज़िला बीदर, मैसूर)

यहां 19वीं शती के पूर्वार्ध में दाक्षिणात्य संत मानिकप्रभु का निवासस्थान माना जाता है। उन्होंने सब धर्मों की एकता पर बहुत जोर दिया था और उनके शिष्य सभी मतों तथा जातियों में पाये जाते थे। मानिक प्रभु का मठ होमनाबाद में आज भी देखा जा सकता है। यहां उनके शिष्य संत की परम्परा को बनाए हुए हैं।

होलकोंडा (ज़िला गुलबर्गा, मैसूर)

मध्यकाल में निर्मित मध्य पांच सुन्दर मकबरे यहाँ स्थित हैं, किन्तु ये भवन किसके स्मारक हैं यह अभी तक अनिश्चित है।

ह्लीसुरी

जैन सूत्रग्रंथ जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति में उल्लिखित महाहिमवंत का एक शिखर।

ह्लादिनी

वाल्मीकि० रामा० अयो० 71, 2 के अनुसार केकय से अयोध्या आते समय भरत ने इस नदी को पार किया था—'ह्लादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोत-स्तरंगिणीम्, शतद्रुमतरच्छ्रीमान् नदीमिक्ष्वाकुनंदनः'। यह नदी सतलज के पूर्व में बहती थी।

टि० ऐतिहासिक स्थानावली की रचना में जिन मूल अथवा संदर्भ ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनमें से कुछ के नाम यहाँ संगृहीत हैं। अधिकांश स्थलों पर निर्दिष्ट ग्रंथों के नाम पूरे पूरे दिए गए हैं।

संदर्भ-ग्रंथ

Ancient Geography of India—A. Cunningham.

Geographical Dictionary of Ancient India—N. L. Dey.

Historical Geography of Ancient India—B. C. Law.

Geographical Essays—B. C. Law.

Vedic Index—Macdonald.

Imperial Gazetter of India.

District Gazetters.

Epigraphia Indica.

Corpus Inscriptionum Indicarum

South Indian Inscriptions.

Inscriptions—Luders.

The Historical Inscriptions of Southern India—Madras-University 1932.

Annual Reports of Archaeological Survey of India.

Reports of Archaeological Survey in different States.

Ethnic Settlements of Ancient India—S B. Chaudhuri.

An Ancient Chinese Dictionary of Indian Geographical names translated and Publishd by International Academy of Indian Culture, Lahore.

Here & There in India—Parkhurst.

Encyclopaedia Brittanica

Cyclopaedia of India—Balfour.

Sanskrit Dictionary—Wilson.

Sanskrit-English Dictionary—Monier Williams.

Sanskrit-English Dictionary—Apte.
Upayana Parva—Dr. Motichand.
भारत के तीर्थ व नगर
तीर्थांक (कल्याण)
तपोभूमि—रामगोपाल मिश्र
वेदधरातल—गिरीशचंद्र अवस्थी

प्रादेशिक

सार्थवाह—डॉ० मोतीचन्द
कालिदास का भारत—भ० श० उपाध्याय
पाणिनिकालीन भारतवर्ष – वा० श० अग्रवाल
भारत में आधुनिक पुरातत्त्व अन्वेषण
विश्वकोश—का० ना० प्र० सभा
मराठी ज्ञानकोश
Mohenjadaro—J. Marshall.
Guide Books & Monographs on Ajanta, Ellora, Elephanta, Ahichhatra, Rajgir, Vidisha, Hastinapur, Taxila, Sanchi, Khajuraho, Kanouj, Mathura, Sarnath, Nalanda, Delhi, Agra, Fatehpur Sikri, etc. etc. (Archaeological Departments of Government of India and State governments).
'See India' series—Bhopal, Gwalior, Mysore, etc. etc. (Government of India)
Descriptive notes on Places on Oudh-Tirhut Railway (issued by former O. T. Railway).
Buddhist Shrines of India (Government of India).
Somnath, the Shrine Eternal—K. M. Munshi.
Somnath and other Medieval temples in Kathiawad—Cousens.
History and Legend in Hydrabad
Highlands of Central India – Forsythe.
A Guide to Mathura Museum.
A Guide to the Sarnath Museum.
History of Orissa—Mehtab.
Lists of Ancient Monuments of Bengal, 1895.

Notes on the District of Gaya—Grierson.
Notes on the Sangal Tibba (News Press—Lahore 1906).
Annals and Antiquities of Rajasthan—Todd.
राजपूताने का इतिहास—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
दिल्ली की कहानी—डॉ० परमात्मा शरण
युगयुगों में उत्तर प्रदेश—कृ० द० वाजपेयी
संयुक्त प्रान्त की पहाड़ी यात्राएँ
ब्रज की कला—कृ० द० वाजपेयी
बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास - गो० ला० तिवारी
मध्यप्रदेश का कलात्मक वैभव—भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग
मध्यभारत (भूतपूर्व मध्यभारत शासन का प्रकाशन)
त्रिपुरी का इतिहास—व्योहार राजेन्द्र सिंह
जबलपुर-ज्योति
खंडहरों के वैभव—मुनि कांतिसागर
बेलूर-दीपिका

अनुसंधान विषयक तथा अन्यान्य पत्र-पत्रिकाएँ

Journal of the Royal Historical Society.
Journal of the Asiatic Society of Bengal.
Journal of U. P. Historical Society.
Journal of the Bihar and Orissa Research Society.
Annals of the Bhandarkar Research Institute, Poona.
Bulletin of Deccan College Research Society, Poona.
Indian Antiquary.
Indian Culture.
Proceedings of the History Congress.
Proceedings of Oriental Congress.
Proceedings of Indian Science Congress (Archaeology Section).
नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका
Modern Review.
Calcutta Review.
धर्मयुग, कादम्बिनी, सरस्वती आदि

साहित्य

वैदिक एवं सामान्य संस्कृत-साहित्य

ऋग्वेद
अथर्ववेद
ब्राह्मण-ग्रंथ (ऐतरेय, शतपथ, पंचविंश, गोपथ आदि)
उपनिषद् (छांदोग्य, कौशीतकी आदि)
वाजसेनीय संहिता
निरुक्त—यास्क
अष्टाध्यायी—पाणिनि
महाभाष्य—पतंजलि
गार्गी-संहिता
बृहत् संहिता—वराहमिहिर
कौटिल्य अर्थशास्त्र
बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र
मनुस्मृति
सिद्धान्त शिरोमणि—(कोलब्रुक की टीका)
वाल्मीकि रामायण, टीका—चंद्रशेखर शास्त्री, काशी, संवत् 1988
महाभारत (गीता प्रेस)
पुराण—(विष्णु, श्रीमद्भागवत, पद्म, स्कंद, अग्नि, ब्रह्माण्ड, वायु, शिव, वराह, मत्स्य, ब्रह्म, भविष्य, मार्कंडेय, हरिवंश आदि)
रघुवंश—कालिदास
अभिज्ञान शाकुंतल—कालिदास
कुमारसंभव – कालिदास
मालविकाग्निमित्र—कालिदास
हर्षचरित—बाण
कादम्बरी—बाण
कर्पूरमंजरी—राजशेखर
पवनदूत—धोयी कवि
पुरुषपरीक्षा
रंभामंजरी नाटक
दशकुमारचरित—दंडी
शिशुपालवध—माघ

स्वप्नवासवदत्ता—भास
कथासरित्सागर—सोमदेव
वररुचि का काव्य
उत्तररामचरित—भवभूति
महावीरचरित—भवभूति
मालतीमाधव—भवभूति
राजतरंगिणी—कल्हण
विक्रमांकदेवचरित—विल्हण
अध्यात्मरामायण

बौद्ध-साहित्य

बुद्धचरित—अश्वघोष
सौंदरानन्द—अश्वघोष
महावंश
दीपवंश
दिव्यावदान
बोधिसत्वावदान कल्पलता
जातककथाएँ (पाली)
मज्झिमनिकाय
अंगुत्तरनिकाय—(R. Morris)
मिलिंदपन्ह—(Trechner)
धम्मपद टीका—(Harvard Oriental Series)
आयरंगसुत्त
अभिधानदीपिका
संगीति सुत्तन्त
निर्वाणकांड
जातकमाला—आर्यशूर

जैन-साहित्य

निर्वाणकांड
प्रज्ञापना सूत्र
पुरातन-प्रबोध संग्रह

जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति
विविधतीर्थकल्प
तीर्थमाला चैत्यवंदन
सूत्रकृतांग
भगवतीसूत्र
प्रवचनसारद्धार
उत्तराध्ययन सूत्र
कल्पसूत्र
कथाकोशप्रकरण - जिनेश्वर मूरि
धर्मोपदेश माला
वसुदेवहिंडि
अट्ठकथा
एकादशअंगादि
Ancient Jain Hyms—Charlotte Krause (1952)
Some Jain Canonical Sutras--B. C Law.

प्राकृत-साहित्य

गौड़वहो

हिन्दी-साहित्य

रामचरितमानस तुलसीदास
पद्मावत —जायसी
रामचंद्रिका —केशवदास
शिवराजभूषण — भूषण
शिवाबावनी — भूषण
छत्रसालदशक—भूषण
माधवानलकामकंदला
गढ़कुंडार—वृं० ला० वर्मा
मृगनयनी—वृं ला० वर्मा

बंगाली-साहित्य

श्रीचैतन्यचरितामृत—(हिन्दी अनुवाद—गीता प्रेम)

फ़ारसी-अरबी साहित्य

अलउतबी का महमूद गज़नी विषयक विवरण
रेहला - इब्नबतूता
किताबुलहिंद—अलबेरूनी
आइने अकबरी—अबुलफ़ज़ल
तारीखे फ़रिश्ता—फ़रिश्ता
History of India as told by her own Historians—Elliot and Dowson.

विविध

Political History of Ancient India—Raichaudhuri.
History of Ancient India—R. S. Tripathi.
Early History of India—V. Smith.
Cambridge History of India.
Dynasties of the Kali Age—Pargiter.
Chronology of the Purans—Pargiter.
Ancient Indian Colonies in the Far East—R. C. Majumdar
Ancient India as described by Megasthenese & Arrian—Mccrindle
The Periplus of the Erythraean Sea (Schoff)
Geography—Ptolemy
Travels of Fa Hian—Beal
On Yuanchwang's Travels in India—Watters
Asoka—D. R. Bhandarkar.
Asoka—R. K Mookerji.
Hindu Civilization—R. K. Mookerji.
Harsha—R K. Mookerji.
Harsha—G. C. Chatterji.
The Age of the Imperial Guptas—R. D. Banerji.
Some Ksatriya Tribes—B. K. Law.
Buddhaghosh – B. C. Law.
Buddhist India—Rhys Davids.
Indian Architecture—Fergusson.
History of Indian and Indonesian Art—A. K. Coomaraswami.
Chalukyan Architecture of Canarese Districts—Cousens.
History of Medieval India—Ishwari Prasad.
Akbar the Great Mughal—V. Smith.
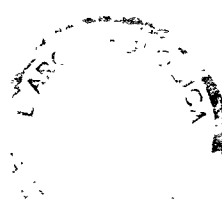
Jahangir—Beni Prasad.
Shahjahan—Banarsi Prasad Saksena.
Aurangzeb—J. N. Sarkar.
Fall of the Mughal Empire—J. N. Sarkar.
Later Mughals—Irvine.
Story of my Life—Meadows Taylor.
Highlands of Central India—Forsythe.
The Indian Borderland—Holdisch.
A Forgotten Empire—Sewell.
History of Bengali Literature—D. C. Sen.
A History of Sanskrit Literature—Macdonald.
Gupta Coins—J. Allen
Travels into Bokhara—Alexander Burns, 1835.
Hindu America—Chaman Lal.
Mahabharata—C. V. Vaidya.

टिप्पणी—(1) ग्रंथनिर्देश की प्रक्रिया का उदाहरण :—
वाल्मीकि रामायण (वाल्मीकि० कांड, सर्ग, श्लोक)।
महाभारत (महा० पर्व, अध्याय, श्लोक)।
विष्णुपुराण (विष्णु० अंश, अध्याय, श्लोक)।
श्रीमद्भागवत (श्रीमद्भागवत स्कंध, अध्याय, श्लोक)।
रघुवंश (रघु० सर्ग. श्लोक)।
इसी प्रकार अन्य।

निर्दिष्ट ग्रंथ के कांड, पर्व, स्कंध आदि को अध्याय आदि से कॉमा (,) द्वारा तथा श्लोकों या छन्दों को परस्पर हाइफन (-) द्वारा पृथक् किया गया है।

(2) ई० = ईसवी।
ई० पू० = ईसवी पूर्व।
वि० सं० = विक्रम संवत्।
आं०प्र० = आंध्र प्रदेश।
उ०प्र० = उत्तर प्रदेश।
म०प्र० = मध्य प्रदेश।
मद्रास राज्य अब तमिलनाडु कहलाता है।

Dictionary of Place Names